(2) 1.2

॥ श्रीहरिः ॥

1897

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड]

1-6

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

[illegible] देवी [illegible]: ४९

॥ श्रीहरिः ॥

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध १ से ६ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६९ तृतीय पुनर्मुद्रण ५,५००
कुल मुद्रण २०,५००

❖ मूल्य—१५० रु०
(एक सौ पचास रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

निवेदन

पुराणवाङ्मयमें 'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'का अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण पाँचवाँ है। शक्तिके उपासक इस पुराणको 'शाक्तभागवत' कहते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें मुख्य रूपसे परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उनकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही इस ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिसके सम्यक् अवगाहनसे साधकों तथा भक्तोंका मन देवीके पद्मपरागका भ्रमर बनकर भक्तिमार्गका पथिक बन जाता है।

संसारमें सभी प्राणियोंके लिये मातृभावकी महती महिमा है। मानव अपनी सबसे अधिक श्रद्धा स्वाभाविक रूपसे माताके ही चरणोंमें अर्पित करता है; क्योंकि सर्वप्रथम माताकी ही गोदमें उसे लोक-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है, इसलिये माता ही सभी प्राणियोंकी आदिगुरुके रूपमें प्रतिष्ठित है। उसकी करुणा और कृपा बालकोंके लौकिक तथा पारलौकिक कल्याणका आधार है; इसीलिये 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव'—इन श्रुतिवाक्योंमें सबसे पहले माताका ही स्थान है। जो भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी तथा समष्टिस्वरूपिणी सम्पूर्ण जगत्‌की माता हैं, वे ही सम्पूर्ण लोकोंको कल्याणका मार्ग प्रदर्शित करनेवाली ज्ञानगुरुस्वरूपा भी हैं।

वास्तवमें महाशक्ति ही परब्रह्मके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, जो विभिन्न रूपोंमें अनेकविध लीलाएँ करती रहती हैं। उन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मा विश्वका सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, अतः ये ही जगत्‌का सृजन-पालन-संहार करनेवाली आदिनारायणी शक्ति हैं। ये ही महाशक्ति नौ दुर्गाओं तथा दस महाविद्याओंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं और ये ही महाशक्ति देवी अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिता तथा अम्बा हैं। गायत्री, भुवनेश्वरी, काली, तारा, बगला, षोडशी, त्रिपुरा, धूमावती, मातंगी, कमला, पद्मावती, दुर्गा आदि देवियाँ इन्हीं भगवतीके ही रूप हैं। ये ही शक्तिमती हैं और शक्ति हैं; नर हैं और नारी भी हैं; ये ही माता-धाता-पितामह आदि रूपसे अधिष्ठित हैं।

अभिप्राय यह है कि परमात्मस्वरूपिणी महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें सर्वत्र क्रीडा करती हैं—'शक्तिक्रीडा जगत् सर्वम्' सम्पूर्ण जगत् शक्तिकी क्रीडा (लीला) है। शक्तिसे रहित हो जाना ही शून्यता है।

शक्तिहीन मनुष्यका कहीं भी आदर नहीं किया जाता है। ध्रुव तथा प्रह्लाद भक्ति-शक्तिके कारण ही पूजित हैं। गोपिकाएँ प्रेमशक्तिके कारण ही जगत्‌में पूजनीय हुईं। हनुमान् तथा भीष्मकी ब्रह्मचर्यशक्ति; वाल्मीकि तथा व्यासकी कवित्वशक्ति; भीम तथा अर्जुनकी पराक्रमशक्ति; हरिश्चन्द्र तथा युधिष्ठिरकी सत्यशक्ति और शिवाजी तथा राणाप्रतापकी वीरशक्ति ही इन महात्माओंके प्रति श्रद्धा-समादर अर्पित करनेके लिये सभी लोगोंको प्रेरणा प्रदान करती है। सभी जगह शक्तिकी ही प्रधानता है। इसलिये प्रकारान्तरसे कहा जा सकता है कि 'सम्पूर्ण विश्व महाशक्तिका ही विलास है।' श्रीमद्देवीभागवतमें

भगवती स्वयं उद्घोष करती हैं 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।' अर्थात् समस्त जगत् मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी सनातन तत्त्व नहीं है।

वास्तवमें श्रीमद्देवीभागवतकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र पराम्बा भगवतीकी शरणमें जाना चाहिये। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि एवं शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनसे जीवमात्रके कल्याणमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय पराम्बा भगवतीकी करुणामयी कृपाको प्राप्त कर सकता है—इसके विधिवत् साधनोंको उपदेशपूर्ण इतिवृत्तों, कथानकोंके साथ इस पुराणमें प्रस्तुत किया गया है।

'श्रीमद्देवीभागवत' एवं 'श्रीमद्भागवत'—इन दोनोंमें महापुराणकी गणनामें किसे माना जाय? कभी-कभी यह प्रश्न उठता है। शास्त्रोंके अनुसार कल्पभेद कथाभेदका सुन्दर समाधान माना जाता है। इस कल्पभेदमें क्या होता है? देश, काल और अवस्थाका भेद है—ये तीनों भेद जड़प्रकृतिके हैं, चेतन संवित्में नहीं। कल्पभेदका एक अर्थ दर्शनभेद भी होता है। श्रीमद्भागवतका अपना दर्शन है और श्रीमद्देवीभागवतका अपना। दोनों ही दर्शन अपने-अपने स्थानपर सुप्रतिष्ठित हैं। श्रीमद्देवीभागवतका सम्बन्ध सारस्वतकल्पसे तथा श्रीमद्भागवतका सम्बन्ध पाद्मकल्पसे है।

'श्रीमद्देवीभागवतपुराण' के श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ तथा अन्तःकरणकी परिशुद्धि, पराम्बा भगवतीमें रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है, तदनुसार जीवनमें कर्तव्यका निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही जो जिज्ञासु शास्त्रमर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन, सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुराण जिज्ञासुओंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें पूर्णतः सहायक है।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत सन् १९६० ई०में कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सुधीजनोंकी यह भावना थी कि भाषा-टीकासहित मूल श्रीमद्देवीभागवतका प्रकाशन किया जाय। इस दृष्टिसे पिछले दो वर्षों (सन् २००८ तथा २००९ ई०)-में सम्पूर्ण देवीभागवतमहापुराणका अनुवाद श्लोकसंख्यासहित कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया गया, इसके साथ ही मूल देवीभागवत भी पुस्तकरूपमें प्रकाशित की गयी। इस महापुराणका कलेवर बड़ा होनेके कारण विशेषाङ्कमें मूल और अर्थ—दोनों देना सम्भव नहीं था। अतः अब पुस्तकरूपमें भाषा-टीकासहित श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण दो भागोंमें प्रकाशित किया जा रहा है।

भक्तजनोंमें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा एवं पारायणके अनुष्ठानकी परम्परा भी है। इस दृष्टिसे श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि तथा सांगोपांग पूजा-अर्चन-हवनका विधान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही नवाह्न-पारायणके तिथिक्रमका भी उल्लेख किया गया है। आशा है साधकगण इससे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

◆

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१-निवेदन ३
२-श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य १३
३-अर्धश्लोकी देवीभागवत १५
४-भवान्यष्टकम् १७
५-श्रीश्रीजगद्धात्री [चित्र] १८
६-श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि १९

माहात्म्य

१-सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणकी महिमाका कथन ३३
२-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें स्यमन्तकमणिकी कथा ३८
३-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुद्युम्नकी कथा ४५
४-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें रेवती नक्षत्रके पतन और पुनः स्थापनकी कथा तथा श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे राजा दुर्दमको मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्ति..... ५१
५-श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम, श्रवणके फल तथा माहात्म्यका वर्णन . ५९

प्रथम स्कन्ध

१-महर्षि शौनकका सूतजीसे श्रीमद्देवी-भागवतपुराण सुनानेकी प्रार्थना करना ... ६९
२-सूतजीद्वारा श्रीमद्देवीभागवतके स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकसंख्याका निरूपण और उसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन. ७१
३-सूतजीद्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोकसंख्याका कथन, उपपुराणों तथा प्रत्येक द्वापरयुगके व्यासोंका नाम ७५
४-नारदजीद्वारा व्यासजीको देवीकी महिमा बताना ७९
५-भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा ८५
६-शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना...... ९६
७-ब्रह्माजीका भगवान् विष्णु तथा भगवती योगनिद्राकी स्तुति करना १००
८-भगवान् विष्णु योगमायाके अधीन क्यों हो गये—ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें सूतजीद्वारा उन्हें आद्याशक्ति भगवतीकी महिमा सुनाना................................ १०६
९-भगवान् विष्णुका मधु-कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करना, विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा मोहित मधु-कैटभका विष्णुद्वारा वध............ ११०
१०-व्यासजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति..... ११८
११-बुधके जन्मकी कथा १२१
१२-राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह और पुरूरवाकी उत्पत्ति, भगवतीकी स्तुति करनेसे इलारूपधारी राजा सुद्युम्नकी सायुज्यमुक्ति १२८
१३-राजा पुरूरवा और उर्वशीकी कथा १३३
१४-व्यासपुत्र शुकदेवके अरणिसे उत्पन्न होनेकी कथा तथा व्यासजीद्वारा उनसे गृहस्थधर्मका वर्णन १३६
१५-शुकदेवजीका विवाहके लिये अस्वीकार करना तथा व्यासजीका उनसे श्रीमद्देवी-भागवत पढ़नेके लिये कहना १४२
१६-बालरूपधारी भगवान् विष्णुसे महा-लक्ष्मीका संवाद, व्यासजीका शुकदेवजीसे देवीभागवतप्राप्तिकी परम्परा बताना तथा शुकदेवजीका मिथिला जानेका निश्चय करना................................ १४८

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१७-शुकदेवजीका राजा जनकसे मिलनेके लिये मिथिलापुरीको प्रस्थान तथा राजभवनमें प्रवेश १५४
१८-शुकदेवजीके प्रति राजा जनकका उपदेश १६०
१९-शुकदेवजीका व्यासजीके आश्रममें वापस आना, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना तथा परम सिद्धिकी प्राप्ति करना........ १६५
२०-सत्यवतीका राजा शन्तनुसे विवाह तथा दो पुत्रोंका जन्म, राजा शन्तनुकी मृत्यु, चित्रांगदका राजा बनना तथा उसकी मृत्यु, विचित्रवीर्यका काशिराजकी कन्याओंसे विवाह और क्षयरोगसे मृत्यु, व्यासजीद्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति १७०

द्वितीय स्कन्ध

१-ब्राह्मणके शापसे अद्रिका अप्सराका मछली होना और उससे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति १७७
२-व्यासजीकी उत्पत्ति और उनका तपस्याके लिये जाना..................................... १८१
३-राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा १८५
४-गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, सात पुत्रोंका जन्म तथा गंगाका उन्हें अपने जलमें प्रवाहित करना, आठवें पुत्रके रूपमें भीष्मका जन्म तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा १९०
५-मत्स्यगन्धा (सत्यवती)-को देखकर राजा शन्तनुका मोहित होना, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा करना और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह १९५
६-दुर्वासाका कुन्तीको अमोघ कामद मन्त्र देना, मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णका जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, शापके कारण पाण्डुका सन्तानोत्पादनमें असमर्थ होना, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीका पुत्रवती होना, पाण्डुकी मृत्यु और पाँचों पुत्रोंको लेकर कुन्तीका हस्तिनापुर आना २०१
७-धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे दुर्योधनके पिण्डदानहेतु धन माँगना, भीमसेनका प्रतिरोध; धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजयका वनके लिये प्रस्थान, वनवासी धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीसे मिलनेके लिये युधिष्ठिरका भाइयोंके साथ वनगमन, विदुरका महाप्रयाण, धृतराष्ट्रसहित पाण्डवोंका व्यासजीके आश्रमपर आना, देवीकी कृपासे व्यासजी-द्वारा महाभारतयुद्धमें मरे कौरवों-पाण्डवोंके परिजनोंको बुला देना...................... २०८
८-धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निमें जल जाना, प्रभासक्षेत्रमें यादवोंका परस्पर युद्ध और संहार, कृष्ण और बलरामका परमधामगमन, परीक्षित्को राजा बनाकर पाण्डवोंका हिमालयपर्वतपर जाना, परीक्षित्को शापकी प्राप्ति, प्रमद्वरा और रुरुका वृत्तान्त...... २१४
९-सर्पके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु, रुरुद्वारा अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कराना, मणि-मन्त्र-औषधिद्वारा सुरक्षित राजापरीक्षित्का सात तलवाले भवनमें निवास करना २१८
१०-महाराज परीक्षित्को डँसनेके लिये तक्षकका प्रस्थान, मार्गमें मन्त्रवेत्ता कश्यपसे भेंट, तक्षकका एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर देना और कश्यपका उसे पुनः हरा-भरा कर देना, तक्षकद्वारा धन देकर कश्यपको वापस कर देना, सर्पदंशसे राजा परीक्षित्की मृत्यु...................... २२२
११-जनमेजयका राजा बनना और उत्तंककी प्रेरणासे सर्प-सत्र करना, आस्तीकके कहनेसे राजाद्वारा सर्प-सत्र रोकना...... २२८
१२-आस्तीकमुनिके जन्मकी कथा, कद्रू और विनताद्वारा सूर्यके घोड़ेके रंगके विषयमें शर्त लगाना और विनताको दासीभावकी प्राप्ति, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप..... २३४

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

तृतीय स्कन्ध

१- राजा जनमेजयका ब्रह्माण्डोत्पत्तिविषयक प्रश्न तथा इसके उत्तरमें व्यासजीका पूर्वकालमें नारदजीके साथ हुआ संवाद सुनाना २४१
२- भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन . २४५
३- ब्रह्मा, विष्णु और महेशका विभिन्न लोकोंमें जाना तथा अपने ही सदृश अन्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर आश्चर्यचकित होना, देवीलोकका दर्शन २४९
४- भगवतीके चरणनखमें त्रिदेवोंको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन होना, भगवान् विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति करना २५५
५- ब्रह्मा और शिवजीका भगवतीकी स्तुति करना २६०
६- भगवती जगदम्बिकाद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा 'महासरस्वती', 'महालक्ष्मी' और 'महाकाली' नामक अपनी शक्तियोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवको प्रदान करना २६६
७- ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन; सात्त्विक, राजस और तामस शक्तिका वर्णन; पंचतन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा पंचीकरण-क्रियाद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन २७४
८- सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन २७८
९- गुणोंके परस्पर मिश्रीभावका वर्णन, देवीके बीजमन्त्रकी महिमा २८३
१०-देवीके बीजमन्त्रकी महिमाके प्रसंगमें सत्यव्रतका आख्यान २८७
११-सत्यव्रतद्वारा बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण तथा उससे प्रसन्न होकर भगवतीका सत्यव्रतको समस्त विद्याएँ प्रदान करना २९३
१२-सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंका वर्णन; मानसयज्ञकी महिमा और व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको देवी-यज्ञके लिये प्रेरित करना........................... २९९
१३-देवीकी आधारशक्तिसे पृथ्वीका अचल होना तथा उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना, ब्रह्माजीद्वारा मरीचि आदिकी मानसी सृष्टि करना, काश्यपी सृष्टिका वर्णन; ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदिका निर्माण; भगवान् विष्णुद्वारा अम्बायज्ञ करना और प्रसन्न होकर भगवती आद्याशक्तिद्वारा आकाशवाणीके माध्यमसे उन्हें वरदान देना............................ ३०६
१४-देवीमाहात्म्यसे सम्बन्धित राजा ध्रुवसन्धिकी कथा, ध्रुवसन्धिकी मृत्युके बाद राजा युधाजित् और वीरसेनका अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें विवाद ... ३११
१५-राजा युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, राजा ध्रुवसन्धिकी रानी मनोरमाका अपने पुत्र सुदर्शनको लेकर भारद्वाजमुनिके आश्रममें जाना तथा वहीं निवास करना................................. ३१६
१६-युधाजित्का भारद्वाजमुनिके आश्रमपर आना और उनसे मनोरमाको भेजनेका आग्रह करना, प्रत्युत्तरमें मुनिका 'शक्ति हो तो ले जाओ'—ऐसा कहना...................... ३२२
१७-युधाजित्का अपने प्रधान अमात्यसे परामर्श करना, प्रधान अमात्यका इस सन्दर्भमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-प्रसंग सुनाना और परामर्श मानकर युधाजित्का वापस लौट जाना, बालक सुदर्शनको दैवयोगसे कामराज नामक बीजमन्त्रकी प्राप्ति, भगवतीकी आराधनासे सुदर्शनको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होना तथा काशिराजकी कन्या शशिकलाको स्वप्नमें भगवतीद्वारा सुदर्शनका वरण करनेका आदेश देना.............................. ३२८
१८-राजकुमारी शशिकलाद्वारा मन-ही-मन सुदर्शनका वरण करना, काशिराजद्वारा स्वयंवरकी घोषणा, शशिकलाका सखीके माध्यमसे अपना निश्चय माताको बताना ३३३

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१९-माताका शशिकलाको समझाना, शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना, सुदर्शन तथा अन्य राजाओंका स्वयंवरमें आगमन, युधाजित्‌द्वारा सुदर्शनको मार डालनेकी बात कहनेपर केरलनरेशका उन्हें समझाना .. ३३८
२०-राजाओंका सुदर्शनसे स्वयंवरमें आनेका कारण पूछना और सुदर्शनका उन्हें स्वप्नमें भगवतीद्वारा दिया गया आदेश बताना, राजा सुबाहुका शशिकलाको समझाना, परंतु उसका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना ३४४
२१-राजा सुबाहुका राजाओंसे अपनी कन्याकी इच्छा बताना, युधाजित्‌का क्रोधित होकर सुबाहुको फटकारना तथा अपने दौहित्रसे शशिकलाका विवाह करनेको कहना, माताद्वारा शशिकलाको पुनः समझाना, किंतु शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना ३५०
२२-शशिकलाका गुप्त स्थानमें सुदर्शनके साथ विवाह, विवाहकी बात जानकर राजाओंका सुबाहुके प्रति क्रोध प्रकट करना तथा सुदर्शनका मार्ग रोकनेका निश्चय करना ३५६
२३-सुदर्शनका शशिकलाके साथ भारद्वाज-आश्रमके लिये प्रस्थान, युधाजित् तथा अन्य राजाओंसे सुदर्शनका घोर संग्राम, भगवती सिंहवाहिनी दुर्गाका प्राकट्य, भगवतीद्वारा युधाजित् और शत्रुजित्‌का वध, सुबाहुद्वारा भगवतीकी स्तुति ३६१
२४-सुबाहुद्वारा भगवती दुर्गासे सदा काशीमें रहनेका वरदान माँगना तथा देवीका वरदान देना, सुदर्शनद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीका उसे अयोध्या जाकर राज्य करनेका आदेश देना, राजाओंका सुदर्शनसे अनुमति लेकर अपने-अपने राज्योंको प्रस्थान ... ३६७
२५-सुदर्शनका शत्रुजित्‌की माताको सान्त्वना देना, सुदर्शनद्वारा अयोध्यामें तथा राजा सुबाहुद्वारा काशीमें देवी दुर्गाकी स्थापना ३७१

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

२६-नवरात्रव्रत-विधान, कुमारीपूजामें प्रशस्त कन्याओंका वर्णन ३७५
२७-कुमारीपूजामें निषिद्ध कन्याओंका वर्णन, नवरात्रव्रतके माहात्म्यके प्रसंगमें सुशील नामक वणिक्‌की कथा ३८०
२८-श्रीरामचरित्रवर्णन ३८६
२९-सीताहरण, रामका शोक और लक्ष्मणद्वारा उन्हें सान्त्वना देना ३९२
३०-श्रीराम और लक्ष्मणके पास नारदजीका आना और उन्हें नवरात्रव्रत करनेका परामर्श देना, श्रीरामके पूछनेपर नारदजीका उनसे देवीकी महिमा और नवरात्रव्रतकी विधि बतलाना, श्रीरामद्वारा देवीका पूजन और देवीद्वारा उन्हें विजयका वरदान देना ... ३९७

चतुर्थ स्कन्ध

१- वसुदेव, देवकी आदिके कष्टोंके कारणके सम्बन्धमें जनमेजयका प्रश्न.............. ४०३
२- व्यासजीका जनमेजयको कर्मकी प्रधानता समझाना.. ४०७
३- वसुदेव और देवकीके पूर्वजन्मकी कथा ४१२
४- व्यासजीद्वारा जनमेजयको मायाकी प्रबलता समझाना........................... ४१७
५- नर-नारायणकी तपस्यासे चिन्तित होकर इन्द्रका उनके पास जाना और मोहिनी माया प्रकट करना तथा उससे भी अप्रभावित रहनेपर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंको भेजना.. ४२१
६- कामदेवद्वारा नर-नारायणके समीप वसन्त ऋतुकी सृष्टि, नारायणद्वारा उर्वशीकी उत्पत्ति, अप्सराओंद्वारा नारायणसे स्वयंको अंगीकार करनेकी प्रार्थना................. ४२५
७- अप्सराओंके प्रस्तावसे नारायणके मनमें ऊहापोह और नरका उन्हें समझाना तथा अहंकारके कारण प्रह्लादके साथ हुए युद्धका स्मरण कराना..................... ४३१

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

८- व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको प्रह्लादकी कथा सुनाना और इस प्रसंगमें च्यवनऋषिके पाताललोक जानेका वर्णन ४३६
९- प्रह्लादजीका तीर्थयात्राके क्रममें नैमिषारण्य पहुँचना और वहाँ नर-नारायणसे उनका घोर युद्ध, भगवान् विष्णुका आगमन और उनके द्वारा प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय देना ४४०
१०-राजा जनमेजयद्वारा प्रह्लादके साथ नर-नारायणके युद्धका कारण पूछना, व्यासजीद्वारा उत्तरमें संसारके मूल कारण अहंकारका निरूपण करना तथा महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुको शाप देनेकी कथा ४४५
११-मन्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये शुक्राचार्यका तपस्यारत होना, देवताओंद्वारा दैत्योंपर आक्रमण, शुक्राचार्यकी माताद्वारा दैत्योंकी रक्षा और इन्द्र तथा विष्णुको संज्ञाशून्य कर देना, विष्णुद्वारा शुक्रमाताका वध .. ४५०
१२-महात्मा भृगुद्वारा विष्णुको मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप देना, इन्द्रद्वारा अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके लिये अर्पित करना, देवगुरु बृहस्पतिद्वारा शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंका पुरोहित बनना ४५५
१३-शुक्राचार्यरूपधारी बृहस्पतिका दैत्योंको उपदेश देना.................................... ४६०
१४-शुक्राचार्यद्वारा दैत्योंको बृहस्पतिका पाखण्ड-पूर्ण कृत्य बताना, बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्योंका उन्हें फटकारना, क्रुद्ध शुक्राचार्यका दैत्योंको शाप देना, बृहस्पतिका अन्तर्धान हो जाना, प्रह्लादका शुक्राचार्यजीसे क्षमा माँगना और शुक्राचार्यका उन्हें प्रारब्धकी बलवत्ता समझाना ४६६
१५-देवता और दैत्योंके युद्धमें दैत्योंकी विजय, इन्द्रद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीका प्रकट होकर दैत्योंके पास जाना, प्रह्लादद्वारा भगवतीकी स्तुति, देवीके आदेशसे दैत्योंका पातालगमन ४७१
१६-भगवान् श्रीहरिके विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन ४७८
१७-श्रीनारायणद्वारा अप्सराओंको वरदान देना, राजा जनमेजयद्वारा व्यासजीसे श्रीकृष्णावतारका चरित सुनानेका निवेदन करना ४८१
१८-पापभारसे व्यथित पृथ्वीका देवलोक जाना, इन्द्रका देवताओं और पृथ्वीके साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्माजीका पृथ्वी तथा इन्द्रादि देवताओंसहित विष्णुलोक जाकर विष्णुकी स्तुति करना, विष्णुद्वारा अपनेको भगवतीके अधीन बताना...... ४८५
१९-देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन, भगवतीद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर अपनी शक्तिसे पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन देना ४९०
२०-व्यासजीद्वारा जनमेजयको भगवतीकी महिमा सुनाना तथा कृष्णावतारकी कथाका उपक्रम ४९५
२१-देवकीके प्रथम पुत्रका जन्म, वसुदेवद्वारा प्रतिज्ञानुसार उसे कंसको अर्पित करना और कंसद्वारा उस नवजात शिशुका वध ५०३
२२-देवकीके छः पुत्रोंके पूर्वजन्मकी कथा, सातवें पुत्रके रूपमें भगवान् संकर्षणका अवतार, देवताओं तथा दानवोंके अंशावतारोंका वर्णन ५०७
२३-कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीका उन्हें गोकुल पहुँचाना और वहाँसे योगमायास्वरूपा कन्याको लेकर आना, कंसद्वारा कन्याके वधका प्रयास, योगमायाद्वारा आकाशवाणी करनेपर कंसका अपने सेवकोंद्वारा नवजात शिशुओंका वध कराना ५१२
२४-श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा, कृष्णपुत्रका

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

प्रसूतिगृहसे हरण, कृष्णद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवती चण्डिकाद्वारा सोलह वर्षके बाद पुनः पुत्रप्राप्तिका वर देना ५१७
२५-व्यासजीद्वारा शाम्भवी मायाकी बलवत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीद्वारा उन्हें वरदान देना ५२३

पंचम स्कन्ध

१- व्यासजीद्वारा त्रिदेवोंकी तुलनामें भगवतीकी उत्तमताका वर्णन ५३१
२- महिषासुरके जन्म, तप और वरदान-प्राप्तिकी कथा ५३६
३- महिषासुरका दूत भेजकर इन्द्रको स्वर्ग खाली करनेका आदेश देना, दूतद्वारा इन्द्रका युद्धहेतु आमन्त्रण प्राप्तकर महिषासुरका दानववीरोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेका आदेश देना ५४१
४- इन्द्रका देवताओं तथा गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करना तथा बृहस्पतिद्वारा जय-पराजयमें दैवकी प्रधानता बतलाना ५४६
५- इन्द्रका ब्रह्मा, शिव और विष्णुके पास जाना; तीनों देवताओंसहित इन्द्रका युद्धस्थलमें आना तथा चिक्षुर, बिडाल और ताम्रको पराजित करना ५५१
६- भगवान् विष्णु और शिवके साथ महिषासुरका भयानक युद्ध.............. ५५६
७- महिषासुरको अवध्य जानकर त्रिदेवोंका अपने-अपने लोक लौट जाना, देवताओंकी पराजय तथा महिषासुरका स्वर्गपर आधिपत्य, इन्द्रका ब्रह्मा और शिवजीके साथ विष्णुलोकके लिये प्रस्थान ५६१
८- ब्रह्माप्रभृति समस्त देवताओंके शरीरसे तेजःपुंजका निकलना और उस तेजोराशिसे भगवतीका प्राकट्य ५६६
९- देवताओंद्वारा भगवतीको आयुध और आभूषण समर्पित करना तथा उनकी स्तुति करना, देवीका प्रचण्ड अट्टहास करना, जिसे सुनकर महिषासुरका उद्विग्न होकर अपने प्रधान अमात्यको देवीके पास भेजना... ५७३
१०-देवीद्वारा महिषासुरके अमात्यको अपना उद्देश्य बताना तथा अमात्यका वापस लौटकर देवीद्वारा कही गयी बातें महिषासुरको बताना.......................... ५७९
११-महिषासुरका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करना और ताम्रको भगवतीके पास भेजना.......................... ५८५
१२-देवीके अट्टहाससे भयभीत होकर ताम्रका महिषासुरके पास भाग आना, महिषासुरका अपने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार-विमर्श तथा दुर्धर, दुर्मुख और बाष्कलकी गर्वोक्ति ५९१
१३-बाष्कल और दुर्मुखका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध ५९७
१४-चिक्षुर और ताम्रका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध.......................... ६०२
१५-बिडालाख्य और असिलोमाका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध ६०७
१६-महिषासुरका रणभूमिमें आना तथा देवीसे प्रणय-याचना करना.............. ६१२
१७-महिषासुरका देवीको मन्दोदरी नामक राजकुमारीका आख्यान सुनाना.......... ६१८
१८-दुर्धर, त्रिनेत्र, अन्धक और महिषासुरका वध ६२३
१९-देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति.......... ६२९
२०-देवीका मणिद्वीप पधारना तथा राजा शत्रुघ्नका भूमण्डलाधिपति बनना ६३५
२१-शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय ६४०
२२-देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और उनका प्राकट्य ६४६
२३-भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य,

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

देवीकी कालिकारूपमें परिणति, चण्ड-मुण्डसे देवीके अद्भुत सौन्दर्यको सुनकर शुम्भका सुग्रीवको दूत बनाकर भेजना, जगदम्बाका विवाहके विषयमें अपनी शर्त बताना ६५२
२४-शुम्भका धूम्रलोचनको देवीके पास भेजना और धूम्रलोचनका देवीको समझानेका प्रयास करना ६५७
२५-भगवती काली और धूम्रलोचनका संवाद, कालीके हुंकारसे धूम्रलोचनका भस्म होना तथा शुम्भका चण्ड-मुण्डको युद्धहेतु प्रस्थानका आदेश देना ६६३
२६-भगवती अम्बिकासे चण्ड-मुण्डका संवाद और युद्ध, देवी कालिकाद्वारा चण्ड-मुण्डका वध ६६८
२७-शुम्भका रक्तबीजको भगवती अम्बिकाके पास भेजना और उसका देवीसे वार्तालाप ६७४
२८-देवीके साथ रक्तबीजका युद्ध, विभिन्न शक्तियोंके साथ भगवान् शिवका रणस्थलमें आना तथा भगवतीका उन्हें दूत बनाकर शुम्भके पास भेजना, भगवान् शिवके सन्देशसे दानवोंका क्रुद्ध होकर युद्धके लिये आना ६८०
२९-रक्तबीजका वध और निशुम्भका युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान ६८५
३०-देवीद्वारा निशुम्भका वध................. ६९१
३१-शुम्भका रणभूमिमें आना और देवीसे वार्तालाप करना, भगवती कालिकाद्वारा उसका वध, देवीके इस उत्तम चरित्रके पठन और श्रवणका फल ६९७
३२-देवीमाहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा...................... ७०३
३३-मुनि सुमेधाका सुरथ और समाधिको देवीकी महिमा बताना....................... ७०९
३४-मुनि सुमेधाद्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन.. ७१४
३५-सुरथ और समाधिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवतीका प्रकट होना और उन्हें इच्छित वरदान देना........................ ७१८

षष्ठ स्कन्ध

१- त्रिशिराकी तपस्यासे चिन्तित इन्द्रद्वारा तपभंगहेतु अप्सराओंको भेजना ७२३
२- इन्द्रद्वारा त्रिशिराका वध, क्रुद्ध त्वष्टाद्वारा अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करके वृत्रासुरको उत्पन्न करना और उसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित करना ७२८
३- वृत्रासुरका देवलोकपर आक्रमण, बृहस्पतिद्वारा इन्द्रकी भर्त्सना करना और वृत्रासुरको अजेय बतलाना, इन्द्रकी पराजय, त्वष्टाके निर्देशसे वृत्रासुरका ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यारत होना............ ७३२
४- तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीका वृत्रासुरको वरदान देना, त्वष्टाकी प्रेरणासे वृत्रासुरका स्वर्गपर आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेना, इन्द्रका पितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकरके साथ वैकुण्ठधाम जाना ७३७
५- भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे देवताओंका भगवतीकी स्तुति करना और प्रसन्न होकर भगवतीका वरदान देना ७४३
६- भगवान् विष्णुका इन्द्रको वृत्रासुरसे सन्धिका परामर्श देना, ऋषियोंकी मध्यस्थतासे इन्द्र और वृत्रासुरमें सन्धि, इन्द्रद्वारा छलपूर्वक वृत्रासुरका वध...... ७४९
७- त्वष्टाका वृत्रासुरकी पारलौकिक क्रिया करके इन्द्रको शाप देना, इन्द्रको ब्रह्महत्या लगना, नहुषका स्वर्गाधिपति बनना और इन्द्राणीपर आसक्त होना.................. ७५४
८- इन्द्राणीको बृहस्पतिकी शरणमें जानकर नहुषका क्रुद्ध होना, देवताओंका नहुषको समझाना, बृहस्पतिके परामर्शसे इन्द्राणीका नहुषसे समय माँगना, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास जाना और विष्णुका उन्हें देवीको प्रसन्न करनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेको कहना, बृहस्पतिका शचीको

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

भगवतीकी आराधना करनेको कहना, शचीकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीका प्रकट होना और शचीको इन्द्रका दर्शन होना ७५९
९- शचीका इन्द्रसे अपना दुःख कहना, इन्द्रका शचीको सलाह देना कि वह नहुषसे ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें आनेको कहे, नहुषका ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें सवार होना और शापित होकर सर्प होना तथा इन्द्रका पुनः स्वर्गाधिपति बनना.................... ७६५
१०-कर्मकी गहन गतिका वर्णन तथा इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका उदाहरण ७७१
११-युगधर्म एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थाका वर्णन ७७४
१२-पवित्र तीर्थोंका वर्णन, चित्तशुद्धिकी प्रधानता तथा इस सम्बन्धमें विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर वैरकी कथा, राजा हरिश्चन्द्रका वरुणदेवके शापसे जलोदरग्रस्त होना ७७९
१३-राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करना, विश्वामित्रसे प्राप्त वरुणमन्त्रके जपसे शुनःशेपका मुक्त होना, परस्पर शापसे विश्वामित्र और वसिष्ठका बक तथा आडी होना ७८४
१४-राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेको शाप देना, वसिष्ठका मित्रावरुणके पुत्रके रूपमें जन्म लेना ७८९
१५-भगवतीकी कृपासे निमिको मनुष्योंके नेत्र-पलकोंमें वासस्थान मिलना तथा संसारी प्राणियोंकी त्रिगुणात्मकताका वर्णन...... ७९४
१६-हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार.. ७९९
१७-भगवतीकी कृपासे भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति, हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिकी कथा .. ८०३
१८-भगवती लक्ष्मीद्वारा घोड़ीका रूप धारणकर तपस्या करना ८०९

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१९-भगवती लक्ष्मीको अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुके दर्शन और उनका वैकुण्ठगमन ८१४
२०-राजा हरिवर्माको भगवान् विष्णुद्वारा अपना हैहयसंज्ञक पुत्र देना, राजाद्वारा उसका 'एकवीर' नाम रखना ८१९
२१-आखेटके लिये वनमें गये राजासे एकावलीकी सखी यशोवतीकी भेंट, एकावलीके जन्मकी कथा ८२४
२२-यशोवतीका एकवीरसे कालकेतुद्वारा एकावलीके अपहृत होनेकी बात बताना ८२९
२३-भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षितएकवीर-कालकेतुका वध, एकवीर और एकावलीका विवाह तथा हैहयवंशकीपरम्परा ८३५
२४-धृतराष्ट्रके जन्मकी कथा ८४१
२५-पाण्डु और विदुरके जन्मकी कथा, पाण्डवोंका जन्म, पाण्डुकी मृत्यु, द्रौपदीस्वयंवर, राजसूययज्ञ, कपटद्यूत तथा वनवास और व्यासजीके मोहका वर्णन................. ८४६
२६-देवर्षि नारद और पर्वतमुनिका एक-दूसरेको शाप देना, राजकुमारी दमयन्तीका नारदसे विवाह करनेका निश्चय ८५१
२७-वानरमुख नारदसे दमयन्तीका विवाह, नारद तथा पर्वतका परस्पर शापमोचन ८५६
२८-भगवान् विष्णुका नारदजीसे मायाकी अजेयताका वर्णन करना, मुनि नारदको मायावश स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा राजा तालध्वजका उनसे प्रणय-निवेदन करना ८६१
२९-राजा तालध्वजसे स्त्रीरूपधारी नारदजीका विवाह, अनेक पुत्र-पौत्रोंकी उत्पत्ति और युद्धमें उन सबकी मृत्यु, नारदजीका शोक और भगवान् विष्णुकी कृपासे पुनः स्वरूपबोध ८६६
३०-राजा तालध्वजका विलाप और ब्राह्मण-वेशधारी भगवान् विष्णुके प्रबोधनसे उन्हें वैराग्य होना, भगवान् विष्णुका नारदसे मायाके प्रभावका वर्णन करना ८७१
३१-व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना...................... ८७६

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥

श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥

पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥

यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥

सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः।
देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥

अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्।
देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्।
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥

दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च।
यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥

तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका।
यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥

तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः।
यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं
निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या
स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवतपुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है। सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है। जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता, इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये। पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक् रूपसे श्रवण नहीं कर लेते। मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दु:खप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता। मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाता। इस संसारमें जो मनुष्य विशेष श्रद्धाके साथ उच्च विचारोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करता है तथा इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह ऐश्वर्य तथा ज्ञानसे सम्पन्न हो जाता है।

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥

मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते।
समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥

पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय।
पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥

नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥

अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना।
श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥

यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति।
तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥

नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः।
ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥

मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः।
शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥

प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः।
एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥

नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः।
तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥

वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा।
सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥

पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये।
वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः।
वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥

[महर्षि व्यासने राजा जनमेजयसे कहा—] महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है। हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूलप्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है? हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। **[श्रीसूतजी मुनियोंसे बोले—]** जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है। जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्या-विधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है। शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं। वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। **[श्रीमद्देवीभागवत]**

◆

अर्धश्लोकी देवीभागवत

जिस प्रकार सप्तश्लोकी दुर्गा[१], सप्तश्लोकी गीता[२], पंचश्लोकी गणेशपुराण,[३] चतुःश्लोकी भागवत,[४] एकश्लोकी भागवत[५], एकश्लोकी रामायण[६], एकश्लोकी योगवासिष्ठ[७], सार्धश्लोकी दुर्गा[८] तथा एकश्लोकी महाभारत[९] प्राप्त होता है; उसी प्रकार अर्धश्लोकी देवीभागवत भी प्राप्त होता है, जो तात्त्विक दृष्टिसे बड़े ही महत्त्वका है। पुराण-वाङ्मयमें देवीभागवतका अत्यन्त महनीय स्थान है। इसमें भगवती जगदम्बाका पराशक्तिके रूपमें निरूपण हुआ है। इस पुराणके प्राकट्यके विषयमें इसी पुराणमें बताया गया है कि जब भगवान् वेदव्यासने अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको गृहस्थाश्रम ग्रहण करनेका परामर्श दिया तो ज्ञानमार्गके उपासक श्रीशुकदेवजीने प्रवृत्तिमार्गको स्वीकार नहीं किया, तब वेदव्यासजीने मोक्षमार्गाभिलाषी अपने पुत्रसे कहा—हे महाभाग! तुम मेरे द्वारा रचित वेदतुल्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणको पढ़ो, इसमें बारह स्कन्ध हैं, यह पुराण सभी पुराणोंका आभूषण है और इसके सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है—**'सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते।'** (श्रीमद्देवीभा० १।१५।४९) व्यासजीने इस पुराणके प्राकट्यकी कथा बताते हुए आगे कहा—हे महामते! एक समयकी बात है, जब महाप्रलयावस्थामें एकार्णवके मध्य वटपत्रपर भगवान् विष्णु बालरूपमें शयन कर रहे थे और बड़े ही विचारमग्न थे कि किस चिदात्मा शक्तिने मुझे इस बालरूपमें उत्पन्न किया है, मैं उन्हें कैसे जानूँ? उसी समय आदिशक्ति भगवतीने आकाशवाणीके रूपमें आधे श्लोकमें ही सम्पूर्ण अर्थको प्रदान करनेवाले ज्ञानको बताते हुए कहा—

'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥'

(श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२)

अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है।

भगवान् बालमुकुन्द सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया, उस कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ, वह स्त्री है या पुरुष? तब उन्होंने उस श्लोकार्धरूपी भागवतको अपने हृदयमें धारण कर लिया। वे उसके अर्थपर चिन्तन करने लगे और बार-बार उसका उच्चारण करने लगे। बालमुकुन्दको चिन्तातुर देखकर उसी समय भगवती पराशक्ति शंख, चक्र धारण किये चतुर्भुजा महादेवीके रूपमें अपनी सखियोंसहित

---

[१] 'ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि०' इत्यादि सात श्लोक।

[२] 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म०' इत्यादि सात श्लोक।

[३] श्रीविघ्नेशपुराणसारमुदितम्० इत्यादि पाँच श्लोक।

[४] अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥
(श्रीमद्भा० २।९।३२—३५)

[५] आदौ देवकिदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्धनम् मायापूतनजीवतापहरणं गोवर्धनोद्धारणम्।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनम् एतद् भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम्॥

[६] आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
वालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम्॥

[७] तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति॥

[८] मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्। शक्रादिस्तुतिकं चैव दूतसंवाद एव च॥
शुम्भराजवधश्चैव नारायणीस्तुतिस्तथा। सार्धपाठमिदं प्रोक्तं नवपाठफलप्रदम्॥

[९] आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम्।
लीलागोग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं पश्चाद् भीष्मसुयोधनादिहननं चैतन्महाभारतम्॥

वहाँ प्रकट हो गयीं, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं और उनका स्वरूप बड़ा ही शान्त था। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं।

उनका दर्शनकर भगवान् विष्णु बड़े ही विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने पूछा हे देवि! कुछ समय पूर्व मैंने जो आधा श्लोक सुना, वह परम रहस्यमय वचन किसने कहा था, मुझे बतानेकी कृपा करें। इसपर देवीने कहा—मैं सगुणरूपा चतुर्भुजा भगवती हूँ। सब गुणोंका आलय होते हुए मैं निर्गुणा भी हूँ। वह आधा श्लोक निर्गुणा पराशक्तिने ही कहा था, आप इसे सब वेदोंका तत्त्वस्वरूप, कल्याणकारी और पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत समझिये। **'पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम्।'** (श्रीमद्देवीभा० १।१६।१५) आप इसे सदा अपने चित्तमें रखिये और कभी विस्मृत न कीजिये। यह सब शास्त्रोंका सार है तथा भगवती महाविद्याके द्वारा प्रकाशित किया गया है। तीनों लोकोंमें इससे बढ़कर अन्य कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् विष्णुने वह श्लोकार्ध—देवीभागवतरूपी मन्त्र अपने हृदयदेशमें सदाके लिये धारण कर लिया। कुछ समय बाद जब ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे डरकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये तो भगवान्को ध्यानमें स्थित होकर मन्त्र-जप करते हुए देखकर ब्रह्माजी बोले—हे देवेश! आप किस देवताका जप कर रहे हैं, आपसे भी बढ़कर कोई है क्या? तब विष्णुजी बोले—हे महाभाग! हम सभीमें जो कार्यकारणरूपा शक्ति विद्यमान है, जिनके द्वारा यह संसार पालित-पोषित और तिरोहित किया जाता है, वे ही सनातनी पराविद्या हैं, वे ही सभी ईश्वरोंकी भी स्वामिनी हैं। उन भगवतीने आधे श्लोकमें जो कहा, वही वास्तविक श्रीमद्देवीभागवत है। प्रत्येक द्वापरयुगमें उसीका विस्तार होगा—

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल।
विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा॥

(श्रीमद्देवीभा० १।१६।२९)

इतना कहनेके अनन्तर व्यासजीने शुकदेवजीसे फिर कहा—हे महाभाग! तब ब्रह्माजीने उस भागवतका संग्रह किया और उन्होंने इसे अपने पुत्र नारदजीको सुनाया। पूर्वकालमें वही भागवत देवर्षि नारदजीने मुझे दिया और फिर मैंने इसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत किया। हे पुत्र! यह पुराण वेदतुल्य है; सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षणोंसे युक्त है तथा भगवतीके उत्तम चरित्रोंसे ओत-प्रोत है। यह तत्त्वज्ञानके रससे परिपूर्ण, वेदार्थका उपबृंहण करनेवाला, ब्रह्मविद्याका निधान एवं भवसागरसे पार करनेवाला है। यह पुराण अत्यन्त पुण्यप्रद है। तुम इसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो। यह पुराण पाठ तथा श्रवण करनेवालेके लिये अज्ञानका नाश करनेवाला, दिव्य, ज्ञानरूपी सूर्यका बोध करानेवाला, सुखप्रद, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, कल्याणकारी तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है—

गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः।
पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ॥
अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम्।
अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम्॥
सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरं शिवम्।
शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥

(श्रीमद्देवीभा० १।१६।३५—३७)

इस प्रकार वेदव्यासजीके द्वारा प्रेरित किये जानेपर व्यासजीके शिष्य सूतजीने तथा श्रीशुकदेवजीने श्लोकार्धसे विस्तृत हुए श्रीमद्देवीभागवतपुराणका अध्ययन किया।

भगवतीकी कृपासे भगवान् बालमुकुन्दको जो आधे श्लोकमें देवीभागवत प्राप्त हुआ, उसे ब्रह्माजीने ग्रहण किया और फिर उसीको व्यासजीने बारह स्कन्धोंमें विस्तृत किया,* वही देवीभागवत हम सबको प्राप्त हुआ। यह भगवती आदिशक्ति तथा भगवान् वेदव्यासजीका जीवोंपर महान् अनुग्रह है।

---

* अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम्। श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम्॥
उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने। शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा॥
तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे। अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १२।१४।१—३)

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥ १॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं। गतिस्त्वं० ॥ २॥

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं। गतिस्त्वं० ॥ ३॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातर्गतिस्त्वं० ॥ ४॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहं। गतिस्त्वं० ॥ ५॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये। गतिस्त्वं० ॥ ६॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि । गतिस्त्वं० ॥ ७॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं । गतिस्त्वं० ॥ ८॥

हे भवानि! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है, हे देवि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ १॥

मैं अपार भवसागरमें पड़ा हुआ हूँ, महान् दुःखोंसे भयभीत हूँ; कामी, लोभी, मतवाला तथा संसारके घृणित बन्धनोंमें बँधा हुआ हूँ, हे भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ २॥

हे भवानि! मैं न तो दान देना जानता हूँ और न ध्यानमार्गका ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र-मन्त्रोंका भी मुझे ज्ञान नहीं है, पूजा तथा न्यास आदिकी क्रियाओंसे तो मैं एकदम कोरा हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ३॥

न मैं पुण्य जानता हूँ न तीर्थ, न मुक्तिका पता है न लयका। हे मातः! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि! अब केवल तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ४॥

मैं कुकर्मी, बुरी संगतिमें रहनेवाला, दुर्बुद्धि, दुष्टदास, कुलोचित सदाचारसे हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूँ, हे भवानि! मुझ अधमकी एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ५॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवताको नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ६॥

हे शरण्ये! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओंके मध्यमें सदा ही मेरी रक्षा करो, हे भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ७॥

हे भवानि! मैं सदासे ही अनाथ, दरिद्र, जराजीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूँगा, विपद्ग्रस्त और नष्टप्राय हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ८॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीमच्छङ्कराचार्यकृत भवान्यष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीश्रीजगद्धात्री

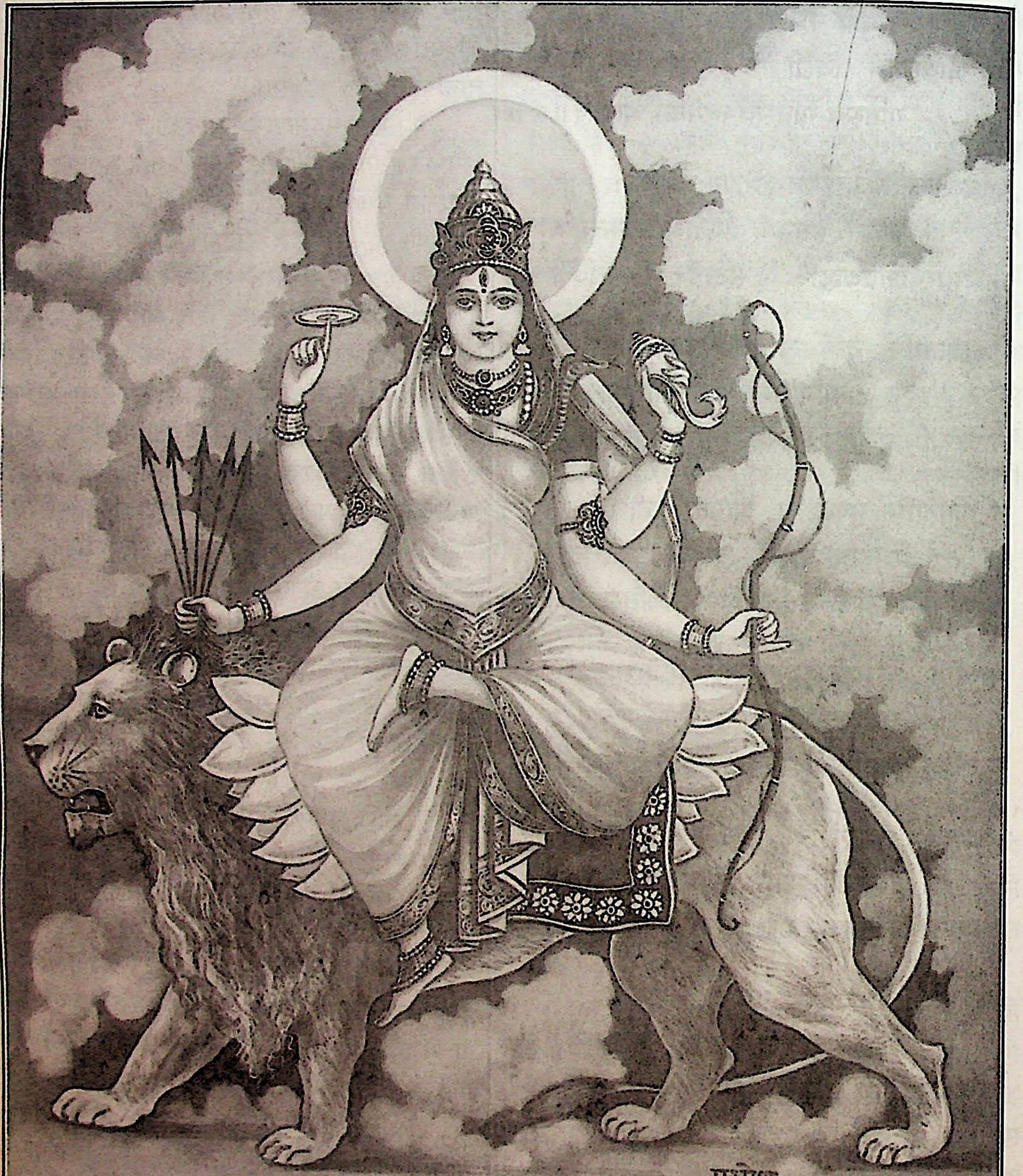

सिंहस्कन्धाधिरूढां नानालङ्कारभूषिताम्। चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्॥
शङ्खशार्ङ्गसमायुक्तवामपाणिद्वयान्विताम् । चक्रं च पञ्चबाणांश्च धारयन्तीं च दक्षिणे॥
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते। प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवसुन्दरीम्॥

श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥
श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

श्रीमद्देवीभागवतके नवाह्नकी विधि है। दोनों नवरात्रोंमें तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ एवं फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक इसके अनुष्ठानका विधान है। इसे 'नवाहयज्ञ' कहा जाता है। एतदर्थ कथा-स्थानकी भूमि का संशोधन, मार्जन-लेपनादिकर कदली-स्तम्भादिसे मण्डित मण्डप बनाना चाहिये। मण्डपका स्थान शुभ तथा बराबर होना चाहिये। उसका मान १६ हाथ लम्बा-चौड़ा हो तथा उसे तोरण, विमान एवं ध्वजा-पताकासे मण्डित किया जाय। मण्डपके बीचमें चार हाथ लम्बी-चौड़ी तथा एक हाथ ऊँची वेदी होनी चाहिये। फिर प्रतिपद्को प्रात: उठकर हृदय या शिरोदेशमें उज्ज्वल-पद्मके अन्तर्गत गुरुका ध्यान करना चाहिये। फिर शिखाके बीच इस रूपमें देवीका ध्यान करना चाहिये—

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तःपदव्यामनुसंचरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥

(श्रीमद्देवीभा० ७।४०।३)

प्रथम प्रयाणमें अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें संचरण करनेपर प्रकाश-पुंजरूपवाली, प्रतिप्रयाणमें अर्थात् मूलाधारमें संचरण करनेपर अमृतमयस्वरूपवाली तथा अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजनेपर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

तत्पश्चात् किसी नदी, तड़ाग, सरोवर या पहाड़ी झील, झरने आदिमें स्नानकर नित्यकृत्य करना चाहिये। फिर भूतशुद्धि, मातृकान्यास एवं हल्लेखा-मातृकान्यास करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि मूलाधारमें 'ह' कार, हृदयमें 'र'कार, भ्रूमध्यमें 'ई'कार और मस्तकमें 'ह्रीं'कारका न्यास करे। फिर उपयुक्त ब्राह्मणोंका वरणकर वेदीपर सिंहासन रखकर उसपर क्षौम (रेशमी) वस्त्र-युक्त चार हाथोंवाली जगदम्बिकाकी प्रतिमा स्थापित करे। उन्हें रत्नाभूषण तथा मुक्ताहारादिसे विभूषित करे। चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कराये या अठारह भुजावाली प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाके अभावमें 'नवार्ण मन्त्र' का यन्त्र ही रख दे। फिर पंचपल्लवादिसंयुक्त एक कलश वेद-मन्त्रोंसे संस्कृतकर श्रेष्ठ तीर्थके जलसे भरकर पास ही स्थापित करे। तत्पश्चात् गणपति-पूजन, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, मातृका, नवग्रह, तुलसी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपाल, दिक्पाल आदिकी पूजाकर षोडशोपचार तथा श्रीसूक्त या नवार्णमन्त्रसे भगवती महाशक्तिकी पूजा करे। देवी-पूजनमें चन्दन, अगर या अष्टगन्ध* तथा अशोक, चम्पा, करवीर, मालती, मन्दार आदिके पुष्पों, बिल्व तथा तुलसी आदिका प्रयोग श्रेष्ठ है। फलोंमें नारियल, नारंगी, अनार, केला, आम शुभ हैं। तत्पश्चात् १६ उपचारोंसे देवीभागवत-ग्रन्थकी भी पूजा करे। अन्तमें फिर इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि॥
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके॥
मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते।

(श्रीमद्देवीभा० माहात्म्य ५।३१—३३)

हे कात्यायनि! हे महामाये! हे भुवनेश्वरि! हे कृपामये! हे भवानि! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ; मेरा उद्धार कीजिये तथा हे ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे पूजनीया माता जगदम्बिके! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देवि! आप मुझे

---

* चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुङ्कुमरोचनाः। जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः॥ (तन्त्रसार—कलावती दीक्षा ५।१)

अर्थात् चन्दन, अगुरु, कपूर, कृष्णशुंठी, कुंकुम (केसर), गोरोचन, जटामांसी तथा गांटना (एक प्रकारका करंज) मिलाकर शक्तिका अष्टगन्ध बनता है।

मनोवांछित वर प्रदान कीजिये; आपको बार-बार प्रणाम है।

तत्पश्चात् ऋष्यादिका न्यासकर पाठ आरम्भ करे।

पाठ आरम्भ करनेके बाद फिर अध्यायके बीचमें नहीं रुकना चाहिये। रुक जानेपर पुनः उसी अध्यायको आरम्भसे पढ़ना चाहिये। मध्यम स्वरसे श्रद्धापूर्वक धीरे-धीरे स्पष्ट पाठ करना चाहिये। गीत गाना, जल्दी करना, सिर कँपाना, अशुद्ध या अस्पष्ट उच्चारण करना, बिना अर्थ समझे ही पाठ करना—ये पाठके दोष हैं। पाठमें यथासाध्य इन दोषोंसे बचे रहना चाहिये। क्रोध, मद, त्वरा बाधक हैं। मनकी पवित्रता, शरीरकी पवित्रता अधिक सहायक है। दोपहरके बाद एक घड़ी विश्रामकर तथा लघुशंका आदिसे निवृत्त होकर पुनः पाठ करना चाहिये।

कथारम्भमें सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार; अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, मूल तथा श्रवण नक्षत्र शुभ हैं। बृहस्पति जिस नक्षत्रमें हों, वहाँसे चौथे नक्षत्रतक कथा आरम्भ करनेसे धर्मप्राप्ति, ५ से ८ वेंतक लक्ष्मीप्राप्ति, पुनः ९ में सिद्धि, १० से १४ तक सुख प्राप्त होता है। गुर्वधिष्ठित नक्षत्रसे २० नक्षत्रोंतकमें कथारम्भ करनेसे पीड़ा, २४ वेंतक राजभय तथा २७ वेंतक ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस चक्रका ध्यान रखना आवश्यक है। (किंतु नवरात्रोंमें देवीभागवत-कथामें चक्र-विचार अपेक्षित नहीं है।) अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, सत्यवचन तथा इन्द्रियसंयम अत्यन्त आवश्यक है। पत्तलमें भोजन करना चाहिये। बैगन, दाल, बहेड़ा, मधु, तैल, बासी तथा दूषित अन्न नहीं खाना चाहिये। रजस्वला आदिसे स्पृष्ट तथा मसूर, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कुम्हड़ा तथा नलिका आदिका शाक भी नहीं खाना चाहिये। प्रतिदिन कुमारीपूजन करना चाहिये या प्रतिदिन क्रमशः दुगुनी, तिगुनी पूजा बढ़ाते जाय। एक वर्षकी कन्याकी पूजा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उसे गन्धादिका कोई भी ज्ञान नहीं होता। दोसे नौ वर्षोंतककी कन्याएँ पूज्य हैं। अन्तिम दिन गायत्रीसहस्रनामका पाठ करना चाहिये और सप्तशतीके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये अथवा गायत्री या नवार्णमन्त्रसे हवन किया जाय। यह संक्षेपमें देवीभागवतकी पाठविधि है।

श्रीमद्देवीभागवतकथा (पारायण) एवं अनुष्ठान-विधि

जो लोग विधि-विधानसे श्रीमद्देवीभागवतकी कथा अथवा पारायण-पाठ कराना चाहते हों, उनके लिये पूजन आदिकी विस्तृत विधि और क्रम नीचे लिखा जा रहा है—

स्नान-सन्ध्योपासनादि कृत्यसे निवृत्त होकर पवित्र आसनपर सपत्नीक पूर्वाभिमुख बैठ जाय और पत्नीको अपने दाहिनी ओर बैठाये। चन्दन आदिसे तिलक कर ले। दोनों हाथोंकी अनामिका अँगुलीमें पवित्री धारण कर ले। आचमन, प्राणायाम कर ले, शिखामें ग्रन्थि लगा ले। तदनन्तर ग्रन्थिबन्धन कर ले और भगवान् विष्णुका ध्यान कर ले। रक्षादीप जलाकर हाथ धो ले।

अधिकारप्राप्तिके लिये गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यका संकल्प—श्रीमद्देवीभागवतश्रवणमें अधिकारप्राप्तिके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें तीन गौओंके निष्क्रयद्रव्यका दान करे। देयद्रव्य तथा त्रिकुश, अक्षत, पुष्प, जल लेकर निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे विष्णुपर्वे श्रीश्वेतवाराहनाम्नि प्रथमकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगस्य प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे ....क्षेत्रे बौद्धावतारे ....नाम्नि संवत्सरे श्रीसूर्ये ....अयने ....ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे ....मासे ....पक्षे ....तिथौ ....वासरे ....राशिस्थिते श्रीसूर्ये शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ....गोत्रः ....शर्मा/वर्मा/गुप्तः सपत्नीकोऽहं मम कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चित्तानुष्ठानसिद्ध्यर्थं गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यं रजतं चन्द्रदैवतं ....गोत्राय ....शर्मणे ब्राह्मणाय भवते सम्प्रददे।

संकल्पजल तथा द्रव्य ब्राह्मणको दे दे। तदनन्तर

गोप्रार्थना करे—

गोप्रार्थना

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च॥

प्रार्थनाके अनन्तर निम्न वाक्य बोले—**अनेन गोदानेन पापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्।**

निम्न मन्त्रसे पंचगव्यप्राशन कर ले—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

तदनन्तर हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर **'आ नो भद्रा०'** आदि मंगलमन्त्रोंका पाठ करे।

'लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः' आदि वाक्यों तथा **'सुमुखश्चैकदन्तश्च'** इत्यादि गणपतिमन्त्रोंका पाठ करे। हाथके अक्षतपुष्प भगवान्‌को अर्पित कर दे। इसके बाद देवीभागवतश्रवणका तथा पूजनका प्रधान संकल्प करे—

प्रधान संकल्प

हाथमें त्रिकुश, अक्षत, पुष्प, जल, फल तथा द्रव्य लेकर निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे विष्णुपर्वे श्रीश्वेतवाराहनाम्नि प्रथमकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगस्य प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे ....क्षेत्रे (यदि काशी हो तो **अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे** बोले) **बौद्धावतारे ....नाम्नि संवत्सरे श्रीसूर्ये ....अयने ....ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे ....मासे ....पक्षे ....तिथौ ....वासरे ....नक्षत्रे ....योगे ....करणे ....राशिस्थिते श्रीसूर्ये ....राशिस्थिते चन्द्रे ....राशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ....गोत्रः ....शर्मा/वर्मा/गुप्तः सपत्नीकोऽहं अतीतानेकजन्मसञ्चिताखिलदुष्कृतनिवृत्तिपुरस्सरैहिकामुष्मिकाध्यात्मिकादितापत्रयोपशमनपूर्वककायिकादित्रिविधपापानां समूलोन्मूलनार्थं मनोभिलषितफलप्राप्तिपूर्वकश्रीपराम्बाप्रीत्याविर्भावकामः ....गोत्रोत्पन्न ....शर्माब्राह्मणवदनारविन्दात् अनेकश्रोतृश्रावणपूर्वकं श्रीमद्देवीभागवतं नवाह्नविधिना श्रोष्यामि। तदङ्गतया विहितं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धमाचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ प्रारीप्सितसम्पूर्तिप्रतिबन्धकविघ्नव्यूहध्वंसकामः गणेशाम्बिकयोः यथोपचारैः पूजनमहं करिष्ये।** संकल्पजल छोड़ दे।

तदनन्तर संक्षेपमें स्वस्तिवाचन, गणपतिपूजन, कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, वसोर्धारापूजन, आयुष्यमन्त्रजप तथा नान्दीमुखश्राद्ध करे। इसके बाद आचार्य आदिका वरण करे।

तदनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलपर कलश स्थापितकर पराम्बा भगवतीका षोडशोपचारपूजन करे। इसके बाद सूर्यादि नवग्रहोंका स्थापन-पूजन, असंख्यात रुद्रकलशकी स्थापना और पूजा, कुमारीपूजन, बटुकपूजन, पुस्तकपूजन आदि सम्पन्नकर कथा प्रारम्भ करनी चाहिये। कथा एवं पाठके अन्तमें अन्तिम दिन हवन करनेकी विधि है। (यदि विस्तृत पूजा न करनी हो तो केवल गणेशाम्बिकाका पूजनकर आचार्यादि ब्राह्मणोंको वरण देकर कलशपर पराम्बा भगवतीका पूजन कर ले तथा पुस्तकपूजन एवं कथावाचकका पूजनकर पाठ अथवा कथा प्रारम्भ करनी चाहिये।) यहाँ आचार्य आदिका वरण, पराम्बा भगवती दुर्गादेवी, कुमारी एवं बटुक आदिका पूजन संक्षेपमें दिया जा रहा है—

आचार्यवरण

हाथमें कुशाक्षत, जल, वरण-द्रव्य एवं वरणसामग्री लेकर सर्वप्रथम आचार्यके वरणका संकल्प करे—

ॐ अद्य पूर्वोच्चारितग्रहगणगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ....गोत्रः ....शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सर्वविधपापक्षयद्वारा ....पूर्वोक्तसंकल्पितकार्यसिद्ध्यर्थं श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थञ्च श्रीमद्देवीभागवतनवाह्नकथाश्रवणार्थं ....गोत्रं ....शर्माणं

नवाहकथाश्रावयितारं ब्राह्मणं एभिर्वरणद्रव्यैः भवन्तमहं वृणे। संकल्पजल छोड़ दे और वरणसामग्री आचार्यको प्रदान करे।

आचार्य बोले—**ॐ वृतोऽस्मि।**

उपवाचकका वरण

इसके बाद उपवाचकके वरणका निम्न संकल्प करे—**ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा पूर्वोक्तसङ्कल्पितकार्यसिद्ध्यर्थं ……गोत्रं ……शर्माणं उपवाचयितारं ब्राह्मणं एभिर्वरणद्रव्यैः भवन्तमहं वृणे।** संकल्पजल छोड़ दे तथा वरणसामग्री दे दे।

मन्त्रजप तथा दुर्गापाठके लिये ब्राह्मणोंका वरण

तदनन्तर गायत्री, गणेश आदिके मन्त्रजप तथा सप्तशतीपाठके लिये निम्न संकल्पसे ब्राह्मणोंका वरण करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सर्वविधपातकनिवृत्तिद्वारा श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं करिष्यमाणश्रीमद्देवीभागवतनवाहकथायज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः नानागोत्रान् नानाशर्मणो ब्राह्मणान् गायत्रीगणेशादिमन्त्रजापकान् श्रीसूक्तसप्तशत्यादिपाठकांश्च तत्तत्कर्मकर्तृत्वेन भवतोऽहं वृणे। संकल्पजल छोड़ दे। वरण-सामग्री ब्राह्मणोंको दे दे।

ऋत्विज बोलें—**वृताः स्मः।**

ब्राह्मण निम्न मन्त्रका पाठ करे—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

प्रार्थना—निम्न मन्त्रसे ब्राह्मणोंकी प्रार्थना करे—

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः।
देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा॥
अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः।
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि॥
ऋत्विजश्च यथा पूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन्।
यूयं तथा मे भवत ऋत्विजो द्विजसत्तमाः॥
अस्मिन् कर्मणि ये विप्राः वृता गुरुमुखादयः।
सावधानाः प्रकुर्वन्तु स्वं स्वं कर्म यथोदितम्॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया।
सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम्॥

तदनन्तर दिग्रक्षण, पंचगव्यप्रोक्षण करके सर्वतोभद्रमण्डलमें देवताओंका आवाहन-पूजन करे।

कलशके ऊपर देवीकी प्रतिमाका स्थापन

सर्वतोभद्रमण्डलके मध्यमें प्रधान कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर अग्न्युत्तारणपूर्वक स्वर्णनिर्मित देवीकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कर ले और श्रीसूक्तसे षोडशोपचारपूजन करे। प्रतिमाके ऊपर पंचरंगा वितान बाँधे।

सपत्नीक यजमान श्रीभगवतीदुर्गादेवीके समीपमें बैठकर अपने दक्षिण भागमें पूजनकी सामग्री स्थापित करे। तत्त्वशुद्धिके लिये निम्न रीतिसे आचमन करे—

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

प्राणायाम

पूरक-कुम्भक-रेचकके क्रमसे प्राणायाम करे।

पवित्रीकरण

निम्न मन्त्रसे अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रीपर जल छिड़के—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

आसन-पवित्रीकरण

पहले निम्न रीतिसे विनियोग करे—

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपवित्रकरणे विनियोगः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र बोले—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

शिखाबन्धन

निम्न मन्त्रसे शिखाका स्पर्श करे—

ॐ ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डे चापराजिते॥

भैरवनमस्कार

निम्न मन्त्रसे भैरवजीको नमस्कार करे—

ॐ तीक्ष्णद्रंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

दुर्गापूजनका संकल्प

हाथमें जल, अक्षत, पुष्प लेकर बोले—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ''''गोत्रः ''''शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहम् अस्मिन् श्रीमद्देवीभागवतनवाहकथायज्ञकर्मणि मम आत्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीभगवत्या जगदम्बिकायाः त्रिगुणात्मिकायाः श्रीदुर्गादेव्याः पूजनं करिष्ये। पूजनकर्मणि आत्मनोऽधिकारपूर्वकयोग्यतासम्पादनार्थं नवार्णेन न्यासान् करिष्ये। संकल्पजल छोड़ दे।

नवार्णमन्त्रके न्यासका संकल्प

अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ऐं बीजं ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे न्यासे पूजायां च विनियोगः।

विनियोग पढ़कर जल गिराये। नीचे लिखे न्यासवाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण और नाभि—इन अंगोंका स्पर्श करे।

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि (सिरका स्पर्श करे)।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः मुखे (मुखका स्पर्श करे)।

महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः हृदि (हृदयका स्पर्श करे)।

ऐं बीजाय नमः गुह्ये (गुह्यस्थानका स्पर्श करे)।

ह्रीं शक्तये नमः पादयोः (दोनों पैरोंको छुए)।

क्लीं कीलकाय नमः नाभौ (नाभिका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—इस मूल मन्त्रसे हाथोंकी शुद्धि करके करन्यास करे।

करन्यास

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों अँगूठोंका स्पर्श करे)।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों हाथोंके अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। (हथेलियों और उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श करे)।

हृदयादिन्यास

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे)।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श करे)।

ॐ क्लीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श करे)।

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका एक साथ स्पर्श करे)।

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (दाहिने हाथकी तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

दीपप्रज्वालन तथा प्रार्थना

न्यासके अनन्तर देवीके दक्षिणभागमें घीका दीपक तथा बायें भागमें तिलके तेलका दीपक जलाकर निम्न मन्त्रसे दीपककी प्रार्थना करे—

भो दीप देवीरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।
यावत्कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत्त्वं सुस्थिरो भव॥

तदनन्तर अपने वामभागमें स्थापित पूजा-कलशमें गन्धाक्षत, पुष्प आदिसे वरुणकी पूजा करे।

प्रोक्षण

कलशके जलसे अपना तथा सभी सामग्रियोंका प्रोक्षण करे।

शंखपूजन

कलशके जलसे शंखको पूरित करके देवीके वामभागमें त्रिपादुकाधारमें स्थापितकर निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतसे उसका पूजन करे—

ॐ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥

घण्टापूजन

घण्टा प्रक्षालितकर उसे अपने वामभागमें स्थापित करके निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतसे उसका पूजन करे—

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत॥

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

ॐ आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्।
घण्टानादं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये॥

घण्टाध्वनि करके उसे यथास्थान रख दे।

॥ श्रीदुर्गादेवी-पूजनविधि ॥

ध्यान

हाथमें पुष्प लेकर निम्न मन्त्रोंसे दुर्गादेवीका ध्यान करे—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥
अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः श्रीदुर्गां ध्यायामि। ध्यानार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। हाथके फूल चढ़ा दे।

आवाहन

हाथमें पुष्प लेकर श्रीदुर्गादेवीका आवाहन करे—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः श्रीदुर्गां आवाहयामि। आवाहनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। पुष्प चढ़ाये।

आसन

हाथमें पुष्प लेकर श्रीदुर्गादेवीको आसन प्रदान करे—

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः आसनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। पुष्प चढ़ाये।

पाद्य

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

अर्घ्य

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि। अर्घ्यका जल चढ़ाये।

आचमनीय

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, आचमनीयं जलं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

स्नान

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, स्नानीयं जलं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

पञ्चामृतस्नान

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, पंचामृतस्नानं समर्पयामि। पंचामृतसे स्नान कराये।

शुद्धोदकस्नान

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा
अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। जलसे स्नान कराये।

महाभिषेकस्नान

श्रीसूक्तके मन्त्रोंद्वारा जलसे स्नान कराये। श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, महाभिषेकस्नानं समर्पयामि।

वस्त्रोपवस्त्र

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। वस्त्र तथा उपवस्त्र चढ़ाये। एक आचमनी जल छोड़े।

यज्ञोपवीत

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः यज्ञोपवीते समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। यज्ञोपवीत चढ़ाये। एक आचमनी जल छोड़े।

चन्दन

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः विलेपनार्थे चन्दनं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको चन्दन लगाये।

अक्षत

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो
विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः चन्दनोपरि अक्षतान् समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको चन्दनके ऊपर अक्षत लगाये।

पुष्प तथा पुष्पमाला

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पुष्पमालां समर्पयामि।

भगवती दुर्गादेवीको पुष्पमाला चढ़ाये।

सौभाग्यद्रव्य

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परि पातु विश्वतः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको हल्दी-रोरी आदि सौभाग्यद्रव्य चढ़ाये।

सिन्दूर

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वात प्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः सिन्दूरं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको सिन्दूर चढ़ाये।

धूप

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः धूपमाघ्रापयामि। भगवती दुर्गादेवीको धूप निवेदित करे।

दीप

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः दीपं दर्शयामि। भगवती दुर्गादेवीको दीप निवेदित करे।

नैवेद्य

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः नैवेद्यं निवेदयामि। भगवती दुर्गादेवीको नैवेद्य निवेदित करे।

करोद्वर्तन

अꣳशुनाते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः करोद्वर्तनकं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको इत्र निवेदित करे।

ऋतुफल

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः ऋतुफलानि समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको ऋतुफल निवेदित करे।

पूगीफल-ताम्बूल

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पूगीफलताम्बूलं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको सुपारी तथा ताम्बूल निवेदित करे।

दक्षिणा

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः दक्षिणां समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको दक्षिणा चढ़ाये।

नीराजन

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः
प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः नीराजनं दर्शयामि। भगवती दुर्गादेवीकी आरती करे।

प्रदक्षिणा

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीकी प्रदक्षिणा करे।

पुष्पाञ्जलि

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥

ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमारि धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको पुष्पांजलि समर्पित करे।

स्तुतिपाठ

निम्न स्तोत्रसे प्रार्थना करे—

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे
नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे।
नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य
भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्ये-
ऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे
विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम्।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतु-
र्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला-
समुत्खण्डिता खण्डिताशेषशत्रो।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
त्वमेवाघभावाधृता सत्यवादी-
र्न जाता जितक्रोधनात् क्रोधनिष्ठा।
इडा पिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे
सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे।
विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां
मुनिमनुजपशूनां दस्युभिस्त्रासितानाम्।
नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः स्तुतिपाठं निवेदयामि।

अनया पूजया त्रिगुणात्मिका दुर्गा प्रीयताम् न मम। एक आचमनी जल छोड़े।

॥ सूर्यादि ग्रहोंका स्थापन एवं पूजन॥

तदनन्तर ग्रहपीठके समीप बैठकर नवग्रहोंका स्थापन एवं पूजन करे। अपने दाहिने हाथमें जल, अक्षत तथा पुष्प लेकर पूजनका संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ शुभपुण्यतिथौ ''''गोत्रः ''''शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं ''''कर्मणि निर्विघ्नतासंसिद्ध्यर्थं तथा च सूर्यादिग्रहाणां प्रीतये आदित्यादिनवग्रहाणां स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये। हाथका जल आदि तष्टामें छोड़ दे तथा गन्धाक्षत-पुष्प लेकर निम्न मन्त्रोंसे नवग्रहोंका आवाहन तथा स्थापन करे—

सूर्य

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्याय नमः सूर्यमावाहयामि स्थापयामि।

चन्द्रमा

ॐ इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते

ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रमसे नमः चन्द्रमसमावाहयामि स्थापयामि।

भौम (मंगल)

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भौमाय नमः भौममावाहयामि स्थापयामि।

बुध

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथा मयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बुधाय नमः बुधमावाहयामि स्थापयामि।

बृहस्पति

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

शुक्र

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि स्थापयामि।

शनि

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शनैश्चराय नमः शनैश्चरमावाहयामि स्थापयामि।

राहु

ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥

ॐ भूर्भुवः स्वः राहवे नमः राहुमावाहयामि स्थापयामि।

केतु

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥

ॐ भूर्भुवः स्वः केतवे नमः केतुमावाहयामि स्थापयामि।

निम्न मन्त्रसे सभीपर अक्षत चढ़ाकर ग्रहोंकी प्रतिष्ठा करे।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः कहकर गन्धाक्षतपुष्प आदि उपचारोंसे पूजन करे। तदनन्तर निम्न प्रार्थना करे—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु॥

सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। मन्त्रपुष्पांजलि अर्पित करे।

अनया पूजया सूर्यादिनवग्रहाः प्रीयन्तां न मम। कहकर एक आचमनी जल छोड़े।

॥ असंख्यात रुद्रकलशकी स्थापना ॥

तदनन्तर ग्रहपीठके ईशानकोणमें निम्न मन्त्रसे रुद्रकलशकी स्थापना करे—

ॐ असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

निम्न मन्त्रसे कलशपर अक्षत छोड़कर प्रतिष्ठा करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

प्रतिष्ठाके अनन्तर गन्धादि उपचारोंसे कलश एवं वरुणका पूजन करे।

प्रार्थना—निम्न मन्त्रसे भगवान् रुद्रकी प्रार्थना करे—

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

अनेन पूजनाख्येन कर्मणा रुद्रवरुणौ प्रीयेताम्।

कहकर एक आचमनी जल छोड़े।

कुमारीपूजन (नवकन्यापूजन)*

जगत्पूज्यां जगद्वन्द्यां सर्वशक्तिस्वरूपिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां देवीं कुमारीं पूजयाम्यहम्॥ १॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कुमार्यै नमः कुमारीमावाहयामि पूजयामि। कुमारीरूप कन्याका पूजन करे।

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम्।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥ २॥

ॐ भूर्भुवः स्वः त्रिमूर्त्यै नमः त्रिमूर्तिमावाहयामि पूजयामि। त्रिमूर्तिरूप कन्याका पूजन करे।

कलात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम्॥ ३॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कल्याण्यै नमः कल्याणीमावाहयामि पूजयामि। कल्याणीरूप कन्याका पूजन करे।

अणिमादिगुणोपेतामकाराद्यक्षरात्मिकाम्।
अनन्तां शक्तिसम्पन्नां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥ ४॥

ॐ भूर्भुवः स्वः रोहिण्यै नमः रोहिणीमावाहयामि पूजयामि। रोहिणीरूप कन्याका पूजन करे।

कामचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।
कामदां करुणोपेतां कालिकां पूजयाम्यहम्॥ ५॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कालिकायै नमः कालिकामावाहयामि पूजयामि। कालिकारूप कन्याका पूजन करे।

चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जिनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ ६॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चण्डिकायै नमः चण्डिकामावाहयामि पूजयामि। चण्डिकारूप कन्याका पूजन करे।

सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वभूतात्मिकां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥ ७॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शाम्भव्यै नमः शाम्भवीमावाहयामि पूजयामि। शाम्भवीरूप कन्याका पूजन करे।

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ ८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गायै नमः दुर्गामावाहयामि पूजयामि। दुर्गारूप कन्याका पूजन करे।

सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम्।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥ ९॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सुभद्रायै नमः सुभद्रामावाहयामि पूजयामि। सुभद्रारूप कन्याका पूजन करे।

इस प्रकार पाद्य, अर्घ्य, आचमन, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, माला आदिसे नौ कुमारियोंका पूजन करे, भोजन कराये तथा दक्षिणा प्रदानकर निम्न मन्त्रसे प्रार्थनापूर्वक प्रणाम करे—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥

बटुकपूजन

निम्न मन्त्रसे बटुकका ध्यान करे—

ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु-
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम्॥

'ॐ बं बटुकाय नमः' इस मन्त्रसे पाद्य, अर्घ्य, आचमन, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, माला आदिसे पूजन करे, भोजन कराये तथा दक्षिणा प्रदानकर प्रणाम करे।

पायसबलि

नर्वाणमन्त्रका उच्चारण करके '**ॐ महालक्ष्म्यै नमः**' **पायसबलिं समर्पयामि**। कहकर जल छोड़ दे।

पुस्तकपूजन

निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतपुष्पसे श्रीमद्देवीभागवत-पुस्तकका ध्यान एवं पूजन करे—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥
ॐ यदाकूतात्समुसुस्त्रोधृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोक यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥

कथावाचकका पूजन

कथावाचकका पैर धोकर गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला

---

* (क) कुमार्यश्च प्रतिदिनं अष्टोत्तरशतं नव एका वा यथासम्भवं पूज्याः। (ख) कुमारीपूजने द्विवर्षादारभ्य दशवर्षपर्यन्ता कन्या ग्राह्या। द्विवर्षाद्या दशाब्दाद्याः कुमारीः परिपूजयेत्। एकाब्दायाः प्रीत्यभावो रुद्राब्दा तु विवर्जिता॥

तथा वस्त्र देकर निम्न मन्त्रसे उनकी प्रार्थना करे—

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥
व्यासरूपप्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥

महाध्वजका पूजन

तदनन्तर ईशानकोणमें आकर निम्न मन्त्रसे महाध्वजका पूजन करे—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा-नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

ॐ महाध्वजाय नमः सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि कहकर महाध्वजका पूजन करे तथा निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनि मसतश्च वि वः॥

अनया पूजया महाध्वजस्थब्रह्मा प्रीयताम्। एक आचमनी जल छोड़े।

आरती

सभी स्थापित देवोंकी आरती करे—

इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥
आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥

गणपत्याद्यावाहितदेवताभ्यो नमः कर्पूरनीराजनम् समर्पयामि।

जलेन शीतलीकरणम्। आरतीके चारों ओर घुमाकर जल छोड़े। पुष्पैर्देवताभिवन्दनम्। देवताओंको पुष्पद्वारा प्रणाम करे। आत्माभिवन्दनम्। हस्तप्रक्षालनम्। हाथ धोकर पुष्प लेकर निम्न प्रार्थना करे—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥

ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमारि धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥
नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वरि॥

प्रधानपीठस्थित भगवतीके चरणकमलोंमें पुष्पांजलि निवेदितकर प्रदक्षिणा करे तथा निम्न मन्त्रसे नमस्कार करे।

नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रणयेन मया कृतः॥

स्तुतिपाठ—यदि समय हो तो निम्न स्तुतिपाठ करे—

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो०

श्रीमद्देवीभागवतपाठका विनियोग

ॐ अस्य श्रीमद्देवीभागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीकृष्णद्वैपायन ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमणिद्वीपाधिवासिनी भगवती महाशक्तिः देवता, ब्रह्म बीजम्, गायत्री शक्तिः, भुक्तिमुक्तिके कीलकम्, पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

फिर इस प्रकार भगवतीका ध्यान करे—

बालार्कायुततेजसां त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं
नानालङ्कृतिराजमानवपुषां बालोडुराट्शेखराम्।
हस्तैरिक्षुधनुःसृणिं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीं
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत्॥

अथवा

सुधाकूपारान्तस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते

मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे।
विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां
नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षञ्च लभते॥
ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता।
जगतां श्रेयसे सास्तु मणिद्वीपाधिदेवता॥

(श्रीमद्देवीभा० माहात्म्य ५।१०१-१०२)

अमृतसागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित मणिद्वीपमें स्थित बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परम शिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करके मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र—आदि देवताओं एवं समस्त महर्षियोंद्वारा पूजित मणिद्वीपनिवासिनी वे भगवती संसारका कल्याण करती रहें।

ध्यानके अनन्तर पाठ आरम्भ करे।

नवाह्न-पारायणके विश्रामस्थल

प्रतिदिन क्रमशः निम्नलिखित स्थलोंपर विश्राम करना चाहिये—

प्रथम दिन	तृतीयस्कन्धके तृतीय अध्यायकी समाप्तिपर			(३५)
द्वितीय ,,	चतुर्थ ,,	अष्टम	,, ,,	(३५)
तृतीय ,,	पंचम ,,	अष्टादश	,, ,,	(३५)
चतुर्थ ,,	षष्ठ ,,	अष्टादश	,, ,,	(३५)
पंचम ,,	सप्तम ,,	अष्टादश	,, ,,	(३१)
षष्ठ ,,	अष्टम ,,	सप्तदश	,, ,,	(३९)
सप्तम ,,	नवम ,,	अट्ठाईसवें	,, ,,	(३५)
अष्टम ,,	दशम ,,	त्रयोदश	,, ,,	(३५)
नवम ,,	द्वादश स्कन्धकी समाप्तिपर		,, ,,	(३८)

हवनविधान

श्रीमद्देवीभागवतके कथा-श्रवणके अनन्तर हवनका भी विधान है। सपत्नीक यजमान हवनकुण्ड या स्थण्डिलके समीप पूर्वाभिमुख बैठ जाय। कुशोदकके द्वारा अपना तथा हवन-सामग्रीका प्रोक्षण करके स्वस्तिवाचनपूर्वक श्रीगणपति आदि आवाहित देवोंका संक्षेपमें पूजन करके हवनका निम्न संकल्प करे—

संकल्प—हाथमें त्रिकुश, अक्षत, जल लेकर बोले—**ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य पूर्वोच्चारित ग्रहगणगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं कृतस्य श्रीमद्देवीभागवत-कथाश्रवणस्य फलप्राप्त्यर्थं यज्ञाङ्गहोमकर्मणि नवग्रह-होमपूर्वकं प्रधानभूतश्रीदुर्गादेवतानिमित्तं पायसाज्येन तथा श्रीदेव्याः वैदिकमन्त्रेण नवार्णेन सप्तशतीमन्त्रैश्च यथासम्भवं सम्पादितैराज्यादिहवनद्रव्यैः यथासंख्येन होमं करिष्ये।** इस प्रकार संकल्पकर जल छोड़ दे, हवनके लिये ब्राह्मणोंका वरण कर ले।

तदनन्तर पंचभूसंस्कार करके अपने सम्मुख अग्नि स्थापित करके संक्षेपमें ग्रहोंका पूजन करे। तदनन्तर असंख्यातरुद्रका पूजन करके कुशकण्डिका करे। कुण्डस्थ देवताओं तथा अग्निका पूजन करके अग्निकी प्रार्थना करे—

अग्ने त्वमैश्वरं तेजः पावनं परमं हितम्।
तस्मात्त्वदीयहृद्पद्मे श्रीदुर्गां तर्पयाम्यहम्॥
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
हिरण्यवर्णममलं समृद्धं विश्वतोमुखम्॥

तदनन्तर आघाराज्यहोम करते समय प्रत्येक आहुतिके अनन्तर स्रुवामें स्थित हुतशेष घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डालता जाय।

फिर हाथमें त्रिकुश, अक्षत, जल लेकर द्रव्य समर्पणके लिये बोले—**इमानि सम्पादितहवनीयद्रव्याणि या या यक्ष्यमाणदेवतास्ताभ्यस्ताभ्यो मया परित्यक्तानि न ममेति**—कहकर जल भूमिपर छोड़ दे और बोले—**यथा दैवतानि सन्तु।**

तदनन्तर गणेशाम्बिकाके लिये आहुति देकर नवग्रहोंका हवन करे। प्रधान देवके लिये आहुति दे।

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

तथा नवार्णमन्त्र (**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**)-से १००८ या १०८ बार हवन करके सप्तशती-मन्त्रोंसे आहुतियाँ दे। तदनन्तर आवाहित देवताओंका हवन करे, फिर अग्निका पूजनकर स्विष्टकृत् होम करके भूरादि नवाहुति प्रदान करे।

तदनन्तर दशदिक्पाल, नवग्रहों और क्षेत्रपालके लिये बलि निवेदित करे। अन्तमें पूर्णाहुति करे। वसोर्धाराके मन्त्रोंसे घृतसे आहुति दे। तदनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा करे, हवनीय कुण्डसे भस्म धारण करे, फिर संस्रवप्राशन करके प्रणीतोदकसे मार्जन कर ले और ब्रह्माको पूर्णपात्र प्रदान करे। आचार्यादिको दक्षिणा प्रदान करे। आचार्य यजमानको श्रेयोदान प्रदान करे। इसके बाद उत्तर पूजन करके कर्पूरनीराजन करे और मन्त्र-पुष्पांजलि चढ़ाये।

तदनन्तर आचार्य यजमानके वामभागमें पत्नीको बैठाकर रुद्रकलशके जल तथा प्रधान कलशके जलसे अभिषेक करके भूयसी दक्षिणा तथा ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे और यजमानको तिलकाशीर्वाद दे। अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे तथा आवाहित देवोंका विसर्जन करे और निम्न मन्त्रोंको पढ़ते हुए समस्त कर्म भगवान्‌को समर्पित कर दे—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥
यत्पादपङ्कजस्मरणाद् यस्य नामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥

श्रीदेवीभागवतकी आरती

आरति जग-पावन पुरानकी।
मातृ-चरित्र-विचित्र-खानकी॥
देवि-भागवत अतिशय सुन्दर।
परमहंस मुनि-जन-मन-सुखकर।
विमल ज्ञान-रवि मोह-तिमिर-हर॥
परम मधुर सुषमा-वितानकी॥ १॥
कलि-कल्मष-विष-विषम-निवारिणि।
युगपत् भोग-सुयोग प्रसारिणि।
परमानन्द-सुधा विस्तारिणि॥
सुमहौषध अज्ञान-हानकी॥ २॥
संतत सकल सुमङ्गलदायिनि।
सन्मति सद्‌गति मुक्ति-प्रदायिनि।
नूतन नित्य विभूति-विधायिनि॥
परमप्रभा परतत्त्व-ज्ञानकी॥ ३॥
आर्ति-अशान्ति, भ्रान्ति-भय-भंजनि।
पाप-ताप माया-मद-गंजनि।
शुचि सेवक-मन-मानस-रंजनि॥
लीला-रस मधुमय निधानकी॥ ४॥

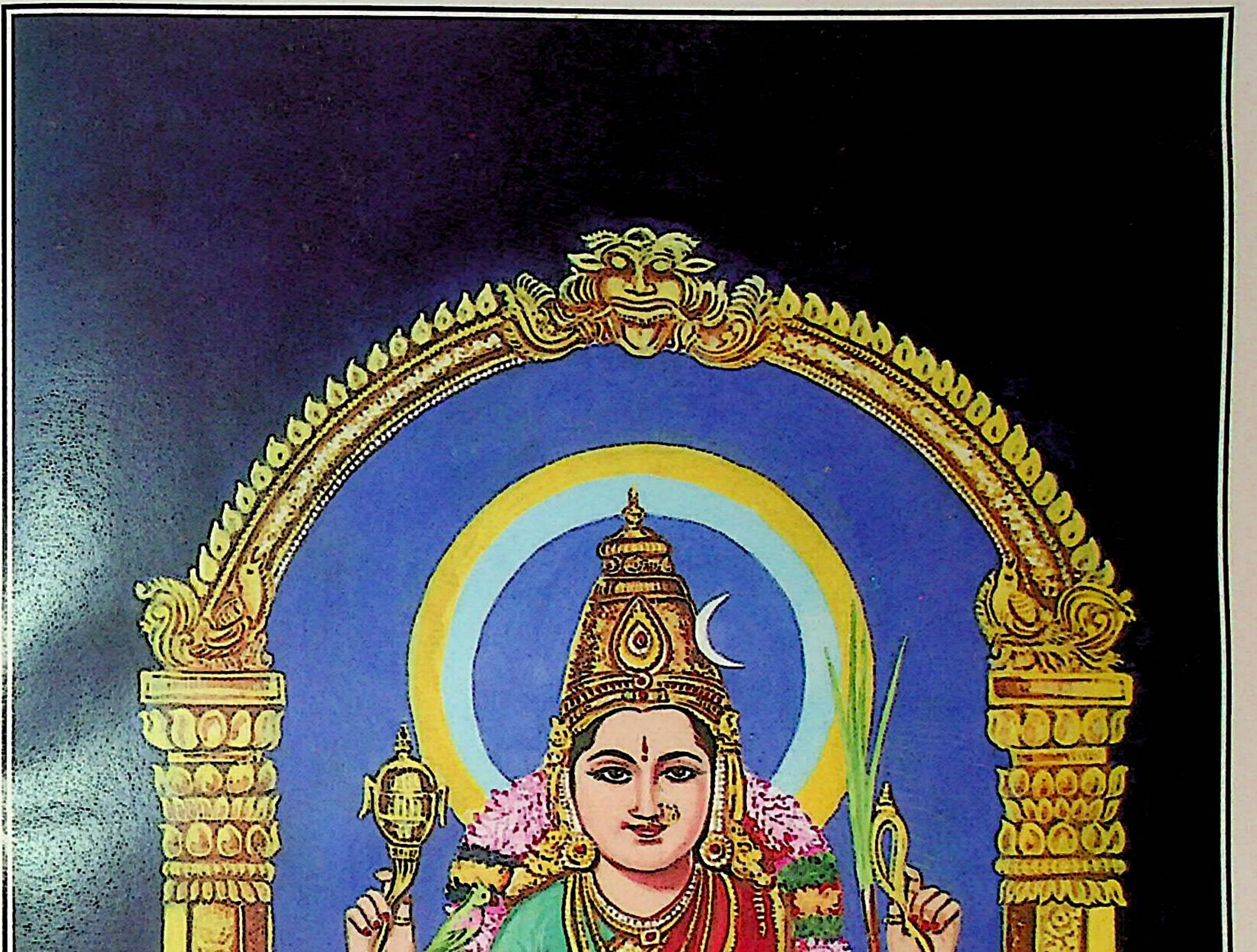
J. N. Prasad
गीताप्रेस, गोरखपुर

राजराजेश्वरी श्रीललिताम्बा

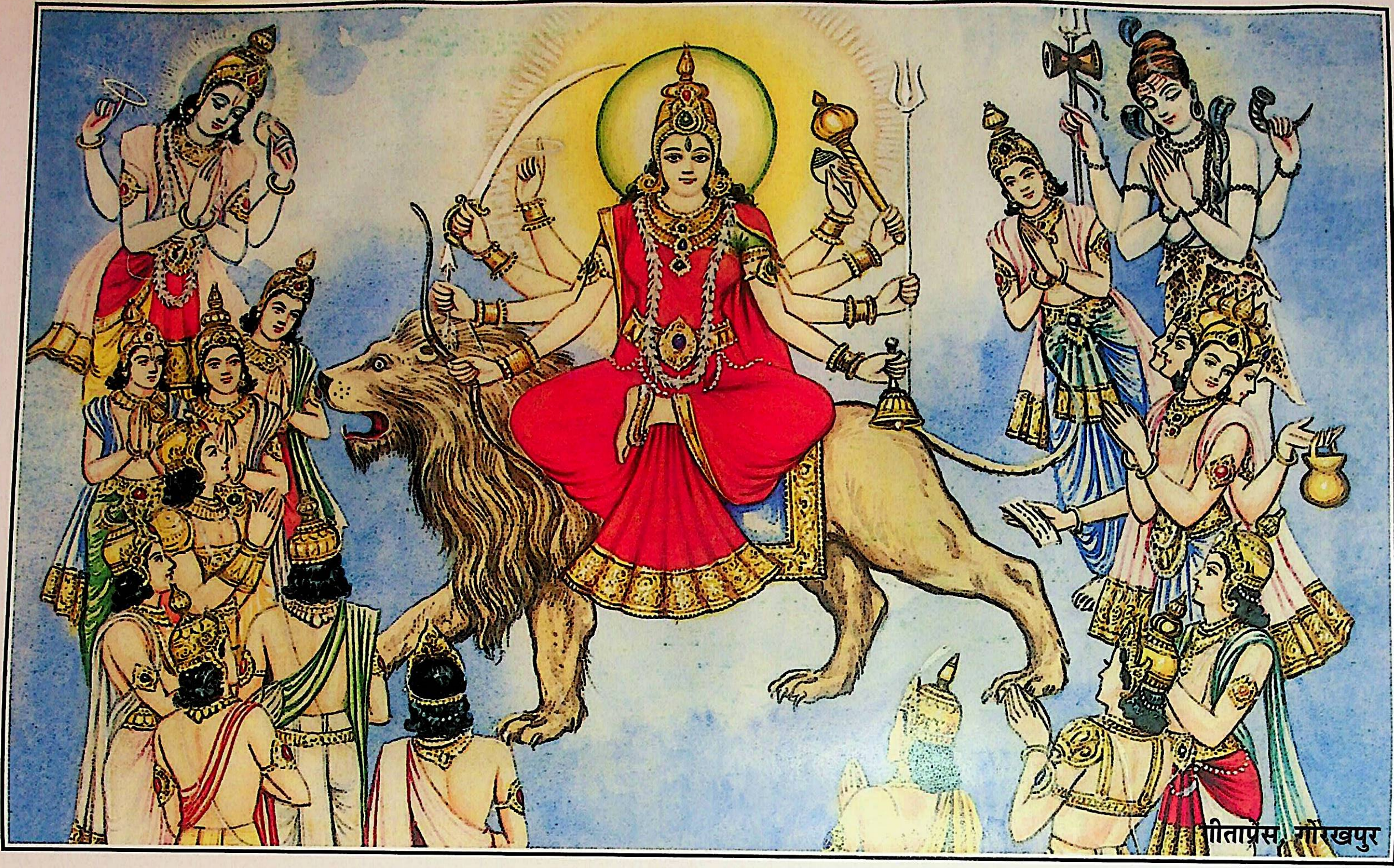

गीताप्रेस, गोरखपुर

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति

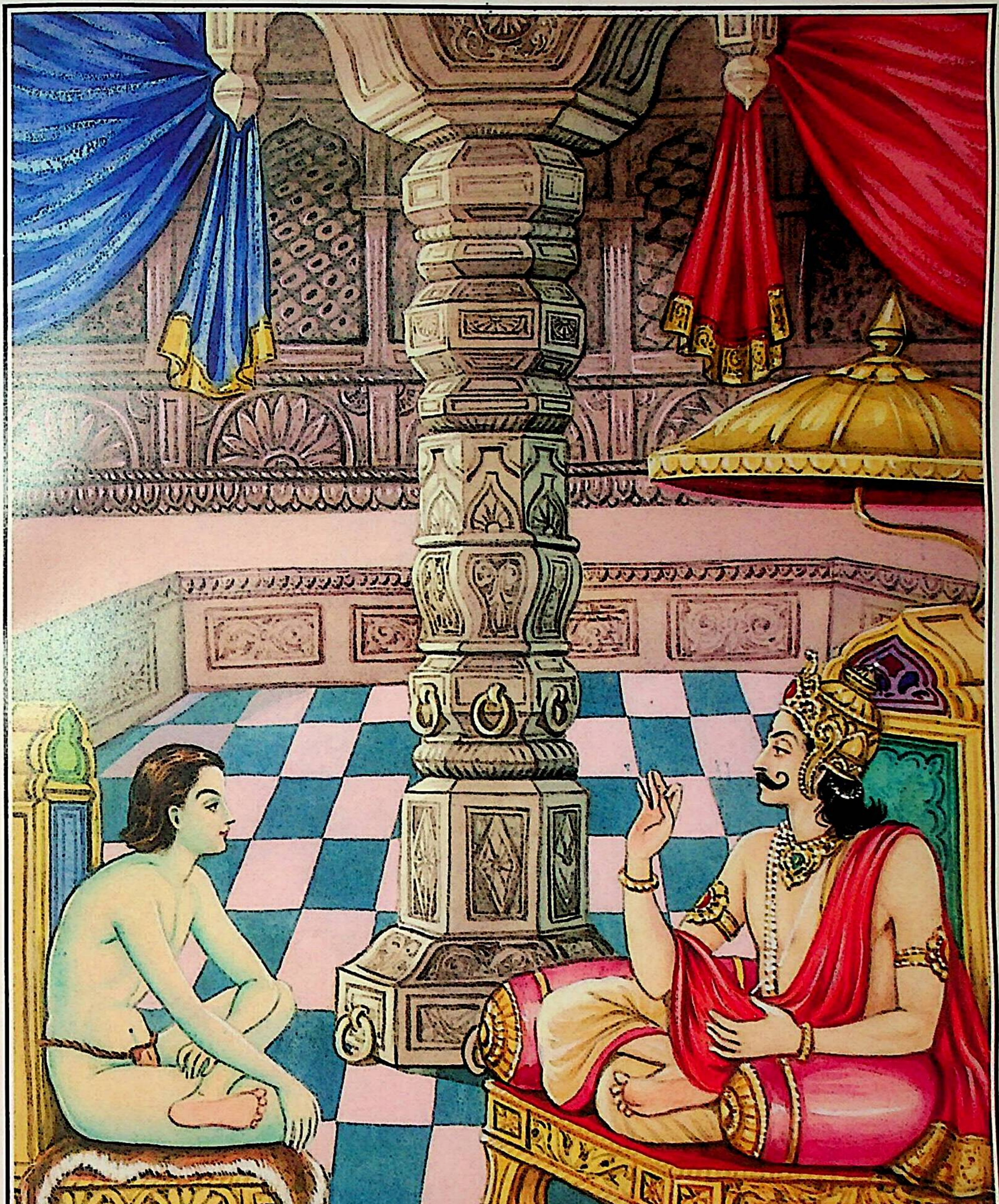
गीताप्रेस, गोरखपुर

विदेहराज जनक तथा परम विरक्त श्रीशुकदेवजी

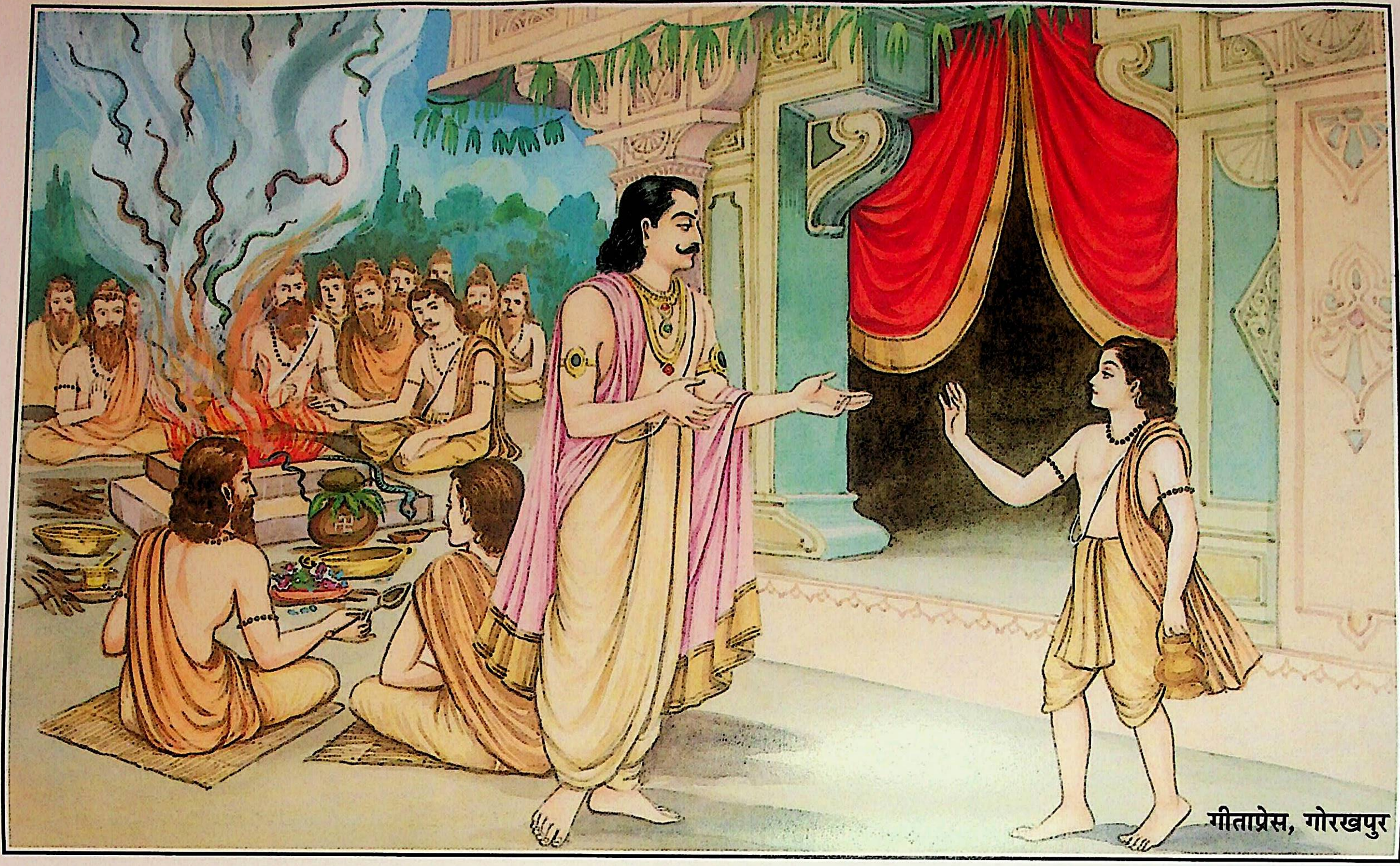

गीताप्रेस, गोरखपुर

परीक्षित्-पुत्र महाराज जनमेजयके सर्पयज्ञमें आस्तीकका प्रवेश

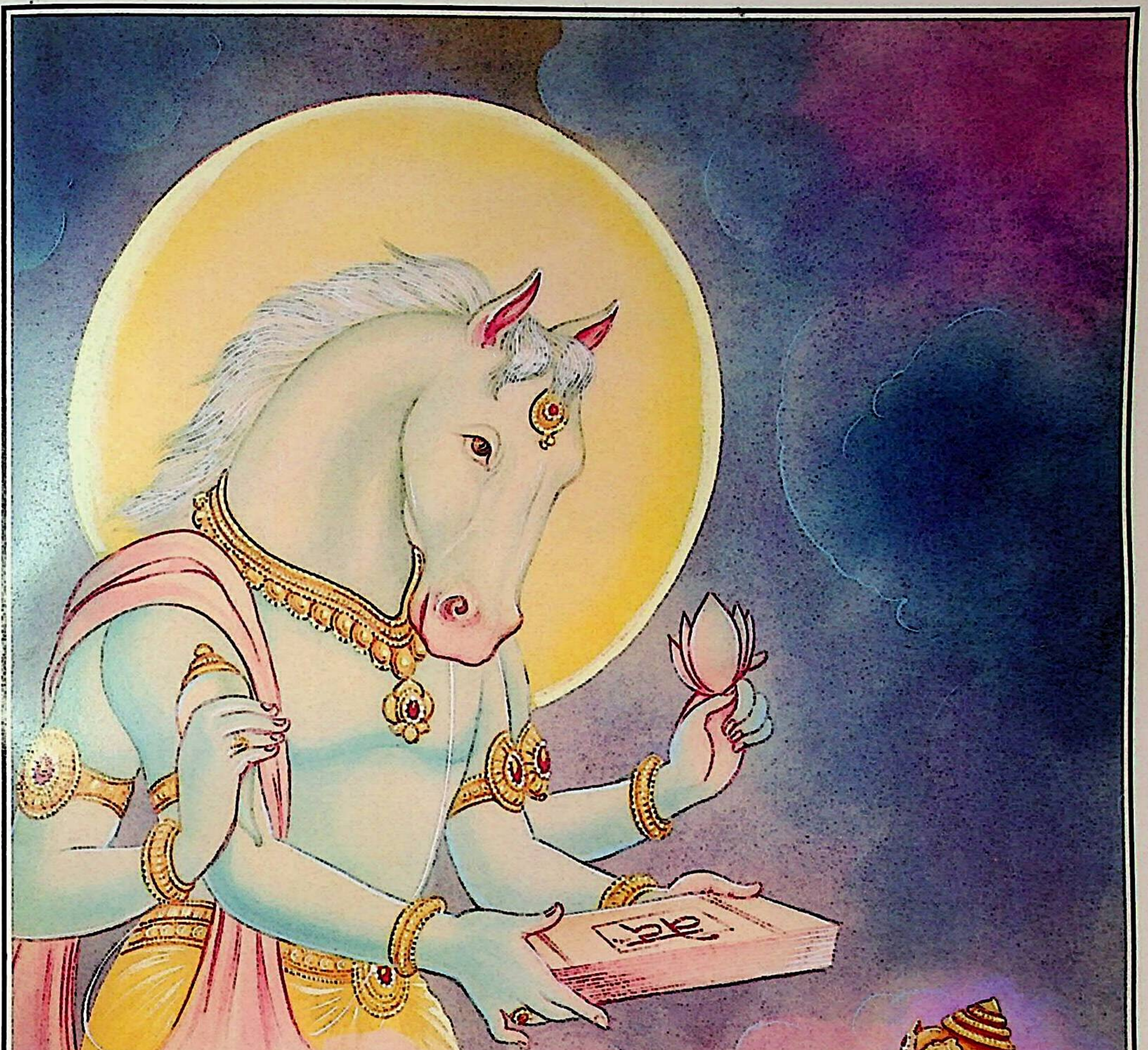
वेद
गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् हयग्रीवद्वारा वेदोंका उद्धारकर ब्रह्माजीको प्रदान करना

श्रीजगदम्बाका देवताओंको दर्शन देना

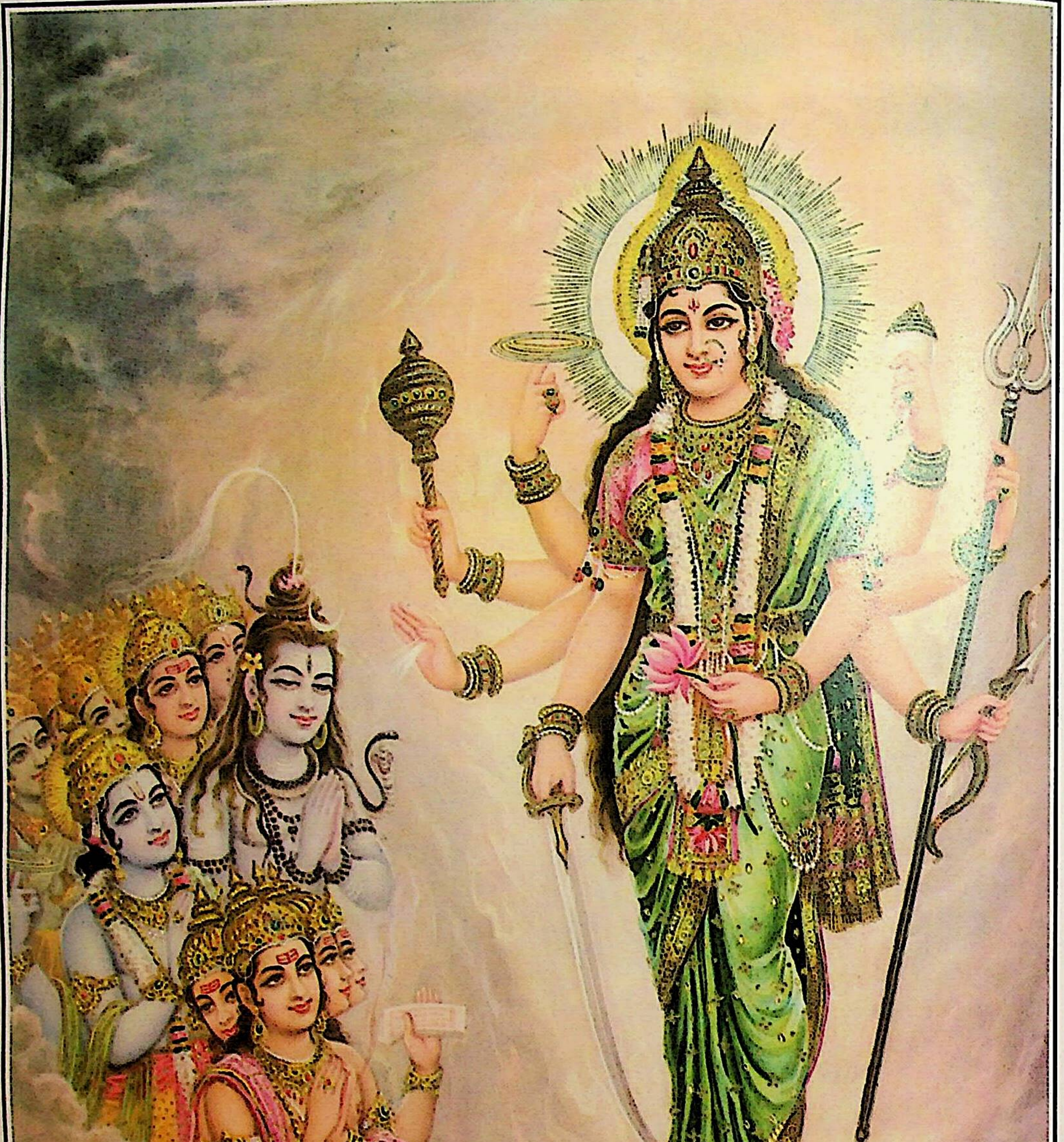

गीताप्रेस, गोरखपुर

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः। भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः। सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः॥

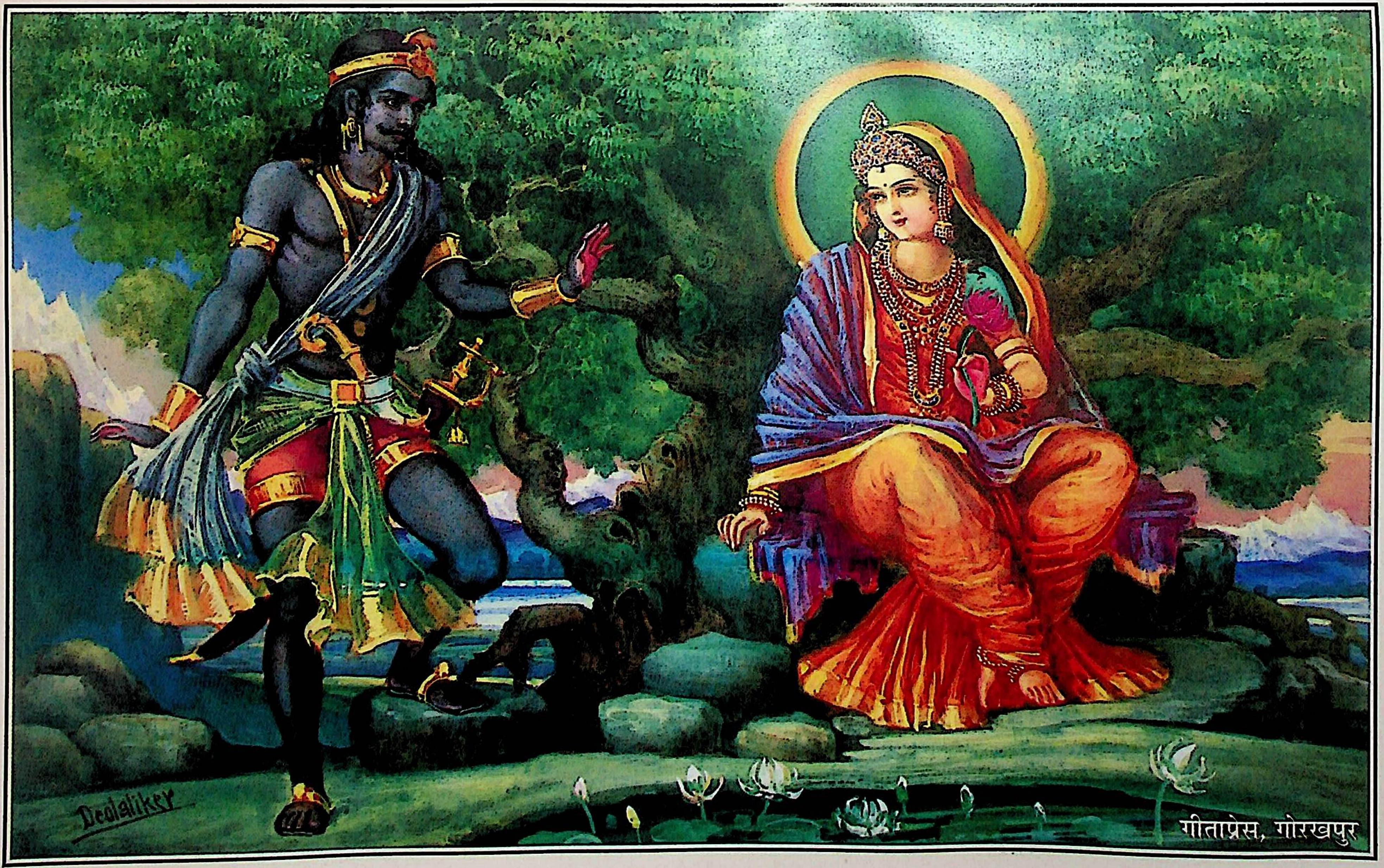
Deolalikar
गीताप्रेस, गोरखपुर

शुम्भासुरके दूत सुग्रीवका भगवती कौशिकीके पास पहुँचना

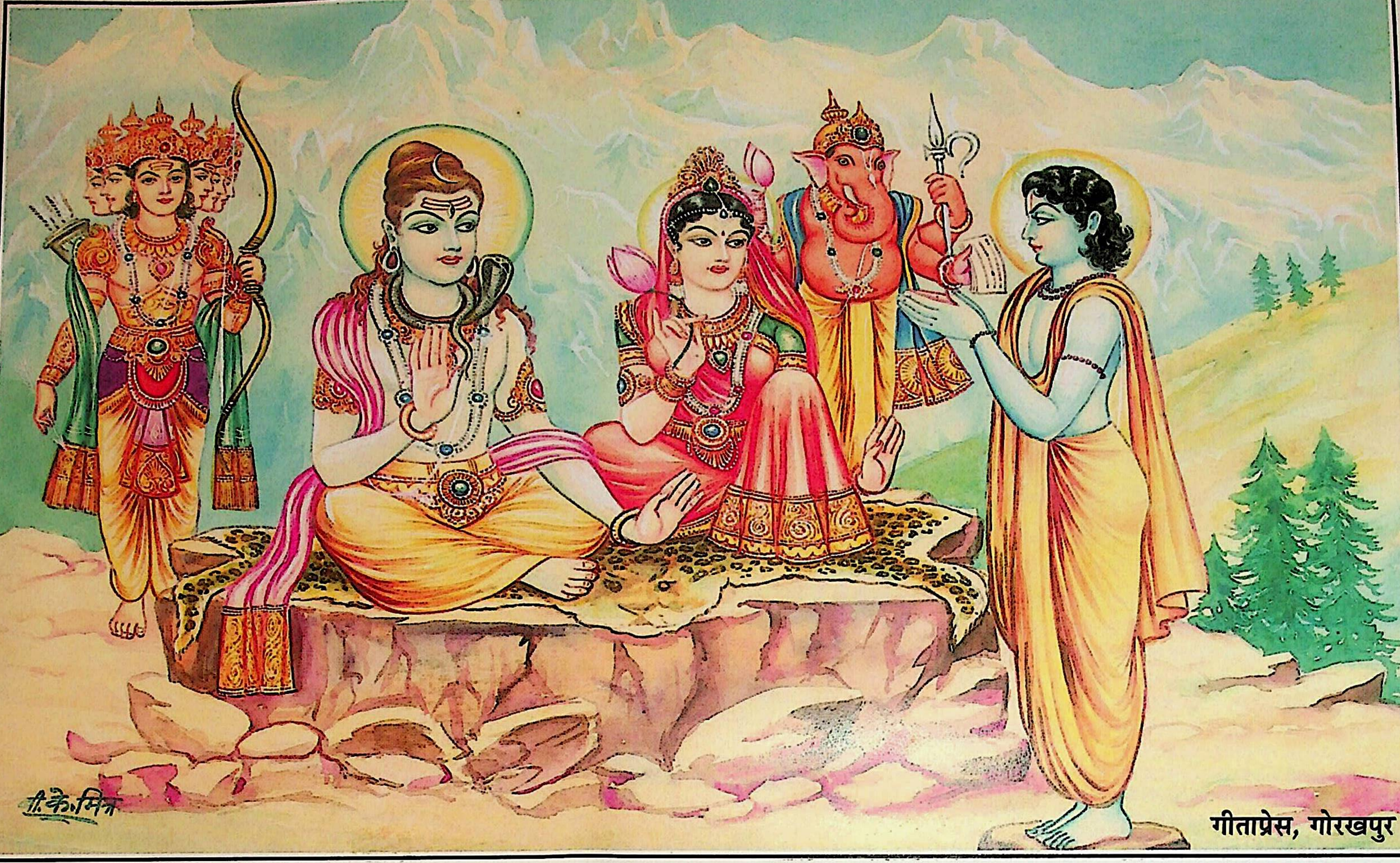
बी.के.मित्र
गीताप्रेस, गोरखपुर

शिव-पार्वतीद्वारा श्रीकृष्णको वरदान

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणकी महिमाका कथन

सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ
पालनी या च रौद्री
संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं
क्रीडनं या पराख्या।
पश्यन्ती मध्यमाथो तदनु भगवती
वैखरी वर्णरूपा
सास्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशा-
राधितालङ्करोतु ॥ १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ २

ऋषय ऊचुः

सूत जीव समा बह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः।
कथा मनोहराः पुण्या व्यासशिष्य महामते॥ ३

सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम्।
अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम्॥ ४

शिवस्य चरितं दिव्यं भस्मरुद्राक्षयोस्तथा।
सेतिहासञ्च माहात्म्यं श्रुतं तव मुखाम्बुजात्॥ ५

अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात् पावनं परम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः॥ ६

तत् त्वं ब्रूहि महाभाग येन सिध्यन्ति मानवाः।
कलावपि परं त्वत्तो न विद्मः संशयच्छिदम्॥ ७

जगत्‌के सृष्टिकार्यमें जो उत्पत्तिरूपा, रक्षाकार्यमें पालनशक्तिरूपा, संहारकार्यमें रौद्ररूपा हैं, सम्पूर्ण विश्व-प्रपंच जिनके लिये क्रीडास्वरूप है, जो परा-पश्यन्ती-मध्यमा तथा वैखरी वाणीमें अभिव्यक्त होती हैं और जो ब्रह्मा-विष्णु-महेशद्वारा निरन्तर आराधित हैं, वे प्रसन्न चित्तवाली देवी भगवती मेरी वाणीको अलंकृत (परिशुद्ध) करें॥ १॥

[बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि] श्रीनारायण तथा नरोंमें श्रेष्ठ श्रीनर, भगवती सरस्वती और महर्षि वेदव्यासको प्रणाम करनेके पश्चात् ही जय (इतिहासपुराणादि सद्ग्रन्थों)-का पाठ-प्रवचन करना चाहिये॥ २॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महामते! हे व्यासशिष्य! आप दीर्घजीवी हों; आप हमलोगोंको नानाविध पुण्यप्रदायिनी एवं मनोहारिणी कथाएँ सुनाते रहते हैं॥ ३॥

भगवान् विष्णुके सर्वपापविनाशक, परम पवित्र एवं उन अवतार-कथाओंसे सम्बन्धित अद्भुत चरित्रोंको हमने भक्तिपूर्वक सुना और इसी प्रकार हमने भगवान् शिवके अलौकिक चरित्र तथा भस्म और रुद्राक्षके ऐतिहासिक माहात्म्यका श्रवण आपके मुखारविन्दसे किया॥ ४-५॥

हमलोग अब ऐसी परम पावन कथा सुनना चाहते हैं, जो बिना प्रयासके ही मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेमें पूर्णरूपसे सहायक हो॥ ६॥

हे महाभाग! अतः आप उस कथाका वर्णन करें, जिसके द्वारा मानव कलियुगमें भी सिद्धियाँ प्राप्त कर लें; क्योंकि हम आपसे बढ़कर किसी अन्यको नहीं जानते हैं, जो हमारी शंकाओंका निवारण कर सके॥ ७॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभागा लोकानां हितकाम्यया।
सर्वशास्त्रस्य यत् सारं तद्वो वक्ष्याम्यशेषतः॥ ८

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च।
यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥ ९

तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका।
यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥ १०

तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः।
यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥ ११

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर।
कीदृशं तत्पुराणं हि विधिस्तच्छ्रवणे च कः॥ १२

कतिभिर्वासरैरेतच्छ्रोतव्यं किञ्च पूजनम्।
कैर्मानवैः श्रुतं पूर्वं कान्कान्कामानवाप्नुयुः॥ १३

सूत उवाच

विष्णोरंशो मुनिर्जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
विभज्य वेदांश्चतुरः शिष्यानध्यापयत्पुरा॥ १४

व्रात्यानां द्विजबन्धूनां वेदेष्वनधिकारिणाम्।
स्त्रीणां दुर्मेधसां नृणां धर्मज्ञानं कथं भवेत्॥ १५

विचार्यैतत् तु मनसा भगवान् बादरायणः।
पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया॥ १६

अष्टादश पुराणानि स कृत्वा भगवान् मुनिः।
मामेवाध्यापयामास भारताख्यानमेव च॥ १७

देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम्।
स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम्॥ १८

सूतजी बोले—हे महाभाग ऋषियो! आपलोगोंने लोककल्याणकी भावनासे अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं आप सभीके लिये समस्त शास्त्रोंका जो सार है, उसे पूर्णरूपसे बताऊँगा॥ ८॥

समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक्‌रूपसे श्रवण नहीं कर लेते॥ ९॥

मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता॥ १०॥

मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाते॥ ११॥

ऋषिगण बोले—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग सूतजी! आप हमें बतायें कि वह श्रीमद्देवीभागवतपुराण कैसा है और उसके श्रवणकी विधि क्या है? उस पुराणको कितने दिनोंमें सुनना चाहिये, [उसके श्रवणकी अवधिमें] पूजन-विधान क्या है, प्राचीन कालमें किन-किन मनुष्योंने इसे सुना और उनकी कौन-कौनसी कामनाएँ पूर्ण हुईं?॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें पराशरऋषिद्वारा सत्यवतीके गर्भसे विष्णुके अंशस्वरूप मुनि व्यास उत्पन्न हुए, जिन्होंने वेदोंका चार विभाग करके उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया॥ १४॥

पतितों, ब्राह्मणाधमों, वेदाध्ययनके अनधिकारियों, स्त्रियों एवं दूषित बुद्धिवाले मनुष्योंको धर्मका ज्ञान कैसे हो—मनमें ऐसा विचार करके भगवान् बादरायण व्यासजीने उनके धर्मज्ञानार्थ पुराण-संहिताका प्रणयन किया॥ १५-१६॥

उन भगवान् व्यासमुनिने अठारह पुराणों एवं महाभारतका प्रणयन करके सर्वप्रथम मुझे ही पढ़ाया॥ १७॥

उन पुराणोंमें श्रीमद्देवीभागवतपुराण भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। व्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था॥ १८॥

पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित् तक्षकाहिना।
सन्दष्टस्तस्य संशुध्यै राज्ञा भागवतं श्रुतम्॥ १९

नवभिर्दिवसैः श्रीमद्वेदव्यासमुखाम्बुजात्।
त्रैलोक्यमातरं देवीं पूजयित्वा विधानतः॥ २०

नवाहयज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः।
दिव्यरूपधरो देव्याः सालोक्यं तत्क्षणादगात्॥ २१

पितुर्दिव्यां गतिं राजा विलोक्य जनमेजयः।
व्यासं मुनिं समभ्यर्च्य परां मुदमवाप ह॥ २२

अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्।
देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ २३

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्।
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥ २४

दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥ २५

सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत् फलम्।
सकृत् पुराणश्रवणात् तत् फलं लभते नरः॥ २६

कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम्।
पुराणश्रवणादन्यो विद्यते नापरो नृणाम्॥ २७

धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम्।
व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम्॥ २८

सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः।
देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥ २९

पूर्वकालमें इन जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षक-नागद्वारा काट लिये गये। अतः पिताकी संशुद्धि (शुभगति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका श्रवण किया॥ १९-२०॥

इस नवाहयज्ञके सम्पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्ने उसी समय दिव्यरूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया॥ २१॥

राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए॥ २२॥

सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ २३॥

जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता। इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये॥ २४॥

पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती॥ २५॥

मनुष्य सभी यज्ञों, तीर्थों तथा दान आदि शुभ कर्मोंका जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे केवल एक बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे प्राप्त हो जाता है॥ २६॥

सत्ययुग आदि युगोंमें तो अनेक प्रकारके धर्मोंका विधान था, किंतु कलियुगमें पुराण-श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये अन्य कोई सरल धर्म विहित नहीं है॥ २७॥

कलियुगमें धर्म एवं सदाचारसे रहित तथा अल्प आयुवाले मनुष्योंके कल्याणार्थ महर्षि वेदव्यासने अमृतरसमय श्रीमद्देवीभागवतनामक पुराणकी रचना की॥ २८॥

अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है॥ २९॥

मासानां नियमो नात्र दिनानां नियमोऽपि न।
सदा सेव्यं सदा सेव्यं देवीभागवतं नरैः॥ ३०

आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा।
चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात् फलदायकम्॥ ३१

अतो नवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात् पुण्यकर्मणः।
फलाधिकप्रदानेन प्रोक्तः पुण्यप्रदो नृणाम्॥ ३२

ये दुर्हृदः पापरता विमूढा
मित्रद्रुहो वेदविनिन्दकाश्च।
हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता
नवाहयज्ञेन पुनन्ति ते कलौ॥ ३३

परस्वदाराहरणेऽतिलुब्धा
ये वै नराः कल्मषभारभाजः।
गोदेवताब्राह्मणभक्तिहीना
नवाहयज्ञेन भवन्ति शुद्धाः॥ ३४

तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनै-
र्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च।
हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते
नवाहयज्ञेन तदाप्यते नृणाम्॥ ३५

तथा न गङ्गा न गया न काशी
न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम्।
पुनाति सद्यो बदरीवनं नो
यथा हि देवीमख एष विप्राः॥ ३६

अतो भागवतं देव्याः पुराणं परतः परम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम्॥ ३७

आश्विनस्य सिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ।
महाष्टम्यां समभ्यर्च्य हैमसिंहासनस्थितम्॥ ३८

देवीप्रीतिप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम्।
दद्याद् विप्राय योग्याय स देव्याः पदवीं लभेत्॥ ३९

देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्धमेव वा।
भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत्॥ ४०

श्रीमद्देवीभागवतके कथा-श्रवणमें महीनों तथा दिनोंका कोई भी नियम नहीं है। अतएव मानवोंद्वारा इसका सदा ही सेवन (पठन-श्रवण) किया जाना चाहिये॥ ३०॥

आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़—इन महीनोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका श्रवण विशेष फल प्रदान करता है॥ ३१॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ समस्त पुण्यकर्मोंसे अधिक फलदायक होनेके कारण मनुष्योंके लिये विशेष पुण्यप्रद कहा गया है॥ ३२॥

जो कलुषित हृदयवाले, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदोंकी निन्दा करनेवाले, हिंसामें रत और नास्तिक मार्गका अनुसरण करनेवाले मनुष्य हैं, वे भी कलियुगमें इस नवाहयज्ञके अनुष्ठानसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३३॥

जो मनुष्य दूसरोंके धन तथा परायी स्त्रियोंके लिये लालायित रहते हैं, पापके बोझसे दबे हुए हैं और गो-ब्राह्मण-देवताओंकी भक्तिसे रहित हैं, वे भी इस नवाहयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३४॥

जो फल कठिन तपस्याओं, व्रतों, तीर्थसेवन, अनेकविध दान, नियमों, यज्ञों, हवन एवं जप आदिके करनेसे प्राप्त नहीं होता है, वह फल मनुष्योंको श्रीमद्देवीभागवतके नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाता है॥ ३५॥

हे विप्रो! गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, पुष्कर तथा बदरिकारण्य भी मनुष्योंको उतना शीघ्र पवित्र नहीं कर पाते हैं, जितना कि श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ लोगोंको पवित्र कर देता है॥ ३६॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतपुराण सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। इसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिका उत्तम साधन माना गया है॥ ३७॥

जो आश्विन महीनेके शुक्लपक्षमें सूर्यके कन्या-राशिमें पहुँचनेपर महाष्टमी तिथिको स्वर्ण-सिंहासनपर स्थित देवीके प्रीतिप्रद श्रीमद्देवीभागवत-ग्रन्थका पूजन करके उसे किसी योग्य ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक देता है, वह देवीके परमपदको प्राप्त करता है॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्देवीभागवतपुराणके एक अथवा आधे श्लोकका भी भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह जगदम्बाका कृपापात्र हो जाता है॥ ४०॥

उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम्।
उत्पातानखिलांश्चापि हन्ति श्रवणमात्रतः॥ ४१

बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम्।
देवीभागवतस्यास्य श्रवणाद् याति दूरतः॥ ४२

यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥ ४३

श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे गतम्।
चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वा मुमोद ह॥ ४४

य एतां शृणुयाद् भक्त्या श्रीमद्भागवतीं कथाम्।
भुक्तिं मुक्तिं स लभते भक्त्या यश्च पठेदिमाम्॥ ४५

अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत्।
रोगी रोगात् प्रमुच्येत श्रुत्वा भागवतामृतम्॥ ४६

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याङ्गना।
देवीभागवतं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं चिरायुषम्॥ ४७

पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥ ४८

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि स सिद्धिं लभते पराम्॥ ४९

महामारीसे उत्पन्न उपद्रवोंके भीषण भय तथा समस्त प्रकारके उत्पात (उल्कापात, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि) इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवण-मात्रसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ४१॥

बालग्रहों* (स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेष) तथा भूत-प्रेत आदिसे उत्पन्न भय इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके श्रवणसे बहुत दूरसे ही भाग जाते हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवत-पुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे वसुदेवजी प्रसेनको खोजनेके लिये गये हुए और बहुत समयतक न लौटे हुए अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्णको प्राप्त करके प्रसन्न हुए॥ ४४॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी कथाको पढ़ता है तथा इसका श्रवण करता है, वह भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

अमृतस्वरूप इस श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है, दरिद्र व्यक्ति धनसे सम्पन्न हो जाता है तथा रोगग्रस्त मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है॥ ४६॥

वन्ध्या स्त्री, एक सन्तानवाली स्त्री अथवा वह स्त्री जिसकी सन्तान पैदा होकर मर जाती हो—वे भी श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनकर दीर्घ आयुवाला पुत्र प्राप्त करती हैं॥ ४७॥

जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशी तिथियोंको श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ता या सुनता है, वह परम सिद्धिको प्राप्त करता है॥ ४९॥

---

* सुश्रुतसंहित उत्तरतन्त्र २७।४-५

पठन् द्विजो वेदविदग्रणीर्भवेद्
बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात्।
वैश्यः पठन् वित्तसमृद्धिमेति
शूद्रोऽपि शृण्वन् स्वकुलोत्तमः स्यात्॥ ५०

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करनेवाला ब्राह्मण वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य हो जाता है, क्षत्रिय राजा हो जाता है, वैश्य धन-सम्पदासे सम्पन्न हो जाता है और शूद्र भी इसके श्रवणमात्रसे अपने कुल (बन्धु-बान्धवों)-के बीच श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतश्रवणमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें स्यमन्तकमणिकी कथा

ऋषय ऊचुः

वसुदेवो महाभागः कथं पुत्रमवाप्तवान्।
प्रसेनः कुत्र कृष्णेन भ्रमतान्वेषितः कथम्॥ १

विधिना केन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम्।
वसुदेवेन सुमते वद सूत कथामिमाम्॥ २

सूत उवाच

सत्राजिद् भोजवंशीयो द्वारवत्यां सुखं वसन्।
सूर्यस्याराधने युक्तो भक्तश्च परमः सखा॥ ३

अथ कालेन कियता प्रसन्नः सविताभवत्।
स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेन च॥ ४

तस्मै प्रीतश्च भगवान् स्यमन्तकमणिं ददौ।
स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे द्वारकामाजगाम ह॥ ५

दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रान्ता मत्वादित्यं पुरौकसः।
कृष्णमूचुः समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम्॥ ६

एष आयाति सविता दिदृक्षुस्त्वां जगत्पते।
श्रुत्वा कृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाच संसदि॥ ७

सविता नैष भो बालाः सत्राजिन्मणिना ज्वलन्।
स्यमन्तकेन चायाति भास्वद्दत्तेन भास्वता॥ ८

ऋषिगण बोले—महाभाग वसुदेवजीने अपने पुत्रको किस प्रकार प्राप्त किया और वनमें भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णने प्रसेनको कैसे खोजा? हे सुमते! हे सूतजी! किस विधिसे और किससे वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया; आप हमलोगोंको यह कथा बतायें॥ १-२॥

सूतजी बोले—भोजवंशी सत्राजित् द्वारकापुरीमें आनन्दपूर्वक निवास करता हुआ सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहता था। वह सूर्यका परम भक्त एवं उनका मित्र था॥ ३॥

कुछ समयके पश्चात् सूर्यदेव उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे अपने लोकका दर्शन कराया। उसकी भक्ति तथा प्रेमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् सूर्यने सत्राजित्को स्यमन्तकमणि दे दी और वह उस मणिको अपने गलेमें धारण किये हुए द्वारका आ गया॥ ४-५॥

उसे देखकर मणिके तेजसे भ्रमित नागरिकोंने सत्राजित्को सूर्य समझकर सुधर्मा नामक अपनी सभामें विराजमान श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उनसे कहा॥ ६॥

हे जगत्पते! आपके दर्शनकी अभिलाषासे भगवान् सूर्य स्वयं आपके पास आ रहे हैं। यह बात सुनकर सभामें श्रीकृष्ण हँसकर बोले॥ ७॥

हे बाल-स्वभाव नागरिको! ये सूर्यभगवान् नहीं हैं; बल्कि सत्राजित् है, जो स्वयं सूर्यद्वारा प्रदत्त स्यमन्तक-मणिसे दीप्तिमान् होता हुआ यहाँ आ रहा है॥ ८॥

अथ विप्रान् समाहूय स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
प्रावेशयत् समभ्यर्च्य सत्राजित् स्वगृहे मणिम्॥ ९

न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयं क्वचित्।
यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णदः॥ १०

अथ सत्राजितो भ्राता प्रसेनो नाम कर्हिचित्।
कण्ठे बद्ध्वा मणिं सद्यो हयमारुह्य सैन्धवम्॥ ११

मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः।
प्रसेनं सहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम्॥ १२

जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम्।
हत्वा च तं बिलद्वारि मणिं जग्राह वीर्यवान्॥ १३

स तं मणिं स्वपुत्राय क्रीडनार्थमदात् प्रभुः।
अथ चिक्रीड बालोऽपि मणिं सम्प्राप्य भास्वरम्॥ १४

प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित् पर्यतप्यत।
न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता॥ १५

अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत्।
कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनो मणिलिप्सुना॥ १६

स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशो लिप्तमात्मनि।
मार्ष्टुं तत्तस्य पदवीं पुरौकोभिस्सहागमत्॥ १७

उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाकर सत्राजित्ने स्वस्तिवाचन कराया और भलीभाँति पूजन करके उस मणिको अपने घरमें स्थापित किया॥ ९॥

वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ किसी प्रकारकी महामारी, दुर्भिक्ष तथा उपसर्ग (भूकम्प आदि प्राकृतिक संकट)-का भय उत्पन्न नहीं होता था और (उस मणिकी एक विशेषता यह भी थी कि) वह नित्य आठ भार* स्वर्ण दिया करती थी॥ १०॥

तदनन्तर एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने उस मणिको गलेमें धारणकर सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर आखेटके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ वनमें किसी सिंहने उसे देखा और घोड़ेसहित प्रसेनको मारकर सिंहने वह मणि स्वयं ले ली॥ ११-१२॥

इसके पश्चात् महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्ने मणि धारण करनेवाले उस सिंहको अपनी गुफाके द्वारपर देखकर और उसे मारकर मणि स्वयं ले ली॥ १३॥

पराक्रमी ऋक्षराजने वह मणि खेलनेके लिये अपने पुत्रको दे दी और वह बालक भी उस प्रदीप्त मणिको पाकर उसके साथ खेलने लगा॥ १४॥

कुछ काल बीतनेपर भी प्रसेनके वापस न लौटनेपर सत्राजित् अत्यन्त दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मणि लेनेकी इच्छासे न जाने किसने प्रसेनको मार डाला॥ १५॥

इसी बीच द्वारकापुरमें नागरिकोंकी पारस्परिक बात-चीतसे किसी प्रकार यह किंवदन्ती फैल गयी कि मणिके लोभके वशीभूत श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है॥ १६॥

श्रीकृष्णने भी जब अपने विषयमें अपयशकी वह बात सुनी तो उन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलंकके परिमार्जनहेतु प्रसेनके अन्वेषणार्थ नागरिकोंके साथ प्रस्थान किया॥ १७॥

---

* भारका परिमाण इस प्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्। अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)-की एक गुंजा, पाँच गुंजाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

गत्वा स विपिनेऽपश्यत् प्रसेनं हरिणा हतम्।
ययौ मृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्द्वङ्किताध्वना॥ १८

अथ कृष्णो हतं सिंहं बिलद्वारि विलोक्य च।
उवाच भगवान् वाचं कृपया पुरवासिनः॥ १९

तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम।
प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये॥ २०

तथेत्युक्त्वा तु ते तस्थुस्तत्रैव द्वारकौकसः।
जगामान्तर्बिलं कृष्णो यत्र जाम्बवतो गृहम्॥ २१

ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णो मणिधरं तदा।
हर्तुमैच्छन्मणिं तावद् धात्री चुक्रोश भीतवत्॥ २२

श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट् तदा।
युयुधे स्वामिना साकमविश्रममहर्निशम्॥ २३

एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः।
कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि पुरौकसः॥ २४

द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम्।
तत्र ते कथयामासुर्वृत्तान्तं सर्वमादितः॥ २५

सत्राजितं शपन्तस्ते सर्वे शोकाकुला भृशम्।
वसुदेवो महाभागः श्रुत्वा पुत्रस्य तां कथाम्॥ २६

मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा।
चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम॥ २७

अथाजगाम भगवान् देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः।
उत्थाय तं प्रणम्यासौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत्॥ २८

नारदोऽनामयं पृष्ट्वा वसुदेवं महामतिम्।
पप्रच्छ च यदुश्रेष्ठं किं चिन्तयसि तद् वद॥ २९

वनमें पहुँचनेपर श्रीकृष्णने सिंहद्वारा मारे गये प्रसेनको देखा और तदनन्तर गिरे हुए रक्त-बिन्दुओंसे चिह्नित मार्गका अनुसरण करके सिंहको खोजते हुए वे कुछ दूर गये॥ १८॥

इसके पश्चात् एक गुफाके द्वारपर मरे हुए सिंहको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण करुणायुक्त वाणीमें नागरिकोंसे बोले—मणिका हरण करनेवालेको खोजनेके लिये मैं इस गुफाके भीतर प्रवेश कर रहा हूँ। जबतक मैं वापस न आ जाऊँ, तुम लोग यहींपर ठहरो॥ १९-२०॥

वे द्वारकावासी 'ठीक है'—ऐसा बोलकर वहींपर ठहर गये और श्रीकृष्ण गुफाके भीतर प्रविष्ट हुए, जहाँ जाम्बवान्‌का घर था॥ २१॥

तत्पश्चात् वहाँ पहुँचनेपर श्रीकृष्णने ऋक्षराजके पुत्रको मणि धारण किये देखकर मणिको छीनना चाहा, इसपर उसकी धात्री (धाय) भयभीत होकर चिल्लाने लगी॥ २२॥

तब धात्रीकी आवाज सुनकर जाम्बवान् तुरंत वहाँ आ गया और वह अपने [पूर्व] स्वामी श्रीकृष्णके साथ दिन-रात निरन्तर युद्ध करने लगा॥ २३॥

इस प्रकार उन दोनोंके बीच सत्ताईस दिनोंतक भयंकर युद्ध हुआ। इधर द्वारकावासी गुफाके द्वारपर बारह दिनोंतक तो श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे रहे, किंतु इसके बाद वे भयभीत होकर अपने-अपने घर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने लोगोंसे सारा वृत्तान्त कहा॥ २४-२५॥

द्वारकापुरीके सभी नागरिक यह सब सुनकर सत्राजित्‌की भर्त्सना करते हुए अत्यन्त शोकविह्वल हो गये। महाभाग वसुदेवजी अपने पुत्रका वह समाचार सुनकर परिवारसहित महान् शोकसे मूर्छित हो गये और बार-बार सोचने लगे कि मेरा कल्याण किस प्रकारसे हो?॥ २६-२७॥

उसी समय ब्रह्मलोकसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये। वसुदेवजीने उठकर उन्हें प्रणाम करके विधिवत् उनकी पूजा की॥ २८॥

देवर्षि नारद महामति यदुश्रेष्ठ वसुदेवजीसे कुशल-क्षेम पूछकर उनसे बोले—आप क्यों चिन्तित हैं, यह मुझे बताइये॥ २९॥

वसुदेव उवाच

पुत्रो मेऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु।
पौरैः साकं वनं गत्वा निहतं तं तदैक्षत॥ ३०

प्रसेनघातकं दृष्ट्वा बिलद्वारे मृतं हरिम्।
द्वारि पौरानधिष्ठाप्य बिलान्तर्गतवान् स्वयम्॥ ३१

बहवो दिवसा याता नायात्यद्यापि मे सुतः।
अतः शोचामि तद् ब्रूहि येन लप्स्ये सुतं मुने॥ ३२

नारद उवाच

पुत्रप्राप्त्यै यदुश्रेष्ठ देवीमाराधयाम्बिकाम्।
तस्या आराधनेनैव सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥ ३३

वसुदेव उवाच

भगवन् का हि सा देवी किंप्रभावा महेश्वरी।
कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद॥ ३४

नारद उवाच

वसुदेव महाभाग शृणु संक्षेपतो मम।
देव्या माहात्म्यमतुलं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः॥ ३५

या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत्॥ ३६

यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम्।
यां च स्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद् भयात्॥ ३७

विष्णुर्यत्कृपया विश्वं बिभर्ति भगवानिदम्।
रुद्रः संहरते यस्याः कृपापाङ्गनिरीक्षणात्॥ ३८

संसारबन्धहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी।
सा विद्या परमा देवी सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ ३९

नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम्।
नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं शृणु॥ ४०

यस्य श्रवणमात्रेण सद्यः पुत्रमवाप्स्यसि।
भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था पठतां शृण्वतां नृणाम्॥ ४१

वसुदेवजी बोले—मेरा अतिशय प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण प्रसेनको खोजनेके लिये द्वारकाके नागरिकोंके साथ वनमें गया था, जहाँ उसने प्रसेनको मरा हुआ देखा। इसके पश्चात् प्रसेनको मारनेवाले सिंहको भी एक गुफाके द्वारपर मरा देखकर श्रीकृष्ण नागरिकोंको द्वारपर ही रोककर स्वयं गुफाके अन्दर चले गये। बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं, किंतु मेरा पुत्र अभीतक नहीं लौटा, जिससे मैं चिन्तित हूँ, अतः हे मुने! आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं अपने प्रिय पुत्रको प्राप्त कर सकूँ॥ ३०—३२॥

नारदजी बोले—हे यदुश्रेष्ठ! आप पुत्रकी प्राप्तिके लिये अम्बिकादेवीकी आराधना कीजिये। उनकी आराधनासे शीघ्र ही आपका कल्याण होगा॥ ३३॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! वे देवी कौन हैं, वे महेश्वरी किस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी आराधना किस प्रकार की जाती है? हे देवर्षे! कृपा करके यह बतायें॥ ३४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! देवीके अतुलित माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? अतः मैं संक्षेपमें ही कह रहा हूँ, आप उसे सुनें॥ ३५॥

जो भगवती शाश्वत, सच्चिदानन्दस्वरूपा और परात्परतरा देवी हैं तथा जिनके द्वारा यह जगत् व्याप्त है, जिनकी आराधनाके प्रभावसे ही ब्रह्मा इस चराचर सृष्टिकी रचना करते हैं, जिनका स्तवन करके भगवान् विष्णु मधु-कैटभके भयसे मुक्त हुए तथा जिनकी कृपासे वे विश्वका पालन-पोषण करते हैं, जिनके कृपा-कटाक्षमात्रसे भगवान् शंकर जगत्का संहार करते हैं और जो संसारके बन्धनकी कारणरूपा हैं, वे ही मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, वे ही परम विद्यास्वरूपा हैं और वे ही समस्त ईश्वरोंकी भी ईश्वरी हैं॥ ३६—३९॥

अतः आप नवरात्रविधानके अनुसार जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके नौ दिनोंमें इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका श्रवण कीजिये, जिसके श्रवणमात्रसे आप शीघ्र ही अपने पुत्रकी प्राप्ति कर लेंगे। इस पुराणका पाठ तथा श्रवण करनेवाले मनुष्योंसे भोग एवं मोक्ष दूर नहीं रहते॥ ४०-४१॥

इत्युक्तो नारदेनासौ वसुदेवः प्रणम्य तम्।
उवाच परया प्रीत्या नारदं मुनिसत्तमम्॥ ४२

वसुदेव उवाच

भगवंस्तव वाक्येन संस्मृतं वृत्तमात्मनः।
श्रूयतां तच्च वक्ष्यामि देवीमाहात्म्यसम्भवम्॥ ४३

पुरा नभोगिरा कंसो देवक्यष्टमगर्भतः।
ज्ञात्वात्ममृत्युं पापो मां सभार्यं न्यरुणद्धिया॥ ४४

कारागारेऽहमवसं देवक्या सह भार्यया।
जातं जातं समवधीत्पुत्रं कंसोऽपि पापकृत्॥ ४५

षट् पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम्।
अतप्यद् देवकी देवी नक्तन्दिवमनिन्दिता॥ ४६

तदाहं गर्गमाहूय मुनिं नत्वाभिपूज्य च।
निवेद्य देवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया॥ ४७

भगवन् करुणासिन्धो यादवानां गुरुर्भवान्।
आयुष्मत्पुत्रसम्प्राप्तिसाधनं वद मे मुने॥ ४८

ततो गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः।

गर्ग उवाच

वसुदेव महाभाग शृणु तत् साधनं परम्॥ ४९

या सा भगवती दुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी।
तामाराधय कल्याणीं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥ ५०

यदाराधनतः सर्वे सर्वान् कामानवाप्नुयुः।
न किञ्चिद् दुर्लभं लोके दुर्गार्चनवतां नृणाम्॥ ५१

इत्युक्तोऽहं मुदा युक्तः सभार्यो मुनिपुङ्गवम्।
प्रणम्य परया भक्त्या प्रावोचं विहिताञ्जलिः॥ ५२

वसुदेव उवाच

यद्यस्ति भगवन् प्रीतिर्मयि ते करुणानिधे।
तदा गुरो मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम्॥ ५३

नारदजीके ऐसा कहनेपर वे वसुदेवजी मुनिश्रेष्ठ नारदको प्रणाम करके अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! आपके इस कथनसे देवी-माहात्म्यसे सम्बन्धित एक अपना वृत्तान्त मुझे याद आ गया; मैं उसे कह रहा हूँ, आप सुनिये॥ ४३॥

पूर्वकालमें पापी कंसने आकाशवाणीके माध्यमसे देवकीके आठवें गर्भसे अपनी मृत्यु जानकर भयभीत हो भार्यासहित मुझको बन्दी बना लिया॥ ४४॥

तदनन्तर मैं अपनी पत्नी देवकीके साथ कारागारमें रहने लगा और पापी कंस भी मेरे पैदा होनेवाले पुत्रोंको एक-एक करके मारता रहा॥ ४५॥

इस प्रकार जब कंसके द्वारा मेरे छः पुत्र मार डाले गये तब मेरी निर्दोष भार्या देवी देवकी अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं और दिन-रात दुखी रहने लगीं॥ ४६॥

तत्पश्चात् गर्गमुनिको बुलाकर उनका अभिवादन तथा पूजन करके पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मैंने उनसे देवकीका दुःख बताकर कहा—हे भगवन्! हे दयासिन्धो! हे मुनिवर! आप यदुकुलके गुरु हैं, अतः मुझे आयुष्मान् पुत्रकी प्राप्तिका कोई उपाय बताइये। इसके अनन्तर दयानिधान गर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे॥ ४७-४८½॥

गर्गजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! अब आप उस सर्वश्रेष्ठ साधनको सुनिये। जो भगवती दुर्गा अपने भक्तोंकी दुर्गतिका विनाश कर देती हैं, आप उन कल्याणकारिणी देवीकी आराधना कीजिये। इससे शीघ्र ही आपका कल्याण होगा; क्योंकि उनकी आराधनासे सभी लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। दुर्गाकी उपासना करनेवाले मनुष्योंके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ४९-५१॥

गर्गमुनिके ऐसा कहनेपर मैं प्रसन्न हो गया और अपनी पत्नीसहित मुनिश्रेष्ठ गर्गको परम श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर मैंने उनसे कहा॥ ५२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! हे करुणासागर! हे गुरो! यदि आप मुझपर स्नेह रखते हैं तो मेरे कल्याणके निमित्त आप ही उन भगवती चण्डिकाकी

निरुद्धः कंसगेहेऽहं न किञ्चित् कर्तुमुत्सहे।
अतस्त्वमेव दुःखाब्धेर्मामुद्धर महामते॥ ५४

इत्युक्तस्तु मया प्रीतः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः।
वसुदेव तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव॥ ५५

अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया सम्प्रार्थितोऽगमत्।
आरिराधयिषुर्दुर्गां विन्ध्याद्रिं ब्राह्मणैः सह॥ ५६

तत्र गत्वा जगद्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम्।
आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः॥ ५७

ततः समाप्ते नियमे वागुवाचाशरीरिणी।
प्रसन्नाहं मुने कार्यसिद्धिस्तव भविष्यति॥ ५८

भूभारहरणार्थाय मया सम्प्रेरितो हरिः।
वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनावतरिष्यति॥ ५९

कंसभीत्या तमादाय बालमानकदुन्दुभिः।
प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि॥ ६०

यशोदातनयां नीत्वा स्वगृहे कंसभूभुजे।
दास्यत्यथ च तां हन्तुं कंस आक्षेप्स्यति क्षितौ॥ ६१

सा तद्धस्ताद् विनिर्गत्य सद्यो दिव्यवपुर्धरा।
मदंशभूता विन्ध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम्॥ ६२

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य जगदम्बिकाम्।
गर्गो मुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामागमत् पुरीम्॥ ६३

वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम्।
श्रुत्वा सभार्यः सम्प्रीतः परां मुदमथागमम्॥ ६४

आराधना कर दें। मैं तो कंसके घरमें बन्दी रहनेके कारण कुछ भी कर सकनेमें समर्थ नहीं हूँ। अतः हे महामते! अब आप ही इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार कीजिये॥ ५३-५४॥

मेरे इस प्रकार कहनेपर वे मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न होकर बोले—हे वसुदेव! आपकी प्रीतिके कारण मैं आपका कल्याण करूँगा॥ ५५॥

मेरे द्वारा प्रीतिपूर्वक प्रार्थना किये जानेके उपरान्त गर्गमुनि देवी दुर्गाकी आराधनाकी इच्छासे ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्यपर्वतपर चले गये॥ ५६॥

वहाँ जाकर जप एवं पाठमें तत्पर रहते हुए गर्गमुनि जगत्की मातृस्वरूपा और भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भगवतीकी आराधना करने लगे॥ ५७॥

जप-पूजनादि अनुष्ठानोंकी समाप्तिके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि हे मुने! मैं प्रसन्न हो गयी हूँ, अतएव तुम्हारे कार्यकी सिद्धि होगी॥ ५८॥

[समस्त प्रकारके पाप एवं अनाचारस्वरूप] पृथ्वीके भारका नाश करनेके लिये मुझसे प्रेरणा प्राप्तकर स्वयं भगवान् विष्णु अपने अंशसे वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे अवतार लेंगे॥ ५९॥

कंसके भयसे वसुदेवजी उस शिशुको लेकर शीघ्र ही गोकुलमें नन्दके घर पहुँचा देंगे और वहाँसे यशोदाकी कन्याको लाकर अपने घरमें राजा कंसको दे देंगे। तब कंस उस कन्याको मारनेके लिये उसे पृथ्वीपर पटक देगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर उसके हाथसे छूटकर मेरी अंशस्वरूपा वह कन्या तत्क्षण अलौकिक रूप धारण करके विन्ध्यपर्वतपर चली जायगी और निरन्तर जगत्का कल्याण करेगी॥ ६२॥

इस प्रकार उस आकाशवाणीको सुनकर गर्गमुनि भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे मथुरापुरी आ गये॥ ६३॥

आचार्य गर्गके मुखसे महादेवीके वरदानकी बात सुनकर मैं पत्नीसहित अत्यन्त प्रसन्न हुआ और परम आनन्दविभोर हो उठा॥ ६४॥

तदारभ्य परं जाने देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
अधुनापि हि देवर्षे श्रुतं तव मुखाम्बुजात्॥ ६५

अतो भागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावय प्रभो।
मद्भाग्यादेव देवर्षे सम्प्राप्तोऽसि दयानिधे॥ ६६

वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः।
सुदिने शुभनक्षत्रे कथारम्भमथाकरोत्॥ ६७

कथाविघ्नविघातार्थं द्विजा जेपुर्नवाक्षरम्।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं पेठुर्देव्याः स्तवं तथा॥ ६८

प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम्।
शुश्राव वसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम्॥ ६९

नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा।
प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः॥ ७०

अथ तत्र बिलस्यान्तः कृष्णजाम्बवतोर्मृधे।
कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथाङ्गो जाम्बवानभूत्॥ ७१

अथागतस्मृतिः सोऽपि भगवन्तं प्रणम्य च।
उवाच परया भक्त्या स्वापराधं क्षमापयन्॥ ७२

ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यद्रोषात् सरितांपतिः।
क्षोभं जगाम लङ्का च रावणः सानुगो हतः॥ ७३

स एवासि भवान् कृष्ण मद्दौरात्म्यं क्षमस्व भोः।
ब्रूहि यत् करणीयं मे भृत्योऽहं तव सर्वथा॥ ७४

श्रुत्वा जाम्बवतो वाचमब्रवीज्जगदीश्वरः।
मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्॥ ७५

तभीसे मैं देवीके अत्युत्तम माहात्म्यको जान रहा हूँ और हे देवर्षे! आज भी आपके मुखारविन्दसे मैंने वही देवीमाहात्म्य सुना है॥ ६५॥

अतः हे प्रभो! अब आप ही मुझे श्रीमद्देवीभागवत सुनाइये। हे दयानिधान! मेरे सौभाग्यसे ही आप यहाँ पधारे हुए हैं॥ ६६॥

वसुदेवजीका वचन सुनकर प्रसन्न मनवाले नारदजीने शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्रमें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा आरम्भ की॥ ६७॥

कथामें आनेवाली विघ्न-बाधाओंके शमनार्थ ब्राह्मण देवीके नवाक्षर (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे)-मन्त्रका जप तथा मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित देवीस्तोत्रका पाठ करने लगे॥ ६८॥

प्रथम स्कन्धके आरम्भसे ही वसुदेवजी देवर्षि नारदके मुखसे निःसृत अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करने लगे॥ ६९॥

नौवें दिन कथाकी समाप्ति होनेपर महामनस्वी वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थ तथा कथावाचक दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक पूजा की॥ ७०॥

उधर कन्दरामें श्रीकृष्ण तथा जाम्बवान्के बीच चल रहे युद्धमें श्रीकृष्णके मुष्टिकाप्रहारोंसे जाम्बवान्का शरीर अत्यन्त शिथिल पड़ गया था॥ ७१॥

उसी समय जाम्बवान्को भी पूर्वकालकी घटनाएँ याद आ गयीं और भगवान् श्रीकृष्णको परम भक्तिके साथ प्रणाम करके अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करते हुए उसने श्रीकृष्णसे कहा—अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप रघुश्रेष्ठ श्रीराम ही हैं, जिनके भयंकर कोपसे सागर तथा लंकानगरी—दोनों क्षुब्ध हो गये थे और रावण अपने बन्धु-बान्धवोंसहित मारा गया था॥ ७२-७३॥

हे श्रीकृष्ण! वे राम आप ही हैं, अतः मेरी धृष्टताको क्षमा करें। मैं आपका सर्वथा सेवक हूँ, अतएव मेरेयोग्य जो भी कार्य हो, उसके लिये मुझे आदेश दीजिये॥ ७४॥

जाम्बवान्का वचन सुनकर जगत्पति श्रीकृष्ण बोले—हे ऋक्षराज! मणि प्राप्त करनेके लिये हमलोग इस कन्दरामें आये हुए हैं॥ ७५॥

ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम्।
ददौ कृष्णाय सम्पूज्य स्यमन्तकमणिं तथा॥ ७६

स तां पत्नीं समादाय मणिं कण्ठे तथादधत्।
अभिमन्त्र्यर्क्षराजञ्च प्रतस्थे द्वारकां प्रति॥ ७७

कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः।
ब्राह्मणान् भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत्॥ ७८

आशीर्वाचं प्रयुञ्जाना द्विजा यत्समये हरिः।
आजगाम क्षणे तस्मिन् पत्न्या सह मणिं दधत्॥ ७९

भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः।
दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षाः समवापुः परां मुदम्॥ ८०

देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः।
आमन्त्र्य वसुदेवं च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ॥ ८१

हरिचरितमिदं यत्कीर्तितं दुर्यशोघ्नं
पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तः शृणोति।
स भवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो
जगति च वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च॥ ८२

तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने श्रीकृष्णकी विधिवत् पूजा करके स्यमन्तकमणि तथा अपनी पुत्री जाम्बवती उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अर्पित कर दी॥ ७६॥

श्रीकृष्णने जाम्बवतीको पत्नीके रूपमें अंगीकार करके मणिको गलेमें धारण कर लिया और ऋक्षराज जाम्बवान्‌से विदा लेकर वे द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७७॥

उधर द्वारकामें उदारहृदय श्रीवसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराण-कथाकी समाप्तिके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ७८॥

जिस समय वे ब्राह्मण वसुदेवको आशीर्वचन प्रदान कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण मणि धारण किये हुए पत्नी जाम्बवतीके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ७९॥

भार्यासहित भगवान् श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी तथा उपस्थित जनसमूहकी आँखें हर्षातिरेकके अश्रुसे परिपूर्ण हो गयीं और वे परम आनन्दित हुए॥ ८०॥

देवर्षि नारद भी श्रीकृष्णके आगमनसे हर्षित हुए और उन्होंने वसुदेवजी तथा श्रीकृष्णसे विदा लेकर ब्रह्मसभाके लिये प्रस्थान किया॥ ८१॥

जो मनुष्य निष्कपट भक्ति एवं शुद्ध हृदयसे भगवान्‌के इस विख्यात तथा कलंकनाशक चरित्रका पाठ एवं श्रवण करता है, वह पूर्ण सुखी हो जाता है, जगत्‌में उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा मृत्युके अनन्तर वह मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ८२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये वसुदेवस्य देवीभागवतनवाह-श्रवणात्पुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुद्युम्नकी कथा

सूत उवाच

अथेतिहासमन्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते॥ १
एकदा कुम्भयोनिस्तु लोपामुद्रापतिर्मुनिः।
गत्वा कुमारमभ्यर्च्य पप्रच्छ विविधाः कथाः॥ २

सूतजी बोले—हे मुनिवरो! अब आपलोग एक अन्य इतिहास सुनिये, जिसमें इस देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन किया गया है॥ १॥

एक बार कुम्भयोनि लोपामुद्रापति महर्षि अगस्त्यने कुमार कार्तिकेयके पास जाकर उनकी भलीभाँति पूजा करके उनसे विविध प्रकारकी बातें पूछीं॥ २॥

स तस्मै भगवान् स्कन्दः कथयामास भूरिशः।
दानतीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथाः॥ ३

वाराणस्याश्च माहात्म्यं मणिकर्णीभवं तथा।
गङ्गायाश्चापि तीर्थानां वर्णितं बहुविस्तरम्॥ ४

श्रुत्वाथ स मुनिः प्रीतः कुमारं भूरिवर्चसम्।
पुनः पप्रच्छ लोकानां हितार्थं कुम्भसम्भवः॥ ५

अगस्त्य उवाच

भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु।
माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो॥ ६

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥ ७

स्कन्द उवाच

श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः।
शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन् कथयिष्यामि साम्प्रतम्॥ ८

या नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका।
साक्षात् समाश्रिता यत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ ९

अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवते मुने।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किञ्चिदिह दुर्लभम्॥ १०

आसीद्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः।
सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वसिष्ठानुमतो नृपः॥ ११

होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाथ दयिता मनोः।
कन्या भवतु मे ब्रह्मंस्तथोपायो विधीयताम्॥ १२

मनसा चिन्तयन् होता कन्यामेवाजुहोद्धविः।
ततस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम चाभवत्॥ १३

अथ राजा सुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमना गुरुम्।
कथं सङ्कल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव॥ १४

भगवान् कार्तिकेयने दान-तीर्थ-व्रतादिके माहात्म्यसे परिपूर्ण अनेक कथाओंका वर्णन उनसे किया। उन्होंने वाराणसी, मणिकर्णिका, गंगा तथा अनेक तीर्थोंके माहात्म्यका अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ ३-४॥

उसे सुनकर अगस्त्यमुनि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने महातेजसम्पन्न कुमार कार्तिकेयसे लोक-कल्याणके लिये पुनः पूछा॥ ५॥

अगस्त्यजी बोले—हे तारकरिपु! हे भगवन्! हे प्रभो! आप मुझे देवीभागवतके माहात्म्य तथा उसके श्रवणकी विधि भी बतायें॥ ६॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है॥ ७॥

कार्तिकेय बोले—हे ब्रह्मन्! श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक कहनेमें कौन समर्थ है? मैं इस समय संक्षेपमें इसे कहूँगा, आप सुनिये॥ ८॥

जो शाश्वती, सच्चिदानन्दस्वरूपा, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली जगदम्बा हैं, वे स्वयं इस पुराणमें विराजमान रहती हैं॥ ९॥

अतएव हे मुने! यह श्रीमद्देवीभागवत उन जगदम्बिकाकी वाङ्मयी मूर्ति है, जिसके पठन एवं श्रवणसे इस लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ १०॥

विवस्वान्‌के एक पुत्र हुए, जो श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध थे। सन्तानरहित होनेके कारण उन राजा श्राद्धदेवने वसिष्ठमुनिकी अनुमतिसे पुत्रेष्टि यज्ञ किया॥ ११॥

तत्पश्चात् मनु श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धाने यज्ञके होतासे प्रार्थना की—हे ब्रह्मन्! आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे कन्याकी प्राप्ति हो॥ १२॥

अतः होताने मनमें कन्या-प्राप्तिका संकल्प करते हुए आहुति डाली और उसके विपरीत भावके फलस्वरूप एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'इला' रखा गया॥ १३॥

इसके बाद पुत्रीको देखकर उदास मनवाले राजा श्राद्धदेवने गुरु वसिष्ठसे कहा—हे प्रभो! पुत्र-प्राप्तिके आपके संकल्पके विपरीत यह कन्या कैसे उत्पन्न हो गयी?॥ १४॥

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्दध्यौ ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम्।
ईश्वरं शरणं यात इलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ १५

मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा।
पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुषतामगात्॥ १६

गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथ मनोः सुतः।
निधिर्बभूव विद्यानां सरितामिव सागरः॥ १७

अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च।
मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य सैन्धवम्॥ १८

वनाद् वनान्तरं गच्छन् बहु बभ्राम सानुगः।
दैवादधस्ताद्धेमाद्रेः स कुमारो वनं ययौ॥ १९

कस्मिंश्चित् समये यत्र भार्ययापर्णया सह।
अरमद्देवदेवस्तु शङ्करो भगवान् मुदा॥ २०

तदा तु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः।
आजग्मुरथ तान् दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताभवत्॥ २१

रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशौ संशितव्रताः।
निवृत्ता मुनयो जग्मुर्वैकुण्ठनिलयं तदा॥ २२

प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह।
अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान् योषिद् भवेदिति॥ २३

तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयन्ति हि।
तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा॥ २४

स्त्रीभूताननुगानश्वं वडवां वीक्ष्य विस्मितः।
अथ सा सुन्दरी योषा विचचार वने वने॥ २५

यह सुनकर महर्षि वसिष्ठने ध्यान लगाया, इसमें होताका व्यतिक्रम जानकर वे इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे ईश्वरकी शरणमें गये॥ १५॥

मुनिके तपप्रभाव और भगवान्‌की कृपासे सभी लोगोंके देखते-देखते इला कन्यासे पुरुषरूपमें परिवर्तित हो गयी॥ १६॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठने पूर्णरूपसे संस्कार करके उसका नाम 'सुद्युम्न' रखा। वे मनुपुत्र सुद्युम्न सभी नदियोंके निधानभूत सागरकी भाँति सभी विद्याओंके निधान हो गये॥ १७॥

कुछ समय बीतनेपर सुद्युम्न युवा हुए और एक दिन सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर वे आखेटके लिये वनमें गये॥ १८॥

अपने सहचरोंके साथ वे कुमार सुद्युम्न एक वनसे दूसरे वनमें जाते हुए भटकते रहे और फिर संयोगसे वे हिमालयकी तलहटीके उस वनमें पहुँच गये जहाँ किसी समय देवाधिदेव भगवान् शंकर अपनी भार्या अपर्णाके साथ आनन्दपूर्ण मुद्रामें रमण कर रहे थे॥ १९-२०॥

उसी समय भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे मुनिगण वहाँ आ गये और उन्हें देखकर पार्वतीजी लज्जित हो गयीं॥ २१॥

तब शिव एवं पार्वतीको रमण करते देखकर उत्तम व्रत धारण करनेवाले वे मुनिगण वहाँसे लौटकर वैकुण्ठ-धामकी ओर चल दिये॥ २२॥

तदनन्तर अपनी प्रियतमाको प्रसन्न करनेके लिये भगवान्‌ने उस अरण्यको शाप दे दिया कि आजसे जो भी पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा॥ २३॥

तभीसे पुरुषोंने उस वनमें जाना त्याग दिया था और संयोगवश वहाँ पहुँचते ही सुद्युम्न एक लावण्यमयी स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हो गये॥ २४॥

अपने सभी अनुचरोंको पुरुषसे स्त्री तथा घोड़ोंको घोड़ियोंमें रूपान्तरित हुआ देखकर सुद्युम्न आश्चर्यचकित हो गये। अब वह रूपवती तरुणी वन-वनमें विचरण करने लगी॥ २५॥

एकदा सा जगामाथ बुधस्याश्रमसन्निधौ।
दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम्॥ २६

बिम्बोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम्।
अनङ्गशरविद्धाङ्गश्चकमे भगवान् बुधः॥ २७

सापि तं चकमे सुभ्रूः कुमारं सोमनन्दनम्।
ततस्तस्याश्रमेऽवात्सीद्रममाणा बुधेन सा॥ २८

अथ कालेन कियता पुरूरवसमात्मजम्।
स तस्यां जनयामास मित्रावरुणसम्भव॥ २९

अथ वर्षेषु यातेषु कदाचित् सा बुधाश्रमे।
स्मृत्वा स्वं पूर्ववृत्तान्तं दुःखिता निर्जगाम ह॥ ३०

गुरोरथाश्रमं गत्वा वसिष्ठस्य प्रणम्य तम्।
निवेद्य वृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती॥ ३१

वसिष्ठो ज्ञातवृत्तान्तो गत्वा कैलासपर्वतम्।
सम्पूज्य शम्भुं तुष्टाव भक्त्या परमया युतः॥ ३२

वसिष्ठ उवाच

नमो नमः शिवायास्तु शङ्कराय कपर्दिने।
गिरिजार्धाङ्गदेहाय नमस्ते चन्द्रमौलये॥ ३३

मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने।
नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने॥ ३४

शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे।
नमो वृषभवाहाय शरण्याय परात्मने॥ ३५

ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च।
नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये॥ ३६

यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः।
गङ्गाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः॥ ३७

एक बार वह बुधके आश्रमके समीप पहुँची। स्थूल तथा उन्नत स्तनोंवाली, बिम्ब-फलके समान लाल ओठोंवाली, कुन्दफूलके समान श्वेत दाँतोंवाली, सुन्दर मुख तथा कमलके समान नयनोंवाली उस सर्वांगसुन्दरी तरुणीको देखकर कामदेवके बाणोंसे बिंधे हुए अंगोंवाले भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये॥ २६-२७॥

वह सुन्दर भौंहोंवाली युवती भी चन्द्रपुत्र कुमार बुधपर आसक्त हो गयी और बुधके साथ रमण करती हुई उनके आश्रममें रहने लगी॥ २८॥

हे महर्षि अगस्त्य! कुछ समय बाद बुधने उस तरुणीसे पुरूरवा नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ २९॥

इस प्रकार बुधके आश्रममें रहते हुए कई वर्ष बीत जानेपर किसी समय उसे अपने पूर्व वृत्तान्तका स्मरण हो आया और वह दुःखित होकर आश्रमसे चली गयी॥ ३०॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठके आश्रममें पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और सारा वृत्तान्त कहकर पुरुषत्वकी कामना करती हुई वह उनके शरणागत हो गयी॥ ३१॥

इस प्रकार सभी बातोंको जानकर वसिष्ठजी कैलास-पर्वतपर जाकर विधि-विधानसे भगवान् शंकरकी पूजा करके परम भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—शिव, शंकर, कपर्दी, गिरिजाके अर्धांग एवं चन्द्रमौलिको बार-बार नमस्कार है॥ ३३॥

मृड, सुखदाता, कैलासवासी, नीलकण्ठ, भक्तोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३४॥

शिव, शिवस्वरूप, शरणागतभयहारी, वृषभवाहन, शरणदाता परमात्माको नमस्कार है॥ ३५॥

सृजन, पालन तथा संहारके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशरूपधारी, देवाधिदेव, वरदायक तथा त्रिपुरारिको मेरा नमस्कार है॥ ३६॥

यज्ञरूप तथा याजकोंके फलदाताको बार-बार नमस्कार है। आप गंगाधर, सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूप त्रिनेत्रको मेरा नमस्कार है॥ ३७॥

एवं स्तुतः स भगवान् प्रादुरासीज्जगत्पतिः।
वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ ३८

रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः।
प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्तमम्॥ ३९

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते।
इत्युक्तस्तं प्रणम्येलापुंस्त्वमभ्यर्थयन्मुनिः॥ ४०

अथ प्रसन्नो भगवानुवाच मुनिसत्तमम्।
मासं पुमान् स भविता मासं नारी भविष्यति॥ ४१

इति प्राप्य वरं शम्भोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम्।
वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम महेश्वरीम्॥ ४२

कोटिचन्द्रकलाकान्तिं-सुस्मितां परिपूज्य च।
तुष्टाव भक्त्या सततमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ ४३

जय देवि महादेवि भक्तानुग्रहकारिणि।
जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये॥ ४४

नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले।
जय दुर्गे दुःखहन्त्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि॥ ४५

भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके।
संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे॥ ४६

ब्रह्मादयोऽपि विबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया।
विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः॥ ४७

प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि।
कस्त्वां स्तोतुं क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम्॥ ४८

इस प्रकार मुनि वसिष्ठके द्वारा स्तुति किये जानेपर करोड़ों सूर्यसदृश प्रभासे युक्त एवं भगवती पार्वतीके साथ नन्दीपर आरूढ़ वे जगत्पति भगवान् शंकर प्रकट हो गये॥ ३८॥

चाँदीके पर्वतके समान प्रभावाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखर शरणमें आये हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले॥ ३९॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे विप्रर्षे! आपके मनमें जो भी इच्छा हो, वह वर माँगिये। उनके इस प्रकार कहनेपर गुरु वसिष्ठने प्रणाम करके इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना की॥ ४०॥

इसके बाद प्रसन्न होकर शंकरजीने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे कहा कि एक मासतक वह पुरुषरूपमें तथा एक मासतक नारीरूपमें रहेगी॥ ४१॥

इस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त करके महर्षि वसिष्ठने वर प्रदान करनेके लिये सदा उत्सुक रहनेवाली जगदम्बिका पार्वतीको प्रणाम किया॥ ४२॥

करोड़ों चन्द्रमाकी कला-कान्तिसे युक्त तथा सुन्दर मुसकानवाली भगवतीकी सम्यक् पूजा करके सदाके लिये इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिकी कामनासे वसिष्ठजी श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

हे देवि! हे महादेवि! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली भगवति! आपकी जय हो। हे समस्त देवोंकी आराध्यस्वरूपा और अनन्त गुणोंकी आगार! आपकी जय हो॥ ४४॥

हे देवेश्वरि! हे शरणागतवत्सले! आपको बार-बार नमस्कार है। हे दुःखहारिणि! हे दुष्ट दानवोंका नाश करनेवाली भगवति! आपकी जय हो॥ ४५॥

हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली भगवति! हे महामाये! हे जगदम्बिके! हे भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौका-स्वरूप चरणकमलवाली! आपको नमस्कार है॥ ४६॥

आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता विश्वके सृजन, पालन तथा संहारहेतु सामर्थ्य प्राप्त करते हैं॥ ४७॥

पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) प्रदान करनेवाली हे देवेश्वरि! आप प्रसन्न हों। हे देवि! आपकी स्तुति करनेमें भला कौन समर्थ है, अतः मैं आपको केवल प्रणाम कर रहा हूँ॥ ४८॥

एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा।
भक्त्या वसिष्ठमुनिना प्रसन्ना तत्क्षणादभूत्॥ ४९

तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम्।
सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम्॥ ५०

सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियङ्करम्।
देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम॥ ५१

श्रवणादेव सततं पुंस्त्वमस्य भविष्यति।
इत्युक्त्वा च तिरोधानं गच्छतः स्म शिवेश्वरौ॥ ५२

वसिष्ठस्तां दिशं नत्वा समागत्याश्रमं निजम्।
समाहूय च सुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत्॥ ५३

आश्विनस्य सिते पक्षे सम्पूज्य जगदम्बिकाम्।
नवरात्रविधानेन श्रावयामास भूपतिम्॥ ५४

श्रुत्वा भक्त्यापि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम्।
प्रणम्याभ्यर्च्य च गुरुं लेभे पुंस्त्वं निरन्तरम्॥ ५५

राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा।
भुवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरञ्जयन्॥ ५६

ईजे च विविधैर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः।
पुत्रेषु राज्यं सन्दिश्य प्राप देव्याः सलोकताम्॥ ५७

इति कथितमशेषं सेतिहासं च विप्रा
यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति।
स इह सकलकामान् प्राप्य देव्याः प्रसादात्
परममृतमथान्ते याति देव्याः सलोकम्॥ ५८

महर्षि वसिष्ठजीद्वारा इस प्रकार भक्ति-भावसे स्तुति किये जानेपर नारायणी पराम्बा दुर्गा भगवती तत्काल प्रसन्न हो गयीं॥ ४९॥

तदनन्तर भक्तजनोंका दुःख दूर करनेवाली महादेवीने मुनि वसिष्ठसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप सुद्युम्नके घर जाकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करें॥ ५०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! सुद्युम्नको नौ दिनोंमें मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाले श्रीमद्देवीभागवतपुराणका प्रेमपूर्वक श्रवण कराइये॥ ५१॥

उसके श्रवणमात्रसे उसे सर्वदाके लिये पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी। ऐसा कहकर भगवती पार्वती तथा भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये॥ ५२॥

इसके पश्चात् वसिष्ठजी उस दिशाको नमस्कारकर अपने आश्रमको लौट आये और सुद्युम्नको बुलाकर उन्होंने देवीकी आराधना करनेके लिये उन्हें आदेश दिया॥ ५३॥

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके वसिष्ठजीने राजाको नवरात्र-विधानके अनुसार श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनाया॥ ५४॥

इस प्रकार अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवतपुराणको भक्तिपूर्वक सुनकर और गुरु वसिष्ठका पूजन-वन्दन करके सुद्युम्नने सदाके लिये पुरुषत्व प्राप्त कर लिया॥ ५५॥

महर्षि वसिष्ठने सुद्युम्नका राज्याभिषेक किया और वे प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए धर्मपूर्वक भूमण्डलपर शासन करने लगे॥ ५६॥

सुद्युम्नने अत्यन्त श्रेष्ठ दक्षिणावाले भाँति-भाँतिके यज्ञ किये और अन्तमें पुत्रोंको राज्यका शासन सौंपकर वे देवीलोकको प्राप्त हुए॥ ५७॥

हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंको इतिहाससहित देवीमाहात्म्य बता दिया। यदि कोई मनुष्य सद्भक्तिके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है तो वह देवीकी कृपासे इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करके अन्तमें देवीके परम सत्यस्वरूप सालोक्यको प्राप्त कर लेता है॥ ५८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतनवाहश्रवणादिलायाः
पुंस्त्वप्राप्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें रेवती नक्षत्रके पतन और पुनः स्थापनकी कथा तथा श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे राजा दुर्दमको मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्ति

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथां दिव्यां विचित्रां कुम्भसम्भवः।
शुश्रूषुः पुनराहेदं विशाखं विनयान्वितः॥ १

अगस्त्य उवाच

देवसेनापते देव विचित्रेयं श्रुता कथा।
पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे॥ २

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणसम्भूत मुने शृणु कथामिमाम्।
यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु॥ ३
वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च।
गायत्र्या महिमा यत्र तद् भागवतमिष्यते॥ ४
भगवत्या इदं यस्मात्तस्माद् भागवतं विदुः।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवती हि सा॥ ५
ऋतवागिति विख्यातो मुनिरासीन्महामतिः।
तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे॥ ६
स तस्य जातकर्मादिक्रियाश्चक्रे यथाविधि।
चूडोपनयनादींश्च संस्कारानपि सोऽकरोत्॥ ७
यत आरभ्य जातोऽसौ पुत्रस्तस्य महात्मनः।
तत एवाथ स मुनिः शोकरोगाकुलोऽभवत्॥ ८
रोषलोभपरीतात्मा तथा मातापि तस्य च।
बहुरोगार्दिता नित्यं शुचा दुःखीकृता भृशम्॥ ९
ऋतवाक् स मुनिश्चिन्तामवाप भृशदुःखितः।
किमेतत् कारणं जातं पुत्रो मेऽत्यन्तदुर्मतिः॥ १०
कस्यचिन्मुनिपुत्रस्य बलात् पत्नीं जहार च।
मेने शिक्षां पितुर्नासौ न च मातुर्विमूढधीः॥ ११

सूतजी बोले—इस अलौकिक एवं विचित्र कथाको सुनकर पुनः सुननेकी इच्छावाले अगस्त्यजीने बड़ी विनम्रतापूर्वक भगवान् कार्तिकेयसे कहा—॥ १॥

अगस्त्यजी बोले—हे देवसेनापते! हे देव! मैंने यह विचित्र कथा सुन ली, अब आप श्रीमद्देवीभागवतका दूसरा माहात्म्य मुझे बतायें॥ २॥

कार्तिकेयजी बोले—हे मित्रावरुणसे प्रकट होनेवाले मुने! अब आप यह कथा सुनें, जिसके एक अंशमें भागवतकी महिमा कही गयी हो, धर्मका विशद वर्णन किया गया हो और गायत्रीका प्रसंग आरम्भ करके उसकी महिमा दर्शायी गयी हो, उसे भागवतके रूपमें जाना जाता है॥ ३-४॥

यह पुराण देवी भगवतीके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण देवीभागवत कहा जाता है। वे परा भगवती ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी आराध्या हैं॥ ५॥

ऋतवाक् नामसे विख्यात एक महान् बुद्धिसम्पन्न मुनि थे। रेवती नक्षत्रके अन्तिम भाग गण्डान्तयोगमें उनके यहाँ समयानुसार एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ६॥

उन्होंने उस पुत्रकी जातकर्म आदि क्रियाएँ तथा चूडाकरण एवं उपनयन आदि संस्कार भी विधिपूर्वक सम्पन्न किये॥ ७॥

महात्मा ऋतवाक्के यहाँ जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी समयसे वे शोक तथा रोगसे ग्रस्त रहने लगे और क्रोध एवं लोभने उन्हें घेर लिया। उस बालककी माता भी अनेक रोगोंसे ग्रसित होकर नित्य शोकाकुल और अति दुःखी रहने लगीं॥ ८-९॥

मुनि ऋतवाक् अत्यन्त दुःखी और चिन्तित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्या कारण है कि मेरे यह अत्यन्त दुर्मति पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १०॥

[तरुणावस्थाको प्राप्त होनेपर] उसने किसी मुनिपुत्रकी पत्नीका बलपूर्वक हरण कर लिया। वह दुर्बुद्धि अपने माता-पिताकी शिक्षाओंपर कभी भी ध्यान नहीं देता था॥ ११॥

ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम्।
अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित् कुपुत्रता॥ १२

पितॄन् कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि।
यावज्जीवेत् सदा पित्रोः केवलं दुःखदायकः॥ १३

पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः।
सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम्॥ १४

धन्यास्ते मानवा लोके सुपुत्रो यद्गृहे स्थितः।
परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः॥ १५

कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः।
कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरययातनाः॥ १६

कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया।
कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः॥ १७

स्कन्द उवाच

एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः।
तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत॥ १८

ऋतवागुवाच

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत् प्रभो।
ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्य पुत्रदौःशील्यकारणम्॥ १९

गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया।
ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहो विधिवत् कृतः॥ २०

भार्यया सह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम्।
पञ्चयज्ञविधानं च मयाकारि यथाविधि॥ २१

नरकाद् बिभ्यता विप्र न तु कामसुखेच्छया।
गर्भाधानं च विधिवत् पुत्रप्राप्त्यै मया कृतम्॥ २२

तदनन्तर अत्यन्त दुःखित मनवाले ऋतवाक्‌ने यह कहा कि मनुष्योंके लिये पुत्रहीन रह जाना अच्छा है, किंतु कुपुत्रकी प्राप्ति कभी भी ठीक नहीं है॥ १२॥

कुपुत्र स्वर्गमें गये हुए पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है। वह जबतक जीवित रहता है, तबतक माता-पिताको केवल कष्ट ही देता रहता है॥ १३॥

अतएव माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले पापी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है। ऐसा पुत्र मित्रोंका न तो उपकार कर सकता है और न शत्रुओंका अपकार ही॥ १४॥

संसारमें वे मानव धन्य हैं, जिनके घरमें परोपकारपरायण तथा माता-पिताको सुख देनेवाला पुत्र हुआ करता है॥ १५॥

कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है, कुपुत्रसे यश नष्ट हो जाता है और कुपुत्रसे लौकिक तथा पारलौकिक—दोनों जगत्‌में दुःख तथा नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं॥ १६॥

कुपुत्रसे वंश नष्ट हो जाता है, दुष्ट पत्नीसे जीवन नष्ट हो जाता है, विकृत भोजनसे दिन व्यर्थ चला जाता है और दुरात्मा मित्रसे सुख कहाँसे मिल सकता है!॥ १७॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] अपने दुष्ट पुत्रके दुराचरणोंसे निरन्तर सन्तप्त रहते हुए मुनि ऋतवाक्‌ने किसी दिन गर्गऋषिके पास जाकर पूछा—॥ १८॥

ऋतवाक् बोले—हे भगवन्! हे ज्योतिषशास्त्रके आचार्य! मैं आपसे अपने पुत्रकी दुःशीलताका कारण पूछना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप उसे बतायें॥ १९॥

गुरुकी निरन्तर सेवा करते हुए मैंने विधिपूर्वक वेदाध्ययन किया और ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके विधि-विधानके साथ विवाह किया॥ २०॥

अपनी भार्याके साथ मैंने गृहस्थधर्मका सदैव यथोचित पालन किया और विधिपूर्वक पंचयज्ञका अनुष्ठान किया॥ २१॥

हे विप्र! नरकप्राप्तिके भयसे बचनेके लिये पुत्र प्राप्त करनेकी कामनासे मैंने विधिवत् गर्भाधान किया था न कि वासनात्मक सुखप्राप्तिकी इच्छासे॥ २२॥

पुत्रोऽयं मम दोषेण मातुर्दोषेण वा मुने।
जातो दुःखावहः पित्रोर्दुःशीलो बन्धुशोकदः॥ २३

एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा।
विचार्य सर्वं तद्धेतुं ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत्॥ २४

गर्ग उवाच

मुने नैवापराधस्ते न मातुर्न कुलस्य च।
रेवत्यन्तं तु गण्डान्तं पुत्रदौःशील्यकारणम्॥ २५

दुष्टे काले यतो जन्म पुत्रस्य तव भो मुने।
तेनैव तव दुःखाय नान्यो हेतुर्मनागपि॥ २६

तद्दुःखशान्तये ब्रह्मञ्जगतां मातरं शिवाम्।
समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ २७

गर्गस्य वचनं श्रुत्वा ऋतवाक् क्रोधमूर्च्छितः।
रेवतीं तु शशापासौ व्योम्नः पततु रेवती॥ २८

दत्ते शापे तु तेनाथ पूष्णो भञ्च पपात खात्।
कुमुदाद्रौ भासमानं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ २९

ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात् कुमुदाचलः।
अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृति सोऽप्यभूत्॥ ३०

दत्त्वा शापं च रेवत्यै गर्गोक्तविधिना मुनिः।
समाराध्याम्बिकां देवीं सुखसौभाग्यभागभूत्॥ ३१

स्कन्द उवाच

रेवत्यृक्षस्य यत् तेजस्तस्माज्जाता तु कन्यका।
रूपेणाप्रतिमा लोके द्वितीया श्रीरिवाभवत्॥ ३२

अथ तां प्रमुचः कन्यां रेवतीकान्तिसम्भवाम्।
दृष्ट्वा नाम चकारास्या रेवतीति मुदा मुनिः॥ ३३

हे मुने! दुःखदायी, माता-पिताके प्रति उद्दण्ड तथा बन्धु-बान्धवोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह पुत्र मेरे दोषसे अथवा अपनी माताके दोषसे उत्पन्न हुआ?॥ २३॥

तब ज्योतिषशास्त्रके ज्ञाता गर्गाचार्यने मुनि ऋतवाक्‌का यह वचन सुनकर सभी कारणोंपर सम्यक् रूपसे विचार करके कहा॥ २४॥

गर्गाचार्यजी बोले—हे मुने! इसमें न तो आपका दोष है, न बालककी माताका दोष है और न तो कुलका दोष है। रेवती नक्षत्रका अन्तिम भाग—गण्डान्तयोग ही इस बालककी दुर्विनीतताका कारण है॥ २५॥

हे मुने! अशुभ वेलामें आपके पुत्रका जन्म हुआ है, इसी कारण यह आपको दुःख दे रहा है; इसमें लेशमात्र भी अन्य कोई कारण नहीं है॥ २६॥

अतः हे ब्रह्मन्! इस दुःखके शमनके लिये आप प्रयत्नपूर्वक समस्त दुर्गतियोंका विनाश करनेवाली कल्याणी जगदम्बा दुर्गाकी आराधना कीजिये॥ २७॥

गर्गाचार्यजीका वचन सुनकर ऋतवाक्‌मुनि क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और उन्होंने रेवतीको शाप दे दिया कि वह आकाशसे नीचे गिर जाय॥ २८॥

ऋतवाक्‌के शाप देते ही चमकता हुआ रेवती नक्षत्र सभी लोगोंके देखते-देखते आकाशसे कुमुदपर्वतपर जा गिरा॥ २९॥

वह कुमुदपर्वत रेवतीके गिरनेके कारण रैवतक नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसी समयसे वह अत्यन्त रमणीक हो गया॥ ३०॥

रेवतीको शाप देकर मुनि ऋतवाक्‌ने महर्षि गर्गद्वारा बताये गये विधानके अनुसार देवी भगवतीकी सम्यक् आराधनाकर सुख और सौभाग्य प्राप्त किया॥ ३१॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] उस रेवती नक्षत्रके महान् तेजसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो अनुपम रूपवती होनेके कारण लोकमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

रेवती नक्षत्रकी कान्तिसे प्रादुर्भूत उस कन्याको देखकर मुनि प्रमुचने प्रसन्न होकर उसका 'रेवती'—यह नाम रख दिया॥ ३३॥

निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः।
ब्रह्मर्षिः प्रमुचो नाम कुमुदाद्रौ सुतामिव॥ ३४

अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम्।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत्॥ ३५

बहुधान्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतिम्।
ततोऽग्निशालां संविश्य मुनिस्तुष्टाव पावकम्॥ ३६

कन्यावरं तदाशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट्।
धर्मिष्ठो बलवान् वीरः प्रियवागपराजितः॥ ३७

दुर्दमो भविता भर्ता मुनेऽस्याः पृथिवीपतिः।
इति श्रुत्वा वचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा॥ ३८

दैवादाखेटकव्याजात् तत्क्षणादागतो नृपः।
दुर्दमो नाम मेधावी तस्याश्रमपदं मुनेः॥ ३९

पुत्रो विक्रमशीलस्य बलवान् वीर्यवत्तरः।
कालिन्दीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः॥ ४०

मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम्।
आमन्त्र्य तां प्रिये चेति रेवतीं पृष्टवान् नृपः॥ ४१

राजोवाच

महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात् क्व गतः प्रिये।
तत्पादौ द्रष्टुमिच्छामि वद कल्याणि तत्त्वतः॥ ४२

कन्योवाच

अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः।
निश्चक्रामाश्रमात् तूर्णं राजाप्याकर्ण्य तद्वचः॥ ४३

अथाग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः।
राजलक्षणसंयुक्तमपश्यत् प्रश्रयानतम्॥ ४४

प्रणनाम च तं राजा मुनिः शिष्यमुवाच ह।
गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्ति भूपतिः॥ ४५

तदनन्तर ब्रह्मर्षि प्रमुच उसे कुमुदाचलपर स्थित अपने आश्रममें ले आये और पुत्रीकी भाँति उसका धर्मपूर्वक पालन-पोषण करने लगे॥ ३४॥

समय पाकर यौवनको प्राप्त उस रूपवती कन्याको देखकर मुनिने विचार किया कि इस कन्याके योग्य वर कौन होगा?॥ ३५॥

बहुत अन्वेषणके बाद भी जब मुनिको उसके योग्य कोई वर नहीं मिला, तब वे अग्निशालामें प्रवेश करके अग्निदेवकी स्तुति करने लगे॥ ३६॥

प्रमुचऋषिके स्तुति-गानसे प्रसन्न होकर अग्निदेवने कन्याके योग्य वरका संकेत करते हुए कहा—हे मुने! इस कन्याके पति धर्मपरायण, बलशाली, वीर, प्रिय भाषण करनेवाले और अपराजेय राजा दुर्दम होंगे। तब अग्निदेवके इस वचनको सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३७-३८॥

संयोगसे उसी समय आखेटके बहाने दुर्दम नामक प्रतिभाशाली राजा मुनि प्रमुचके आश्रममें आ गये॥ ३९॥

बलवान् तथा अप्रतिम ओजसे सम्पन्न वे प्रियव्रतके वंशज राजा दुर्दम विक्रमशीलके पुत्र थे और कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे॥ ४०॥

मुनिके आश्रममें प्रवेशकर और उन्हें वहाँ न देखकर राजा दुर्दमने रेवतीको 'प्रिये'—इस शब्दसे सम्बोधित करके पूछा॥ ४१॥

राजा बोले—हे प्रिये! महर्षि भगवान् प्रमुच इस आश्रमसे कहाँ गये हुए हैं? हे कल्याणि! मुझे सच-सच बताओ; मैं उनके चरणोंका दर्शन करना चाहता हूँ॥ ४२॥

कन्या बोली—हे महाराज! महामुनि अग्निशालामें गये हुए हैं। राजा भी यह वचन सुनकर शीघ्रतापूर्वक आश्रमसे बाहर निकल आये॥ ४३॥

इसके बाद प्रमुचमुनिने राजलक्षणसम्पन्न एवं विनयावनत राजा दुर्दमको अग्निशालाके द्वारपर स्थित देखा॥ ४४॥

मुनिको देखकर राजाने प्रणाम किया और तदनन्तर मुनि प्रमुचने शिष्यसे कहा—हे गौतम! ये राजा अर्घ्य पानेके योग्य हैं, अतः शीघ्र ही इनके लिये

आगतश्चिरकालेन जामातेति विशेषतः।
इत्युक्त्वार्घ्यं ददौ तस्मै सोऽपि जग्राह चिन्तयन्॥ ४६

मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम्।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ कुशलं चाप्यपृच्छत॥ ४७

अपि तेऽनामयं राजन् बले कोशे सुहृत्सु च।
भृत्येऽमात्ये पुरे देशे तथात्मनि जनाधिप॥ ४८

भार्यास्ति ते कुशलिनी यतः सात्रैव तिष्ठति।
अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चान्यासां कुशलं वद॥ ४९

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम।
एतत् कुतूहलं ब्रह्मन् मद्भार्या कात्र विद्यते॥ ५०

ऋषिरुवाच

रेवती नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तां न वेत्सि महीपते॥ ५१

राजोवाच

सुभद्राद्यास्तु या भार्या मम सन्ति गृहे विभो।
जानामि तास्तु भगवन् नैव जानामि रेवतीम्॥ ५२

ऋषिरुवाच

प्रियेति साम्प्रतं राजंस्त्वयोक्ता या महामते।
सा विस्मृता क्षणादेव या ते श्लाघ्यतमा प्रिया॥ ५३

राजोवाच

त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामन्त्रिता मया।
मुने दुष्टो न मे भावः कोपं मा कर्तुमर्हसि॥ ५४

ऋषिरुवाच

राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव।
वह्निना प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतं वचः॥ ५५

अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति।
तेनोक्तं दुर्दमो राजा भवितास्याः पतिर्ध्रुवम्॥ ५६

अर्घ्य ले आओ। बहुत दिन बाद ये पधारे हुए हैं और विशेषरूपसे ये हमारे जामाता हैं—ऐसा कहकर मुनिने राजाको अर्घ्य प्रदान किया और राजाने भी विचार करते हुए उसे ग्रहण किया॥ ४५-४६॥

तत्पश्चात् राजाके अर्घ्य ग्रहण करके आसनपर बैठ जानेके उपरान्त मुनि प्रमुचने उन्हें आशीर्वचनोंसे अभिनन्दित करके उनका कुशल-क्षेम पूछा—हे राजन्! आप स्वस्थ तो हैं? आपकी सेना, कोष, बन्धु-बान्धव, सेवकगण, सचिव, नगर, देश आदिकी सर्वविध कुशलता तो है? हे नरेश! आपकी भार्या तो यहीं विद्यमान है और वह सकुशल है। अतएव, मैं उसकी कुशलता नहीं पूछूँगा, आप अपनी अन्य स्त्रियोंका कुशल-क्षेम बताइये॥ ४७-४९॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपके कृपाप्रभावसे मेरी सर्वविध कुशलता है। हे ब्रह्मन्! अब मेरी यह जिज्ञासा है कि मेरी कौन-सी भार्या यहाँ है?॥ ५०॥

ऋषि बोले—हे पृथ्वीपते! संसारमें अप्रतिम लावण्यसे सम्पन्न रेवती नामक आपकी पत्नी यहाँ ही रहती है। क्या आप उसे नहीं जानते?॥ ५१॥

राजा बोले—हे प्रभो! सुभद्रा आदि मेरी पत्नियाँ तो घरपर ही हैं। हे भगवन्! मैं तो केवल उन्हें ही जानता हूँ। मैं रेवतीको तो नहीं जानता॥ ५२॥

ऋषि बोले—हे महामते! हे राजन्! इसी समय 'प्रिये' के सम्बोधनसे आपने जिससे पूछा था, अपनी उस योग्यतम प्रियाको आपने क्षणभरमें ही भुला दिया!॥ ५३॥

राजा बोले—हे मुने! आपने जो कहा, वह असत्य नहीं है; किंतु मैंने तो सामान्यरूपसे ऐसा कह दिया था। इसमें मेरा कोई दूषित भाव नहीं था, अतः आप मेरे ऊपर क्रोध न करें॥ ५४॥

ऋषि बोले—हे राजन्! आपका भाव दूषित नहीं था अपितु आपने सत्य ही कहा था। अग्निदेवके द्वारा प्रेरित किये जानेपर ही आपने ऐसा कहा था॥ ५५॥

'इसका पति कौन होगा'—ऐसा मेरे द्वारा आज अग्निदेवसे पूछे जानेपर उन्होंने कहा था कि इसके पति निश्चितरूपसे राजा दुर्दम ही होंगे॥ ५६॥

तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते।
प्रियेत्यामन्त्रिता पूर्वं मा विचारं कुरुष्व भोः॥ ५७

श्रुत्वैतत् सोऽभवत् तूष्णीं चिन्तयन् मुनिभाषितम्।
वैवाहिकं विधिं तस्य मुनिः कर्तुं समुद्यतः॥ ५८

अथोद्यतं विवाहाय दृष्ट्वा कन्याब्रवीन्मुनिम्।
रेवत्यृक्षे विवाहो मे तात कर्तुं त्वमर्हसि॥ ५९

ऋषिरुवाच

वत्से विवाहयोग्यानि सन्त्यन्यर्क्षाणि भूरिशः।
रेवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम्॥ ६०

कन्योवाच

रेवत्यृक्षं विना कालो ममोद्वाहोचितो न हि।
अतः संप्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभे कुरु॥ ६१

ऋषिरुवाच

ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रेवतीभं निपातितम्।
भान्तरे चेन्न ते प्रीतिर्विवाहः स्यात् कथं तव॥ ६२

कन्योवाच

तपः किं तप्तवानेक ऋतवागेव केवलम्।
भवता किं तपो नेदृक् तप्तं वाक्कायमानसैः॥ ६३

जगत्स्रष्टुं समर्थस्त्वं वेद्म्यहं ते तपोबलम्।
रेवत्यृक्षं दिवि स्थाप्य ममोद्वाहं पितः कुरु॥ ६४

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथैव त्वं ब्रवीषि माम्।
त्वत्कृते सोममार्गेऽहं स्थापयाम्यद्य पौष्णभम्॥ ६५

स्कन्द उवाच

एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात्।
यथापूर्वं तथा चक्रे सोममार्गे घटोद्भव॥ ६६

हे महीपते! अतः मेरे द्वारा प्रदत्त इस कन्याको आप स्वीकार कीजिये। आप इसे 'प्रिये' ऐसा सम्बोधित भी कर चुके हैं। अतएव अब शंकारहित होकर किसी अन्य विचारमें न पड़ें॥ ५७॥

मुनिका यह वचन सुनकर राजा दुर्दम चिन्तन करते हुए चुप हो गये और मुनि उनके वैवाहिक अनुष्ठानकी तैयारीमें जुट गये॥ ५८॥

इसके बाद विवाह-कार्यके लिये मुनिको तत्पर देखकर रेवतीने कहा—हे तात! आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही सम्पन्न करायें॥ ५९॥

ऋषि बोले—वत्से! विवाहके योग्य अन्य बहुत-से नक्षत्र हैं। रेवती नक्षत्रमें विवाह कैसे होगा; क्योंकि रेवती तो आकाशमें स्थित है ही नहीं॥ ६०॥

कन्या बोली—रेवती नक्षत्रके अतिरिक्त अन्य कोई भी नक्षत्र मेरे विवाहके लिये उचित नहीं है। अतः मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही करें॥ ६१॥

ऋषि बोले—पूर्वकालमें मुनि ऋतवाक्ने रेवती नक्षत्रको पृथ्वीपर गिरा दिया था। इस प्रकार अन्य नक्षत्रमें यदि तुम्हारी श्रद्धा नहीं है, तब तुम्हारा विवाह कैसे होगा?॥ ६२॥

कन्या बोली—तात! क्या केवल एक ऋतवाक्ने ही तपश्चर्या की है? क्या आपने मन-वचन-कर्मसे ऐसी तप:साधना नहीं की है?॥ ६३॥

हे पिताजी! मैं आपके तपोबलको जानती हूँ; आप जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। अतः आप अपने तपके प्रभावसे रेवतीको पुनः आकाशमें स्थापित करके उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह कीजिये॥ ६४॥

ऋषि बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम जैसा मुझसे कह रही हो, वैसा ही होगा, तुम्हारे हितार्थ मैं आज ही रेवती नक्षत्रको सोममार्ग (नक्षत्र-मण्डल)-में स्थापित करूँगा॥ ६५॥

कार्तिकेयजी बोले—हे अगस्त्यजी! ऐसा कहकर मुनिने अपने तपोबलसे शीघ्र ही पूर्वकी भाँति रेवती नक्षत्रको फिरसे नक्षत्र-मण्डलमें स्थापित कर दिया॥ ६६॥

रेवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः।
रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने॥ ६७

कृत्वा विवाहं कन्याया मुनी राजानमब्रवीत्।
किं तेऽभिलषितं वीर वद तत्पूरयाम्यहम्॥ ६८

राजोवाच

मनोः स्वायम्भुवस्याहं वंशे जातोऽस्मि हे मुने।
मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाच्च कामये॥ ६९

मुनिरुवाच

यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनं कुरु।
भविष्यत्येव ते पुत्रो मनुर्मन्वन्तराधिपः॥ ७०

देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पञ्चमम्।
पञ्चकृत्वस्तु तच्छ्रुत्वा लप्स्यसेऽभिमतं सुतम्॥ ७१

रेवत्यां रैवतो नाम पञ्चमो भविता मनुः।
वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः॥ ७२

इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम्।
भार्यया सह मेधावी जगाम नगरं निजम्॥ ७३

पितृपैतामहं राज्यं चकार स महामतिः।
पालयामास धर्मात्मा प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥ ७४

एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः।
प्रणिपत्य तमभ्यर्च्य प्राञ्जलिश्चाब्रवीन्नृपः॥ ७५

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने।
देवीभागवतं नाम पुराणं पुत्रलिप्सया॥ ७६

श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः।
धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्यमातरि॥ ७७

सुरासुरनराराध्या या परा जगदम्बिका।
तस्यां चेद्भक्तिरुत्पन्ना कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥ ७८

तदनन्तर मुनि प्रमुचने रेवती नक्षत्रमें वैवाहिक विधिके अनुसार महात्मा राजा दुर्दमको वह रेवती कन्या सौंप दी॥ ६७॥

इस प्रकार कन्याका विवाह कर देनेके उपरान्त मुनिने राजासे कहा—हे वीर! तुम्हारी क्या अभिलाषा है? मुझे बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा॥ ६८॥

राजा बोले—हे मुने! मैं स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, अतः मैं यही कामना करता हूँ कि आपकी कृपासे मुझे मन्वन्तराधिपति पुत्रकी प्राप्ति हो॥ ६९॥

मुनि बोले—यदि आपकी यह अभिलाषा है तो आप देवी भगवतीकी आराधना कीजिये। ऐसा करनेपर आपका पुत्र मनु अवश्य ही मन्वन्तराधिपति होगा॥ ७०॥

श्रीमद्देवीभागवत जो पंचम पुराणके रूपमें विख्यात है, उसका पाँच बार श्रवण करनेके उपरान्त आपको मनोवांछित पुत्र प्राप्त होगा॥ ७१॥

रेवतीके गर्भसे उत्पन्न रैवत नामवाला पाँचवाँ मनु वेदवेत्ता, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाला, धर्मपरायण तथा अपराजेय होगा॥ ७२॥

मुनि प्रमुचके इस प्रकार कहनेपर प्रसन्न होकर प्रतिभासम्पन्न राजा दुर्दमने मुनिको प्रणाम किया और वे भार्या रेवतीके साथ अपने नगर चले गये॥ ७३॥

महामति राजा दुर्दमने अपने पिता-पितामहसे प्राप्त राज्यपर शासन किया और उस धर्मात्माने औरस पुत्रोंकी भाँति अपनी प्रजाओंका पालन किया॥ ७४॥

एक बार उनके यहाँ महात्मा लोमशऋषि पधारे। राजा दुर्दमने उन्हें प्रणाम किया और उनका विधिवत् पूजनकर दोनों हाथ जोड़कर कहा॥ ७५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे मुने! यदि आप कृपा करें तो मैं पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे आपसे देवीभागवत नामक पुराण सुनना चाहता हूँ॥ ७६॥

राजाका यह वचन सुनकर लोमशमुनि प्रसन्न हो गये और बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं; क्योंकि तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीमें आपकी ऐसी भक्ति हो गयी है। देव, दानव तथा मानवकी आराध्या परा भगवती जगदम्बामें यदि आपकी भक्ति उत्पन्न हुई है तो आपकी कार्य-सिद्धि अवश्य होगी॥ ७७-७८॥

अतस्त्वां श्रावयिष्यामि श्रीमद्भागवतं नृप।
यस्य श्रवणमात्रेण न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ ७९

इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन् कथारम्भमथाकरोत्।
पञ्चकृत्वः स शुश्राव विधिवद्भार्यया सह॥ ८०

समाप्तिदिवसे राजा पुराणञ्च मुनिं तथा।
पूजयामास धर्मात्मा मुदा परमया युतः॥ ८१

हुत्वा नवार्णमन्त्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः।
वाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत्॥ ८२

अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः।
गर्भं दधार सा राज्ञी लोककल्याणकारकम्॥ ८३

पुण्येऽथ समये प्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसङ्गतैः।
सर्वमङ्गलसम्पन्ने रेवती सुषुवे सुतम्॥ ८४

श्रुत्वा पुत्रस्य जननं स्नात्वा राजा मुदान्वितः।
स सुवर्णाम्भसा चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः॥ ८५

यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत्।
कृतोपनयनं राजा साङ्गान्वेदानपाठयत्॥ ८६

सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः।
धर्मस्य वक्ता कर्ता च रैवतो नाम वीर्यवान्॥ ८७

नियुक्तवानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे।
मन्वन्तराधिपः श्रीमान् गां शशास स धर्मतः॥ ८८

इत्थं देव्याः प्रभावोऽयं संक्षेपेणोपवर्णितः।
पुराणस्य च माहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः॥ ८९

अतएव हे राजन्! मैं आपको श्रीमद्देवीभागवत सुनाऊँगा, जिसके सुननेमात्रसे कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रह जाता॥ ७९॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर मुनिने किसी शुभ दिनमें कथाका आरम्भ किया। अपनी पत्नीके साथ राजाने पाँच बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विधिवत् श्रवण किया॥ ८०॥

कथा-समाप्तिके दिन धर्मनिष्ठ राजा दुर्दमने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतपुराण तथा लोमशमुनिकी पूजा की॥ ८१॥

राजाने नवार्णमन्त्रसे हवन करके कुमारी कन्याओंको भोजन कराया और सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रभूत दक्षिणादानद्वारा संतुष्ट किया॥ ८२॥

कुछ समय बीत जानेपर भगवतीकी कृपासे उस रानी रेवतीने लोककल्याणकारी गर्भ धारण किया॥ ८३॥

इसके बाद जब समस्त ग्रह-नक्षत्र अपने-अपने अनुकूल स्थानोंपर थे और सभी मांगलिक कृत्य सम्पन्न हो गये थे—ऐसे शुभ समयमें रेवतीने पुत्रको जन्म दिया॥ ८४॥

पुत्रके जन्मका समाचार सुनकर राजा दुर्दम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने स्नान करके स्वर्ण-कलशके जलसे पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया॥ ८५॥

तदनन्तर राजाने विधिपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया। समयपर पुत्रका उपनयन-संस्कार करके राजाने अपने पुत्रको अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन कराया॥ ८६॥

इस प्रकार राजाका वह रैवत नामक तेजस्वी पुत्र समग्र विद्याओंका निधान, धर्मपरायण, अस्त्र-विशारदोंमें श्रेष्ठ, धर्मका वक्ता तथा धर्मका पालनकर्ता हो गया॥ ८७॥

इसके बाद ब्रह्माजीने रैवतको मनुके पदपर नियुक्त किया और वे श्रीमान् मन्वन्तराधिपके रूपमें धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन करने लगे॥ ८८॥

इस प्रकार मैंने देवी भगवतीके इस प्रभावका संक्षिप्तरूपसे वर्णन कर दिया। इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है?॥ ८९॥

सूत उवाच

कुम्भयोनिस्तु माहात्म्यं विधिं भागवतस्य च।
श्रुत्वा कुमारं चाभ्यर्च्य स्वाश्रमं पुनराययौ॥ ९०

इदं मया भागवतस्य विप्रा
माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम्।
शृणोति भक्त्या पठतीह भोगान्
भुक्त्वाखिलान्मुक्तिमुपैति चान्ते॥ ९१

सूतजी बोले—[हे ब्राह्मणो!] इस प्रकार श्रीमद्देवीभागवतका माहात्म्य तथा उसकी विधि सुनकर और कुमार कार्तिकेयकी पूजाकर अगस्त्यजी अपने आश्रम चले आये॥ ९०॥

हे विप्रो! मैंने आपलोगोंके समक्ष श्रीमद्देवीभागवतका यह माहात्म्य कह दिया। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण तथा पाठ करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका सुख प्राप्त करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ ९१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये रैवतनामकमनुपुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम, श्रवणके फल तथा माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामः पुराणश्रवणे विधिम्॥ १

सूत उवाच

श्रूयतां मुनयः सर्वे पुराणश्रवणे विधिम्।
नराणां शृण्वतां येन सिद्धिः स्यात्सार्वकामिकी॥ २

आदौ दैवज्ञमाहूय मुहूर्तं कल्पयेत्सुधीः।
आरभ्य शुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम्॥ ३

हस्ताश्विमूलपुष्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे।
सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम्॥ ४

गुरुभाद्द्वेदवेदाब्जशराङ्गाब्धिगुणैः क्रमात्।
धर्माप्तिरिन्दिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम्॥ ५

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! हमलोगोंने श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य सुन लिया और अब इस पुराणके श्रवणकी विधि सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग इस पुराणके श्रवणका विधान सुनें, जिसे सुननेवाले मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं॥ २॥

पुराणश्रवणके इच्छुक विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि वह सर्वप्रथम ज्योतिषीको बुलाकर शुभ मुहूर्त निर्धारित कर ले। इसके लिये ज्येष्ठमाससे लेकर छः महीने शुभकारक होते हैं॥ ३॥

हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र, पुण्य तिथि तथा शुभ दिनमें श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कल्याणकारी होता है॥ ४॥

जिस नक्षत्रमें बृहस्पति हों, उससे चन्द्रमातक गिननेपर क्रमशः इस प्रकार फल होते हैं—चार नक्षत्रतक धर्म-प्राप्ति, पुनः चारतक लक्ष्मीकी प्राप्ति, इसके बाद एक नक्षत्र कथामें सिद्धि प्रदान करनेवाला, फिर पाँच नक्षत्र परम सुखकी प्राप्ति करानेवाले, बादमें छः नक्षत्र पीड़ा करनेवाले, इसके

पीडाथ भूपतिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम्।
पुराणश्रवणे चक्रं शोधयेच्छिवभाषितम्॥ ६

अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये।
शृणुयादन्यमासेऽपि तिथिवारर्क्षशोधिते॥ ७

सम्भारं तादृशं कार्यं विवाहादौ च यादृशम्।
नवाहयज्ञे चाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतो बुधैः॥ ८

सहाया बहवः कार्या दम्भलोभविवर्जिताः।
चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः॥ ९

प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशे देशे जने जने।
आगन्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति॥ १०

सौराश्च गाणपत्याश्च शैवाः शाक्ताश्च वैष्णवाः।
सर्वेषामपि सेव्येयं यतो देवाः सशक्तयः॥ ११

श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः।
आगन्तव्यं विशेषेण कथार्थं प्रेमतत्परैः॥ १२

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा।
सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यं तैः कथामृतम्॥ १३

बाद चार नक्षत्र राज-भय उत्पन्न करनेवाले और तत्पश्चात् तीन नक्षत्र ज्ञान-प्राप्तिमें सहायक होते हैं। पुराणश्रवणके आरम्भमें शिवोक्त चक्रका शोधन कर लेना चाहिये॥ ५-६॥

देवीकी प्रसन्नताके लिये इसे चारों नवरात्रोंमें* सुनना चाहिये अथवा तिथि, वार और नक्षत्रपर सम्यक् विचार करके यह पुराण अन्य मासोंमें भी सुना जा सकता है॥ ७॥

विवाह आदिमें जिस प्रकार [उत्साहपूर्वक] तैयारी की जाती है, उसी प्रकार नवाह-यज्ञके अवसरपर भी बुद्धिमान् मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक सामग्री आदिकी तैयारी करनी चाहिये॥ ८॥

पाखण्ड तथा लोभसे रहित, चतुर, उदार एवं देवीभक्त सज्जनोंको भी सहायकके रूपमें लेना चाहिये॥ ९॥

देश-देशमें भी यत्नपूर्वक यह सन्देश भेजना चाहिये—[हे कथानुरागी सज्जनो!] यहाँ श्रीमद्देवीभागवतकी कथा होने जा रही है, आप अवश्य पधारें॥ १०॥

चाहे सूर्यकी उपासना करनेवाले हों, चाहे गणेशभक्त हों, चाहे शैव हों, चाहे वैष्णव अथवा शक्तिके उपासक हों, सभी इस कथाके श्रवणके अधिकारी हैं; क्योंकि सभी देवता शक्तिके साथ ही रहते हैं॥ ११॥

इसलिये श्रीमद्देवीभागवतकी कथारूपी सुधाके रसिक प्रेमीजनोंको कथाश्रवणके लिये विशेषरूपसे आना चाहिये॥ १२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णके स्त्री, पुरुष एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास—इन चारों आश्रमोंमें निरत मनुष्योंको चाहे सकामभावसे अथवा निष्कामभावसे—अवश्य ही इस कथा-सुधाका पान करना चाहिये॥ १३॥

---

* सामान्यतः नवरात्र चार हैं—१-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक, २-आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक (इसी नवरात्रके बाद हरिशयनी एकादशी), ३-आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे विजयादशमीतक (इसके बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थानी—प्रबोधिनी एकादशी) तथा ४-माघ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक सारस्वत-नवरात्र।

नावकाशः कदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपि तैः।
आगन्तव्यं यथाकालं यज्ञे पुण्या क्षणस्थितिः॥ १४

विनयेनैव कर्तव्यमेवमाकारणं नृणाम्।
आगतानाञ्च कर्तव्यं वासस्थानं यथोचितम्॥ १५

कथास्थानं प्रकर्तव्यं भूमौ मार्जनपूर्वकम्।
लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम्॥ १६

कार्यस्तु मण्डपो रम्यो रम्भास्तम्भोपशोभितः।
वितानमुपरिष्ठात्तु पताकाध्वजराजितः॥ १७

वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम्।
रचितव्यं प्रयत्नेन प्राङ्मुखं वाप्युदङ्मुखम्॥ १८

यथोचितानि कुर्वीत श्रोतॄणामासनानि च।
नृणां चैवाथ नारीणां कथाश्रवणहेतवे॥ १९

वाग्मी दान्तश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः।
दयालुर्निस्पृहो दक्षो धीरो वक्तोत्तमो मतः॥ २०

ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारसपरायणः।
उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोता हिंसादिवर्जितः॥ २१

पाखण्डनिरतो लुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा।
निष्ठुरः क्रोधनो वक्ता देवीयज्ञे न शस्यते॥ २२

संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः।
श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्यो वक्तुः सहायकृत्॥ २३

मुहूर्तदिवसादर्वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः।
कर्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो नियमकल्पनम्॥ २४

जिन लोगोंको पूरे नौ दिनतक कथा सुननेका अवकाश न मिल सके, वे जब भी समय मिले तभी आ जायँ; क्योंकि यज्ञमें क्षणभर भी पहुँच जाना विशेष पुण्यदायक होता है॥ १४॥

बड़ी नम्रताके साथ मनुष्योंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए श्रोताओंके बैठनेका भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिये॥ १५॥

विस्तृत भूमिमें कथा-प्रवचनका सुन्दर स्थान बनाना चाहिये। उस स्थानकी सफाई कराकर गोबरसे लिपवा देना चाहिये। केलेके स्तम्भोंसे सुशोभित और ध्वज-पताकाओंसे अलंकृत एक सुरम्य मण्डपका निर्माण करना चाहिये और उसके ऊपर सुन्दर चाँदनी लगा देनी चाहिये॥ १६-१७॥

कथावाचकका आसन दिव्य तथा सुखकर आस्तरणसे युक्त होना चाहिये। उसे प्रयत्नपूर्वक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखना चाहिये॥ १८॥

कथाश्रवणके लिये आनेवाले पुरुष तथा स्त्री श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य पृथक्-पृथक् आसनोंकी व्यवस्था करनी चाहिये॥ १९॥

वक्तृत्वसम्पन्न, संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें तत्पर, दयालु, लोभहीन, दक्ष तथा धैर्यशाली कथावाचक उत्तम माना गया है॥ २०॥

इसी प्रकार श्रोता भी ऐसा होना चाहिये जो ब्राह्मणसेवी, देवभक्त, कथा-रसका पान करनेवाला, उदार, लोभरहित, विनम्र और हिंसा आदिसे रहित हो॥ २१॥

पाखण्डी, लोभी, स्त्रीस्वभाव, कामी, धर्मका दिखावामात्र करनेवाला, निष्ठुर तथा क्रोधी वक्ता देवीभागवतके नवाहयज्ञमें श्रेष्ठ नहीं माना जाता है॥ २२॥

श्रोताओंकी शंकाओंके निवारणहेतु कथावाचकके साथ एक ऐसा सहायक भी लगा देना चाहिये, जो पण्डित, गुणवान्, शान्त तथा श्रोताओंको समझानेमें कुशल हो॥ २३॥

कथा प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही वक्ता एवं श्रोतागणोंको क्षौरकर्म करा लेना चाहिये। तत्पश्चात् अन्यान्य नियमोंका पालन करना चाहिये॥ २४॥

अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचं विधाय च।
सन्ध्यातर्पणकार्यञ्च नित्यं संक्षेपतश्चरेत्॥ २५

कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्च दापयेत्।
समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत्॥ २६

कलशांश्चापि संस्थाप्य पूजयेत्तत्र दिग्भवान्।
वटुकं क्षेत्रपालञ्च योगिनीर्मातृकास्तथा॥ २७

तुलसीञ्चापि सम्पूज्य ग्रहान्विष्णुञ्च शङ्करम्।
नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम्॥ २८

सर्वोपचारैः सम्पूज्य श्रीभागवतपुस्तकम्।
श्रीदेव्या वाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोभनाक्षरम्॥ २९

कथाविघ्नोपशान्त्यर्थं वृणुयात्पञ्च वाडवान्।
जाप्यो नवार्णमन्त्रस्तैः पाठ्यः सप्तशतीस्तवः॥ ३०

प्रदक्षिणनमस्कारान्कृत्वान्ते स्तुतिमाचरेत्।
कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि॥ ३१

संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके॥ ३२

मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते।
इति सम्प्रार्थ्य शृणुयात्कथां नियतमानसः॥ ३३

वक्तारञ्चापि सम्पूज्य व्यासबुध्या यतात्मवान्।
माल्यालङ्कारवस्त्राद्यैः सम्भूष्य प्रार्थयेच्च तम्॥ ३४

सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ व्यासरूप नमोऽस्तु ते।
कथाचन्द्रोदयेनान्तस्तमःस्तोमं निराकुरु॥ ३५

तदग्रे तु नवाहान्तं कर्तव्या नियमास्तदा।
विप्रादीनुपवेश्यादौ सम्पूज्योपविशेत्स्वयम्॥ ३६

उस दिन शौचादिसे निवृत्त हो अरुणोदयवेलामें ही स्नान कर लेना चाहिये। सन्ध्या तथा तर्पण आदि नित्यकर्म संक्षेपमें ही करना चाहिये॥ २५॥

तत्पश्चात् कथाश्रवणका अधिकारी बननेके लिये गोदान करे और सब विघ्नोंको दूर करनेवाले श्रीगणेशजीका सर्वप्रथम पूजन करे। कलश-स्थापन करके वहाँ दस दिक्पालों, बटुक, क्षेत्रपाल, सभी योगिनियों और मातृकाओंका भी पूजन करे। तुलसी, नवग्रह, विष्णु तथा शिवजीका पूजन करके नवाक्षरमन्त्रसे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २६—२८॥

तत्पश्चात् सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई भगवतीकी वाङ्मयी मूर्तिस्वरूप श्रीमद्देवीभागवत-पुस्तककी सभी उपचारोंसे विधिवत् पूजा करके कथाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पाँच विद्वान् ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये। उनसे निरन्तर नवार्णमन्त्रका जप एवं दुर्गासप्तशतीका पाठ कराना चाहिये॥ २९-३०॥

अन्तमें प्रदक्षिणा तथा नमस्कारके बाद इस प्रकार स्तुति करे—'हे कात्यायनि! हे महामाये! हे भुवनेश्वरि! हे कृपामये! हे भवानि! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ; मेरा उद्धार कीजिये तथा हे ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे पूजनीया माता जगदम्बिके! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देवि! आप मुझे मनोवांछित वर प्रदान कीजिये; आपको बार-बार प्रणाम है। इस प्रकार प्रार्थना करके स्वस्थचित्त होकर कथा सुने॥ ३१—३३॥

उस समय संयतचित्त होकर वक्ताको साक्षात् व्यास समझकर विधिवत् उनकी पूजा करे और वस्त्राभूषण तथा माला आदि पहनाकर उनसे प्रार्थना करे—'समस्त शास्त्र तथा पुराणेतिहासके ज्ञाता हे व्यासजी! आपको नमस्कार है। आप कथारूपी चन्द्रमाकी ज्योतिसे हमारे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट कीजिये'॥ ३४-३५॥

इसके बाद नवाहके नियमोंका व्रत ले और ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन करके उन्हें पहले यथास्थान बैठा दे, तत्पश्चात् स्वयं भी अपने आसनपर बैठ जाय॥ ३६॥

D

श्रोतव्यं सावधानेन चतुर्वर्गफलाप्तये।
गृहपुत्रकलत्राप्तधनचिन्तामपास्य च॥ ३७

सूर्योदयं समारभ्य किञ्चित्सूर्येऽवशेषिते।
मुहूर्तमात्रं विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः॥ ३८

मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते।
हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना॥ ३९

अथवा स्यात्फलाहारी पयोभुग्वा घृताशनः।
यथा स्यान्न कथाविघ्नस्तथा कार्यं विचक्षणैः॥ ४०

कथाश्रवणनिष्ठानां वक्ष्यामि नियमं द्विजाः।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः॥ ४१

देवीभक्तिविहीना ये पाखण्डा हिंसकाः खलाः।
विप्रद्रुहो नास्तिका ये न ते योग्याः कथाश्रवे॥ ४२

ब्रह्मस्वहरणे लुब्धाः परदारधनेषु च।
देवस्वहरणे तेषां नाधिकारः कथाश्रवे॥ ४३

ब्रह्मचारी च भूशायी सत्यवक्ता जितेन्द्रियः।
कथासमाप्तौ भुञ्जीत पत्रावल्यां यतात्मवान्॥ ४४

वृन्ताकञ्च कलिन्दञ्च तैलञ्च द्विदलं मधु।
दग्धमन्नं पर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद् व्रती॥ ४५

आमिषञ्च मसूरान्नमुदक्यादृष्टमेव च।
रसोनं मूलकं हिङ्गुं पलाण्डुं गृञ्जनं तथा॥ ४६

कूष्माण्डं नलिकाशाकं न भुञ्जीत कथाव्रती।
कामं क्रोधं मदं लोभं दम्भं मानञ्च वर्जयेत्॥ ४७

विप्रध्रुक्पतितव्रात्यश्वपाकयवनान्त्यजैः।
उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती॥ ४८

तब सावधान मनसे चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-फलको प्राप्त करनेके लिये पुत्र-कलत्र, धन-धान्य तथा गृहकी चिन्ता छोड़कर कथा सुने॥ ३७॥

विद्वान् वक्ताको चाहिये कि वह सूर्योदयसे आरम्भ करके पुनः दोपहरमें दो घड़ी विश्राम करके सूर्यास्तके कुछ समय पहलेतक कथा-वाचन करे॥ ३८॥

मल-मूत्रके वेगको रोकनेके लिये स्वल्पाहार उत्तम होता है। कथार्थीको दिन-रातमें केवल एक बार हविष्यान्नका भोजन करना ही ठीक है; अथवा फलाहार करे या केवल दूध-घीके आहारपर ही रहे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि ऐसा आहार ग्रहण करे, जिससे कथामें किसी प्रकारकी बाधा न हो॥ ३९-४०॥

हे द्विजगण! अब मैं कथाश्रवणमें निष्ठा रखनेवालोंके नियम बताता हूँ। जो लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, देवीकी भक्तिसे रहित हैं, जो पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं और जो ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले तथा नास्तिक हैं, वे कथाश्रवणके योग्य नहीं हैं॥ ४१-४२॥

जो परस्त्री, पराया धन, ब्राह्मणधन तथा देव-सम्पत्तिके हरणमें लुब्ध रहते हैं, उनका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है॥ ४३॥

श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा कथाकी समाप्तिपर संयमपूर्वक पत्तलपर भोजन करे॥ ४४॥

व्रतीको बैगन, बहेड़ा (कलिन्द), तेल, दाल, मधु और जला हुआ, बासी तथा भावदूषित अन्नका त्याग कर देना चाहिये॥ ४५॥

कथा सुननेवाला व्रती मांस, मसूर, रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ खाद्यान्न, लहसुन, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कोहड़ा और करमीका साग न खाये। काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड और अहंकारको छोड़ दे॥ ४६-४७॥

विप्रद्रोही, पतित, संस्कारहीन, चाण्डाल, यवन, अन्त्यज, रजस्वला स्त्री और वेदविहीन मनुष्योंसे कथाव्रतीको वार्तालाप नहीं करना चाहिये॥ ४८॥

वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा।
देवानां देवभक्तानां न निन्दां शृणुयादपि॥ ४९

विनयं चार्जवं शौचं दयां च मितभाषणम्।
उदारं मानसञ्चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती॥ ५०

श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत्।
दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम्॥ ५१

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा दुर्भगा वा मृतार्भका।
पतद्‌गर्भाङ्गना या च ताभिः श्राव्या तथा कथा॥ ५२

धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वाञ्छति विना श्रमम्।
भगवत्या भागवतं श्रोतव्यं तेन यत्नतः॥ ५३

कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि।
तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत्॥ ५४

एवं व्रतं नवाहं तु कृत्वोद्यापनमाचरेत्।
महाष्टमीव्रतं यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः॥ ५५

निष्कामाः श्रवणेनैव पूता मुक्तिं व्रजन्ति हि।
भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा॥ ५६

पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्या तु नित्यशः।
वक्त्रा दत्तं प्रसादं तु गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम्॥ ५७

कुमारीः पूजयेन्नित्यं भोजयेत्प्रार्थयेच्च यः।
सुवासिनीश्च विप्रांश्च तस्य सिद्धिर्न संशयः॥ ५८

गायत्र्या नाम साहस्रं समाप्तावथ वा पठेत्।
विष्णोर्नामसहस्रञ्च सर्वदोषोपशान्तये॥ ५९

श्रोताको चाहिये कि वह वेद, गौ, गुरु, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, महापुरुष, देवताओं और देवभक्तोंकी निन्दा कभी न सुने॥ ४९॥

जो कथाव्रती हो उसे सर्वदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये॥ ५०॥

श्वेतकुष्ठी, कुष्ठी, क्षयरोगी, अभागा, पापी, दरिद्र तथा सन्तानहीन मनुष्य इस कथाको भक्तिपूर्वक सुने॥ ५१॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या (जिस स्त्रीको एक बार सन्तान होकर बन्द हो जाय), अभागिन तथा मृतवत्सा हो और जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी सभी स्त्रियोंको इस देवीभागवतकथाका श्रवण करना चाहिये॥ ५२॥

जो मनुष्य बिना परिश्रमके ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, वह यत्नपूर्वक इस देवीभागवतकी कथा अवश्य सुने॥ ५३॥

इस नवाहकथाके नौ दिन नौ यज्ञोंके समान हैं। उनमें किया गया दान, हवन तथा जप अनन्त फल देनेवाला होता है॥ ५४॥

इस प्रकार नवाहव्रत करके उसका उद्यापन करना चाहिये। फलकी कामना करनेवाले पुरुषोंको महाष्टमीव्रतके उद्यापनकी भाँति नवाहव्रतका भी उद्यापन करना चाहिये॥ ५५॥

निष्काम व्यक्ति कथाके श्रवणमात्रसे पवित्र होकर मुक्ति पा जाते हैं; क्योंकि परा भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्ष सब कुछ देनेवाली हैं॥ ५६॥

पुस्तक और कथावाचक—दोनोंकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और वक्ताद्वारा दिया हुआ प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये॥ ५७॥

नवाह-यज्ञमें जो श्रोता नित्य कुमारी कन्याओं, सुहागिन स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराता तथा उनसे प्रार्थना करता है, उसकी कार्यसिद्धि अवश्य हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८॥

सभी त्रुटियोंकी शान्तिके निमित्त कथासमाप्तिके दिन गायत्रीसहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये॥ ५९॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति तस्माद्विष्णुञ्च कीर्तयेत्॥ ६०

देव्याः सप्तशतीमन्त्रैः समाप्तौ होममाचरेत्।
देवीमाहात्म्यमूलेन नवार्णमनुनाथवा॥ ६१

गायत्र्या त्वथवा होमः पायसेन ससर्पिषा।
यतो भागवतं त्वेतद् गायत्रीमयमीरितम्॥ ६२

वाचकं तोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः।
प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्य देवताः॥ ६३

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम्॥ ६४

सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत्।
ताभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः॥ ६५

दद्याद्दानानि चान्यानि सुवर्णं गाः पयस्विनीः।
हयानिभान्मेदिनीञ्च तस्य स्यादक्षयं फलम्॥ ६६

देवीभागवतं चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम्।
हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम्॥ ६७

अष्टम्यां वा नवम्याञ्च वाचकायार्चिताय च।
दद्यात्स भोगान्भुक्त्वेह दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात्॥ ६८

दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा।
पुराणवेत्ता वन्द्यः स्यात्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा॥ ६९

सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः।
सर्वेषामपि तेषाञ्च पुराणज्ञः परो गुरुः॥ ७०

पौराणिको ब्राह्मणस्तु व्यासासनसमाश्रितः।
आसमाप्ते प्रसङ्गे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥ ७१

जिनके स्मरण तथा नामकीर्तनसे तप, यज्ञ, क्रिया आदिमें न्यूनता समाप्त हो जाती है, उन विष्णुभगवान्का नाम-कीर्तन करना चाहिये॥ ६०॥

कथासमाप्तिके दिन दुर्गासप्तशतीके मन्त्रोंसे अथवा देवीमाहात्म्यके मूलपाठसे या नवार्ण* मन्त्रसे होम करना चाहिये अथवा घृतसहित पायसद्वारा गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके हवन करे; क्योंकि यह श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण गायत्रीमय कहा गया है॥ ६१-६२॥

कथावाचकको वस्त्र, भूषण, धन आदिके द्वारा सन्तुष्ट करे; क्योंकि कथावाचकके प्रसन्न होनेपर सभी देवता उसपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ ६३॥

श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट करे; क्योंकि वे विप्र पृथ्वीपर देवताके स्वरूप हैं। उनके सन्तुष्ट होनेपर वांछित फल प्राप्त होता है॥ ६४॥

सुहागिन स्त्रियों तथा कुमारी कन्याओंको साक्षात् देवी समझकर उन्हें भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा देकर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करे॥ ६५॥

सुवर्ण, दूध देनेवाली गौ, हाथी, घोड़े और भूमिका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका अक्षय फल होता है॥ ६६॥

सुन्दर अक्षरोंमें लिखी देवीभागवतकी पुस्तकको रेशमी-वस्त्रमें लपेटकर उसे सुवर्णनिर्मित सिंहासनपर रखकर अष्टमी या नवमी तिथिको विधिपूर्वक कथावाचकको दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह इस संसारमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करता है॥ ६७-६८॥

पुराणको जाननेवाला वक्ता चाहे दरिद्र हो, दुर्बल हो, बालक हो, युवक हो अथवा वृद्ध हो, वह सर्वदा वन्दनीय पूज्य एवं मान्य होता है॥ ६९॥

यद्यपि संसारमें जन्म अथवा गुणके कारण अनेक गुरु हैं, परंतु पुराणका ज्ञाता उन सबमें श्रेष्ठ गुरु है॥ ७०॥

व्यासके आसनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे॥ ७१॥

---

* ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

पौराणिकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वन्त्यभक्तितः।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम्॥ ७२

असम्पूज्य पुराणं तु ताम्बूलकुसुमादिभिः।
ये शृण्वन्ति कथां देव्यास्ते दरिद्रा भवन्ति हि॥ ७३

कीर्त्यमानां कथां त्यक्त्वा ये व्रजन्त्यन्यतो नराः।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः॥ ७४

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
ते वायसा भवन्त्यत्र भुक्त्वा निरययातनाम्॥ ७५

ये चाढ्यासनसंस्थाश्च ये वीरासनसंस्थिताः।
शृण्वन्ति च कथां दिव्यां ते स्युरर्जुनशाखिनः॥ ७६

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्।
रासभास्ते भवन्तीह कृकलासास्ततः परम्॥ ७७

निन्दन्ति ये पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम्।
ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः॥ ७८

ये शृण्वन्ति कथां वक्तुः समानासनसंस्थिताः।
गुरुतल्पसमं पापं लभन्ते नरकालयाः॥ ७९

ये चाप्रणम्य शृण्वन्ति ते भवन्ति विषद्रुमाः।
शयाना येऽपि शृण्वन्ति भवन्त्यजगराह्वयः॥ ८०

ये कदाचन पौराणीं न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते घोरं नरकं भुक्त्वा भवन्ति वनसूकराः॥ ८१

ये कथां नानुमोदन्ते विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दं निरयं भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥ ८२

आसनं भाजनं द्रव्यं फलं वस्त्राणि कम्बलम्।
पुराणज्ञाय यच्छन्ति ते व्रजन्ति हरेः पदम्॥ ८३

जो लोग इस दिव्य पौराणिक कथाको श्रद्धारहित होकर सुनते हैं, उन दुःख तथा दारिद्र्य-युक्त मनुष्योंको कथाश्रवणका पुण्य-फल प्राप्त नहीं होता॥ ७२॥

जो लोग ताम्बूल, पुष्प आदि उपचारोंसे पुराणका पूजन किये बिना ही देवीकी कथा सुनते हैं, वे दरिद्र होते हैं और जो लोग कथाके बीचमें ही उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, कुछ ही समय बाद उनकी सम्पदाएँ एवं स्त्री आदि नष्ट हो जाती हैं॥ ७३-७४॥

जो अभिमानवश व्याससे ऊँचे स्थानपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे नरक-यातना भोगकर इस लोकमें कौएकी योनि पाते हैं॥ ७५॥

जो बहुमूल्य आसनपर अथवा वीरासनसे बैठकर दिव्य कथाका श्रवण करते हैं, वे 'अर्जुन' वृक्ष होते हैं॥ ७६॥

कथा होते समय जो लोग व्यर्थ तर्क-वितर्क करते हैं, वे इस लोकमें पहले गर्दभयोनिमें तत्पश्चात् गिरगिटकी योनिमें जाते हैं॥ ७७॥

जो लोग पुराण जाननेवालोंकी अथवा पापनाशिनी कथाकी निन्दा करते हैं, वे सैकड़ों जन्मतक दुष्ट कुत्ते होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७८॥

जो लोग कथावाचकके बराबर आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, उन्हें गुरुके आसनपर बैठनेका पाप लगता है और वे नरकमें वास करते हैं। जो लोग वक्ताको प्रणाम किये बिना ही कथा सुनने लगते हैं, वे जन्मान्तरमें विषैले वृक्ष होते हैं। इसी प्रकार जो लोग लेटे-लेटे कथा सुनते हैं; वे अजगर, साँपकी योनि पाते हैं॥ ७९-८०॥

जो मनुष्य कभी भी पुराणकी कथा नहीं सुनते, वे घोर नरक भोगकर बनैले सूअरकी योनिमें जाते हैं। जो शठ मनुष्य कथाका अनुमोदन नहीं करते अपितु उसमें विघ्न डाला करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक-यातना भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं॥ ८१-८२॥

जो लोग पुराणवेत्ताको आसन, पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र तथा कम्बल प्रदान करते हैं, वे भगवान्‌के परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ८३॥

पुराणपुस्तकस्यापि ये पट्टवसनं नवम्।
प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नराः सुखभागिनः॥ ८४

पुराणानां तु सर्वेषां श्रवणाद्यत्फलं लभेत्।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत्॥ ८५

यथा सरित्सु प्रवरा गङ्गा देवेषु शङ्करः।
काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथा रविः॥ ८६

आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानाञ्च यथा यशः।
क्षमावतां यथा भूमिर्गाम्भीर्ये सागरो यथा॥ ८७

मन्त्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः।
अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा॥ ८८

येन केनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत्।
न शक्यं तत्फलं वक्तुं जीवन्मुक्तः स एव हि॥ ८९

राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा।
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च तच्छान्त्यै शृणुयादिदम्॥ ९०

भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः।
पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः॥ ९१

श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥ ९२

भगवत्या स्वयं देव्या श्लोकार्धेन प्रकाशितम्।
शिष्यप्रशिष्यद्वारेण तदेव विपुलीकृतम्॥ ९३

न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः॥ ९४

गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन सोच्यते।
सात्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता॥ ९५

अतो भागवतस्यास्य देव्याः प्रीतिकरस्य च।
महान्त्यपि पुराणानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ९६

जो मनुष्य पुराणपुस्तकके लिये नवीन रेशमी वस्त्र तथा सुन्दर सूत्रका दान करते हैं, वे सुखी रहते हैं॥ ८४॥

सभी पुराणोंके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे सौगुना पुण्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे होता है॥ ८५॥

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं; देवताओंमें शिव, काव्योंमें वाल्मीकीय रामायण तथा तेजस्वियोंमें भगवान् सूर्य श्रेष्ठ हैं; और जैसे आनन्द देनेवालोंमें चन्द्रमा, सब धनोंमें सुयश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, मन्त्रोंमें गायत्री तथा पापनाशके उपायोंमें भगवत्स्मरण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अठारहों पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है॥ ८६—८८॥

जिस किसी भी उपायसे यदि कोई मनुष्य इस महापुराणकी नौ आवृत्तियाँ सुन ले तो उसके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो जीवन्मुक्त ही हो जाता है॥ ८९॥

किसी शत्रु राजासे भय होनेपर, महामारीके समय, अकाल पड़नेपर तथा राष्ट्र-भंगके अवसरपर उसकी शान्तिके लिये यह पुराण सुनना चाहिये॥ ९०॥

हे विप्रो! भूत-प्रेतादिके शमनके लिये, शत्रुसे राज्य प्राप्त करनेके लिये और पुत्र-प्राप्तिके लिये श्रीमद्देवीभागवतका श्रवण करना चाहिये॥ ९१॥

जो देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ ९२॥

स्वयं भगवती जगदम्बाने इस पुराणको सर्वप्रथम केवल आधे श्लोकमें ही प्रकाशित किया, वही बादमें शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा देवीभागवतके रूपमें विस्तृत कर दिया गया॥ ९३॥

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तप है, न कोई देवता है और न कोई मन्त्र ही है॥ ९४॥

भगवती अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करती हैं, इसी कारणसे उन्हें गायत्री कहा जाता है। वे भगवती गायत्री इस पुराणमें अपने रहस्योंसहित विराजती हैं। अतः भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके समान भी अन्य महापुराण नहीं हो सकते॥ ९५-९६॥

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् ब्राह्मणानां धनं
धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः।
गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च संवर्णितः
श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीता स्वयम्॥ ९७

तस्मान्नास्य पुराणस्य लोकेऽन्यत्सदृशं परम्।
अतः सदैव संसेव्यं देवीभागवतं द्विजाः॥ ९८

यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता
नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः।
अंशांशका अपि च ते किमुतान्यदेवा-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥ ९९

यत्पादपङ्कजरजः समवाप्य विश्वं
ब्रह्मा सृजत्यनुदिनञ्च बिभर्ति विष्णुः।
रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्था-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥ १००

सुधाकूपारान्तस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते
मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे।
विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां
नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षञ्च लभते॥ १०१

ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता।
जगतां श्रेयसे सास्तु मणिद्वीपाधिदेवता॥ १०२

श्रीमद्देवीभागवतपुराण अत्यन्त निर्मल है। जो ब्राह्मणोंका अमूल्य धन है और जिसमें स्वयं धर्मपुत्र नारायणने पवित्र धर्मका वर्णन किया है। इसमें श्रीगायत्रीदेवीका रहस्य एवं मणिद्वीपका सम्यक् वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें हिमालयके प्रति स्वयं भगवतीद्वारा कही गयी देवीगीता विद्यमान है॥ ९७॥

इस कारण हे विप्रो! इस महापुराणके सदृश दूसरा कोई उत्तम पुराण लोकमें नहीं है, अतः आपलोग सदा इस श्रीमद्देवीभागवतका भलीभाँति सेवन करें॥ ९८॥

जिनके सम्पूर्ण प्रभावको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भगवान् शेष भी भलीभाँति नहीं जान सकते जबकि वे उन्हींके अंशज भी हैं, तब दूसरे देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे? उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है॥ ९९॥

जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पाकर ब्रह्मा समस्त संसारकी रचना करते हैं, भगवान् विष्णु निरन्तर पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; दूसरे किसी उपायसे वे अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकते—ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा सतत प्रणाम है॥ १००॥

अमृत-सागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित मणिद्वीपमें स्थित बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परम शिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करके मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है॥ १०१॥

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र—आदि देवताओं एवं समस्त महर्षियोंद्वारा पूजित मणिद्वीपनिवासिनी वे भगवती संसारका कल्याण करती रहें॥ १०२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतश्रवणविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

॥ समाप्तमिदं श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम्॥

* * *

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[पूर्वार्ध]

प्रथमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

महर्षि शौनकका सूतजीसे श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनानेकी प्रार्थना करना

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धिं या नः प्रचोदयात्॥ १

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्योऽसि पुरुषर्षभ।
यदधीतास्त्वया सम्यक् पुराणसंहिताः शुभाः॥ २
अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनानघ।
कथितानि सुदिव्यानि पठितानि त्वयानघ॥ ३
पञ्चलक्षणयुक्तानि सरहस्यानि मानद।
त्वया ज्ञातानि सर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ ४
अस्माकं पुण्ययोगेन प्राप्तस्त्वं क्षेत्रमुत्तमम्।
दिव्यं विश्वसनं पुण्यं कलिदोषविवर्जितम्॥ ५
समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुकामोऽस्ति पुण्यदाम्।
पुराणसंहितां सूत ब्रूहि त्वं नः समाहितः॥ ६
दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ तापत्रयविवर्जितः।
कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ ७
श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराः स्वादविचक्षणाः।
न शृण्वन्ति पुराणानि वञ्चिता विधिना हि ते॥ ८
यथा जिह्वेन्द्रियाह्लादः षड्रसैः प्रतिपद्यते।
तथा श्रोत्रेन्द्रियाह्लादो वचोभिः सुधियां स्मृतः॥ ९

जो सर्वचेतनास्वरूपा, आदिशक्ति तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बा हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें॥ १॥

शौनक बोले—हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा भाग्यवान् सूतजी! आप धन्य हैं; क्योंकि संसारमें अत्यन्त दुर्लभ पुराण-संहिताओं का आपने भलीभाँति अध्ययन किया है। हे पुण्यात्मन्! हे मानद! आपने कृष्णद्वैपायन व्यासरचित अठारह महापुराणोंका सम्यक् अध्ययन किया है, जो पंच लक्षणोंसे युक्त तथा गूढ रहस्योंसे समन्वित हैं और जिनका आपने सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे ज्ञान प्राप्त किया है॥ २—४॥

हमारे पुण्यसे ही आप इस उत्तम, मुनियोंके निवास-योग्य, दिव्य, पुण्यप्रद तथा कलिके दोषोंसे रहित क्षेत्रमें पधारे हुए हैं। हे सूतजी! मुनियोंका यह समुदाय परम पुण्यदायिनी पुराण-संहिताका श्रवण करना चाहता है। अतः आप समाहितचित्त होकर हमलोगोंसे उसका वर्णन कीजिये॥ ५-६॥

हे सर्वज्ञ! आप तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से रहित होकर दीर्घजीवी हों। हे महाभाग! ब्रह्मप्रतिपादक देवीभागवतमहापुराणका वर्णन करें॥ ७॥

हे सूतजी! जो मनुष्य श्रवणेन्द्रिययुक्त होते हुए भी केवल जिह्वाके स्वादमें ही लगे रहते हैं और पुराणोंकी कथाएँ नहीं सुनते, वे निश्चित ही अभागे हैं। जैसे षड्रसके स्वादसे जिह्वाको आह्लाद होता है, वैसे विद्वज्जनोंके वचनोंसे कर्णेन्द्रियको आनन्द प्राप्त होता है॥ ८-९॥

अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यन्ति हि नभोगुणैः।
सकर्णा ये न शृण्वन्ति तेऽप्यकर्णाः कथं न च॥ १०

अतः सर्वे द्विजाः सौम्य श्रोतुकामाः समाहिताः।
वर्तन्ते नैमिषारण्ये क्षेत्रे कलिभयार्दिताः॥ ११

येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम्।
व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिन्तनैः॥ १२

शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुतानि च।
(त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च।
वितण्डाच्छलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च॥)
नानार्थवादयुक्तानि हेतुमन्ति बृहन्ति च॥ १३

सात्त्विकं तत्र वेदान्तं मीमांसा राजसं मतम्।
तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभियन्त्रितम्॥ १४

तथैव च पुराणानि त्रिगुणानि कथानकैः।
कथितानि त्वया सौम्य पञ्चलक्षणवन्ति च॥ १५

तत्र भागवतं पुण्यं पञ्चमं वेदसम्मितम्।
कथितं यत्त्वया पूर्वं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ १६

उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं परमाद्भुतम्।
मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा॥ १७

विस्तरेण तदाख्याहि पुराणोत्तममादरात्।
श्रोतुकामा द्विजाः सर्वे दिव्यं भागवतं शुभम्॥ १८

त्वं तु जानासि धर्मज्ञ पौराणीं संहितां किल।
कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात् सम्यक् सत्त्वगुणाश्रयः॥ १९

श्रुतान्यन्यानि सर्वज्ञ त्वन्मुखान्निःसृतानि च।
नैव तृप्तिं व्रजामोऽद्य सुधापानेऽमरा यथा॥ २०

जब कर्णहीन सर्प भी मधुर ध्वनि सुनकर मोहित हो जाते हैं, तब भला कर्णयुक्त मानव यदि कथा नहीं सुनते तो उन्हें बधिर क्यों न कहा जाय?॥ १०॥

अतः हे सौम्य! समाहितचित्त होकर कथा सुननेकी इच्छासे सभी द्विजगण कलिकालके भयसे पीड़ित हो इस नैमिषारण्यमें उपस्थित हैं॥ ११॥

जिस किसी प्रकारसे समय तो बीतता ही रहता है, किंतु मूर्खोंका समय व्यर्थ दुर्व्यसनोंमें बीतता है और विद्वानोंका समय शास्त्र-चिन्तनमें जाता है॥ १२॥

शास्त्र भी विचित्र प्रकारके तर्क-वितर्कसे युक्त हैं। (पुराण तीन प्रकारके तथा शास्त्र विविध प्रकारके हैं, जो नानाविध वाद-विवाद तथा छल-प्रपंचसे युक्त हैं और अहंकार तथा अमर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं) वे अनेक अर्थवाद तथा हेतुवादसे युक्त और बहुत विस्तारवाले हैं॥ १३॥

उन शास्त्रोंमें वेदान्तशास्त्र सात्त्विक, मीमांसा राजस तथा न्यायशास्त्र तामस कहा गया है; क्योंकि वह हेतुवादसे परिपूर्ण है॥ १४॥

इसी प्रकार हे सौम्य! आपके द्वारा कहे गये पुराण कथा-भेदसे तीन गुणोंवाले तथा पाँच लक्षणोंसे समन्वित हैं॥ १५॥

आपने यह भी बताया है कि उन पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है, पवित्र है, वेदके समान है और सभी लक्षणोंसे युक्त है॥ १६॥

उस समय आपने प्रसंगवश अत्यन्त अद्भुत, मुमुक्षुजनोंके लिये मुक्तिप्रद, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, धर्ममें रुचि उत्पन्न करनेवाले जिस पुराणको संक्षेपमें कहा था, उस उत्तम पुराणको विस्तारपूर्वक कहिये। उस दिव्य तथा कल्याणमय श्रीमद्देवीभागवतपुराणको हम सभी द्विजगण आदरपूर्वक सुननेकी इच्छा रखते हैं॥ १७-१८॥

हे धर्मज्ञ! गुरुभक्त एवं सत्त्वगुणसे सम्पन्न होनेके कारण आप कृष्णद्वैपायनके द्वारा कही गयी इस प्राचीन संहिताका ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं॥ १९॥

जिस प्रकार देवतालोग अमृतपान करते हुए तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार हमलोगोंने भी यहाँ आपके मुखारविन्दसे निकली अन्यान्य कथाएँ सुनीं, किंतु अभी भी हम तृप्त नहीं हुए हैं॥ २०॥

धिक्सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन।
पिबन्भागवतं सद्यो नरो मुच्येत सङ्कटात्॥ २१

हे सूतजी! उस अमृतको धिक्कार है, जिसके पीनेसे कभी मुक्ति नहीं होती, परंतु इस भागवतरूपी कथा-सुधाके पानसे तो मनुष्य शीघ्र ही भवसंकटसे मुक्त हो जाता है॥ २१॥

सुधापाननिमित्तं यत् कृता यज्ञाः सहस्रशः।
न शान्तिमधिगच्छामः सूत सर्वात्मना वयम्॥ २२

मखानां हि फलं स्वर्गः स्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमणं च निरन्तरम्॥ २३

हे सूतजी! अमृतपानके लिये जो हजारों प्रकारके यज्ञ किये गये हैं, उनसे भी सर्वदाके लिये हमें शान्ति नहीं मिली। यज्ञोंका फल तो केवल स्वर्ग है, [पुण्य क्षीण होनेपर] पुनः स्वर्गसे मृत्युलोकमें लौटना ही पड़ता है। इस प्रकार निरन्तर आवागमनके चक्रमें आना-जाना लगा रहता है॥ २२-२३॥

विना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैव मुक्तिः कदाचन।
भ्रमतां कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके॥ २४

अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद।
पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम्॥ २५

हे सर्वज्ञ! त्रिगुणात्मक कालचक्रमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंकी ज्ञानके बिना मुक्ति कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये सब प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण तथा पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवतपुराण कहिये; जो पवित्र, मुक्तिदायक, गोपनीय तथा मुमुक्षुजनोंको सर्वदा प्रिय है॥ २४-२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शौनकप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

* * *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सूतजीद्वारा श्रीमद्देवीभागवतके स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकसंख्याका निरूपण और उसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन

सूत उवाच

धन्योऽहमतिभाग्योऽहं पावितोऽहं महात्मभिः।
यत्पृष्टं सुमहत्पुण्यं पुराणं वेदविश्रुतम्॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] मैं धन्य और महान् भाग्यशाली हूँ, जो कि आप महात्माओंने वेदविश्रुत तथा अत्यन्त पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणके सम्बन्धमें प्रश्न करके मुझे पवित्र बना दिया॥ १॥

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसम्मतम्।
रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम्॥ २

इसलिये मैं सभी वेदोंके तात्पर्यसे युक्त, सभी शास्त्रों और आगमोंके रहस्यरूप सर्वोत्तम श्रीमद्देवी-भागवतपुराणको आपलोगोंसे कहता हूँ॥ २॥

नत्वा तत्पदपङ्कजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां
ब्रह्माद्यैरपि सेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा।
वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं
भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः॥ ३

हे द्विजगण! ब्रह्मा-विष्णु-महेशसे सेवित, स्तुतिपरायण मुनिजनोंके सतत ध्यान करनेयोग्य तथा योगियोंको मुक्ति देनेवाले भगवतीके सुन्दर एवं कोमल चरणकमलोंमें प्रणाम करके मैं अब उस उत्तम पुराणका भक्तिपूर्वक विस्तारसे वर्णन करूँगा; जो सभी रसोंसे युक्त, शोभासम्पन्न, सभी रसोंका निधान एवं श्रीमद्देवीभागवतके नामसे प्रसिद्ध है॥ ३॥

या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाद्या परा
सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता।
दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता
प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा॥ ४

सृष्ट्वाखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि॥ ५

ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं
पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः।
विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म
तैरुक्तमेव सृजते न हि स स्वतन्त्रः॥ ६

विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीति काले
तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म।
आधारतां किल गतोऽत्र सहस्रमौलिः
सम्बोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः॥ ७

एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव
पात्रं विना न हि रसस्थितिरस्ति कच्चित्।
या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा
तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि॥ ८

योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुं दृष्ट्वाम्बुजे स्थितः।
अजस्तुष्टाव यां देवीं तामहं शरणं गतः॥ ९

तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा।
वक्ष्ये पुराणमखिलं शृण्वन्तु मुनयस्त्विह॥ १०

वैदिक मार्गानुसार जिसे 'विद्या' कहते हैं, जो सर्वदा 'आदिशक्ति' कही जाती हैं, जिन्हें योगीलोग 'पराशक्ति' भी कहते हैं; जो सर्वज्ञ, भवबन्धन काटनेमें निपुण हैं तथा जो सबके हृदयदेशमें विराजती रहती हैं और दुरात्मा प्राणी जिन्हें नहीं जान सकते, मुनियोंके ध्यान करनेपर जो शीघ्र प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं, वे भगवती सर्वदा सिद्धिदायिनी बनी रहें॥ ४॥

जो सत्-असत्रूप उस जगत्की सृष्टि करके अपनी त्रिगुणात्मिका (सत्त्व, रज, तम) शक्तिद्वारा उसका पालन करती तथा प्रलयान्तमें उसका संहार करके अकेली स्वयं लीलारमण करती हैं, उन समस्त विश्वकी जननी भगवतीका मैं मन-ही-मन स्मरण करता हूँ॥ ५॥

यह संसारमें प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ही इस सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा हैं, साथ ही सभी वेदज्ञ तथा पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। उनका यह भी कथन है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ही उन ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है, जो स्वतन्त्र नहीं हैं, अपितु विष्णुकी प्रेरणासे ही वे संसारकी सृष्टि करते हैं॥ ६॥

जब कल्पान्तमें सर्वत्र जलमय हो जाता है, तब केवल शेषशय्यापर भगवान् विष्णु शयन करते हैं और उन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्माका आविर्भाव होता है। इस प्रकार जब सहस्र फणवाले शेष ही विष्णुके आधार हैं, तो फिर उन मुरारिको भी सर्वाधार भगवान् कैसे कहा जाय?॥ ७॥

प्रलयकालीन समुद्रका जल भी तो रसरूप ही है और बिना पात्र रस कहीं ठहर नहीं सकता। अतएव जो सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजती रहती हैं, मैं उन सम्पूर्ण संसारकी जननी आदिशक्ति भगवतीकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ८॥

योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णुको देखकर उनके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माने जिन देवीकी स्तुति की थी, मैं उन्हीं पराशक्ति भगवतीके शरणागत हूँ॥ ९॥

हे मुनिजनो! उन्हीं निर्गुण तथा सगुण रूपवाली तथा मुक्तिदायिनी योगमायाका ध्यान करके मैं यहाँ सम्पूर्ण देवीभागवतपुराण कह रहा हूँ; आपलोग सुनिये॥ १०॥

पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम्।
अष्टादश सहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः॥ ११
स्कन्धा द्वादश चैवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः।
त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः॥ १२
विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशैव तु।
त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पञ्चविंशतिः॥ १३
पञ्चत्रिंशत्तथाध्यायाः पञ्चमे परिकीर्तिताः।
एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्च सप्तमे॥ १४
अष्टमे तत्त्वसङ्ख्याश्च पञ्चाशन्नवमे तथा।
त्रयोदश तु सम्प्रोक्ता दशमे मुनिना किल॥ १५
तथा चैकादशस्कन्धे चतुर्विंशतिरीरिताः।
चतुर्दशैव चाध्याया द्वादशे मुनिसत्तमाः॥ १६
एवं सङ्ख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन्महात्मना।
अष्टादशसहस्रीया सङ्ख्या च परिकीर्तिता॥ १७
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ १८
निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिका विकृता शिवा।
योगगम्याखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता॥ १९
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः॥ २०
तासां तिसृणां शक्तीनां देहाङ्गीकारलक्षणः।
सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः॥ २१
हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता।
पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः॥ २२
सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम्।
हिरण्यकशिप्वादीनां वंशास्ते परिकीर्तिताः॥ २३
स्वायम्भुवमुखानां च मनूनां परिवर्णनम्।
कालसङ्ख्या तथा तेषां तत्तन्मन्वन्तराणि च॥ २४
तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम्।
पञ्चलक्षणयुक्तानि भवन्ति मुनिसत्तमाः॥ २५

यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण अत्यन्त पवित्र एवं उत्तम है। इसमें अठारह हजार सुन्दर श्लोक हैं। कृष्णद्वैपायनद्वारा विरचित इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणमें कल्याणकारी बारह स्कन्ध तथा कुल तीन सौ अठारह अध्याय बताये गये हैं। उनमें प्रथम स्कन्धमें बीस अध्याय, द्वितीयमें बारह, तृतीयमें तीस और चतुर्थमें पच्चीस अध्याय हैं। पंचम स्कन्धमें पैंतीस अध्याय, षष्ठमें एकतीस, सप्तममें चालीस, अष्टममें तत्त्व-संख्या*के बराबर अर्थात् चौबीस, नवममें पचास और दशम स्कन्धमें तेरह अध्याय मुनि व्यासजीने कहे हैं। इसी प्रकार हे मुनिगण! एकादश स्कन्धमें चौबीस और द्वादश स्कन्धमें चौदह अध्याय बताये गये हैं॥ ११—१६॥

इस प्रकार महात्मा व्यासजीने इस महापुराणमें अध्यायोंकी संख्या बतायी है। इसमें श्लोकोंकी संख्या अठारह हजार कही गयी है॥ १७॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश-वर्णन, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—इस प्रकार पुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं॥ १८॥

जो कल्याणमयी भगवती नित्या, निर्गुणा, व्यापकरूपसे सृष्टिमें स्थित रहनेवाली, विकाररहित, योगगम्या, सबकी आधाररूपा तथा तुरीयावस्थामें प्रतिष्ठित हैं; उन्हींकी सात्त्विकी, राजसी और तामसी शक्तियाँ महासरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली नामक देवियोंके रूपमें प्रकट होती हैं॥ १९-२०॥

उन्हीं तीनों शक्तियोंका सृष्टिके लिये शरीर धारण करना ही शास्त्रके विद्वानोंके द्वारा 'सर्ग' कहा गया है॥ २१॥

तदनन्तर जगत्के सृजन, पालन तथा संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी उत्पत्ति कही गयी है; और उसे ही प्रतिसर्ग बताया गया है॥ २२॥

चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी राजाओंके वंशवर्णन तथा हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके वंशकथनको 'वंश' कहा गया है; इसी प्रकार स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंका वर्णन एवं उनके समय-विभाग मन्वन्तर कहलाते हैं। उन मनुओंके वंशका क्रमशः वर्णन करना ही 'वंशानुचरित' कहा गया है। हे मुनिवरो! इस प्रकार सभी पुराण उपर्युक्त पाँचों लक्षणोंसे युक्त होते हैं॥ २३—२५॥

---

* सांख्यशास्त्रमें प्रकृति, महत्, अहंकार आदि चौबीस तत्त्व माने जाते हैं।

सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम्।
इतिहास इति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम्॥ २६

शौनक उवाच

कानि तानि पुराणानि ब्रूहि सूत सविस्तरम्।
कतिसङ्ख्यानि सर्वज्ञ श्रोतुकामा वयं त्विह॥ २७

कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः।
ब्रह्मणात्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम्॥ २८

कथितं तेन नः सर्वानगच्छन्त्वेतस्य पृष्ठतः।
नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः॥ २९

कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित् सम्भविष्यति।
तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत्सत्ययुगं पुनः॥ ३०

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम्।
चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया॥ ३१

प्रेत्यात्र चालयंश्चक्रं नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यतः।
तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम्॥ ३२

कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानं कृतं मया।
मुनिभिः सिद्धसङ्घैश्च कलिभीतैर्महात्मभिः॥ ३३

पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल।
कालातिवाहनं कार्यं यावत्सत्ययुगागमः॥ ३४

भाग्ययोगेन सम्प्राप्तः सूत त्वं चात्र सर्वथा।
कथयाद्य पुराणं हि पावनं ब्रह्मसम्मतम्॥ ३५

सूत शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वं मतिमानथ।
निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च॥ ३६

सवा लाख श्लोकोंका महाभारत नामक ग्रन्थ भी व्यासजीने ही रचा है; यह 'इतिहास' कहलाता है—जो वेदसम्मत होनेके कारण पाँचवाँ वेद कहा गया है॥ २६॥

शौनकजी बोले—हे सूतजी! वे पुराण कौन-कौनसे हैं और कितने हैं? हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप सर्वज्ञ हैं, अतः विस्तारसे बताइये॥ २७॥

कलिकालसे भयभीत हम ब्राह्मण नैमिषारण्यमें ही रहते हैं। ब्रह्माजीने मनोमय चक्र हमें देकर यह आदेश दिया था कि इसी चक्रके पीछे-पीछे आपलोग जायँ। जहाँ इस चक्रकी नेमि शीर्ण हो जाय, वह देश परम पवित्र कहा गया है। वहाँ कभी कलियुगका प्रवेश नहीं होगा। आपलोग वहाँ तबतक रहें, जबतक पुनः 'सत्ययुग' न आ जाय॥ २८—३०॥

उनका वह वचन सुनकर तथा उनकी बातोंको हृदयमें रखकर हमलोग सब देशोंके दर्शनार्थ उस मनोमय चक्रके पीछे-पीछे तत्काल चल दिये॥ ३१॥

चलते-चलते इसी स्थानपर पहुँचकर उस चक्रकी नेमि हमलोगोंके देखते-देखते शीर्ण हो गयी। तभीसे यह स्थान परम पवित्र 'नैमिषक्षेत्र' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

यहाँ कभी कलिका प्रवेश नहीं होता। इसीलिये मैंने अनेक ऋषि-मुनियों, सिद्धगणों एवं कलिसे भयभीत महात्माओंके साथ यहाँ अपना निवास बना लिया है॥ ३३॥

हमलोगोंने यहाँपर चरु-पुरोडाश आदिद्वारा अनेक पशुवध-विहीन यज्ञ किये हैं। जबतक सत्ययुग न आ जाय तबतक हमलोगोंका यहीं रहनेका दृढ़ निश्चय है॥ ३४॥

हे सूतजी! आप निश्चितरूपसे हमलोगोंके सौभाग्यसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं। इसलिये आप इस ब्रह्मसम्मित पावन पुराणकी कथा कहिये॥ ३५॥

हे सूतजी! हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप-जैसे बुद्धिमान् वक्ता भी प्राप्त हैं। हमलोग भी अपना सभी कार्य त्यागकर चित्त एकाग्र करके यहाँ स्थित हैं॥ ३६॥

त्वं सूत भव दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जितः।
कथयाद्य पुराणं हि पुण्यं भागवतं शिवम्॥ ३७

यत्र धर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम्।
विद्यां प्राप्य तया मोक्षः कथितो मुनिना किल॥ ३८

द्वैपायनेन मुनिना कथितं यच्च पावनम्।
न तृप्यामो वयं सूत कथां श्रुत्वा मनोरमाम्॥ ३९

सकलगुणगणानामेकपात्रं पवित्र-
मखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम्।
निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकन्दं
प्रकटय भगवत्या नामयुक्तं पुराणम्॥ ४०

अतः हे सूतजी! आप चिरंजीवी हों तथा तीनों प्रकारके तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से मुक्त रहकर अब हमलोगोंको परम पवित्र तथा कल्याणकारी श्रीमद्देवी-भागवतपुराण सुनाइये; जिसमें धर्म, अर्थ और कामका विधिवत् वर्णन किया गया है। महर्षि व्यासने भी बताया है कि इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके पुनः उससे मुक्ति मिलती है॥ ३७-३८॥

हे सूतजी! महर्षि वेदव्यासने जिस पवित्र पुराणको कहा है, उसके मनोहर कथा-चरित्रोंको सुननेसे हमारी कभी तृप्ति नहीं होती है॥ ३९॥

सभी गुणोंका एकमात्र स्थान, परम पवित्र, समस्त संसारकी जननी भगवतीके लीलानाट्यके समान विचित्र, सभी पापसमूहोंका नाश करनेवाले तथा सब प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले तथा भगवतीके नामसे समन्वित श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणको प्रकट कीजिये॥ ४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे ग्रन्थसंख्याविषयवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूतजीद्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोकसंख्याका कथन, उपपुराणों तथा प्रत्येक द्वापरयुगके व्यासोंका नाम

सूत उवाच

श्रृण्वन्तु सम्प्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः।
यथाश्रुतानि तत्त्वेन व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ १

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक्॥ २

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरवृन्द! सत्यवती-सुत वेद-व्यासजीसे मैंने जिस प्रकार तत्त्वपूर्वक पुराणोंको सुना है, उसे मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये॥ १॥

उनमें दो 'म' वाले (मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण), दो 'भ' वाले (भविष्यपुराण तथा भागवत), तीन 'ब्र' वाले (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्तपुराण), चार 'व' वाले (वामन, विष्णु, वायु और वाराहपुराण), 'अ' वाला (अग्निपुराण), 'ना' वाला (नारदपुराण), 'प' वाला (पद्मपुराण), 'लिं' वाला (लिंगपुराण), 'ग' वाला (गरुडपुराण), 'कू' वाला (कूर्मपुराण), 'स्क' वाला (स्कन्दपुराण)—ये पृथक्-पृथक् (अठारह) पुराण हैं॥ २॥

चतुर्दशसहस्रं च मत्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम्।
तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम्॥ ३
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल।
तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम्॥ ५
द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम्।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च॥ ६
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च।
चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक॥ ७
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम्॥ ८
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम्।
पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम्॥ ९
पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम्।
एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम्॥ १०
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम्।
सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम्॥ ११
एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम्।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः॥ १२
तथैवोपपुराणानि शृण्वन्तु ऋषिसत्तमाः।
सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्॥ १३
नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम्।
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम्॥ १४
वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नन्दिकृतं शुभम्।
सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम्॥ १५
माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम्।
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः॥ १६
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥ १७
मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरे युगे।
प्रादुःकरोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि॥ १८
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्याससरूपेण सर्वदा।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया॥ १९

उनमें आदिके मत्स्यपुराणमें चौदह हजार, अत्यन्त अद्भुत मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा भविष्यपुराणमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक-संख्या तत्त्वदर्शी मुनियोंने बतायी है॥ ३-४॥

पवित्र भागवतपुराणमें अठारह हजार और ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार एक सौ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं॥ ५-६॥

हे शौनक! वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छः सौ श्लोक हैं। उस परम विचित्र विष्णुपुराणमें तेईस हजार, वाराहपुराणमें चौबीस हजार, अग्निपुराणमें सोलह हजार तथा नारदपुराणमें पचीस हजार श्लोक कहे गये हैं॥ ७—९॥

विशाल पद्मपुराणमें पचपन हजार और लिंगपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। इसी प्रकार साक्षात् भगवान्‌के द्वारा कहे हुए गरुडपुराणमें उन्नीस हजार तथा कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक हैं॥ १०-११॥

परम विचित्र स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार श्लोक कहे गये हैं। हे पापरहित मुनियो! इस प्रकार मैंने पुराणों तथा उनके श्लोकोंकी संख्या विस्तारपूर्वक बता दी॥ १२॥

हे मुनिवरो! अब उपपुराणोंकी भी संख्या सुनिये। उनमें सर्वप्रथम उपपुराण सनत्कुमार है, तत्पश्चात् नरसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मनु, उशना, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, भागवत तथा अठारहवाँ वासिष्ठ—ये सब उपपुराण महात्माओंद्वारा बताये गये हैं॥ १३—१६॥

सत्यवतीतनय वेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना करनेके बाद उन्हीं विषयोंसे विस्तारपूर्वक उस अतुलनीय 'महाभारत' का प्रणयन किया॥ १७॥

प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् वेदव्यासजी ही धर्मरक्षार्थ पुराणोंकी यथाविधि रचना करते रहते हैं। जब-जब द्वापरयुग आता है, तब-तब साक्षात् भगवान् विष्णु ही व्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर सर्वलोकहितार्थ वेदके अनेक भेदोपभेद करते हैं॥ १८-१९॥

अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे॥ २०
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥ २१
मन्वन्तरे सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे।
अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः॥ २२
व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः।
एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति॥ २३
अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च।
पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे॥ २४

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः।
वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे॥ २५

सूत उवाच

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत्॥ २६
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः।
पञ्चमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तथापरे॥ २७
मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा॥ २८
एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे॥ २९
त्र्य्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः।
मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा॥ ३०
अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम्।
उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः॥ ३१
वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा।
तृणबिन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम्॥ ३२

विशेषकर कलियुगमें ब्राह्मणोंको अल्पायु एवं अल्पबुद्धि जानकर वे युग-युगमें पवित्र पुराण-संहिताओंका निर्माण करते हैं॥ २०॥

स्त्रियों, शूद्रों तथा भ्रष्ट द्विजातियोंको वेद-श्रवणका अधिकार नहीं है, इसलिये उनके कल्याणके लिये व्यासजीने पुराणोंकी रचना की है॥ २१॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस वैवस्वत नामक शुभ सातवें मन्वन्तरके अट्ठाइसवें द्वापरयुगमें परम धर्मनिष्ठ सत्यवतीपुत्र मेरे गुरु श्रीव्यासजी हुए और उनतीसवें द्वापरमें द्रौणि नामके व्यास होंगे। इनके पूर्व भी सत्ताईस व्यास हो चुके हैं, जिन्होंने प्रत्येक युगमें अनेक पुराण-संहिताएँ रची हैं॥ २२—२४॥

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! अब आप पूर्वकालमें प्रत्येक द्वापरयुगमें अवतीर्ण हुए पुराणवक्ता व्यासोंकी कथा कहिये॥ २५॥

सूतजी बोले—सृष्टिके बाद सर्वप्रथम द्वापरयुगमें स्वयं ब्रह्माजीने ही 'व्यास' के रूपमें प्रकट होकर वेदोंका विभाजन किया। दूसरे द्वापरमें 'प्रजापति' व्यास बने, तीसरे द्वापरमें 'शुक्राचार्य', चौथे द्वापरमें 'बृहस्पति', पाँचवेंमें 'सूर्य' तथा छठेमें 'यमराज' ही साक्षात् व्यास बने थे॥ २६—२७॥

सातवें द्वापरमें 'इन्द्र', आठवेंमें 'वसिष्ठमुनि', नवेंमें 'सारस्वत' और दसवें द्वापरमें 'त्रिधामाजी' व्यास हुए॥ २८॥

ग्यारहवेंमें 'त्रिवृष', बारहवेंमें 'भरद्वाजमुनि', तेरहवेंमें 'अन्तरिक्ष' और चौदहवें द्वापरमें 'धर्मराज' स्वयं व्यास बने॥ २९॥

पन्द्रहवें द्वापरमें 'त्रय्यारुणि', सोलहवेंमें 'धनंजय', सत्रहवेंमें 'मेधातिथि' तथा अठारहवें द्वापरमें 'व्रतीमुनि' व्यास हुए॥ ३०॥

उन्नीसवेंमें 'अत्रि', बीसवेंमें 'गौतम' और इक्कीसवें द्वापरमें हर्यात्मा 'उत्तम' नामक व्यास कहे गये हैं॥ ३१॥

बाईसवेंमें 'वाजश्रवा वेन', तेईसवेंमें 'आमुष्यायण सोम', चौबीसवेंमें 'तृणविन्दु' तथा पचीसवें द्वापरमें 'भार्गव' व्यास हुए॥ ३२॥

ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता॥ ३३

कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम्।
श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखौघनाशनम्॥ ३४

कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थपरिबृंहितम्।
सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम्॥ ३५

व्यासेन कृत्वातिशुभं पुराणं
शुकाय पुत्राय महात्मने यत्।
वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै
विज्ञाय चैवारणिसम्भवाय॥ ३६

श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं
यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनीन्द्राः।
पुराणगुह्यं सकलं समेतं
गुरोः प्रसादात्करुणानिधेश्च॥ ३७

सूतेन पृष्टः सकलं जगाद
द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम्।
अयोनिजेनाद्भुतबुद्धिना वै
श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम्॥ ३८

श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादादरः सत्तमाः
संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं सन्तर्तुकामः शुकः।
नानाख्यानरसालयं श्रुतिपुटैः प्रेम्णाशृणोदद्भुतं
तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवंविधः कः क्षितौ॥ ३९

पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो
व्याजेनापि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम्।
भुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलं
योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामाङ्कितं सुन्दरम्॥ ४०

छब्बीसवेंमें 'शक्ति', सत्ताईसवेंमें 'जातुकर्ण्य' और अट्ठाईसवें द्वापरमें 'कृष्णद्वैपायनजी' व्यास हुए। इस प्रकार अट्ठाईस व्यासोंके नाम जैसा मैंने सुना था, वैसा बता दिया॥ ३३॥

इन्हीं कृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा कहे गये श्रीमद्देवीभागवतपुराणको मैंने सुना था; जो पुण्यप्रद, सब प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाला, सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मोक्षदाता, वैदिक भावोंसे ओत-प्रोत तथा सभी आगमोंके रसोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त मनोहर एवं मुमुक्षुजनोंको सदा प्रिय लगनेवाला है॥ ३४-३५॥

जिस अत्यन्त पवित्र पुराणको रचकर व्यासजीने अरणीके गर्भसे उत्पन्न, विद्वान्, महात्मा एवं विरक्त अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था; हे मुनिवृन्द! उसी रहस्यमय महापुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-को मैंने भी करुणासागर अपने गुरु व्यासजीके मुखसे सम्पूर्णरूपसे यथार्थतः सुना तथा उनकी कृपासे उसे हृदयंगम कर लिया है॥ ३६-३७॥

जिस समय अयोनिज एवं अपूर्व बुद्धिमान् अपने पुत्र शुकदेवजीके प्रश्न करनेपर व्यासजीने रहस्ययुक्त इस पुराणको सुनाया, उस समय मैंने भी एक साधारण श्रोताके रूपमें इस महान् प्रभाववाले श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणको सुन लिया॥ ३८॥

हे सर्वश्रेष्ठ मुनिजन! श्रीमद्भागवतरूपी इस कल्पवृक्षके फलके स्वादके प्रति आदरबुद्धि रखनेवाले तथा अपार संसार-सागरसे पार पानेके लिये श्रीशुकदेवजीने अनेक प्रकारकी सुन्दर एवं रसमयी कथाओंसे युक्त जिस अद्भुत महापुराणको विधिवत् अपने कर्णपुटसे प्रेमपूर्वक सुना है, उसे श्रवण करके भी जो कलिकालके भयसे मुक्त न हुआ, भला ऐसा प्राणी इस भूतलपर कौन होगा?॥ ३९॥

वैदिक धर्मसे रहित तथा निकृष्ट विचार रखनेवाला बड़े-से-बड़ा पापी मनुष्य भी यदि किसी बहाने इस उत्तम श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कर लेता है तो वह भी निश्चय ही समस्त सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें योगिजनोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य, भगवतीके नामसे चिह्नित, मनोरम तथा अचल पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या
विद्या सतां प्रियतमाथ समाधिगम्या।
सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं
यः संश्रृणोति सततं तु सतीपुराणम्॥ ४१

सम्प्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं
पोतं भवार्णवजलोत्तरणाय कामम्।
सम्प्राप्य वाचकमहो न श्रृणोति मूढः
स वञ्चितोऽत्र विधिना सुखदं पुराणम्॥ ४२

यः प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे
रागी श्रृणोति सततं च परापवादान्।
सर्वार्थदं रसनिधिं विमलं पुराणं
नष्टः कुतो न श्रृणुते भुवि मन्दबुद्धिः॥ ४३

जो प्राणी इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणको प्रतिदिन प्रेमसे सुनता है, उसके हृदयरूपी गुहामें विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ, सर्वश्रेष्ठ विद्यारूपिणी, सज्जनोंकी एकमात्र प्रिया, गुणातीता एवं समाधिद्वारा जाननेयोग्य वे भगवती निवास करने लगती हैं॥ ४१॥

अतः सर्वांगसुन्दर इस मानव-तनको पाकर संसार-सागरके अगाध सलिलसे पार होनेके लिये जलयानके समान परम सुखदायी श्रीमद्देवीभागवतपुराण एवं उसके वक्ताको प्राप्त करके भी जो मूर्ख इसका श्रवण नहीं करता, वह विधाताके द्वारा वंचित ही कहा जायगा॥ ४२॥

इस दुर्लभ मनुष्य देहमें दोनों कानोंको प्राप्त करके भी जो सांसारिक मनुष्य केवल दूसरोंके दुर्गुणोंको ही सुना करता है, वह अधम मन्दबुद्धि चारों उत्तम पदार्थोंको देनेवाले तथा सब रसोंसे परिपूर्ण इस निर्मल पुराणको भूतलपर क्यों नहीं सुनता?॥ ४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पुराणवर्णनपूर्वकतत्तद्युगीयव्यासवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

~~~०~~~

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारदजीद्वारा व्यासजीको देवीकी महिमा बताना

ऋषय ऊचुः

सौम्य व्यासस्य भार्यायां कस्यां जातः सुतः शुकः।
कथं वा कीदृशो येन पठितेयं सुसंहिता॥ १

अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथा चारणिजः शुकः।
सन्देहोऽस्ति महांस्तत्र कथयाद्य महामते॥ २

गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः।
कथं च पठितं तेन पुराणं बहुविस्तरम्॥ ३

सूत उवाच

पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः।
आश्रमे कलविंकौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥ ४

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! महर्षि व्यासकी किस पत्नीसे शुकदेवजी उत्पन्न हुए? उनका जन्म किस प्रकार हुआ और किस प्रकारसे उन्होंने इस संहिताका सम्यक् अध्ययन कर लिया?॥ १॥

आपके द्वारा ही वे अयोनिज कहे गये हैं तो फिर अरणीसे उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? हे महामते! इसमें हमें महान् संशय हो रहा है, आप उसका समाधान करें॥ २॥

हमलोगोंने पहले ही सुना है कि महातपस्वी शुकदेवजी गर्भयोगी थे। ऐसी स्थितिमें उन्होंने इतने विस्तृत पुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-का अध्ययन कैसे कर लिया?॥ ३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें एक समय सत्यवतीके पुत्र व्यासजी सरस्वतीनदीके किनारे अपने आश्रममें गौरैया पक्षीका जोड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ ४॥
~~~

जातमात्रं शिशुं नीडे मुक्तमण्डान्मनोहरम्।
ताम्रास्यं शुभसर्वाङ्गं पिच्छांकुरविवर्जितम्॥ ५

तौ तु भक्ष्यार्थमत्यन्तं रतौ श्रमपरायणौ।
शिशोश्चंचुपुटे भक्ष्यं क्षिपन्तौ च पुनः पुनः॥ ६

अङ्गेनाङ्गानि बालस्य घर्षयन्तौ मुदान्वितौ।
चुम्बन्तौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम्॥ ७

वीक्ष्य प्रेमाद्भुतं तत्र बाले चटकयोस्तदा।
व्यासश्चिन्तातुरः कामं मनसा समचिन्तयत्॥ ८

तिरश्चामपि यत्प्रेम पुत्रे समभिलक्ष्यते।
किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम्॥ ९

किमेतौ चटकौ चास्य विवाहं सुखसाधनम्।
विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम्॥ १०

अथवा वार्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति।
पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः॥ ११

अर्जयित्वाथवा द्रव्यं पितरौ तर्पयिष्यति।
अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यति यथाविधि॥ १२

अथवा किं गयाश्राद्धं गत्वा संवितरिष्यति।
नीलोत्सर्गं च विधिवत्प्रकरिष्यति बालकः॥ १३

संसारेऽत्र समाख्यातं सुखानामुत्तमं सुखम्।
पुत्रगात्रपरिष्वंगो लालनञ्च विशेषतः॥ १४

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
पुत्रादन्यतरन्नास्ति परलोकस्य साधनम्॥ १५

मन्वादिभिश्च मुनिभिर्धर्मशास्त्रेषु भाषितम्।
पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तु कथञ्चन॥ १६

दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते।
पुत्रवान्मुच्यते पापादाप्तवाक्यं च शाश्वतम्॥ १७

अण्डेसे तत्काल पैदा हुए लाल मुखवाले, सुन्दर अंगोंवाले एवं पंखरहित शिशुको घोंसलेमें ही छोड़कर वे दोनों उड़ गये और अत्यन्त परिश्रमसे चारा लाकर उस शिशुके चोंचमें डालते हुए दोनों पक्षी अत्यन्त आह्लादयुक्त होकर उस शिशुके अंगोंको अपने अंगोंसे रगड़ते हुए प्रेमपूर्वक उसके सुन्दर मुखको चूम रहे थे॥ ५—७॥

व्यासजी उस शिशुमें उन दोनों पक्षियोंका ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन सोचने लगे। यदि अपने पुत्रके प्रति पक्षियोंमें ऐसा प्रेम दिखायी दे रहा है तो अपनी सेवाका फल चाहनेवाले मनुष्योंमें ऐसा प्रेम-व्यवहार होनेमें आश्चर्य ही क्या! क्या ये दोनों पक्षी इसका सुख-साधनस्वरूप विवाह करके स्वयं सुखी रहते हुए इसकी वधूका सुन्दर मुख देख पायेंगे? क्या इनकी वृद्धावस्थामें यह धर्मनिष्ठ पुत्र पुण्य-प्राप्तिके लिये इन दोनोंकी सेवा करेगा? धन आदि अर्जित करके क्या यह अपने माता-पिताको सन्तुष्ट रखेगा और इनकी मृत्युके उपरान्त क्या इनका विधि-पूर्वक प्रेतकर्म करेगा? अथवा क्या गयातीर्थ जाकर यह बालक उनके श्राद्ध आदि कर्म करके उनका उद्धार करेगा तथा उनके परलोकसाधनहेतु क्या यह विधिपूर्वक नीलोत्सर्ग (नील वृषभ छोड़नेका कर्म) करेगा?॥ ८—१३॥

पुत्रके शरीरका आलिंगन और विशेषरूपसे उसका लालन-पालन इस संसारमें सभी सुखोंमें उत्तम सुख कहा गया है॥ १४॥

पुत्ररहित मनुष्यकी न तो सद्गति होती है और न तो उसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है। अतः परलोकसाधनके लिये पुत्रसे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है॥ १५॥

मनु आदि ऋषियोंने भी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि पुत्रवान् मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है और पुत्रहीन व्यक्तिको स्वर्ग-प्राप्ति कभी भी नहीं होती है॥ १६॥

इस बातमें अनुमानकी कोई आवश्यकता ही नहीं है अपितु यह प्रत्यक्षरूपमें भी देखा जाता है; साथ ही यह वेद, स्मृति आदिका भी सनातन वचन है कि पुत्रवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १७॥

आतुरे मृत्युकालेऽपि भूमिशय्यागतो नरः।
करोति मनसा चिन्तां दुःखितः पुत्रवर्जितः॥ १८
धनं मे विपुलं गेहे पात्राणि विविधानि च।
मन्दिरं सुन्दरं चैतत्कोऽस्य स्वामी भविष्यति॥ १९
मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमते यतः।
अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रान्तचित्तस्य सर्वथा॥ २०
एवं बहुविधां चिन्तां कृत्वा सत्यवतीसुतः।
निःश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनाः सम्बभूव ह॥ २१
विचार्य मनसात्यर्थं कृत्वा मनसि निश्चयम्।
जगाम च तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसन्निधौ॥ २२
मनसा चिन्तयामास कं देवं समुपास्महे।
वरप्रदाननिपुणं वाञ्छितार्थप्रदं तथा॥ २३
विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम्।
गणेशं कार्तिकेयं च पावकं वरुणं तथा॥ २४
एवं चिन्तयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः।
यदृच्छया समायातो वीणापाणिः समाहितः॥ २५
तं दृष्ट्वा परमप्रीतो व्यासः सत्यवतीसुतः।
कृत्वार्घ्यमासनं दत्त्वा पप्रच्छ कुशलं मुनिम्॥ २६
श्रुत्वाथ कुशलप्रश्नं पप्रच्छ मुनिसत्तमः।
चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायन वदस्व मे॥ २७

व्यास उवाच

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसे यतः।
तदर्थं दुःखितश्चाहं चिन्तयामि पुनः पुनः॥ २८
तपसा तोषयाम्यद्य कं देवं वाञ्छितार्थदम्।
इति चिन्तातुरोऽस्म्यद्य त्वामहं शरणं गतः॥ २९

रोगावस्थामें तथा मरणकालमें भूमि-शय्यापर पड़ा हुआ सन्तानहीन प्राणी दुःखित होकर अपने मनमें विचार करता है कि मेरे घरमें पर्याप्त धन है, अनेक प्रकारके पात्र हैं तथा मेरा यह भवन भी अत्यन्त सुन्दर है; किंतु अब इन सबका स्वामी कौन होगा?॥ १८-१९॥

चूँकि मृत्युकालमें उस प्राणीका मन अति दुःखी होकर भ्रमित होता रहता है, इसलिये उस भ्रान्त मनवाले प्राणीकी दुर्गति अवश्य ही होती है॥ २०॥

इस प्रकार अनेकानेक चिन्तन करके और बार-बार लम्बी तथा गर्म साँसें लेकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीका मन अत्यन्त खिन्न हो गया॥ २१॥

इसके बाद मनमें बहुत सोच-विचार करके अन्ततः दृढ निश्चय करके वे तपश्चर्याके लिये मेरुपर्वतपर चले गये॥ २२॥

उन्होंने मनमें विचार किया कि मैं विष्णु, रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि एवं वरुण—इन देवताओंमें किस देवताकी आराधना करूँ, जो वरप्रदान करनेमें उदार तथा अभीष्ट फलोंको देनेवाला हो॥ २३-२४॥

इस प्रकार व्यासजी विचार कर ही रहे थे कि उसी समय संयोगवश मुनिश्रेष्ठ नारदजी हाथोंमें वीणा धारण किये हुए वहाँ आ गये॥ २५॥

उन्हें देखकर सत्यवतीपुत्र व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्घ्य तथा आसन प्रदान करके उन मुनिसे कुशल-क्षेम पूछा॥ २६॥

कुशल-प्रश्न सुन लेनेके पश्चात् मुनिवर नारदजीने पूछा—हे द्वैपायन! आप किस कारणसे चिन्ताग्रस्त हैं? मुझे बतायें॥ २७॥

व्यासजी बोले—सन्तानहीन व्यक्तिकी सद्गति नहीं होती और कभी भी उसके मनमें सुखानुभूति नहीं होती है। इसी बातको लेकर मैं अत्यन्त दुःखित हूँ और बार-बार यही सोचता रहता हूँ॥ २८॥

मैं अभिलषित फल देनेवाले किस देवताको अपनी तपःसाधनासे प्रसन्न करूँ, इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं [अब इसके समाधानहेतु] आपकी शरणमें हूँ॥ २९॥

सर्वज्ञोऽसि महर्षे त्वं कथयाशु कृपानिधे।
कं देवं शरणं यामि यो मे पुत्रं प्रदास्यति॥ ३०

सूत उवाच

इति व्यासेन पृष्टस्तु नारदो वेदविन्मुनिः।
उवाच परया प्रीत्या कृष्णं प्रति महामनाः॥ ३१

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग यत्त्वं पृच्छसि मामिह।
तमेवार्थं पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः॥ ३२

ध्यानस्थं च हरिं दृष्ट्वा पिता मे विस्मयं गतः।
पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथं जगतः पतिम्॥ ३३

कौस्तुभोद्भासितं दिव्यं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ३४

कारणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम्।
वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः॥ ३५

ब्रह्मोवाच

देवदेव जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो।
तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन॥ ३६

विस्मयोऽयं ममात्यर्थं त्वं सर्वजगतां प्रभुः।
ध्यानयुक्तोऽसि देवेश किं च चित्रमतः परम्॥ ३७

त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्ताहमखिलस्य ह।
त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्त्यत्र तं देवं ब्रूहि मापते॥ ३८

जानाम्यहं जगन्नाथ त्वमादिः सर्वकारणम्।
कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत्॥ ३९

इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदं जगत्।
हरः संहरते काले सोऽपि ते वचने सदा॥ ४०

हे महर्षे! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। हे कृपासिन्धु! आप मुझे शीघ्र ही बतायें कि मैं किस देवताकी शरणमें जाऊँ, जो प्रसन्न होकर मुझे पुत्र प्रदान कर दे॥ ३०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर वेदवेत्ता तथा महामना महर्षि नारद अत्यन्त प्रेमपूर्वक कृष्णद्वैपायनसे कहने लगे॥ ३१॥

नारदजी बोले—हे पराशरतनय! हे महाभाग! आपके द्वारा जो प्रश्न यहाँ मुझसे पूछा गया है, वैसा ही प्रश्न पूर्वकालमें मेरे पिता ब्रह्माजीने मधुसूदन भगवान् विष्णुसे किया था॥ ३२॥

मेरे पिता ब्रह्माजी कौस्तुभमणिकी प्रभासे दीप्तिमान्, शंख-चक्र-गदा और पद्म धारण करनेवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले, चार भुजाओंवाले, श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षःस्थलवाले, सभी लोकोंके कारणस्वरूप, देवाधिदेव, जगद्गुरु, जगदीश्वर, वासुदेव, देवेश, जगत्पति, श्रीनाथ विष्णुको ध्यानमें अवस्थित होकर कठोर तप करते हुए देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने पूछा॥ ३३—३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भूत-भविष्य-वर्तमानके स्वामी! आप किसलिये यह कठोर तपस्या कर रहे हैं? हे जनार्दन! आप किसके ध्यानमें लीन हैं?॥ ३६॥

हे देवेश! [यह देखकर] मैं परम विस्मयमें पड़ गया हूँ कि समस्त विश्वका स्वामी होते हुए भी आप ऐसा ध्यान कर रहे हैं; भला इससे बढ़कर अन्य कौन-सी विचित्र बात होगी!॥ ३७॥

आपके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत होकर मैं सम्पूर्ण लोकोंके कर्ताके रूपमें अधिष्ठित हूँ। हे लक्ष्मीपते! आपसे भी श्रेष्ठतर कौन देवता है? उस देवताको मुझे बताइये॥ ३८॥

हे जगन्नाथ! मैं तो यही जानता हूँ कि आप ही आदिस्वरूप, सबके कारण, निर्माता, पालनकर्ता, संहारक तथा सभी कार्योंको सम्पादित करनेवाले हैं॥ ३९॥

हे महाराज! आपकी इच्छासे ही मैं इस जगत्के रचनाकार्यमें प्रवृत्त होता हूँ और सदा आपके ही आदेशसे शंकरजी प्रलयावस्थामें जगत्का संहार करते हैं॥ ४०॥

सूर्यो भ्रमति चाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः।
अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया॥ ४१

त्वं तु ध्यायसि कं देवं संशयोऽयं महान्मम।
त्वत्तः परं न पश्यामि देवं वै भुवनत्रये॥ ४२

कृपां कृत्वा वदस्वाद्य भक्तोऽस्मि तव सुव्रत।
महतां नैव गोप्यं हि प्रायः किञ्चिदिति स्मृतिः॥ ४३

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिराह प्रजापतिम्।
शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां ब्रवीमि मनोगतम्॥ ४४

यद्यपि त्वां शिवं मां च स्थितिसृष्ट्यन्तकारणम्।
ते जानन्ति जनाः सर्वे सदेवासुरमानुषाः॥ ४५

स्रष्टा त्वं पालकश्चाहं हरः संहारकारकः।
कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियते वेदपारगैः॥ ४६

जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी।
सात्त्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्तिता॥ ४७

तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः।
नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शङ्करः॥ ४८

तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो।
प्रत्यक्षे च परोक्षे च दृष्टान्तं शृणु सुव्रत॥ ४९

शेषे स्वपिमि पर्यङ्के परतन्त्रो न संशयः।
तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः॥ ५०

तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहं सदा।
कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथासुखम्॥ ५१

कदाचिद्दानवैः सार्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम्।
दारुणं देहदमनं सर्वलोकभयङ्करम्॥ ५२

हे ईश! आपकी आज्ञासे ही सूर्य आकाशमें [नियमित रूपसे] भ्रमण करता है, शुभ तथा अशुभ हवा चलती है, अग्नि ताप धारण करती है और मेघ वृष्टि करता है॥ ४१॥

आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं? यह मेरी महती शंका है। मैं तो तीनों लोकोंमें आपसे बढ़कर अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ॥ ४२॥

हे सुव्रत! मैं आपका भक्त हूँ, अतः कृपा करके [अपनी तपस्याका रहस्य] बताइये; क्योंकि यह सर्वविदित है कि महान् लोग अपने भक्तोंसे कुछ भी गोपनीय नहीं रखते हैं॥ ४३॥

ब्रह्माजीका वचन सुनकर भगवान् विष्णु उनसे बोले—हे ब्रह्मन्! आपको अपने मनकी बात बताता हूँ, आप उसे एकाग्रचित्त होकर सुनें॥ ४४॥

यद्यपि सभी देव, दानव और मानव यही जानते हैं कि आप जगत्की रचना, मैं जगत्के पालन और शिवजी जगत्के संहारके परम कारण हैं तथापि वेद-तत्त्वज्ञ विद्वान् यह तर्कना करते हैं कि किसी शक्तिके द्वारा ही आप सृष्टिके कर्ता हैं, मैं भर्ता हूँ और शंकरजी हर्ता हैं॥ ४५-४६॥

जगत्की रचनाके लिये आपमें राजसी शक्ति विद्यमान है, मुझमें सात्त्विकी शक्ति स्थित है तथा शिवजीमें तामसी शक्ति बतायी गयी है॥ ४७॥

उस शक्तिके न रहनेपर आप न तो सृष्टि-रचना कर सकते हैं, न मैं पालन-कार्य करनेमें समर्थ हो सकता हूँ और न तो शंकर संहार कर सकते हैं॥ ४८॥

हे विभो! हम सभी निरन्तर उसी शक्तिके अधीन रहते हैं। हे सुव्रत! अब प्रत्यक्ष तथा परोक्षसे सम्बन्धित दृष्टान्त भी आप सुनिये॥ ४९॥

इसमें कोई संशय नहीं कि मैं परतन्त्र होकर शेष-शय्यापर शयन करता हूँ और उसी शक्तिके अधीन होकर समयपर कालका वशवर्ती होकर मैं शयनसे उठता हूँ॥ ५०॥

उसी शक्तिका अवलम्बन प्राप्तकर मैं सदा तपश्चरण करता रहता हूँ। मैं कभी लक्ष्मीके साथ सुखपूर्वक विहार करता हूँ और कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण, शरीरको चूर्ण कर देनेवाला तथा लोगोंको भयभीत कर देनेवाला युद्ध भी करता हूँ॥ ५१-५२॥

प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम्॥ ५३

तौ कर्णमलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ।
देव देव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ॥ ५४

तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणं तु परात्परम्।
शक्तिरूपं महाभाग किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ५५

यदिच्छः पुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे।
कच्छपः कोलसिंहश्च वामनश्च युगे युगे॥ ५६

न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु सम्भवः।
नाभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु॥ ५७

विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं
को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु।
शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः
करोमि युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः॥ ५८

पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं
गतं धनुर्ज्यास्खलनात्क्व चापि।
त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा
संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः॥ ५९

हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च
प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः।
विडम्बनेयं किल लोकमध्ये
कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम्॥ ६०

तस्मान्नाहं स्वतन्त्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा।
तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरन्तरम्॥ ६१

नातः परतरं किञ्चिज्जानामि कमलोद्भव।

नारद उवाच

इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ॥ ६२

हे धर्मज्ञ! आप यह तो प्रत्यक्ष जानते हैं कि पूर्व समयमें मेरे द्वारा उस महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक भीषण बाहुयुद्ध किया गया था॥ ५३॥

हे देव! कानकी मैलसे उत्पन्न अत्यन्त दुष्ट, मदोन्मत्त तथा अहंकारी मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंका मैंने देवीकी कृपासे ही संहार किया था। हे महाभाग! क्या आप उस समय परात्पर कारणस्वरूपा महाशक्तिको नहीं जान पाये थे? अतः बार-बार क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५४-५५॥

उसी शक्तिकी इच्छासे मैं परमपुरुषके रूपमें महासागरमें विचरण करता हूँ और विभिन्न युगोंमें कच्छप, वराह, नृसिंह तथा वामनके रूपमें अवतरित होता रहता हूँ॥ ५६॥

तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होना किसीके लिये भी प्रिय नहीं होता। मैं अपनी इच्छासे वामन, वराह आदि योनियोंमें उत्पन्न नहीं होता हूँ। [अपितु इसमें उसी शक्तिकी प्रेरणा ही परम कारण है]॥ ५७॥

भला ऐसा कौन होगा, जो लक्ष्मीके साथ सुखदायक विहारका त्याग करके मत्स्यादि नीच योनियोंमें जन्म लेगा? यदि मैं स्वतन्त्र होता तो [सुखदायिनी] शय्याको छोड़कर गरुडरूपी आसनपर बैठकर महाभयंकर युद्ध क्यों करता!॥ ५८॥

हे अज! प्राचीन कालमें एक बार आपके समक्ष ही धनुषकी प्रत्यंचा टूट जानेके कारण मेरा सिर छिन्न हो गया था। तब शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ आपने फिरसे मेरे धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ दिया था॥ ५९॥

हे लोकनिर्माता! उसी समयसे मैं 'हयग्रीव' नामसे लोकप्रसिद्ध हुआ, यह सब आपके सामने घटित हुआ था। यदि मैं स्वाधीन होता तो संसारमें यह विडम्बना कैसे होती?॥ ६०॥

अतएव मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अपितु सर्वथा उसी शक्तिके अधीन हूँ। मैं निरन्तर उसी शक्तिका ध्यान करता रहता हूँ। हे कमलोद्भव! मैं इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं जानता॥ ६१ १/२॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा था। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे पिता

तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुङ्गव।
तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे॥ ६३

असंशयं हृदम्भोजे भज देवीपदाम्बुजम्।
सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव॥ ६४

सूत उवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः।
देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ॥ ६५

ब्रह्माजीने वे सब बातें मुझसे कही थीं। अतः आप भी कल्याणकारी पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे सर्वथा संशयरहित होकर अपने हृदयकमलमें देवी भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान कीजिये। वे देवी आपके समस्त अभिलषित फलोंको अवश्य प्रदान करेंगी॥ ६२-६४॥

सूतजी बोले—नारदजीके ऐसा कहनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी देवीके चरणारविन्दमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए तपश्चर्याहेतु पर्वतपर चले गये॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
देवीसर्वोत्तमेतिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा

ऋषय ऊचुः

सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे।
यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम्॥ १

यन्मूर्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम्।
हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः॥ २

वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः।
आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारणकारणः॥ ३

तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा।
तत्सर्वं कथयाशु त्वं विस्तरेण महामते॥ ४

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः समन्ततः।
चरितं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः॥ ५

कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः।
दशवर्षसहस्राणि परिश्रान्तो जनार्दनः॥ ६

समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः।
अवलम्ब्य धनुः सज्यं कण्ठदेशे धरास्थितम्॥ ७

दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामाप रमापतिः।
श्रान्तत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः॥ ८

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमारा चित्त सन्देहरूपी सागरमें पूर्णतः डूबता जा रहा है; क्योंकि आपने महान् आश्चर्यजनक तथा संसारको विस्मित कर देनेवाली यह बात कह दी कि विष्णुके शरीरसे उनका सिर अलग हो गया था और वे सर्वपालक जनार्दन पुनः हयग्रीव हो गये थे॥ १-२॥

वेद भी जिन भगवान् विष्णुका स्तवन करते हैं, समस्त देवता जिनका आश्रय ग्रहण करते हैं, जो आदिदेव हैं, जगत्के स्वामी हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं; दैवयोगसे उनका भी मस्तक कैसे कट गया? हे महामते! वह सब आप हमसे विस्तारपूर्वक शीघ्र कहिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभी लोग एकाग्रचित्त होकर परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णुका चरित्र सुनिये॥ ५॥

किसी समय वे सनातन देव विष्णु दस हजार वर्षोंतक भीषण युद्ध करके अत्यन्त थक गये थे॥ ६॥

तदनन्तर एक समतल तथा शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर कण्ठप्रदेश (गर्दन) टिकाये हुए उस धनुषकी नोंकपर भार देकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु सो गये और थकावटके कारण दैवयोगसे उन्हें गहरी नींद आ गयी॥ ७-८॥

तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः।
ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः॥ ९

गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम्।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम्॥ १०

अदृष्ट्वा तं तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते।
यत्रास्ते भगवान् विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः॥ ११

ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशं गतम्।
विचेतनं विभुं विष्णुं तत्रासांचक्रिरे सुराः॥ १२

स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥ १३

तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यश्चिन्तयन्तु सुरोत्तमाः॥ १४

तमुवाच तदा शम्भुर्निद्राभङ्गेऽस्ति दूषणम्।
कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः॥ १५

उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम्॥ १६

भक्षितेऽग्रे तदा निम्नं गमिष्यति शरासनम्।
तदा निद्राविमुक्तोऽसौ देवदेवो भविष्यति॥ १७

देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः।
स वम्रीं संदिदेशाथ देवदेवः सनातनः॥ १८

तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः॥ १९

निद्राभङ्गः कथाच्छेदो दम्पत्योः प्रीतिभेदनम्।
शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम्॥ २०

कुछ समय बीतनेके बाद ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रसहित सभी देवता यज्ञ करनेको उद्यत हुए। वे सब देवकार्यकी सिद्धिहेतु यज्ञोंके अधिपति जनार्दन भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वैकुण्ठलोक गये॥ ९-१०॥

उस समय उन्हें वहाँ न देखकर वे देवतागण ज्ञान-दृष्टिसे देख करके वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान थे॥ ११॥

वहाँ उन्होंने सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको योग-निद्राके वशीभूत होकर अचेत पड़ा हुआ देखा। तब वे देवगण वहीं रुक गये॥ १२॥

सभी देवताओंके वहाँ रुक जानेके बाद जगत्पति विष्णुको निद्रामग्न देखकर ब्रह्मा-रुद्र आदि प्रमुख देवता अत्यन्त चिन्तित हुए॥ १३॥

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! अब क्या किया जाय? हे श्रेष्ठ देवताओ! अब आप सभी यह विचार करें कि इनकी निद्रा किस प्रकार भंग की जाय?॥ १४॥

तब शिवजीने इन्द्रसे कहा कि इनकी निद्राका भंग करनेसे महान् दोष लगेगा, किंतु हे श्रेष्ठ देवगण! यज्ञकार्य भी अवश्यकरणीय है॥ १५॥

इसके बाद परमेष्ठी ब्रह्माजीने पृथ्वीपर स्थित धनुषके अग्रभागको खा जानेके लिये दीमकका सृजन किया॥ १६॥

[उन्होंने यह सोचा कि] दीमकके द्वारा धनुषका अग्रभाग खा लिये जानेपर धनुष नीचा हो जायगा। तब वे देवाधिदेव विष्णु निद्रामुक्त हो जायँगे। ऐसा होनेपर निस्सन्देह देवताओंका सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः सनातन ब्रह्माजीने दीमकको इस कार्यके लिये आदेश दिया॥ १७-१८॥

तब दीमकने ब्रह्माजीसे कहा कि देवाधिदेव जगद्गुरु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका निद्रा-भंग मैं कैसे करूँ? क्योंकि नींदमें बाधा डालना, कथामें विघ्न पैदा करना, पति-पत्नीके बीच भेद उत्पन्न करना एवं माँ-पुत्रके बीच वैरभाव पैदा करनेके लिये षड्यन्त्र

तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम्।
किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम्॥ २१

सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरुते पातकं किल।
तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव प्रभक्षणम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु।
तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुं बोधय माचिरम्॥ २३

होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति।
तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यं त्वरान्विता॥ २४

सूत उवाच

इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता।
चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाभवत्॥ २५

प्रत्यञ्चायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा।
शब्दः समभवद् घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा॥ २६

ब्रह्माण्डं क्षुभितं सर्वं वसुधा कम्पिता तदा।
समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजन्तवः॥ २७

ववुर्वातास्तथा चोग्राः पर्वताश्च चकम्पिरे।
उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः॥ २८

दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत्।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने॥ २९

एवं चिन्तयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुण्डलः।
गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः॥ ३०

अन्धकारे तदा घोरे शान्ते ब्रह्महरौ तदा।
शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम्॥ ३१

करना ब्रह्महत्याके समान कहा गया है। अतः मैं देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सुख क्यों नष्ट करूँ? हे देव! उस धनुषका अग्रभाग खानेसे मेरा क्या लाभ है, जिसके लिये मैं ऐसा पाप करूँ?॥ १९—२१॥

स्वार्थके वशीभूत होकर ही समस्त लोक पापकार्यमें प्रवृत्त होता है। इसलिये मैं भी इसमें कोई स्वार्थसिद्धि होनेपर ही इसका भक्षण करूँगा॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—सुनो, हमलोग यज्ञमें तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर देंगे। इसलिये तुम अविलम्ब भगवान् विष्णुको जगाकर हमलोगोंका कार्य सम्पन्न कर दो॥ २३॥

होमकार्यमें आहुति प्रदान करते समय जो हव्य आस-पास गिरेगा, उसीको अपना भाग समझना; और अब तुम शीघ्रतापूर्वक हमारा कार्य करो॥ २४॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके अनन्तर दीमकने धरातलपर स्थित धनुषाग्रको शीघ्र ही खा लिया, जिससे धनुषकी डोरी मुक्त हो गयी॥ २५॥

प्रत्यंचाके खुल जानेपर धनुषका वह ऊपरी कोना मुक्त हो गया। इस प्रकार एक भीषण ध्वनि पैदा हुई जिससे वहाँ सभी देवगण भयभीत हो गये, ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, पृथ्वीमें कम्पन होने लगा, सभी समुद्र उद्विग्न हो गये, जलचर जन्तु व्याकुल हो उठे। प्रचण्ड हवाएँ प्रवाहित होने लगीं, पर्वत प्रकम्पित हो उठे, किसी दारुण आपदाके सूचक उल्कापात आदि महान् उपद्रव होने लगे, सूर्य तिरोहित हो गये तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त भयावह हो गयीं। यह सब देखकर देवतालोग चिन्तित होकर सोचने लगे कि इस दुर्दिनमें अब क्या होगा?॥ २६—२९॥

हे तपस्वियो! वे देवतागण ऐसा सोच ही रहे थे कि किरीट-कुण्डलसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सिर [कटकर] कहीं चला गया॥ ३०॥

कुछ समय पश्चात् उस घोर अन्धकारके शान्त हो जानेपर ब्रह्मा और शंकरने भगवान् विष्णुका मस्तकविहीन विलक्षण शरीर देखा॥ ३१॥

दृष्ट्वा कबन्धं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः।
चिन्तासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः॥ ३२

हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम्।
वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन॥ ३३

मायेयं कस्य देवस्य यया तेऽद्य शिरो हृतम्।
अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा॥ ३४

एवं गते त्वयि विभो मरिष्यन्ति च देवताः।
कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे॥ ३५

नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः।
देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते॥ ३६

पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च।
शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम्॥ ३७

न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी।
यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः॥ ३८

क्रन्दमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान्।
बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः॥ ३९

रुदितेन महाभागाः क्रन्दितेन तथापि किम्।
उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथा बुद्धिगोचरः॥ ४०

दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ।
उपायश्च विधातव्यो दैवात्फलति सर्वथा॥ ४१

इन्द्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम्॥ ४२

ब्रह्मोवाच

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत्।
शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं कोऽतिक्रमेत्पुनः॥ ४३

भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ देखकर वे श्रेष्ठ देवता अत्यन्त विस्मित हुए और चिन्तासागरमें निमग्न होकर शोकाकुल हो [इस प्रकार] विलाप करने लगे—॥ ३२॥

हे नाथ! हे प्रभो! यह कैसी विचित्र अलौकिक घटना हो गयी? हे देवाधिदेव! हे सनातन! हम सभी देवताओंके लिये तो यह बात विनाशकारी है॥ ३३॥

यह किस देवताकी माया है, जिसके द्वारा आपके सिरका हरण कर लिया गया। आप तो सर्वदा अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य हैं॥ ३४॥

हे विभो! इस प्रकार आपके चले जानेपर हम देवता तो मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। हमलोगोंके प्रति आपका कैसा स्नेह था। हमलोग स्वार्थके कारण ही रुदन कर रहे हैं॥ ३५॥

संकटकी यह स्थिति न तो दैत्योंने, न यक्षोंने और न राक्षसोंने ही पैदा की है, अपितु हम देवताओंने ही यह विघ्न उत्पन्न किया है; तथापि हे रमापते! इसमें किसका दोष समझा जाय?॥ ३६॥

हम सभी देवता पराश्रित हैं। हम इस समय क्या करें और कहाँ जायँ? हे देवेश! हम मूढ़ बुद्धिवाले देवताओंके लिये अब कहीं भी कोई शरण नहीं है॥ ३७॥

यह कोई सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी माया भी नहीं है, जिसके द्वारा आप मायापति जगद्गुरुका सिर काटा गया है॥ ३८॥

तब शिवसहित समस्त देवताओंको करुण क्रन्दन करते हुए देखकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे महाभागो! अब इस प्रकार क्रन्दनसे क्या लाभ है? इस समय तो विवेकका आश्रय लेकर कोई उपाय करना चाहिये। हे देवेन्द्र! भाग्य एवं पुरुषार्थ—दोनों ही समान श्रेणीके हैं फिर भी उपाय करना ही चाहिये और वह दैवयोगसे ही सफल होता है॥ ३९—४१॥

इन्द्र बोले—अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, मैं तो दैवको श्रेष्ठतर मानता हूँ; क्योंकि हम देवताओंके देखते-देखते विष्णुका सिर कट गया॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—कालद्वारा जो भी शुभाशुभ कर्मोंका फल निर्धारित है, उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; भाग्यका अतिक्रमण कौन कर सकता है?॥ ४३॥

देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः।
यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शम्भुना पुरा॥ ४४

तथैव लिङ्गपातश्च महादेवस्य शापतः।
तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणाम्भसि॥ ४५

सहस्रभगसंप्राप्तिर्दुःखं चैव शचीपतेः।
स्वर्गाद् भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे॥ ४६

एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते।
संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै॥ ४७

चिन्तयन्तु महामायां विद्यादेवीं सनातनीम्।
सा विधास्यति नः कार्यं निर्गुणा प्रकृतिः परा॥ ४८

ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह।
देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये॥ ५०

ब्रह्मोवाच　1 [illegible]

स्तुवन्तु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम्। 1
गूढाङ्गीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम्॥ ५१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वाङ्गसुन्दराः। 2
तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगत्स्थिताम्॥ ५२

वेदा ऊचुः

नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे। 3
निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शङ्करकामदे॥ ५३

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणाः प्राणवतां तथा। 4
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥ ५४

प्रत्येक प्राणी काल-क्रमके अनुसार सुख-दुःख भोगता ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिस प्रकार पूर्वकालमें कालकी प्रेरणासे शंकरजीने मेरा मस्तक काट दिया था, उसी प्रकार शापके कारण शिवजीका लिंग कटकर गिर गया था और उसी प्रकार आज विष्णुका सिर [कटकर] लवणसागरमें जा गिरा है॥ ४४-४५॥

[दैवयोगसे ही] इन्द्रको भी सहस्र भगोंकी प्राप्ति हुई। उन्हें दुःख भोगना पड़ा। वे स्वर्गसे च्युत हो गये और मानसरोवरके कमलमें रहने लगे॥ ४६॥

इस संसारमें जब इन महाभाग देवताओंको भी दुःखका भोग करनेके लिये विवश होना पड़ा तो फिर दुःख भोगनेसे भला कौन वंचित रह सकता है? अतएव आपलोग शोकका परित्याग कर दें और उन महामाया, विद्यारूपा, सनातनी, ब्रह्मविद्या तथा जगत्को धारण करनेवाली देवीका ध्यान कीजिये, जिनके द्वारा यह चराचर सम्पूर्ण त्रिलोक व्याप्त है। वे निर्गुणा परा प्रकृति हमलोगोंका समस्त कार्य सिद्ध कर देंगी॥ ४७—४९॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने कार्यकी सिद्धिकी कामनासे अपने सम्मुख सशरीर विद्यमान वेदोंको आदेश दिया॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—आपलोग समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली, पराम्बा, ब्रह्मविद्या, सनातनी तथा निगूढ़ अंगोंवाली महामायाका स्तवन कीजिये॥ ५१॥

उनका यह वचन सुनकर समस्त सुन्दर अंगोंवाले वेद जगत्की आधारस्वरूपा तथा ज्ञानगम्या उन महामायाकी स्तुति करने लगे॥ ५२॥

वेदोंने कहा—हे देवि! हे महामाये! हे विश्वोत्पत्तिकारिणि! हे शिवे! हे निर्गुणे! हे सर्वभूतेशि! हे शिवकामार्थ-प्रदायिनि माता! आपको नमस्कार है॥ ५३॥

आप सभी प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये पृथ्वीस्वरूपा हैं तथा प्राणधारियोंकी प्राण भी हैं। बुद्धि, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, धृति एवं स्मृति सब कुछ आप ही हैं॥ ५४॥

त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि गायत्री व्याहृतिस्तथा।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया॥ ५५

त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधान-
दक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम्।
विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां
वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम्॥ ५६

ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्र-
वाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः।
ते त्वत्कृताः सन्ति ततो न मुख्या
माता यतस्त्वं स्थिरजङ्गमानाम्॥ ५७

सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं
सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान्।
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः॥ ५८

न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो
न नाम्नां संख्यां ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः।
यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः
कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्धृतमतिः॥ ५९

न देवानां मध्ये भगवति तवानन्तविभवं
विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकासि जननी।
कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि
प्रमाणं त्वेतस्मिन्निगमवचनं देवि विहितम्॥ ६०

निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो
चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति।
कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुण-
प्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम्॥ ६१

ॐकारमें अर्धमात्राके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप गायत्री, भूः, भुवः, स्वः आदि व्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा एवं दया सभी कुछ हैं॥ ५५॥

हे अम्ब! आप तीनों लोकोंके रचना-तन्त्रमें दक्ष, करुणरससे युक्त, सभी प्राणियोंकी माँ, विद्या, कल्याणी, सभी प्राणियोंकी हितसाधिका, सर्वश्रेष्ठ, वाग्बीजमन्त्रमें वास करनेमें निपुण तथा संसारका क्लेश दूर करनेवाली हैं; आपकी हम स्तुति करते हैं॥ ५६॥

ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य तथा सभी भुवनोंके स्वामी आपके द्वारा ही निर्मित किये गये हैं। अतः उनकी अपनी कोई विशेषता नहीं है; आप ही सभी चराचर जगत्‌की माता हैं॥ ५७॥

हे जननि! जब आप जगत्‌की रचनाकी कामना करती हैं, तब आप सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन प्रमुख देवोंका सृजन करती हैं। उन्हींके माध्यमसे एकमात्र आप ही जगत्‌का सृजन, पालन एवं संहारकार्य पूर्ण कराती हैं। हे देवि! आपमें संसारका लेशमात्र भी नहीं रहता॥ ५८॥

हे देवि! सम्पूर्ण संसारमें ऐसा कोई भी निपुण प्राणी नहीं है, जो आपके रूपको जान सके और न तो ऐसा कोई योग्य मनुष्य है, जो आपके नामोंकी संख्याकी गणना करनेमें समर्थ हो। जो थोड़ेसे जलका सन्तरण करनेमें असमर्थ हो, वह बुद्धिसम्पन्न मनुष्य भला महासागरको पार करनेमें कुशल कैसे होगा?॥ ५९॥

हे भगवति! आपके अन्तहीन वैभवको जान सकनेमें देवताओंमें कोई भी समर्थ नहीं है। एकमात्र आप समस्त विश्वकी माता हैं। आप अकेले ही इस सम्पूर्ण मिथ्या जगत्‌की रचना कैसे करती हैं? हे देवि! एकमात्र वेदवाक्य ही आपके इस सृष्टि-कार्यकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं॥ ६०॥

हे भगवति! समग्र जगत्‌की परम कारणस्वरूपा होती हुई भी आप इच्छारहित हैं। अहो! आपका अद्भुत चरित्र हमारे मनको विस्मित कर देता है। समस्त वेदोंसे भी अज्ञेय आपके गुणों एवं प्रभावोंका वर्णन हमलोग भला किस प्रकार कर सकते हैं; क्योंकि स्वयं आप भी अपने परमतत्त्वको नहीं जानतीं॥ ६१॥

न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं
शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः।
हरेः किं वा मातर्दुरिततितिरेषा बलवती 12
भवत्याः पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम्॥ ६२

उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा
हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजनकम्।
महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला 13
न जानीमो मौलेर्विघटनविलम्बः कथमभूत्॥ ६३

ज्ञात्वा दोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते
किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते।
विष्णोर्वा किं समरजनितः कोऽपि गर्वोऽतिवेगा- 14
च्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम्॥ ६४

किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये
घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्याः।
अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि 15
द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः॥ ६५

सिन्धोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये
कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्।
क्षन्तव्यस्ते स्वांशजातापराधो 16
व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व॥ ६६

एते सुरास्त्वां सततं नमन्ति
कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः।
शोकार्णवात्तारय देवि देवा- 17
नुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम्॥ ६७

हे जननि! क्या आप भगवान् विष्णुके शिरोच्छेदनकी घटना नहीं जानती हैं? हे शिवे! अथवा क्या यह जानकर भी आप मधुजित् विष्णुकी शक्तिकी परीक्षा करना चाहती हैं? हे माता! अथवा क्या यह विष्णुके महान् पापसमूहका फल है? किंतु आपके चरणकमलोंका भजन करनेमें निपुण प्राणीसे तो पाप हो ही नहीं सकता॥ ६२॥

हे माता! आप इस देवसमूहकी भारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं? भगवान् विष्णुके मस्तक कटनेकी घटना हमारे लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा महान् कष्टदायक बात है। हे माता! आप जननरूपी दुःखका नाश करनेमें कुशल हैं, अब हम यह नहीं जान पा रहे हैं कि विष्णुके सिर-संयोजनमें विलम्ब क्यों हो रहा है?॥ ६३॥

हे देवि! सभी देवताओंके देवत्वाभिमानरूपी दोषको अपने मनमें समझकर आपने ही ऐसा किया है, अथवा देवजन्य दुष्कृतको विष्णुमें स्थापित किया है, अथवा विष्णुको संग्राम-विजय करनेका अहंकार हो गया था, जिसे अतिशीघ्र दूर करनेके लिये आपने यह लीला रची है। हे माता! हम आपके मनोभावोंको समझनेमें पूर्णतया असमर्थ हैं॥ ६४॥

हे भगवति! अथवा युद्धमें पराभूत किये गये दैत्योंने किसी मनोहर तीर्थमें घोर तपस्या करके आपसे वरदान प्राप्त कर लिया है, जो विष्णुके सिर कटनेका कारण बना। हे भवानि! अथवा विष्णुको सिरविहीनरूपमें देखनेके लिये आप इस समय कोई विनोद कर रही हैं॥ ६५॥

हे आद्ये! आप सिंधुसुता लक्ष्मीपर किसी कारणसे आक्रोशित तो नहीं हैं। आप उन्हें स्वामीविहीन किसलिये देखना चाह रही हैं? आप अपने ही अंशसे प्रादुर्भूत लक्ष्मीका अपराध क्षमा करें और भगवान् विष्णुको जीवनदान देकर रमाको प्रसन्न कर दें॥ ६६॥

जगत्के समस्त कार्योंको सम्पादित करनेमें प्रमुख भूमिकावाले अतिशय प्रभावशाली ये देवता आपको निरन्तर नमस्कार करते हैं। हे देवि! सर्वलोकाधिपति विष्णुको जीवित करके आप देवताओंको शोकसागरसे पार कीजिये॥ ६७॥

मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो
नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य।
यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा
तथा जगज्जीवितदासि देवि॥ ६८ 18

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी। 19
प्रसन्ना परमा माया वेदैः साङ्गैश्च सामगैः॥ ६९

तानुवाच तदा वाणी चाकाशस्थाशरीरिणी। 20
देवान्प्रति सुखैः शब्दैर्जनानन्दकरी शुभा॥ ७०

मा कुरुध्वं सुराश्चिन्तां स्वस्थास्तिष्ठन्तु चामराः। 21
स्तुताहं निगमैः कामं सन्तुष्टास्मि न संशयः॥ ७१

यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम्। 22
पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ७२

शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं
भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः।
विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च 23
वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम्॥ ७३

शृण्वन्तु कारणं चाद्य यद्गतं वदनं हरेः।
अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति॥ ७४

उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामन्तिके प्रियाम्।
जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम्॥ ७५

तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः।
विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना॥ ७६

विनापि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य सम्भवः।
सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी॥ ७७

हे अम्ब! भगवान् विष्णुका सिर छिन्न होकर कहाँ चला गया—यह हम नहीं जानते हैं और इस समय इन्हें जीवित करनेके लिये अन्य कोई युक्ति भी नहीं सूझ रही है। हे देवि! मृत प्राणीको जीवित करनेमें जिस प्रकार अमृत समर्थ है, उसी प्रकार समग्र संसारकी आप जीवनदात्री हैं॥ ६८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार सामगान-निपुण सांगवेदोंद्वारा स्तुति किये जानेसे गुणातीता, महेश्वरी, परात्परा महामाया भगवती प्रसन्न हो गयीं॥ ६९॥

उसी समय देवताओंको सुख प्रदान करनेवाले शब्दोंसे युक्त और भक्तजनोंको आनन्दित करनेवाली आकाशस्थित अशरीरिणी शुभ वाणीने उनसे कहा॥ ७०॥

हे देवताओ! आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें और स्वस्थचित्त रहें। हे अमरगण! इन वेदोंके भावपूर्ण स्तवनसे मैं परम प्रसन्न हो गयी हूँ, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ७१॥

मनुष्यलोकमें जो प्राणी इस स्तुतिसे मेरी आराधना करेगा अथवा भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी॥ ७२॥

जो मनुष्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) मेरी स्तुतिको नित्य भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह सभी दुःखोंसे विमुक्त होकर परम सुखी हो जायगा। वेदोंद्वारा उच्चारित किये जानेके कारण यह स्तुति वेदोंके समान ही है॥ ७३॥

हे देवो! अब आप विष्णुके शिरोच्छेदका कारण सुनिये; क्योंकि इस लोकमें बिना कारण कोई कार्य कैसे हो सकता है?॥ ७४॥

एक बार अपने समीप बैठी हुई अपनी प्रियतमा सागरपुत्री लक्ष्मीका चित्ताकर्षक मुख देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े॥ ७५॥

उन्होंने सोचा कि भगवान् विष्णु मुझे देखकर क्यों हँस पड़े? मेरे मुखमें विष्णुजीद्वारा दोष देखे जानेका आखिर क्या कारण हो सकता है? और फिर बिना किसी कारणके उनका हँसना सम्भव नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी अन्य सुन्दर स्त्रीको मेरी सौत बना लिया है॥ ७६-७७॥

ततः कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा।
तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत्॥ ७८

केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये।
प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा॥ ७९

तामस्याविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा।
शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः॥ ८०

स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः।
अविचार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः॥ ८१

सपत्नीसम्भवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति।
विचिन्त्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः॥ ८२

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ ८३

सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा।
शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणाम्बुधौ॥ ८४

अन्यच्च कारणं किञ्चिद्वर्तते सुरसत्तमाः।
भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः॥ ८५

पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽतिविश्रुतः।
तपश्चक्रे सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम्॥ ८६

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं मायाबीजात्मकं मम।
निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः॥ ८७

ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम्।
एवं वर्षसहस्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम्॥ ८८

इसी विचार-मन्थनके परिणामस्वरूप लक्ष्मीजी कोपाविष्ट हो गयीं और तब उनके शरीरमें तमोगुणसम्पन्न तामसी शक्ति व्याप्त हो गयी॥ ७८॥

तदनन्तर किसी दैवयोगके प्रभावसे देवताओंके कार्य-साधनके उद्देश्यसे ही उनके शरीरमें अत्यन्त उग्र तामसी शक्ति प्रविष्ट हुई॥ ७९॥

तब लक्ष्मीजीके शरीरमें तामसी शक्तिका समावेश हो जानेके कारण वे अत्यन्त क्रोधित हो उठीं और उन्होंने मन्द स्वरमें यह कहा—'तुम्हारा यह सिर कटकर गिर जाय'॥ ८०॥

स्त्रीस्वभावके कारण, भावीवश तथा संयोगसे बिना सोचे-समझे ही लक्ष्मीजीने अपने ही सुखको विनष्ट करनेवाला शाप दे दिया। सौतके व्यवहारादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख वैधव्यसे भी बढ़कर होता है। मनमें ऐसा सोचकर तथा शरीरपर तामसी शक्तिका प्रभाव रहनेके कारण उन्होंने ऐसा कह दिया था॥ ८१-८२॥

मिथ्याचरण, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता तथा दयाहीनता—ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं॥ ८३॥

अब मैं उन वासुदेवको पूर्वकी भाँति सिरयुक्त कर देती हूँ। इनका सिर पूर्वशापके कारण लवणसागरमें डूब गया है॥ ८४॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! इस घटनाके होनेमें एक अन्य भी कारण है। आपलोगोंका महान् कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८५॥

प्राचीन कालमें महाबाहु एवं अति प्रसिद्ध हयग्रीव नामवाला एक दानव था, जो सरस्वतीनदीके तटपर बहुत कठोर तपस्या करने लगा॥ ८६॥

वह दैत्य आहारका त्यागकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके तथा सभी प्रकारके भोगैश्वर्यसे दूर रहते हुए मेरे मायाबीजात्मक एकाक्षर मन्त्र (ह्रीं)-का जप करता रहा॥ ८७॥

इस प्रकार समस्त आभूषणोंसे विभूषित मेरी तामसी शक्तिका सतत ध्यान करता हुआ वह एक हजार वर्षोंतक कठोर तप करता रहा॥ ८८॥

तदाहं तामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता।
दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम्॥ ८९

सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता।
वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत॥ ९०

इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः।
प्रदक्षिणां प्रणामं च चकार त्वरितस्तदा॥ ९१

दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः।
हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा॥ ९२

हयग्रीव उवाच

नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे॥ ९३

धराम्बुतेजःपवनखपञ्चानां च कारणम्।
त्वं गन्धरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः॥ ९४

घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रमिन्द्रियाणि च।
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि त्वत्तः सर्वं महेश्वरि॥ ९५

देव्युवाच

किं तेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वाञ्छितं यद्ददामि तत्।
परितुष्टास्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च॥ ९६

हयग्रीव उवाच

यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथा कुरु।
भवेयममरो योगी तथाजेयः सुरासुरैः॥ ९७

देव्युवाच

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा॥ ९८

एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम।
वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल॥ ९९

उस समय उस दैत्यने जिस रूपमें मेरा ध्यान किया था, उसी तामसरूपमें उसे दर्शन देनेहेतु उसके समक्ष मैं प्रकट हुई॥ ८९॥

उस समय सिंहपर आरूढ़ हुई मैंने दयापूर्वक उससे कहा—हे महाभाग! तुम वरदान माँगो; हे सुव्रत! मैं तुम्हें यथेच्छ वरदान दूँगी॥ ९०॥

वह दानव देवीका यह वचन सुनकर प्रेमविह्वल हो उठा और उसने तत्काल प्रणाम और प्रदक्षिणा की। मेरा रूप देखते ही प्रेमभावनाके कारण प्रफुल्लित नेत्रोंवाला तथा हर्षातिरेकके कारण अश्रुपूरित नयनोंवाला वह दानव मेरी स्तुति करने लगा॥ ९१-९२॥

हयग्रीव बोला—हे महामाये! हे जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली! हे भक्तोंपर कृपा करनेमें निपुण! हे सकल कामनाप्रदायिनि! हे मोक्षदायिनि! हे शिवे! आप देवीको नमस्कार है॥ ९३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँच महाभूतोंका कारण आप ही हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—इन तत्त्वोंका कारण भी आप ही हैं॥ ९४॥

हे महेश्वरि! नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान—ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पैर, वाक्, लिंग, गुदा—ये कर्मेन्द्रियाँ आपसे ही उत्पन्न हैं॥ ९५॥

देवी बोलीं—तुम्हारा क्या अभीष्ट है? जो कुछ भी तुम्हारा अभिलषित वर हो, माँग लो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति तथा अद्भुत तपस्यासे अतिशय प्रसन्न हूँ॥ ९६॥

हयग्रीव बोला—हे माता! आप मुझे वैसा वरदान दें, जिससे मेरी मृत्यु कभी न हो और देव-दानवोंद्वारा अपराजेय रहता हुआ मैं सदाके लिये अमर योगी हो जाऊँ॥ ९७॥

देवी बोलीं—जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। लोकमें स्थापित इस प्रकारकी मर्यादाका उल्लंघन कैसे सम्भव है?॥ ९८॥

अतएव हे दानवश्रेष्ठ! मृत्युको अवश्यम्भावी जानकर अपने मनमें सम्यक् विचार करके तुम अन्य यथेच्छ वर माँग लो॥ ९९॥

हयग्रीव उवाच

हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदम्बिके।
इति मे वाञ्छितं कामं पूरयस्व मनोगतम्॥ १००

देव्युवाच

गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यं यथासुखम्।
हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भविष्यति॥ १०१

इति दत्त्वा वरं तस्मा अन्तर्धानं गता तथा।
मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः॥ १०२

स पीडयति दुष्टात्मा मुनीन् वेदांश्च सर्वशः।
न कोऽपि विद्यते तस्य हन्ताद्य भुवनत्रये॥ १०३

तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम्।
देहेऽत्र विशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति॥ १०४

हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तमासुरम्।
पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया॥ १०५

सूत उवाच

एवं सुरांस्तदाभाष्य शर्वाणी विरराम ह।
देवास्तदातिसन्तुष्टास्तमूचुर्देवशिल्पिनम्॥ १०६

देवा ऊचुः

कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम्।
दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति॥ १०७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः।
वाजिशीर्षं चकर्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ॥ १०८

विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम्।
हयग्रीवो हरिर्जातो महामायाप्रसादतः॥ १०९

कियता तेन कालेन दानवो मददर्पितः।
निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा॥ ११०

य इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुवि मानवाः।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते भवन्ति न संशयः॥ १११

हयग्रीव बोला—हे जगदम्बे! मेरी मृत्यु हयग्रीवसे ही हो, किसी अन्यसे नहीं। मेरी इसी मनोवांछित कामनाको आप पूर्ण करें॥ १००॥

देवी बोलीं—हे महाभाग! अपने घर जाकर अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो। हयग्रीवके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी तुम्हारी कदापि मृत्यु नहीं होगी॥ १०१॥

उस दैत्यको यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और वह भी परम प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १०२॥

वह दुष्टात्मा इस समय मुनिजनों तथा वेदोंको हर प्रकारसे पीड़ित कर रहा है और तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसका संहार कर सके॥ १०३॥

अतः त्वष्टा इस अश्वका मनोहर सिर अलग करके उसे इन सिरविहीन विष्णुके धड़पर संयोजित कर देंगे॥ १०४॥

तत्पश्चात् देवताओंके कल्याणार्थ भगवान् हयग्रीव उस पापात्मा, अत्यन्त क्रूर तथा दानवी स्वभाववाले महा असुर हयग्रीवका संहार करेंगे॥ १०५॥

सूतजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहकर भगवती शान्त हो गयीं और इसके बाद देवगण परम सन्तुष्ट होकर देवशिल्पी विश्वकर्मासे बोले॥ १०६॥

देवताओंने कहा—आप विष्णुके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़कर देवताओंका कार्य कीजिये। वे भगवान् हयग्रीव ही दानवश्रेष्ठ दैत्यका वध करेंगे॥ १०७॥

सूतजी बोले—देवताओंका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने अतिशीघ्रतापूर्वक अपने खड्गसे देवताओंके सामने ही घोड़ेका सिर काटा। तत्पश्चात् उन्होंने घोड़ेका वह सिर अविलम्ब विष्णुभगवान्‌के शरीरमें संयोजित कर दिया और इस प्रकार महामाया भगवतीकी कृपासे वे भगवान् विष्णु हयग्रीव हो गये॥ १०८-१०९॥

कुछ समय बाद उन भगवान् हयग्रीवने अहंकारके मदमें चूर उस देवशत्रु दानवका युद्धभूमिमें अपने तेजसे वध कर दिया॥ ११०॥

इस संसारमें जो प्राणी इस पवित्र कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ १११॥

महामायाचरित्रञ्च पवित्रं पापनाशनम्।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वसम्पत्तिकारकम्॥ ११२

महामाया भगवतीका चरित्र अति पावन है तथा पापोंका नाश कर देता है। इस चरित्रका पाठ तथा श्रवण करनेवाले प्राणियोंको सभी प्रकारकी सम्पदाएँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं॥ ११२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे हयग्रीवावतारकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~०~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना

ऋषय ऊचुः

सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे।
मधुकैटभयोः सार्धं पञ्चवर्षसहस्त्रकम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! आपने मधु और कैटभके साथ भगवान् विष्णुद्वारा महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किये जानेकी पहले चर्चा की थी॥ १॥

कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्नेकार्णवे जले।
महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ॥ २

महावीर्यसम्पन्न, किसीसे भी पराभूत न होनेवाले तथा देवताओंसे भी अपराजेय वे दोनों दानव उस एकार्णवके जलमें किससे प्रादुर्भूत हुए?॥ २॥

कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ।
तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम्॥ ३

वे असुर क्यों उत्पन्न हुए तथा भगवान्‌के द्वारा उनका वध क्यों किया गया? हे महामते! आप यह परम अद्भुत आख्यान हमको सुनाइये॥ ३॥

श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः।
दैवाच्चात्रैव संजातः संयोगश्च तथावयोः॥ ४

हमलोग यह कथा सुननेको इच्छुक हैं और आप अति प्रसिद्ध वक्ता हैं। हमारा और आपका यह सम्पर्क दैवयोगसे ही हुआ है॥ ४॥

मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः॥ ५

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है और इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है॥ ५॥

जीवन्ति पशवः सर्वे खादन्ति मेहयन्ति च।
जानन्ति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम्॥ ६

न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः।
पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः॥ ७

पशु भी जीवनयापन करते हैं, वे भी आहार ग्रहण करते हैं, मल-मूत्रादिका विसर्जन करते हैं और विषयासक्त होकर इन्द्रियजन्य सुखकी अनुभूति करते हैं; किंतु उनमें अच्छे-बुरेका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता तथा वे मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले विवेकसे भी रहित होते हैं। अतएव उत्तम बातोंको सुननेमें जो लोग श्रद्धा-भाव नहीं रखते, उन्हें पशु-तुल्य ही समझना चाहिये॥ ६-७॥

मृगाद्याः पशवः केचिज्जानन्ति श्रावणं सुखम्।
अश्रोत्राः फणिनश्चैव मुमुहुर्नादपानतः॥ ८

पञ्चानामिन्द्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने।
श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरञ्जनम्॥ ९

श्रवणं त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकं राजसं तथा।
तामसं च महाभाग सुज्ञोक्तं निश्चयान्वितम्॥ १०

सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम्।
तामसं युद्धवार्ता च परदोषप्रकाशनम्॥ ११

सात्त्विकं त्रिविधं प्रोक्तं प्रज्ञावद्भिश्च पण्डितैः।
उत्तमं मध्यमं चैव तथैवाधममित्युत॥ १२

उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा।
अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः॥ १३

साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाधमम्॥ १४

तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः।
आततायिनियुद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम्॥ १५

मध्यमं चापि विद्वेषात्पाण्डवानां तथारिभिः।
अधमं निर्निमित्तं तु विवादे कलहे तथा॥ १६

तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महामते।
बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम्॥ १७

तदाख्याहि महाबुद्धे कथां पौराणिकीं शुभाम्।
श्रुतां द्वैपायनात्पूर्वं सर्वार्थस्य प्रसाधिनीम्॥ १८

मृग आदि बहुत-से पशु श्रवण-सुखका अनुभव करते हैं और कानविहीन सर्प भी ध्वनि सुनकर मुग्ध हो जाते हैं॥ ८॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंमें श्रवणेन्द्रिय तथा दर्शनेन्द्रिय—दोनों ही शुभ होती हैं; क्योंकि सुननेसे वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त होता है और देखनेसे मनोरंजन होता है॥ ९॥

हे महाभाग! विद्वानोंने निर्धारित करके कहा है कि सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदानुसार श्रवण तीन प्रकारका होता है॥ १०॥

वेद-शास्त्रादिका श्रवण सात्त्विक, साहित्यका श्रवण राजस तथा युद्धसम्बन्धी बातों एवं दूसरोंकी निन्दाका श्रवण तामस कहा गया है॥ ११॥

प्रज्ञावान् पण्डितोंद्वारा सात्त्विक श्रवणके भी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन प्रकार बताये गये हैं॥ १२॥

उत्तम श्रवण मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला, मध्यम श्रवण स्वर्ग देनेवाला तथा अधम श्रवण भोगोंकी उपलब्धि करानेवाला कहा गया है। विद्वानोंने अच्छी तरह सोच-समझकर ऐसा निर्धारण किया है॥ १३॥

साहित्य भी तीन प्रकारका होता है। जिस साहित्यमें स्वकीया नायिकाका वर्णन हो वह उत्तम, जिस साहित्यमें वेश्याओंका वर्णन हो वह मध्यम तथा जिस साहित्यमें परस्त्रीवर्णन हो, वह अधम साहित्य कहा गया है॥ १४॥

शास्त्रोंके परम निष्णात विद्वानोंने तामस श्रवणके तीन भेद बतलाये हैं। किसी पापाचारीके संहारसे सम्बन्धित युद्धवर्णनका श्रवण उत्तम, कौरव-पाण्डवोंकी तरह द्वेषके कारण शत्रुतामें युद्धवर्णनका श्रवण मध्यम तथा अकारण विवाद एवं कलहसे हुए युद्धके वर्णनका श्रवण अधम कहा गया है॥ १५-१६॥

हे महामते! इनमें पुराणोंके श्रवणकी ही प्रधानता मानी गयी है; क्योंकि इनके श्रवणसे बुद्धिका विकास होता है, पुण्य प्राप्त होता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

अतएव हे महामते! पूर्वकालमें द्वैपायन महर्षि व्याससे सुनी हुई समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाली परम पवित्र पौराणिक कथा कहिये॥ १८॥

सूत उवाच

यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं पृथिवीतले।
येषां श्रवणबुद्धिश्च ममापि कथने किल॥ १९

पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये।
शेषपर्यङ्कसुप्ते च देवदेवे जनार्दने॥ २०

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ।
महाबलौ च तौ दैत्यौ विवृद्धौ सागरे जले॥ २१

क्रीडमानौ स्थितौ तत्र विचरन्तावितस्ततः।
तावेकदा महाकायौ क्रीडासक्तौ महार्णवे॥ २२

चिन्तामवापतुश्चित्ते भ्रातराविव संस्थितौ।
नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परम्परा॥ २३

आधेयं तु विनाधारं न तिष्ठति कथञ्चन।
आधाराधेयभावस्तु भाति नो चित्तगोचरः॥ २४

क्व तिष्ठति जलं चेदं सुखरूपं सुविस्तरम्।
केन सृष्टं कथं जातं मग्नावावाञ्जले स्थितौ॥ २५

आवां वा कथमुत्पन्नौ केन वोत्पादितावुभौ।
पितरौ क्वेति विज्ञानं नास्ति कामं तथावयोः॥ २६

सूत उवाच

एवं कामयमानौ तौ जग्मतुर्न विनिश्चयम्।
उवाच कैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितं जले॥ २७

कैटभ उवाच

मधो वामत्र सलिले स्थातुं शक्तिर्महाबला।
वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता॥ २८

तया ततमिदं तोयं तदाधारं च तिष्ठति।
सा एव परमा देवी कारणञ्च तथावयोः॥ २९

सूतजी बोले—हे महाभाग! इस पृथ्वीलोकमें आप-लोग धन्य हैं और मैं भी धन्य हूँ; क्योंकि आपलोगोंमें कथा-श्रवणके प्रति और मुझमें कथा-वाचनके प्रति विवेक जाग्रत् हुआ है॥ १९॥

पूर्वकालमें प्रलयावस्थामें जब तीनों लोक महाजलराशिमें विलीन हो गये और देवाधिदेव भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर सो गये तब विष्णुके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए और वे महाबली दैत्य उस महासागरमें बढ़ने लगे॥ २०-२१॥

वे दोनों दैत्य क्रीडा करते हुए उसी सागरमें इधर-उधर भ्रमण करते रहे। एक बार क्रीडापरायण विशाल शरीरवाले उन दोनों भाइयोंने विचार किया कि बिना किसी कारणके कोई भी कार्य नहीं होता; यह एक सार्वत्रिक परम्परा है॥ २२-२३॥

बिना किसी आधारके आधेयकी सत्ता कदापि सम्भव नहीं है; अतः आधार-आधेयका भाव हमारे मनमें बार-बार आता रहता है॥ २४॥

अति विस्तारवाला तथा सुखद यह जल किस आधारपर स्थित है? किसने इसका सृजन किया? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इस जलमें निमग्न हमलोग कैसे स्थित हैं?॥ २५॥

हम दोनों कैसे पैदा हुए और किसने हम दोनोंको उत्पन्न किया? हमारे माता-पिता कौन हैं?—इस बातका भी कोई ज्ञान हम दोनोंको नहीं है॥ २६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँचे, तब कैटभने जलके भीतर अपने पास स्थित मधुसे कहा॥ २७॥

कैटभ बोला—हे भाई मधु! हम दोनोंके इस जलमें स्थित रहनेका कारण कोई अचल महाबली शक्ति है, ऐसा ही मैं मानता हूँ॥ २८॥

उसीसे समुद्रका सम्पूर्ण जल व्याप्त है और उसी शक्तिके आधारपर यह जल टिका हुआ है तथा वे ही परात्परा देवी हम दोनोंकी भी स्थितिका कारण हैं॥ २९॥

एवं विबुध्यमानौ तौ चिन्ताविष्टौ यदासुरौ।
तदाकाशे श्रुतं ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम्॥ ३०

गृहीतं च ततस्ताभ्यां तस्याभ्यासो दृढः कृतः।
तदा सौदामनी दृष्टा ताभ्यां खे चोत्थिता शुभा॥ ३१

ताभ्यां विचारितं तत्र मन्त्रोऽयं नात्र संशयः।
तथा ध्यानमिदं दृष्टं गगने सगुणं किल॥ ३२

निराहारौ जितात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ।
बभूवतुर्विचिन्त्यैवं जपध्यानपरायणौ॥ ३३

एवं वर्षसहस्रं तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः।
प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमा तयोः॥ ३४

खिन्नौ तौ दानवौ दृष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ।
तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचाशरीरिणी॥ ३५

वरं वां वाञ्छितं दैत्यौ ब्रूतं परमसम्मतम्।
ददामि परितुष्टास्मि युवयोस्तपसा किल॥ ३६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा।
स्वेच्छया मरणं देवि वरं नौ देहि सुव्रते॥ ३७

वागुवाच

वाञ्छितं मरणं दैत्यौ भवेद्वां मत्प्रसादतः।
अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नात्र संशयः॥ ३८

सूत उवाच

इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मददर्पितौ।
चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ॥ ३९

कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यां यदृच्छया।
दृष्टः प्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः॥ ४०

इस प्रकार विविध चिन्तन करते हुए वे दोनों दानव जब सचेत हुए तब उन्हें आकाशमें अत्यन्त मनोहारी वाग्बीजस्वरूप (ऐं) वाणी सुनायी पड़ी॥ ३०॥

उसे सुनकर उन दोनोंने सम्यक् रूपसे हृदयंगम कर लिया और वे उसका दृढ़ अभ्यास करने लगे। तदनन्तर उन्हें आकाशमें कौंधती हुई सुन्दर विद्युत् दिखलायी पड़ी॥ ३१॥

तब उन्होंने सोचा कि निःसन्देह यह मन्त्र ही है और यह सगुण ध्यान ही आकाशमें प्रत्यक्ष दृष्टिगत हुआ है॥ ३२॥

तदनन्तर वे दोनों दैत्य आहारका परित्यागकर इन्द्रियोंको आत्मनियन्त्रित करके उसी विद्युज्ज्योतिमें मन केन्द्रित किये हुए समाधिस्थ भावसे जप-ध्यान करनेमें लीन हो गये॥ ३३॥

इस प्रकार उन दोनोंने एक हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या की, जिससे वे परात्परा शक्ति उन दोनोंपर अतिशय प्रसन्न हो गयीं॥ ३४॥

घोर तपस्याके लिये अपने निश्चयपर दृढ़ रहनेवाले उन दोनों दानवोंको अत्यन्त परिश्रान्त देखकर उनपर कृपाके निमित्त यह आकाशवाणी हुई॥ ३५॥

हे दैत्यो! तुम दोनोंकी कठोर तपश्चर्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ। अतएव तुम दोनों अपना मनोवांछित वरदान माँगो; मैं अवश्य दूँगी॥ ३६॥

सूतजी बोले—तदनन्तर उस आकाशवाणीको सुनकर उन दानवोंने कहा—हे देवि! हमारी मृत्यु हमारे इच्छानुसार हो; हे सुव्रते! हमें आप यही वरदान दीजिये॥ ३७॥

वाणीने कहा—हे दैत्यो! मेरी कृपासे अब तुम दोनों अपनी इच्छासे ही मृत्युको प्राप्त होओगे। दानव और देवता कोई भी तुम दोनों भाइयोंको पराजित नहीं कर सकेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

सूतजी बोले—भगवतीसे ऐसा वरदान प्राप्तकर वे दोनों दैत्य मदोन्मत्त होकर उस महासागरमें जलचर जीवोंके साथ क्रीड़ातत्पर हो गये॥ ३९॥

हे विप्रो! कुछ समय व्यतीत होनेपर उन दानवोंने संयोगवश जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीको कमलके आसनपर बैठे हुए देखा॥ ४०॥

दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ।
तमूचतुस्तदा तत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत॥ ४१

नोचेत्पद्मं परित्यज्य यथेष्टं गच्छ माचिरम्।
यदि त्वं निर्बलश्चासि क्व योग्यं शुभमासनम्॥ ४२

वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाशु वै।
तयोरिति वचः श्रुत्वा चिन्तामाप प्रजापतिः॥ ४३

दृष्ट्वा च बलिनौ वीरौ किं करोमीति तापसः।
चिन्ताविष्टस्तदा तस्थौ चिन्तयन्मनसा तदा॥ ४४

उन्हें देखकर युद्धकी लालसासे वे दोनों महाबली दैत्य प्रसन्न हो उठे और ब्रह्माजीसे बोले—हे सुव्रत! आप हमलोगोंके साथ युद्ध कीजिये; अन्यथा यह पद्मासन छोड़कर आप अविलम्ब जहाँ जाना चाहें, वहाँ चले जाइये। यदि आप दुर्बल हैं तो इस शुभ आसनपर बैठनेका आपका अधिकार कहाँ! कोई वीर ही इस आसनका उपभोग कर सकता है। आप कायर हैं, अतः अतिशीघ्र इस आसनको छोड़ दीजिये। उन दोनों दैत्योंकी यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्मा चिन्तामें पड़ गये। तब उन दोनों बलशाली वीरोंको देखकर ब्रह्माजी चिन्ताकुल हो उठे और मन-ही-मन सोचने लगे कि मुझ-जैसा तपस्वी इनका क्या कर सकता है?॥ ४१—४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे मधुकैटभयोर्युद्धोद्योगवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवान् विष्णु तथा भगवती योगनिद्राकी स्तुति करना

सूत उवाच

तौ वीक्ष्य बलिनौ ब्रह्मा तदोपायानचिन्तयत्।
सामदानभिदादींश्च युद्धान्तान्सर्वतन्त्रवित्॥ १

न जानेऽहं बलं नूनमेतयोर्वा यथातथम्।
अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते॥ २

स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः।
प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम्॥ ३

वधिष्यति तदैकोऽपि निर्बलत्वे प्रकाशिते।
दानं नैवाद्य योग्यं वा भेदः कार्यो मया कथम्॥ ४

विष्णुं प्रबोधयाम्यद्य शेषे सुप्तं जनार्दनम्।
चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति॥ ५

इति सञ्चिन्त्य मनसा पद्मनालगतोऽब्जजः।
जगाम शरणं विष्णुं मनसा दुःखनाशकम्॥ ६

सूतजी बोले—तदनन्तर उन दोनों वीरोंको देखकर सर्वशास्त्रवेत्ता ब्रह्माजी साम, दान, भेद आदि नीतियोंके माध्यमसे युद्धकी समाप्तिके उपायोंको सोचने लगे॥ १॥

इनके वास्तविक बलका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। नीतिके अनुसार जिसके बलकी जानकारी न हो, उसके साथ युद्ध करना कदापि उचित नहीं होता॥ २॥

यदि मैं इस समय इन मदोन्मत्त दुष्ट दानवोंकी स्तुति करता हूँ तो इससे स्वयं मेरे द्वारा अपनी निर्बलता प्रकाशित होगी। निर्बलता प्रदर्शित करनेपर इनमेंसे कोई एक ही मेरा वध कर देगा। इनके साथ इस समय मैं न तो दाननीति और न तो भेदनीतिको ही उपयुक्त समझ रहा हूँ। अतः इस समय उचित यही है कि मैं शेषनागपर सोये हुए चतुर्भुज एवं पराक्रमी भगवान् विष्णुको जगाऊँ। वे मेरी विपत्ति अवश्य ही दूर करेंगे॥ ३—५॥

मनमें ऐसा सोचकर कमलनालका आश्रय लेकर पद्मयोनि ब्रह्माजी मन-ही-मन दुःखनाशक विष्णुके शरणागत हो गये॥ ६॥

तुष्टाव बोधनार्थं तं शुभैः सम्बोधनैर्हरिम्।
नारायणं जगन्नाथं निस्पन्दं योगनिद्रया॥ ७

ब्रह्मोवाच

दीननाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव।
भक्तार्तिहृद्धृषीकेश सर्वावास जगत्पते॥ ८

अन्तर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते।
दुष्टारिनाशनैकाग्रचित्त चक्रगदाधर॥ ९

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वशक्तिसमन्वित।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश दुःखनाशन पाहि माम्॥ १०

विश्वम्भर विशालाक्ष पुण्यश्रवणकीर्तन।
जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यन्तकारक॥ ११

इमौ दैत्यौ महाराज हन्तुकामौ मदोद्धतौ।
न जानास्यखिलाधार कथं मां सङ्कटे गतम्॥ १२

उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणं गतम्।
पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः॥ १३

एवं स्तुतोऽपि भगवान् न बुबोध यदा हरिः।
योगनिद्रासमाक्रान्तस्तदा ब्रह्मा ह्यचिन्तयत्॥ १४

नूनं शक्तिसमाक्रान्तो विष्णुर्निद्रावशं गतः।
जजागार न धर्मात्मा किं करोम्यद्य दुःखितः॥ १५

हन्तुकामावुभौ प्राप्तौ दानवौ मदगर्वितौ।
किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे शरणं क्वचित्॥ १६

इति संचिन्त्य मनसा निश्चयं प्रतिपद्य च।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ १७

विचार्य मनसाप्येवं शक्तिर्मे रक्षणे क्षमा।
यया ह्यचेतनो विष्णुः कृतोऽस्ति स्पन्दवर्जितः॥ १८

वे शुभ सम्बोधनोंके द्वारा योगनिद्राके कारण स्पन्दनरहित उन नारायण जगत्पति भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे दीनानाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे वामन! हे माधव! भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हे हृषीकेश! हे सर्वव्यापिन्! हे जगत्पते! हे अनन्तस्वरूप! हे वासुदेव! हे अन्तर्यामिन्! हे जगत्के स्वामी! हे दुष्टों तथा शत्रुओंका संहार करनेमें एकाग्र चित्तवाले! हे चक्रधर! हे गदाधर! हे सर्वज्ञ! हे सर्वलोकेश! हे सर्वशक्तिसम्पन्न! हे देवेश! हे दुःखनाशन! अब आप उठिये, उठिये और मेरी रक्षा कीजिये॥ ८—१०॥

हे विश्वम्भर! हे विशालाक्ष! हे पुण्यश्रवण-कीर्तन! हे जगत्स्रष्टा! हे निराकार! हे सृष्टि-पालन-संहारके कारक! हे महाराज! ये दोनों मदोन्मत्त दानव मेरा वध करना चाहते हैं। हे सर्वाधार! मैं इस समय संकटग्रस्त हूँ; क्या आप यह नहीं जानते?॥ ११-१२॥

हे महाविष्णो! मैं इस समय दुःखसे अत्यधिक पीड़ित हूँ और आपके शरणागत हूँ। ऐसी स्थितिमें यदि आप मेरी उपेक्षा करेंगे तो आपका जगत्पालनका नियम निरर्थक हो जायगा॥ १३॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर भी जब योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णु नहीं जगे, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि भगवान् विष्णु अवश्य ही शक्तिके अधीन होकर योगनिद्राके वशमें हो गये हैं, जिससे ये धर्मात्मा नहीं जग रहे हैं। अब दुःखसे पीड़ित मैं इस समय क्या करूँ? अहंकारके मदमें चूर वे दोनों दानव मुझे मारनेके उद्देश्यसे यहाँ आ गये हैं। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? अब तो मुझे शरण देनेवाला कोई भी नहीं है॥ १४—१६॥

इस प्रकार मन-ही-मन सोचते हुए वे एक निष्कर्षपर पहुँचकर एकाग्रचित्त हो उन भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

उन्होंने अपने मनमें यह दृढ विचार रख लिया कि वे ही महाशक्ति मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं; जिन्होंने भगवान् विष्णुको भी चेतनाहीन तथा निःस्पन्द कर दिया है॥ १८॥

व्यसुर्यथा न जानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह।
तथा हरिर्न जानाति निद्रामीलितलोचनः॥ १९

न जहाति यतो निद्रां बहुधा संस्तुतोऽप्यसौ।
मन्ये नास्य वशे निद्रा निद्रयायं वशीकृतः॥ २०

यो यस्य वशमापन्नः स तस्य किङ्करः किल।
तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी मापतेर्हरेः॥ २१

सिन्धुजाया अपि वशे यया स्वामी वशीकृतः।
नूनं जगदिदं सर्वं भगवत्या वशीकृतम्॥ २२

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाप्युमा।
सर्वे वयं वशे यस्या नात्र किञ्चिद्विचारणा॥ २३

हरिरप्यवशः शेते यथान्यः प्राकृतो जनः।
ययाभिभूतः का वार्ता किलान्येषां महात्मनाम्॥ २४

स्तौम्यद्य योगनिद्रां वै यया मुक्तो जनार्दनः।
घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः॥ २५

इति कृत्वा मतिं ब्रह्मा पद्मनालस्थितस्तदा।
तुष्टाव योगनिद्रां तां विष्णोरङ्गेषु संस्थिताम्॥ २६

ब्रह्मोवाच

देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि
ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब।
यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता
निद्रावशं च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य॥ २७

इस लोकमें जैसे मृत प्राणीको शब्द आदि गुणोंका आभास नहीं हो पाता, उसी प्रकार निद्राके कारण अपने नेत्र मूँदे हुए भगवान् विष्णु कुछ भी जान सकनेमें असमर्थ हैं॥ १९॥

मेरे द्वारा नानाविध स्तुति किये जानेपर भी भगवान् विष्णु निद्राका त्याग नहीं कर रहे हैं। अतएव मैं मानता हूँ कि निद्रा इनके अधीन नहीं है, अपितु निद्राके द्वारा ही ये वशीभूत कर लिये गये हैं॥ २०॥

जो प्राणी जिस किसीके वशमें हो जाता है, वह निश्चय ही उसीका दास बन जाता है। अतः ये योगनिद्रा ही लक्ष्मीपति विष्णुकी स्वामिनी हो गयी हैं॥ २१॥

जिस शक्तिके द्वारा सिन्धुपुत्री लक्ष्मीके वशमें रहनेवाले भगवान् विष्णु भी वशीभूत कर लिये गये हैं, उन्हीं भगवतीने निश्चितरूपसे इस जगत्‌को अपने अधीन कर रखा है॥ २२॥

मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी एवं पार्वती—हम सभी उन्हींके अधीन हैं; इसमें कुछ भी संशय नहीं है॥ २३॥

भगवान् विष्णु भी जिस शक्तिके वशीभूत होकर विवश हुए-से उसी प्रकार सो रहे हैं जिस प्रकार एक सामान्य प्राणी सोता है, तब अन्य महापुरुषोंके विषयमें क्या कहा जाय?॥ २४॥

अतः अब मैं योगनिद्राका ही स्तवन करूँगा जिनकी कृपासे निद्रामुक्त होकर जनार्दन, सनातन भगवान् वासुदेव युद्धके लिये उद्योग करेंगे॥ २५॥

तदनन्तर ऐसा निश्चयकर कमलनालपर विराजमान ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके अंगोंमें व्याप्त उन योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! इस जगत्‌का कारण आप ही हैं; वेदवाक्योंसे मुझे ऐसा ज्ञात हुआ है। हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे सम्पूर्ण विश्वको ज्ञान देनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी इस समय योगनिद्राके वशमें हो गये हैं॥ २७॥

को वेद ते जननि मोहविलासलीलां
मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते।
ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे
विद्वत्तमो विबुधकोटिषु निर्गुणायाः॥ २८

सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां
चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम्।
किं तादृशासि कथमत्र जगन्निवास-
श्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाद्य॥ २९

नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं
नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम्।
ध्यायन्ति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं
सन्ध्येति नाम परिकल्प्य गुणान् भवानि॥ ३०

बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं
श्रीश्चासि देवि सततं सुखदा सुराणाम्।
कीर्तिस्तथा मतिधृती किल कान्तिरेव
श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः॥ ३१

नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं
प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन।
त्वं चात्र सर्वजगतां जननीति सत्यं
निद्रालुतां वितरता हरिणात्र दृष्टम्॥ ३२

त्वं देवि वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या
वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद।
यस्मात्त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना
प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत्॥ ३३

कस्ते चरित्रमखिलं भुवि वेद धीमा-
न्नाहं हरिर्न च भवो न सुरास्तथान्ये।
ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च
दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके॥ ३४

हे माता! समग्र लोकको मोहित कर देनेवाली आपकी लीलाको कौन जान सकता है? आपकी इस लीलासे मैं तो मूढ़ हो गया हूँ और ये विष्णु परवश होकर सो रहे हैं। हे समस्त प्राणियोंके मनमें निवास करनेवाली भगवति! करोड़ों देवताओंमें भी ऐसा कौन विज्ञ है, जो ऐसी आप निर्गुणाका रहस्य जान सके?॥ २८॥

सांख्यशास्त्रके विद्वान् पुरुष और प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति मानते हैं। इनमें वे अचेतन प्रकृतिको ही जगत्को उत्पन्न करनेवाली बताते हैं। तो फिर क्या आप वैसी ही अचेतन हैं? किंतु यदि आप जड होतीं तो इन जगदाधार विष्णुको इस समय चेतनारहित कैसे कर देतीं?॥ २९॥

हे महामाये! आप सगुण रूप धारणकर नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं, अतः आपके रहस्यमय कार्योंका सम्यक् ज्ञान करनेमें भला कौन समर्थ है? हे भवानि! मुनिगण 'सन्ध्या' नामसे आपके गुणोंको परिकल्पित करके तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं) निश्चितरूपसे आपका ही ध्यान करते हैं॥ ३०॥

हे देवि! आप बुद्धिस्वरूपा होकर समस्त लोकको ज्ञान देती हैं और लक्ष्मीरूपसे सदैव देवताओंको सुख प्रदान करती हैं। हे माता! सम्पूर्ण प्राणियोंमें कीर्ति, मति, धृति, कान्ति, श्रद्धा एवं रतिरूपमें आप ही विद्यमान हैं॥ ३१॥

हे देवि! प्रगाढ निद्राके वशीभूत विष्णुको देखकर विषम दुःखकी स्थितिको प्राप्त हुए मुझको यह प्रमाण मिल गया कि आप ही निस्सन्देह सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। इस विषयमें अब सैकड़ों तर्क-वितर्ककी कोई आवश्यकता नहीं है॥ ३२॥

हे देवि! आप वेदशास्त्रोंके पारदर्शी विद्वानोंकी समझसे भी परे हैं और वेद भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि उन वेदोंकी उत्पत्तिका भी कारण आप ही हैं। आपका यह सम्पूर्ण रहस्यमय क्रिया-कलाप सबको प्रत्यक्ष दिखायी देता है॥ ३३॥

इस संसारमें कौन ऐसा बुद्धिमान् प्राणी है, जो आपके सम्पूर्ण चरित्रको जाननेमें समर्थ है? स्वयं मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, देवगण, अन्य मुनिवृन्द तथा मेरे तत्त्वज्ञ पुत्र-लोग भी उसे नहीं जान सके हैं। सम्पूर्ण लोकमें आपकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है॥ ३४॥

यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदन्ति
स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि।
न प्राप्नुवन्ति सततं मखभागधेयं
देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदासि॥ ३५

त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै
देवारिसम्भवभयादधुना तथैव।
भीतोऽस्मि देवि वरदे शरणं गतोऽस्मि
घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च॥ ३६

नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेत-
ज्जाने त्वयात्मविवशीकृतदेहयष्टिः।
मुञ्चादिदेवमथवा जहि दानवेन्द्रौ
यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे॥ ३७

जानन्ति ये न तव देवि परं प्रभावं
ध्यायन्ति ते हरिहरावपि मन्दचित्ताः।
ज्ञातं मयाद्य जननि प्रकटं प्रमाणं
यद्विष्णुरप्यतितरां विवशोऽथ शेते॥ ३८

सिन्धूद्भवापि न हरिं प्रतिबोधितुं वै
शक्ता पतिं तव वशानुगमद्य शक्त्या।
मन्ये त्वया भगवति प्रसभं रमापि
प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव॥ ३९

धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ
त्यक्त्वान्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः।
कुर्वन्ति देवि भजनं सकलं निकामं
ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम्॥ ४०

धीकान्तिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते
विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाद्य।
बन्दीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयात्र
शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः॥ ४१

हे देवि! यदि यज्ञोंमें वैदिक विद्वान् हवनकार्यके समय आपके 'स्वाहा' नामका उच्चारण न करें तो देवगण अपना यज्ञभाग नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव आप ही देवताओंका भी भरण-पोषण करती हैं॥ ३५॥

हे भगवति! आपने पहले भी समय-समयपर दैत्योंद्वारा उत्पन्न किये गये भयोंसे हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार इस समय भी हमारी रक्षा करें, मैं आपकी शरणमें हूँ। हे देवि! हे वरदे! मधुके साथ भयानक इस कैटभको देखकर मैं अत्यन्त भयाक्रान्त हूँ॥ ३६॥

आपकी योगमायाने भगवान् विष्णुके शरीरके सभी अवयवोंको अपने वशमें कर रखा है, अतः वे मेरी इस विषम विपत्तिको नहीं जान रहे हैं। हे महानुभावे! या तो इस समय आप आदिदेवको मुक्त कर दें अथवा इन दोनों महादैत्योंका वध कर दें; इनमेंसे आपको जो उचित जान पड़े, वह कीजिये॥ ३७॥

हे देवि! जो मन्दबुद्धि प्राणी आपकी विशिष्ट महिमाको नहीं जानते, वे ही विष्णु तथा शंकर आदिकी आराधना करते हैं। हे जननि! आज प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें मैं आपकी महिमा देख रहा हूँ कि भगवान् विष्णु भी प्रगाढ़ निद्राके वशीभूत होकर सो रहे हैं॥ ३८॥

आपकी शक्तिके वशमें पड़े अपने पति भगवान् विष्णुको इस समय सिन्धुसुता लक्ष्मी भी नहीं जगा सकतीं; क्योंकि हे भगवति! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपने ही बलपूर्वक लक्ष्मीको भी शयन करनेके लिये विवश कर दिया है, जिससे वे भी नहीं जग रही हैं॥ ३९॥

हे देवि! इस संसारमें वे ही प्राणी धन्य हैं जो आपके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, अन्य देवताओंकी उपासना त्यागकर आपके ध्यानमें लीन रहते हैं और आपको ही सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनु तथा समस्त लोककी जननी मानकर आपका भजन करते हैं॥ ४०॥

बुद्धि, कान्ति, यश, शुभ वृत्ति आदि गुण इस समय भगवान् विष्णुका परित्यागकर कहाँ चले गये? हे भगवति! अतिशय मानवाली आपकी ही शक्तिसे ये भगवान् विष्णु इस समय निद्राके वशवर्ती हो गये हैं॥ ४१॥

त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा
त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम्।
त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले
नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै॥ ४२

विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ
दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय।
त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य
यद्रोचते तव तथाम्ब करोषि नूनम्॥ ४३

सृष्ट्वात्र मां भगवति प्रविनाशितुं चे-
न्नेच्छास्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्।
कस्मादिमौ प्रकटितौ किल कालरूपौ
यद्वा भवानि हसितुं नु किमिच्छसे माम्॥ ४४

ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै
कृत्वाखिलं जगदिदं रमसे स्वतन्त्रा।
लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव
हन्तुं त्वमिच्छसि भवानि किमत्र चित्रम्॥ ४५

कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मात-
र्दुःखं न मे मरणजं जगदम्बिकेऽत्र।
कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चायं
दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम्॥ ४६

उत्तिष्ठ देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं
मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले।
नो चेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ य-
स्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम्॥ ४७

अखिल प्रभाववाली आप ही जगत्की एकमात्र शक्ति हैं और आपके द्वारा रचा गया सब कुछ आपकी लीला ही है। जैसे कोई नट अपने ही द्वारा निर्मित नाट्यमें अभिनय करता है, उसी प्रकार आप भी अपने ही द्वारा निर्मित मोहजालमें नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं॥ ४२॥

युगके आरम्भमें आपने सर्वप्रथम विष्णुका सृजन किया, सबके पालनके लिये उन्हें निर्मल शक्ति प्रदान की और इस प्रकार समस्त जगत्की रक्षा की। उन्हीं भगवान् विष्णुको निद्राभिभूतकर आपने इस समय सुला दिया है। हे अम्ब! आपको जो उचित जान पड़ता है, आप निश्चितरूपसे वही किया करती हैं॥ ४३॥

हे भगवति! यदि आप मेरी सृष्टि करके मुझे नष्ट कर देनेकी इच्छा नहीं रखतीं तो अपना यह मौन त्यागकर मेरे ऊपर दया कीजिये। हे भवानि! आपने कालरूप इन दोनों दानवोंको किसलिये उत्पन्न किया है? कहीं आपने मेरे उपहासके लिये तो ऐसा नहीं किया है?॥ ४४॥

हे भवानि! अब मुझे आपके अद्भुत चरित्रका ज्ञान हो गया। समस्त जगत्की रचना करके आप उसीमें स्वेच्छासे विहार करती हैं और पुनः उसे अपनेमें जैसे समाहित कर लेती हैं, उसी प्रकार मुझे नष्ट कर देना चाहती हैं तो इसमें कोई विचित्र बात नहीं है॥ ४५॥

हे माता! यदि आप यही चाहती हैं तो मेरा वध कर दीजिये। हे जगदम्बे! मुझे मरणजनित दुःखकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। हाँ, आपको यह महान् कलंक अवश्य लगेगा कि आपने जिसे सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता बनाया, उसे दैत्यने मार डाला॥ ४६॥

हे देवि! अब आप उठिये और अपना अद्भुत रूप धारण कीजिये। हे बाललीलाकारिणि! आप अपने इच्छानुरूप चाहे मुझे मार दें अथवा इन दोनों दैत्योंको मार दें या तो भगवान् विष्णुको जगा दें, जिससे वे इन दोनोंका वध कर दें। यह सारा काम करनेमें आप ही समर्थ हैं॥ ४७॥

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।
निःसृत्य हरिदेहात्तु संस्थिता पार्श्वतस्तदा॥ ४८

त्यक्त्वाङ्गानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः।
निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा॥ ४९

विस्पन्दितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः।
धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिं ततः॥ ५०

सूतजी बोले—ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुके शरीरसे निकलकर तामसीदेवी उनके समीप खड़ी हो गयीं॥ ४८॥

तदनन्तर अतुलित तेजवाले विष्णुके समस्त अंगोंको छोड़कर योगनिद्रा उन दोनोंका संहार करनेके लिये बाहर निकल आयीं॥ ४९॥

[योगमायाके प्रभावसे मुक्त हुए] वे जनार्दन जब चेतनायुक्त शरीरवाले हुए तब उन विष्णुको देखकर ब्रह्माजीको परम प्रसन्नता हुई॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
विष्णुप्रबोधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भगवान् विष्णु योगमायाके अधीन क्यों हो गये—ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें सूतजीद्वारा उन्हें आद्याशक्ति भगवतीकी महिमा सुनाना

ऋषय ऊचुः

सन्देहोऽत्र महाभाग कथायां तु महाद्भुतः।
वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः॥ १

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवाः सनातनाः।
नातः परतरं किञ्चिद् ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महामते॥ २

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत्।
रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम्॥ ३

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजःसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः॥ ४

तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः।
आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्वकर्मसु॥ ५

नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः।
स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया॥ ६

क्व गतं तस्य विज्ञानं जीवतश्चेष्टितं कुतः।
सन्देहोऽयं महाभाग कथयस्व यथाशुभम्॥ ७

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हमें इस कथानकमें महान् अद्भुत संशय है। हे महामते! वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा बुद्धिमान् लोगोंकी सदासे यह अवधारणा रही है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शम्भु—ये तीनों देवता सनातन हैं और इस ब्रह्माण्डमें इनसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है॥ १-२॥

ब्रह्मा जगत्का सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर प्रलयकालमें संहार करते हैं। ये तीनों ही इसमें कारण हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता एक ही मूर्तिके तीन स्वरूप हैं। ये लोग क्रमशः रज, सत्त्व और तम-गुणोंसे युक्त होकर अपना-अपना कार्य करते हैं॥ ४॥

उन तीनोंमें माधव, पुरुषोत्तम, आदिदेव जगन्नाथ श्रीहरि श्रेष्ठ हैं और वे सभी कार्य सम्पादित करनेमें समर्थ हैं। अनुपम तेजवाले विष्णुसे बढ़कर सर्वसमर्थ अन्य कोई भी नहीं है। उन जगत्पति विष्णुको योगमायाने विवश करके भला कैसे सुला दिया?॥ ५-६॥

उस समय उन विष्णुकी चेतना कहाँ चली गयी और उनके जीवनकी चेष्टा कहाँ लुप्त हो गयी? हे महाभाग! यह महान् सन्देह उपस्थित है; आप इस विषयमें यथोचित बतानेकी कृपा करें॥ ७॥

का सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता यया विष्णुर्जितः प्रभुः।
कुतो जाता कथं शक्ता का शक्तिर्वद सुव्रत॥ ८

यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
परमात्मा परानन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ९

सर्वकृत्सर्वभृत्स्त्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः।
स कथं निद्रया नीतः परतन्त्रः परात्परः॥ १०

एतदाश्चर्यभूतो हि सन्देहो नः परन्तप।
छिन्धि ज्ञानासिना सूत व्यासशिष्य महामते॥ ११

सूत उवाच

कः सन्देहं भिनत्त्येनं त्रैलोक्ये सचराचरे।
मुह्यन्ति मुनयः कामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः॥ १२

नारदः कपिलश्चैव प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः।
किं ब्रवीमि महाभागा दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने॥ १३

देवेषु विष्णुः कथितः सर्वगः सर्वपालकः।
यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्॥ १४

ते सर्वे समुपासन्ते नत्वा देवं परात्परम्।
नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्॥ १५

तथा केचिन्महादेवं शङ्करं शशिशेखरम्।
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च शूलपाणिं वृषध्वजम्॥ १६

तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियम्बकम्।
कपर्दिनं पञ्चवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम्॥ १७

कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
भूतवृन्दयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम्॥ १८

जिस शक्तिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं कि उसने भगवान् विष्णुको भी पराभूत कर दिया था, वह कौन-सी शक्ति है? वह शक्ति कहाँसे उद्भूत हुई, शक्तिसम्पन्न कैसे हुई तथा उसका स्वरूप क्या है? हे सुव्रत! यह सब हमें स्पष्टरूपसे बतलाइये॥ ८॥

जो विष्णु हैं वे तो सबके ईश्वर, वासुदेव, जगत्के गुरु, परमात्मा, परम आनन्दस्वरूप तथा सच्चिदानन्दकी साक्षात् मूर्ति हैं; सब कुछ करनेमें समर्थ, सबका पालन करनेवाले, सभी चराचरका सृजन करनेवाले, रजोगुणसे रहित, सर्वव्यापी और पवित्र हैं। वे परात्पर विष्णु निद्राकी परतन्त्रतामें कैसे आबद्ध हो गये?॥ ९-१०॥

हे परन्तप! हमें इस प्रकारका आश्चर्यजनक सन्देह है। हे सूत! हे व्यासशिष्य! हे महामते! आप अपने ज्ञानरूपी खड्गसे हमारे इस सन्देहको नष्ट कर दीजिये॥ ११॥

सूतजी बोले—हे मुनिजन! इस चराचर जगत्में कौन ऐसा है, जो इस शंकाका समाधान कर सके, जबकि ब्रह्माके पुत्र सनकादि मुनि तथा नारद, कपिल आदि भी इस विषयमें मोहित हो जाते हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! हे महाभाग! तब इस जटिल समस्याके समाधानमें मैं क्या कहूँ?॥ १२-१३॥

देवताओंमें भगवान् विष्णु ही सर्वव्यापी एवं सभी भूतोंके रक्षक कहे गये हैं। उन्हींसे इस चराचर समस्त विराट् संसारकी सृष्टि हुई है॥ १४॥

वे सभी देवता परात्पर परमात्माको नमस्कार करके नारायण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दनरूपमें उनकी उपासना करते हैं॥ १५॥

कुछ लोग महादेव, शंकर, शशिशेखर, त्रिनेत्र, पंचवक्त्र, शूलपाणि और वृषभध्वजके रूपमें उन्हींकी उपासना करते हैं॥ १६॥

सभी वेदोंमें भी त्रियम्बक (त्र्यम्बक), कपर्दी, पंचवक्त्र, गौरीदेहार्धधारी, कैलासवासी, सर्वशक्तिसमन्वित, भूतगणोंसे सेवित एवं दक्षयज्ञविध्वंसक आदि नामोंसे उनका गुणगान किया गया है॥ १७-१८॥

तथा सूर्यं वेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने।
मध्याह्ने तु महाभागाः स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः॥ १९

तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम्।
परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः॥ २०

अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः।
इन्द्रश्चापि त्रिलोकेशो वरुणश्च तथापरः॥ २१

यथा गङ्गा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते।
तथैव सर्वदेवेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः॥ २२

त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपण्डितैः।
प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम्॥ २३

चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च।
अर्थापत्तियुतान्यन्ये पञ्च प्राहुर्महाधियः॥ २४

सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदन्ति मनीषिणः।
एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद् ब्रह्म परमं च तत्॥ २५

वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च।
निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्य च पुनः पुनः॥ २६

प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिन्त्यं मतिमता सदा।
दृष्टान्तेनापि सततं शिष्टमार्गानुसारिणा॥ २७

विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं पुराणैः परिगीयते।
द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता॥ २८

हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका।
धराधरणशक्तिश्च शेषे कूर्मे तथैव च॥ २९

साद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता।
दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका॥ ३०

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः॥ ३१

हे महाभागो! वैदिक विद्वान् लोग सूर्य आदि नामोंसे भी नित्य प्रातः, सायं तथा मध्याह्नकालमें सन्ध्या करते समय विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हींकी प्रार्थना करते हैं॥ १९॥

सभी वेदोंमें सूर्योपासना श्रेष्ठ कही गयी है तथा उन महात्माका नाम 'परमात्मा' कहा गया है। वेदोंमें सर्वत्र वेदज्ञोंद्वारा अग्निदेवकी भी स्तुति की गयी है। वहाँ त्रिलोकेश इन्द्र, वरुण तथा अन्यान्य देवताओंकी भी स्तुति की गयी है॥ २०-२१॥

जिस प्रकार गंगा अनेक धाराओंमें विद्यमान रहकर प्रवाहित होती हैं, उसी प्रकार महर्षियोंद्वारा भगवान् विष्णु सभी देवताओंमें विद्यमान बताये गये हैं॥ २२॥

मनीषी विद्वानोंने तीन प्रकारके मुख्य प्रमाण बताये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा शब्दप्रमाण। अन्य (न्याय)-के पण्डित चार प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्दप्रमाण। परंतु अन्य (मीमांसाके) विद्वान् लोग अर्थापत्तिको लेकर पाँच प्रमाण मानते हैं॥ २३-२४॥

पौराणिक विद्वान् सात प्रमाण बताते हैं—इन प्रमाणोंसे भी जो दुर्ज्ञेय है, वह है—परब्रह्म॥ २५॥

इसलिये इस विषयमें बुद्धि, शास्त्र एवं निश्चयात्मिका युक्तिसे बार-बार विचार करके अनुमान करना चाहिये। साथ ही सन्मार्गका अनुसरण करनेवाले दृष्टान्तद्वारा इस प्रत्यक्ष विज्ञानका चिन्तन बुद्धिमान् मनुष्यको सर्वदा करते रहना चाहिये॥ २६-२७॥

प्रायः सभी पुराण तथा विद्वान् ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी शक्ति, विष्णुमें पालन करनेकी शक्ति, शिवमें संहार करनेकी शक्ति, सूर्यमें प्रकाश करनेकी शक्ति तथा शेष और कच्छपमें पृथ्वीको धारण करनेकी शक्ति स्वभावतः विद्यमान रहती है॥ २८-२९॥

इस प्रकार एकमात्र वे आद्याशक्ति ही स्वरूपभेदसे सभीमें व्याप्त रहती हैं। वे ही अग्निमें दाहकत्व शक्ति तथा वायुमें संचारशक्ति हैं॥ ३०॥

कुण्डलिनी शक्तिके बिना शिव भी 'शव' बन जाते हैं। विद्वान् लोग शक्तिहीन जीवको निर्जीव एवं असमर्थ कहते हैं॥ ३१॥

एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महातपाः॥ ३२

शक्तिहीनं तु निन्द्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम्।
अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा॥ ३३

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
सोपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा॥ ३४

विष्णौ च सात्त्विकी शक्तिस्तया हीनोऽप्यकर्मकृत्।
द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत्॥ ३५

शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहारकारकः।
इत्यूह्यं मनसा सर्वं विचार्य च पुनः पुनः॥ ३६

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्॥ ३७

न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः।
न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन॥ ३८

तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते॥ ३९

सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः॥ ४०

धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला।
ददाति वाञ्छितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम्॥ ४१

न जानन्ति जना मूढास्तां सदा माययावृताः।
जानन्तोऽपि नराः केचिन्मोहयन्ति परानपि॥ ४२

पण्डिताः स्वोदरार्थं वै पाखण्डानि पृथक्पृथक्।
प्रवर्तयन्ति कलिना प्रेरिता मन्दचेतसः॥ ४३

अतएव हे मुनिजनो! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी पदार्थ इस संसारमें शक्तिके बिना सर्वथा हेय हैं; क्योंकि स्थावर-जंगम सभी जीवोंमें वह शक्ति ही काम करती है। यहाँतक कि शक्तिहीन पुरुष शत्रुपर विजयी होने, चलने-फिरने तथा भोजन करनेमें भी सर्वथा असमर्थ रहता है॥ ३२-३३॥

वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली आदिशक्ति ही 'ब्रह्म' कहलाती है। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह अनेक प्रकारके यत्नोंद्वारा सम्यक् रूपसे उसकी उपासना करे तथा उसका चिन्तन करे॥ ३४॥

भगवान् विष्णुमें सात्त्विकी शक्ति रहती है, जिसके बिना वे अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मामें राजसी शक्ति है, वे भी शक्तिहीन होकर सृष्टिकार्य नहीं कर सकते और शिवमें तामसी शक्ति रहती है, जिसके बलपर वे संहार-कृत्य सम्पादित करते हैं। इस विषयपर मनसे बार-बार विचार करके तर्क-वितर्क करते रहना चाहिये॥ ३५-३६॥

शक्ति ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना करती है, सबका पालन करती है और इच्छानुसार इस चराचर जगत्का संहार करती है॥ ३७॥

उसके बिना विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और वरुण कोई भी अपने-अपने कार्यमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३८॥

वे देवगण शक्तियुक्त होनेपर ही अपने-अपने कार्योंको सम्पादित करते रहते हैं। प्रत्येक कार्य-कारणमें वही शक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है॥ ३९॥

मनीषी पुरुषोंने शक्तिको सगुणा और निर्गुणा भेदसे दो प्रकारका बताया है। सगुणा शक्तिकी उपासना आसक्तजनों और निर्गुणा शक्तिकी उपासना अनासक्तजनोंको करनी चाहिये॥ ४०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंकी स्वामिनी वे ही निर्विकार शक्ति हैं। विधिवत् पूजा करनेसे वे सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करती हैं॥ ४१॥

सदा मायासे घिरे हुए अज्ञानी लोग उस महाशक्तिको जान नहीं पाते। यहाँतक कि कुछ विद्वान् पुरुष उन्हें जानते हुए भी दूसरोंको भ्रममें डालते हैं। कुछ मन्दबुद्धि पण्डित अपने उदरकी पूर्तिके लिये कलिसे प्रेरित होकर अनेक प्रकारके पाखण्ड करते हैं॥ ४२-४३॥

कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः।
नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथञ्चन॥ ४४

विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम्॥ ४५

कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि।
यजन्ति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ४६

ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम्।
ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम्॥ ४७

तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः।
निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः॥ ४८

कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात्।
पितुः सकाशात्तेनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः॥ ४९

न श्रोतव्यं न मन्तव्यमन्येषां वचनं बुधैः।
शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः॥ ५०

प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम्।
अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि॥ ५१

हे महाभागो! इस कलिमें बहुत प्रकारके अवैदिक तथा भेदमूलक धर्म उत्पन्न होते हैं; दूसरे युगोंमें नहीं होते॥ ४४॥

स्वयं भगवान् विष्णु भी अनेक वर्षोंतक कठोर तप करते हैं और ब्रह्मा तथा शिवजी भी ऐसा ही करते हैं। ये तीनों देवता निश्चित ही किसीका ध्यान करते हुए कठिन तपस्या करते रहते हैं॥ ४५॥

इसी प्रकार अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों ही देवता अनेक प्रकारके यज्ञ सदा करते हैं। वे उन पराशक्ति, ब्रह्म नामवाली परमात्मिका देवीको नित्य एवं सनातन मानकर सर्वदा मनसे उन्हींका ध्यान करते हैं॥ ४६-४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सब शास्त्रोंका यही निश्चय जानना चाहिये कि दृढनिश्चयी विद्वानोंके द्वारा वे आदिशक्ति ही सदा सेवनीय हैं॥ ४८॥

यह गुप्त रहस्य मैंने कृष्णद्वैपायनसे सुना है जिसे उन्होंने नारदजीसे, नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे और ब्रह्माजीने भी भगवान् विष्णुके मुखसे सुना था॥ ४९॥

इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे न तो किसी अन्यकी बात सुनें और न मानें तथा दृढप्रतिज्ञ होकर सर्वदा शक्तिकी ही उपासना करें॥ ५०॥

शक्तिहीन असमर्थ पुरुषका व्यवहार तो प्रत्यक्ष ही देखा जाता है [कि वह कुछ कर नहीं पाता]। इसलिये सर्वव्यापिनी आदिशक्ति जगज्जननी भगवतीको ही जाननेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
आराध्यनिर्णयवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

~~○~~

अथ नवमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका मधु-कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करना, विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा मोहित मधु-कैटभका विष्णुद्वारा वध

सूत उवाच

यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] जब जगद्गुरु भगवान् विष्णुके शरीरसे निद्रादेवी निकलीं; उस समय उनके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा वक्षःस्थलसे

निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा।
उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनः पुनः॥ २

तदापश्यत् स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम्।
उवाच च महातेजा मेघगम्भीरया गिरा॥ ३

विष्णुरुवाच

किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वात्र पद्मज।
कस्माच्चिन्तातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः॥ ४

ब्रह्मोवाच

त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ।
हन्तुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ॥ ५

भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते।
त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं विचेतनम्॥ ६

विष्णुरुवाच

तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौ हनिष्याम्यहं किल।
युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ॥ ७

सूत उवाच

एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ।
विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ॥ ८

निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ।
तावूचतुर्मदोन्मत्तौ ब्रह्माणं मुनिसत्तमाः॥ ९

पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः।
युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ॥ १०

पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरिस्थितम्।
त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद॥ ११

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तावुवाच जनार्दनः।
कुरुतं समरं कामं मया दानवपुङ्गवौ॥ १२

हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल।
आगच्छतं महाभागौ श्रद्धा चेद्वां महाबलौ॥ १३

निकलकर वे श्रेष्ठ तामसी शक्ति आकाशमें स्थित हो गयीं, तब भगवान् विष्णु भी बार-बार जम्हाई लेते हुए उठ खड़े हुए॥ १-२॥

तब वहाँ भगवान् विष्णुने भयसे काँपते हुए ब्रह्माको देखा और उन महातेजस्वी विष्णुने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ३॥

विष्णु बोले—हे कमलोद्भव ब्रह्माजी! आप तपस्या छोड़कर यहाँ कैसे आ गये हैं? आप इतने चिन्तित एवं भयभीत क्यों हो रहे हैं?॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! आपके कानोंके मैलसे दो महादानव पैदा हो गये हैं, जो महाभयंकर एवं महाबली हैं, जिनका नाम मधु और कैटभ है। उन्हीं दोनोंके भयसे मैं आपके पास आया हूँ। हे जगत्पते! हे वासुदेव! आप मुझ भयभीत तथा किंकर्तव्यविमूढ़की रक्षा कीजिये॥ ५-६॥

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! अब आप निर्भय हो जाइये। उनकी मृत्यु निकट है, इसीलिये वे यहाँ युद्ध करनेके लिये आयेंगे और मैं उन दोनों दैत्योंका वध करूँगा॥ ७॥

सूतजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णु ब्रह्मासे कह ही रहे थे कि वे दोनों मतवाले महाबली दैत्य ब्रह्माजीको ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! वे दैत्य उस महासागरके जलमें बिना किसी अवलम्बके निश्चिन्त होकर खड़े थे। उन अहंकारी राक्षसोंने ब्रह्माजीसे कहा—'तुम भागकर इनके पास क्यों आये? अब तुम युद्ध करो। इनके देखते-देखते ही हमलोग तुम्हें मार डालेंगे'॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् शेषशय्यापर सोनेवाले इस पुरुषको भी मार डालेंगे। इसलिये तुम हम दोनों भाइयोंसे या तो युद्ध करो अथवा यह कहो कि 'मैं तुम्हारा सेवक हूँ'॥ ११॥

सूतजी बोले—उन दैत्योंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—अरे दानवेन्द्रो! तुम दोनों मेरे साथ यथेच्छ युद्ध करो। मैं तुम दोनों दैत्योंका घमण्ड चूर-चूर कर डालूँगा। हे महाभागो! तुम दोनोंकी लड़नेकी इच्छा है और अपनेको महायोद्धा समझ रहे हो तो आ जाओ॥ १२-१३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं चोभौ क्रोधव्याकुललोचनौ।
निराधारौ जलस्थौ च युद्धोद्युक्तौ बभूवतुः॥ १४

मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणा सह संयुगम्।
कर्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः॥ १५

बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः।
श्रान्ते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा॥ १६

पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः।
बाहुयुद्धेन रागान्धौ विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १७

प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवान्तरिक्षगा।
न मम्लतुस्तदा तौ तु विष्णुस्तु ग्लानिमाप्तवान्॥ १८

पञ्चवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्ध्यता।
हरिणा चिन्तितं तत्र कारणं मरणे तयोः॥ १९

पञ्चवर्षसहस्राणि मया युद्धं कृतं किल।
न श्रान्तौ दानवौ घोरौ श्रान्तोऽहं चैतदद्भुतम्॥ २०

क्व गतं मे बलं शौर्यं कस्माच्चेमावनामयौ।
किमत्र कारणं चिन्त्यं विचार्य मनसा त्विह॥ २१

इति चिन्तापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपरावुभौ।
ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगम्भीरनिःस्वनौ॥ २२

तव नोचेद् बलं विष्णो यदि श्रान्तोऽसि युद्धतः।
ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ २३

न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते।
हत्वा त्वां निहनिष्यावः पुरुषं च चतुर्मुखम्॥ २४

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्भाषितं विष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं सामपूर्वं महामनाः॥ २५

सूतजी बोले—भगवान्‌का यह वचन सुनते ही उन दैत्योंके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और जलमें खड़े निराधार वे दोनों भयंकर दानव युद्ध करनेको तैयार हो गये॥ १४॥

इनमें मधुदैत्य कुपित होकर विष्णुसे युद्ध करनेके लिये शीघ्र ही चल पड़ा और कैटभ वहीं खड़ा रहा॥ १५॥

दो मतवाले वीरोंके समान मधु और विष्णुमें बाहुयुद्ध होने लगा। जब मधु थक गया तब कैटभ उनसे लड़ने लगा॥ १६॥

इस प्रकार क्रमशः कुपित एवं मदान्ध दोनों दैत्य परम प्रतापी भगवान् विष्णुके साथ बारी-बारीसे बाहुयुद्ध करते रहे॥ १७॥

उस समय वहाँ उस युद्धके द्रष्टा ब्रह्मा और आकाशमें स्थित आदिशक्ति देवी थीं। बहुत दिनोंतक युद्ध करते-करते भी वे दैत्य नहीं थके तब भगवान् विष्णुको ग्लानि होने लगी। इस प्रकार जब युद्ध करते हुए पाँच हजार वर्ष बीत गये तब भगवान् विष्णु उन दैत्योंकी मृत्युका उपाय सोचने लगे॥ १८-१९॥

उनके विचारमें आया कि मैंने पाँच हजार वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, किंतु ये भयानक दानव थके नहीं और मैं थक गया; यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ २०॥

मेरा वह पराक्रम और बल कहाँ चला गया? ये दोनों मुझसे लड़ते हुए भी स्वस्थ हैं। इसका कारण क्या है? अब मुझे अच्छी तरह विचार करना चाहिये॥ २१॥

इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए विष्णुको देखकर ये दोनों मतवाले दैत्य अत्यन्त हर्षित हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे विष्णो! यदि तुझमें अब बल न हो अथवा युद्धसे थक गये हो तो सिरपर हाथ जोड़कर कह दो कि मैं तुम दोनोंका सेवक हूँ अथवा यदि सामर्थ्य हो तो हे महामते! आओ, हमारे साथ युद्ध करो। आज हमलोग तुम्हें मारकर इस चार मुखवाले पुरुष (ब्रह्मा)-को भी मार डालेंगे॥ २२—२४॥

सूतजी बोले—उस महासागरमें उपस्थित महामना विष्णुने उनके वचन सुनकर सामनीतिके अनुसार मधुर शब्दोंमें कहा—॥ २५॥

हरिरुवाच

श्रान्ते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा।
प्रहरन्ति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः॥ २६

पञ्चवर्षसहस्राणि कृतं युद्धं मया त्विह।
एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौ सदृशौ तथा॥ २७

कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः।
तथा विश्रमणं कृत्वा युध्येऽहं नात्र संशयः॥ २८

तिष्ठतं हि युवां तावद् बलवन्तौ मदोत्कटौ।
विश्रम्याहं करिष्यामि युद्धं वा न्यायमार्गतः॥ २९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्रब्धौ दानवोत्तमौ।
संस्थितौ दूरतस्तत्र संग्रामे कृतनिश्चयौ॥ ३०

अतिदूरे च तौ दृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः।
दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः॥ ३१

चिन्तनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्तवरावुभौ।
कामं वाञ्छितमरणौ न मम्लतुरतस्त्विमौ॥ ३२

वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः।
करोमि च कथं युद्धमेवं ज्ञात्वा विनिश्चयम्॥ ३३

अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः।
विनाशं दुःखदौ नित्यं दानवौ वरदर्पितौ॥ ३४

भगवत्या वरो दत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः।
मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वाञ्छति॥ ३५

रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षति कश्चन।
कथं चेमौ मदोन्मत्तौ मर्तुकामौ भविष्यतः॥ ३६

नन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम्।
विना तया न सिध्यन्ति कामाः सम्यक्प्रसन्नया॥ ३७

एवं सञ्चिन्त्यमानस्तु गगने संस्थितां शिवाम्।
अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रां मनोहराम्॥ ३८

विष्णु बोले—यह सनातनधर्म है कि थके हुए, डरे हुए, शस्त्र त्यागे हुए, गिरे हुए एवं बालकपर वीर लोग प्रहार नहीं करते॥ २६॥

मैंने तो यहाँ पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किया। मैं अकेला हूँ और तुम दोनों भाई समान बलवाले वीर हो और दोनों बीच-बीचमें बारी-बारीसे विश्राम भी करते रहे हो। अब मुझे भी थोड़ा विश्राम कर लेने दो। तत्पश्चात् मैं पुनः लड़ूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

बली एवं मदोन्मत्त तुम दोनों भी कुछ विश्राम कर लो, तब मैं विश्राम करके न्यायधर्मानुसार युद्ध करूँगा॥ २९॥

सूतजी बोले—भगवान् विष्णुकी बात सुनकर दोनों दानव भी युद्ध करनेकी इच्छासे कुछ दूर जाकर विश्राम करने लगे। उन्हें बहुत दूर बैठे देखकर चतुर्भुज भगवान् विष्णु उनके मरनेका उपाय सोचने लगे॥ ३०-३१॥

ध्यानकी अवस्थामें होकर विचार करनेपर उन्हें ज्ञात हो गया कि इन दोनोंको देवीके द्वारा इच्छामृत्युका वरदान प्राप्त है, इसी कारण ये थकते नहीं॥ ३२॥

वे सोचने लगे कि मैंने व्यर्थ ही युद्ध किया, मेरा सब परिश्रम व्यर्थ गया। इस (वरदानकी) बातको जानकर भी अब मैं कैसे युद्ध करूँ?॥ ३३॥

यदि युद्ध न भी करूँ तो भी ये दैत्य यहाँसे हटेंगे कैसे? यदि इनका विनाश न होगा तो वरप्राप्त दोनों दुर्धर्ष दैत्य सबको दुःख देते रहेंगे॥ ३४॥

देवीने जो वरदान इन्हें दिया है, वह भी अत्यन्त कठिन है। अत्यन्त दुःखी, रोगी और दीन-हीन प्राणी भी स्वेच्छया कभी नहीं मरना चाहता, तब भला वे दोनों मदोन्मत्त दैत्य क्यों मरना चाहेंगे?॥ ३५-३६॥

अतएव अब मैं सब चिन्ता छोड़कर उन आदिशक्ति भगवती विद्यादेवीकी शरणमें जाऊँ, जो सबकी मनोकामनाएँ सिद्ध करनेवाली हैं; क्योंकि बिना उनके प्रसन्न हुए कोई कामनाएँ पूर्ण नहीं होतीं॥ ३७॥

ऐसा मनमें विचार करते ही भगवान् विष्णुने आकाशमें स्थित परम सुन्दर स्वरूपवाली योगनिद्रा भगवती 'शिवा' को देखा। उन्हें देखते ही योगेश्वर

कृताञ्जलिरमेयात्मा तां च तुष्टाव योगवित्।
विनाशार्थं तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम्॥ ३९

विष्णुरुवाच

नमो देवि महामाये सृष्टिसंहारकारिणि।
अनादिनिधने चण्डि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे॥ ४०

न ते रूपं विजानामि सगुणं निर्गुणं तथा।
चरित्राणि कुतो देवि संख्यातीतानि यानि ते॥ ४१

अनुभूतो मया तेऽद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः।
यदहं निद्रया लीनः सञ्जातोऽस्मि विचेतनः॥ ४२

ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनः पुनः।
न प्रबुद्धः सर्वथाहं सङ्कोचितषडिन्द्रियः॥ ४३

अचेतनत्वं सम्प्राप्तः प्रभावात्तव चाम्बिके।
त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहं युद्धं च बहुधा कृतम्॥ ४४

श्रान्तोऽहं न च तौ श्रान्तौ त्वया दत्तवरौ वरौ।
ब्रह्माणं हन्तुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ॥ ४५

आहूतौ च मया कामं द्वन्द्वयुद्धाय मानदे।
कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे॥ ४६

मरणे वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम्।
ज्ञात्वाहं शरणं प्राप्तस्त्वामद्य शरणप्रदाम्॥ ४७

साहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा।
दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने॥ ४८

हन्तुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च।
इत्युक्ता सा तदा देवी स्मितपूर्वमुवाच ह॥ ४९

प्रणमन्तं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम्।
देवदेव हरे विष्णो कुरु युद्धं पुनः स्वयम्॥ ५०

अनन्त भगवान् विष्णु उन दोनों दैत्योंके विनाशके लिये हाथ जोड़कर वरप्रदायिनी भगवती 'भुवनेश्वरी' की स्तुति करने लगे॥ ३८-३९॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे महामाये! हे सृष्टि-संहारकारिणि! हे आदि-अन्तरहित! हे चण्डि! हे भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी शिवे! आपको नमस्कार हैं॥ ४०॥

हे देवि! मैं आपके सगुण तथा निर्गुण रूपको नहीं जानता, फिर आपके जो असंख्य अद्भुत चरित्र हैं, उन्हें कैसे जान पाऊँगा? मैंने आपके अत्यन्त दुर्घट प्रभावको आज जाना है जबकि मैं आपके द्वारा प्रेरित योगनिद्रामें विलीन होकर अचेत हो गया था॥ ४१-४२॥

ब्रह्माने मुझे बड़े यत्नसे बार-बार जगाया था, किंतु मैं अपनी छहों इन्द्रियोंके संकुचित होनेके कारण जाग न सका॥ ४३॥

हे अम्बिके! उस समय मैं आपके प्रभावसे अचेत हो गया था। जब आपने अपना वह प्रभाव हटा लिया तब मैं जगा और मैंने उन दानवोंके साथ अनेक प्रकारसे युद्ध किया। उस युद्धमें मैं तो थक गया, किंतु वे नहीं थके; क्योंकि उन्हें आपका वरदान प्राप्त था। जब वे मदोन्मत्त दानव ब्रह्माजीको मारने दौड़े, तब मैंने भी पुनः द्वन्द्व युद्धके लिये उनका आह्वान किया। हे मानप्रदायिनि! उस समय मैंने उनके साथ महासागरमें घोर युद्ध किया॥ ४४—४६॥

बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि आपने उन्हें इच्छामरणका अद्भुत वरदान दिया है। यह जानकर आज मैं शरणदायिनी आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४७॥

अतएव हे माता! अब मेरी सहायता आप ही करें; क्योंकि मैं युद्ध करते-करते बहुत ही खिन्न हो गया हूँ। हे देवताओंकी पीड़ा हरनेवाली! आपके वरदानसे दोनों दानव मदोन्मत्त हो गये हैं॥ ४८॥

वे दोनों पापी दैत्य मुझे मार डालना चाहते हैं। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? प्रणाम करते हुए उन जगन्नाथ सनातन वासुदेव विष्णुके ऐसा कहनेपर मुसकराती हुई उन देवीने उनसे कहा—हे देवदेव! हे हरे! हे विष्णो! आप पुनः उनसे युद्ध कीजिये॥ ४९-५०॥

वञ्चयित्वा त्विमौ शूरौ हन्तव्यौ च विमोहितौ।
मोहयिष्याम्यहं नूनं दानवौ वक्रया दृशा॥ ५१

जहि नारायणाशु त्वं मम मायाविमोहितौ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तस्याः प्रीतिरसान्वितम्॥ ५२

संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौ तत्र महार्णवे।
तदायातौ च तौ वीरौ युद्धकामौ महाबलौ॥ ५३

वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः।
तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरु युद्धं चतुर्भुज॥ ५४

दैवाधीनौ विदित्वाद्य नूनं जयपराजयौ।
सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः॥ ५५

सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना।
पुरा वै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा॥ ५६

अधुना चावयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ॥ ५७

वीक्ष्य विष्णुर्जघानाशु मुष्टिनाद्भुतकर्मणा।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिना हरिम्॥ ५८

एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम्।
युध्यमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा॥ ५९

अपश्यत्सम्मुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः।

सूत उवाच

तं वीक्ष्य तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम्॥ ६०

जहासातीव ताम्राक्षी वीक्षमाणा तदासुरौ।
तौ जघान कटाक्षैश्च कामबाणैरिवापरैः॥ ६१

मन्दस्मितयुतैः कामं प्रेमभावयुतैरनु।
दृष्ट्वा मुमुहतुः पापौ देव्या वक्रविलोकनम्॥ ६२

इन दोनों वीरोंको छलपूर्वक मोहित करके ही मारा जा सकता है। मैं अपनी वक्रदृष्टिसे उन्हें मोहित कर दूँगी। हे नारायण! अपनी मायासे जब मैं इन्हें मोहित कर दूँगी तब आप शीघ्र ही इन दोनोंका वध कर डालियेगा॥ ५१½॥

सूतजी बोले—देवीके प्रीतिरससे पूर्ण वचनोंको सुनकर भगवान् विष्णु उस सागरमें युद्धस्थलमें आकर खड़े हो गये। तब विष्णुको आते देख वे दोनों युद्धके अभिलाषी महाबली दैत्य भी वहाँ आ डटे॥ ५२-५३॥

भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे महाकाम! हे चतुर्भुज! ठहरो-ठहरो; हार और जीतको प्रारब्धके अधीन समझकर अब तुम हमारे साथ युद्ध करो। बलवान् व्यक्ति विजय प्राप्त करता है, किंतु कभी-कभी भाग्यवश दुर्बल व्यक्ति भी जीत जाता है॥ ५४-५५॥

आप जैसे महापुरुषको जय या पराजयमें हर्ष या शोक कभी नहीं करना चाहिये। आपने दानवशत्रु होकर पूर्वकालमें बहुत-से दैत्योंको अनेक बार हराया है, परंतु इस समय तो हम दोनोंके साथ लड़ते हुए आप पराजित हो गये हैं॥ ५६½॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों महाबाहु दैत्य युद्ध करनेको तत्पर हो गये। तब वहाँ अवसर देखकर ज्यों ही विचित्रकर्मा विष्णुने उन दोनोंपर मुष्टिसे प्रहार किया, त्यों ही उन दोनों बलोन्मत्त दैत्योंने भी विष्णुपर मुष्टिप्रहार किया॥ ५७-५८॥

इस प्रकार उनमें परस्पर महाभयंकर युद्ध होने लगा। उन दोनों महाबलशाली दानवोंको युद्धरत देखकर नारायण श्रीहरिने दीन दृष्टिसे भगवतीकी ओर देखा॥ ५९½॥

सूतजी बोले—विष्णुकी ऐसी करुणाजनक दीन दशा देखकर अरुण नेत्रोंवाली भगवती उन दोनों दैत्योंकी ओर देखकर हँसने लगीं और उन्होंने दूसरे कामबाणोंके समान, मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रेमभावसे भरे अपने कटाक्षोंसे उनपर प्रहार किया। इस प्रकार देवीके कटाक्षको देखकर वे पापी मधु-कैटभ अत्यन्त मोहित हो गये। वे कामान्ध दानव अपने ऊपर भगवतीकी विशेष अनुकम्पा जानकर

विशेषमिति मन्वानौ कामबाणातिपीडितौ।
वीक्षमाणौ स्थितौ तत्र तां देवीं विशदप्रभाम्॥ ६३

हरिणापि च तद् दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम्।
मोहितौ तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः॥ ६४

उवाच तौ हसन् श्लक्ष्णं मेघगम्भीरया गिरा।
वरं वरयतां वीरौ युवयोर्योऽभिवाञ्छितः॥ ६५

ददामि परमप्रीतो युद्धेन युवयोः किल।
दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा॥ ६६

युवयोः सदृशः कोऽपि न दृष्टो न च वै श्रुतः।
तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेन बलेन च॥ ६७

भ्रात्रोश्च वाञ्छितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ॥ ६८

वीक्षमाणौ महामायां जगदानन्दकारिणीम्।
तमूचतुश्च कामार्तौ विष्णुं कमललोचनौ॥ ६९

हरे न याचकावावां त्वं किं दातुमिहेच्छसि।
ददाव तुल्यं देवेश दातारौ नौ न याचकौ॥ ७०

प्रार्थय त्वं हृषीकेश मनोऽभिलषितं वरम्।
तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च॥ ७१

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः।
भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥ ७२

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चातिविस्मितौ।
वञ्चिताविति मन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ॥ ७३

विचार्य मनसा तौ तु दानवौ विष्णुमूचतुः।
प्रेक्ष्य सर्वं जलमयं भूमिं स्थलविवर्जिताम्॥ ७४

कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित होने लगे और अपूर्व शोभाशालिनी भगवतीको देखते हुए वे वहीं खड़े हो गये॥ ६०—६३॥

भगवान् विष्णु भी देवीके उस प्रयत्नको समझ गये। दोनों कामी दानवोंको देवीकी मायासे विमोहित जानकर स्वकार्यसाधक भगवान् विष्णुने वहाँ मेघके समान गम्भीर एवं मधुर वचनोंके द्वारा उन दोनोंका उपहास करते हुए कहा—हे वीरो! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो॥ ६४-६५॥

तुम दोनोंके युद्धसे मैं अत्यन्त हर्षित हूँ, अतः मैं तुम्हें मनोभिलषित वर दूँगा। यद्यपि पूर्वकालमें भी मेरेद्वारा अनेक दानव युद्ध करते हुए देखे गये हैं, किंतु तुम दोनों भाइयोंके समान मैंने किसीको देखा-सुना नहीं। तुम दोनोंके अतुलनीय बलको देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। हे महाबली दानवो! मैं तुम दोनों भाइयोंकी वांछित कामनाएँ पूर्ण करूँगा॥ ६६-६७$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर कमलके समान नेत्रवाले कामपीड़ित वे दोनों दैत्य जगदानन्ददायिनी भगवती महामायाको देखते हुए विष्णुसे अभिमानपूर्वक बोले॥ ६८-६९॥

हे विष्णो! हमलोग याचक नहीं हैं, अतः आप हमलोगोंको देना क्यों चाहते हैं? हे देवेश! यदि आप लेना चाहें तो आप जो माँगिये हम दे सकते हैं; क्योंकि हमलोग भिक्षुक नहीं हैं, दाता हैं। हे हृषीकेश! आप अपना मनोभिलषित वरदान माँगिये। हे वासुदेव! आपके अद्भुत युद्धसे हमलोग आपपर अत्यन्त प्रसन्न हैं॥ ७०-७१॥

उन दोनोंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने उत्तर दिया—'यदि तुम दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो यही वरदान दो कि तुम दोनों भाई अब मेरे ही हाथों मारे जाओ'॥ ७२॥

सूतजी बोले—विष्णुका वचन सुनकर दोनों भाई चकित हो गये और अपनेको उनके द्वारा ठगा हुआ समझकर शोकसे चिन्तित हो गये॥ ७३॥

कुछ देरके बाद मनमें विचारकर सम्पूर्ण भूमिको स्थलरहित तथा वहाँ सर्वत्र जल-ही-जल देखकर उन्होंने विष्णुसे कहा—हे जनार्दन विष्णो! आपने

हरे योऽयं वरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन।
सत्यवागसि देवेश देहि तं वाञ्छितं वरम्॥ ७५

निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन।
वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव॥ ७६

स्मृत्वा चक्रं तदा विष्णुस्तावुवाच हसन्हरिः।
हन्म्यद्य वां महाभागौ निर्जले विपुले स्थले॥ ७७

इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वातिविस्तरौ।
दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि॥ ७८

नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुञ्चतामिह।
सत्यवागहमद्यैव भविष्यामि च वां तथा॥ ७९

तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिन्त्य मनसा च तौ।
वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्रकम्॥ ८०

भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा।
शीर्षे सन्दधतां तत्र जघने परमाद्भुते॥ ८१

रथांगेन तदा छिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना।
जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसी तयोः॥ ८२

गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ।
सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः॥ ८३

मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समन्ततः।
अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः॥ ८४

इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम्।
महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः॥ ८५

हम-लोगोंको पहले जो वरदान देनेको कहा था, यदि आप सत्यवादी हैं तो पहले उस वांछित वरको प्रदान कीजिये॥ ७४-७५॥

हे मधुसूदन! आप हमें किसी निर्जल प्रदेशकी सुविस्तृत भूमिपर मारिये तभी हम आपसे मारे जा सकेंगे, अन्यथा नहीं। अतः हे माधव अब आप सत्यवादी बनिये॥ ७६॥

तब भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण करके उन दानवोंसे हँसते हुए कहा—'हे महाभागो! [तुम्हारे कथनानुसार] निर्जल तथा सुविस्तृत भूमिपर ही मैं आज तुम दोनोंको मारूँगा'॥ ७७॥

ऐसा कहकर देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णुने अपनी दोनों जाँघोंको सुविस्तृत करके जलके ऊपर ही स्थल दिखा दिया और उनसे कहा—'दैत्यो! [देखो,] यहाँ जल नहीं है, पृथ्वी है। अतः यहींपर तुम दोनों अपना सिर रखो। ऐसा करनेसे ही आज हम और तुम दोनों सत्यवादी सिद्ध होंगे'॥ ७८-७९॥

उस समय विष्णुका तथ्यपूर्ण वचन सुनकर तथा अपने मनमें विचार करके उन दोनों दैत्योंने अपना शरीर बढ़ाकर हजारों योजन लम्बा-चौड़ा कर लिया॥ ८०॥

तब भगवान् विष्णुने भी अपनी दोनों जाँघोंको बढ़ाकर उससे भी द्विगुणित कर दिया। यह देखकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये, [परंतु अपनी बात सत्य प्रमाणित करनेके लिये] उन्होंने अपने-अपने मस्तक उस अत्यन्त अद्भुत जंघेपर रख दिये। उसी समय प्रतापी भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रसे जंघेपर स्थित उनके विशाल सिरोंको वेगपूर्वक धड़से अलग कर दिया॥ ८१-८२॥

जब दोनों दैत्य मधु और कैटभ मर गये, तब उन्हींकी मेद (चर्बी)-से सम्पूर्ण सागर पट गया। हे मुनीश्वरो! तभीसे पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ गया और इसीलिये मृत्तिका भी अभक्ष्य मानी जाने लगी॥ ८३-८४॥

आपलोगोंने जो प्रश्न किया था, उसका ठीक-ठीक उत्तर मैंने दे दिया। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे महामाया महाविद्याकी सर्वदा उपासना करते

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः।
नातः परतरं किञ्चिदधिकं भुवनत्रये॥ ८६

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः।
पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाथवा॥ ८७

रहें; क्योंकि वे पराशक्ति ही समस्त देव-दानवोंद्वारा आराध्य हैं। उनसे बढ़कर कोई दूसरा देवता तीनों लोकोंमें नहीं है॥ ८५-८६॥

यह बात सर्वदा सत्य है एवं वेदों तथा शास्त्रोंका निष्कर्ष है कि सगुण अथवा निर्गुणरूपमें सर्वदा उस पराशक्तिका ही पूजन करते रहना चाहिये॥ ८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
हरिकृतमधुकैटभवधवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

व्यासजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

सूत पूर्वं त्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा।
कृत्वा पुराणमखिलं शुकायाध्यापितं शुभम्॥ १

व्यासेन तु तपस्तप्त्वा कथमुत्पादितः शुकः।
विस्तरं ब्रूहि सकलं यच्छ्रुतं कृष्णतस्त्वया॥ २

सूत उवाच

प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात्।
यथोत्पन्नः शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः॥ ३

मेरुशृङ्गे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः।
तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः॥ ४

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं वाग्बीजं नारदाच्छ्रुतम्।
ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः॥ ५

अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरन्तरिक्षस्य चाप्ययम्।
वीर्येण सम्मितः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह॥ ६

अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः।
आराधयन्महादेवं तथैव च सदाशिवाम्॥ ७

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने हमें पहले ही बतला दिया है कि असीम तेजवाले व्यासजीने कल्याणकारी समस्त पुराणोंकी रचना करके उन्हें शुकदेवजीको पढ़ाया॥ १॥

व्यासजीने घोर तप करके शुकदेवजीको किस प्रकार पुत्ररूपमें प्राप्त किया? व्यासजीके मुखसे आपने जो कुछ सुना है, वह सब हमसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ २॥

सूतजी बोले—सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे जिस प्रकार योगिजनोंमें श्रेष्ठ साक्षात् मुनिस्वरूप शुकदेवजी उत्पन्न हुए, उत्पत्तिके उस इतिहासको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३॥

सत्यवतीके पुत्र महर्षि व्यास पुत्र-प्राप्तिके लिये दृढ संकल्पकर अत्यन्त मनोहर सुमेरुपर्वतके शिखरपर कठोर तपस्या करने लगे॥ ४॥

नारदजीसे सुने गये एकाक्षर वाग्बीज मन्त्रका जप करते हुए तपोनिधि व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे परात्परा महामायामें अपना ध्यान केन्द्रित किये हुए मन-ही-मन सोच रहे थे कि अग्नि, भूमि, वायु एवं आकाश—इनकी शक्तिसे सम्पन्न पुत्रकी मुझे प्राप्ति हो॥ ५-६॥

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे व्यासजी निराहार रहते हुए सौ वर्षोंतक शंकर एवं सदाशिवा भगवतीकी आराधनामें लीन रहे॥ ७॥

शक्तिः सर्वत्र पूज्येति विचार्य च पुनः पुनः।
अशक्तो निन्द्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते॥ ८

यत्र पर्वतशृङ्गे वै कर्णिकारवनाद्भुते।
क्रीडन्ति देवताः सर्वे मुनयश्च तपोऽधिकाः॥ ९

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा।
वसन्ति मुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः॥ १०

तत्र हेमगिरेः शृङ्गे संगीतध्वनिनादिते।
तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः॥ ११

ततोऽस्य तेजसा व्याप्तं विश्वं सर्वं चराचरम्।
अग्निवर्णा जटा जाता पाराशर्यस्य धीमतः॥ १२

ततोऽस्य तेज आलक्ष्य भयमाप शचीपतिः।
तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम्॥ १३

उवाच भगवान् रुद्रो मघवन्तं तथास्थितम्।

शङ्कर उवाच

कथमिन्द्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर॥ १४

अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन।
तपश्चरन्ति मुनयो ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम्॥ १५

न त्वेतेऽहितमिच्छन्ति तापसाः सर्वथैव हि।
इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम्॥ १६

कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः।

शिव उवाच

पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम्॥ १७

पूर्णवर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम्।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः॥ १८

गत्वा ऋषिसमीपं तु तमुवाच जगद्गुरुः।
उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविता शुभः॥ १९

सर्वतेजोमयो ज्ञानी कीर्तिकर्ता तवानघ।
अखिलस्य जनस्यात्र वल्लभस्ते सुतः सदा॥ २०

भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः।

अनेकशः विचार करते हुए महर्षि व्यास इस निष्कर्षपर पहुँचे कि शक्ति ही सर्वत्र पूजनीया है। निर्बल प्राणी लोकमें निन्दाका पात्र होता है और शक्तिशालीकी पूजा की जाती है॥ ८॥

जहाँ पर्वत-शिखरपर कर्णिकार पुष्पके अद्भुत वनमें देवता एवं महातपस्वी मुनिवृन्द विहार करते हैं; जहाँ सूर्य, वसु, रुद्र, पवन, अश्विनीकुमारद्वय एवं ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अन्य मुनिजन निवास करते हैं; मधुर संगीतकी ध्वनिसे मुखरित उसी सुमेरुपर्वतकी चोटीपर सत्यवतीनन्दन धर्मात्मा व्यासजीने तपस्या की॥ ९—११॥

उनके इस तपश्चरणके प्रभावसे समग्र चराचर जगत् व्याप्त हो गया और महामेधासम्पन्न पराशरपुत्र व्यासजीकी जटा अग्निवर्ण हो गयी॥ १२॥

तदनन्तर व्यासजीका यह तेज देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। तब इन्द्रको भयाक्रान्त तथा व्याकुल देखकर भगवान् शंकरजी उनसे कहने लगे—॥ १३$\frac{१}{२}$॥

शंकरजी बोले—हे सुरेश्वर! आपको क्या दुःख है? हे इन्द्र! आज आप इस तरह भयग्रस्त क्यों हैं? तपस्वियोंसे कभी भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मुनिगण मुझे शक्तिसम्पन्न जानकर ही तपस्या करते हैं। ये तपस्वी मुनिलोग कभी भी किसीका अपकार नहीं चाहते हैं। शंकरजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र उनसे बोले—व्यासजी ऐसा तप किसलिये कर रहे हैं, उनकी क्या मनोकामना है?॥ १४—१६$\frac{१}{२}$॥

शिवजी बोले—व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे यह कठोर तप कर रहे हैं। इन्हें तपस्या करते हुए पूरे एक सौ वर्ष हो चुके हैं, अतः मैं इन्हें कल्याणकारी पुत्र प्रदान करूँगा॥ १७$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—दयाभावसे युक्त प्रसन्न मुखवाले जगद्गुरु भगवान् शंकर इन्द्रसे ऐसा कहकर मुनि व्यासजीके पास जाकर बोले—हे वासवीपुत्र! उठो, तुम्हें कल्याणकारी पुत्र अवश्य प्राप्त होगा। हे निष्पाप! तुम्हारा वह पुत्र सभी प्रकारके तेजोंसे सम्पन्न, ज्ञानवान्, यशस्वी और सभी लोगोंका सदा अतिशय प्रिय, समस्त सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न तथा सत्यरूपी पराक्रमसे युक्त होगा॥ १८—२०$\frac{१}{२}$॥

सूत उवाच

तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा॥ २१

शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाश्रममात्मनः।
स गत्वाश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः॥ २२

अरणीसहितं गुह्यं ममन्थाग्निं चिकीर्षया।
मन्थनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिन्ताभरस्तदा॥ २३

प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः।
मन्थानारणिसंयोगान्मन्थनाच्च समुद्भवः॥ २४

पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः।
पुत्रारणिस्तु या ख्याता सा ममाद्य न विद्यते॥ २५

तरुणी रूपसम्पन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता।
कथं करोमि कान्तां च पादयोः शृङ्खलासमाम्॥ २६

पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदा स्थिताम्।
पतिव्रतापि दक्षापि रूपवत्यपि कामिनी॥ २७

सदा बन्धनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी।
शिवोऽपि वर्तते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः॥ २८

कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम्।
एवं चिन्तयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी॥ २९

प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र समीपे गगने स्थिता।
तां दृष्ट्वा चञ्चलापाङ्गीं समीपस्थां वराप्सराम्॥ ३०

पञ्चबाणपरीताङ्गस्तूर्णमासीद् धृतव्रतः।
चिन्तयामास च तदा किं करोम्यद्य संकटे॥ ३१

धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे।
अङ्गीकरोमि यद्येनां वञ्चनार्थमिहागताम्॥ ३२

हसिष्यन्ति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम्।
तपस्तप्त्वा महाघोरं पूर्णवर्षशतं त्विह॥ ३३

सूतजी बोले—तब शूलपाणि शंकरजीका मधुर वचन सुनकर उन्हें प्रणामकर द्वैपायन व्यासजीने अपने आश्रमके लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर कई वर्षोंतक घोर तप करनेके कारण अतिशय श्रान्त महर्षि व्यास अरणीमें समाहित अग्निको प्रकट करनेकी कामनासे अरणि-मन्थन करने लगे। मन्थन कर रहे व्यासजीके मनमें उस समय महान् चिन्ता हो रही थी॥ २१—२३॥

मन्थन तथा अरणिके पारस्परिक संयोगसे प्रकटित अग्निको देखकर व्यासजीके मनमें अचानक पुत्रोत्पत्तिका विचार आया कि अरणि-मन्थनजनित अग्निकी भाँति मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न हो? क्योंकि पुत्र प्रदान करनेवाली अरणी-रूपी वह रूपवती, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिव्रता युवती स्त्री मेरे पास है नहीं, साथ ही पैरोंकी शृंखलाके समान स्त्रीको मैं कैसे अंगीकार करूँ? पुत्र उत्पन्न करनेमें कुशल और पातिव्रत्य धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाली पत्नी मुझे कैसे मिले? पतिपरायणा, निपुण, रूपवती—कैसी भी स्त्री हो; वह सदा बन्धनकी कारण ही बनी रहती है। स्त्री सदा अपनी इच्छाके अनुसार सुख प्राप्त करना चाहती है। शंकरजी भी नित्य स्त्रीके मोहपाशमें फँसे हुए रहते हैं। अतः अब मैं अत्यन्त विषम गृहस्थाश्रम-धर्मको किस प्रकार अंगीकार करूँ?॥ २४—२८½॥

व्यासजी ऐसा विचार कर ही रहे थे कि आकाशमें समीपमें ही स्थित घृताची नामक अप्सरा उन्हें दृष्टिगोचर हुई। चंचल कटाक्षोंवाली उस श्रेष्ठ अप्सराको पासमें ही स्थित देखकर कठोर नियम-संयम धारण करनेवाले व्यासजी शीघ्र ही कामबाणसे आहत अंगोंवाले हो गये और सोचने लगे कि अब इस विषम संकटके समय मैं क्या करूँ?॥ २९—३१॥

धर्मके समक्ष इस दुर्जय कामवासनाके वशीभूत होकर यदि मैं छलनेके लिये यहाँ उपस्थित हुई इस अप्सराको स्वीकार करता हूँ, तब ऐसी स्थितिमें महात्मा तथा तपस्वीगण मुझ कामासक्तिसे विह्वलका यह उपहास करेंगे कि सौ वर्षोंतक कठिन तपस्या करनेके पश्चात् भी एक अप्सराको देखकर महातपस्वी

दृष्ट्वाप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः।
कामं निन्दापि भवतु यदि स्यादतुलं सुखम्॥ ३४

गृहस्थाश्रमसम्भूतं सुखदं पुत्रकामदम्।
स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा॥ ३५

न भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया।
नारदाच्च मया पूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम्।
यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः॥ ३६

व्यास इतने विवश कैसे हो गये? और फिर यदि इसमें अतुलनीय सुख हो तो ऐसी निन्दा भी होती रहे। अर्थात् उसकी उपेक्षा भी की जा सकती है॥ ३२—३४॥

गृहस्थाश्रम पुत्र-प्राप्तिकी कामना पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा ज्ञानियोंको मोक्ष देनेवाला कहा गया है। किंतु वैसा सुख इस देवकन्यासे नहीं प्राप्त होगा। पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे एक कथा सुनी थी जिसमें राजा पुरूरवा उर्वशीके वशीभूत होकर अत्यन्त संकटमें पड़ गये थे॥ ३५—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शिववरदानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

बुधके जन्मकी कथा

ऋषय ऊचुः

कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशी देवकन्यका।
कथं कष्टं च सम्प्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना॥ १
सर्वं कथानकं ब्रूहि लोमहर्षणजाधुना।
श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतं रसम्॥ २
अमृतादपि मिष्टा ते वाणी सूत रसात्मिका।
न तृप्यामो वयं सर्वे सुधया च यथामराः॥ ३

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम्।
वक्ष्याम्यहं यथाबुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात्॥ ४
गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता।
रूपयौवनयुक्ता सा चार्वङ्गी मदविह्वला॥ ५
गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी।
दृष्टा च शशिनात्यर्थं रूपयौवनशालिनी॥ ६
कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति।
सापि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता॥ ७
तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः।
तारा शशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ॥ ८

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! वे राजा पुरूरवा कौन थे तथा वह देवकन्या उर्वशी कौन थी? उस मनस्वी राजाने किस प्रकार संकट प्राप्त किया?॥ १॥

हे लोमहर्षणतनय! आप इस समय पूरा कथानक विस्तारपूर्वक कहें। हम सभी लोग आपके मुखारविन्दसे निःसृत रसमयी वाणीको सुननेके इच्छुक हैं॥ २॥

हे सूतजी! आपकी वाणी अमृतसे भी बढ़कर मधुर एवं रसमयी है। जिस प्रकार देवगण अमृत-पानसे कभी तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार आपके कथा-श्रवणसे हम तृप्त नहीं होते॥ ३॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग उस दिव्य तथा मनोहर कथाको सुनिये, जिसे मैंने परम श्रेष्ठ व्यासजीके मुखसे सुना है। मैं उसे अपनी बुद्धिके अनुसार वैसा ही कहूँगा॥ ४॥

सुरगुरु बृहस्पतिकी पत्नीका नाम 'तारा' था। वह रूप-यौवनसे सम्पन्न तथा सुन्दर अंगोंवाली थी॥ ५॥

एक बार वह सुन्दरी अपने यजमान चन्द्रमाके घर गयी। उस रूप तथा यौवनसे सम्पन्न चन्द्रमुखी कामिनीको देखते ही चन्द्रमा उसपर आसक्त हो गये। तारा भी चन्द्रमाको देखकर आसक्त हो गयी। इस प्रकार वे दोनों तारा तथा चन्द्रमा एक-दूसरेको देखकर प्रेमविभोर हो गये॥ ६—८॥

रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ।
दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः॥ ९

बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुं गृहम्।
प्रेषयामास शिष्यं तु नायाता सा वशीकृता॥ १०

पुनः पुनर्यदा शिष्यं परावर्तत चन्द्रमाः।
बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि॥ ११

गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः।
उवाच शशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम्॥ १२

किं कृतं किल शीतांशो कर्म धर्मविगर्हितम्।
रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केन हेतुना॥ १३

तव देव गुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा।
गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताथवा॥ १४

ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः।
महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥ १५

महापातकयुक्तस्त्वं दुराचारोऽतिगर्हितः।
न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमङ्गना॥ १६

मुञ्चेमामसितापाङ्गीं नयामि सदनं मम।
नोचेद्वक्ष्यामि दुष्टात्मन् गुरुदारापहारिणम्॥ १७

इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणीपतिः।
गुरुं क्रोधसमायुक्तं कान्ताविरहदुःखितम्॥ १८

इन्दुरुवाच

क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः।
पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनीयास्ततोऽन्यथा॥ १९

आगमिष्यति सा कामं गृहं ते वरवर्णिनी।
अत्रैव संस्थिता बाला का ते हानिरिहानघ॥ २०

इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा।
दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया चागमिष्यति॥ २१

वे दोनों प्रेमोन्मत्त एक-दूसरेको चाहनेकी इच्छासे युक्त हो विहार करने लगे। इस प्रकार उनके कुछ दिन व्यतीत हुए। तब बृहस्पतिने ताराको घर लानेके लिये अपना एक शिष्य भेजा; परंतु वह न आ सकी॥ ९-१०॥

जब चन्द्रमाने बृहस्पतिके शिष्यको कई बार लौटाया, तो वे क्रोधित होकर चन्द्रमाके पास स्वयं गये॥ ११॥

चन्द्रमाके घर जाकर उदारचित्त बृहस्पतिने अभिमानके साथ मुसकराते हुए उस चन्द्रमासे कहा—हे चन्द्रमा! तुमने यह धर्मविरुद्ध कार्य क्यों किया और मेरी इस परम सुन्दरी पत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १२-१३॥

हे देव! मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम मेरे यजमान हो। तब हे मूर्ख! तुमने गुरुपत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १४॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, मदिरापान करनेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा पाँचवाँ इन पापियोंके साथ संसर्ग रखनेवाला—ये 'महापातकी' हैं। तुम महापापी, दुराचारी एवं अत्यन्त निन्दनीय हो। यदि तुमने मेरी पत्नीके साथ अनाचार किया है तो तुम देवलोकमें रहनेयोग्य नहीं हो॥ १५-१६॥

हे दुष्टात्मन्! असितापांगी मेरी इस पत्नीको छोड़ दो जिससे मैं इसे अपने घर ले जाऊँ, अन्यथा गुरुपत्नीका अपहरण करनेवाले तुझको मैं शाप दे दूँगा॥ १७॥

इस प्रकार बोलते हुए स्त्रीविरहसे कातर तथा क्रोधाकुल देवगुरु बृहस्पतिसे रोहिणीपति चन्द्रमाने कहा॥ १८॥

चन्द्रमा बोले—क्रोधके कारण ब्राह्मण अपूजनीय होते हैं। क्रोधरहित तथा धर्मशास्त्रज्ञ विप्र पूजाके योग्य हैं और इन गुणोंसे हीन ब्राह्मण त्याज्य होते हैं॥ १९॥

हे अनघ! वह सुन्दर स्त्री अपनी इच्छासे आपके घर चली जायगी और यदि कुछ दिन यहाँ ठहर भी गयी तो इससे आपकी क्या हानि है? अपनी इच्छासे ही वह यहाँ रहती है। सुखकी इच्छा रखनेवाली वह कुछ दिन यहाँ रहकर अपनी इच्छासे चली जायगी॥ २०-२१॥

त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा।
न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा॥ २२

इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यन्तदुःखितः।
जगाम स्वगृहं तूर्णं चिन्ताविष्टः स्मरातुरः॥ २३

दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा चिन्तातुरो गुरुः।
ययावथ गृहं तस्य त्वरितश्चौषधीपतेः॥ २४

स्थितः क्षत्रा निषिद्धोऽसौ द्वारदेशे रुषान्वितः।
नाजगाम शशी तत्र चुकोपाति बृहस्पतिः॥ २५

अयं मे शिष्यतां यातो गुरुपत्नीं तु मातरम्।
जग्राह बलतोऽधर्मी शिक्षणीयो मयाधुना॥ २६

उवाच वाचं कोपात्तु द्वारदेशस्थितो बहिः।
किं शेषे भवने मन्द पापाचार सुराधम॥ २७

देहि मे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापं ददाम्यहम्।
करोमि भस्मसान्नूनं न ददासि प्रियां मम॥ २८

सूत उवाच

क्रूराणि चैवमादीनि भाषणानि बृहस्पतेः।
श्रुत्वा द्विजपतिः शीघ्रं निर्गतः सदनाद् बहिः॥ २९

तमुवाच हसन्सोमः किमिदं बहु भाषसे।
न ते योग्यासितापाङ्गी सर्वलक्षणसंयुता॥ ३०

कुरूपां च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज।
भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी॥ ३१

रतिः स्वसदृशे कान्ते नार्याः किल निगद्यते।
त्वं न जानासि मन्दात्मन् कामशास्त्रविनिर्णयम्॥ ३२

यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहं दास्यामि कामिनीम्।
यच्छक्यं कुरु तत्कामं न देया वरवर्णिनी॥ ३३

कामार्तस्य च ते शापो न मां बाधितुमर्हति।
नाहं ददे गुरो कान्तां यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३४

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिन्तामाप रुषान्वितः।
जगाम तरसा सद्म क्रोधयुक्तः शचीपतेः॥ ३५

आपने ही तो पूर्वमें धर्मशास्त्रके इस मतका उल्लेख किया है कि संसर्गसे स्त्री और वेदकर्मसे ब्राह्मण कभी दूषित नहीं होते॥ २२॥

चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अत्यन्त दुखी हुए एवं चिन्तामग्न होकर शीघ्र ही अपने घर चले गये॥ २३॥

कुछ दिन अपने घर रहकर चिन्तासे व्याकुल गुरु बृहस्पति पुनः उन औषधिपति चन्द्रमाके यहाँ शीघ्र जा पहुँचे। वहाँ द्वारपालने उन्हें भीतर जानेसे रोका, तब वे क्रुद्ध होकर द्वारपर ही रुक गये। [कुछ देरतक प्रतीक्षा करनेपर] जब चन्द्रमा वहाँ नहीं आये, तब बृहस्पति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे॥ २४-२५॥

[वे विचार करने लगे] मेरा शिष्य होते हुए भी इसने माताके समान आदरणीया गुरुपत्नीको बलपूर्वक हर लिया है। इसलिये अब मुझे इस अधर्मीको दण्डित करना चाहिये॥ २६॥

तब बाहर द्वारपर खड़े बृहस्पतिने क्रोधके साथ चन्द्रमासे कहा—अरे नीच! पापी! देवाधम! तुम अपने घरमें निश्चिन्त होकर क्यों पड़े हो? मेरी स्त्री शीघ्र मुझे लौटा दो, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। यदि तुम मेरी पत्नी नहीं दोगे तो मैं तुझे अभी अवश्य भस्म कर दूँगा॥ २७-२८॥

सूतजी बोले—बृहस्पतिके इस प्रकारके क्रोधभरे वचन सुनकर द्विजराज चन्द्रमा शीघ्र घरसे बाहर निकले और हँसते हुए उनसे बोले—आप इतना अधिक क्यों बोल रहे हैं? सर्वलक्षणसम्पन्न वह असितापांगी आपके योग्य नहीं है॥ २९-३०॥

हे विप्र! आप अपने समान किसी अन्य स्त्रीको ग्रहण कर लीजिये; ऐसी सुन्दरी भिक्षुकके घरमें रहनेयोग्य नहीं है। यह प्रायः कहा जाता है कि अपने समान गुणसम्पन्न पतिपर ही पत्नीका प्रेम स्थिर रहता है। अपने इच्छानुसार अब आप चाहे जहाँ चले जायँ। मैं इसे नहीं दूँगा। आपका शाप मेरे ऊपर नहीं लग सकता। हे गुरो! मैं यह रमणी आपको नहीं दूँगा, अब आप जैसा चाहें वैसा करें॥ ३१—३४॥

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर देवगुरु बृहस्पति रुष्ट होकर चिन्तामें पड़ गये और वे कुपित हो शीघ्रतासे इन्द्रके भवन चले गये॥ ३५॥

दृष्ट्वा शतक्रतुस्तत्र गुरुं दुःखातुरं स्थितम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयित्वा सुसंस्थितः॥ ३६

पप्रच्छ परमोदारस्तं तथावस्थितं गुरुम्।
का चिन्ता ते महाभाग शोकार्तोऽसि महामुने॥ ३७

केनापमानितोऽसि त्वं मम राज्ये गुरुश्च मे।
त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यं लोकाधिपैः सह॥ ३८

ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुर्ये चान्ये देवसत्तमाः।
करिष्यन्ति च साहाय्यं का चिन्ता वद साम्प्रतम्॥ ३९

गुरुरुवाच

शशिनापहृता भार्या तारा मम सुलोचना।
न ददाति स दुष्टात्मा प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः॥ ४०

किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम।
साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मि शतक्रतो॥ ४१

इन्द्र उवाच

मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मि तव सुव्रत।
आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तव महामते॥ ४२

प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः।
ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैः समावृतः॥ ४३

इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तृविचक्षणम्।
प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम्॥ ४४

स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः।
उवाच वचनेनैव वचनं रोहिणीपतिम्॥ ४५

प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेण त्वां विवक्षया।
कथितं प्रभुणा यच्च तद् ब्रवीमि महामते॥ ४६

धर्मज्ञोऽसि महाभाग नीतिं जानासि सुव्रत।
अत्रिः पिता ते धर्मात्मा न निन्द्यं कर्तुमर्हसि॥ ४७

भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतन्द्रितैः।
तदर्थे कलहः कामं भविता नात्र संशयः॥ ४८

वहाँ स्थित देवगुरु बृहस्पतिको दुःखसे व्याकुल देखकर इन्द्रने पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करके बैठाया॥ ३६॥

जब बृहस्पति आसनपर बैठकर स्वस्थ हो गये, तब परम उदार इन्द्रने उनसे पूछा—'हे महाभाग! आपको कौन-सी चिन्ता है? हे मुनिवर! आप इतने शोकाकुल किसलिये हैं?॥ ३७॥

मेरे राज्यमें आपका अपमान किसने किया है? आप मेरे गुरु हैं, अतः हमारी सारी सेना एवं लोकपाल सभी आपके अधीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता भी आपकी सहायता करेंगे। आपको कौन-सी चिन्ता है; इस समय उसे बताइये॥ ३८-३९॥

बृहस्पति बोले—चन्द्रमाने मेरी सुन्दर नेत्रोंवाली पत्नी ताराका हरण कर लिया और वह दुष्ट मेरे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी उसे लौटाता नहीं है। हे देवराज! अब मैं क्या करूँ? अब तो केवल आप ही मेरी शरण हैं। हे शतक्रतो! मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। हे देवेश! आप मेरी सहायता कीजिये॥ ४०-४१॥

इन्द्र बोले—हे धर्मात्मन्! आप शोक न करें, हे सुव्रत! मैं आपका सेवक हूँ, मैं आपकी पत्नीको अवश्य लाऊँगा। हे महामते! यदि दूत भेजनेपर भी वह मदोन्मत्त चन्द्रमा आपकी स्त्रीको नहीं देगा तो देवसेनाओंसहित मैं स्वयं युद्ध करूँगा॥ ४२-४३॥

इस प्रकार गुरु बृहस्पतिको आश्वासन देकर इन्द्रने अपनी बातको सही ढंगसे कहनेवाले, विलक्षण तथा वाक्पटु दूतको चन्द्रमाके पास भेजा॥ ४४॥

शीघ्र ही वह चतुर दूत चन्द्रलोक गया और रोहिणीपति चन्द्रमासे यह सन्देश-वचन कहने लगा—हे महाभाग! हे महामते! इन्द्रने आपसे कुछ कहनेके लिये मुझे भेजा है। अतः उनके द्वारा जो कुछ कहा गया है, वही ज्यों-का-त्यों मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ४५-४६॥

हे महाभाग! हे सुव्रत! आप धर्मज्ञ हैं, नीति जानते हैं तथा धर्मात्मा अत्रिमुनि आपके पिता हैं, अतएव आपको कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जिससे आप निन्दनीय हो जायँ। आलस्यरहित होकर यथाशक्ति अपनी स्त्रीकी रक्षा सभी प्राणी करते हैं। अतः इस (तारा)-के लिये बड़ा कलह होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४७-४८॥

यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दाररक्षणे।
आत्मवत्सर्वभूतानि चिन्तय त्वं सुधानिधे॥ ४९

अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षजाः शुभाः।
गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे॥ ५०

स्वर्गे सदा वसन्त्येता मेनकाद्या मनोरमाः।
भुंक्ष्व ताः स्वेच्छया कामं मुञ्च पत्नीं गुरोरपि॥ ५१

ईश्वरा यदि कुर्वन्ति जुगुप्सितमहन्तया।
अज्ञास्तदनुवर्तन्ते तदा धर्मक्षयो भवेत्॥ ५२

तस्मान्मुञ्च महाभाग गुरोः पत्नीं मनोरमाम्।
कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्य सुराणां न भवेद्यथा॥ ५३

सूत उवाच

सोमः शक्रवचः श्रुत्वा किञ्चित्क्रोधसमाकुलः।
भङ्ग्या प्रतिवचः प्राह शक्रदूतं तदा शशी॥ ५४

इन्दुरुवाच

धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम्।
पुरोधापि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः॥ ५५

परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः।
दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा॥ ५६

बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृह्णन्ति मानवाः।
को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्स्त्रियम्॥ ५७

स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किञ्चन।
स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मन्दचेतसाम्॥ ५८

तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ।
अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा॥ ५९

गृहारम्भस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत्।
विरक्तेयं यदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम्॥ ६०

न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वद स्वयम्।
ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत्॥ ६१

हे सुधानिधे! जैसे आप अपनी भार्याकी रक्षा हेतु प्रयत्न करते हैं, वैसे वे गुरु बृहस्पति भी अपनी पत्नीकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हैं। आप अपने ही सदृश सभी प्राणियोंके विषयमें विचार कीजिये॥ ४९॥

हे सुधानिधे! आपको दक्षप्रजापतिकी सुलक्षणोंसे युक्त अट्ठाईस कन्याएँ पत्नीके रूपमें प्राप्त हैं। आप अपने गुरुकी पत्नीको पानेकी इच्छा क्यों रखते हैं? स्वर्गलोकमें मेनका आदि अनेक मनोरम अप्सराएँ सर्वदा सुलभ हैं, तब उनके साथ स्वेच्छापूर्वक विहार कीजिये और गुरुपत्नी ताराको शीघ्र ही लौटा दीजिये॥ ५०-५१॥

आप-जैसे महान् लोग यदि अहंकारवश ऐसा निन्दित कर्म करें तो अनभिज्ञ साधारणजन तो उनका अनुकरण करेंगे ही और तब धर्मका नाश हो जायगा। अतः हे महाभाग! गुरुकी इस मनोरमा पत्नीको शीघ्र लौटा दीजिये, जिससे आपके कारण इस समय देवताओंके बीच कलह न उत्पन्न हो॥ ५२-५३॥

सूतजी बोले—दूतसे इन्द्रका सन्देश सुनकर चन्द्रमा कुछ क्रोधित हो गये और उन्होंने इन्द्रके दूतको इस प्रकार व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया॥ ५४॥

चन्द्रमा बोले—हे महाबाहो! आप धर्मज्ञ हैं और स्वयं देवताओंके राजा हैं। आपके पुरोहित बृहस्पति भी ठीक आपकी तरह हैं और आप दोनोंकी बुद्धि भी एक समान है॥ ५५॥

दूसरोंको उपदेश देनेमें अनेक लोग चतुर होते हैं, परंतु कार्य उपस्थित होनेपर [उपदेशानुसार] स्वयं आचरण करनेवाला दुर्लभ होता है॥ ५६॥

हे देवेश! बृहस्पतिके बनाये शास्त्रको सभी मनुष्य स्वीकार करते हैं। शक्तिशाली लोगोंके लिये सब कुछ अपना होता है, परंतु दुर्बल लोगोंके लिये कुछ भी अपना नहीं होता। तारा जितना प्रेम मुझसे करती है, उतना बृहस्पतिसे नहीं। अतः अनुरक्त स्त्री धर्म अथवा न्यायसे त्याज्य कैसे हो सकती है? गार्हस्थ्य जीवनका वास्तविक सुख तो प्रेम रखनेवाली स्त्रीके साथ ही होता है, उदासीन स्त्रीके साथ नहीं; इसलिये हे दूत! तुम जाओ और इन्द्रसे कह दो कि मैं इसे नहीं दूँगा। हे सहस्राक्ष! आप स्वयं समर्थ हैं; आप जो चाहते हों, वह कीजिये॥ ५७—६१॥

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम्।
इन्द्रायाचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना॥ ६२

तुराषाडपि तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह।
सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः॥ ६३

शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययौ।
मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति॥ ६४

साहाय्यं ते करिष्यामि मन्त्रशक्त्या महामते।
भविता यदि संग्रामस्तव चेन्द्रेण मारिष॥ ६५

शङ्करस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम्।
गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा॥ ६६

संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्भुतम्।
बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल॥ ६७

देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः।
हंसारूढो जगामाशु तं देशं क्लेशशान्तये॥ ६८

राकापतिं तदा प्राह मुञ्च भार्यां गुरोरिति।
नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम्॥ ६९

भृगुं निवारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।
किमन्यायमतिर्जाता सङ्गदोषान्महामते॥ ७०

निषेधयामास ततो भृगुस्तं चौषधीपतिम्।
मुञ्च भार्यां गुरोरद्य पित्राहं प्रेषितस्तव॥ ७१

सूत उवाच

द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम्।
ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम्॥ ७२

प्राप्य कान्तां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ।
ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति॥ ७३

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके पास लौट गया और चन्द्रमाने जो कहा था, वह सब उसने इन्द्रसे कह दिया॥ ६२॥

इसे सुनकर प्रतापी इन्द्र भी अत्यन्त क्रोधित हुए और गुरु बृहस्पतिकी सहायताके लिये सेनाकी तैयारी करने लगे॥ ६३॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्य चन्द्रमा तथा देवगुरुके विरोधकी बात सुनकर बृहस्पतिसे द्वेषके कारण चन्द्रमाके पास गये और उससे बोले कि आप ताराको वापस मत कीजिये॥ ६४॥

हे महामते! हे मान्य! यदि इन्द्रके साथ आपका युद्ध छिड़ जायगा तो मैं भी अपनी मन्त्रशक्तिसे आपकी सहायता करूँगा॥ ६५॥

गुरुपत्नीसे अनाचारकी बात सुनकर और शुक्राचार्यको बृहस्पतिका शत्रु जानकर शिवजी भी बृहस्पतिकी सहायताके लिये तैयार हो गये॥ ६६॥

तब तारकासुरके साथ हुए युद्धकी भाँति देव-दानवोंमें संग्राम छिड़ गया। यह युद्ध बहुत वर्षोंतक चलता रहा॥ ६७॥

देव-दानवोंका यह संग्राम देखकर प्रजापति ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर उस क्लेशकी शान्तिके लिये रणस्थलमें शीघ्र पहुँचे। तब ब्रह्माजीने चन्द्रमासे कहा कि तुम गुरु बृहस्पतिकी पत्नी लौटा दो, नहीं तो भगवान् विष्णुको बुलाकर मैं तुम्हें समूल नष्ट कर दूँगा। तत्पश्चात् लोकपितामह ब्रह्माजीने भृगुनन्दन शुक्रको भी युद्धसे रोका और उनसे कहा—हे महामते! दैत्योंके संगसे क्या आपकी भी बुद्धि अन्याययुक्त हो गयी है?॥ ६८—७०॥

तत्पश्चात् [ब्रह्माजीकी बात सुनकर शुक्राचार्य चन्द्रमाके पास गये] उन्होंने चन्द्रमाको युद्धसे रोका और कहा कि तुम्हारे पिताने मुझे भेजा है, तुम अपने गुरुकी पत्नीको तत्काल छोड़ दो॥ ७१॥

सूतजी बोले—शुक्राचार्यकी वह अद्भुत वाणी सुनकर चन्द्रमाने बृहस्पतिकी गर्भवती सुन्दरी प्रिय भार्याको लौटा दिया॥ ७२॥

पत्नीको पाकर देवगुरु बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक अपने घर चले गये। तत्पश्चात् सभी देवता और दैत्य भी अपने-अपने घर चले गये॥ ७३॥

ब्रह्मा स्वसदनं प्राप्तः कैलासं चापि शङ्करः।
बृहस्पतिस्तु सन्तुष्टः प्राप्य भार्यां मनोरमाम्॥ ७४

ततः कालेन कियता तारासूत सुतं शुभम्।
सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः॥ ७५

दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम्।
जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ७६

श्रुतं चन्द्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः।
दूतं च प्रेषयामास गुरुं प्रति महामतिः॥ ७७

न चायं तव पुत्रोऽस्ति मम वीर्यसमुद्भवः।
कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकं विधिम्॥ ७८

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः।
उवाच मम पुत्रो मे सदृशो नात्र संशयः॥ ७९

पुनर्विवादः सञ्जातो मिलिता देवदानवाः।
युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत॥ ८०

तत्रागतः स्वयं ब्रह्मा शान्तिकामः प्रजापतिः।
निवारयामास मुखे संस्थितान्युद्धदुर्मदान्॥ ८१

तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे।
सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति॥ ८२

तमुवाचासितापाङ्गी लज्जमानाप्यधोमुखी।
चन्द्रस्येति शनैरन्तर्जगाम वरवर्णिनी॥ ८३

जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः॥ ८४

ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः।
यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः॥ ८५

पितामह ब्रह्मा अपने लोकको तथा शिवजी भी कैलासपर्वतपर चले गये। इस प्रकार अपनी सुन्दरी स्त्रीको पाकर बृहस्पति सन्तुष्ट हो गये॥ ७४॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद ताराने शुभ दिन तथा शुभ नक्षत्रमें गुणोंमें चन्द्रमाके समान ही सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पुत्रको उत्पन्न देखकर देवगुरु बृहस्पतिने प्रसन्न मनसे उसके विधिवत् जातकर्म आदि सभी संस्कार किये॥ ७५-७६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! चन्द्रमाने जब सुना कि पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब बुद्धिमान् चन्द्रमाने बृहस्पतिके पास अपना दूत भेजा [और कहलाया—हे गुरो!] यह पुत्र आपका नहीं है; क्योंकि यह मेरे तेजसे उत्पन्न है। तब आपने अपनी इच्छासे बालकका जातकर्मादि संस्कार क्यों कर लिया?॥ ७७-७८॥

उस दूतका वचन सुनकर बृहस्पतिने कहा कि यह मेरा पुत्र है; क्योंकि इसकी आकृति मेरे समान है, इसमें सन्देह नहीं॥ ७९॥

पुनः दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और देव-दानव मिलकर फिर युद्धके लिये आ गये और इस प्रकार उनका बहुत बड़ा समूह एकत्र हो गया॥ ८०॥

उस समय शान्तिके अभिलाषी स्वयं प्रजापति ब्रह्माजी पुनः वहाँ पहुँचे और रणभूमिमें डटे हुए युद्धोत्सुक देव-दानवोंको उन्होंने युद्धसे रोका॥ ८१॥

धर्मात्मा ब्रह्माजीने तारासे पूछा—'हे कल्याणि! यह पुत्र किसका है? हे सुन्दरि! तुम सही-सही बता दो, जिससे यह कलह शान्त हो जाय'॥ ८२॥

तब असितापांगी सुन्दरी ताराने लजाते हुए सिर नीचे करके मन्द स्वरमें कहा—'यह पुत्र चन्द्रमाका है' ऐसा कहकर वह घरके भीतर चली गयी॥ ८३॥

तब प्रसन्नचित्त होकर चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया। उन्होंने उसका नाम 'बुध' रखा। पुनः वे अपने घर चले गये॥ ८४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी अपने लोकको तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी चले गये। इसी प्रकार प्रेक्षक भी जो जहाँसे आये थे, वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ८५॥

कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः।
यथा श्रुता मया पूर्वं व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ ८६

[हे मुनिजन!] इस प्रकार गुरुके क्षेत्रमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्तिका यह वृत्तान्त जैसा मैंने पूर्वमें सत्यवती-पुत्र व्यासजीसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया है॥ ८६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह और पुरूरवाकी उत्पत्ति, भगवतीकी स्तुति करनेसे इलारूपधारी राजा सुद्युम्नकी सायुज्यमुक्ति

सूत उवाच

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां कथयामि वः।
बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मा यज्ञकृद्दानतत्परः॥ १

सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सैन्धवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने॥ २

युतः कतिपयामात्यैर्दर्शितश्चारुकुण्डलः।
धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसङ्गं तथाद्भुतम्॥ ३

स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान्।
शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्च गवयांस्तथा॥ ४

शरभान्महिषांश्चैव साम्भरान्वनकुक्कुटान्।
निघ्नन्मेध्यान् पशून् राजा कुमारवनमाविशत्॥ ५

मेरोरधस्तले दिव्यं मन्दारद्रुमराजितम्।
अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवासितम्॥ ६

सालैस्तालैस्तमालैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा।
आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमण्डपावृतम्॥ ७

दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखण्डमण्डितम्।
यूथिकामालतीकुन्दपुष्पवल्लीसमावृतम् ॥ ८

सूतजी बोले—तदनन्तर इलाके गर्भसे पुरूरवाने जन्म लिया, यह प्रसंग मैं आपलोगोंसे कहता हूँ। वे बुधपुत्र पुरूरवा बड़े धर्मात्मा, यज्ञ करनेवाले एवं दानशील थे॥ १॥

सुद्युम्न नामक एक राजा थे। वे बड़े ही सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। एक बार वे सैन्धव घोड़ेपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये। उनके साथ कुछ मन्त्री भी थे। वे राजा कानोंमें कमनीय कुण्डल पहने थे। आजगव नामक धनुष तथा बाणोंसे भरा अद्भुत तरकस धारण करके उस वनमें भ्रमण करते हुए रुरुमृग, हिरण, खरगोश, सूअर, गैंड़ों, गवय, साँभर, भैंसों, वन-मुर्गोंको मारते हुए तथा यज्ञोपयोगी अनेक वनपशुओंका वध करते हुए राजा सुद्युम्न 'कुमार' नामक वनमें प्रविष्ट हुए॥ २—५॥

वह दिव्य वन सुमेरु पर्वतके निचले भागमें था, जो सुन्दर मन्दार-वृक्षोंसे सुशोभित था, वहाँ अशोक वृक्षकी लताएँ फैली हुई थीं तथा मौलसिरीकी सुगन्धि उसे सुरभित कर रही थी। वह वन साल, ताड़, तमाल, चम्पा, कटहल, आम, कदम्ब और महुएके पेड़ोंसे सुशोभित था तथा जहाँ-तहाँ माधवी लता मण्डपके समान छायी हुई थी॥ ६-७॥

उस वनमें दाडिम, नारियल तथा केलेके वृक्ष भी शोभित हो रहे थे और वह वन जूही, मालती तथा कुन्दकी पुष्पित लताओंसे चारों ओरसे घिरा हुआ था। वहाँ हंस और बतख विचरण कर रहे थे, बाँस [एक

हंसकारण्डवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम्।
भ्रमरालिरुतारामं वनं सर्वसुखावहम्॥ ९

दृष्ट्वा प्रमुदितो राजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः।
वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमण्डितान्॥ १०

प्रविष्टस्तत्र राजर्षिः स्त्रीत्वमाप क्षणात्ततः।
अश्वोऽपि वडवा जातश्चिन्ताविष्टः स भूपतिः॥ ११

किमेतदिति चिन्तार्तश्चिन्त्यमानः पुनः पुनः।
दुःखं बहुतरं प्राप्तः सुद्युम्नो लज्जयान्वितः॥ १२

किं करोमि कथं यामि गृहं स्त्रीभावसंयुतः।
कथं राज्यं करिष्यामि केन वा वञ्चितो ह्यहम्॥ १३

ऋषय ऊचुः

सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षण।
सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः॥ १४

किं तत्कारणमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे।
किं कृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत॥ १५

सूत उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन्॥ १६

तस्मिंश्च समये तत्र शङ्करः प्रमदायुतः।
क्रीडासक्तो महादेवो विवस्त्रा कामिनी शिवा॥ १७

उत्सङ्गे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा।
तान्विलोक्याम्बिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम्॥ १८

भर्तुरङ्कात्समुत्थाय वस्त्रमादाय पर्यधात्।
लज्जाविष्टा स्थिता तत्र वेपमानातिमानिनी॥ १९

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः।
परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम्॥ २०

ह्रीयुतां कामिनीं वीक्ष्य प्रोवाच भगवान्हरः।
कथं लज्जातुरासि त्वं सुखं ते प्रकरोम्यहम्॥ २१

अद्यप्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने।
वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति॥ २२

दूसरेसे रगड़ खानेके कारण हवामें मधुर] ध्वनि कर रहे थे तथा कहीं भ्रमरोंकी मधुर गुंजार वन-प्रान्तको गुंजित कर रही थी। इस प्रकार वह वन सब प्रकारसे सुखदायक था॥ ८-९॥

कोयलोंकी ध्वनिसे मण्डित तथा पुष्पोंसे युक्त वृक्षोंको देखकर अनुचरोंके साथ राजा सुद्युम्न अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

राजर्षि सुद्युम्नने वहाँ प्रवेश किया और उसी क्षण वे स्त्रीके रूपमें परिणत हो गये; उनका घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें हो गया। इससे वे राजा चिन्तामें पड़ गये। [वे मनमें सोचने लगे] यह क्या हो गया? चिन्तासे व्याकुल वे राजा सुद्युम्न बार-बार सोचते हुए बहुत दुःखी तथा लज्जित हुए। [उन्होंने सोचा] अब मैं क्या करूँ और स्त्रीत्व भावसे युक्त मैं घर कैसे जाऊँ? मैं अब कैसे राज्य-संचालन करूँगा? मैं इस प्रकार किससे ठगा गया?॥ ११—१३॥

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षण सूतजी! आपने यह बड़ी आश्चर्यजनक बात कही है। देवताके समान तेजस्वी राजा सुद्युम्न स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये—इसका क्या कारण है? उसे बताइये। उस रमणीय वनमें राजाने कौन-सा कार्य किया था? हे सुव्रत! आप विस्तारपूर्वक हमें बताइये॥ १४-१५॥

सूतजी बोले—एक समयकी बात है—सनकादिक ऋषिगण अपने तेजसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शंकरजीके दर्शनके लिये वहाँ गये थे॥ १६॥

उस समय महादेव शिव पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे, इसी बीच उन सनकादिक ऋषियोंको वहाँ देखकर पार्वती अत्यन्त लज्जित हो गयीं। वे अतिमानिनी पार्वती काँपती हुई लज्जित होकर अलग खड़ी हो गयीं॥ १७—१९॥

सनकादिक मुनि भी शिव एवं पार्वतीको विहार करते देखकर वहाँसे तत्काल लौटकर नर-नारायणके आश्रममें चले गये॥ २०॥

भगवान् शिव अपनी प्रिय पत्नीको लज्जित देखकर कहने लगे—तुम इस प्रकार लज्जित क्यों हो रही हो? तुम्हारे सुख का उपाय मैं अभी करता हूँ। हे वरानने! आजसे जो कोई भी पुरुष इस वनमें भूलसे भी आयेगा, वह स्त्री हो जायगा॥ २१-२२॥

इति शप्तं वनं तेन ये जानन्ति जनाः क्वचित्।
वर्जयन्तीह ते कामं वनं दोषसमृद्धिमत्॥ २३

सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह।
तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः॥ २४

चिन्ताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया।
विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशादितस्ततः॥ २५

इलेति नाम सम्प्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना।
विचरंस्तत्र सम्प्रातो बुधः सोमसुतो युवा॥ २६

स्त्रीभिः परिवृतां तां तु दृष्ट्वा कान्तां मनोरमाम्।
हावभावकलायुक्तां चकमे भगवान्बुधः॥ २७

सापि तं चकमे कान्तं बुधं सोमसुतं पतिम्।
संयोगस्तत्र सञ्जातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम्॥ २८

स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम्।
इलायां सोमपुत्रस्तु चक्रवर्तिनमुत्तमम्॥ २९

सा प्रासूत सुतं बाला चिन्ताविष्टा वने स्थिता।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं मुनिसत्तमम्॥ ३०

स तदास्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः।
अतोषयन्महादेवं शङ्करं लोकशङ्करम्॥ ३१

तस्मै स भगवांस्तुष्टः प्रददौ वाञ्छितं वरम्।
वसिष्ठः प्रार्थयामास पुंस्त्वं राज्ञः प्रियस्य च॥ ३२

शङ्करस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह।
मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किल॥ ३३

इत्थं प्राप्य वरं राजा जगाम स्वगृहं पुनः।
चक्रे राज्यं स धर्मात्मा वसिष्ठस्याप्यनुग्रहात्॥ ३४

उन शिवजीने वनको ऐसा शाप दे दिया है—इसे जो लोग जानते हैं, वे उस दोषपूर्ण वनका पूर्णतः परित्याग कर देते हैं॥ २३॥

वे सुद्युम्न भी अज्ञानवश सचिवोंके साथ उस वनमें चले गये, जिससे वे अपने सचिव आदि सहित स्त्री हो गये; इसमें शंकाका कोई कारण नहीं है॥ २४॥

चिन्ताकुल होनेके कारण राजा सुद्युम्न लज्जावश घर नहीं गये और उस वनप्रदेशसे बाहर इधर-उधर घूमने लगे॥ २५॥

स्त्रीत्व प्राप्त होनेपर उन महात्माका नाम इला पड़ गया। इस प्रकार स्त्रीरूपमें घूमते हुए एक दिन चन्द्रमाके युवा पुत्र बुधसे उनकी भेंट हो गयी॥ २६॥

अनेक स्त्रियोंके साथ भ्रमण करती हुई उस हाव-भावमयी युवती रमणीको देखकर चन्द्रमाके पुत्र भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये। वह रमणी भी उन चन्द्रपुत्र बुधको अपना पति बनानेके लिये आकुल हो उठी। इस प्रकार परस्पर अनुरागके कारण कुछ दिनोंमें उन दोनोंका संयोग हो गया॥ २७-२८॥

उस चन्द्रमापुत्र बुधने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक श्रेष्ठ चक्रवर्ती पुत्रको उत्पन्न किया। पुत्रको जन्म देकर वह इला वनमें ही रहने लगी तथा चिन्तातुर हो उसने अपने कुलाचार्य मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका स्मरण किया॥ २९-३०॥

[इलाके स्मरण करते ही वसिष्ठजी वहाँ आये।] सुद्युम्नकी यह दशा देखकर उन्हें बड़ी दया आयी। तब उन्होंने समस्त लोकका कल्याण करनेवाले महादेव शिवको प्रसन्न किया॥ ३१॥

वसिष्ठजीपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें मनोभिलषित वर प्रदान किया। वसिष्ठजीने प्रिय राजा सुद्युम्नके पुनः पुरुष होनेके लिये प्रार्थना की॥ ३२॥

शिवजीने अपना वचन सत्य करते हुए कहा—'हे ऋषे! आजसे राजा सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री बने रहेंगे'॥ ३३॥

इस प्रकार वरदान पाकर राजा सुद्युम्न पुनः अपने घर आ गये और वे धर्मात्मा वहाँ वसिष्ठजीकी कृपासे राज्य करने लगे॥ ३४॥

स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यं प्रशास्ति च।
प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनन्दन्महीपतिम्॥ ३५

काले तु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा।
प्रतिष्ठां नृपतिस्तस्मै दत्त्वा राज्यं वनं ययौ॥ ३६

गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले।
नारदान्मन्त्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम्॥ ३७

जजाप मन्त्रमत्यर्थं प्रेमपूरितमानसः।
परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणी शिवा॥ ३८

सिंहारूढा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा।
वारुणीपानसम्मत्ता मदाघूर्णितलोचना॥ ३९

दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च प्रेमाकुलितलोचनः।
प्रणम्य शिरसा प्रीत्या तुष्टाव जगदम्बिकाम्॥ ४०

इलोवाच

दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं
दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम्।
वन्दे त्वदंघ्रिकमलं सुरसङ्घसेव्यं
कामप्रदं जननि चापि विमुक्तिदं च॥ ४१

को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं
मुह्यन्ति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे।
ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च
दृष्ट्वैव देवि सकलं किल विस्मयो मे॥ ४२

शम्भुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च
वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः।
जानन्ति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं
बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः॥ ४३

वे जब स्त्रीके रूपमें रहते थे, तब अन्तःपुरमें रहते थे और जब पुरुषरूपमें रहते थे, तब राज्य करते थे। परंतु इस कारण उनकी प्रजा उनसे उद्विग्न होकर राजाके रूपमें उनका अभिनन्दन नहीं करती थी॥ ३५॥

कुछ समयके बाद जब राजकुमार पुरूरवा युवक हो गया तब महाराज सुद्युम्न उसे प्रतिष्ठानपुरका राज्य सौंपकर वनमें चले गये॥ ३६॥

अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुन्दर लगनेवाले उस वनमें रहते हुए राजा सुद्युम्नने देवर्षि नारदजीसे सर्वोत्तम नवाक्षर (नवार्ण) मन्त्रकी दीक्षा ली और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिके साथ मन लगाकर वे उस मन्त्रका जप करने लगे। तदनन्तर भक्तोंका उद्धार करनेवाली जगज्जननी भगवती शिवाने सगुणरूप धारण करके उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय मनोरम तथा दिव्य स्वरूपवाली भगवती सिंहपर सवार होकर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं। उनके नेत्र मदसे परिपूर्ण थे॥ ३७—३९॥

ऐसी दिव्य रूपधारिणी श्रीदुर्गादेवीको अपने सामने देखकर स्नेहभरे नेत्रोंवाले (इलारूपी) राजा सुद्युम्न प्रेमपूर्वक सिर नवाकर उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

इलाने कहा—हे भगवति! आपका जगत्-प्रसिद्ध वह दिव्य रूप, जो संसारके लिये कल्याणकारी है—मैंने देखा। हे जननि! सुरसमूहसे सेवित आपके भुक्ति-मुक्तिप्रदायक चरणकमलकी मैं वन्दना कर रही हूँ॥ ४१॥

हे अम्ब! इस संसारमें कौन मनुष्य आपको सम्पूर्ण रूपसे जान सकता है? जबकि मुनि एवं देवगण भी उसे देखकर विमोहित रहते हैं। हे देवि! आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा मुझ-जैसी अकिंचनपर दया—यह सब देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है॥ ४२॥

हे माता! जब शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, वायु, चन्द्रमा और अष्टवसु भी आपके प्रभावको नहीं जानते हैं, तब भला गुणरहित मनुष्य आपके गुणोंको कैसे जान सकता है?॥ ४३॥

जानाति विष्णुरमितद्युतिरम्ब साक्षा-
त्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च।
को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां
वेदाम्बिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम्॥ ४४

क्वाहं सुमन्दमतिरप्रतिमप्रभावः
क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः।
जाने भवानि चरितं करुणासमेतं
यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान्॥ ४५

वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयापि
नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च।
पादौ तवादिपुरुषः किल पावकेन
कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ॥ ४६

वाञ्छत्यहो हरिरशोक इवातिकामं
पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः।
तां त्वं करोषि रुषिता प्रणतं च पादे
दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम्॥ ४७

वक्षःस्थले वससि देवि सदैव तस्य
पर्यङ्कवत्सुचरिते विपुलेऽतिशान्ते।
सौदामिनीव सुघने सुविभूषिते च
किं ते न वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि॥ ४८

त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमम्ब कोपा-
न्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः।
प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजन्ति
शान्तं श्रियोज्झितमतीव गुणैर्वियुक्तम्॥ ४९

ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो
ये त्वत्पदाम्बुजमहर्निशमाश्रयन्ति।
मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः
किं वर्णयामि तव शक्तिमनन्तवीर्ये॥ ५०

हे अम्ब! यद्यपि परम तेजस्वी भगवान् विष्णु आपको समुद्रसे उत्पन्न, सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली साक्षात् सात्त्विकी शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीके रूपमें समझते हैं, ब्रह्मा भी आपको राजसी शक्तिस्वरूपा सरस्वती तथा शिवजी आपको तामसी शक्तिस्वरूपा महाकालीके रूपमें जानते हैं, तथापि हे अम्बिके! वे भी आपकी निर्गुणात्मिका दिव्य शक्तिको भलीभाँति नहीं जानते॥ ४४॥

हे भवानि! कहाँ तो अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं और कहाँ मुझपर अमित महिमाशाली तथा अमोघ प्रभाववाला आपका अनुग्रह! मैं आपके कारुणिक चरित्रको जानती हूँ जो कि आप भक्तिभावयुक्त सेवकोंपर सर्वदा दया करती हैं॥ ४५॥

यद्यपि कमलवनमें वास करनेवाली कमला होकर आपने भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें वरण किया है, तथापि वे मधुसूदन आनन्ददायक व्यवहार नहीं करते। वे आदिपुरुष विष्णु आदिशक्तिस्वरूपा आपके पवित्र हाथोंसे अपना पादसंवाहन कराकर अपने चरणोंको शुभ तथा पवित्र करते हैं॥ ४६॥

वे पुराणपुरुष भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होकर आपके चरणोंका आघात वैसे ही चाहते हैं, जैसे अशोकवृक्ष अपनी वृद्धिके लिये चाहता है॥ ४७॥

हे सुन्दर चरित्रवाली देवि! आप विष्णुके विशाल, शान्त एवं भूषणोंसे विभूषित वक्षःस्थलरूपी शय्यापर सर्वदा निवास करती हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है, मानो सुन्दर श्याम मेघमें बिजली चमक रही हो, तब वे जगदीश्वर होते हुए भी क्या आपके वाहन नहीं बन जाते?॥ ४८॥

हे अम्ब! यदि क्रोधित होकर आप उनको त्याग दें तो वे भगवान् विष्णु अपूजित और शक्तिहीन होकर कुछ नहीं कर पायेंगे; क्योंकि लोकमें भी देखा जाता है कि श्रीहीन, गुणरहित एवं उदासीन पुरुषको उनके कुटुम्बीजन भी त्याग देते हैं॥ ४९॥

क्या ब्रह्मादि देवगण भी किसी समय युवतीरूपमें नहीं थे, जो दिन-रात आपके चरणकमलोंका ही आश्रय रखते हैं। मैं तो मानती हूँ कि आपने ही उन्हें पुंस्त्व प्रदान किया था। अतः हे अनन्त पराक्रमशालिनि! मैं आपकी शक्तिका क्या वर्णन कर सकती हूँ?॥ ५०॥

त्वं नापुमान्न च पुमानिति मे विकल्पो
या कासि देवि सगुणा ननु निर्गुणा वा।
तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो
वाञ्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं तु॥ ५१

सूत उवाच

इति स्तुत्वा महीपालो जगाम शरणं तदा।
परितुष्टा ददौ देवी तत्र सायुज्यमात्मनि॥ ५२

सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकं स्थिरम्।
तस्या देव्याः प्रसादेन मुनीनामपि दुर्लभम्॥ ५३

'आप न तो स्त्री हैं, न पुरुष; न निर्गुण हैं न सगुण'—ऐसी मेरी धारणा है। अतः आप जैसी भी हों—उन आपको मैं भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करती हूँ। आप मातासे मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि आपमें मेरी अचल भक्ति बनी रहे॥ ५१॥

सूतजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके राजा सुद्युम्न उनके शरणागत हुए और भगवतीने भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान की। तब उन देवीकी कृपासे सुद्युम्नने मुनियोंके लिये भी अति दुर्लभ शाश्वत परमपद प्राप्त किया॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा पुरूरवा और उर्वशीकी कथा

सूत उवाच

सुद्युम्ने तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः।
सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारञ्जनतत्परः॥ १

प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्वनमस्कृतम्।
चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः॥ २

मन्त्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञता तथा।
सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा॥ ३

सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः।
वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन् राज्यं शशास ह॥ ४

यज्ञांश्च विविधांश्चक्रे स राजा बहुदक्षिणान्।
दानानि च पवित्राणि ददावथ नराधिपः॥ ५

तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान्।
श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम्॥ ६

ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता।
गुणिनं तं नृपं मत्वा वरयामास मानिनी॥ ७

सूतजी बोले—सुद्युम्नके दिवंगत हो जानेपर प्रजानुरंजनमें तत्पर, गुणी एवं सुन्दर महाराज पुरूरवा राज्य करने लगे। उस रमणीय प्रतिष्ठानपुरमें सर्वधर्मज्ञ तथा प्रजाकी रक्षामें तत्पर राजा पुरूरवाने सभीके द्वारा आदरणीय राज्य किया॥ १-२॥

उनकी राज्य-मन्त्रणा अच्छी तरहसे गुप्त रहती थी और उन्हें दूसरे राज्योंकी मन्त्रणाओंका भलीभाँति ज्ञान रहता था। उनमें सर्वदा उत्साहशक्ति एवं उत्तम प्रभुशक्ति विद्यमान थी। साम, दान, दण्ड और भेद—ये चारों नीतियाँ उन राजाके वशीभूत थीं। वे चारों वर्णों तथा आश्रमोंके लोगोंसे अपने-अपने धर्मोंका आचरण कराते हुए राज्यका शासन-कार्य करते थे। वे राजा पुरूरवा विपुल दक्षिणावाले विविध यज्ञ करते थे और पवित्र दान किया करते थे॥ ३—५॥

राजा पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील, ऐश्वर्य एवं वीरताकी प्रशंसा सुनकर उर्वशी उनके वशीभूत हो गयी; उन दिनों वह भी ब्रह्माके शापसे पृथ्वीपर मनुष्य-योनिमें आयी थी। अतः उस मानिनीने उन राजाको गुणी जानकर उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया॥ ६-७॥

समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वराङ्गना।
एतावुरणकौ राजन्न्यस्तौ रक्षस्व मानद॥ ८

घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किञ्चिन्नृपाशनम्।
नेक्षे त्वां च महाराज नग्नमन्यत्र मैथुनात्॥ ९

भाषाबन्धस्त्वयं राजन् यदि भग्नो भविष्यति।
तदा त्यक्त्वा गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ १०

अङ्गीकृतं च तद्राज्ञा कामिन्या भाषितं तु यत्।
स्थिता भाषणबन्धेन शापानुग्रहकाम्यया॥ ११

रेमे तदा स भूपालो लीनो वर्षगणान्बहून्।
धर्मकर्मादिकं त्यक्त्वा चोर्वश्या मदमोहितः॥ १२

एकचित्तस्तु सञ्जातस्तन्मनस्को महीपतिः।
न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः॥ १३

एवं वर्षगणान्ते तु स्वर्गस्थः पाकशासनः।
उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गन्धर्वानाह देवराट्॥ १४

उर्वशीमानयध्वं भो गन्धर्वाः सर्व एव हि।
हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल॥ १५

उर्वशीरहितं स्थानं मदीयं नातिशोभते।
येन केनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम्॥ १६

इत्युक्तास्तेऽथ गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः।
ततो गत्वा महागाढे तमसि प्रत्युपस्थिते॥ १७

जह्रुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्य तम्।
चक्रन्दतुस्तदा तौ तु ह्रियमाणौ विहायसा॥ १८

उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रन्दितं सुतयोरिव।
कुपितोवाच राजानं समयोऽयं कृतो मया॥ १९

वह वरांगना इस प्रकारकी शर्त रखकर वहीं रहने लगी। [उसने कहा]—हे राजन्! ये दोनों भेड़के बच्चे मैं आपके पास धरोहरके रूपमें रखती हूँ। हे मानद! आप इनकी रक्षा करें। हे नृप! [दूसरी शर्त है कि] मैं केवल घी ही खाऊँगी और कुछ नहीं और हे महाराज! [तीसरी शर्त है कि] सहवासके अतिरिक्त किसी दूसरे समयमें मैं आपको कभी वस्त्रविहीन अवस्थामें न देखूँ। हे राजन्! यदि आप इन कही गयी शर्तोंको भंग करेंगे तो मैं उसी समय आपको छोड़कर चली जाऊँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ॥ ८—१०॥

इस प्रकार उस कामिनी उर्वशीने जो कहा था, उसे राजाने स्वीकार कर लिया और उर्वशी शापसे उद्धार पानेकी इच्छासे राजा पुरूरवाको प्रतिज्ञाबद्ध करके वहीं रहने लगी॥ ११॥

उर्वशीके द्वारा मुग्ध किये गये राजा सब धर्म-कर्म त्यागकर अनेक वर्षोंतक भोग-विलासमें पड़े रहे। उसपर आसक्त मनवाले वे सदा उसीका चिन्तन करते रहते थे और उसपर अत्यधिक मोहित होनेके कारण एक क्षण भी उस उर्वशीके बिना नहीं रह सकते थे॥ १२-१३॥

इस प्रकार जब बहुत वर्ष बीत गये, तब देवलोकमें इन्द्रने अपनी सभामें उर्वशीको अनुपस्थित देखकर गन्धर्वोंसे पूछकर कहा—हे गन्धर्वगण! तुम सब लोग वहाँ जाओ और प्रतिज्ञाबद्ध राजाके घरसे भेड़ोंको चुराकर उर्वशीको ले आओ; क्योंकि उर्वशीके बिना मुझे यह स्थान अच्छा नहीं लगता। अतः जिस किसी भी उपायसे उस कामिनीको तुमलोग लाओ॥ १४—१६॥

तब इन्द्रके ऐसा कहनेपर विश्वावसु आदि प्रधान गन्धर्वोंने वहाँसे जाकर रात्रिके घोर अन्धकारमें राजा पुरूरवाको विहार करते देख उन दोनों भेड़ोंको चुरा लिया। तब आकाशमार्गमें जाते हुए चुराये गये वे दोनों भेड़ जोरसे चिल्लाने लगे॥ १७-१८॥

अपने पुत्रके समान पाले हुए भेड़ोंका क्रन्दन सुनते ही उर्वशीने क्रोधित होकर राजा पुरूरवासे कहा—हे राजन्! मैंने आपके सम्मुख जो पहली शर्त

नष्टाहं तव विश्वासाद्धृतौ चौरैर्ममोरणौ।
राजन्पुत्रसमावेतौ त्वं किं शेषे स्त्रिया समः॥ २०

हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना।
उरणौ मे गतौ चाद्य सदा प्राणप्रियौ मम॥ २१

एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः।
नग्न एव ययौ तूर्णं पृष्ठतः पृथिवीपतिः॥ २२

विद्युत्प्रकाशिता तत्र गन्धर्वैर्नृपवेश्मनि।
नग्नभूतस्तया दृष्टो भूपतिर्गन्तुकामया॥ २३

त्यक्त्वोरणौ गताः सर्वे गन्धर्वाः पथि पार्थिवः।
नग्नो जग्राह तौ श्रान्तो जगाम स्वगृहं प्रति॥ २४

तदोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः।
नग्नं वीक्ष्य पतिं नारी गता सा वरवर्णिनी॥ २५

क्रन्दन्स देशदेशेषु बभ्राम नृपतिः स्वयम्।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन्विवशः काममोहितः॥ २६

भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं कुरुक्षेत्रे ददर्श ताम्।
दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः॥ २७

अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि।
मां त्वं त्वन्मनसं कान्तं वशगं चाप्यनागसम्॥ २८

स देहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया।
खादन्त्येनं वृकाः काकास्त्वया त्यक्तं वरोरु यत्॥ २९

एवं विलपमानं तं राजानं प्राह चोर्वशी।
दुःखितं कृपणं श्रान्तं कामार्तं विवशं भृशम्॥ ३०

रखी थी, वह टूट गयी। आपके विश्वासपर मैं धोखेमें पड़ी; क्योंकि पुत्रके समान मेरे प्रिय भेड़ोंको चोरोंने चुरा लिया फिर भी आप घरमें स्त्रीकी तरह शयन कर रहे हैं॥ १९-२०॥

अपनेको वीर समझनेवाले नपुंसक इस अधम स्वामीके द्वारा मैं नष्ट कर दी गयी। सर्वदा प्राणोंके समान मेरे दोनों भेड़ अब चले गये। उर्वशीको इस प्रकार विलाप करती देख प्रेममें आसक्त राजा पुरूरवा चोरोंके पीछे नग्नावस्थामें ही तुरंत दौड़ पड़े॥ २१-२२॥

उसी समय गन्धर्वोंद्वारा वहाँ राजाके भवनमें बिजली चमका दी गयी, जिसके कारण वहाँसे जानेकी इच्छावाली उर्वशीने राजाको नग्न देख लिया॥ २३॥

गन्धर्व उन दोनों भेड़ोंको वहीं मार्गमें छोड़कर भाग गये। थके एवं नग्न राजा भेड़ोंको लेकर अपने घर चले आये। तब वे उर्वशीको वहाँसे गयी हुई देखकर अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे एवं लज्जित हुए। पतिको नग्न देखकर वह सुन्दरी उर्वशी चली गयी थी॥ २४-२५॥

व्याकुल, लाचार, कामसे मोहित तथा एकमात्र उर्वशीमें आसक्त चित्तवाले राजा शोक तथा क्रन्दन करते हुए देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार समस्त भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए उन्होंने उर्वशीको कुरुक्षेत्रमें देखा। उसे देखते ही प्रसन्न मुखवाले नृपश्रेष्ठ राजा पुरूरवाने मधुर वाणीमें कहा—हे प्रिये! ठहरो-ठहरो। हे कठोरहृदये! मैं अब भी तुमपर आसक्त हूँ, मैं तुम्हारे वशमें हूँ; अतः मुझ निरपराधी पतिको तुम मत छोड़ो॥ २७-२८॥

हे देवि! जिस शरीरसे तुमने इतना प्रेम किया था, जिसे तुमने यहाँतक खींच लिया, वह शरीर आज यहीं गिर जायगा। हे सुन्दरि! तुम्हारे द्वारा त्यक्त इस देहको भेड़िये और कौए खा जायेंगे॥ २९॥

इस प्रकार विलाप करते हुए दुःखित, दीन, थके, कामातुर और अत्यन्त लाचार राजा पुरूरवासे उर्वशी कहने लगी॥ ३०॥

उर्वश्युवाच

मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव।
क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां वृकाणामिव पार्थिव॥ ३१

न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः।
गृहं गच्छ सुखं भुंक्ष्व मा विषादे मनः कृथाः॥ ३२

इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः।
दुःखं च परमं प्राप्तः स्वैरिणीस्नेहयन्त्रितः॥ ३३

सूत उवाच

इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितं महत्।
वेदे विस्तरितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया॥ ३४

उर्वशी बोली—हे राजेन्द्र! आप मूर्ख हैं। आपका ज्ञान कहाँ चला गया? हे पृथ्वीपते! भेड़ियोंके समान स्त्रियोंकी किसीसे मित्रता नहीं होती। अतः राजाओंको चाहिये कि वे स्त्रियों और चोरोंपर कभी भी विश्वास न करें। अब आप अपने घर जाइये, सुख भोगिये और मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता मत कीजिये॥ ३१-३२॥

इस प्रकार अत्यन्त विषयासक्त होनेके कारण उर्वशीके समझानेपर भी राजाको ज्ञान नहीं हुआ। उस स्वेच्छाचारिणी अप्सराके स्नेहमें जकड़े रहनेके कारण उन्हें अपार दुःख प्राप्त हुआ॥ ३३॥

सूतजी बोले—[हे मुनिजन!] इस प्रकार मैंने उर्वशीके महान् चरित्रका वर्णन आपलोगोंसे संक्षेपमें कर दिया, जो वेदमें विस्तारपूर्वक वर्णित है॥ ३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पुरूरवस उर्वश्याश्च चरित्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

व्यासपुत्र शुकदेवके अरणिसे उत्पन्न होनेकी कथा तथा व्यासजीद्वारा उनसे गृहस्थधर्मका वर्णन

सूत उवाच

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं व्यासश्चिन्तापरोऽभवत्।
किं करोमि न मे योग्या देवकन्येयमप्सराः॥ १

एवं चिन्तयमानं तु दृष्ट्वा व्यासं तदाप्सराः।
भयभीता हि सञ्जाता शापं मा विसृजेदयम्॥ २

सा कृत्वाथ शुकीरूपं निर्गता भयविह्वला।
कृष्णस्तु विस्मयं प्राप्तो विहङ्गीं तां विलोकयन्॥ ३

कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव सङ्गतः।
मनोऽतिविस्मितं जातं सर्वगात्रेषु विस्मितः॥ ४

स तु धैर्येण महता निगृह्णन्मानसं मुनिः।
न शशाक नियन्तुं च स व्यासः प्रसृतं मनः॥ ५

सूतजी बोले—उस सुन्दरी असितापांगी घृताचीको देखकर व्यासजी बड़े असमंजसमें पड़े और सोचने लगे कि यह देवकन्या अप्सरा मेरे योग्य नहीं है, अतः अब मैं क्या करूँ? वह अप्सरा भी व्यासजीको चिन्तित होता देखकर भयभीत हो गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दे दें॥ १-२॥

तत्पश्चात् भयसे व्याकुल वह अप्सरा एक शुकीका रूप धारण करके उड़ गयी। व्यासजी उसे पक्षीके रूपमें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये॥ ३॥

उसे देखनेमात्रसे व्यासजीके शरीरमें कामका संचार हो आया और प्रत्यंगमें कामका प्रवेश हो जानेके कारण उनका मन अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया॥ ४॥

बड़ी धीरताके साथ मनको रोकनेकी चेष्टा करते हुए भी उस चंचल मनको वे व्यासमुनि वशमें करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ५॥

बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितं मनः।
भावित्वान्नैव विधृतं व्यासस्यामिततेजसः॥ ६

मन्थनं कुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया।
अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत्॥ ७

सोऽविचिन्त्य तथा पातं ममन्थारणिमेव च।
तस्माच्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः॥ ८

विस्मयं जनयन्बालः सञ्जातस्तदरण्यजः।
यथाध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्येन दीप्तिमान्॥ ९

व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमं गतः।
किमेतदिति सञ्चिन्त्य वरदानाच्छिवस्य वै॥ १०

तेजोरूपी शुको जातोऽप्यरणीगर्भसम्भवः।
द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानः स्वतेजसा॥ ११

विलोकयामास तदा व्यासस्तु मुदितं सुतम्।
दिव्येन तेजसा युक्तं गार्हपत्यमिवापरम्॥ १२

गङ्गान्तः स्नापयामास समागत्य गिरेस्तदा।
पुष्पवृष्टिस्तु खाज्जाता शिशोरुपरि तापसाः॥ १३

जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ १४

जगुर्गन्धर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः।
विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुः शुकसम्भवे॥ १५

तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा।
दृष्ट्वा व्याससुतं दिव्यमरणीगर्भसम्भवम्॥ १६

अन्तरिक्षात्पपातोर्व्यां दण्डः कृष्णाजिनं शुभम्।
कमण्डलुस्तथा दिव्यः शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः॥ १७

इस प्रकार घृताचीद्वारा मोहित तेजस्वी व्यासजीका मन अनेक यत्न करनेपर भी भावी संयोगके कारण उनके वशमें न हो सका॥ ६॥

इसी बीच अग्नि निकालनेके लिये मन्थन करते समय एकाएक उनका तेज उस अरणीपर गिर गया, किंतु उसके गिरनेपर ध्यान न देकर वे अरणिमन्थन करते रहे। उस अरणीसे उन्हींके सदृश मनोहर स्वरूपवाले 'शुक' उत्पन्न हो गये॥ ७-८॥

अरणीसे उत्पन्न वह बालक विस्मय पैदा करते हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार हवन करते समय घृताहुति पड़नेसे प्रकट अग्नि दीप्तिमान् हो उठती है॥ ९॥

उस पुत्रको देखकर 'यह क्या!'—ऐसा सोचकर व्यासजी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये [और विचार करने लगे कि यह] शिवके वरदानसे ही तो उत्पन्न नहीं हुआ है!॥ १०॥

इस प्रकार अरणीगर्भसे उत्पन्न वह तेजस्वी पुत्र शुक अपने तेजसे दूसरे अग्निके तुल्य देदीप्यमान प्रतीत हो रहा था॥ ११॥

व्यासजीने दिव्य देहधारी द्वितीय गार्हपत्य अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको बड़ी प्रसन्नतासे देखा और पर्वतसे नीचे उतरकर गंगाजलसे उसको नहलाया। हे तपस्वियो! उस समय आकाशसे उस शिशुके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ १२-१३॥

व्यासजीने उस महात्मा शिशुका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय देवताओंने दुंदुभियाँ बजायीं तथा अप्सराओंने नृत्य किया॥ १४॥

उस बालकके दर्शनकी लालसावाले विश्वावसु, नारद, तुम्बुरु आदि सभी गन्धर्वराज प्रसन्न होकर शुकके जन्मपर गान करने लगे। सभी देवता तथा विद्याधर भी अरणीके गर्भसे उत्पन्न उस दिव्य व्यासपुत्रको देखकर प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करने लगे॥ १५-१६॥

हे द्विजोत्तम! उसी समय शुकदेवजीके लिये आकाशसे दिव्य दण्ड, कमण्डलु और शुभ कृष्ण मृगचर्म पृथ्वीपर आ गिरे॥ १७॥

सद्यः स ववृधे बालो जातमात्रोऽतिदीप्तिमान्।
तस्योपनयनं चक्रे व्यासो विद्याविधानवित्॥ १८

उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः।
उपतस्थुर्महात्मानं यथास्य पितरं तथा॥ १९

यतो दृष्टं शुकीरूपं घृताच्याः सम्भवे तदा।
शुकेति नाम पुत्रस्य चकार मुनिसत्तमः॥ २०

बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा।
व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकार विधिपूर्वकम्॥ २१

सोऽधीत्य निखिलान्वेदान् सरहस्यान्ससंग्रहान्।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कृत्वा गुरुकुले शुकः॥ २२

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा।
आजगाम पितुः पार्श्वं कृष्णद्वैपायनस्य च॥ २३

दृष्ट्वा व्यासः शुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थाय ससम्भ्रमः।
आलिलिङ्ग मुहुर्घ्राणं मूर्ध्नि तस्य चकार ह॥ २४

पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तथा चाध्ययनं शुचिः।
आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राश्रमे शुभे॥ २५

दारकर्म ततो व्यासः शुकस्य पर्यचिन्तयत्।
कन्यां मुनिसुतां कान्तामपृच्छदतिवेगवान्॥ २६

शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयानघ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते॥ २७

गार्हस्थ्यं च समासाद्य यज देवान्पितॄनथ।
ऋणान्मोचय मां पुत्र प्राप्य दारान्मनोरमान्॥ २८

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्र महाभाग कुरुष्वाद्य गृहाश्रमम्॥ २९

कृत्वा गृहाश्रमं पुत्र सुखिनं कुरु मां शुक।
आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते॥ ३०

उत्पन्न होते ही वह अति तेजस्वी शिशु शीघ्रतापूर्वक बड़ा हो गया, तब वैदिक विधानके मर्मज्ञ व्यासजीने उसका उपनयनसंस्कार भी कर दिया॥ १८॥

उत्पन्न होते ही रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेद उन महात्माके समक्ष वैसे ही उपस्थित हो गये, जैसे उसके पिता व्यासजीमें वे विद्यमान थे॥ १९॥

अरणि-मन्थनके समय मुनिश्रेष्ठ व्यासजीने घृताची अप्सराको शुकीके रूपमें देखा था, इसलिये उन्होंने इस बालकका नाम शुक रख दिया॥ २०॥

व्याससुत शुकदेवने बृहस्पतिको अपना आचार्य मानकर विधिवत् ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। गुरुकुलमें निवासकर रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेदों तथा धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करके, तदनन्तर गुरुको दक्षिणा देकर वे शुकदेवमुनि अपने पिता व्यासजीके पास आ गये॥ २१—२३॥

शुकदेवको आया देखकर व्यासजीने शीघ्रताके साथ प्रसन्नतापूर्वक उठकर बारंबार उनका आलिंगन किया और उनका सिर सूँघा। परम पवित्र व्यासजीने शुकदेवजीके कुशलक्षेम तथा अध्ययनके विषयमें पूछा तथा उन्हें आश्वस्त करके अपने पावन आश्रममें रख लिया॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् व्यासजी शुकदेवजीके विवाहके विषयमें सोचने लगे। एक दिन परम तेजस्वी व्यासजीने शुकदेवजीसे किसी सुन्दर मुनिकन्याकी चर्चा की॥ २६॥

उन्होंने अपने पुत्र शुकदेवसे कहा—हे पवित्रात्मन्! तुमने वेद तथा सभी धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है। अतः हे महामते! अब तुम विवाह कर लो और गृहस्थ-आश्रममें रहकर देवताओं और पितरोंका यजन करो और हे पुत्र! तुम सुन्दर स्त्रीको स्वीकारकर मुझे भी ऋणसे मुक्त कर दो॥ २७-२८॥

अपुत्रकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग कदापि नहीं मिलता। इसलिये हे महाभाग पुत्र! अब तुम गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करो और हे शुक! हे पुत्र! गृहस्थी बसाकर मुझे भी आनन्दित करो। ऐसा करके हे महामते! हे पुत्र! तुम मेरी महान् आशा परिपूर्ण करो॥ २९-३०॥

तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि त्वमयोनिजः।
देवरूपी महाप्राज्ञ पाहि मां पितरं शुक॥ ३१

सूत उवाच

इति वादिनमभ्याशे प्राप्तः प्राह शुकस्तदा।
विरक्तः सोऽतिरक्तं तं साक्षात्पितरमात्मनः॥ ३२

शुक उवाच

किं त्वं वदसि धर्मज्ञ वेदव्यास महामते।
तत्त्वेन शाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञां करवाण्यलम्॥ ३३

व्यास उवाच

त्वदर्थे यत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः।
प्राप्तस्त्वं चातिदुःखेन शिवस्याराधनेन च॥ ३४

ददामि तव वित्तं तु प्रार्थयित्वाथ भूपतिम्।
सुखं भुंक्ष्व महाप्राज्ञ प्राप्य यौवनमुत्तमम्॥ ३५

शुक उवाच

किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम्।
दुःखविद्धं सुखं प्राज्ञा न वदन्ति सुखं किल॥ ३६

स्त्रियं कृत्वा महाभाग भवामि तद्वशानुगः।
सुखं किं परतन्त्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः॥ ३७

कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियन्त्रितः।
पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित्॥ ३८

विण्मूत्रसम्भवो देहो नारीणां तन्मयस्तथा।
कः प्रीतिं तत्र विप्रेन्द्र विबुधः कर्तुमिच्छति॥ ३९

अयोनिजोऽहं विप्रर्षे योनौ मे कीदृशी मतिः।
न वाञ्छाम्यहमग्रेऽपि योनावेव समुद्भवम्॥ ४०

विट्सुखं किमु वाञ्छामि त्यक्त्वात्मसुखमद्भुतम्।
आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः॥ ४१

हे शुक! कठिन तपस्या करके मैंने तुम्हारे-जैसा अयोनिज पुत्र पाया है। हे महाप्राज्ञ! तुम देवतारूप हो, अतः मुझ पिताकी रक्षा करो॥ ३१॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहनेवाले व्यासजीके पास उपस्थित विरक्त शुकदेवजीने गृहस्थ-आश्रममें अनुरक्त अपने पितासे कहा॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे महामते! हे धर्मज्ञ! हे वेदव्यास! आप क्या कह रहे हैं, मुझ शिष्यको आप तत्त्वज्ञानका उपदेश दें; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा॥ ३३॥

व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम्हारे लिये मैंने सैकड़ों वर्ष कष्ट सहकर जो तपस्या की और शिवजीकी आराधना की, उसके फलस्वरूप मैंने तुम्हें पाया है। किसी राजासे माँगकर मैं तुम्हें प्रचुर धन दूँगा, हे महाप्राज्ञ! तुम श्रेष्ठ यौवन प्राप्त करके सुखका उपभोग करो॥ ३४-३५॥

शुकदेवजी बोले—हे तात! आप बतायें कि इस मनुष्यलोकमें भला विपत्तिरहित कौन-सा सुख है? बुद्धिमान् लोग दुःखसे युक्त सुखको सुख नहीं कहते हैं॥ ३६॥

हे महाभाग! स्त्री पाकर मैं उसीके वशमें हो जाऊँगा। तब भला आप ही बताइये, परतन्त्र होकर और विशेषतः स्त्रीके वशमें रहकर मैं कौन-सा सुख पा सकूँगा?॥ ३७॥

लौह या काष्ठके फन्देमें जकड़ा हुआ पुरुष कदाचित् छूट भी सकता है, किंतु पुत्र-कलत्रके बन्धनमें फँसा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं हो पाता॥ ३८॥

यह शरीर विष्ठा एवं मूत्रसे परिपूर्ण रहता है; वैसे ही स्त्रियोंका शरीर भी होता है। हे विप्रेन्द्र! तब कौन बुद्धिमान् पुरुष उससे प्रीति करना चाहेगा!॥ ३९॥

हे विप्रशिरोमणे! मैं अयोनिज हूँ, तब योनिजन्य सुखमें मेरी बुद्धि कैसे होगी? मैं भविष्यमें भी अपनी उत्पत्ति किसी योनिमें नहीं चाहता॥ ४०॥

अतः अद्भुत अध्यात्म सुखको छोड़कर मैं विट्-मूत्रजन्य सुखको क्यों चाहूँ? अपने-आपमें रमण करनेवाला कभी विषय-सुखका लोभी नहीं होता॥ ४१॥

प्रथमं पठिता वेदा मया विस्तारिताश्च ते।
हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः॥ ४२

बृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे।
अविद्याग्रस्तहृदयः कथं तारयितुं क्षमः॥ ४३

रोगग्रस्तो यथा वैद्यः पररोगचिकित्सकः।
तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयं विडम्बना॥ ४४

कृत्वा प्रणामं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः।
त्राहि मां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः॥ ४५

संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत्।
न च विश्रमणं क्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि॥ ४६

किं सुखं तात संसारे निजतत्त्वविचारणात्।
मूढानां सुखबुद्धिस्तु विट्सु कीटसुखं यथा॥ ४७

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः॥ ४८

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
बध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः॥ ४९

नातः परतरं लोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम्।
पुत्रदारगृहासक्तः पण्डितः परिगीयते॥ ५०

न बाध्यते यः संसारे नरो मायागुणैस्त्रिभिः।
स विद्वान्स च मेधावी शास्त्रपारं गतो हि सः॥ ५१

किं वृथाध्ययनेनात्र दृढबन्धकरेण च।
पठितव्यं तदेवाशु मोचयेद्भवबन्धनात्॥ ५२

गृह्णाति पुरुषं यस्माद् गृहं तेन प्रकीर्तितम्।
क्व सुखं बन्धनागारे तेन भीतोऽस्म्यहं पितः॥ ५३

मैंने सांगोपांग वेदोंका अध्ययन किया और जाना कि वे हिंसामय हैं तथा कर्ममार्गके प्रवर्तक हैं। मुझे गुरुरूपमें बृहस्पति प्राप्त हुए, वे भी गृहस्थीके सागरमें डूबे हुए हैं। अविद्याग्रस्त हृदयवाले वे मेरा उद्धार कैसे कर सकते हैं?॥ ४२-४३॥

जैसे कोई रोगग्रस्त वैद्य दूसरेके रोगकी चिकित्सा करता हो, उसी प्रकार मुझ मोक्षार्थीके गुरु गृहस्थ हैं, यह विडम्बना ही है। इसलिये ऐसे गुरुको नमस्कार करके मैं आपके पास आया हूँ। अब आप तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर मेरी रक्षा करें; क्योंकि मैं इस संसाररूपी सर्पसे अत्यन्त भयभीत हूँ॥ ४४-४५॥

इस महाभयंकर संसार-चक्रमें प्राणिमात्रको सर्वदा नक्षत्रोंकी भाँति चक्कर काटना पड़ता है और सूर्यकी भाँति दिन-रात उन्हें भी कभी विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता॥ ४६॥

हे तात! इस संसारमें आत्मज्ञानको छोड़कर कौन-सा सुख है? मूढ जनोंको सुखकी वैसी ही प्रतीति होती है, जैसी विष्ठाके कीड़ोंको विष्ठामें होती है॥ ४७॥

वेदशास्त्रोंको पढ़कर भी जो सांसारिक सुखमें फँसे रहते हैं, भला उनसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा? उन्हें तो कुत्ते, घोड़े एवं सूअर आदि पशुओंके समान धर्मवाला समझना चाहिये॥ ४८॥

दुर्लभ मानवतनको पाकर तथा वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके भी यदि मनुष्य इस संसारमें बँधता है, तो दूसरा भला कौन बन्धनमुक्त हो सकता है? इससे बढ़कर संसारमें कोई दूसरी अद्भुत बात नहीं है कि पुत्र-कलत्र और घरके बन्धनमें पड़ा हुआ भी पण्डित कहलाता है!॥ ४९-५०॥

जो मनुष्य इस संसारमें मायाके सत्त्व, रज, तम-रूपी तीनों गुणोंसे बाँधा नहीं जाता है; वही विद्वान्, बुद्धिमान् एवं शास्त्रमें पारंगत है॥ ५१॥

दृढ़ बन्धनमें डालनेवाले व्यर्थ विद्याध्ययनसे क्या लाभ? उसीका अध्ययन करना चाहिये, जो शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर दे॥ ५२॥

पुरुषको बन्धनमें जकड़ लेनेके कारण ही उसे गृह कहा गया है। अतः ऐसे बन्धनरूप घरमें सुख कहाँ? हे पिताजी! इसीलिये मैं भयभीत हूँ॥ ५३॥

येऽबुधा मन्दमतयो विधिना मुषिताश्च ये।
ते प्राप्य मानुषं जन्म पुनर्बन्धं विशन्त्युत॥ ५४

व्यास उवाच

न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम्।
मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥ ५५

न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात्।
गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक् शुचिः॥ ५६

ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः।
गृहस्थं समुपासन्ते मध्याह्नातिक्रमे सदा॥ ५७

श्रद्धया चान्नदानेन वाचा सूनृतया तथा।
उपकुर्वन्ति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः॥ ५८

गृहाश्रमात्परो धर्मो न दृष्टो न च वै श्रुतः।
वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः॥ ५९

किमसाध्यं महाभाग वेदोक्तानि च कुर्वतः।
स्वर्गं मोक्षं च सज्जन्म यद्यद्वाञ्छति तद्भवेत्॥ ६०

आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदो विदुः।
तस्मादग्निं समाधाय कुरु कर्माण्यतन्द्रितः॥ ६१

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्य विधिवत्सुत।
पुत्रमुत्पाद्य धर्मज्ञ संयोज्य च गृहाश्रमे॥ ६२

त्यक्त्वा गृहं वनं गत्वा कर्तासि व्रतमुत्तमम्।
वानप्रस्थाश्रमं कृत्वा संन्यासं च ततः परम्॥ ६३

इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम्।
अदारस्य दुरन्तानि पञ्चैव मनसा सह॥ ६४

जो अज्ञानी, मन्दबुद्धि तथा अभागे मनुष्य हैं; वे इस मानव-जन्मको पाकर भी पुनः बन्धनमें पड़ जाते हैं॥ ५४॥

व्यासजी बोले—गृह बन्धनागार नहीं है और न बन्धनका कारण ही है। जो मनसे बन्धनमुक्त है, वह गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है॥ ५५॥

जो न्यायमार्गसे धनोपार्जन करता है, शास्त्रोक्त कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करता है, पितृश्राद्ध आदि यज्ञ करता है, सर्वदा सत्य बोलता है तथा पवित्र रहता है, वह गृहमें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है॥ ५६॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी, वानप्रस्थी तथा व्रतोपवास करनेवाला—ये सब मनुष्य मध्याह्नोत्तरकालमें गृहस्थके पास ही जाते हैं। वे धार्मिक गृहस्थ श्रद्धाके साथ मधुर वचनोंद्वारा सबका सत्कार करते एवं अन्नदानसे उन्हें उपकृत करते हैं॥ ५७-५८॥

गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर कोई दूसरा आश्रम देखा या सुना नहीं गया। वसिष्ठ आदि आचार्यों और तत्त्वज्ञानियोंने इसका आश्रय ग्रहण किया है॥ ५९॥

हे महाभाग! वेदोक्त कर्म करनेवाले गृहस्थके लिये क्या असाध्य रह जाता है? वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा उत्तम कुलमें जन्म—जो कुछ भी चाहता है, वह हो जाता है। 'एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाना चाहिये'—ऐसा धर्मज्ञोंने बताया है। अतः आलस्यरहित होकर गृहस्थसम्बन्धी कर्मोंको सम्पादित करो॥ ६०-६१॥

हे धर्मज्ञ पुत्र! देवताओं, पितरों एवं आश्रित-जनोंको विधिवत् सन्तुष्ट करके, पुत्र उत्पन्न करके और उसे भी गृहस्थ-आश्रममें लगाकर पुनः गृह त्यागकर वनमें जाकर श्रेष्ठ व्रतका आश्रय ग्रहण करो। वहाँ वानप्रस्थ-आश्रम पूर्ण करके उसके बाद संन्यास धारण करो॥ ६२-६३॥

हे महाभाग! इन्द्रियाँ मनुष्यको निश्चितरूपसे प्रमत्त बना देती हैं। जो मनुष्य स्त्रीरहित होता है, उसे मन पाँचों इन्द्रियोंसहित विकल कर देता है॥ ६४॥

तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते।
वार्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः॥ ६५

विश्वामित्रो महाभाग तपः कृत्वातिदुश्चरम्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः॥ ६६

मोहितश्च महातेजा वने मेनकया स्थितः।
शकुन्तला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा॥ ६७

दृष्ट्वा दाशसुतां कालीं पिता मम पराशरः।
कामबाणार्दितः कन्यां तां जग्राहोडुपे स्थितः॥ ६८

ब्रह्मापि स्वसुतां दृष्ट्वा पञ्चबाणप्रपीडितः।
धावमानश्च रुद्रेण मूर्च्छितश्च निवारितः॥ ६९

तस्मात्त्वमपि कल्याण कुरु मे वचनं हितम्।
कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गं समाश्रय॥ ७०

हे महामते! इसलिये उन बलवान् इन्द्रियोंपर विजय पानेके लिये स्त्रीपरिणय करके गृहस्थ बनना चाहिये, तत्पश्चात् वृद्धावस्थामें तप करना चाहिये—यह शास्त्रवचन है॥ ६५॥

हे महाभाग! वनमें स्थित महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र किसी समय तीन सहस्र वर्षोंतक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त कठोर तप करके भी मेनकाको देखकर मोहित हो गये और उन्हींके तेजसे पुत्रीरूपमें सुन्दर शकुन्तला पैदा हुई॥ ६६-६७॥

मेरे पिता पराशरजी भी धीवरकी कृष्णवर्णा कन्याको देखकर काम-बाणसे आहत हो गये और उन्होंने नावपर ही उसे स्वीकार कर लिया था॥ ६८॥

ब्रह्माजी भी अपनी कन्या को देखकर कामसे पीड़ित हो गये और बेसुध होकर उसके पीछे दौड़ते रहे; तब शिवजीने उन्हें रोका॥ ६९॥

अतः हे कल्याणकारी पुत्र! तुम मेरा हितकर वचन मान लो और किसी कुलीन कन्यासे विवाह करके सनातन वेदमार्गका पालन करो॥ ७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे व्यासेन
गृहस्थधर्मवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~○~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

शुकदेवजीका विवाहके लिये अस्वीकार करना तथा व्यासजीका उनसे श्रीमद्देवीभागवत पढ़नेके लिये कहना

श्रीशुक उवाच

नाहं गृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः।
वागुरासदृशं नित्यं बन्धनं सर्वदेहिनाम्॥ १

धनचिन्तातुराणां हि क्व सुखं तात दृश्यते।
स्वजनैः खलु पीड्यन्ते निर्धना लोलुपा जनाः॥ २

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति॥ ३

श्रीशुकदेवजी बोले—हे पिताजी! सर्वदा दुःख देनेवाले गृहस्थाश्रमको मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगा; क्योंकि [पशु-पक्षियोंको फँसानेवाले] जालके समान यह आश्रम सभी मानवोंके लिये सदा बन्धनस्वरूप है॥ १॥

हे तात! धन-धान्यकी चिन्तामें व्याकुल लोगोंके लिये सुख कहाँ दिखायी पड़ता है? निर्धन और लोभके वशीभूत मनुष्य अपने ही परिवारजनोंद्वारा सर्वदा कष्ट पाते रहते हैं॥ २॥

इन्द्र भी वैसे सुखी नहीं रहते, जैसा एक सुखी निःस्पृह भिक्षुक रहता है। तब भला इस संसारमें तीनों लोकोंका वैभव पाकर भी दूसरा कौन सुखी रह सकता है?॥ ३॥

तपन्तं तापसं दृष्ट्वा मघवा दुःखितोऽभवत्।
विघ्नान्बहुविधानस्य करोति च दिवस्पतिः॥ ४

ब्रह्मापि न सुखी विष्णुर्लक्ष्मीं प्राप्य मनोरमाम्।
खेदं प्राप्नोति सततं संग्रामैरसुरैः सह॥ ५

करोति विपुलान्यत्नांस्तपश्चरति दुश्चरम्।
रमापतिरपि श्रीमान्कस्यास्ति विपुलं सुखम्॥ ६

शङ्करोऽपि सदा दुःखी भवत्येव च वेद्म्यहम्।
तपश्चर्यां प्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा॥ ७

कदाचिन्न सुखी शेते धनवानपि लोलुपः।
निर्धनस्तु कथं तात सुखं प्राप्नोति मानवः॥ ८

जानन्नपि महाभाग पुत्रं वा वीर्यसम्भवम्।
नियोक्ष्यसि महाघोरे संसारे दुःखदे सदा॥ ९

जन्मदुःखं जरादुःखं दुःखं च मरणे तथा।
गर्भवासे पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः॥ १०

तस्मादतिशयं दुःखं तृष्णालोभसमुद्भवम्।
याच्ञायां परमं दुःखं मरणादपि मानद॥ ११

प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः।
पराशा परमं दुःखं मरणं च दिने दिने॥ १२

पठित्वा सकलान् वेदाञ्छास्त्राणि च समन्ततः।
गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिः सर्वात्मना बुधैः॥ १३

एकोदरस्य का चिन्ता पत्रमूलफलादिभिः।
येनकेनाप्युपायेन सन्तुष्ट्या च प्रपूर्यते॥ १४

भार्या पुत्रास्तथा पौत्राः कुटुम्बे विपुले सति।
पूरणार्थं महद्दुःखं क्व सुखं पितरद्भुतम्॥ १५

किसी तपस्वीको तप करते हुए देखकर स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्र भी चिन्तित हो उठते हैं और उसके तपमें अनेक प्रकारके विघ्न करने लगते हैं॥ ४॥

ब्रह्मा भी सुखी नहीं हैं और मनोरम लक्ष्मीको पाकर विष्णु भी सुखी नहीं हैं; उन्हें भी दैत्योंके साथ युद्धके द्वारा निरन्तर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। उन ऐश्वर्यशाली रमापति विष्णुको भी [सुखप्राप्तिके लिये] अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं और कठोर तपस्या करनी पड़ती है। [इस संसारमें] किसको बहुत सुख है?॥ ५-६॥

भगवान् शंकर भी सदैव दुःखी रहते हैं—ऐसा मैं जानता हूँ; क्योंकि वे सदैव तपस्या करते हुए भी दैत्योंसे युद्ध करते रहते हैं॥ ७॥

हे तात! जब धनवान् होते हुए भी लोभी मनुष्य कभी भी सुखपूर्वक सो नहीं पाता, तब भला निर्धन मनुष्य कैसे सुख पा सकता है? इसलिये हे महाभाग! यह जानते हुए भी आप अपने तेजसे उत्पन्न पुत्रको दुःखदायक तथा महाभयानक संसारमें क्यों लगा रहे हैं?॥ ८-९॥

हे पिताजी! जहाँ जन्ममें दुःख, बुढ़ापेमें दुःख, मरणमें दुःख तथा पुनः विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गर्भमें दुःख सहन करना पड़ता है; उससे भी अधिक दुःख तृष्णा और लोभसे उत्पन्न होता है। हे मानद! मरनेसे भी अधिक दुःख माँगनेमें होता है॥ १०-११॥

ब्राह्मण प्रतिग्रहद्वारा धन प्राप्त करते हैं और वे बुद्धि-बलका उपयोग नहीं करते। दूसरेके भरोसेपर रहना परम दुःखकर है तथा वह अहर्निश मृत्युके समान होता है॥ १२॥

सभी वेद-शास्त्रोंका भलीभाँति अध्ययन करके भी विद्वानोंको धनिकोंके पास जाकर सब प्रकारसे उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। केवल पेटके लिये कोई चिन्ताकी बात नहीं; उसे तो केवल पत्र, फल एवं कन्द-मूल आदिसे किसी भी प्रकार सन्तुष्टिपूर्वक भरा जा सकता है॥ १३-१४॥

हे पिताजी! भार्या, पुत्र, पौत्र आदि बड़े कुटुम्बके पालनमें तो अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। ऐसी दशामें गृहस्थको सुख कहाँ है?॥ १५॥

योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रं सुखाकरम्।
कर्मकाण्डेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन॥ १६

वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं सञ्चितं तथा।
वर्तमानं यथा नश्येत् त्रिविधं कर्ममूलजम्॥ १७

जलूकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै।
मूर्खस्तु न विजानाति मोहितो भावचेष्टितैः॥ १८

भोगैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिलभाषणैः।
कान्ता हरति सर्वस्वं कः स्तेनस्तादृशोऽपरः॥ १९

निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम्।
करोति वञ्चितो धात्रा दुःखाय न सुखाय च॥ २०

सूत उवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च।
सम्प्राप महतीं चिन्तां किं करोमीत्यसंशयम्॥ २१

तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च।
वेपथुश्च शरीरेऽभूद् ग्लानिं प्राप मनस्तथा॥ २२

शोचन्तं पितरं दृष्ट्वा दीनं शोकपरिप्लुतम्।
उवाच पितरं व्यासं विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ २३

अहो मायाबलं चोग्रं यन्मोहयति पण्डितम्।
वेदान्तस्य च कर्तारं सर्वज्ञं वेदसम्मितम्॥ २४

न जाने का च सा माया किंस्वित्सातीव दुष्करा।
या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥ २५

पुराणानां च वक्ता च निर्माता भारतस्य च।
विभागकर्ता वेदानां सोऽपि मोहमुपागतः॥ २६

इसलिये हे तात! मुझे सुखदायी ज्ञानशास्त्र और योगशास्त्रका उपदेश कीजिये। सम्पूर्ण कर्मकाण्डमें मेरा मन कभी नहीं लगता॥ १६॥

अतः कर्मक्षयका कोई उपाय बताइये; जिससे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—तीनों प्रकारके कर्मफल नष्ट हो जायँ॥ १७॥

स्त्री जोंकके समान सदा [पुरुषका] रक्त चूसती रहती है, जिसे बुद्धिहीन मनुष्य उसकी भावपूर्ण चेष्टाओंसे मोहित होनेके कारण नहीं जान पाता॥ १८॥

स्त्री अपने संसर्गसे उसके तेजका तथा अपनी वचनचातुरीद्वारा उसके सम्पूर्ण धन और मनका—इस प्रकार सर्वस्वका हरण कर लेती है। उससे बढ़कर दूसरा चोर कौन है?॥ १९॥

इसलिये मेरे विचारमें तो मूर्ख मनुष्य ही केवल निद्रासुखका नाश करनेके लिये स्त्रीपरिणय करता है। विधाताद्वारा वह दुःखके लिये ही ठगा जाता है, सुखके लिये नहीं॥ २०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवकी युक्तियुक्त ये बातें सुनकर व्यासजी बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अब मैं क्या करूँ?' तत्पश्चात् उनकी आँखोंसे दुःखके आँसू बहने लगे, शरीर काँपने लगा और मनमें ग्लानि होने लगी॥ २१-२२॥

इस प्रकार शोक करते हुए अपने दीन तथा शोकाकुल पिताको देखकर आश्चर्यसे विस्मित नेत्रवाले शुकदेवजीने अपने पिता व्यासजीसे कहा—अहो! माया कितनी प्रबल है, जो कि यह वेदान्तदर्शनके प्रणेता तथा वेदका सांगोपांग ज्ञान रखनेवाले सर्वज्ञ पण्डित मेरे पिताजीको भी मोहित कर रही है!॥ २३-२४॥

न जाने वह कौन-सी तथा कैसी अति दुष्कर माया है, जो सत्यवतीसुत विद्वान् व्यासजीको भी मोहित कर रही है!॥ २५॥

जो पुराणोंके वक्ता, महाभारतके रचयिता, वेदोंके विभागकर्ता हैं, वे भी [मायाजनित] मोहको प्राप्त हो गये हैं॥ २६॥

तां यामि शरणं देवीं या मोहयति वै जगत्।
ब्रह्मविष्णुहरादींश्च कथान्येषां च कीदृशी॥ २७

कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो न मुह्यति मायया।
यन्मोहं गमिताः पूर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः॥ २८

अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम्।
माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः॥ २९

विष्णवंशसम्भवो व्यास इति पौराणिका जगुः।
सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा॥ ३०

अश्रुपातं करोत्यद्य विवशः प्राकृतो यथा।
अहो मायाबलं चैतद्दुस्त्यजं पण्डितैरपि॥ ३१

कोऽयं कोऽहं कथं चेह कीदृशोऽयं भ्रमः किल।
पञ्चभूतात्मके देहे पितापुत्रेति वासना॥ ३२

बलिष्ठा खलु मायेयं मायिनामपि मोहिनी।
ययाभिभूतः कृष्णोऽपि करोति रोदनं द्विजः॥ ३३

सूत उवाच

तां नत्वा मनसा देवीं सर्वकारणकारणाम्।
जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम्॥ ३४

पितरं प्राह दीनं तं शोकार्णवपरिप्लुतम्।
अरणीसम्भवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम्॥ ३५

पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदः स्वयम्।
किं शोकं कुरुषे स्वामिन्यथाज्ञः प्राकृतो नरः॥ ३६

इसलिये मैं उन्हीं देवी महामायाकी शरणमें जाऊँ, जो समस्त जगत् तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिको भी मोहित कर देती हैं, तब दूसरोंकी बात ही क्या है?॥ २७॥

इन तीनों लोकोंमें कौन ऐसा है जो मायासे मोहित न होता हो? उस मायाने तो ब्रह्मा आदि देवताओंको भी पूर्वकालमें मोहित कर दिया था॥ २८॥

अहो! उन भगवती जगदम्बाके द्वारा रचित मायाका बल तथा पराक्रम महान् आश्चर्यजनक है; उन्होंने अपनी मायाके प्रभावसे ही सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी ईश्वरको भी अपने वशमें कर रखा है॥ २९॥

पौराणिकोंद्वारा कहा गया है कि व्यासजी भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; तथापि वे आज शोक-सागरमें इस प्रकार डूब रहे हैं जैसे समुद्रमें भग्न जलयानवाला वणिक्॥ ३०॥

आज वे भी मायाके वशीभूत होकर एक साधारण व्यक्तिके समान आँसू बहा रहे हैं। अहो! माया बड़ी प्रबल है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं त्याग पाते॥ ३१॥

व्यास कौन हैं? मैं कौन हूँ? यह संसार क्या वस्तु है? और यह कैसा भ्रम है? इस पांचभौतिक शरीरमें पिता-पुत्रकी भावना कहाँसे आयी? यह माया अतीव प्रबल है, जो मायावियोंको भी मोहित कर देती है, जिसके वशीभूत होकर यहाँ द्विज कृष्णद्वैपायन भी रुदन कर रहे हैं॥ ३२-३३॥

सूतजी बोले—सब कारणोंकी एकमात्र कारण, सब देवताओंकी जननी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंकी भी स्वामिनी आदिशक्ति भगवतीको मनसे स्मरण करके शोकसागरमें डूबे हुए अपने दुःखी पिता श्रीव्यासजीसे अरणीपुत्र शुकदेवजीने इस प्रकार नीतियुक्त वचन कहा—॥ ३४-३५॥

हे पराशरनन्दन! हे महाभाग! आप तो स्वयं सब लोगोंको ज्ञान देनेवाले हैं तब हे स्वामिन्! आप ऐसा शोक क्यों करते हैं, जैसा कोई अज्ञ साधारण व्यक्ति करता है?॥ ३६॥

अद्याहं तव पुत्रोऽस्मि न जाने पूर्वजन्मनि।
कोऽहं कस्त्वं महाभाग विभ्रमोऽयं महात्मनि॥ ३७

कुरु धैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः।
मोहजालमिमं मत्वा मुञ्च शोकं महामते॥ ३८

क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनेन च।
पिपासा जलपानेन याति नैवात्मजेक्षणात्॥ ३९

घ्राणं सुखं सुगन्धेन कर्णजं श्रवणेन च।
स्त्रीसुखं तु स्त्रिया नूनं पुत्रोऽहं किं करोमि ते॥ ४०

अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चन्द्राय भूभुजे।
पशुकामाय यज्ञार्थे दत्तो मौल्येन सर्वथा॥ ४१

सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखसमुच्चयः।
धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहं किं करोम्यहम्॥ ४२

मां प्रबोधय बुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते।
यथा मुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने॥ ४३

दुर्लभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहानघ।
तत्रापि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमे कुले॥ ४४

बद्धोऽहमिति मे बुद्धिर्नापसर्पति चित्ततः।
संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धिगामिनी॥ ४५

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तदा व्यासः पुत्रेणामितबुद्धिना।
प्रत्युवाच शुकं शान्तं चतुर्थाश्रममानसम्॥ ४६

व्यास उवाच

पठ पुत्र महाभाग मया भागवतं कृतम्।
शुभं न चातिविस्तीर्णं पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ ४७

हे महाभाग! इस समय मैं आपका पुत्र हूँ, परंतु यह कौन जानता है कि पूर्वजन्ममें मैं कौन था और आप कौन थे? यह संसार तो महात्माओंके लिये एक भ्रममात्र है॥ ३७॥

अतएव आप धैर्य रखें, विवेक धारण करें तथा मनमें खेद न करें। हे महामते! इसे मोहजाल समझकर आप शोकका परित्याग करें॥ ३८॥

भूख भोजनसे मिटती है, पुत्रके देखनेसे नहीं। प्यास भी जल पीनेसे मिटती है, केवल पुत्र-दर्शनसे नहीं। इसी प्रकार सुगन्धित पदार्थसे नाकको तथा अच्छी बातोंसे कानोंको एवं स्त्रीसे विषय-सुखका आनन्द मिलता है। मैं आपका पुत्र हूँ, बताइये मैं आपके लिये क्या करूँ?॥ ३९-४०॥

किसी समय अजीगर्त नामक ब्राह्मणने धन लेकर अपने पुत्र शुनःशेपको यज्ञपशुके रूपमें राजा हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया था। सुखका साधन केवल धन ही है, धन ही सुखकी राशि है। अतः यदि आपको लोभ हो, तो धनका संचय कीजिये। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः [आपके सुखके लिये] मैं क्या करूँ?॥ ४१-४२॥

हे महामते! आप दैवज्ञ हैं। अतः हे मुने! आप मुझे अपनी बुद्धिसे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मैं गर्भवासजनित महान् भयसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४३॥

हे पवित्रात्मन्! इस कर्मभूमिमें मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें ब्राह्मणका जन्म और भी दुर्लभ है॥ ४४॥

'मैं आबद्ध हूँ'—यह बुद्धि मेरे चित्तसे नहीं हटती। संसारके वासनाजालमें यह उत्तरोत्तर बढ़ती हुई फँसती ही जाती है॥ ४५॥

सूतजी बोले—असीम बुद्धिवाले अपने पुत्र शुकदेवके ऐसा कहनेपर व्यासजीने शान्त एवं संन्यास-आश्रमके लिये उत्सुक मनवाले शुकदेवजीसे कहा—॥ ४६॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग पुत्र! मेरेद्वारा रचित श्रीमद्देवीभागवतपुराणको तुम पढ़ो; वेदतुल्य यह पवित्र पुराण अधिक विस्तृत भी नहीं है॥ ४७॥

स्कन्धा द्वादश तत्रैव पञ्चलक्षणसंयुतम्।
सर्वेषां च पुराणानां भूषणं मम सम्मतम्॥ ४८

सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते।
येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते॥ ४९

वटपत्रशयानाय विष्णवे बालरूपिणे।
केनास्मि बालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना॥ ५०

किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाखिलम्।
इत्येवं चिन्त्यमानाय मुकुन्दाय महात्मने॥ ५१

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याखिलार्थदम्।
सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥ ५२

तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि।
केनोक्ता वागियं सत्या चिन्तयामास चेतसा॥ ५३

कथं वेद्मि प्रवक्तारं स्त्रीपुंसौ वा नपुंसकम्।
इति चिन्ताप्रपन्नेन धृतं भागवतं हृदि॥ ५४

पुनः पुनः कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा।
वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चिन्तासमन्वितः॥ ५५

तदा शान्ता भगवती प्रादुरास चतुर्भुजा।
शङ्खचक्रगदापद्मवरायुधधरा शिवा॥ ५६

दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता।
संयुता सदृशीभिश्च सखीभिः स्वविभूतिभिः॥ ५७

प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः।
मन्दहास्यं प्रयुञ्जाना महालक्ष्मीः शुभानना॥ ५८

सूत उवाच

तां तथा संस्थितां दृष्ट्वा हृदये कमलेक्षणः।
विस्मितः सलिले तस्मिन्निराधारां मनोरमाम्॥ ५९

इसमें बारह स्कन्ध हैं, यह पुराणोंके पाँचों लक्षणोंसे युक्त है। मेरे विचारमें यह पुराण सभी पुराणोंका आभूषण है॥ ४८॥

हे महामते! जिस भागवतके सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, उसे तुम पढ़ो॥ ४९॥

[एक बार महाप्रलयकालमें] वटपत्रपर शयन करते हुए बालरूपधारी भगवान् विष्णु वहाँ सोच रहे थे कि किस चिदात्माने, किस प्रयोजनसे तथा किस द्रव्यसे मुझे बालरूपमें उत्पन्न किया है? इन सब विषयोंका ज्ञान मुझे कैसे हो? इस प्रकार चिन्तन कर रहे महात्मा बालमुकुन्दसे उन आदिशक्ति भगवतीने सम्पूर्ण अर्थको प्रदान करनेवाले ज्ञानको आधे श्लोकमें ही इस प्रकार कहा—**'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्'** अर्थात् यह सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है॥ ५०—५२॥

यह बात पहले भी भगवान् विष्णुके हृदयमें उत्पन्न हुई थी। इसलिये अब वे सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया? इस कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ? वह स्त्री है या पुरुष अथवा नपुंसक है? ऐसी चिन्तावाले भगवान् विष्णुने भागवतको हृदयमें धारण किया और उसी श्लोकार्धमें मन लगाये हुए वे बार-बार उसका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए वे भगवान् विष्णु चिन्तातुर हो गये॥ ५३—५५॥

उसी समय शंख, चक्र, गदा, पद्म—इन श्रेष्ठ आयुधोंको धारण किये हुए, चतुर्भुजा, शान्तिस्वरूपा, शान्ता शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर अपने ही समान विभूतियोंवाली सखियोंसहित प्रादुर्भूत हुईं। वे सुन्दर मुखवाली भगवती महालक्ष्मी परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके समक्ष मन्द-मन्द मुसकराती हुई प्रकट हुईं॥ ५६—५८॥

सूतजी बोले—उस अपार प्रलय-सागरमें बिना अवलम्बके स्थित मनोरम रूपवाली उन दिव्य देवीको देखकर कमलनयन भगवान् विष्णु बड़े ही विस्मयमें पड़े॥ ५९॥

रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः ।
श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः ॥ ६०

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्द्रा च शक्तयः ।
संस्थिताः सर्वतः पार्श्वे महादेव्याः पृथक्पृथक् ॥ ६१

वरायुधधराः सर्वा नानाभूषणभूषिताः ।
मन्दारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः ॥ ६२

तां दृष्ट्वा ताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले ।
विस्मयाविष्टहृदयः सम्बभूव जनार्दनः ॥ ६३

चिन्तयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः ।
कुतो भूताः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः ॥ ६४

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः ।
केनाहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिम् ॥ ६५

ममेयं जननी नो वा माया वा कापि दुर्घटा ।
दर्शनं केनचित्त्वद्य दत्तं वा केन हेतुना ॥ ६६

किं मया चात्र वक्तव्यं गन्तव्यं वा न वा क्वचित् ।
मौनमास्थाय तिष्ठेयं बालभावादतन्द्रितः ॥ ६७

वहाँ रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृम्भा, तन्द्रा—ये शक्तियाँ अलग-अलग रूपमें उन महादेवीके समीप सभी ओर खड़ी थीं ॥ ६०-६१ ॥

वे सभी श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए थीं, नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थीं तथा उनके हृदयपर मन्दारकी मालाएँ और मोतियोंके हार सुशोभित हो रहे थे ॥ ६२ ॥

उन भगवती महालक्ष्मी तथा उनकी सभी अन्यान्य सखियोंको उस प्रलयसागरके जलमें उपस्थित देखकर भगवान् विष्णुके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ ६३ ॥

इस प्रकार भगवतीकी माया देखकर अति चकित सर्वात्मा भगवान् विष्णु सोचने लगे—ये देवियाँ कहाँसे आ गयीं, मैं वटवृक्षके पत्तेपर कैसे आ गया, इस एकार्णव महासागरमें वटवृक्ष कहाँसे उत्पन्न हो गया और किसके द्वारा मैं सुन्दर स्वरूपवाला बालक बनाकर उसपर स्थापित किया गया हूँ? ॥ ६४-६५ ॥

ये मेरी माता तो नहीं हैं! अथवा यह कोई दुर्घट माया है? किसने और किस कारणसे मुझे इस समय दर्शन दिये हैं? ॥ ६६ ॥

अब मैं इस विषयमें क्या कहूँ? मैं यहाँसे कहीं चला जाऊँ अथवा मौन धारण करके बालभावसे सावधान होकर यहीं स्थित रहूँ ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकवैराग्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

बालरूपधारी भगवान् विष्णुसे महालक्ष्मीका संवाद, व्यासजीका शुकदेवजीसे देवीभागवतप्राप्तिकी परम्परा बताना तथा शुकदेवजीका मिथिला जानेका निश्चय करना

व्यास उवाच

दृष्ट्वा तं विस्मितं देवं शयानं वटपत्रके ।
उवाच सस्मितं वाक्यं विष्णो किं विस्मितो ह्यसि ॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए उन भगवान् विष्णुको आश्चर्यचकित देखकर मन्द मुसकान करती हुई देवीने यह वचन कहा—'विष्णो! आप विस्मयमें क्यों पड़े हैं?' ॥ १ ॥

महाशक्त्याः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा।
प्रभवे प्रलये जाते भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः॥ २

निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाप्यहम्।
सात्त्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम्॥ ३

त्वन्नाभिकमलाद् ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः।
स कर्ता सर्वलोकस्य रजोगुणसमन्वितः॥ ४

स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम्।
रजसा रक्तवर्णञ्च करिष्यति जगत्त्रयम्॥ ५

सगुणान्पञ्चभूतांश्च समुत्पाद्य महामतिः।
इन्द्रियाणीन्द्रियेशांश्च मनःपूर्वान्समन्ततः॥ ६

करिष्यति ततः सर्गं तेन कर्ता स उच्यते।
विश्वस्यास्य महाभाग त्वं वै पालयिता तथा॥ ७

तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद् रुद्रो भविष्यति।
तपः कृत्वा महाघोरं प्राप्य शक्तिं तु तामसीम्॥ ८

कल्पान्ते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते।
तेनाहं त्वामुपायाता सात्त्विकीं त्वमवेहि माम्॥ ९

स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाहं मधुसूदन।
हृदये ते कृतावासा भवामि सततं किल॥ १०

विष्णुरुवाच

श्लोकस्यार्धं मया पूर्वं श्रुतं देवि स्फुटाक्षरम्।
तत्केनोक्तं वरारोहे रहस्यं परमं शिवम्॥ ११

तन्मे ब्रूहि वरारोहे संशयोऽयं वरानने।
निर्धनो हि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः॥ १२

व्यास उवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा महालक्ष्मीः स्मितानना।
उवाच परया प्रीत्या वचनं चारुहासिनी॥ १३

आप उस महाशक्तिकी मायासे पूर्वकालमें भी सृष्टिकी उत्पत्ति तथा प्रलय होनेपर इसी प्रकार बार-बार जन्म लेकर मुझे भूलते रहे हैं॥ २॥

वे पराशक्ति निर्गुणा हैं, मैं और आप तो सगुण हैं। जो सात्त्विकी शक्ति है, उसे आप मेरी ही शक्ति समझिये॥ ३॥

आपके नाभिकमलसे प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न होंगे। वे ही रजोगुणसे युक्त होकर समस्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करेंगे॥ ४॥

वे ब्रह्मा ही तपोबलका आश्रय लेकर श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त करके रजोगुणके द्वारा त्रिभुवनको लाल वर्णका कर देंगे। गुणोंसहित पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँचों महाभूतोंकी एवं मनके साथ इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठातृदेवताओंकी रचना करके वे बुद्धिमान् ब्रह्माजी जगत्की सृष्टि करेंगे; इसी कारण वे कर्ता कहे जायँगे और आप इस विश्वके पालक होंगे॥ ५—७॥

उनके क्रोध करनेपर उनकी भौंहोंके मध्यभागसे रुद्र उत्पन्न होंगे। हे महामते! वे ही रुद्र घोर तप करके तामसी शक्ति प्राप्तकर कल्पान्तके समय सृष्टिके संहारकर्ता होंगे। इसी कारण मैं आपके पास आयी हूँ; आप मुझे वही सात्त्विकी शक्ति समझिये। हे मधुसूदन! मैं यहीं रहूँगी। मैं तो सर्वदा आपके ही पास रहती हूँ। आपके हृदयमें मैं निरन्तर निवास करती हूँ॥ ८—१०॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे वरारोहे! कुछ समय पूर्व मैंने स्पष्ट अक्षरोंवाला जो आधा श्लोक सुना, वह परम कल्याणप्रद तथा रहस्यमय वाक्य किसने कहा था? हे वरारोहे! यह मुझे शीघ्र बताइये; हे सुमुखि! इस विषयमें मुझे महती शंका है। जिस प्रकार निर्धन पुरुष धनकी चिन्ता करता रहता है, उसी प्रकार मैं उसका बार-बार स्मरण किया करता हूँ॥ ११-१२॥

व्यासजी बोले—विष्णुका वह वचन सुनकर मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली महालक्ष्मी मधुर हास्यके साथ अत्यन्त प्रेमसे बोलीं—॥ १३॥

महालक्ष्मीरुवाच

शृणु शौरे वचो मह्यं सगुणाहं चतुर्भुजा।
मां जानासि न जानासि निर्गुणां सगुणालयाम्॥ १४

त्वं जानीहि महाभाग तया तत्प्रकटीकृतम्।
पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम्॥ १५

कृपां च महतीं मन्ये देव्याः शत्रुनिषूदन।
यया प्रोक्तं परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत॥ १६

रक्षणीयं सदा चित्ते न विस्मार्यं कदाचन।
सारं हि सर्वशास्त्राणां महाविद्याप्रकाशितम्॥ १७

नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये।
प्रियोऽसि खलु देव्यास्त्वं तेन ते व्याहृतं वचः॥ १८

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः।
दधार हृदये नित्यं मत्वा मन्त्रमनुत्तमम्॥ १९

कालेन कियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः।
ब्रह्मा दैत्यभयात्त्रस्तो जगाम शरणं हरेः॥ २०

ततः कृत्वा महायुद्धं हत्वा तौ मधुकैटभौ।
जजाप भगवान्विष्णुः श्लोकार्धं विशदाक्षरम्॥ २१

जपन्तं वासुदेवं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः।
पप्रच्छ परमप्रीतः कञ्जजः कमलापतिम्॥ २२

किं त्वं जपसि देवेश त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्ति वै।
यत्स्मृत्वा पुण्डरीकाक्ष प्रीतोऽसि जगदीश्वर॥ २३

हरिरुवाच

मयि त्वयि च या शक्तिः क्रियाकारणलक्षणा।
विचारय महाभाग या सा भगवती शिवा॥ २४

यस्याधारे जगत्सर्वं तिष्ठत्यत्र महार्णवे।
साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी॥ २५

महालक्ष्मी बोलीं—हे शौरे! मेरी बात सुनिये। मैं सगुणरूपा चतुर्भुजा भगवती हूँ। आप मुझे जानते हों या न जानते हों, किंतु मैं सब गुणोंका आलय होती हुई निर्गुणा भी हूँ॥ १४॥

हे महाभाग! आप यह जान लें कि वह अर्धश्लोक उसी पराशक्तिने कहा था। आप उसे सब वेदोंका तत्त्वस्वरूप, कल्याणकारी और पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत समझिये। हे शत्रुमर्दन! हे सुव्रत! मैं भगवतीकी परम कृपा मानती हूँ, जिसने ऐसा गुप्त एवं परम रहस्यमय मन्त्र आपके कल्याणके लिये कहा है॥ १५-१६॥

आप इसे सर्वदा चित्तमें रखिये और कभी भी इसे विस्मृत न कीजिये; यह सब शास्त्रोंका सार है तथा महाविद्याके द्वारा प्रकाशित किया गया है॥ १७॥

इससे बढ़कर त्रिभुवनमें कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। आप निश्चय ही देवीके परम प्रिय हैं, इसीलिये उन्होंने यह मन्त्र आपको बताया है॥ १८॥

व्यासजी बोले—महादेवी लक्ष्मीके इस वचनको सुनकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुने इसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र समझकर सदाके लिये हृदयमें धारण कर लिया॥ १९॥

कुछ दिनोंके बाद उनके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे डरकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब वे भगवान् विष्णु भयंकर युद्ध करके मधु-कैटभका वधकर उस विशद अक्षरोंवाले श्लोकार्धरूप मन्त्रका जप करने लगे॥ २०-२१॥

भगवान् वासुदेवको जप करते हुए देखकर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रेमपूर्वक कमलापतिसे पूछा—हे देवेश! हे पुण्डरीकाक्ष! हे जगदीश्वर! आप किसका जप कर रहे हैं? आपसे भी बढ़कर दूसरा कौन है, जिसका ध्यान करके आप इतने प्रसन्न हो रहे हैं?॥ २२-२३॥

विष्णु बोले—हे महाभाग! विचार कीजिये कि आपमें और मुझमें जो कार्यकारणस्वरूपा शक्ति विद्यमान है, वे ही भगवती शिवा हैं। जिनके आधारपर एकार्णव महासागरमें यह समस्त जगत् ठहरा हुआ है। जो महाशक्ति साकार, असीम तथा सनातनी भगवती हैं और यह समस्त जड-चेतन

यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥ २६

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ २७

अहं त्वमखिलं विश्वं तस्याश्चिच्छक्तिसम्भवम्।
विद्धि ब्रह्मन्न सन्देहः कर्तव्यः सर्वदानघ॥ २८

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल।
विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा॥ २९

व्यास उवाच

ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तु नाभिपङ्कजे।
नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये॥ ३०

नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा।
मया कृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कन्धविस्तरम्॥ ३१

तत्पठस्व महाभाग पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
पञ्चलक्षणयुक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम्॥ ३२

तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्।
धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थेनोपबृंहितम्॥ ३३

वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम्।
ब्रह्मविद्यानिधानं तु संसारार्णवतारकम्॥ ३४

गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः।
पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ॥ ३५

अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम्।
अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम्॥ ३६

सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरं शिवम्।
शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥ ३७

संसार जिनके द्वारा रचा गया है, वे ही जब प्रसन्न होती हैं तब मनुष्योंके उद्धारके लिये वरदायिनी होती हैं॥ २४—२६॥

वे ही सनातनी परमा विद्या हैं, संसारके बन्धन एवं मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं और वे ही सभी ईश्वरोंकी भी स्वामिनी हैं॥ २७॥

मैं, आप तथा समस्त संसार उन्हींकी चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। हे ब्रह्मन्! हे निष्पाप! ऐसा आप सत्य जानिये, इसमें सन्देह नहीं है॥ २८॥

उन भगवतीने आधे श्लोकमें ही जो कहा है, वही वास्तविक श्रीमद्देवीभागवत है। द्वापरयुगके आदिमें पुनः उसका विस्तार होगा॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माजीने उस भागवतका संग्रह किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने परम बुद्धिमान् पुत्र नारदजीसे इसे कहा। पूर्वकालमें वही भागवत देवर्षि नारदजीने मुझे दिया और फिर मैंने उसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत करके पूर्ण किया॥ ३०-३१॥

हे महाभाग! वेदतुल्य, पाँच लक्षणोंसे युक्त तथा भगवतीके उत्तम चरितोंसे ओत-प्रोत इस 'श्रीमद्देवीभागवत' पुराणको पढ़ो॥ ३२॥

तत्त्वज्ञानके रससे परिपूर्ण, वेदार्थके द्वारा उपबृंहित और धर्मशास्त्रके समान पुण्यप्रद यह भागवत सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। यह वृत्रासुरवधके कथानकसे युक्त, विविध आख्यानोपाख्यानोंसे समन्वित, ब्रह्मविद्याका निधान एवं भवसागरसे पार करनेवाला है॥ ३३-३४॥

अतः हे महाभाग! तुम उस भागवतको अवश्य पढ़ो; तुम अत्यन्त बुद्धिमान् और योग्य हो। हे नरश्रेष्ठ! यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण पुण्यप्रद है॥ ३५॥

तुम इसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो; यह पुराण पाठ तथा श्रवण करनेवालेके लिये अज्ञानका नाश करनेवाला, दिव्य ज्ञानरूपी सूर्यका बोध करानेवाला, सुखप्रद, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, कल्याणकारी तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३६-३७॥

शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः।
पठिष्यति त्वया सार्धं पुराणीं संहितां शुभाम्॥ ३८

सूत उवाच

इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितं किल।
मया गृहीतं तत्सर्वं पुराणं चातिविस्तरम्॥ ३९

शुकोऽधीत्य पुराणं तु स्थितो व्यासाश्रमे शुभे।
न लेभे शर्म धर्मात्मा ब्रह्मात्मज इवापरः॥ ४०

एकान्तसेवी विकलः स शून्य इव लक्ष्यते।
नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा॥ ४१

चिन्ताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासः प्राह सुतं प्रति।
किं पुत्र चिन्त्यते नित्यं कस्माद्व्यग्रोऽसि मानद॥ ४२

आस्से ध्यानपरो नित्यमृणग्रस्त इवाधनः।
का चिन्ता वर्तते पुत्र मयि ताते तु तिष्ठति॥ ४३

सुखं भुंक्ष्व यथाकामं मुञ्च शोकं मनोगतम्।
ज्ञानं चिन्तय शास्त्रोक्तं विज्ञाने च मतिं कुरु॥ ४४

न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत।
गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह॥ ४५

स ते मोहं महाभाग नाशयिष्यति भूपतिः।
जनको नाम धर्मात्मा विदेहः सत्यसागरः॥ ४६

तं गत्वा नृपतिं पुत्र सन्देहं स्वं निवर्तय।
वर्णाश्रमाणां धर्मांस्त्वं पृच्छ पुत्र यथातथम्॥ ४७

जीवन्मुक्तः स राजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिः शुचिः।
तथ्यवक्तातिशान्तश्च योगी योगप्रियः सदा॥ ४८

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
प्रत्युवाच महातेजाः शुकश्चारणिसम्भवः॥ ४९

लोमहर्षणसे उत्पन्न मेरे शिष्य ये धर्मात्मा सूतजी भी तुम्हारे साथ इस शुभ पुराण-संहिताका अध्ययन करेंगे॥ ३८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! व्यासजीने मुझसे और अपने पुत्रसे इस प्रकार कहा था, तब मैंने उस सम्पूर्ण विस्तृत पुराण-संहिताको विधिवत् पढ़ा था॥ ३९॥

उस समय भागवतपुराणका अध्ययन करके शुकदेवजी व्यासजीके पवित्र आश्रममें ही रहने लगे, परंतु दूसरे ब्रह्मापुत्र नारदकी भाँति उन धर्मात्माको वहाँ शान्ति न मिल सकी॥ ४०॥

एकान्तमें रहनेवाले तथा व्याकुलचित्त वे उदासीनकी भाँति दिखायी पड़ते थे। न वे अधिक भोजन करते थे और न उपवासपूर्वक ही रहते थे॥ ४१॥

इस प्रकार अपने पुत्र शुकदेवको चिन्तित देखकर व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम क्या चिन्ता करते रहते हो? हे मानद! तुम किसलिये व्याकुल रहते हो? ऋणग्रस्त निर्धन व्यक्तिकी भाँति तुम सदा चिन्ता करते रहते हो। हे पुत्र! मुझ पिताके रहते तुम्हें किस बातकी चिन्ता हो रही है?॥ ४२-४३॥

तुम मनकी ग्लानि छोड़ो; यथेष्टरूपसे सुखोपभोग करो, शास्त्रोक्त ज्ञानका चिन्तन करो और आत्मचिन्तनमें मन लगाओ॥ ४४॥

हे सुव्रत! यदि मेरे उपदेशसे तुम्हें शान्ति नहीं मिलती, तो राजा जनकके द्वारा पालित मिथिलापुरी चले जाओ। हे महाभाग! वे विदेह राजा जनक तुम्हारे मोहका नाश कर देंगे; क्योंकि वे सत्यसिन्धु तथा धर्मात्मा हैं॥ ४५-४६॥

हे पुत्र! उन राजाके पास जाकर तुम अपना सन्देह दूर करो और वर्णाश्रम-धर्मके रहस्यको उनसे यथार्थरूपमें पूछो॥ ४७॥

वे राजर्षि जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानका चिन्तन करनेवाले, पवित्र, यथार्थ वक्ता, शान्तचित्त तथा सदा योगप्रिय भी हैं॥ ४८॥

सूतजी बोले—परम तेजस्वी उन व्यासजीका वचन सुनकर अरणिसे उत्पन्न महातेजस्वी शुकदेवजीने उत्तर दिया। हे धर्मात्मन्! आपके द्वारा यह जो कहा

दम्भोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाधुना।
जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदान्वितः॥ ५०

वन्ध्यापुत्र इवाभाति राजासौ जनकः पितः।
कुर्वन् राज्यं विदेहः किं सन्देहोऽयं ममाद्भुतः॥ ५१

द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूपं विदेहं नृपसत्तमम्।
कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवाम्भसि॥ ५२

सन्देहोऽयं महांस्तात विदेहे परिवर्तते।
मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठ सौगतानामिवापरः॥ ५३

कथं भुक्तमभुक्तं स्यादकृतं च कृतं कथम्।
व्यवहारः कथं त्याज्य इन्द्रियाणां महामते॥ ५४

माता पुत्रस्तथा भार्या भगिनी कुलटा तथा।
भेदाभेदः कथं न स्याद्यद्येतन्मुक्तता कथम्॥ ५५

कटु क्षारं तथा तीक्ष्णं कषायं मिष्टमेव च।
रसना यदि जानाति भुंक्ते भोगाननुत्तमान्॥ ५६

शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत्।
मुक्तता कीदृशी तात सन्देहोऽयं ममाद्भुतः॥ ५७

शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरं प्रीतिकरं सदा।
व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः॥ ५८

चौरं वा तापसं वापि समानं मन्यते कथम्।
असमा यदि बुद्धिः स्यान्मुक्तता तर्हि कीदृशी॥ ५९

दृष्टपूर्वो न मे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः।
शङ्केयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः॥ ६०

जा रहा है, उससे मेरे चित्तमें शंका उठती है कि कहीं यह दम्भ तो नहीं। जीवन्मुक्त तथा विदेह होते हुए भी राजा जनक हर्षके साथ कैसे राज्य करते हैं? हे पिताजी! यह बात तो वैसे ही असम्भव है जैसे किसी वन्ध्याको पुत्र हो! अतः वे राजा जनक राज्य करते हुए भी विदेह कैसे हैं? यह मुझे अद्भुत सन्देह हो रहा है!॥ ४९—५१॥

अब मैं नृपश्रेष्ठ विदेह जनकको देखना चाहता हूँ कि वे जलमें कमलपत्रकी भाँति संसारमें कैसे रहते हैं? हे तात! उनके विदेह होनेके विषयमें मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! सौगतोंकी भाँति वे भी मोक्षकी एक दूसरी परिभाषा तो नहीं हैं!॥ ५२-५३॥

हे महामते! भला भोगा हुआ भोग अभोग और किया हुआ कर्म अकर्म कैसे हो सकता है? इन्द्रियोंका सहज व्यवहार कैसे छोड़ा जा सकता है?॥ ५४॥

एक पुत्रका अपनी माता, पत्नी, बहन तथा किसी असती स्त्रीके साथ भेद-अभेदका सम्बन्ध क्यों नहीं होगा? और ऐसा होनेपर जीवन्मुक्तता कैसी?॥ ५५॥

यदि जिह्वा कटु, क्षार, तीक्ष्ण, कषाय, मधुर आदि स्वादोंको जानती है तो वे अच्छे-अच्छे पदार्थोंका रसास्वादन करते ही होंगे। यदि शीत, उष्ण, सुख-दुःखका परिज्ञान उन्हें होता होगा तो भला यह मुक्तता कैसी? हे तात! मुझे यह अद्भुत सन्देह हो रहा है!॥ ५६-५७॥

शत्रु और मित्रको पहचानकर उनके साथ वैर अथवा प्रीतिका व्यवहार किया जाता है, तो राज्यसिंहासनपर बैठे हुए राजा जनक शत्रुता या मित्रताका व्यवहार क्या नहीं रखते होंगे? उनके राज्यमें साधु और चोर समान कैसे समझे जाते हैं? यदि उनके प्रति समान बुद्धि नहीं है, तब भला वह जीवन्मुक्तता कैसी?॥ ५८-५९॥

ऐसा जीवन्मुक्त कोई राजा मेरे द्वारा पहले देखा नहीं गया। हे तात! यह बहुत बड़ी शंका है कि वे राजा जनक घरमें रहकर भी मुक्त कैसे हैं? उन

दिदृक्षा महती जाता श्रुत्वा तं भूपतिं तथा।
सन्देहविनिवृत्त्यर्थं गच्छामि मिथिलां प्रति॥ ६१

राजाके विषयमें सुनकर उन्हें देखनेकी बड़ी लालसा उत्पन्न हो गयी है। अतः सन्देह-निवृत्तिके लिये मैं मिथिलापुरी जा रहा हूँ॥ ६०-६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकं प्रति व्यासोपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

शुकदेवजीका राजा जनकसे मिलनेके लिये मिथिलापुरीको प्रस्थान तथा राजभवनमें प्रवेश

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोः पतितः शुकः।
बद्धाञ्जलिरुवाचेदं गन्तुकामो महामनाः॥ १

आपृच्छे त्वां महाभाग ग्राह्यं ते वचनं मया।
विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालिताञ्जनकेन तु॥ २

विना दण्डं कथं राज्यं करोति जनकः किल।
धर्मे न वर्तते लोको दण्डश्चेन्न भवेद्यदि॥ ३

धर्मस्य कारणं दण्डो मन्वादिप्रहितः सदा।
स कथं वर्तते तात संशयोऽयं महान्मम॥ ४

मम माता त्वियं वन्ध्या तद्वद्भाति विचेष्टितम्।
पृच्छामि त्वां महाभाग गच्छामि च परन्तप॥ ५

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा गन्तुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः।
आलिङ्ग्योवाच पुत्रं तं ज्ञानिनं निःस्पृहं दृढम्॥ ६

व्यास उवाच

स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते।
सत्यां वाचं प्रदत्त्वा मे गच्छ तात यथासुखम्॥ ७

आगन्तव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम्।
न कुत्रापि च गन्तव्यं त्वया पुत्र कथञ्चन॥ ८

सुखं जीवामि पुत्राहं दृष्ट्वा ते मुखपङ्कजम्।
अपश्यन्दुःखमाप्नोमि प्राणस्त्वमसि मे सुत॥ ९

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] पितासे यह कहकर महात्मा पुत्र शुकदेवजी उनके चरणोंपर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर चलनेकी इच्छासे बोले—हे महाभाग! अब आपसे आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आपका वचन स्वीकार्य है। अतः मैं महाराज जनकद्वारा पालित मिथिलापुरी देखना चाहता हूँ॥ १-२॥

राजा जनक दण्ड दिये बिना ही कैसे राज्य चलाते हैं? क्योंकि यदि दण्डका भय प्रजाओंको न हो तो लोग धर्मका पालन नहीं करेंगे॥ ३॥

मनु आदिके द्वारा धर्माचरणका मूल कारण सदा दण्ड-विधान ही कहा गया है। इस राजधर्मका निर्वाह बिना दण्डके कैसे हो सकेगा? हे पिताजी! इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे महाभाग! यह बात वैसी ही अनर्गल प्रतीत होती है, जैसे कोई कहे कि मेरी यह माता वन्ध्या है। हे परन्तप! अब मैं आपसे अनुमति लेता हूँ और यहाँसे जा रहा हूँ॥ ४-५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवजीको जनकपुर जानेका इच्छुक देखकर व्यासजीने अपने ज्ञानी एवं निःस्पृह पुत्रका दृढ़ आलिंगन करके कहा—॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे महामते! हे पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो, हे शुक! तुम दीर्घायु होओ। हे तात! तुम मुझे यह सत्य वचन देकर सुखपूर्वक जाओ कि यहाँसे जाकर मेरे इस उत्तम आश्रममें पुनः आओगे। हे पुत्र! तुम वहाँसे कहीं और कभी भी मत चले जाना॥ ७-८॥

हे पुत्र! मैं तुम्हारा मुखकमल देखकर ही सुखपूर्वक जीता हूँ और तुम्हें न देखनेपर दुःखी रहता हूँ। हे सुत! तुम्हीं मेरे प्राण हो॥ ९॥

दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र सन्देहं विनिवर्त्य च।
अत्रागत्य सुखं तिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः॥ १०

सूत उवाच

इत्युक्तः सोऽभिवाद्यार्यं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्।
चलितस्तरसातीव धनुर्मुक्तः शरो यथा॥ ११

सम्पश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्च वित्तधर्मिणः।
वनानि पादपांश्चैव क्षेत्राणि फलितानि च॥ १२

तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयान्वितान्।
योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान्वनौकसः ॥ १३

शैवान्पाशुपतांश्चैव सौराञ्छाक्तांश्च वैष्णवान्।
वीक्ष्य नानाविधान्धर्माञ्जगामातिस्मयन्मुनिः॥ १४

वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लङ्घ्य महामतिः।
हिमाचलं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति॥ १५

प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम्।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः॥ १६

क्षत्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र समागतः।
किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टस्तेन न चाब्रवीत्॥ १७

निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः।
विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किञ्चन॥ १८

प्रतीहार उवाच

ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्किमर्थं त्वमिहागतः।
चलनं च विना कार्यं न भवेदिति मे मतिः॥ १९

राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज।
अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशो नात्र सर्वथा॥ २०

तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्राह्मणो वेदवित्तमः।
कुलं कार्यं च मे ब्रूहि यथेष्टं गच्छ मानद॥ २१

हे पुत्र! वहाँ राजर्षि जनकसे मिलकर और अपना सन्देह दूर करके फिर उसके बाद यहाँ आकर वेदाध्ययनमें रत रहते हुए सुखपूर्वक रहो॥ १०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके ऐसा कहनेपर शुकदेवजी अपने पिताको प्रणाम तथा उनकी प्रदक्षिणा करके शीघ्र ही इस प्रकार चल पड़े जैसे धनुषसे छूटा हुआ बाण॥ ११॥

मार्गमें चलते हुए अनेक समृद्धिशाली देशों, नागरिकों, वनों, वृक्षों, फले-फूले खेतों, तप करते हुए तपस्वीजनों, दीक्षा लिये हुए याजकजनों, योगाभ्यासमें तत्पर योगीजनों, वनमें रहनेवाले वानप्रस्थों, वैष्णव, पाशुपत, शैव, शाक्त एवं सूर्योपासक और अनेक धर्मा-वलम्बियोंको देखकर वे शुकदेवमुनि अति विस्मयमें पड़ गये॥ १२—१४॥

इस प्रकार वे महामति शुकदेवजी लगभग दो वर्षोंमें मेरुपर्वत और एक वर्षमें हिमालयको पार करके मिथिला-देशमें पहुँचे॥ १५॥

जब वे मिथिलामें प्रविष्ट हुए, तब उन्होंने वहाँकी श्रेष्ठ ऐश्वर्यसम्पदाको देखा तथा वहाँकी सारी प्रजाको सुखी एवं सदाचारसम्पन्न देखा॥ १६॥

वहाँ द्वारपालने उन्हें रोका और पूछा—तुम कौन हो और कहाँसे आये हो, तुम्हारा क्या कार्य है; बताओ। ऐसा पूछनेपर भी शुकदेवजी मौन रहे, कुछ बोले नहीं। वे नगरद्वारसे बाहर जाकर स्थाणुकी तरह खड़े हो गये और थोड़ी देरमें आश्चर्यचकित होकर हँसते हुए वहीं स्थित हो गये, पर किसीसे कुछ बोले नहीं॥ १७-१८॥

द्वारपालने पूछा—हे ब्रह्मन्! बोलिये, आप गूँगे तो नहीं हैं। आपका किस हेतु यहाँ आना हुआ है ? मेरे विचारमें तो कोई कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं जाता॥ १९॥

हे विप्र! इस नगरमें राजाकी आज्ञा पाकर ही कोई प्रवेश कर सकता है। अज्ञात कुल तथा शीलवाले व्यक्तिका प्रवेश यहाँ कदापि नहीं होता है॥ २०॥

हे मानद! आप निश्चय ही तेजस्वी एवं वेदवेत्ता ब्राह्मण प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये आप अपने कुल तथा प्रयोजनके विषयमें मुझे बता दें और फिर अपने इच्छानुसार चले जायँ॥ २१॥

शुक उवाच

यदर्थमागतोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव।
विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः॥ २२

मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लङ्घ्य गिरिद्वयम्।
राजानं द्रष्टुकामोऽहं पर्यटन्समुपागतः॥ २३

वञ्चितोऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते।
भ्रामितोऽहं महाभाग कर्मणा वा महीतले॥ २४

धनाशा पुरुषस्येह परिभ्रमणकारणम्।
सा मे नास्ति तथाप्यत्र सम्प्राप्तोऽस्मि भ्रमात्किल॥ २५

निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न मज्जति।
निराशोऽहं महाभाग मग्नोऽस्मिन्मोहसागरे॥ २६

क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः।
परिश्रमफलं किं मे वञ्चितो विधिना किल॥ २७

प्रारब्धं किल भोक्तव्यं शुभं वाप्यथवाशुभम्।
उद्यमस्तद्वशे नित्यं कारयत्येव सर्वथा॥ २८

न तीर्थं न च वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः।
अप्रवेशः पुरे जातो विदेहो नाम भूपतिः॥ २९

इत्युक्त्वा विररामाशु मौनीभूत इव स्थितः।
ज्ञातो हि प्रतिहारेण ज्ञानी कश्चिद् द्विजोत्तमः॥ ३०

सामपूर्वमुवाचासौ तं क्षत्ता संस्थितं मुनिम्।
गच्छ भो यत्र ते कार्यं यथेष्टं द्विजसत्तम॥ ३१

शुकदेवजी बोले—मैं जिस कार्यके लिये यहाँ आया था, वह तुम्हारे कथनमात्रसे ही पूरा हो गया। मैं विदेहनगर देखने आया था, परंतु यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ है॥ २२॥

मुझ अज्ञानीकी यह भूल थी, जो दो पर्वतोंको लाँघकर महाराजसे मिलनेकी इच्छासे घूमते हुए यहाँ चला आया॥ २३॥

मैं तो स्वयं अपने पिताद्वारा ही ठगा गया हूँ। इसमें किसी अन्यको ही क्या दोष दिया जाय? अथवा हे महाभाग! यह मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है, जिसके कारण इस भूमिपर मुझे इतना चक्कर काटना पड़ा॥ २४॥

इस संसारमें लोगोंका भ्रमण करनेका उद्देश्य धनोपार्जन ही है, किंतु मुझे उसकी कोई इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भ्रमवश ही यहाँ आ गया हूँ॥ २५॥

आशारहित पुरुषको ही सर्वदा सुख प्राप्त होता है, यदि वह मोहमें न पड़े। किंतु हे महाभाग! मैं तो निराश होकर भी, न जानें क्यों इस मोहसागरमें निमग्न हो रहा हूँ!॥ २६॥

कहाँ सुमेरुपर्वत और कहाँ यह मिथिलापुरी! पैदल ही चलकर मैं यहाँ आया हूँ। इस परिश्रमका फल मुझे क्या मिला? प्रारब्धने ही मुझे ठगा है। प्रारब्धका भोग अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे वह शुभ हो या अशुभ। उद्योग भी तो सदा उसी दैवके अधीन ही रहता है; वह जैसा चाहे वैसा कराता है॥ २७-२८॥

यहाँ न कोई तीर्थ है न ज्ञानप्राप्ति होनी है, जिसके लिये यह मेरा परिश्रम हुआ। मैं तो महाराज जनकका 'विदेह' नाम सुनकर उत्सुकतासे यहाँ आया था, किंतु उनके नगरमें तो प्रवेश करना भी निषिद्ध है॥ २९॥

इतना कहकर शुकदेवजी चुप हो गये और मौन होकर खड़े रहे। द्वारपालको लगा कि ये कोई ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। तब उसने वहाँ खड़े मुनिसे शान्तिपूर्वक निवेदन किया—हे द्विजश्रेष्ठ! आपका जहाँ कार्य हो, वहाँ यथेष्ट चले जाइये॥ ३०-३१॥

अपराधो मम ब्रह्मन्यन्निवारितवानहम्।
तत्क्षन्तव्यं महाभाग विमुक्तानां क्षमा बलम्॥ ३२

शुक उवाच

किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा।
प्रभुकार्यं प्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम्॥ ३३

न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया।
चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः॥ ३४

ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः।
गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम्॥ ३५

प्रतीहार उवाच

किं सुखं द्विज किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता।
कः शत्रुर्हितकर्ता को ब्रूहि सर्वं ममाद्य वै॥ ३६

शुक उवाच

द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधो जनः।
रागी चैव विरागी च तयोश्चित्तं द्विधा पुनः॥ ३७

विरागी त्रिविधः कामं ज्ञातोऽज्ञातश्च मध्यमः।
रागी च द्विविधः प्रोक्तो मूर्खश्च चतुरस्तथा॥ ३८

चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रजं मतिजं तथा।
मतिस्तु द्विविधा लोके युक्तायुक्तेति सर्वथा॥ ३९

प्रतीहार उवाच

यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम।
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम॥ ४०

शुक उवाच

रागो यस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यते ध्रुवम्।
दुःखं बहुविधं तस्य सुखं च विविधं पुनः॥ ४१

धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानं च विजयं तथा।
तदप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणे क्षणे॥ ४२

हे ब्रह्मन्! मैंने जो आपको रोका था, वह मेरा अपराध हुआ। उसके लिये आप क्षमा करें; क्योंकि हे महाभाग! मुक्तजनोंका तो क्षमा ही बल है॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे द्वारपाल! इसमें तुम्हारा क्या दोष है; तुम तो सर्वदा पराधीन हो। सेवकको तो स्वामीकी आज्ञाका यथोचित पालन करना ही चाहिये। तुमने मुझे जो रोका इसमें राजाका भी कोई दोष नहीं है; क्योंकि बुद्धिमानोंको चोर और शत्रुओंका सम्यक् ज्ञान रखना चाहिये॥ ३३-३४॥

यह सर्वथा मेरा ही दोष है, जो मैं यहाँ आ गया। [बिना बुलाये] दूसरेके घर जाना लघुताका कारण होता है॥ ३५॥

द्वारपालने कहा—हे विप्र! सुख क्या है, दुःख क्या है, कल्याण चाहनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है? शत्रु कौन है और मित्र कौन है? आप मुझे यह सब बताइये॥ ३६॥

शुकदेवजी बोले—सभी लोकोंमें सर्वत्र द्वैविध्य रहता है। इसलिये मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—एक रागी और दूसरा विरागी। उन दोनोंके मन भी दो प्रकारके होते हैं। उनमें भी विरागी तीन प्रकारके होते हैं—ज्ञात, अज्ञात एवं मध्यम। रागी भी दो प्रकारके कहे गये हैं—मूर्ख तथा चतुर। चातुर्य भी दो प्रकारका कहा गया है—शास्त्रजनित तथा बुद्धिजनित। इसी प्रकार लोकमें बुद्धि भी युक्त और अयुक्त-भेदसे दो प्रकारकी होती है॥ ३७—३९॥

द्वारपालने कहा—हे विद्वन्! हे विप्रवर! आपने जो कुछ कहा है, उसे मैं भलीभाँति नहीं समझ पाया। अतएव हे श्रेष्ठ! आप फिरसे विस्तारपूर्वक इस विषयको यथार्थरूपसे समझाइये॥ ४०॥

शुकदेवजी बोले—इस संसारमें जिसको राग है, वह निश्चय ही रागी कहलाता है। उस रागीको अनेक प्रकारके सुख एवं दुःख आते ही रहते हैं॥ ४१॥

धन, पुत्र, कलत्र, मान-प्रतिष्ठा और विजय प्राप्त करके ही सुख प्राप्त होता है। इनके न मिलनेपर प्रतिक्षण महान् दुःख होता ही है॥ ४२॥

कार्यस्तस्य सुखोपायः कर्तव्यं सुखसाधनम्।
तस्यारातिः स विज्ञेयः सुखविघ्नं करोति यः॥ ४३

सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा।
चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति॥ ४४

विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकान्तसेवनम्।
आत्मानुचिन्तनं चैव वेदान्तस्य च चिन्तनम्॥ ४५

दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम्।
शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः॥ ४६

कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः।
बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥ ४७

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मत्वा तं ज्ञानिनं द्विजम्।
क्षत्ता प्रवेशयामास कक्षां चातिमनोरमाम्॥ ४८

नगरं वीक्षमाणः संस्त्रैविध्यजनसङ्कुलम्।
नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम्॥ ४९

रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा।
विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम्॥ ५०

पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद् राजमन्दिरम्।
प्राप्तः परमतेजस्वी द्वितीय इव भास्करः॥ ५१

निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत्।
तत्रैव च स्थितो द्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन्॥ ५२

छायायामातपे चैव समदर्शी महातपाः।
ध्यानं कृत्वा तथैकान्ते स्थितः स्थाणुरिवाचलः॥ ५३

तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृताञ्जलिः।
प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः॥ ५४

अतः जैसे सुख प्राप्त हो सके, वैसा उपाय करना चाहिये और सुखके साधनका संग्रह करना चाहिये। जो उस सुखमें विघ्न डाले, उसे शत्रु समझना चाहिये। जो रागी पुरुषके सुखको सर्वदा बढ़ाये, वही मित्र है। चतुर मनुष्य मोहमें फँसता नहीं है; किंतु मूर्ख सर्वत्र आसक्त रहता है॥ ४३-४४॥

विरागी तथा आत्माराम पुरुषको एकान्तवास, आत्म-चिन्तन तथा वेदान्तशास्त्रका अनुशीलन करनेसे ही सुख होता है। सांसारिक विषयोंकी चर्चा आदि—यह सब उनके लिये दुःखरूप है। कल्याण चाहनेवाले विद्वान् पुरुषके लिये बहुत शत्रु हैं; काम, क्रोध, प्रमाद आदि अनेक प्रकारके शत्रु बताये गये हैं; किंतु व्यक्तिका सच्चा बन्धु तो एकमात्र सन्तोष ही है; तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी नहीं है॥ ४५—४७॥

सूतजी बोले—शुकदेवजीकी बात सुनकर उन्हें ज्ञानी द्विज समझकर उसने शुकदेवजीको एक अत्यन्त रमणीय कक्षसे प्रवेश कराया॥ ४८॥

तीन प्रकारके नागरिकजनोंसे भरे हुए; अनेक प्रकारके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंसे सजी दूकानोंवाले; राग-द्वेष, काम, लोभ, मोहसे युक्त एवं परस्पर वाद-विवादमें संलग्न श्रेष्ठीजनोंसे सुशोभित और धन-धान्यसे परिपूर्ण विशाल नगरको देखते हुए शुकदेवजी चले। इस तरह तीन प्रकारके लोगोंको देखते हुए शुकदेवजी राजभवनकी ओर बढ़े। इस प्रकार द्वितीय सूर्यके समान परम तेजस्वी शुकदेवजी द्वारपर पहुँचे; द्वारपालने उन्हें अन्दर जानेसे रोका। तब वे काष्ठके समान वहीं द्वारपर खड़े हो गये और मोक्षसम्बन्धी विषयपर विचार करने लगे॥ ४९—५२॥

धूप तथा छायाको समान-समझनेवाले महातपस्वी शुकदेवजी वहाँ एकान्तमें ध्यान करके इस प्रकार खड़े रहे मानो कोई अचल स्तम्भ हो॥ ५३॥

थोड़ी देर बाद राजमन्त्रीने हाथ जोड़े हुए स्वयं आकर उन्हें राजभवनके दूसरे कक्षमें प्रवेश कराया॥ ५४॥

तत्र दिव्यं मनोरम्यं पुष्पितं दिव्यपादपम्।
तद्वनं दर्शयित्वा तु कृत्वा चातिथिसत्क्रियाम्॥ ५५

वारमुख्याः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः।
गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः॥ ५६

ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः।
निर्गतः सदनात्तस्माद्व्यासपुत्रः स्थितस्तदा॥ ५७

पूजितः परया भक्त्या ताभिः स्त्रीभिर्यथाविधि।
देशकालोपपन्नेन नानान्नेनातितोषितः॥ ५८

ततोऽन्तःपुरवासिन्यस्तस्यान्तःपुरकाननम्।
रम्यं संदर्शयामासुरङ्गनाः काममोहिताः॥ ५९

स युवा रूपवान्कान्तो मृदुभाषी मनोरमः।
दृष्ट्वा ता मुमुहुः सर्वास्तं च काममिवापरम्॥ ६०

जितेन्द्रियं मुनिं मत्त्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा।
आरणेयस्तु शुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत्॥ ६१

आत्मारामो जितक्रोधो न हृष्यति न तप्यति।
पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान्॥ ६२

तस्मै शय्यां सुरम्यां च ददुर्नार्यः सुसंस्कृताम्।
परार्घ्यास्तरणोपेतां नानोपस्करसंवृताम्॥ ६३

स कृत्वा पादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यानमेवान्वपद्यत॥ ६४

याममेकं स्थितो ध्याने सुष्वाप तदनन्तरम्।
सुप्त्वा यामद्वयं तत्र चोदतिष्ठत्ततः शुकः॥ ६५

पाश्चात्यं यामिनीयामं ध्यानमेवान्वपद्यत।
स्नात्वा प्रातःक्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः॥ ६६

वहाँ एक दिव्य रमणीय उपवन था, जिसमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे लदे दिव्य वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। उस वनको दिखाकर मन्त्रीने उनका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। वहाँ राजाकी सेवा करनेवाली अनेक वारांगनाएँ थीं, वे नृत्य-गानमें कुशल तथा कामशास्त्रमें निपुण थीं। शुकदेवजीकी सेवाके लिये उन्हें आदेश देकर राजमन्त्री उस भवनसे निकल गये और शुकदेवजी वहीं स्थित रहे। उन वारांगनाओंने परम भक्तिके साथ उनकी पूजा की और देशकालानुसार उपलब्ध अनेक प्रकारके भोजनसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ५५—५८॥

तत्पश्चात् अन्तःपुरनिवासिनी कामिनी स्त्रियोंने उन्हें अन्तःपुरका वन दिखाया, जो अत्यन्त रमणीय था। वे युवा, रूपवान्, कान्तिमान्, मृदुभाषी एवं मनोरम थे। दूसरे कामदेवके समान उन शुकदेवजीको देखकर वे सभी मुग्ध हो गयीं॥ ५९-६०॥

मुनिको जितेन्द्रिय जानकर वे सब उनकी परिचर्या करने लगीं। अरणिनन्दन शुद्धात्मा शुकदेवजीने उन्हें माताके समान समझा॥ ६१॥

वे आत्माराम तथा क्रोधको जीतनेवाले शुकदेवजी न हर्षित होते थे और न दुःखी। उनकी चेष्टाओंको देखकर भी वे शान्तचित्त होकर स्थित रहे॥ ६२॥

तब उन स्त्रियोंने उनके लिये सुरम्य, कोमल तथा बहुमूल्य आस्तरण और नानाविध उपकरणोंसे सुसज्जित शय्या बिछायी। शुकदेवजी हाथ-पाँव धोकर हाथमें कुश लेकर सावधान हो सायंकालीन सन्ध्योपासन सम्पन्न करके भगवान्‌के ध्यानमें लग गये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार एक प्रहरतक ध्यानावस्थित होकर वे शयन करने लगे। दो प्रहर शयन करके पुनः वे शुकदेवजी उठ गये। रात्रिके चौथे प्रहरमें वे पुनः ध्यानमें स्थित रहे; तदनन्तर स्नान करके प्रातः-कालीन क्रियाएँ सम्पन्न करके पुनः समाधिस्थ हो गये॥ ६५-६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकस्य राजमन्दिरप्रवेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~O~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

शुकदेवजीके प्रति राजा जनकका उपदेश

सूत उवाच

श्रुत्वा तमागतं राजा मन्त्रिभिः सहितः शुचिः।
पुरः पुरोहितं कृत्वा गुरुपुत्रं समभ्यगात्॥ १

कृत्वार्हणां नृपः सम्यग् दत्तासनमनुत्तमम्।
पप्रच्छ कुशलं गां च विनिवेद्य पयस्विनीम्॥ २

स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञे स्वं निवेद्य निरामयम्॥ ३

कृत्वा कुशलसंप्रश्नमुपविष्टं सुखासने।
शुकं व्याससुतं शान्तं पर्यपृच्छत पार्थिवः॥ ४

किं निमित्तं महाभाग निःस्पृहस्य च मां प्रति।
जातं ह्यागमनं ब्रूहि कार्यं तन्मुनिसत्तम॥ ५

शुक उवाच

व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम्।
सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः॥ ६

मया नाङ्गीकृतं वाक्यं मत्त्वा बन्धं गुरोरपि।
न बन्धोऽस्तीति तेनोक्तो नाहं तत्कृतवान्पुनः॥ ७

इति सन्दिग्धमनसं मत्वा स मुनिसत्तमः।
उवाच वचनं तथ्यं मिथिलां गच्छ मा शुचः॥ ८

याज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः।
विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकण्टकम्॥ ९

कुर्वन् राज्यं तथा राजा मायापाशैर्न बध्यते।
त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परन्तप॥ १०

पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम्।
कुरु दारान्महाभाग पृच्छ वा भूपतिं च तम्॥ ११

सन्देहं ते मनोजातं कथयिष्यति पार्थिवः।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मामेहि तरसा सुत॥ १२

सूतजी बोले—शुकदेवजीको आया हुआ सुनकर पवित्रात्मा राजा जनक अपने पुरोहितको आगे करके मन्त्रियोंसहित उन गुरुपुत्रके पास गये॥ १॥

महाराज जनकने उन्हें बड़े आदरसे उत्तम आसन देकर विधिवत् सत्कार करनेके पश्चात् एक दूध देनेवाली गौ प्रदान करके उनसे कुशल पूछा॥ २॥

शुकदेवजीने भी राजाकी पूजाको यथाविधि स्वीकार किया और अपना कुशल बताकर राजासे भी कुशल-मंगल पूछा॥ ३॥

इस प्रकार कुशल-प्रश्न करके सुखदायी आसनपर बैठे हुए शान्तचित्तवाले व्यासपुत्र शुकदेवजीसे महाराज जनकने पूछा—हे महाभाग! मेरे यहाँ आप निःस्पृहका आगमन किस कारण हुआ? हे मुनिश्रेष्ठ! उस प्रयोजन को बताइये?॥ ४-५॥

शुकदेवजी बोले—महाराज! मेरे पिता व्यासजीने मुझसे कहा कि विवाह कर लो; क्योंकि सब आश्रमोंमें गृहस्थ-आश्रम ही श्रेष्ठ है। गुरुरूप पिताकी आज्ञाको बन्धनकारक मानकर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समझाया कि गृहस्थाश्रम बन्धन नहीं है, फिर भी मैंने उसे स्वीकार नहीं किया॥ ६-७॥

इस प्रकार मुझे संशययुक्त चित्तवाला समझकर मुनिश्रेष्ठ व्यासने तथ्ययुक्त वचन कहा—तुम मिथिला चले जाओ, खेद न करो। वहाँ राजर्षि जनक रहते हैं, वे याज्ञिक एवं जीवन्मुक्त राजा हैं। संसारमें विदेह नामसे विख्यात वे वहाँ निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं॥ ८-९॥

हे पुत्र! महाराज जनक राज्य करते हुए भी मायाके जालमें नहीं बँधते, तब हे परन्तप! तुम वनवासी होते हुए भी क्यों भयभीत हो रहे हो?॥ १०॥

उन नृपश्रेष्ठ विदेहको देखो और अपने मनमें उठते हुए मोहका त्याग करो। हे महाभाग! विवाह करो, अन्यथा जाकर उन राजासे ही पूछो। वे राजा तुम्हारे मनमें उत्पन्न सन्देहका समाधान कर देंगे। तत्पश्चात् हे पुत्र! उनकी बात सुनकर तुम शीघ्र ही मेरे पास चले आना॥ ११-१२॥

सम्प्राप्तोऽहं महाराज त्वत्पुरे च तदाज्ञया।
मोक्षकामोऽस्मि राजेन्द्र ब्रूहि कृत्यं ममानघ॥ १३

तपस्तीर्थव्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम्।
ज्ञानं वा वद राजेन्द्र मोक्षं प्रति च कारणम्॥ १४

जनक उवाच

शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत्।
उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासाय वै गुरौ॥ १५

अधीत्य वेदवेदान्तान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसेन्मुनिः॥ १६

न्यायवृत्तिस्तु सन्तोषी निराशी गतकल्मषः।
अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्शुचिः॥ १७

पुत्रं पौत्रं समासाद्य वानप्रस्थाश्रमे वसेत्।
तपसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यां पुत्रे निवेश्य च॥ १८

सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित्।
वसेत्तुर्याश्रमे श्रान्तः शुद्धे वैराग्यसम्भवे॥ १९

विरक्तस्याधिकारोऽस्ति संन्यासे नान्यथा क्वचित्।
वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम॥ २०

शुकाष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारा वेदबोधिताः।
चत्वारिंशद् गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः॥ २१

अष्टौ च मुक्तिकामस्य प्रोक्ताः शमदमादयः।
आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम्॥ २२

शुक उवाच

उत्पन्ने हृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसम्भवे।
अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा॥ २३

हे महाराज! मैं उन्हींके आदेशसे आपकी पुरीमें आया हूँ। हे राजेन्द्र! हे अनघ! मैं मोक्षका अभिलाषी हूँ, अतः जो कार्य मेरे लिये उचित हो, वह बताइये॥ १३॥

हे राजेन्द्र! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन और ज्ञान—इनमेंसे जो मोक्षका साक्षात् साधन हो, वह मुझे बताइये॥ १४॥

जनकजी बोले—मोक्षमार्गावलम्बी विप्रको जो करना चाहिये, उसे सुनिये। उपनयनसंस्कारके बाद सर्वप्रथम वेदशास्त्रका अध्ययन करनेहेतु गुरुके सांनिध्यमें रहना चाहिये। वहाँ वेद-वेदान्तोंका अध्ययन करके दीक्षान्त गुरुदक्षिणा देकर वापस लौटे मुनिको विवाह करके पत्नीके साथ गृहस्थीमें रहना चाहिये। [गृहस्थाश्रममें रहते हुए] न्यायोपार्जित धनका अर्जन करे, सर्वदा सन्तुष्ट रहे और किसीसे कोई आशा न रखे। पापोंसे मुक्त होकर अग्निहोत्र आदि कर्म करते हुए सत्यवचन बोले और [मन, वचन, कर्मसे सदा] पवित्र रहे। पुत्र-पौत्र हो जानेपर [समयानुसार] वानप्रस्थ-आश्रममें रहे। वहाँ तपश्चर्याद्वारा [काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य—इन] छहों शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपनी स्त्रीरक्षाका भार पुत्रको सौंप देनेके पश्चात् वह धर्मात्मा सब अग्नियोंका अपनेमें न्यायपूर्वक आधान कर ले और सांसारिक विषयोंके भोगसे शान्ति मिल जानेके बाद हृदयमें विशुद्ध वैराग्य उत्पन्न होनेपर चौथे आश्रमका आश्रय ले ले। विरक्तको ही संन्यास लेनेका अधिकार है, अन्य किसीको नहीं—यह वेदवाक्य सर्वथा सत्य है, असत्य नहीं—ऐसा मेरा मानना है॥ १५—२०॥

हे शुकदेवजी! वेदोंमें कुल अड़तालीस संस्कार कहे गये हैं। उनमें गृहस्थके लिये चालीस संस्कार महात्माओंने बताये हैं। मुमुक्षुके लिये शम, दम आदि आठ संस्कार कहे गये हैं। एक आश्रमसे ही [क्रमशः] दूसरे आश्रममें जाना चाहिये, ऐसा शिष्टजनोंका आदेश है॥ २१-२२॥

शुकदेवजी बोले—चित्तमें वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो जानेपर अवश्य ही गृहस्थादि आश्रमोंमें रहना चाहिये अथवा वनोंमें॥ २३॥

जनक उवाच

इन्द्रियाणि बलिष्ठानि न नियुक्तानि मानद।
अपक्वस्य प्रकुर्वन्ति विकारांस्ताननेकशः॥ २४

भोजनेच्छां सुखेच्छां च शय्येच्छामात्मजस्य च।
यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते॥ २५

दुर्जरं वासनाजालं न शान्तिमुपयाति वै।
अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत्॥ २६

ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः।
परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः॥ २७

यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति।
शनैः शनैः फलं याति सुखेन पदगामिनी॥ २८

विहङ्गस्तरसा याति विघ्नशङ्कामुदस्य वै।
श्रान्तो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका॥ २९

मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः।
अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानुक्रमेण च॥ ३०

गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शान्तः सुमतिरात्मवान्।
न च हृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत्॥ ३१

विहतं कर्म कुर्वाणस्त्यजंश्चिन्तान्वितं च यत्।
आत्मलाभेन सन्तुष्टो मुच्यते नात्र संशयः॥ ३२

पश्याहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथानघ।
विचरामि यथाकामं न मे किञ्चित्प्रजायते॥ ३३

जनकजी बोले—हे मानद! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं, वे वशमें नहीं रहतीं। वे अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं॥ २४॥

यदि मनुष्यके मनमें भोजनकी, शयनकी, सुखकी और पुत्रकी इच्छा बनी रहे तो वह संन्यासी होकर भी इन विकारोंके उपस्थित होनेपर क्या कर पायेगा?॥ २५॥

वासनाओंका जाल बड़ा ही कठिन होता है, वह शीघ्र नहीं मिटता। इसलिये उसकी शान्तिके लिये मनुष्यको क्रमसे उसका त्याग करना चाहिये॥ २६॥

ऊँचे स्थानपर सोनेवाला मनुष्य ही नीचे गिरता है, नीचे सोनेवाला कभी नहीं गिरता। यदि संन्यास-ग्रहण कर लेनेपर भ्रष्ट हो जाय तो पुनः वह कोई दूसरा मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता॥ २७॥

जिस प्रकार चींटी वृक्षकी जड़से चढ़कर शाखापर चढ़ जाती है और वहाँसे फिर धीरे-धीरे सुखपूर्वक पैरोंसे चलकर फलतक पहुँच जाती है। विघ्न-शंकाके भयसे कोई पक्षी बड़ी तीव्र गतिसे आसमानमें उड़ता है और [परिणामतः] थक जाता है, किंतु चींटी सुखपूर्वक विश्राम ले-लेकर [अपने अभीष्ट स्थानपर] पहुँच जाती है॥ २८-२९॥

मन अत्यन्त प्रबल है; यह अजितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा सर्वथा अजेय है। इसलिये आश्रमोंके अनुक्रमसे ही इसे क्रमशः जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ३०॥

गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी जो शान्त, बुद्धिमान् एवं आत्मज्ञानी होता है, वह न तो प्रसन्न होता है और न खेद करता है। वह हानि-लाभमें समान भाव रखता है॥ ३१॥

जो पुरुष शास्त्रप्रतिपादित कर्म करता हुआ, सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रहता हुआ आत्मचिन्तनसे सन्तुष्ट रहता है; वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है॥ ३२॥

हे अनघ! देखिये, मैं राजकार्य करता हुआ भी जीवन्मुक्त हूँ; मैं अपने इच्छानुसार सब काम करता हूँ, किंतु मुझे शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता॥ ३३॥

भुञ्जानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः।
भविष्यामि यथाहं त्वं तथा मुक्तो भवानघ॥ ३४

कथ्यते खलु यद्दृश्यमदृश्यं बध्यते कुतः।
दृश्यानि पञ्चभूतानि गुणास्तेषां तथा पुनः॥ ३५

आत्मा गम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन।
स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारो निरञ्जनः॥ ३६

मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज।
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम्॥ ३७

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥ ३८

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परन्तप।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥ ३९

शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा न वै बध्येत कर्हिचित्।
बन्धमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यति॥ ४०

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः।
एकात्मत्वे कथं भेदः सम्भवेद् द्वैतदर्शनात्॥ ४१

जीवो ब्रह्म सदैवाहं नात्र कार्या विचारणा।
भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते॥ ४२

अविद्येयं महाभाग विद्या चैतन्निवर्तनम्।
विद्याविद्ये च विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः॥ ४३

विनातपं हि छायाया ज्ञायते च कथं सुखम्।
अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्यां च वेत्ति वै॥ ४४

जिस प्रकार मैं अनेक भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेक कार्योंको करता हुआ भी अनासक्त हूँ, उसी प्रकार हे अनघ! आप भी मुक्त हो जाइये॥ ३४॥

ऐसा कहा भी जाता है कि जो यह दृश्य जगत् दिखायी देता है, उसके द्वारा अदृश्य आत्मा कैसे बन्धनमें आ सकता है? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—ये पंचमहाभूत और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—ये उनके गुण दृश्य कहलाते हैं॥ ३५॥

आत्मा अनुमानगम्य है और कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता। ऐसी स्थितिमें हे ब्रह्मन्! वह निरंजन एवं निर्विकार आत्मा भला बन्धनमें कैसे पड़ सकता है? हे द्विज! मन ही महान् सुख-दुःखका कारण है, इसीके निर्मल होनेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है॥ ३६-३७॥

सभी तीर्थोंमें घूमते हुए वहाँ बार-बार स्नान करके भी यदि मन निर्मल नहीं हुआ तो वह सब व्यर्थ हो जाता है। हे परन्तप! बन्धन तथा मोक्षका कारण न यह देह है, न जीवात्मा है और न ये इन्द्रियाँ ही हैं, अपितु मन ही मनुष्योंके बन्धन एवं मुक्तिका कारण है॥ ३८-३९॥

आत्मा तो सदा ही शुद्ध तथा मुक्त है, वह कभी बँधता नहीं है। अतः बन्धन और मोक्ष तो मनके भीतर हैं, मनकी शान्तिसे ही शान्ति है॥ ४०॥

शत्रुता, मित्रता या उदासीनताके सभी भेदभाव भी मनमें ही रहते हैं। इसलिये एकात्मभाव होनेपर यह भेदभाव नहीं रहता; यह तो द्वैतभावसे ही उत्पन्न होता है॥ ४१॥

'मैं जीव सदा ही ब्रह्म हूँ'—इस विषयमें और विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। भेदबुद्धि तो संसारमें आसक्त रहनेपर ही होती है॥ ४२॥

हे महाभाग! बन्धनका मुख्य कारण अविद्या ही है। इस अविद्याको दूर करनेवाली विद्या है। इसलिये ज्ञानी पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा विद्या तथा अविद्याका अनुसन्धानपूर्वक अनुशीलन किया करें॥ ४३॥

धूपके बिना छायाके सुखका ज्ञान कैसे हो सकता है, उसी प्रकार अविद्याके बिना विद्याका ज्ञान कैसे किया जा सकता है॥ ४४॥

गुणा गुणेषु वर्तन्ते भूतानि च तथैव च।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु को दोषस्तत्र चात्मनः॥ ४५

मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृता वेदेषु सर्वशः।
अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ॥ ४६

धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः।
अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम्॥ ४७

शुक उवाच

सन्देहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित्।
भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप॥ ४८

वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा।
कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते॥ ४९

प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप।
पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणं चामिषस्य च॥ ५०

सौत्रामणौ तथा प्रोक्तः प्रत्यक्षेण सुराग्रहः।
द्यूतक्रीडा तथा प्रोक्ता व्रतानि विविधानि च॥ ५१

श्रूयते स्म पुरा ह्यासीच्छशबिन्दुर्नृपोत्तमः।
यज्वा धर्मपरो नित्यं वदान्यः सत्यसागरः॥ ५२

गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता चोत्पथगामिनाम्।
यज्ञाश्च विहितास्तेन बहवो भूरिदक्षिणाः॥ ५३

चर्मणां पर्वतो जातो विन्ध्याचलसमः पुनः।
मेघाम्बुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती शुभा॥ ५४

सोऽपि राजा दिवं यातः कीर्तिरस्याचला भुवि।
एवं धर्मेषु वेदेषु न मे बुद्धिः प्रवर्तते॥ ५५

स्त्रीसङ्गेन सदा भोगे सुखमाप्नोति मानवः।
अलाभे दुःखमत्यन्तं जीवन्मुक्तः कथं भवेत्॥ ५६

गुणोंमें गुण, पंचभूतोंमें पंचभूत तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें इन्द्रियाँ स्वयं रमण करती हैं; इसमें आत्माका क्या दोष है?॥ ४५॥

हे पवित्रात्मन्! सबकी सुरक्षाके लिये वेदोंमें सब प्रकारसे मर्यादाकी व्यवस्था की गयी है। यदि ऐसा न होता तो नास्तिकोंकी भाँति सब धर्मोंका नाश हो जाता। धर्मके नष्ट हो जानेपर सब कुछ नष्ट हो जायगा और सब वर्णोंकी आचार-परम्पराका उल्लंघन हो जायगा। इसलिये वेदोपदिष्ट मार्गपर चलनेवालोंका कल्याण होता है॥ ४६-४७॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आपने जो बात कही उसे सुनकर भी मेरा सन्देह बना हुआ है; वह किसी प्रकार भी दूर नहीं होता॥ ४८॥

हे भूपते! वेदधर्मोंमें हिंसाका बाहुल्य है, उस हिंसामें अनेक प्रकारके अधर्म होते हैं। [ऐसी दशामें] वेदोक्त धर्म मुक्तिप्रद कैसे हो सकता है? हे राजन्! सोमरस-पान, पशुहिंसा और मांस-भक्षण तो स्पष्ट ही अनाचार है। सौत्रामणियज्ञमें तो प्रत्यक्षरूपसे सुराग्रहणका वर्णन किया गया है। इसी प्रकार द्यूतक्रीड़ा एवं अन्य अनेक प्रकारके व्रत बताये गये हैं॥ ४९—५१॥

सुना जाता है कि प्राचीन कालमें शशबिन्दु नामके एक श्रेष्ठ राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा, यज्ञपरायण, उदार एवं सत्यवादी थे। वे धर्मरूपी सेतुके रक्षक तथा कुमार्गगामी जनोंके नियन्ता थे। उन्होंने पुष्कल दक्षिणावाले अनेक यज्ञ सम्पादित किये थे॥ ५२-५३॥

[उन यज्ञोंमें] पशुओंके चर्मसे विन्ध्यपर्वतके समान ऊँचा पर्वत-सा बन गया। मेघोंके जल बरसानेसे चर्मण्वती नामकी शुभ नदी बह चली॥ ५४॥

वे राजा भी दिवंगत हो गये, किंतु उनकी कीर्ति भूमण्डलपर अचल हो गयी। जब इस प्रकारके धर्मोंका वर्णन वेदमें है, तब हे राजन्! मेरी श्रद्धाबुद्धि उनमें नहीं है॥ ५५॥

स्त्रीके साथ भोगमें पुरुष सुख प्राप्त करता है और उसके न मिलनेपर वह बहुत दुःखी होता है तो ऐसी दशामें भला वह जीवन्मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ ५६॥

जनक उवाच

हिंसा यज्ञेषु प्रत्यक्षा साहिंसा परिकीर्तिता।
उपाधियोगतो हिंसा नान्यथेति विनिर्णयः॥ ५७

यथा चेन्धनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते।
तद्वियोगात्तथा तस्मिन्निर्धूमत्वं विभाति वै॥ ५८

अहिंसां च तथा विद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तम।
रागिणां सापि हिंसैव निःस्पृहाणां न सा मता॥ ५९

अरागेण च यत्कर्म तथाहङ्कारवर्जितम्।
अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६०

गृहस्थानां तु हिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम।
अरागेण च यत्कर्म तथाहंकारवर्जितम्॥ ६१

साहिंसैव महाभाग मुमुक्षूणां जितात्मनाम्॥ ६२

जनकजी बोले—यज्ञोंमें जो हिंसा दिखायी देती है, वह वास्तवमें अहिंसा ही कही गयी है; क्योंकि जो हिंसा उपाधियोगसे होती है वही हिंसा कहलाती है, अन्यथा नहीं—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है॥ ५७॥

जिस प्रकार [गीली] लकड़ीके संयोगसे अग्निसे धुआँ निकलता है, उसके अभावमें उस अग्निमें धुँआ नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार हे मुनिवर! वेदोक्त हिंसाको भी आप अहिंसा ही समझिये। रागीजनोंद्वारा की गयी हिंसा ही हिंसा है, किंतु अनासक्त जनोंके लिये वह हिंसा नहीं कही गयी है॥ ५८-५९॥

जो कर्म रागरहित तथा अहंकाररहित होकर किया जाता हो, उस कर्मको वैदिक विद्वान् मनीषीजन न किये हुएके समान ही कहते हैं॥ ६०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! रागी गृहस्थोंके द्वारा यज्ञमें जो हिंसा होती है, वही हिंसा है। हे महाभाग! जो कर्म रागरहित तथा अहंकारशून्य होकर किया जाता है, वह जितात्मा मुमुक्षुजनोंके लिये अहिंसा ही है॥ ६१-६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकाय जनकोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शुकदेवजीका व्यासजीके आश्रममें वापस आना, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना तथा परम सिद्धिकी प्राप्ति करना

शुक उवाच

सन्देहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम।
मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत्॥ १

शास्त्रज्ञानं च सम्प्राप्य नित्यानित्यविचारणम्।
त्यजते न मनो मोहं स कथं मुच्यते नरः॥ २

अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शास्त्राद् बोधो हि न क्षमः।
यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया॥ ३

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः।
स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा॥ ४

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! मेरे हृदयमें यह शंका हो रही है कि मायामें लिप्त रहते हुए कोई मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सकता है? शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करके नित्यानित्यका विचार करनेपर भी चित्तसे मोह नहीं दूर होता। तब भला वह मनुष्य मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ १-२॥

मनुष्यके मनमें स्थित मोहको दूर करनेके लिये केवल शास्त्रबोध ही समर्थ नहीं हो सकता, जैसे केवल दीप जलानेकी बात करनेसे अन्धकार दूर नहीं होता। अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे कभी किसीसे द्वेष-भाव न रखें, परंतु हे नृपश्रेष्ठ! गृहस्थसे वह कैसे सम्भव है?॥ ३-४॥

वित्तैषणा न ते शान्ता तथा राज्यसुखैषणा।
जयैषणा च सङ्ग्रामे जीवन्मुक्तः कथं भवेः॥ ५

चौरेषु चौरबुद्धिस्तु साधुबुद्धिस्तु तापसे।
स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वं कथं नृप॥ ६

कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान्वेत्सि शुभाशुभान्।
शुभेषु रमते चित्तं नाशुभेषु तथा नृप॥ ७

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तव राजन् भवन्ति हि।
अवस्थास्तु यथाकालं तुरीया तु कथं नृप॥ ८

पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम।
स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे॥ ९

मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा।
मालायां च तथा सर्पे समदृक् क्व नृपोत्तम॥ १०

विमुक्तस्तु भवेद्राजन् समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
एकात्मबुद्धिः सर्वत्र हितकृत्सर्वजन्तुषु॥ ११

न मेऽद्य रमते चित्तं गृहदारादिषु क्वचित्।
एकाकी निःस्पृहोऽत्यर्थं चरेयमिति मे मतिः॥ १२

निःसङ्गो निर्ममः शान्तः पत्रमूलफलाशनः।
मृगवद्विचरिष्यामि निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ १३

किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया।
विरागमनसः कामं गुणातीतस्य पार्थिव॥ १४

चिन्त्यसे विविधाकारं नानारागसमाकुलम्।
दम्भोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे॥ १५

कदाचिच्छत्रुजा चिन्ता धनजा च कदाचन।
कदाचित्सैन्यजा चिन्ता निश्चिन्तोऽसि कदा नृप॥ १६

अभी भी आपकी धनप्राप्तिकी कामना, राज्यसुख तथा युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा शान्त नहीं हुई है, तब आप जीवन्मुक्त कैसे हो सकते हैं?॥ ५॥

अभी भी चोरोंके प्रति चौरबुद्धि तथा तपस्वीके प्रति साधुबुद्धि आपकी है ही। अपने-परायेका भेदभाव भी अभी आपमें है, तो फिर हे राजन्! आप विदेह कैसे?॥ ६॥

अभी आप कटु, तिक्त, कसैले एवं खट्टे रसोंका तथा भले-बुरेका ज्ञान रखते ही हैं। हे राजन्! आपका चित्त शुभ कर्मोंमें रमता है, अशुभ कर्मोंमें नहीं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये अवस्थाएँ अभी आपको समयानुसार होती ही हैं; तब भला आपको तुरीयावस्था कैसे प्राप्त होती होगी?॥ ७-८॥

हे राजन्! घोड़े, रथ, हाथी तथा पैदल सैनिक—ये सब मेरे अधीन हैं और मैं इन सबका स्वामी हूँ—ऐसा आप अपनेको मानते हैं या नहीं? आप मधुर भोजनको प्रसन्नतापूर्वक अथवा बेमनसे खाते ही होंगे। हे नृपश्रेष्ठ! आप माला और सर्पमें क्या समान दृष्टिवाले हैं?॥ ९-१०॥

हे राजन्! विमुक्त पुरुष तो वह कहलाता है, जो मिट्टीके ढेले और स्वर्णको समान समझता हो, सब जीवोंमें एकात्मबुद्धि रखता हो तथा जीवमात्रका उपकार करता हो॥ ११॥

मेरा मन घर-स्त्री आदिमें कभी नहीं लगता। इसलिये अकेले ही निःस्पृह भावसे मैं सदा विचरण करता रहूँ—यही मेरा विचार है॥ १२॥

निःसंग, ममतारहित और शान्त होकर केवल पत्र, मूल, फल इत्यादि ग्रहण करता हुआ मैं निर्द्वन्द्व एवं अपरिग्रही होकर मृगकी भाँति स्वच्छन्द विचरण करूँगा॥ १३॥

हे पार्थिव! गृह, धन तथा रूपवती स्त्रीसे मुझ विरक्तचित्त और गुणातीतका क्या प्रयोजन है?॥ १४॥

आप अनेक प्रकारकी राग-द्वेषयुक्त बातें सोचते हैं, फिर भी 'मैं विमुक्त हूँ'—ऐसा आप कहते हैं। यह सब मुझे तो केवल आपका दम्भ ही जान पड़ता है। आपको कभी शत्रुकी, कभी धनकी तथा कभी सेनाकी चिन्ता रहती ही है, तब हे राजन्! आप निश्चिन्त कहाँ?॥ १५-१६॥

वैखानसा ये मुनयो मिताहारा जितव्रताः।
तेऽपि मुह्यन्ति संसारे जानन्तोऽपि ह्यसत्यताम्॥ १७

तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते।
कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन॥ १८

विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धस्तु दिवाकरः।
लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम्॥ १९

तव वंशोद्भवा ये ये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः।
विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते॥ २०

निमिनामाभवद्राजा पूर्वं तव कुले नृप।
यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठं स्वगुरुं मुनिम्॥ २१

निमन्त्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः।
निमन्त्रितोऽस्मि यज्ञार्थं देवेन्द्रेणाधुना किल॥ २२

कृत्वा तस्य मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै।
तावत्कुरुष्व राजेन्द्र सम्भारं तु शनैः शनैः॥ २३

इत्युक्त्वा निर्ययौ सोऽथ महेन्द्रयजने मुनिः।
निमिरन्यं गुरुं कृत्वा चकार मखमुत्तमम्॥ २४

तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः।
शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुरुलोपक॥ २५

राजापि तं शशापाथ तवापि च पतत्वयम्।
अन्योन्यशापात्पतितौ तावेव च मया श्रुतम्॥ २६

विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम्।
विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम॥ २७

जनक उवाच

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चिदिदं मतम्।
तथापि शृणु विप्रेन्द्र गुरुर्मम सुपूजितः॥ २८

स्वल्पाहारी, अटल व्रतवाले जो वैखानस मुनि हैं, वे इस संसारकी अनित्यताको जानते हुए भी इसमें आसक्त हो जाते हैं॥ १७॥

हे राजन्! आपके वंशमें उत्पन्न सभी राजाओंका नाम विदेह—यह हो जाता है, इसमें भी आप धोखा समझिये, दूसरा कुछ नहीं॥ १८॥

जिस प्रकार किसी मूर्खका नाम विद्याधर, जन्मान्धका नाम दिवाकर तथा सतत दरिद्री मनुष्यका नाम लक्ष्मीधर रखना निरर्थक है, उसी प्रकार पूर्वकालमें आपके वंशमें उत्पन्न जिन-जिन राजाओंको मैंने सुना है, वे नामसे ही विदेह प्रसिद्ध हुए हैं कर्मसे नहीं॥ १९-२०॥

हे नृप! आपके कुलमें पहले निमि नामके राजा हो चुके हैं। उन राजर्षिने एक बार अपने गुरु वसिष्ठमुनिको यज्ञके लिये निमन्त्रित किया। उस समय वसिष्ठजीने उनसे कहा कि आपसे पहले इन्द्रने मुझे यज्ञके लिये आमन्त्रित कर रखा है। इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न कराकर मैं आपका भी यज्ञ पूर्ण करूँगा। अतः हे राजेन्द्र! तब तक आप धीरे-धीरे यज्ञ-सामग्री एकत्र कराइये॥ २१—२३॥

ऐसा कहकर वसिष्ठमुनि इन्द्रका यज्ञ करानेके लिये चले गये और महाराज निमिने किसी दूसरेको आचार्य बनाकर अपना उत्तम यज्ञ सम्पन्न कर लिया॥ २४॥

यह सुनकर वसिष्ठजी राजापर अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्हें शाप देते हुए बोले—'हे गुरुका परित्याग करनेवाले! तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाय'॥ २५॥

यह सुनकर महाराज निमिने भी शाप दिया कि आपका भी शरीर नष्ट हो जाय। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरेके शापसे नष्ट हो गये—ऐसा मैंने सुना है॥ २६॥

हे राजेन्द्र! विदेह होकर भी राजाने अपने गुरुको स्वयं शाप क्यों दे डाला! हे नृपश्रेष्ठ! यह तो मेरे मनमें परिहास-जैसा प्रतीत हो रहा है॥ २७॥

जनकजी बोले—हे विप्रवर! आपने ठीक ही कहा है; इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है—ऐसा मैं मानता हूँ। फिर भी आप मेरी बात सुनें। हे विप्रेन्द्र!

पितुः सङ्गं परित्यज्य त्वं वनं गन्तुमिच्छसि।
मृगैः सह सुसम्बन्धो भविता ते न संशयः॥ २९

महाभूतानि सर्वत्र निःसङ्गः क्व भविष्यसि।
आहारार्थं सदा चिन्ता निश्चिन्तः स्याः कथं मुने॥ ३०

दण्डाजिनकृता चिन्ता यथा तव वनेऽपि च।
तथैव राज्यचिन्ता मे चिन्तयानस्य वा न वा॥ ३१

विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः।
न मे विकल्पसन्देहो निर्विकल्पोऽस्मि सर्वथा॥ ३२

सुखं स्वपिमि विप्राहं सुखं भुञ्जामि सर्वथा।
न बद्धोऽस्मीति बुद्ध्याहं सर्वदैव सुखी मुने॥ ३३

त्वं तु दुःखी सदैवासि बद्धोऽहमिति शङ्कया।
इति शङ्कां परित्यज्य सुखी भव समाहितः॥ ३४

देहोऽयं मम बन्धोऽयं न ममेति च मुक्तता।
तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः॥ ३५

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शुकः प्रीतमनाभवत्।
आपृच्छ्य तं जगामाशु व्यासस्याश्रममुत्तमम्॥ ३६

आगच्छन्तं सुतं दृष्ट्वा व्यासोऽपि सुखमाप्तवान्।
आलिङ्ग्याघ्राय मूर्धानं पप्रच्छ कुशलं पुनः॥ ३७

स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ३८

जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः।
स निर्वृतिं परां प्राप्य पितुराश्रमसंस्थितः॥ ३९

गुरु व्यासजी मेरे परम पूज्य हैं। उन अपने पिताका साथ त्याग करके आप वनमें जाना चाहते हैं। वहाँ भी तो मृग आदि पशुओंके साथ आपका स्नेह-सम्बन्ध रहेगा ही; इसमें सन्देह नहीं है॥ २८-२९॥

पृथ्वी, जल आदि महाभूत तो सर्वत्र ही विद्यमान हैं। तब आप निःसंग कैसे हो पायेंगे? और फिर हे मुने! भोजन आदिकी भी चिन्ता रहेगी ही, तो आप निश्चिन्त कैसे रहेंगे?॥ ३०॥

जिस प्रकार आपको वनमें दण्ड और मृगचर्मकी चिन्ता बनी रहेगी, उसी प्रकार मुझ विचारशील राजाको भी राज्यसम्बन्धी चिन्ता तो होगी ही॥ ३१॥

आप ही भ्रममें पड़कर यहाँतक दूर देशमें आये हैं। मुझे किसी प्रकारका विकल्परूपी सन्देह नहीं है; क्योंकि मैं तो सर्वथा निर्विकल्प हूँ॥ ३२॥

हे विप्र! मैं सुखसे भोजन करता हूँ और सुखपूर्वक शयन करता हूँ। हे मुने! 'मैं बद्ध नहीं हूँ' इस भावनासे मैं सर्वदा सुखी रहता हूँ। [इसके विपरीत] 'मैं बद्ध हूँ'—इस शंकासे आप सर्वदा दुःखी ही रहते हैं, अतः आप इस शंकाको छोड़कर सदा सुखी एवं स्वस्थ हो जाइये॥ ३३-३४॥

यह शरीर मेरा है—यही बन्धनका कारण है; यह मेरा नहीं है—ऐसा निश्चय ही मुक्ति है। यह गृह, सम्पत्ति, राज्य मेरा नहीं है—ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है॥ ३५॥

सूतजी बोले—महाराज जनककी बात सुनकर शुकदेवजी हर्षित हुए और उनसे आज्ञा लेकर व्यासजीके उत्तम आश्रमके लिये चल पड़े॥ ३६॥

व्यासजीने अपने ज्ञानी पुत्रको आते देखकर सुख प्राप्त किया। उन्होंने शुकदेवजीको हृदयसे लगाकर तथा उनका सिर सूँघकर उनकी कुशलता पूछी॥ ३७॥

सब शास्त्रोंमें कुशल एवं वेदाध्ययनमें तत्पर श्रीशुक-देवजी अपने पिताके साथ उस रमणीय आश्रममें सावधान होकर रहने लगे। राज्य करते हुए महात्मा जनककी वह विदेहावस्था देखकर शुकदेवजी परम शान्तिको प्राप्तकर अपने पिताके आश्रममें ही स्थित हो गये॥ ३८-३९॥

पितॄणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुन्दरी।
शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि॥ ४०

स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि।
कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा॥ ४१

कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्य व्यासपुत्रः प्रतापवान्।
ददौ विभ्राजपुत्राय त्वणुहाय महात्मने॥ ४२

अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्।
ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः॥ ४३

कालेन कियता तत्र नारदस्योपदेशतः।
ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम्॥ ४४

पुत्रे राज्यं निधायाथ गतो बदरिकाश्रमम्।
मायाबीजोपदेशेन तस्य ज्ञानं निरर्गलम्॥ ४५

नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो विमुक्तिदम्।
कैलासशिखरे रम्ये त्यक्त्वा सङ्गं पितुः शुकः॥ ४६

ध्यानमास्थाय विपुलं स्थितः सङ्गपराङ्मुखः।
उत्पपात गिरेः शृङ्गात्सिद्धिं च परमां गतः॥ ४७

आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः।
गिरेः शृङ्गं द्विधा जातं शुकस्योत्पतने तदा॥ ४८

उत्पाता बहवो जाताः शुकश्चाकाशगोऽभवत्।
अन्तरिक्षे यथा वायुः स्तूयमानः सुरर्षिभिः॥ ४९

तेजसातिविराजन्वै द्वितीय इव भास्करः।
व्यासस्तु विरहाक्रान्तः क्रन्दन्पुत्रेति चासकृत्॥ ५०

गिरेः शृङ्गे गतस्तत्र शुको यत्र स्थितोऽभवत्।
क्रन्दमानं तदा दीनं व्यासं मत्वा श्रमाकुलम्॥ ५१

सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्दमदात्तदा।
तत्राद्यापि गिरेः शृङ्गे प्रतिशब्दः स्फुटोऽभवत्॥ ५२

योगमार्गमें स्थित रहते हुए भी शुकदेवजीने पितरोंकी पीवरी नामकी सौभाग्यवती सुन्दर कन्याको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। उन्होंने उससे कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उन प्रतापी व्याससुत शुकदेवजीने कीर्ति नामकी एक कन्या उत्पन्न करके उस कन्याका विवाह विभ्राजके पुत्र महात्मा अणुहके साथ कर दिया॥ ४०—४२॥

शुकदेवजीकी कन्यासे उत्पन्न अणुहके पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुए जो बड़े प्रतापी, ब्रह्मज्ञानी एवं पृथ्वीके रक्षक थे। वे कुछ समयके बाद देवर्षि नारदके उपदेशसे और परमश्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान पाकर योगमार्गका आश्रय लेकर राज्यका भार अपने पुत्रको सौंपकर बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ नारदजीके कृपाप्रसादसे प्राप्त मायाबीजके उपदेशसे उन्हें निर्बाध तथा तत्क्षण मुक्तिदायक ज्ञान उत्पन्न हुआ॥ ४३—४५½॥

उधर शुकदेवजी भी अपने पिताका साथ त्यागकर कैलासके सुरम्य शिखरपर चले गये और निःसंग भावसे अविचल ध्यान लगाकर स्थित हो गये। कुछ ही दिनोंमें उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी और वे पर्वतके शिखरसे उड़ गये तथा महातेजस्वी वे शुकदेवजी आकाशमें जाकर सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। तब शुकदेवजीके उड़ते ही पर्वत-शिखर दो भागोंमें विभाजित हो गया। शुकदेवजीके आकाशमें जाते ही अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषियोंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए वे शुकदेवजी अन्तरिक्षमें वायुकी भाँति स्थित हो गये। वे अपने तेजसे दूसरे सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहे थे॥ ४६—४९½॥

इसी बीच पुत्रके वियोगसे व्यग्र होकर व्यासजी बार-बार 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहते हुए उस पर्वतकी चोटीपर पहुँचे, जहाँ शुकदेवजी रहते थे। थके हुए व्यासजीको दीन भावसे करुण क्रन्दन करते हुए देखकर सभी जीवोंमें साक्षीरूपसे विद्यमान परमात्माने प्रतिध्वनिके रूपमें उत्तर दिया। आज भी उस पर्वतके शृंगपर वैसी ही प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है॥ ५०—५२॥

रुदन्तं तं समालक्ष्य व्यासं शोकसमन्वितम्।
पुत्र पुत्रेति भाषन्तं विरहेण परिप्लुतम्॥ ५३
शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत्।
व्यास शोकं मा कुरु त्वं पुत्रस्ते योगवित्तमः॥ ५४
परमां गतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः।
तस्य शोको न कर्तव्यस्त्वयाशोकं विजानता॥ ५५
कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चानघ।

व्यास उवाच

न शोको याति देवेश किं करोमि जगत्पते॥ ५६
अतृप्ते लोचने मेऽद्य पुत्रदर्शनलालसे।

महादेव उवाच

छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनोहराम्॥ ५७
तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल शोकं जहि परन्तप।

सूत उवाच

तदा ददर्श व्यासस्तु छायां पुत्रस्य सुप्रभाम्॥ ५८
दत्त्वा वरं हरस्तस्मै तत्रैवान्तरधीयत।
अन्तर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात्॥ ५९
शुकस्य विरहेणापि तप्तः परमदुःखितः॥ ६०

अपने प्रिय पुत्र शुकदेवके विरहमें 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर विलाप करते हुए व्यासजीको शोक-सन्तप्त देखकर साक्षात् शंकरजी वहाँ आकर उन्हें सान्त्वना देने लगे—'हे व्यासजी! आप शोक मत कीजिये; आपके पुत्र श्रेष्ठ योगवेत्ता हैं। उन्होंने अकृतात्माओंके लिये भी दुर्लभ परमगति प्राप्त कर ली है। अतः ब्रह्मज्ञान रखनेवाले आपको उन [ब्रह्मज्ञानी] शुकदेवके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; हे पवित्रात्मन्! शुकदेवके समान पुत्रके द्वारा आपकी महान् कीर्ति हुई है'॥ ५३—५५½॥

व्यासजी बोले—'हे देवेश! हे जगत्पते! मैं क्या करूँ, शोक दूर नहीं हो रहा है; पुत्र-दर्शनकी लालसावाले मेरे नेत्र अतृप्त हैं'॥ ५६½॥

महादेवजी बोले—'अब आप अपने पुत्रकी रमणीय छाया अपने पास सर्वदा विद्यमान देखेंगे। हे मुनिवर! हे परन्तप! उस छायाको देखकर आप अपना शोक दूर कीजिये'॥ ५७½॥

सूतजी बोले—तदनन्तर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवकी ओजस्विनी छाया देखी। उन्हें वरदान देकर शंकरजी वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीके अन्तर्हित हो जानेपर व्यासजी भी अपने आश्रमको लौट आये। शुकदेवजीके वियोगसे सन्तप्त होकर वे अत्यन्त दुःखी रहने लगे॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकस्य विवाहादिकार्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~~

अथ विंशोऽध्यायः

सत्यवतीका राजा शन्तनुसे विवाह तथा दो पुत्रोंका जन्म, राजा शन्तनुकी मृत्यु, चित्रांगदका राजा बनना तथा उसकी मृत्यु, विचित्रवीर्यका काशिराजकी कन्याओंसे विवाह और क्षयरोगसे मृत्यु, व्यासजीद्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः।
किं चकार ततो व्यासस्तन्नो ब्रूहि सविस्तरम्॥ १

सूत उवाच

शिष्या व्यासस्य येऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः।
आज्ञामादाय ते सर्वे गताः पूर्वं महीतले॥ २

ऋषियोंने कहा—[हे सूतजी!] शुकदेवजीको जब परम सिद्धि प्राप्त हो गयी तब देवश्रेष्ठ व्यासजीने क्या किया? यह सब विस्तारपूर्वक हमसे कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—उस समय व्यासजीके जितने वेदपाठी शिष्य थे, वे सब व्यासजीकी आज्ञा पाकर पहले ही भूमण्डलमें इधर-उधर चले गये थे॥ २॥
~~~

असितो देवलश्चैव वैशम्पायन एव च।
जैमिनिश्च सुमन्तुश्च गताः सर्वे तपोधनाः॥ ३

तानेतान्वीक्ष्य पुत्रं च लोकान्तरितमप्युत।
व्यासः शोकसमाक्रान्तो गमनायाकरोन्मतिम्॥ ४

सस्मार मनसा व्यासस्तां निषादसुतां शुभाम्।
मातरं जाह्नवीतीरे मुक्तां शोकसमन्विताम्॥ ५

स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम्।
आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः॥ ६

द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क्व गता सा वरानना।
निषादास्तं समाचख्युर्दत्ता राज्ञे तु कन्यका॥ ७

दाशराजोऽपि सम्पूज्य व्यासं प्रीतिपुरःसरम्।
स्वागतेनाभिसत्कृत्य प्रोवाच विहिताञ्जलिः॥ ८

दाशराज उवाच

अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने।
देवानामपि दुर्दर्शं यज्जातं तव दर्शनम्॥ ९

यदर्थमागतोऽसि त्वं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम।
अपि दारा धनं पुत्रास्त्वदायत्तमिदं विभो॥ १०

सरस्वत्यास्तटे रम्ये चकाराश्रममण्डलम्।
व्यासस्तपःसमायुक्तस्तत्रैवास समाहितः॥ ११

सत्यवत्याः सुतौ जातौ शन्तनोरमितद्युतेः।
मत्वा तौ भ्रातरौ व्यासः सुखमाप वने स्थितः॥ १२

चित्राङ्गदः प्रथमजो रूपवाञ्छत्रुतापनः।
बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः॥ १३

विचित्रवीर्यनामासौ द्वितीयः समजायत।
सोऽपि सर्वगुणोपेतः शन्तनोः सुखवर्धनः॥ १४

असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु आदि सभी तपोधन मुनि चले गये थे। उन ऋषियोंको अन्यत्र तथा अपने पुत्र शुकदेवको अन्तरिक्षमें गया हुआ देखकर शोकाकुल व्यासजीने वहाँसे चले जानेका विचार किया॥ ३-४॥

उसी समय व्यासजीने मन-ही-मन निषादकन्या अपनी कल्याणकारिणी माताका स्मरण किया, जिन्हें उन्होंने शोकावस्थामें गंगाजीके तटपर ही छोड़ दिया था॥ ५॥

अपनी माता सत्यवतीका स्मरण करके उस श्रेष्ठ पर्वतको त्यागकर महातेजस्वी व्यासजी अपने जन्मस्थानपर चले आये॥ ६॥

इस प्रकार उन्होंने उस द्वीपपर जाकर लोगोंसे पूछा कि 'वे सुन्दर मुखवाली [मेरी माता] कहाँ चली गयीं?' तब निषादोंने बताया कि उस कन्याका तो निषादराजने राजा [शन्तनु]-से विवाह कर दिया। तत्पश्चात् निषादराजने व्यासजीका प्रेमपूर्वक पूजन एवं सत्कार करके हाथ जोड़कर कहा—॥ ७-८॥

दाशराज बोला—हे मुने! मेरा जन्म सफल हो गया और हमारा कुल पवित्र हो गया जो कि आज देवताओंके लिये दुर्लभ आपका दर्शन प्राप्त हुआ॥ ९॥

हे विप्रवर! आप जिस कामसे आये हैं, वह बताइये। हे विभो! धन, पुत्र, कलत्र आदि—यह सब आपके अधीन है॥ १०॥

[निषादराजके प्रार्थना करनेपर] व्यासजीने सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर अपना आश्रम बनाया और सावधान-चित्त हो वे पुनः तप करते हुए वहाँ रहने लगे॥ ११॥

अपूर्व तेजस्वी महाराज शन्तनुको सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंको अपना भाई मानकर वनवासी व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १२॥

उनमें राजाका पहला पुत्र चित्रांगद रूपवान्, शत्रुओंको कष्ट देनेवाला तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। शन्तनुके दूसरे पुत्रका नाम विचित्रवीर्य था। वह भी सर्वगुणसम्पन्न एवं शन्तनुके लिये सुखवर्द्धक हुआ॥ १३-१४॥

गाङ्गेयः प्रथमस्तस्य महावीरो बलाधिकः।
तथैव तौ सुतौ जातौ सत्यवत्यां महाबलौ॥ १५

शन्तनुस्तान्सुतान्वीक्ष्य सर्वलक्षणसंयुतान्।
अमंस्ताजय्यमात्मानं देवादीनां महामनाः॥ १६

अथ कालेन कियता शन्तनुः कालपर्ययात्।
तत्याज देहं धर्मात्मा देही जीर्णमिवाम्बरम्॥ १७

कालधर्मगते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि दानानि विविधानि च॥ १८

चित्राङ्गदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान्।
स्वयं न कृतवान् राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत्॥ १९

चित्राङ्गदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः।
बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः॥ २०

अथैकदा महाबाहुः सैन्येन महतावृतः।
प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान् रुरून्॥ २१

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम्।
उत्ततारान्तिकं भूमेर्विमानवरमास्थितः॥ २२

तत्राभूच्च महद्युद्धं तयोः सदृशवीर्ययोः।
कुरुक्षेत्रे महास्थाने त्रीणि वर्षाणि तापसाः॥ २३

इन्द्रलोकमवापाशु गन्धर्वेण हतो रणे।
भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदैहिकं तदा॥ २४

गाङ्गेयः कृतशोकस्तु मन्त्रिभिः परिवारितः।
विचित्रवीर्यनामानं राज्येशं च चकार ह॥ २५

मन्त्रिभिर्बोधिता पश्चाद् गुरुभिश्च महात्मभिः।
स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहतापि च॥ २६

इसके पूर्व उन राजा शन्तनुको गंगासे भीष्म नामक बलशाली एवं पराक्रमी पुत्र पैदा हुआ था। उसी प्रकार सत्यवतीसे दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५॥

उन सर्वलक्षणसम्पन्न तीनों पुत्रोंको देखकर महामना शन्तनु अपने आपको देवताओंसे अजेय समझने लगे थे॥ १६॥

कुछ समय बीतनेपर यथासमय धर्मात्मा शन्तनुने उसी प्रकार अपना शरीर त्याग दिया, जिस प्रकार कोई मनुष्य अपना पुराना वस्त्र छोड़ देता है। शन्तनुके कालके वशीभूत हो जानेपर भीष्मने विधिवत् उनके समस्त प्रेतकार्य किये और विविध प्रकारके दान दिये॥ १७-१८॥

तदनन्तर पराक्रमी भीष्मने चित्रांगदको राज्यसिंहासनपर बैठाया। उन्होंने स्वयं राज्य नहीं किया, इसी कारण उनका नाम देवव्रत हुआ॥ १९॥

सत्यवतीपुत्र चित्रांगद बलगर्वित, शत्रुसन्तापकर्ता, बलशाली, वीर तथा पवित्र थे॥ २०॥

महाबाहु चित्रांगद एक बार महान् सेनासे युक्त होकर आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ वध्य रुरुमृगोंको खोजते हुए वे विविध वन-प्रदेशोंमें घूम रहे थे। मार्गमें उन राजाको जाता हुआ देखकर चित्रांगद नामक एक गन्धर्व अपने सुन्दर विमानसे भूमिपर उनके समीप उतर पड़ा॥ २१-२२॥

सूतजी बोले—हे तपस्वियो! उस समय कुरुक्षेत्रके उस विशाल मैदान में तीन वर्षतक समान बलवाले उन दोनोंमें घमासान युद्ध होता रहा॥ २३॥

अन्तमें उस गन्धर्वके द्वारा राजा चित्रांगद युद्धमें मारे गये और उन्हें शीघ्र ही इन्द्रलोक प्राप्त हुआ। यह सुनकर भीष्मने उसी समय चित्रांगदका और्ध्वदैहिक संस्कार किया॥ २४॥

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने भीष्मको समझा-बुझाकर शोकरहित किया। उन्होंने छोटे भाई विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २५॥

मन्त्रियों, गुरुजनों एवं महात्माओंके समझानेके बाद शुभलक्षणा राजमाता सत्यवती अपने [ज्येष्ठ] पुत्रकी मृत्युसे शोकाकुल होती हुई भी अपने छोटे पुत्र

सत्यवत्यतिसन्तुष्टा बभूव वरवर्णिनी।
व्यासोऽपि भ्रातरं श्रुत्वा राजानं मुदितोऽभवत्॥ २७

यौवनं परमं प्राप्तः सत्यवत्याः सुतः शुभः।
चकार चिन्तां भीष्मोऽपि विवाहार्थं कनीयसः॥ २८

काशिराजसुतास्तिस्त्रः सर्वलक्षणसंयुताः।
तेन राज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्च स्वयंवरे॥ २९

राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः।
इच्छास्वयंवरार्थं वै पूज्यमानाः समागताः॥ ३०

तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै।
निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान्॥ ३१

स जित्वा पार्थिवान्सर्वांस्ताश्चादाय महारथः।
बाहुवीर्येण तेजस्वी ह्याससाद गजाह्वयम्॥ ३२

मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीवच्चिन्तयन्किल।
तिस्त्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः॥ ३३

सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः।
दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यपृच्छच्छुभं दिनम्॥ ३४

कृत्वा विवाहसम्भारं यदा वै भ्रातरं निजम्।
विचित्रवीर्यं धर्मिष्ठं विवाहयति ता यदा॥ ३५

तदा ज्येष्ठाप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम्।
लज्जमानासितापाङ्गी तिसृणां चारुलोचना॥ ३६

गङ्गापुत्र कुरुश्रेष्ठ धर्मज्ञ कुलदीपक।
मया स्वयंवरे शाल्वो वृतोऽस्ति मनसा नृपः॥ ३७

वृताहं तेन राज्ञा वै चित्ते प्रेमसमाकुले।
यथायोग्यं कुरुष्वाद्य कुलस्यास्य परन्तप॥ ३८

तेनाहं वृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः।
बलवानसि गाङ्गेय यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३९

सूत उवाच

एवमुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनन्दनः।
अपृच्छद् ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा॥ ४०

विचित्रवीर्यको राजसिंहासनपर बैठा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। व्यासजी भी अपने भ्राताके राजा होनेका समाचार पाकर प्रसन्न हुए॥ २६–२७॥

जब सत्यवतीके सुन्दर पुत्र विचित्रवीर्य पूर्ण युवा हुए तब भीष्म अपने कनिष्ठ भ्राताके विवाहकी चिन्ता करने लगे॥ २८॥

उन दिनों काशिराजकी तीन कन्याएँ थीं—जो सभी शुभलक्षणोंसे युक्त थीं; उन राजाने विवाहके लिये उनका स्वयंवर रचाया॥ २९॥

हजारों पूज्यमान राजा तथा राजकुमार आमन्त्रित होकर उस इच्छास्वयंवरमें उपस्थित हुए थे तथा पराक्रमी भीष्मने अकेले ही रथपर बैठकर सभी राजाओंको रौंदकर बलपूर्वक उन कन्याओंका हरण कर लिया। वे महारथी तथा तेजस्वी भीष्म अपने बाहुबलसे उन सभी राजाओंको जीतकर उन कन्याओंको लेकर हस्तिनापुर चले आये॥ ३०—३२॥

सुन्दर नेत्रोंवाली उन तीनों राजकुमारियोंमें माता, भगिनी एवं पुत्रीकी भावना रखते हुए भीष्म उन्हें ले आये और उन्हें सत्यवतीको सौंपकर शीघ्रतापूर्वक ज्योतिर्विदों तथा वेदके विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे विवाहका शुभ मुहूर्त पूछा॥ ३३—३४॥

विवाहकी तैयारी करके अपने छोटे भाई धर्मात्मा विचित्रवीर्यके साथ उन कन्याओंका विवाह करनेको जब भीष्म उद्यत हुए तब उन तीनोंमें सबसे बड़ी एवं सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याने गंगापुत्र भीष्मसे लज्जित होते हुए इस प्रकार प्रार्थना की। हे गंगापुत्र! हे कुरुश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! हे कुलदीपक! मैंने स्वयंवरमें मन-ही-मन राजा शाल्वका पतिरूपमें वरण कर लिया था। उन राजाने भी प्रेमपूर्वक हृदयसे मुझे अपनी पत्नी मान लिया था। हे परन्तप! अब आप इस कुलकी परम्पराके अनुसार जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। उन्होंने पहलेसे ही मुझे वरण कर लिया है। हे गांगेय! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा बलवान् हैं; आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये॥ ३५—३९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उस कन्याके कहनेपर कुरुनन्दन भीष्मजीने कुलवृद्धों, ब्राह्मणों, माता सत्यवती तथा मन्त्रियोंसे इस विषयमें परामर्श

सर्वेषां मतमाज्ञाय गाङ्गेयो धर्मवित्तमः।
गच्छेति कन्यकां प्राह यथारुचि वरानने॥ ४१

विसर्जिताथ सा तेन गता शाल्वनिकेतनम्।
उवाच तं वरारोहा राजानं मनसेप्सितम्॥ ४२

विनिर्मुक्तास्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः।
आगतास्मि महाराज गृहाणाद्य करं मम॥ ४३

धर्मपत्नी तवात्यन्तं भवामि नृपसत्तम।
चिन्तितोऽसि मया पूर्वं त्वयाहं नात्र संशयः॥ ४४

शाल्व उवाच

गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम।
रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्ये करं तव॥ ४५

परोच्छिष्टां च कः कन्यां गृह्णाति मतिमान्नरः।
अतोऽहं न ग्रहीष्यामि त्यक्तां भीष्मेण मातृवत्॥ ४६

रुदती विलपन्ती सा त्यक्ता तेन महात्मना।
पुनर्भीष्मं समागत्य रुदती चेदमब्रवीत्॥ ४७

शाल्वो मुक्तां त्वया वीर न गृह्णाति गृहाण माम्।
धर्मज्ञोऽसि महाभाग मरिष्याम्यन्यथा ह्यहम्॥ ४८

भीष्म उवाच

अन्यचित्तां कथं त्वां वै गृह्णामि वरवर्णिनि।
पितरं स्वं वरारोहे व्रज शीघ्रं निराकुला॥ ४९

तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव हि।
तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने॥ ५०

द्वे भार्ये चातिरूपाढ्ये तस्य राज्ञो बभूवतुः।
अम्बालिका चाम्बिका च काशिराजसुते शुभे॥ ५१

राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः।
रेमे नानाविहारैश्च गृहे चोपवने तथा॥ ५२

किया। सबकी अनुमति प्राप्त करके धर्मज्ञ गंगापुत्रने उस कन्यासे कहा—हे वरानने! तुम स्वेच्छापूर्वक जा सकती हो॥ ४०-४१॥

भीष्मसे विदा होकर वह सुन्दरी कन्या राजा शाल्वके घर गयी और अपने मनकी अभीष्ट बात उनसे कहने लगी—हे महाराज! आपके प्रति आसक्तचित्त जानकर भीष्मने मुझे धर्मपूर्वक मुक्त कर दिया है। अब मैं आ गयी हूँ; आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये। मैं आपकी पूर्णरूपसे धर्मपत्नी होऊँगी; मैंने पूर्वमें आपको चाहा है और आपने मुझे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४२—४४॥

शाल्वने कहा—हे सुन्दरि! मेरे देखते-देखते भीष्मने तुम्हें पकड़ा और अपने रथपर बैठा लिया था, अतः अब मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। कौन बुद्धिमान् मनुष्य दूसरेके द्वारा उच्छिष्ट कन्याको स्वीकार करेगा? अतः भीष्मके द्वारा मातृभावनासे भी त्यागी गयी तुम्हें मैं स्वीकार नहीं करूँगा॥ ४५-४६॥

महात्मा शाल्वने रोती तथा विलाप करती उस कन्याका त्याग कर दिया और वह पुनः भीष्मके यहाँ आकर रोती हुई इस प्रकार कहने लगी—हे वीर! आपके त्याग देनेके कारण शाल्व भी मुझे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। हे महाभाग! आप धर्मज्ञ हैं, इसलिये आप मुझे स्वीकार कीजिये, अन्यथा मैं प्राण दे दूँगी॥ ४७-४८॥

भीष्म बोले—हे वरवर्णिनि! तुम दूसरेपर आसक्त चित्तवाली हो, अतः मैं तुम्हें कैसे स्वीकार करूँ? हे वरारोहे! अब तुम चिन्ता त्यागकर शीघ्र अपने पिताके पास चली जाओ॥ ४९॥

भीष्मके ऐसा कहनेपर वह [अपने पिताके घर न जाकर] वनमें चली गयी और वहाँ किसी निर्जन एवं परम पवित्र तीर्थमें तप करने लगी॥ ५०॥

काशिराजकी अन्य दो रूपवती तथा कल्याणमयी कन्याएँ अम्बिका एवं अम्बालिका विचित्रवीर्यकी रानियाँ बन गयीं॥ ५१॥

महाबली राजा विचित्रवीर्य भी उन दोनोंके साथ कभी राजभवनमें और कभी उपवनमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगे॥ ५२॥

वर्षाणि नव राजेन्द्रः कुर्वन् क्रीडां मनोरमाम्।
प्रापासौ मरणं भूयो गृहीतो राजयक्ष्मणा॥ ५३

मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ता जाता सत्यवती तदा।
कारयामास पुत्रस्य प्रेतकार्याणि मन्त्रिभिः॥ ५४

भीष्ममाह तदैकान्ते वचनं चातिदुःखिता।
राज्यं कुरु महाभाग पितुस्ते शन्तनोः सुत॥ ५५

भ्रातुर्भार्यां गृहाण त्वं वंशञ्च परिरक्षय।
यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत॥ ५६

भीष्म उवाच

प्रतिज्ञा मे श्रुता मातः पित्रर्थे या मया कृता।
नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम्॥ ५७

सूत उवाच

तदा चिन्तातुरा जाता कथं वंशो भवेदिति।
नालसाद्धि सुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके॥ ५८

गाङ्गेयस्तामुवाचेदं मा चिन्तां कुरु भामिनि।
पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजं चोपपादय॥ ५९

कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय।
नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल॥ ६०

पौत्रं चैवं समुत्पाद्य राज्यं देहि शुचिस्मिते।
अहं च पालयिष्यामि तस्य शासनमेव हि॥ ६१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कानीनं स्वसुतं मुनिम्।
जगाम मनसा व्यासं द्वैपायनमकल्मषम्॥ ६२

स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः।
कृत्वा प्रणामं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः॥ ६३

इस प्रकार पूरे नौ वर्षतक मनोहर क्रीड़ा करते हुए राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे ग्रसित हो गये और अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुए॥ ५३॥

उस समय पुत्रके मर जानेपर माता सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने मन्त्रियोंद्वारा पुत्रके सभी प्रेतकर्म सम्पन्न कराये॥ ५४॥

तत्पश्चात् एक दिन अत्यन्त दुःखी होकर सत्यवतीने भीष्मसे एकान्तमें कहा—हे महाभाग! हे पुत्र! अब तुम अपने पिता शन्तनुका राज्य सम्भालो और अपनी भ्रातृजायाको स्वीकार करो और अपने वंशकी रक्षा करो, जिससे महाराज ययातिका वंश नष्ट न हो जाय॥ ५५-५६॥

भीष्म बोले—हे माता! अपने पिताजीके लिये मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे तो आप सुन चुकी हैं। अतः मैं न तो राज्य ग्रहण करूँगा और न तो विवाह ही करूँगा॥ ५७॥

सूतजी बोले—तब सत्यवती चिन्तित हो गयीं कि अब वंश कैसे चलेगा? अपने कर्तव्यके प्रति यदि मैं उदासीन रहूँ तो अराजकताके व्याप्त होनेपर मुझे सुख कैसे प्राप्त होगा?॥ ५८॥

[इस प्रकार माताको चिन्तित देखकर] भीष्मने उनसे कहा—हे भामिनि! आप चिन्ता न करें। विचित्रवीर्यकी पत्नीके गर्भसे क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराइये। किसी कुलीन विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर वधूके साथ नियोग कराइये। इसमें कोई दोष नहीं है; क्योंकि वंशरक्षाका विधान वेदमें भी है। हे प्रसन्नवदने! इस प्रकार पौत्र उत्पन्न कराकर आप उसीको राज्य सौंप दीजिये, मैं उसके राज्यशासनका सम्यक् संरक्षण करता रहूँगा॥ ५९—६१॥

भीष्मकी वह बात सुनकर सत्यवतीने अपनी कुमारी अवस्थामें उत्पन्न अपने निर्दोष पुत्र द्वैपायन व्यासमुनिका स्मरण किया॥ ६२॥

स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और माताको प्रणाम करके वे तेजस्वी मुनि सामने खड़े हो गये॥ ६३॥

भीष्मेण पूजितः कामं सत्यवत्या च मानितः।
तस्थौ तत्र महातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः॥ ६४

तमुवाच मुनिं माता पुत्रमुत्पादयाधुना।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुन्दरं तव वीर्यजम्॥ ६५

व्यासः श्रुत्वा वचो मातुराप्तवाक्यममन्यत।
ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिन्तयत्॥ ६६

अम्बिका च यदा स्नाता नारी ऋतुमती तदा।
सङ्गं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतान्धं महाबलम्॥ ६७

जन्मान्धं च सुतं वीक्ष्य दुःखिता सत्यवत्यपि।
द्वितीयां च वधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै॥ ६८

ऋतुकालेऽथ सम्प्राप्ते व्यासेन सह सङ्गता।
तथा चाम्बालिका रात्रौ गर्भं नारी दधार सा॥ ६९

सोऽपि पाण्डुः सुतो जातो राज्ययोग्यो न सम्मतः।
पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षान्ते च पुनर्वधूम्॥ ७०

आहूय च ततो व्यासं सम्प्रार्थ्य मुनिसत्तमम्।
प्रेषयामास रात्रौ सा शयनागारमुत्तमम्॥ ७१

न गता च वधूस्तत्र प्रेष्या सम्प्रेषिता तया।
तस्यां च विदुरो जातो दास्यां धर्मांशतः शुभः॥ ७२

एवं व्यासेन ते पुत्रा धृतराष्ट्रादयस्त्रयः।
उत्पादिता महावीरा वंशरक्षणहेतवे॥ ७३

एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम्।
व्यासेन रक्षितो वंशो भ्रातृधर्मविदानघाः॥ ७४

भीष्मने उनकी भलीभाँति पूजा की और माता सत्यवतीने भी आदर किया। उस समय महातेजस्वी व्यासजी वहाँ इस प्रकार सुशोभित हुए मानो धूमरहित साक्षात् दूसरे अग्निदेव ही हों॥ ६४॥

माता सत्यवतीने व्यासमुनिसे कहा—इस समय तुम विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें अपने तेजसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो॥ ६५॥

माताका वचन सुनकर व्यासजीने उसे आप्तवाक्य माना और 'ठीक है'—कहकर वे वहींपर ठहर गये और ऋतुकालकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ६६॥

जब अम्बिका ऋतुमती होकर स्नान कर चुकी तब उसने मुनि व्यासजीके तेजसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो महाबली और जन्मान्ध था। उस बालकको जन्मान्ध देखकर सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने दूसरी वधू अम्बालिका से कहा कि तुम भी शीघ्र एक पुत्र उत्पन्न करो॥ ६७-६८॥

ऋतुकाल प्राप्त होनेपर उस अम्बालिकाने व्यासजीसे गर्भ धारण किया। उससे उत्पन्न पुत्र भी पाण्डुरोगसे ग्रसित होनेके कारण राजा होनेके योग्य नहीं था। इसलिये माताने वधू अम्बालिकाको एक वर्षके बाद पुनः एक पुत्रके लिये प्रेरित किया। माता सत्यवतीने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीका आह्वानकर उनसे इसके लिये प्रार्थना की, परंतु उसने स्वयं न जाकर अपनी दासीको भेज दिया। उस दासीके गर्भसे धर्मके अंशसे युक्त शुभ विदुर उत्पन्न हुए॥ ६९—७२॥

इस प्रकार वंशकी रक्षाके लिये व्यासजीने धृतराष्ट्र आदि तीन महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये। भ्रातृ-धर्मको जाननेवाले व्यासजीने ऐसा करके वंशकी रक्षा की। हे पुण्यात्मा मुनिजनो! इस प्रकार उनकी वंशोत्पत्तिसे सम्बन्धित समस्त कथानक मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ७३-७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
धृतराष्ट्रादीनामुत्पत्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

* * *

॥ प्रथमः स्कन्धः समाप्तः॥

* * *

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वितीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ब्राह्मणके शापसे अद्रिका अप्सराका मछली होना और उससे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

आश्चर्यकरमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम्।
सन्देहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम्॥ १

माता व्यासस्य मेधाविन्नाम्ना सत्यवतीति च।
विवाहिता पुरा ज्ञाता राज्ञा शन्तनुना यथा॥ २

तस्याः पुत्रः कथं व्यासः सती स्वभवने स्थिता।
ईदृशी सा कथं राज्ञा पुनः शन्तनुना वृता॥ ३

तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत।
विस्तरेण महाभाग कथां परमपावनीम्॥ ४

उत्पत्तिं वद व्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः।
श्रोतुकामाः पुनः सर्वे ऋषयः संशितव्रताः॥ ५

सूत उवाच

प्रणम्य परमां शक्तिं चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
आदिशक्तिं वदिष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्॥ ६

यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती।
व्याजेनापि हि बीजस्य वाग्भवस्य विशेषतः॥ ७

सम्यक् सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थसिद्धये।
स्मर्तव्या सर्वथा देवी वाञ्छितार्थप्रदायिनी॥ ८

राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसङ्गरः।
चेदिदेशपतिः श्रीमान् बभूव द्विजपूजकः॥ ९

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपकी यह बात आश्चर्यजनक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सम्बन्धमें हम सब तपस्वियोंको महान् सन्देह उत्पन्न हो गया है॥ १॥

हे मेधाविन्! पूर्वकालमें सत्यवती नामसे विख्यात व्यासजीकी माताका राजा शन्तनुके साथ जिस प्रकार विवाह हुआ, उन सतीके अपने घरमें रहते हुए भी उनसे पुत्ररूपमें व्यास कैसे उत्पन्न हुए, ऐसी सत्यवतीका शन्तनुने पुनः वरण कैसे किया और उनसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? हे सुव्रत! हे महाभाग! आप इस परम पावन कथाको विस्तारपूर्वक कहिये। आप व्यासजी तथा सत्यवतीकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये; हम सभी व्रतधारी ऋषि इस विषयमें सुननेके लिये उत्सुक हैं॥ २—५॥

सूतजी बोले—मैं चतुर्वर्ग [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] प्रदान करनेवाली परमा आदिशक्तिको प्रणाम करके यह शुभ पौराणिक कथा कहूँगा॥ ६॥

जिनके विशिष्ट वाग्भव बीजमन्त्र (ऐं)-का किसी भी बहानेसे उच्चारण करते ही शाश्वती सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उन इच्छित फल देनेवाली भगवतीका सभी लोगोंको अपनी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये समर्पण भावसे सम्यक् स्मरण करना चाहिये॥ ७-८॥

उपरिचर नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा, ब्राह्मणपूजक तथा श्रीमान् राजा हुए, जो चेदि

तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम्।
दत्तमिन्द्रेण तत्तस्मै सुन्दरं प्रियकाम्यया॥ १०

तेनारूढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः।
न भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः॥ ११

विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः।
तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी॥ १२

पुत्राश्चास्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः।
पृथग्देशेषु राजानः स्थापितास्तेन भूभुजा॥ १३

वसोस्तु पत्नी गिरिका कामान् काले न्यवेदयत्।
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः॥ १४

तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति।
तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास भार्यामृतुमतीं तथा॥ १५

पितृवाक्यं गुरुं मत्वा कर्तव्यमिति निश्चितम्।
चचार मृगयां राजा गिरिकां मनसा स्मरन्॥ १६

वने स्थितः स राजर्षिश्चित्ते सस्मार भामिनीम्।
अतीव रूपसम्पन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम्॥ १७

तस्य रेतः प्रचस्कन्द स्मरतस्तां च कामिनीम्।
वटपत्रे तु तद्राजा स्कन्नमात्रं समाक्षिपत्॥ १८

इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम्।
ऋतुकालं च विज्ञाय मतिं चक्रे नृपस्तदा॥ १९

अमोघं सर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः।
प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत्॥ २०

शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः।
अभिमन्त्र्याथ तद्वीर्यं वटपर्णपुटे कृतम्॥ २१

देशके शासक थे। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर देवराज इन्द्रने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये स्फटिक मणिका बना हुआ एक सुन्दर तथा दिव्य विमान दिया॥ ९-१०॥

उस दिव्य विमानपर चढ़कर चेदिराज सर्वत्र विचरण करते थे। वे कभी भूमिपर न उतरने तथा पृथ्वीसे ऊपर-ही-ऊपर चलनेके कारण सभी लोकोंमें 'उपरिचर' वसुके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे राजा अत्यन्त धर्मपरायण थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम गिरिका था, जो रूपवती तथा सुन्दरी थी॥ ११-१२॥

महाराज उपरिचरके पाँच पुत्र हुए जो बड़े महान् वीर एवं परम प्रतापी थे। [यथासमय] उन्होंने अपने राजकुमारोंको अलग-अलग देशोंका राजा बना दिया॥ १३॥

एक बार राजा वसुकी पत्नी गिरिकाने ऋतुकालके स्नानसे पवित्र होकर राजासे पुत्रप्राप्तिकी कामना की। जिस समय वह प्रार्थना करने लगी, उसी समय उनके पितरोंने उन राजासे कहा— हे राजन्! मृगोंको मार लाओ—इस आदेशको सुनकर राजाको अपनी ऋतुमती पत्नीका भी स्मरण हो आया, किंतु पितरोंकी आज्ञा श्रेष्ठ मानकर तथा अपने कर्तव्यका निश्चयकर राजा मन-ही-मन गिरिकाका स्मरण करते हुए आखेटके लिये चल पड़े॥ १४—१६॥

वनमें रहते हुए राजा वसु साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूपवती अपनी पत्नीका स्मरण करने लगे। इस प्रकार उस कामिनीके ध्यानसे एकाएक उनका वीर्य स्खलित हो गया और राजाने शीघ्र ही उस स्खलित वीर्यको बरगदके पत्तेपर रख लिया॥ १७-१८॥

यह स्खलित तेज व्यर्थ न हो—[यह सोचकर] तथा स्त्रीका ऋतुकाल जानकर उन्होंने ऐसा निश्चय कर लिया कि मेरा तेज सर्वथा अमोघ है, इसमें सन्देह नहीं है अतः अवश्य ही इसे मैं रानीके पास भेज दूँ॥ १९-२०॥

राजा जब उस वीर्यको बरगदके दोनेमें रखकर अपनी रानीके पास भेजने लगे तब उन्होंने रानीका ऋतुकाल जानकर उस वीर्यको अभिमन्त्रित किया।

ऋतु - आर्तव

पार्श्वस्थं श्येनमाभाष्य राजोवाच द्विजं प्रति।
गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम॥ २२

मत्प्रियार्थमिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहं नय।
गिरिकायै प्रयच्छाशु तस्यास्त्वार्तवमद्य वै॥ २३

सूत उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ पर्णं श्येनाय नृपसत्तमः।
स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः॥ २४

गच्छन्तं गगनं श्येनं धृत्वा चञ्चुपुटे पुटम्।
तमपश्यदथायान्तं खगं श्येनस्तथापरः॥ २५

आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम्।
तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ सम्प्रचक्रतुः॥ २६

युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि।
खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा॥ २७

एतस्मिन्समये काचिदद्रिका नाम चाप्सराः।
ब्राह्मणं समनुप्राप्तं सन्ध्यावन्दनतत्परम्॥ २८

कुर्वन्ती जलकेलिं सा जले मग्ना चचार सा।
जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी॥ २९

प्राणायामपरः सोऽथ दृष्ट्वा तां कामचारिणीम्।
शशाप भव मत्स्यी त्वं ध्यानविघ्नकरी यतः॥ ३०

सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी।
शफरी रूपसम्पन्ना ह्यद्रिका च वराप्सराः॥ ३१

श्येनपादपरिभ्रष्टं तच्छुक्रमथ वासवी।
जग्राह तरसाभ्येत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी॥ ३२

अथ कालेन कियता मत्स्यीं तां मत्स्यजीवनः।
सम्प्राप्ते दशमे मासि बबन्ध तां मनोरमाम्॥ ३३

उदरं विददाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः।
युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति॥ ३४

राजाने पास ही बैठे हुए बाज पक्षीको बुलाकर उससे कहा—'हे महाभाग! तुम इसे ग्रहण करो और शीघ्र ही मेरे घर चले जाओ। हे सौम्य! मेरा हित करनेके लिये इसे लेकर तुम मेरे घर जाओ और इसे शीघ्र ही गिरिकाको दे देना; क्योंकि आज ही उसका ऋतुकाल है'॥ २१—२३॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठने बाजको वह दोना दे दिया और वह द्रुतगामी बाज भी उसे लेकर शीघ्र ही आकाशमें उड़ने लगा॥ २४॥

चोंचमें पत्तेका दोना लेकर आकाशमें उड़ते हुए उस बाजको एक दूसरे बाजपक्षीने अपनी ओर आते हुए देखा॥ २५॥

बाजकी चोंचमें मांसका टुकड़ा समझकर तत्काल उसने उस बाजपर आक्रमण कर दिया। दोनों बाजोंके बीच आकाशमें चोंचोंसे घोर युद्ध होने लगा। उन दोनोंके युद्ध करते समय वीर्यवाला वह दोना यमुनाजीके जलमें जा गिरा। दोनेके गिर जानेपर दोनों पक्षी वहाँसे यथेच्छ दिशामें चले गये॥ २६-२७॥

उसी समय अद्रिका नामकी एक अप्सरा जलमें निमग्न होकर जलक्रीडा कर रही थी। उस सुन्दरी स्त्रीने वहाँपर उपस्थित सन्ध्यावन्दन करनेमें तत्पर एक ब्राह्मणको देखा और उन ब्राह्मणका पैर पकड़ लिया॥ २८-२९॥

प्राणायाम करते हुए ब्राह्मणने उस स्वेच्छाचारिणीको देखकर उसे यह शाप दे दिया कि 'तुमने मेरे ध्यानमें विघ्न डाला है, अतएव तुम मछली हो जाओ।' इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठसे शाप पाकर वह अद्रिका नामकी रूपवती श्रेष्ठ अप्सरा मछली बनकर यमुनाके जलमें विचरने लगी॥ ३०-३१॥

बाजके पादाघातसे गिरे हुए उस वीर्यके पास जाकर मत्स्यरूपधारिणी अद्रिका अप्सराने उसे शीघ्रतापूर्वक निगल लिया॥ ३२॥

कुछ समय बाद दस महीने बीतनेपर एक मछुआरेने उस सुन्दर मछलीको अपने जालमें फँसा लिया॥ ३३॥

उस मछुआरेने शीघ्र ही उस मछलीका पेट चीर दिया। उसके उदरसे मनुष्यके आकारवाली जुड़वाँ सन्तति निकली॥ ३४॥

बालः कुमारः सुभगस्तथा कन्या शुभानना।
दृष्ट्वाश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयं परमं गतः॥ ३५

राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौ तु झषोद्भवौ।
राजापि विस्मयाविष्टः सुतं जग्राह तं शुभम्॥ ३६

स मत्स्यो नाम राजासौ धार्मिकः सत्यसङ्गरः।
वसुपुत्रो महातेजाः पित्रा तुल्यपराक्रमः॥ ३७

कालिका वसुना दत्ता तरसा जलजीविने।
नाम्ना कालीति विख्याता तथा मत्स्योदरीति च॥ ३८

मत्स्यगन्धेति नाम्ना वै गुणेन समजायत।
विवर्धमाना दाशस्य गृहे सा वासवी शुभा॥ ३९

ऋषय ऊचुः

अद्रिका मुनिना शप्ता मत्स्यी जाता वराप्सराः।
विदारिता च दाशेन मृता च भक्षिता पुनः॥ ४०

किं बभूव पुनस्तस्या अप्सराया वदस्व तत्।
शापस्यान्तं कथं सूत कथं स्वर्गमवाप सा॥ ४१

सूत उवाच

शप्ता यदा सा मुनिना विस्मिता सम्बभूव ह।
स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदती तदा॥ ४२

दयावान् ब्राह्मणः प्राह तां तदा रुदतीं स्त्रियम्।
मा शोकं कुरु कल्याणि शापान्तं ते वदाम्यहम्॥ ४३

मत्क्रोधशापयोगेन मत्स्ययोनिं गता शुभे।
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि॥ ४४

इत्युक्ता तेन सा प्राप मत्स्यदेहं नदीजले।
बालकौ जनयित्वा सा मृता मुक्ता च शापतः॥ ४५

सन्त्यज्य रूपं मत्स्यस्य दिव्यरूपमवाप्य च।
जगामामरमार्गं च शापान्ते वरवर्णिनी॥ ४६

उन दोनोंमें एक रूपवान् बालक तथा एक सुन्दर मुखवाली बालिका थी। इस अद्भुत घटनाको देखकर वह भी अत्यन्त विस्मित हुआ॥ ३५॥

उसने मछलीके पेटसे निकले उन दोनों बच्चोंको राजा उपरिचरको सौंप दिया। राजा भी आश्चर्यचकित हुआ और उसने उस सुन्दर पुत्रको ले लिया॥ ३६॥

वह वसुपुत्र मत्स्य नामक राजा हुआ, जो अपने पिताके समान ही धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी तथा पराक्रमी था॥ ३७॥

राजा उपरिचर वसुने वह कन्या उस मछुआरेको ही दे दी, जो आगे चलकर काली तथा मत्स्योदरी नामसे प्रसिद्ध हुई। अपने गुणविशेषके कारण वह मत्स्यगन्धा नामसे कही जाने लगी। उस मछुआरे दाशके घर वह सुन्दरी वासवी धीरे-धीरे बढ़ने लगी॥ ३८-३९॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! मुनिके द्वारा शापित वह अद्रिका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा जब मछली हो गयी और मछुआरेने उसे चीर डाला, तब वह मर गयी अथवा उसने उसे खा लिया। उस अप्सराका फिर क्या हुआ? उसके शापकी समाप्ति कैसे हुई और उसे पुनः स्वर्ग कैसे मिला? यह बताइये॥ ४०-४१॥

सूतजी बोले—जब मुनिने उसे शाप दिया, तब वह विस्मित हो गयी और दीनतापूर्वक रोती हुई उस ब्राह्मणकी स्तुति करने लगी॥ ४२॥

दयालु ब्राह्मणने उस रोती हुई स्त्रीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शोक न करो, मैं तुम्हारे शापके अन्तका उपाय बताता हूँ। हे शुभे! मैंने क्रुद्ध होकर जो शाप दिया है, उससे तुम मत्स्ययोनिको प्राप्त होओगी; किंतु तुम अपने उदरसे एक युग्म मानव-सन्तान उत्पन्नकर इस शापसे मुक्त हो जाओगी॥ ४३-४४॥

उनके ऐसा कहनेपर वह यमुनाजलमें मछलीका शरीर पाकर तथा दो सन्तानोंको उत्पन्न करके मर गयी और शापसे मुक्त हो गयी॥ ४५॥

इस प्रकार शापोद्धार होनेपर वह सुन्दरी मछलीका शरीर त्यागकर दिव्य रूप धारण करके स्वर्गको चली गयी॥ ४६॥

एवं जाता वरा पुत्री मत्स्यगन्धा वरानना।
पुत्रीव पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत॥ ४७

मत्स्यगन्धा तदा जाता किशोरी चातिसुप्रभा।
तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चातिसुप्रभा॥ ४८

इस प्रकार सुन्दर मुखवाली उस कन्या मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ। दाशके घरमें पुत्रीकी भाँति पालन-पोषणकी जाती हुई वह कन्या बढ़ने लगी॥ ४७॥

जब वह मत्स्यगन्धा किशोरावस्थाको प्राप्त हुई, तब उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया। वह परम सुन्दरी वसुकन्या निषादराजके कार्योंको करती हुई रहने लगी॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
मत्स्यगन्धोत्पत्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यासजीकी उत्पत्ति और उनका तपस्याके लिये जाना

सूत उवाच

एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन् पाराशरो मुनिः।
आजगाम महातेजाः कालिन्द्यास्तटमुत्तमम्॥ १

निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनं तदा।
प्रापयस्व परं पारं कालिन्द्या उडुपेन माम्॥ २

दाशः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कुर्वाणो भोजनं तटे।
उवाच तां सुतां बालां मत्स्यगन्धां मनोरमाम्॥ ३

उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्व ह।
गन्तुकामोऽस्ति धर्मात्मा तापसोऽयं शुचिस्मिते॥ ४

इत्युक्ता सा तदा पित्रा मत्स्यगन्धाथ वासवी।
उडुपे मुनिमासीनं संवाहयति भामिनी॥ ५

व्रजन् सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः।
कामार्तस्तु मुनिर्जातो दृष्ट्वा तां चारुलोचनाम्॥ ६

ग्रहीतुकामः स मुनिर्दृष्ट्वा व्यञ्जितयौवनाम्।
दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे॥ ७

तमुवाचासितापाङ्गी स्मितपूर्वमिदं वचः।
कुलस्य सदृशं वः किं श्रुतस्य तपसश्च किम्॥ ८

त्वं वै वसिष्ठदायादः कुलशीलसमन्वितः।
किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः॥ ९

सूतजी बोले—एक बार तीर्थयात्रा करते हुए महान् तेजस्वी पराशरमुनि यमुनानदीके उत्तम तटपर आये और उन धर्मात्माने भोजन करते हुए निषादसे कहा—मुझको नावसे यमुनाके पार पहुँचा दो॥ १-२॥

मुनिका वचन सुनकर यमुनाके तटपर भोजन करते हुए उस निषादने अपनी सुन्दर युवा पुत्री मत्स्यगन्धासे कहा—'हे सुन्दर मुसकानवाली पुत्रि! तुम इन मुनिको नावमें बैठाकर पार उतार दो; क्योंकि ये धर्मात्मा तपस्वी उस पार जानेके इच्छुक हैं'॥ ३-४॥

पिताके ऐसा कहनेपर वह सुन्दर वासवी मत्स्यगन्धा मुनिको नावमें बैठाकर खेने लगी। यमुनानदीके जलपर नावसे चलते समय दैवयोगसे प्रारब्धानुसार मुनि पराशर उस सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याको देखकर आसक्त हो गये॥ ५-६॥

प्रस्फुटित यौवनवाली उस कन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छावाले मुनिराजने अपनी दाहिनी भुजासे उसकी दाहिनी भुजाका स्पर्श किया॥ ७॥

इसपर उस असितापांगीने मुसकराकर कहा—क्या आपका यह कृत्य आपके कुल, तपस्या तथा वेदज्ञानके अनुरूप है? हे धर्मज्ञ! आप वसिष्ठजीके वंशज हैं और कुल तथा शीलसे युक्त हैं फिर भी कामदेवसे पीड़ित होकर आप क्या करना चाहते हैं?॥ ८-९॥

दुर्लभं मानुषं जन्म भुवि ब्राह्मणसत्तम।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः॥ १०

कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन
द्विजोत्तमस्त्वं किल धर्मविच्च।
अनार्यभावं कथमागतोऽसि
विप्रेन्द्र मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम्॥ ११

मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे
शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम्।
समीपं समायासि कामातुरस्त्वं
कथं नाभिजानासि धर्मं स्वकीयम्॥ १२

अहो मन्दबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्य-
ञ्जले मग्न एवाद्य मां वै गृहीत्वा।
मनो व्याकुलं पञ्चबाणातिविद्धं
न कोऽपीह शक्तः प्रतीपं हि कर्तुम्॥ १३

इति सञ्चिन्त्य सा बाला तमुवाच महामुनिम्।
धैर्यं कुरु महाभाग परं पारं नयामि वै॥ १४

सूत उवाच

पराशरस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम्।
करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सिन्धोः पारं गतः पुनः॥ १५

मत्स्यगन्धां प्रजग्राह मुनिः कामातुरस्तदा।
वेपमाना तु सा कन्या तमुवाच पुरःस्थितम्॥ १६

दुर्गन्धाहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशङ्कसे।
समानरूपयोः कामसंयोगस्तु सुखावहः॥ १७

इत्युक्तेन तु सा कन्या क्षणमात्रेण भामिनी।
कृता योजनगन्धा तु सुरूपा च वरानना॥ १८

मृगनाभिसुगन्धां तां कृत्वा कान्तां मनोहराम्।
जग्राह दक्षिणे पाणौ मुनिर्मन्मथपीडितः॥ १९

ग्रहीतुकामं तं प्राह नाम्ना सत्यवती शुभा।
मुने पश्यति लोकोऽयं पिता चैव तटस्थितः॥ २०

पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः।
प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ यावद्भवति यामिनी॥ २१

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर मनुष्यजन्म दुर्लभ है। उसमें भी ब्राह्मणकुलमें जन्म लेना तो मैं विशेषरूपसे दुर्लभ मानती हूँ॥ १०॥

हे विप्रेन्द्र! आप कुलसे, शीलसे तथा वेदाध्ययनसे एक धर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं? मुझ मत्स्यगन्धाको देखकर आप अनाचारयुक्त विचारवाले कैसे हो गये? हे अमोघ बुद्धिवाले ब्राह्मण! मेरे शरीरमें स्थित किस विशेषताको देखकर आप मेरा हाथ पकड़नेके लिये कामासक्त होकर मेरी ओर चले आ रहे हैं? क्या आपको अपने धर्मका ज्ञान नहीं है?॥ ११-१२॥

अहो, ये मन्दबुद्धि ब्राह्मण इस जलमें मुझे पकड़नेको आतुर हो रहे हैं। मेरा स्पर्श करके कामबाणसे आहत इनका मन व्याकुल हो उठा है। इस समय कोई भी इन्हें रोकनेमें समर्थ नहीं है॥ १३॥

ऐसा सोचकर उस निषादकन्याने महामुनि पराशरसे कहा—हे महाभाग! आप धैर्य धारण करें; मैं अभी आपको उस पार ले चलती हूँ॥ १४॥

सूतजी बोले—मुनि पराशर उसका हितकारी वचन सुनकर उसका हाथ छोड़ करके वहीं स्थित हो गये और उस पार पहुँच गये॥ १५॥

तदनन्तर पराशरमुनिने मत्स्यगन्धाको पकड़ लिया। तब भयसे काँपती हुई वह कन्या सम्मुखस्थित मुनिसे कहने लगी—हे मुनिवर! मैं दुर्गन्धवाली हूँ, मुझसे क्या आपको घृणा नहीं हो रही है? समान रूपवालोंके बीच ही परस्पर सम्बन्ध आनन्ददायक होता है॥ १६-१७॥

मत्स्यगन्धाके ऐसा कहते ही पराशरमुनिने क्षणमात्रमें अपने तपोबलसे उस भामिनी कन्याको सुमुखी, रूपवती तथा योजनगन्धा बना दिया॥ १८॥

उसे कस्तूरीकी सुगन्धिवाली मनोहर स्त्री बनाकर कामातुर मुनिराजने अपने दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया। तब सत्यवती नामवाली उस सुन्दरीने संयोगकी कामनावाले मुनिसे कहा—हे मुने! तटपर स्थित मेरे पिता तथा सभी लोग यहाँ हमें देख रहे हैं॥ १९-२०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह भीषण पशुवत् व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता। जबतक रात नहीं हो जाती, तबतक प्रतीक्षा कीजिये॥ २१॥

रात्रौ व्यवाय उद्दिष्टो दिवा न मनुजस्य हि।
दिवासङ्गे महान् दोषः पश्यन्ति किल मानवाः॥ २२

कामं यच्छ महाबुद्धे लोकनिन्दा दुरासदा।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः॥ २३

नीहारं कल्पयामास शीघ्रं पुण्यबलेन वै।
नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते॥ २४

कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदं वचः।
कन्याहं द्विजशार्दूल भुक्त्वा गन्तासि कामतः॥ २५

अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन् का गतिर्मे भवेदिति।
पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भा चेद्भवाम्यहम्॥ २६

त्वं गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत्।

पराशर उवाच

कान्तेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि॥ २७
वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि।

सत्यवत्युवाच

यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद॥ २८

कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम।
पुत्रश्च त्वत्समः कामं भवेदद्भुतवीर्यवान्॥ २९

गन्धोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनं च नवं नवम्।

पराशर उवाच

शृणु सुन्दरि पुत्रस्ते विष्णवंशसम्भवः शुचिः॥ ३०

भविष्यति च विख्यातस्त्रैलोक्ये वरवर्णिनि।
केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि॥ ३१

कदापि च न सम्मोहो भूतपूर्वो वरानने।
दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाहं धैर्यमावहम्॥ ३२

दैवयोगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम्।
तत्किञ्चित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम्॥ ३३

दृष्ट्वाहं चातिदुर्गन्धां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम्।
पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने॥ ३४
वेदविद्भागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये।

मनुष्यके लिये कामसंसर्ग रातमें ही विहित है, दिनमें नहीं। दिनमें संसर्ग करनेसे महान् दोष होता है और बहुत-से लोग उसे देख भी लेते हैं॥ २२॥

हे महाबुद्धे! अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें, लोकनिन्दा अत्यन्त कष्टकर होती है। सत्यवतीका कहा गया युक्तिसंगत वचन सुनकर उदार बुद्धिवाले पराशरमुनिने अपने पुण्यबलसे तत्क्षण कुहरा उत्पन्न कर दिया। उस कुहरेके उत्पन्न हो जानेपर अत्यन्त अन्धकारमय नदीतटपर उस कामिनीने पराशरमुनिसे मधुर वाणीमें यह वचन कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं अभी कन्या हूँ और आप मेरे साथ संसर्ग करके चले जायँगे। हे ब्रह्मन्! आप अमोघ वीर्यवाले हैं, ऐसी स्थितिमें मेरी क्या गति होगी? यदि मैं गर्भधारण कर लूँगी तो पिताको क्या उत्तर दूँगी? हे ब्रह्मन्! मेरे साथ संसर्ग करके आप चले जायँगे तब मैं क्या करूँगी, उसे बताइये?॥ २३—२६½॥

पराशर बोले—हे प्रिये! आज मुझे प्रसन्न करके भी तुम कन्या ही बनी रहोगी। हे भामिनि! हे भीरु! तुम जो वर चाहती हो, उसे माँग लो॥ २७½॥

सत्यवती बोली—हे मानद! आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मेरे माता-पिता लोकमें इसे न जान सकें। साथ ही हे विप्रवर! आप ऐसा करें, जिससे मेरा कन्याव्रत नष्ट न हो और जो पुत्र उत्पन्न हो, वह आपहीके समान अपूर्व ओजस्वी हो, मेरी यह सुगन्ध सदा बनी रहे और मेरा यौवन नित नूतन बना रहे॥ २८-२९½॥

पराशर बोले—हे सुन्दरि! सुनो, तुम्हारा पुत्र पवित्र तथा भगवान् विष्णुके अंशसे अवतीर्ण होगा। हे सुन्दरि! वह तीनों लोकोंमें विख्यात होगा। मैं तुम्हारे ऊपर किसी कारणविशेषसे ही कामासक्त हुआ हूँ। हे सुमुखि! मुझे ऐसा मोह पूर्वमें कभी नहीं हुआ। अप्सराओंके रूपको देखकर भी मैं सदा धैर्य धारण किये रहा। दैवयोगसे ही तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार कामके वशीभूत हुआ हूँ। इस विषयमें तुम कोई विशेष कारण ही समझो, दैवका अतिक्रमण अत्यन्त कठिन है, अन्यथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार क्यों मोहित होता! हे वरानने! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका रचयिता, वेदोंका विभाग करनेवाला तथा तीनों लोकोंमें विख्यात होगा॥ ३०—३४½॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः॥ ३५

जगाम तरसा स्नात्वा कालिन्दीसलिले मुनिः।
सापि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती॥ ३६

सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम्।
जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम्॥ ३७

तपस्येव मनः कृत्वा विविशे चांतिवीर्यवान्।
गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम्॥ ३८

तपः कर्तुं महाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः।
मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किञ्चिदनुत्तमम्॥ ३९

स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिन्तां सुखं वस॥ ४०

इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः सापि पित्रन्तिकं गता।
द्वीपे न्यस्तस्तया बालस्तस्माद् द्वैपायनोऽभवत्॥ ४१

जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्ण्वंशयोगतः।
तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचार तप उत्तमम्॥ ४२

एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्।
चकार वेदशाखाश्च प्राप्तं ज्ञात्वा कलेर्युगम्॥ ४३

वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाभवन्मुनिः ।
पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम्॥ ४४

शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वा विभागशः।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं वैशम्पायनमेव च॥ ४५

असितं देवलं चैव शुकं चैव स्वमात्मजम्।

सूतजी बोले—ऐसा कहकर अपने वशमें आयी हुई उस कन्याके साथ संसर्ग करके मुनिश्रेष्ठ पराशर तत्काल यमुनानदीमें स्नानकर वहाँसे शीघ्र चले गये। वह साध्वी सत्यवती भी तत्काल गर्भवती हो गयी॥ ३५-३६॥

[यथासमय] सत्यवतीने यमुनाजीके द्वीपमें दूसरे कामदेवके तुल्य एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उत्पन्न होते ही उस तेजवान् पुत्रने अपनी मातासे कहा—हे माता! मनमें तपस्याका निश्चय करके ही अत्यन्त तेजस्वी मैं गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। हे महाभागे! अब आप अपनी इच्छानुसार कहीं भी चली जायँ और मैं भी यहाँसे तप करनेके लिये जा रहा हूँ। हे माता! आपके स्मरण करनेपर मैं अवश्य ही दर्शन दूँगा। हे माता! जब कोई उत्तम कार्य आ पड़े तब आप मेरा स्मरण कीजियेगा, मैं शीघ्र ही उपस्थित हो जाऊँगा। हे भामिनि! आपका कल्याण हो, अब मैं चलूँगा। आप चिन्ता छोड़कर सुखपूर्वक रहिये॥ ३७—४०॥

ऐसा कहकर व्यासजी चले गये और वह सत्यवती भी अपने पिताके पास चली गयी। सत्यवतीने बालकको यमुनाद्वीपमें जन्म दिया था। अतः वह बालक 'द्वैपायन' नामसे विख्यात हुआ॥ ४१॥

विष्णुभगवान्‌के अंशावतार होनेके कारण वह बालक उत्पन्न होते ही शीघ्र बड़ा हो गया तथा अनेक तीर्थोंमें स्नान करता हुआ उत्तम तप करने लगा॥ ४२॥

इस प्रकार पराशरमुनिके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे द्वैपायन उत्पन्न हुए और उन्होंने ही कलियुगको आया जानकर वेदोंको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया, वेदोंका विस्तार करनेके कारण ही उन मुनिका नाम 'व्यास' पड़ गया। उन्होंने ही विभिन्न पुराणसंहिताओं तथा श्रेष्ठ महाभारतकी रचना की। उन्होंने ही वेदोंके अनेक विभाग करके उसे अपने शिष्यों—सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल और अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया॥ ४३—४५ १/२ ॥

सूत उवाच

एतच्च कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः॥ ४६

सत्यवत्याः सुतस्यापि समुत्पत्तिस्तथा शुभा।
संशयोऽत्र न कर्तव्यः सम्भवे मुनिसत्तमाः॥ ४७

महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति।
कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्या झषोदरे॥ ४८

पराशरेण संयोगः पुनः शन्तनुना तथा।
अन्यथा तु मुनेश्चित्तं कथं कामाकुलं भवेत्॥ ४९

अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथं मुनिः।
सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताश्चर्यकारिणी॥ ५०

श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा।
य एतच्छुभमाख्यानं शृणोति श्रुतिमान्नरः॥ ५१
न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा॥ ५२

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने यह सब उत्पत्तिका कारण आपलोगोंसे बता दिया, साथ ही सत्यवतीके पुत्र व्यासजीकी पवित्र उत्पत्तिका वर्णन कर दिया है। हे श्रेष्ठ मुनिगण! व्यासजीकी इस उत्पत्तिके विषयमें आपलोगोंको सन्देह नहीं करना चाहिये। महापुरुषोंके चरितसे केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिये। किसी विशेष कारणसे ही मुनि व्यासका तथा मछलीके उदरसे सत्यवतीका जन्म, पराशरमुनिके साथ उनका संयोग और फिर राजा शन्तनुके साथ उनका विवाह हुआ। अन्यथा मुनि पराशरका चित्त कामासक्त ही क्यों होता? और धर्मके ज्ञाता वे महामुनि पराशर अनार्य लोगोंद्वारा आचरित किया जानेवाला ऐसा कृत्य क्यों करते! किसी विशेष कारणसे युक्त तथा आश्चर्यकारिणी यह उत्पत्ति मैंने बता दी, जिसे सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे पापसे मुक्त हो जाता है। जो श्रुतिपरायण मनुष्य इस शुभ आख्यानको सुनता है; वह दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है तथा सर्वदा सुखी रहता है॥ ४६—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
व्यासजन्मवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

~~o~~

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा

ऋषय ऊचुः

उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः।
सत्यवत्यास्तथा सूत विस्तरेण त्वयानघ॥ १

तथाप्येकस्तु सन्देहश्चित्तेऽस्माकं तु संस्थितः।
न निवर्तति धर्मज्ञ कथितेन त्वयानघ॥ २

माता व्यासस्य या प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा।
सा कथं नृपतिं प्राप्ता शन्तनुं धर्मवित्तमम्॥ ३

निषादपुत्रीं स कथं वृतवान्नृपतिः स्वयम्।
धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृताम्॥ ४

शन्तनोः प्रथमा पत्नी का ह्यभूत्कथयाधुना।
भीष्मः पुत्रोऽथ मेधावी वसोरंशः कथं पुनः॥ ५

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे अनघ! यद्यपि आपने परम तेजस्वी व्यास तथा सत्यवतीके जन्मकी कथा विस्तारपूर्वक कही तथापि हमलोगोंके चित्तमें एक बड़ी भारी शंका बनी हुई है। हे धर्मज्ञ! हे अनघ! वह शंका आपके कहनेपर भी दूर नहीं हो रही है॥ १-२॥

व्यासजीकी कल्याणमयी माता जो सत्यवती नामसे जानी जाती थीं, वे धर्मात्मा राजा शन्तनुको कैसे प्राप्त हुईं? कुल तथा आचरणसे हीन उस निषादकन्याका पुरुकुलमें उत्पन्न उन धर्मात्मा राजाने स्वयं कैसे वरण कर लिया?॥ ३-४॥

आप कृपा करके हमलोगोंको यह भी बतलाइये कि राजा शन्तनुकी पहली पत्नी कौन थी? वसुके अंशसे उत्पन्न मेधावी भीष्म उनके पुत्र कैसे हुए?॥ ५॥

त्वया प्रोक्तं पुरा सूत राजा चित्राङ्गदः कृतः।
सत्यवत्याः सुतो वीरो भीष्मेणामिततेजसा॥ ६

चित्राङ्गदे हते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा।
विचित्रवीर्यनामासौ सत्यवत्याः सुतो नृपः॥ ७

ज्येष्ठे भीष्मे स्थिते पूर्वं धर्मिष्ठे रूपवत्यपि।
कृतवान्स कथं राज्यं स्थापितस्तेन जानता॥ ८

मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुःखिता।
वधूभ्यां गोलकौ पुत्रौ जनयामास सा कथम्॥ ९

कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी।
न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः॥ १०

अधर्मस्तु कृतः कस्माद्व्यासेनामिततेजसा।
ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति॥ ११

पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः।
सेवनं परदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः॥ १२

जुगुप्सितमिदं कर्म स कथं कृतवान्मुनिः।
शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः॥ १३

व्यासशिष्योऽसि मेधाविन् सन्देहं छेत्तुमर्हसि।
श्रोतुकामा वयं सर्वे धर्मक्षेत्रे कृतक्षणाः॥ १४

सूत उवाच

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः।
सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपोत्तमः॥ १५

अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च।
तोषयामास देवेन्द्रं स्वर्गं प्राप महामतिः॥ १६

एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः।
सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम्॥ १७

गङ्गा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम्।
तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन तरस्विना॥ १८

अधोमुखाः सुराः सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः।
राजा महाभिषस्तां तु निःशङ्कः समपश्यत॥ १९

हे सूतजी! आप यह पहले ही कह चुके हैं कि सत्यवतीके वीर पुत्र चित्रांगदको अमित तेजवाले भीष्मने राजा बनाया था और वीर चित्रांगदके मारे जानेपर उसके अनुज तथा सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्यको उन्होंने राजा बनाया॥ ६-७॥

रूपसम्पन्न तथा ज्येष्ठ पुत्र धर्मात्मा भीष्मके रहते हुए विचित्रवीर्यने राज्य कैसे किया और सब कुछ जानते हुए भी भीष्मने उन्हें राज्यपर कैसे स्थापित किया?॥ ८॥

विचित्रवीर्यके मरनेपर अत्यन्त दुःखित माता सत्यवतीने अपनी दोनों पुत्रवधुओंसे दो गोलक पुत्र कैसे उत्पन्न कराये?॥ ९॥

उन सुन्दरी सत्यवतीने उस समय ज्येष्ठ पुत्र भीष्मको राजा क्यों नहीं बनाया और उन पराक्रमी भीष्मने अपना विवाह क्यों नहीं किया?॥ १०॥

अमित तेजस्वी बड़े भाई व्यासजीने ऐसा अधर्म क्यों किया जो कि उन्होंने नियोगद्वारा दो पुत्र उत्पन्न किये?॥ ११॥

पुराणोंके रचयिता व्यासमुनिने धर्मज्ञ होते हुए भी ऐसा कार्य क्यों किया; हे सूतजी! क्या यही वेदोंसे अनुमोदित शिष्टाचार है?॥ १२-१३॥

हे मेधाविन्! आप व्यासजीके शिष्य हैं, इसलिये आप हमारी इन सभी शंकाओंका समाधान करनेमें समर्थ हैं। हम सभी इस धर्मक्षेत्रमें इन प्रश्नोंके उत्तर सुननेको उत्सुक हो रहे हैं॥ १४॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इक्ष्वाकुकुलमें महाभिष नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुए—ऐसा कहा जाता है॥ १५॥

उन बुद्धिमान् राजाने हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया और स्वर्ग प्राप्त किया था॥ १६॥

एक बार राजा महाभिष ब्रह्मलोक गये। वहाँ प्रजापतिकी सेवाके लिये सभी देवता आये हुए थे। उस समय देवनदी गंगाजी भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। उस समय तीव्रगामी पवनने उनका वस्त्र उड़ा दिया। सभी देवता अपना सिर नीचा किये उन्हें बिना देखे खड़े रहे, किंतु राजा महाभिष निःशंक भावसे उनकी ओर देखते रह गये॥ १७—१९॥

सापि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी।
दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौ काममोहितौ॥ २०

ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषान्वितः।
मर्त्यलोकेषु भूपाल जन्म प्राप्य पुनर्दिवम्॥ २१

पुण्येन महताविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा।
गङ्गां तथोक्तवान्ब्रह्मा वीक्ष्य प्रेमवतीं नृपे॥ २२

विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽन्तिकात्।
स नृपांश्चिन्तयित्वाथ भूर्लोके धर्मतत्परान्॥ २३

प्रतीपं चिन्तयामास पितरं पुरुवंशजम्।
एतस्मिन्समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः॥ २४

वसिष्ठस्याश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया।
पृथ्वादीनां वसूनां च मध्ये कोऽपि वसूत्तमः॥ २५

द्यौर्नामा तस्य भार्याथ नन्दिनीं गां ददर्श ह।
दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा॥ २६

द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि।
दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथ वा॥ २७

अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः।
तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मृत्युलोकेऽस्ति मे सखी॥ २८

उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना।
तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम्॥ २९

आनयस्वाश्रमं श्रेष्ठं नन्दिनीं कामदां शुभाम्।
यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि॥ ३०

मानुषेषु भवेदेका जरारोगविवर्जिता।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहार च नन्दिनीम्॥ ३१

अवमन्य मुनिं दान्तं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः।
हृतायामथ नन्दिन्यां वसिष्ठस्तु महातपाः॥ ३२

आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः।
नापश्यत यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः॥ ३३

उन गंगानदीने भी राजाको अपनेपर प्रेमासक्त जाना। उन दोनोंको इस प्रकार मुग्ध देखकर ब्रह्माजी क्रोधित हो गये और कोपाविष्ट होकर शीघ्र ही उन दोनोंको शाप दे दिया—हे राजन्! मनुष्यलोकमें तुम्हारा जन्म होगा। वहाँ जब तुम अधिक पुण्य एकत्र कर लोगे, तब पुनः स्वर्गलोकमें आओगे। गंगाको महाभिष-राजापर प्रेमासक्त जानकर ब्रह्माजीने उन्हें [गंगाको] भी उसी प्रकार शाप दे दिया॥ २०—२२॥

इस प्रकार वे दोनों दुःखी मनसे ब्रह्माजीके पाससे शीघ्र ही चले गये। राजा अपने मनमें सोचने लगे कि इस मृत्युलोकमें कौन ऐसे राजा हैं, जो धर्मपरायण हैं। ऐसा विचारकर उन्होंने पुरुवंशीय महाराज 'प्रतीप' को ही पिता बनानेका निश्चय कर लिया। इसी बीच आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रीके साथ विहार करते हुए स्वेच्छया महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर आ पहुँचे। उन पृथु आदि वसुओंमें 'द्यौ' नामक एक श्रेष्ठ वसु थे। उनकी पत्नीने 'नन्दिनी' गौको देखकर अपने पतिसे पूछा कि यह सुन्दर गाय किसकी है?॥ २३—२६॥

द्यौने उससे कहा—हे सुन्दरि! सुनो, यह महर्षि वसिष्ठजीकी गाय है। इस गायका दूध स्त्री या पुरुष जो कोई भी पीता है, उसकी आयु दस हजार वर्षकी हो जाती है और उसका यौवन सर्वदा बना रहता है। यह सुनकर उस सुन्दरी स्त्रीने कहा—मृत्युलोकमें मेरी एक सखी है। मेरी वह सखी राजर्षि उशीनरकी परम सुन्दरी कन्या है। हे महाभाग! उसके लिये अत्यन्त सुन्दर तथा सब प्रकारकी कामनाओंको देनेवाली इस गायको बछड़े-सहित अपने आश्रममें ले चलिये। जब मेरी सखी इसका दूध पीयेगी तब वह निर्जरा एवं रोगरहित होकर मनुष्योंमें एकमात्र अद्वितीय बन जायगी। उसका वचन सुनकर द्यौ नामके वसुने 'पृथु' आदि अष्टवसुओंके साथ जितेन्द्रिय मुनिका अपमान करके नन्दिनीका अपहरण कर लिया॥ २७—३१½॥

नन्दिनीका हरण हो जानेपर महातपस्वी वसिष्ठ फल लेकर शीघ्र ही अपने आश्रम आ गये। जब मुनिने अपने आश्रममें बछड़ेसहित नन्दिनीगायको नहीं देखा तब वे तेजस्वी वनों एवं गुफाओंमें उसे ढूँढ़ने

मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि।
नासादिता यदा धेनुश्चुकोपातिशयं मुनिः॥ ३४

वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम्।
वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमन्य वै॥ ३५

तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः।
एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान्वारुणिः स्वयम्॥ ३६

श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्च ते।
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः॥ ३७

प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः शरणं गताः।
मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनान्पुरःस्थितान्॥ ३८

अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ।
येनेयं विहृता धेनुर्नन्दिनी मम वत्सला॥ ३९

तस्माद् द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति।
ते शप्ताः पथि गच्छन्तीं गङ्गां दृष्ट्वा सरिद्वराम्॥ ४०

ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिन्तातुरां नदीम्।
भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः॥ ४१

मानुषाणां च जठरे चिन्तेयं महती हि नः।
तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे॥ ४२

शन्तनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे।
जाताञ्जाताञ्जले चास्मान्निःक्षिपस्व सुरापगे॥ ४३

एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः।
तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः॥ ४४

गङ्गापि निर्गता देवी चिन्त्यमाना पुनः पुनः।
महाभिषो नृपो जातः प्रतीपस्य सुतस्तदा॥ ४५

शन्तनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसङ्गरः।
प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः॥ ४६

तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी।
दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना॥ ४७

लगे, जब वह गाय नहीं मिली तब वरुणपुत्र मुनि वसिष्ठजी ध्यानयोगसे उसे वसुओंके द्वारा हरी गयी जानकर अत्यन्त कुपित हुए। वसुओंने मेरी अवमानना करके मेरी गौ चुरा ली है। वे सभी मानवयोनिमें जन्म ग्रहण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार धर्मात्मा वसिष्ठजीने उन वसुओंको शाप दिया॥ ३२—३६॥

यह सुनकर वे सभी वसु खिन्नमनस्क और दुःखित हो गये और वहाँसे चल दिये। हमें शाप दे दिया गया है—यह जानकर वे ऋषि वसिष्ठके पास पहुँचे और उन्हें प्रसन्न करते हुए वे सभी वसु उनके शरणागत हो गये। तब धर्मात्मा मुनि वसिष्ठजीने उन सामने खड़े वसुओंको देखकर कहा—तुमलोगोंमेंसे [सात वसु] एक-एक वर्षके अन्तरालसे ही शापसे मुक्त हो जायँगे; परंतु जिसने मेरी प्रिय सवत्सा नन्दिनीका अपहरण किया है, वह 'द्यौ' नामक वसु मनुष्य-शरीरमें ही बहुत दिनोंतक रहेगा॥ ३७—३९$\frac{१}{२}$॥

उन अभिशप्त वसुओंने मार्गमें जाती हुई नदियोंमें उत्तम गंगाजीको देखकर उन अभिशप्त तथा चिन्तातुर गंगाजीसे प्रणामपूर्वक कहा—हे देवि! अमृत पीनेवाले हम देवता मानवकुक्षिसे कैसे उत्पन्न होंगे, यह हमें महान् चिन्ता है, अतः हे नदियोंमें श्रेष्ठ! आप ही मानुषी बनकर हमलोगोंको जन्म दें। पृथ्वीपर शन्तनु नामक एक राजर्षि हैं, हे अनघे! आप उन्हींकी भार्या बन जायँ और हे सुरापगे! हमें क्रमशः जन्म लेनेपर आप जलमें छोड़ती जायँ। आपके ऐसा करनेसे हमलोग भी शापसे मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। गंगाजीने जब उनसे 'तथास्तु' कह दिया तब वे सब वसु अपने-अपने लोकको चले गये और गंगाजी भी बार-बार विचार करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ४०—४४$\frac{१}{२}$॥

उस समय राजा महाभिषने राजा प्रतीपके पुत्रके रूपमें जन्म लिया। उन्हींका नाम शन्तनु पड़ा, जो सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा राजर्षि हुए। महाराज प्रतीपने परम तेजस्वी भगवान् सूर्यकी आराधना की। उस समय जलमेंसे एक परम सुन्दर स्त्री निकल पड़ी और वह सुमुखी आकर तुरंत ही महाराजके शाल वृक्षके समान विशाल दाहिने जंघेपर विराजमान हो गयी।

अङ्के स्थितां स्त्रियं चाह मा पृष्ट्वा किं वरानने।
ममोरावास्थितासि त्वं किमर्थं दक्षिणे शुभे॥ ४८

सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम।
स्थितास्म्यङ्के कुरुश्रेष्ठ कामयानां भजस्व माम्॥ ४९

तामवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम्।
नाहं परस्त्रियं कामाद् गच्छेयं वरवर्णिनीम्॥ ५०

स्थिता दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि।
अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते॥ ५१

स्नुषा मे भव कल्याणि जाते पुत्रेऽतिवाञ्छिते।
भविष्यति च मे पुत्रस्तव पुण्यान्न संशयः॥ ५२

तथेत्युक्त्वा गता सा वै कामिनी दिव्यदर्शना।
राजा चापि गृहं प्राप्तश्चिन्तयंस्तां स्त्रियं पुनः॥ ५३

ततः कालेन कियता जाते पुत्रे वयस्विनि।
वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तान्तमूचिवान्॥ ५४

वृत्तान्तं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम्।
यदि प्रयाति सा बाला त्वां वने चारुहासिनी॥ ५५

कामयाना वरारोहा तां भजेथा मनोरमाम्।
न प्रष्टव्या त्वया कासि मन्नियोगान्नराधिप॥ ५६

धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भविता त्वं सुखी किल।
सूत उवाच
एवं सन्दिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः॥ ५७

दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां वनं राजा विवेश ह।
तत्रापि च तपस्तप्त्वा समाराध्य पराम्बिकाम्॥ ५८

जगाम स्वर्गं राजासौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा।
राज्यं प्राप महातेजाः शन्तनुः सार्वभौमिकम्॥ ५९

प्रजां वै पालयामास धर्मदण्डो महीपतिः॥ ६०

अंकमें बैठी हुई उस स्त्रीसे राजाने पूछा—'हे वरानने! तुम मुझसे बिना पूछे ही मेरे शुभ दाहिने जंघेपर क्यों बैठ गयी?'॥ ४५—४८॥

उस सुन्दरीने उनसे कहा—'हे नृपश्रेष्ठ! हे कुरुश्रेष्ठ! मैं जिस कामनासे आपके अंकमें बैठी हूँ, उस कामनावाली मुझे आप स्वीकार करें'॥ ४९॥

उस रूपयौवनसम्पन्ना सुन्दरीसे राजाने कहा—'मैं किसी सुन्दरी परस्त्रीको कामकी इच्छासे नहीं स्वीकार करता'॥ ५०॥

हे भामिनि! हे शुचिस्मिते! तुम मेरे दाहिने जंघेपर प्रेमपूर्वक आकर बैठ गयी हो, उसे तुम पुत्रों तथा पुत्रवधुओंका स्थान समझो। अतः हे कल्याणि! मेरे मनोवांछित पुत्रके उत्पन्न होनेपर तुम मेरी पुत्रवधू हो जाओ। तुम्हारे पुण्यसे मुझे पुत्र हो जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ ५१-५२॥

वह दिव्य दर्शनवाली कामिनी 'तथास्तु' कहकर चली गयी और उस स्त्रीके विषयमें सोचते हुए राजा प्रतीप भी अपने घर चले गये॥ ५३॥

समय बीतनेपर पुत्रके युवा होनेपर वन जानेकी इच्छावाले राजाने अपने पुत्रको वह समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया॥ ५४॥

सारी बात बताकर राजाने अपने पुत्रसे कहा—'यदि वह सुन्दरी बाला तुम्हें कभी वनमें मिले और अपनी अभिलाषा प्रकट करे तो उस मनोरमाको स्वीकार कर लेना तथा उससे मत पूछना कि तुम कौन हो? यह मेरी आज्ञा है, उसे अपनी धर्मपत्नी बनाकर तुम सुखी रहोगे'॥ ५५-५६½॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रको आदेश देकर महाराज प्रतीप प्रसन्नताके साथ उन्हें सारा राज्य-वैभव सौंपकर वनको चले गये। वहाँ जाकर वे तप करके तथा आदिशक्ति भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करके अपने तेजसे शरीर छोड़कर स्वर्ग चले गये। महातेजस्वी राजा शन्तनुने सार्वभौम राज्य प्राप्त किया और वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे॥ ५७—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
प्रतीपसकाशाच्छन्तनुजन्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

~~~
~~~

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, सात पुत्रोंका जन्म तथा गंगाका उन्हें अपने जलमें प्रवाहित करना, आठवें पुत्रके रूपमें भीष्मका जन्म तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा

सूत उवाच

प्रतीपेऽथ दिवं याते शन्तनुः सत्यविक्रमः।
बभूव मृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः॥ १

स कदाचिद्वने घोरे गङ्गातीरे चरन्नृपः।
ददर्श मृगशावाक्षीं सुन्दरीं चारुभूषणाम्॥ २

दृष्ट्वा तां नृपतिर्मग्नः पित्रोक्तेयं वरानना।
रूपयौवनसम्पन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा॥ ३

पिबन्मुखाम्बुजं तस्या न तृप्तिमगमन्नृपः।
हृष्टरोमाभवत्तत्र व्याप्तचित्त इवानघः॥ ४

महाभिषं सापि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह।
किञ्चिन्मन्दस्मितं कृत्वा तस्थावग्रे नृपस्य च॥ ५

वीक्ष्य तामसितापाङ्गीं राजा प्रीतमना भृशम्।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा॥ ६

देवी वा त्वं च वामोरु मानुषी वा वरानने।
गन्धर्वी वाथ यक्षी वा नागकन्याप्सरापि वा॥ ७

यासि कासि वरारोहे भार्या मे भव सुन्दरि।
प्रेमयुक्तस्मितैव त्वं धर्मपत्नी भवाद्य मे॥ ८

सूत उवाच

राजा तां नाभिजानाति गङ्गेयमिति निश्चितम्।
महाभिषं समुत्पन्नं नृपं जानाति जाह्नवी॥ ९

पूर्वप्रेमसमायोगाच्छ्रुत्वा वाचं नृपस्य ताम्।
उवाच नारी राजानं स्मितपूर्वमिदं वचः॥ १०

स्त्र्युवाच

जानामि त्वां नृपश्रेष्ठ प्रतीपतनयं शुभम्।
का न वाञ्छति चार्वङ्गी भावित्वात्सदृशं पतिम्॥ ११

सूतजी बोले—प्रतीपके स्वर्ग चले जानेपर सत्यपराक्रमी राजा शन्तनु व्याघ्र तथा मृगोंको मारते हुए मृगयामें तत्पर हो गये॥ १॥

किसी समय गंगाके किनारे घने वनमें विचरण करते हुए राजाने मृगके बच्चे-जैसी आँखोंवाली तथा सुन्दर आभूषणोंसे युक्त एक सुन्दर स्त्रीको देखा॥ २॥

उसे देखकर राजा शन्तनु हर्षित हो गये और सोचने लगे कि साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूप-यौवनसे सम्पन्न यह स्त्री वही है, जिसके विषयमें पिताजीने मुझे बताया था॥ ३॥

उसके मुखकमलका पान करते हुए राजा तृप्त नहीं हुए। हर्षातिरेकसे उन निष्पाप राजाको रोमांच हो गया और उनका चित्त उस स्त्रीमें रम गया॥ ४॥

वह स्त्री भी उन्हें राजा महाभिष जानकर प्रेमासक्त हो गयी। वह मन्द-मन्द मुसकराती हुई राजाके सामने खड़ी हो गयी। उस सुन्दरीको देखकर राजा अत्यन्त प्रेमविवश हो गये तथा कोमल वाणीसे उसे सान्त्वना देते हुए मधुर वचन कहने लगे॥ ५-६॥

हे वामोरु! हे सुमुखि! तुम कोई देवी, मानुषी, गन्धर्वी, यक्षी, नागकन्या अथवा अप्सरा तो नहीं हो। हे वरारोहे! तुम जो कोई भी हो, मेरी भार्या बन जाओ। हे सुन्दरि! तुम प्रेमपूर्वक मुसकरा रही हो; अब मेरी धर्मपत्नी बन जाओ॥ ७-८॥

सूतजी बोले—राजा शन्तनु तो निश्चितरूपसे नहीं जान सके कि ये वे ही गंगा हैं, किंतु गंगाने उन्हें पहचान लिया कि ये शन्तनुके रूपमें उत्पन्न वही राजा महाभिष हैं। पूर्वकालीन प्रेमवश राजा शन्तनुके उस वचनको सुनकर उस स्त्रीने मन्द मुसकान करके यह वचन कहा॥ ९-१०॥

स्त्री बोली—हे नृपश्रेष्ठ! मैं यह जानती हूँ कि आप महाराज प्रतीपके योग्य पुत्र हैं। अतः भला कौन ऐसी स्त्री होगी, जो संयोगवश अपने अनुरूप पुरुषको पाकर भी उसे पतिरूपमें स्वीकार न करेगी॥ ११॥

वाग्बन्धेन नृपश्रेष्ठ वरिष्यामि पतिं किल।
शृणु मे समयं राजन् वृणोमि त्वां नृपोत्तम॥ १२

यच्च कुर्यामहं कार्यं शुभं वा यदि वाशुभम्।
न निषेध्या त्वया राजन्न वक्तव्यं तथाप्रियम्॥ १३

यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः।
तदा मुक्त्वा गमिष्यामि यथेष्टदेशं मारिष॥ १४

स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थनापूर्वकं हृदि।
महाभिषस्य प्रेमाथ विचिन्त्यैव च जाह्नवी॥ १५

तथेत्युक्ताथ सा देवी चकार नृपतिं पतिम्।
एवं वृता नृपेणाथ गङ्गा मानुषरूपिणी॥ १६

नृपस्य मन्दिरं प्राप्ता सुभगा वरवर्णिनी।
नृपतिस्तां समासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे॥ १७

सापि तं रमयामास भावज्ञा वै वराङ्गना।
न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ॥ १८

स तया मृगशावाक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा।
सा सर्वगुणसम्पन्ना सोऽपि कामविचक्षणः॥ १९

रेमाते मन्दिरे दिव्ये रमानारायणाविव।
एवं गच्छति काले सा दधार नृपतेस्तदा॥ २०

गर्भं गङ्गा वसुं पुत्रं सुषुवे चारुलोचना।
जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके॥ २१

तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पञ्चमे षष्ठ एव च।
सप्तमे वा हते पुत्रे राजा चिन्तापरोऽभवत्॥ २२

किं करोम्यद्य वंशो मे कथं स्यात्सुस्थिरो भुवि।
सप्त पुत्रा हता नूनमनया पापरूपया॥ २३

हे नृपश्रेष्ठ! वचनबद्ध करके ही मैं आपको अपना पति स्वीकार करूँगी। हे राजन्! हे नृपोत्तम! अब आप मेरी शर्त सुनिये, जिससे मैं आपका वरण कर सकूँ॥ १२॥

हे राजन्! मैं भला-बुरा जो भी कार्य करूँ, आप मुझे मना नहीं करेंगे तथा न कोई अप्रिय बात ही कहेंगे। जिस समय आप मेरा यह वचन नहीं मानेंगे, उसी समय हे मान्य नृपश्रेष्ठ! मैं आपको त्यागकर जहाँ चाहूँगी, उस जगह चली जाऊँगी॥ १३-१४॥

उस समय प्रार्थनापूर्वक वसुओंके जन्म ग्रहण करनेका स्मरण करके तथा महाभिषके पूर्वकालीन प्रेमको अपने मनमें सोच करके गंगाजीने राजा शन्तनुके 'तथास्तु' कहनेपर उन्हें अपना पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मानवीरूप धारण करनेवाली रूपवती तथा सुन्दर वर्णवाली गंगा महाराज शन्तनुकी पत्नी बनकर राजभवनमें पहुँच गयीं। राजा शन्तनु उन्हें पाकर सुन्दर उपवनमें विहार करने लगे॥ १५—१७॥

भावोंको जाननेवाली वे सुन्दरी गंगा भी राजा शन्तनुके साथ विहार करने लगीं। उनके साथ महाराज शन्तनुको क्रीडा करते अनेक वर्ष बीत गये, पर उन्हें समय बीतनेका बोध ही न हुआ। वे उन मृगलोचनाके साथ उसी प्रकार विहार करते थे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। सर्वगुणसम्पन्ना गंगा तथा चतुर शन्तनु भी दिव्य भवनमें लक्ष्मी तथा नारायणकी भाँति विहार करने लगे॥ १८-१९½॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गंगाजीने महाराज शन्तनुसे गर्भ धारण किया और यथासमय उन सुनयनीने एक वसुको पुत्ररूपमें जन्म दिया। उन्होंने उस बालकको उत्पन्न होते ही तत्काल जलमें फेंक दिया। इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें तथा सातवें पुत्रके मारे जानेपर राजा शन्तनुको बड़ी चिन्ता हुई॥ २०—२२॥

[उन्होंने सोचा—] अब मैं क्या करूँ? मेरा वंश इस पृथ्वीपर सुस्थिर कैसे होगा? इस पापिनीने मेरे सात पुत्र मार डाले। यदि इसे रोकता हूँ तो

निवारयामि यदि मां त्यक्त्वा यास्यति सर्वथा।
अष्टमोऽयं सुसम्प्राप्तो गर्भो मे मनसीप्सितः॥ २४

न वारयामि चेदद्य सर्वथेयं जले क्षिपेत्।
भविता वा न वा चाग्रे संशयोऽयं ममाद्भुतः॥ २५

सम्भवेऽपि च दुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत्।
एवं संशयिते कार्ये किं कर्तव्यं मयाधुना॥ २६

वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया।
ततः काले यदा जातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः॥ २७

मुनेर्येन हृता धेनुर्नन्दिनी स्त्रीजितेन हि।
तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतन्पदे॥ २८

दासोऽस्मि तव तन्वङ्गि प्रार्थयामि शुचिस्मिते।
पुत्रमेकं पुषाम्येनं देहि जीवितमद्य मे॥ २९

हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वया शुभाः।
अष्टमं रक्ष सुश्रोणि पतामि तव पादयोः॥ ३०

अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम्।
वंशो मे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने॥ ३१

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः।
तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थयाम्यष्टमं सुतम्॥ ३२

इत्युक्तापि गृहीत्वा तं यदा गन्तुं समुत्सुका।
तदातिकुपितो राजा तामुवाचातिदुःखितः॥ ३३

पापिष्ठे किं करोम्यद्य निरयान्न बिभेषि किम्।
कासि पापकराणां त्वं पुत्री पापरता सदा॥ ३४

यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयतामिह।
किं करोमि त्वया पापे वंशान्तकरयानया॥ ३५

यह मुझे त्यागकर चली जायगी। मेरा अभिलषित आठवाँ गर्भ भी इसे प्राप्त हो गया है। यदि अब भी मैं इसे रोकता नहीं हूँ तो यह इसे भी जलमें फेंक देगी। यह भी मुझे महान् सन्देह है कि भविष्यमें कोई और सन्तति होगी अथवा नहीं। यदि उत्पन्न हो भी तो पता नहीं कि यह दुष्टा उसकी रक्षा करेगी अथवा नहीं? इस संशयकी स्थितिमें मैं अब क्या करूँ?॥ २३—२६॥

वंशकी रक्षाके लिये मुझे कोई दूसरा यत्न करना ही होगा। तदनन्तर यथासमय जब वह आठवाँ 'द्यौ' नामक वसु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी स्त्रीके वशीभूत होकर वसिष्ठकी नन्दिनी गौका हरण कर लिया था, तब उस पुत्रको देखकर राजा शन्तनु गंगाजीके पैरोंपर गिरते हुए कहने लगे॥ २७-२८॥

हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे शुचिस्मिते! मैं प्रार्थना करता हूँ। मैं इस पुत्रको पालना चाहता हूँ, अतः इसे जीवित ही मुझे दे दो॥ २९॥

हे करभोरु! तुमने मेरे सात सुन्दर पुत्रोंको मार डाला, किंतु इस आठवें पुत्रकी रक्षा करो। हे सुश्रोणि! मैं तुम्हारे पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ३०॥

हे परम रूपवती! इसके बदले तुम मुझसे जो माँगोगी, मैं वह दुर्लभ वस्तु भी तुम्हें दूँगा। अब तुम मेरे वंशकी रक्षा करो॥ ३१॥

वेदविद् विद्वानोंने कहा है कि पुत्रहीन मनुष्यकी स्वर्गमें भी गति नहीं होती। इसी कारण हे सुन्दरि! अब मैं इस आठवें पुत्रके लिये याचना करता हूँ॥ ३२॥

राजा शन्तनुके ऐसा कहनेपर भी जब गंगा उस पुत्रको लेकर जानेको उद्यत हुईं, तब उन्होंने अत्यन्त कुपित एवं दुःखित होकर उनसे कहा—'हे पापिनि! अब मैं क्या करूँ? क्या तुम नरकसे भी नहीं डरती? तुम कौन हो? लगता है कि तुम पापियोंकी पुत्री हो, तभी तो तुम सदा पापकर्ममें लगी रहती हो, अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ या रहो, किंतु यह पुत्र यहीं रहेगा। हे पापिनि! अपने वंशका अन्त करनेवाली ऐसी तुम्हें रखकर भी मैं क्या करूँगा?'॥ ३३—३५॥

एवं वदति भूपाले सा गृहीत्वा सुतं शिशुम्।
गच्छन्ती वचनं कोपसंयुता तमुवाच ह॥ ३६

पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि वने गता।
समयो मे गमिष्यामि वचनं ह्यन्यथाकृतम्॥ ३७

गङ्गां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम्।
वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना॥ ३८

व्रजन्तु मानुषीं योनिं स्थितां चिन्तातुरास्तु माम्।
दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननी नो भवानघे॥ ३९

तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं जानीहि सम्भवो मम॥ ४०

सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापादृषेस्तु ते।
कियन्तं कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति॥ ४१

गङ्गादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शन्तनो स्वयम्।
वसुं देवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम्॥ ४२

गाङ्गेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः।
अद्य तत्र नयाम्येनं यत्र त्वं वै मया वृतः॥ ४३

दास्यामि यौवनप्राप्तं पालयित्वा महीपते।
न मातृरहितः पुत्रो जीवेन्न च सुखी भवेत्॥ ४४

इत्युक्त्वान्तर्दधे गङ्गा तं गृहीत्वा च बालकम्।
राजा चातीव दुःखार्तः संस्थितो निजमन्दिरे॥ ४५

भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्य चाद्भुतम्।
सर्वदा चिन्तयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः॥ ४६

एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयां गतः।
निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि ॥ ४७

गङ्गातीरमनुप्राप्तः स राजा शन्तनुस्तदा।
नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वा विस्मितः स महीपतिः॥ ४८

राजाके ऐसा कहनेपर उस नवजात शिशुको लेकर जाती हुई गंगाने क्रोधपूर्वक उनसे कहा—पुत्रकी कामनावाली मैं भी इस पुत्रको वनमें ले जाकर पालूँगी। शर्तके अनुसार अब मैं चली जाऊँगी; क्योंकि आपने अपना वचन तोड़ा है। [हे राजन्!] मुझे आप गंगा जानिये; देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये ही मैं यहाँ आयी थी। महात्मा वसिष्ठने प्राचीन कालमें आठों वसुओंको शाप दिया था कि तुम सब मनुष्ययोनिमें जाकर जन्म लो। तब चिन्तासे व्याकुल होकर आठों वसु मुझे वहाँ स्थित देखकर कहने लगे—हे अनघे! आप हमारी माता बनें। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें वरदान देकर मैं आपकी पत्नी बन गयी। आप ऐसा समझ लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही मेरा जन्म हुआ है॥ ३६—४०॥

वे सातों वसु तो आपके पुत्र बनकर ऋषिके शापसे विमुक्त हो गये। यह आठवाँ वसु कुछ समयतक आपके पुत्ररूपमें विद्यमान रहेगा। अतः हे महाराज शन्तनु! मुझ गंगाके द्वारा दिये हुए पुत्रको आप स्वीकार कीजिये। इसे आठवाँ वसु जानते हुए आप पुत्र-सुखका भोग करें; क्योंकि हे महाभाग! यह 'गांगेय' बड़ा ही बलवान् होगा। अब इसे मैं वहीं ले जा रहीं हूँ, जहाँ मैंने आपका पतिरूपसे वरण किया था॥ ४१—४३॥

हे राजन्! इसे पालकर इसके युवा होनेपर मैं पुनः आपको दे दूँगी; क्योंकि मातृहीन बालक न जी पाता है और न सुखी रहता है॥ ४४॥

ऐसा कहकर उस बालकको लेकर गंगा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राजा भी अत्यन्त दुःखित होकर अपने राजभवनमें रहने लगे॥ ४५॥

महाराज शन्तनु स्त्री तथा पुत्रके वियोगजन्य महान् कष्टका सदा अनुभव करते हुए भी किसी प्रकार राज्यकार्य सँभालने लगे॥ ४६॥

कुछ समय बीतनेपर महाराज आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ अनेक प्रकारके मृगगणों, भैंसों तथा सूकरोंको अपने बाणोंसे मारते हुए वे गंगाजीके तटपर जा पहुँचे। उस नदीमें बहुत थोड़ा जल देखकर वे राजा शन्तनु बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४७-४८॥

तत्रापश्यत्कुमारं तं मुञ्चन्तं विशिखान्बहून्।
आकृष्य च महाचापं क्रीडन्तं सरितस्तटे॥ ४९

तं वीक्ष्य विस्मितो राजा न स्म जानाति किञ्चन।
नोपलेभे स्मृतिं भूपः पुत्रोऽयं मम वा न वा॥ ५०

दृष्ट्वाप्यमानुषं कर्म बाणेषु लघुहस्तताम्।
विद्यां वाप्रतिमां रूपं तस्य वै स्मरसन्निभम्॥ ५१

पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य पुत्रोऽसि चानघ।
नोवाच किञ्चिद्वीरोऽसौ मुञ्चञ्छिलीमुखानथ॥ ५२

अन्तर्धानं गतः सोऽथ राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
कोऽयं मम सुतो बालः किं करोमि व्रजामि कम्॥ ५३

गङ्गां तुष्टाव भूपालः स्थितस्तत्र समाहितः।
दर्शनं सा ददौ चाथ चारुरूपा यथा पुरा॥ ५४

दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं बभाषे नृपतिः स्वयम्।
कोऽयं गङ्गे गतो बालो मम त्वं दर्शयाधुना॥ ५५

गङ्गोवाच

पुत्रोऽयं तव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः।
ददामि तव हस्ते तु गाङ्गेयोऽयं महातपाः॥ ५६

कीर्तिकर्ता कुलस्यास्य भविता तव सुव्रत।
पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदं च शाश्वतम्॥ ५७

वसिष्ठस्याश्रमे दिव्ये संस्थितोऽयं सुतस्तव।
सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलः शुचिः॥ ५८

यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव।
गृहाण गच्छ राजेन्द्र सुखी भव नराधिप॥ ५९

इत्युक्त्वान्तर्दधे गङ्गा दत्त्वा पुत्रं नृपाय वै।
नृपतिस्तु मुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः॥ ६०

उन्होंने वहाँ नदीके किनारे खेलते हुए एक बालकको महान् धनुषको खींचकर बहुतसे बाणोंको छोड़ते हुए देखा। उसे देखकर राजा शन्तनु बड़े विस्मित हुए और कुछ भी नहीं जान पाये। उन्हें यह भी स्मरण न हो पाया कि यह मेरा पुत्र है या नहीं॥ ४९-५०॥

उस बालकके अतिमानवीय कृत्य, बाण चलानेके हस्तलाघव, असाधारण विद्या और कामदेवके समान सुन्दर रूपको देखकर अत्यन्त विस्मित राजाने उससे पूछा—'हे निर्दोष बालक! तुम किसके पुत्र हो?' किंतु उस वीर बालकने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बाण चलाता हुआ अन्तर्धान हो गया। तब राजा शन्तनु चिन्तित होकर यह सोचने लगे कि कहीं यह मेरा ही पुत्र तो नहीं है? अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?॥ ५१—५३॥

जब उन्होंने वहीं खड़े होकर समाहितचित्तसे गंगाजीकी स्तुति की तब गंगाजीने प्रसन्न होकर पहलेके ही समान एक रूपवती स्त्रीके रूपमें उन्हें दर्शन दिया॥ ५४॥

सर्वांगसुन्दरी गंगाजीको देखकर राजा शन्तनु बोले—हे गंगे! यह बालक कौन था और कहाँ चला गया? आप उसे मुझको दिखा दीजिये॥ ५५॥

गंगाजी बोलीं—हे राजेन्द्र! यह आपका ही पुत्र आठवाँ वसु है, जिसे मैंने पाला है। इस महातपस्वी गांगेयको मैं आपको सौंपती हूँ॥ ५६॥

हे सुव्रत! यह बालक आपके इस कुलकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा। इसे सभी वेदशास्त्र एवं शाश्वत धनुर्वेदकी शिक्षा दी गयी है॥ ५७॥

आपका यह पुत्र वसिष्ठजीके दिव्य आश्रममें रहा है और सब विद्याओंमें पारंगत, कार्यकुशल एवं सदाचारी है॥ ५८॥

जिस विद्याको जमदग्निपुत्र परशुराम जानते हैं, उसे आपका यह पुत्र जानता है। हे राजेन्द्र! हे नराधिप! आप इसे ग्रहण कीजिये, जाइये और सुखपूर्वक रहिये॥ ५९॥

ऐसा कहकर तथा वह पुत्र राजाको देकर गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं। उसे पाकर राजा शन्तनु बहुत आनन्दित और सुखी हुए॥ ६०॥

समालिङ्ग्य सुतं राजा समाघ्राय च मस्तकम्।
समारोप्य रथे पुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे॥ ६१

गत्वा गजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम्।
दैवज्ञं च समाहूय पप्रच्छ च शुभं दिनम्॥ ६२

समाहृत्य प्रजाः सर्वाः सचिवान्सर्वशः शुभान्।
यौवराज्येऽथ गाङ्गेयं स्थापयामास पार्थिवः॥ ६३

कृत्वा तं युवराजानं पुत्रं सर्वगुणान्वितम्।
सुखमास स धर्मात्मा न सस्मार च जाह्नवीम्॥ ६४

सूत उवाच

एतद्वः कथितं सर्वं कारणं वसुशापजम्।
गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः सम्भवं तथा॥ ६५

गङ्गावतरणं पुण्यं वसूनां सम्भवं तथा।
यः शृणोति नरः पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ६६

पुण्यं पवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमाः।
यथा मया श्रुतं व्यासात्पुराणं वेदसम्मितम्॥ ६७

श्रीमद्भागवतं पुण्यं नानाख्यानकथान्वितम्।
द्वैपायनमुखोद्भूतं पञ्चलक्षणसंयुतम्॥ ६८

शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा।
इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमाः॥ ६९

राजा शन्तनु पुत्रका आलिंगन करके तथा उसका मस्तक सूँघकर और उसे अपने रथपर बैठाकर अपने नगरकी ओर चल पड़े॥ ६१॥

राजाने हस्तिनापुर जाकर महान् उत्सव किया और दैवज्ञको बुलाकर शुभ मुहूर्त पूछा॥ ६२॥

राजा शन्तनुने सब प्रजाजनों तथा सभी श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर गंगापुत्रको युवराज पदपर बैठा दिया॥ ६३॥

उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको युवराज बनाकर वे धर्मात्मा शन्तनु सुखपूर्वक रहने लगे। अब उन्हें गंगाजीकी भी सुधि नहीं रही॥ ६४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मैंने आप सबको वसुओंके शापका कारण, गंगाके प्राकट्य तथा भीष्मकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कह दिया॥ ६५॥

जो मनुष्य गंगावतरण तथा वसुओंके उद्भवकी इस पवित्र कथाको सुनता है, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६६॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा वेद-सम्मत पौराणिक आख्यान जैसा व्यासजीके मुखारविन्दसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया॥ ६७॥

द्वैपायन व्यासजीके मुखसे निःसृत यह श्रीमद्देवी-भागवतमहापुराण बड़ा ही पवित्र, अनेकानेक कथाओंसे परिपूर्ण तथा सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँच पुराण-लक्षणोंसे युक्त है॥ ६८॥

हे मुनिश्रेष्ठो! सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले, कल्याणकारी, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस इतिहासका मैंने आपलोगोंसे वर्णन कर दिया॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
देवव्रतोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

~~o~~

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मत्स्यगन्धा (सत्यवती)-को देखकर राजा शन्तनुका मोहित होना, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा करना और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह

ऋषय ऊचुः

वसूनां सम्भवः सूत कथितः शापकारणात्।
गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिः कथिता लोमहर्षणे॥ १

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षणतनय सूतजी! आपने शापवश अष्टवसुओंके जन्म तथा गंगाजीकी उत्पत्तिका वर्णन किया। हे धर्मज्ञ! व्यासजीकी सत्यवती

माता व्यासस्य धर्मज्ञ नाम्ना सत्यवती सती।
कथं शन्तनुना प्राप्ता भार्या गन्धवती शुभा॥ २

तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथं वृता।
राज्ञा धर्मवरिष्ठेन संशयं छिन्धि सुव्रत॥ ३

सूत उवाच

शन्तनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा।
वनं जगाम निघ्नन्वै मृगांश्च महिषान् रुरून्॥ ४

चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः।
रममाणः सुखं प्राप कुमारेण यथा हरः॥ ५

एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खड्गसूकरान्।
स कदाचिद्वनं प्राप्तः कालिन्दीं सरितां वराम्॥ ६

महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम्।
तस्य प्रभवमन्विच्छन्सञ्चचार वनं तदा॥ ७

न मन्दारस्य गन्धोऽयं मृगनाभिमदस्य न।
चम्पकस्य न मालत्या न केतक्या मनोहरः॥ ८

न चानुभूतपूर्वोऽयं वाति गन्धवहः शुभः।
कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः॥ ९

इति सञ्चिन्त्यमानोऽसौ बभ्राम वनमण्डलम्।
मोहितो गन्धलोभेन शन्तनुः पवनानुगः॥ १०

स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम्।
शृङ्गाररहितां कान्तां सुस्थितां मलिनाम्बराम्॥ ११

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं विस्मितः स महीपतिः।
अस्या देहस्य गन्धोऽयमिति सञ्जातनिश्चयः॥ १२

नामकी साध्वी माता जो पवित्र गन्धवाली थीं, वे राजा शन्तनुको पत्नीरूपसे कैसे प्राप्त हुईं? यह हमें विस्तारके साथ बताइये। महान् धर्मनिष्ठ राजा शन्तनुने निषादपुत्रीके साथ विवाह क्यों किया? हे सुव्रत! यह बताकर आप हमारे सन्देहका निवारण कीजिये॥ १—३॥

सूतजी बोले—राजर्षि शन्तनु सदा आखेट करनेमें तत्पर रहते थे। वे वनमें जाकर मृग, महिष तथा रुरुमृगोंका वध किया करते थे॥ ४॥

राजा शन्तनु केवल चार वर्षतक भीष्मके साथ उसी प्रकार सुखसे रहे, जिस प्रकार भगवान् शंकर कार्तिकेयके साथ आनन्दपूर्वक रहते थे॥ ५॥

एक बार वे महाराज शन्तनु वनमें बाण छोड़ते हुए बहुतसे गैंड़ों तथा सूकरोंका वध करते हुए किसी समय नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाके किनारे जा पहुँचे॥ ६॥

राजाने वहाँपर कहींसे आती हुई उत्तम गन्धको सूँघा। तब उस सुगन्धिके उद्गमका पता लगानेके लिये वे वनमें विचरने लगे॥ ७॥

वे बड़े असमंजसमें पड़ गये कि यह मनोहर सुगन्धि न मन्दारपुष्पकी है, न कस्तूरीकी है, न मालतीकी है, न चम्पाकी है और न तो केतकीकी ही है!॥ ८॥

मैंने ऐसी अनुपम सुगन्धिका पूर्वमें कभी नहीं अनुभव किया था। [इस दिव्य सुगन्धिको लेकर] सुन्दर वायु बह रही है। मेरी घ्राणेन्द्रियको मुग्ध कर देनेवाली यह वायु कहाँसे आ रही है?॥ ९॥

इस प्रकार सोचते-विचारते राजा शन्तनु गन्धके लोभसे मोहित सुगन्धित वायुका अनुसरण करते हुए वनप्रदेशमें विचरण करने लगे॥ १०॥

उन्होंने यमुनानदीके तटपर बैठी हुई एक दिव्यदर्शनवाली स्त्रीको देखा, जो मलिन वस्त्र धारण करने और शृंगार न करनेपर भी मनोहर दीख रही थी॥ ११॥

उस श्याम नयनोंवाली स्त्रीको देखकर राजा आश्चर्यमें पड़ गये और उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि यह सुगन्धि इसी स्त्रीके शरीरकी है॥ १२॥

तदद्भुतं रूपमतीव सुन्दरं
तथैव गन्धोऽखिललोकसम्मतः।
वयश्च तादृङ् नवयौवनं शुभं
दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत्॥ १३
केयं कुतो वा समुपागताधुना
देवाङ्गना वा किमु मानुषी वा।
गन्धर्वपुत्री किल नागकन्या
जाने कथं गन्धवतीं नु कामिनीम्॥ १४
सञ्चिन्त्य चैवं मनसा नृपोऽसौ
न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम्।
गङ्गां स्मरन्कामवशं गतोऽथ
पप्रच्छ कान्तां तटसंस्थितां च॥ १५
कासि प्रिये कस्य सुतासि कस्मा-
दिह स्थिता त्वं विजने वरोरु।
एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे
विवाहिता वा न विवाहितासि॥ १६
सञ्जातकामोऽहमरालनेत्रे
त्वां वीक्ष्य कान्तां च मनोरमां च।
ब्रूहि प्रिये यासि चिकीर्षसि त्वं
किं चेति सर्वं मम विस्तरेण॥ १७
इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण
प्रोवाच तं सस्मितमम्बुजेक्षणा।
दाशस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्
कन्यां पितुः शासनसंस्थितां च॥ १८
तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव
संवाहयामीह जले नृपेन्द्र।
पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति कामं
सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे॥ १९
इत्येवमुक्त्वा विरराम बाला
कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे।
कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं
वृथा न गच्छेन्ननु यौवनं ते॥ २०
न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया
त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि।
दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव
मनोभवस्तापयति प्रिये माम्॥ २१

उसका अद्भुत एवं अतिशय सुन्दर रूप, सब प्राणियोंका मन स्वाभाविक रूपसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुगन्धि, उसकी अवस्था तथा उसका वैसा शुभ नवयौवन देखकर राजा शन्तनुको महान् विस्मय हुआ॥ १३॥

यह कौन है और इस समय यह कहाँसे आयी है? यह कोई देवांगना है या मानवी स्त्री, यह कोई गन्धर्वकन्या अथवा नागकन्या है? मैं इस सुगन्धा कामिनीके विषयमें कैसे जानकारी प्राप्त करूँ?॥ १४॥

इस प्रकार विचार करके भी वे राजा जब कुछ निश्चय नहीं कर सके, तब तत्क्षण गंगाजीका स्मरण करते हुए वे कामके वशीभूत हो गये और तटपर बैठी हुई उस सुन्दरीसे उन्होंने पूछा—हे प्रिये! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? हे वरोरु! तुम इस निर्जन वनमें क्यों बैठी हो? हे सुनयने! क्या तुम अकेली ही हो? तुम विवाहिता हो या कुमारी; यह बताओ॥ १५-१६॥

हे अरालनेत्रे! तुम जैसी मनोरमा स्त्रीको देखकर मैं कामातुर हो गया हूँ। हे प्रिये! विस्तारपूर्वक मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?॥ १७॥

महाराज शन्तनुके वचन सुनकर वह सुन्दर दाँतोंवाली तथा कमलके समान नयनोंवाली स्त्री मुसकराकर बोली—हे राजन्! आप मुझे निषादकन्या और अपने पिताकी आज्ञामें रहनेवाली कन्या समझें॥ १८॥

हे नृपेन्द्र! मैं अपने धर्मका अनुसरण करती हुई जलमें यह नौका चलाती हूँ। हे अर्थपते! पिताजी अभी ही घर गये हैं। आपके सम्मुख यह बातें मैंने सत्य कही हैं॥ १९॥

यह कहकर वह निषादकन्या मौन हो गयी। तब कामसे पीड़ित महाराज शन्तनुने उससे कहा—मुझ कुरुवंशी वीरको तुम अपना पति बना लो, जिससे तुम्हारा यौवन व्यर्थ न जाय॥ २०॥

मेरी कोई दूसरी पत्नी नहीं है। अतः हे मृगनयनी! तुम मेरी धर्मपत्नी बन जाओ। हे प्रिये! मैं सर्वदाके लिये तुम्हारा वशवर्ती दास बन जाऊँगा। मुझे कामदेव पीड़ित कर रहा है॥ २१॥

गता प्रिया मां परिहृत्य कान्ता
नान्या वृताहं विधुरोऽस्मि कान्ते।
त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां
मनो हि जातं विवशं मदीयम्॥ २२
श्रुत्वामृतास्वादरसं नृपस्य
वचोऽतिरम्यं खलु दाशकन्या।
उवाच तं सात्त्विकभावयुक्ता
कृत्वातिधैर्यं नृपतिं सुगन्धा॥ २३
यदात्थ राजन् मयि तत्तथैव
मन्येऽहमेतत्तु यथा वचस्ते।
नास्मि स्वतन्त्रा त्वमवेहि कामं
दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु॥ २४
न स्वैरिणीहास्म्यपि दाशपुत्री
पितुर्वशेऽहं सततं चरामि।
स चेद्ददाति प्रथितः पिता मे
गृहाण पाणिं वशगास्मि तेऽहम्॥ २५
मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति
यथा पुनर्मां नवयौवनां च।
दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया
धृतिः कुलाचारपरम्परासु॥ २६

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपतिः काममोहितः।
गतो दाशपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे॥ २७
दृष्ट्वा नृपतिमायान्तं दाशोऽतिविस्मयं गतः।
प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृताञ्जलिरभाषत॥ २८

दाश उवाच

दासोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहं तवागमे।
आज्ञां देहि महाराज यदर्थमिह चागमः॥ २९

राजोवाच

धर्मपत्नीं करिष्यामि सुतामेतां तवानघ।
त्वया चेद्दीयते मह्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३०

दाश उवाच

कन्यारत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं प्रार्थयसे नृप।
दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन॥ ३१
तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथिवीपतिः।
सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै॥ ३२

मेरी प्रियतमा मुझे छोड़कर चली गयी है, तबसे मैंने अपना दूसरा विवाह नहीं किया। हे कान्ते! मैं इस समय विधुर हूँ। तुम जैसी सर्वांगसुन्दरीको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं रह गया है॥ २२॥

राजाकी अमृतरसके समान मधुर तथा मनोहारी बात सुनकर वह दाशकन्या सुगन्धा सात्त्विक भावसे युक्त होकर धैर्य धारण करके राजासे बोली—हे राजन्! आपने मुझसे जो कुछ कहा, वह यथार्थ है; किंतु आप अच्छी तरह जान लीजिये कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिताजी ही मुझे दे सकते हैं। अतएव आप उन्हींसे मेरे लिये याचना कीजिये॥ २३-२४॥

मैं एक निषादकी कन्या होती हुई भी स्वेच्छाचारिणी नहीं हूँ। मैं सदा पिताके वशमें रहती हुई सब काम करती हूँ। यदि मेरे पिताजी मुझे आपको देना स्वीकार कर लें तब आप मेरा पाणिग्रहण कर लीजिये और मैं सदाके लिये आपके अधीन हो जाऊँगी॥ २५॥

हे राजन्! परस्पर आसक्त होनेपर भी कुलकी मर्यादा तथा परम्पराके अनुसार धैर्य धारण करना चाहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—उस सुगन्धाकी यह बात सुनकर कामातुर राजा उसे माँगनेके लिये निषादराजके घर गये॥ २७॥

इस प्रकार महाराज शन्तनुको अपने घर आया देखकर निषादराजको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर वह बोला—॥ २८॥

निषादने कहा—हे राजन्! मैं आपका दास हूँ। आपके आगमनसे मैं कृतकृत्य हो गया। हे महाराज! आप जिस कार्यके लिये आये हों, मुझे आज्ञा दीजिये॥ २९॥

राजा बोले—हे अनघ! यदि आप अपनी यह कन्या मुझे प्रदान कर दें तो मैं इसे अपनी धर्मपत्नी बना लूँगा; यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ३०॥

निषादने कहा—हे महाराज! यदि आप मेरे इस कन्यारत्नके लिये प्रार्थना कर रहे हैं तो मैं अवश्य दूँगा; क्योंकि देनेयोग्य वस्तु तो कभी अदेय नहीं होती है; किंतु हे महाराज! आपके बाद इस कन्याका पुत्र ही राजाके रूपमें अभिषिक्त होना चाहिये, आपका दूसरा पुत्र नहीं॥ ३१-३२॥

सूत उवाच

श्रुत्वा वाक्यं तु दाशस्य राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
गाङ्गेयं मनसा कृत्वा नोवाच नृपतिस्तदा॥ ३३
कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिन्ताविष्टो महीपतिः।
न सस्नौ बुभुजे नाथ न सुष्वाप गृहं गतः॥ ३४
चिन्तातुरं तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा।
गत्वापृच्छन्महीपालं तदसन्तोषकारणम्॥ ३५
दुर्जयः कोऽस्ति शत्रुस्ते करोमि वशगं तव।
का चिन्ता नृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम॥ ३६
किं तेन जातेन सुतेन राजन्
दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः।
ऋणं ग्रहीतुं समुपागतोऽसौ
प्राग्जन्मजं नात्र विचारणास्ति॥ ३७
विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि
ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः।
वनं गतो लक्ष्मणजानकीभ्यां
सहैव शैलं किल चित्रकूटम्॥ ३८
सुतो हरिश्चन्द्रनृपस्य राजन्
यो रोहितश्चेति प्रसिद्धनामा।
क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च
दासार्पितो विप्रगृहे तु नूनम्॥ ३९
तथाजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो
नाम्ना शुनःशेप इति प्रसिद्धः।
क्रीतस्तु पित्राप्यथ यूपबद्धः
सम्मोचितो गाधिसुतेन पश्चात्॥ ४०
पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं
छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम्।
अकार्यमप्याचरितं च तेन
गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता॥ ४१
इदं शरीरं तव भूपते न
क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम्।
न शोचनीयं मयि वर्तमाने-
ऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः॥ ४२

सूतजी बोले—निषादकी बात सुनकर राजा शन्तनु चिन्तित हो उठे। उस समय मनमें भीष्मका स्मरण करके राजा कुछ भी उत्तर न दे सके॥ ३३॥

तब कामातुर तथा चिन्तित राजा राजमहलमें चले गये। उन्होंने घर जानेपर न स्नान किया, न भोजन किया और न शयन ही किया॥ ३४॥

तब उन्हें चिन्तित देखकर पुत्र देवव्रत राजाके पास जाकर उनकी इस चिन्ताका कारण पूछने लगे—हे नृपश्रेष्ठ! कौन-सा ऐसा शत्रु है जिसको आप जीत न सके; मैं उसे आपके अधीन कर दूँ। हे नृपोत्तम! आपकी क्या चिन्ता है, मुझे सही-सही बताइये॥ ३५-३६॥

हे राजन्! भला उस उत्पन्न हुए पुत्रसे क्या लाभ? जो पैदा होकर अपने पिताका दुःख न समझे तथा उसको दूर करनेका उपाय न कर सके। ऐसा कुपुत्र तो पूर्वजन्मके किसी ऋणको वापस लेनेके लिये यहाँ आता है; इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ३७॥

दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी भी पिताकी आज्ञासे राज्य त्यागकर लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें चले गये तथा चित्रकूटपर्वतपर निवास करने लगे॥ ३८॥

इसी प्रकार हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र जो रोहित नामसे प्रसिद्ध था, अपने पिताके इच्छानुसार बिकनेके लिये तत्पर हो गया और खरीदा हुआ वह बालक ब्राह्मणके घरमें सेवकका कार्य करने लगा॥ ३९॥

'अजीगर्त' ब्राह्मणका एक श्रेष्ठ पुत्र था, जो शुनःशेप नामसे प्रसिद्ध था। खरीद लिये जानेपर वह पिताके द्वारा यूपमें बाँध दिया गया, जिसे बादमें विश्वामित्रने छुड़ाया था॥ ४०॥

पूर्वकालमें पिताकी आज्ञासे ही परशुरामने अपनी माताका सिर काट दिया था, ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है। इस अनुचित कर्मको करके भी उन्होंने पिताकी आज्ञाका महत्त्व बढ़ाया था॥ ४१॥

हे पृथ्वीपते! यह मेरा शरीर आपका ही है। यद्यपि मैं समर्थ नहीं हूँ; फिर भी आप कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मेरे रहते आपको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। मैं आपका असाध्य कार्य भी तत्काल पूरा करूँगा॥ ४२॥

प्रब्रूहि राजंस्तव कास्ति चिन्ता
निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा।
देहेन मे चेच्चरितार्थता वा
भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा॥ ४३

धिक् तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं
क्षमोऽपि सन्न प्रतिपादयेद्यः।
जातेन किं तेन सुतेन कामं
पितुर्न चिन्तां हि समुद्धरेद्यः॥ ४४

सूत उवाच

निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शन्तनुर्नृपः।
लज्जमानस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम्॥ ४५

राजोवाच

चिन्ता मे महती पुत्र यस्त्वमेकोऽसि मे सुतः।
शूरोऽतिबलवान्मानी संग्रामेष्वपराङ्मुखः॥ ४६

एकापत्यस्य मे तात वृथेदं जीवितं किल।
मृते त्वयि मृधे क्वापि किं करोमि निराश्रयः॥ ४७

एषा मे महती चिन्ता तेनाद्य दुःखितोऽस्म्यहम्।
नान्या चिन्तास्ति मे पुत्र यां तवाग्रे वदाम्यहम्॥ ४८

सूत उवाच

तदाकर्ण्याथ गाङ्गेयो मन्त्रिवृद्धानपृच्छत।
न मां वदति भूपालो लज्जयाद्य परिप्लुतः॥ ४९

वित्त वार्तां नृपस्याद्य पृष्ट्वा यूयं विनिश्चयात्।
सत्यं ब्रुवन्तु मां सर्वं तत्करोमि निराकुलः॥ ५०

तच्छ्रुत्वा ते नृपं गत्वा संविज्ञाय च कारणम्।
शशंसुर्विदितार्थस्तु गाङ्गेयस्तदचिन्तयत्॥ ५१

सहितस्तैर्जगामाशु दाशस्य सदनं तदा।
प्रेमपूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः॥ ५२

गाङ्गेय उवाच

पित्रे देहि सुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम्।
माता मेऽस्तु सुतेयं ते दासोऽस्म्यस्याः परन्तप॥ ५३

हे राजन्! आप बताइये कि आपको किस बातकी चिन्ता है? मैं अभी धनुष लेकर उसका निवारण कर दूँगा। यदि मेरे इस शरीरसे भी आपका कार्य सिद्ध हो सके तो मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करनेको तत्पर हूँ। उस पुत्रको धिक्कार है, जो समर्थ होकर भी अपने पिताकी इच्छाको पूर्ण नहीं करता। जिस पुत्रके द्वारा पिताकी चिन्ता दूर न हुई, उस पुत्रका जन्म लेनेका क्या प्रयोजन?॥ ४३-४४॥

सूतजी बोले—अपने पुत्र गांगेयका वचन सुनकर महाराज शन्तनु मनमें लज्जित होते हुए उससे शीघ्र ही कहने लगे॥ ४५॥

राजा बोले—हे पुत्र! मुझे यही महान् चिन्ता है कि तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। यद्यपि तुम बलवान्, स्वाभिमानी, रणस्थलमें पीठ न दिखानेवाले साहसी पुत्र हो तथापि केवल एक पुत्र होनेके कारण मुझ पिताका जीवन व्यर्थ है; क्योंकि यदि कहीं किसी समरमें तुम्हें अमरगति प्राप्त हो गयी तो मैं असहाय होकर क्या कर सकूँगा? यही मुझे सबसे बड़ी चिन्ता लगी है; इसी कारण मैं आजकल दुःखित रहता हूँ। हे पुत्र! इसके अतिरिक्त मुझे दूसरी कोई चिन्ता नहीं है, जिसे मैं तुम्हारे सामने कहूँ॥ ४६—४८॥

सूतजी बोले—यह सुनकर गांगेयने वृद्ध मन्त्रियोंसे पूछा कि लज्जासे परिपूर्ण महाराज मुझे कुछ बता नहीं रहे हैं॥ ४९॥

आपलोग राजाकी भावना जानकर सही एवं निश्चित कारण मुझे बताइये; मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे सम्पन्न करूँगा॥ ५०॥

यह सुनकर मन्त्रिगण राजाके पास गये और सब कारण सही-सही जानकर उन्होंने युवराज गांगेयसे आकर कह दिया। तब उनका अभिप्राय जानकर गांगेय विचार करने लगे। मन्त्रियोंके साथ गंगापुत्र देवव्रत उस निषादके घर शीघ्र गये और प्रेमके साथ विनम्र होकर यह कहने लगे॥ ५१-५२॥

गांगेय बोले—हे परन्तप! आप अपनी सुन्दरी कन्या मेरे पिताजीके लिये प्रदान कर दें—यही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आपकी ये कन्या मेरी माता हों और मैं इनका सेवक रहूँगा॥ ५३॥

दाश उवाच

त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरु नृपात्मज।
पुत्रोऽस्या न भवेद् राजा वर्तमाने त्वयीति वै॥ ५४

गाङ्गेय उवाच

मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम्।
पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः॥ ५५

दाश उवाच

सत्यं वाक्यं मया ज्ञातं पुत्रस्ते बलवान्भवेत्।
सोऽपि राज्यं बलान्नूनं गृह्णीयादिति निश्चयः॥ ५६

गाङ्गेय उवाच

न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा।
सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम्॥ ५७

सूत उवाच

एवं कृतां प्रतिज्ञां तु निशम्य झषजीवकः।
ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्गशोभनाम्॥ ५८
अनेन विधिना तेन वृता सत्यवती प्रिया।
न जानाति परं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः॥ ५९

निषादने कहा—हे महाभाग! हे नृपनन्दन! आप स्वयं ही इसे अपनी भार्या बनाइये; क्योंकि आपके रहते इसका पुत्र राजा नहीं हो सकेगा॥ ५४॥

गांगेय बोले—आपकी यह कन्या मेरी माता है। मैं राज्य नहीं करूँगा। इसका पुत्र ही निश्चितरूपसे राज्य करेगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ५५॥

निषादने कहा—मैंने आपकी बात सही मान ली; परंतु यदि आपका पुत्र बलवान् हुआ तो वह बलपूर्वक राज्यको निश्चय ही ले लेगा॥ ५६॥

गांगेय बोले—हे तात! मैं कभी विवाह नहीं करूँगा; मेरा यह वचन सर्वथा सत्य है—यह मैंने भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली॥ ५७॥

सूतजी बोले—गांगेयद्वारा की गयी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर निषादने उन राजा शन्तनुको अपनी सर्वांगसुन्दरी कन्या सत्यवती सौंप दी॥ ५८॥

इस प्रकार राजा शन्तनुने प्रिया सत्यवतीसे विवाह कर लिया। वे नृपश्रेष्ठ शन्तनु पूर्वमें सत्यवतीसे व्यासजीका जन्म नहीं जानते थे॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
देवव्रतप्रतिज्ञावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

दुर्वासाका कुन्तीको अमोघ कामद मन्त्र देना, मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णका जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, शापके कारण पाण्डुका सन्तानोत्पादनमें असमर्थ होना, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीका पुत्रवती होना, पाण्डुकी मृत्यु और पाँचों पुत्रोंको लेकर कुन्तीका हस्तिनापुर आना

सूत उवाच

एवं सत्यवती तेन वृता शन्तनुना किल।
द्वौ पुत्रौ च तया जातौ मृतौ कालवशादपि॥ १

व्यासवीर्यात्तु सञ्जातो धृतराष्ट्रोऽन्ध एव च।
मुनिं दृष्ट्वाथ कामिन्या नेत्रसम्मीलने कृते॥ २

श्वेतरूपा यतो जाता दृष्ट्वा व्यासं नृपात्मजा।
व्यासकोपात्समुत्पन्नः पाण्डुस्तेन न संशयः॥ ३

सूतजी बोले—इस प्रकार उन शन्तनुने सत्यवतीसे विवाह कर लिया। उसको [चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक] दो पुत्र उत्पन्न हुए और कालवश वे दोनों मृत्युको भी प्राप्त हो गये॥ १॥

पुनः व्यासजीके तेजसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए, जो जन्मसे ही अन्धे थे; क्योंकि मुनिको देखकर उस स्त्रीने अपने नेत्र बन्द कर लिये थे॥ २॥

तत्पश्चात् छोटी रानी व्यासजीको देखकर पीली पड़ गयी, जिससे व्यासजीके कोपके कारण उससे पीतवर्ण पाण्डुका जन्म हुआ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

सन्तोषितस्तया व्यासो दास्या कामकलाविदा।
विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक् शुचिः॥ ४

राज्ये संस्थापितः पाण्डुः कनीयानपि मन्त्रिभिः।
अन्धत्वाद् धृतराष्ट्रोऽसौ नाधिकारे नियोजितः॥ ५

भीष्मस्यानुमते राज्यं प्राप्तः पाण्डुर्महाबलः।
विदुरोऽप्यथ मेधावी मन्त्रकार्ये नियोजितः॥ ६

धृतराष्ट्रस्य द्वे भार्ये गान्धारी सौबली स्मृता।
द्वितीया च तथा वैश्या गार्हस्थ्येषु प्रतिष्ठिता॥ ७

पाण्डोरपि तथा पत्न्यौ द्वे प्रोक्ते वेदवादिभिः।
शौरसेनी तथा कुन्ती माद्री च मद्रदेशजा॥ ८

गान्धारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम्।
वैश्याप्येकं सुतं कान्तं युयुत्सुं सुषुवे प्रियम्॥ ९

कुन्ती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णं मनोहरम्।
सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पाण्डुपरिग्रहः॥ १०

ऋषय ऊचुः

किमेतत्सूत चित्रं त्वं भाषसे मुनिसत्तम।
जनितश्च सुतः पूर्वं पाण्डुना सा विवाहिता॥ ११

सूर्यात्कर्णः कथं जातः कन्यायां वद विस्तरात्।
कन्या कथं पुनर्जाता पाण्डुना सा विवाहिता॥ १२

सूत उवाच

शूरसेनसुता कुन्ती बालभावे यदा द्विजाः।
कुन्तिभोजेन राज्ञा तु प्रार्थिता कन्यका शुभा॥ १३

कुन्तिभोजेन सा बाला पुत्री तु परिकल्पिता।
सेवनार्थं तु दीप्तस्य विहिता चारुहासिनी॥ १४

दुर्वासास्तु मुनिः प्राप्तश्चातुर्मास्ये स्थितो द्विजः।
परिचर्या कृता कुन्त्या मुनिस्तोषं जगाम ह॥ १५

निपुण दासीने व्यासजीको सन्तुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप धर्मके अंश, सत्यवादी तथा पवित्र विचारवाले विदुर उत्पन्न हुए॥ ४॥

[बड़े होनेपर भी] अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्रको राज्य नहीं दिया गया और छोटे होते हुए भी पाण्डुको ही मन्त्रियोंने राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। भीष्मकी सम्मतिसे ही महाबली पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ तथा प्रतिभासम्पन्न विदुरजी मन्त्रणा-कार्यमें नियुक्त किये गये॥ ५-६॥

धृतराष्ट्रकी दो स्त्रियाँ थीं। उनमें पहली सुबलपुत्री गान्धारी कही गयी है और दूसरी एक वैश्यपुत्री थी, जो गृहकार्योंमें प्रतिष्ठित की गयी थी॥ ७॥

वेदवादी विद्वानोंने पाण्डुकी भी दो पत्नियाँ बतायी हैं। एक शूरसेनकी पुत्री कुन्ती और दूसरी मद्रदेशकी राजकुमारी माद्री॥ ८॥

गान्धारीने परम सुन्दर सौ पुत्र उत्पन्न किये एवं वैश्या रानीने युयुत्सु नामका एक कान्तिमान् और प्रिय पुत्र उत्पन्न किया॥ ९॥

कुन्तीने कुमारी अवस्थामें ही अपने पिताके घर रहते हुए सूर्यसे कर्ण नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया था; तदनन्तर कुन्तीका विवाह पाण्डुसे हुआ॥ १०॥

ऋषिगण बोले—हे मुनिवर सूतजी! आप यह कैसी आश्चर्यजनक बात बता रहे हैं? पहले पुत्र उत्पन्न हुआ और बादमें पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह हुआ!॥ ११॥

सूर्यके द्वारा कन्या कुन्तीसे कर्णकी उत्पत्ति कैसे हुई? वह कुन्ती पुनः कन्या कैसे रह गयी, जो पाण्डुके साथ उसका विवाह हो गया। यह आप विस्तारपूर्वक बताइये॥ १२॥

सूतजी बोले—हे द्विजगण! शूरसेनकी वह पुत्री कुन्ती जब शिशु थी, तभी राजा कुन्तिभोजने उस सुन्दर कन्याको माँग लिया था। उन्होंने उस चारुहासिनी कन्याको अपनी पुत्री बनाकर रखा और उसे अग्निहोत्रके काममें नियुक्त कर दिया॥ १३-१४॥

एक बार महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और चातुर्मास्यके लिये वहीं रहने लगे। कुन्तीने उनकी सेवा की, जिससे मुनिवर सन्तुष्ट हुए और उसको

ददौ मन्त्रं शुभं तस्यै येनाहूतः सुरः स्वयम्।
समायाति तथा कामं पूरयिष्यति वाञ्छितम्॥ १६

गते मुनौ ततः कुन्ती निश्चयार्थं गृहे स्थिता।
चिन्तयामास मनसा कं सुरं समचिन्तये॥ १७

उदितश्च तदा भानुस्तया दृष्टो दिवाकरः।
मन्त्रोच्चारं तया कृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा॥ १८

मण्डलान्मानुषं रूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम्।
अवातरत्तदाकाशात्समीपे तत्र मन्दिरे॥ १९

दृष्ट्वा देवं समायान्तं कुन्ती भानुं सुविस्मिता।
वेपमाना रजोदोषं प्राप्ता सद्यस्तु भामिनी॥ २०

कृताञ्जलिः स्थिता सूर्यं बभाषे चारुलोचना।
सुप्रीता दर्शनेनाद्य गच्छ त्वं निजमण्डलम्॥ २१

सूर्य उवाच

आहूतोऽस्मि कथं कुन्ति त्वया मन्त्रबलेन वै।
न मां भजसि कस्मात्त्वं समाहूय पुरोगतम्॥ २२

कामार्तोऽस्म्यसितापाङ्गि भज मां भावसंयुतम्।
मन्त्रेणाधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति॥ २३

कुन्त्युवाच

कन्यास्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम्।
तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्यास्मि सुव्रत॥ २४

सूर्य उवाच

लज्जा मे महती चाद्य यदि गच्छाम्यहं वृथा।
वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्र न संशयः॥ २५

शप्स्यामि तं द्विजं चाद्य येन मन्त्रः समर्पितः।
त्वां चापि सुभृशं कुन्ति नोचेन्मां त्वं भजिष्यसि॥ २६

कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यन्ति जनाः किल।
मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने॥ २७

एक ऐसे मन्त्रका उपदेश दिया, जिसके प्रयोगसे आवाहित किये गये देवता स्वयं उपस्थित होंगे और उसकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे॥ १५-१६॥

दुर्वासामुनिके वहाँसे चले जानेपर अपने गृहमें बैठी हुई कुन्ती उस मन्त्रकी परीक्षाके लिये मनमें सोचने लगी कि मैं किस देवताका ध्यान करूँ?॥ १७॥

उसने पूर्व दिशामें उदित होते हुए सूर्यको देखा और उस मन्त्रका उच्चारण करके उसने सूर्यका आवाहन किया। तब सूर्य अपने मण्डलसे अत्यन्त सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके आकाशसे कुन्तीके पास उस भवनमें उतर आये॥ १८-१९॥

सूर्यदेवको आते हुए देखकर कुन्ती आश्चर्यचकित हो गयी। वह सुन्दरी काँपती हुई तत्काल रजोधर्मको प्राप्त हो गयी॥ २०॥

उस समय सुन्दर नेत्रवाली कुन्ती हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और सूर्यसे बोली—मैं आपके दर्शनसे प्रसन्न हो गयी; अब आप अपने मण्डलको चले जाइये॥ २१॥

सूर्य बोले—हे कुन्ति! तुमने मन्त्रबलसे मुझे क्यों बुलाया है? तुम मुझे बुला करके भी अपने समक्ष उपस्थित मुझ सूर्यकी सेवा क्यों नहीं करती?॥ २२॥

हे चारुलोचने! मैं इस समय कामार्त हूँ, अतः प्रेमके साथ मेरा सेवन करो। मन्त्रके द्वारा अधीनताको प्राप्त मुझको तुम विहार करनेके लिये ले चलो॥ २३॥

कुन्ती बोली—हे धर्मज्ञ! मैं अभी कन्या हूँ। हे सर्वसाक्षिन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे सुव्रत! आप मेरे प्रति अनुचित बातें न कहें; क्योंकि मैं कुलीन कन्या हूँ॥ २४॥

सूर्य बोले—यदि मैं इस समय व्यर्थ लौट जाता हूँ तो मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी और मैं सभी देवताओंमें निन्दाका पात्र बनूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ २५॥

हे कुन्ति! यदि तुम मेरे साथ रमण नहीं करोगी तो मैं तुम्हें तथा उस मुनिको शाप दे दूँगा, जिसने तुम्हें वह मन्त्र बताया है। हे सुन्दरि! तुम्हारा कन्याधर्म स्थिर रहेगा। इस रहस्यको लोग नहीं जान सकेंगे तथा हे वरानने! मेरे समान ही तेजस्वी पुत्र तुमको प्राप्त होगा॥ २६-२७॥

इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम्।
भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वातिवाञ्छितम्॥ २८

गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मन्दिरे स्थिता।
धात्री वेद प्रिया चैका न माता न जनस्तथा॥ २९

गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु जातश्चातिमनोहरः।
कवचेनातिरम्येण कुण्डलाभ्यां समन्वितः॥ ३०

द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः।
करे कृत्वाथ धात्रेयी तामुवाच सुलज्जिताम्॥ ३१

कां चिन्तां करभोरु त्वमाधत्सेऽद्य स्थितास्म्यहम्।
मञ्जूषायां सुतं कुन्ती मुञ्चन्ती वाक्यमब्रवीत्॥ ३२

किं करोमि सुतार्ताहं त्यजे त्वां प्राणवल्लभम्।
मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ३३

पातु त्वां सगुणागुणा भगवती सर्वेश्वरी चाम्बिका
स्तन्यं सैव ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा।
द्रक्ष्येऽहं मुखपङ्कजं सुललितं प्राणप्रियाहं कदा
त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी॥ ३४

पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न चाराधिता
न ध्यातं पदपङ्कजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम्।
तेनाहं सुत दुर्भगास्मि सततं त्यक्त्वा पुनस्त्वां वने
तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम्॥ ३५

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मञ्जूषायां धृतं किल।
धात्रीहस्ते ददौ भीता जनदर्शनतस्तथा॥ ३६

यह कहकर सूर्यदेव अपनी ओर आसक्त मनवाली एवं लज्जाशील उस कुन्तीसे संसर्ग करके तथा उसे मनोवांछित वरदान देकर चले गये॥ २८॥

इस प्रकार उस सुश्रोणी कुन्तीने गर्भ धारण किया और वह अत्यन्त गुप्त भवनमें रहने लगी। केवल उसकी एक प्रिय दासी ही इस रहस्यको जानती थी, कुन्तीके माता-पिता भी इसे नहीं जानते थे॥ २९॥

यथासमय उसी गुप्त भवनमें कुन्तीको एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर कवच तथा दो कुण्डलोंसे युक्त था और दूसरे सूर्य तथा कुमार कार्तिकेयके समान प्रतीत हो रहा था। धात्रीने उसे अपने हाथमें उठाकर लज्जायुक्त कुन्तीसे कहा—हे सुन्दरि! मैं यहाँ हूँ, अतः तुम किस बातकी चिन्ता कर रही हो?॥ ३०-३१$\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् काष्ठमंजूषामें पुत्रको छोड़ती हुई कुन्ती कहने लगी—हे पुत्र! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, जो कि तुझ प्राणप्रियको त्याग रही हूँ। मैं अभागिन तुझ सर्वलक्षणसम्पन्नका परित्याग कर दे रही हूँ॥ ३२-३३॥

सगुणा, निर्गुणा तथा सबकी स्वामिनी वे भगवती अम्बिका तुम्हारी रक्षा करें। वे जगज्जननी कामप्रदा कात्यायनी तुम्हें दुग्धपान करायें। हे पुत्र! तुम साक्षात् सूर्यनारायणके पुत्र हो और मेरे प्राणप्रिय हो—ऐसे तुमको इस निर्जन वनमें एक दुष्ट तथा कुलटा स्त्रीकी भाँति छोड़कर मैं कब तुम्हारा अति सुन्दर मुखकमल देख पाऊँगी॥ ३४॥

हे पुत्र! प्रतीत होता है कि मैंने पूर्वजन्ममें भी तीनों लोकोंकी जननी भगवतीकी आराधना नहीं की थी तथा भगवती शिवाके सुखदायक चरणकमलका भी मैंने कभी ध्यान नहीं किया था; इसी कारण मैं सदा अभागिनी हूँ। हे प्रिय! मैं तुम्हें इस वनमें त्यागकर जान-बूझकर स्वयं किये गये इस पापका स्मरण करती हुई सन्ताप सहूँगी॥ ३५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार कहकर कुन्तीने मंजूषामें रखे हुए उस पुत्रको लोगोंकी दृष्टिसे बचाते हुए भयभीतभावसे धात्रीके हाथमें दे दिया॥ ३६॥

स्नात्वा त्रस्ता तदा कुन्ती पितृवेश्मन्युवास सा।
मञ्जूषा वहमाना च प्राप्ता ह्यधिरथेन वै॥ ३७

राधा सूतस्य भार्या वै तयासौ प्रार्थितः सुतः।
कर्णोऽभूद् बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि॥ ३८

कुन्ती विवाहिता कन्या पाण्डुना सा स्वयम्वरे।
माद्री चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा॥ ३९

मृगयां रममाणस्तु वने पाण्डुर्महाबलः।
जघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने॥ ४०

शप्तस्तेन तदा पाण्डुर्मुनिना कुपितेन च।
स्त्रीसङ्गं यदि कर्तासि तदा ते मरणं ध्रुवम्॥ ४१

इति शप्तस्तु मुनिना पाण्डुः शोकसमन्वितः।
त्यक्त्वा राज्यं वने वासं चकार भृशदुःखितः॥ ४२

कुन्ती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सह सङ्गते।
सेवनार्थं सतीधर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः॥ ४३

गङ्गातीरे स्थितः पाण्डुर्मुनीनामाश्रमेषु च।
शृण्वानो धर्मशास्त्राणि चकार दुश्चरं तपः॥ ४४

कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्मसंश्रितम्।
अशृणोद्वचनं राजा सुपृष्टं मुनिभाषितम्॥ ४५

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो गन्तुं परन्तप।
येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत्॥ ४६

अंशजः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गोलकस्तथा।
कुण्डः सहोढः कानीनः क्रीतः प्राप्तस्तथा वने॥ ४७

दत्तः केनापि चाशक्तौ धनग्राहिसुताः स्मृताः।
उत्तरोत्तरतः पुत्रा निकृष्टा इति निश्चयः॥ ४८

तत्पश्चात् स्नान करके भयभीत वह कुन्ती अपने पिताके घरमें रहने लगी। जलमें बहती हुई वह मंजूषा अधिरथ नामक सूतको प्राप्त हुई। उस सूतकी भार्या राधा थी। उसने बच्चेको माँग लिया। इस प्रकार सूतके घरमें पलकर वह कर्ण बलवान् तथा वीर हो गया॥ ३७-३८॥

इसके बाद स्वयंवरमें कुन्तीका विवाह पाण्डुके साथ हुआ। उनकी दूसरी पत्नी मद्रदेशके राजाकी सुलक्षणा कन्या माद्री थी॥ ३९॥

एक बार वनमें आखेट करनेमें तत्पर महाबली पाण्डुने मृग समझकर रमण करते हुए एक मुनिपर प्रहार कर दिया। तब उस कुपित मुनिने पाण्डुको शाप दे दिया कि यदि तुम स्त्रीके साथ संसर्ग करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है॥ ४०-४१॥

मुनिके यह शाप दे देनेपर पाण्डु शोकाकुल हो गये। वे राज्य त्यागकर अत्यन्त दुःखित हो वनमें रहने लगे॥ ४२॥

हे मुनिवरो! उनकी दोनों पत्नियाँ माद्री और कुन्ती भी सतीधर्मका आश्रय लेकर उनकी सेवा करनेके लिये उनके साथ ही वनमें चली गयीं॥ ४३॥

राजा पाण्डु गंगाजीके तटपर मुनियोंके आश्रमोंमें रहने लगे और धर्मशास्त्रोंका श्रवण करते हुए कठिन तपस्या करने लगे॥ ४४॥

किसी समय कथाप्रसंगमें सम्यक् प्रकारसे पूछनेपर किसी मुनिके द्वारा कहा गया यह धार्मिक वचन राजाने सुना—हे परन्तप! अपुत्रकी गति नहीं होती; वह स्वर्ग जानेका अधिकारी नहीं होता अतएव जिस किसी भी उपायसे पुत्र उत्पन्न करना चाहिये॥ ४५-४६॥

अंशज, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज , गोलक, कुण्ड, सहोढ, कानीन, क्रीत, वनमें प्राप्त, पालन करनेमें असमर्थ किसीका दिया हुआ—इतने प्रकारके पुत्र पिताकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी कहे गये हैं, इनमें उत्तरोत्तर एक दूसरेसे निकृष्ट पुत्र हैं; यह सुनिश्चित है॥ ४७-४८॥

इत्याकर्ण्य तदा प्राह कुन्तीं कमललोचनाम्।
सुतमुत्पादयाशु त्वं मुनिं गत्वा तपोऽन्वितम्॥ ४९

ममाज्ञया न दोषस्ते पुरा राज्ञा महात्मना।
वसिष्ठाज्जनितः पुत्रः सौदासेनेति मे श्रुतम्॥ ५०

तं कुन्ती वचनं प्राह मम मन्त्रोऽस्ति कामदः।
दत्तो दुर्वाससा पूर्वं सिद्धिदः सर्वथा प्रभो॥ ५१

निमन्त्रयेऽहं यं देवं मन्त्रेणानेन पार्थिव।
आगच्छेत्सर्वथासौ वै मम पार्श्वं निमन्त्रितः॥ ५२

भर्तुर्वाक्येन सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम्।
सङ्गम्य सुषुवे पुत्रं प्रथमं च युधिष्ठिरम्॥ ५३

वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शतक्रतोः।
वर्षे वर्षे त्रयः पुत्राः कुन्त्या जाता महाबलाः॥ ५४

माद्री प्राह पतिं पाण्डुं पुत्रं मे कुरु सत्तम।
किं करोमि महाराज दुःखं नाशय मे प्रभो॥ ५५

प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता।
एकपुत्रप्रबन्धेन माद्री पतिमते स्थिता॥ ५६

स्मृत्वा तदाश्विनौ देवौ मद्रराजसुता सुतौ।
नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी॥ ५७

एवं ते पाण्डवाः पञ्च क्षेत्रोत्पन्नाः सुरात्मजाः।
वर्षवर्षान्तरे जाता वने तस्मिन्द्विजोत्तमाः॥ ५८

एकस्मिन्समये पाण्डुर्माद्रीं दृष्ट्वाथ निर्जने।
आश्रमे चातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः॥ ५९

यह सुनकर राजा पाण्डुने कमलके समान नेत्रवाली कुन्तीसे कहा—तुम किसी तपोनिष्ठ मुनिके पास जाकर शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो। मेरी आज्ञा होनेके कारण तुम्हें दोष नहीं लगेगा। मैंने सुना है कि पूर्वकालमें महात्मा राजा सौदासने वसिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था॥ ४९-५०॥

कुन्ती उनसे यह वचन बोली—सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाला एक मन्त्र मेरे पास है। हे प्रभो! पूर्वकालमें महर्षि दुर्वासाने सिद्धि प्रदान करनेवाला वह मन्त्र मुझे प्रदान किया था॥ ५१॥

हे राजन्! मैं इस मन्त्रद्वारा जिस देवताका आवाहन करूँगी, वह निमन्त्रित होकर निश्चय ही मेरे पास आ जायगा॥ ५२॥

पतिकी आज्ञासे वहाँ कुन्तीने देवताओंमें श्रेष्ठ धर्मराजका स्मरण करके उनके संयोगसे सर्वप्रथम युधिष्ठिरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ ५३॥

तत्पश्चात् उसने वायुके द्वारा भीमको और इन्द्रके द्वारा अर्जुनको उत्पन्न किया। इस प्रकार एक-एक वर्षके अन्तरालमें कुन्तीके तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५४॥

इसके बाद माद्रीने भी अपने पति पाण्डुसे कहा—हे श्रेष्ठ! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये। हे महाराज! मैं क्या करूँ? हे प्रभो! मेरा दुःख दूर कीजिये॥ ५५॥

तब पति पाण्डुके प्रार्थना करनेपर दयालु कुन्तीने वह मन्त्र माद्रीको बता दिया। सुन्दरी माद्रीने भी एक पुत्रकी प्राप्तिके लिये पतिसे अनुमति पाकर अश्विनीकुमारोंका स्मरण करके नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ५६-५७॥

हे मुनिवरो! इस प्रकार वे पाँचों पाण्डव देवताओंके पुत्र थे। वे क्षेत्रज पुत्रके रूपमें उस वनमें क्रमशः एक-एक वर्षके अन्तरसे उत्पन्न हुए॥ ५८॥

एक बार राजा पाण्डुने माद्रीको निर्जन आश्रममें देखकर अपनी मृत्यु निकट आयी होनेके कारण अत्यन्त कामातुर हो पकड़ लिया। माद्रीके द्वारा 'नहीं-नहीं'—ऐसा कहकर बार-बार निषेध करनेपर

मा मा मा मेति बहुधा निषिद्धोऽपि तया भृशम्।
आलिलिङ्ग प्रियां दैवात्पपात धरणीतले॥ ६०

यथा वृक्षगता वल्ली छिन्ने पतति वै द्रुमे।
तथा सा पतिता बाला कुर्वन्ती रोदनं बहु॥ ६१

प्रत्यागता तदा कुन्ती रुदती बालकास्तथा।
मुनयश्च महाभागाः श्रुत्वा कोलाहलं तदा॥ ६२

मृतः पाण्डुस्तदा सर्वे मुनयः संशितव्रताः।
सहाग्निभिर्विधिं कृत्वा गङ्गातीरे तदादहन्॥ ६३

चक्रे सहैव गमनं माद्री दत्त्वा सुतौ शिशू।
कुन्त्यै धर्मं पुरस्कृत्य सतीनां सत्यकामतः॥ ६४

जलदानादिकं कृत्वा मुनयस्तत्र वासिनः।
पञ्चपुत्रयुतां कुन्तीमनयन्हस्तिनापुरम्॥ ६५

तां प्राप्तां च समाज्ञाय गाङ्गेयो विदुरस्तथा।
नगरीं धृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र समाययुः॥ ६६

पप्रच्छुश्च जनाः सर्वे कस्य पुत्रा वरानने।
पाण्डोः शापं समाज्ञाय कुन्ती दुःखान्विता तदा॥ ६७

तानुवाच सुराणां वै पुत्राः कुरुकुलोद्भवाः।
विश्वासार्थं समाहूताः कुन्त्या सर्वे सुरास्तदा॥ ६८

आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किल।
भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः॥ ६९

गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम्।
भीष्मादयः प्रीतचित्ताः पालयामासुरर्थतः॥ ७०

एवं पार्थाः समुत्पन्ना गाङ्गेयेनाथ पालिताः॥ ७१

भी उन्होंने बलपूर्वक अपनी उस प्रियाका आलिंगन कर लिया और वे दैववश [शापके कारण] पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५९-६०॥

जैसे वृक्षपर चढ़ी हुई लता वृक्षके कट जानेपर गिर पड़ती है, वैसे ही वह रानी माद्री भी बहुत रुदन करती हुई गिर पड़ी॥ ६१॥

उस समय कोलाहल सुनकर रोती हुई कुन्ती, सभी बालक और महाभाग मुनिगण भी वहाँ आ गये॥ ६२॥

इस प्रकार जब पाण्डु मर गये, तब सभी व्रतधारी मुनियोंने गंगाके तटपर चिता लगाकर उनका दाह-संस्कार कर दिया। तत्पश्चात् अपने दोनों पुत्र कुन्तीको सौंप करके सती-धर्मका पालन करते हुए वह माद्री सत्यकी कामनासे उनके साथ ही सती हो गयी॥ ६३-६४॥

वहाँके निवासी मुनिगण जलांजलि आदि देकर पाँचों पुत्रोंसहित कुन्तीको हस्तिनापुर ले आये॥ ६५॥

धृतराष्ट्रकी नगरी हस्तिनापुरमें कुन्तीके आनेका समाचार पाकर भीष्म, विदुर आदि सभी लोग वहाँ आ पहुँचे॥ ६६॥

सभी लोगोंने कुन्तीसे पूछा—हे सुमुखि! ये किसके पुत्र हैं? तब कुन्ती अत्यन्त दुःखित होकर पाण्डुकी शापजन्य मृत्युका उल्लेख करके बोली—कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ये सब बालक देवताओंके पुत्र हैं। उन्हें विश्वास दिलानेके लिये कुन्तीने उस समय सभी देवताओंका आह्वान भी किया, तब उन देवताओंने आकाशमें प्रकट होकर कहा—ये पाँचों निःसन्देह हमलोगोंके पुत्र हैं। भीष्मने देवताओंके वचनका अनुमोदन किया तथा कुन्तीके पाँचों पुत्रोंका स्वागत किया॥ ६७—६९॥

तत्पश्चात् उन पुत्रों तथा वधू कुन्तीको लेकर भीष्म आदि सभी लोग हस्तिनापुर चले गये और प्रसन्नचित्त होकर प्रयत्नपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे। इस प्रकार पाण्डव उत्पन्न हुए और भीष्मने उनका परिपालन किया॥ ७०-७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
युधिष्ठिरादीनामुत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे दुर्योधनके पिण्डदानहेतु धन माँगना, भीमसेनका प्रतिरोध; धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजयका वनके लिये प्रस्थान, वनवासी धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीसे मिलनेके लिये युधिष्ठिरका भाइयोंके साथ वनगमन, विदुरका महाप्रयाण, धृतराष्ट्रसहित पाण्डवोंका व्यासजीके आश्रमपर आना, देवीकी कृपासे व्यासजीद्वारा महाभारत-युद्धमें मरे कौरवों-पाण्डवोंके परिजनोंको बुला देना

सूत उवाच

पञ्चानां द्रौपदी भार्या सा मान्या सा पतिव्रता।
पञ्च पुत्रास्तु तस्याः स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः॥ १

अर्जुनस्य तथा भार्या कृष्णस्य भगिनी शुभा।
सुभद्रा या हृता पूर्वं जिष्णुना हरिसम्मते॥ २

तस्यां जातो महावीरो निहतोऽसौ रणाजिरे।
अभिमन्युर्हतास्तत्र द्रौपद्याश्च सुताः किल॥ ३

अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुन्दरी।
कुलान्ते सुषुवे पुत्रं मृतो बाणाग्निना शिशुः॥ ४

जीवितः स तु कृष्णेन भागिनेयसुतः स्वयम्।
द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धः प्रतापेनाद्भुतेन च॥ ५

परिक्षीणेषु वंशेषु जातो यस्माद्वरः सुतः।
तस्मात्परीक्षितो नाम विख्यातः पृथिवीतले॥ ६

निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुःखितः।
तस्थौ पाण्डवराज्ये च भीमवाग्बाणपीडितः॥ ७

गान्धारी च तथातिष्ठत् पुत्रशोकातुरा भृशम्।
सेवां तयोर्दिवारात्रं चकारार्तो युधिष्ठिरः॥ ८

विदुरोऽप्यतिधर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत्।
युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वे व्यतिष्ठत॥ ९

सूतजी बोले—[हे मुनिगण!] माननीया द्रौपदी उन पाँचों पाण्डवोंकी पतिव्रता पत्नी थी। उन द्रौपदीको अत्यन्त सुन्दर पाँच पुत्र उन पतियोंसे उत्पन्न हुए॥ १॥

अर्जुनकी एक दूसरी सुन्दर पत्नी श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रा थीं, जिन्हें अर्जुनने पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे हर लिया था॥ २॥

उन्हीं सुभद्राके गर्भसे महान् वीर अभिमन्युका जन्म हुआ। वह संग्राम-भूमिमें मारा गया था। उसी युद्धमें द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी मारे गये थे॥ ३॥

वीर अभिमन्युकी श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुन्दर पत्नी महाराज विराटकी पुत्री उत्तरा थी। [महाभारतके युद्धमें] कुरुकुलका नाश हो जानेपर उसने एक पुत्र उत्पन्न किया था; वह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे [पहले गर्भमें ही] मर गया था, किंतु बादमें भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे निर्दग्ध अपने भांजेके पुत्रको अपने अद्भुत प्रतापसे पुनः जीवित कर दिया था॥ ४-५॥

कुरुवंशके समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था; इसलिये वह बालक 'परीक्षित्' नामसे पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥

अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर अत्यन्त दुःखित राजा धृतराष्ट्र भीमके वाग्बाणोंसे सन्तप्त रहते हुए अब पाण्डवोंके राज्यमें रहने लगे। वैसे ही गान्धारी भी अत्यन्त दुःखी होकर जीवन-यापन करने लगी। दुःखित युधिष्ठिर दिन-रात उन दोनोंकी सेवा करने लगे॥ ७-८॥

महान् धर्मात्मा विदुर युधिष्ठिरकी अनुमतिसे अपने भाई धृतराष्ट्रके पासमें ही रहते थे और वे उन प्रज्ञाचक्षुको समझाते-बुझाते रहते थे॥ ९॥

धर्मपुत्रोऽपि धर्मात्मा चकार सेवनं पितुः।
पुत्रशोकोद्भवं दुःखं तस्य विस्मारयन्निव॥ १०

यथा शृणोति वृद्धोऽसौ तथा भीमोऽतिरोषितः।
वाग्बाणेनाहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान्॥ ११

मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यान्धस्य ते रणे।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं हृद्यं तथा भृशम्॥ १२

भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मया दत्तं गतत्रपः।
ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः॥ १३

एवंविधानि रूक्षाणि श्रावयत्यनुवासरम्।
आश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोऽयमिति च ब्रुवन्॥ १४

अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः।
धृतराष्ट्रो वने यानं प्रार्थयामास धर्मजम्॥ १५

अयाचत धर्मपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः।
पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निर्वापं विधिपूर्वकम्॥ १६

वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम्।
न कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ १७

ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम्।
गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपः स्वर्गफलप्रदम्॥ १८

एकान्ते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः।
धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने॥ १९

समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः।
धनं दास्ये महाभागाः पित्रे निर्वापकामिने॥ २०

तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्यामिततेजसः।
संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत्॥ २१

धनं देयं महाभाग दुर्योधनहिताय किम्।
अन्धोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम्॥ २२

धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर भी अपने पितातुल्य धृतराष्ट्रके पुत्रशोकजनित दुःखको विस्मारित कराते हुए उनकी सेवा करने लगे॥ १०॥

जिस किसी भी प्रकार यह वृद्ध धृतराष्ट्र सुन ले [यह ध्यानमें रखकर] भीम अत्यन्त क्रोधित होकर अपने वचनरूपी बाणोंसे उनपर सर्वदा प्रहार किया करते थे। वहाँ उपस्थित लोगोंको सुना-सुनाकर भीम कहा करते थे कि मैंने इस दुष्ट अन्धेके सभी पुत्रोंको रणभूमिमें मार डाला और दुःशासनके हृदयका रक्त जी-भरके पी लिया है। अब यह अन्धा निर्लज्ज होकर मेरे दिये हुए पिण्डको कौओं एवं कुत्तोंकी भाँति खाता है। अब तो यह व्यर्थ ही जीवन बिता रहा है॥ ११—१३॥

भीम इस प्रकारकी कठोर बातें प्रतिदिन उन्हें सुनाते थे; परंतु धर्मात्मा युधिष्ठिर यह कहते हुए धृतराष्ट्रको धैर्य प्रदान करते थे कि यह भीम मूर्ख है॥ १४॥

इस प्रकार उस दुःखी धृतराष्ट्रने अठारह वर्षतक वहाँ रहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे वनमें जानेकी इच्छा प्रकट की। महाराज धृतराष्ट्रने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे यह भी प्रार्थना की कि अब मैं अपने पुत्रोंके लिये विधिपूर्वक पिण्डदान करूँगा। यद्यपि भीमने सभीका और्ध्वदैहिककर्म कर दिया था, किंतु पूर्व वैरका स्मरण करते हुए उन्होंने मेरे पुत्रोंका नहीं किया। अतः यदि आप मुझे कुछ धन दें तो मैं अपने पुत्रोंका और्ध्वदैहिककर्म करके स्वर्गफल देनेवाला तप करनेके लिये वनमें चला जाऊँगा॥ १५—१८॥

विदुरने भी एकान्तमें पवित्रात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे जब ऐसा कहा तब उन्होंने धनार्थी धृतराष्ट्रको धन देनेका निश्चय कर लिया। राजा युधिष्ठिरने परिवारके सभी जनोंको बुलाकर कहा—हे महाभाग! मैं कौरवोंका श्राद्ध करनेके इच्छुक ज्येष्ठ पिताको धन प्रदान करूँगा॥ १९-२०॥

महातेजस्वी ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरका वचन सुनकर वायुपुत्र महाबली भीमने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—हे महाभाग! दुर्योधनके कल्याणके लिये राजकोषका धन क्यों दिया जाय? इससे अन्धे धृतराष्ट्रको भी सुख मिलेगा; इससे बड़ी मूर्खता और क्या होगी?॥ २१-२२॥

तव दुर्मन्त्रितेनाथ दुःखं प्राप्ता वने वयम्।
द्रौपदी च महाभागा समानीता दुरात्मना॥ २३

विराटभवने वासः प्रसादात्तव सुव्रत।
दासत्वं च कृतं सर्वैर्मत्स्यस्यामितविक्रमैः॥ २४

देविता त्वं न चेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयः कथम्।
सूपकारो विराटस्य हत्वाभूवं तु मागधम्॥ २५

बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद् बालस्य नर्तकः।
कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषाया वासवात्मजः॥ २६

गाण्डीवशोभितौ हस्तौ कृतौ कङ्कणशोभितौ।
मानुषं च वपुः प्राप्य किं दुःखं स्यादतः परम्॥ २७

दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा।
असिं गृहीत्वा तरसा छेद्म्यहं नान्यथा सुखम्॥ २८

अपृष्ट्वा च महीपालं निक्षिप्तोऽग्निर्मया गृहे।
दग्धुकामश्च पापात्मा निर्दग्धोऽसौ पुरोचनः॥ २९

कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप।
न तथा निहताः सर्वे सभार्या धृतराष्ट्रजाः॥ ३०

मूर्खत्वं तव राजेन्द्र गन्धर्वेभ्यश्च मोचिताः।
दुर्योधनादयः कामं शत्रवो निगडीकृताः॥ ३१

दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि।
नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया॥ ३२

इत्युक्त्वा निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतो नृपः।
ददौ वित्तं सुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः॥ ३३

आपकी दूषित मन्त्रणाके फलस्वरूप ही हमलोगोंने वनवासका कठोर कष्ट सहा। दुरात्मा दुःशासन महारानी द्रौपदीको अपमानपूर्वक सभामें खींच लाया॥ २३॥

हे सुव्रत! आपकी कृपासे ही हमलोगोंको विराट राजाके घर रहना पड़ा तथा हम अमित पराक्रमवालोंको मत्स्यदेशके राजाकी दासता करनी पड़ी थी॥ २४॥

हम सबमें ज्येष्ठ आप यदि जुआ न खेलते तो हम लोगोंकी दुर्गति क्यों होती? मगधनरेश जरासंधका वध करनेवाले मुझको राजा विराटके यहाँ रसोइया बनना पड़ा॥ २५॥

आपके ही कारण इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुनको विराट राजाके यहाँ स्त्रीका रूप धारण करके उनके बच्चोंको नृत्यकी शिक्षा देनेके लिये बृहन्नला बनना पड़ा। गाण्डीव धनुषके स्थानपर अर्जुनको अपने हाथोंमें कंकण धारण करना पड़ा। मनुष्यका शरीर पाकर भला इससे बड़ा कष्ट और क्या हो सकता है? अर्जुनके सिरपर चोटी और आँखोंमें काजलकी बातका स्मरण करके तो मनमें यही आता है कि मैं अभी तलवार लेकर शीघ्र ही धृतराष्ट्रका सिर काट दूँ; इसके अतिरिक्त मुझे शान्ति नहीं मिल सकती॥ २६—२८॥

आप महाराजसे बिना पूछे ही मैंने लाक्षागृहमें अग्नि लगा दी थी, जिससे हमलोगोंको जलानेकी इच्छावाला वह पापी पुरोचन स्वयं जल गया॥ २९॥

हे राजन्! मैंने आपसे परामर्श किये बिना ही जैसे सभी कीचकोंका वध कर डाला, वैसे ही स्त्रियोंसमेत धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका भी वध मैं नहीं कर पाया॥ ३०॥

हे राजेन्द्र! यह आपकी नासमझी ही थी कि जब गन्धर्वोंने दुर्योधन आदि हमारे शत्रुओंको बन्दी बना लिया था, तब आपने ही उन्हें छुड़ा दिया॥ ३१॥

हे राजन्! आज पुनः उसी दुष्ट दुर्योधनके कल्याणके लिये आप धन देनेकी इच्छा कर रहे हैं। आपके कहनेपर भी मैं उन्हें धन नहीं देने दूँगा॥ ३२॥

ऐसा कहकर भीमके चले जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने [अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—इन] तीनोंकी सम्मति लेकर धृतराष्ट्रको बहुत-सा धन दे दिया॥ ३३॥

कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम्।
ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ ३४

कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गान्धारीसहितो नृपः।
प्रविवेश वनं तूर्णं कुन्त्या च विदुरेण च॥ ३५

सञ्जयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः।
पुत्रैर्निवार्यमाणापि शूरसेनसुता गता॥ ३६

विलपन्भीमसेनोऽपि तथान्ये चापि कौरवाः।
गङ्गातीरात्परावृत्य ययुः सर्वे गजाह्वयम्॥ ३७

ते गत्वा जाह्नवीतीरे शतयूपाश्रमं शुभम्।
कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुः समाहिताः॥ ३८

गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याता हि तापसाः।
युधिष्ठिरस्तु विरहादनुजानिदमब्रवीत्॥ ३९

स्वप्ने दृष्टा मया कुन्ती दुर्बला वनसंस्थिता।
मनो मे जायते द्रष्टुं मातरं पितरौ तथा॥ ४०

विदुरं च महात्मानं सञ्जयं च महामतिम्।
रोचते यदि वः सर्वान् व्रजाम इति मे मतिः॥ ४१

ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा द्रौपदी तथा।
वैराटी च महाभागा तथा नागरिको जनः॥ ४२

प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पाण्डवा दर्शनोत्सुकाः।
शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते॥ ४३

विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा।
क्वास्ते स विदुरो धीमांस्तमुवाचाम्बिकासुतः॥ ४४

विरक्तश्चरते क्षत्ता निरीहो निष्परिग्रहः।
कुतोऽप्येकान्तसंवासी ध्यायतेऽन्तः सनातनम्॥ ४५

तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने धन लेकर अपने पुत्रोंका विधिवत् श्राद्धकर्म कराया और ब्राह्मणोंको विविध दान दिये॥ ३४॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंका श्राद्धकर्म करके गान्धारीसहित महाराज धृतराष्ट्र कुन्ती तथा विदुरके साथ शीघ्र ही वनमें चले गये॥ ३५॥

संजयद्वारा सबको यह समाचार मिला कि महामति धृतराष्ट्र वनमें जा रहे हैं, उस समय अपने पुत्रोंके मना करनेपर भी शूरसेनकी पुत्री कुन्ती उनके साथ चली गयी॥ ३६॥

यह देखकर भीम भी रोने लगे। वे तथा अन्यान्य सभी कौरव उन लोगोंको गंगातटतक पहुँचाकर पुनः हस्तिनापुरको लौट आये॥ ३७॥

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र आदि गंगातटपर स्थित शुभ शतयूप-आश्रममें पहुँचे और वहाँ पर्णकुटी बनाकर एकचित्त हो तपस्या करने लगे॥ ३८॥

जब वे तपस्वी चले गये और इस प्रकार छः वर्ष बीत गये, तब उनके विरहसे सन्तप्त युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे कहने लगे—मैंने स्वप्न देखा है कि वनमें रहती हुई माता कुन्ती अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, अतः माता तथा पितृजनोंको देखनेकी मनमें इच्छा हो रही है। साथ ही महात्मा विदुर तथा महाबुद्धिमान् संजयसे भी मिलनेकी मेरी इच्छा है। यदि आप लोगोंको भी यह उचित प्रतीत होता हो तो हमलोग वहाँ चलें—ऐसा मेरा विचार है॥ ३९—४१॥

तब वे सभी भाई, सुभद्रा, द्रौपदी, महाभागा उत्तरा तथा अन्यान्य नागरिकजन वहाँ एकत्र हुए। दर्शनके लिये उत्सुक उन पाण्डवोंने सभी लोगोंके साथ शतयूप-आश्रममें जाकर धृतराष्ट्र आदिको देखा॥ ४२-४३॥

वहाँ जब विदुरजी दिखायी नहीं दिये, तब धर्मराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रसे पूछा—वे बुद्धिमान् विदुरजी कहाँ हैं? तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने उनसे कहा—विदुर तो विरक्त एवं निष्काम होकर तथा सब कुछ त्यागकर कहीं एकान्तमें रहते हुए अन्तःकरणमें परमात्माका ध्यान कर रहे होंगे॥ ४४-४५॥

गङ्गां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः।
ददर्श विदुरं क्षामं तपसा संशितव्रतम्॥ ४६

दृष्ट्वोवाच महीपालो वन्देऽहं त्वां युधिष्ठिरः।
तस्थौ श्रुत्वा च विदुरः स्थाणुभूत इवानघः॥ ४७

क्षणेन विदुरस्यास्यान्निःसृतं तेज अद्भुतम्।
लीनं युधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम्॥ ४८

क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचाति युधिष्ठिरः।
दाहार्थं तस्य देहस्य कृतवानुद्यमं नृपः॥ ४९

शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी।
विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टं गच्छ भूपते॥ ५०

श्रुत्वा ते भ्रातरः सर्वे सस्नुर्गङ्गाजलेऽमले।
गत्वा निवेदयामासुर्धृतराष्ट्राय विस्तरात्॥ ५१

स्थितास्तत्राश्रमे सर्वे पाण्डवा नागरैः सह।
तत्र सत्यवतीसूनुर्नारदश्च समागतः॥ ५२

मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागता धर्मनन्दनम्।
कुन्ती प्राह तदा व्यासं संस्थितं शुभदर्शनम्॥ ५३

कृष्ण कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तु वीक्षितः।
मनो मे तप्यतेऽत्यर्थं दर्शयस्व तपोधन॥ ५४
समर्थोऽसि महाभाग कुरु मे वाञ्छितं प्रभो।

गान्धार्युवाच

दुर्योधनो रणेऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने॥ ५५

तं दर्शय मुनिश्रेष्ठ पुत्रं मे त्वं सहानुजम्।

सुभद्रोवाच

अभिमन्युं महावीरं प्राणादप्यधिकं प्रियम्॥ ५६
द्रष्टुकामास्मि सर्वज्ञ दर्शयाद्य तपोधन।

दूसरे दिन गंगाजीकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरने वनमें तपस्याके कारण क्षीण देहवाले व्रतधारी विदुरजीको देखा। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिरने कहा—मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह सुनकर भी निष्पाप विदुरजी ठूँठवृक्षके समान अचल स्थित रहे॥ ४६-४७॥

उसी क्षण विदुरजीके मुखसे एक अद्भुत तेज निकला और वह तत्काल युधिष्ठिरके मुखमें समा गया; क्योंकि वे दोनों ही धर्मके अंश थे॥ ४८॥

इस प्रकार विदुरजीने प्राणत्याग कर दिया और युधिष्ठिर अत्यन्त शोकाकुल हो गये। वे राजा युधिष्ठिर उनके शरीरका दाह-संस्कार करनेका प्रबन्ध करने लगे॥ ४९॥

उसी समय राजाको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई—हे राजन्! ये विदुरजी विरक्त हैं, अतः ये दाह-संस्कारके योग्य नहीं हैं। अब आप इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ५०॥

यह सुनकर उन सभी भाइयोंने गंगाके निर्मल जलमें स्नान किया और वहाँ जाकर धृतराष्ट्रसे [सभी वृत्तान्त] विस्तारपूर्वक बताया॥ ५१॥

तत्पश्चात् सब पाण्डव नागरिकोंके साथ उस आश्रममें बैठ गये। उसी समय सत्यवतीपुत्र व्यासजी तथा नारदजी भी वहाँ पहुँच गये। अन्य मुनिगण भी वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास आ गये। उस समय कुन्तीने वहाँ विराजमान शुभदर्शन व्यासजीसे कहा—॥ ५२-५३॥

हे कृष्णद्वैपायन! मैंने अपने पुत्र कर्णको जन्मके समय ही देखा था। [उसे देखनेके लिये] मेरा मन बहुत तड़प रहा है, अतः हे तपोधन! मुझे उसको दिखा दीजिये। हे महाभाग! आप समर्थ हैं, अतः मेरी यह इच्छा पूर्ण कीजिये॥ ५४½॥

गान्धारी बोली—हे मुने! दुर्योधन समरभूमिमें चला गया था और मैं उसे देख नहीं पायी। अतः हे मुनिश्रेष्ठ! छोटे भाइयोंसहित उस दुर्योधनको आप मुझे दिखा दीजिये॥ ५५½॥

सुभद्रा बोली—हे सर्वज्ञ! मैं प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने महान् वीर पुत्र अभिमन्युको देखना चाहती हूँ। अतः हे तपोधन! उसे अभी दिखा दीजिये॥ ५६½॥

सूत उवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः॥ ५७

प्राणायामं ततः कृत्वा दध्यौ देवीं सनातनीम्।
सन्ध्याकालेऽथ सम्प्राप्ते गङ्गायां मुनिसत्तमः॥ ५८

सर्वांस्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान्।
तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले॥ ५९

प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणां निर्गुणां तथा।
देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम्॥ ६०

यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो
न वासवो नैव जलाधिपस्तथा।
न वित्तपो नैव यमश्च पावक-
स्तदासि देवि त्वमहं नमामि ताम्॥ ६१

जलं न वायुर्न धरा न चाम्बरं
गुणा न तेषां च न चेन्द्रियाण्यहम्।
मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी
तदासि देवि त्वमहं नमामि ताम्॥ ६२

इमं जीवलोकं समाधाय चित्ते
गुणैर्लिङ्गकोशं च नीत्वा समाधौ।
स्थिता कल्पकालं नयस्यात्मतन्त्रा
न कोऽप्यस्ति वेत्ता विवेकं गतोऽपि॥ ६३

प्रार्थयत्येष मां लोको मृतानां दर्शनं पुनः।
नाहं क्षमोऽस्मि मातस्त्वं दर्शयाशु जनान्मृतान्॥ ६४

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी।
स्वर्गादाहूय सर्वान्वै दर्शयामास पार्थिवान्॥ ६५

दृष्ट्वा कुन्ती च गान्धारी सुभद्रा च विराटजा।
पाण्डवा मुमुदुः सर्वे वीक्ष्य प्रत्यागतान्स्वकान्॥ ६६

पुनर्विसर्जितास्तेन व्यासेनामिततेजसा।
स्मृत्वा देवीं महामायामिन्द्रजालमिवोद्यतम्॥ ६७

सूतजी बोले—इस प्रकारके वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीने प्राणायाम करके सनातनी देवी भगवतीका ध्यान किया। तब सायंकाल आनेपर मुनिश्रेष्ठ व्यासजी युधिष्ठिर आदि सभी जनोंको गंगाजीके तटपर बुलाकर पुण्यनदी गंगाके पवित्र जलमें स्नान करके प्रकृतिस्वरूपिणी, परम पुरुषको प्रसन्न करनेवाली, सगुण-निर्गुणरूपा, देवताओंकी भी देवी, ब्रह्मस्वरूपिणी उन मणिद्वीपनिवासिनी भगवतीकी स्तुति करने लगे॥ ५७—६०॥

हे देवि! जब ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा अग्नि—ये कोई भी नहीं थे, उस समय भी आपकी सत्ता थी; ऐसी उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६१॥

जिस समय जल, वायु, पृथ्वी, आकाश तथा उनके रस आदि गुण, समस्त इन्द्रियाँ, अहंकार, मन, बुद्धि, सूर्य तथा चन्द्रमा—ये कोई भी नहीं थे, तब भी आप विद्यमान थीं; ऐसी उन आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६२॥

इस जीवलोकको अपने चित्तमें समाहित करके सत्व-रज-तम आदि गुणोंसहित लिंग-कोशको समाधिकी अवस्थामें पहुँचाकर जब आप कल्पपर्यन्त स्वतन्त्र होकर विहार करती हैं, तब विवेकप्राप्त पुरुष भी आपको जाननेमें समर्थ नहीं होता॥ ६३॥

हे माता! ये लोग मृत व्यक्तियोंके पुनः दर्शनके लिये मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं, किंतु मैं ऐसा कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। अतएव आप इन्हें मृत व्यक्तियोंको शीघ्र ही दिखा दें॥ ६४॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर महामाया श्रीभुवनेश्वरी देवीने समस्त मृत राजाओंको स्वर्गसे बुलाकर दिखा दिया॥ ६५॥

कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, विराटपुत्री उत्तरा एवं सभी पाण्डव वापस आये हुए स्वजनोंको देखकर प्रसन्न हो गये॥ ६६॥

तदनन्तर अपरिमित तेजवाले व्यासजीने महामाया देवीका स्मरण करके इन्द्रजालकी भाँति प्रकट हुए उन सबको पुनः लौटा दिया॥ ६७॥

तदा पृष्ट्वा ययुः सर्वे पाण्डवा मुनयस्तथा।
राजा नागपुरं प्राप्तः कुर्वन्व्यासकथां पथि॥ ६८

तत्पश्चात् [धृतराष्ट्र आदि तापसोंसे] आज्ञा लेकर सभी पाण्डव तथा मुनिजन वहाँसे चल दिये। राजा युधिष्ठिर भी मार्गमें व्यासजीकी चर्चा करते हुए हस्तिनापुर आ गये॥ ६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पाण्डवानां कथानकं मृतानां दर्शनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निमें जल जाना, प्रभासक्षेत्रमें यादवोंका परस्पर युद्ध और संहार, कृष्ण और बलरामका परमधामगमन, परीक्षित्‌को राजा बनाकर पाण्डवोंका हिमालय-पर्वतपर जाना, परीक्षित्‌को शापकी प्राप्ति, प्रमद्वरा और रुरुका वृत्तान्त

सूत उवाच

ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः स भूपतिः।
दावाग्निना वने दग्धः सभार्यः कुन्तिसंयुतः॥ १

सूतजी बोले—वहाँसे पाण्डवोंके प्रस्थित होनेके तीसरे दिन उस वनमें लगी दावाग्निमें कुन्ती एवं गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र दग्ध हो गये॥ १॥

सञ्जयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतिम्।
श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद्दुःखमाप्तवान्॥ २

संजय पहले ही धृतराष्ट्रको छोड़कर तीर्थयात्राके लिये चले गये थे। नारदजीसे यह वृत्तान्त सुनकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हुए॥ २॥

षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः।
प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः॥ ३

ते पीत्वा मदिरां मत्ताः कृत्वा युद्धं परस्परम्।
क्षयं प्राप्ता महात्मानः पश्यतो रामकृष्णयोः॥ ४

कौरवोंके विनाशके छत्तीस वर्ष बीतनेपर विप्र-शापके प्रभावसे सभी यादव प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये। वे सभी यादव मदिरा पीकर मतवाले हो गये और आपसमें लड़कर बलराम तथा श्रीकृष्णके देखते-देखते मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ३-४॥

देहं तत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः।
व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः॥ ५

तदनन्तर बलरामजीने योगक्रियाद्वारा शरीरका त्याग किया और कमलके समान नेत्रवाले भगवान् श्रीकृष्णने शापकी मर्यादा रखते हुए एक बहेलियेके बाणसे आहत होकर महाप्रयाण किया॥ ५॥

वसुदेवस्तु तच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथ।
जहौ प्राणाञ्छुचीन्कृत्वा चित्ते श्रीभुवनेश्वरीम्॥ ६

इसके पश्चात् जब वसुदेवजीने श्रीकृष्णके शरीर-त्यागका समाचार सुना तो उन्होंने अपने चित्तमें श्रीभुवनेश्वरी देवीका ध्यान करके अपने पवित्र प्राणोंका परित्याग कर दिया॥ ६॥

अर्जुनस्तु ततो गत्वा प्रभासे चातिदुःखितः।
संस्कारं तत्र सर्वेषां यथायोग्यं चकार ह॥ ७

तत्पश्चात् अत्यन्त शोक-संतप्त अर्जुनने प्रभास-क्षेत्रमें पहुँचकर सभीका यथोचित अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया॥ ७॥

समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा काष्ठस्य सञ्चयम्।
अष्टाभिः सह पत्नीभिर्दाहयामास पार्थिवः॥ ८

भगवान् श्रीकृष्णका शरीर खोजकर और लकड़ी जुटाकर अर्जुनने आठ पटरानियोंके साथ उनका दाह-संस्कार किया॥ ८॥

देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ।
अर्जुनो द्वारकामेत्य पुरान्निष्क्रामयज्जनम्॥ ९

पुरी सा वासुदेवस्य प्लावितोदधिना ततः।
अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वा निर्गतस्तदा॥ १०

कृष्णपत्न्यस्तदा मार्गे चौराभीरैश्च लुण्ठिताः।
धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजश्चार्जुनोऽभवत्॥ ११

इन्द्रप्रस्थे समागत्य वज्रो राजा कृतस्तदा।
अनिरुद्धसुतो नाम्ना पार्थेनामिततेजसा॥ १२

व्यासाय कथितं दुःखं तेनोक्तोऽसौ महारथः।
पुनर्यदा हरिस्त्वञ्च भवितासि महामते॥ १३

तदा तेजस्तवात्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे।
तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः॥ १४

दुःखितो धर्मराजानं वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत्।
देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानां क्षयं तथा॥ १५

गमनाय मतिं चक्रे राजा हैमाचलं प्रति।
षट्त्रिंशद्वार्षिकं राज्ये स्थापयित्वोत्तरासुतम्॥ १६

निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्या भ्रातृभिः सह।
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि कृत्वा राज्यं गजाह्वये॥ १७

गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः।
परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वाः सुधार्मिकः॥ १८

अपालयच्च राजेन्द्रः षष्टिवर्षाण्यतन्द्रितः।
बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत्॥ १९

विद्धं मृगं विचिन्वानो मध्याह्ने भूपतिः स्वयम्।
तृषितश्च परिश्रान्तः क्षुधितश्चोत्तरासुतः॥ २०

तदनन्तर रेवतीके साथ बलरामजीके मृतशरीरका दाह-संस्कार करके अर्जुनने द्वारकापुरी पहुँचकर उस नगरीसे नागरिकोंको बाहर निकाला॥ ९॥

तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी वह द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी, किंतु अर्जुन सभी लोगोंको साथ लेकर बाहर निकल गये थे॥ १०॥

मार्गमें चोरों और भीलोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूट लिया और समस्त धन छीन लिया; उस समय अर्जुन तेजहीन हो गये॥ ११॥

तदनन्तर अपरिमित तेजसे सम्पन्न अर्जुनने इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्रको राजा बनाया॥ १२॥

अर्जुनने अपने तेजहीन होनेका दुःख व्यासजीसे निवेदित किया, जिसपर व्यासजीने उस महारथी अर्जुनसे कहा—हे महामते! जब भगवान् श्रीकृष्ण और आपका पुनः अवतार होगा, तब उस युगमें आपका तेज पुनः अत्यन्त उग्र हो जायगा। उनका यह वचन सुनकर अर्जुन वहाँसे हस्तिनापुर चले गये। वहाँपर अत्यन्त दुःखी होकर अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरसे समस्त वृत्तान्त कहा॥ १३-१४½॥

श्रीकृष्णके देहत्याग एवं यादवोंके विनाशका समाचार सुनकर राजा युधिष्ठिरने हिमालयकी ओर जानेका निश्चय कर लिया। इसके बाद छत्तीसवर्षीय उत्तरापुत्र परीक्षित्‌को राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित करके वे राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयोंके साथ वनकी ओर निकल गये। इस प्रकार छत्तीस वर्षकी अवधितक हस्तिनापुरमें राज्य करके द्रौपदी तथा कुन्तीपुत्रों—इन छहोंने हिमालयपर्वतपर जाकर प्राण त्याग दिये॥ १५—१७½॥

इधर धर्मनिष्ठ राजर्षि परीक्षित्‌ने भी आलस्यरहित भावसे साठ वर्षोंतक सम्पूर्ण प्रजाका पालन किया। वे एक बार आखेटहेतु एक विशाल जंगलमें गये॥ १८-१९॥

अपने बाणसे विद्ध एक मृगको खोजते-खोजते मध्याह्नकालमें उत्तरापुत्र राजा परीक्षित् भूख-प्यास तथा थकानसे व्याकुल हो गये॥ २०॥

राजा घर्मेण सन्तप्तो ददर्श मुनिमन्तिके।
ध्याने स्थितं मुनिं राजा जलं पप्रच्छ चातुरः॥ २१

नोवाच किञ्चिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा।
मृतं सर्पं तदादाय धनुष्कोट्या तृषातुरः॥ २२

कलिनाविष्टचित्तस्तु कण्ठे तस्य न्यवेशयत्।
आरोपिते तथा सर्पे नोवाच मुनिसत्तमः॥ २३

न चचाल समाधिस्थो राजापि स्वगृहं गतः।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गविजातो महातपाः॥ २४

महाशक्तोऽथ शुश्राव क्रीडमानो वनान्तिके।
मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रं पितुः कण्ठे तवाधुना॥ २५

लम्बितोऽस्ति मृतः सर्पः केनापीति मुनीश्वर।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिशयं तदा॥ २६

शशाप नृपतिं क्रुद्धो गृहीत्वाशु करे जलम्।
पितुः कण्ठेऽद्य मे येन विनिक्षिप्तो मृतोरगः॥ २७

तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पापपूरुषम्।
मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्य गृहे स्थितम्॥ २८

शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेण चार्पितम्।
अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शापं दत्तं द्विजेन वै॥ २९

अनिवार्यं च विज्ञाय मन्त्रिवृद्धानुवाच ह।
शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम्॥ ३०

किं विधेयं मयामात्या उपायश्चिन्त्यतामिह।
मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदन्ति वेदवादिनः॥ ३१

यत्नस्तथापि शास्त्रोक्तः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः।
उपायवादिनः केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ३२

विज्ञोपायेन सिध्यन्ति कार्याणि नेतरस्य च।
मणिमन्त्रौषधीनां वै प्रभावाः खलु दुर्विदः॥ ३३

न भवेदिति किं तैस्तु मणिमद्भिः सुसाधितैः।
सर्पदष्टा पुरा भार्या मुनेः सञ्जीविता मृता॥ ३४

धूपसे पीड़ित राजाने समीपमें ही एक ध्यानमगन मुनिको विराजमान देखा और प्याससे व्याकुल उन्होंने मुनिसे जल माँगा॥ २१॥

मौन व्रतमें स्थित वे मुनि कुछ भी नहीं बोले, जिससे राजा कुपित हो गये और प्याससे आकुल तथा कलिसे प्रभावित चित्तवाले राजाने अपने धनुषकी नोकसे एक मृत साँप उठाकर उनके गलेमें डाल दिया। गलेमें सर्प डाल दिये जानेके बाद भी वे मुनिश्रेष्ठ कुछ भी नहीं बोले॥ २२-२३॥

वे थोड़ा भी विचलित नहीं हुए और समाधिमें स्थित रहे। राजा भी अपने घर चले गये। उन मुनिका पुत्र गविजात अत्यन्त तेजस्वी तथा महातपस्वी था॥ २४॥

पराशक्तिके आराधक उस गविजातने पासके वनमें खेलते हुए अपने मित्रोंको ऐसा कहते हुए सुना कि हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे पिताके गलेमें किसीने मृत सर्प डाल दिया है। उनकी यह बात सुनकर वह अत्यन्त कुपित हुआ और शीघ्र ही हाथमें जल लेकर उसने कुपित होकर राजाको शाप दे दिया—जिस व्यक्तिने मेरे पिताजीके कण्ठमें मृत सर्प डाला है, उस पापी पुरुषको एक सप्ताहमें तक्षक डस लेगा। मुनिके शिष्यने महलमें स्थित राजा परीक्षित्‌के समीप जाकर मुनिपुत्रके द्वारा दिये गये शापकी बात कही। ब्राह्मणके द्वारा दिये गये शापको सुनकर अभिमन्युपुत्र परीक्षित्‌ने उसे अनिवार्य समझकर वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा—अपने अपराधके कारण मैं मुनिपुत्रसे शापित हुआ हूँ॥ २५—३०॥

हे मन्त्रियो! अब मुझे क्या करना चाहिये? आप लोग कोई उपाय सोचें। मृत्यु तो अनिवार्य है—ऐसा वेदवादी लोग कहते हैं, तथापि बुद्धिमान् पुरुषोंको शास्त्रोक्त रीतिसे सर्वथा प्रयत्न करना ही चाहिये। कुछ पुरुषार्थवादी विद्वान् ऐसा कहते हैं कि बुद्धिमानीके साथ उपाय करनेपर कार्य सिद्ध हो जाते हैं; न करनेपर नहीं। मणि, मन्त्र और औषधोंके प्रभाव अत्यन्त ही दुर्ज्ञेय होते हैं। मणि धारण करनेवाले सिद्धजनोंके द्वारा क्या नहीं सम्भव हो जाता? पूर्वकालमें किसी ऋषिपत्नीको सर्पने काट लिया था, जिससे वह मर गयी थी; उस समय उस मुनिने अपनी आयुका आधा

दत्त्वार्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराप्सराः।
भवितव्ये न विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥ ३५

प्रत्यक्षं तत्र दृष्टान्तं पश्यन्तु सचिवाः किल।
दिवि कोऽपि पृथिव्यां वा दृश्यते पुरुषः क्वचित्॥ ३६

दैवे मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यमः।
विरक्तस्तु यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा॥ ३७

गृहस्थानां गृहे काममाहूतो वाथवान्यथा।
यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे॥ ३८

उद्यमेन विना चास्यादुदरे संविशेत्कथम्।
प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत्॥ ३९

तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुधः।

मन्त्रिण ऊचुः

को मुनिर्येन दत्त्वार्धमायुषो जीविता प्रिया॥ ४०

कथं मृता महाराज तन्नो ब्रूहि सविस्तरम्।

राजोवाच

भृगोर्भार्या वरारोहा पुलोमा नाम सुन्दरी॥ ४१

तस्यां तु च्यवनो नाम मुनिर्जातोऽतिविश्रुतः।
च्यवनस्य च शर्यातेः सुकन्या नाम सुन्दरी॥ ४२

तस्यां जज्ञे सुतः श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुतः।
प्रमतेस्तु प्रिया भार्या प्रतापी नाम विश्रुता॥ ४३

रुरुर्नाम सुतो जातस्तथा परमतापसः।
तस्मिंश्च समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुतः॥ ४४

बभूव तपसा युक्तो धर्मात्मा सत्यसम्मतः।
एतस्मिन्नन्तरे मान्या मेनका च वराप्सराः॥ ४५

क्रीडां चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरी।
गर्भं विश्वावसोः प्राप्य निर्गता वरवर्णिनी॥ ४६

स्थूलकेशाश्रमे गत्वा विससर्ज वराप्सराः।
कन्यकां च नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरीम्॥ ४७

भाग देकर उस श्रेष्ठ अप्सराको जीवित कर दिया था। अतः बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे भवितव्यतापर विश्वास न करें, उपाय भी करें॥ ३१—३५॥

हे सचिवो! आपलोग यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष देख लें। इस लोक या परलोकमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं दिखायी देता, जो केवल भाग्यके भरोसे रहकर उद्यम न करता हो। गृहस्थीसे विरक्त मनुष्य संन्यासी होकर जगह-जगह भिक्षाटनके लिये बुलानेपर अथवा बिना बुलाये भी गृहस्थोंके घर जाता ही है। दैवात्प्राप्त उस भोजनको भी क्या कोई मुखमें डाल देता है? उद्यमके बिना वह भोजन मुखसे उदरमें कैसे प्रवेश कर सकता है? अतः प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मनमें विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है॥ ३६—३९ १/२॥

मन्त्रियोंने कहा—हे महाराज! वे कौन मुनि थे, जिन्होंने अपनी आधी आयु देकर अपनी प्रिय पत्नीको जीवित किया था? वह कैसे मरी थी? यह कथा विस्तारसे हमसे कहिये॥ ४० १/२॥

राजा बोले—महर्षि भृगुकी एक सुन्दर स्त्री थी, जिसका नाम पुलोमा था। उससे परम विख्यात च्यवनमुनिका जन्म हुआ। च्यवनकी पत्नीका नाम सुकन्या था, वह महाराज शर्यातिकी रूपवती कन्या थी॥ ४१-४२॥

उस सुकन्यासे श्रीमान् प्रमतिने जन्म लिया, जो बड़े यशस्वी थे। उस प्रमतिकी प्रिय पत्नीका नाम प्रतापी था। उन्हीं राजा प्रमतिके पुत्र परम तपस्वी 'रुरु' हुए॥ ४३ १/२॥

उन्हीं दिनों स्थूलकेश नामक एक विख्यात ऋषि थे, जो बड़े ही तपस्वी, धर्मात्मा एवं सत्यनिष्ठ थे। इसी बीच त्रिलोकसुन्दरी मेनका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा नदीके किनारे जलक्रीडा कर रही थी। वह अप्सरा विश्वावसुके द्वारा गर्भवती होकर वहाँसे निकल पड़ी॥ ४४—४६॥

उस श्रेष्ठ अप्सराने स्थूलकेशके आश्रममें जाकर नदीतटपर एक त्रैलोक्यसुन्दरी कन्याको जन्म दिया और वह उसे छोड़कर चली गयी। तब उस नवजात शिशु

दृष्ट्वानाथां तदा कन्यां जग्राह मुनिसत्तमः।
पुपोष स्थूलकेशस्तु नाम्ना चक्रे प्रमद्वराम्॥ ४८

सा काले यौवनं प्राप्ता सर्वलक्षणसंयुता।
रुरुर्दृष्ट्वाथ तां बालां कामबाणार्दितो ह्यभूत्॥ ४९

कन्याको अनाथ जानकर मुनिवर स्थूलकेश अपने आश्रममें ले गये और उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उसका नाम प्रमद्वरा रखा॥ ४७-४८॥

वह सर्वलक्षणसम्पन्न कन्या यथासमय यौवनको प्राप्त हुई। उस सुन्दरीको देखकर रुरु काममोहित हो गये॥ ४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे रुरुचरित्रवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सर्पके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु, रुरुद्वारा अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कराना, मणि-मन्त्र-औषधिद्वारा सुरक्षित राजा परीक्षित्‌का सात तलवाले भवनमें निवास करना

परीक्षिदुवाच

कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुः सुप्तो निजाश्रमे।
पिता पप्रच्छ दीनं तं किं रुरो विमना असि॥ १

स तमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाश्रमे।
कन्या प्रमद्वरा नाम सा मे भार्या भवेदिति॥ २

स गत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम्।
प्रमुह्य सुमुखं कृत्वा ययाचे तां वराननाम्॥ ३

ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभेऽहनि।
विवाहार्थं च सम्भारं रचयामासतुर्वने॥ ४

प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ।
बभूवतुर्महात्मानौ समीपस्थौ तपोवने॥ ५

तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणा गृहाङ्गणे।
प्रसुप्तं पन्नगं पादेनास्पृशच्चारुलोचना॥ ६

दष्टा तु पन्नगेनाथ सा ममार वराङ्गना।
कोलाहलस्तदा जातो मृतां दृष्ट्वा प्रमद्वराम्॥ ७

मिलिता मुनयः सर्वे चुक्रुशुः शोकसंयुताः।
भूमौ तां पतितां दृष्ट्वा पिता तस्यातिदुःखितः॥ ८

परीक्षित् बोले—[हे सचिववृन्द!] इस प्रकार कामासक्त होकर रुरुमुनि अपने आश्रममें सो गये, तब उनके पिताने उन्हें दुःखी देखकर पूछा—हे रुरु! तुम इतने उदास क्यों हो?॥ १॥

कामातुर रुरुने अपने पितासे कहा—महर्षि स्थूलकेशके आश्रममें प्रमद्वरा नामकी एक कन्या है; मैं चाहता हूँ कि वह मेरी पत्नी बन जाय॥ २॥

उन प्रमतिने महामुनि स्थूलकेशके पास शीघ्र जाकर उन्हें प्रसन्न तथा अपने अनुकूल करके उस सुन्दर कन्याकी याचना की॥ ३॥

महामुनि स्थूलकेशने यह वचन दे दिया कि किसी अच्छे मुहूर्तमें कन्यादान दूँगा। अब उस वनमें वे दोनों विवाहकी सामग्रीका प्रबन्ध करने लगे। इस प्रकार उस तपोवनमें समीपमें ही रहकर प्रमति और स्थूलकेश दोनों महात्मा विवाहोत्सवकी तैयारी करने लगे॥ ४-५॥

उसी अवसरपर वह कन्या अपने घरके आँगनमें खेल रही थी, तभी एक सोये हुए सर्पसे उस सुनयनीका पैर छू गया। [स्पर्श होते ही] सर्पने उसे डँस लिया और वह सुन्दरी कन्या मर गयी। तब मृत्युको प्राप्त हुई प्रमद्वराको देखकर वहाँ कोलाहल मच गया॥ ६-७॥

सभी मुनि जुट गये और शोकसे ग्रस्त होकर रोने लगे। पृथ्वीपर प्राणहीन होकर पड़ी हुई अत्यन्त तेजसे देदीप्यमान उस कन्याको देखकर उसके पिता

रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा।
रुरुः श्रुत्वा तदाक्रन्दं दर्शनार्थं समागतः॥ ९

ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम्।
रुदन्तं स्थूलकेशं च दृष्ट्वान्यानृषिसत्तमान्॥ १०

रुरुः स्थानाद् बहिर्गत्वा रुरोद विरहाकुलः।
अहो दैवेन सर्पोऽयं प्रेषितः परमाद्भुतः॥ ११

मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल।
किं करोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राणवल्लभा॥ १२

न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः प्रिययानया।
नालिङ्गिता वरारोहा न मया चुम्बिता मुखे॥ १३

न पाणिग्रहणं प्राप्तं मन्दभाग्येन सर्वथा।
लाजाहोमस्तथा चाग्नौ न कृतस्त्वनया सह॥ १४

मानुष्यं धिगिदं कामं गच्छन्त्वद्य ममासवः।
दुःखितस्य न वा मृत्युर्वाञ्छितः समुपैति हि॥ १५

सुखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वाञ्छितम्।
प्रपतामि ह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम्॥ १६

विषमद्मि गले पाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम्।
विलप्यैवं रुरुस्तत्र विचार्य मनसा पुनः॥ १७

उपायं चिन्तयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे।
मरणात्किं फलं मे स्यादात्महत्या दुरत्यया॥ १८

दुःखितश्च पिता मे स्याजननी चातिदुःखिता।
दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम्॥ १९

सर्वः प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षये नात्र संशयः।
उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि॥ २०

मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च।
परलोके प्रिया सापि न मे स्यादात्मघातिनः॥ २१

एतदर्थं मृते दोषा मयि नैवामृते पुनः।

स्थूलकेश अत्यन्त दुःखित होकर रुदन करने लगे। उस समय करुण क्रन्दन सुनकर रुरु भी उसे देखनेके लिये आये। उन्होंने उस मृत पड़ी सुन्दरीको सजीव-जैसी देखा। स्थूलकेश तथा अन्य श्रेष्ठ मुनियोंको रुदन करते देखकर रुरुमुनि उस स्थानसे बाहर आ करके विरहाकुल होकर रोने लगे॥ ८—१०½ ॥

[वे कहने लगे—] अहो! प्रारब्धने ही मेरे सुखके विनाशके लिये ही यह अत्यन्त विचित्र सर्प भेजा था। यह निश्चित ही मेरे दुःखका कारण है। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरी प्राणप्रिया तो मर गयी। अब मैं अपनी इस प्रियासे विलग होकर जीना नहीं चाहता। अभीतक मैंने उस सुन्दरीका आलिंगन आदि कोई सांसारिक सुख भी नहीं प्राप्त किया था। मैं ऐसा अभागा हूँ कि उसका पाणिग्रहण नहीं कर सका और न तो उसके साथ अग्निमें लाजाहोम ही कर पाया। मेरे इस मनुष्य-जीवनको धिक्कार है। अब तो मेरे प्राण निकल जायँ तो अच्छा है, जब दुःखित मनुष्यको चाहनेपर भी मृत्यु नहीं मिलती, तब इस संसारमें वांछित उत्तम सुख कैसे मिल सकता है? अब मैं या तो कहीं किसी भयानक तालाबमें डूब जाऊँ, अग्निमें कूद पड़ूँ, विष खा लूँ अथवा गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्याग दूँ॥ ११—१६½ ॥

इस प्रकार विलाप करके रुरु अपने मनमें विचारकर उस नदीके तटपर स्थित रहते हुए उपाय सोचने लगे। प्राण त्यागनेसे मुझे क्या लाभ होगा? आत्महत्याका फल तो अत्यन्त दुर्निवार्य होता है। [मेरी मृत्यु सुनकर] पिताजी दुःखी होंगे, माताजीको भी महान् कष्ट होगा। हाँ, हो सकता है कि मुझे मरा हुआ देखकर प्रारब्ध सन्तुष्ट हो जाय? मेरे मर जानेपर मेरे सभी शत्रु भी प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं है, किंतु इससे परलोकमें मेरी प्रियाका क्या उपकार होगा? इस प्रकार विरहसे सन्तप्त होकर आत्महत्या करके मेरे मर जानेपर भी परलोकमें मुझ आत्मघातीको मेरी वह प्रिया नहीं मिलेगी। इसलिये मेरे मरनेमें बहुत दोष हैं और न मरनेपर मुझे कोई दोष नहीं होगा॥ १७—२१½ ॥

विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाचम्य शुचिः स्थितः ॥ २२

अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः।
यन्मया सुकृतं किञ्चित्कृतं देवार्चनादिकम् ॥ २३

गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तं तपः कृतम्।
अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री संस्कृता यदि ॥ २४

रविराराधितस्तेन सञ्जीवतु मम प्रिया।
यदि जीवेन्न मे कान्ता त्यजे प्राणानहं ततः ॥ २५

इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाराध्य देवताः।

राजोवाच

एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च ॥ २६

देवदूतस्तदाभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं ततः।

देवदूत उवाच

माकार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया ॥ २७

गतायुरेषा सुश्रोणी गन्धर्वाप्सरसोः सुता।
अन्यां कामय चार्वङ्गीं मृतेयं चाविवाहिता ॥ २८

किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे का प्रीतिस्तेऽनया सह।

रुरुरुवाच

देवदूत न चान्यां वै वरिष्याम्यहमङ्गनाम् ॥ २९

यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाधुना मया।

राजोवाच

विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदान्वितः ॥ ३०

उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम्।
उपायं शृणु विप्रेन्द्र विहितं यत्सुरैः पुरा ॥ ३१

आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाशु प्रमद्वराम्।

रुरुरुवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नात्र संशयः ॥ ३२

अद्य प्रत्यावृतप्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया।
विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः ॥ ३३

ऐसा सोचकर रुरु स्नान तथा आचमन करके पवित्र होकर वहींपर बैठ गये। इसके बाद उन मुनिने हाथमें जल लेकर यह वचन कहा—यदि मेरे द्वारा देवाराधन आदि कुछ भी पुण्य कर्म सम्पादित किया गया हो, यदि मैंने श्रद्धापूर्वक गुरुओंकी पूजा की हो; हवन, जप एवं तप किया हो, समस्त वेदोंका अध्ययन किया हो, गायत्रीकी उपासना की हो और सूर्यकी आराधना की हो तो उस पुण्यके प्रभावसे मेरी प्रिया जीवित हो जाय। यदि मेरी प्रिया जीवित नहीं होगी तो मैं प्राण त्याग दूँगा। ऐसा कहकर देवताओंका ध्यान करके उन्होंने वह जल जमीनपर छोड़ दिया॥ २२—२५½ ॥

राजा बोले—तदनन्तर इस प्रकार अपनी भार्याके लिये विलाप कर रहे उन दुःखित रुरुके पास एक देवदूत आकर यह वाक्य बोला॥ २६½ ॥

देवदूत बोला—हे ब्रह्मन्! ऐसा साहस मत कीजिये। आपकी मरी हुई प्रियतमा भला कैसे जीवित हो सकेगी? गन्धर्व और अप्सराकी इस सुन्दर कन्याकी आयु समाप्त हो चुकी थी, जिससे यह अविवाहिता ही मर गयी; अतः अब आप किसी अन्य शुभ अंगोंवाली कन्याका वरण कर लीजिये। हे हतबुद्धि! आप क्यों रो रहे हैं? इसके साथ आपका कैसा प्रेम है?॥ २७-२८½ ॥

रुरु बोले—हे देवदूत! मैं किसी अन्य सुन्दरीका वरण नहीं करूँगा। यदि यह जीवित हो जाती है तो ठीक है, अन्यथा मैं इसी समय अपने प्राण त्याग दूँगा॥ २९½ ॥

राजा बोले—उन मुनिका यह हठ देखकर देवदूतने प्रसन्न होकर तथ्यपूर्ण, सत्य तथा मनोहर वचन कहा—हे विप्रेन्द्र! देवताओंके द्वारा इसका पूर्वविहित उपाय मुझसे सुनिये। आप अपनी आयुका आधा भाग देकर अपनी प्रमद्वराको शीघ्र ही जीवित कर लीजिये॥ ३०-३१½ ॥

रुरु बोले—मैं निःसन्देह अपनी आयुका आधा भाग इस कन्याको दे रहा हूँ। अब मेरी प्रियतमाके प्राण वापस आ जायँ और यह उठकर बैठ जाय। उसी समय विश्वावसु अपनी पुत्री प्रमद्वराकी मृत्यु

ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम्।
ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः॥ ३४

धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम्।
धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा॥ ३५

मृता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना।
सा रुरोरायुषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज॥ ३६

समुत्तिष्ठतु तन्वङ्गी व्रतचर्याप्रभावतः।

धर्म उवाच

विश्वावसुसुतां कन्यां देवदूत यदीच्छसि॥ ३७

उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुं गत्वा त्वमर्पय।

राजोवाच

एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम्॥ ३८

रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः।
ततः शुभेऽह्नि विधिना रुरुणापि विवाहिता॥ ३९

इत्थं चोपाययोगेन मृताप्युज्जीविता तदा।
उपायस्तु प्रकर्तव्यः सर्वथा शास्त्रसम्मतः॥ ४०

मणिमन्त्रौषधीभिश्च विधिवत्प्राणरक्षणे।
इत्युक्त्वा सचिवान् राजा कल्पयित्वा सुरक्षकान्॥ ४१

कारयित्वाथ प्रासादं सप्तभूमिकमुत्तमम्।
आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैः सह तत्क्षणम्॥ ४२

मणिमन्त्रधराः शूराः स्थापितास्तत्र रक्षणे।
प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः॥ ४३

प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः।
ब्राह्मणान्सिद्धमन्त्रज्ञान् रक्षणार्थमितस्ततः॥ ४४

मन्त्रिपुत्रः स्थितस्तत्र स्थापयामास दन्तिनः।
न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादे चातिरक्षिते॥ ४५

जान करके स्वर्गलोकसे विमानद्वारा शीघ्र ही वहाँ आ गये। तत्पश्चात् गन्धर्वराज विश्वावसु तथा उस श्रेष्ठ देवदूतने धर्मराजके पास पहुँचकर यह वचन कहा—हे धर्मराज! रुरुकी पत्नी तथा विश्वावसुकी पुत्री इस प्रमद्वरा नामक कन्याकी सर्पदंशके कारण इस समय मृत्यु हो गयी है। हे सूर्यतनय! इसके वियोगमें मरणके लिये उद्यत मुनि रुरुकी आधी आयु तथा उनकी तपस्याके प्रभावसे यह कोमलांगी जीवित हो जाय॥ ३२—३६½॥

धर्मराजने कहा—हे देवदूत! यदि तुम ऐसा चाहते हो तो उसकी आधी आयुसे विश्वावसुकी यह कन्या जीवित होकर उठ जाय और तुम जाकर इसे रुरुको समर्पित कर दो॥ ३७½॥

राजा बोले—धर्मराजके ऐसा कहनेपर देवदूतने जाकर प्रमद्वराको जीवित करके शीघ्र ही रुरुको समर्पित कर दिया और तत्पश्चात् रुरुने किसी शुभ दिन उसके साथ विधानपूर्वक विवाह कर लिया॥ ३८-३९॥

इस प्रकार उपायका आश्रय लेकर मृत प्रमद्वराको भी जीवित कर लिया गया था। अतः मणि, मन्त्र तथा औषधियोंके विधिवत् प्रयोगद्वारा प्राणरक्षाके लिये शास्त्र-सम्मत उपाय अवश्य किया जाना चाहिये॥ ४०½॥

मन्त्रियोंसे यह कहकर उत्तम रक्षकोंकी व्यवस्था करके एक सात तलवाला उत्तम राजभवन बनवाकर उसी क्षण उत्तरापुत्र परीक्षित् अपने मन्त्रियोंके साथ उसपर चढ़ गये॥ ४१-४२॥

उस भवनकी सम्यक् सुरक्षाके लिये मणि-मन्त्र-धारी वीरोंको नियुक्त किया गया और इसके बाद राजाने गौरमुखमुनिको [गविजातके पास उन्हें] प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे भेजा और कहलाया कि मुझ सेवकका अपराध वे बार-बार क्षमा करें। तत्पश्चात् राजाने मन्त्र-प्रयोगमें निपुण ब्राह्मणोंको रक्षा-कार्यके निमित्त चारों ओर नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

एक मन्त्रिपुत्र वहाँ नियुक्त किया गया, जिसने महलके चारों ओर हाथियोंका घेरा स्थापित कराया ताकि विशेषरूपसे रक्षित उस महलपर कोई चढ़ न सके॥ ४५॥

वातोऽपि न चरेत्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते।
भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्च चकार सः॥ ४६

स्नानसन्ध्यादिकं कर्म तत्रैव विनिवर्त्य च।
राजकार्याणि सर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः॥ ४७

मन्त्रिभिः सह सम्मन्त्र्य गणयन्दिवसानपि।
कश्चिच्च कश्यपो नाम ब्राह्मणो मन्त्रिसत्तमः॥ ४८

शुश्राव च तथा शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना।
स धनार्थी द्विजश्रेष्ठः कश्यपः समचिन्तयत्॥ ४९

व्रजामि तत्र यत्रास्ते शप्तो राजा द्विजेन ह।
इति कृत्वा मतिं विप्रः स्वगृहान्निःसृतः पथि॥ ५०
कश्यपो मन्त्रविद्विद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः॥ ५१

महलके भीतर वायुका भी संचरण नहीं हो पाता था; क्योंकि उसका प्रवेश सर्वथा वर्जित था। राजा वहीं स्थित रहकर भोजनादि करने लगे। वहींपर रहते हुए स्नान एवं सन्ध्यादि कार्योंसे निवृत्त होकर राजा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते तथा शापके दिन गिनते हुए समस्त राजकार्योंको संचालित करते थे॥ ४६-४७½॥

इसी बीच किसी कश्यप नामक मन्त्र-विशेषज्ञ ब्राह्मणने सुना कि राजा परीक्षित्को [सर्पद्वारा काटे जानेका] शाप प्राप्त हुआ है। उस धनाभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ कश्यपने विचार किया कि मुनिके द्वारा शापित राजा इस समय जहाँ रह रहे हैं, मैं वहीं पर जाऊँगा। ऐसा निश्चय करके मन्त्रज्ञ, विद्वान् तथा धनाभिलाषी वह कश्यप नामक मुनिश्रेष्ठ विप्र अपने घरसे निकलकर रास्तेपर चल पड़ा॥ ४८—५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
परीक्षिद्राज्ञो गुप्तगृहे वासवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

महाराज परीक्षित्को डँसनेके लिये तक्षकका प्रस्थान, मार्गमें मन्त्रवेत्ता कश्यपसे भेंट, तक्षकका एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर देना और कश्यपका उसे पुनः हरा-भरा कर देना, तक्षकद्वारा धन देकर कश्यपको वापस कर देना, सर्पदंशसे राजा परीक्षित्की मृत्यु

सूत उवाच

तस्मिन्नेव दिने नाम्ना तक्षकस्तं नृपोत्तमम्।
शप्तं ज्ञात्वा गृहात्तूर्णं निःसृतः पुरुषोत्तमः॥ १

वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः।
अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजन्तं नृपतिं प्रति॥ २

तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मन्त्रवादिनम्।
क्व भवांस्त्वरितो याति किञ्च कार्यं चिकीर्षति॥ ३

कश्यप उवाच

परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति।
तत्राहं त्वरितो यामि नृपं कर्तुमपज्वरम्॥ ४

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रेन्द्र विषनाशकरः किल।
जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल॥ ५

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उसी दिन तक्षक नामक नाग नृपश्रेष्ठ परीक्षित्को शापित जानकर एक उत्तम मनुष्यका रूप धारण करके अपने घरसे शीघ्र निकल पड़ा। वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें रास्तेपर चलते हुए उस तक्षकने महाराज परीक्षित्के यहाँ जाते हुए कश्यपको देखा॥ १-२॥

उस नागने उन मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणसे पूछा—आप इतनी शीघ्र गतिसे कहाँ चले जा रहे हैं और कौन-सा कार्य करनेकी आपकी इच्छा है?॥ ३॥

कश्यपने कहा—महाराज परीक्षित्को तक्षकनाग डँसनेवाला है। अतः मैं उन्हें विषमुक्त करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहीं जा रहा हूँ॥ ४॥

हे विप्रेन्द्र! मेरे पास प्रबल विषनाशक मन्त्र है, अतएव यदि उनकी आयु शेष होगी तो मैं उन्हें जीवित कर दूँगा॥ ५॥

तक्षक उवाच

अहं स पन्नगो ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम्।
निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम्॥ ६

कश्यप उवाच

अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै।
जीवयिष्याम्यसन्देहं कामं मन्त्रबलेन वै॥ ७

तक्षक उवाच

यदि त्वं जीवितुं यासि मया दष्टं नृपोत्तमम्।
मन्त्रशक्तिबलं विप्र दर्शय त्वं ममानघ॥ ८
धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै।

कश्यप उवाच

जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम॥ ९

सूत उवाच

अदशत्पन्नगो वृक्षं भस्मसाच्च चकार तम्।
उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम॥ १०

दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना।
सर्वं भस्म समाहृत्य कश्यपो वाक्यमब्रवीत्॥ ११

पश्य मन्त्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम।
जीवयाम्यद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष॥ १२

इत्युक्त्वा जलमादाय कश्यपो मन्त्रवित्तमः।
सिषेच भस्मराशिं तं मन्त्रितेनैव वारिणा॥ १३

तद्वारिसेचनाज्जातो न्यग्रोधः पूर्ववच्छुभः।
विस्मयं तक्षकः प्राप्तो दृष्ट्वा तं जीवितं नगम्॥ १४

तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः।
सम्पादयामि तं कामं ब्रूहि वाडव वाञ्छितम्॥ १५

कश्यप उवाच

वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः।
गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम्॥ १६

तक्षकने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं ही वह तक्षकनाग हूँ और मैं ही महाराज परीक्षित्‌को काटूँगा। मेरे काट लेनेपर आप चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे; अतएव आप लौट जाइये॥ ६॥

कश्यपने कहा—हे सर्प! ब्राह्मणके द्वारा शापित किये गये राजाको आपके काटनेके उपरान्त मैं उन्हें अपने मन्त्रबलसे निःसन्देह जीवित कर दूँगा॥ ७॥

तक्षकने कहा—हे विप्र! हे अनघ! यदि आप मेरे काटे हुए नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को जीवित करनेके लिये जा रहे हैं तो आप अपनी मन्त्र-शक्तिका प्रभाव दिखाइये। मैं इसी समय इस वटवृक्षको अपने विषैले दाँतोंसे डँसता हूँ॥ ८½॥

कश्यपने कहा—हे सर्पश्रेष्ठ! आप इसे काट लें अथवा इसे जलाकर भस्म कर दें तो भी मैं इसे पुनः जीवित कर दूँगा॥ ९॥

सूतजी बोले—नागराज तक्षकने उस वृक्षको डँस लिया और उसे जलाकर भस्म कर दिया। तब उसने कश्यपसे कहा—'हे द्विजश्रेष्ठ! अब आप इसे पुनः जीवित कीजिये'॥ १०॥

तक्षकनागकी विषाग्निसे भस्म हुए वृक्षके सम्पूर्ण भस्मको एकत्र करके कश्यपने यह बात कही—हे महाविषधर नागराज! अब आप मेरे मन्त्रका प्रभाव देखिये। मैं आपके देखते-देखते इस वटवृक्षको जीवन प्रदान करता हूँ॥ ११-१२॥

ऐसा कहकर हाथमें जल लेकर मन्त्रविद् कश्यपने उस जलको अभिमन्त्रित किया और उसे भस्मराशिपर छिड़क दिया। जलके पड़ते ही वह वटवृक्ष पुनः पहलेकी भाँति सुन्दर हो गया। उस वृक्षको इस प्रकार जीवित देखकर तक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ १३-१४॥

उस नागराजने कश्यपसे कहा—हे विप्र! आप इतना परिश्रम किसलिये करेंगे? आपकी वह कामना मैं ही पूर्ण कर दूँगा। कहिये, आप क्या चाहते हैं?॥ १५॥

कश्यपने कहा—हे पन्नग! मैं धनका अभिलाषी हूँ; नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को शापित जानकर अपनी मन्त्रविद्यासे उनका उपकार करनेके लिये मैं अपने घरसे निकला हुआ हूँ॥ १६॥

तक्षक उवाच

वित्तं गृहाण विप्रेन्द्र यावदिच्छसि पार्थिवात्।
ददामि स्वगृहं याहि सकामोऽहं भवाम्यतः॥ १७

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कश्यपः परमार्थवित्।
चिन्तयामास मनसा किं करोमि पुनः पुनः॥ १८

धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहं पुनः।
भविष्यति न मे कीर्तिर्लोके लोभसमाश्रयात्॥ १९

जीवितेऽथ नृपश्रेष्ठे कीर्तिः स्यादचला मम।
धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यं च जीवनात्॥ २०

रक्षणीयं यशः कामं धिग्धनं यशसा विना।
सर्वस्वं रघुणा पूर्वं दत्तं विप्राय कीर्तये॥ २१

हरिश्चन्द्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम्।
उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना॥ २२

जीवितेऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च।
अराजके प्रजानाशो भविता नात्र संशयः॥ २३

प्रजानाशस्य पापं मे भविष्यति मृते नृपे।
अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति॥ २४

इति सञ्चिन्त्य मनसा ध्यानं कृत्वा स कश्यपः।
गतायुषं च नृपतिं ज्ञातवान्बुद्धिमत्तरः॥ २५

आसन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा ध्यानेन कश्यपः।
गृहं ययौ स धर्मात्मा धनमादाय तक्षकात्॥ २६

निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसे नृपम्।
हन्तुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम्॥ २७

शुश्राव नगरस्यान्ते प्रासादस्थं परीक्षितम्।
मणिमन्त्रौषधैः कामं रक्ष्यमाणमतन्द्रितम्॥ २८

तक्षकने कहा—हे विप्रवर! राजासे जितना धन आप चाहते हैं, उतना धन मुझसे अभी ले लें और अपने घर लौट जायँ, जिससे मैं अपने कृत्यमें सफल हो सकूँ॥ १७॥

सूतजी बोले—तक्षककी यह बात सुनकर परमार्थवेत्ता कश्यपजी मनमें बार-बार सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं धन लेकर अपने घर जाता हूँ तो धनलोलुप होनेके कारण संसारमें मेरी कीर्ति नहीं होगी। यदि राजा जीवित हो जाते हैं तो मेरी अचल कीर्ति होगी तथा धन-प्राप्तिके साथ-साथ पुण्य भी प्राप्त होगा॥ १८—२०॥

यश ही रक्षणीय है और बिना यशके धनको धिक्कार है; क्योंकि प्राचीन कालमें महाराज रघुने कीर्तिके लिये अपना सब कुछ ब्राह्मणको दे दिया था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा दानी कर्णने भी केवल कीर्तिके लिये बहुत कुछ किया था। अतः विषकी अग्निसे जलते हुए राजा परीक्षित्‌की उपेक्षा मैं कैसे करूँ?॥ २१-२२॥

यदि मैं महाराजको जिला दूँ तो सब लोगोंको अत्यन्त सुख मिलेगा और यदि राजा मर गये तो अराजकताके कारण सारी प्रजा नष्ट हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३॥

राजाके मृत हो जाने पर मुझे प्रजानाशका पाप लगेगा तथा संसारमें धन-लोभके कारण मेरी अपकीर्ति भी होगी॥ २४॥

मनमें ऐसा विचार करके परम बुद्धिमान् कश्यपने ध्यान करके जाना कि महाराज परीक्षित्‌की आयु अब समाप्त हो चुकी है॥ २५॥

इस प्रकार ध्यान-दृष्टिसे धर्मात्मा कश्यप राजाकी मृत्यु निकट जानकर तक्षकसे धन लेकर अपने घर लौट गये॥ २६॥

कश्यपको लौटाकर वह नाग सातवें दिन राजाको डँसनेकी इच्छासे शीघ्र हस्तिनापुर चला गया॥ २७॥

नगरमें पहुँचते ही उसने सुना कि मणि, मन्त्र तथा औषधियोंसे भलीभाँति सावधानीपूर्वक सुरक्षित होकर राजा परीक्षित् अपने महलमें रह रहे हैं॥ २८॥

चिन्ताविष्टस्तदा नागो विप्रशापभयाकुलः।
चिन्तयामास योगेन प्रविशेयं गृहं कथम्॥ २९

वञ्चयामि कथं चैनं राजानं पापकारिणम्।
विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडाकरं शठम्॥ ३०

पाण्डवानां कुले जातः कोऽपि नैतादृशो भवेत्।
तापसस्य गले येन मृतः सर्पो निवेशितः॥ ३१

कृत्वा विगर्हितं कर्म जानन्कालगतिं नृपः।
रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च॥ ३२

मृत्युं वञ्चयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः।
तं कथं धक्षयिष्यामि विप्रवाक्येन चोदितः॥ ३३

न जानाति च मन्दात्मा मरणं ह्यनिवर्तनम्।
तेनासौ रक्षकान्स्थाप्य सौधारूढोऽद्य मोदते॥ ३४

यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनामिततेजसा।
स कथं परिवर्तेत कृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः॥ ३५

पाण्डवस्य च दायादो जानन्मृत्युं गतं नृपः।
जीवने मतिमास्थाय स्थितः स्थाने निराकुलः॥ ३६

दानपुण्यादिकं राजा कर्तुमर्हति सर्वथा।
धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत्॥ ३७

नोचेन्मृत्युविधिं कृत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः।
मरणं स्वर्गलोकाय नरकायान्यथा भवेत्॥ ३८

द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वास्य च भूपतेः।
विप्रशापस्तथा घोर आसन्ने मरणे किल॥ ३९

[यह जानकर] ब्राह्मणके शापसे भयभीत सर्पराज तक्षकको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि अब मैं किस उपायसे इस राजभवनमें प्रवेश करूँ? और इस पापी, मूढ, विप्रको पीड़ित करनेवाले तथा मुनिके शापसे आहत इस दुष्ट राजाको मैं कैसे छलूँ?॥ २९-३०॥

पाण्डववंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसने इस प्रकार किसी तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मृत सर्प डाल दिया हो॥ ३१॥

ऐसा निन्दित कर्म करके कालचक्रको जानते हुए भी यह राजा भवनमें रक्षकोंकी नियुक्ति करके राज-भवनमें छिपकर मृत्युकी वंचना कर रहा है और निश्चिन्त होकर पड़ा है। विप्रके शापानुसार मैं उस राजाको कैसे डसूँ?॥ ३२-३३॥

यह मन्दबुद्धि इतना भी नहीं जानता कि मृत्यु तो अनिवार्य है? इसी कारण यह रक्षकोंकी नियुक्ति करके स्वयं भवनपर चढ़कर आनन्द ले रहा है॥ ३४॥

यदि अमित तेजवाले दैवने मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों प्रकारके प्रयत्नोंसे भी उसे कैसे टाला जा सकता है?॥ ३५॥

पाण्डववंशका उत्तराधिकारी यह राजा परीक्षित् अपनेको मृत्युके मुखमें गया हुआ जानते हुए भी जीवित रहनेकी अभिलाषा रखकर सुरक्षित स्थानमें निश्चिन्त होकर पड़ा हुआ है॥ ३६॥

यह यदि चाहता तो अनेक प्रकारके दान-पुण्य-द्वारा अपनी आयु बढ़ा सकता था; क्योंकि धर्माचरणसे व्याधि नष्ट होती है और उससे आयु स्थिर होती है॥ ३७॥

यदि ऐसा सम्भव नहीं था तो मृत्युके समय सम्पन्न की जानेवाली स्नान, दान आदि क्रियाएँ करके मृत्युके अनन्तर स्वर्गयात्रा कर सकता था, अन्यथा इसे नरक जाना होगा॥ ३८॥

मुनिको पीड़ा पहुँचानेका पाप इस राजाको था ही और ब्राह्मणका घोर शाप अलगसे है। अतः अब इसकी मृत्यु सन्निकट है॥ ३९॥

न कोऽपि ब्राह्मणः पार्श्वे य एनं प्रतिबोधयेत्।
वेधसा विहितो मृत्युरनिवार्यस्तु सर्वथा॥ ४०

इति सञ्चिन्त्य सर्पोऽसौ स्वान्नागान्निकटे स्थितान्।
कृत्वा तापसवेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजङ्गमान्॥ ४१

फलमूलादिकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः।
स्वयं च कीटरूपेण फलमध्ये ससार ह॥ ४२

निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः।
ते राजभवनं प्राप्य स्थिताः प्रासादसन्निधौ॥ ४३

रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम्।
ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात्॥ ४४

अभिमन्युसुतं वीरं कुलार्कं चारुदर्शनम्।
परिवर्धयितुं प्राप्ता मन्त्रैराथर्वणैस्तथा॥ ४५

निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन्।
कृत्वाभिषेकान्यास्यामो दत्त्वा मिष्टफलानि च॥ ४६

भारतानां कुले क्वापि न दृष्टा द्वाररक्षकाः।
न श्रुतं तापसानां तु राज्ञोऽसन्दर्शनं किल॥ ४७

आरोहामो वयं तत्र यत्र राजा परीक्षितः।
आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे॥ ४८

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानां तु रक्षकाः।
प्रत्यूचुस्तान् द्विजान्मत्वा निदेशं भूपतेर्यथा॥ ४९

नाद्य वो दर्शनं विप्रा राज्ञः स्यादिति नो मतिः।
श्वः सर्वतापसैरत्र त्वागन्तव्यं नृपालये॥ ५०

अनारोहस्तु प्रासादो विप्राणां मुनिसत्तमाः।
विप्रशापभयाद्राज्ञा विहितोऽस्ति न संशयः॥ ५१

इस समय ऐसा कोई ब्राह्मण भी इसके पास नहीं है, जो इसे यह बता सके कि विधाताके द्वारा निर्धारित मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है॥ ४०॥

ऐसा विचारकर तक्षकनागने अपने निकटवर्ती श्रेष्ठ नागोंको तपस्वी ब्राह्मणोंका वेष धारण कराकर राजाके पास भेजा। वे राजाको देनेके लिये फल-मूल आदि लेकर तैयार हो गये और तक्षकनाग भी एक छोटे-से कीटके रूपमें फलके बीचमें छिप गया॥ ४१-४२॥

तब वे नाग फल आदि लेकर शीघ्र ही निकल पड़े और राजभवनमें पहुँचकर महलके पास खड़े हो गये॥ ४३॥

इस प्रकार तपस्वियोंको खड़े देखकर रक्षकोंने उनसे पूछा कि आपलोगोंकी क्या इच्छा है? तब उन्होंने कहा—हमलोग महाराजको देखनेके लिये तपोवनसे आये हैं॥ ४४॥

पाण्डवकुलके सूर्य, शुभदर्शन तथा पराक्रमी अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित्‌को अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे आशीर्वाद देनेहेतु हमलोग यहाँ आये हैं॥ ४५॥

आप जाकर महाराजसे कहें कि कुछ मुनिजन उनसे मिलने आये हैं और वे महाराजका मन्त्राभिषेक करके उन्हें मधुर फल देकर लौट जायेंगे॥ ४६॥

भरतवंशी राजाओंके कुलमें कभी भी द्वाररक्षक नहीं देखे गये। ऐसा भी कहीं सुना नहीं गया कि तपस्वियोंको राजाका दर्शन न मिले। जहाँ महाराज परीक्षित् विराजमान हैं, वहाँ हमलोग जायँगे और उन्हें अपने आशीर्वादसे दीर्घायुष्य बनाकर आज्ञा लेकर लौट जायँगे॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—उन तपस्वियोंका वचन सुनकर रक्षकोंने उन्हें ब्राह्मण समझकर महाराजका आदेश सुनाते हुए कहा—हे विप्रो! हमारे विचारमें आज आपलोगोंको राजाका दर्शन नहीं हो सकेगा। अतः आप समस्त तपस्वीजन राजभवनमें कल पधारें॥ ४९-५०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! विप्रशापसे भयभीत होकर राजाने अपने महलमें ब्राह्मणोंका प्रवेश वर्जित कर रखा है; इसमें संशय नहीं है॥ ५१॥

तदोचुस्तानथो विप्राः फलमूलजलानि च।
विप्राशिषश्च राज्ञेऽथ ग्राहयन्तु सुरक्षकाः॥ ५२

ते गत्वा नृपतिं प्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः।
राजोवाचानयध्वं वै फलमूलादिकं च यत्॥ ५३

पृच्छध्वं तापसान्कार्यं प्रातरागमनं पुनः।
प्रणामं कथयध्वं मे नाद्य सन्दर्शनं मम॥ ५४

ते गत्वाथ समादाय फलमूलादिकं च यत्।
राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरःसरम्॥ ५५

गतेषु तेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च।
फलान्यादाय राजासौ सचिवानिदमब्रवीत्॥ ५६

सुहृदो भक्षयन्त्वद्य फलान्येतानि सर्वशः।
अद्म्यहं चैकमेतद्वै फलं विप्रार्पितं महत्॥ ५७

इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः।
करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम्॥ ५८

विदारितं फलं राज्ञा तत्र कृमिरभूदणुः।
स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टो भूपतिना स्वयम्॥ ५९

तं दृष्ट्वा नृपतिः प्राह सचिवान्विस्मितानथ।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम्॥ ६०

अङ्गीकरोमि तं शापं कृमिको मां दशत्वयम्।
एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्यवेशयत्॥ ६१

अस्तं याते दिवानाथे धृतः कण्ठेऽथ कीटकः।
तक्षकस्तु तदा जातः कालरूपी भयानकः॥ ६२

राजा संवेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः।
मन्त्रिणो विस्मयं प्राप्ता रुरुदुर्भृशदुःखिताः॥ ६३

घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवुस्ते भयार्दिताः।
चुक्रुशू रक्षकाः सर्वे हाहाकारो महानभूत्॥ ६४

तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा—हमलोगोंकी ओरसे ये फल-मूल तथा जल आप रक्षकगण राजाको दे दें और हमलोगोंका आशीर्वाद पहुँचा दें॥ ५२॥

उन्होंने राजाके पास जाकर तपस्वियोंके आगमनकी बात बता दी। इसपर राजाने आज्ञा दी कि वे लोग फल-मूल आदि जो कुछ दे रहे हैं, उन्हें यहाँ लाओ और उन तपस्वियोंके आनेका कारण पूछ लो और उन्हें पुनः कल प्रातः आनेको कह दो। साथ ही मेरी ओरसे उन्हें प्रणाम कहकर यह भी कह देना कि आज मेरा मिलना सम्भव नहीं है॥ ५३-५४॥

उन द्वारपालोंने तपस्वियोंके पास जाकर उनके दिये हुए फल-मूल आदि लाकर आदरपूर्वक राजाको अर्पित कर दिये॥ ५५॥

उन विप्रवेषमें आये नागोंके चले जानेपर महाराजने फलोंको लेकर मन्त्रियोंसे कहा—हे सचिवो! आपलोग भी इन फलोंका सम्यक् सेवन कीजिये। मैं तो तपस्वियोंद्वारा अर्पित यही एक बड़ा फल खाऊँगा॥ ५६-५७॥

ऐसा कहकर उत्तरासुत राजा परीक्षित्‌ने सब फल अपने सुहृद् सचिवोंमें बाँट दिये और एक सुन्दर पका फल हाथमें लेकर उसे स्वयं विदीर्ण किया॥ ५८॥

जिस फलको राजाने चीरा, उसमें ताम्र वर्णवाला तथा काले नेत्रवाला एक छोटा-सा कीट राजाको दिखायी दिया। उसे देखकर राजाने अपने आश्चर्यचकित मन्त्रियोंसे कहा—सूर्य अस्त हो रहे हैं, अतः अब मुझे विषका भय नहीं है। मैं ब्राह्मणके उस शापको अंगीकार करता हूँ कि यह कीट मुझे काट ले। ऐसा कहकर महाराज परीक्षित्‌ने उसे अपने गलेपर रख लिया। सूर्यके अस्त होते ही गलेपर स्थित वह कीट साक्षात् कालस्वरूप भयानक तक्षकके रूपमें परिणत हो गया॥ ५९—६२॥

उस नागने तत्काल राजाको लपेट लिया तथा उन्हें डँस लिया। यह देखते ही सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और अत्यधिक दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ६३॥

भयंकर रूपवाले उस सर्पको देखकर सभी सचिवगण भयभीत होकर वहाँसे भागने लगे और सभी रक्षकगण चिल्लाने लगे। इस प्रकार वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥ ६४॥

वेष्टितो भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः।
नोवाच नृपतिः किञ्चिन्न चचालोत्तरासुतः॥ ६५

उस सर्पके शरीरसे बद्ध हो जानेके कारण राजाका महान् बल प्रभावहीन हो गया, जिससे वे उत्तरापुत्र परीक्षित् कुछ भी बोल पाने तथा हिल-डुल सकनेमें असमर्थ हो गये॥ ६५॥

उत्थिताग्निशिखा घोरा विषजा तक्षकाननात्।
प्रजज्वाल नृपं त्वाशु गतप्राणं चकार ह॥ ६६

तक्षकके मुखसे विषजनित भयंकर आगकी ज्वालाएँ उठने लगीं। उस भीषण ज्वालाने क्षणभरमें राजाको जला दिया और शीघ्र ही उन्हें निष्प्राण कर दिया॥ ६६॥

हत्वाशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगने गतः।
जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह॥ ६७

इस प्रकार क्षणमात्रमें ही राजाका प्राण हरकर वह तक्षकनाग आकाशमें चला गया। वहाँ लोगोंने संसारको भस्मसात् कर देनेकी सामर्थ्यवाले उस तक्षकको देखा॥ ६७॥

स पपात गतप्राणो राजा दग्ध इव द्रुमः।
चुक्रुशुश्च जनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम्॥ ६८

वे राजा परीक्षित् प्राणहीन होकर जले हुए वृक्षकी भाँति गिर पड़े और राजाको मृत देखकर सभी लोग विलाप करने लगे॥ ६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
परीक्षिन्मरणं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

जनमेजयका राजा बनना और उत्तंककी प्रेरणासे सर्प-सत्र करना, आस्तीकके कहनेसे राजाद्वारा सर्प-सत्र रोकना

सूत उवाच

गतप्राणं तु राजानं बालं पुत्रं समीक्ष्य च।
चक्रुश्च मन्त्रिणः सर्वे परलोकस्य सत्क्रियाः॥ १

सूतजी बोले—सभी मन्त्रियोंने राजा परीक्षित्को मृतक तथा उनके पुत्र जनमेजयको अबोध जानकर उनकी परलोक-सम्बन्धी क्रियाएँ सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न कीं॥ १॥

गङ्गातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायं महीपतिम्।
अगुरुभिश्चाभियुक्तायां चितायामध्यरोपयन्॥ २

शरीर दग्ध हो जानेसे भस्मीभूत हुए राजाको उन मन्त्रियोंने गंगाके किनारे अगरुसे बनायी गयी चितापर रखा॥ २॥

दुर्मरणे मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्वदैहिकीम्।
क्रियां पुरोहितास्तस्य वेदमन्त्रैर्विधानतः॥ ३

अकालमृत्युको प्राप्त राजा परीक्षित्की और्ध्वदैहिक क्रिया राजाके पुरोहितोंद्वारा वैदिक मन्त्रोंके साथ विधिवत् सम्पन्न की गयी॥ ३॥

ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम्।
अन्नं बहुविधं तत्र वस्त्राणि विविधानि च॥ ४

मन्त्रियोंने ब्राह्मणोंको गायें, सुवर्ण, अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारके वस्त्र यथोचित रूपसे दानमें दिये॥ ४॥

सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीतिवर्धनम्।
सिंहासने शुभे तत्र मन्त्रिणः संन्यवेशयन्॥ ५

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने प्रजाओंके प्रति प्रीति-सम्वर्धन करनेवाले राजपुत्र जनमेजयको शुभ मुहूर्तमें सुन्दर राजसिंहासनपर आसीन किया॥ ५॥

पौरा जानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम्।
जनमेजयनामानं राजलक्षणसंयुतम्॥ ६

धात्रेयी शिक्षयामास राजचिह्नानि सर्वशः।
दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः॥ ७

प्राप्ते चैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः।
यथोचितां ददौ विद्यां जग्राह स यथोचिताम्॥ ८

धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम्।
अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णाय भार्गवो यथा॥ ९

सम्प्राप्तविद्यो बलवान्बभूव दुरतिक्रमः।
धनुर्वेदे तथा वेदे पारगः परमार्थवित्॥ १०

धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
चकार राज्यं धर्मात्मा पुरा धर्मसुतो यथा॥ ११

ततः सुवर्णवर्माख्यो राजा काशिपतिः किल।
वपुष्टमां शुभां कन्यां ददौ पारीक्षिताय च॥ १२

स तां प्राप्यासितापाङ्गीं मुमुदे जनमेजयः।
काशिराजसुतां कान्तां प्राप्य राजा यथा पुरा॥ १३

विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथार्जुनः।
विजहार महीपालो वनेषूपवनेषु च॥ १४

तया कमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा।
प्रजास्तस्य सुसन्तुष्टा बभूवुः सुखलालिताः॥ १५

मन्त्रिणः कर्मकुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः।

पुरवासी तथा जनपदवासी प्रजाओंने राजलक्षणोंसे सम्पन्न जनमेजय नामक उस बालकको अपने राजाके रूपमें स्वीकार किया॥ ६॥

राजकुमारकी धात्रीने उन्हें सब प्रकारके राजोचित गुणोंकी शिक्षा दी। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होते हुए वे महान् बुद्धिमान् हो गये॥ ७॥

उनकी ग्यारह वर्षकी अवस्था होनेपर कुल-पुरोहितने उन्हें यथोचित शिक्षा प्रदान की और उन्होंने उसे सम्यक् रूपसे ग्रहण किया॥ ८॥

जिस प्रकार द्रोणाचार्यने अर्जुनको तथा भार्गव परशुरामने कर्णको धनुर्विद्यामें प्रशिक्षित किया, उसी प्रकार कृपाचार्यने जनमेजयको भलीभाँति परिष्कृत धनुर्विद्या प्रदान की॥ ९॥

इस प्रकार सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करके वे जनमेजय वेद तथा धनुर्वेदमें पूर्ण पारंगत, बलशाली, अपराजेय तथा परमार्थवेत्ता हो गये॥ १०॥

वे धर्मशास्त्रके अर्थोंका विवेचन करनेमें कुशल, सत्यनिष्ठ, इन्द्रियजित् और धर्मात्मा थे। उन्होंने पूर्वमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरकी भाँति राज्य-शासन किया॥ ११॥

इसके बाद सुवर्णवर्मा नामवाले काशिपति राजाने शुभ गुणोंवाली अपनी कन्या वपुष्टमाका पाणिग्रहण जनमेजयके साथ सम्पन्न कर दिया॥ १२॥

जिस प्रकार प्राचीन कालमें काशिराजकी पुत्रीको पाकर विचित्रवीर्य तथा सुभद्राको पाकर अर्जुन अत्यन्त आह्लादित हुए थे, उसी प्रकार उस श्याम नयनोंवालीको अपनी कान्ताके रूपमें पाकर जनमेजय अति प्रसन्न हुए। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस वपुष्टमाके साथ वनों और उपवनोंमें राजा जनमेजय उसी प्रकार विहार करने लगे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। उनके द्वारा सुखपूर्वक रक्षित प्रजा अति सन्तुष्ट थी। जनमेजयके कार्यकुशल सभी मन्त्री समस्त कार्योंको सम्यक् प्रकारसे करते थे॥ १३—१५½॥

एतस्मिन्नेव काले तु मुनिरुत्तङ्कनामकः॥ १६

तक्षकेण परिक्लिष्टो हस्तिनापुरमभ्यगात्।
वैरस्यापचितिं कोऽस्य प्रकुर्यादिति चिन्तयन्॥ १७

परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः।
कार्याकार्यं न जानासि समये नृपसत्तम॥ १८

अकर्तव्यं करोष्यद्य कर्तव्यं न करोषि वै।
किं त्वां सम्प्रार्थयाम्यद्य गतामर्षं निरुद्यमम्॥ १९

अवैरज्ञमतन्त्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम्।

जनमेजय उवाच

किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया॥ २०

तद्वद त्वं महाभाग करोमि यदनन्तरम्।

उत्तङ्क उवाच

पिता ते निहतो भूप तक्षकेण दुरात्मना॥ २१

मन्त्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छ स्वपितृनाशनम्।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मन्त्रिसत्तमान्॥ २२

ऊचुस्ते द्विजशापेन दष्टः सर्पेण वै मृतः।

जनमेजय उवाच

शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल॥ २३

तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनिसत्तम।

उत्तङ्क उवाच

तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः सन्निवारितः॥ २४

न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते।
भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टा सर्पेण सा मृता॥ २५

अविवाहिता तु मुनिना जीविता च पुनः प्रिया।
रुरुणापि कृता तत्र प्रतिज्ञा चातिदारुणा॥ २६

इसी समय तक्षकके द्वारा पीड़ित उत्तंक नामक मुनिका हस्तिनापुरमें आगमन हुआ। 'इस सर्पकी शत्रुताका बदला कौन ले सकता है'—ऐसा सोचते हुए वे परीक्षित्-पुत्र जनमेजयको यह कार्य कर सकनेवाला समझकर उनके पास आये और बोले—हे भूपवर! आपको यह ज्ञान नहीं है कि इस समय क्या करणीय है और क्या अकरणीय है? आप इस समय न करनेयोग्य कार्य कर रहे हैं और करनेयोग्य कार्य नहीं कर रहे हैं। आपसदृश रोषहीन, पुरुषार्थरहित, वैरभावके ज्ञानसे शून्य, प्रतीकार आदि उपायोंको न जाननेवाले तथा बालकोंके समान स्वभाववाले राजासे अब मैं क्या कहूँ?॥ १६—१९½॥

जनमेजय बोले—मैंने किस शत्रुताको नहीं जाना और उसका प्रतीकार नहीं किया? हे महाभाग! आप मुझे वह बतायें, जिससे मैं उसे सम्पन्न कर सकूँ॥ २०½॥

उत्तंक बोले—हे राजन्! आपके पिता परीक्षित् दुष्टात्मा तक्षकनागद्वारा मार डाले गये थे। आप मन्त्रियोंको बुलाकर अपने पिताकी मृत्युके विषयमें पूछिये॥ २१½॥

सूतजी बोले—उत्तंकका वचन सुनकर राजाने मन्त्रिप्रवरोंसे पूछा। तब उन्होंने बताया कि ब्राह्मणद्वारा शापित होनेके कारण एक सर्पने उन्हें डँस लिया और वे मर गये॥ २२½॥

जनमेजय बोले—मेरे पिता राजा परीक्षित्‌की मृत्युका कारण तो मुनिद्वारा प्रदत्त शाप था। हे मुनिश्रेष्ठ! मुझे यह बताइये कि इसमें तक्षकका क्या दोष था?॥ २३½॥

उत्तंक बोले—तक्षकने कश्यप नामक ब्राह्मणको धन देकर आपके पितातक पहुँचनेसे रोक दिया था। हे राजन्! आपके पिताका हन्ता वह तक्षक क्या आपका शत्रु नहीं है? हे भूप! प्राचीन कालमें मुनि रुरुकी भार्याको सर्पने डँस लिया था और वह मर गयी थी। वह अविवाहिता थी। मुनि रुरुने अपनी उस प्रियाको पुनः जीवित कर दिया और उन्होंने वहींपर

यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै।
एवं कृत्वा प्रतिज्ञां स शस्त्रपाणी रुरुस्तदा॥ २७

व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान्यतस्ततः।
एकदा स वने घोरं डुण्डुभं जरसान्वितम्॥ २८

अपश्यद्दण्डमुद्यम्य हन्तुं तं समुपाययौ।
अभ्यहन्रुषितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः॥ २९

नापराध्नोमि ते विप्र कस्मान्मामभिहंसि वै।

रुरुरुवाच

प्राणप्रिया मे दयिता दष्टा सर्पेण सा मृता॥ ३०

प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता।

डुण्डुभ उवाच

नाहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशन्ति भुजङ्गमाः॥ ३१

शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि।

उत्तङ्क उवाच

श्रुत्वा तां मानुषीं वाणीं सर्पेणोक्तां मनोहराम्॥ ३२

रुरुः पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्माद् डुण्डुभतां गतः।

सर्प उवाच

ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाभिधः॥ ३३

विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
स मया वञ्चितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम्॥ ३४

भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः।
तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना॥ ३५

भव सर्पो मन्दबुद्धे येनाहं धर्षितस्त्वया।
मया प्रसादितोऽत्यर्थं सर्पेणासौ द्विजोत्तमः॥ ३६

मामुवाचाथ तत्क्रोधात्किञ्चिच्छान्तिमवाप्य च।
रुरुस्ते मोचिता शापस्यास्य सर्प भविष्यति॥ ३७

प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः।
सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वं च शृणु मे परमं वचः॥ ३८

अत्यन्त भीषण प्रतिज्ञा की कि मैं जिस किसी भी सर्पको देखूँगा, उसे तत्काल आयुधसे मार डालूँगा। हे राजन्! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके हाथमें शस्त्र लेकर मुनि रुरु सर्पोंका वध करते हुए इधर-उधर घूमते रहे। एक बार उन्हें वनमें एक बूढ़ा डुंडुभ साँप दिखायी दिया। वे लाठी उठाकर रोषपूर्वक उसे मारनेके लिये तत्पर हुए, तब डुंडुभने उन ब्राह्मणसे कहा—हे विप्र! मैं आपके प्रति कोई अपराध नहीं कर रहा हूँ तो फिर आप मुझे क्यों मार रहे हैं?॥ २४—२९½ ॥

रुरु बोले—मेरी प्राणप्रिया भार्याको सर्पने डँस लिया था और उसकी मृत्यु हो गयी थी। अतः हे सर्प! उसी समयसे दुःखित होकर मैंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी॥ ३०½ ॥

डुंडुभ बोला—मैं किसीको काटता नहीं। जो सर्प काटते हैं, वे दूसरे होते हैं। इसलिये सर्पसदृश शरीर होनेके कारण मुझे आप मत मारिये॥ ३१½ ॥

उत्तंक बोले—मनुष्यके समान उसकी सुन्दर वाणी सुनकर रुरुने पूछा—तुम कौन हो? और डुंडुभयोनिको कैसे प्राप्त हो गये?॥ ३२½ ॥

सर्प बोला—हे विप्र! पहले मैं ब्राह्मण था और 'खगम' नामका मेरा एक ब्राह्मण मित्र था। वह धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय था। एक बार अपनी मूर्खतावश मैंने तृणका सर्प बनाकर उसे धोखेमें डाल दिया॥ ३३-३४॥

उस समय वह अग्निहोत्रगृहमें विद्यमान था, सर्पको देखकर अत्यन्त डर गया। भयसे थर-थर काँपते हुए उस ब्राह्मणने विह्वल होकर मुझे शाप दे दिया—हे मन्दबुद्धि! तुमने सर्प दिखाकर मुझे डराया है, अतः तुम सर्प हो जाओ। सर्परूपमें मैंने उस ब्राह्मणकी बड़ी प्रार्थना की। तब उस ब्राह्मणने क्रोधसे थोड़ा शान्त होनेपर मुझसे कहा—हे सर्प! प्रमतिपुत्र रुरु तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। उन्होंने यह बात स्वयं मुझसे कही थी। मैं वही सर्प हूँ और आप रुरु हैं। आप मेरे वचनको ध्यानपूर्वक सुनिये—ब्राह्मणोंके

अहिंसा परमो धर्मो विप्राणां नात्र संशयः।
दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेन विजानता॥ ३९
यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता।

उत्तङ्क उवाच

सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः॥ ४०
कृत्वा तस्य च शापान्तं परित्यक्तं च हिंसनम्।
विवाहिता तेन बाला मृता सञ्जीविता पुनः॥ ४१
कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन्।
त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ॥ ४२
विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातकरेषु वै।
अन्तरिक्षे मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः॥ ४३
तस्योद्धारं च राजेन्द्र कुरु हत्वाथ पन्नगान्।
पितुर्वैरं न जानाति जीवन्नेव मृतो हि सः॥ ४४
दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि।
अम्बामखमिषं कृत्वा कुरु यज्ञं नृपोत्तम॥ ४५
सर्पसत्रं महाराज पितुर्वैरमनुस्मरन्।

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जन्मेजयस्तदा॥ ४६
नेत्राभ्यामश्रुपातं च चकारातीव दुःखितः।
धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धेर्वृथा मानकरस्य वै॥ ४७
पिता यस्य गतिं घोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः।
अद्याहं मखमारभ्य करोम्यपचितिं पितुः॥ ४८
हत्वा सर्पानसन्दिग्धो दीप्यमाने विभावसौ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान् राजा वचनमब्रवीत्॥ ४९
कुर्वन्तु यज्ञसम्भारं यथार्हं मन्त्रिसत्तमाः।
गङ्गातीरे शुभां भूमिं मापयित्वा द्विजोत्तमैः॥ ५०

लिये अहिंसा परम धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। अतः विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि वह सर्वत्र दया करे। हे विप्रवर! यज्ञसे अतिरिक्त कहीं भी की गयी हिंसा याज्ञिकी हिंसा नहीं कही गयी है॥ ३५—३९$\frac{१}{२}$॥

उत्तंक बोले—तब वह ब्राह्मण सर्पयोनिसे मुक्त हो गया। इस प्रकार उस ब्राह्मणके शापका अन्त करके रुरुने भी हिंसा छोड़ दी। उन्होंने मरी हुई उस सुन्दरीको पुनः जीवित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया॥ ४०-४१॥

हे राजन्! उस मुनिने इस प्रकार शत्रुताका स्मरण करते हुए सभी सर्पोंका संहार किया था, परंतु हे भरतश्रेष्ठ! आप तो वैर भूलकर अपने पिताको मारनेवाले सर्पोंके प्रति क्रोधशून्य बने रहते हैं। आपके पिता स्नान-दान किये बिना अन्तरिक्षमें ही मर गये। इसलिये हे राजेन्द्र! सर्पोंका नाश करके आप उनका उद्धार कीजिये। जो पुत्र पिताके शत्रुओंसे बदला नहीं लेता, वह जीते हुए भी मृतकतुल्य है। हे नृपश्रेष्ठ! जबतक आप सर्पोंका विनाश नहीं करते, तबतक आपके पिताकी दुर्गति ही रहेगी। हे महाराज! आप देवीयज्ञके व्याजसे अपने पिताकी शत्रुताका स्मरण करते हुए सर्पसत्र नामक यज्ञ कीजिये॥ ४२—४५$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—उत्तंकमुनिका यह वचन सुनकर राजा जनमेजय अत्यन्त दुःखी हुए और उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। [वे मनमें सोचने लगे] जिसके पिता सर्पसे दंशित होकर इस प्रकार दुर्गतिको प्राप्त हों, उस मुझ मिथ्याभिमानी तथा दुर्बुद्धिको धिक्कार है। मैं आज ही यज्ञ आरम्भ करके प्रज्वलित अग्निमें सर्पोंकी आहुति देकर अवश्य ही पिताकी मृत्युका बदला लूँगा॥ ४६—४८$\frac{१}{२}$॥

सभी मन्त्रियोंको बुलाकर राजाने यह वचन कहा—हे मन्त्रिप्रवरो! गंगाके किनारे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे उत्तम भूमिकी माप कराकर आपलोग यथोचित यज्ञसामग्रीका प्रबन्ध करें। हे मेरे बुद्धिमान् मन्त्रियो! सौ खंभोंवाले एक सुरम्य मण्डपका निर्माण कराकर

कुर्वन्तु मण्डपं स्वस्थाः शतस्तम्भं मनोहरम्।
वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाद्य सचिवाः खलु॥ ५१

तदङ्गत्वे विधेयो वै सर्पसत्रः सुविस्तरः।
तक्षकस्तु पशुस्तत्र होतोत्तङ्को महामुनिः॥ ५२

शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः।

सूत उवाच

मन्त्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः॥ ५३

यज्ञस्य सर्वसम्भारं वेदीं यज्ञस्य विस्तृताम्।
हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः॥ ५४

इन्द्रं प्रति भयार्तोऽहं त्राहि मामिति चाब्रवीत्।
भयभीतं समाश्वास्य स्वासने सन्निवेश्य च॥ ५५

ददावभयमत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग।
तमिन्द्रशरणं ज्ञात्वा मुनिर्दत्ताभयं तथा॥ ५६

उत्तङ्कोऽह्वयदुद्विग्नः सेन्द्रं कृत्वा निमन्त्रणम्।
स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः॥ ५७

आस्तीको नाम धर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः।
तत्रागत्य मुनेर्बालस्तुष्टाव जनमेजयम्॥ ५८

राजा तमर्चयामास दृष्ट्वा बालं सुपण्डितम्।
अर्चयित्वा नृपस्तं तु छन्दयामास वाञ्छितैः॥ ५९

स तु वव्रे महाभाग यज्ञोऽयं विरमत्विति।
सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा॥ ६०

होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः।
भारतं श्रावयामास वैशम्पायन विस्तरात्॥ ६१

श्रुत्वापि नृपतिः कामं न शान्तिमभिजग्मिवान्।
व्यासं पप्रच्छ भूपालो मम शान्तिः कथं भवेत्॥ ६२

आपलोग उसमें आज ही यज्ञके लिये वेदीका भी निर्माण सम्पन्न करा लें। उस यज्ञके अंगरूपमें विस्तारसहित सर्पसत्र भी करना है। महामुनि उत्तंक उस यज्ञके होता होंगे और तक्षकनाग उसमें यज्ञपशु होगा। आपलोग शीघ्र ही सर्वज्ञाता एवं वेदपारगामी ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करें॥ ४९—५२$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—बुद्धिमान् मन्त्रियोंने राजाके कथनानुसार यज्ञसम्बन्धी समस्त सामग्रीका प्रबन्ध कर लिया और विस्तृत यज्ञवेदी भी निर्मित करायी। सर्पोंका हवन आरम्भ होनेपर तक्षक इन्द्रके यहाँ गया और उनसे बोला—मैं भयाकुल हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। तत्पश्चात् इन्द्रने उस भयभीत तक्षकको सान्त्वना देकर अपने आसनपर बैठाकर उसे अभय प्रदान किया और कहा—हे पन्नग! तुम निर्भय हो जाओ॥ ५३—५५$\frac{१}{२}$॥

तदनन्तर उत्तंकमुनि उस तक्षकको इन्द्रका शरणागत और उनसे अभयदान पाया हुआ जानकर उद्विग्न हो उठे और उन्होंने मन्त्रप्रभावसे इन्द्रसहित तक्षकका आवाहन किया। तब तक्षकने यायावरवंशमें उत्पन्न जरत्कारुपुत्र धर्मनिष्ठ आस्तीक-नामक मुनिका स्मरण किया। वे मुनिबालक आस्तीक वहाँ आकर जनमेजयकी प्रशंसा करने लगे॥ ५६—५८॥

राजा जनमेजयने उस बालकको महान् पण्डित देखकर उसकी पूजा की। पूजन-अर्चन करके राजाने अपनी मनोवांछित वस्तु माँगनेके लिये उससे निवेदन किया॥ ५९॥

तब आस्तीकने याचना की—हे महाभाग! इस यज्ञको समाप्त किया जाय। उसने सत्य वचनमें आबद्ध राजासे बार-बार ऐसी प्रार्थना की॥ ६०॥

तत्पश्चात् मुनिके वचनानुसार राजाने सर्पोंका हवन बन्द कर दिया और फिर वैशम्पायनऋषिने उन्हें विस्तारपूर्वक महाभारतकी कथा सुनायी॥ ६१॥

उस कथाको सुनकर भी राजाको विशेष शान्ति नहीं प्राप्त हुई तब राजाने व्याससे पूछा—मुझे किस प्रकार शान्ति मिलेगी? मेरा मन अशान्तिकी

मनोऽतिदह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे।
पिता मे दुर्भगस्यैव मृतः पार्थसुतात्मजः॥ ६३

क्षत्रियाणां महाभाग सङ्ग्रामे मरणं वरम्।
रणे वा मरणं व्यास गृहे वा विधिपूर्वकम्॥ ६४

मरणं न पितुर्मेऽभूदन्तरिक्षे मृतोऽवशः।
शान्त्युपायं वदस्वात्र त्वं च सत्यवतीसुत॥ ६५
यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिं गतः॥ ६६

अग्निमें अत्यधिक दग्ध हो रहा है, मैं क्या करूँ? मुझको बतलाइये। मुझ मन्दभाग्यके पिता और अर्जुनपौत्र परीक्षित् अकाल-मृत्युको प्राप्त हुए हैं। हे महाभाग! युद्धमें होनेवाली मृत्यु ही क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ होती है। हे व्यासजी! रणमें अथवा घरमें विधिपूर्वक होनेवाली मृत्यु ही अच्छी मानी जाती है, किंतु मेरे पिताका वैसा मरण नहीं हुआ। वे तो असहाय अवस्थामें अन्तरिक्षमें मृत्युको प्राप्त हुए। हे सत्यवतीपुत्र! आप उनकी शान्ति-प्राप्तिका कोई उपाय बतलाइये, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिताजी शीघ्र ही स्वर्ग चले जायँ॥ ६२—६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे सर्पसत्रवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

~~~

अथ द्वादशोऽध्यायः

आस्तीकमुनिके जन्मकी कथा, कद्रू और विनताद्वारा सूर्यके घोड़ेके रंगके विषयमें शर्त लगाना और विनताको दासीभावकी प्राप्ति, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः।
उवाच वचनं तत्र सभायां नृपतिं च तम्॥ १

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम्।
पुण्यं भागवतं नाम नानाख्यानयुतं शिवम्॥ २

अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै।
श्रावयामि नृप त्वां हि रहस्यं परमं मम॥ ३

धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं श्रवणात्किल।
शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम्॥ ४

जनमेजय उवाच

आस्तीकोऽयं सुतः कस्य विघ्नार्थं कथमागतः।
प्रयोजनं किमत्रास्य सर्पाणां रक्षणे प्रभो॥ ५

सूतजी बोले—राजा जनमेजयका वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासने सभामें उन राजासे कहा—॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपसे एक पुनीत, कल्याणकारक, रहस्यमय, अद्भुत तथा विविध कथानकोंसे युक्त देवीभागवत नामक पुराण कहूँगा॥ २॥

मैंने पूर्वकालमें उसे अपने पुत्र शुकदेवको पढ़ाया था। हे राजन्! मैं अपने परम रहस्यमय पुराणका श्रवण आपको कराऊँगा॥ ३॥

सभी वेदों एवं शास्त्रोंके सारस्वरूप तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके कारणभूत इस पुराणका श्रवण करनेसे यह मंगल तथा आनन्द प्रदान करनेवाला होता है॥ ४॥

जनमेजय बोले—हे प्रभो! यह आस्तीक किसका पुत्र था और यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये क्यों आया? यज्ञमें सर्पोंकी रक्षा करनेके पीछे इसका क्या उद्देश्य था?॥ ५॥
~~~

कथयैतन्महाभाग विस्तरेण कथानकम्।
पुराणं च तथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत॥ ६

व्यास उवाच

जरत्कारुर्मुनिः शान्तो न चकार गृहाश्रमम्।
तेन दृष्टा वने गर्ते लम्बमानाः स्वपूर्वजाः॥ ७

ततस्तमाहुः कुरु पुत्र दारा-
न्यथा च नः स्यात्परमा हि तृप्तिः।
स्वर्गे व्रजामः खलु दुःखमुक्ता
वयं सदाचारयुते सुते वै॥ ८

स तानुवाचाथ लभे समाना-
मयाचितां चातिवशानुगां च।
तदा गृहारम्भमहं करोमि
ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै॥ ९

इत्युक्त्वा ताञ्जरत्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः।
तदैव पन्नगाः शप्ता मात्राग्नौ निपतन्त्विति॥ १०

कश्यपस्य मुनेः पत्न्यौ कद्रूश्च विनता तथा।
दृष्ट्वादित्यरथे चाश्वमूचतुश्च परस्परम्॥ ११

तं दृष्ट्वा च तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत्।
किंवर्णोऽयं हयो भद्रे सत्यं प्रब्रूहि माचिरम्॥ १२

विनतोवाच

श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे।
ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततस्तु विपणावहे॥ १३

कद्रूरुवाच

कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते।
एहि सार्धं मया दिव्यं दासीभावाय भामिनि॥ १४

हे महाभाग! उस आख्यानको विस्तारपूर्वक बताइये। हे सुव्रत! उस सम्पूर्ण पुराणको भी विस्तारके साथ कहिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—जरत्कारु एक शान्त स्वभाववाले ऋषि थे, उन्होंने गार्हस्थ्य-जीवन अंगीकार नहीं किया था। उन्होंने एक बार वनमें एक गड्ढेके भीतर अपने पूर्वजोंको लटकते हुए देखा॥ ७॥

तदनन्तर पूर्वजोंने उनसे कहा—हे पुत्र! तुम विवाह कर लो, जिससे हमारी परम तृप्ति हो सके। तुझ सदाचारी पुत्रके ऐसा करनेपर हम-लोग निश्चितरूपसे दुःखमुक्त होकर स्वर्गकी प्राप्ति कर लेंगे॥ ८॥

तब उन जरत्कारुने उनसे कहा—हे मेरे पूर्वजो! जब मुझे अपने समान नामवाली तथा अत्यन्त वशवर्तिनी कन्या बिना माँगे ही मिलेगी तभी मैं विवाह करके गृहस्थी बसाऊँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

उनसे ऐसा कहकर ब्राह्मण जरत्कारु तीर्थाटनके लिये चल पड़े। उसी समय सर्पोंको उनकी माताने शाप दे दिया कि वे अग्निमें गिर जायँ॥ १०॥

कश्यपऋषिकी कद्रू और विनता नामक दो पत्नियाँ थीं। सूर्यके रथमें जुते हुए घोड़ेको देखकर वे आपसमें वार्तालाप करने लगीं॥ ११॥

उस घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे यह कहा—हे कल्याणि! यह घोड़ा किस रंगका है? यह मुझे शीघ्र ही सही-सही बताओ॥ १२॥

विनता बोली—यह अश्वराज श्वेत रंगका है। हे शुभे! तुम इसे किस रंगका मानती हो? तुम भी इसका रंग बता दो। तब हम दोनों आपसमें इसपर शर्त लगायें॥ १३॥

कद्रू बोली—हे शुभ मुसकानवाली! मैं तो इस घोड़ेको कृष्णवर्णका समझती हूँ। हे भामिनि! आओ, मेरे साथ शर्त लगाओ कि जो हारेगी, वह दूसरेकी दासी होना स्वीकार करेगी॥ १४॥

सूत उवाच

कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान्।
बालाञ्छ्यामान्प्रकुर्वन्तु यावतोऽश्वशरीरके॥ १५

नेति केचन तत्राहुस्तानथासौ शशाप ह।
जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम्॥ १६

अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरं वर्णभोगकैः।
वेष्टयित्वास्य पुच्छं तु मातुः प्रियचिकीर्षया॥ १७

भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम्।
कर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता॥ १८

तदाजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः।
स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः॥ १९

मातः कथं सुदीनासि रुदितेव विभासि मे।
जीवमाने मयि सुते तथान्ये रविसारथौ॥ २०

दुःखितासि ततो वां धिग्जीवितं चारुलोचने।
किं जातेन सुतेनाथ यदि माता सुदुःखिता॥ २१

शंस मे कारणं मातः करोमि विगतज्वराम्।

विनतोवाच

सपत्न्या दास्यहं पुत्र किं ब्रवीमि वृथा क्षता॥ २२

वह मां सा ब्रवीत्यद्य तेनास्मि दुःखिता सुत।

गरुड उवाच

वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गन्तुमुत्सुका॥ २३

मा शोकं कुरु कल्याणि निश्चिन्तां त्वां करोम्यहम्।

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा गता पार्श्वं कद्रोश्च विनता तदा॥ २४

सूतजी बोले—कद्रूने अपने सभी आज्ञाकारी सर्पपुत्रोंसे कहा कि तुम सभी लिपटकर उस घोड़ेके शरीरमें जितने बाल हैं, उन्हें काला कर दो॥ १५॥

उनमेंसे कुछ सर्पोंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे। उन सर्पोंको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम लोग जनमेजयके यज्ञमें हवनकी अग्निमें गिर पड़ोगे॥ १६॥

अन्य सर्पोंने माताको प्रसन्न करनेकी कामनासे उस घोड़ेकी पूँछमें लिपटकर अपने विभिन्न रंगोंसे घोड़ेको चितकबरा कर दिया॥ १७॥

तदनन्तर दोनों बहनोंने साथ-साथ जाकर घोड़ेको देखा। उस घोड़ेको चितकबरा देखकर विनता बहुत दुःखी हुई॥ १८॥

उसी समय सर्पोंका आहार करनेवाले महाबली विनतापुत्र गरुडजी वहाँ आ गये। उन्होंने अपनी माताको दुःखित देखकर उनसे पूछा—॥ १९॥

हे माता! आप बहुत उदास क्यों हैं? आप मुझे रोती हुई प्रतीत हो रही हैं। हे सुनयने! मेरे एवं सूर्यसारथि अरुणसदृश पुत्रोंके जीवित रहते यदि आप दुःखी हैं, तब हमारे जीवनको धिक्कार है! यदि माता ही परम दुःखी हों तो पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ? हे माता! आप मुझे अपने दुःखका कारण बताइये, मैं आपको दुःखसे मुक्त करूँगा॥ २०-२१½॥

विनता बोली—हे पुत्र! मैं अपनी सौतकी दासी हो गयी हूँ। अब व्यर्थमें मारी गयी मैं क्या कहूँ? वह मुझसे अब कह रही है कि मैं उसे अपने कन्धेपर ढोऊँ। हे पुत्र! मैं इसीसे दुःखी हूँ॥ २२½॥

गरुडजी बोले—वे जहाँ भी जानेकी कामना करेंगी, मैं उन्हें ढोकर वहाँ ले जाऊँगा। हे कल्याणि! आप शोक न करें, मैं आपको निश्चिन्त कर देता हूँ॥ २३½॥

व्यासजी बोले—गरुडद्वारा ऐसा कहे जानेपर विनता उसी समय कद्रूके पास चली गयी। महाबली गरुड भी अपनी माता विनताको दास्य-

दासीभावमपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः।
उवाह तां सपुत्रां वै सिन्धोः पारं जगाम ह॥ २५

गत्वा तां गरुडः प्राह ब्रूहि मातर्नमोऽस्तु ते।
कथं मुच्येत मे माता दासीभावादसंशयम्॥ २६

कद्रूरुवाच

अमृतं देवलोकात्त्वं बलादानीय मे सुतान्।
समर्पय सुताद्याशु मातरं मोचयाबलाम्॥ २७

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिन्द्रलोकं महाबलः।
कृत्वा युद्धं जहाराशु सुधाकुम्भं खगोत्तमः॥ २८

समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत्।
मोचिता विनता तेन दासीभावादसंशयम्॥ २९

अमृतं सञ्जहारेन्द्रः स्नातुं सर्पा यदा गताः।
दासीभावाद्विनिर्मुक्ता विनता विपतेर्बलात्॥ ३०

तत्रास्तीर्णाः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनामकैः।
द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः॥ ३१

मात्रा शप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाः शुचा।
ब्रह्माणं शरणं गत्वा ते होचुः शापजं भयम्॥ ३२

तानाह भगवान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः।
वासुकेर्भगिनीं तस्मै अर्पयध्वं सनामिकाम्॥ ३३

तस्यां यो जायते पुत्रः स वस्त्राता भविष्यति।
आस्तीक इति नामासौ भविता नात्र संशयः॥ ३४

वासुकिस्तु तदाकर्ण्य वचनं ब्रह्मणः शिवम्।
वनं गत्वा सुतां तस्मै ददौ विनयपूर्वकम्॥ ३५

भावसे मुक्ति दिलानेके उद्देश्यसे कद्रूको उसके पुत्रोंसहित अपनी पीठपर बैठाकर सागरके उस पार ले गये॥ २४-२५॥

वहाँ जाकर गरुडने कद्रूसे कहा—हे जननि! आपको बार-बार प्रणाम है। अब आप मुझे यह बतायें कि मेरी माता दासीभावसे निश्चित ही कैसे मुक्त होंगी?॥ २६॥

कद्रू बोली—हे पुत्र! तुम स्वर्गलोकसे बलपूर्वक अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे दो और शीघ्र ही अपनी अबला माताको मुक्त करा लो॥ २७॥

व्यासजी बोले—कद्रूके ऐसा कहनेपर पक्षिश्रेष्ठ महाबली गरुड उसी समय इन्द्रलोक गये और देवताओंसे युद्ध करके उन्होंने सुधा-कलश छीन लिया। अमृत लाकर उन्होंने उसे अपनी विमाता कद्रूको अर्पण कर दिया और उन्होंने विनताको दासीभावसे निःसन्देह मुक्त करा लिया॥ २८-२९॥

जब सभी सर्प स्नान करनेके लिये चले गये, तब इन्द्रने अमृत चुरा लिया। इस प्रकार गरुडके प्रतापसे विनता दासीभावसे छूट गयी॥ ३०॥

अमृतघटके पास कुश बिछे हुए थे, जिन्हें सर्प अपनी जिह्वासे चाटने लगे। तब कुशके अग्रभागके स्पर्शमात्रसे ही वे दो जीभवाले हो गये॥ ३१॥

जिन सर्पोंको उनकी माताने शाप दिया था, वे वासुकिआदि नाग चिन्तित होकर ब्रह्माजीके पास गये और उन्होंने अपने शाप-जनित भयकी बात बतायी। ब्रह्माजीने उनसे कहा—जरत्कारु नामके एक महामुनि हैं, तुमलोग उन्हींके नामवाली वासुकिनागकी बहन जरत्कारुको उन्हें अर्पित कर दो। उस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुमलोगोंका रक्षक होगा। वह 'आस्तीक'—इस नामवाला होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३२—३४॥

ब्रह्माजीका वह कल्याणकारी वचन सुनकर वासुकिने वनमें जाकर अपनी बहन उन्हें विनयपूर्वक समर्पित कर दी॥ ३५॥

सनामां तां मुनिर्ज्ञात्वा जरत्कारुरुवाच तम्।
अप्रियं मे यदा कुर्यात्तदा तां सन्त्यजाम्यहम्॥ ३६

वाग्बन्धं तादृशं कृत्वा मुनिर्जग्राह तां स्वयम्।
दत्त्वा च वासुकिः कामं भवनं स्वं जगाम ह॥ ३७

कृत्वा पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने।
तया सह सुखं प्राप रममाणः परन्तप॥ ३८

एकदा भोजनं कृत्वा सुप्तोऽसौ मुनिसत्तमः।
भगिनी वासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी॥ ३९

न सम्बोधयितव्योऽहं त्वया कान्ते कथञ्चन।
इत्युक्त्वा तु गतो निद्रां मुनिस्तां सुदतीं तदा॥ ४०

रविरस्तगिरिं प्राप्तः सन्ध्याकाल उपस्थिते।
किं करोमि न मे शान्तिस्त्यजेन्मां बोधितः पुनः॥ ४१

धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिन्तयत्।
नोचेत्प्रबोधयाम्येनं सन्ध्याकालो वृथा व्रजेत्॥ ४२

धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथापि मरणं ध्रुवम्।
धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः॥ ४३

इति सञ्चिन्त्य सा बाला तं मुनिं प्रत्यबोधयत्।
सन्ध्याकालोऽपि सञ्जात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत॥ ४४

उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम्।
त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणी॥ ४५

जरत्कारुमुनिने उसे अपने ही समान नामवाली जानकर उनसे कहा—जब भी यह मेरा अप्रिय करेगी, तब मैं इसका परित्याग कर दूँगा॥ ३६॥

वैसी प्रतिज्ञा करके जरत्कारुमुनिने उस जरत्कारुको पत्नीरूपसे ग्रहण कर लिया। वासुकिनाग भी अपनी बहन उन्हें प्रदानकर आनन्दपूर्वक अपने घर लौट गये॥ ३७॥

हे परन्तप! मुनि जरत्कारु उस महावनमें सुन्दर पर्णकुटी बनाकर उसके साथ रमण करते हुए सुख भोगने लगे॥ ३८॥

एक समय मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु भोजन करके विश्राम कर रहे थे, वासुकिकी बहन सुन्दरी जरत्कारु भी वहीं बैठी हुई थी। [मुनिने उससे कहा] हे कान्ते! तुम मुझे किसी भी प्रकार जगाना मत—उस सुन्दर दाँतोंवालीसे ऐसा कहकर वे मुनि सो गये॥ ३९-४०॥

सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हो गये थे। सन्ध्या-वन्दनका समय उपस्थित हो जानेपर धर्मलोपके भयसे डरी हुई जरत्कारु सोचने लगी—मैं क्या करूँ? मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। यदि मैं इन्हें जगाती हूँ तो ये मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो यह सन्ध्याकाल व्यर्थ ही चला जायगा॥ ४१-४२॥

धर्मनाशकी अपेक्षा त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है ही। धर्मके नष्ट होनेपर मनुष्योंको निश्चित ही नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा निश्चय करके उस स्त्रीने उन मुनिको जगाया और कहा—हे सुव्रत! उठिये, उठिये, अब सन्ध्याकाल भी उपस्थित हो गया है॥ ४३-४४॥

जगनेपर मुनि जरत्कारुने क्रोधित होकर उससे कहा—अब मैं जा रहा हूँ और मेरी निद्रामें विघ्न डालनेवाली तुम अपने भाई वासुकिके घर चली जाओ॥ ४५॥

वेपमानाब्रवीद्वाक्यमित्युक्ता मुनिना तदा।
भ्रात्रा दत्ता यदर्थं तत्कथं स्यादमितप्रभ॥ ४६

मुनिः प्राह जरत्कारुं तदस्तीति निराकुलः।
गता सा मुनिना त्यक्ता वासुकेः सदनं तदा॥ ४७

पृष्टा भ्रात्राब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा।
अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः॥ ४८

वासुकिस्तु तदाकर्ण्य सत्यावाङ्मुनिरित्युत।
विश्वासं च परं कृत्वा भगिनीं तां समाश्रयत्॥ ४९

ततः कालेन कियता जातोऽसौ मुनिबालकः।
आस्तीक इति नामासौ विख्यातः कुरुसत्तम॥ ५०

तेनायं रक्षितो यज्ञस्तव पार्थिवसत्तम।
मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना॥ ५१

भव्यं कृतं महाराज मानितोऽयं त्वया मुनिः।
यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः॥ ५२

स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम्।
दानानि बहु दत्तानि पूजिता मुनयस्तथा॥ ५३

कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः।
पावितं न कुलं कृत्स्नं त्वया भूपतिसत्तम॥ ५४

देव्याश्चायतनं भूप विस्तीर्णं कुरु भक्तितः।
येन वै सकला सिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय॥ ५५

पूजिता परया भक्त्या शिवा सकलदा सदा।
कुलवृद्धिं करोत्येव राज्यं च सुस्थिरं सदा॥ ५६

मुनिके ऐसा कहनेपर भयसे काँपती हुई उसने कहा—हे महातेजस्वी! मेरे भाईने जिस प्रयोजनसे मुझे आपको सौंपा था, वह प्रयोजन अब कैसे सिद्ध होगा?॥ ४६॥

तदनन्तर मुनिने शान्तचित्त होकर जरत्कारुसे कहा—'वह तो है ही।' इसके बाद मुनिके द्वारा परित्यक्त वह कन्या वासुकिके घर चली गयी॥ ४७॥

भाई वासुकिके पूछनेपर उसने पतिद्वारा कही गयी बात उनसे यथावत् कह दी और [वह यह भी बोली कि] 'अस्ति'—ऐसा कहकर वे मुनिश्रेष्ठ मुझको छोड़कर चले गये॥ ४८॥

यह सुनकर वासुकिने सोचा कि मुनि सत्यवादी हैं; तत्पश्चात् पूर्ण विश्वास करके उन्होंने अपनी उस बहनको अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया॥ ४९॥

हे कुरुश्रेष्ठ! कुछ समय बाद मुनिबालक उत्पन्न हुआ और वह आस्तीक नामसे विख्यात हुआ॥ ५०॥

हे नृपश्रेष्ठ! पवित्र आत्मावाले उन्हीं आस्तीक-मुनिने अपने मातृ-पक्षकी रक्षाके लिये आपका सर्पयज्ञ रुकवाया है॥ ५१॥

हे महाराज! यायावर वंशमें उत्पन्न और वासुकिकी बहनके पुत्र आस्तीकका आपने सम्मान किया, यह तो बड़ा ही उत्तम कार्य किया है॥ ५२॥

हे महाबाहो! आपका कल्याण हो। आपने सम्पूर्ण महाभारत सुना, नानाविध दान दिये और मुनिजनोंकी पूजा की। हे भूपश्रेष्ठ! आपके द्वारा इतना महान् पुण्यकार्य किये जानेपर भी आपके पिता स्वर्गको प्राप्त नहीं हुए और न आपका सम्पूर्ण कुल ही पवित्र हो सका। अतः हे महाराज जनमेजय! आप भक्तिभावसे युक्त होकर देवी भगवतीके एक विशाल मन्दिरका निर्माण कराइये, जिसके द्वारा आप समस्त सिद्धिको प्राप्त कर लेंगे॥ ५३—५५॥

सर्वस्व प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गा परम श्रद्धापूर्वक पूजित होनेपर सदा वंश-वृद्धि करती हैं तथा राज्यको सदा स्थिरता प्रदान करती हैं॥ ५६॥

देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु॥ ५७

त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम्।
संसारतारिणीं दिव्यां नानारससमाहृताम्॥ ५८

न श्रोतव्यं परं चास्मात्पुराणाद्विद्यते भुवि।
नाराध्यं विद्यते राजन्देवीपादाम्बुजादृते॥ ५९

ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्ते नृपसत्तम।
येषां चित्ते सदा देवी वसति प्रेमसंकुले॥ ६०

सुदुःखितास्ते दृश्यन्ते भुवि भारत भारते।
नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदाम्बिका॥ ६१

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः।
वर्तन्ते सर्वदा राजंस्तां न सेवेत को जनः॥ ६२

य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम्॥ ६३

तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्ते शान्तिर्भविष्यति।
पितॄणां चाक्षयः स्वर्गः पुराणश्रवणाद्भवेत्॥ ६४

हे भूपश्रेष्ठ! विधि-विधानके साथ देवीयज्ञ करके आप श्रीमद्देवीभागवत नामक महापुराणका श्रवण कीजिये॥ ५७॥

अत्यन्त पुनीत, भवसागरसे पार उतारनेवाली, अलौकिक तथा विविध रसोंसे सम्पृक्त उस कथाको मैं आपको सुनाऊँगा॥ ५८॥

हे राजन्! सम्पूर्ण संसारमें इस पुराणसे बढ़कर अन्य कुछ भी श्रवणीय नहीं है और भगवतीके चरणारविन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ भी आराधनीय नहीं है॥ ५९॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिनके प्रेमपूरित हृदयमें सदा भगवती विराजमान रहती हैं; वे ही सौभाग्यशाली, ज्ञानवान् एवं धन्य हैं॥ ६०॥

हे भारत! इस भारतभूमिपर वे ही लोग सदा दुःखी दिखायी देते हैं, जिन्होंने कभी भी महामाया अम्बिकाकी आराधना नहीं की है॥ ६१॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी जिन भगवतीकी आराधनामें सर्वदा लीन रहते हैं, उनकी आराधना भला कौन मनुष्य नहीं करेगा?॥ ६२॥

जो मनुष्य इस पुराणका नित्य श्रवण करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। स्वयं भगवतीने भगवान् विष्णुके समक्ष इस अतिश्रेष्ठ पुराणका वर्णन किया था॥ ६३॥

हे राजन्! इस पुराणके श्रवणसे आपके चित्तको परम शान्ति प्राप्त होगी और आपके पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
श्रोतृप्रवक्तृप्रसङ्गो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

॥ द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

तृतीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजा जनमेजयका ब्रह्माण्डोत्पत्तिविषयक प्रश्न तथा इसके उत्तरमें व्यासजीका पूर्वकालमें नारदजीके साथ हुआ संवाद सुनाना

जनमेजय उवाच

भगवन् भवता प्रोक्तं यज्ञमम्बाभिधं महत्।
सा का कथं समुत्पन्ना कुत्र कस्माच्च किंगुणा॥ १

कीदृशश्च मखस्तस्याः स्वरूपं कीदृशं तथा।
विधानं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ २

ब्रह्माण्डस्य तथोत्पत्तिं वद विस्तरतस्तथा।
यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर॥ ३

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मया श्रुताः।
सृष्टिपालनसंहारकारकाः सगुणास्त्वमी॥ ४

स्वतन्त्रास्ते महात्मानः पाराशर्य वदस्व मे।
आहोस्वित्परतन्त्रास्ते श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ५

मृत्युधर्माश्च ते नो वा सच्चिदानन्दरूपिणः।
अधिभूतादिभिर्युक्ता न वा दुःखैस्त्रिधात्मकैः॥ ६

कालस्य वशगा नो वा ते सुरेन्द्रा महाबलाः।
कथं ते वै समुत्पन्नाः कस्मादिति च संशयः॥ ७

जनमेजय बोले—हे भगवन्! आपने महान् अम्बा-यज्ञके विषयमें कहा है। वे अम्बा कौन हैं, वे कैसे, कहाँ और किसलिये उत्पन्न हुई हैं और वे कौन-कौनसे गुणोंवाली हैं?॥ १॥

उनका यह यज्ञ कैसा है और उसका क्या स्वरूप है? हे दयानिधान! आप सब कुछ जाननेवाले हैं; उस यज्ञका विधान सम्यक् रूपसे बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका भी वर्णन कीजिये। हे भूसुर! इस विषयमें अन्य ज्ञानियोंने जैसा कहा है, वह सब कुछ भी आप भलीभाँति जानते हैं॥ ३॥

मैंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंके विषयमें सुना है कि ये सगुण रूपमें सम्पूर्ण जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं॥ ४॥

हे पराशरसुत व्यासजी! वे तीनों देवश्रेष्ठ स्वाधीन हैं अथवा पराधीन; आप मुझे बताइये, मैं इस समय सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

वे सच्चिदानन्दस्वरूप देवगण मरणधर्मा हैं अथवा नहीं; और वे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंसे युक्त हैं अथवा नहीं?॥ ६॥

वे तीनों महाबली देवेश कालके वशवर्ती हैं अथवा नहीं; और वे कैसे तथा किससे आविर्भूत हुए, मेरी यह भी एक शंका है॥ ७॥

हर्षशोकयुतास्ते वै निद्रालस्यसमन्विताः।
सप्तधातुमयास्तेषां देहाः किं वान्यथा मुने॥ ८

कैर्द्रव्यैर्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिन्द्रियैस्तथा।
भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा॥ ९

निवासस्थानमप्येषां विभूतिं च वदस्व मे।
श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् विस्तरेण कथामिमाम्॥ १०

व्यास उवाच

दुर्गमः प्रश्नभारोऽयं कृतो राजंस्त्वयाधुना।
ब्रह्मादीनां समुत्पत्तिः कस्मादिति महामते॥ ११

एतदेव मया पूर्वं पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः।
विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते॥ १२

कस्मिंश्च समये चाहं गङ्गातीरे स्थितं मुनिम्।
अपश्यं नारदं शान्तं सर्वज्ञं वेदवित्तमम्॥ १३

दृष्ट्वाहं मुदितो भूत्वा पादयोरपतं मुनेः।
तेनाज्ञप्तः समीपेऽस्य संविष्टश्च वरासने॥ १४

श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम्।
निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मबालुके॥ १५

मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्माण्डस्य महामते।
कः कर्ता परमः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि विधानतः॥ १६

कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्माण्डं मुनिसत्तम।
अनित्यं वा तथा नित्यं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम॥ १७

एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा।
अकर्तृकं न कार्यं स्याद्विरोधोऽयं विभाति मे॥ १८

हे मुने! क्या वे हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वोंसे युक्त हैं, क्या वे निद्रा एवं प्रमाद आदिसे प्रभावित हैं तथा क्या उनके शरीर सप्त धातुओं (अन्नरस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य)-से निर्मित हैं अथवा नहीं?॥ ८॥

वे किन द्रव्योंसे निर्मित हैं, वे किन-किन गुणोंको धारण करते हैं, उनमें कौन-कौन-सी इन्द्रियाँ अवस्थित हैं, उनका भोग कैसा होता है तथा उनकी आयुका परिमाण क्या है?॥ ९॥

इनके निवास-स्थान एवं विभूतियोंके भी विषयमें मुझको बतलाइये। हे ब्रह्मन्! इस कथाको विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी अभिलाषा है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे महामति राजन्! ब्रह्मादि देवोंकी उत्पत्ति किससे हुई, इस समय आपने यह बड़ा दुर्गम प्रश्न किया है॥ ११॥

हे राजन्! पूर्वमें मैंने यही प्रश्न देवर्षि नारदजीसे पूछा था। तब विस्मित होकर वे उठ खड़े हुए और उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसे आप सुनें॥ १२॥

किसी समय मैंने शान्त, सर्ववेत्ता तथा वेद-विद्वानोंमें श्रेष्ठ नारदमुनिको गंगाके किनारे विद्यमान देखा॥ १३॥

मुनिको देखकर तथा प्रसन्न होकर मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा। तदनन्तर उनके द्वारा आज्ञा देनेपर मैं उनके पासमें ही एक सुन्दर आसनपर बैठ गया॥ १४॥

कुशल-क्षेमकी वार्ता सुन करके सूक्ष्म बालूवाले गंगा-तटके निर्जन स्थानपर बैठे हुए ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारदसे मैंने पूछा—॥ १५॥

हे महामति मुनिदेव! इस अति विस्तीर्ण ब्रह्माण्डका प्रधान कर्ता कौन कहा गया है? उसे आप मुझे सम्यक् रूपसे बताइये॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति किससे हुई है? हे विप्रवर! आप मुझे यह भी बताइये कि यह ब्रह्माण्ड नित्य है अथवा अनित्य?॥ १७॥

यह ब्रह्माण्ड किसी एकके द्वारा विरचित है अथवा अनेक कर्ताओंद्वारा मिलकर इसका निर्माण किया गया है? किसी कर्ताके बिना कार्यकी सत्ता सम्भव नहीं है। इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह हो रहा है॥ १८॥

इति सन्देहसन्दोहे मग्नं मां तारयाधुना।
विकल्पकोटीः कुर्वाणं संसारेऽस्मिन् प्रविस्तरे॥ १९

ब्रुवन्ति शङ्करं केचिन्मत्वा कारणकारणम्।
सदाशिवं महादेवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥ २०

आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलं हरम्।
संसारतारकं नित्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्॥ २१

अन्ये विष्णुं स्तुवन्त्येनं सर्वेषां प्रभुमीश्वरम्।
परमात्मानमव्यक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥ २२

भुक्तिदं मुक्तिदं शान्तं सर्वादिं सर्वतोमुखम्।
व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनं हरिम्॥ २३

धातारं च तथा चान्ये ब्रुवन्ति सृष्टिकारणम्।
तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम्॥ २४

चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम्।
स्त्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम्॥ २५

दिनेशं प्रवदन्त्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः।
स्तुवन्ति चैव गायन्ति सायं प्रातरतन्द्रिताः॥ २६

यजन्ति च तथा यज्ञे वासवं च शतक्रतुम्।
सहस्त्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुल्वणम्॥ २७

यज्ञाधीशं सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम्।
यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम्॥ २८

वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा।
यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथापरे॥ २९

हेरम्बं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम्।
स्मरणात्सिद्धिदं कामं कामदं कामगं परम्॥ ३०

इस प्रकार इस विस्तृत ब्रह्माण्डके विषयमें विविध कल्पना करते हुए तथा सन्देहसागरमें डूबते हुए मुझ दुःखीका आप उद्धार कीजिये॥ १९॥

कुछ लोग सदाशिव, महादेव, प्रलय तथा उत्पत्तिसे रहित, आत्माराम, देवेश, त्रिगुणात्मक, निर्मल, हर, संसारसे उद्धार करनेवाले, नित्य तथा सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले भगवान् शंकरको ही मूल कारण मानकर उन्हें ही इस ब्रह्माण्डका रचयिता कहते हैं॥ २०-२१॥

दूसरे लोग श्रीहरि विष्णुको सबका प्रभु, ईश्वर, परमात्मा, अव्यक्त, सर्वशक्तिसम्पन्न, भोग तथा मोक्षप्रदाता, शान्त, सबका आदि, सर्वतोमुख, व्यापक, समग्र संसारको शरण देनेवाला तथा आदि-अन्तसे रहित जानकर उन्हींका स्तवन करते हैं॥ २२-२३।

अन्य लोग ब्रह्माजीको सृष्टिका कारण, सर्वज्ञ, सभी प्राणियोंका प्रवर्तक, चार मुखोंवाला, सुरपति, विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत, सर्वव्यापी, सभी लोकोंकी रचना करनेवाला तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाला बताते हैं॥ २४-२५॥

कुछ वेदवेत्ता विद्वान् सर्वेश्वर भगवान् सूर्यको ब्रह्माण्डकर्ता मानते हैं और सावधान होकर सायं-प्रातः उन्हींकी स्तुति करते हैं तथा उन्हींका यशोगान करते हैं॥ २६॥

यज्ञमें निष्ठाभाव रखनेवाले लोग धनप्रदाता, शतक्रतु, सहस्त्राक्ष, देवाधिदेव, सबके स्वामी, बलशाली, यज्ञाधीश, सुरपति, त्रिलोकेश, यज्ञोंका भोग करनेवाले, सोमपान करनेवाले तथा सोमपायी लोगोंके प्रिय शचीपति इन्द्रको [सर्वश्रेष्ठ मानकर] यज्ञोंमें उन्हींका यजन करते हैं॥ २७-२८॥

कुछ लोग वरुण, सोम, अग्नि, पवन, यमराज, धनपति कुबेरकी तथा कुछ लोग हेरम्ब, गजमुख, सर्वकार्यसाधक, स्मरणमात्रसे सिद्धि प्रदान करनेवाले, कामस्वरूप, कामनाओंको प्रदान करनेवाले, स्वेच्छ विचरण करनेवाले, परम देव गणाधीश गणेशकी स्तुति करते हैं॥ २९-३०॥

भवानीं केचनाचार्याः प्रवदन्त्यखिलार्थदाम्।
आदिमायां महाशक्तिं प्रकृतिं पुरुषानुगाम्॥ ३१

ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च॥ ३२

अनादिनिधनां पूर्णां व्यापिकां सर्वजन्तुषु।
ईश्वरीं सर्वलोकानां निर्गुणां सगुणां शिवाम्॥ ३३

वैष्णवीं शाङ्करीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा।
वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाद्भुताम्॥ ३४

वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोः स्थिराम्।
सर्वदुःखनिहन्त्रीं च स्मरणात्सर्वकामदाम्॥ ३५

मोक्षदां च मुमुक्षूणां कामदां च फलार्थिनाम्।
त्रिगुणातीतरूपां च गुणविस्तारकारकाम्॥ ३६

निर्गुणां सगुणां तस्मात्तां ध्यायन्ति फलार्थिनः।

निरञ्जनं निराकारं निर्लेपं निर्गुणं किल॥ ३७

अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदन्ति मुनीश्वराः।
वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित्॥ ३८

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्रनयनस्तथा।
सहस्त्रकरकर्णश्च सहस्त्रास्यः सहस्त्रपात्॥ ३९

विष्णोः पादमथाकाशं परमं समुदाहृतम्।
विराजं विरजं शान्तं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ४०

पुरुषोत्तमं तथा चान्ये प्रवदन्ति पुराविदः।
नैकोऽपीति वदन्त्यन्ये प्रभुरीशः कदाचन॥ ४१

अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्माण्डमिति केचन।
न कदापीशजन्यं यज्जगदेतदचिन्तितम्॥ ४२

सदैवेदमनीशं च स्वभावोत्थं सदेदृशम्।
अकर्तासौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तु तथा च सा॥ ४३

एवं वदन्ति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः।

कुछ आचार्य भवानीको ही सब कुछ देनेवाली, आदिमाया, महाशक्ति तथा पुरुषानुगामिनी परा प्रकृति कहते हैं। वे उनको ब्रह्मस्वरूपा, सृजन-पालन-संहार करनेवाली, सभी प्राणियों एवं देवताओंकी जननी, आदि-अन्तरहित, पूर्णा, सभी जीवोंमें व्याप्त, सभी लोकोंकी स्वामिनी, निर्गुणा, सगुणा तथा कल्याणस्वरूपा मानते हैं॥ ३१—३३॥

फलकी आकांक्षा रखनेवाले उन भवानीका वैष्णवी, शांकरी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही, महालक्ष्मी, विचित्ररूपा, वेदमाता, एकेश्वरी, विद्यास्वरूपा, संसाररूपी वृक्षकी स्थिरताकी कारणरूपा, सभी कष्टोंका नाश करनेवाली और स्मरण करते ही सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, मुक्ति चाहनेवालोंके लिये मोक्षदायिनी, फलकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिये कामप्रदायिनी, त्रिगुणातीतस्वरूपा, गुणोंका विस्तार करनेवाली, निर्गुणा-सगुणा-रूपमें ध्यान करते हैं॥ ३४—३६½॥

कुछ मुनीश्वर निरंजन, निराकार, निर्लिप्त, गुणरहित, रूपरहित तथा सर्वव्यापक ब्रह्मको जगत्का कर्ता बतलाते हैं। वेदों तथा उपनिषदोंमें कहीं-कहीं उसे अनन्त सिर, नेत्र, हाथ, कान, मुख और चरणसे युक्त तेजोमय विराट् पुरुष कहा गया है॥ ३७—३९॥

कुछ मनीषीगण आकाशको विष्णुके परम पादके रूपमें मानते हैं और उन्हें विराट्, निरंजन तथा शान्तस्वरूप कहते हैं॥ ४०॥

कुछ तत्त्वज्ञानी पुराणवेत्ता पुरुषोत्तमको सृष्टिका निर्माता कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस अनन्त ब्रह्माण्डकी रचनामें केवल एक ईश्वर कदापि समर्थ नहीं हो सकता है॥ ४१॥

कुछ लोग कहते हैं कि यह जगत् अचिन्त्य है, अतः यह ईश्वररचित कदापि नहीं हो सकता; उनके मतमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वररहित है। 'यह जगत् सदासे ही ईश्वरीय सत्तासे रहित रहा है और यह स्वभावसे उत्पन्न होता है तथा सदासे ऐसा ही है। यह पुरुष तो कर्तृत्वभावसे रहित कहा गया है और वह प्रकृति ही सर्वसंचालिका है'—कपिल आदि सांख्यशास्त्रके आचार्य ऐसा ही कहते हैं॥ ४२-४३½॥

एते सन्देहसन्दोहाः प्रभवन्ति तथापरे ॥ ४४

विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर।
धर्माधर्मविवक्षायां न मनो मे स्थिरं भवेत् ॥ ४५

को धर्मः कीदृशोऽधर्मश्चिह्नं नैवोपलभ्यते।
देवाः सत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिताः ॥ ४६

पीड्यन्ते दानवैः पापैः कुत्र धर्मव्यवस्थितिः।
धर्मस्थिताः सदाचाराः पाण्डवा मम वंशजाः ॥ ४७

दुःखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः।
अतो मे हृदयं तात वेपतेऽतीव संशये ॥ ४८

कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने।
त्राहि संसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने ॥ ४९

मज्जन्तं चोत्पतन्तं च मग्नं मोहजलाविले ॥ ५०

हे मुनिनाथ! मेरे मनमें ये तथा अन्य प्रकारके और भी सन्देहपुंज उत्पन्न होते रहते हैं। नाना प्रकारकी कल्पनाओंसे उद्विग्न मनवाला मैं क्या करूँ? धर्म तथा अधर्मके विषयमें मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता है ॥ ४४-४५ ॥

क्या धर्म है और क्या अधर्म है; इसका कोई स्पष्ट लक्षण प्राप्त नहीं होता है। लोग कहते हैं कि देवता सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं और वे सत्यधर्ममें स्थित रहते हैं फिर भी वे देवगण पापाचारी दानवोंद्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं, तो फिर धर्मकी व्यवस्था कहाँ रह गयी? धर्मनिष्ठ और सदाचारी मेरे वंशज पाण्डव भी नाना प्रकारके कष्ट सहनेको विवश हुए, ऐसी स्थितिमें धर्मकी क्या मर्यादा रह गयी? अतः हे तात! इस संशयमें पड़ा हुआ मेरा मन अतीव चंचल रहता है ॥ ४६—४८ ॥

हे महामुने! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरे हृदयको संशयमुक्त कीजिये। हे मुने! संसार-सागरके मोहसे दूषित जलमें गिरे हुए तथा बार-बार डूबते-उतराते मुझ अज्ञानीकी अपने ज्ञानरूपी जहाजसे रक्षा कीजिये ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
भुवनेश्वरीवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन

व्यास उवाच

यत्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तम।
तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः ॥ १

नारद उवाच

व्यास किं ते ब्रवीम्यद्य पुरायं संशयो मम।
उत्पन्नो हृदयेऽत्यर्थं सन्देहासारपीडितः ॥ २

गत्वाहं पितरं स्थाने ब्रह्माणममितौजसम्।
अपृच्छं यत्त्वया पृष्टं व्यासाद्य प्रश्नमुत्तमम् ॥ ३

व्यासजी बोले—हे महाबाहो! हे कुरुश्रेष्ठ! आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं, उन्हीं प्रश्नोंको मेरेद्वारा मुनिराज नारदजीसे पूछे जानेपर उन्होंने इस विषयमें ऐसा कहा था ॥ १ ॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! मैं आपसे इस समय क्या कहूँ? प्राचीन कालमें यही शंका मेरे भी मनमें उत्पन्न हुई थी और सन्देहकी बहुलतासे मेरा मन उद्वेलित हो गया था ॥ २ ॥

हे व्यासजी! तदनन्तर मैंने ब्रह्मलोकमें अपने अमित तेजस्वी पिता ब्रह्माजीके पास पहुँचकर यही प्रश्न पूछा था, जो उत्तम प्रश्न आपने आज मुझसे पूछा है ॥ ३ ॥

पितः कुतः समुत्पन्नं ब्रह्माण्डमखिलं विभो।
भवत्कृतेन वा सम्यक् किं वा विष्णुकृतं त्विदम्॥ ४

रुद्रकृतं वा विश्वात्मन् ब्रूहि सत्यं जगत्पते।
आराधनीयः कः कामं सर्वोत्कृष्टश्च कः प्रभुः॥ ५

तत्सर्वं वद मे ब्रह्मन्सन्देहांश्छिन्धि चानघ।
निमग्नो ह्यस्मि संसारे दुःखरूपेऽनृतोपमे॥ ६

सन्देहान्दोलितं चेतो न प्रशाम्यति कुत्रचित्।
न तीर्थेषु न देवेषु साधनेष्वितरेषु च॥ ७

अविज्ञाय परं तत्त्वं कुतः शान्तिः परन्तप।
विकीर्णं बहुधा चित्तं नैकत्र स्थिरतां व्रजेत्॥ ८

कं स्मरामि यजे कं वा कं व्रजाम्यर्चयामि कम्।
स्तौमि कं नाभिजानामि देवं सर्वेश्वरेश्वरम्॥ ९

ततो तां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः।
मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे॥ १०

ब्रह्मोवाच

किं ब्रवीमि सुताद्याहं दुर्बोधं प्रश्नमुत्तमम्।
त्वयाशक्यं महाभाग विष्णोरपि सुनिश्चयात्॥ ११

रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते।
विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः॥ १२

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे।
भूतमात्रे समुत्पन्ने सञ्जज्ञे कमलादहम्॥ १३

नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षान्न च पर्वतान्।
कर्णिकायां समाविष्टश्चिन्तामकरवं तदा॥ १४

[मैंने पूछा—] हे पिताजी! इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आविर्भाव कैसे हुआ? हे विभो! इसका निर्माण आपने किया है अथवा विष्णुने अथवा शिवने इसकी रचना की है? हे विश्वात्मन्! मुझे सही-सही बताइये। हे जगत्पते! सर्वश्रेष्ठ ईश्वर कौन है और किसकी आराधना की जानी चाहिये?॥ ४-५॥

हे ब्रह्मन्! वह सब कुछ बताइए और मेरे सन्देहोंको दूर कीजिये। हे निष्पाप! मैं असत्य तथा दुःखरूप संसारमें डूबा हुआ हूँ॥ ६॥

सन्देहोंसे दोलायमान मेरा मन तीर्थोंमें, देवताओंमें तथा अन्य साधनोंमें—कहीं भी शान्त नहीं हो पा रहा है॥ ७॥

हे परन्तप! परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किये बिना शान्ति मिल भी कैसे सकती है? अनेक प्रकारसे उलझा हुआ मेरा मन एक जगह स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ८॥

मैं किसका स्मरण करूँ, किसका यजन करूँ, कहाँ जाऊँ, किसकी अर्चना करूँ और किसकी स्तुति करूँ? हे देव! मैं तो उस सर्वेश्वर परमात्माको जानता भी नहीं हूँ॥ ९॥

हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मेरे द्वारा किये गये दुरूह प्रश्नोंको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने तब मुझसे ऐसा कहा—॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! तुमने आज एक दुरूह तथा उत्तम प्रश्न किया है, उसके विषयमें मैं क्या कहूँ? हे महाभाग! साक्षात् विष्णुद्वारा भी इन प्रश्नोंका निश्चित उत्तर दिया जाना सम्भव नहीं है॥ ११॥

हे महामते! इस संसारके क्रियाकलापोंमें आसक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस तत्त्वका ज्ञान रखता हो। कोई विरक्त, निःस्पृह तथा विद्वेषरहित ही इसे जान सकता है॥ १२॥

प्राचीन कालमें जल-प्रलयके होनेपर स्थावर-जंगमादिक प्राणियोंके नष्ट हो जाने तथा मात्र पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होनेपर मैं कमलसे आविर्भूत हुआ॥ १३॥

उस समय मैंने सूर्य, चन्द्र, वृक्षों तथा पर्वतोंको नहीं देखा और कमलकर्णिकापर बैठा हुआ मैं विचार करने लगा—॥ १४॥

कस्मादहं समुद्भूतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे।
को मे त्राता प्रभुः कर्ता संहर्ता वा युगात्यये॥ १५

न च भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम्।
पङ्कजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं रूढियोगयोः॥ १६

पश्याम्यद्यास्य पङ्कं तं मूलं वै पङ्कजस्य च।
भविष्यति धरा तत्र मूलं नास्त्यत्र संशयः॥ १७

उत्तरन्सलिले तत्र यावद्वर्षसहस्रकम्।
अन्वेषमाणो धरणीं नावाप तां यदा तदा॥ १८

तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी।
ततो मया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्रकम्॥ १९

सृजेति पुनरुद्भूता वाणी तत्र श्रुता मया।
विमूढोऽहं तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम्॥ २०

तदा दैत्यावपि प्राप्तौ दारुणौ मधुकैटभौ।
ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये॥ २१

ततोऽहं नालमालम्ब्य वारिमध्यमवातरम्।
तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः॥ २२

मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः।
शेषशायी जगन्नाथो वनमालाविभूषितः॥ २३

शङ्खचक्रगदापद्माद्यायुधैः सुविराजितः।
तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यङ्कशायिनम्॥ २४

योगनिद्रासमाक्रान्तमविस्पन्दिनमच्युतम् ।
शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरि स्थितम्॥ २५

चिन्ता ममाद्भुता जाता किं करोमीति नारद।
मया स्मृता तदा देवी स्तुता निद्रास्वरूपिणी॥ २६

इस महासागरके जलमें मेरा प्रादुर्भाव किससे हुआ? मेरा निर्माण करनेवाला, रक्षा करनेवाला तथा युगान्तके समय संहार करनेवाला प्रभु कौन है?॥ १५॥

कहीं भूमि भी स्पष्ट दिखायी नहीं दे रही है, जिसके आधारपर यह जल टिका है तो फिर यह कमल कैसे उत्पन्न हुआ, जिसकी उत्पत्ति जल और पृथ्वीके संयोगसे ही प्रसिद्ध है?॥ १६॥

आज मैं इस कमलका मूल आधार पंक अवश्य देखूँगा; और फिर उस पंककी आधारस्वरूपा भूमि भी अवश्य मिल जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

तदनन्तर मैं जलमें नीचे उतरकर हजार वर्षोंतक पृथ्वीको खोजता रहा, किंतु जब उसे नहीं पाया तब आकाशवाणी हुई कि 'तपस्या करो'। तत्पश्चात् मैं उसी कमलपर आसीन होकर हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता रहा॥ १८-१९॥

इसके बाद पुनः एक अन्य वाणी उत्पन्न हुई—'सृष्टि करो', इसे मैंने साफ-साफ सुना। उसे सुनकर व्याकुल चित्तवाला मैं सोचने लगा, किसका सृजन करूँ और किस प्रकार करूँ?॥ २०॥

उसी समय मधु-कैटभ नामवाले दो भयानक दैत्य मेरे सम्मुख आ गये। उस महासागरमें युद्धके लिये तत्पर उन दोनों दैत्योंसे मैं अत्यधिक भयभीत हो गया॥ २१॥

तत्पश्चात् मैं उसी कमलकी नालका आश्रय लेकर जलके भीतर उतरा और वहाँ एक अत्यन्त अद्भुत पुरुषको मैंने देखा॥ २२॥

उनका शरीर मेघके समान श्याम वर्णवाला था। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे और उनकी चार भुजाएँ थीं। वे जगत्पति वनमालासे अलंकृत थे तथा शेषशय्यापर सो रहे थे॥ २३॥

वे शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुध धारण किये हुए थे। इस प्रकार मैंने शेषनागकी शय्यापर शयन करते हुए उन महाविष्णुको देखा॥ २४॥

हे नारदजी! योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण निष्पन्द पड़े उन भगवान् अच्युतको शेषनागके ऊपर सोया हुआ देखकर मुझे अद्भुत चिन्ता हुई और मैं सोचने लगा कि अब क्या करूँ? तब मैंने निद्रास्वरूपा भगवतीका स्मरण किया और मैं उनकी स्तुति करने लगा॥ २५-२६॥

देहान्निर्गत्य सा देवी गगने संस्थिता शिवा।
अवितर्क्यशरीरा सा दिव्याभरणमण्डिता॥ २७

विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता।
उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः॥ २८

पञ्चवर्षसहस्राणि कृतवान्युद्धमुत्तमम्।
तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणा विनिपातितौ॥ २९

उत्सङ्गं विपुलं कृत्वा तत्रैव निहतौ च तौ।
रुद्रस्तत्रैव सम्प्राप्तो यत्रावां संस्थितावुभौ॥ ३०

त्रिभिः संवीक्षितास्माभिः स्वस्था देवी मनोहरा।
संस्तुता परमा शक्तिरुवाचास्मानवस्थितान्॥ ३१

कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ।

देव्युवाच

काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतन्द्रिताः॥ ३२

सृष्टिस्थितिविशिष्टानि हतावेतौ महासुरौ।
कृत्वा स्वानि निकेतानि वसध्वं विगतज्वराः॥ ३३

प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वविभूतिभिः।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु॥ ३४

अब्रूम तामशक्ताः स्मः कथं कुर्मस्त्विमाः प्रजाः।
न मही वितता मातः सर्वत्र विततं जलम्॥ ३५

न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
तदाकर्ण्य वचोऽस्माकं शिवा जाता स्मितानना॥ ३६

[मेरी स्तुतिसे] वे कल्याणी भगवती विष्णु-भगवान्‌के शरीरसे निकलकर आकाशमें विराजमान हुईं। उस समय दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत वे भगवती कल्पनाओंसे परे विग्रहवाली प्रतीत हो रही थीं॥ २७॥

इस प्रकार विष्णुका शरीर तत्काल छोड़कर जब वे आकाशमें विराजित हो गयीं, तब उनके द्वारा मुक्त किये गये अनन्तात्मा वे जनार्दन उठ गये॥ २८॥

तत्पश्चात् उन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक उन दैत्योंके साथ घोर युद्ध किया। पुनः उन महामाया भगवतीके दृष्टिपातसे मोहित किये गये उन दोनों दैत्योंको भगवान् विष्णुने मार दिया। अपनी जाँघोंको विस्तृत करके भगवान् विष्णुने उसीपर उन दोनोंका वध किया। उसी समय जहाँ हम दोनों थे, वहींपर शंकरजी भी आ गये॥ २९-३०॥

तब हम तीनोंने गगन-मण्डलमें विराजमान उन मनोहर देवीको देखा। हमलोगोंके द्वारा उन परम शक्तिकी स्तुति किये जानेपर अपनी पवित्र कृपादृष्टिसे हमलोगोंको प्रसन्न करके उन्होंने वहाँ स्थित हमलोगोंसे कहा—॥ ३१½॥

देवी बोलीं—हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! अब आपलोग सृष्टि, पालन एवं संहारके अपने-अपने कार्य प्रमादरहित होकर कीजिये। अब आपलोग अपना-अपना निवास बनाकर निर्भीकतापूर्वक रहिये; क्योंकि उन दोनों महादैत्योंका संहार हो गया है। अतः आपलोग अपनी विभूतियोंसे अण्डज, पिण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज—चारों प्रकारकी सभी प्रजाओंका सृजन कीजिये॥ ३२-३३½॥

ब्रह्माजी बोले—उन भगवतीका वह मनोहर, सुखकर तथा मधुर वचन सुनकर हमलोगोंने उनसे कहा—हे माता! हमलोग शक्तिहीन हैं, अतः इन प्रजाओंका सृजन कैसे करें? अभी विस्तृत पृथ्वी ही नहीं है और सभी ओर जल-ही-जल फैला हुआ है। सृष्टिकार्यके लिये आवश्यक पंचतत्त्व, गुण, तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ—ये कुछ भी नहीं हैं। हमलोगोंके ये वचन सुनकर भगवतीका मुखमण्डल मुसकानसे भर उठा॥ ३४—३६॥

झटित्येवागतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम्।
सोवाचास्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः॥ ३७

विमाने ब्रह्मविष्णवीशा दर्शयाम्यद्य चाद्भुतम्।
तन्निशम्य वचस्तस्या ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम्॥ ३८

समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमण्डिते।
मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते॥ ३९

सुरसद्मनिभे रम्ये त्रयस्तत्राविशंकिताः।
सोपविष्टांस्ततो दृष्ट्वा देव्यस्मान्विजितेन्द्रियान्॥ ४०

स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चाम्बरे॥ ४१

उसी समय वहाँ आकाशसे एक रमणीक विमान आ पहुँचा। तत्पश्चात् उन भगवतीने कहा—हे देवताओ! आप लोग निर्भीक होकर इस विमानमें इच्छानुसार बैठ जायँ॥ ३७॥

हे ब्रह्मा, विष्णु और शिव! मैं आपलोगोंको आज इस विमानमें एक अद्भुत दृश्य दिखाऊँगी। उनका यह वचन सुनकर हम तीनों उनकी बात स्वीकार करके रत्नजटित, मोतियोंकी झालरोंसे शोभायमान, घंटियोंकी ध्वनिसे गुंजित तथा देव-भवनके तुल्य उस रमणीक विमानपर संशयरहित भावसे चढ़कर बैठ गये। तब भगवतीने हम जितेन्द्रिय देवताओंको बैठा हुआ देखकर उस विमानको अपनी शक्तिसे आकाशमण्डलमें उड़ाया॥ ३८—४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विमानेन ब्रह्मादीनाङ्गतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मा, विष्णु और महेशका विभिन्न लोकोंमें जाना तथा अपने ही सदृश अन्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर आश्चर्यचकित होना, देवीलोकका दर्शन

ब्रह्मोवाच

विमानं तन्मनोवेगं यत्र स्थानान्तरे गतम्।
न जलं तत्र पश्यामो विस्मिताः स्मो वयं तदा॥ १

वृक्षाः सर्वफला रम्याः कोकिलारावमण्डिताः।
मही महीधराः कामं वनान्युपवनानि च॥ २

नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः।
वाप्यः कूपास्तडागाश्च पल्वलानि च निर्झराः॥ ३

पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमण्डितम्।
यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम्॥ ४

प्रत्यभिज्ञा तदा जाताप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम्।
स्वर्गोऽयमिति केनासौ निर्मितोऽस्ति तदाद्भुतम्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—मनके समान वेगसे उड़नेवाला वह विमान जिस स्थानपर पहुँचा, वहाँ जब हमने जल नहीं देखा तब हमलोगोंको महान् आश्चर्य हुआ॥ १॥

उस स्थानके वृक्ष सभी प्रकारके फलोंसे लदे हुए और कोकिलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजायमान थे। वहाँकी भूमि, पर्वत, वन और उपवन—ये सभी सुरम्य दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ २॥

उस स्थानपर स्त्रियाँ, पुरुष, पशु, बड़ी नदियाँ, बावलियाँ, कुएँ, तालाब, पोखरे तथा झरने इत्यादि विद्यमान थे॥ ३॥

वहाँ भव्य चहारदीवारीसे घिरा हुआ एक मनोहर नगर था, जो यज्ञशालाओं तथा अनेक प्रकारके दिव्य महलोंसे सुशोभित था॥ ४॥

तब उस नगरको देखकर हमलोगोंको ऐसी प्रतीति हुई, मानो यही स्वर्ग है और फिर हम लोगोंकी यह जिज्ञासा हुई कि इस अद्भुत नगरका निर्माण किसने किया है, उस समय हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ!॥ ५॥

राजानं देवसङ्काशं व्रजन्तं मृगयां वने।
अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चाम्बिका॥ ६

क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम्।
मुहूर्ताद्वा ततः प्राप्तं देशे चान्ये मनोहरे॥ ७

नन्दनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम्।
पारिजाततरुच्छायासंश्रिता सुरभिः स्थिता॥ ८

चतुर्दन्तो गजस्तस्याः समीपे समवस्थितः।
अप्सरसां तत्र वृन्दानि मेनकाप्रभृतीनि च॥ ९

क्रीडन्ति विविधैर्भावैर्गाननृत्यसमन्वितैः।
गन्धर्वाः शतशस्तत्र यक्षा विद्याधरास्तथा॥ १०

मन्दारवाटिकामध्ये गायन्ति च रमन्ति च।
दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः॥ ११

वयं तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वा त्रैविष्टपं तदा।
यादःपतिं कुबेरं च यमं सूर्यं विभावसुम्॥ १२

विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान्।
तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमण्डितात्॥ १३

देवराज इवाक्षोभ्यो नरवाह्यावनौ स्थितः।
विमानस्था वयं तच्च चचाल तरसागतम्॥ १४

ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ॥ १५

सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे साङ्गाः स्वरूपिणः।
सागराः सरितश्चैव पर्वताः पन्नगोरगाः॥ १६

मामूचतुश्चतुर्वक्त्र कोऽयं ब्रह्मा सनातनः।
ताववोचमहं नैव जाने सृष्टिपतिं पतिम्॥ १७

हमलोगोंने आखेटके उद्देश्यसे वनमें जाते हुए एक देवतुल्य राजाको देखा। उसी समय हमलोगोंको जगदम्बा भगवती भी विमानपर स्थित दिखायी पड़ीं॥ ६॥

थोड़ी ही देर बाद हमारा विमान वायुसे प्रेरित होकर आकाशमें पुनः उड़ने लगा और मुहूर्तभरमें वह पुनः एक अन्य सुरम्य देशमें पहुँच गया॥ ७॥

वहाँपर हमलोगोंको अत्यन्त रमणीक नन्दनवन दृष्टिगत हुआ, जिसमें पारिजातवृक्षकी छायाका आश्रय लिये हुए कामधेनु स्थित थी॥ ८॥

कामधेनुके समीप ही चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी विद्यमान था और वहाँ मेनका आदि अप्सराओंके समूह अपने नृत्यों तथा गानोंमें विविध भाव-भंगिमाओंका प्रदर्शन करते हुए अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ कर रहे थे। वहाँ मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंमें सैकड़ों गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर गा रहे थे और रमण कर रहे थे। वहाँपर इन्द्रभगवान् भी इन्द्राणीके साथ दृष्टिगोचर हुए॥ ९—११॥

स्वर्गमें निवास करनेवाले देवताओंको देखकर हमें परम विस्मय हुआ। वहाँपर वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, अग्नि तथा अन्य देवताओंको स्थित देखकर हम आश्चर्यचकित हुए। उसी समय उस सुसज्जित नगरसे वह राजा निकला॥ १२-१३॥

देवताओंके राजा इन्द्रकी भाँति पराक्रमी वह राजा धरातलपर पालकीमें बैठा था। वह विमान हमलोगोंको लेकर द्रुत गतिसे आगे बढ़ा॥ १४॥

तदनन्तर हमलोग अलौकिक ब्रह्मलोकमें पहुँच गये। वहाँपर सभी देवताओंसे नमस्कृत ब्रह्माजीको विद्यमान देखकर भगवान् शंकर एवं विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १५॥

वहाँ ब्रह्माजीकी सभामें सभी वेद अपने-अपने अंगोंसहित मूर्तरूपमें विराजमान थे। साथ ही समुद्र, नदियाँ, पर्वत, सर्प एवं नाग भी उपस्थित थे॥ १६॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णु और शंकरने मुझसे पूछा—हे चतुर्मुख! ये दूसरे सनातन ब्रह्मा कौन हैं? तब मैंने उनसे कहा कि मैं सबके स्वामी तथा सृष्टिकर्ता इन ब्रह्माको नहीं जानता॥ १७॥

कोऽहं कोऽयं किमर्थं वा भ्रमोऽयं मम चेश्वरौ।
क्षणादथ विमानं तच्चचालाशु मनोजवम्॥ १८

कैलासशिखरे प्राप्तं रम्ये यक्षगणान्विते।
मन्दारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते॥ १९

वीणामुरजवाद्यैश्च नादिते सुखदे शिवे।

यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छुभात्॥ २०

निर्गतो भगवाञ्छम्भुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः।
पञ्चाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः॥ २१

व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः।
पार्ष्णिरक्षौ महावीरौ गजाननषडाननौ॥ २२

शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः।
नन्दिप्रभृतयः सर्वे गणपाश्च वराश्च ते॥ २३

जयशब्दं प्रयुञ्जाना व्रजन्ति शिवपृष्ठगाः।
तं वीक्ष्य शङ्करं चान्यं विस्मितास्तत्र नारद॥ २४

मातृभिः संशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने।
क्षणात्तस्माद् गिरेः शृङ्गाद्विमानं वातरंहसा॥ २५

वैकुण्ठसदनं प्राप्तं रमारमणमन्दिरम्।
असम्भाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत॥ २६

विसिष्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम्।
सदनाग्रे ययौ तावद्धरिः कमललोचनः॥ २७

अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूषितः॥ २८

वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः।
तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम्॥ २९

हे ईश्वरो! मैं कौन हूँ, ये कौन हैं और हम दोनोंका क्या प्रयोजन है? इसमें मैं भ्रमित हूँ। थोड़ी ही देरमें वह विमान पुनः मनके सदृश वेगसे आगेकी ओर बढ़ा॥ १८॥

तत्पश्चात् वह विमान यक्षगणोंसे सुशोभित, मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंके कारण अति सुरम्य, शुक और कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजित, वीणा और मृदंग आदि वाद्य-यन्त्रोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित, सुखदायक तथा मंगलकारी कैलास-शिखरपर पहुँचा॥ १९½॥

उस शिखरपर जब वह विमान पहुँचा; उसी समय वृषभपर आरूढ, पंचमुख, दस भुजाओंवाले, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए भगवान् शंकर अपने दिव्य भवनसे बाहर निकले॥ २०-२१॥

उस समय वे व्याघ्रचर्म पहने हुए तथा गजचर्म ओढ़े हुए थे। महाबली गजानन (श्रीगणेश) तथा षडानन (कार्तिकेय) उनके अंगरक्षकके रूपमें विद्यमान थे॥ २२॥

भगवान् शंकरके साथ चल रहे उनके दोनों पुत्र अतीव सुशोभित हो रहे थे। नन्दी आदि सभी प्रधान शिवगण जयघोष करते हुए भगवान् शिवके पीछे-पीछे चल रहे थे। हे नारद! वहाँ अन्य लोगों तथा शंकरको मातृकाओंसहित देखकर हमलोग विस्मयमें पड़ गये और हे मुने! मैं संशयग्रस्त हो गया। थोड़ी ही देरमें वह विमान उस कैलास-शिखरसे वायुगतिसे लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुके वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचा। हे पुत्र! मैंने वहाँ अद्भुत विभूतियाँ देखीं॥ २३—२६॥

उस अति रमणीक नगरको देखकर भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये। उसी समय कमललोचन भगवान् विष्णु अपने भवनसे बाहर निकले॥ २७॥

उनका वर्ण अलसीके पुष्पकी भाँति श्याम था, वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, उनकी चार भुजाएँ थीं, वे पक्षिराज गरुडपर आरूढ़ थे और दिव्य अलंकारोंसे विभूषित थे। भगवती लक्ष्मी उन्हें शुभ चँवर डुला रही थीं। उन सनातन भगवान् विष्णुजीको देखकर हम सभीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २८-२९॥

परस्परं निरीक्षन्तः स्थितास्तस्मिन् वरासने।
ततश्चचाल तरसा विमानं वातरंहसा॥ ३०

सुधासमुद्रः सम्प्राप्तो मिष्टवारिमहोर्मिमान्।
यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः॥ ३१

मन्दारपारिजाताद्यैः पादपैरतिशोभितः।
नानास्तरणसंयुक्तो नानाचित्रविचित्रितः॥ ३२

मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः।
अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैः कुरुबकादिभिः॥ ३३

संवृतः सर्वतः सौम्यैः केतकीचम्पकैर्वृतः।
कोकिलारावसंघुष्टो दिव्यगन्धसमन्वितः॥ ३४

द्विरेफातिरणत्कारैरञ्जितः परमाद्भुतः।
तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यङ्कः सुमनोहरः॥ ३५

रत्नालिखचितोऽत्यर्थं नानारत्नविराजितः।
दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतः परिमण्डितः॥ ३६

नानास्तरणसंछन्न इन्द्रचापसमन्वितः।
पर्यङ्कप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वराङ्गना॥ ३७

रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
सुरक्तनयना कान्ता विद्युत्कोटिसमप्रभा॥ ३८

सुचारुवदना रक्तदन्तच्छदविराजिता।
रमाकोट्यधिका कान्त्या सूर्यबिम्बनिभाखिला॥ ३९

वरपाशाङ्कुशाभीष्टधरा श्रीभुवनेश्वरी।
अदृष्टपूर्वा दृष्टा सा सुन्दरी स्मितभूषणा॥ ४०

तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको देखते हुए हमलोग अपने-अपने श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे रहे। इसके बाद वह विमान वायुसदृश द्रुत गतिसे पुनः चल पड़ा। कुछ ही क्षणोंमें वह विमान मधुर जलवाले, ऊँची-ऊँची लहरोंवाले, नानाविध जल-जन्तुओंसे युक्त तथा चंचल तरंगोंसे शोभायमान अमृत-सागरके तटपर पहुँच गया॥ ३०-३१॥

उस सागरके तटपर विभिन्न पंक्तियोंमें नाना प्रकारके विचित्र रंगोंवाले मन्दार एवं पारिजात आदि वृक्ष शोभायमान थे। वहाँ मोतियोंकी झालरें तथा अनेक प्रकारके पुष्पहार शोभामें वृद्धि कर रहे थे। समुद्रके सभी ओर अशोक, मौलसिरी, कुरबक आदि वृक्ष विद्यमान थे। उसके चारों ओर चित्ताकर्षक केतकी तथा चम्पक पुष्पोंकी वाटिकाएँ थीं, जो कोयलोंकी मधुर ध्वनियोंसे गुंजित तथा नाना प्रकारकी दिव्य सुगन्धिसे परिपूर्ण थीं॥ ३२—३४॥

उस स्थलपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। इस प्रकार वहाँका दृश्य परम अद्भुत था। उस द्वीपमें हमलोगोंने दूरसे ही विमानपर बैठे-बैठे शिवजीके आकारवाला एक मनोहर तथा अत्यन्त अद्भुत पलंग देखा, जो रत्नमालाओंसे जड़ा हुआ था और नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित था॥ ३५-३६॥

उस पलंगपर अनेक प्रकारके रंगोंवाली आकर्षक चादरें बिछी थीं, जिससे वह पलंग इन्द्रधनुषके समान सुशोभित हो रहा था। उस भव्य पलंगपर एक दिव्यांगना बैठी हुई थी॥ ३७॥

उस देवीने रक्तपुष्पोंकी माला तथा रक्ताम्बर धारण किया था। उसने अपने शरीरमें लाल चन्दनका लेप कर रखा था। लालिमापूर्ण नेत्रोंवाली वह देवी असंख्य विद्युत्‌की कान्तिसे सुशोभित हो रही थी। सुन्दर मुखवाली, रक्तिम अधरसे सुशोभित, लक्ष्मीसे करोड़ोंगुना अधिक सौन्दर्यशालिनी वह स्त्री अपनी कान्तिसे सूर्यमण्डलकी दीप्तिको भी मानो तिरस्कृत कर रही थी॥ ३८-३९॥

वर, पाश, अंकुश और अभय मुद्राको धारण करनेवाली तथा मधुर मुसकानयुक्त वे भगवती भुवनेश्वरी हमें दृष्टिगोचर हुईं; जिन्हें पहले कभी नहीं देखा गया था॥ ४०॥

ह्रींकारजपनिष्ठैस्तु पक्षिवृन्दैर्निषेविता।
अरुणा करुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना॥ ४१

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या मन्दस्मितमुखाम्बुजा।
उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिर्जिताम्भोजकुड्मला॥ ४२

नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता।
कनकाङ्गदकेयूरकिरीटपरिशोभिता॥ ४३

कनकच्छ्रीचक्रताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजा।
हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः॥ ४४

सखीवृन्दैः स्तुता नित्यं भुवनेशी महेश्वरी।
हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिः परिवेष्टिता॥ ४५

अनङ्गकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टिता।
देवी षट्कोणमध्यस्था यन्त्रराजोपरि स्थिता॥ ४६

दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिताभवन्।
केयं कान्ता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिताः॥ ४७

सहस्रनयना रामा सहस्रकरसंयुता।
सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम्॥ ४८

नाप्सरा नापि गन्धर्वी नेयं देवाङ्गना किल।
इति संशयमापन्नास्तत्र नारद संस्थिताः॥ ४९

तदासौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम्।
उवाचाम्बां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम्॥ ५०

एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः।
महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया॥ ५१

दुर्ज्ञेयाल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया।
इच्छा परात्मनः कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी॥ ५२

ह्रींकार बीजमन्त्रका जप करनेवाले पक्षियोंका समुदाय उनकी सेवामें निरन्तर रत था। नवयौवनसे सम्पन्न तथा अरुण आभावाली वे कुमारी साक्षात् करुणाकी मूर्ति थीं॥ ४१॥

वे सभी प्रकारके शृंगार एवं परिधानोंसे सुसज्जित थीं और उनके मुखारविन्दपर मन्द मुसकान विराजमान थी। उनके उन्नत वक्षःस्थल कमलकी कलियोंसे भी बढ़कर शोभायमान हो रहे थे। नानाविध मणियोंसे जटित आभूषणोंसे वे अलंकृत थीं। स्वर्णनिर्मित कंकण, केयूर और मुकुट आदिसे वे सुशोभित थीं। स्वर्णनिर्मित श्रीचक्राकार कर्णफूलसे सुशोभित उनका मुखारविन्द अतीव दीप्तिमान् था। उनकी सखियोंका समुदाय 'हृल्लेखा' तथा 'भुवनेशी' नामोंका सतत जप कर रहा था और अन्य सखियाँ उन भुवनेशी महेश्वरीकी अनवरत स्तुति कर रही थीं। 'हृल्लेखा' आदि देवकन्याओं तथा 'अनंगकुसुमा' आदि देवियोंसे वे घिरी हुई थीं। वे षट्कोणके मध्यमें यन्त्रराजके ऊपर विराजमान थीं॥ ४२—४६॥

उन भगवतीको देखकर वहाँ स्थित हम सभी आश्चर्यचकित हो गये और कुछ देरतक वहीं ठहरे रहे। हमलोग यह नहीं जान पाये कि वे सुन्दरी कौन हैं और उनका क्या नाम है?॥ ४७॥

दूरसे देखनेपर वे भगवती हजार नेत्र, हजार मुख और हजार हाथोंसे युक्त अति सुन्दर लग रही थीं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है॥ ४८॥

हे नारद! हम सोचने लगे कि ये न तो अप्सरा, न गन्धर्वी और न देवांगना ही दीखती हैं, तो फिर ये कौन हो सकती हैं? हम इसी संशयमें पड़कर वहाँ खड़े रहे॥ ४९॥

तब उन सुन्दर हासवाली देवीको देखकर भगवान् विष्णुने अपने अनुभवसे मनमें निश्चित करके हमसे कहा—ये साक्षात् भगवती जगदम्बा हम सबकी कारणस्वरूपा हैं। ये ही महाविद्या, महामाया, पूर्णा तथा शाश्वत प्रकृतिरूपा हैं॥ ५०-५१॥

अल्प बुद्धिवाले गम्भीर आशयवाली इन भगवतीको सम्यक् रूपसे नहीं जान सकते, केवल योगमार्गसे ही ये ज्ञेय हैं। ये देवी परमात्माकी इच्छास्वरूपा तथा नित्यानित्य-स्वरूपिणी हैं॥ ५२॥

दुराराध्याल्पभाग्यैश्च देवी विश्वेश्वरी शिवा।
वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी॥ ५३

एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये।
लिङ्गानि सर्वजीवानां स्वशरीरे निवेश्य च॥ ५४

सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ।
विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात्॥ ५५

दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगन्धानुलेपनाः।
परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतां ब्रह्मशङ्करौ॥ ५६

धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म साम्प्रतम्।
यदत्र दर्शनं प्राप्तं भगवत्याः स्वयं त्विदम्॥ ५७

तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम्।
अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात्॥ ५८

पश्यन्ति पुण्यपुञ्जा ये ये वदान्यास्तपस्विनः।
रागिणो नैव पश्यन्ति देवीं भगवतीं शिवाम्॥ ५९

मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसङ्गता।
ब्रह्माण्डं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने॥ ६०

द्रष्टासौ दृश्यमखिलं ब्रह्माण्डं देवताः सुरौ।
तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा॥ ६१

क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रम्भाद्याः सुरयोषितः।
लक्षांशेन तुलामस्या न भवामः कथञ्चन॥ ६२

सैषा वराङ्गना नाम वै दृष्टा या महार्णवे।
बालभावे महादेवी दोलयन्तीव मां मुदा॥ ६३

ये विश्वेश्वरी कल्याणी भगवती अल्पभाग्यवाले प्राणियोंके लिये दुराराध्य हैं। ये वेदजननी विशालनयना जगदम्बा सबकी आदिस्वरूपा ईश्वरी हैं॥ ५३॥

ये भगवती प्रलयावस्थामें समग्र विश्वका संहार करके सभी प्राणियोंके लिंगरूप शरीरको अपने शरीरमें समाविष्ट करके विहार करती हैं॥ ५४॥

हे देवो! ये भगवती इस समय सर्वबीजमयी देवीके रूपमें विराजमान हैं। देखिये, इनके समीप करोड़ों विभूतियाँ क्रमसे स्थित हैं॥ ५५॥

हे ब्रह्मा एवं शंकरजी! देखिये, दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत तथा दिव्य गन्धानुलेपसे युक्त ये सभी विभूतियाँ इन भगवतीकी सेवामें मनोयोगसे संलग्न हैं॥ ५६॥

हमलोग धन्य, सौभाग्यशाली तथा कृतकृत्य हैं, जो कि हमें इस समय यहाँ भगवतीका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ॥ ५७॥

पूर्वकालमें हमलोगोंने बड़े प्रयत्नसे जो तपस्या की थी, उसीका यह उत्तम परिणाम है; अन्यथा भगवती हमलोगोंको स्नेहपूर्वक दर्शन कैसे देतीं?॥ ५८॥

जो उदार हृदयवाले पुण्यात्मा तथा तपस्वीलोग हैं, वे ही इनके दर्शन प्राप्त करते हैं, किंतु विषयासक्तलोग इन कल्याणमयी भगवतीके दर्शनसे सर्वथा वंचित रहते हैं॥ ५९॥

ये ही मूलप्रकृतिस्वरूपा भगवती परमपुरुषके सहयोगसे ब्रह्माण्डकी रचना करके परमात्माके समक्ष उसे उपस्थित करती हैं॥ ६०॥

हे देवो! यह पुरुष द्रष्टामात्र है और समस्त ब्रह्माण्ड तथा देवतागण दृश्यस्वरूप हैं। महामाया, कल्याणमयी, सर्वव्यापिनी सर्वेश्वरी ये भगवती ही इन सबका मूल कारण हैं॥ ६१॥

कहाँ मैं, कहाँ सभी देवता और कहाँ रम्भा आदि देवांगनाएँ! हम सभी इन भगवतीकी तुलनामें उनके लक्षांशके बराबर भी नहीं हैं॥ ६२॥

ये वे ही महादेवी जगदम्बा हैं, जिन्हें हमलोगोंने प्रलयसागरमें देखा था और जो बाल्यावस्थामें मुझे प्रसन्नतापूर्वक पालनेमें झुला रही थीं॥ ६३॥

शयानं वटपत्रे च पर्यङ्के सुस्थिरे दृढे।
पादाङ्गुष्ठं करे कृत्वा निवेश्य मुखपङ्कजे॥ ६४

लेलिहन्तञ्च क्रीडन्तमनेकैर्बालचेष्टितैः।
रममाणं कोमलाङ्गं वटपत्रपुटे स्थितम्॥ ६५

गायन्ती दोलयन्ती च बालभावान्मयि स्थिते।
सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव॥ ६६

कामं नो जननी सैषा शृणु तं प्रवदाम्यहम्।
अनुभूतं मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता॥ ६७

उस समय मैं एक सुस्थिर तथा दृढ़ वटपत्ररूपी पलंगपर सोया हुआ था और अपने पैरका अँगूठा अपने मुखारविन्दमें डालकर चूस रहा था। अत्यन्त कोमल अंगोंवाला मैं उस समय अनेक बालसुलभ चेष्टाएँ करता हुआ उसी वटपत्रके दोनेमें पड़े-पड़े खेल रहा था॥ ६४-६५॥

उस समय गाती हुई ये भगवती बालभावमें स्थित मुझे झूला झुलाती थीं। इन्हें देखकर मुझे यह सुनिश्चित ज्ञान हो गया है कि वे ही यहाँ विराजमान हैं॥ ६६॥

निश्चितरूपसे ये भगवती मेरी जननी हैं। आप सुनें, मुझे पूर्व अनुभवकी स्मृति जग गयी है, जो मैं आपसे कहता हूँ॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विमानस्थैर्हरादिभिर्देवीदर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

भगवतीके चरणनखमें त्रिदेवोंको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन होना, भगवान् विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति करना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः।
वयं गच्छेम पार्श्वेऽस्याः प्रणमन्तः पुनः पुनः॥ १

सेयं वरा महामाया दास्यत्येषा वरान् हि नः।
स्तुवामः सन्निधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणान्तिके॥ २

यदि नो वारयिष्यन्ति द्वारस्थाः परिचारकाः।
पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः॥ ३

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ।
जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च॥ ४

ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः।
उत्तीर्य निर्गता द्वारि शङ्कमाना मनस्यलम्॥ ५

द्वारस्थान् वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा।
स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जनार्दन भगवान् विष्णुने पुनः कहा—हमलोग बार-बार प्रणाम करते हुए उनके पास चलें। वे वरदायिनी महामाया हमें अवश्य वरदान देंगी। अतः निर्भय होकर हमें उनके चरणोंके निकट चलकर उनकी स्तुति करनी चाहिये। यदि उनके द्वारपाल हमें वहाँ रोकेंगे तो हमलोग ध्यानपूर्वक वहीं बैठकर देवीकी स्तुति करने लगेंगे॥ १—३॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर मैं तथा शिव—हम दोनों प्रसन्नतासे गद्गद होकर शीघ्र उनके निकट जानेको उत्सुक हो गये। विष्णुसे 'ठीक है'—ऐसा कहकर हम तीनों शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क करते हुए भगवतीके द्वारपर ज्यों ही पहुँचे, त्यों ही द्वारपर स्थित हम सभीको देखकर मन्द मुसकान करके उन भगवतीने हम तीनोंको स्त्रीरूपमें परिणत कर दिया॥ ४—६॥

वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः।
विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्सन्निधिं पुनः॥ ७

सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपांश्चरणान्तिके।
व्यलोकयत चार्वङ्गी प्रेमसम्पूर्णया दृशा॥ ८

प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम्।
परस्परं लोकयन्तः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः॥ ९

पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणिविभूषितम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं त्रयः॥ १०

काश्चिद्रक्ताम्बरास्तत्र सहचर्यः सहस्रशः।
काश्चिन्नीलाम्बरा नार्यस्तथा पीताम्बराः शुभाः॥ ११

देव्यः सर्वाः शुभाकारा विचित्राम्बरभूषणाः।
विरेजुः पार्श्वतस्तस्याः परिचर्यापराः किल॥ १२

जगुश्च ननृतुश्चान्याः पर्युपासन्त ताः स्त्रियः।
वीणामारुतवाद्यानि वादयन्त्यो मुदान्विताः॥ १३

शृणु नारद वक्ष्यामि यद् दृष्टं तत्र चाद्भुतम्।
नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपङ्कजे॥ १४

ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजङ्गमम्।
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः॥ १५

वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः।
पर्वताः सागरा नद्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ १६

विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्राङ्गदस्तथा।
नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहाहूहूस्तथैव च॥ १७

अश्विनौ वसवः साध्याः सिद्धाश्च पितरस्तथा।
नागाः शेषादयः सर्वे किन्नरोरगराक्षसाः॥ १८

वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः।
सर्वं तदखिलं दृष्टं नखमध्यस्थितं च नः॥ १९

मज्जन्मपङ्कजं तत्र स्थितोऽहं चतुराननः।
शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकैटभौ॥ २०

हमलोग नाना प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत रूपवती युवती बन गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर उन महामाया भगवतीके पास पुनः गये॥ ७॥

स्त्रीके वेषमें हमलोगोंको अपने चरणोंके निकट देखकर अत्यन्त मनोहर रूपवाली उन देवीने हमलोगोंके ऊपर कृपादृष्टि डाली॥ ८॥

उस समय महामाया भगवतीको प्रणाम करके स्त्री-वेषधारी तथा दिव्य वस्त्राभरण धारण किये हम तीनों परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके सामने खड़े रहे॥ ९॥

विविध प्रकारके मणिजटित एवं करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान देवीके पादपीठको देखते हुए हम तीनों वहीं स्थित रहे॥ १०॥

उन महादेवीकी हजारों सेविकाओंमेंसे कुछने रक्त वस्त्र, कुछने नीले वस्त्र और कुछने सुन्दर पीत वस्त्र धारण कर रखे थे॥ ११॥

वहाँ उपस्थित सभी देवियाँ सुन्दर स्वरूपकी थीं और विचित्र वस्त्र एवं आभूषणोंसे सुसज्जित थीं। वे सब जगदम्बाकी विभिन्न सेवाओंमें तत्पर थीं॥ १२॥

उनमेंसे कुछ गा रही थीं, कुछ नाच रही थीं और कुछ स्त्रियाँ हर्षके साथ वीणा तथा मुखवाद्य बजाती हुई अन्य सेवाओंमें संलग्न थीं॥ १३॥

हे नारदजी! वहाँ मैंने भगवतीके चरणकमलके नखरूपी दर्पणमें जो अद्भुत दृश्य देखा, उसे बताता हूँ, आप सुनें। वहाँ मुझे समस्त स्थावर-जंगमात्मक ब्रह्माण्ड, मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शिव, वायु, अग्नि, यम, सूर्य, वरुण, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्रांगद, नारद, तुम्बुरु, हाहा-हूहू, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, साध्य, सिद्धगण, पितर, शेष आदि नाग, सभी किन्नर, उरग और राक्षसगण दिखायी दे रहे थे॥ १४—१८॥

वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास—इन सबको हमने उनके पद-नखमें विराजमान देखा। उसीमें मेरा जन्मस्थान कमल भी था और मैं चतुरानन उस कमलकोशमें बैठा हुआ था। मधु-कैटभ नामके दोनों दानव तथा शेषशायी महाविष्णु भी उसीमें विराजमान थे॥ १९-२०॥

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम्।
विस्मितोऽहं ततो वीक्ष्य किमेतदिति शङ्कितः॥ २१

विष्णुश्च विस्मयाविष्टः शङ्करश्च तथा स्थितः।
तां तदा मेनिरे देवीं वयं विश्वस्य मातरम्॥ २२

ततो वर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रान्तं प्रपश्यतः।
सुधामये शिवे द्वीपे विहारं विविधं तदा॥ २३

सख्य इव तदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान्।
देव्यः प्रमुदिताकारा नानाभरणमण्डिताः॥ २४

वयमप्यतिरम्यत्वाद् बभूविम विमोहिताः।
प्रहृष्टमनसः सर्वे पश्यन्भावान्मनोरमान्॥ २५

एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्।
तुष्टाव भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः॥ २६

श्रीभगवानुवाच

नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः।
कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमो नमः॥ २७

सच्चिदानन्दरूपिण्यै संसारारणये नमः।
पञ्चकृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमो नमः॥ २८

सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमो नमः।
अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमो नमः॥ २९

ज्ञातं मयाखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं
त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा
ज्ञाताधुना सकललोकमयीति नूनम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार परमेश्वरीके चरण-कमलके नखमें स्थित यह सारा दृश्य मुझे दिखायी दिया, जिसे देखकर मैं चकित रह गया और मन-ही-मन सोचने लगा—'यह क्या है?'॥ २१॥

मेरे ही समान विष्णु और शिव भी वहाँ आश्चर्य-चकित होकर खड़े थे। उस समय हम तीनोंने समझ लिया कि समस्त जगत्‌की जननी ये ही महादेवी हैं॥ २२॥

इस प्रकार अमृतमय एवं कल्याणमय उस द्वीपमें अनेक प्रकारके अद्भुत दृश्य देखते हुए हमारे सौ वर्ष व्यतीत हो गये॥ २३॥

वहाँकी प्रसन्नवदना एवं विचित्र अलंकारोंसे अलंकृत देवियाँ हम तीनोंको अपनी सखियाँ समझती थीं और हमलोग भी उनके स्नेहपूर्ण सद्व्यवहारसे मुग्ध थे तथा उनके मनोरम भावोंको देखकर अतीव प्रसन्न थे॥ २४-२५॥

एक बार नारीरूपमें स्थित भगवान् विष्णु महादेवी भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी स्तुति करने लगे—॥ २६॥

श्रीभगवान् बोले—प्रकृति एवं विधात्रीदेवीको मेरा निरन्तर नमस्कार है। कल्याणी, कामप्रदा, वृद्धि तथा सिद्धिदेवीको बार-बार नमस्कार है। सच्चिदानन्द-रूपिणी तथा संसारकी योनिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। आप पंचकृत्य* विधात्री तथा श्रीभुवनेश्वरीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २७-२८॥

समस्त संसारकी एकमात्र अधिष्ठात्री तथा कूटस्थरूपा देवीको बार-बार नमस्कार है। अर्धमात्राकी अर्थभूता एवं हृल्लेखादेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २९॥

हे जननि! आज मैंने जान लिया कि यह समस्त विश्व आपमें समाहित है तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि एवं संहार भी आप ही करती हैं। इस ब्रह्माण्डके निर्माणमें आपकी विस्तृत प्रभाववाली शक्ति ही मुख्य हेतु है, अतः मुझे यह ज्ञात हो गया कि आप ही सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हैं। इस सत् एवं

---

* सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह।

विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं
सन्दर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले।
तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च
भासीन्द्रजालमिव नः किल रञ्जनाय॥ ३१

न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति
व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थितासि।
शक्तिं विना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो
वम्भण्यते जननि बुद्धिमता जनेन॥ ३२

प्रीणासि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः
स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि।
अत्स्येव देवि तरसा किल कल्पकाले
को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य॥ ३३

त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां
लोकाश्च ते सुवितताः खलु दर्शिता वै।
नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं
यद्दर्शनं तव भवानि महाप्रभावम्॥ ३४

नाहं भवो न च विरिञ्चि विवेद मातः
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम्।
कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे
ह्यस्मिन्भवानि रचिते रचनाकलापे॥ ३५

अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव
दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न सन्ति किं ते
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम्॥ ३६

याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव
संदर्शनं तव पदाम्बुजयोः सदैव॥ ३७

असत् सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करके उस चिद्ब्रह्म पुरुषको यथासमय आप इसे समग्ररूपसे प्रस्तुत करती हैं। अपनी प्रसन्नताके लिये सोलह तत्त्वों तथा महदादि अन्य सात तत्त्वोंके साथ आप हमें इन्द्रजालके समान प्रतीत होती हैं॥ ३०-३१॥

हे जननि! आपसे रहित यहाँ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती, आप ही समस्त जगत्को व्याप्त करके स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् पुरुषोंका कथन है कि आपकी शक्तिके बिना वह परमपुरुष कुछ भी करनेमें असमर्थ है॥ ३२॥

आप अपने कृपाप्रभावसे संसारका कल्याण करती हैं। हे देवि! आप ही अपने तेजसे सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती हैं तथा प्रलयकालमें इसका शीघ्र ही संहार कर डालती हैं। हे देवि! आपके वैभवके लीला-चरित्रको भलीभाँति जाननेमें कौन समर्थ है?॥ ३३॥

हे जननि! मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंसे आपने हमारी रक्षा की है, आपने ही हमलोगोंको अपने अनेक विस्तृत लोक दिखाये तथा अपने-अपने भवनमें हमें परमानन्दका अनुभव कराया। हे भवानि! यह आपके दर्शनका ही महान् प्रभाव है॥ ३४॥

हे माता! जब मैं (विष्णु), शिव तथा ब्रह्मा भी आपके अपूर्व चरित्रको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, तब अन्य कोई कैसे जान सकेगा? हे महिमामयी भवानि! आपके रचे हुए इस ब्रह्माण्ड-प्रपंचमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं!॥ ३५॥

हमलोगोंने आपके इस लोकमें अद्भुत प्रभाववाले दूसरे विष्णु, शिव तथा ब्रह्माको देखा है। हे देवि! क्या वे देवता अन्यान्य लोकोंमें नहीं होंगे? हमलोग आपकी इस अद्भुत महिमाको कैसे जान सकते हैं?॥ ३६॥

हे जगदम्ब! हमलोग आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर यही याचना करते हैं कि आपका यह दिव्य स्वरूप हमारे हृदयमें सदा विराजमान रहे, हमारे मुखसे सदा आपका ही नाम निकले और हमारे नेत्र प्रतिदिन आपके चरणकमलोंके दर्शन पाते रहें॥ ३७॥

भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं
त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषावयोरविरता किल देवि भूया-
द्व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये॥ ३८

त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं
सर्वज्ञता परिसमाप्तिनितान्तभूमिः।
किं पामरेण जगदम्ब निवेदनीयं
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात्॥ ३९

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च
संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै
कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः॥ ४०

धात्री धराधरसुते न जगद् बिभर्ति
आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति।
सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते
त्वं सर्वमेतदखिलं विरजा विभासि॥ ४१

ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावा-
त्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः।
केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा॥ ४२

त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं
जानेऽहमद्य तव सन्निधिगः सदैव।
नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो
विश्वात्मधीरिति तमःप्रकृतिः सदैव॥ ४३

विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां
शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव।
त्वं कीर्तिकान्तिकमलामलतुष्टिरूपा
मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके॥ ४४

हे माता! आपकी यह भावना हमारे प्रति सर्वदा बनी रहे कि ये सब हमारे सेवक हैं और हम भी सर्वथा आपको मनसे अपनी स्वामिनी समझते रहें। हे आर्ये! इस प्रकार हमारा और आपका माता-पुत्रका अनन्य सम्बन्ध सर्वदा बना रहे॥ ३८॥

हे जगदम्बिके! आप समस्त ब्रह्माण्ड-प्रपंचको पूर्ण रूपसे जानती हैं; क्योंकि जहाँ सर्वज्ञताकी समाप्ति होती है, उसकी अन्तिम सीमा आप ही हैं। हे भवानि! मैं पामर कह ही क्या सकता हूँ? आपको जो उचित लगे, आप वह करें; क्योंकि सब कुछ तो आपहीके संकेतपर होता है॥ ३९॥

जगत्में ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं, किंतु हे देवि! क्या यह बात सत्य है? हे अजे! सच्चाई तो यह है कि आपकी इच्छासे तथा आपसे शक्ति प्राप्तकर हम अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ ४०॥

हे गिरिजे! यह पृथ्वी इस जगत्को धारण नहीं करती है अपितु आपकी आधारशक्ति ही इस समस्त जगत्को धारण करती है। हे वरदे! भगवान् सूर्य भी आपके ही आलोकसे युक्त होकर प्रकाशमान हैं। इस प्रकार आप विरजारूपसे इस सम्पूर्ण जगत्के रूपमें सुशोभित हो रही हैं॥ ४१॥

ब्रह्मा, मैं (विष्णु) तथा शंकर हम सब आपके ही प्रभावसे उत्पन्न होते हैं। जब हम नित्य नहीं हैं तो फिर इन्द्र आदि प्रमुख देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? समस्त चराचर जगत्की जननी तथा सनातन प्रकृतिरूपा आप ही नित्य हैं॥ ४२॥

हे भवानि! आपकी सन्निधिमें आनेपर आज मुझे ज्ञात हो गया कि आप मुझ पुराणपुरुषपर सर्वदा दयाभाव बनाये रखती हैं; अन्यथा मैं अपनेको सर्वव्यापी, आदिरहित, निष्काम, ईश्वर तथा विश्वात्मा मान बैठता और अहंकारयुक्त होकर सदाके लिये तमोगुणी प्रकृतिवाला हो जाता॥ ४३॥

आप निश्चय ही सदासे बुद्धिमान् पुरुषोंकी विद्या तथा शक्तिशाली पुरुषोंकी शक्ति हैं। आप इस मनुष्य-लोकमें कीर्ति, कान्ति, कमला, निर्मला तथा तुष्टिस्वरूपा हैं तथा प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली विरक्तिस्वरूपा हैं॥ ४४॥

गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव
स्वाहा स्वधा भगवती सगुणार्धमात्रा।
आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्या
सञ्जीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम्॥ ४५

मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं
तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम्।
अंशा अनादिनिधनस्य किलानघस्य
पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः॥ ४६

जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं
त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धम्।
नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरङ्गे
कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा॥ ४७

त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धे-
स्त्वामम्बिके सततमेमि महार्तिदे च।
रागादिभिर्विरचिते वितथे किलान्ते
मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले॥ ४८

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।
सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे॥ ४९

आप वेदोंकी प्रथम कला गायत्री हैं। आप ही स्वाहा, स्वधा, सगुणा तथा अर्धमात्रा भगवती हैं। आपने ही देवताओं और पूर्वजोंके संरक्षणके लिये आगम तथा निगमकी रचना की है॥ ४५॥

जिस प्रकार पूर्ण महासमुद्रकी विस्तृत तरंगें उस समुद्रका ही अंश होती हैं, उसी प्रकार आदि-अन्तसे हीन निष्कलंक ब्रह्मके जीवरूपी अंशोंको मोक्ष प्राप्त करानेके उद्देश्यसे ही आपने सम्पूर्ण जगत्-प्रपंचका निर्माण किया है॥ ४६॥

जीवको जब यह विदित हो जाता है कि सम्पूर्ण विश्वप्रपंच आपहीका कृत्य है, तब अमित प्रभाववाली आप उसका उपसंहार कर देती हैं और अपने द्वारा किये गये मिथ्या, किंतु रहस्यपूर्ण कार्यपर उसी प्रकार प्रमुदित होती हैं जिस प्रकार मनोहारी नाटककी रचनापर सफल नट सन्तुष्ट होता है॥ ४७॥

हे अम्बिके! आप ही इस मोहमय भव-सागरसे मेरी रक्षा कर सकती हैं। राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके कारण अत्यन्त कष्टदायक तथा दुःखप्रद मिथ्या अन्तकालमें मेरी रक्षा कीजियेगा, मैं आपके शरणागत हूँ॥ ४८॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महाविद्ये! मैं आपके चरणोंमें नमन करता हूँ। हे सर्वार्थदात्री शिवे! आप ज्ञानरूपी प्रकाशसे मेरे हृदयको आलोक प्रदान कीजिये॥ ४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विष्णुना कृतं देवीस्तोत्रं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मा और शिवजीका भगवतीकी स्तुति करना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने।
उवाच शंकरः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः॥ १

शिव उवाच

यदि हरिस्तव देवि विभावज-
स्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः।
किमहमत्र तवापि न सद्गुणः
सकललोकविधौ चतुरा शिवे॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवदेव जनार्दन भगवान् विष्णुके स्तुति कर लेनेके उपरान्त भगवान् शिवशंकर विनीतभावसे देवीके सम्मुख स्थित होकर कहने लगे॥ १॥

शिवजी बोले—हे देवि! यदि भगवान् विष्णु आपके प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए तथा उनके बाद ब्रह्माजी भी आपसे उत्पन्न हुए तो क्या मुझ तमोगुणीकी आपसे उत्पत्ति नहीं हुई है? हे शिवे! आप तो समग्र लोककी रचनामें चतुर हैं॥ २॥

त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा
खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः।
जननि तानि पुनः करणानि च
त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथ हंकृतिः॥ ३
न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा
हरिहराजकृतं निखिलं जगत्।
तव कृतास्त्रय एव सदैव ते
विरचयन्ति जगत्सचराचरम्॥ ४
अवनिवायुखवह्निजलादिभिः
सविषयैः सगुणैश्च जगद् भवेत्।
यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं
प्रभवतीति तवाम्ब कलामृते॥ ५
भवसि सर्वमिदं सचराचरं
त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम्।
विविधवेषविलासकुतूहलै-
र्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि॥ ६
सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः
कमलभूश्च भवाम यदाऽम्बिके।
तव पदाम्बुजपांसुपरिग्रहं
समधिगम्य तदा ननु चक्रिम॥ ७
यदि दयार्द्रमना न सदाम्बिके
कथमहं विहितश्च तमोगुणः।
कमलजश्च रजोगुणसम्भवः
सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः॥ ८
यदि न ते विषमा मतिरम्बिके
कथमिदं बहुधा विहितं जगत्।
सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं
बहुधनैरधनैश्च समाकुलम्॥ ९
तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः
प्रकटनावनसंहरणेषु वै।
हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात्त्वया
विरचितास्त्रिजगतां किल कारणम्॥ १०
परिचितानि मया हरिणा तथा
कमलजेन विमानगतेन वै।
पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा
कथय केन भवानि नवानि च॥ ११

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि आप ही हैं। हे माता! आप ही इन्द्रियरूपिणी तथा आप ही बुद्धि, मन और अहंकारस्वरूपा हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शंकरने अखिल जगत्की रचना की है—ऐसा जो लोग अन्यथा बोलते हैं, वे कुछ भी नहीं जानते। आपने ही सदासे इन तीनोंकी सृष्टि की है, जो [आपकी ही प्रेरणासे] चराचर जगत्का सृजन-पालन-संहार करते हैं॥ ४॥

यदि पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि, जल आदि महाभूतोंके गुणों तथा विषयोंसे ही जगत्का निर्माण सम्भव हो तो भी हे अम्ब! आपकी [चिन्मयी] कलाके बिना वह कैसे व्यक्त हो सकता है?॥ ५॥

हे अम्ब! आपने ब्रह्मा, विष्णु और महेशद्वारा निर्मित इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है। आप अनेक प्रकारके वेष धारण करके कुतूहलपूर्ण क्रीड़ाएँ करती हुई यथेच्छ विहार करती हैं और पुनः शान्त भी हो जाती हैं॥ ६॥

हे अम्बिके! जब मैं (शिव), विष्णु और ब्रह्मा सृष्टिकालमें इस ब्रह्माण्डकी रचना करनेकी इच्छा करते हैं, तब निश्चित ही आपके चरणकमलोंका रजकण प्राप्त करके ही हमलोग अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं॥ ७॥

हे अम्बिके! यदि आप सदा दयालु चित्तवाली न होतीं तो मैं तमोगुणयुक्त, ब्रह्मा रजोगुणसम्पन्न और विष्णु सत्त्वगुणयुक्त कैसे बनते?॥ ८॥

हे अम्बिके! यदि आपकी वैविध्यपूर्ण बुद्धि न होती तो यह संसार इतना विविधतापूर्ण कैसे होता, जिसमें मन्त्री, राजा, सेवक, धनी और निर्धन भरे पड़े हैं॥ ९॥

इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और संहार करनेमें आपके तीनों गुण (सत्-रज-तम) ही सर्वथा समर्थ हैं; फिर भी आपने हम ब्रह्मा, विष्णु और महेशको क्रमशः इन कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये तीनों लोकोंके कारणरूपमें उत्पन्न किया है॥ १०॥

विमानमें बैठा हुआ मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु—हमलोग इन भुवनोंसे पूर्णरूपेण परिचित हो गये हैं। हे भवानि! मार्गमें स्थित इन नवीन भुवनोंको किसने बनाया? इसे आप बतायें॥ ११॥

सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके
स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम्।
रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा
तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे॥ १२

जननि देहि पदाम्बुजसेवनं
युवतिभावगतानपि नः सदा।
पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजा-
द्विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम्॥ १३

न रुचिरस्ति ममाम्ब पदाम्बुजं
तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम्।
निवसितुं नरदेहमवाप्य च
त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै॥ १४

सुदति नास्ति मनागपि मे रति-
र्युवतिभावमवाप्य तवान्तिके।
पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं
तव पदं न यदीक्षणगोचरम्॥ १५

त्रिभुवनेषु भवत्वियमम्बिके
मम सदैव हि कीर्तिरनाविला।
युवतिभावमवाप्य पदाम्बुजं
परिचितं तव संसृतिनाशनम्॥ १६

भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं
क इह वाञ्छति राज्यमकंटकम्।
त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां
न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम्॥ १७

तपसि ये निरता मुनयोऽमला-
स्तव विहाय पदाम्बुजपूजनम्।
जननि ते विधिना किल वञ्चिताः
परिभवो विभवे परिकल्पितः॥ १८

न तपसा न दमेन समाधिना
न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा।
तव पदाब्जपरागनिषेवणा-
द्भवति मुक्तिरजे भवसागरात्॥ १९

हे जगदम्बिके! आप अपनी कलासे जगत्की रचना तथा पालन करती हैं और जब चाहती हैं तब उसका संहार कर देती हैं। आप सदा अपने पति परमपुरुषको रमण कराती रहती हैं। हे शिवे! आपकी इस लीलाको हम नहीं जान सकते॥ १२॥

हे जननि! नारीभावको प्राप्त हमलोगोंको सदा अपने चरणकमलोंकी सेवा करनेका अवसर दें; क्योंकि कालान्तरमें पुनः पुंस्त्व प्राप्त होनेपर आपके चरणकमलोंसे पृथक् रहकर हमलोगोंको वह प्रत्यक्ष सुख कहाँ प्राप्त होगा!॥ १३॥

हे अम्ब! हे शिवे! आपके चरणकमलोंको त्यागकर यह नरदेह प्राप्त करके तीनों लोकोंका स्वामित्व प्राप्त करके भी समस्त लोकोंमें कहीं भी रहनेकी मेरी रुचि नहीं है—चाहे मुझे त्रिभुवनका स्वामित्व ही क्यों न मिल जाय॥ १४॥

हे सुदति! आपके सांनिध्यमें स्त्रीभावको प्राप्त कर लेनेपर अब पुरुषभावमें मेरी थोड़ी भी रुचि नहीं है। जिसे पाकर आपके चरणारविन्दके दर्शनका सौभाग्य न मिले, वह पुरुषता कैसे सुख प्रदान कर सकती है?॥ १५॥

हे अम्बिके! स्त्रीका रूप पाकर मैं भवबन्धनसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंसे परिचित हो गया हूँ। आपकी कृपासे तीनों लोकोंमें मेरा सुयश स्थिर रहे॥ १६॥

इस संसारमें ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके सांनिध्यका सेवन छोड़कर निष्कण्टक राज्य करना चाहेगा? क्योंकि जिसे आपके चरणकमलका सांनिध्य प्राप्त नहीं होता, उसके लिये क्षणांश भी युगके समान प्रतीत होता है॥ १७॥

हे जननि! जो शुद्ध चित्तवाले मुनि आपके चरण-कमलकी सेवा त्यागकर केवल तपश्चर्यामें लगे रहते हैं, वे निश्चितरूपसे विधाताके द्वारा ठगे गये हैं और अपनी हानिको ही लाभ समझते हैं॥ १८॥

हे अजे! आपके पदारविन्दके परागकी सेवासे जैसी मुक्ति इस संसार-सागरसे प्राप्त होती है, वैसी मुक्ति तपस्या, इन्द्रियदमन, समाधि तथा विभिन्न वेदविहित यज्ञोंसे भी नहीं होती॥ १९॥

कुरु दयां दयसे यदि देवि मां
कथय मन्त्रमनाविलमद्भुतम्।
समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं
सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम्॥ २०

प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया
तदधुना न विभाति नवाक्षरः।
कथय मां मनुमद्य भवार्णवा-
जननि तारय तारय तारके॥ २१

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुततेजसा।
उच्चचाराम्बिका मन्त्रं प्रस्फुटं च नवाक्षरम्॥ २२

तं गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह।
प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः शिवः॥ २३

जपन्नवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा।
बीजयुक्तं शुभोच्चारं शङ्करस्तस्थिवांस्तदा॥ २४

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा शङ्करं लोकशङ्करम्।
अवोचं तां महामायां संस्थितोऽहं पदान्तिके॥ २५

न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्नपटवो
यतस्ते नोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम्।
यदा स्वाहाभूता सकलमखहोमेषु विहिता
तदा त्वं सर्वज्ञा जननि खलु जाता त्रिभुवने॥ २६

कर्ताहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतं
कोऽन्योऽस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान्।
धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्मास्मि लोकातिगो
मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्वाभिवेशादिति॥ २७

हे देवि! यदि आप मेरे प्रति दयालु हैं तो मुझपर दया कीजिये और अपना निर्मल, अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ एवं विशद नवार्ण मन्त्र (**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**) मुझे प्रदान कीजिये, जिससे उसका निरन्तर जप करके मैं सर्वदाके लिये सुखी हो जाऊँ॥ २०॥

पूर्वजन्ममें मैंने नवार्ण मन्त्रकी दीक्षा पायी थी; परंतु वह मुझे अब स्मरण नहीं रह गया है। इसलिये हे तारके! हे जननि! आज पुनः वह मन्त्र मुझे प्रदान कीजिये और भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] अद्भुत तेजस्वी शिवजीके ऐसा कहनेपर जगदम्बाने स्पष्ट शब्दोंमें नवाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया। उस मन्त्रको ग्रहण करके शिवजी बहुत प्रसन्न हो गये और भगवतीके चरणोंमें प्रणाम करके वहींपर स्थित हो गये॥ २२-२३॥

उस समय सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ, मुक्तिप्रदायक तथा शुभ उच्चारणसे सम्पन्न उस बीजयुक्त नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए शंकरजी वहाँ विराजमान रहे॥ २४॥

संसारका कल्याण करनेवाले शिवजीको इस प्रकार बैठा देखकर मैं उन महामायाके चरणोंके समीप बैठ गया और उनसे कहने लगा॥ २५॥

हे जननि! वेद सभी लोगोंको धारण करनेवाली तथा सनातनी आप भगवतीकी कल्पना करनेमें अकुशल हैं—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि साधारण कार्योंमें उन्होंने आप भगवतीकी चर्चा नहीं की है। यदि वे आपको न जानते तो सभी यज्ञों तथा हवन-कार्योंमें आपको ही स्वाहादेवीके रूपमें प्रतिष्ठित कैसे करते? इसलिये आप तीनों लोकोंमें सर्वज्ञाके रूपमें विख्यात हुईं॥ २६॥

मैं स्रष्टा हूँ, मैं अत्यन्त अद्भुत सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका निर्माण करता हूँ, इस चराचर त्रिभुवनमें मुझसे बढ़कर समर्थ दूसरा पुरुष कौन है, मैं निस्सन्देह धन्य हूँ, मैं लोकोत्तर ब्रह्मा हूँ—इस मिथ्या अहंकारके कारण मैं सर्वदा इस विस्तृत संसारसागरमें निमग्न रहता हूँ; तथापि आज आपके चरण-कमलोंकी पराग-प्राप्तिके

अद्याहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै
धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते।
याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं
हित्वा मोहकृतं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु॥ २८

अतोऽहञ्च जातो विमुक्तः कथं स्यां
सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद्वै ।
तवाज्ञाकरः किङ्करोऽस्मीति नूनं
शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ॥ २९

न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति
प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम्।
यजन्तीह ये याजकाः स्वर्गकामा
न ते ते प्रभावं विदन्त्येव कामम्॥ ३०

त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं
विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम्।
अहं वेद्मि कोऽन्यो विवेदादिमाये
क्षमस्वापराधं त्वहङ्कारजं मे॥ ३१

श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः
प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै।
न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा
समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण॥ ३२

विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने
पदे मोहिता नाम ते संविहाय।
न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि
त्वमेवासि संसारमुक्तिप्रदा वै॥ ३३

परं तत्त्वविज्ञानमाद्यैर्जनैर्यै-
रजे चानुभूतं त्यजन्त्येव ते किम्।
निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं
शिवा चाम्बिका शक्तिरीशेति नाम॥ ३४

गर्वसे मैं वस्तुतः धन्य हो गया हूँ और आपकी कृपासे ही आज मैं यथातथ्यके ज्ञानमें निपुण हो गया हूँ। सांसारिक भयका नाश करनेमें दक्ष, मुक्तिदायिनी आप परमेश्वरीसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मोहनिर्मित महादुःखदायी भवबन्धनसे मुक्त करके आप मुझे अपनी भक्तिसे समन्वित कीजिये॥ २७-२८॥

आपसे ही निर्मित अद्भुत कमलसे मैं आविर्भूत हुआ हूँ और मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ, अतः मैं कैसे मुक्त हो सकूँगा? हे शिवे! इस भवसागरमें पड़े हुए मुझ मोहमग्नकी रक्षा कीजिये॥ २९॥

इस संसारमें जो लोग आपके सनातन पवित्र चरित्रको नहीं जानते, वे लोग मुझे ही ईश्वर कहते हैं और जो यज्ञकर्ता स्वर्गकी इच्छासे [इन्द्र आदि देवताओंका] यजन करते हैं, वे भी सर्वथा आपके प्रभावको नहीं जानते॥ ३०॥

हे आदिमाये! सर्वप्रथम सृष्टिको चार भागों [अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और पिण्डज—जरायुज]-में विभक्त करनेके लिये ही आपने मुझे ब्रह्माके पदपर बैठाया, परंतु [मैंने यह समझ लिया कि] मैं ही सब कुछ जानता हूँ, दूसरा कौन जान सकता है—मेरे इस अहंकारजन्य अपराधको आप क्षमा कीजिये॥ ३१॥

जो लोग अष्टांगयोगका आश्रय लेते हैं और समाधि लगाकर व्यर्थ श्रम करते हैं, वे अज्ञानी हैं। हे माता! वे यह नहीं जानते कि किसी भी बहाने आपके नामोच्चारणमात्रसे ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकती है॥ ३२॥

कुछ लोग (सांख्यवादी) तो आपके नामका आश्रय छोड़कर विमोहित हो तत्त्वोंकी संख्याके फेरमें पड़ जाते हैं; क्या वे इस भवसागरमें मूर्ख नहीं हैं? हे भवानि! संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली तो आप ही हैं॥ ३३॥

हे अजे! जिन विष्णु-शिव आदिने परम तत्त्वज्ञानका अनुभव कर लिया है, वे क्या आधे निमेषमात्रके लिये भी आपके पवित्र चरित्र तथा शिवा, अम्बिका, शक्ति, ईश्वरी आदि नामोंको विस्मृत करते हैं?॥ ३४॥

न किं त्वं समर्थासि विश्वं विधातुं
दृशैवाशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम्।
विनोदार्थमेवं विधिं मां विधाया-
दिसर्गे किलेदं करोषीति कामम्॥ ३५

हरिः पालकः किं त्वयासौ मधोर्वा
तथा कैटभाद्रक्षितः सिन्धुमध्ये।
हरः संहृतः किं त्वयासौ न काले
कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः॥ ३६

न ते जन्म कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा
कुतः सम्भवस्ते न कोऽपीह वेद।
किलाद्यासि शक्तिस्त्वमेका भवानि
स्वतन्त्रैः समस्तैरतो बोधितासि॥ ३७

त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो
हरिस्त्रातुमम्ब त्वया संयुतश्च।
हरः सम्प्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः
क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः॥ ३८

यथाहं हरिः शङ्करः किं तथान्ये
न जाता न सन्तीह नो वाभविष्यन्।
न मुह्यन्ति केऽस्मिंस्तवात्यन्तचित्रे
विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम्॥ ३९

अकर्ता गुणस्पष्ट एवाद्य देवो
निरीहोऽनुपाधिः सदैवाकलश्च।
तथापीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं
सुसम्पश्यतीत्याहुरेवं विधिज्ञाः॥ ४०

दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः।
नान्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते॥ ४१

क्या आप विश्वकी रचना करनेमें समर्थ नहीं हैं? हे आदिसर्गे! आपके दृष्टिनिक्षेपमात्रसे ही यह सम्पूर्ण विश्व चार प्रकारके (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, पिण्डज—जरायुज) जीवोंके रूपमें शीघ्र ही विभक्त हुआ है। इस प्रकार मुझ ब्रह्माकी सृष्टि तो आप अपने मनोविनोदके लिये करके पुनः स्वतन्त्र भावसे जो चाहती हैं, वह करती हैं॥ ३५॥

[महाप्रलयकी स्थितिमें] यदि महासागरमें आप मधु-कैटभसे विष्णुकी रक्षा न करतीं तो वे सृष्टि-पालक कैसे बन पाते और यदि आप सबके संहारक शिवका संहार न करतीं तो वे मेरे भ्रूमध्यसे कैसे प्रकट होते?॥ ३६॥

आपका जन्म कहाँ हुआ—इसे न तो किसीने देखा और न सुना और कोई यह भी नहीं जान पाया कि आपकी उत्पत्ति कहाँ हुई? हे भवानि! एकमात्र आप ही आद्या शक्ति हैं, अतएव वेदोंने इसी रूपमें आपका वर्णन किया है॥ ३७॥

हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे प्रेरित होकर मैं सृष्टि करनेमें, विष्णु पालन करनेमें तथा शिव संहार करनेमें समर्थ होते हैं। आपकी शक्तिसे विलग रहकर अब हमलोग कुछ भी करनेमें सक्षम नहीं हैं॥ ३८॥

जिस प्रकार मैं (ब्रह्मा), विष्णु और शिव उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार क्या अन्य प्राणी उत्पन्न नहीं हुए, अथवा विद्यमान नहीं हैं या उत्पन्न नहीं होंगे? किंतु अल्प बुद्धिवाले प्राणियोंके लिये विवादास्पद तथा अत्यन्त विचित्र आपके इस लीलाविनोदसे कौन भ्रमित नहीं हो जाते?॥ ३९॥

वे आदिदेव ईश्वर अकर्ता, गुणोंसे स्फुट होनेवाले, निष्काम, उपाधिरहित तथा निर्गुण हैं, फिर भी वे आपके विस्तृत लीला-विनोदको भलीभाँति देखते रहते हैं—ज्ञानीजन ऐसा ही कहते हैं॥ ४०॥

मूर्त और अमूर्त भेदोंसे युक्त इस संसारमें आपसे पूर्व वे ही परमपुरुष थे; ज्ञान-तत्त्वपर सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर यह सर्वथा सिद्ध होता है कि अन्य तीसरा कोई भी नहीं है॥ ४१॥

न मिथ्या वेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन।
विरोधोऽयं मयात्यन्तं हृदये तु विशङ्कितः॥ ४२

एकमेवाद्वितीयं यद् ब्रह्म वेदा वदन्ति वै।
सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं सन्देहं विनिवर्तय॥ ४३

निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशङ्कितम्।
द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नं क्षुल्लकं मनः॥ ४४

स्वमुखेनापि सन्देहं छेत्तुमर्हसि मामकम्।
पुण्ययोगाच्च मे प्राप्ता सङ्गतिस्तव पादयोः॥ ४५

पुमानसि त्वं स्त्री वासि वद विस्तरतो मम।
ज्ञात्वाहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात्॥ ४६

[यह सिद्धान्त है कि] वेद-वाक्यको कभी मिथ्या नहीं समझना चाहिये। वेद ब्रह्मको अद्वितीय और एक बताते हैं; तो फिर आप क्या हैं और वह ब्रह्म क्या है? यह विरोध मेरे हृदयमें महान् शंका उत्पन्न करता है। आप मेरे इस सन्देहका निवारण करें॥ ४२-४३॥

इस प्रकार द्वैत-अद्वैतके इस विचारमें डूबा हुआ मेरा क्षुद्र मन निश्चितरूपसे शंकारहित नहीं हो पा रहा है॥ ४४॥

अब आप ही स्वयं अपने मुखसे मेरी इस शंकाका निवारण करनेकी कृपा करें; क्योंकि [अनेक जन्मोंके] पुण्ययोगसे ही आपके चरणोंका यह सांनिध्य मुझे प्राप्त हुआ है॥ ४५॥

आप पुरुष हैं अथवा स्त्री—यह मुझे विस्तारपूर्वक बतायें, जिससे मैं आप परम शक्तिको जानकर भवसागरसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
हरब्रह्मकृतस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवती जगदम्बिकाद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा 'महासरस्वती', 'महालक्ष्मी' और 'महाकाली' नामक अपनी शक्तियोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवको प्रदान करना

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा मया देवी विनयावनतेन च।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा॥ १

देव्युवाच

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥ २

आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः।
विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ३

एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम्।
द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके॥ ४

ब्रह्माजी बोले—अत्यन्त नम्र भावसे मेरे पूछनेपर वे आद्या भगवती मधुर वचन कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं; कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिभ्रमसे ही हम दोनोंमें भेद दिखायी पड़ता है॥ २॥

इसलिये हम दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको जो बुद्धिमान् जानता है, वह संसारके बन्धनसे छूटकर सदाके लिये मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

ब्रह्म अद्वितीय, एक, नित्य एवं सनातन है; केवल सृष्टि-रचनाके समय वह पुनः द्वैतभावको प्राप्त होता है॥ ४॥

यथाद्वीपस्तथोपाधेर्योगात्सञ्जायते द्विधा।
छायेवादर्शमध्ये वा प्रतिबिम्बं तथावयोः॥ ५

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज।
दृश्यादृश्यविभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा॥ ६

नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये।
सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः॥ ७

अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा॥ ८

कान्तिः शान्तिः पिपासा च निद्रा तन्द्रा जराजरा।
विद्याविद्या स्पृहा वाञ्छा शक्तिश्चाशक्तिरेव च॥ ९

वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृतानृता।
परा मध्या च पश्यन्ती नाड्योऽहं विविधाश्च याः॥ १०

किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि।
सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज॥ ११

एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे।
तस्मादहं विधे चास्मिन्सर्गे वै वितताभवम्॥ १२

नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम्।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्॥ १३

गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा।
वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी॥ १४

उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि तान्।
करोमि सर्वकार्याणि निमित्तं तं विधाय वै॥ १५

जले शीतं तथा वह्नावौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे।
निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथा तथा॥ १६

जिस प्रकार एक ही दीपक उपाधिभेदसे दो प्रकारका दिखायी देता है अथवा दर्पणमें पड़ती हुई छाया दर्पणभेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं और ब्रह्म एक होते हुए भी उपाधिभेदसे अनेक हो जाते हैं॥ ५॥

हे अज! जगत्का निर्माण करनेके लिये सृष्टिकालमें भेद दिखता ही है। तब दृश्यादृश्यकी प्रतीति होना अनिवार्य ही है; क्योंकि बिना दोके सृष्टि होना असम्भव है॥ ६॥

सृष्टिके प्रलयकालमें मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न ही नपुंसक हूँ। परंतु जब पुनः सृष्टि होने लगती है, तब पूर्ववत् यह भेद बुद्धिके द्वारा उत्पन्न हो जाता है॥ ७॥

मैं ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, सत्यासत्य वाणी, परा, मध्या, पश्यन्ती आदि वाणीके भेद और जो विभिन्न प्रकारकी नाड़ियाँ हैं—वह सब मैं ही हूँ॥ ८—१०॥

हे पद्मयोने! आप यह देखिये कि इस संसारमें मैं क्या नहीं हूँ और मुझसे पृथक् कौन-सी वस्तु है? इसलिये आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि सब कुछ मैं ही हूँ॥ ११॥

हे विधे! मेरे इन निश्चित रूपोंके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो मुझे बतायें, अतः इस सृष्टिमें सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूँ॥ १२॥

निश्चित ही मैं समस्त देवताओंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे विराजती हूँ तथा शक्तिरूपसे प्रकट होती हूँ और पराक्रम करती हूँ। मैं ही गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी शक्तिके रूपमें विद्यमान हूँ। सब कार्योंके उपस्थित होनेपर मैं उन देवताओंमें प्रविष्ट हो जाती हूँ और देवविशेषको निमित्त बनाकर सब कार्य सम्पन्न कर देती हूँ॥ १३—१५॥

जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें प्रकाश और चन्द्रमामें ज्योत्स्नाके रूपमें मैं ही यथेच्छ प्रकट होती हूँ॥ १६॥

मया त्यक्तं विधे नूनं स्पन्दितुं न क्षमं भवेत्।
जीवजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि॥ १७

अशक्तः शङ्करो हन्तुं दैत्यान्किल मयोज्झितः।
शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम्॥ १८

रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥ १९

पतितः स्खलितो भीतः शान्तः शत्रुवशं गतः।
अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः कोऽपि कथ्यते॥ २०

तद्विद्धि कारणं शक्तिर्यथा त्वं च सिसृक्षसि।
भविता च यदा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाखिलम्॥ २१

तथा हरिस्तथा शम्भुस्तथेन्द्रोऽथ विभावसुः।
शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरुणः पवनस्तथा॥ २२

धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तियुक्ता यदा भवेत्।
अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे॥ २३

तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः।
मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम्॥ २४

जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम्।
पवनं स्तम्भयाम्यद्य यदिच्छामि तथाचरम्॥ २५

तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदापि कमलोद्भव।
असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन॥ २६

कदाचित्प्रागभावः स्यात्प्रध्वंसाभाव एव वा।
मृत्पिण्डेषु कपालेषु घटाभावो यथा तथा॥ २७

हे विधे! इस संसारका कोई भी जीव मुझसे रहित होकर स्पन्दन भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यह मेरा निश्चय है। इसे मैं आपको बता दे रही हूँ। इसी प्रकार यदि मैं शिवको छोड़ दूँ तो वे शक्तिहीन होकर दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसीलिये तो संसारमें भी अत्यन्त दुर्बल पुरुषको लोग शक्तिहीन कहते हैं॥ १७-१८॥

लोग अधम मनुष्यको विष्णुहीन या रुद्रहीन नहीं कहते बल्कि उसे शक्तिहीन ही कहते हैं। जो गिर गया हो, स्खलित हो गया हो, भयभीत हो, निश्चेष्ट हो गया हो अथवा शत्रुके वशीभूत हो गया हो—वह संसारमें अरुद्र नहीं कहा जाता, अपितु अशक्त ही कहा जाता है॥ १९-२०॥

[हे ब्रह्मन्!] आप ही जब सृष्टि करना चाहते हैं तब उसमें शक्ति ही कारण है, ऐसा जानिये। जब आप शक्तिसे युक्त होते हैं तभी सृष्टिकर्ता हो पाते हैं॥ २१॥

इसी प्रकार विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, विश्वकर्मा, वरुण और वायुदेवता भी शक्ति-सम्पन्न होकर ही अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ २२॥

पृथ्वी भी जब शक्तिसे युक्त होती है, तब स्थिर होकर सबको धारण करनेमें समर्थ होती है। यदि वह शक्तिहीन हो जाय तो एक परमाणुको भी धारण करनेमें समर्थ न हो सकेगी। शेषनाग, कच्छप एवं दसों दिग्गज मेरी शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्य सम्पन्न करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ २३-२४॥

यदि मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण संसारका जल पी जाऊँ, अग्निको नष्ट कर दूँ और वायुकी गति रोक दूँ; मैं जैसा चाहती हूँ, वैसा करती हूँ॥ २५॥

हे कमलोद्भव! सभी तत्त्वोंके अभावका सन्देह अब आप कभी न कीजिये; क्योंकि कभी-कभी किसी वस्तुविशेषका प्रागभाव (जिसका आदि न हो, पर अन्त हो) तथा प्रध्वंसाभाव (जिसका आदि हो, किंतु अन्त न हो) उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार मिट्टीके पिण्डोंमें और कपालोंमें घटाभाव प्रतीत होता है॥ २६-२७॥

अद्यात्र पृथिवी नास्ति क्व गतेति विचारणे।
सञ्जाता इति विज्ञेया अस्यास्तु परमाणवः॥ २८

शाश्वतं क्षणिकं शून्यं नित्यानित्यं सकर्तृकम्।
अहंकाराग्रिमञ्चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम्॥ २९

गृहाणाज महत्तत्त्वमहङ्कारस्तदुद्भवः।
ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथा पुरा॥ ३०

व्रजन्तु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्य निवसन्तु वः।
स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वन्तु दैवभाविताः॥ ३१

गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम्।
महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम्॥ ३२

श्वेताम्बरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम्।
वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम्॥ ३३

एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वराङ्गना।
मावमंस्था विभूतिं मे मत्वा पूज्यतमां प्रियाम्॥ ३४

गच्छ त्वमनया सार्धं सत्यलोकं बताशु वै।
बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय साम्प्रतम्॥ ३५

लिङ्गकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा।
वर्तन्ते संस्थिताः काले तान्कुरु त्वं यथा पुरा॥ ३६

कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत्।
स्वभावस्वगुणैर्युक्तं पूर्ववत्सचराचरम्॥ ३७

माननीयस्त्वया विष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा।
सत्त्वगुणप्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा॥ ३८

यदा यदा हि कार्यं वो भविष्यति दुरत्ययम्।
करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा हरिः॥ ३९

तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः।
दानवानां विनाशं वै करिष्यति जनार्दनः॥ ४०

आज यहाँ पृथ्वी नहीं है, तब वह कहाँ चली गयी? इसपर विचार करनेपर वह पृथ्वी परमाणुरूपसे विद्यमान तो है ही—ऐसा जानना चाहिये॥ २८॥

शाश्वत, क्षणिक, शून्य, नित्य, अनित्य, सकर्तृक और अहंकार—इन सात भेदोंमें सृष्टिका वर्णन विवक्षित है। इसलिये हे अज! अब आप उस महत्तत्त्वको ग्रहण कीजिये, जिससे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् आप पूर्वकी भाँति समस्त प्राणियोंकी रचना कीजिये॥ २९-३०॥

अब आपलोग जाइये तथा अपने-अपने लोकोंकी रचना करके निवास कीजिये और दैवका चिन्तन करते हुए अपने-अपने कार्य कीजिये॥ ३१॥

हे विधे! सुन्दर रूपवाली, दिव्य हासवाली, रजोगुणसे युक्त, श्रेष्ठ श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली, अलौकिक, दिव्याभूषणोंसे विभूषित, उत्तम आसनपर विराजमान इस महासरस्वती नामक शक्तिको क्रीडाविहारके लिये अपनी सहचरीके रूपमें स्वीकार कीजिये॥ ३२-३३॥

यह सुन्दरी सदा आपकी सहचरी बनकर रहेगी। इस पूज्यतम प्रेयसीको मेरी विभूति समझकर कभी भी इसका तिरस्कार न कीजियेगा। अब आप शीघ्र ही इसे साथ लेकर सत्यलोकमें प्रस्थान करें और तत्त्वबीजसे चार प्रकारकी समस्त सृष्टि करनेमें तत्पर हो जायँ॥ ३४-३५॥

समस्त जीवों और कर्मोंके साथ जो लिंगकोश हैं, उन्हें पूर्वकी भाँति आप प्रतिष्ठित कर दें। काल, कर्म और स्वभाव नामवाले—इन कारणोंसे समस्त चराचर सृष्टिको पूर्वकी भाँति अपने-अपने स्वभाव और गुणोंसे युक्त कर दीजिये॥ ३६-३७॥

विष्णु आपके सदा माननीय और पूजनीय हैं; क्योंकि सत्त्वगुणकी प्रधानताके कारण वे सर्वदा सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं॥ ३८॥

जब-जब आपलोगोंका कोई कठिन कार्य उपस्थित होगा, उस समय भगवान् श्रीहरि पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करेंगे॥ ३९॥

कहीं तिर्यक्-योनिमें तथा कहीं मानवयोनिमें शरीर धारण करके ये भगवान् जनार्दन दानवोंका अवश्य विनाश करेंगे॥ ४०॥

भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यति महाबलः ।
समुत्पाद्य सुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम् ॥ ४१

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः ।
यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः ॥ ४२

मन्नामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च ।
सदा तृप्ताश्च सन्तुष्टा भविष्यध्वं सुराः किल ॥ ४३

शिवश्च माननीयो वै सर्वथा यत्तमोगुणः ।
यज्ञकार्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ ४४

यदा पुनः सुराणां वै भयं दैत्याद्भविष्यति ।
शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यन्ति सुविग्रहाः ॥ ४५

वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही सदाशिवा ।
एताश्चान्याश्च कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४६

नवाक्षरमिमं मन्त्रं बीजध्यानयुतं सदा ।
जपन्सर्वाणि कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥ ४७

मन्त्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहि महामते ।
हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ४८

इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता ।
विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ ४९

सदा वक्षःस्थले स्थाने भविता नात्र संशयः ।
क्रीडार्थं ते मया दत्ता शक्तिः सर्वार्थदा शिवा ॥ ५०

त्वयेयं नावमन्तव्या माननीया च सर्वदा ।
लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगो वै विहितो मया ॥ ५१

ये महाबली शंकरजी भी आपकी सहायता करेंगे। अब आप समस्त देवताओंका सृजन करके स्वेच्छया सुखपूर्वक विहार कीजिये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यलोग दक्षिणायुक्त नानाविध यज्ञोंसे विधिपूर्वक पूर्ण मनोयोगके साथ आप सबकी पूजा करेंगे ॥ ४२ ॥

हे देवो! सभी यज्ञोंमें मेरे नामका उच्चारण करते ही आप सभी लोग निश्चितरूपसे सदैव तृप्त एवं सन्तुष्ट हो जायँगे ॥ ४३ ॥

आपलोग तमोगुणसम्पन्न शंकरजीका सब प्रकारसे सम्मान कीजियेगा और सभी यज्ञकार्योंमें प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा कीजियेगा ॥ ४४ ॥

जब कभी भी देवताओंके समक्ष दैत्योंसे भय उत्पन्न होगा, उस समय सुन्दर रूपोंवाली वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, सदाशिवा तथा अन्य देवियोंके रूपमें मेरी शक्तियाँ प्रकट होकर उनका भय दूर कर देंगी। अतः हे कमलोद्भव! अब आप अपने कार्य करें ॥ ४५-४६ ॥

हे कमलोद्भव! बीज तथा ध्यानसे युक्त मेरे इस नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए आप समस्त कार्य कीजिये ॥ ४७ ॥

हे महामते! आप इस मन्त्रको सभी मन्त्रोंसे श्रेष्ठ जानिये। सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये आपको इस मन्त्रको सदा अपने हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

मुझसे ऐसा कहकर पवित्र मुसकानवाली जगज्जननीने भगवान् विष्णुसे कहा—हे विष्णो! अब आप इन मनोहर महालक्ष्मीको स्वीकार कीजिये और यहाँसे प्रस्थान कीजिये ॥ ४९ ॥

ये आपके वक्षःस्थलमें सदा निवास करेंगी, इसमें सन्देह नहीं है। आपके लीलाविनोदके लिये मैंने आपको यह सभी मनोरथ प्रदान करनेवाली कल्याणमयी शक्ति अर्पित की है ॥ ५० ॥

आप इनका सर्वदा सम्मान करते रहियेगा और कभी भी तिरस्कार न कीजियेगा। लक्ष्मीनारायण नामक यह संयोग मेरे द्वारा ही रचा गया है ॥ ५१ ॥

ऐं क्लीं ह्रीं

जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया।
अविरोधेन सङ्गेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा॥ ५२

त्वं च वेधाः शिवस्त्वेते देवा मद्गुणसम्भवाः।
मान्याः पूज्याश्च सर्वेषां भविष्यन्ति न संशयः॥ ५३

ये विभेदं करिष्यन्ति मानवा मूढचेतसः।
निरयं ते गमिष्यन्ति विभेदान्नात्र संशयः॥ ५४

यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः।
एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः॥ ५५

तथैव द्रुहिणो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा।
अपरो गुणभेदोऽस्ति शृणु विष्णो ब्रवीमि ते॥ ५६

मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिन्तने।
गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ॥ ५७

लक्ष्म्या सह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा।
रजोगुणयुतो भूत्वा विहरस्वानया सह॥ ५८

वाग्बीजं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम्।
मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्त मद्दत्तः परमार्थदः॥ ५९

गृहीत्वा जप तं नित्यं विहरस्व यथासुखम्।
न ते मृत्युभयं विष्णो न कालप्रभवं भयम्॥ ६०

यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः।
संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वं चराचरम्॥ ६१

भवन्तोऽपि तदा नूनं मयि लीना भविष्यथ।
स्मर्तव्योऽयं सदा मन्त्रः कामदो मोक्षदस्तथा॥ ६२

उद्गीथेन च संयुक्तः कर्तव्यः शुभमिच्छता।
कारयित्वाथ वैकुण्ठं वस्तव्यं पुरुषोत्तम॥ ६३

विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम्।

मैंने देवताओंकी जीविकाके लिये ही यज्ञोंकी रचना की है। आप तीनों विरोधभावनासे रहित होकर व्यवहार कीजिये॥ ५२॥

आप (विष्णु), ब्रह्मा, शिव तथा ये सभी देवता मेरे ही प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए हैं। अतएव निस्सन्देह आपलोग सभी प्राणियोंके मान्य एवं पूज्य होंगे॥ ५३॥

जो अज्ञानी मनुष्य इनमें भेदभाव करेंगे, वे इस विभेदके कारण नरकमें पड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही स्वयं विष्णु हैं। इन दोनोंमें भेद रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है॥ ५५॥

ब्रह्माजीके सम्बन्धमें भी ऐसा ही जानिये; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे विष्णो! गुणोंके कारण इनमें जो भेद हैं; उन्हें आपको बता रही हूँ, आप सुनें॥ ५६॥

परमात्म-चिन्तनकी दृष्टिसे आपका मुख्य गुण सत्त्वगुण है। दूसरे रजोगुण तथा तमोगुण आपके लिये गौण हैं। अतएव विभिन्न भेदयुक्त विकारोंमें रजोगुणसे सम्पन्न होकर आप इन लक्ष्मीके साथ विहार कीजिये॥ ५७-५८॥

हे लक्ष्मीकान्त! मेरे द्वारा आपको दिया गया वाग्बीज (ऐं), कामराज (क्लीं) तथा तृतीय मायाबीज (ह्रीं) इनसे युक्त यह मन्त्र परमार्थ प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करके निरन्तर इसका जप कीजिये तथा सुखपूर्वक विहार कीजिये। हे विष्णो! ऐसा करनेसे आपको न तो मृत्युभय होगा और न कालजनित भय ही होगा॥ ५९-६०॥

जबतक मैं विहार करती रहूँगी, तबतक यह सृष्टि निश्चितरूपसे रहेगी और जब मैं सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार कर दूँगी, उस समय आपलोग भी मुझमें समाहित हो जायँगे। आपलोग समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रका अनवरत स्मरण करते रहें॥ ६१-६२॥

अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको इस मन्त्रके साथ 'ओंकार' जोड़कर चतुरक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। हे पुरुषोत्तम! अब आप वैकुण्ठका निर्माण कराकर उसीमें निवास कीजिये और मुझ सनातनीका सतत ध्यान करते हुए इच्छापूर्वक विहार कीजिये॥ ६३½॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा॥ ६४

निर्गुणा शङ्करं देवमवोचदमृतं वचः।

देव्युवाच

गृहाण हर गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम्॥ ६५

कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम्।
मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ॥ ६६

विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ।
तपस्तप्तं तथा कर्तुं स्मरणं परमात्मनः॥ ६७

शर्व सत्त्वगुणः शान्तो गृहीतव्यः सदानघ।
सर्वथा त्रिगुणा यूयं सृष्टिस्थित्यन्तकारकाः॥ ६८

एभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवात्र कुत्रचित्।
वस्तुमात्रं तु यद् दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत्॥ ६९

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति।
निर्गुणः परमात्मासौ न तु दृश्यः कदाचन॥ ७०

सगुणा निर्गुणा चाहं समये शङ्करोत्तमा।
सदाहं कारणं शम्भो न च कार्यं कदाचन॥ ७१

सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषान्तिके।
महत्तत्त्वमहङ्कारो गुणाः शब्दादयस्तथा॥ ७२

कार्यकारणरूपेण संसरन्ते त्वहर्निशम्।
सदुद्भूतस्त्वहङ्कारस्तेनाहं कारणं शिवा॥ ७३

अहङ्कारश्च मे कार्यं त्रिगुणोऽसौ प्रतिष्ठितः।
अहङ्कारान्महत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता॥ ७४

महत्तत्त्वं हि कार्यं स्यादहङ्कारो हि कारणम्।
तन्मात्राणि त्वहङ्कारादुत्पद्यन्ते सदैव हि॥ ७५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुसे ऐसा कहकर उस त्रिगुणात्मिका तथा निर्गुणा परा प्रकृतिने देवाधिदेव शंकरसे अमृतमय वचन कहा॥ ६४½॥

देवी बोलीं—हे हर! आप इन मनोहरा महाकाली गौरीको अंगीकार कीजिये और कैलासशिखरकी रचना कराकर वहाँ सुखपूर्वक विहार कीजिये। तमोगुण आपमें प्रधानगुणके रूपमें विद्यमान रहेगा और सत्त्वगुण तथा रजोगुण आपमें गौणरूपसे व्याप्त रहेंगे॥ ६५-६६॥

रजोगुण और तमोगुणके द्वारा दैत्योंके विनाशके लिये आप वहाँ विहार करें और हे शर्व! परमात्माका स्मरण-ध्यान करनेके लिये आप तप कर चुके हैं। आप शान्तिप्रधान सत्त्वगुणका अवलम्बन कीजिये। हे अनघ! त्रिगुणात्मक आप तीनों देवता सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं॥ ६७-६८॥

संसारमें कहीं भी कोई भी वस्तु इन तीनों गुणोंसे रहित नहीं है। जगत्‌की जितनी भी दृश्य वस्तुएँ हैं, वे सब त्रिगुणात्मिका हैं॥ ६९॥

इस संसारमें ऐसी कोई भी दृश्य वस्तु गुणरहित न तो हुई और न होगी। निर्गुण तो एकमात्र वह परमात्मा ही है और वह कभी दृष्टिगोचर नहीं होता॥ ७०॥

हे शंकर! समय आनेपर मैं श्रेष्ठरूपा ही वह सगुणा या निर्गुणा हो जाती हूँ। हे शम्भो! मैं सर्वदा कारण हूँ, कार्य कभी नहीं॥ ७१॥

किसी कारणविशेषसे मैं सगुणा होती हूँ तो उस परमपुरुषके सांनिध्यमें निर्गुणा रहती हूँ। महत्तत्त्व, अहंकार, तीनों गुण और शब्द आदि विषय कार्य-कारणभावसे निरन्तर गतिशील रहते हैं। सत्‌से अहंकार उत्पन्न होता है; इसीलिये मैं शिवा सबका कारण हूँ॥ ७२-७३॥

अहंकार मेरा कार्य है और वह त्रिगुणात्मक रूपमें प्रतिष्ठित है। उस अहंकारसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है; उसीको बुद्धि कहा गया है॥ ७४॥

वह महत्तत्त्व कार्य है तथा अहंकार उसका कारण है। इसी अहंकारसे तन्मात्राओंकी सदा

कारणं पञ्चभूतानां तानि सर्वसमुद्भवे।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च॥ ७६

महाभूतानि पञ्चैव मनः षोडशमेव च।
कार्यञ्च कारणञ्चैव गणोऽयं षोडशात्मकः॥ ७७

परमात्मा पुमानाद्यो न कार्यं न च कारणम्।
एवं समुद्भवः शम्भो सर्वेषामादिसम्भवे॥ ७८

संक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः।
व्रजन्त्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः॥ ७९

स्मरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमे स्थिते।
स्मर्तव्याहं सदा देवाः परमात्मा सनातनः॥ ८०

उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम्।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्दत्त्वा शक्तीः सुसंस्कृताः॥ ८१
विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च।

महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः॥ ८२

स्थलान्तरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम्।
चिन्तयन्तः स्वरूपं तत्प्रभाव परमाद्भुतम्॥ ८३

विमानं तत्समासाद्य संरूढास्तत्र वै त्रयः।
न द्वीपोऽसौ न सा देवी सुधासिन्धुस्तथैव च।
पुनर्दृष्टं विमानं वै तत्रास्माभिर्न चान्यथा॥ ८४

आसाद्य तस्मिन्वितते विमाने
प्राप्ता वयं पङ्कजसन्निधौ च।
महार्णवे यत्र हतौ दुरत्ययौ
मुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ॥ ८५

उत्पत्ति होती है। वे तन्मात्राएँ [पृथ्वी, जल आदि] पंचमहाभूतोंका कारण हैं। सबके सृजनमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और सोलहवाँ मन—यह षोडशात्मक समूह कार्य और कारणरूप होता है॥ ७५—७७॥

वह आदिपुरुष परमात्मा न कार्य है और न कारण। हे शिव! सबकी प्रारम्भिक सृष्टिके उत्पत्तिका यही क्रम है॥ ७८॥

अभी मैंने आपलोगोंकी यह उत्पत्ति-परम्परा संक्षेपमें कही। इसलिये हे श्रेष्ठदेव! अब आपलोग मेरा कार्य सम्पन्न करनेके लिये इस विमानसे प्रस्थान करें॥ ७९॥

जब आपलोगोंपर कोई संकट आयेगा, तब मैं स्मरणमात्रसे तत्काल आपलोगोंको दर्शन दूँगी। अतः हे देवो! आपलोग सर्वदा मेरा तथा सनातन परमात्माका स्मरण करते रहें। हम दोनोंके स्मरणसे ही निःसन्देह आपलोगोंकी कार्यसिद्धि होगी॥ ८०½॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर भगवतीने अपनी अद्भुत शक्तियाँ प्रदानकर हमें विदा किया। विष्णुको महालक्ष्मी, शिवको महाकाली और मुझे महासरस्वती प्रदान करके उस स्थानसे विदा कर दिया॥ ८१-८२॥

उनके स्वरूप तथा अत्यन्त अद्भुत प्रभावका स्मरण करते हुए अन्य स्थानपर पहुँचकर हमलोग पुनः पुरुषरूपमें हो गये॥ ८३॥

तब लौटकर हम तीनों पुनः उसी विमानमें बैठ गये। [हमने देखा कि] वहाँ न तो वह मणिद्वीप है, न वे महामाया हैं और न वह सुधासागर है। उस समय वहाँ उस विमानके अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था॥ ८४॥

उस विशाल विमानमें बैठकर हम तीनों पुनः उसी महासागरमें विद्यमान उस कमलके निकट पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ नामक दुर्धर्ष दैत्योंका वध किया था॥ ८५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
ब्रह्मणे श्रीदेव्या उपदेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~0~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन; सात्त्विक, राजस और तामस शक्तिका वर्णन; पंचतन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा पंचीकरण-क्रियाद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवंप्रभावा सा देवी मया दृष्टाथ विष्णुना।
शिवेनापि महाभाग तास्ता देव्यः पृथक्पृथक्॥ १

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः।
पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः॥ २

नारद उवाच

पुमानाद्योऽविनाशी यो निर्गुणोऽच्युतिरव्ययः।
दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह॥ ३

त्रिगुणा वीक्षिता शक्तिर्निर्गुणा कीदृशी पितः।
तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्य च पद्मज॥ ४

यदर्थञ्च मया तप्तं श्वेतद्वीपे महातपः।
दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः॥ ५

परमात्मा न सम्प्राप्तो मयासौ दृष्टिगोचरः।
पुनः पुनस्तपस्तीव्रं कृतं तत्र प्रजापते॥ ६

भवता सगुणा शक्तिर्दृष्टा तात मनोरमा।
निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तौ वदस्व मे॥ ७

व्यास उवाच

इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः।
उवाच वचनं तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः॥ ८

ब्रह्मोवाच

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद् दृष्टिगोचरम्।
दृश्यञ्च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम्॥ ९

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! [नारद!] मैंने, विष्णु तथा शंकरने इस प्रकारके प्रभाववाली उन देवीको तथा अन्य सभी देवियोंको पृथक्-पृथक् देखा॥ १॥

व्यासजी बोले—पिताका यह वचन सुनकर मुनिवर नारदने परम प्रसन्न होकर प्रजापति ब्रह्माजीसे यह बात पूछी॥ २॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने जिन आदि, अविनाशी, निर्गुण, अच्युत तथा अव्यय परमपुरुषका दर्शन तथा अनुभव किया, उनके विषयमें बताइये॥ ३॥

हे पिताजी! आपने त्रिगुणसम्पन्ना देवीका दर्शन तो कर लिया है; निर्गुणा शक्ति कैसी होती हैं? हे कमलोद्भव! अब आप मुझे उन शक्तिका तथा परमपुरुषका स्वरूप बताइये॥ ४॥

जिनके लिये मैंने श्वेतद्वीपमें महान् तपश्चर्या की और क्रोधशून्य सिद्धपुरुषों, महात्माओं तथा तपस्वियोंके दर्शन किये; वे परमात्मा मुझे दृष्टि-गोचर नहीं हुए। हे प्रजापते! इसके बाद भी [उनके दर्शनार्थ] मैंने वहाँ बार-बार घोर तपस्या की॥ ५-६॥

हे तात! आपने मनोरमा सगुणा शक्तिका दर्शन किया है। आप मुझे बताइये कि निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परमात्मा कैसे हैं?॥ ७॥

व्यासजी बोले—नारदजीने अपने पिता प्रजापति ब्रह्मासे ऐसा पूछा, तब उन पितामहने मुसकराते हुए रहस्यपूर्ण वचन कहा॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! निर्गुणतत्त्वका रूप दृष्टिगोचर नहीं हो सकता; क्योंकि जो दिखायी पड़ता है, वह तो नाशवान् होता है। जो रूपरहित है, वह दृष्टिगोचर कैसे हो सकता है?॥ ९॥

निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथा पुमान्।
ज्ञानगम्यौ मुनीनां तु भावनीयौ तथा पुनः॥ १०

अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ।
विश्वासेनाभिगम्यौ तौ नाविश्वासेन कर्हिचित्॥ ११

चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम्।
तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु नारद॥ १२

तञ्च ताञ्च महाभाग व्यापकौ विद्धि सर्वगौ।
ताभ्यां विहीनं संसारे न किञ्चिद्वस्तु विद्यते॥ १३

तौ विचिन्त्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाव्ययौ।
एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ॥ १४

या शक्तिः परमात्मासौ योऽसौ सा परमा मता।
अन्तरं नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद॥ १५

अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्साङ्गांश्च नारद।
न जानाति तयोः सूक्ष्ममन्तरं विरतिं विना॥ १६

अहङ्कारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम्।
कथं तद्रहितं पुत्र भवेत्कल्पशतैरपि॥ १७

निर्गुणं सगुणः पुत्र कथं पश्यति चक्षुषा।
सगुणं च महाबुद्धे चेतसा संविचारय॥ १८

पित्तेनाच्छादिता जिह्वा चक्षुश्च मुनिसत्तम।
कटु पित्तं विजानाति रसं रूपं न तत्तथा॥ १९

गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम्।
अहङ्कारोद्भवं तच्च तद्विहीनं कथं भवेत्॥ २०

निर्गुणा शक्तिको जान पाना अत्यन्त दुरूह है और उसी प्रकार निर्गुण परमपुरुषका साक्षात्कार भी अति दुष्कर है। ये दोनों केवल मुनिजनोंके द्वारा ज्ञानसे प्राप्त तथा अनुभूत किये जा सकते हैं॥ १०॥

आप प्रकृति तथा पुरुष दोनोंको आदि-अन्तसे सर्वदा रहित जानिये। ये दोनों विश्वाससे जाने जा सकते हैं; अविश्वाससे कभी नहीं॥ ११॥

हे नारद! सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य विद्यमान है, उसे ही परमात्मस्वरूप जानो। तेजःस्वरूप वे परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सदा विराजमान हैं॥ १२॥

हे महाभाग! उन परमपुरुष तथा प्रकृतिको सर्वव्यापी तथा सर्वगामी समझिये। इस संसारमें कोई भी पदार्थ उन दोनोंसे रहित नहीं है॥ १३॥

सर्वदा अव्यय, एकरूप, चिदात्मा, निर्गुण तथा निर्मल—उन दोनों (प्रकृति-पुरुष)-को एक ही शरीरमें सम्मिश्रित मानकर सदा इनका चिन्तन करना चाहिये॥ १४॥

हे नारद! जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही परमशक्ति मानी गयी हैं। इन दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको कोई भी नहीं जान सकता॥ १५॥

हे नारद! कोई भी व्यक्ति समस्त शास्त्रों तथा अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन करके भी विरक्तिके बिना उन दोनोंके सूक्ष्म अन्तरको नहीं जान पाता है॥ १६॥

हे पुत्र! जड-चेतनरूप यह सारा जगत् अहंकारसे निर्मित है; ऐसी स्थितिमें सैकड़ों कल्पोंमें भी यह अहंकारसे रहित कैसे हो सकता है?॥ १७॥

हे पुत्र! सगुण मनुष्य निर्गुणको नेत्रसे कैसे देख सकता है? अतः हे महाबुद्धे! उन परमात्माके सगुण रूपका मनसे सम्यक् ध्यान करते रहो॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पित्तसे आच्छादित जिह्वा जिस प्रकार यथार्थ रसका अनुभव न करके केवल कटुरसका अनुभव करती है तथा पित्ताच्छादित नेत्र यथार्थ रूप न देखकर केवल पीले रंगको ही देखता है, उसी प्रकार गुणोंसे आच्छादित मन उस निर्गुण परमात्माको कैसे जान पायेगा? क्योंकि मन भी तो अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह मन अहंकारसे रहित कैसे

यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः।
तं पश्यति तदा चित्ते यदाहङ्कारवर्जितः॥ २१

नारद उवाच

स्वरूपं देवदेवेश त्रयाणामेव विस्तरात्।
गुणानां यत्स्वरूपोऽस्ति ह्यहङ्कारस्त्रिरूपकः॥ २२

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च तथापरः।
विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम॥ २३

यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वद मे प्रभो।
गुणानां लक्षणान्येव विततानि विभागशः॥ २४

ब्रह्मोवाच

त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद् ब्रवीमि तवानघ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथापरा॥ २५

सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका।
द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव॥ २६

तेषां कार्याणि वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः।
तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः॥ २७

रूपं रसश्च गन्धश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते।
शब्दैकगुणमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा॥ २८

सुरूपैकगुणोऽग्निश्च जलं रसगुणात्मकम्।
पृथ्वी गन्धगुणा ज्ञेया सूक्ष्माण्येतानि नारद॥ २९

दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानि वै।
तामसाहङ्कारजः स्यात्सर्गस्तदनुवृत्तिकः॥ ३०

राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्व मे।
श्रोत्रं त्वग्रसना चक्षुर्घ्राणं चैव च पञ्चमम्॥ ३१

ज्ञानेन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
वाक्पाणिपादपायुश्च गुह्यान्तानि च पञ्च वै॥ ३२

प्राणोऽपानश्च व्यानश्च समानोदानवायवः।
पञ्चदश मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते॥ ३३

साधनानि किलैतानि क्रियाशक्तिमयानि च।
उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते॥ ३४

हो सकता है? जबतक अन्तःकरण गुणोंसे रहित नहीं होता तबतक परमात्माका दर्शन कैसे सम्भव है? जब मनुष्य अहंकारविहीन हो जाता है, तब वह अपने हृदयमें उनका साक्षात्कार कर लेता है॥ १९—२१॥

नारदजी बोले—हे देवदेवेश! तीनों गुणोंका जो स्वरूप है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये और त्रिगुणात्मक अहंकारके स्वरूपका भी वर्णन कीजिये। हे पुरुषोत्तम! सात्त्विक, राजस तथा तीसरे तामस अहंकारके स्वरूप-भेदको बताइये। इस प्रकार गुणोंके विस्तृत लक्षणोंको विभागपूर्वक मुझको बताइये। हे प्रभो! मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये जिसे जानकर मैं पूर्णरूपेण मुक्त हो जाऊँ॥ २२—२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप! इस त्रिविध अहंकारकी तीन शक्तियाँ हैं, मैं उन्हें बताता हूँ। वे हैं—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा तीसरी अर्थशक्ति॥ २५॥

उनमें सात्त्विक अहंकारकी ज्ञानशक्ति, राजसकी क्रियाशक्ति और तामसकी द्रव्यशक्ति—ये तीन शक्तियाँ आपको बता दीं॥ २६॥

हे नारद! अब मैं उनके कार्योंको सम्यक् रूपसे बताऊँगा, सुनिये। तामसी द्रव्यशक्ति (अर्थशक्ति)-से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये तन्मात्राएँ कही गयी हैं। आकाशका एकमात्र गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, अग्निका गुण रूप, जलका गुण रस तथा पृथ्वीका गुण गन्ध है—ऐसा जानना चाहिये। हे नारद! ये तन्मात्राएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं॥ २७—२९॥

द्रव्यशक्तिसे युक्त इन दसों (पाँच तन्मात्राओं तथा उनके पाँच गुणों)-से मिलकर तामस अहंकारकी अनुवृत्तिसे सृष्टिकी रचना होती है॥ ३०॥

अब राजसी क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होनेवाली इन्द्रियोंके विषयमें मुझसे सुनिये। श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुह्यांग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उससे उत्पन्न हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—ये पाँच वायु होती हैं। इन पन्द्रह (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच वायु)-से मिलकर होनेवाली सृष्टि राजसी सृष्टि कही जाती है। ये सभी साधन क्रियाशक्तिसे सदा युक्त रहते हैं और इनके उपादानकारणको चित्-अनुवृत्ति कहा जाता है॥ ३१—३४॥

ज्ञानशक्तिसमायुक्ताः सात्त्विकाच्च समुद्भवाः।
दिशो वायुश्च सूर्यश्च वरुणश्चाश्विनावपि॥ ३५

ज्ञानेन्द्रियाणां पञ्चानां पञ्चाधिष्ठातृदेवताः।
चन्द्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्च चतुर्थकः॥ ३६

इत्यन्तःकरणाख्यस्य बुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम्।
चत्वार्येव तथा प्रोक्ताः किलाधिष्ठातृदेवताः॥ ३७

मनसा सह चैतानि नूनं पञ्चदशैव तु।
सात्त्विकस्य तु सर्गोऽयं सात्त्विकाख्यः प्रकीर्तितः॥ ३८

स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः।
ज्ञानरूपं निराकारं निदानं तत्प्रचक्षते॥ ३९

साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते।
शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्य प्रकीर्तितम्॥ ४०

मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्यभिधीयते।
स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः॥ ४१

शृणु नारद यत्नेन यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यते।
तन्मात्राणि पुरोक्तानि भूतसूक्ष्माणि यानि वै॥ ४२

पञ्चीकृत्य तु तान्येव पञ्चभूतसमुद्भवः।
पञ्चीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल॥ ४३

प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि।
कल्पयेच्च तथा तद्द्वे यथा भवति चोदकम्॥ ४४

शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक्पृथक्।
उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमये ततः॥ ४५

तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते।

दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण और दोनों अश्विनीकुमार ज्ञानशक्तिसे युक्त हैं और ये सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके ये ही पाँच अधिष्ठातृदेवता हैं। इसी प्रकार बुद्धि आदि अन्तःकरणचतुष्टयके चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र तथा क्षेत्रज्ञ—ये अधिदेव हैं। ये चारों अधिष्ठातृदेवता कहे गये हैं। मनसहित ये सब पन्द्रह होते हैं। यह सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि है और 'सात्त्विकी सृष्टि' कही गयी है॥ ३५—३८॥

स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप होते हैं, उनमें ज्ञानरूप निराकारस्वरूप सबका कारण कहा गया है॥ ३९॥

साधकके ध्यान आदि कार्योंके लिये परमात्माके स्थूल रूपकी उपासना कही गयी है। यह उस परमपुरुषका सूक्ष्म शरीर ही बताया गया है॥ ४०॥

मेरा यह शरीर सूत्रसंज्ञक है। अब मैं उस परब्रह्म परमात्माके स्थूल विराट् स्वरूपका वर्णन करूँगा। हे नारद! आप उसे सुनें, जिसे सावधानीसे सुनकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसके पहले मैंने गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—इन पंच तन्मात्राओं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन सूक्ष्म पंच महाभूतोंका वर्णन विस्तारसे कर दिया है॥ ४१-४२॥

उन्हीं पाँचोंको मिलाकर पंचीकरणकी क्रियासे परमात्माने पंचभूतमय देहकी सृष्टि की है। अब मैं पंचीकरणका भेद बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—॥ ४३॥

सबसे पहले रसरूप तन्मात्राका मनमें निश्चय करके जिस स्थूल रूपमें जल होता है, वैसी ही उसकी दो अंशोंमें भावना करे॥ ४४॥

उसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंके भी दो-दो भाग करके, उसमेंसे आधे भागको पृथक् कर ले। शेष आधे अंशको चार प्रकारसे अलग करके आधे भागसे रहित उन अंशोंमें मिला दे। रस तन्मात्राको आधे भाग जलमें मिलाकर अवशिष्टभूत तन्मात्राके आधेको चारों भागोंमें मिश्रित कर दे। ऐसा करनेसे जब रसमय स्थूल जल हो जाय तब अन्य चार भूतोंके पंचीकरणका विभाग करे। उन

चैतन्यस्य प्रवेशात्तु तदाहमिति संशयः॥ ४६

प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाभिमानतः।
आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते॥ ४७

घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते।
वृद्धिं प्राप्य गुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः॥ ४८

आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः।
शब्दस्पर्शौ च वायोश्च द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ॥ ४९

अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः।
शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्य च॥ ५०

स्पर्शशब्दरसा रूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः।
एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुच्यते॥ ५१

सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्माण्डांशसमुद्भवाः।
चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः॥ ५२

पंचीकृत पंचभूतोंमें अधिष्ठानताके कारण उनके प्रतिबिम्बरूपसे जब चैतन्य प्रविष्ट हो जाता है, तब उस पंचभूतात्मक शरीरमें 'अहम्' भावरूप संशय उत्पन्न हो जाता है। वह संशय स्पष्टरूपसे जब भासित होने लगता है, तब उस स्थूल शरीरमें देहाभिमानके साथ चैतन्य जाग्रत् होने लगता है, वही दिव्य चैतन्य आदिनारायण भगवान्, परमात्मा आदि नामोंसे पुकारा जाता है॥ ४५—४७॥

इस प्रकार पंचीकरणसे सभी भूतोंका विभाग स्पष्ट हो जाने पर आकाश आदि सभी पंचभूत पूर्वोक्त तन्मात्राओंके कारण अपने-अपने विशेष गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं और एक-एक गुणकी वृद्धिसे एक-एक भूत उत्पन्न हो जाता है॥ ४८॥

आकाशका केवल एकमात्र गुण शब्द है, दूसरा नहीं। वायुके शब्द और स्पर्श—ये दो गुण कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण अग्निके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच गुण पृथ्वीके हैं। इस प्रकार इन पंचीकृत महाभूतोंके योगसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति कही जाती है। ब्रह्माण्डके अंशसे उत्पन्न सभी जीवोंको मिलाकर चौरासी लाख जीव-योनियाँ कही गयी हैं॥ ४९—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
तत्त्वनिरूपणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

~~0~~

अथाष्टमोऽध्यायः

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन

ब्रह्मोवाच

सर्गोऽयं कथितस्तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना।
गुणानां रूपसंस्थां वै शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ १

सत्त्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः।
आर्जवं च तथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः॥ २

अनुकम्पा तथा लज्जा शान्तिः सन्तोष एव च।
एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे तात! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सृष्टिका वर्णन मैंने कर दिया। अब गुणोंका स्वरूप कहता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ १॥

सत्त्वगुणको प्रीतिस्वरूप समझना चाहिये, वह प्रीति सुखसे उत्पन्न होती है। सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष—इन लक्षणोंसे सदैव निश्चल सत्त्वगुणकी प्रतीति होती है॥ २-३॥

श्वेतवर्णं तथा सत्त्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा।
सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यमसच्छ्रद्धानिवारकम्॥ ४

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथापरा।
श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ५

रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम्।
अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता॥ ६

प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च।
उत्कण्ठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी॥ ७

मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते।
प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः॥ ८

कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत्।
आलस्यं च तथाज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा॥ ९

विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च।
वैषम्यं वातिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम्॥ १०

प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः।
तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम्॥ ११

सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियन्तव्यं रजः सदा।
संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभमिच्छता॥ १२

अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यन्ति परस्परम्।
तथान्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठन्ति निराश्रयाः॥ १३

सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा।
मिलिताश्च सदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः॥ १४

अन्योन्यमिथुनाच्चैव विस्तारं कथयाम्यहम्।
शृणु नारद यज्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥ १५

सत्त्वगुणका वर्ण श्वेत है, यह सर्वदा धर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है, सत्-श्रद्धाका आविर्भाव करता है तथा असत्-श्रद्धाको समाप्त करता है॥ ४॥

तत्त्वदर्शी मुनियोंने तीन प्रकारकी श्रद्धा बतलायी है—सात्त्विकी, राजसी एवं तीसरी तामसी॥ ५॥

रजोगुण रक्तवर्णवाला कहा गया है। यह आश्चर्य एवं अप्रीतिको उत्पन्न करता है। दुःखसे योगके कारण ही निश्चितरूपसे अप्रीति उत्पन्न होती है॥ ६॥

जहाँ ईर्ष्या, द्रोह, मत्सर, स्तम्भन, उत्कण्ठा एवं निद्रा होती है, वहाँ राजसी श्रद्धा रहती है॥ ७॥

अभिमान, मद और गर्व—ये सब भी राजसी श्रद्धासे ही उत्पन्न होते हैं। अतः विद्वान् मनुष्योंको चाहिये कि वे इन लक्षणोंद्वारा राजसी श्रद्धा समझ लें॥ ८॥

तमोगुणका वर्ण कृष्ण होता है। यह मोह और विषाद उत्पन्न करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, अत्यन्त नास्तिकता और दूसरोंके दोषको देखनेका स्वभाव—ये तामसिक श्रद्धाके लक्षण हैं। पण्डितजन इन लक्षणोंसे तामसी श्रद्धा जान लें; तामसी श्रद्धासे युक्त ये सभी लक्षण परपीड़ादायक हैं॥ ९—११॥

आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवालेको अपनेमें निरन्तर सत्त्वगुणका विकास करना चाहिये, रजोगुणपर नियन्त्रण रखना चाहिये तथा तमोगुणका नाश कर डालना चाहिये॥ १२॥

ये तीनों गुण एक-दूसरेका उत्कर्ष होनेकी दशामें परस्पर विरोध करने लगते हैं। ये सब एक-दूसरेके आश्रित हैं, निराश्रय होकर नहीं रहते॥ १३॥

सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणमेंसे कोई एक अकेला कभी नहीं रह सकता; ये सभी सदैव मिलकर रहते हैं, इसीलिये ये अन्योन्याश्रय सम्बन्धवाले कहे गये हैं॥ १४॥

हे नारद! ध्यानसे सुनिये, अब मैं इनके अन्योन्याश्रय-सम्बन्धसे होनेवाले विस्तारका वर्णन करता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य भव-बन्धनसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है। इसमें आपको किसी प्रकारका

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यो ज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः।
ज्ञातं तदनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति॥ १६

श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते।
संस्कारानुभवाच्चैव परिज्ञातं न जायते॥ १७

श्रुतं तीर्थं पवित्रञ्च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी।
निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टं चैव यथाश्रुतम्॥ १८

स्नातस्तत्र कृतं कृत्यं दत्तं दानं च राजसम्।
स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुणसमावृतः॥ १९

रागद्वेषान्न निर्मुक्तः कामक्रोधसमावृतः।
पुनरेव गृहं प्राप्तो यथापूर्वं तथास्थितः॥ २०

श्रुतं च नानुभूतं वै तेन तीर्थं मुनीश्वर।
न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद॥ २१

निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम।
कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम्॥ २२

पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयः परे।
लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः॥ २३

असूयेर्ष्याक्षमाशान्तिः पापान्येतानि नारद।
न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतो नरः॥ २४

कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत्।
निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा॥ २५

श्रमेणापीडितं क्षेत्रं कृष्टा भूमिः सुदुर्घटा।
उप्तं बीजं महार्घं च हिता वृत्तिरुदाहृता॥ २६

सन्देह नहीं करना चाहिये। सम्यक् प्रकारसे जानकर ही मैंने यह बात कही है। मैंने पहले इसे जाना, तत्पश्चात् इसका अनुभव किया और पुनः परिणाम देखकर इसका परिज्ञान प्राप्त किया है॥ १५-१६॥

हे महामते! मात्र देख लेने, सुन लेने अथवा संस्कारजनित अपने अनुभवसे ही किसी भी वस्तुका तत्काल परिज्ञान नहीं हो जाता॥ १७॥

जैसे किसी पवित्र तीर्थके विषयमें सुनकर किसी व्यक्तिके हृदयमें राजसी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और वह उस तीर्थमें चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने वही देखा जैसा पहले सुना था। उस तीर्थमें उसने स्नान करके तीर्थकृत्य किया और राजसी दान भी किया। रजोगुणसे युक्त रहकर उस व्यक्तिने कुछ समयतक वहाँ तीर्थवास भी किया। किंतु ऐसा करके भी वह राग-द्वेषसे मुक्त नहीं हो पाया और काम-क्रोध आदि विकारोंसे आच्छादित ही रहा। पुनः अपने घर लौट आया और वह पूर्वकी भाँति वैसे ही रहने लगा॥ १८—२०॥

हे मुनीश्वर! उस व्यक्तिने तीर्थकी महिमा तो सुनी थी, किंतु उसका सम्यक् अनुभव नहीं किया। इसी कारण उसे तीर्थयात्राका कोई फल नहीं प्राप्त हुआ। अतः हे नारद! उसका सुनना न सुननेके बराबर समझें॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह जान लें कि तीर्थयात्राका फल पापसे छुटकारा प्राप्त करना है; यह वैसे ही है जैसे संसारमें कृषिका फल उत्पादित अन्नका भक्षण है॥ २२॥

जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, परदोषदर्शन, ईर्ष्या, सहनशीलताका अभाव और अशान्ति आदि हैं, वे पापमय शरीरके विकार हैं। हे नारद! जबतक ये पाप शरीरसे नहीं निकलते, तबतक मनुष्य पापी ही रहता है॥ २३-२४॥

तीर्थयात्रा करनेपर भी यदि ये पाप देहसे नहीं निकले तो तीर्थाटन करनेका वह परिश्रम उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे किसी किसानका। उस किसानने परिश्रमपूर्वक खेतको खोदा, अत्यन्त कठोर भूमिको जोता, उसमें महँगा बीज बोया और अन्य आवश्यक कार्य किये तथा फलप्राप्तिकी इच्छासे उसकी रक्षाके

अहोरात्रं परिक्लिष्टो रक्षणार्थं फलोत्सुकः।
काले सुप्तस्तु हेमन्ते वने व्याघ्रादिभिर्भृशम्॥ २७

भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः।
तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः॥ २८

सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात्।
वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद॥ २९

प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे।
रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः॥ ३०

तत्तथाभिभवत्येव तमःसत्त्वे तथा उभे।
तमस्तथोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः॥ ३१

तत्सत्त्वरजसी चोभे सङ्गम्याभिभवत्यपि।
विस्तरं कथयाम्यद्य यथाभिभवतीति वै॥ ३२

यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थिता तदा।
न चिन्तयति बाह्यार्थं रजस्तमःसमुद्भवम्॥ ३३

अर्थं सत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति च न चान्यथा।
अनायासकृतं चार्थं धर्मं यज्ञं च वाञ्छति॥ ३४

सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा।

राजसेषु न मोक्षार्थं तामसेषु पुनः कुतः॥ ३५

एवं जित्वा रजः पूर्वं ततश्च तमसो जयः।
सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम्॥ ३६

यदा रजः प्रवृद्धं वै त्यक्त्वा धर्मान् सनातनान्।
अन्यथाकुरुते धर्मांच्छ्रद्धां प्राप्य तु राजसीम्॥ ३७

लिये दिन-रात अनेक कष्ट सहे, किंतु फल लगनेका समय हेमन्त-काल आनेपर वह सो गया, जिससे व्याघ्र आदि वन्य जन्तुओं तथा टिड्डियोंने उस फसलको खा लिया और अन्तमें वह किसान सर्वथा निराश हो गया। उसी प्रकार हे पुत्र! तीर्थमें किया गया वह श्रम भी कष्टदायक ही सिद्ध होता है, उसका कोई फल नहीं मिलता॥ २५—२८॥

हे नारद! शास्त्रके अवलोकनसे सत्त्वगुण समुन्नत होता है तथा बड़ी तेजीसे बढ़ता है। उसका फल यह होता है कि तामस पदार्थोंके प्रति वैराग्य हो जाता है॥ २९॥

वह सत्त्वगुण रज और तम—इन दोनोंको बलपूर्वक दबा देता है, लोभके कारण रजोगुण अत्यन्त तीव्र हो जाता है, वह बढ़ा हुआ रजोगुण सत्त्व तथा तम—इन दोनोंको दबा देता है। उसी प्रकार तमोगुण मोहके कारण तीव्रताको प्राप्त होकर सत्त्वगुण तथा रजोगुण—इन दोनोंको दबा देता है। ये गुण जिस प्रकार एक-दूसरेको दबाते हैं? उसे मैं यहाँपर विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ॥ ३०—३२॥

जब सत्त्वगुण बढ़ता है, उस समय बुद्धि धर्ममें स्थित रहती है। उस समय वह रजोगुण या तमोगुणसे उत्पन्न बाह्य विषयोंका चिन्तन नहीं करती है॥ ३३॥

उस समय बुद्धि सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले कार्यको अपनाती है; इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्योंमें नहीं फँसती। बुद्धि बिना प्रयासके ही धर्म तथा यज्ञादि कर्ममें प्रवृत्त हो जाती है। मोक्षकी अभिलाषासे मनुष्य उस समय सात्त्विक पदार्थोंके भोगमें प्रवृत्त रहता है; वह राजसी भोगोंमें लिप्त नहीं होता, तब भला वह तमोगुणी कार्योंमें क्यों लगेगा?॥ ३४-३५॥

इस प्रकार पहले रजोगुणको जीत करके वह तमोगुणको पराजित करता है। हे तात! उस समय एकमात्र विशुद्ध सत्त्वगुण ही स्थित रहता है॥ ३६॥

जब मनुष्यके मनमें रजोगुणकी वृद्धि होती है, तब वह सनातन धर्मोंको त्यागकर राजसी श्रद्धाके वशीभूत हो विपरीत धर्माचरण करने लगता है॥ ३७॥

राजसादर्थसंवृद्धिस्तथा भोगस्तु राजसः।
सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापि निग्रहः॥ ३८

यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं सम्बभूव ह।
तदा वेदे न विश्वासो धर्मशास्त्रे तथैव च॥ ३९

श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोति च धनात्ययम्।
द्रोहं सर्वत्र कुरुते न शान्तिमधिगच्छति॥ ४०

जित्वा सत्त्वं रजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः।
वर्तते कामचारेण भावेषु विततेषु च॥ ४१

एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा।
सहैवाश्रित्य वर्तन्ते गुणा मिथुनधर्मिणः॥ ४२

रजो विना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित्।
तमो विना न चैवैते वर्तन्ते पुरुषर्षभ॥ ४३

तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन।
सर्वे मिथुनधर्माणो गुणाः कार्यान्तरेषु वै॥ ४४

अन्योन्यसंश्रिताः सर्वे तिष्ठन्ति न वियोजिताः।
अन्योन्यजनकाश्चैव यतः प्रसवधर्मिणः॥ ४५

सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत।
कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि॥ ४६

कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे।
जनयन्त्येवमन्योन्यं मृत्पिण्डश्च घटं यथा॥ ४७

बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयन्ति परस्परम्।
देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयो यथा॥ ४८

रजोगुण बढ़नेसे धनकी वृद्धि होती है और भोग भी राजसी हो जाता है। उस दशामें सत्त्वगुण दूर चला जाता है और उससे तमोगुण भी दब जाता है॥ ३८॥

जब तमोगुणकी वृद्धि होती है और वह उत्कट हो जाता है, तब वेद तथा धर्मशास्त्रमें विश्वास नहीं रह जाता। उस समय मनुष्य तामसी श्रद्धा प्राप्त करके धनका दुरुपयोग करता है, सबसे द्रोह करने लगता है तथा उसे शान्ति नहीं मिलती। वह क्रोधी, दुर्बुद्धि तथा दुष्ट मनुष्य सत्त्व तथा रजोगुणको दबाकर अनेकविध तामसिक विचारोंमें लीन रहता हुआ मनमाना आचरण करने लगता है॥ ३९—४१॥

किसी भी प्राणीमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहते; अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक-दूसरेके आश्रयीभूत होकर रहते हैं॥ ४२॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! रजोगुणके बिना सत्त्वगुण और सत्त्वगुणके बिना रजोगुण कदापि रह नहीं सकते। इसी प्रकार तमोगुणके बिना ये दोनों गुण नहीं रह सकते। इस प्रकार ये गुण परस्पर स्थित रहते हैं। सत्त्वगुण तथा रजोगुणके बिना तमोगुण नहीं रहता; क्योंकि इन मिश्रित धर्मवाले सभी गुणोंकी स्थिति कार्य-कारण-भावसे विभिन्न प्रकारकी होती है॥ ४३-४४॥

ये सभी गुण अन्योन्याश्रयभावसे विद्यमान रहते हैं, अलग-अलग भावसे नहीं। प्रसवधर्मी होनेके कारण ये एक-दूसरेके उत्पादक भी होते हैं॥ ४५॥

सत्त्वगुण कभी रजोगुणको और कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है; इसी तरह रजोगुण कभी सत्त्वगुणको तथा कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार तमोगुण कभी सत्त्वगुणको एवं कभी रजोगुणको भी उत्पन्न करता है। ये तीनों गुण आपसमें एक-दूसरेको उसी प्रकार उत्पन्न कर देते हैं, जिस प्रकार मिट्टीका लोंदा घड़ेको उत्पन्न कर देता है॥ ४६-४७॥

मनुष्योंकी बुद्धिमें स्थित ये तीनों गुण परस्पर कामनाओंको उसी प्रकार जाग्रत् करते हैं; जैसे देवदत्त, विष्णुमित्र और यज्ञदत्त आदि मिलकर काम करते हैं॥ ४८॥

यथा स्त्रीपुरुषश्चैव मिथुनौ च परस्परम्।
तथा गुणाः समायान्ति युग्मभावं परस्परम्॥ ४९

रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुने रजः।
उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः॥ ५०

नारद उवाच

इत्येतत्कथितं पित्रा गुणरूपमनुत्तमम्।
श्रुत्वाप्येतत्स एवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम्॥ ५१

जिस प्रकार स्त्री और पुरुष आपसमें मिथुन-भावको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ये तीनों गुण परस्पर युग्म-भावको प्राप्त रहते हैं॥ ४९॥

रजोगुणका युग्म-भाव होनेपर सत्त्वगुण, सत्त्वगुणका युग्म-भाव होनेपर रजोगुण और तमोगुणके युग्म-भावसे सत्त्वगुण तथा रजोगुण—ये दोनों उत्पन्न होते हैं—ऐसा कहा गया है॥ ५०॥

नारदजी बोले—इस प्रकार पिताजीने तीनों गुणोंके अत्युत्तम स्वरूपका वर्णन किया। इसे सुननेके पश्चात् मैंने पुनः पितामह ब्रह्माजीसे पूछा॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
गुणानां रूपसंस्थानादिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

~~०~~

अथ नवमोऽध्यायः

गुणोंके परस्पर मिश्रीभावका वर्णन, देवीके बीजमन्त्रकी महिमा

नारद उवाच

गुणानां लक्षणं तात भवता कथितं किल।
न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम्॥ १

गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय।
येनाहं परमां शान्तिमधिगच्छामि चेतसि॥ २

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना।
उवाच च जगत्कर्ता रजोगुणसमुद्भवः॥ ३

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम्।
सम्यङ् नाहं विजानामि यथामति वदामि ते॥ ४

सत्त्वं तु केवलं नैव कुत्रापि परिलक्ष्यते।
मिश्रीभावस्तु तेषां वै मिश्रत्वं प्रतिभाति वै॥ ५

यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता।
हावभावयुता कामं भर्तुः प्रीतिकरी भवेत्॥ ६

नारदजी बोले—हे तात! आपने गुणोंके लक्षणोंका वर्णन किया, किंतु आपके मुखसे निःसृत वाणीरूपी मधुर रसका पान करता हुआ मैं अभी भी तृप्त नहीं हुआ हूँ॥ १॥

अतएव अब आप इन गुणोंके सूक्ष्म ज्ञानका यथावत् वर्णन कीजिये, जिससे मैं अपने हृदयमें परम शान्तिका अनुभव कर सकूँ॥ २॥

व्यासजी बोले—अपने पुत्र महात्मा नारदके इस प्रकार पूछनेपर रजोगुणसे आविर्भूत सृष्टि-निर्माता ब्रह्माजीने कहा॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं गुणोंका विस्तृत वर्णन करूँगा; यद्यपि मैं इस विषयमें सम्यक् ज्ञान नहीं रखता फिर भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे वर्णन कर रहा हूँ॥ ४॥

केवल सत्त्वगुण कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। गुणोंका परस्पर मिश्रीभाव होनेके कारण वह सत्त्वगुण भी मिश्रित दिखायी देता है॥ ५॥

जिस प्रकार सब भूषणोंसे विभूषित तथा हाव-भावसे युक्त कोई सुन्दरी स्त्री अपने पतिको विशेष प्रिय होती है तथा माता-पिता एवं बन्धु-बान्धवोंके

मातापित्रोस्तथा सैव बन्धुवर्गस्य प्रीतिदा।
दुःखं मोहं सपत्नीषु जनयत्यपि सैव हि॥ ७

एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च।
रजसस्तमसश्चैव जनिता वृत्तिरन्यथा॥ ८

रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः।
अन्योन्यस्य समायोगादन्यथा प्रतिभाति वै॥ ९

अवस्थानात्स्वभावेषु न वै जात्यन्तराणि च।
लक्ष्यन्ते विपरीतानि योगान्नारद कुत्रचित्॥ १०

यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता।
लज्जामाधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता॥ ११

कामशास्त्रविधिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपि सम्मता।
भर्तुः प्रीतिकरी भूत्वा सपत्नीनां च दुःखदा॥ १२

मोहदुःखस्वभावस्था सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः।
तथा सत्त्वं विकुर्वाणमन्यभावं विभाति वै॥ १३

चौरैरुपद्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत्।
दुःखा मूढा च दस्यूनां सैव सेना तथागुणा॥ १४

विपरीतप्रतीतिं वै जनयन्ति स्वभावतः।
यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम्॥ १५

विद्युत्स्तनितसंयुक्तं तिमिरेणावगुण्ठितम्।
सिञ्चद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम्॥ १६

यदेतत्कर्षकाणां वै तदेवातीव दुर्दिनम्।
बीजोपस्करयुक्तानां सुखदं प्रभवत्युत॥ १७

अप्रच्छन्नगृहाणाञ्च दुर्भगानां विशेषतः।
तृणकाष्ठगृहीतानां दुःखदं गृहमेधिनाम्॥ १८

लिये भी प्रीतिकर होती है, किंतु वही स्त्री अपनी सौतोंके मनमें दुःख और मोह उत्पन्न करती है। इसी प्रकार सत्त्वगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर रजोगुण और तमोगुणसे मिलनेपर भिन्न वृत्ति उत्पन्न होती है। ऐसे ही रजोगुण तथा तमोगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर एक-दूसरेके परस्पर संयोगके कारण विपरीत भावना प्रतीत होती है॥ ६—९॥

हे नारद! यदि ये तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होते तो उनके स्वभावमें एक-सी ही प्रवृत्ति रहती, किंतु तीनों गुणोंमें मिश्रण होनेके कारण ही विभिन्नताएँ दिखायी देती हैं॥ १०॥

जैसे कोई रूपवती स्त्री यौवन, लज्जा, माधुर्य तथा विनयसे युक्त हो, साथ ही वह धर्मशास्त्रके अनुकूल हो तथा कामशास्त्रको जाननेवाली हो, तो वह अपने पतिके लिये प्रीतिकर होती है; किंतु सौतोंके लिये कष्ट देनेवाली होती है॥ ११-१२॥

[सौतोंके लिये] मोह तथा दुःख देनेवाली होनेपर भी कुछ लोगोंके द्वारा वह सत्त्वगुणी कही जाती है और सत्त्वगुणके अनेक शुभ कार्य करनेपर भी वह सौतोंको विपरीत भाववाली प्रतीत होती है॥ १३॥

जैसे राजाकी सेना चोरोंसे पीड़ित सज्जनोंके लिये सुख देनेवाली होती है, किंतु वही सेना चोरोंके लिये दुःखदायिनी, मूढ़ तथा गुणहीन होती है॥ १४॥

इससे प्रकट होता है कि स्वाभाविक गुण भी विपरीत लक्षणोंवाले दीख पड़ते हैं। जैसे किसी दिन जब चारों ओर काले-काले मेघ घिर आये हों, बिजली चमक रही हो, मेघ गरज रहे हों, अन्धकारसे आच्छादित हो और घनघोर वर्षाके कारण सूखी भूमि सिंच रही हो, तब भी लोग उसे तमोरूप गाढ़ान्धकारसे व्याप्त दुर्दिन नामसे ही पुकारते हैं। एक ओर वही दुर्दिन किसानोंको खेत जोतने तथा बीज बोनेकी सुविधा देनेके कारण सुखदायी प्रतीत होता है, किंतु दूसरी ओर वही दुर्दिन उन अभागे गृहस्थोंके लिये दुःखदायी हो जाता है, जिनके घर अभी छाये नहीं जा सके हैं और जो तृण, काष्ठ आदिके संग्रहमें व्यस्त हैं। साथ ही वही दुर्दिन उन स्त्रियोंके हृदयमें शोक उत्पन्न करता है, जिनके पति परदेश गये हों।

प्रोषितभर्तृकाणां वै मोहदं प्रवदन्त्यपि।
स्वभावस्था गुणाः सर्वे विपरीता विभान्ति वै॥ १९

लक्षणानि पुनस्तेषां शृणु पुत्र ब्रवीम्यहम्।
लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विशदं सदा॥ २०

यदाङ्गानि लघून्येव नेत्रादीनीन्द्रियाणि च।
निर्मलं च तथा चेतो गृह्णाति विषयान्न तान्॥ २१

तदा सत्त्वं शरीरे वै मन्तव्यञ्च समुत्कटम्।
जृम्भां स्तम्भं च तन्द्रां च चलञ्चैव रजः पुनः॥ २२

यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित्।
कलिं मृगयते कर्तुं गन्तुं ग्रामान्तरं तथा॥ २३

चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा।
गुरुमावरणं कामं तमो भवति तद्यदा॥ २४

तदाङ्गानि गुरूण्याशु प्रभवन्त्यावृतानि च।
इन्द्रियाणि मनः शून्यं निद्रां नैवाभिवाञ्छति॥ २५

गुणानां लक्षणान्येवं विज्ञेयानीह नारद।

नारद उवाच

विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ताः पितामह गुणास्त्रयः॥ २६

कथमेकत्र संस्थाने कार्यं कुर्वन्ति शाश्वतम्।
परस्परं मिलित्वा हि विभिन्नाः शत्रवः किल॥ २७

एकत्रस्थाः कथं कार्यं कुर्वन्तीति वदस्व मे।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः॥ २८

प्रदीपश्च यथा कार्यं प्रकरोत्यर्थदर्शनम्।
वर्तिस्तैलं यथार्चिश्च विरुद्धाश्च परस्परम्॥ २९

विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह सङ्गतम्।
तैलं वर्तिविरोध्येव पावकोऽपि परस्परम्॥ ३०
एकत्रस्थाः पदार्थानां प्रकुर्वन्ति प्रदर्शनम्।

उसी प्रकार ये सत्त्वादि गुण अपनी स्वाभाविक परिस्थितिमें रहते हुए भी अन्य गुणोंसे मिलनेपर विपरीत दृष्टिगोचर होते हैं॥ १५—१९॥

हे पुत्र! अब मैं उन गुणोंके लक्षण पुनः बता रहा हूँ; सुनो। सत्त्वगुण सूक्ष्म, प्रकाशक, स्वच्छ, निर्मल एवं व्यापक होता है। जब मानवके सम्पूर्ण अंग और नेत्र आदि इन्द्रियाँ हल्के हों, मन निर्मल हो तथा वह उन राजस एवं तामस विषयोंको न ग्रहण करता हो, तब यह समझ लेना चाहिये कि शरीरमें अब सत्त्वगुण प्रधानरूपसे विद्यमान है। जब जिस किसीकी देहमें रजोगुण प्रधानरूपसे विद्यमान रहता है तब यह बार-बार जम्हाई, स्तम्भन, तन्द्रा तथा चंचलता उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जब अत्यन्त कलह करनेका मन चाहता हो, अन्यत्र जानेकी इच्छा हो, चित्त चंचल हो और वाद-विवादमें उलझनेकी प्रवृत्ति हो, मनमें काम-भावनाका गहरा परदा पड़ जाय, तब यह समझ ले कि शरीरमें तमोगुणकी प्रधानता है। उस समय शरीरके अंग भारी हो जाते हैं, इन्द्रियाँ तामसिक भावोंके वशीभूत रहती हैं, चित्त विमूढ़ रहता है और वह निद्राकी इच्छा नहीं करता। हे नारद! इस प्रकार सभी गुणोंके लक्षण समझना चाहिये॥ २०—२५½॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने तीनों गुणोंको भिन्न-भिन्न लक्षणोंवाला बताया, तो फिर ये एक स्थानमें होकर निरन्तर कार्य कैसे करते हैं? विपरीत होते हुए भी शत्रुरूप ये गुण एकत्र होकर परस्पर मिल करके किस प्रकार कार्य करते हैं; यह मुझे बताइये॥ २६-२७½॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! सुनो, मैं बताता हूँ। उन तीनों गुणोंका स्वभाव दीपकके समान है। जैसे दीपकमें तेल, बत्ती और अग्निशिखा तीनों परस्पर विरोधी धर्मवाले हैं, परंतु तीनोंके सहयोगसे ही दीपक वस्तुओं आदिका दर्शन कराता है। यद्यपि आगके साथ मिला हुआ तेल आगका विरोधी है और तेल बत्ती तथा अग्निका विरोधी है तथापि वे एकत्र होकर वस्तुओंका दर्शन कराते हैं॥ २८—३०½॥

नारद उवाच

एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गुणाः सत्यवतीसुत॥ ३१
विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तं नारदेनाथ मम सर्वं सविस्तरम् ॥ ३२
गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः।
आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं ततम्॥ ३३
सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि।
अकर्ता पुरुषः पूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः॥ ३४
करोत्येषा महामाया विश्वं सदसदात्मकम्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सूर्यश्चन्द्रः शचीपतिः॥ ३५
अश्विनौ वसवस्त्वष्टा कुबेरो यादसां पतिः।
वह्निर्वायुस्तथा पूषा सेनानीश्च विनायकः॥ ३६
सर्वे शक्तियुताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च।
अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पन्दितुमनीश्वराः॥ ३७
सा चैव कारणं राजन् जगतः परमेश्वरी।
समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप॥ ३८
पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः।
महालक्ष्मीर्महाकाली तथा महासरस्वती॥ ३९
ईश्वरी सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम्।
सर्वकामार्थदा शान्ता सुखसेव्या दयान्विता॥ ४०
नामोच्चारणमात्रेण वाञ्छितार्थफलप्रदा।
देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥ ४१
मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः।
अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसङ्गेनापि भाषितम्॥ ४२
ददाति वाञ्छितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा।
ऐ ऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने॥ ४३

नारदजी बोले—हे सत्यवतीसुत व्यासजी! ये सत्त्वादि तीनों गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न कहे गये हैं और ये जगत्के कारण हैं, जैसा मैंने पहले भी सुना है॥ ३१½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार नारदजीने विस्तारपूर्वक गुणोंके लक्षण और उनके विभागोंके सहित कार्योंको भी मुझे बतलाया है। सर्वदा उन्हीं परमशक्तिकी आराधना करनी चाहिये, जिनसे यह समस्त संसार व्याप्त है। वे भगवती कार्यभेदसे सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं। वह परमपुरुष तो अकर्ता, पूर्ण, निःस्पृह तथा परम अविनाशी है; ये महामाया ही सत् और असद्रूप जगत्की रचना करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, विश्वकर्मा, कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा, कुमार कार्तिकेय और गणपति—ये सभी देवता उन्हीं महामायाकी शक्तिसे युक्त होकर अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। हे मुनीश्वरो! यदि ऐसा न हो तो वे हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३२—३७॥

हे राजन्! वे परमेश्वरी ही इस जगत्की परम कारण हैं, अतः हे नरपते! अब आप उन्हींकी आराधना करें, उन्हींका यज्ञ करें और परम भक्तिके साथ विधिवत् उन्हींका पूजन करें। वे ही महालक्ष्मी, महाकाली एवं महासरस्वती हैं। वे सब जीवोंकी अधीश्वरी, समस्त कारणोंकी एकमात्र कारण, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, शान्तस्वरूपिणी, सुखपूर्वक सेवनीय तथा दयासे परिपूर्ण हैं॥ ३८—४०॥

ये भगवती नामोच्चारणमात्रसे ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं। पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अनेक जितेन्द्रिय तपस्वियोंने उनकी आराधना की थी। किसी प्रसंगवश अस्पष्टरूपसे ही उच्चारित किया गया उनका नाम सर्वथा दुर्लभ मनोरथोंको भी पूर्ण कर देता है॥ ४१—४२½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त है—सत्यव्रत नामके एक मुनिने वनमें व्याघ्रादि हिंसक पशुओंको देखकर भयसे पीड़ित होकर 'ऐ-ऐ'

बिन्दुहीनमपीत्युक्तं वाञ्छितं प्रददाति वै।
तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टान्तो नृपसत्तम॥ ४४

प्रत्यक्ष एव चास्माकं मुनीनां भावितात्मनाम्।
ब्राह्मणानां समाजेषु तस्योदाहरणं बुधैः॥ ४५

कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम्।
अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः॥ ४६

श्रुत्वाक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्य स्वयं ततः।
बिन्दुहीनं प्रसङ्गेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः॥ ४७

ऐकारोच्चारणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा।
चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी॥ ४८

शब्दका उच्चारण किया था। उस बिन्दुरहित बीजमन्त्र (ऐं)-का उच्चारण करनेके फलस्वरूप उसे भगवतीने मनोवांछित फल प्रदान कर दिया था। यह दृष्टान्त हम पुण्यात्मा मुनियोंके लिये प्रत्यक्ष ही है॥ ४३—४४॥

हे राजन्! ब्राह्मणोंकी सभामें विद्वानोंके द्वारा उदाहरणके रूपमें उस सत्यव्रतके कहे जाते हुए सम्पूर्ण आख्यानको मैंने विस्तारपूर्वक सुना था। सत्यव्रत नामवाले उस निरक्षर तथा महामूर्ख ब्राह्मणने वह ‘ऐ-ऐ’ शब्द एक कोलके मुखसे सुनकर स्वयं भी उसका उच्चारण किया। बिन्दुरहित ‘ऐं’ बीजका उच्चारण करनेसे भी वह श्रेष्ठ विद्वान् हो गया। ऐकारके उच्चारणमात्रसे भगवती प्रसन्न हो गयीं और दयार्द्र होकर उन परमेश्वरीने उसे कविराज बना दिया॥ ४५—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
गुणपरिज्ञानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

देवीके बीजमन्त्रकी महिमाके प्रसंगमें सत्यव्रतका आख्यान

जनमेजय उवाच

कोऽसौ सत्यव्रतो नाम ब्राह्मणो द्विजसत्तमः।
कस्मिन्देशे समुत्पन्नः कीदृशश्च वदस्व मे॥ १

कथं तेन श्रुतः शब्दः कथमुच्चारितः पुनः।
सिद्धिश्च कीदृशी जाता तस्य विप्रस्य तत्क्षणात्॥ २

कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञा सर्वसंस्थिता।
विस्तरेण वदस्वाद्य कथामेतां मनोरमाम्॥ ३

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः।
उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि॥ ४

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्।
श्रुता मुनिसमाजेषु मया पूर्वं कुरूद्वह॥ ५

जनमेजय बोले—वह द्विजश्रेष्ठ सत्यव्रत नामक ब्राह्मण कौन था, वह किस देशमें पैदा हुआ था तथा कैसा था? यह मुझे बताइये॥ १॥

उस ब्राह्मणने ‘ऐ’ शब्द कैसे सुना और फिर स्वयं भी कैसे उसका उच्चारण किया? उच्चारण करते ही उसी क्षण उस ब्राह्मणको कैसी सिद्धि प्राप्त हुई? सर्वत्र विराजमान रहनेवाली तथा सब कुछ जाननेवाली वे भवानी उसपर किस प्रकार प्रसन्न हो गयीं? अब आप यह मनोरम कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ २-३॥

सूतजी बोले—राजा जनमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत व्यासजी सरस, पवित्र एवं परम उदार वचन कहने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं वह पवित्र पौराणिक कथा कह रहा हूँ। हे कुरुनन्दन! पूर्वकालमें मुनियोंके समाजमें मैंने यह कथा सुनी थी॥ ५॥

एकदाहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम्॥ ६

प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान् स्थितस्तत्र वराश्रमे।
विधिपुत्रास्तु यत्रासञ्जीवन्मुक्ता महाव्रताः॥ ७

कथाप्रसङ्ग एवासीत्तत्र विप्रसमागमे।
जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं सभास्थितः॥ ८

जमदग्निरुवाच

सन्देहोऽस्ति महाभागा मम चेतसि तापसाः।
समाजेषु मुनीनां वै निःसन्देहो भवाम्यहम्॥ ९

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः।
कुबेरः पवनस्त्वष्टा सेनानीश्च गणाधिपः॥ १०

सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहास्तथा।
आराधनीयतमः कोऽत्र वाञ्छितार्थफलप्रदः॥ ११

सुखसेव्यश्च सततं चाशुतोषश्च मानदाः।
ब्रुवन्तु मुनयः शीघ्रं सर्वज्ञाः संशितव्रताः॥ १२

एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत्।
जमदग्ने शृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाधुना॥ १३

सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषां शुभमिच्छताम्।
परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदा शिवा॥ १४

देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनां महात्मनाम्।
आदिप्रकृतिमूलं सा संसारपादपस्य वै॥ १५

स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वाञ्छितम्।
सर्वदैवार्द्रचित्ता सा वरदानाय सेविता॥ १६

इतिहासं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयः शुभम्।
अक्षरोच्चारणादेव यथा प्राप्तं द्विजेन वै॥ १७

कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः।
अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम्॥ १८

हे कुरुश्रेष्ठ! एक बार तीर्थाटन करता हुआ मैं मुनियोंद्वारा सेवित पवित्र क्षेत्र नैमिषारण्यमें जा पहुँचा। वहाँ सभी मुनियोंको प्रणाम करके मैं एक उत्तम आश्रममें ठहर गया, जहाँ ब्रह्माके पुत्र महाव्रती एवं जीवन्मुक्त मुनि निवास कर रहे थे॥ ६-७॥

उस ब्राह्मणसमाजमें कथाका ही प्रसंग चल रहा था। सभामें उपस्थित महर्षि जमदग्निने सब मुनियोंसे यह पूछा—॥ ८॥

जमदग्नि बोले—हे महाभाग तपस्वियो! मेरे मनमें एक शंका है। निश्चय ही इस मुनिसमाजमें मैं शंकारहित हो जाऊँगा। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, वायु, विश्वकर्मा, कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, भग, पूषा, चन्द्रमा और सभी ग्रह—इन सबमें सबसे अधिक आराधनीय तथा अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला कौन है? उनमें कौन देवता सदा सेव्य और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है? हे मानद! हे सर्वज्ञ! हे व्रतधारी मुनिगण! आप हमें शीघ्र बतायें॥ ९—१२॥

इस प्रकार जमदग्निके प्रश्न करनेपर लोमश-ऋषिने कहा—हे जमदग्ने! आपने इस समय जो पूछा है, उसे सुनिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये वे एकमात्र महाशक्ति ही आराधनीय हैं। वे ही परा-प्रकृति आदिस्वरूपा, सर्वगामिनी, सर्वदायिनी और कल्याणकारिणी हैं। वे ही ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंकी जननी हैं और वे ही संसाररूपी वृक्षकी मूलरूपिणी आदिप्रकृति हैं॥ १३—१५॥

वे भगवती केवल नामका उच्चारण तथा स्मरण करते ही निश्चितरूपसे अभीष्ट फल प्रदान करती हैं। जो लोग उनकी उपासना करते हैं, उन्हें वरदान देनेके लिये वे सर्वदा दयालुचित्त रहती हैं॥ १६॥

हे मुनिगण! उनके नामाक्षरके उच्चारण-मात्रसे ही एक ब्राह्मणने जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की थी, वह पवित्र वृत्तान्त मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये—॥ १७॥

कोसलदेशमें देवदत्त नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह निःसन्तान था, इसलिये उसने पुत्रप्राप्तिके लिये विधिपूर्वक यज्ञ किया॥ १८॥

तमसातीरमास्थाय कृत्वा मण्डपमुत्तमम्।
द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान्॥ १९

कृत्वा वेदीं विधानेन स्थापयित्वा विभावसून्।
पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तमः॥ २०

ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रं मुनिसत्तमम्।
अध्वर्युं याज्ञवल्क्यञ्च होतारं च बृहस्पतिम्॥ २१

प्रस्तोतारं तथा पैलमुद्गातारं च गोभिलम्।
सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौ वसु॥ २२

उद्गाता सामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम्।
रथन्तरमगायत्तु स्वरितेन समन्वितम्॥ २३

तदास्य स्वरभङ्गोऽभूत्कृते श्वासे मुहुर्मुहुः।
देवदत्तश्चुकोपाशु गोभिलं प्रत्युवाच ह॥ २४

मूर्खोऽसि मुनिमुख्याद्य स्वरभङ्गस्त्वया कृतः।
काम्यकर्मणि सञ्जाते पुत्रार्थं यजतश्च मे॥ २५

गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः।
मूर्खस्ते भविता पुत्रः शठः शब्दविवर्जितः॥ २६

सर्वप्राणिशरीरे तु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः।
न मेऽत्र दूषणं किञ्चित्स्वरभङ्गे महामते॥ २७

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्य महात्मनः।
शापाद्भीतो देवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः॥ २८

कथं क्रुद्धोऽसि विप्रेन्द्र वृथा मयि निरागसि।
अक्रोधना हि मुनयो भवन्ति सुखदाः सदा॥ २९

स्वल्पेऽपराधे विप्रेन्द्र कथं शप्तस्त्वया ह्यहम्।
अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक् तापयुक्तः पुनः कृतः॥ ३०

मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः।
तथापि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निन्द्य एव हि॥ ३१

तमसानदीके तटपर पहुँचकर उसने उत्तम यज्ञ-मण्डप बनवाया और वेदज्ञ तथा यज्ञकर्ममें निपुण ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके विधिपूर्वक यज्ञवेदी बनवाकर तथा अग्नि-स्थापन करके उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया॥ १९-२०॥

उसने उस यज्ञमें मुनिवर सुहोत्रको 'ब्रह्मा', याज्ञवल्क्यको 'अध्वर्यु' तथा बृहस्पतिको 'होता', पैलमुनिको 'प्रस्तोता' तथा गोभिलको 'उद्गाता' बनाया एवं अन्यान्य उपस्थित मुनियोंको यज्ञका सभासद् बनाकर उन्हें विधिवत् प्रचुर धन प्रदान किया॥ २१-२२॥

सामवेदका गान करनेवाले श्रेष्ठ उद्गाता गोभिलमुनि सातों स्वरोंसे युक्त तथा स्वरितसे समन्वित रथन्तर सामका गान करने लगे॥ २३॥

बार-बार श्वास लेनेके कारण गोभिलका स्वर भंग हो गया। तब देवदत्तको क्रोध आ गया और उसने तुरंत गोभिलमुनिसे कहा—हे मुनिमुख्य! तुम मूर्ख हो, तुमने आज मेरेद्वारा पुत्रप्राप्तिके लिये किये जाते हुए इस काम्यकर्ममें स्वरभंग कर दिया॥ २४-२५॥

तब गोभिलमुनि अत्यन्त क्रोधित होकर देवदत्तसे कहने लगे—[इस यज्ञके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाला] तुम्हारा पुत्र मूर्ख, शठ और गूँगा होगा। हे महामते! सभी प्राणियोंके शरीरमें श्वास आता-जाता रहता है। इसे रोक पाना बड़ा कठिन है। अतः ऐसी स्थितिमें स्वरभंग हो जानेमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है॥ २६-२७॥

महात्मा गोभिलका यह वचन सुनकर शापसे भयभीत देवदत्तने अत्यन्त दुःखी होकर उनसे कहा—हे विप्रवर! आप मुझ निर्दोषपर व्यर्थ ही क्यों क्रुद्ध हैं? मुनिलोग तो सदा क्रोधरहित और सुखदायक होते हैं॥ २८-२९॥

हे विप्र! थोड़ेसे अपराधपर आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? पुत्रहीन होनेके कारण मैं तो पहलेसे ही बहुत दुःखी था, उसपर भी शाप देकर आपने मुझे और भी दुःखी कर दिया। वेदके विद्वानोंने कहा है कि मूर्ख पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना अच्छा है। उसपर भी मूर्ख ब्राह्मण तो सबके लिये निन्दनीय होता

पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु।
किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम॥ ३२

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः।
न पूजार्हो न दानार्हो निन्द्यश्च सर्वकर्मसु॥ ३३

देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः।
करदः शूद्रवच्चैव मन्तव्यः स च भूभुजा॥ ३४

नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः।
मूर्खः समुपवेश्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता॥ ३५

राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु।
कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेदवर्जितः॥ ३६

विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं कुशचटेन वै।
न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन॥ ३७

आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपण्डिते।
दाता नरकमाप्नोति ग्रहीता तु विशेषतः॥ ३८

धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधा जनाः।
पूज्यन्ते ब्राह्मणा मूर्खा दानमानादिकैरपि॥ ३९

आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि।
मूर्खपण्डितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै॥ ४०

मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः।
तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन॥ ४१

असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः।
पिचुमन्दः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते॥ ४२

है। वह पशु एवं शूद्रके समान सभी कार्योंमें अयोग्य माना जाता है। अतः हे विप्रवर! मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूँगा?॥ ३०—३२॥

मूर्ख ब्राह्मण शूद्रतुल्य होता है; इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि वह न तो पूजाके योग्य होता है और न दान लेनेका पात्र ही होता है। वह सब कार्योंमें निन्द्य होता है॥ ३३॥

किसी देशमें रहता हुआ वेदशास्त्रविहीन ब्राह्मण कर देनेवाले शूद्रकी भाँति एक राजाके द्वारा समझा जाना चाहिये॥ ३४॥

फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि देव तथा पितृकार्योंके अवसरपर उस मूर्ख ब्राह्मणको आसनपर न बैठाये॥ ३५॥

राजा भी वेदविहीन ब्राह्मणको शूद्रके समान समझे और उसे शुभ कार्योंमें नियुक्त न करे, बल्कि उसे कृषिके काममें लगा दे॥ ३६॥

ब्राह्मणके अभावमें कुशके चटसे स्वयं श्राद्धकार्य कर लेना ठीक है, किंतु मूर्ख ब्राह्मणसे कभी भी श्राद्धकार्य नहीं कराना चाहिये॥ ३७॥

मूर्ख ब्राह्मणको भोजनसे अधिक अन्न नहीं देना चाहिये; क्योंकि देनेवाला व्यक्ति नरकमें जाता है और लेनेवाला तो विशेषरूपसे नरकगामी होता है॥ ३८॥

उस राजाके राज्यको धिक्कार है, जिसके राज्यमें मूर्खलोग निवास करते हैं और मूर्ख ब्राह्मण भी दान, सम्मान आदिसे पूजित होते हैं, साथ ही जहाँ मूर्ख और पण्डितके बीच आसन, पूजन और दानमें रंचमात्र भी भेद नहीं माना जाता। अतः विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह मूर्ख और पण्डितकी जानकारी अवश्य कर ले॥ ३९-४०॥

जहाँ दान, मान तथा परिग्रहसे मूर्खलोग महान् गौरवशाली माने जाते हैं, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं रहना चाहिये। दुर्जन व्यक्तियोंकी सम्पत्तियाँ दुर्जनोंके उपकारके लिये ही होती हैं। जैसे अधिक फलोंसे लदे हुए नीमके वृक्षका उपभोग केवल कौए ही करते हैं॥ ४१-४२॥

भुक्त्वान्नं वेदविद्विप्रो वेदाभ्यासं करोति वै।
क्रीडन्ति पूर्वजाः तस्य स्वर्गे प्रमुदिताः किल॥ ४३

गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम।
संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणादतिगर्हितम्॥ ४४

कृपां कुरु महाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति।
दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामि तव पादयोः॥ ४५

लोमश उवाच

इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्य पादयोः।
स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः॥ ४६

गोभिलस्तु तदा तत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम्।
क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः॥ ४७

जलं स्वभावतः शीतं पावकातपयोगतः।
उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत्॥ ४८

दयावान्गोभिलस्त्वाह देवदत्तं सुदुःखितम्।
मूर्खो भूत्वा सुतस्ते वै विद्वानपि भविष्यति॥ ४९

इति दत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद् द्विजर्षभः।
इष्टिं समाप्य विप्रान्वै विससर्ज यथाविधि॥ ५०

कालेन कियता तस्य भार्या रूपवती सती।
गर्भं दधार काले सा रोहिणी रोहिणीसमा॥ ५१

गर्भाधानादिकं कर्म चकार विधिवद् द्विजः।
पुंसवनविधानञ्च शृङ्गारकरणं तथा॥ ५२

सीमन्तोन्नयनञ्चैव कृतं वेदविधानतः।
ददौ दानानि मुदितो मत्वेष्टिं सफलां तथा॥ ५३

शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणीयुते।
दिने लग्ने शुभेऽत्यर्थं जातकर्म चकार सः॥ ५४

पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च।
उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा॥ ५५

वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है, उसके पूर्वज परम प्रसन्न होकर स्वर्गमें विहार करते हैं॥ ४३॥

अतएव हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ गोभिल मुने! आपने यह क्या कह दिया। इस संसारमें मूर्ख पुत्रका पिता होना तो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टप्रद होता है॥ ४४॥

हे महाभाग! अब आप इस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये। आप दीनोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। मैं आपके पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ४५॥

लोमश बोले—यह कहकर देवदत्त अत्यन्त दीनहृदय तथा असहाय होकर नेत्रोंमें आँसू भरकर स्तुति करता हुआ मुनिके पैरोंपर गिर पड़ा॥ ४६॥

तब उस दीनहृदय देवदत्तको देखकर गोभिल-मुनिको दया आ गयी। महात्मालोग क्षणभरके लिये ही कोप करते हैं, किंतु पापियोंका कोप कल्पपर्यन्त बना रहता है। जल स्वभावतः शीतल होता है। वही जल अग्नि तथा धूपके संयोगसे गर्म हो जाता है, किंतु पुनः उनका संयोग हटते ही वह शीघ्र शीतल हो जाता है। तब दयालु गोभिलमुनिने अत्यन्त दुःखित देवदत्तसे कहा—तुम्हारा पुत्र मूर्ख होकर भी बादमें विद्वान् हो जायगा॥ ४७—४९॥

इस प्रकार वर पा लेनेपर द्विजवर देवदत्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणोंको विदा किया॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर देवदत्तकी पतिव्रता तथा रूपवती भार्या रोहिणी जो रोहिणीके समान शुभ लक्षणोंवाली थी, उसने यथासमय गर्भधारण किया॥ ५१॥

देवदत्तने विधि-विधानके साथ गर्भाधान आदि कर्म किये। तत्पश्चात् पुंसवन, शृंगारकरण तथा सीमन्तोन्नयन-संस्कार वेद-विधिके साथ सम्पन्न किये। उस समय अपने यज्ञको सफल जानकर प्रसन्न मनसे उन्होंने बहुत-से दान दिये॥ ५२-५३॥

रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें रोहिणीने पुत्रको जन्म दिया। देवदत्तने शुभ दिन और मुहूर्तमें नवजात शिशुका जातकर्म-संस्कार किया और पुत्रदर्शन करके यथासमय उसका नामकरण भी कर दिया। पूर्व बातोंको जाननेवाले देवदत्तने अपने पुत्रका नाम 'उतथ्य' रखा॥ ५४-५५॥

स चाष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे।
तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता ॥ ५६

वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम्।
नोच्चचार तथोतथ्यः संस्थितो मुग्धवत्तदा ॥ ५७

बहुधा पाठितः पित्रा न दधार मतिं शठः।
मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पिता तदा ॥ ५८

एवं कुर्वन्सदाभ्यासं जातो द्वादशवार्षिकः।
न वेद विधिवत्कर्तुं सन्ध्यावन्दनकं विधिम् ॥ ५९

मूर्खोऽभूदिति लोकेषु गता वार्तातिविस्तरा।
ब्राह्मणेषु च सर्वेषु तापसेष्वितरेषु च ॥ ६०

जहास लोकस्तं विप्रं यत्र तत्र गतं वने।
पिता माता निनिन्दाथ मूर्खं तमतिभर्त्सयन् ॥ ६१

निन्दितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथ बान्धवैः।
वैराग्यमगमद्विप्रो जगाम वनमप्यसौ ॥ ६२

अन्धो वरस्तथा पङ्गुर्न मूर्खस्तु वरः सुतः।
इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां वै विवेश काननं प्रति ॥ ६३

गङ्गातीरे शुभे स्थाने कृत्वोटजमनुत्तमम्।
वन्यां वृत्तिं च संकल्प्य स्थितस्तत्र समाहितः ॥ ६४

नियमं च परं कृत्वा नासत्यं प्रब्रवीम्यहम्।
स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये ब्रह्मचर्यव्रतो हि सः ॥ ६५

आठवें वर्षमें शुभ योग तथा शुभ दिनमें पिता देवदत्तने अपने उस पुत्रका विधिवत् उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया ॥ ५६ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित उतथ्यको आचार्य वेद पढ़ाने लगे, किंतु वह एक शब्दका भी उच्चारण नहीं कर सका, मूढकी भाँति चुपचाप बैठा रहा ॥ ५७ ॥

उसके पिताने उसे अनेक प्रकारसे पढ़ानेका प्रयत्न किया, किंतु उस मूर्खकी बुद्धि उस ओर प्रवृत्त नहीं होती थी। वह मूर्खके समान पड़ा रहता था। इससे उसके पिता देवदत्त उसके लिये बहुत चिन्तित हुए ॥ ५८ ॥

इस प्रकार निरन्तर वेदाभ्यास करते हुए वह बालक बारह वर्षका हो गया, किंतु भलीभाँति सन्ध्यावन्दन करनेतककी विधि भी न जान पाया ॥ ५९ ॥

सभी ब्राह्मणों, तपस्वियों तथा अन्यान्य लोगोंमें यह बात विस्तृतरूपसे फैल गयी कि देवदत्तका पुत्र महामूर्ख निकल गया ॥ ६० ॥

हे मुने! वह जहाँ कहीं जाता, लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। यहाँतक कि उसके माता-पिता भी उस मूर्खको कोसते हुए उसकी निन्दा किया करते थे ॥ ६१ ॥

इस प्रकार जब सभी लोग, माता-पिता तथा बन्धु-बान्धव उसकी निन्दा करने लगे, तब उस ब्राह्मणबालकके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह वनमें चला गया ॥ ६२ ॥

अन्धा या पंगु पुत्र ठीक है, किंतु मूर्ख पुत्र ठीक नहीं है—माता-पिताके ऐसा कहनेपर वह वनमें चला गया ॥ ६३ ॥

गंगाके किनारे एक उत्तम स्थानपर सुन्दर पर्णकुटी बनाकर वह वनवासीका जीवन व्यतीत करते हुए एकनिष्ठ होकर वहीं रहने लगा ॥ ६४ ॥

'मैं असत्य नहीं बोलूँगा'—ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वह उसी सुन्दर आश्रममें रहने लगा ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

~~0~~

अथैकादशोऽध्यायः

सत्यव्रतद्वारा बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण तथा उससे प्रसन्न होकर भगवतीका सत्यव्रतको समस्त विद्याएँ प्रदान करना

लोमश उवाच

न वेदाध्ययनं किञ्चिज्जानाति न जपं तथा।
ध्यानं न देवतानाञ्च न चैवाराधनं तथा॥ १

नासनं वेद विप्रोऽसौ प्राणायामं तथा पुनः।
प्रत्याहारं तु नो वेद भूतशुद्धिञ्च कारणम्॥ २

न मन्त्रकीलकं जाप्यं गायत्रीञ्च न वेद सः।
शौचं स्नानविधिञ्चैव तथाचमनकं पुनः॥ ३

प्राणाग्निहोत्रं नो वेद बलिदानं न चातिथिम्।
न सन्ध्यां समिधो होमं विवेद च तथा मुनिः॥ ४

सोऽकरोत्प्रातरुत्थाय यत्किञ्चिद्दन्तधावनम्।
स्नानं च शूद्रवत्तत्र गङ्गायां मन्त्रवर्जितम्॥ ५

फलान्यादाय वन्यानि मध्याह्नेऽपि यदृच्छया।
भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानं न जानाति शठस्तथा॥ ६

सत्यं ब्रूते स्थितस्तत्र नानृतं वदते पुनः।
जनैः सत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै॥ ७

नाहितं कस्यचित्कुर्यान्न तथाविहितं क्वचित्।
सुखं स्वपिति तत्रैव निर्भयश्चिन्तयन्निति॥ ८

कदा मे मरणं भावि दुःखं जीवामि कानने।
जीवितं धिक्च मूर्खस्य तरसा मरणं ध्रुवम्॥ ९

दैवेनाहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम।
प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं ममाधुना॥ १०

यथा वन्ध्या सुरूपा च यथा वा निष्फलो द्रुमः।
अदुग्धदोहा धेनुश्च तथाहं निष्फलः कृतः॥ ११

लोमश बोले—[हे जमदग्ने!] वह उतथ्य वेदाध्ययन, जप, ध्यान तथा देवताओंकी आराधना आदि कुछ भी नहीं जानता था। वह ब्राह्मण आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार भी नहीं जानता था। वह भूतशुद्धि तथा कारणके विषयमें भी कुछ नहीं जानता था। वह कीलक मन्त्र, जप, गायत्री नहीं जानता था। उसे सम्यक् रूपसे शौच, स्नान-विधि तथा आचमनतकका ज्ञान नहीं था। वह ब्राह्मण प्राणाग्निहोत्र, वैश्वदेव, अतिथि-सत्कार, सन्ध्या-वन्दन, समिधा तथा होम आदिके विषयमें भी नहीं जानता था॥ १—४॥

प्रातःकाल उठकर वह किसी तरह सामान्य रूपसे दन्तधावन कर लेता था, तत्पश्चात् शूद्रकी भाँति बिना मन्त्र बोले ही गंगामें स्नान कर लिया करता था। दोपहरके समय वह अपनी इच्छासे वन्य फल लाकर उन्हें खा लिया करता था। उस मूर्खको भक्ष्य तथा अभक्ष्यका भी ज्ञान नहीं था॥ ५-६॥

वहाँ निवास करता हुआ वह ब्राह्मण सदैव सत्यभाषण करता था और झूठ कभी नहीं बोलता था। [उसकी इस सत्यनिष्ठासे प्रभावित होकर] लोगोंने इस ब्राह्मणका नाम 'सत्यतपा' रख दिया॥ ७॥

वह न तो कभी किसीका अहित करता था और न अविहित कार्य ही करता था। वह यही सोचता हुआ निडर होकर उस कुटीमें सोता था कि मेरी मृत्यु कब होगी? मैं इस वनमें दुःखपूर्वक जी रहा हूँ। मुझ मूर्खके जीवनको धिक्कार है, अतः अब मेरा शीघ्र मर जाना ही उत्तम है॥ ८-९॥

दैवने ही मुझे मूर्ख बनाया है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण मुझे जान नहीं पड़ता। उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण करके भी मैंने अपना जीवन व्यर्थ गँवा दिया॥ १०॥

जैसे रूपसम्पन्न वन्ध्या स्त्री, फलरहित वृक्ष तथा दूध न देनेवाली गाय—ये सब निरर्थक होते हैं, उसी प्रकार मैं भी निष्फल कर दिया गया हूँ॥ ११॥

किन्नु निन्दाम्यहं दैवं नूनं कर्म ममेदृशम्।
न दत्तं पुस्तकं कृत्वा ब्राह्मणाय महात्मने॥ १२

न वै विद्या मया दत्ता पूर्वजन्मनि निर्मला।
तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मि च द्विजाधमः॥ १३

न च तीर्थे तपस्तप्तं सेविता न च साधवः।
न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेन जातोऽस्मि दुष्टधीः॥ १४

वर्तन्ते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः।
अहं सुमूढः सञ्जातो दैवयोगेन केनचित्॥ १५

न जानामि तपस्तप्तुं किं करोमि सुसाधनम्।
मिथ्यायं मेऽत्र सङ्कल्पो न मे भाग्यं शुभं किल॥ १६

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
वृथा श्रमकृतं कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा॥ १७

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याः किल देवताः।
कालस्य वशगाः सर्वे कालो हि दुरतिक्रमः॥ १८

एवंविधान्वितर्कांस्तु कुर्वाणोऽहर्निशं द्विजः।
स्थितस्तत्राश्रमे तीरे जाह्नव्याः पावने स्थले॥ १९

विरक्तः स तु सञ्जातः स्थितस्तत्राश्रमे द्विजः।
कालातिवाहनं शान्तश्चकार विजने वने॥ २०

एवं स्थितस्य तु वने विमलोदके वै
वर्षाणि तत्र नवपञ्च गतानि कामम्।
नाराधनं न च जपं न विवेद मन्त्रं
कालातिवाहनमसौ कृतवान्वने वै॥ २१

जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः
सत्यं वदत्यपि मुनिः किल नामजातम्।
जातं यशश्च सकलेषु जनेषु कामं
सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी॥ २२

मैं दैवको दोष क्यों दूँ? निश्चित रूपसे मेरा कर्म ही ऐसा था। मैंने पुस्तक लिखकर उसे किसी महात्मा ब्राह्मणको दान नहीं दिया। मैंने पूर्वजन्ममें उत्तम विद्याका भी दान नहीं किया, इसीलिये प्रारब्धवश इस जन्ममें मूर्ख और अधम ब्राह्मण हुआ हूँ। मैंने किसी तीर्थमें तप नहीं किया और न साधुओंकी सेवा ही की। धन-दानसे मैंने ब्राह्मणोंकी पूजा भी नहीं की। इसी कारण मैं ऐसा दुर्बुद्धि हुआ॥ १२—१४॥

[मेरे साथके] बहुत-से मुनिकुमार वेदशास्त्रमें पारंगत हो गये, किंतु मैं न जाने किस दुर्विपाकसे महामूर्ख रह गया॥ १५॥

मैं तप करना भी नहीं जानता, तब कौन-सी साधना करूँ? अब तो मेरा यह सब सोचना भी व्यर्थ है; क्योंकि मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं है॥ १६॥

मैं भाग्यको ही सर्वोपरि मानता हूँ। निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि परिश्रमसे किया गया कार्य भी प्रारब्धवश सर्वथा विफल हो जाता है॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता भी कालके वशमें रहते हैं। इसलिये काल सर्वथा अजेय है॥ १८॥

दिन-रात इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करता हुआ वह द्विज गंगाके तटपर स्थित उस पावन आश्रममें रहता था॥ १९॥

अब वह ब्राह्मण सर्वथा विरक्त हो गया और उस निर्जन वनमें स्थित आश्रममें रहता हुआ शान्तचित्त होकर समय बिताने लगा॥ २०॥

इस प्रकार निर्मल जलवाले उस वनमें रहते हुए उस ब्राह्मणके चौदह वर्ष बीत गये; पर उसने न कोई जप किया, न आराधना की और न कोई मन्त्र ही वह जान सका, केवल उसने वनमें रहकर कालक्षेप ही किया॥ २१॥

वहाँके लोग केवल उसके इस प्रसिद्ध व्रतको जानते थे कि यह मुनि सदा सत्य बोलता है। अतः सब लोगोंमें उसका यह सुयश फैल गया कि यह सदा सत्यव्रती है और मिथ्याभाषी नहीं॥ २२॥

तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव
प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः।
क्रीडन्वनेऽतिविपुले यमतुल्यदेहः
क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चातिदक्षः॥ २३

तेनातिकृष्टेन शरेण विद्धः
कोलः किरातेन धनुर्धरेण।
पलायमानो भयविह्वलश्च
मुनेः समीपं विद्रुतो जगाम॥ २४

विकम्पमानो रुधिरार्द्रदेहो
यदा जगामाश्रममण्डलं वै।
कोलस्तदातीव दयार्द्रभावं
प्राप्तो मुनिस्तत्र समीक्ष्य दीनम्॥ २५

अग्रे व्रजन्तं रुधिरार्द्रदेहं
दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम्।
दयाभिवेशादतिकम्पमानः
सारस्वतं बीजमथोच्चचार॥ २६

अज्ञातपूर्वं च तथाश्रुतञ्च
दैवान्मुखे वै समुपागतञ्च।
न ज्ञातवान्बीजमसौ विमूढो
ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा॥ २७

कोलः प्रविश्याश्रममण्डलं तद्
गतो निकुञ्जे प्रविलीय गूढम्।
अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताः
प्रवेपमानः शरपीडितत्वात्॥ २८

ततः क्षणादाकरणान्तकृष्टं
चापं दधानोऽतिकरालदेहः।
प्राप्तस्तदन्ते स च मृग्यमाणो
निषादराजः किल काल एव॥ २९

दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं
नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम्।
व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ
पप्रच्छ कोलः क्व गतो द्विजेश॥ ३०

एक दिन आखेट करता हुआ एक महान् मूर्ख निषाद हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए उसी गहन वनमें आ पहुँचा। यमराजके समान शरीर तथा भीषण आकृतिवाला वह निषाद आखेट करते समय वधकार्यमें बड़ा ही कुशल जान पड़ता था॥ २३॥

उस धनुर्धारी किरातने एक सूअरको लक्ष्य करके बड़े जोरसे खींचकर बाण चलाया। तब बाणसे बिँधा हुआ वह सूअर भयभीत होकर भागता हुआ उस मुनिके समीप जा पहुँचा॥ २४॥

जब वह सूअर आश्रम-परिधिमें पहुँचा तो भयसे काँप रहा था और उसका शरीर रक्तसे लथपथ था। उस बेचारेको इस दशामें देखकर उस समय सत्यव्रतमुनि अत्यन्त दयार्द्रचित्त हो गये। रक्तसे सराबोर शरीरवाले उस आहत सूअरको अपने आगेसे जाते देखकर दयाके अतिरेकसे काँपते हुए मुनिने बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण किया॥ २५-२६॥

उन्हें इसके पूर्व न तो इस मन्त्रका ज्ञान था और न उन्होंने कभी इसे सुना ही था; दैवयोगसे ही उनके मुखसे यह मन्त्र निकल पड़ा। अब भी उन विमूढ़को नहीं मालूम था कि यह सारस्वत बीजमन्त्र है। वे महात्मा सत्यव्रतमुनि तो उस घायल सूअरके शोकमें डूबे हुए थे॥ २७॥

इसी बीच बाणकी पीड़ाके कारण अत्यन्त सन्तप्तचित्त तथा काँपते हुए शरीरवाला वह सूअर कोई दूसरा मार्ग न पाकर सत्यव्रतके आश्रममण्डलमें प्रविष्ट होकर कहीं झाड़ीमें छिप गया॥ २८॥

थोड़ी देर बाद कानतक खींचे धनुषको धारण किये हुए दूसरे कालके समान विकराल देहवाला वह निषादराज भी उस सूअरको खोजता हुआ मुनिके निकट आ पहुँचा॥ २९॥

वहाँ कुशासनपर बैठे हुए अद्वितीय सत्यव्रतमुनिको देखकर वह व्याध प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया और पूछने लगा—हे द्विजराज! वह सूअर कहाँ गया?॥ ३०॥

जानामि तेऽहं सुव्रतं प्रसिद्धं
तेनाद्य पृच्छे मम बाणविद्धः।
क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुम्बं
विभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि॥ ३१

वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा
नान्यास्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि।
भर्तव्यमेवेह कुटुम्बमञ्जसा
केनाप्युपायेन शुभाशुभेन॥ ३२

सत्यं ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि
क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः।
क्वासौ गतः सूकरो बाणविद्धः
पृच्छाम्यहं वाडव ब्रूहि तूर्णम्॥ ३३

तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा
वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम्।
सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं
न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै॥ ३४

गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः
कथं ब्रवीम्यद्य मृषामृषा वा।
क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीव
दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै॥ ३५

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव॥ ३६

हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयो-
स्तदुत्तरं किं न यथा मृषा वचः।
विचारयन्वाडव धर्मसङ्कटे
न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम्॥ ३७

मैं आपके सत्यभाषणके प्रसिद्ध व्रतको जानता हूँ इसीलिये पूछता हूँ कि मेरे बाणसे घायल हुआ वह सूअर किधर गया? मेरा सारा परिवार भूखसे पीड़ित है। मैं उनकी क्षुधा-शान्तिकी इच्छासे ही यहाँ आया हूँ॥ ३१॥

हे विप्रेन्द्र! विधाताने मेरी यही जीविका निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई साधन नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ। अच्छे-बुरे किसी भी उपायसे अपने परिवारका पालन-पोषण तो निश्चितरूपसे करना ही चाहिये॥ ३२॥

आप सत्यव्रत हैं, अतः मुझे अब सच-सच बता दीजिये। मेरा सारा कुटुम्ब भूखसे व्याकुल है। अतः हे विप्र! मैं आपसे पुनः पूछ रहा हूँ कि मेरे बाणसे घायल वह सूअर किधर गया है? आप मुझे शीघ्र बता दें॥ ३३॥

उस व्याधके इस प्रकार बार-बार पूछनेपर महात्मा सत्यव्रतमुनि बड़े असमंजसमें पड़ गये और मनमें सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ? जिससे मेरा सत्यव्रत नष्ट न हो और मुझे यह भी न कहना पड़े कि 'मैंने उसे नहीं देखा है'॥ ३४॥

'तुम्हारे बाणसे घायल वह सूअर भाग गया।' यह मिथ्या मैं कैसे कहूँ? और यदि इसे सच बता देता हूँ तो यह क्षुधासे आतुर होकर बार-बार सूअरको पूछ रहा है, अतः उसे खोजकर अवश्य ही मार डालेगा॥ ३५॥

वह सत्य वास्तविक सत्य नहीं है जिससे किसी जीवकी हिंसा होती हो तथा वह असत्य भी सत्य ही है, जो दयासे युक्त हो। जिसके द्वारा प्राणियोंका कल्याण हो, वही सत्य है और जो इसके विपरीत है, वह असत्य है॥ ३६॥

इन परस्पर विरोधी प्रसंगोंमें मेरा हित कैसे हो! मैं क्या उत्तर दूँ, जिससे मेरी बात झूठी न हो। [लोमशमुनिने कहा]—हे ब्राह्मण! ऐसा विचार करते हुए वे सत्यव्रतमुनि धर्मसंकटमें पड़ गये और व्याधको यथोचित उत्तर नहीं दे सके॥ ३७॥

बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितञ्च
कोलं तदन्ते समुदाहृतं वचः।
तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा
विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै॥ ३८

बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताखिला।
वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः॥ ३९

तमुवाच द्विजो व्याधं सम्मुखस्थं धनुर्धरम्।
सत्यकामस्तु धर्मात्मा श्लोकमेकं दयापरः॥ ४०

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ४१

इत्युक्तस्तु तदा तेन गतोऽसौ पशुहा पुनः।
निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तो निजालये॥ ४२

ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः।
प्रसिद्धः सर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः॥ ४३

सारस्वतं ततो बीजं जजाप विधिपूर्वकम्।
पण्डितश्चातिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले॥ ४४

प्रतिपर्वसु गायन्ति ब्राह्मणा यद्यशः सदा।
आख्यानं चातिविस्तीर्णं स्तुवन्ति मुनयः किल॥ ४५

तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागत्य तदाश्रमे।
येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतोऽतिमानितः॥ ४६

तस्माद्राजन्सदा सेव्या पूजनीया च भक्तितः।
आदिशक्तिः परा देवी जगतां कारणं हि सा॥ ४७

तस्या यज्ञं महाराज कुरु वेदविधानतः।
सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा॥ ४८

बाणसे आहत सूअरको देखकर मुनि सत्यव्रतके द्वारा जो करुणायुक्त 'ऐ-ऐ' शब्द उच्चरित हो गया था; उस अपने बीजमन्त्रसे प्रसन्न होकर भगवती शिवाने उन्हें दुर्लभ विद्या दे दी॥ ३८॥

देवीके बीजमन्त्रका उच्चारण करते ही मुनि सत्यव्रतके हृदयमें समस्त विद्याएँ प्रस्फुटित हो गयीं और वे उसी प्रकार कवि हो गये, जिस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकि॥ ३९॥

तत्पश्चात् सत्यकाम, धर्मात्मा तथा दयालु ब्राह्मण सत्यव्रतने अपने सामने खड़े उस धनुर्धारी व्याधसे एक श्लोक इस प्रकार कहा—जो (आँख) देखती है, वह बोलती नहीं है और जो (वाणी) बोलती है, वह देखती नहीं। अतः अपने ही प्रयोजनकी सिद्धिमें तत्पर हे व्याध! तुम बार-बार क्यों पूछ रहे हो?॥ ४०-४१॥

उस मुनिके ऐसा कहनेपर पशुओंका वध करनेवाला वह व्याध उस सूअरसे निराश होकर अपने घर लौट गया॥ ४२॥

इस प्रकार वे सत्यव्रत नामक ब्राह्मण दूसरे वाल्मीकिके समान कवि हो गये और समस्त लोकोंमें प्रख्यात हो गये॥ ४३॥

तत्पश्चात् उन सत्यव्रतब्राह्मणने सारस्वत बीजमन्त्रका विधिपूर्वक जप किया और वे पृथ्वीतलपर पण्डितके रूपमें अत्यधिक विख्यात हो गये॥ ४४॥

अब ब्राह्मणलोग प्रत्येक पर्वपर उनका यशोगान करने लगे और मुनिगण उनके विस्तृत आख्यानकी निरन्तर प्रशंसा करने लगे॥ ४५॥

उनका महान् यश सुनकर उनके परिवारके वे ही लोग, जिन्होंने उन्हें पहले त्याग दिया था, उनके आश्रममें आकर विशेष आदर-सम्मानके साथ उन्हें घर ले गये॥ ४६॥

अतः हे राजन्! उन आदिशक्ति तथा जगत्की कारणस्वरूपा परादेवीकी सदा भक्तिपूर्वक सेवा तथा पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

हे महाराज! आप मेरे द्वारा पहले ही बताये गये सर्वकामप्रदायक अम्बामखका अनुष्ठान वैदिक विधिके अनुसार नित्य नियमपूर्वक कीजिये॥ ४८॥

स्मृता सम्पूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चारिता स्तुता।
ददाति वाञ्छितानर्थान्कामदा तेन कीर्त्यते॥ ४९

अनुमानमिदं राजन् कर्तव्यं सर्वथा बुधैः।
दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान्॥ ५०

जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा।
दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ॥ ५१

अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेन्द्रियान्।
तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान्॥ ५२

तथा विभवसम्पन्नान् पुत्रपौत्रविवर्धनान्।
पुष्टदेहांश्च सम्भोगैः संयुतान्वेदवादिनः॥ ५३

राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ।
स्वजनैरवियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान्॥ ५४

व्यतिरेकान्वयाभ्यां च विचेतव्यं विचक्षणैः।
एभिर्न पूजिता देवी सर्वार्थफलदा शिवा॥ ५५

समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदाम्बिका।
यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः॥ ५६

व्यास उवाच

इति राजञ्छ्रुतं तत्र मया मुनिसमागमे।
लोमशस्य मुखात्कामं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ५७

इति सञ्चिन्त्य राजेन्द्र कर्तव्यं च सदार्चनम्।
भक्त्या परमया देव्याः प्रीत्या च पुरुषर्षभ॥ ५८

वे भगवती स्मरण करने, पूजा करने, श्रद्धापूर्वक ध्यान करने, नामोच्चारण करने तथा स्तुति करनेसे [परम प्रसन्न होकर] सभी इच्छित मनोरथोंको पूर्ण कर देती हैं। इसीलिये वे 'कामदा' कही जाती हैं॥ ४९॥

हे राजन्! रुग्ण, दीन, क्षुधापीड़ित, धनहीन, शठ, दुःखी, मूर्ख, शत्रुओंसे सदा प्रताड़ित, आज्ञाके अधीन रहनेवाले दास, क्षुद्र, विकल, अशान्त, भोजन तथा भोगसे अतृप्त, सदा कष्टमें रहनेवाले, अजितेन्द्रिय, अधिक तृष्णायुक्त, शक्तिहीन तथा सदैव मानसिक रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले प्राणियोंको देखकर बुद्धिमानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी सम्यक् उपासना नहीं की है। इसी प्रकार वैभवयुक्त, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न, हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले, भोगयुक्त, वेदवादी, राजलक्ष्मीसे सम्पन्न, पराक्रमी, लोगोंको अपने वशमें रखनेवाले, स्वजनोंके साथ आनन्दपूर्वक रहनेवाले और समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त लोगोंको देखकर यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी उपासना की है। इस प्रकार पण्डितजनोंको व्यतिरेक-अन्वयके क्रमसे यह जान लेना चाहिये कि उपर्युक्त [दीन आदि] लोगोंने सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली शिवाकी पूजा नहीं की है तथा उपर्युक्त [विभवयुक्त] लोगोंने भगवती अम्बाकी सर्वदा विधिपूर्वक आराधना की है, जिससे ये सभी लोग इस संसारमें सुखी हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ५०—५६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैंने नैमिषारण्यतीर्थमें मुनियोंके समाजमें लोमशऋषिके मुखसे भगवतीका यह अत्युत्तम माहात्म्य सुना॥ ५७॥

हे राजेन्द्र! हे पुरुषश्रेष्ठ! इसपर सम्यक् विचार करके परम भक्तिके साथ प्रेमपूर्वक भगवतीकी सदा अर्चना करनी चाहिये॥ ५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

* * *

अथ द्वादशोऽध्यायः

सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंका वर्णन; मानसयज्ञकी महिमा और व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको देवी-यज्ञके लिये प्रेरित करना

राजोवाच

वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समन्ततः।
श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन् यथाशक्ति ह्यतन्द्रितः॥ १

पूजाविधिं च मन्त्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम्।
ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च दक्षिणाश्च तथा पुनः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्या यज्ञं विधानतः।
त्रिविधं तु सदा ज्ञेयं विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ३

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च तथापरम्।
मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम्॥ ४

तामसं राक्षसानां वै ज्ञानिनां तु गुणोज्झितम्।
विमुक्तानां ज्ञानमयं विस्तरात्प्रब्रवीमि ते॥ ५

देशः कालस्तथा द्रव्यं मन्त्राश्च ब्राह्मणास्तथा।
श्रद्धा च सात्त्विकी यत्र तं यज्ञं सात्त्विकं विदुः॥ ६

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्च भूमिप।
भवेद्यदि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥ ७

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ ८

तस्मान्न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा।
यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च॥ ९

प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र पाण्डवैस्तु मखः कृतः।
राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः॥ १०

राजा बोले—हे स्वामिन्! अब आप उन देवीके यज्ञकी विधिका पूर्णरूपसे सम्यक् वर्णन कीजिये। उसे सुनकर मैं यथाशक्ति प्रमादरहित होकर वह यज्ञ करूँगा॥ १॥

उस यज्ञकी पूजा-विधि, उसके मन्त्र, होमद्रव्य, उसमें कितने ब्राह्मण हों और दक्षिणा—इन सभीके बारेमें निःसंकोच बताइये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं आपसे देवीके यज्ञका विधानपूर्वक वर्णन करूँगा। अनुष्ठानमें विहित कर्मके अनुसार यह यज्ञ सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदसे सदा तीन प्रकारका समझा जाना चाहिये। मुनियोंके लिये सात्त्विक यज्ञ, राजाओंके लिये राजस यज्ञ, राक्षसोंके लिये तामस यज्ञ, ज्ञानियोंके लिये निर्गुण यज्ञ और वैराग्ययुक्त लोगोंके लिये ज्ञानमय यज्ञ कहा गया है; मैं आपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ॥ ३—५॥

जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण तथा श्रद्धा—ये सब सात्त्विक हों; उसे सात्त्विक यज्ञ कहा गया है॥ ६॥

हे भूपाल! यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ यज्ञ सम्पन्न होता है, तब पूर्ण फलकी प्राप्ति अवश्य होती है; अन्यथा नहीं होती॥ ७॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्य-कार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें उसका कोई फल भी नहीं मिलता है, इसलिये न्यायपूर्वक उपार्जित धनसे ही सदा पुण्यकार्य करना चाहिये। ऐसा कार्य इस लोकमें कीर्ति तथा परलोकमें आनन्दके लिये होता है॥ ८-९॥

हे राजेन्द्र! आपके सामने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पाण्डवोंने यज्ञोंमें उत्तम राजसूय-यज्ञ किया था, जिसकी समाप्तिपर उन्होंने श्रेष्ठ दक्षिणा भी दी थी,

यत्र साक्षाद्धरिः कृष्णो यादवेन्द्रो महामनाः।
ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्च भारद्वाजादयस्तथा॥ ११

कृत्वा यज्ञं सुसम्पूर्णं मासमात्रेण पाण्डवैः।
प्राप्तं महत्तरं कष्टं वनवासश्च दारुणः॥ १२

पीडनञ्चैव पाञ्चाल्यास्तथा द्यूते पराजयः।
वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम्॥ १३

दासत्वञ्च विराटस्य कृतं सर्वैर्महात्मभिः।
कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा॥ १४

आशीर्वादा द्विजातीनां क्व गताः शुद्धचेतसाम्।
भक्तिर्वा वासुदेवस्य क्व गता तत्र सङ्कटे॥ १५

न रक्षिता तदा बाला केनापि द्रुपदात्मजा।
प्राप्तकेशग्रहा काले साध्वी च वरवर्णिनी॥ १६

किमत्र चिन्तनीयं वै धर्मवैगुण्यकारणम्।
केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे॥ १७

भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यात्तदागमः।
वेदमन्त्रास्तथान्ये च वितथाः स्युरसंशयम्॥ १८

साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः।
भवितव्यं भवत्येव वचने प्रतिपादके॥ १९

आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा निरर्थकाः।
स्वर्गार्थञ्च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा॥ २०

सर्वं प्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि।
उभयञ्चापि मन्तव्यं दैवं चोपाय एव च॥ २१

जिसमें महामनस्वी यादवेन्द्र साक्षात् भगवान् कृष्ण विद्यमान थे और भारद्वाज आदि पूर्णतः विद्यानिष्ठ ब्राह्मणोंने जिस यज्ञका सम्पादन किया था, उस यज्ञको विधिवत् सम्पन्न करनेके पश्चात् एक मासके भीतर ही पाण्डवोंको महान् कष्ट प्राप्त हुआ तथा कठोर वनवास भोगना पड़ा॥ १०—१२॥

द्रौपदीका अपमान हुआ, युधिष्ठिरकी जुएमें पराजय हुई, पाण्डवोंको वनवास हुआ और उन्हें तरह-तरहका घोर कष्ट मिला, तब यज्ञसे होनेवाला फल कहाँ चला गया?॥ १३॥

महामनस्वी पाण्डवोंको राजा विराटकी दासता करनी पड़ी और नारियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीको कीचकने प्रताड़ित किया। उस संकटकालमें विशुद्ध हृदयवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कहाँ चले गये थे और कृष्णकी भक्ति कहाँ चली गयी थी?॥ १४-१५॥

जिस समय परम सुन्दरी पतिव्रता द्रौपदीको बाल पकड़कर घसीटा जा रहा था, उस समय उस बेचारीकी रक्षा किसीने भी नहीं की॥ १६॥

जिस यज्ञमें देवाधीश भगवान् श्रीकृष्ण रहे हों और जिस यज्ञके कर्ता धर्मराज युधिष्ठिर हों, उस यज्ञका विपरीत फल मिलनेका कारण अवश्य ही धर्मानुष्ठानमें कोई कमी रही होगी—ऐसा समझना चाहिये॥ १७॥

यदि कहा जाय कि प्रारब्ध ही ऐसा था तो सभी शास्त्र निष्फल हो जायँगे और वेद-मन्त्र तथा अन्य धर्मग्रन्थ निरर्थक सिद्ध होंगे; इसमें संशय नहीं है। प्रारब्ध तो अवश्यम्भावी है, इस कथनको यदि स्वीकार कर लिया जाय तो सभी साधन निष्फल और सभी उपाय व्यर्थ हो जायँगे; सभी वेद-शास्त्र अर्थवादके रूपमें परिणत हो जायँगे, सभी क्रियाएँ निरर्थक हो जायँगी और स्वर्ग-प्राप्तिके लिये तप तथा वर्ण-धर्म सब व्यर्थ हो जायँगे। केवल प्रारब्धको ही हृदयमें धारण करनेसे सभी प्रमाण व्यर्थ हो जायँगे। अतएव भाग्य तथा उपाय दोनोंको मानना चाहिये॥ १८—२१॥

कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत्।
वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पण्डितमौलिभिः॥ २२

तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिः कर्मकारिभिः।
कर्तृभेदान्मन्त्रभेदाद् द्रव्यभेदात्तथा पुनः॥ २३

यथा मघवता पूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः।
विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै॥ २४

देवेभ्यो दानवेभ्यस्तु स्वस्तीत्युक्त्वा पुनः पुनः।
असुरा मातृपक्षीयाः कृतं तेषाञ्च रक्षणम्॥ २५

दैत्यान् दृष्ट्वातिसम्पुष्टांश्चुकोप मघवा तदा।
शिरांसि तस्य वज्रेण चिच्छेद तरसा हरिः॥ २६

क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम्।
नोचेत्पञ्चालराजेन रोषेणापि कृता क्रिया॥ २७

भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च।
धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी॥ २८

पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा।
अपुत्रस्य सुतास्तस्य चत्वारः सम्प्रजज्ञिरे॥ २९

अतः क्रिया कृता युक्त्या सिद्धिदा सर्वथा भवेत्।
अयुक्त्या विपरीता स्यात्सर्वथा नृपसत्तम॥ ३०

पाण्डवानां यथा यज्ञे किञ्चिद्वैगुण्ययोगतः।
विपरीतं फलं प्राप्तं निर्जितास्ते दुरोदरे॥ ३१

सत्यवादी तथा राजन् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
द्रौपदी च तथा साध्वी तथान्येऽप्यनुजाः शुभाः॥ ३२

कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा।
साभिमानैः कृताद्वापि दूषणं समुपस्थितम्॥ ३३

कर्म करनेपर भी यदि विपरीत परिणाम प्राप्त होता है तो पण्डितशिरोमणि विद्वानोंको सोचना चाहिये कि कार्य करनेमें कोई कमी अवश्य रह गयी थी॥ २२॥

कर्मशील विद्वानोंने कर्तृभेद, मन्त्रभेद तथा द्रव्यभेदसे उस कर्मको अनेक प्रकारवाला बताया है॥ २३॥

पूर्वकालमें इन्द्रने यज्ञमें आचार्यके रूपमें विश्वरूपका वरण किया था। उस विश्वरूपने अपने मातृपक्षके दानवोंके हितार्थ विपरीत कार्य किया। देवताओं तथा दानवों दोनोंका कल्याण हो—ऐसा बार-बार कहकर उसने मातृपक्षके जो असुर थे, उनकी भी रक्षा की। तदनन्तर दानवोंको अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट देखकर इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने वज्रसे तत्काल उस विश्वरूपके सिर काट दिये॥ २४—२६॥

इससे यह निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि कर्ताके भेदसे विपरीत फल हो जाता है। यदि इसे न मानें तो ठीक नहीं; क्योंकि पञ्चालनरेश द्रुपदने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके नाशके निमित्त एक पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञ किया था। [इसके परिणामस्वरूप] यज्ञवेदीके मध्यभागसे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी—ये दोनों उत्पन्न हुए॥ २७-२८॥

पूर्वकालमें जब महाराज दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञ किया तो उन पुत्रहीन राजा दशरथके भी चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ २९॥

अतः हे नृपश्रेष्ठ! युक्तिपूर्वक किया गया कोई भी कार्य हर प्रकारसे सिद्धि प्रदान करनेवाला होता है और युक्तिपूर्वक न किया गया कार्य सर्वथा विपरीत फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ३०॥

जैसे पाण्डवोंके यज्ञमें किसी दोषके कारण ही उन्हें विपरीत फल मिला और जुएमें वे हार गये। हे राजन्! युधिष्ठिर सत्यवादी तथा धर्मपुत्र थे, द्रौपदी भी एक पतिव्रता स्त्री थी एवं युधिष्ठिरके अन्य छोटे भाई भी पुण्यात्मा थे, किंतु अन्यायोपार्जित द्रव्योंके प्रयोगके कारण उस यज्ञमें वैगुण्य उत्पन्न हुआ अथवा उन्होंने अभिमानपूर्वक यज्ञ किया था, जिससे दोष उत्पन्न हुआ॥ ३१—३३॥

सात्त्विकस्तु महाराज दुर्लभो वै मखः स्मृतः।
वैखानसमुनीनां हि विहितोऽसौ महामखः॥ ३४

सात्त्विकं भोजनं ये वै नित्यं कुर्वन्ति तापसाः।
न्यायार्जितञ्च वन्यञ्च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम्॥ ३५

पुरोडाशपरा नित्यं वियूपा मन्त्रपूर्वकाः।
श्रद्धाधिका मखा राजन् सात्त्विकाः परमाः स्मृताः॥ ३६

राजसा द्रव्यबहुलाः सयूपाश्च सुसंस्कृताः।
क्षत्रियाणां विशाञ्चैव साभिमानाश्च वै मखाः॥ ३७

तामसा दानवानां वै सक्रोधा मदवर्धकाः।
सामर्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्ता महात्मभिः॥ ३८

मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम्।
मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसाधनसंयुतः॥ ३९

अन्येषु सर्वयज्ञेषु किञ्चिन्न्यूनं भवेदपि।
द्रव्येण श्रद्धया वापि क्रियया ब्राह्मणैस्तथा॥ ४०

देशकालपृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा।
नान्यो भवति पूर्णो वै तथा भवति मानसः॥ ४१

प्रथमं तु मनः शोध्यं कर्तव्यं गुणवर्जितम्।
शुद्धे मनसि देहो वै शुद्ध एव न संशयः॥ ४२

इन्द्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मनः शुचि।
तदा तस्य मखस्यासौ प्रभवेदधिकारवान्॥ ४३

तदासौ मण्डपं कृत्वा बहुयोजनविस्तृतम्।
स्तम्भैश्च विपुलैः श्लक्ष्णैर्यज्ञियद्रुमसम्भवैः॥ ४४

हे महाराज! सात्त्विक यज्ञ तो अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। वह महायज्ञ केवल वानप्रस्थ मुनियोंके लिये ही विहित है॥ ३४॥

हे राजन्! तपमें तत्पर जो लोग नित्य न्यायपूर्वक अर्जित किये गये द्रव्य-पदार्थ, वन्य फल-मूल तथा ऋषियोंका सुसंस्कृत सात्त्विक आहार ग्रहण करते हैं—ऐसे तपस्वियोंद्वारा नित्य अतिश्रद्धाके साथ पुरोडाशसे सम्पादित किये जानेवाले समन्त्रक तथा यूपविहीन यज्ञ परम सात्त्विक यज्ञ कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

जिस यज्ञमें अधिक धन व्यय किया जाता है, जिसमें पशु-बलिके लिये सुन्दर यूप गाड़े जाते हैं तथा जो अभिमानके साथ किये जाते हैं—क्षत्रियों तथा वैश्योंद्वारा सम्पादित किये जानेवाले वे यज्ञ राजस यज्ञ कहे गये हैं॥ ३७॥

महात्माओंने दानवोंद्वारा किये जानेवाले यज्ञोंको तामस यज्ञ कहा है। ऐसे यज्ञ क्रोधभावनाके साथ किये जाते हैं, अहंकारको बढ़ानेवाले होते हैं, ईर्ष्यापूर्वक किये जाते हैं और बड़ी साज-सज्जा तथा क्रूरताके साथ सम्पन्न किये जाते हैं॥ ३८॥

मोक्षकी कामना करनेवाले विरक्त मुनि-महात्माओंके लिये सर्वसाधनसम्पन्न मानस-यज्ञ बताया गया है॥ ३९॥

अन्य सभी यज्ञोंमें कुछ कमी हो भी सकती है; क्योंकि वे द्रव्य, श्रद्धा, कर्म, ब्राह्मण, देश, काल तथा अन्य द्रव्यसाधनोंसे सम्पन्न किये जाते हैं। अतः अन्य यज्ञ वैसा पूर्ण नहीं होता, जैसा मानस-यज्ञ सदैव पूर्ण हो जाता है॥ ४०-४१॥

[इस यज्ञके लिये] सर्वप्रथम मनको परिशुद्ध तथा गुणसे रहित बनाना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर शरीरकी शुद्धि स्वतः हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

जब मनुष्यका मन इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग करके पवित्र हो जाता है, तभी वह उस मानस-यज्ञको करनेका अधिकारी होता है ॥ ४३॥

तत्पश्चात् वह अपने मनमें पवित्र यज्ञीय वृक्षोंसे निर्मित, अनेक सुन्दर-सुन्दर स्तम्भोंसे अलंकृत तथा अनेक योजन विस्तारवाले यज्ञमण्डपकी रचना करके

वेदीं च विशदां तत्र मनसा परिकल्पयेत्।
अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल॥ ४५

ब्राह्मणानाञ्च वरणं तथैव प्रतिपाद्य च।
ब्रह्माध्वर्युस्तथा होता प्रस्तोता विधिपूर्वकम्॥ ४६

उद्गाता प्रतिहर्ता च सभ्याश्चान्ये यथाविधि।
पूजनीया प्रयत्नेन मनसैव द्विजोत्तमाः॥ ४७

प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च।
पावकाः पञ्च एवैते स्थाप्या वेद्यां विधानतः॥ ४८

गार्हपत्यस्तदा प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः।
दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्यकः॥ ४९

सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाः परमोत्कटाः।
द्रव्यं च मनसा भाव्यं निर्गुणं परमं शुचि॥ ५०

मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत्।
यज्ञाधिदेवता ब्रह्म निर्गुणं च सनातनम्॥ ५१

फलदा निर्गुणा शक्तिः सदा निर्वेददा शिवा।
ब्रह्मविद्याखिलाधारा व्याप्य सर्वत्र संस्थिता॥ ५२

तदुद्देशेन तद् द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः।
पश्चाच्चित्तं निरालम्बं कृत्वा प्राणानपि प्रभो॥ ५३

कुण्डलीमुखमार्गेण हुनेद् ब्रह्मणि शाश्वते।
स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम्॥ ५४

समाधिनैव योगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि॥ ५५

उसमें मन-ही-मन एक विशाल यज्ञवेदीकी कल्पना करे और उसपर मानसिक अग्निकी विधिपूर्वक स्थापना करे॥ ४४-४५॥

उसी प्रकार [मनमें] ब्राह्मणोंका वरण करके ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा अन्य सभासदोंको नियुक्त करके यथोचित रूपसे प्रयत्नपूर्वक मनसे उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७॥

प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—इन पाँचों अग्नियोंको यज्ञवेदीपर विधानपूर्वक स्थापित करना चाहिये॥ ४८॥

उनमें प्राणको गार्हपत्य अग्नि, अपानको आहवनीय अग्नि, व्यानको दक्षिणाग्नि, समानको आवसथ्य अग्नि तथा उदानको सभ्य अग्नि कहा गया है। ये पाँचों परम तेजस्वी हैं। इस यज्ञमें मानसिक रूपसे ही दोषरहित तथा परम पवित्र सामग्रियोंकी भी कल्पना करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

इस यज्ञमें होता तथा यजमान दोनोंके रूपमें मन ही होता है। निर्गुण तथा अविनाशी ब्रह्म इस यज्ञमें अधिदेवता होते हैं॥ ५१॥

निर्गुणा पराशक्ति सभी फलोंको प्रदान करनेवाली हैं। उन वैराग्यदायिनी, कल्याणकारिणी, ब्रह्मविद्या, समस्त जगत्की आधारस्वरूपा तथा जगत्को व्याप्त करके सर्वत्र विराजमान रहनेवाली आदिशक्ति-स्वरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे द्विजको मनःकल्पित हवन-सामग्रियोंकी आहुति अपने प्राणरूपी अग्निमें देनी चाहिये॥ ५२½॥

हे प्रभो! मानस हवनके पश्चात् अपने मनको आलम्बनरहित करके कुण्डलिनीके मुखमार्गसे अर्थात् सुषुम्ना रन्ध्रद्वारा शाश्वत ब्रह्ममें अपने प्राणोंकी भी आहुति दे देनी चाहिये॥ ५३½॥

अपनी अनुभूतिसे स्वयंका साक्षात्कार करके तथा महेश्वरीको अपनी आत्मस्वरूपा जानकर समाधियोगसे शान्तचित्त होकर ध्यान करना चाहिये॥ ५४½॥

इस प्रकार जब वह साधक सभी प्राणियोंमें अपने-आपको तथा अपनेमें सभी प्राणियोंको देखने लगता है, तब वह भूतात्मा उन कल्याणस्वरूपा

यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम्।
दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद्भूयात्सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ५६

तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप।
प्रारब्धं कर्ममात्रं तु यावद्देहं च तिष्ठति॥ ५७

जीवन्मुक्तस्तदा जातो मृतो मोक्षमवाप्नुयात्।
कृतकृत्यो भवेत्तात यो भजेज्जगदम्बिकाम्॥ ५८

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी।
श्रोतव्या चैव मन्तव्या गुरुवाक्यानुसारतः॥ ५९

राजन्नेवं कृतो यज्ञो मोक्षदो नात्र संशयः।
अन्ये यज्ञाः सकामास्तु प्रभवन्ति क्षयोन्मुखाः॥ ६०

अग्निष्टोमेन विधिवत्स्वर्गकामो यजेदिति।
वेदानुशासनं चैतत्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६१

क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति च यथामति।
तस्मात्तु मानसः श्रेष्ठो यज्ञोऽप्यक्षय एव सः॥ ६२

न राज्ञा साधितुं योग्यो मखोऽसौ जयमिच्छता।
तामसस्तु कृतः पूर्वं सर्पयज्ञस्त्वयाधुना॥ ६३

वैरं निर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः।
यत्कृते निहताः सर्पास्त्वयाग्नौ कोटिशः परे॥ ६४

देवीयज्ञं कुरुष्वाद्य विततं विधिपूर्वकम्।
विष्णुना यः कृतः पूर्वं सृष्ट्यादौ नृपसत्तम॥ ६५

तथा त्वं कुरु राजेन्द्र विधिं ते प्रब्रवीम्यहम्।
ब्राह्मणाः सन्ति राजेन्द्र विधिज्ञा वेदवित्तमाः॥ ६६

देवीबीजविधानज्ञा मन्त्रमार्गविचक्षणाः।
याजकास्ते भविष्यन्ति यजमानस्त्वमेव हि॥ ६७

कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम्।
समुद्धर महाराज पितरं दुर्गतिङ्गतम्॥ ६८

भगवतीका दर्शन प्राप्त कर लेता है और उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणीका दर्शन करके ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। हे भूपाल! तब उसका सब मायाजनित प्रपंच जलकर भस्म हो जाता है और केवल प्रारब्धकर्मका भोग करनेके लिये ही शरीर रहता है॥ ५५—५७॥

हे तात! तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है और मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करता है। जो भगवतीको भजता है, वह सब प्रकारसे कृतकृत्य हो जाता है। इसलिये गुरुके वचनोंके अनुसार सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ श्रीभुवनेश्वरी भगवतीका ध्यान, उनके चरित्रका श्रवण तथा मनन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

हे राजन्! इस प्रकार किया हुआ यज्ञ मोक्षप्रद होता है; इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य सकाम यज्ञ विनाशोन्मुख होते हैं॥ ६०॥

मनीषी विद्वान् यह वेदानुशासन बताते हैं कि स्वर्गकी इच्छावालेको विधिपूर्वक अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिये। मेरी समझसे पुण्य क्षीण होनेपर पुनः उन्हें मृत्युलोकमें आना ही पड़ता है, अतः अक्षय फलवाला वह मानस-यज्ञ ही श्रेष्ठ है॥ ६१-६२॥

विजयकी इच्छा रखनेवाला राजा इस मानस-यज्ञको सम्पन्न नहीं कर सकता। हे राजन्! अभी कुछ ही समय पूर्व आपने तामस सर्पयज्ञ किया था, जिसमें आपने दुरात्मा तक्षकसे वैरका बदला चुकाया था और उसमें आपने करोड़ों सर्पोंको अग्निमें जलाकर मार डाला था॥ ६३-६४॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप विधिपूर्वक विस्तृत देवीयज्ञ कीजिये, जिसे पूर्वकालमें सृष्टिके आरम्भमें भगवान् विष्णुने किया था॥ ६५॥

हे राजेन्द्र! मैं आपको उसकी विधि बता रहा हूँ, आप वैसा कीजिये। हे राजेन्द्र! आपके यहाँ वेदोंके पूर्ण ज्ञाता, विधिको जाननेवाले, देवीके बीजमन्त्रके विधानके जानकार तथा मन्त्रमार्गके विद्वान् अनेक ब्राह्मण हैं, वे ही उस यज्ञमें आपके याजक होंगे और आप यजमान बनेंगे॥ ६६-६७॥

हे महाराज! इस प्रकार आप विधिवत् देवीयज्ञ करके उस यज्ञसे मिले हुए पुण्यको अर्पित करके अपने दुर्गतिप्राप्त पिताका उद्धार कीजिये॥ ६८॥

विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम्।
तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवानघ॥ ६९

तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भूभुजा।
अन्तराले तथा मृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे॥ ७०

न सङ्ग्रामे न गङ्गायां स्नानदानादिवर्जितम्।
मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह॥ ७१

कृपणानि च सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम।
तत्रैकं कारणं तस्य न जातं चातिदुर्लभम्॥ ७२

यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम्।
साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसङ्कटे॥ ७३

यदा निर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै।
पञ्चभूतात्मको देहो मम किञ्चात्र दुःखदम्॥ ७४

पतत्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहं निर्गुणोऽव्ययः।
नाशात्मकानि तत्त्वानि तत्र का परिदेवना॥ ७५

ब्रह्मैवाहं न संसारी सदा मुक्तः सनातनः।
देहेन मम सम्बन्धः कर्मणा प्रतिपादितः॥ ७६

तानि सर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणि च।
मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात्॥ ७७

विमुक्तोऽतिभयाद् घोरादस्मात्संसारसङ्कटात्।
इत्येवं चिन्त्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः॥ ७८

मरणं चेदवाप्नोति स मुच्येजन्मदुःखतः।
एषा काष्ठा परा प्रोक्ता योगिनामपि दुर्लभा॥ ७९

पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापं द्विजोदितम्।
देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान्॥ ८०

ब्राह्मणके अपमानसे होनेवाला पाप बड़ा भयंकर और नरकदायक होता है। हे अनघ! आपके पिता वैसे ही शापजनित दोषसे ग्रस्त हो चुके हैं; साथ ही साँपके काटनेसे महाराजकी अकालमृत्यु हुई है और भूमिपर बिछे कुशासनपर नहीं अपितु आकाशमें उनका मरण हुआ है, उनकी मृत्यु न रणस्थलमें हुई है और न गंगातटपर ही अपितु हे कुरुश्रेष्ठ! आपके पिता बिना स्नान-दान आदि किये ही महलमें मर गये॥ ६९—७१॥

हे नृपश्रेष्ठ! ये सब कुत्सित साधन नरकके हेतु हैं। राजाके लिये नरकसे बचनेका एक उपाय था; किंतु वह अत्यन्त दुर्लभ उपाय भी उनसे न बन सका॥ ७२॥

जहाँ कहीं भी प्राणी स्थित रहे, कालको समीप आया जानकर साधनोंके अभावमें भी अत्यन्त कष्टके कारण विवश हुआ वह जब हृदयमें वैराग्य-भाव आ जाय, तब निर्मल मनसे यह सोचने लगे कि यह शरीर तो पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु—इन पंचभूतोंसे निर्मित है, तब फिर यह मेरे लिये क्या दुःखदायी हो सकता है!॥ ७३-७४॥

यह देह अभी नष्ट हो जाय; मैं तो मुक्त, निर्गुण तथा अविनाशी हूँ। ये पंचतत्त्व तो विनाशशील हैं, तब इनके लिये मुझे चिन्ता ही क्या! मैं तो सदा मुक्त और सनातन ब्रह्म हूँ; संसारी जीव नहीं हूँ। इस देहसे मेरा सम्बन्ध केवल कर्मभोगके कारण ही है। शरीरद्वारा किये गये उन सभी शुभाशुभ कर्मोंका मेरा बन्धन तो छूट चुका है; क्योंकि मनुष्यशरीरसे मैंने दुःख तथा सुख भोग लिया है और इस अत्यन्त भयानक, घोर तथा भीषण सांसारिक कष्टसे मैं सर्वथा विमुक्त हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करता हुआ पुरुष यदि स्नान-दानरहित भी मृत्यु प्राप्त करता है तो भी वह पुनः जन्म लेनेके दुःखसे छूट जाता है। यह सर्वोत्कृष्ट साधन कहा गया है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ ७५—७९॥

हे नृपसत्तम! आपके पिताने ब्राह्मणके द्वारा दिये गये उस शापको सुनकर भी अपने शरीरके प्रति मोह रखा और वैराग्यका आश्रय नहीं लिया॥ ८०॥

नीरोगो मम देहोऽयं राज्यं निहतकण्टकम्।
कथं जीवाम्यहं कामं मन्त्रज्ञानानयन्तु वै॥ ८१

औषधं मणिमन्त्रं च यन्त्रं परमकं तथा।
आरोहणं तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा॥ ८२

न स्नानं न कृतं दानं न देव्याः स्मरणं कृतम्।
न भूमौ शयनं चैव दैवं मत्वा परं तथा॥ ८३

मग्नो मोहार्णवे घोरे मृतः सौधेऽहिना हतः।
कृत्वा पापं कलेर्योगात्तापसस्यावमानजम्॥ ८४

अवश्यमेव नरकं एतैराचरणैर्भवेत्।
तस्मात्तं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तम॥ ८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
साश्रुकण्ठोऽतिदुःखार्तो बभूव जनमेजयः॥ ८६

धिगिदं जीवितं मेऽद्य पिता मे नरके स्थितः।
तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गं यात्युत्तरासुतः॥ ८७

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि मेरा यह शरीर सदा निरोग रहे, मैं निष्कंटक राज्य करता रहूँ और चिरकालतक कैसे जीता रहूँ, [—इस भावनासे उन्होंने सचिवोंको आज्ञा दी कि सर्पविष उतारनेका] मन्त्र जाननेवालोंको बुलाओ॥ ८१॥

राजाने औषध, मणि, मन्त्र तथा उत्तमोत्तम यन्त्रोंका संग्रह किया और वे एक ऊँचे महलपर आरूढ़ हो गये। उस समय उन्होंने न स्नान किया, न दान दिया और न भगवतीका स्मरण ही किया। दैवको प्रधान मानकर वे भूमिपर भी नहीं सोये॥ ८२-८३॥

कलिके प्रभावके कारण एक तपस्वीके प्रति अपमानजन्य पाप करके घोर मोहरूपी सागरमें डूबकर महलके ऊपर सर्पके डँसनेसे वे मर गये। ऐसे आचरणोंसे अवश्य ही नरक होता है। इसलिये हे नृपश्रेष्ठ! अपने उन पिताका पापसे उद्धार कीजिये॥ ८४-८५॥

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] अमित तेजस्वी व्यासजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजय बड़े दुःखी हुए और अश्रुप्रवाहके कारण उनका कण्ठ रुँध गया। [मनमें पश्चात्ताप करते हुए वे कहने लगे—] आज मेरे इस जीवनको धिक्कार है जो कि मेरे पिता नरकमें पड़े हैं। इसलिये अब मैं ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे उत्तरातनय राजा परीक्षित् स्वर्ग चले जायँ॥ ८६-८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
अम्बायज्ञविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

~~o~~

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

देवीकी आधारशक्तिसे पृथ्वीका अचल होना तथा उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना, ब्रह्माजीद्वारा मरीचि आदिकी मानसी सृष्टि करना, काश्यपी सृष्टिका वर्णन, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदिका निर्माण; भगवान् विष्णुद्वारा अम्बायज्ञ करना और प्रसन्न होकर भगवती आद्या-शक्तिद्वारा आकाशवाणीके माध्यमसे उन्हें वरदान देना

राजोवाच

हरिणा तु कथं यज्ञः कृतः पूर्वं पितामह।
जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १

राजा बोले—हे पितामह! जगत्के कारणस्वरूप तथा परम शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें वह यज्ञ कैसे किया? हे महामते! उस यज्ञमें कौन-कौन

लोहकील

काजेशा:

के सहायास्तु तत्रासन्ब्राह्मणाः के महामते।
ऋत्विजो वेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहि परन्तप॥ २

पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेन कर्मणा।
श्रुत्वा विष्णुकृतं यागमम्बिकायाः समाहितः॥ ३

व्यास उवाच

राजञ्छृणु महाभाग विस्तरं परमाद्भुतम्।
यथा भगवता यज्ञः कृतश्च विधिपूर्वकः॥ ४

विसर्जिता यदा देव्या दत्त्वा शक्तीश्च तास्त्रयः।
काजेशाः पुरुषा जाता विमानवरमास्थिताः॥ ५

प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः।
चक्रुः स्थानानि वासार्थं समुत्पाद्य धरां स्थिताः॥ ६

आधारशक्तिरचला मुक्ता देव्या स्वयं ततः।
तदाधारा स्थिता जाता धरा मेदःसमन्विता॥ ७

मधुकैटभयोर्मेदःसंयोगान्मेदिनी स्मृता।
धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वी विस्तारयोगतः॥ ८

मही चापि महीयस्त्वाद्धृता सा शेषमस्तके।
गिरयश्च कृताः सर्वे धारणार्थं प्रविस्तराः॥ ९

लोहकीलं यथा काष्ठे तथा ते गिरयः कृताः।
महीधरा महाराज प्रोच्यन्ते विबुधैर्जनैः॥ १०

जातरूपमयो मेरुर्बहुयोजनविस्तरः।
कृतो मणिमयैः शृङ्गैः शोभितः परमाद्भुतः॥ ११

मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
दक्षो वसिष्ठ इत्येते ब्रह्मणः प्रथिताः सुताः॥ १२

मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश।
ताभ्यो देवाश्च दैत्याश्च समुत्पन्ना ह्यनेकशः॥ १३

ब्राह्मण सहायक थे और कौन-कौन वेदतत्त्वज्ञ विद्वान् ऋत्विज थे? हे परन्तप! यह सब आप मुझे बतायें। भगवान् विष्णुके द्वारा किये गये अम्बायज्ञको सुनकर बादमें मैं भी सावधान होकर उसी विहित कर्मके अनुसार यज्ञ करूँगा॥ १—३॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! हे राजन्! भगवान् विष्णुने जिस तरह विधिपूर्वक देवीयज्ञ किया था, उस परम अद्भुत प्रसंगको आप विस्तारसे सुनें॥ ४॥

उस समय जब आदिशक्तिने उन्हें विभिन्न शक्तियाँ प्रदान करके विदा कर दिया, तब श्रेष्ठ विमानपर स्थित वे तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश पुनः पुरुषके रूपमें हो गये। [वहाँसे चलकर] वे तीनों श्रेष्ठ देवगण घोर महासागरमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने पृथ्वी उत्पन्न करके उसपर रहनेके लिये स्थान बनाया और वहीं रहने लगे॥ ५-६॥

उसी समय देवीने अचल आधारशक्तिको मुक्त किया, जिसके आश्रयसे वह मेदयुक्त पृथ्वी टिक गयी॥ ७॥

मधु-कैटभके मेदका संयोग होनेके कारण पृथ्वीको 'मेदिनी' कहा गया है। धारण करनेकी शक्ति होनेके कारण उसे 'धरा' तथा विस्तृत होनेके कारण उसे 'पृथ्वी' कहा गया है॥ ८॥

यह पृथ्वी महनीय होनेके कारण 'मही' कही जाती है। यह शेषनागके मस्तकपर स्थित है। इसको यथास्थान स्थित रखनेके लिये सभी विशाल पर्वत रचे गये। जिस प्रकार काठमें लौह कीलें जड़ दी जाती हैं, उसी प्रकार पृथ्वीको सुस्थिर रखनेके लिये विशाल पर्वत बनाये गये। इसी कारण विद्वान्‌लोग उन पर्वतोंको 'महीधर' कहते हैं॥ ९-१०॥

परम अद्भुत सुमेरुपर्वत सोनेका बना हुआ है, वह मणिमय चोटियोंसे सुशोभित है तथा अनेक योजन विस्तारवाला है॥ ११॥

[उस समय सृष्टिका विकास इस प्रकार हुआ—] सर्वप्रथम ब्रह्माके विख्यात मानसिक पुत्र मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष और वसिष्ठ आदि हुए। तत्पश्चात् मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षप्रजापतिको तेरह कन्याएँ हुईं। उन्हीं कन्याओंसे अनेक देवता एवं दैत्य उत्पन्न हुए॥ १२-१३॥

ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा।
मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा ॥ १४

ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वायम्भुवोऽभवत्।
शतरूपा तथा नारी सञ्जाता वामभागतः॥ १५

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ तस्या बभूवतुः।
तिस्रः कन्या वरारोहा ह्यभवन्नतिसुन्दराः॥ १६

एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः।
चकार ब्रह्मलोकञ्च मेरुशृङ्गे मनोहरम्॥ १७

वैकुण्ठं भगवान्विष्णू रमारमणमुत्तमम्।
क्रीडास्थानं सुरम्यञ्च सर्वलोकोपरिस्थितम्॥ १८

शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकार ह।
समासाद्य भूतगणं विजहार यथारुचि॥ १९

स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः।
तच्च स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नविराजितम्॥ २०

समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः।
चतुर्दन्तस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा॥ २१

उच्चैःश्रवास्तथाश्वो वै रम्भाद्यप्सरसस्तथा।
इन्द्रेणोपात्तमखिलं जातं वै स्वर्गभूषणम्॥ २२

धन्वन्तरिश्चन्द्रमाश्च सागराच्च समुद्बभौ।
स्वर्गस्थितौ विराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ॥ २३

एवं सृष्टिः समुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥ २४

अण्डजाः स्वेदजाश्चैव चोद्भिज्जाश्च जरायुजाः।
चतुर्भेदैः समुत्पन्ना जीवाः कर्मयुताः किल॥ २५

एवं सृष्टिं समासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
विहारं स्वेषु स्थानेषु चक्रुः सर्वे यथेप्सितम्॥ २६

उसके बाद काश्यपी सृष्टि संसारमें फैल गयी। उस सृष्टिमें मनुष्य, पशु और सर्प आदि योनिभेदोंसे अनेक जीव उत्पन्न हुए॥ १४॥

ब्रह्माके दाहिने आधे शरीरसे स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए तथा बायें भागसे स्त्रीके रूपमें शतरूपा उत्पन्न हुईं॥ १५॥

उन्हीं शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा तीन अत्यन्त सुन्दर और उत्तम गुणोंवाली पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ १६॥

इस प्रकार सृष्टिरचना करके कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माजीने सुमेरुपर्वतके शिखरपर एक सुन्दर ब्रह्मलोक बनाया॥ १७॥

भगवान् विष्णुने भी लक्ष्मीजीके विहार करनेयोग्य वैकुण्ठलोक बनाया। वह अत्यन्त रमणीय तथा उत्तम क्रीडास्थान सभी लोकोंके ऊपर विराजमान है॥ १८॥

शिवजीने भी कैलास नामक एक उत्तम स्थान बना लिया, जिसमें वे भूतगणोंको साथ लेकर इच्छानुसार विहार करने लगे॥ १९॥

सुमेरुपर्वतके एक शिखरपर देवलोक स्वर्गकी रचना हुई। वह इन्द्रलोक अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित तथा इन्द्रका निवास था॥ २०॥

समुद्रमन्थनसे सर्वोत्तम वृक्ष पारिजात, चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी, कामना पूर्ण करनेवाली कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि अनेक अप्सराएँ निकलीं। इन्द्रने स्वर्गको सुशोभित करनेवाले इन सबको अपने पास रख लिया। धन्वन्तरिवैद्य तथा चन्द्रमा भी समुद्रसे निकले; वे दोनों देव अनेक गुणोंसे युक्त होकर स्वर्गमें रहते हुए शोभा पाने लगे॥ २१—२३॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस तरह तीन प्रकारकी सृष्टि हुई। देवता, पशु-पक्षी और मानव आदि अनेक भेदोंसे यह सृष्टि कल्पित है। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—इन चार भेदोंसे अनेक जीवोंकी सृष्टि हुई। उन सभी जीवोंके साथ कर्मका बन्धन लगा हुआ है। इस प्रकार सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब अपने-अपने लोकोंमें इच्छापूर्वक विहार करने लगे॥ २४—२६॥

एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः।
महालक्ष्म्या समं तत्र चिक्रीड भुवने स्वके॥ २७

एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुण्ठे संस्थितः पुरा।
सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमण्डितम्॥ २८

यत्र दृष्ट्वा महामायां मन्त्रश्चासादितः शुभः।
स्मृत्वा तां परमां शक्तिं स्त्रीभावं गमितो यया॥ २९

यज्ञं कर्तुं मनश्चक्रे अम्बिकाया रमापतिः।
उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम्॥ ३०

ब्रह्माणं वरुणं शक्रं कुबेरं पावकं यमम्।
वसिष्ठं कश्यपं दक्षं वामदेवं बृहस्पतिम्॥ ३१

सम्भारं कल्पयामास यज्ञार्थं चातिविस्तरम्।
महाविभवसंयुक्तं सात्त्विकं च मनोहरम्॥ ३२

मण्डपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः।
ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशतिसुव्रतान्॥ ३३

चितिञ्च कारयामास वेदीश्चैव सुविस्तराः।
प्रजेपुर्ब्राह्मणा मन्त्रान्देव्या बीजसमन्वितान्॥ ३४

जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत्परिकल्पिते।
कृते तु वितते होमे वागुवाचाशरीरिणी॥ ३५

विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरा मधुराक्षरा।
विष्णो त्वं भव देवानां हरे श्रेष्ठतमः सदा॥ ३६

मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि।
सर्वे त्वामर्चयिष्यन्ति ब्रह्माद्याश्च सवासवाः॥ ३७

प्रभविष्यन्ति भो भक्त्या मानवा भुवि सर्वतः।
वरदस्त्वं च सर्वेषां भविता मानवेषु वै॥ ३८

कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः।
सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः॥ ३९

इस प्रकार सृष्टिके विस्तृत हो जानेपर अच्युत भगवान् विष्णु अपने लोकमें लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्द करने लगे॥ २७॥

एक समयकी बात है—भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें विराजमान थे। उन्हें एकाएक अमृतसागरमें विद्यमान तथा मणियोंसे सुशोभित उस द्वीपका स्मरण हो आया, जहाँ महामायाका दर्शन करके उन्होंने शुभ मन्त्र प्राप्त किया था। तदनन्तर जिन भगवतीके द्वारा वे पुरुषसे स्त्री बना दिये गये थे, उन परमशक्तिका स्मरण करके लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुने अम्बायज्ञ करनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ २८-२९½॥

इसके बाद अपने धामसे उतरकर उन्होंने शिव, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव तथा बृहस्पतिको आमन्त्रित करके अत्यन्त विस्तारके साथ यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये अत्यधिक मूल्यवाली, सात्त्विक तथा मनोरम बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र कीं॥ ३०-३२॥

उन्होंने शिल्पियोंद्वारा विशाल यज्ञमण्डप बनवाया और सत्ताईस महान् व्रती ऋत्विजोंका वरण किया। तत्पश्चात् अग्निस्थापनके लिये बड़ी-बड़ी वेदियाँ बनायी गयीं। ब्राह्मणगण बीजसहित देवीमन्त्रोंका जप करने लगे॥ ३३-३४॥

विधिवत् प्रज्वलित की गयी अग्निमें वे ब्राह्मण यथेच्छ हव्य-पदार्थकी आहुति देने लगे। इस प्रकार विस्तृत होमकृत्य सम्पन्न होते ही भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके मधुर अक्षरों तथा स्पष्ट स्वरोंसे युक्त आकाशवाणी हुई। हे हरे! हे विष्णो! आप सदा देवताओंमें श्रेष्ठतम होंगे। सभी देवगणोंमें आप मान्य, पूज्य तथा समर्थ होंगे। संसारमें इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता आपकी अर्चना करेंगे॥ ३५—३७॥

हे विष्णो! पृथ्वीपर सभी मानव आपकी भक्तिसे युक्त होकर रहेंगे और आप सभी मनुष्योंको वर देनेवाले होंगे॥ ३८॥

आप सभी देवताओंको वांछित फल प्रदान करनेवाले महान् परमेश्वर होंगे। सभी यज्ञोंमें प्रधानरूपसे सभी याज्ञिकोंके द्वारा आप ही पूजे जायँगे॥ ३९॥

त्वां जनाः पूजयिष्यन्ति वरदस्त्वं भविष्यसि।
श्रयिष्यन्ति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः॥ ४०

शरणस्त्वञ्च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम।
पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च॥ ४१

त्वं वै पूज्यतमः कामं कीर्तिस्तव भविष्यति।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले॥ ४२

तदांशेनावतीर्याशु कर्तव्यं धर्मरक्षणम्।
अवताराः सुविख्याताः पृथिव्यां तव भागशः॥ ४३

भविष्यन्ति धरायां वै माननीया महात्मनाम्।
अवतारेषु सर्वेषु नानायोनिषु माधव॥ ४४

विख्यातः सर्वलोकेषु भविता मधुसूदन।
अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी॥ ४५

भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी।
वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा॥ ४६

नानायुधाः शुभाकाराः सर्वाभरणमण्डिताः।
ताभिर्युक्तः सदा विष्णो सुरकार्याणि माधव॥ ४७

साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः।
तास्त्वया नावमन्तव्याः सर्वदा गर्वलेशतः॥ ४८

पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा।
नूनं ता भारते खण्डे शक्तयः सर्वकामदाः॥ ४९

भविष्यन्ति मनुष्याणां पूजिताः प्रतिमासु च।
तासां तव च देवेश कीर्तिः स्यादखिलेष्वपि॥ ५०

द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुवि मण्डले।
ताश्च त्वां वै महाभाग मानवा भुवि मण्डले॥ ५१

अर्चयिष्यन्ति वाञ्छार्थं सकामाः सततं हरे।
अर्चासु चोपहारैश्च नानाभावसमन्विताः॥ ५२
पूजयिष्यन्ति वेदोक्तैर्मन्त्रैर्नामजपैस्तथा।

लोग आपकी पूजा करेंगे और आप उनके लिये वरदाता होंगे। राक्षसोंके द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित किये जानेपर देवगण आपका आश्रय ग्रहण करेंगे। हे पुरुषोत्तम! आप सभीके शरणदाता होंगे। अत्यन्त विस्तारवाले वेदों तथा सभी पुराणोंमें आप ही पूज्यतम होंगे और आपकी महान् कीर्ति होगी॥ ४०-४१½ ॥

इस पृथ्वीतलपर जब-जब धर्मका ह्रास होगा तब-तब आप शीघ्र अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे। आपके अंशसे उत्पन्न वे समस्त अवतार पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसिद्ध होंगे और महात्मागण आपके उन अवतारोंका सम्मान करेंगे। हे माधव! नानाविध योनियोंमें आपके द्वारा लिये गये अवतारोंमें आप सभी लोकोंमें विख्यात होंगे। हे मधुसूदन! उन सभी अवतारोंमें मेरे अंशसे उत्पन्न शक्ति सदा आपकी सहचारिणी होगी और आपके समस्त कार्योंको सम्पन्न करेगी। वह शक्ति वाराही, नारसिंही आदि भेदोंसे अनेक प्रकारकी होगी॥ ४२—४६ ॥

वे शक्तियाँ सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, भव्य स्वरूपवाली एवं नानाविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित होंगी। हे विष्णो! आप उन शक्तियोंसे सदैव युक्त रहेंगे। हे माधव! मेरे द्वारा प्रदत्त वरदानके प्रभावसे आप देवताओंके समस्त कार्य सिद्ध करेंगे। आप लेशमात्र भी अभिमान करके उन शक्तियोंका कभी अपमान न कीजियेगा, अपितु हर प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक उन शक्तियोंका पूजन तथा सम्मान कीजियेगा॥ ४७-४८½ ॥

समस्त कामनाओंको प्रदान करनेवाली वे शक्तियाँ भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा विविध प्रतिमाओंमें प्रतिष्ठित होकर पूजी जायँगी। हे देवेश! उन शक्तियोंकी तथा आपकी कीर्ति पृथ्वीमण्डल तथा समस्त सातों द्वीपोंमें प्रसिद्ध होगी॥ ४९-५०½ ॥

हे महाभाग! भूमण्डलपर सकाम मनुष्य अपने मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये आपकी तथा उन शक्तियोंकी निरन्तर उपासना करेंगे। हे हरे! वे लोग अर्चनाओंमें अनेक भावोंसे युक्त होकर नानाविध उपहारों, वैदिक मन्त्रों तथा नामजपसे आपकी आराधना

महिमा तव भूर्लोके स्वर्गे च मधुसूदन॥ ५३
पूजनाद्देवदेवेश वृद्धिमेष्यति मानवैः।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरान्वाणी विरराम खसम्भवा॥ ५४
भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव।
समाप्य विधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः॥ ५५
विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ।
जगामानुचरैः सार्धं वैकुण्ठं गरुडध्वजः॥ ५६
स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरास्ततः।
मुनयो विस्मिता वार्तां कुर्वन्तस्ते परस्परम्॥ ५७
ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्पावनानथ॥ ५८
श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोत्ररम्यां
सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्च जातः।
चक्रुः सर्वे द्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्ता-
स्तस्याः कामं निखिलफलदं चागमोक्तं मुनीन्द्राः॥ ५९

करेंगे। हे मधुसूदन! हे देवदेवेश! मनुष्योंके द्वारा सुपूजित होनेके कारण आपकी महिमा पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकमें वृद्धिको प्राप्त होगी॥ ५१—५३½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुको वरदान देकर वह आकाशवाणी चुप हो गयी। उसे सुनते ही भगवान् विष्णु भी प्रसन्नचित्त हो गये। तत्पश्चात् यज्ञका विधिपूर्वक समापन करके तथा उन देवताओं, ब्रह्मपुत्रों और मुनियोंको विदा करके सर्वसमर्थ गरुडध्वज भगवान् विष्णु अपने अनुचरोंके साथ वैकुण्ठलोकको चले गये॥ ५४—५६॥

तदनन्तर विस्मयके साथ यज्ञविषयक वार्ता करते हुए वे समस्त देवता अपने-अपने लोकोंको तथा मुनिजन अपने-अपने पवित्र आश्रमोंको अति प्रसन्नता-पूर्वक चले गये॥ ५७-५८॥

आकाशसे प्रादुर्भूत उस कर्णप्रिय तथा परम विशद वाणीको सुनकर सबके हृदयमें परा प्रकृतिके प्रति भक्तिभाव उत्पन्न हो गया। हे मुनीन्द्रो! अतएव वे सभी ब्राह्मण तथा मुनिजन भक्तिपरायण होकर उन भगवतीका पूजन करने लगे, जो वेदशास्त्रोंमें वर्णित है तथा सम्पूर्ण वांछित फलोंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अम्बिकामखस्य विष्णुनानुष्ठानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

~~०~~

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यसे सम्बन्धित राजा ध्रुवसन्धिकी कथा, ध्रुवसन्धिकी मृत्युके बाद राजा युधाजित् और वीरसेनका अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें विवाद

जनमेजय उवाच

श्रुतो वै हरिणा क्लृप्तो यज्ञो विस्तरतो द्विज।
महिमानं तथाम्बाया वद विस्तरतो मम॥ १
श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वे मखमनुत्तमम्।
प्रसादात्तव विप्रेन्द्र भविष्यामि च पावनः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम्।
इतिहासं पुराणञ्च कथयामि सुविस्तरम्॥ ३

जनमेजय बोले—हे द्विज! मैंने विष्णुद्वारा किये गये देवीयज्ञके विषयमें विस्तारपूर्वक सुन लिया। अब आप मुझे विस्तृतरूपसे भगवतीकी महिमा बताइये॥ १॥

हे विप्रेन्द्र! देवीका चरित्र सुनकर मैं भी वह उत्कृष्ट देवीयज्ञ अवश्य करूँगा और इस प्रकार आपकी कृपासे पवित्र हो जाऊँगा॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन करूँगा। मैं इसके साथ-साथ विस्तृत इतिहास तथा पुराण भी कहूँगा॥ ३॥

[illegible]

कोसलेषु नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः।
पुष्यपुत्रो महातेजा ध्रुवसन्धिरिति स्मृतः॥ ४

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च वर्णाश्रमहिते रतः।
अयोध्यायां समृद्धायां राज्यं चक्रे शुचिव्रतः॥ ५

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः।
स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये धर्मतोऽभवन्॥ ६

न चौराः पिशुना धूर्तास्तस्य राज्ये च कुत्रचित्।
दम्भाः कृतघ्ना मूर्खाश्च वसन्ति किल मानवाः॥ ७

एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य कुरुसत्तम।
द्वे पत्न्यौ रूपसम्पन्ने ह्यासतुः कामभोगदे॥ ८

मनोरमा धर्मपत्नी सुरूपातिविचक्षणा।
लीलावती द्वितीया च सापि रूपगुणान्विता॥ ९

विजहार सपत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च।
क्रीडागिरौ दीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च॥ १०

मनोरमा शुभे काले सुषुवे पुत्रमुत्तमम्।
सुदर्शनाभिधं पुत्रं राजलक्षणसंयुतम्॥ ११

लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी।
सुषुवे सुन्दरं पुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा॥ १२

चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मादिकं द्वयोः।
ददौ दानानि विप्रेभ्यः पुत्रजन्मप्रमोदितः॥ १३

प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप।
नृपश्चकार सौहार्देष्वन्तरं न कदाचन॥ १४

चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः।
यथाविभवमेवासौ प्रीतियुक्तः परन्तपः॥ १५

कोसलदेशमें सूर्यवंशमें एक महातेजस्वी श्रेष्ठ राजा उत्पन्न हुए। वे महाराज पुष्यके पुत्र थे और ध्रुवसन्धिके नामसे विख्यात थे॥ ४॥

वे धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ तथा वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहते थे। पवित्र व्रतधारी वे ध्रुवसन्धि वैभवशालिनी अयोध्यानगरीमें राज्य करते थे॥ ५॥

उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, द्विजगण तथा अन्य सभी अपनी-अपनी जीविकामें तत्पर रहकर धर्मपूर्वक आचरण करते थे। उनके राज्यमें कहीं भी चोर, निन्दक, धूर्त, पाखण्डी, कृतघ्न तथा मूर्ख मनुष्य निवास नहीं करते थे॥ ६-७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उन राजाकी रूपवती तथा आनन्दोपभोग प्रदान करनेवाली दो पत्नियाँ थीं। उनकी धर्मपत्नी मनोरमा थी, जो सुन्दर रूपवाली तथा परम विदुषी थी और दूसरी पत्नी लीलावती थी; वह भी रूप तथा गुणोंसे सम्पन्न थी॥ ८-९॥

महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पत्नियोंके साथ राजभवनों, उपवनों, क्रीड़ापर्वत, बावलियों तथा विभिन्न महलोंमें विहार करते थे॥ १०॥

रानी मनोरमाने शुभ वेलामें राजलक्षणोंसे सम्पन्न एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम सुदर्शन पड़ा॥ ११॥

उनकी दूसरी सुन्दर पत्नी लीलावतीने भी एक माहके भीतर शुभ पक्ष तथा शुभ दिनमें एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

महाराज ध्रुवसन्धिने उन दोनों बालकोंका जातकर्म आदि संस्कार किया तथा पुत्र-जन्मसे प्रमुदित एवं उल्लसित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंको नानाविध दान दिये॥ १३॥

हे राजन्! महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पुत्रोंपर समान प्रीति रखते थे। वे उन दोनोंके प्रति अपने प्रेम-भावमें कभी भी अन्तर नहीं आने देते थे॥ १४॥

परम तपस्वी उन राजेन्द्रने अपने वैभवके अनुसार बड़े हर्षोल्लासके साथ विधिपूर्वक उन दोनोंका चूडाकर्म-संस्कार किया॥ १५॥

जहृतुः

चाटुवाक्य:
मञ्जुवाक्

कृतचूडौ सुतौ कामं जह्रतुर्नृपतेर्मनः।
क्रीडमानावुभौ कान्तौ लोकानामनुरञ्जकौ॥ १६

तयोः सुदर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याः सुतः शुभः।
शत्रुजित्संज्ञकः कामं चाटुवाक्यो बभूव ह॥ १७

नृपतेः प्रीतिजनको मञ्जुवाक्चारुदर्शनः।
प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथा मन्त्रिजनस्य वै॥ १८

यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः।
मन्दभाग्यान्मन्दभावो न तथा वै सुदर्शने॥ १९

एवं गच्छति काले तु ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः।
जगाम वनमध्येऽसौ मृगयाभिरतः सदा॥ २०

निघ्नन्मृगान् रुरून्कम्बून्सूकरानावयाञ्छशान्।
महिषाञ्छरभान्खड्गांश्चिक्रीड नृपतिर्वने॥ २१

क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे।
उदतिष्ठन्निकुञ्जात्तु सिंहः परमकोपनः॥ २२

राज्ञा शिलीमुखेनादौ विद्धः क्रोधवशं गतः।
दृष्ट्वाग्रे नृपतिं सिंहो ननाद मेघनिःस्वनः॥ २३

कृत्वा चोर्ध्वं स लाङ्गूलं प्रसारितबृहत्सटः।
हन्तुं नृपतिमाकाशादुत्पपातातिकोपनः॥ २४

नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा।
वामे चर्म समादाय स्थितः सिंह इवापरः॥ २५

सेवकास्तस्य ये सर्वे तेऽपि बाणान्पृथक्पृथक्।
अमुञ्चन्कुपिताः कामं सिंहोपरि रुषान्विताः॥ २६

चूडाकर्म-संस्कार हो जानेपर उन दोनों बालकोंने राजाके मनको मोहित कर लिया; वे दोनों कान्तिमान् बालक खेलते समय सभी लोगोंको मुग्ध कर लेते थे॥ १६॥

उन दोनोंमें [मनोरमाका पुत्र] सुदर्शन ज्येष्ठ था। लीलावतीका शत्रुजित् नामक पुत्र अत्यन्त सुन्दर तथा मृदुभाषी था॥ १७॥

उसके मधुरभाषी तथा अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण राजा उससे अधिक प्रेम करने लगे और उसी तरहसे वह प्रजाजनों तथा मन्त्रियोंका भी प्रियपात्र बन गया॥ १८॥

शत्रुजित्के गुणोंके कारण राजाका जैसा प्रेम उसपर हो गया, वैसा प्रेम सुदर्शनके प्रति नहीं था। वे सुदर्शनके प्रति मन्दभाग्य होनेके कारण कम अनुराग रखने लगे॥ १९॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर आखेटके प्रति सदा तत्पर रहनेवाले नृपश्रेष्ठ ध्रुवसन्धि आखेटके लिये वनमें गये॥ २०॥

वे राजा ध्रुवसन्धि वनमें रुरु मृगों, बनैले सूअरों, गवयों, खरगोशों, भैंसों, शरभों तथा गैंडोंको मारते हुए आखेट करने लगे॥ २१॥

जब महाराज उस गहन तथा महाभयंकर वनमें शिकार खेल रहे थे, उसी समय महान् रोषमें भरा हुआ एक सिंह झाड़ीसे निकला॥ २२॥

पहले तो राजाने उसे बाणसे आहत कर दिया; तब अत्यन्त कोपाविष्ट वह सिंह उन्हें अपने सामने देखकर मेघके समान गरजने लगा॥ २३॥

अपनी पूँछ खड़ी करके तथा गर्दनके लम्बे केशोंको छितराकर अत्यन्त कुपित वह सिंह राजाको मारनेके लिये छलाँग लगाकर उनपर झपटा॥ २४॥

तब उसे देखकर राजाने भी तत्काल अपने हाथमें तलवार धारण कर ली और बायें हाथमें ढाल लेकर दूसरे सिंहके समान खड़े हो गये॥ २५॥

यह देखकर उनके जो सेवकगण थे, वे सभी अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषपूर्वक उस सिंहपर अलग-अलग बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २६॥

रुषान्विता:

हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः।
उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरि दारुणः॥ २७

तं पतन्तं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः।
सोऽपि क्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्रागत्य विदारितः॥ २८

स नखैराहतो राजा पपात च ममार वै।
चुक्रुशुः सैनिकास्ते तु निर्जघ्नुर्विशिखैस्तदा॥ २९

मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथा मृतः।
सैनिकैर्मन्त्रिमुख्याश्च तत्रागत्य निवेदिताः॥ ३०

परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मन्त्रिसत्तमाः।
संस्कारं कारयामासुर्गत्वा तत्र वनान्तिके॥ ३१

परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम्।
कारयामास तत्रैव परलोकसुखावहाम्॥ ३२

प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः।
सुदर्शनं नृपं कर्तुं मन्त्रं चक्रुः परस्परम्॥ ३३

धर्मपत्नीसुतः शान्तः पुरुषश्च सुलक्षणः।
अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मन्त्रिसत्तमाः॥ ३४

वसिष्ठोऽपि तथैवाह योग्योऽयं नृपतेः सुतः।
बालोऽपि धर्मवान् राजा नृपासनमिहार्हति॥ ३५

कृते मन्त्रे मन्त्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः।
तत्राजगाम तरसा श्रुत्वा तूज्जयिनीपतिः॥ ३६

मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा।
तत्राजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया॥ ३७

वहाँ महान् हाहाकार मच गया तथा भीषण प्रहार होने लगा। इसी बीच वह भयानक सिंह राजापर टूट पड़ा॥ २७॥

उसे अपने ऊपर झपटते देखकर राजाने खड्गसे उसपर प्रहार किया। उस सिंहने भी राजाके समीप आकर अपने भयानक तथा तीक्ष्ण नखोंसे राजाको क्षत-विक्षत कर डाला॥ २८॥

नखोंके प्रहारसे आहत होकर राजा गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। इससे सभी सैनिक और भी क्रोधित हो उठे; तब वे बाणोंसे सिंहपर भीषण प्रहार करने लगे। इस प्रकार राजा ध्रुवसन्धि तथा वह सिंह दोनों मर गये। तदनन्तर सैनिकोंने आकर मन्त्रिप्रवरोंको यह समाचार बताया॥ २९-३०॥

राजाके परलोकगमनका समाचार सुनकर उन श्रेष्ठ मन्त्रियोंने उस वनमें जाकर उनका दाह-संस्कार करवाया॥ ३१॥

वहींपर गुरु वसिष्ठने परलोकमें सुख प्रदान करनेवाले सभी श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य विधिपूर्वक सम्पन्न करवाये॥ ३२॥

तदनन्तर प्रजाजनों, मन्त्रियों तथा महामुनि वसिष्ठने सुदर्शनको राजा बनानेके उद्देश्यसे आपसमें विचार-विमर्श किया॥ ३३॥

श्रेष्ठ मन्त्रियोंने कहा कि सुदर्शन महाराजकी धर्मपत्नी मनोरमाके पुत्र हैं, शान्त स्वभाववाले पुरुष हैं तथा सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, अतः ये राजसिंहासनके योग्य हैं॥ ३४॥

गुरु वसिष्ठने भी वही बात कही कि महाराजका यह पुत्र सुदर्शन राजपदके योग्य है; क्योंकि बालक होते हुए भी धर्मपरायण राजकुमार ही राजसिंहासनका अधिकारी होता है॥ ३५॥

वयोवृद्ध मन्त्रियोंके द्वारा इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त यह समाचार सुनकर उज्जयिनीनरेश राजा युधाजित् शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ३६॥

लीलावतीके पिता युधाजित् अपने दामादकी मृत्युके विषयमें सुनकर अपने दौहित्रके हितकी कामनासे उस समय शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये॥ ३७॥

साध्वस - भय

वीरसेनस्तथायातः सुदर्शनहितेच्छया।
कलिङ्गाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः॥ ३८

उभौ तौ सैन्यसंयुक्तौ नृपौ साध्वससंस्थितौ।
चक्रतुर्मन्त्रिमुख्यैस्तैर्मन्त्रं राज्यस्य कारणात्॥ ३९

युधाजित्तु तदापृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः।
राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन॥ ४०

वीरसेनोऽपि तत्राह धर्मपत्नीसुतः किल।
राज्यार्हः स यथा राजन् शास्त्रज्ञेभ्यो मया श्रुतम्॥ ४१

युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः।

राजलक्षणसंयुक्तो न तथायं सुदर्शनः॥ ४२

विवादोऽत्र सुसम्पन्नो नृपयोस्तत्र लुब्धयोः।
कः सन्देहमपाकर्तुं क्षमः स्यादतिसङ्कटे॥ ४३

युधाजिन्मन्त्रिणः प्राह यूयं स्वार्थपराः किल।
सुदर्शनं नृपं कृत्वा धनं भोक्तुं किलेच्छथ॥ ४४

युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञातस्तथेङ्गितैः।
शत्रुजित्सबलस्तस्मात्सम्मतो वो नृपासने॥ ४५

मयि जीवति कः कुर्यात्कनीयांसं नृपं किल।
त्यक्त्वा ज्येष्ठं गुणार्हञ्च सेनया च समन्वितम्॥ ४६

नूनं युद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी।
धारया च द्विधा भूयाद्युष्माकं तत्र का कथा॥ ४७

वीरसेनस्तु तच्छ्रुत्वा युधाजितमभाषत।
बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौ को भेदोऽत्र विचक्षण॥ ४८

उसी समय सुदर्शनके हित-साधनके उद्देश्यसे मनोरमाके पिता कलिंगाधिपति महाराज वीरसेन भी वहाँ आ गये॥ ३८॥

सेनाओंसे सम्पन्न तथा एक-दूसरेसे भयभीत वे दोनों राजा राज्यके अधिकारीका निर्णय करनेके लिये प्रधान अमात्योंके साथ मन्त्रणा करने लगे॥ ३९॥

युधाजित्ने पूछा कि इन दोनों राजकुमारोंमें ज्येष्ठ कौन है? ज्येष्ठ ही राज्य प्राप्त करता है, कनिष्ठ कदापि नहीं॥ ४०॥

उसी समय वीरसेनने भी कहा—हे राजन्! मैंने शास्त्रविदोंसे ऐसा सुना है कि धर्मपत्नीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी माना जाता है॥ ४१॥

युधाजित्ने पुनः कहा कि यह शत्रुजित् गुणोंके कारण ज्येष्ठ है। यह सुदर्शन राजोचित चिह्नोंसे युक्त होते हुए भी वैसा नहीं है॥ ४२॥

अपने-अपने स्वार्थके वशीभूत उन दोनों राजाओंमें वहाँ विवाद होने लगा। अब उस महासंकटकी परिस्थितिमें उनके सन्देहका समाधान करनेमें कौन समर्थ हो सकता था?॥ ४३॥

युधाजित्ने मन्त्रियोंसे कहा कि आपलोग अवश्य ही स्वार्थपरायण हो गये हैं और सुदर्शनको राजा बनाकर धनका स्वयं उपभोग करना चाहते हैं॥ ४४॥

मैंने आप लोगोंका यह विचार तो आप सबकी भाव-भंगिमासे पहले ही जान लिया था। शत्रुजित् सुदर्शनसे अधिक बलवान् है, अतः आप लोगोंकी सम्मति तो यह होनी चाहिये कि शत्रुजित् ही राजसिंहासनपर आसीन होनेयोग्य है॥ ४५॥

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो मेरे जीवित रहते गुणोंमें बड़े तथा सेनासे सुसज्जित राजकुमारको छोड़कर [गुणोंमें] छोटे पुत्रको राजा बना सके॥ ४६॥

इसके लिये मैं निश्चितरूपसे घोर संग्राम करूँगा। मेरे खड्गकी धारसे पृथ्वीके भी दो टुकड़े हो सकते हैं, फिर आप लोगोंकी बात ही क्या!॥ ४७॥

यह सुनकर वीरसेनने युधाजित्से कहा—हे विद्वन्! दोनों ही बालक समान बुद्धि रखते हैं; इनमें भेद ही क्या है?॥ ४८॥

एवं विवदमानौ तौ संस्थितौ नृपती तदा।
प्रजाश्च ऋषयश्चैव बभूवुर्व्यग्रमानसाः॥ ४९

तदनन्तर उन दोनोंको इस प्रकार परस्पर विवाद करते देखकर प्रजाजनों तथा ऋषियोंके मनमें व्यग्रता होने लगी॥ ४९॥

समाजग्मुश्च सामन्ताः ससैन्याः क्लेशतत्पराः।
विग्रहं चाभिकाङ्क्षन्तः परस्परमतन्द्रिताः॥ ५०

तब एक-दूसरेको क्लेश पहुँचानेके लिये उद्यत तथा युद्धकी इच्छावाले दोनों पक्षोंके सामन्त सावधान होकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ५०॥

निषादा ह्याययुस्तत्र शृङ्गवेरपुराश्रयाः।
राज्यद्रव्यमपाहर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम्॥ ५१

पुत्रौ च बालकौ श्रुत्वा विग्रहं च परस्परम्।
चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशान्तरादपि॥ ५२

उसी समय महाराज ध्रुवसन्धिकी मृत्युका समाचार सुनकर शृंगवेरपुरमें रहनेवाले निषादगण राजकोष लूटनेके लिये वहाँ आ गये। दोनों राजकुमार अभी बालक हैं तथा वे आपसमें कलह कर रहे हैं—यह सुनकर देश-देशान्तरके चोर-लुटेरे भी वहाँ आ गये॥ ५१-५२॥

सम्मर्दस्तत्र सञ्जातः कलहे समुपस्थिते।
युधाजिद्वीरसेनश्च युद्धकामौ बभूवतुः॥ ५३

इस प्रकार वहाँपर भारी कलह उपस्थित हो जानेपर युद्ध आरम्भ हो गया। युधाजित् तथा वीरसेन भी युद्धके लिये उद्यत हो गये॥ ५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
युधाजिद्वीरसेनयोर्युद्धार्थं सज्जीभवनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राजा युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, राजा ध्रुवसन्धिकी रानी मनोरमाका अपने पुत्र सुदर्शनको लेकर भारद्वाजमुनिके आश्रममें जाना तथा वहीं निवास करना

व्यास उवाच

संयुगे च सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः।
क्रोधलोभवशयोः समं ततः सम्बभूव तुमुलस्तु विमर्दः॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] युद्ध आरम्भ हो जानेपर क्रोध एवं लोभके वशीभूत उन दोनों राजाओंने लड़नेके लिये शस्त्र उठा लिये और तब उनके बीच भयानक संग्राम आरम्भ हो गया॥ १॥

संस्थितः स समरे धृतचापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित्।
संयुतः स्वबलवाहनादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः॥ २

युद्धके लिये कृतसंकल्प वे विशालबाहु राजा युधाजित् धनुष धारण करके अपनी सेना तथा वाहन आदिके साथ रणभूमिमें डट गये॥ २॥

वीरसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्रधर्ममनुसृत्य सङ्गरे।
पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः॥ ३

इधर इन्द्रके समान तेजस्वी राजा वीरसेन भी क्षत्रियोचित धर्मका अनुसरण करते हुए अपने दौहित्रके हित-साधनहेतु विशाल सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हो गये॥ ३॥

स बाणवृष्टिं विससर्ज पार्थिवो
युधाजितं वीक्ष्य रणे स्थितञ्च।
गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः
क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ॥ ४

सत्यपराक्रमी राजा वीरसेनने युधाजित्को समरांगणमें उपस्थित देखकर क्रोधयुक्त होकर इस प्रकार बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी, मानो पर्वतपर मेघ जल बरसा रहा हो॥ ४॥

तं वीरसेनो विशिखैः शिलाशितैः
समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः ।
चिच्छेद बाणैश्च शिलीमुखानसौ
तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥ ५

राजा वीरसेनने पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये, द्रुतगामी तथा सीधे प्रवेश करनेवाले बाणोंसे युधाजित्को आच्छादित कर दिया और युधाजित्के द्वारा छोड़े गये अत्यन्त तीव्रगामी बाणोंको उन्होंने अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ ५ ॥

गजरथतुरगाणां सम्बभूवातियुद्धं
सुरनरमुनिसङ्घैर्वीक्षितं चातिघोरम्।
विततविहगवृन्दैरावृतं व्योम सद्यः
पिशितमशितुकामैः काकगृध्रादिभिश्च ॥ ६

इस प्रकार हाथियों, रथों तथा घोड़ोंसे अतिभयंकर युद्ध होने लगा जिसे देवता, मनुष्य तथा मुनिगण देख रहे थे। मांसभक्षणकी लालसावाले कौए, गीध आदि पक्षियोंके विस्तृत समूहसे शीघ्र ही वहाँका आकाशमण्डल ढक गया ॥ ६ ॥

तत्राद्भुता क्षतजसिन्धुरुवाह घोरा
वृन्देभ्य एव गजवीरतुरङ्गमाणाम्।
त्रासावहा नयनमार्गगता नराणां
पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम् ॥ ७

उस युद्धभूमिमें हाथियों, घोड़ों तथा सैन्यसमूहोंके शरीरसे निकले रक्तसे अद्भुत तथा भयंकर नदी बह चली, जो लोगोंको उसी प्रकार दिखायी पड़ रही थी, जैसे यमलोकके मार्गमें प्रवाहित वैतरणी पापियोंको भयावह दीखती है ॥ ७ ॥

कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि
केशावृतानि च विभान्ति यथैव सिन्धौ।
तुम्बीफलानि विहितानि विहर्तुकामै-
र्बालैर्यथा रविसुताप्रभवैश्च नूनम् ॥ ८

[तीव्र धारके वेगसे] कटे हुए तटवाली उस नदीमें मनुष्योंके केशयुक्त इधर-उधर बिखरे मस्तक, खेलनेमें तत्पर बालकोंद्वारा यमुनामें फेंके गये तुम्बीफलोंके समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ८ ॥

वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वै
गृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये।
जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्य कान्तं
काङ्क्षत्यहोऽतिविवशोऽपि पुनः प्रवेष्टुम् ॥ ९

रथसे गिरे हुए किसी मृत वीरको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर मांसकी इच्छासे गीध उसके ऊपर मँडराने लगता था, इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उस वीरका जीव अपने शरीरको अति सुन्दर देखकर अत्यन्त विवश हो उसमें पुनः प्रवेश करनेकी इच्छा कर रहा हो ॥ ९ ॥

आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः
स्वाङ्के स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम्।
पश्याधुना मम शरीरमिदं पृथिव्यां
बाणाहतं निपतितं करभोरु कान्तम् ॥ १०

युद्धभूमिमें हत कोई वीर योद्धा सुन्दर विमानमें आरूढ़ होकर अपनी गोदमें बैठी हुई किसी देवांगनासे अपना मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करता था—हे करभोरु! इस समय बाणोंसे आहत होकर धरतीपर पड़े हुए मेरे इस कान्तियुक्त शरीरको देखो ॥ १० ॥

एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽन्तरिक्षं
देवाङ्गनां समधिगम्य युतो विमाने।
तावत्प्रिया हुतवहे सुसमर्प्य देहं
जग्राह कान्तमबला सबला स्वकीया ॥ ११

शत्रुके द्वारा मारा गया एक वीर ज्यों ही अन्तरिक्षमें पहुँचा और अप्सराके पास ज़ाकर विमानमें बैठा, त्यों ही उसकी अपनी प्रिय स्त्री अपना शरीर अग्निको भलीभाँति समर्पित करके पुनः दिव्य शरीर पाकर अपने पतिके पास जा पहुँची ॥ ११ ॥

युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि सङ्गतौ ता-
वन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह सम्प्रयातौ।
तत्रैव जघ्नतुरलं परमाहितास्त्रा-
वेकाप्सरोऽर्थविहतौ कलहाकुलौ च॥ १२

कश्चिद्युवा समधिगम्य सुराङ्गनां वै
रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः।
स्वीयान् गुणान्प्रविततान्प्रवदंस्तदासौ
तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः॥ १३

भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितञ्च
रात्रिं चकार तरणिञ्च समावृणोद्यत्।
मग्नं तदेव रुधिराम्बुनिधावकस्मात्
प्रादुर्बभूव रविरप्यतिकान्तियुक्तः॥ १४

कश्चिद् गतस्तु गगनं किल देवकन्यां
सम्प्राप्य चारुवदनां किल भक्तियुक्ताम्।
नाङ्गीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो
यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः॥ १५

सङ्ग्रामे संवृते तत्र युधाजित्पृथिवीपतिः।
जघान वीरसेनं तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः॥ १६

निहतः स पपातोर्व्यां छिन्नमूर्धा महीपतिः।
प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतं च चतुर्दिशम्॥ १७

मनोरमा हतं श्रुत्वा पितरं रणमूर्धनि।
भयत्रस्ताथ सञ्जाता पितुर्वैरमनुस्मरन्॥ १८

हनिष्यति युधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः।
राज्यलोभेन पापात्मा सेति चिन्तापराभवत्॥ १९

किं करोमि क्व गच्छामि पिता मे निहतो रणे।
भर्ता चापि मृतोऽद्यैव पुत्रोऽयं मम बालकः॥ २०

उस युद्धमें दो वीर परस्पर एक-दूसरेके शस्त्र-प्रहारसे आहत होकर मर गये और साथ-साथ ही स्वर्गलोकमें पहुँचे। वहाँपर भी एक अप्सराको प्राप्त करनेके लिये वे दोनों वीर शस्त्रयुक्त होकर एक-दूसरेको मारनेहेतु युद्ध करने लगे॥ १२॥

कोई अनुरागमय युवा वीर अतिशय रूपवती तथा गुणवती अप्सराको प्राप्त करके अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर अपने गुणोंका वर्णन करते हुए उसके प्रति भक्तिपरायण होकर प्रयत्नपूर्वक उस प्रेमदायिनीके गुण आदिका अनुकरण करने लगा॥ १३॥

घोर युद्धके कारण रणभूमिसे उड़ी हुई अत्यधिक धूलने अन्तरिक्षस्थित सूर्यको ढक दिया और दिनमें ही रात हो गयी। पुनः वही धूल जब अथाह रक्त-सिन्धुमें विलीन हो जाती तब अत्यन्त प्रभावाले सूर्य अचानक प्रकट हो जाते॥ १४॥

कोई युवक वीर युद्धमें मरकर स्वर्ग पहुँचा तो उसे एक सुन्दर रूपवाली देवकन्या मिली, जो उसके ऊपर आसक्त हो गयी। किंतु ब्रह्मचर्यव्रतके नाश होनेसे भयभीत उस चतुर वीरने उसे स्वीकार नहीं किया; [उसने सोचा कि ऐसा करनेसे] मेरे अनुरूप यह ब्रह्मचारी शब्द व्यर्थ हो जायगा॥ १५॥

तदनन्तर घोर संग्राम छिड़ जानेपर राजा युधाजित्ने अपने तीक्ष्ण तथा अत्यन्त भीषण बाणोंसे वीरसेनको मार डाला॥ १६॥

इस प्रकार कटे मस्तकवाले महाराज वीरसेन पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गयी और चारों दिशाओंमें भाग गयी॥ १७॥

अपने पिता वीरसेनको समरांगणमें मारा गया सुनकर तथा अपने पिताके वैरका स्मरण करते हुए मनोरमा भयसे व्याकुल हो गई। वह इस चिन्तामें पड़ गई कि बुरे विचारोंवाला वह पापी युधाजित् राज्यके लोभसे मेरे पुत्रको अवश्य ही मार डालेगा॥ १८-१९॥

अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पिताजी युद्धमें मारे गये तथा पतिदेव भी मर चुके हैं और मेरा यह पुत्र अभी बालक ही है॥ २०॥

-पवि

लोभोऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः।
किं न कुर्यात्तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः॥ २१

पितरं मातरं भ्रातॄन्गुरूंस्स्वजनबान्धवान्।
हन्ति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा॥ २२

अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा।
करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागं तथा पुनः॥ २३

न सहायोऽस्ति मे कश्चिन्नगरेऽत्र महाबलः।
यदाधारे स्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम्॥ २४

हते पुत्रे नृपेणाद्य किं करिष्याम्यहं पुनः।
न मे त्रातास्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम्॥ २५

सापि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत्।
लीलावती न मे पुत्रे भविष्यति दयावती॥ २६

युधाजिति समायाते न मे निःसरणं भवेत्।
ज्ञात्वा बालं सुतं सोऽद्य कारागारं नयिष्यति॥ २७

श्रूयते हि पुरेन्द्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः।
कृन्तितः सप्तधा पश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा॥ २८

प्रविश्य चोदरं मातुः करे कृत्वाल्पकं पविम्।
एकोनपञ्चाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि॥ २९

सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया।
गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम्॥ ३०

जातस्तु बालकः पश्चाद्देहे विषयुतः किल।
तेनासौ सगरो नाम विख्यातो भुवि मण्डले॥ ३१

जीवमानोऽथ भर्ता वै कैकेय्या नृपभार्यया।
रामः प्रव्राजितो ज्येष्ठो मृतो दशरथो नृपः॥ ३२

लोभ बड़ा ही पापी होता है, इसने किसको अपने वशमें नहीं किया। लोभसे ग्रस्त हो जानेपर श्रेष्ठ राजा भी कौन-सा पाप नहीं कर सकता। लोभसे अभिभूत मनुष्य अपने माता-पिता, भाई, गुरु तथा बन्धु-बान्धवोंको भी मार डालता है; इसमें सन्देह नहीं है। लोभके कारण मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण तथा अगम्या स्त्रीके साथ गमन भी कर लेता है; यहाँतक कि लोभसे व्याकुल होकर वह धर्मका त्याग भी कर देता है॥ २१—२३॥

अब इस नगरमें कोई बलवान् पुरुष मुझे सहायता देनेवाला भी नहीं रह गया, जिसके आश्रयमें रहकर मैं अपने सुन्दर पुत्रका पालन कर सकूँ॥ २४॥

यदि राजा युधाजित् मेरे पुत्रको मार डाले, तो मैं फिर क्या करूँगी? इस संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है, जिसके सहारे मैं निश्चिन्त रह सकूँ?॥ २५॥

मेरी सौत लीलावती भी सदा मुझसे वैरभाव रखती है, अतः वह भी मेरे पुत्रपर दया नहीं करेगी॥ २६॥

युधाजित्के रणभूमिसे लौटकर आ जानेपर मेरा यहाँसे निकल भागना सम्भव नहीं हो सकेगा; वह मेरे पुत्रको बालक जानकर उसे कारागारमें डाल देगा॥ २७॥

सुना जाता है कि पूर्वकालमें इन्द्रने अपने वज्रको अत्यन्त छोटा बनाकर अपनी सौतेली माता दितिके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थ शिशुको काटकर उसके सात टुकड़े कर दिये थे। इसके बाद उसने पुनः एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये थे। वे ही आगे चलकर देवलोकमें उनचास मरुत्के रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २८-२९॥

मैंने यह भी सुना है कि पूर्वकालमें एक राजाकी किसी रानीने अपनी सौतके गर्भको नष्ट करनेके उद्देश्यसे उसे विष दे दिया था। कुछ समय बीतनेपर वह बालक विषके साथ उत्पन्न हुआ, इसीसे वह भूमण्डलपर 'सगर' नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ३०-३१॥

महाराज दशरथकी भार्या कैकेयीने पतिके जीवनकालमें ही उनके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको वनवास दे दिया था, जिसके फलस्वरूप राजा दशरथकी मृत्यु भी हो गयी॥ ३२॥

मन्त्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम्।
राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते॥ ३३

न मे भ्राता तथा शूरो यो मां बन्धात्प्रमोचयेत्।
महत्कष्टं च सम्प्राप्तं मया वै दैवयोगतः॥ ३४

उद्यमः सर्वथा कार्यः सिद्धिर्दैवाद्धि जायते।
उपायं पुत्ररक्षार्थं करोम्यद्य त्वरान्विता॥ ३५

इति सञ्चिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम्।
निपुणं सर्वकार्येषु चिन्त्यं मन्त्रिवरोत्तमम्॥ ३६

समाहूय तमेकान्ते प्रोवाच बहुदुःखिता।
गृहीत्वा बालकं हस्ते रुदती दीनमानसा॥ ३७

पिता मे निहतः संख्ये पुत्रोऽयं बालकस्तथा।
युधाजिद् बलवान् राजा किं विधेयं वदस्व मे॥ ३८

तामुवाच विदल्लोऽसौ नात्र स्थातव्यमेव च।
गमिष्यामो वने कामं वाराणस्याः पुनः किल॥ ३९

तत्र मे मातुलः श्रीमान्वर्तते बलवत्तरः।
सुबाहुरिति विख्यातो रक्षिता स भविष्यति॥ ४०

युधाजिद्दर्शनोत्कण्ठमनसा नगराद् बहिः।
निर्गत्य रथमारुह्य गन्तव्यं नात्र संशयः॥ ४१

इत्युक्ता तेन सा राज्ञी गत्वा लीलावतीं प्रति।
उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने॥ ४२

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सैरन्ध्रीसंयुता तदा।
विदल्लेन च संयुक्ता निःसृता नगराद् बहिः॥ ४३

त्रस्ता ह्यार्तातिकृपणा पितुः शोकसमाकुला।
दृष्ट्वा युधाजितं भूपं पितरं गतजीवितम्॥ ४४

संस्कार्य च त्वरायुक्ता वेपमाना भयाकुला।
दिनद्वयेन सम्प्राप्ता राज्ञी भागीरथीतटम्॥ ४५

जो मन्त्री मेरे पुत्र सुदर्शनको राजा बनाना चाहते थे, वे भी अब विवश होकर युधाजित्के अधीन हो गये हैं। मेरा भाई भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो मुझे बन्धनसे छुड़ा सके। दैवयोगसे मैं महान् संकटमें पड़ गयी हूँ। फिर भी उद्योग तो सर्वथा करना ही चाहिये, सफलता तो दैवके आधीन है। अतः अब मैं अपने पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय करूँगी॥ ३३—३५॥

ऐसा सोचकर वह रानी अतिसम्मानित, सभी कार्योंमें दक्ष तथा विचार-कुशल श्रेष्ठ मन्त्रिप्रवर विदल्लको बुलवाकर उन्हें एकान्तमें ले गयी और बालकको हाथमें लेकर रोती हुई दीन मनवाली उस मनोरमाने अत्यन्त दुःखित होकर उनसे कहा—मेरे पिता युद्धमें मारे गये और मेरा यह पुत्र अभी अबोध बालक है। राजा युधाजित् बलवान् हैं। [ऐसी परिस्थितिमें] मुझे क्या करना चाहिये? मुझे बतायें॥ ३६—३८॥

तब विदल्लने उससे कहा—अब यहाँ नहीं रहना चाहिये, हमलोग यहाँसे वाराणसीके वनमें चलेंगे। वहाँ सुबाहु नामसे विख्यात मेरे मामा रहते हैं। वे समृद्धिशाली तथा महाबलशाली हैं; वे ही हमारे रक्षक होंगे॥ ३९-४०॥

मनमें युधाजित्के दर्शनकी लालसासे नगरसे बाहर निकल चलना चाहिये और रथपर सवार हो प्रस्थान कर देना चाहिये; इसमें शंकाकी आवश्यकता नहीं है॥ ४१॥

विदल्लके ऐसा कहनेपर रानी मनोरमा लीलावतीके पास गयी और बोली—हे सुनयने! मैं [तुम्हारे] पिताजीका दर्शन करने जा रही हूँ॥ ४२॥

ऐसा कहकर मनोरमा एक दासी और मन्त्री विदल्लको साथ लेकर रथपर सवार हो नगरसे बाहर निकल गयी। उस समय बहुत डरी हुई, दुःखित, अत्यन्त दीन तथा पिताके मृत्युजन्य शोकसे व्याकुल वह मनोरमा राजा युधाजित्से मिलकर तत्काल अपने मृत पिताका दाहसंस्कार कराकर भयसे व्याकुल हो काँपती हुई दो दिनोंमें गंगाजीके तटपर पहुँच गयी॥ ४३—४५॥

निषादैर्लुण्ठिता तत्र गृहीतं सकलं वसु।
रथञ्चापि गृहीत्वा ते निर्गता दस्यवः शठाः॥ ४६

रुदती सुतमादाय चारुवस्त्रा मनोरमा।
निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरन्ध्रीकरलम्बिता॥ ४७

आरुह्य च भयाच्छीघ्रमुडुपं सा भयाकुला।
तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकूटपर्वतम्॥ ४८

भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरया च भयाकुला।
संवीक्ष्य तापसांस्तत्र सञ्जाता निर्भया तदा॥ ४९

मुनिना सा ततः पृष्टा कासि कस्य परिग्रहः।
कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते॥ ५०

देवी वा मानुषी वासि बालपुत्रा वने कथम्।
राज्यभ्रष्टेव वामोरु भासि त्वं कमलेक्षणे॥ ५१

एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी।
रुदती दुःखसन्तप्ता विदल्लं च समादिशत्॥ ५२

विदल्लस्तमुवाचेदं ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः।
तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा॥ ५३

सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः।
पुत्रोऽयं नृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः॥ ५४

अस्याः पितातिधर्मात्मा दौहित्रार्थं मृतो रणे।
युधाजिद्भयसन्त्रस्ता सम्प्राप्ता विजने वने॥ ५५

त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा।
त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनिसत्तम॥ ५६

आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम्।
भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्॥ ५७

वहाँके निषादोंने उसे लूट लिया तथा उसका सारा धन और रथ छीन लिया। सब कुछ लेकर वे धूर्त दस्यु चले गये। तब वह रोती हुई अपने पुत्रको लेकर सैरंध्रीके हाथका सहारा लेकर किसी प्रकार गंगाके तटपर गयी और एक छोटी-सी नौकापर डरती हुई बैठकर पवित्र गंगाको पार करके वह भयाक्रान्त मनोरमा त्रिकूटपर्वतपर पहुँच गयी॥ ४६—४८॥

वह भयभीत मनोरमा भारद्वाजमुनिके आश्रममें शीघ्रतासे पहुँची। तब वहाँ तपस्वियोंको देखकर वह निर्भय हो गयी। तदनन्तर भारद्वाजमुनिने पूछा—हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? इतने कष्टसे तुम यहाँ कैसे आ गयी हो? मुझसे सत्य कहो। तुम कोई देवी हो अथवा मानवी हो। अपने इस बालक पुत्रके साथ वनमें क्यों विचरण कर रही हो? हे सुन्दरि! हे कमलनयने! तुम राज्यभ्रष्ट-जैसी प्रतीत हो रही हो॥ ४९—५१॥

मुनिके पूछनेपर उस रूपवती रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और दुःखसे सन्तप्त होकर रोती हुई उसने अपने मन्त्री विदल्लको सारी बातें बतानेके लिये संकेत किया॥ ५२॥

तब विदल्लने मुनिसे कहा—ध्रुवसन्धि एक श्रेष्ठ नरेश थे। ये उन्हींकी मनोरमा नामवाली धर्मपत्नी हैं॥ ५३॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न उन महाबली महाराजको सिंहने मार डाला। सुदर्शन नामका यह बालक उन्हीं राजाका पुत्र है॥ ५४॥

इनके अत्यन्त धर्मात्मा पिता अपने इसी दौहित्रके लिये संग्राममें मारे गये। अतएव युधाजित्के भयसे संत्रस्त होकर ये इस निर्जन वनमें आयी हुई हैं॥ ५५॥

हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! अबोध पुत्रवाली ये राजपुत्री अब आपकी शरणमें आयी हैं। अतः आप इनकी रक्षा कीजिये॥ ५६॥

किसी दुःखी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञ करनेसे भी अधिक पुण्य बताया गया है। भयभीत तथा दीनकी रक्षाको तो और भी अधिक फलदायक कहा गया है॥ ५७॥

ऋषिरुवाच

निर्भया वस कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते।
न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसम्भवम्॥ ५८

पालयस्व सुतं कान्तं राजा तेऽयं भविष्यति।
नात्र दुःखं तथा शोकः कदाचित्सम्भविष्यति॥ ५९

व्यास उवाच

इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा सम्बभूव ह।
उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदावसत्॥ ६०

सैरन्ध्रीसहिता तत्र विदल्लेन च संयुता।
सुदर्शनं पालयाना न्यवसत्सा मनोरमा॥ ६१

ऋषि बोले—हे कल्याणि! तुम यहाँ भयरहित होकर निवास करो; हे सुव्रते! अपने पुत्रका पालन-पोषण करो। हे विशालनयने! यहाँ तुम्हें शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला किसी प्रकारका भी भय नहीं करना चाहिये। तुम अपने इस कान्तिमान् पुत्रका पालन करो, तुम्हारा यह पुत्र आगे चलकर राजा होगा। यहाँ तुम लोगोंको कभी भी कोई दुःख तथा शोक नहीं होगा॥ ५८-५९॥

व्यासजी बोले—मुनिके इस प्रकार कहनेपर महारानी मनोरमा निश्चिन्त हो गयीं और मुनिके द्वारा प्रदान की गयी एक कुटियामें वे शोकरहित होकर निवास करने लगीं॥ ६०॥

इस प्रकार सुदर्शनका पालन-पोषण करती हुई वे मनोरमा अपनी दासी तथा मन्त्री विदल्लके साथ वहाँ रहने लगीं॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे मनोरमया भारद्वाजाश्रमं प्रति गमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~0~~

अथ षोडशोऽध्यायः

युधाजित्का भारद्वाजमुनिके आश्रमपर आना और उनसे मनोरमाको भेजनेका आग्रह करना, प्रत्युत्तरमें मुनिका 'शक्ति हो तो ले जाओ'—ऐसा कहना

व्यास उवाच

युधाजित्त्वथ संग्रामाद् गत्वायोध्यां महाबलः।
मनोरमां च पप्रच्छ सुदर्शनजिघांसया॥ १

सेवकान् प्रेषयामास क्व गतेति मुहुर्वदन्।
शुभे दिनेऽथ दौहित्रं स्थापयामास चासने॥ २

मन्त्रिभिश्च वसिष्ठेन मन्त्रैराथर्वणैः शुभैः।
अभिषिक्तश्च सम्पूर्णैः कलशैर्जलपूरितैः॥ ३

भेरीशङ्खनिनादैश्च तूर्याणां चाथ निःस्वनैः।
उत्सवस्तु नगर्यां वै सम्बभूव कुरूद्वह॥ ४

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तदनन्तर महाबली युधाजित्ने रणभूमिसे अयोध्या पहुँचकर सुदर्शनको भी मार डालनेकी इच्छासे मनोरमाके विषयमें लोगोंसे पूछा॥ १॥

'मनोरमा कहाँ चली गयी' ऐसा बार-बार कहते हुए उसने सेवकोंको इधर-उधर भेज दिया। तत्पश्चात् किसी शुभ दिनमें अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठा दिया॥ २॥

समस्त मन्त्रियोंके साथ गुरु वसिष्ठने अथर्ववेदके कल्याणकारी मन्त्रोंका उच्चारण करके जलपूरित समस्त कलशोंसे राजकुमार शत्रुजित्का अभिषेक किया॥ ३॥

हे कुरुनन्दन! उस समय शंख, भेरीके निनादों तथा तुरहियोंकी ध्वनियोंके साथ पूरे नगरमें उत्सव मनाया गया॥ ४॥

विप्राणां वेदपाठैश्च बन्दिनां स्तुतिभिस्तथा।
अयोध्या मुदितेवासीज्जयशब्दैः सुमङ्गलैः॥ ५

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना।
नवे तस्मिन्महीपाले पूर्बभौ नूतनेव सा॥ ६

केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः।
सुदर्शनं विचिन्त्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः॥ ७

मनोरमातिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता।
पितास्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा॥ ८

इत्येवं चिन्त्यमानास्ते साधवः समबुद्धयः।
अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः॥ ९

युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः।
राज्यञ्च मन्त्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीं प्रति॥ १०

श्रुत्वा सुदर्शनं तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम्।
हन्तुकामो जगामाशु चित्रकूटं स पर्वतम्॥ ११

निषादाधिपतिं शूरं पुरस्कृत्य बलाभिधम्।
दुर्दर्शाख्यमगादाशु शृङ्गवेरपुराधिपम्॥ १२

श्रुत्वा मनोरमा तत्र बभूवातिसुदुःखिता।
आगच्छन्तं बालपुत्रा भयार्ता सैन्यसंयुतम्॥ १३

तमुवाचातिशोकार्ता मुनिं साश्रुविलोचना।
किं करोमि क्व गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः॥ १४

पिता मे निहतोऽनेन दौहित्रो भूपतिः कृतः।
सुतं मे हन्तुकामोऽत्र समायाति बलान्वितः॥ १५

ब्राह्मणोंके वेदपाठों, बन्दीजनोंके स्तुतिगान तथा मंगलकारी जयघोषसे अयोध्यानगरी प्रफुल्लित-सी दिखायी दे रही थी॥ ५॥

हृष्ट-पुष्टजनोंसे भरी-पूरी और स्तुतियों तथा वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित वह अयोध्या उस नये नरेशके अभिषिक्त होनेपर नवीन पुरीकी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ ६॥

उस नगरीमें जो कोई भी सज्जनलोग थे, उन्होंने अपने घरमें ही रहकर शोक मनाया। वे सुदर्शनके विषयमें सोचते हुए कह रहे थे कि वह राजकुमार कहाँ चला गया? महान् पतिव्रता वह मनोरमा अपने पुत्रके साथ कहाँ चली गयी? राज्यलोभी शत्रु युधाजित्ने युद्धमें उसके पिताको मार डाला॥ ७-८॥

ऐसा विचार करते हुए सबमें समान बुद्धि रखनेवाले वे साधुजन शत्रुजित्के अधीन होकर दुःखी मनसे रहने लगे॥ ९॥

इस प्रकार युधाजित् भी विधानपूर्वक अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठाकर तथा राज्यभार मन्त्रियोंको सौंपकर अपनी नगरीको प्रस्थान कर गया॥ १०॥

सुदर्शन मुनियोंके आश्रममें रह रहा है—ऐसा सुनकर युधाजित् उसे मार डालनेकी इच्छासे तत्काल ही चित्रकूट-पर्वतकी ओर चल पड़ा॥ ११॥

वह दुर्दर्श नामक श्रृंगवेरपुरके राजाके यहाँ पहुँचा और उस विशाल सेनासम्पन्न तथा पराक्रमी निषादराजको अगुआ बनाकर उसने शीघ्र ही आगेकी ओर प्रस्थान किया॥ १२॥

युधाजित्को सेनासहित आते हुए सुनकर अबोध सन्तानवाली वह मनोरमा भयभीत तथा अत्यन्त दुःखित हो गयी॥ १३॥

अत्यन्त शोकसन्तप्त वह मनोरमा आँखोंमें आँसू भरकर मुनि भारद्वाजसे बोली कि युधाजित् यहाँ भी आ पहुँचा; अब मैं क्या करूँ तथा कहाँ जाऊँ?॥ १४॥

इसने मेरे पिताका वध कर दिया तथा अपने दौहित्रको राजा बना दिया। अब वह विशाल सेनाके साथ मेरे पुत्रके वधकी कामनासे यहाँ आ रहा है॥ १५॥

पुरा श्रुतं मया स्वामिन् पाण्डवा वै वने स्थिताः।
मुनीनामाश्रमे पुण्ये पाञ्चाल्या सहितास्तदा॥ १६

गतास्ते मृगयां पार्था भ्रातरः पञ्च एव ते।
द्रौपदी संस्थिता तत्र मुनीनामाश्रमे शुभे॥ १७

धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः।
च्यवनश्चात्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः क्रतुः॥ १८

वीतिहोत्रः सुमन्तुश्च यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः।
राशासनः कहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः॥ १९

एते चान्ये च मुनयो भारद्वाजादयः शुभाः।
वेदपाठयुताः सर्वे संस्थिताश्चाश्रमे स्थिताः॥ २०

दासीभिः सहिता तत्र याज्ञसेनी स्थिता मुने।
आश्रमे चारुसर्वाङ्गी निर्भया मुनिसंवृते॥ २१

पार्था मृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च वनाद्वनम्।
धनुर्बाणधरा वीराः पञ्च वै शत्रुतापनाः॥ २२

तावत्सिन्धुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बलसंयुतः।
आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम्॥ २३

श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम्।
उत्ततार रथात्तूर्णं दर्शनाकाङ्क्षया नृपः॥ २४

यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः।
वेदपाठयुतान्वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः॥ २५

कृताञ्जलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः।
आश्रमे मुनिभिर्जुष्टे भूपतिः संविवेश ह॥ २६

तत्रोपविष्टं राजानं द्रष्टुकामाः स्त्रियस्तदा।
आययुर्मुनिभार्याश्च कोऽयमित्यब्रुवन्नृपम्॥ २७

तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता।
जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण श्रीरिवापरा॥ २८

तां विलोक्यासितापाङ्गीं देवकन्यामिवापराम्।
पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना॥ २९

हे स्वामिन्! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें जब मुनियोंके पवित्र आश्रममें द्रौपदीके साथ पाण्डव निवास कर रहे थे, उसी समय एक दिन वे पाँचों भाई आखेटके लिये चले गये और द्रौपदी वहींपर मुनियोंके उस पावन आश्रममें रह गयी थी॥ १६-१७॥

धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रिगोत्रज कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्री, यज्ञकृत् क्रतु—ये सब और भारद्वाज आदि अन्य पुण्यात्मा मुनिगण उस पावन आश्रममें विराजमान थे। वे सभी वेदपाठ कर रहे थे॥ १८—२०॥

हे मुने! मुनि-समुदायसे सम्पन्न उस आश्रममें सर्वांगसुन्दरी वह द्रौपदी अपनी दासियोंके साथ निर्भय होकर रहती थी॥ २१॥

शत्रुओंको सन्ताप पहुँचानेमें समर्थ तथा धनुष-बाण धारण किये वे पाँचों पाण्डव मृगका पीछा करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें निकल गये॥ २२॥

इसी बीच समृद्धिशाली सिन्धुनरेश [जयद्रथ] वेद-ध्वनि सुनकर अपनी सेनाके साथ आश्रमके पास आ गया॥ २३॥

वेदपाठ सुनकर राजा जयद्रथ पुण्यात्मा मुनियोंके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरा॥ २४॥

जब वह अपने दो भृत्योंके साथ आगे बढ़ा तो मुनियोंको वेदपाठमें संलग्न देखकर वहींपर बैठ गया। हे स्वामिन्! राजा जयद्रथ हाथ जोड़कर कुछ देरतक बैठा रहा। इसके बाद वह मुनियोंसे भरे हुए उस आश्रममें प्रविष्ट हुआ॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् मुनियोंकी पत्नियाँ तथा अन्य स्त्रियाँ वहाँ बैठे हुए राजा जयद्रथको देखनेकी इच्छासे वहाँ आ गयीं और लोगोंसे पूछने लगीं—यह कौन है?॥ २७॥

उन्हीं स्त्रियोंके साथ परम सुन्दरी द्रौपदी भी आयी थी। जयद्रथकी दृष्टि दूसरी लक्ष्मीके समान प्रतीत हो रही उस द्रौपदीपर पड़ गयी॥ २८॥

दूसरी देवकन्याकी भाँति प्रतीत हो रही उस श्याम नेत्रोंवाली द्रौपदीको देखकर राजा जयद्रथने ऋषि धौम्यसे पूछा कि यह सुन्दर मुखवाली युवती कौन है?॥ २९॥

बबूल

भार्या कस्य सुता कस्य नाम्ना का वरवर्णिनी।
रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधाङ्गता॥ ३०

बर्बूलवनमध्यस्था लवङ्गलतिका यथा।
राक्षसीवृन्दगा नूनं रम्भेवाभाति भामिनी॥ ३१

सत्यं वद महाभाग कस्येयं वल्लभाबला।
राजपत्नीव चाभाति नैषा मुनिवधूर्द्विज॥ ३२

धौम्य उवाच

पाण्डवानां प्रिया भार्या द्रौपदी शुभलक्षणा।
पाञ्चाली सिन्धुराजेन्द्र वसत्यत्र वराश्रमे॥ ३३

जयद्रथ उवाच

क्व गताः पाण्डवाः पञ्च शूराः सम्प्रति विश्रुताः।
वसन्त्यत्र वने वीरा वीतशोका महाबलाः॥ ३४

धौम्य उवाच

मृगयार्थं गताः पञ्च पाण्डवा रथसंस्थिताः।
आगमिष्यन्ति मध्याह्ने मृगानादाय पार्थिवाः॥ ३५

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौ नृपः।
द्रौपदीसन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह॥ ३६

कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते।
एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल॥ ३७

द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज।
विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायान्ति पाण्डवाः॥ ३८

एवं ब्रुवन्त्यां तस्यां तु लोभाविष्टः स भूपतिः।
जहार द्रौपदीं वीरोऽनादृत्य मुनिसत्तमान्॥ ३९

यह किसकी पत्नी है, किसकी पुत्री है और इस परम सुन्दरीका नाम क्या है? रूप तथा सौन्दर्यसे सम्पन्न यह स्त्री तो धरापर उतरकर आयी हुई साक्षात् इन्द्राणीकी भाँति प्रतीत हो रही है॥ ३०॥

यह स्त्री बबूलके वनमें स्थित लवंगलता तथा [कुरूपा] राक्षसियोंके समूहमें सचमुच रम्भाके समान प्रतीत हो रही है॥ ३१॥

हे महाभाग! आप सच-सच बताइये कि यह स्त्री किसकी पत्नी है? हे द्विज! यह तो किसी रानी-जैसी प्रतीत हो रही है; मुनिपत्नी तो यह कदापि नहीं हो सकती॥ ३२॥

धौम्य बोले—हे सिन्धुराजेन्द्र! समस्त शुभ लक्षणोंवाली यह पाण्डवोंकी प्रिय भार्या तथा पांचालनरेशकी पुत्री द्रौपदी है। यह इसी पवित्र आश्रममें निवास करती है॥ ३३॥

जयद्रथ बोला—विख्यात पराक्रमी पाँचों पाण्डव कहाँ गये हुए हैं? क्या वे महान् बलशाली वीर निश्चिन्त होकर इस समय इसी वनमें रह रहे हैं?॥ ३४॥

धौम्य बोले—पाँचों पाण्डव इस समय रथपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये हुए हैं। वे राजागण मध्याह्नकालमें मृगोंको लेकर आ जायँगे॥ ३५॥

मुनिका यह वचन सुनकर वह राजा जयद्रथ अपने आसनसे उठा और द्रौपदीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—हे परम सुन्दरि! आप सकुशल तो हैं न, आपके पतिगण कहाँ गये हुए हैं? आपको वनमें निवास करते हुए आज ग्यारह वर्ष बीत चुके हैं॥ ३६-३७॥

तत्पश्चात् द्रौपदीने कहा—हे राजकुमार! आपका कल्याण हो। अभी थोड़ी ही देरमें पाण्डव आ जायँगे, तबतक आप आश्रमके समीप ही विश्राम कीजिये॥ ३८॥

उसके ऐसा कहनेपर लोभसे आक्रान्त उस वीर जयद्रथने मुनिवरोंकी अवहेलना करके द्रौपदीका हरण कर लिया॥ ३९॥

कस्यचिन्नैव विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः।
कुर्वन्दुःखमवाप्नोति दृष्टान्तस्त्वत्र वै बलिः॥ ४०

वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसङ्गरः।
यज्ञकर्ता च दाता च शरण्यः साधुसम्मतः॥ ४१

नाधर्मे निरतः क्वापि प्रह्लादस्य च पौत्रकः।
एकोनशतयज्ञान्वै स चकार सदक्षिणान्॥ ४२

सत्त्वमूर्तिः सदा विष्णुः सेव्यः स योगिनामपि।
निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये॥ ४३

कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः।
राज्यं छलेन हृतवान्महीं चैव ससागराम्॥ ४४

सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा।
कपटं कृतवान्विष्णुरिन्द्रार्थे तु मया श्रुतम्॥ ४५

अन्यः किं न करोत्येवं कृतं वै सत्त्वमूर्तिना।
वामनं रूपमास्थाय यज्ञपातं चिकीर्षता॥ ४६

न च विश्वसितव्यं वै कदाचित्केनचित्तथा।
लोभश्चेतसि चेत्स्वामिन्कीदृक्पापकृतं भयम्॥ ४७

लोभाहताः प्रकुर्वन्ति पापानि प्राणिनः किल।
परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने॥ ४८

मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः।
प्रपतन्ति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः॥ ४९

देवानाराध्य सततं वाञ्छन्ति च धनं नराः।
न देवास्तत्करे कृत्वा समर्था दातुमञ्जसा॥ ५०

[मनोरमाने कहा—हे स्वामिन्!] अतएव बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे किसीपर भी विश्वास न करें, ऐसा करनेवाला व्यक्ति दुःख प्राप्त करता है। इस विषयमें राजा बलि उदाहरण हैं। विरोचनपुत्र राजा बलि वैभवसम्पन्न, धर्मपरायण, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकर्ता, दानी, शरणदाता तथा साधुजनोंके सम्मान्य थे॥ ४०-४१॥

प्रह्लादके पौत्र वे राजा बलि कभी अधर्मका आचरण नहीं करते थे। उन्होंने दक्षिणायुक्त निन्यानवे यज्ञ किये थे, फिर भी सत्त्वगुणकी साक्षात् मूर्ति, योगियोंद्वारा सदा आराधित तथा विकारोंसे रहित भगवान् विष्णु भी देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये कश्यपसे उत्पन्न हुए और उन्होंने वामनका कपटवेष धारण करके छलपूर्वक उनका राज्य तथा सागरसमेत पृथ्वी ले ली॥ ४२—४४॥

विरोचनके पुत्र बलि एक सत्यवादी राजा थे। मैंने तो ऐसा सुना है कि भगवान् विष्णुने इन्द्रके लिये ही यह कपट किया था॥ ४५॥

जब साक्षात् सत्त्वकी मूर्ति भगवान् विष्णुने बलिका यज्ञ ध्वंस करनेकी कामनासे वामनरूप धारण करके ऐसा किया, तब अन्य लोग क्यों नहीं करेंगे?॥ ४६॥

अतएव हे स्वामिन्! किसीपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि यदि चित्तमें लोभ रहता है तो पाप करनेमें किसी भी प्रकारका डर ही क्या?॥ ४७॥

हे मुने! लोभके वशीभूत प्राणी सभी प्रकारके पाप कर बैठते हैं। उस समय किसीको परलोकका किंचिन्मात्र भी भय नहीं रहता॥ ४८॥

लोभसे नष्ट हुए चित्तवाले प्राणी दूसरोंका धन हड़पनेके लिये मन, वचन तथा कर्मसे सम्यक् तत्पर रहते हैं॥ ४९॥

देवताओंकी निरन्तर आराधना करके मनुष्य उनसे धनकी कामना करते हैं। यह निश्चित है कि वे देवता अपने हाथोंसे धन उठाकर उन्हें देनेमें पूरी तरहसे समर्थ नहीं हैं॥ ५०॥

मनीषितम्

अन्यस्यानीयते वित्तं प्रयच्छन्ति मनीषितम्।
वाणिज्येनाथ दानेन चौर्येणापि बलेन वा॥ ५१

विक्रयार्थं गृहीत्वा च धान्यवस्त्रादिकं बहु।
देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मे भवेदिति॥ ५२

नात्र किं परवित्तेच्छा वाणिज्येन परन्तप।
ग्रहणकाले तु सम्प्राप्ते महर्घञ्चापि काङ्क्षति॥ ५३

एवं हि प्राणिनः सर्वे परस्वादानतत्पराः।
वर्तन्ते सततं ब्रह्मन् विश्वासः कीदृशः पुनः॥ ५४

वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाध्ययनमेव च।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत्॥ ५५

तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहं प्रति।
सपुत्राहं वसिष्यामि जानकीवद् द्विजोत्तम॥ ५६

इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद् गत्वा युधाजितं नृपम्।
उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान्॥ ५७

गच्छ राजन् यथाकामं स्वपुरं नृपसत्तम।
नेयं मनोरमाभ्येति बालपुत्रा सुदुःखिता॥ ५८

युधाजिदुवाच

मुने मुञ्च हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम्।
न च यास्याम्यहं मुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः॥ ५९

ऋषिरुवाच

नयस्व यदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात्।
विश्वामित्रो यथा धेनुं वसिष्ठस्य मुनेः पुरा॥ ६०

किंतु व्यवसाय, दान, चोरी अथवा बलपूर्वक लूट आदि किसी भी माध्यमसे मनुष्यका अभिलषित धन [उन देवताओंके द्वारा] दूसरेके पाससे ला करके उन्हें दे दिया जाता है॥ ५१॥

विक्रय करनेके लिये पर्याप्त धान्य तथा वस्त्र आदिका संग्रह करके वैश्य इस भावनासे देवताओंकी पूजा करता है कि 'मेरे पास विपुल धन हो जाय।' हे परन्तप! क्या इस व्यापारके द्वारा दूसरोंका धन ग्रहण करनेकी उन्हें इच्छा नहीं होती? वस्तुका संग्रह करनेके बादसे ही वह भाव महँगा होनेकी इच्छा करने लगता है॥ ५२-५३॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार सभी प्राणी दूसरोंका धन ले लेनेके लिये निरन्तर तत्पर रहते हैं तो फिर विश्वास कैसा?॥ ५४॥

लोभ तथा मोहसे घिरे हुए लोगोंका तीर्थ, दान, अध्ययन—सब व्यर्थ हो जाता है; उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करनेके समान हो जाता है॥ ५५॥

अतः हे महाभाग! इस युधाजित्‌को घर लौटा दीजिये। हे द्विजोत्तम! जानकीकी भाँति मैं अपने पुत्रके साथ यहीं निवास करूँगी॥ ५६॥

मनोरमाके ऐसा कहनेपर तेजस्वी भारद्वाजमुनि राजा युधाजित्‌के पास जाकर उनसे बोले—हे राजन्! हे नृपश्रेष्ठ! अपने इच्छानुसार आप अपने नगरको चले जायँ। छोटे बालकवाली यह मनोरमा बड़ी दुःखी है; वह नहीं आ रही है॥ ५७-५८॥

युधाजित् बोला—हे सौम्य मुने! आप हठ छोड़ दीजिये और मनोरमाको विदा कीजिये, इसे छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा, [यदि आप नहीं मानेंगे तो] मैं इसे अभी बलपूर्वक ले जाऊँगा॥ ५९॥

ऋषि बोले—जैसे प्राचीन कालमें विश्वामित्र वसिष्ठमुनिकी गौ ले जानेके लिये उद्यत हुए थे, उसी प्रकार यदि आपमें शक्ति हो तो आज मेरे आश्रमसे इसे बलपूर्वक ले जाइये॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
युधाजिद्भारद्वाजयोः संवादवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

~~0~~

अथ सप्तदशोऽध्यायः

युधाजित्‌का अपने प्रधान अमात्यसे परामर्श करना, प्रधान अमात्यका इस सन्दर्भमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-प्रसंग सुनाना और परामर्श मानकर युधाजित्‌का वापस लौट जाना, बालक सुदर्शनको दैवयोगसे कामराज नामक बीजमन्त्रकी प्राप्ति, भगवतीकी आराधनासे सुदर्शनको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होना तथा काशिराजकी कन्या शशिकलाको स्वप्नमें भगवतीद्वारा सुदर्शनका वरण करनेका आदेश देना

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः।
मन्त्रिवृद्धं समाहूय पप्रच्छ तमतन्द्रितः॥ १

किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाद्य वद सुव्रत।
बलान्नयामि तां कामं सपुत्राञ्च सुभाषिणीम्॥ २

रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता।
राजयक्ष्मेव संवृद्धो मृत्यवे परिकल्पयेत्॥ ३

नात्र सैन्यं न योद्धास्ति यो मामत्र निवारयेत्।
गृहीत्वा हन्मि तं तत्र दौहित्रस्य रिपुं किल॥ ४

निष्कण्टकं भवेद्राज्यं यताम्यद्य बलादहम्।
हते सुदर्शने नूनं निर्भयोऽसौ भवेदिति॥ ५

प्रधान उवाच

साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतं राजन् मुनेर्वचः।
विश्वामित्रस्य दृष्टान्तः कथितस्तेन मारिष॥ ६

पुरा गाधिसुतः श्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः।
विचरन्स नृपश्रेष्ठो वसिष्ठाश्रममभ्यगात्॥ ७

नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान्।
उपविष्टो नृपश्रेष्ठो मुनिना दत्तविष्टरः॥ ८

निमन्त्रितो वसिष्ठेन भोजनाय महात्मना।
ससैन्यश्च स्थितो राजा गाधिपुत्रो महायशाः॥ ९

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भारद्वाजमुनिका यह वचन सुनकर राजा युधाजित्‌ने अपने प्रधान अमात्यको बुलाकर बड़ी सावधानीसे उनसे पूछा—हे सुबुद्धे! आप बतायें कि अब मुझे क्या करना चाहिये? हे सुव्रत! क्या मधुर वचन बोलनेवाली मनोरमाको पुत्रसहित बलपूर्वक ले चलूँ? अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह तुच्छ शत्रुकी भी उपेक्षा न करे; क्योंकि वह राजयक्ष्मा रोगके समान बढ़कर मृत्युका कारण बन जाता है॥ १—३॥

यहाँ न कोई सेना है और न कोई योद्धा ही है जो मुझे रोक सके। अतः मैं अपने दौहित्रके शत्रु उस सुदर्शनको पकड़कर अभी मार डालूँगा। यदि मैं बलपूर्वक इस प्रयत्नमें सफल हो जाता हूँ तो उसका राज्य निष्कंटक हो जायगा। सुदर्शनके मर जानेपर निश्चय ही वह निर्भय हो जायगा॥ ४-५॥

प्रधान अमात्यने कहा—हे राजन्! ऐसा दुःसाहस नहीं करना चाहिये। अभी आपने भारद्वाजमुनिका वचन सुना ही है। हे मान्य! उन्होंने [इस सम्बन्धमें] विश्वामित्रका दृष्टान्त दिया है॥ ६॥

प्राचीन समयमें गाधितनय विश्वामित्र एक समृद्धिशाली तथा प्रसिद्ध राजा थे। एक बार वे महाराज घूमते हुए महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे॥ ७॥

प्रतापी राजाओंमें श्रेष्ठ वे महाराज विश्वामित्र उन्हें प्रणाम करके मुनिद्वारा प्रदत्त आसनपर बैठ गये। उसके बाद महात्मा वसिष्ठजीने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया, तब वे महायशस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्र अपने सैनिकोंसहित उपस्थित हो गये॥ ८-९॥

नन्दिन्यासादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत्।
भुक्त्वा राजा ससैन्यश्च वाञ्छितं तत्र भोजनम्॥ १०

प्रतापं तञ्च नन्दिन्याः परिज्ञाय स पार्थिवः।
ययाचे नन्दिनीं राजा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्॥ ११

विश्वामित्र उवाच

मुने धेनुसहस्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम्।
नन्दिनीं देहि मे धेनुं प्रार्थयामि परन्तप॥ १२

वसिष्ठ उवाच

होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथञ्चन।
सहस्रञ्चापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु॥ १३

विश्वामित्र उवाच

अयुतं वाथ लक्ष्यं वा ददामि मनसेप्सितम्।
देहि मे नन्दिनीं साधो ग्रहीष्यामि बलादथ॥ १४

वसिष्ठ उवाच

कामं गृहाण नृपते बलादद्य यथारुचि।
नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छया नन्दिनीं गृहात्॥ १५

तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेश महाबलान्।
नयध्वं नन्दिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः॥ १६

ते भृत्या जगृहुस्तां तु हठादाक्रम्य यन्त्रिताम्।
वेपमाना मुनिं प्राह सुरभिः साश्रुलोचना॥ १७

मुने त्यजसि मां कस्मात्कर्षयन्ति सुयन्त्रिताम्।
मुनिस्तां प्रत्युवाचेदं त्यजे नाहं सुदुग्धदे॥ १८

बलान्नयति राजासौ पूजितोऽद्य मया शुभे।
किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा किल॥ १९

उस समय भक्ष्य तथा भोज्य आदि जो भी आवश्यक हुआ, वह सब उनकी नन्दिनी गौने उपस्थित कर दिया। सेनासमेत राजा विश्वामित्र मनोवांछित भोजन करके इसे नन्दिनी गौका प्रभाव समझकर वे राजा उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे नन्दिनी गौ माँगने लगे॥ १०-११॥

विश्वामित्र बोले—हे मुने! मैं आपको पर्याप्त दूध देनेवाली हजारों गौएँ दूँगा; आप मुझे यह अपनी नन्दिनी गौ दे दीजिये। हे परन्तप! मैं यही प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १२॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन्! यह गौ होमके लिये हविष्य प्रदान करती है। अतः मैं इसे किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। आपकी हजार गौएँ आपके ही पास रहें॥ १३॥

विश्वामित्र बोले—हे साधो! मैं आपकी इच्छाके अनुसार दस हजार अथवा एक लाख गौएँ दे रहा हूँ, आप नन्दिनी मुझे दे दीजिये, नहीं तो मैं इसे बलपूर्वक ग्रहण कर लूँगा॥ १४॥

वसिष्ठ बोले—हे नृपते! जैसी आपकी रुचि हो, आप इसे बलपूर्वक अभी ले लीजिये, किंतु हे राजन्! मैं तो इस नन्दिनीको स्वेच्छासे अपने आश्रमसे आपको नहीं दूँगा॥ १५॥

यह सुनकर राजा विश्वामित्रने अपने महाबली अनुचरोंको आदेश दिया कि तुमलोग इस नन्दिनी गौको ले चलो। तब बलके अभिमानमें चूर उन अनुचरोंने आक्रमण करके उस धेनुको बलपूर्वक बाँधकर पकड़ लिया॥ १६½॥

तब आँखोंमें आँसू भरकर काँपती हुई उस नन्दिनीने मुनिसे कहा—हे मुने! आप मुझे क्यों त्याग रहे हैं? ये सब मुझे बाँधकर खींच रहे हैं॥ १७½॥

वसिष्ठजीने उससे कहा—हे उत्तम दूध देनेवाली नन्दिनी! मैं तुम्हें त्याग नहीं रहा हूँ। ये राजा तुम्हें बलपूर्वक ले जा रहे हैं; जबकि मैंने अभी इनका स्वागत किया है। हे शुभे! मैं क्या करूँ? मैं अपने मनसे तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता॥ १८-१९॥

इत्युक्ता मुनिना धेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह।
हम्भारवं चकाराशु क्रूरशब्दं सुदारुणम्॥ २०

उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्या घोरतरास्तदा।
सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवन्तः कवचावृताः॥ २१

सैन्यं सर्वं हतं तैस्तु नन्दिनी प्रतिमोचिता।
एकाकी निर्गतो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः॥ २२

हन्त पापोऽतिदीनात्मा निन्दन् क्षात्रबलं महत्।
ब्राह्मं बलं दुराराध्यं मत्वा तपसि संस्थितः॥ २३

तप्त्वा बहूनि वर्षाणि तपो घोरं महावने।
ऋषित्वं प्राप गाधेयस्त्यक्त्वा क्षात्रं विधिं पुनः॥ २४

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मा कृथा वैरमद्भुतम्।
कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम्॥ २५

मुनिवर्यं व्रजाद्य त्वं समाश्वास्य तपोनिधिम्।
सुदर्शनोऽपि राजेन्द्र तिष्ठत्वत्र यथासुखम्॥ २६

बालोऽयं निर्धनः किं ते करिष्यति नृपाहितम्।
वृथा ते वैरभावोऽयमनाथे दुर्बले शिशौ॥ २७

दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदं जगत्।
ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ २८

वज्रं तृणायते राजन् दैवयोगान्न संशयः।
तृणं वज्रायते क्वापि समये दैवयोगतः॥ २९

शशको हन्ति शार्दूलं मशको वै तथा गजम्।
साहसं मुञ्च मेधाविन् कुरु मे वचनं हितम्॥ ३०

मुनिके ऐसा कहनेपर वह धेनु क्रोधित हो गयी और कर्कश शब्दोंवाला अत्यन्त भयंकर हम्भारव करने लगी॥ २०॥

उसी समय उसके शरीरसे महाभयंकर दैत्य 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए निकल पड़े। वे शस्त्र धारण किये हुए थे और उनका शरीर कवचसे ढँका हुआ था॥ २१॥

उन्होंने सारी सेनाका संहार कर दिया और नन्दिनीको उनसे छुड़ा लिया। तब अत्यन्त व्यथित होकर राजा विश्वामित्र अकेले ही घर लौट गये। [वे अपने मनमें सोचने लगे—] हाय! मैं कितना पापी एवं दीनात्मा हूँ। क्षत्रियबलकी निन्दा करते हुए वे विश्वामित्र ब्राह्मणके बलको महान् तथा दुराराध्य समझकर तप करने लगे। महावनमें अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या करके विश्वामित्रने क्षात्रधर्मका त्याग करके अन्तमें ऋषित्व प्राप्त कर लिया॥ २२—२४॥

अतः हे राजेन्द्र! आप भी ऐसा अद्भुत वैर न करें; क्योंकि तपस्वियोंके साथ किया जानेवाला युद्ध निश्चित ही कुलका नाश करनेवाला होता है॥ २५॥

अतः आप तपोनिधि मुनिवर भारद्वाजके पास अभी जाइये और उन्हें आश्वासन दीजिये। हे राजेन्द्र! सुदर्शनको यहीं छोड़ दीजिये, जिससे वह आनन्दपूर्वक रह सके॥ २६॥

हे राजन्! यह दीन बालक आपका क्या अहित कर सकेगा? ऐसे दुर्बल एवं अनाथ बालकके प्रति आपका यह वैरभाव व्यर्थ है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! सर्वत्र दया करनी चाहिये। यह संसार सदा दैवके अधीन रहता है। ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ? जो होनी होगी, वह तो होकर ही रहेगी॥ २८॥

हे राजन्! दैवयोगसे कभी वज्र तृण बन जाता है और किसी समय तृण वज्र बन जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। दैवयोगसे ही खरगोश सिंहको और मच्छर हाथीको मार देता है। अतः हे मेधाविन्! आप दुःसाहस छोड़िये तथा मेरा हितकर वचन मानिये॥ २९-३०॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः।
प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगाम स्वपुरं नृपः॥ ३१

मनोरमापि स्वस्थाभूदाश्रमे तत्र संस्थिता।
पालयामास पुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम्॥ ३२

दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः।
मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयः सर्वतः शुभः॥ ३३

एकस्मिन्समये तत्र विदल्लं समुपागतम्।
क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामन्त्रयत्तदन्तिके॥ ३४

सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम्।
अनुस्वारायुतं तच्च प्रोवाचापि पुनः पुनः॥ ३५

बीजं वै कामराजाख्यं गृहीतं मनसा तदा।
जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि सादरम्॥ ३६

भावियोगान्महाराज कामराजाख्यमद्भुतम्।
स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै॥ ३७

तदासौ पञ्चमे वर्षे प्राप्य मन्त्रमनुत्तमम्।
ऋषिच्छन्दोविहीनञ्च ध्यानन्यासविवर्जितम्॥ ३८

प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि।
विसस्मार न तं मन्त्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम्॥ ३९

वर्षे चैकादशे प्राप्ते कुमारोऽसौ नृपात्मजः।
मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा॥ ४०

धनुर्वेदं तथा साङ्गं नीतिशास्त्रं विधानतः।
अभ्यस्ताः सकला विद्यास्तेन मन्त्रबलादिव॥ ४१

कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपं ददर्श ह।
रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तसर्वाङ्गभूषणम्॥ ४२

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] मन्त्रीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा युधाजित् भारद्वाजमुनिको सिर झुकाकर प्रणाम करके अपने पुरको चले गये। तब रानी मनोरमा भी निश्चिन्त हो गयीं और उस आश्रममें रहती हुई अपने सत्यव्रती पुत्र सुदर्शनका पालन करने लगीं॥ ३१-३२॥

अब वह सुन्दर कुमार मुनिबालकोंके साथ सर्वत्र निर्भय होकर क्रीड़ा करता हुआ दिनोंदिन बढ़ने लगा। एक दिन सुदर्शनके पास आये हुए विदल्लको किसी मुनिकुमारने 'क्लीब' इस नामसे पुकारा॥ ३३-३४॥

उसे सुनकर सुदर्शनने उसके एकाक्षर 'क्ली' शब्दको स्पष्टरूपसे धारण कर लिया और उस अनुस्वारविहीन अक्षरका ही वह बार-बार उच्चारण करने लगा॥ ३५॥

बालकने इस कामराज नामक बीजमन्त्रको मनसे ग्रहण कर लिया और उसे हृदयंगम करके आदरपूर्वक जपना प्रारम्भ कर दिया। हे महाराज! दैवयोगसे ही उस बालक सुदर्शनको यह कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र स्वयमेव प्राप्त हो गया॥ ३६-३७॥

उस समय केवल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही वह ऋषि तथा छन्दसे विहीन और ध्यान तथा न्यासरहित मन्त्र प्राप्तकर मन-ही-मन उसे जपता हुआ खेलता तथा सोता था; उस मन्त्रको स्वयं सबका सार समझकर वह सुदर्शन उसे कभी नहीं भूलता था॥ ३८-३९॥

मुनिने ग्यारहवें वर्षमें उस राजकुमारका उपनयन संस्कार किया और उसे वेद पढ़ाया एवं सांगोपांग धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्रकी विधिवत् शिक्षा दी। उस बालकने उसी मन्त्रके प्रभावसे समस्त विद्याओंका सम्यक् अभ्यास कर लिया॥ ४०-४१॥

एक बार उसने देवीके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन भी किया। उस समय वे लाल वस्त्र धारण किये थीं, उनके विग्रहका रंग भी लाल था और उनके सभी अंगोंमें रक्तवर्णके ही आभूषण सुशोभित हो रहे

गरुडे वाहने संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम्।
दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः॥ ४३

वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित्।
मातरं सेवमानस्तु विजहार नदीतटे॥ ४४

शरासनञ्च सम्प्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः।
तूणीरकवचं तस्मै दत्तं चाम्बिकया वने॥ ४५

एतस्मिन्समये पुत्री काशिराजस्य सुप्रिया।
नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता॥ ४६

शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थञ्च सुदर्शनम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं शूरं काममिवापरम्॥ ४७

बन्दीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसम्मतम्।
चकमे मनसा तं वै वरं वरयितुं धिया॥ ४८

स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदम्बा निशान्तरे।
उवाच वचनं चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता॥ ४९

वरं वरय सुश्रोणि मम भक्तः सुदर्शनः।
सर्वकामप्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनि॥ ५०

एवं शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम्।
अम्बाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी॥ ५१

उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः।
प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता॥ ५२

जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः।
सखीं प्राह तदान्यां वै स्वप्नवृत्तं सुविस्तरम्॥ ५३

कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम्।
सखीयुक्ता विशालाक्षी चम्पकैरुपशोभितम्॥ ५४

पुष्पाणि चिन्वती बाला चम्पकाधःस्थिताबला।

थे। [इस प्रकारका दिव्य स्वरूप धारणकर] वाहन गरुडपर विराजमान उन अद्भुत वैष्णवी शक्तिको देखकर राजकुमार सुदर्शनके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी॥ ४२-४३॥

इस प्रकार समस्त विद्याओंका रहस्य जाननेवाला वह सुदर्शन उस वनमें रहकर जगदम्बाकी उपासना करता हुआ नदीतटपर विचरण करने लगा। उसी वनमें भगवती जगदम्बाने उसे धनुष, अनेक तीक्ष्ण बाण, तूणीर तथा कवच प्रदान किये॥ ४४-४५॥

इसी समय सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त 'शशिकला' नामसे विख्यात काशिराजकी परम प्रिय पुत्रीने उस वनमें रहनेवाले समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, पराक्रमी तथा दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होनेवाले राजकुमार सुदर्शनके विषयमें सुना॥ ४६-४७॥

बन्दीजनोंके मुखसे अतिसम्मानित राजकुमारके विषयमें सुनकर शशिकलाने मन-ही-मन बुद्धिपूर्वक उसे पतिरूपमें वरण करनेका निश्चय कर लिया॥ ४८॥

[उसी दिन] आधी रातको जगदम्बा स्वप्नमें शशिकलाके पास आकर स्थित हो गयीं और उसे आश्वस्त करके यह वचन बोलीं—'हे सुश्रोणि! सुदर्शन मेरा भक्त है, तुम उसीको अपना पति स्वीकार कर लो। हे भामिनि! मेरी आज्ञासे वह तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण करेगा'॥ ४९-५०॥

इस प्रकार स्वप्नमें भगवतीका मनोहर स्वरूप देखकर तथा उनके इस वचनको स्मरण करके परम मानिनी शशिकला प्रसन्न हो गयी॥ ५१॥

वह प्रसन्नताके साथ उठ गयी। उसकी माताने उसे हर्षित देखकर बार-बार प्रसन्नताका कारण पूछा, किंतु उस सुन्दरीने अति लज्जाके कारण कुछ नहीं बताया॥ ५२॥

स्वप्नका बार-बार स्मरण करके प्रसन्नतासे युक्त होकर वह जोरसे हँस पड़ती थी। तब उसने अपनी एक अन्य सखीसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह दिया॥ ५३॥

किसी दिन वह विशालनयनी शशिकला अपनी सखीके साथ चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित एक सुन्दर उपवनमें विहारके लिये गयी। वहाँ पुष्प चुनती हुई वह कुमारी एक चम्पावृक्षके नीचे खड़ी हो गयी।

अपश्यद् ब्राह्मणं मार्गे आगच्छन्तं त्वरान्वितम्॥ ५५
तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः।
कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया॥ ५६

द्विज उवाच

भारद्वाजाश्रमाद् बाले नूनमागमनं मम।
जातं वै कार्ययोगेन किं पृच्छसि वदस्व मे॥ ५७

शशिकलोवाच

तत्राश्रमे महाभाग वर्णनीयं किमस्ति वै।
लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल॥ ५८

ब्राह्मण उवाच

ध्रुवसन्धिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः।
यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः॥ ५९
तस्य लोचनमत्यन्तं निष्फलं प्रतिभाति मे।
येन दृष्टो न वामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः॥ ६०
एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा।
गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात्॥ ६१
तव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हति।
योगोऽयं विहितोऽप्यासीन्मणिकाञ्चनयोरिव॥ ६२

तभी उसने मार्गमें शीघ्रतापूर्वक आते हुए किसी ब्राह्मणको देखा। उस ब्राह्मणको प्रणाम करके सुन्दरी शशिकलाने मधुर वाणीमें कहा—हे महाभाग! आप किस देशसे आये हैं?॥ ५४—५६॥

ब्राह्मणने कहा—हे बाले! एक कार्यवश भारद्वाजमुनिके आश्रमसे मेरा आगमन हुआ है। तुम क्या पूछ रही हो; मुझे बताओ॥ ५७॥

शशिकला बोली—हे महाभाग! उस आश्रममें अत्यन्त प्रशंसनीय, संसारमें सबसे बढ़कर तथा विशेषरूपसे दर्शनीय कौन-सी वस्तु है?॥ ५८॥

ब्राह्मणने कहा—हे सुश्रोणि! महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र श्रीमान् सुदर्शन वहाँ रहते हैं। पुरुषोंमें श्रेष्ठ वे सुदर्शन अपने नामके अनुरूप ही हैं॥ ५९॥

हे सुन्दरि! जिसने राजकुमार सुदर्शनको नहीं देखा, मैं तो उसके नेत्रोंको अत्यन्त निष्फल मानता हूँ॥ ६०॥

सृष्टिकी अभिलाषावाले ब्रह्माने कौतूहलवश उन एक सुदर्शनमें सभी गुणोंको भर दिया है। अतः गुणोंकी खान सुदर्शनको ही मैं देखनेयोग्य मानता हूँ॥ ६१॥

वे राजकुमार तुम्हारे अनुरूप हैं और तुम्हारे पति होनेयोग्य हैं। मणि और कांचनकी भाँति यह तुम दोनोंका संयोग पहलेसे ही निश्चित हो चुका है॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विश्वामित्रकथोत्तरं राजपुत्रस्य कामबीजप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~0~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

राजकुमारी शशिकलाद्वारा मन-ही-मन सुदर्शनका वरण करना, काशिराजद्वारा स्वयंवरकी घोषणा, शशिकलाका सखीके माध्यमसे अपना निश्चय माताको बताना

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं श्यामा प्रेमयुक्ता बभूव ह।
प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वा समाहितः॥ १
सा तु पूर्वानुरागाद्वै मग्ना प्रेम्णातिचञ्चला।
कामबाणहतेवास गते तस्मिन्द्विजोत्तमे॥ २

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणका वचन सुनकर सुन्दरी शशिकला प्रेमविभोर हो गयी और वह ब्राह्मण इतना कहकर शान्तभावसे उस स्थानसे चला गया॥ १॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके चले जानेपर वह सुन्दरी पूर्व अनुरागसे तथा विप्रकी बातोंसे प्रेमातिरेकके कारण अत्यधिक अधीर हो उठी॥ २॥

आस्. to sit आसांचक्रे [illegible], आस

अथ कामार्दिता प्राह सखीं छन्दोनुवर्तिनीम्।
विकारश्च समुत्पन्नो देहे यच्छ्रवणादनु॥ ३

अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसम्भवम्।
दुनोति मदनः पापः किं करोमि क्व यामि च॥ ४

स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पञ्चबाण इवापरः।
तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु॥ ५

चन्दनं देहलग्नं मे विषवद्भाति भामिनि।
स्रगियं सर्पवच्चैव चन्द्रपादाश्च वह्निवत्॥ ६

न च हर्म्ये वने शं मे दीर्घिकायां न पर्वते।
न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः॥ ७

न शय्या न च ताम्बूलं न गीतं न च वादनम्।
प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य न तृप्ते मम लोचने॥ ८

प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः।
भीतास्मि कुललज्जायाः परतन्त्रा पितुस्तथा॥ ९

स्वयंवरं पिता मेऽद्य न करोति करोमि किम्।
दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै॥ १०

सन्त्यन्ये पृथिवीपालाः शतशः सम्भृतर्द्धयः।
रमणीया न मे तेऽद्य राज्यहीनोऽप्यसौ मतः॥ ११

व्यास उवाच

एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुदर्शनः।
वनवासी फलाहारस्तस्याश्चित्ते सुसंस्थितः॥ १२

वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाप्युपस्थिता।
सोऽपि ध्यानपरोऽत्यन्तं जजाप मन्त्रमुत्तमम्॥ १३

तदनन्तर उस शशिकलाने अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली एक सखीसे कहा कि रससे अनभिज्ञ तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न उस राजकुमारके विषयमें सुनकर मेरे शरीरमें विकार उत्पन्न हो गया है। इस समय कामदेव मुझे अत्यधिक पीड़ा दे रहा है। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?॥ ३-४॥

जबसे मैंने स्वप्नमें दूसरे कामदेवके सदृश उस राजकुमारको देखा है, तभीसे विरहसे आकुल हुआ मेरा कोमल मन अत्यधिक सन्तप्त हो रहा है॥ ५॥

हे भामिनि! इस समय मेरे शरीरमें लगा हुआ चन्दन विषके समान, यह माला सर्पके तुल्य तथा चन्द्रमाकी किरणें अग्निसदृश प्रतीत हो रही हैं॥ ६॥

इस समय महलमें, वनमें, बावलीमें तथा पर्वतपर—कहीं भी मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिल पा रही है। नानाविध सुख-साधनोंसे दिनमें अथवा रातमें किसी भी समय सुखकी अनुभूति नहीं हो रही है॥ ७॥

शय्या, ताम्बूल, गायन तथा वादन—इनमें कोई भी चीजें मेरे मनको प्रसन्न नहीं कर पा रही हैं और न तो मेरे नेत्रोंको कोई भी वस्तु तृप्त ही कर पा रही है॥ ८॥

[जी करता है] उसी वनमें चली जाऊँ जहाँ वह निष्ठुर विद्यमान है, किंतु कुलकी लज्जाके कारण भयभीत हूँ, और फिर अपने पिताके अधीन भी हूँ॥ ९॥

क्या करूँ, मेरे पिता अभी मेरा स्वयंवर भी नहीं आयोजित कर रहे हैं। [यदि स्वयंवर हुआ तो] मैं इच्छापूर्वक अपनेको सुदर्शनको समर्पित कर दूँगी॥ १०॥

यद्यपि दूसरे सैकड़ों समृद्धिशाली नरेश हैं, परंतु वे मुझे रमणीय नहीं लगते। राज्यहीन होते हुए भी इस सुदर्शनको मैं अधिक रमणीय मानती हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—अकेला, निर्धन, बलहीन, वनवासी तथा फलका आहार करनेवाला होते हुए भी सुदर्शन उस शशिकलाके हृदयमें पूर्णरूपसे बस गया था। भगवतीके वाग्बीजमन्त्रके जपसे सुदर्शनको यह सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। वह पूर्णरूपसे ध्यानमग्न होकर उस सर्वोत्तम मन्त्रका निरन्तर जप करता रहता था॥ १२-१३॥

स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखण्डिताम्।
विश्वमातरमव्यक्तां सर्वसम्पत्कराम्बिकाम्॥ १४

शृङ्गवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्य तम्।
ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम्॥ १५

चतुर्भिस्तुरगैर्युक्तं पताकावरमण्डितम्।
जैत्रं राजसुतं ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा॥ १६

सोऽपि जग्राह तं प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम्।
वन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शम्बरम्॥ १७

कृतातिथ्ये गते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा।
मुनयः प्रीतियुक्तास्ते तमूचुस्तापसा मिथः॥ १८

राजपुत्र ध्रुवं राज्यं प्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा।
स्वल्पैरहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्र संशयः॥ १९

प्रसन्ना तेऽम्बिका देवी वरदा विश्वमोहिनी।
सहायस्तु सुसम्पन्नो न चिन्तां कुरु सुव्रत॥ २०

मनोरमां तथोचुस्ते मुनयः संशितव्रताः।
पुत्रस्तेऽद्य धराधीशो भविष्यति शुचिस्मिते॥ २१

सा तानुवाच तन्वङ्गी वचनं वोऽस्तु सत्फलम्।
दासोऽयं भवतां विप्राः किं चित्रं सदुपासनात्॥ २२

न सैन्यं सचिवाः कोशो न सहायश्च कश्चन।
केन योगेन पुत्रो मे राज्यं प्राप्तुमिहार्हति॥ २३

आशीर्वादैश्च वो नूनं पुत्रोऽयं मे महीपतिः।
भविष्यति न सन्देहो भवन्तो मन्त्रवित्तमाः॥ २४

एक बार स्वप्नमें सुदर्शनने उन अव्यक्त, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा, जगज्जननी, विष्णुमाया तथा सभी सम्पदा प्रदान करानेवाली भगवती अम्बिकाका दर्शन किया॥ १४॥

उसी समय शृंगवेरपुरके अधिपति निषादने सुदर्शनके पास आकर उसे सब प्रकारकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण उत्तम रथ प्रदान किया। उस रथमें चार घोड़े जुते हुए थे और वह सुन्दर पताकासे सुशोभित था। निषादराजने राजकुमार सुदर्शनको विजयशाली समझकर उसे भेंटस्वरूप वह रथ दिया था। सुदर्शनने भी प्रेमपूर्वक उसे स्वीकार कर लिया और मित्ररूपमें आये हुए उस निषादका वन्य फल-मूलोंसे भलीभाँति सत्कार किया॥ १५—१७॥

तब आतिथ्य स्वीकार करके उस निषादराजके चले जानेपर वहाँके तपस्वी मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर सुदर्शनसे कहने लगे—हे राजकुमार! आप धैर्यवान् हैं; भगवतीकी कृपासे थोड़े ही दिनोंमें निश्चय ही अपना राज्य प्राप्त करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! विश्वमोहिनी और वरदायिनी भगवती अम्बिका आपके ऊपर प्रसन्न हैं। अब आपको उत्तम सहायक भी मिल गया है, आप चिन्ता न करें॥ १८—२०॥

तत्पश्चात् उन व्रतधारी मुनियोंने मनोरमासे कहा—हे शुचिस्मिते! अब आपका पुत्र सुदर्शन शीघ्र ही भूमण्डलका राजा होगा॥ २१॥

तब उस कोमलांगी मनोरमाने उनसे कहा—आपलोगोंका वचन सफल हो। हे विप्रगण! यह सुदर्शन आपलोगोंका सेवक है। सच्ची उपासनासे सब कुछ सम्भव हो जाता है, इसमें आश्चर्य ही क्या? [किंतु] उसके पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न कोई सहायक ही है। [ऐसी दशामें] किस उपायसे मेरा पुत्र राज्य पानेके योग्य बन सकता है? आपलोग मन्त्रके पूर्णवेत्ता हैं, अतः आपलोगोंके आशीर्वचनोंसे मेरा यह पुत्र निश्चय ही राजा होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २२—२४॥

व्यास उवाच

रथारूढः स मेधावी यत्र याति सुदर्शनः।
अक्षौहिणीसमावृत्त इवाभाति स तेजसा॥ २५

प्रतापो मन्त्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते।
एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वथा॥ २६

सम्प्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम्।
जपेद्यस्तु शुचिः शान्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २७

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि वापि सुदुर्लभम्।
प्रसन्नायाः शिवायाश्च यदप्राप्यं नृपोत्तम॥ २८

ते मन्दास्तेऽतिदुर्भाग्या रोगैस्ते समभिद्रुताः।
येषां चित्ते न विश्वासो भवेदम्बार्चनादिषु॥ २९

या माता सर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता।
आदिमातेति विख्याता नाम्ना तेन कुरूद्वह॥ ३०

बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः।
सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते॥ ३१

न जानन्ति नरा ये वै मोहिता मायया किल।
न भजन्ति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्॥ ३२

ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुर्वासवो वरुणो यमः।
वायुरग्निः कुबेरश्च त्वष्टा पूषाश्विनौ भगः॥ ३३

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
सर्वे ध्यायन्ति तां देवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ३४

को न सेवेत विद्वान्वै तां शक्तिं परमात्मिकाम्।
सुदर्शनेन सा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा॥ ३५

ब्रह्मैव सातिदुष्प्राप्या विद्याविद्यास्वरूपिणी।
योगगम्या परा शक्तिर्मुमुक्षूणां च वल्लभा॥ ३६

व्यासजी बोले—रथपर सवार होकर मेधावी सुदर्शन जहाँ भी जाता था, वहाँ वह अपने तेजसे एक अक्षौहिणी सेनासे आवृत प्रतीत होता था। हे भूप! यह उस बीजमन्त्रका ही प्रभाव था, दूसरा कोई कारण नहीं; क्योंकि वह सुदर्शन सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक उसी मन्त्रका जप किया करता था॥ २५-२६॥

जो मनुष्य किसी सद्गुरुसे कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र ग्रहण करके शान्त होकर पवित्रतापूर्वक उसका जप करता है, वह अपनी सभी कामनाएँ पूर्ण कर लेता है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! भूतलपर अथवा स्वर्गमें भी कोई ऐसा अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ नहीं है, जो कल्याणकारिणी भगवतीके प्रसन्न होनेपर न मिल सके॥ २८॥

वे महान् मूर्ख, भाग्यहीन तथा रोगोंसे व्यथित होते हैं, जिनके मनमें जगदम्बाके अर्चन आदिमें विश्वास नहीं होता॥ २९॥

हे कुरुनन्दन! जो भगवती युगके आदिमें सब देवताओंकी माता कही गयी थीं, इसी कारण आदिमाता—इस नामसे विख्यात हैं; वे ही बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति और स्मृति आदि रूपोंसे समस्त प्राणियोंमें प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं॥ ३०-३१॥

जो लोग मायासे मोहित हैं, वे उन्हें नहीं जान पाते। कुतर्क करनेवाले मनुष्य उन भुवनेश्वरी भगवती शिवाका भजन नहीं करते॥ ३२॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, दोनों अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुद्गण—ये सभी देवता सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली उन भगवतीका ध्यान करते हैं॥ ३३-३४॥

कौन ऐसा विद्वान् है, जो उन परमात्मिका शक्तिकी आराधना न करता हो? सुदर्शनने सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन्हीं कल्याणकारिणी भगवतीको जान लिया था॥ ३५॥

वे विद्या तथा अविद्यास्वरूपा भगवती ही ब्रह्म हैं और अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं। वे पराशक्ति योगद्वारा ही अनुभवगम्य हैं और मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको विशेष प्रिय हैं॥ ३६॥

परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना।
या सृष्टिं त्रिविधां कृत्वा दर्शयत्यखिलात्मने॥ ३७

सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसा परिचिन्तयन्।
राज्यलाभात्परं प्राप्य सुखं वै कानने स्थितः॥ ३८

सापि चन्द्रकलात्यर्थं कामबाणप्रपीडिता।
नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः॥ ३९

तावत्तस्याः पिता ज्ञात्वा कन्यां पुत्रवरार्थिनीम्।
सुबाहुः कारयामास स्वयंवरमतन्द्रितः॥ ४०

स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परिकीर्तितः।
राज्ञां विवाहयोग्यो वै नान्येषां कथितः किल॥ ४१

इच्छास्वयंवरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः।
यथा रामेण भग्नं वै त्र्यम्बकस्य शरासनम्॥ ४२

तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः।
इच्छास्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः॥ ४३

शिल्पिभिः कारिता मञ्चाः शुभैरास्तरणैर्युताः।
ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमण्डपाः॥ ४४

एवं कृतेऽतिसम्भारे विवाहार्थं सुविस्तरे।
सखीं शशिकला प्राह दुःखिता चारुलोचना॥ ४५

इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकान्ते वचो मम।
मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसन्धिसुतः शुभः॥ ४६

नान्यं वरं वरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम्।
स मे भर्ता नृपसुतो भगवत्या प्रतिष्ठितः॥ ४७

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा सखी गत्वा मातरं प्राह सत्वरा।
वैदर्भीं विजने वाक्यं मधुरं मञ्जुभाषिणी॥ ४८

उन भगवतीके बिना परमात्माका स्वरूप जाननेमें कौन समर्थ है? जो तीन प्रकारकी सृष्टि करके सर्वात्मा भगवान्‌को दिखलाती हैं, उन्हीं भगवतीका मनसे सम्यक् चिन्तन करता हुआ राजकुमार सुदर्शन राज्य-प्राप्तिसे भी अधिक सुखका अनुभव करके वनमें रहता था॥ ३७-३८॥

उधर, वह शशिकला भी कामसे निरन्तर अत्यधिक पीड़ित रहती हुई नानाविध उपचारोंसे किसी प्रकार अपना दुःखित शरीर धारण किये हुए थी॥ ३९॥

इसी बीच उसके पिता सुबाहुने कन्या शशिकलाको वरकी अभिलाषिणी जानकर बड़ी सावधानीके साथ स्वयंवर आयोजित कराया॥ ४०॥

विद्वानोंने स्वयंवरके तीन प्रकार बताये हैं। वह क्षत्रिय राजाओंके विवाहहेतु उचित कहा गया है, अन्यके लिये नहीं। उनमें प्रथम इच्छास्वयंवर है, जिसमें कन्या अपने इच्छानुसार पति स्वीकार करती है। दूसरा पणस्वयंवर है, जिसमें किसी प्रकारका पण (शर्त) रखा जाता है। जैसे भगवान् श्रीरामने [जानकीके स्वयंवरमें] शिवधनुष तोड़ा था। तीसरा स्वयंवर शौर्यशुल्क है, जो शूरवीरोंके लिये कहा गया है। नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उनमें इच्छास्वयंवरका आयोजन किया॥ ४१—४३॥

शिल्पियोंद्वारा बहुत-से मंच बनवाये गये और उनपर सुन्दर आसन बिछाये गये। तत्पश्चात् राजाओंके बैठनेयोग्य विविध आकार-प्रकारके सभा-मण्डप बनवाये गये॥ ४४॥

इस प्रकार विवाहके लिये सम्पूर्ण सामग्री जुट जानेपर सुन्दर नेत्रोंवाली शशिकलाने दुःखित होकर अपनी सखीसे कहा—एकान्तमें जाकर तुम मेरी मातासे मेरा यह वचन कह दो कि मैंने अपने मनमें ध्रुवसन्धिके सुन्दर पुत्रका पतिरूपमें वरण कर लिया है। उन सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेको पति नहीं बनाऊँगी; क्योंकि स्वयं भगवतीने राजकुमार सुदर्शनको मेरा पति निश्चित कर दिया है॥ ४५—४७॥

व्यासजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर उस मृदुभाषिणी सखीने शशिकलाकी माता विदर्भसुताके पास शीघ्र जाकर एकान्तमें उनसे मधुर वाणीमें कहा—

पुत्री ते दुःखिता प्राह साध्वि त्वां मन्मुखेन यत्।
शृणु त्वं कुरु कल्याणि तद्धितं त्वरिताधुना॥ ४९

भारद्वाजाश्रमे पुण्ये ध्रुवसन्धिसुतोऽस्ति यः।
स मे भर्ता वृतश्चित्ते नान्यं भूपं वृणोम्यहम्॥ ५०

व्यास उवाच

राज्ञी तद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते।
निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम्॥ ५१

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितः प्रहसन्मुहुः।
भार्यामुवाच वैदर्भीं सुबाहुस्तु ऋतं वचः॥ ५२

सुभ्रु जानासि बालोऽसौ राज्यान्निष्कासितो वने।
एकाकी सह मात्रा वै वसते निर्जने वने॥ ५३

तत्कृते निहतो राजा वीरसेनो युधाजिता।
स कथं निर्धनो भर्ता योग्यः स्याच्चारुलोचने॥ ५४

ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम्।
आगमिष्यन्ति राजानः स्थितिमन्तः स्वयंवरे॥ ५५

'हे साध्वि! आपकी पुत्रीने अत्यन्त दुःखित होकर मेरे मुखसे आपको जो कहलाया है, उसे आप सुन लें और हे कल्याणि! इस समय शीघ्र ही उसका हित-साधन करें'। [उसका कथन है कि] भारद्वाजमुनिके आश्रममें जो ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन रहते हैं, उनका मैं अपने मनमें पतिरूपमें वरण कर चुकी हूँ। अतः मैं किसी दूसरे राजाका वरण नहीं करूँगी॥ ४८—५०॥

व्यासजी बोले—वह वचन सुनकर रानीने राजाके आनेपर पुत्रीकी सारी बातें ज्यों-की-त्यों उनको बतायीं॥ ५१॥

उसे सुनकर राजा सुबाहु आश्चर्यमें पड़ गये और बार-बार मुसकराते हुए वे अपनी भार्या विदर्भराजकुमारीसे यथार्थ बात कहने लगे—॥ ५२॥

हे सुभ्रु! तुम तो यह जानती ही हो कि वह बालक राज्यसे निकाल दिया गया है और निर्जन वनमें अकेले ही अपनी माताके साथ रहता है। उसीके लिये राजा वीरसेन युधाजित्‌के द्वारा मार डाले गये। हे सुनयने! वह निर्धन योग्य पति कैसे हो सकता है?॥ ५३-५४॥

तुम यह बात पुत्री शशिकलासे कह दो कि बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित राजा इस स्वयंवरमें आनेवाले हैं। अतः उनके प्रति ऐसी अप्रिय बात वह कभी भी न बोले॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे शशिकलया मातरं प्रति संदेशप्रेषणं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

माताका शशिकलाको समझाना, शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना, सुदर्शन तथा अन्य राजाओंका स्वयंवरमें आगमन, युधाजित्‌द्वारा सुदर्शनको मार डालनेकी बात कहनेपर केरलनरेशका उन्हें समझाना

व्यास उवाच

भर्त्रा साभिहिता बालां पुत्रीं कृत्वाङ्कसंस्थिताम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम्॥ १

किं वृथा सुदति त्वं हि विप्रियं मम भाषसे।
पिता ते दुःखमाप्नोति वाक्येनानेन सुव्रते॥ २

व्यासजी बोले—पतिके ऐसा कहनेपर रानीने सुन्दर मुसकानवाली उस कन्याको अपनी गोदमें बैठाकर उसे आश्वासन दे करके यह मधुर वचन कहा—हे सुदति! तुम मुझसे ऐसी अप्रिय एवं निष्प्रयोजन बात क्यों कह रही हो? हे सुव्रते! इस कथनसे तुम्हारे पिता बहुत दुःखित हो रहे हैं॥ १-२॥

सुदर्शनोऽतिदुर्भाग्यो राज्यभ्रष्टो निराश्रयः।
बलकोषविहीनश्च परित्यक्तस्तु बान्धवैः॥ ३

मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनः कृशः।
न ते योग्यो वरोऽयं वै वनवासी च दुर्भगः॥ ४

राजपुत्राः कृतप्रज्ञा रूपवन्तः सुसम्मताः।
तवार्हाः पुत्रि सन्त्यन्ये राजचिह्नैरलङ्कृताः॥ ५

भ्रातास्य वर्तते कान्तः स राज्यं कोसलेषु वै।
करोति रूपसम्पन्नः सर्वलक्षणसंयुतः॥ ६

अन्यच्च कारणं सुभ्रु शृणु यच्च मया श्रुतम्।
युधाजित्सततं तस्य वधकामोऽस्ति भूमिपः॥ ७

दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्ये कृत्वातिसङ्गरम्।
वीरसेनं नृपं हत्वा सम्मन्त्र्य सचिवैः सह॥ ८

भारद्वाजाश्रमं प्राप्तं हन्तुकामः सुदर्शनम्।
मुनिना वारितः पश्चाज्जगाम निजमन्दिरम्॥ ९

शशिकलोवाच

मातर्ममेप्सितः कामं वनस्थोऽपि नृपात्मजः।
शर्यातिवचनेनैव सुकन्या च पतिव्रता॥ १०

च्यवनञ्च यथा प्राप्य पतिशुश्रूषणे रता।
पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा॥ ११

अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः।
भगवत्या समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम्॥ १२

तमृतेऽहं कथं चान्यं संश्रयामि नृपात्मजम्।
मच्चित्तभित्तौ लिखितो भगवत्या सुदर्शनः॥ १३

तं विहाय प्रियं कान्तं करिष्येऽहं न चापरम्।

वह सुदर्शन बड़ा ही अभागा, राजच्युत, आश्रयहीन और सेना तथा कोशसे विहीन है; बन्धु-बान्धवोंने उसका परित्याग कर दिया है। वह अपनी माताके साथ वनमें रहकर फल-मूल खाता है और अत्यन्त दुर्बल है। इसलिये वह मन्दभाग्य एवं वनवासी बालक सर्वथा तुम्हारे योग्य वर नहीं है॥ ३-४॥

हे पुत्रि! तुम्हारे योग्य अनेक राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं; जो बुद्धिमान्, रूपवान्, सम्माननीय और राजचिह्नोंसे अलंकृत हैं। इसी सुदर्शनका एक कान्तिमान्, रूपसम्पन्न तथा सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त भाई भी है, जो इस समय कोसलदेशमें राज्य करता है॥ ५-६॥

हे सुभ्रु! इसके अतिरिक्त मैंने एक और जो बात सुनी है, तुम उसे सुनो—राजा युधाजित् उस सुदर्शनका वध करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है॥ ७॥

उसने घोर संग्राम करके [इसके नाना] राजा वीरसेनको मारकर पुनः मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करके अपने दौहित्र शत्रुजित्‌को राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है। इसके बाद भारद्वाजमुनिके आश्रममें शरणलिये उस सुदर्शनको मारनेकी इच्छासे वह वहाँ भी पहुँचा, किंतु मुनिके मना करनेपर अपने घर लौट गया॥ ८-९॥

शशिकला बोली—हे माता! मुझे तो वह वनवासी राजकुमार ही अत्यन्त अभीष्ट है। [पूर्वकालमें] शर्यातिकी आज्ञासे ही उनकी पतिव्रता पुत्री सुकन्या च्यवनमुनिके पास जाकर उनकी सेवामें तत्पर हो गयी थी। उसी प्रकार मैं पतिसेवा करूँगी; पतिकी सेवा-शुश्रूषा स्त्रियोंके लिये स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली होती है। अपने पतिके लिये कपटरहित व्यवहार स्त्रियोंके लिये निश्चित रूपसे सुखदायक होता है॥ १०-११½॥

स्वयं भगवती उस सर्वश्रेष्ठ वरका वरण करनेके लिये मुझे स्वप्नमें आज्ञा दे चुकी हैं। अतः उनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारका वरण कैसे करूँ? स्वयं भगवतीने मेरे चित्तकी भित्तिपर सुदर्शनको ही अंकित कर दिया है। अतः उस प्रिय सुदर्शनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारको पति नहीं बनाऊँगी॥ १२-१३½॥

व्यास उवाच

प्रत्यादिष्टाथ वैदर्भी तया बहुनिदर्शनैः॥ १४

भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम्।
विवाहस्य दिनादर्वागाप्तं श्रुतसमन्वितम्॥ १५

द्विजं शशिकला तत्र प्रेषयामास सत्वरम्।
यथा न वेद मे तातस्तथा गच्छ सुदर्शनम्॥ १६

भारद्वाजाश्रमे ब्रूहि मद्वाक्यात्तरसा विभो।
पित्रा मे सम्भृतः कामं मदर्थेन स्वयंवरः॥ १७

आगमिष्यन्ति राजानो बलयुक्ता ह्यनेकशः।
मया त्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथा प्रीतिपूर्वकम्॥ १८

भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम।
विषमद्मि हुताशे वा प्रपतामि प्रदीपिते॥ १९

वरये त्वदृते नान्यं पितृभ्यां प्रेरितापि वा।
मनसा कर्मणा वाचा संवृतस्त्वं मया वरः॥ २०

भगवत्याः प्रसादेन शर्मावाप्स्यां भविष्यति।
आगन्तव्यं त्वयात्रैव दैवं कृत्वा परं बलम्॥ २१

यदधीनं जगत्सर्वं वर्तते सचराचरम्।
भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति॥ २२

यद्वशे देवताः सर्वा वर्तन्ते शङ्करादयः।
वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकान्ते वै नृपात्मजः॥ २३

यथा भवति मे कार्यं तत्कर्तव्यं त्वयानघ।
इत्युक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा मुनिर्व्यापारितस्तया॥ २४

गत्वा सर्वं निवेद्याशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः।
सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा॥ २५

चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात्।

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय उस शशिकलाने अनेक प्रमाणोंके द्वारा विदर्भराजकुमारी अपनी माताको समझा दिया। तत्पश्चात् पुत्रीके द्वारा कही गयी सभी बातोंको महारानीने अपने पतिसे बताया॥ १४½ ॥

उधर शशिकलाने विवाहके कुछ दिनों पूर्व ही एक विश्वस्त तथा वेदनिष्ठ ब्राह्मणको शीघ्र ही वहाँ भेज दिया। [जाते समय उसने ब्राह्मणसे कहा कि] आप सुदर्शनके पास इस प्रकार जायँ, जिसे मेरे पिता न जान पायें॥ १५-१६॥

हे विभो! आप बहुत शीघ्र ही भारद्वाजके आश्रम पहुँचकर सुदर्शनको मेरी ओरसे कहिये कि मेरे पिताने मेरे विवाहार्थ एक स्वयंवर आयोजित किया है; उसमें अनेक बलवान् राजा आयेंगे, किंतु मैं तो मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक हर तरहसे आपका वरण कर चुकी हूँ। हे देवोपम राजकुमार! मुझे भगवतीने स्वप्नमें आपको वरण करनेका आदेश दिया है। मैं विष खा लूँगी अथवा जलती हुई अग्निमें कूद पड़ूँगी, किंतु माता-पिताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्यका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि मैं मन, वचन तथा कर्मसे आपको अपना पति मान चुकी हूँ। भगवतीकी कृपासे हम दोनोंका कल्याण होगा। प्रारब्धको प्रबल मानकर आप इस स्वयंवरमें अवश्य आयें। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनके अधीन है तथा शंकर आदि सभी देवगण जिनके वशमें रहते हैं, उन भगवतीने जो आदेश दिया है, वह कभी भी असत्य नहीं होगा। हे ब्रह्मन्! आप उस राजकुमारसे यह सब एकान्तमें बताइयेगा। हे निष्पाप! आप वही कीजियेगा, जिससे मेरा काम बन जाय॥ १७—२३½ ॥

ऐसा कहकर और दक्षिणा देकर शशिकलाने उस ब्राह्मणको भेज दिया। वह ब्राह्मण सुदर्शनसे सारी बातें कहकर शीघ्र ही वापस आ गया। उन बातोंको जानकर राजकुमार सुदर्शनने स्वयंवरमें जानेका निश्चय कर लिया; उन भारद्वाजमुनिने भी उसे आदरपूर्वक भेज दिया॥ २४-२५½ ॥

व्यास उवाच

गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा॥ २६

वेपमानातिदुःखार्ता जातत्रासाश्रुलोचना।
कुत्र गच्छसि पुत्राद्य समाजे भूभृतां किल॥ २७

एकाकी कृतवैरश्च किं विचिन्त्य स्वयंवरे।
युधाजिद्धन्तुकामस्त्वां समेष्यति महीपतिः॥ २८

न तेऽन्योऽस्ति सहायश्च तस्मान्मा व्रज पुत्रक।
एकपुत्रातिदीनास्मि तवाधारा निराश्रया॥ २९

नार्हसि त्वं महाभाग निराशां कर्तुमद्य माम्।
पिता मे निहतो येन सोऽपि तत्रागतो नृपः॥ ३०

एकाकिनं गतं तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति।

सुदर्शन उवाच

भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा॥ ३१

आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयंवरे।
मा शोकं कुरु कल्याणि क्षत्रियासि वरानने॥ ३२

न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरन्तरम्।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रथमारुह्य गन्तुकामं सुदर्शनम्॥ ३३

दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमाशीर्भिश्चान्वमोदयत्।
अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वती पातु पृष्ठतः॥ ३४

(पार्वती पार्श्वयोः पातु शिवा सर्वत्र साम्प्रतम्।)
वाराही विषमे मार्गे दुर्गा दुर्गेषु कर्हिचित्।
कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी॥ ३५

मण्डपे तत्र मातङ्गी तथा सौम्या स्वयंवरे।
भवानी भूपमध्ये तु पातु वां भवमोचनी॥ ३६

गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डा चत्वरेषु च।
कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी॥ ३७

विवादे वैष्णवी शक्तिरवतात्त्वां रघूद्वह।
भैरवी च रणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे॥ ३८

सर्वदा सर्वदेशेषु पातु त्वां भुवनेश्वरी।
महामाया जगद्धात्री सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ३९

व्यासजी बोले—तब अत्यधिक दुःखसे व्याकुल, काँपती हुई तथा भयभीत मनोरमा गमनके लिये तत्पर अपने पुत्र सुदर्शनसे आँखोंमें आँसू भरकर बोली—पुत्र! तुम इस समय राजाओंके उस समाजमें कहाँ जा रहे हो? तुम अकेले हो और तुमसे शत्रुता रखनेवाला राजा युधाजित् तुम्हें मारनेकी इच्छासे उस स्वयंवरमें अवश्य आयेगा, फिर तुम क्या सोचकर वहाँ जा रहे हो? तुम्हारा कोई सहायक भी नहीं है। इसलिये हे पुत्र! वहाँ मत जाओ। तुम ही मेरे एकमात्र पुत्र हो और मैं अति दीन हूँ तथा मुझ आश्रयहीनके लिये तुम्हीं एकमात्र आधार हो। हे महाभाग! इस समय तुम मुझे निराश मत करो। जिसने मेरे पिताका वध कर दिया है, वह राजा युधाजित् भी वहाँ आयेगा और वहाँ तुझ अकेले गये हुएको मार डालेगा॥ २६—३०½॥

सुदर्शन बोला—होनी तो होकर रहती है, इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे कल्याणि! जगज्जननीके आदेशसे मैं आज स्वयंवरमें जा रहा हूँ। हे वरानने! तुम क्षत्राणी हो, अतः इस विषयमें चिन्ता मत करो। भगवतीकी सदा अपने ऊपर कृपा रहनेके कारण मैं किसीसे भी भयभीत नहीं होता॥ ३१—३२½॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर रथपर आरूढ़ होकर स्वयंवरमें जानेके लिये उद्यत पुत्र सुदर्शनको देखकर मनोरमाने इन आशीर्वादोंसे उसका अनुमोदन किया—भगवती अम्बिका आगेसे, पार्वती पीछेसे, (पार्वती दोनों पार्श्वभागमें तथा शिवा सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें।) विषम मार्गमें वाराही, किसी भी प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें दुर्गा और भयानक संग्राममें परमेश्वरी कालिका तुम्हारी रक्षा करें। उस मण्डपमें देवी मातंगी, स्वयंवरमें भगवती सौम्या तथा भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भवानी राजाओंके बीचमें तुम्हारी रक्षा करें। इसी प्रकार पर्वतीय दुर्गम स्थानोंमें गिरिजा, चौराहोंपर देवी चामुण्डा तथा वनोंमें सनातनी कामगादेवी तुम्हारी रक्षा करें। हे रघूद्वह! विवादमें भगवती वैष्णवी तुम्हारी रक्षा करें। हे सौम्य! शत्रुओंके साथ युद्धमें भैरवी तुम्हारी रक्षा करें। जगत्को धारण करनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपिणी महामाया भुवनेश्वरी सभी स्थानोंपर सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें॥ ३३—३९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा माता वेपमाना भयाकुला।
उवाचाहं त्वया सार्धमागमिष्यामि सर्वथा॥ ४०

निमिषार्धं विना त्वां वै नाहं स्थातुमिहोत्सहे।
सहैव नय मां वत्स यत्र ते गमने मतिः॥ ४१

इत्युक्त्वा निःसृता माता धात्रेयीसंयुता तदा।
विप्रैर्दत्ताशिषः सर्वे निर्ययुर्हर्षसंयुताः॥ ४२

वाराणस्यां ततः प्राप्तो रथेनैकेन राघवः।
ज्ञातः सुबाहुना तत्र पूजितश्चार्हणादिभिः॥ ४३

निवेशार्थं गृहं दत्तमन्नपानादिकं तथा।
सेवकं समनुज्ञाप्य परिचर्यार्थमेव च॥ ४४

मिलितास्त्वथ राजानो नानादेशाधिपाः किल।
युधाजिदपि सम्प्राप्तो दौहित्रेण समन्वितः॥ ४५

करूषाधिपतिश्चैव तथा मद्रेश्वरो नृपः।
सिन्धुराजस्तथा वीरो योद्धा माहिष्मतीपतिः॥ ४६

पाञ्चालः पर्वतीयश्च कामरूपोऽतिवीर्यवान्।
कार्णाटश्चोलदेशीयो वैदर्भश्च महाबलः॥ ४७

अक्षौहिणी त्रिषष्टिश्च मिलिता संख्यया तदा।
वेष्टिता नगरी सा तु सैन्यैः सर्वत्र संस्थितैः॥ ४८

एते चान्ये च बहवः स्वयंवरदिदृक्षया।
मिलितास्तत्र राजानो वरवारणसंयुताः॥ ४९

अन्योन्यं नृपपुत्रास्त इत्यूचुर्मिलितास्तदा।
सुदर्शनो नृपसुतो ह्यागतोऽस्ति निराकुलः॥ ५०

एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः।
विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थः किन्नु साम्प्रतम्॥ ५१

एतान् राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान्सायुधानथ।
किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम्॥ ५२

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भयसे व्याकुल तथा काँपती हुई उसकी माता मनोरमाने उससे कहा—मैं भी तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगी। हे पुत्र! मैं तुम्हारे बिना आधे क्षण भी यहाँ नहीं रह सकती, अतएव तुम्हारी जहाँ जानेकी इच्छा है, वहीं मुझे भी अपने साथ ले चलो॥ ४०-४१॥

तब ऐसा कहकर अपनी दासीको साथ लेकर माता मनोरमा चल पड़ीं। ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद प्राप्त करके वे सभी प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े॥ ४२॥

इसके बाद वह रघुवंशी सुदर्शन एक रथपर आरूढ़ होकर वाराणसी पहुँचा। राजा सुबाहुको उसके आनेकी जानकारी होनेपर उन्होंने आदर-सम्मान आदिके द्वारा उसका सत्कार किया। उन लोगोंके निवासके लिये भवन तथा अन्न-जल आदिकी व्यवस्था कर दी तथा उनकी सेवा-शुश्रूषाहेतु सेवकको भी नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

इसके बाद वहाँ अनेक देशोंके राजा-महाराजा एकत्र हुए। वहाँ अपने नातीको साथ लेकर युधाजित् भी आया॥ ४५॥

करूषाधिपति, मद्रदेशके महाराज, वीर सिन्धुराज, युद्धकुशल माहिष्मतीनरेश, पंचालपति, पर्वतीय राजा, कामरूपदेशके अति पराक्रमी महाराज, कर्णाटकनरेश, चोलराज और महाबली विदर्भनरेश वहाँ आये थे॥ ४६-४७॥

उन राजाओंकी कुल मिलाकर तिरसठ अक्षौहिणी सेना थी। वहाँ सर्वत्र स्थित उन सैनिकोंसे वह वाराणसी नगरी पूरी तरहसे घिर गयी॥ ४८॥

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से राजा भी स्वयंवर देखनेकी इच्छासे बड़े-बड़े हाथियोंपर आरूढ़ होकर उस स्वयंवरमें सम्मिलित हुए॥ ४९॥

उस समय सभी राजकुमार आपसमें मिलकर कहने लगे कि राजकुमार सुदर्शन भी निश्चिन्त होकर यहाँ आया है। वह महाबुद्धिमान् सूर्यवंशी सुदर्शन अपनी माताके साथ इस समय अकेला ही रथपर चढ़कर विवाहके लिये यहाँ आ पहुँचा है। सैन्यशक्तिसे सम्पन्न तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित इन राजकुमारोंको छोड़कर क्या वह राजकुमारी बड़ी भुजाओंवाले इस सुदर्शनका वरण करेगी?॥ ५०—५२॥

युधाजिदथ राजेशस्तानुवाच महीपतीन्।
अहमेनं हनिष्यामि कन्यार्थे नात्र संशयः॥ ५३

केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः।
नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे॥ ५४

बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः।
कन्येच्छयात्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह॥ ५५

अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः।
दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम॥ ५६

काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः।
कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम्॥ ५७

लप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम।
शास्तास्ति कश्चिदायुष्मञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः॥ ५८

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
मानयं कुरु राजेन्द्र त्यज पापमतिं किल॥ ५९

दौहित्रस्तव सम्प्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः।
राज्ययुक्तस्तथा श्रीमान् कथं तं न वरिष्यति॥ ६०

अन्ये राजसुताः कामं वर्तन्ते बलवत्तराः।
कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति साम्प्रतम्॥ ६१

वृते तथा विवादः कः प्रवदन्तु महीभुजः।
परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्यो विजानता॥ ६२

इसके बाद राजा युधाजित्ने उन नरेशोंसे कहा—राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिये मैं इसे मार डालूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ५३॥

तब महान् नीतिज्ञ केरलनरेशने उस युधाजित्से कहा—हे राजन्! इच्छास्वयंवरमें युद्ध नहीं करना चाहिये। यह शुल्कस्वयंवर भी नहीं है, अतः कन्याका बलपूर्वक हरण भी नहीं किया जाना चाहिये। इसमें तो कन्याकी इच्छासे पति चुनना निर्धारित है; तो फिर इसमें विवाद कैसा?॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपने पहले तो इस सुदर्शनको अन्यायपूर्वक राज्यसे निकाल दिया और अपने दौहित्रको बलपूर्वक उस राज्यका स्वामी बना दिया॥ ५६॥

हे महाभाग! यह सूर्यवंशी राजकुमार कोसल-नरेशका सुपुत्र है। इस निरपराध राजकुमारका वध आप क्यों करेंगे?॥ ५७॥

हे नृपोत्तम! आपको अन्यायका फल अवश्य ही मिलेगा। हे आयुष्मन्! इस संसारपर शासन करनेवाला कोई और ही जगत्पति परमेश्वर है॥ ५८॥

धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं। अतएव हे राजेन्द्र! आप अन्याय न कीजिये और इस प्रकारके पापमय विचारका सर्वथा परित्याग कर दीजिये॥ ५९॥

आपका दौहित्र यहाँ आया ही है। वह भी अत्यन्त रूपवान् और राज्य तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न है; तब भला कन्या उसका वरण क्यों नहीं करेगी?॥ ६०॥

अन्य एकसे बढ़कर एक बलवान् राजकुमार आये हैं। इस स्वयंवरमें कन्या शशिकला किसी भी राजकुमारको अपनी इच्छासे चुन लेगी॥ ६१॥

हे राजागण! अब आप ही लोग बतायें कि इस प्रकारके विवाहमें विवाद ही क्या? विवेकवान् पुरुषको इस विषयमें परस्पर विरोधभाव नहीं रखना चाहिये॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
राजसंवादवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

राजाओंका सुदर्शनसे स्वयंवरमें आनेका कारण पूछना और सुदर्शनका उन्हें स्वप्नमें भगवतीद्वारा दिया गया आदेश बताना, राजा सुबाहुका शशिकलाको समझाना, परंतु उसका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यास उवाच

इतिवादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा।
प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः॥ १

नीतिरेषा महीपाल यद् ब्रवीति भवानिह।
समाजे पार्थिवानां वै सत्यवाग्विजितेन्द्रियः॥ २

योग्येषु वर्तमानेषु कन्यारत्नं कुलोद्वह।
अयोग्योऽर्हति भूपाल न्यायोऽयं तव रोचते॥ ३

भागं सिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हति वा कथम्।
तथा सुदर्शनोऽयं वै कन्यारत्नं किमर्हति॥ ४

बलं वेदो हि विप्राणां भूभुजां चापजं बलम्।
किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यहमिहाधुना॥ ५

बलं शुल्कं यथा राज्ञां विवाहे परिकीर्तितम्।
बलवानेव गृह्णातु नाबलस्तु कदाचन॥ ६

तस्मात्कन्यापणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम्।
अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम्॥ ७

एवं विवादे संवृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम्।
आहूतस्तु सभामध्ये सुबाहुर्नृपसत्तमः॥ ८

समाहूय नृपाः सर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः।
राजन्नीतिस्त्वया कार्या विवाहेऽत्र समाहिता॥ ९

किं ते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्व समाहितः।
पुत्र्याः प्रदानं कस्मै ते रोचते नृप चेतसि॥ १०

सुबाहुरुवाच

पुत्र्या मे मनसा कामं वृतः किल सुदर्शनः।
मया निवारितात्यर्थं न सा प्रत्येति मे वचः॥ ११

किं करोमि सुताया मे न वशे वर्तते मनः।
सुदर्शनस्तथैकाकी सम्प्राप्तोऽस्ति निराकुलः॥ १२

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तब महाराज केरल-नरेशके ऐसा कहनेपर राजा युधाजित्‌ने कहा—॥ १॥

हे पृथ्वीपते! आपने अभी-अभी जो कहा है, क्या यही नीति है? राजाओंके समाजमें आप तो सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय माने जाते हैं॥ २॥

हे कुलोद्वह! हे राजन्! योग्य राजाओंके रहते हुए एक अयोग्य व्यक्ति कन्यारत्नको प्राप्त कर ले, क्या यही न्याय आपको अच्छा लगता है?॥ ३॥

एक सियार सिंहके भागको खानेका अधिकारी कैसे हो सकता है? उसी प्रकार क्या यह सुदर्शन इस कन्यारत्नको पानेकी योग्यता रखता है?॥ ४॥

ब्राह्मणोंका बल वेद है और राजाओंका बल धनुष। हे महाराज! क्या मैं इस समय अन्यायपूर्ण बात कह रहा हूँ?॥ ५॥

राजाओंके विवाहमें बलको ही शुल्क कहा गया है। यहाँ जो भी बलशाली हो, वह कन्यारत्नको प्राप्त कर ले; बलहीन इसे कदापि नहीं पा सकता॥ ६॥

अतएव कन्याके लिये कोई शर्त निर्धारित करके ही राजकुमारीका विवाह हो—यही नीति इस अवसरपर अपनायी जानी चाहिये; अन्यथा राजाओंमें परस्पर घोर कलहकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी॥ ७॥

इस प्रकार वहाँ राजाओंमें परस्पर विवाद उत्पन्न हो जानेपर नृपश्रेष्ठ सुबाहु सभामें बुलाये गये॥ ८॥

उन्हें बुलवाकर तत्त्वदर्शी राजाओंने उनसे कहा—हे राजन्! इस विवाहमें आप राजोचित नीतिका अनुसरण करें। हे राजन्! आप क्या करना चाहते हैं, उसे सावधान होकर बतायें। हे नृप! आप अपने मनसे इस कन्याको किसे प्रदान करना पसन्द करते हैं?॥ ९-१०॥

सुबाहु बोले—मेरी पुत्रीने मन-ही-मन सुदर्शनका वरण कर लिया है। इसके लिये मैंने उसे बहुत रोका, किंतु वह मेरी बात नहीं मानती। मैं क्या करूँ? मेरी पुत्रीका मन वशमें नहीं है और यह सुदर्शन भी निर्भीक होकर यहाँ अकेले आ गया है॥ ११-१२॥

व्यास उवाच

सम्पन्नभूभुजः सर्वे समाहूय सुदर्शनम्।
ऊचुः समागतं शान्तमेकाकिनमतन्द्रिताः॥ १३

राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत।
एकाकी यः समायातः समाजे भूभृतामिह॥ १४

न वै सैन्यं न सचिवा न कोशो न बृहद्बलम्।
किमर्थञ्च समायातस्तत्त्वं ब्रूहि महामते॥ १५

युद्धकामा नृपतयो वर्तन्तेऽत्र समागमे।
कन्यार्थं सैन्यसम्पन्नाः किं त्वं कर्तुमिहेच्छसि॥ १६

भ्राता ते सुबलः शूरः सम्प्राप्तोऽस्ति जिघृक्षया।
युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः॥ १७

गच्छ वा तिष्ठ राजेन्द्र याथातथ्यमुदाहृतम्।
त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टं कुरु सुव्रत॥ १८

सुदर्शन उवाच

न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः।
न मित्राणि न सौहार्दी न नृपा रक्षका मम॥ १९

अत्र स्वयंवरं श्रुत्वा द्रष्टुकाम इहागतः।
स्वप्ने देव्या प्रेरितोऽस्मि भगवत्या न संशयः॥ २०

नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाह जगदीश्वरी।
तया यद्विहितं तच्च भविताद्य न संशयः॥ २१

न शत्रुरस्ति संसारे कोऽप्यत्र जगतीश्वराः।
सर्वत्र पश्यतो मेऽद्य भवानीं जगदम्बिकाम्॥ २२

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सभी वैभवशाली राजाओंने सुदर्शनको बुलवाया। उस शान्तस्वभाव सुदर्शनसे राजाओंने सावधान होकर पूछा—हे राजपुत्र! हे महाभाग! हे सुव्रत! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया है, जो तुम इस राजसमाजमें अकेले ही चले आये हो?॥ १३-१४॥

तुम्हारे पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न अधिक बल ही है। हे महामते! तुम यहाँ किसलिये आये हो? उसे बताओ॥ १५॥

युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले बहुत-से राजागण इस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनासहित इस समाजमें विद्यमान हैं। यहाँ तुम क्या करना चाहते हो?॥ १६॥

तुम्हारा शूरवीर भाई शत्रुजित् भी एक महान् सेनाके साथ राजकुमारीको प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आया हुआ है और उसकी सहायता करनेके लिये महाबाहु युधाजित् भी आये हैं॥ १७॥

हे राजेन्द्र! तुम जाओ अथवा रहो। हमने तो सारी वास्तविकता तुम्हें बतला दी; क्योंकि तुम सेना-विहीन हो। हे सुव्रत! अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो॥ १८॥

सुदर्शन बोला—मेरे पास न सेना है, न कोई सहायक है, न खजाना है, न सुरक्षित किला है, न मित्र हैं, न सुहृद् हैं तथा न तो मेरी रक्षा करनेवाले कोई राजा ही हैं॥ १९॥

यहाँपर स्वयंवर होनेका समाचार सुनकर उसे देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। देवी भगवतीने स्वप्नमें मुझे यहाँ आनेकी प्रेरणा दी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे यहाँ आनेके लिये जगज्जननी भगवतीने आदेश दिया है। उन्होंने जो विधान रच दिया होगा, वह होकर ही रहेगा; इसमें कोई संशय नहीं है॥ २१॥

हे राजागण! इस संसारमें मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं सर्वत्र भवानी जगदम्बाको विराजमान देख रहा हूँ॥ २२॥

यः करिष्यति शत्रुत्वं मया सह नृपात्मजाः।
शास्ता तस्य महाविद्या नाहं जानामि शत्रुताम्॥ २३

यद्भावि तद्वै भविता नान्यथा नृपसत्तमाः।
का चिन्ता ह्यत्र कर्तव्या दैवाधीनोऽस्मि सर्वदा॥ २४

देवभूतमनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा।
सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः॥ २५

सा यं चिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः।
निर्धनं वा नरं कामं का चिन्ता वै तदा मम॥ २६

तामृते परमां शक्तिं ब्रह्मविष्णुहरादयः।
न शक्ताः स्पन्दितुं देवाः का चिन्ता मे तदा नृपाः॥ २७

अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम्।
तदाज्ञया नृपाद्यैव सम्प्राप्तोऽस्मि स्वयंवरे॥ २८

सा यदिच्छति तत्कुर्यान्मम किं चिन्तनेन वै।
नात्र शङ्का प्रकर्तव्या सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २९

जये पराजये लज्जा न मेऽत्राण्वपि पार्थिवाः।
भगवत्यास्तु लज्जास्ति तदधीनोऽस्मि सर्वथा॥ ३०

व्यास उवाच

इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः।
ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य निश्चयज्ञा नराधिपाः॥ ३१

सत्यमुक्तं त्वया साधो न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत्।
तथाप्युज्जयनीनाथस्त्वां हन्तुं परिकाङ्क्षति॥ ३२

त्वत्कृतेन दयादिष्टा त्वां ब्रवीमो महामते।
यदुक्तं तत्त्वया कार्यं विचार्य मनसानघ॥ ३३

हे राजकुमारो! जो कोई भी प्राणी मुझसे शत्रुता करेगा, उसे महाविद्या जगदम्बा दण्डित करेंगी; मैं तो वैर-भाव जानता ही नहीं॥ २३॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! जो होना है, वह अवश्य ही होगा; उसके विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। अतः इस विषयमें क्या चिन्ता की जाय? मैं तो सदा प्रारब्धपर भरोसा करता हूँ?॥ २४॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! देवताओं, दानवों, मनुष्यों तथा सभी प्राणियोंमें एकमात्र जगदम्बाकी शक्ति ही विद्यमान है। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है॥ २५॥

हे महाराजाओ! वे जिस मनुष्यको राजा बनाना चाहती हैं, उसे राजा बना देती हैं और जिसे निर्धन बनाना चाहती हैं, उसे निर्धन बना देती हैं; तब मुझे किस बातकी चिन्ता?॥ २६॥

हे राजाओ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी उन महाशक्तिके बिना हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हैं, तब मुझे क्या चिन्ता?॥ २७॥

मैं शक्तिसम्पन्न हूँ या शक्तिहीन, जैसा भी हूँ वैसा आपके समक्ष हूँ। हे राजाओ! मैं उन्हीं भगवतीकी आज्ञासे ही इस स्वयंवरमें आया हुआ हूँ॥ २८॥

वे भगवती जो चाहेंगी, सो करेंगी। मेरे सोचनेसे क्या होगा? मैं यह सत्य कह रहा हूँ, इस विषयमें शंका नहीं करनी चाहिये॥ २९॥

हे राजाओ! जय अथवा पराजयमें मुझे अणुमात्र भी लज्जा नहीं है। लज्जा तो उन भगवतीको होगी; क्योंकि मैं तो सर्वथा उन्हींके अधीन हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस सुदर्शनकी यह बात सुनकर सभी श्रेष्ठ राजागण उसके निश्चयको जान गये और एक-दूसरेको देखकर उन राजाओंने सुदर्शनसे कहा—हे साधो! आपने सत्य कहा है, आपका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। तथापि उज्जयिनीपति महाराज युधाजित् आपको मार डालना चाहते हैं। हे महामते! हमें आपके ऊपर दया आ रही है, इसीलिये हमने आपको यह सब बता दिया। हे अनघ! अब आपको जो उचित जान पड़े, वैसा मनसे खूब सोच-समझकर कीजिये॥ ३१—३३॥

सुदर्शन उवाच

सत्यमुक्तं भवद्भिश्च कृपावद्भिः सुहृज्जनैः।
किं ब्रवीमि पुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः॥ ३४

न मृत्युः केनचिद्भाव्यः कस्यचिद्वा कदाचन।
दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३५

स्ववशोऽयं न जीवोऽस्ति स्वकर्मवशगः सदा।
तत्कर्म त्रिविधं प्रोक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ३६

सञ्चितं वर्तमानञ्च प्रारब्धञ्च तृतीयकम्।
कालकर्मस्वभावैश्च ततं सर्वमिदं जगत्॥ ३७

न देवो मानुषं हन्तुं शक्तः कालागमं विना।
हतं निमित्तमात्रेण हन्ति कालः सनातनः॥ ३८

यथा पिता मे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः।
तथा मातामहोऽप्येवं युद्धे युधाजिता हतः॥ ३९

यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः।
जीवेद्वर्षसहस्राणि रक्षणेन विना नरः॥ ४०

नाहं बिभेमि धर्मिष्ठाः कदाचिच्च युधाजितः।
दैवमेव परं मत्वा सुस्थितोऽस्मि सदा नृपाः॥ ४१

स्मरणं सततं नित्यं भगवत्याः करोम्यहम्।
विश्वस्य जननी देवी कल्याणं सा करिष्यति॥ ४२

पूर्वार्जितं हि भोक्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा।
स्वकृतस्य च भोगेन कीदृक्शोको विजानताम्॥ ४३

स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल॥ ४४

सुदर्शन बोला—आप सब बड़े कृपालु एवं सहृदय-जनोंने सत्य ही कहा है, किंतु हे श्रेष्ठ राजागण! अब मैं अपनी पूर्वकथित बात फिरसे क्या दोहराऊँ!॥ ३४॥

किसीकी भी मृत्यु किसीसे भी कभी भी नहीं हो सकती; क्योंकि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् तो दैवके अधीन है॥ ३५॥

यह जीव भी स्वयं अपने वशमें नहीं है; यह सदा अपने कर्मके अधीन रहता है। तत्त्वदर्शी विद्वानोंने उस कर्मके तीन प्रकार बतलाये हैं—संचित, वर्तमान तथा प्रारब्ध। यह सम्पूर्ण जगत् काल, कर्म तथा स्वभावसे व्याप्त है॥ ३६-३७॥

बिना कालके आये देवता भी किसी मनुष्यको मारनेमें समर्थ नहीं हो सकते। किसीको भी मारनेवाला तो निमित्तमात्र होता है; वास्तविकता यह है कि सभीको अविनाशी काल ही मारता है॥ ३८॥

जैसे शत्रुओंका शमन करनेवाले मेरे पिताको सिंहने मार डाला। वैसे ही मेरे नानाको भी युद्धमें युधाजित्‌ने मार डाला॥ ३९॥

प्रारब्ध पूरा हो जानेपर करोड़ों प्रयत्न करनेपर भी अन्ततः मनुष्य मर ही जाता है और दैवके अनुकूल रहनेपर बिना किसी रक्षाके ही वह हजारों वर्षोंतक जीवित रहता है॥ ४०॥

हे धर्मनिष्ठ राजाओ! मैं युधाजित्‌से कभी नहीं डरता। मैं दैवको ही सर्वोपरि मानकर पूर्णरूपसे निश्चिन्त रहता हूँ॥ ४१॥

मैं नित्य-निरन्तर भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ। विश्वकी जननी वे भगवती ही कल्याण करेंगी॥ ४२॥

पूर्वजन्ममें किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल प्राणीको भोगना ही पड़ता है; तो फिर अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगनेमें विवेकी पुरुषोंको शोक कैसा?॥ ४३॥

अपने द्वारा उपार्जित कर्मफल भोगनेमें दुःख प्राप्त होनेके कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धिवाला प्राणी निमित्त कारणके प्रति शत्रुता करने लगता है॥ ४४॥

न तथाहं विजानामि वैरं शोकं भयं तथा।
निःशङ्कमिह सम्प्राप्तः समाजे भूभृतामिह॥ ४५

एकाकी द्रष्टुकामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम्।
भविष्यति च यद्भाव्यं प्राप्तोऽस्मि चण्डिकाज्ञया॥ ४६

भगवत्याः प्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः।
तत्कृतं च सुखं दुःखं भविष्यति च नान्यथा॥ ४७

युधाजित्सुखमाप्नोतु न मे वैरं नृपोत्तमाः।
यः करिष्यति मे वैरं स प्राप्स्यति फलं तथा॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तथा तेन सन्तुष्टा भूभुजः स्थिताः।
सोऽपि स्वमाश्रमं प्राप्य सुस्थितः सम्बभूव ह॥ ४९

अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाः सम्मन्त्रिताः किल।
सुबाहुना नृपेणाथ रुचिरे वै स्वमण्डपे॥ ५०

दिव्यास्तरणयुक्तेषु मञ्चेषु रचितेषु च।
उपविष्टाश्च राजानः शुभालङ्करणैर्युताः॥ ५१

दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव।
दीप्यमानाः स्थितास्तत्र स्वयंवरदिदृक्षया॥ ५२

इति चिन्तापराः सर्वे कदा साप्यागमिष्यति।
भाग्यवन्तं नृपश्रेष्ठं श्रुतपुण्यं वरिष्यति॥ ५३

यदा सुदर्शनं दैवात्स्रजा सम्भूषयेदिह।
विवादो वै नृपाणां च भविता नात्र संशयः॥ ५४

इत्येवं चिन्त्यमानास्ते भूपा मञ्चेषु संस्थिताः।
वादित्रघोषः सुमहानुत्थितो नृपमण्डपे॥ ५५

उनकी भाँति मैं वैर, शोक तथा भयको नहीं जानता। अतः मैं राजाओंके इस समाजमें भयरहित होकर आया हुआ हूँ॥ ४५॥

जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं तो भगवतीके आदेशसे इस उत्कृष्ट स्वयंवरको देखनेकी अभिलाषासे यहाँ अकेला ही आया हूँ॥ ४६॥

मैं भगवतीके वचनको ही प्रमाण मानता हूँ और उनकी आज्ञाके अधीन रहता हुआ मैं अन्य किसीको नहीं जानता। उन्होंने सुख-दुःखका जो विधान कर दिया है, वही प्राप्त होगा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं॥ ४७॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! युधाजित् सुखी रहें। मेरे मनमें उनके प्रति वैरभाव नहीं है। जो मुझसे शत्रुता करेगा, वह उसका फल पायेगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके इस प्रकार कहनेपर वहाँ उपस्थित सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। वह भी अपने निवासमें आकर शान्तभावसे बैठ गया॥ ४९॥

तदनन्तर दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें राजा सुबाहुने अपने भव्य मण्डपमें सभी राजाओंको बुलाया॥ ५०॥

उस मण्डपमें दिव्य आसनोंसे सुशोभित पूर्णरूपसे सजाये गये मंचोंपर मनोहारी आभूषणोंसे अलंकृत राजागण विराजमान हुए॥ ५१॥

स्वयंवर देखनेकी इच्छासे वहाँ मंचोंपर विराजमान वे दिव्य वेषधारी देदीप्यमान राजागण विमानपर बैठे हुए देवताओंकी भाँति प्रतीत हो रहे थे॥ ५२॥

सभी राजा इस बातके लिये बहुत चिन्तित थे कि वह राजकुमारी कब आयेगी और किस पुण्यवान् तथा भाग्यशाली श्रेष्ठ नरेशका वरण करेगी?॥ ५३॥

संयोगवश यदि राजकुमारीने सुदर्शनके गलेमें माला डाल दी तो राजाओंमें परस्पर कलह होने लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

मंचोंपर विराजमान राजालोग ऐसा सोच ही रहे थे तभी राजा सुबाहुके भवनमें वाद्योंकी ध्वनि होने लगी॥ ५५॥

अथ काशीपतिः प्राह सुतां स्नातां स्वलंकृताम्।
मधूकमालासंयुक्तां क्षौमवासोविभूषिताम्॥ ५६

विवाहोपस्करैर्युक्तां दिव्यां सिन्धुसुतोपमाम्।
चिन्तापरां सुवसनां स्मितपूर्वमिदं वचः॥ ५७

उत्तिष्ठ पुत्रि सुनसे करे धृत्वा शुभां स्रजम्।
व्रज मण्डपमध्येऽद्य समाजं पश्य भूभुजाम्॥ ५८

गुणवान् रूपसम्पन्नः कुलीनश्च नृपोत्तमः।
तव चित्ते वसेद्यस्तु तं वृणुष्व सुमध्यमे॥ ५९

देशदेशाधिपाः सर्वे मञ्चेषु रचितेषु च।
संविष्टाः पश्य तन्वङ्गि वरयस्व यथारुचि॥ ६०

व्यास उवाच

तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषिणी।
उवाच वचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम्॥ ६१

शशिकलोवाच

नाहं दृष्टिपथे राज्ञां गमिष्यामि पितः किल।
कामुकानां नरेशानां गच्छन्त्यन्याश्च योषितः॥ ६२

धर्मशास्त्रे श्रुतं तात मयेदं वचनं किल।
एक एव वरो नार्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः॥ ६३

सतीत्वं निर्गतं तस्या या प्रयाति बहूनथ।
संकल्पयन्ति ते सर्वे दृष्ट्वा मे भवतात्त्विति॥ ६४

स्वयंवरे स्रजं धृत्वा यदागच्छति मण्डपे।
सामान्या सा तदा जाता कुलटेवापरा वधूः॥ ६५

वारस्त्री विपणे गत्वा यथा वीक्ष्य नरान्स्थितान्।
गुणागुणपरिज्ञानं करोति निजमानसे॥ ६६

तत्पश्चात् स्नान करके भलीभाँति अलंकृत, मधूक पुष्पकी माला धारण किये, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, विवाहके अवसरपर धारणीय सभी पदार्थोंसे युक्त, लक्ष्मीके सदृश दिव्य स्वरूपवाली, चिन्तामग्न तथा सुन्दर वस्त्रोंवाली शशिकलासे मुसकराकर महाराज सुबाहुने यह वचन कहा—॥ ५६-५७॥

हे सुन्दर नासिकावाली पुत्रि! उठो और हाथमें यह सुन्दर माला लेकर मण्डपमें चलो और वहाँपर विराजमान राजाओंके समुदायको देखो॥ ५८॥

हे सुमध्यमे! उन राजाओंमें जो गुणसम्पन्न, रूपवान् और उत्तम कुलमें उत्पन्न श्रेष्ठ राजा तुम्हारे मनमें बस जाय, उसका वरण कर लो॥ ५९॥

देश-देशान्तरके सभी राजागण सम्यक् रूपसे सजाये गये मंचोंपर विराजमान हैं। हे तन्वंगि! इन्हें देखो और अपनी इच्छाके अनुसार वरण कर लो॥ ६०॥

व्यासजी बोले—तब ऐसा कहते हुए अपने पितासे मितभाषिणी उस कन्या शशिकलाने लालित्यपूर्ण एवं धर्मसंगत बात कही॥ ६१॥

शशिकला बोली—हे पिताजी! मैं इन राजाओंके सम्मुख बिलकुल नहीं जाऊँगी। ऐसे कामासक्त राजाओंके सामने अन्य प्रकारकी स्त्रियाँ ही जाती हैं॥ ६२॥

हे तात! मैंने धर्मशास्त्रोंमें यह वचन सुना है कि नारीको एक ही वरपर दृष्टि डालनी चाहिये, किसी दूसरेपर नहीं॥ ६३॥

जो स्त्री अनेक पुरुषोंके समक्ष उपस्थित होती है, उसका सतीत्व विनष्ट हो जाता है; क्योंकि उसे देखकर वे सभी अपने मनमें यही संकल्प कर लेते हैं कि यह स्त्री किसी तरहसे मेरी हो जाय॥ ६४॥

कोई स्त्री अपने हाथमें जयमाल लेकर जब स्वयंवरमण्डपमें आती है तो वह एक साधारण स्त्री हो जाती है और उस समय वह एक व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति प्रतीत होती है॥ ६५॥

जिस प्रकार एक वारांगना बाजारमें जाकर वहाँ स्थित पुरुषोंको देखकर अपने मनमें उनके गुण-दोषोंका आकलन करती है और जैसे अनेक प्रकारके चंचल भावोंसे युक्त वह वेश्या किसी कामी पुरुषको

नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम्।
तथाहं मण्डपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम्॥ ६७

बिना किसी प्रयोजनके व्यर्थ ही देखती रहती है, उसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें जाकर मुझे भी उसीके सदृश व्यवहार करना पड़ेगा॥ ६६-६७॥

वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि साम्प्रतम्।
पतीव्रतं तथा कामं करिष्येऽहं धृतव्रता॥ ६८

इस समय मैं अपने कुलके वृद्धजनोंद्वारा स्थापित किये गये इस स्वयंवरनियमका पालन नहीं करूँगी। मैं अपने संकल्पपर अटल रहती हुई पतीव्रत-धर्मका पूर्णरूपसे आचरण करूँगी॥ ६८॥

सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा संकल्पितं बहु।
वृणोति चैकं तद्वद्वै वृणोमि कथमद्य वै॥ ६९

सामान्य कन्या स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचकर पहले अनेक संकल्प-विकल्प करनेके पश्चात् अन्ततः किसी एकका वरण कर लेती है; उसके समान मैं भी पतिका वरण क्यों करूँ?॥ ६९॥

सुदर्शनो मया पूर्वं वृतः सर्वात्मना पितः।
तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम॥ ७०

हे पिताजी! मैंने पूरे मनसे सुदर्शनका पहले ही वरण कर लिया है। हे महाराज! उस सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी अन्यको पतिके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकती॥ ७०॥

विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभे दिने।
सुदर्शनाय नृपते यदीच्छसि शुभं मम॥ ७१

हे राजन्! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो किसी शुभ दिनमें वैवाहिक विधि-विधानसे कन्यादान करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये॥ ७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे स्वपितरं प्रति शशिकलावाक्यं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~०~~

अथैकविंशोऽध्यायः

राजा सुबाहुका राजाओंसे अपनी कन्याकी इच्छा बताना, युधाजित्का क्रोधित होकर सुबाहुको फटकारना तथा अपने दौहित्रसे शशिकलाका विवाह करनेको कहना, माताद्वारा शशिकलाको पुनः समझाना, किंतु शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यास उवाच

सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तं तया तदा।
चिन्ताविष्टो बभूवाशु किं कर्तव्यमितः परम्॥ १

सङ्गताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः।
उपविष्टाश्च मञ्चेषु योद्धुकामा महाबलाः॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] महाराज सुबाहु पुत्रीके द्वारा कही गयी युक्तिसंगत बातें सुनकर इस चिन्तामें पड़ गये कि अब आगे क्या किया जाय? अपने-अपने सैनिकों तथा सेवकोंके साथ यहाँ आये हुए और युद्धकी इच्छावाले अनेक महाबली नरेश मंचोंपर बैठे हुए हैं॥ १-२॥

यदि ब्रवीमि तान्सर्वान्सुता नायाति साम्प्रतम्।
तथापि कोपसंयुक्ता हन्युर्मां दुष्टबुद्धयः॥ ३

इस समय यदि मैं उन सभीसे यह कहूँ कि कन्या नहीं आ रही है, तो दुष्ट बुद्धिवाले वे राजा क्रोधित होकर मुझे मार ही डालेंगे॥ ३॥

न मे सैन्यबलं तादृङ्न दुर्गबलमद्भुतम्।
येनाहं नृपतीन्सर्वान् प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे॥ ४

सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहायोऽधनः शिशुः।
किं कर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथा दुःखसागरे॥ ५

इति चिन्तापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ।
प्रणम्य तानुवाचाथ प्रश्रयावनतो नृपः॥ ६

किं कर्तव्यं नृपाः कामं नैति मे मण्डपे सुता।
बहुशः प्रेर्यमाणापि सा मात्रापि मयापि च॥ ७

मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि साम्प्रतम्।
पूजादिकं गृहीत्वाद्य व्रजन्तु सदनानि वः॥ ८

ददामि बहुरत्नानि वस्त्राणि च गजान् रथान्।
गृहीत्वाद्य कृपां कृत्वा व्रजन्तु भवनान्युत॥ ९

न वशे मे सुता बाला यदि म्रियेत खेदिता।
तदा मे स्यान्महद्दुःखं तेन चिन्तातुरोऽस्म्यहम्॥ १०

भवन्तः करुणावन्तो महाभाग्या महौजसः।
किमेतया दुहित्रा मे मन्दया दुर्विनीतया॥ ११

अनुग्राह्योऽस्मि वः कामं दासोऽहमिति सर्वथा।
सुता सुतेव मन्तव्या भवद्भिः सर्वथा मम॥ १२

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुबाहुवचनं नोचुः केचन भूमिपाः।
युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाच रुषान्वितः॥ १३

राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूषे कृत्वा कार्यं सुनिन्दितम्।
स्वयंवरः कथं मोहाद्रचितः संशये सति॥ १४

मेरे पास न तो वैसा सैन्यबल है और न तो सुरक्षार्थ अद्भुत किला ही है, जिससे मैं इस समय उन सभीको पराजित कर सकूँ॥ ४॥

यह बालक सुदर्शन भी निस्सहाय, निर्धन तथा अकेला है। मैं तो हर तरहसे दुःखसागरमें डूब चुका हूँ। अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये?॥ ५॥

इस प्रकार चिन्ताकुल राजा सुबाहु राजाओंके पास गये और उन सबको प्रणाम करके अत्यन्त विनीतभावसे उन्होंने कहा—हे महाराजाओ! अब मैं क्या करूँ? मेरे तथा अपनी माताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है॥ ६-७॥

मैं आपलोगोंका दास हूँ और सभी राजाओंके चरणोंपर अपना सिर रखकर निवेदन करता हूँ कि आपलोग पूजा-सत्कार ग्रहण करके इस समय अपने-अपने घर लौट जायँ॥ ८॥

मैं आपलोगोंको बहुत-से रत्न, वस्त्र, हाथी तथा रथ देता हूँ। इन्हें स्वीकारकर कृपा करके आपलोग अपने-अपने भवन चले जायँ॥ ९॥

मेरी पुत्री मेरे वशमें नहीं है। यदि वह बेचारी खिन्न होकर मर गयी तो मुझे महान् दुःख होगा। इसीसे मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ॥ १०॥

आपलोग बड़े दयालु, भाग्यवान् तथा महान् तेजस्वी हैं तो फिर मेरी इस मन्द बुद्धिवाली अविनीत कन्यासे आपलोगोंको क्या लाभ होगा?॥ ११॥

मैं आपलोगोंका हर तरहसे सेवक हूँ, अतएव आपलोग मुझपर कृपा करें। आप सभी लोग मेरी इस पुत्रीको अपनी ही पुत्री समझें॥ १२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुबाहुका वचन सुनकर अन्य राजागण तो नहीं बोले, किंतु क्रोधसे आँखें लाल करके युधाजित्‌ने उनसे रोषपूर्वक कहा—हे राजन्! आप तो बड़े मूर्ख हैं। ऐसा निन्दनीय कृत्य करनेके बाद भी आप कैसे इस प्रकारकी बात बोल रहे हैं? यदि संशयकी स्थिति थी तो आपने अज्ञानतावश स्वयंवरका आयोजन ही क्यों किया?॥ १३-१४॥

मिलिता भूभुजः सर्वे त्वयाहूताः स्वयंवरे।
कथमद्य नृपा गन्तुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति॥ १५

अवमान्य नृपान्सर्वांस्त्वं किं सुदर्शनाय वै।
दातुमिच्छसि पुत्रीञ्च किमनार्यमतः परम्॥ १६

विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वै शुभमिच्छता।
आरब्धव्यं त्वया तत्तु कृतं राजन्नजानता॥ १७

एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान्।
वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि साम्प्रतम्॥ १८

अहं त्वां हन्मि पापिष्ठं तथा पश्चात्सुदर्शनम्।
दौहित्रायाद्य ते कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः॥ १९

मयि तिष्ठति कोन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति।
सुदर्शनः कियानद्य निर्धनो निर्बलः शिशुः॥ २०

भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तो मुनिकृते मया।
नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथा जीवितं शिशोः॥ २१

तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्या च भार्यया सह।
दौहित्राय प्रियां कन्यां देहि मे सुभ्रुवं किल॥ २२

सम्बन्धी भव दत्त्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम्।
उच्चाश्रयः प्रकर्तव्यः सर्वदा शुभमिच्छता॥ २३

सुदर्शनाय दत्त्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम्।
एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि॥ २४

(कुलं वित्तं बलं रूपं राज्यं दुर्गं सुहृज्जनम्।
दृष्ट्वा कन्या प्रदातव्या नान्यथा सुखमृच्छति॥)

आपके बुलानेपर ही सभी राजा स्वयंवरमें पधारे हुए हैं तो फिर वे सुयोग्य राजागण यों ही अपने-अपने घर कैसे चले जायँ?॥ १५॥

क्या आप सभी राजाओंका अपमान करके सुदर्शनको अपनी कन्या देना चाहते हैं? इससे बढ़कर नीचताकी और क्या बात होगी? ॥ १६॥

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको पहले ही सोच-समझकर कोई कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। किंतु हे राजन्! आपने तो बिना सोचे-समझे ही यह आयोजन कर डाला॥ १७॥

सेना तथा वाहनोंसे सम्पन्न इन राजाओंको छोड़कर इस समय आप सुदर्शनको अपना जामाता क्यों बनाना चाहते हैं?॥ १८॥

[उसने क्रोधपूर्वक आगे कहा—] मैं तुझ पापीको अभी मार डालूँगा और बादमें सुदर्शनका भी वध कर दूँगा। तत्पश्चात् तुम्हारी कन्याका विवाह अपने नाती शत्रुजित्‌से कर दूँगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ १९॥

ऐसा दूसरा कौन व्यक्ति है जो मेरे रहते कन्याके हरणकी इच्छातक कर ले और सुदर्शन तो अत्यन्त निर्धन, बलहीन तथा बच्चा है॥ २०॥

यह सुदर्शन पूर्वमें जब भारद्वाजमुनिके आश्रममें था तभी मैं उसे मार डालता, किंतु मुनिके कहनेसे मैंने उसे छोड़ दिया था। किंतु आज किसी भी तरह इस बालकके प्राण नहीं छोड़ूँगा॥ २१॥

अब तुम अपनी स्त्री और पुत्रीके साथ भलीभाँति विचार-विमर्श करके सुन्दर भौंहोंवाली अपनी कन्या मेरे दौहित्र शत्रुजित्‌को प्रदान कर दो। इस प्रकार अपनी इस सुन्दर पुत्रीको देकर तुम मेरे सम्बन्धी हो जाओ; क्योंकि अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सर्वदा बड़ोंसे ही सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये॥ २२-२३॥

तुम अकेले और राज्यहीन सुदर्शनको अपनी प्राणप्रिय, सुन्दर कन्या देकर क्या सुख चाहते हो? (वरके कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग और सगे-सम्बन्धियोंको देखनेके बाद ही उसे अपनी कन्या देनी चाहिये, अन्यथा सुख नहीं मिलता है)

परिचिन्तय धर्मं त्वं राज्यनीतिञ्च शाश्वतीम्।
कुरु कार्यं यथायोग्यं मा कृथा मतिमन्यथा ॥ २५

सुहृदसि ममात्यर्थं हितं ते प्रब्रवीम्यहम्।
समानय सुतां राजन् मण्डपे तां सखीवृताम् ॥ २६

सुदर्शनमृते चेयं वरिष्यति यदाप्यसौ।
विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तु तवेप्सितः ॥ २७

अन्ये नृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः।
विरोधः कीदृशस्त्वेनं वृणोद्यदि नृपोत्तम ॥ २८

अन्यथाहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम्।
मा विरोधं सुदुःसाध्यं गच्छ पार्थिवसत्तम ॥ २९

व्यास उवाच

युधाजिता समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः।
निःश्वसन्भवनं गत्वा भार्यां प्राह शुचावृतः ॥ ३०

पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते।
किं कर्तव्यं मया शक्यं त्वद्वशोऽस्मि सुलोचने ॥ ३१

व्यास उवाच

सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतान्तिकम्।
वत्से राजातिदुःखार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते ॥ ३२

त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम्।
अन्यं वरय सुश्रोणि सुदर्शनमृते नृपम् ॥ ३३

यदि सुदर्शनं वत्से हठात्त्वं वै वरिष्यसि।
युधाजित्त्वां च मां चैव हनिष्यति बलान्वितः ॥ ३४

सुदर्शनं च राजासौ बलमत्तः प्रतापवान्।
द्वितीयस्ते पतिः पश्चाद्भविता कलहे सति ॥ ३५
तस्मात्सुदर्शनं त्यक्त्वा वरयान्यं नृपोत्तमम्।

तुम धर्म तथा शाश्वत राजनीतिपर सम्यक् विचार कर लो, तत्पश्चात् यथोचित कार्य करो; इसके विपरीत कोई दूसरा विचार मत करो ॥ २४-२५ ॥

तुम मेरे परम मित्र हो, इसलिये तुम्हारे हितकी बात बता देता हूँ। अब तुम अपनी कन्याको उसकी सखियोंसहित स्वयंवर-मण्डपमें ले आओ ॥ २६ ॥

यदि वह सुदर्शनको छोड़कर किसी दूसरेका वरण कर लेगी तो इसमें मुझे विरोध नहीं होगा। आप अपने इच्छानुसार उसके साथ विवाह कर दीजियेगा। हे राजेन्द्र! अन्य सभी नरेश कुलीन, शक्तिशाली एवं हर तरहसे समान हैं। अतः यदि इनमेंसे किसीको भी वह कन्या चुन लेती है तो विरोध ही क्या है? अन्यथा मैं बलपूर्वक आज ही इस सुन्दर कन्याका हरण कर लूँगा। हे नृपश्रेष्ठ! जाओ, इस कार्यको सुसम्पन्न करो और इस असाध्य कलहमें मत पड़ो ॥ २७—२९ ॥

व्यासजी बोले—उस समय युधाजित्का यह आदेश पाकर सुबाहु शोकाकुल हो उठे और दीर्घ श्वास लेते हुए महलमें जाकर दुःखित हो अपनी पत्नीसे कहने लगे—हे सुधर्मज्ञे! हे सुनयने! अब पुत्रीसे कहो—'स्वयंवर-सभामें इस समय घोर कलह उपस्थित हो जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि मैं तो तुम्हारे वशमें हूँ' ॥ ३०-३१ ॥

व्यासजी बोले—पतिकी यह बात सुनकर रानी अपनी पुत्रीके पास जाकर बोली—पुत्रि! तुम्हारे पिता राजा सुबाहु इस समय अत्यन्त दुःखी हैं। तुम्हारे लिये आये हुए नरेशोंमें भयंकर कलह उत्पन्न हो गया है, इसलिये हे सुश्रोणि! तुम सुदर्शनको छोड़कर अन्य किसी राजकुमारका वरण कर लो ॥ ३२-३३ ॥

हे वत्से! यदि तुम हठ करके सुदर्शनका ही वरण करोगी तो सैन्यबलयुक्त, प्रतापी तथा बलशाली वह युधाजित् तुमको, सुदर्शनको और हमलोगोंको मार डालेगा। तत्पश्चात् कलह हो जानेपर कोई दूसरा ही तुम्हारा पति होगा। अतः हे मृगलोचने! यदि तुम मेरा और अपना हित चाहती हो तो सुदर्शनको छोड़कर किसी अन्य श्रेष्ठ राजाका वरण कर लो ॥ ३४-३५½ ॥

सुखमिच्छसि चेन्मह्यं तुभ्यं वा मृगलोचने।
इति मात्रा बोधितां तां पश्चाद्राजाप्यबोधयत्॥ ३६

उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका।
कन्योवाच
सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ जानासि च व्रतं मम॥ ३७

नान्यं वृणोमि भूपाल सुदर्शनमृते क्वचित्।
विभेषि यदि राजेन्द्र नृपेभ्यः किल कातरः॥ ३८

सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः।
स मां रथे समारोप्य निर्गमिष्यति ते पुरात्॥ ३९

भवितव्यं तु पश्चाद्वै भविष्यति न चान्यथा।
नात्र चिन्ता त्वया कार्या भवितव्ये नृपोत्तम॥ ४०

यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथात्र न संशयः।
राजोवाच
न पुत्रि साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन॥ ४१

बहुभिर्न विरोधव्यमिति वेदविदो विदुः।
विस्रक्ष्यामि कथं कन्यां दत्त्वा राजसुताय च॥ ४२

राजानो वैरसंयुक्ताः किन्नु कुर्युरसाम्प्रतम्।
यदि ते रोचते वत्से पणं संविदधाम्यहम्॥ ४३

जनकेन यथा पूर्वं कृतः सीतास्वयंवरे।
शैवं धनुर्यथा तेन धृतं कृत्वा पणं तथा॥ ४४

तथाहमपि तन्वङ्गि करोम्यद्य दुरासदम्।
विवादो येन राज्ञां वै कृते सति शमं व्रजेत्॥ ४५

पालयिष्यति यः कामं स ते भर्ता भविष्यति।
सुदर्शनस्तथान्यो वा यः कश्चिद् बलवत्तरः॥ ४६

पालयित्वा पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा।
एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत्॥ ४७
सुखेनाहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम्।
कन्योवाच
सन्देहे नैव मज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः॥ ४८
मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नान्यथा।
कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते॥ ४९

इस प्रकार माताके समझानेके बाद पिताने भी उसे समझाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर कन्या शशिकला निर्भय होकर कहने लगी॥ ३६½॥

कन्या बोली—हे नृपश्रेष्ठ! आप ठीक कह रहे हैं किंतु आप मेरे प्रणको तो जानते ही हैं। हे राजन्! मैं सुदर्शनको छोड़कर और किसीका भी वरण नहीं कर सकती। हे राजेन्द्र! यदि आप राजाओंसे डरते हैं और बहुत घबड़ाये हुए हैं तो मुझे सुदर्शनको सौंपकर नगरसे बाहर कर दीजिये। वे मुझे रथपर बैठाकर आपके नगरसे बाहर निकल जायँगे। हे नृपश्रेष्ठ! जो होना है वह तो बादमें अवश्य होगा; इसके विपरीत नहीं होगा। अब आप होनीके विषयमें चिन्ता न करें; क्योंकि जो होना है वह तो निश्चितरूपसे होता ही है; इसमें संशय नहीं है॥ ३७—४०½॥

राजा बोले—हे पुत्रि! बुद्धिमानोंको कभी ऐसा साहस नहीं करना चाहिये। वेदज्ञोंने कहा है कि बहुतोंसे विरोध नहीं करना चाहिये। पुत्रीको उस राजकुमारको सौंपकर कैसे विदा कर दूँ? मुझसे वैर साधे हुए ये राजागण न जाने कौन-सा अनिष्ट कर डालेंगे। इसलिये हे पुत्रि! यदि तुम पसन्द करो तो मैं कोई शर्त रख दूँ, जैसा कि पूर्वकालमें राजा जनकने सीतास्वयंवरमें किया था। हे तन्वंगि! जैसे उन्होंने शिव-धनुष तोड़नेकी शर्त रख दी थी, वैसे ही मैं भी कोई ऐसी कठोर शर्त रख दूँ जिससे ऐसा कर देनेपर राजाओंका विवाद ही समाप्त हो जाय। जो उस प्रतिज्ञाको पूरा करेगा, वही तुम्हारा पति होगा। सुदर्शन हो अथवा कोई दूसरा—जो भी अधिक बलशाली होगा, वह मेरी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारा वरण कर लेगा। ऐसा करनेसे राजाओंमें उत्पन्न कलह निश्चितरूपसे शान्त हो जायगा और उसके बाद मैं आनन्दपूर्वक तुम्हारा विवाह कर दूँगा॥ ४१—४७½॥

कन्या बोली—मैं इस सन्दिग्ध कार्यमें नहीं पड़ूँगी; क्योंकि यह मूर्खोंका काम है। मैंने अपने मनमें सुदर्शनका पहलेसे ही वरण कर लिया है, अब दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकती। हे महाराज! पुण्य तथा पापका कारण तो मन ही है। इसलिये हे

मनसा विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यं वृणे पितः।
कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगा ह्यहम्॥ ५०

एकः पालयिता द्वौ वा बहवो वा भवन्ति चेत्।
किं कर्तव्यं तदा तात विवादे समुपस्थिते॥ ५१

संशयाधिष्ठिते कार्ये मतिं नाहं करोम्यतः।
मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र देहि सुदर्शनाय माम्॥ ५२

विवाहं विधिना कृत्वा शं विधास्यति चण्डिका।
यन्नामकीर्तनादेव दुःखौघो विलयं व्रजेत्॥ ५३

तां स्मृत्वा परमां शक्तिं कुरु कार्यमतन्द्रितः।
गत्वा वद नृपेभ्यस्त्वं कृताञ्जलिपुटोऽद्य वै॥ ५४

आगन्तव्यञ्च श्वः सर्वैरिह भूपैः स्वयंवरे।
इत्युक्त्वा त्वं विसृज्याशु सर्वं नृपतिमण्डलम्॥ ५५

विवाहं कुरु रात्रौ मे वेदोक्तविधिना नृप।
पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय॥ ५६

गमिष्यति गृहीत्वा मां ध्रुवसन्धिसुतः किल।
कदाचित्ते नृपाः क्रुद्धाः संग्रामं कर्तुमुद्यताः॥ ५७

भविष्यन्ति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति।
सोऽपि राजसुतस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति॥ ५८

दैवान्मृधे मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत।
स्वस्ति तेऽस्तु गृहे तिष्ठ दत्त्वा मां सहसैन्यकः॥ ५९

एकैवाहं गमिष्यामि तेन सार्धं रिरंसया।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा राजासौ कृतनिश्चयः।
मतिं चक्रे तथाकर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च॥ ६०

पिताजी! मनसे वरण किये गये सुदर्शनको छोड़कर मैं दूसरेका वरण कैसे करूँ? हे महाराज! दूसरी बात यह भी है कि पणस्वयंवर करनेमें मुझे सबके अधीन रहना पड़ेगा। हे तात! यदि इनमेंसे एक, दो या अनेकने आपका प्रण पूरा कर दिया तब उस समय विवादकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर आप क्या करेंगे? अतः मैं किसी संशयात्मक कार्यमें पड़ना नहीं चाहती। हे राजेन्द्र! आप चिन्ता न करें और विधिपूर्वक मेरा विवाह करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये। जिनके नामका संकीर्तन करनेसे समस्त दुःखराशि विलीन हो जाती है, वे भगवती चण्डिका अवश्य कल्याण करेंगी। अब आप उन्हीं महाशक्तिका स्मरण करके पूरी तत्परताके साथ यह कार्य कीजिये॥ ४८—५३½॥

अभी जा करके दोनों हाथ जोड़कर आप उन राजाओंसे कहिये कि आप सभी राजागण इस स्वयंवरमें कल पधारें। ऐसा कहकर सम्पूर्ण राजसमुदायको शीघ्र ही विसर्जित करके वैदिक रीतिसे सुदर्शनके साथ रातमें मेरा विवाह कर दीजिये। हे राजन्! तत्पश्चात् उन्हें यथोचित उपहार देकर विदा कर दीजिये॥ ५४—५६॥

तदनन्तर महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन मुझे साथ लेकर चले जायँगे। इससे कुपित हुए राजा यदि युद्ध करनेको उद्यत होंगे तो उस समय भगवती हमारी सहायता करेंगी, जिससे वे राजकुमार सुदर्शन भी उन लोगोंके साथ संग्राम करनेमें अवश्य समर्थ होंगे। दैवयोगसे यदि वे युद्धमें मारे गये तो मैं प्राण त्याग दूँगी। आपका कल्याण हो। आप मुझे सुदर्शनको सौंपकर अपनी सेनाके साथ महलमें सुखपूर्वक रहें। मैं भी विहार करनेकी कामनासे उनके साथ अकेली ही चली जाऊँगी॥ ५७—५९½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस शशिकलाका वचन सुनकर दृढ़प्रतिज्ञ राजा सुबाहुने उसे पूर्णरूपसे विश्वस्त करके ठीक वैसा ही करनेका निश्चय कर लिया॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे कन्यया स्वपितरं प्रति सुदर्शनेन सह विवाहार्थकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

~~~
~~~

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शशिकलाका गुप्त स्थानमें सुदर्शनके साथ विवाह, विवाहकी बात जानकर राजाओंका सुबाहुके प्रति क्रोध प्रकट करना तथा सुदर्शनका मार्ग रोकनेका निश्चय करना

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुतावाक्यमनिन्दितात्मा
नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद।
व्रजन्तु कामं शिविराणि भूपाः
श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये॥ १
भक्ष्याणि पेयानि मयार्पितानि
गृह्णन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः।
श्वो भावि कार्यं किल मण्डपेऽत्र
समेत्य सर्वैरिह संविधेयम्॥ २
नायाति पुत्री किल मण्डपेऽद्य
करोमि किं भूपतयोऽत्र कामम्।
प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये
गच्छन्तु तस्माच्छिविराणि भूपाः॥ ३
न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते
कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये।
विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये
सुतां तु गच्छन्तु नृपा यथेष्टम्॥ ४
इच्छापणं वा परिचिन्त्य चित्ते
प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम्।
सर्वैः समेत्यात्र नृपैः समेतैः
स्वयंवरः सर्वमतेन कार्यः॥ ५
श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वा
वचो ययुः स्वानि निकेतनानि।
विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां
चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च॥ ६
सुबाहुरप्यार्यजनैः समेत-
श्चकार कार्याणि विवाहकाले।
पुत्रीं समाहूय गृहे सुगुप्ते
पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः॥ ७
स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा
विवाहभूषाकरणं तथैव।
आनाय्य वेदीरचिते गृहे वै
तस्यार्हणां भूमिपतिश्चकार॥ ८

व्यासजी बोले—पवित्र अन्तःकरणवाले राजा सुबाहु कन्याकी बात सुनकर राजाओंके पास जाकर बोले—हे महाराजाओ! आपलोग इस समय अपने-अपने शिविरमें जायँ, मैं कन्याका विवाह कल करूँगा॥ १॥

आपलोग मुझपर कृपा करके मेरे द्वारा अर्पित की गयी भोज्य वस्तुएँ स्वीकार करें। अब यह विवाहकार्य कल पुनः इसी स्वयंवर-मण्डपमें होगा। हम सब मिलकर उसे सम्पन्न करेंगे॥ २॥

हे नृपतिगण! आज मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है। मैं क्या करूँ? कल प्रातः पुत्रीको समझा-बुझाकर अवश्य लाऊँगा। अब सभी राजागण अपने-अपने शिविरमें चलें। बुद्धिमानोंको अपने आश्रितजनोंके प्रति विरोधभाव नहीं रखना चाहिये और अपनी सन्तानपर तो निरन्तर विशेष कृपा करनी चाहिये। हे नृपगण! प्रातःकाल समझा-बुझाकर मैं अपनी पुत्रीको यहाँ ले आऊँगा; इस समय आपलोग जायँ॥ ३-४॥

मैं इच्छास्वयंवरकी बातको भलीभाँति सोचकर प्रातः कन्याका विवाह कर दूँगा। एक साथ सभी राजाओंके उपस्थित हो जानेपर सबकी सम्मतिसे स्वयंवरका कार्य सम्पन्न होगा॥ ५॥

सुबाहुकी वाणी सुनकर सभी राजागण उसे सच मानकर अपने-अपने शिविरमें चले गये और नगरके आस-पास रक्षाका सम्यक् प्रबन्ध करके वे मध्याह्नकालकी क्रियाओंमें संलग्न हो गये॥ ६॥

उधर राजा सुबाहु भी श्रेष्ठजनोंके साथ अपने अन्तःपुरके एक गुप्त स्थानमें अपनी पुत्रीको बुलाकर वरिष्ठ वैदिक पुरोहितोंद्वारा विवाह-कृत्य सम्पन्न करनेका प्रयत्न करने लगे॥ ७॥

वरको स्नानादि कर्म कराकर उसे विवाहके योग्य वस्त्राभूषण पहनाकर और उसे वेदीरचित गृहमें ले आकर राजा सुबाहुने उसका पूजन किया॥ ८॥

सविष्टरं चाचमनीयमर्घ्यं
वस्त्रद्वयं गामथ कुण्डले द्वे।
समर्प्य तस्मै विधिवन्नरेन्द्र
ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥ ९

सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीनचेताः
शशाम चिन्ताथ मनोरमायाः।
कन्यां सुकेशीं निधिकन्यकासमां
मेने तदात्मानमनुत्तमञ्च॥ १०

सुपूजितं भूषणवस्त्रदानै-
र्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम्।
निन्युश्च ते कौतुकमण्डपान्त-
र्मुदान्विता वीतभयाश्च सर्वे॥ ११

समाप्तभूषां विधिवद्विधिज्ञाः
स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने।
आरोप्य निन्युर्वरसन्निधानं
चतुष्कयुक्ते किल मण्डपे वै॥ १२

अग्निं समाधाय पुरोहितः स
हुत्वा यथावच्च तदन्तराले।
आह्वाययत्तौ कृतकौतुकौ तु
वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम्॥ १३

लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय
कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणाञ्च।
तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं तत्
सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम्॥ १४

शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां
सुभूषितं चापि शरौघसंयुतम्।
ददौ नृपेन्द्रस्तु सुदर्शनाय
सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे॥ १५

मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च
गजान्गिरेः शृङ्गसमानदेहान्।
शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ
ददावथ प्रेमयुतो नृपेन्द्रः॥ १६

वरको विष्टर, आचमन, अर्घ्य, दो वस्त्र, गौ और दो कुण्डल विधिवत् प्रदान करके महामनस्वी राजा सुबाहुने कन्यादान कर दिया॥ ९॥

उदार ह्रदयवाले सुदर्शनने भी सभी वस्तुएँ स्वीकार कर लीं। अब मनोरमाकी चिन्ता दूर हो गयी। उस समय कुबेरपुत्रीके समान उस सुन्दर केशोंवाली शशिकलाको पाकर सुदर्शनने अपने आपको परम धन्य समझा॥ १०॥

उस समय आनन्दित एवं निर्भीक सभी मन्त्री राजाद्वारा आभूषण तथा वस्त्र देकर सम्यक् रूपसे पूजित श्रेष्ठ वर सुदर्शनको कौतुकमण्डपमें ले गये॥ ११॥

तदनन्तर विधिकी जानकार स्त्रियाँ राजकुमारीको वस्त्राभूषणोंसे विधिवत् सुसज्जित करके उसे सुन्दर पालकीमें बिठाकर चौकोर वेदीसे युक्त मण्डपमें वरके पास ले गयीं॥ १२॥

उस वेदीपर पुरोहितने अग्नि-स्थापन करके और विधिवत् घृताहुति देकर कौतुकागारमें कौतुक किये हुए प्रेमरससे अत्यन्त सिक्त वर-वधूको बुलाया। उन दोनोंने विधिवत् लाजाहोम करनेके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करके अपने-अपने कुल तथा गोत्रकी समस्त रीतियाँ सम्पन्न कीं॥ १३-१४॥

महाराज सुबाहुने घोड़ोंसे जुते तथा अत्यधिक बाणोंसे लदे हुए दो सौ सुसज्जित रथ सुदर्शनको विवाहमें उपहारस्वरूप दिये। उन्होंने मदमत्त, सुवर्णके भूषणोंसे विभूषित तथा पर्वतके शिखरके समान शरीरवाले सवा सौ हाथी राजकुमार सुदर्शनको प्रेमपूर्वक प्रदान किये॥ १५-१६॥

दासीशतं काञ्चनभूषितं च
करेणुकानां च शतं सुचारु।
समर्पयामास वराय राजा
विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम्॥ १७
अदात्पुनर्दाससहस्रमेकं
सर्वायुधैः सम्भृतभूषितञ्च।
रत्नानि वासांसि यथोचितानि
दिव्यानि चित्राणि तथाविकानि॥ १८
ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै
रम्याणि दीर्घाणि विचित्रितानि।
सिन्धूद्भवानां तुरगोत्तमाना-
मदात्सहस्रद्वितयं सुरम्यम्॥ १९
क्रमेलकानां च शतत्रयं वै
प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु।
शतद्वयं वै शकटोत्तमानां
तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम्॥ २०
मनोरमां राजसुतां प्रणम्य
जगाद वाक्यं विहिताञ्जलिः पुरः।
दासोऽस्मि ते राजसुते वरिष्ठे
तद् ब्रूहि यत्स्यात्तु मनोगतं ते॥ २१
तं चारुवाक्यं निजगाद सापि
स्वस्त्यस्तु ते भूप कुलस्य वृद्धिः।
सम्मानिताहं मम सूनवे त्वया
दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या॥ २२
न बन्दिपुत्री नृप मागधी वा
स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्तरम्।
सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे
सम्बन्धिना भूपतिनोत्तमेन॥ २३
अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं
परं पवित्रं तव किं वदामि।
यद् भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य
दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा॥ २४
वनाधिवासाय किलाधनाय
पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय।
सर्वानिमान्भूमिपतीन्विहाय
फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥ २५

विवाहके समय राजाने स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत सौ दासियाँ और सुन्दर-सुन्दर सौ हथिनियाँ प्रसन्नतापूर्वक बार-बार वरको समर्पित कीं। उन्होंने सब प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे सुसज्जित एक हजार सेवक, बहुत-से रत्न, रंग-बिरंगे दिव्य सूती तथा ऊनी वस्त्र यथोचित रूपसे दिये॥ १७-१८॥

निवासके लिये रंग-बिरंगे, सुन्दर और विशाल भवन, सिन्धुदेशके उत्तम दो हजार घोड़े, भार ढोनेमें कुशल सुन्दर तीन सौ ऊँट, अन्न एवं रससे परिपूर्ण दो सौ उत्तम बैलगाड़ियाँ भी प्रदान कीं॥ १९-२०॥

तत्पश्चात् राजा सुबाहुने हाथ जोड़कर राजमाता मनोरमाको प्रणाम करके कहा—हे राजकुमारी! मैं आपका सेवक हूँ, अतः आपका जो मनोवांछित हो उसे कहिये॥ २१॥

तब उस मनोरमाने भी सुबाहुसे मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! आपका कल्याण हो, आपके वंशकी वृद्धि हो। आपने मेरा बहुत सम्मान किया; क्योंकि आपने अपनी रत्नमयी कन्या मेरे पुत्रको प्रदान की है॥ २२॥

हे राजन्! मैं [यश गानेमें कुशल] बन्दीजन और मागधोंकी पुत्री नहीं हूँ, [जो भलीभाँति आपकी प्रशंसा कर सकूँ।] आप तो अपने ही हैं, अतः आप श्रेष्ठ स्वजनकी मैं क्या स्तुति करूँ? आप एक उत्तम नरेश हैं और मेरे सम्बन्धी हो गये हैं; आपने मेरे पुत्रको सुमेरुके समान बना दिया है। अहो! महान् आश्चर्य है! आप-जैसे राजाके पवित्र चरित्रका वर्णन कहाँतक करूँ, जो कि आपने इन सभी राजाओंको छोड़कर राज्यसे च्युत, वनमें निवास करनेवाले, धनहीन, पिताविहीन, सेनारहित, फलके आहारपर ही रहनेवाले तथा सम्पत्तिहीन मेरे पुत्रको अपनी प्रिय तथा कुलीन कन्या प्रदान कर दी॥ २३—२५॥

समानवित्तेऽथ कुले बले च
दादाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः।
न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने
गुणान्वितां रूपवतीञ्च दद्यात्॥ २६

वैरं तु सर्वैः सह संविधाय
नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च ।
सुदर्शनायाथ सुतार्पिता मे
किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम्॥ २७

निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः
कृताञ्जलिर्वाक्यमुवाच भूयः।
गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं
भवामि सेनापतिरद्य चाहम्॥ २८

नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चात्र
सुतान्वितो राज्यफलानि भुङ्क्ष्व।
विहाय वाराणसिकानिवासं
वने पुरे वा स मतो न मेऽस्ति॥ २९

नृपास्तु सन्त्येव रुषान्विता वै
गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सान्त्वनम्।
ततः परं द्वावपरावुपायौ
नोचेत्ततो युद्धमहं करिष्ये॥ ३०

जयाजयौ दैववशौ तथापि
धर्मे जयो नैव कृतेऽप्यधर्मे।
तेषां किलाधर्मवतां नृपाणां
कथं भविष्यत्यनुचिन्तितं वै॥ ३१

आकर्ण्य तद्भाषितमर्थवच्च
जगाद वाक्यं हितकारकं तम्।
मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्
सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना॥ ३२

राजञ्छिवं तेऽस्तु कुरुष्व राज्यं
त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः।
सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं
साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह॥ ३३

अपने समान धन, कुल और बलवालेको ही कोई अपनी पुत्री प्रदान करता है। हे राजन्! आपको छोड़कर कोई भी राजा मेरे धनहीन पुत्रको अपनी रूपगुणसम्पन्ना पुत्री नहीं दे सकता॥ २६॥

सभी महान् तथा बलशाली राजाओंसे शत्रुता लेकर आपने मेरे सुदर्शनको अपनी कन्या अर्पित की है—हे राजन्! मैं आपके इस धैर्यका वर्णन क्या करूँ?॥ २७॥

इस प्रकार मनोरमाके [कृतज्ञतापूर्ण] वचन सुनकर महाराज सुबाहुने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर पुनः यह वचन कहा—मेरा यह अति प्रसिद्ध राज्य आप ले लीजिये और आजसे मैं आपका सेनापति हो जा रहा हूँ; नहीं तो आप आधा राज्य ही ले लें और अपने पुत्रके साथ यहीं रहकर राजसी भोग भोगें; क्योंकि अब काशीमें निवास छोड़कर किसी वन या ग्राममें आपलोग रहें—ऐसा मेरा विचार नहीं है॥ २८-२९॥

सभी उपस्थित भूपगण मुझपर अत्यन्त रुष्ट हैं। मैं जाकर पहले उन्हें शान्त करूँगा। इसके बाद दान एवं भेदनीतिका विधान करूँगा। यदि इसपर भी वे अनुकूल न होंगे तो उनसे युद्ध करूँगा॥ ३०॥

यद्यपि हार और जीत तो दैवाधीन हैं तथापि जिस पक्षमें धर्म रहता है, उसकी विजय होती है; अधर्मके पक्षवालेकी कभी नहीं। अतः अधर्मसे युक्त उन राजाओंका अपना सोचा हुआ कैसे हो सकता है?॥ ३१॥

उन सुबाहुसे सम्मान पाकर पूर्णरूपसे आनन्दमग्न मनोरमा उनकी सारगर्भित वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे हितकर वचन कहने लगी—हे राजन्! आपका कल्याण हो। आप निर्भय होकर अपने पुत्रोंके साथ राज्य कीजिये। मेरा पुत्र भी निश्चय ही अपना राज्य पाकर साकेतपुरी अयोध्यामें शासन करेगा॥ ३२-३३॥

विसर्जयास्मान्निजसद्म गन्तुं
शिवं भवानी तव संविधास्यति।
न कापि चिन्ता मम भूप वर्तते
सञ्चिन्तयन्त्याः परमाम्बिकां वै॥ ३४

दोषा गता विविधवाक्यपदै रसालै-
रन्योन्यभाषणपदैरमृतोपमैश्च ।
प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं
रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः॥ ३५

अद्यैव तं नृपकलङ्कधरञ्च हत्वा
बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम्।
गृह्णीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं
लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम॥ ३६

शृण्वन्तु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमाना-
ञ्छङ्खस्वनानभिभवन्ति मृदङ्गशब्दाः।
गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनञ्च
मन्यामहे नृपतिनात्र कृतो विवाहः॥ ३७

अस्मान्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार
वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै।
कर्तव्यमद्य किमहो प्रविचिन्तयन्तु
भूपाः परस्परमतिं च समर्थयन्तु॥ ३८

एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः
कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः।
भूपान्निमन्त्रयितुमाशु जगाम राजा
काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः॥ ३९

आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा।
नोचुः किञ्चिदपि क्रोधान्मौनमाधाय संस्थिताः॥ ४०

स गत्वा प्रणिपत्याह कृताञ्जलिरभाषत।
आगन्तव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम॥ ४१

हे राजन्! अब आप हमलोगोंको अपने घर जानेके लिये आज्ञा दीजिये। भगवती दुर्गा आपका कल्याण करेंगी। हे राजन्! मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि मैं पराम्बा भगवतीका भलीभाँति चिन्तन करती रहती हूँ॥ ३४॥

इस प्रकार उन दोनोंमें विविध वाक्योंद्वारा अमृतके समान मधुर वार्तालापमें रात बीत गयी। प्रातःकाल होनेपर सभी राजा विवाह हो जानेकी बात जानकर कुपित हो उठे और नगरके बाहर निकलकर आपसमें कहने लगे—॥ ३५॥

हम आज ही उस कलंकी राजा सुबाहु तथा विवाहकी योग्यता न रखनेवाले उस कुमार सुदर्शनको मारकर राज्यलक्ष्मीसहित उस शशिकलाको छीन लेंगे, अन्यथा लज्जित होकर हमलोग कैसे अपने घर जायँगे?॥ ३६॥

आप सब लोग बजायी जा रही तुरहियों तथा शंखोंके निनाद, गीतध्वनि तथा अनेक प्रकारकी वेद-ध्वनि सुन लें। मृदंगोंके भी शब्द हो रहे हैं। हमलोग तो ऐसा मानते हैं कि राजा सुबाहुने विवाह सम्पन्न कर दिया॥ ३७॥

राजाने हमें बातोंसे ठगकर वैवाहिक विधिसे पाणिग्रहण-संस्कार अवश्य कर दिया। हे राजाओ! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये, इस विषयमें आपलोग सोचें और आपसमें विचार करके एक निर्णय लें॥ ३८॥

इस प्रकार राजाओंमें परस्पर बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अप्रतिम प्रभाववाले काशीपति महाराज सुबाहु कन्याका पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करके प्रसिद्ध तेजवाले अपने मित्रोंको साथ लेकर उन राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिये शीघ्र उनके पास गये॥ ३९॥

काशीराज सुबाहुको आते देखकर उपस्थित नरेशोंने क्रोधके कारण कुछ नहीं कहा। वे मौन साधकर बैठे रहे॥ ४०॥

राजा सुबाहु उनके पास जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे कि सभी राजागण भोजन करनेके

कन्ययासौ वृतो भूपः किं करोमि हिताहितम्।
भवद्भिस्तु शमः कार्यो महान्तो हि दयालवः॥ ४२

तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः क्रोधपरिप्लुताः।
प्रत्यूचुर्भुक्तमस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज॥ ४३

कुरु कार्याण्यशेषाणि यथेष्टं सुकृतं कृतम्।
नृपाः सर्वे प्रयान्त्वद्य स्वानि स्वानि गृहाणि वै॥ ४४

सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा जगाम शङ्कितो गृहम्।
किं करिष्यन्ति संविग्नाः क्रोधयुक्ता नृपोत्तमाः॥ ४५

गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्च समयं पुनः।
रुद्ध्वा मार्गं ग्रहीष्यामः कन्यां हत्वा सुदर्शनम्॥ ४६

केचनोचुः किमस्माकं हन्त तेन नृपेण वै।
दृष्ट्वा तु कौतुकं सर्वं गमिष्यामो यथागतम्॥ ४७

इत्युक्त्वा ते नृपाः सर्वे मार्गमाक्रम्य संस्थिताः।
चकारोत्तरकार्याणि सुबाहुः स्वगृहं गतः॥ ४८

लिये मेरे घर आयें। कन्याने तो उस राजकुमार सुदर्शनका पतिरूपमें वरण कर लिया है। मैं इस विषयमें अच्छा-बुरा क्या कर सकता हूँ? अब आपलोग शान्त हो जायँ; क्योंकि महान् लोग दयालु होते हैं॥ ४१-४२॥

राजा सुबाहुकी बात सुनकर सभी राजा क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होंने कहा—राजन्! हमलोग भोजन कर चुके, अब आप अपने घर जाइये। आपको जो अच्छा लगा, उसे आपने कर लिया। जो कार्य शेष हों उन सबको भी जाकर कर लीजिये। अब सभी राजागण अपने-अपने घर चले जायँगे॥ ४३-४४॥

सुबाहु भी यह सुनकर घर चले गये और शंका करने लगे कि ये क्षुब्ध तथा कुपित राजागण अब न जाने क्या कर डालेंगे॥ ४५॥

राजा सुबाहुके चले जानेपर उन नरेशोंने यह निश्चय किया कि अब हमलोग मार्ग रोककर सुदर्शनको मारकर कन्याको छीन लेंगे॥ ४६॥

उनमेंसे कुछ राजाओंने कहा—अरे! उस राजकुमार सुदर्शनसे हमारा क्या वैर? हमने यहाँका सब कौतुक देख लिया। अब हम जैसे आये थे, वैसे ही घर लौट चलें॥ ४७॥

ऐसा कहकर वे सब [विरोधी] राजागण मार्ग रोककर खड़े हो गये और राजा सुबाहु अपने भवन पहुँचकर आगेके कृत्य सम्पादित करने लगे॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुदर्शनशशिकलयोर्विवाहवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

सुदर्शनका शशिकलाके साथ भारद्वाज-आश्रमके लिये प्रस्थान, युधाजित् तथा अन्य राजाओंसे सुदर्शनका घोर संग्राम, भगवती सिंहवाहिनी दुर्गाका प्राकट्य, भगवतीद्वारा युधाजित् और शत्रुजित्का वध, सुबाहुद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यास उवाच

तस्मै गौरवभोज्यानि विधाय विधिवत्तदा।
वासराणि च षड्राजा भोजयामास भक्तितः॥ १
एवं विवाहकार्याणि कृत्वा सर्वाणि पार्थिवः।
पारिबर्हं प्रदत्त्वाथ मन्त्रयन्सचिवैः सह॥ २
दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम्।
बभूव विमना राजा सुबाहुरमितद्युतिः॥ ३

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय राजा सुबाहुने छः दिनोंतक विविध प्रकारके भोजन बनवाकर सुदर्शनको प्रेमपूर्वक खिलाया॥ १॥

इस प्रकार विवाहके सभी कृत्य करके राजा सुबाहु सुदर्शनको उपहार प्रदान करके सचिवोंके साथ मन्त्रणा कर रहे थे, उसी समय अपने दूतोंका यह कथन सुनकर कि विरोधी राजाओंने मार्ग रोक रखा है, वे अमित तेजवाले राजा सुबाहु खिन्नमनस्क हो गये॥ २-३॥

सुदर्शनस्तदोवाच श्वशुरं संशितव्रतः।
अस्मान्विसर्जयाशु त्वं गमिष्यामो ह्यशङ्किताः॥ ४

भारद्वाजाश्रमं पुण्यं गत्वा तत्र समाहिताः।
निवासाय विचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप॥ ५

नृपेभ्यश्च न कर्तव्यं भयं किञ्चित्त्वयानघ।
जगन्माता भवानी मे साहाय्यं वै करिष्यति॥ ६

व्यास उवाच

तस्येति मतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः।
विससर्ज धनं दत्त्वा प्रतस्थे सोऽपि सत्वरः॥ ७

बलेन महताविष्टो ययावनु नृपोत्तमः।
सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः॥ ८

रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः।
गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनन्दनः॥ ९

सुबाहुरपि तान्वीक्ष्य चिन्ताविष्टो बभूव ह।
विधिवत्स शिवां चित्ते जगाम शरणं मुदा॥ १०

जजापैकाक्षरं मन्त्रं कामराजमनुत्तमम्।
निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्या सह नवोढया॥ ११

ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा।
उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हन्तुकामास्तु कन्यकाम्॥ १२

काशिराजस्तु तान्दृष्ट्वा हन्तुकामो बभूव ह।
निवारितस्तदात्यर्थं राघवेण जिगीषता॥ १३

तत्रापि नेदुः शङ्खाश्च भेर्यश्चानकदुन्दुभिः।
सुबाहोश्च नृपाणाञ्च परस्परजिघांसताम्॥ १४

शत्रुजित्तु सुसंवृत्तः स्थितस्तत्र जिघांसया।
युधाजित्तत्सहायार्थं सन्नद्धः प्रबभूव ह॥ १५

तब व्रतपरायण सुदर्शनने अपने श्वसुरसे कहा—आप हमें शीघ्र विदा कर दीजिये, हम निःशंक होकर चले जायँगे॥ ४॥

हे राजन्! भारद्वाजमुनिके पवित्र आश्रममें पहुँचनेपर वहीं सावधानीके साथ आगे रहनेके लिये विचार कर लिया जायगा॥ ५॥

अतः हे पुण्यात्मन्! उन राजाओंसे आप कुछ भी भय न करें; क्योंकि जगज्जननी भगवती मेरी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६॥

व्यासजी बोले—अपने जामाता सुदर्शनका ऐसा विचार जानकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उन्हें धन देकर विदा कर दिया और वे सुदर्शन भी तत्काल चल पड़े। नृपश्रेष्ठ सुबाहु भी एक विशाल सेना लेकर उनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार उन सैनिकोंसे आवृत सुदर्शन निर्भय होकर मार्गमें चले जा रहे थे॥ ७-८॥

रथोंसे घिरे हुए एक रथपर अपनी पत्नीके साथ बैठकर जाते हुए रघुनन्दन सुदर्शनने मार्गमें उन राजाओंके सैनिकोंको देखा॥ ९॥

राजा सुबाहु भी उन सैनिकोंको देखकर चिन्तित हुए। तब सुदर्शनने विधिपूर्वक अपने मनमें भगवती जगदम्बाका ध्यान किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी शरण ली। उस समय सुदर्शन एकाक्षर कामराज नामक सर्वोत्तम मन्त्रका जप कर रहे थे, उसके प्रभावसे वे अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ निर्भय तथा चिन्तामुक्त थे॥ १०-११॥

इसी बीच सभी राजा एक साथ कोलाहल करके कन्याका हरण करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनाके साथ उनकी ओर बढ़े॥ १२॥

उन्हें ऐसा करते देखकर काशीनरेश सुबाहुने उनको मारनेका विचार किया, किंतु विजयकी इच्छावाले रघुवंशी सुदर्शनने उन्हें मना कर दिया॥ १३॥

उस समय एक दूसरेको मार डालनेकी अभिलाषावाले महाराज सुबाहु तथा अन्य राजाओंकी सेनाओंमें शंख भेरी, नगाड़े और दुन्दुभि बजने लगे॥ १४॥

सुदर्शनको मार डालनेकी इच्छासे शत्रुजित् सैन्य-बलसे युक्त होकर बड़ी तत्परतासे तैयार खड़ा था और राजा युधाजित् भी उसकी सहायताके लिये

केचिच्च प्रेक्षकास्तस्य सहानीकैः स्थितास्तदा।
युधाजिदग्रतो गत्वा सुदर्शनमुपस्थितः॥ १६

शत्रुजित्तेन सहितो हन्तुं भ्रातरमानुजः।
परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुः क्रोधमूर्च्छिताः॥ १७

सम्मर्दः सुमहांस्तत्र सम्प्रवृत्तः सुमार्गणैः।
काशीपतिस्तदा तूर्णं सैन्येन बहुना वृतः॥ १८

साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरमनिन्दितम्।
एवं प्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे॥ १९

प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता।
नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता॥ २०

दिव्याम्बरपरीधाना मन्दारस्त्रक्सुसंयुता।
तां दृष्ट्वा तेऽथ भूपाला विस्मयं परमं गताः॥ २१

केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता।
सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत्॥ २२

पश्य राजन् महादेवीमागतां दिव्यदर्शनाम्।
अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता॥ २३

निर्भयोऽहं महाराज जातोऽस्मि निर्भयादपि।
सुदर्शनः सुबाहुश्च तामालोक्य वराननाम्॥ २४

प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेन च।
ननाद च तदा सिंहो गजास्त्रस्ताश्चकम्पिरे॥ २५

ववुर्वाता महाघोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः।
सुदर्शनस्तदा प्राह निजं सेनापतिं प्रति॥ २६

मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः।
किं करिष्यन्ति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः॥ २७

शरणार्थञ्च सम्प्राप्ता देवी भगवती हि नः।
निरातङ्कैश्च गन्तव्यं मार्गेऽस्मिन्भूपसङ्कुले॥ २८

सन्नद्ध थे। उनमें कुछ राजागण अपनी सेनाके साथ दर्शकके रूपमें खड़े थे। तभी युधाजित् आगे बढ़कर सुदर्शनके समक्ष जा डटा। उसके साथ शत्रुजित् भी अपने भाईका वध करनेके लिये आ गया। तब क्रोधके वशीभूत होकर वे सब परस्पर एक-दूसरेपर बाणोंसे प्रहार करने लगे। इस प्रकार वहाँ बाणोंद्वारा बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया। तब काशीनरेश सुबाहु एक विशाल सेना लेकर अपने सुप्रशंसित जामाताकी सहायताके लिये जा पहुँचे॥ १५—१८$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार भयानक लोमहर्षक संग्राम छिड़ जानेपर सहसा भगवती प्रकट हो गयीं। वे सिंहपर सवार थीं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण किये थीं, अत्यन्त मनोहर थीं तथा उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य वस्त्र पहने थीं और मन्दारकी मालासे सुशोभित थीं॥ १९-२०$\frac{१}{२}$ ॥

उन्हें देखकर वे राजागण अत्यन्त चकित हो गये। वे कहने लगे कि सिंहपर सवार यह स्त्री कौन है और कहाँसे प्रकट हो गयी है? उन्हें देखकर सुदर्शनने सुबाहुसे कहा—हे राजन्! यहाँ प्रादुर्भूत हुई इन दिव्य दर्शनवाली महादेवीको आप देखें। ये दयामयी भगवती निश्चय ही मुझपर अनुग्रह करनेके लिये प्रकट हुई हैं। हे महाराज! मैं निर्भय तो पहले ही था, किंतु अब और भी अधिक निर्भय हो गया॥ २१—२३$\frac{१}{२}$ ॥

सुदर्शन और सुबाहुने उन सुमुखी भगवतीको देखकर उन्हें प्रणाम किया। उनके दर्शनसे वे दोनों प्रसन्न हो गये। उसी समय भगवतीके सिंहने भीषण गर्जन किया, जिससे उस रणभूमिमें विद्यमान सभी हाथी भयसे काँपने लगे। उस समय महाभीषण आँधी चलने लगी और सभी दिशाएँ अत्यन्त भयानक हो गयीं॥ २४-२५$\frac{१}{२}$ ॥

तब सुदर्शनने अपने सेनापतिसे कहा कि जहाँ ये राजागण [मार्ग रोककर] खड़े हैं, उधर ही तुम वेगसे आगे बढ़ो। ये दुष्ट तथा कुपित राजालोग हमारा क्या कर लेंगे? अब हमें शरण देनेके लिये स्वयं भगवती जगदम्बा आ गयी हैं। अतएव हमें निर्भय होकर राजाओंसे भरे इस मार्गपर आगे बढ़ना

स्मृता मया महादेवी रक्षणार्थमुपागता।
तच्छ्रुत्वा वचनं सेनापतिस्तेन पथाव्रजत्॥ २९

युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन्।
किं स्थिता भयसन्त्रस्ता निघ्नन्तु कन्यकान्वितम्॥ ३०

अवमन्य च नः सर्वान्बलहीनो बलाधिकान्।
कन्यां गृहीत्वा संयाति निर्भयस्तरसा शिशुः॥ ३१

किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम्।
नोपेक्ष्यो हि महाभागा हन्तव्योऽत्र समाहितैः॥ ३२

हत्वैनं संग्रहीष्यामः कन्यां चारुविभूषणाम्।
नायं केसरिणादत्तां छेत्तुमर्हति जम्बुकः॥ ३३

इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रुजित्सहितस्तदा।
योद्धुकामः सुसम्प्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः॥ ३४

मुमोच विशिखांस्तूर्णं समपुंखाञ्छिलाशितान्।
धनुराकृष्य कर्णान्तं कर्मारपरिमार्जितान्॥ ३५

हन्तुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि।
सुदर्शनस्तु तान्बाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात्॥ ३६

एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ चुकोप चण्डिका भृशम्।
दुर्गादेवी मुमोचाथ बाणान्युधाजितं प्रति॥ ३७

नानारूपा तदा जाता नानाशस्त्रधरा शिवा।
सम्प्राप्ता तुमुलं तत्र चकार जगदम्बिका॥ ३८

शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः।
पतितौ तौ रथाभ्यां तु जयशब्दस्तदाभवत्॥ ३९

विस्मयं परमं प्राप्ता भूपाः सर्वे विलोक्य ताम्।
निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे॥ ४०

चाहिये। मेरे स्मरण करते ही मेरी रक्षाके लिये ये भगवती आ गयी हैं। सुदर्शनका वचन सुनकर सेनापति उसी मार्गसे आगे बढ़ा॥ २६—२९॥

अतिशय कुपित होकर युधाजित्‌ने उन राजाओंसे कहा—तुमलोग भयभीत होकर खड़े क्यों हो; कन्यासहित इस सुदर्शनको मार डालो॥ ३०॥

हम सभी बलवानोंका तिरस्कार करके यह बलहीन बालक कन्याको लेकर निर्भीकतापूर्वक बड़े वेगसे चला जा रहा है॥ ३१॥

सिंहपर विराजमान उस स्त्रीको देखकर तुमलोग क्यों डरते हो? हे महाभाग राजाओ! इस समय सुदर्शनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और अत्यन्त सावधान होकर इसका वध कर देना चाहिये॥ ३२॥

इसे मारकर हम सुन्दर आभूषण धारण करनेवाली कन्याको छीन लेंगे। हम सिंहसदृश वीरोंके भागको यह सियार नहीं ले जा सकता॥ ३३॥

ऐसा कहकर वह युधाजित् अत्यन्त कुपित हो [अपने दौहित्र] शत्रुजित् तथा विशाल सेनाको साथ लिये हुए युद्धकी इच्छासे आ डटा॥॥ ३४॥

अब वह कानतक धनुष खींचकर लोहकारके द्वारा सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए, शिलापर घिसकर तेज किये गये तथा समान पुच्छयुक्त बाणोंको शीघ्रतापूर्वक छोड़ने लगा॥ ३५॥

इस प्रकार उसके ऊपर प्रहार करके वह दुर्बुद्धि युधाजित् सुदर्शनको मार डालना चाहता था, किंतु सुदर्शनने उसके बाणोंको छूटते ही अपने बाणोंसे क्षणभरमें काट डाला॥ ३६॥

वह भीषण युद्ध छिड़ जानेपर भगवती चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं और युधाजित्‌पर बाण बरसाने लगीं॥ ३७॥

उस समय कल्याणमयी जगदम्बिका विविध रूप धारण कर लेती थीं। वे नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर घमासान युद्ध कर रही थीं॥ ३८॥

कुछ ही क्षणोंमें शत्रुजित् और राजा युधाजित्—दोनों मार डाले गये और अपने-अपने रथोंसे गिर पड़े। उस समय जयजयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ३९॥

उस युद्धमें भगवतीको तथा मामा और भांजेकी (नाना-नातीकी) मृत्यु देखकर सभी राजा बहुत विस्मयमें पड़ गये॥ ४०॥

सुबाहुरपि तद् दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः।
तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ ४१

सुबाहुरुवाच

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः।
दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥ ४२

नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः।
विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥ ४३

नाहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन्वै
जानामि देवि सगुणः किल निर्गुणायाः।
किं स्तौमि विश्वजननीं प्रकटप्रभावां
भक्तार्तिनाशनपरां परमां च शक्तिम्॥ ४४

वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धि-
र्विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजन्तोः।
त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियन्त्री
किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम्॥ ४५

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो
नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम्।
क्वाहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै
वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहोऽप्रसिद्धः॥ ४६

सत्सङ्गतिः कथमहो न करोति कामं
प्रासङ्गिकापि विहिता खलु चित्तशुद्धिः।
जामातुरस्य विहितेन समागमेन
प्राप्तं मयाद्भुतमिदं तव दर्शनं वै॥ ४७

ब्रह्मापि वाञ्छति सदैव हरो हरिश्च
सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः।
यद्दर्शनं जननि तेऽद्य मया दुरापं
प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च॥ ४८

महाराज सुबाहु भी रणभूमिमें उन दोनोंका मरण देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे॥ ४१॥

सुबाहु बोले—जगत्‌को धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। भगवती शिवाको निरन्तर नमस्कार है। मनोरथ पूर्ण करनेवाली आप भगवती दुर्गाको बार-बार नमस्कार है॥ ४२॥

आप शिवा और शान्तिदेवीको नमस्कार है। हे मोक्षदायिनि! आप विद्यास्वरूपिणीको नमस्कार है। हे जगन्माता! हे शिवे! आप विश्वव्यापिनी तथा जगज्जननीको नमस्कार है॥ ४३॥

हे देवि! मैं सगुण प्राणी अपनी बुद्धिसे बहुत प्रकारसे चिन्तन करके भी आप निर्गुणा भगवतीकी गतिको नहीं जान पाता। हे विश्वजननि! प्रत्यक्ष प्रभाववाली, भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें तत्पर तथा परम शक्तिस्वरूपा आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ?॥ ४४॥

आप ही देवी सरस्वती हैं, आप ही बुद्धिरूपसे सबके भीतर विराजमान हैं, आप ही सब प्राणियोंकी विद्या, मति और गति हैं और आप ही सबके मनका नियन्त्रण करती हैं, तब मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ? सर्वव्यापी आत्माके रूपकी भी स्तुति भला कभी की जा सकती है?॥ ४५॥

देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और शिव निरन्तर आपकी स्तुति करते हुए भी आपके गुणोंके पार नहीं जा सके। तब हे अम्ब! भेदबुद्धिवाला, सत्त्व आदि गुणोंसे आबद्ध तथा अप्रसिद्ध एक तुच्छ जीव मैं आपके चरित्रका वर्णन करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ?॥ ४६॥

अहो! सत्संग कौन-सा मनोरथ पूर्ण नहीं कर देता? आपके इस प्रासंगिक संगसे ही मेरा चित्त शुद्ध हो गया। [आपके भक्त] अपने इस जामाता सुदर्शनके संगके प्रभावसे मैंने अनायास आपका यह अद्भुत दर्शन पा लिया॥ ४७॥

हे जननि! ब्रह्मा, शिव, भगवान् विष्णु, इन्द्र-सहित सभी देवता तथा तत्त्वज्ञानी मुनिलोग भी आपके जिस दर्शनको चाहते हैं, वह आपका दुर्लभ दर्शन मुझे बिना शम, दम तथा समाधि आदिके ही प्राप्त हो गया॥ ४८॥

क्वाहं सुमन्दमतिराशु तवावलोकं
क्वेदं भवानि भवभेषजमद्वितीयम्।
ज्ञातासि देवि सततं किल भावयुक्ता
भक्तानुकम्पनपरामरवर्गपूज्या ॥ ४९

किं वर्णयामि तव देवि चरित्रमेतद्
यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम्।
शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसा त्वयाद्य
भक्तानुकम्पि चरितं परमं पवित्रम् ॥ ५०

नाश्चर्यमेतदिति देवि विचारितेऽर्थे
त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै।
त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः
संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसन्धिसूनुः ॥ ५१

भक्तस्य सेवनपरस्य स्वयशोऽतिदीप्तं
कर्तुं भवानि रचितं चरितं त्वयैतत्।
नोचेत्कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां
युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः ॥ ५२

शक्तासि जन्ममरणादिभयान्विहन्तुं
किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम्।
त्वं गीयसे जननि भक्तजनैरपारा
त्वं पापपुण्यरहिता सगुणागुणा च ॥ ५३

त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो
जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्यजन्मा।
बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मात-
र्ज्ञातस्तवाद्य महिमा प्रकटप्रभावः ॥ ५४

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा।
उवाच तं नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ॥ ५५

हे भवानि! कहाँ अतिशय मन्दमति मैं और कहाँ भवरूपी रोगके लिये औषधिस्वरूप आपका यह शीघ्र अद्वितीय दर्शन! हे देवि! मुझे ज्ञात हो गया कि आप सदा भावनायुक्त रहती हैं। देवसमूहद्वारा पूजी जानेवाली आप अपने भक्तोंपर अनुकम्पा करती हैं ॥ ४९ ॥

हे देवि! आपने इस भीषण संकटके समय जिस प्रकार इस सुदर्शनकी रक्षा की है, आपके इस चरित्रका मैं किस तरह वर्णन करूँ? आपने आज इसके दो बलवान् शत्रुओंको तत्काल मार डाला। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाला आपका यह चरित्र परम पवित्र है ॥ ५० ॥

हे देवि! विशेष विचार करनेपर ज्ञात होता है कि आपका ऐसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आप अखिल स्थावर-जंगम जगत्की रक्षा करती हैं। आपने शत्रुको मारकर दयालुतावश ध्रुवसन्धिके पुत्र इस सुदर्शनकी इस समय रक्षा की ॥ ५१ ॥

हे भवानि! अपने सेवापरायण भक्तके यशको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये ही आपने इस चरित्रकी रचना की है, नहीं तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके यह असमर्थ सुदर्शन युद्धमें सकुशल जीवित कैसे बच सकता था? ॥ ५२ ॥

जब आप अपने भक्तोंके जन्म-मरण आदि भयोंको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब उसकी लौकिक अभिलाषा पूर्ण कर देना कौन बड़ी बात है? हे जननि! आप पाप-पुण्यसे रहित, सगुणा तथा निर्गुणा हैं; इसी कारण भक्तजन सदा आपके गुण गाते रहते हैं ॥ ५३ ॥

हे देवि! हे भुवनेश्वरि! आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र, कृतार्थ और धन्य जन्मवाला हो गया। हे माता! मैं न आपका भजन जानता हूँ और न तो बीजमन्त्र जानता हूँ। मैं आपकी प्रत्यक्ष प्रभाववाली महिमाको आज जान गया ॥ ५४ ॥

व्यासजी बोले—महाराज सुबाहुके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती शिवाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे भर गया। तब भगवतीने उन राजासे कहा—हे सुव्रत! तुम वर माँगो ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुबाहुकृतदेवीस्तुतिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

सुबाहुद्वारा भगवती दुर्गासे सदा काशीमें रहनेका वरदान माँगना तथा देवीका वरदान देना, सुदर्शनद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीका उसे अयोध्या जाकर राज्य करनेका आदेश देना, राजाओंका सुदर्शनसे अनुमति लेकर अपने-अपने राज्योंको प्रस्थान

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः।
प्रोवाच वचनं तत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः॥ १

सुबाहुरुवाच

एकतो देवलोकस्य राज्यं भूमण्डलस्य च।
एकतो दर्शनं ते वै न च तुल्यं कदाचन॥ २

दर्शनात्सदृशं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु नास्ति मे।
कं वरं देवि याचेऽहं कृतार्थोऽस्मि धरातले॥ ३

एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुं वाञ्छितं वरम्।
तव भक्तिः सदा मेऽस्तु निश्चला ह्यनपायिनी॥ ४

नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं मम सर्वदा।
दुर्गादेवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता॥ ५

रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह।
यथा सुदर्शनस्त्रातो रिपुसंघादनामयः॥ ६

तथात्र रक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयाम्बिके।
यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिताः॥ ७

तावत्त्वयात्र स्थातव्यं दुर्गे देवि कृपानिधे।
वरोऽयं मम ते देयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम्॥ ८

विविधान्सकलान्कामान्देहि मे विद्विषो जहि।
अभद्राणां विनाशञ्च कुरु लोकस्य सर्वदा॥ ९

व्यास उवाच

इति सम्प्रार्थिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
तमुवाच नृपं तत्र स्तुत्वा वै संस्थितं पुरः॥ १०

दुर्गोवाच

राजन् सदा निवासो मे मुक्तिपुर्यां भविष्यति।
रक्षार्थं सर्वलोकानां यावत्तिष्ठति मेदिनी॥ ११

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन भवानीका वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने भक्तिसे युक्त होकर यह बात कही—॥ १॥

सुबाहु बोले—हे माता! एक ओर देवलोक तथा समस्त भूमण्डलका राज्य और दूसरी ओर आपका दर्शन; वे दोनों तुल्य कभी नहीं हो सकते॥ २॥

आपके दर्शनसे बढ़कर समस्त त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं है। हे देवि! मैं आपसे क्या वर माँगूँ? मैं तो इस जगतीतलमें आपके दर्शनसे ही कृतकृत्य हो गया॥ ३॥

हे माता! मैं तो यही अभीष्ट वर माँगना चाहता हूँ कि आपकी स्थिर तथा अखण्ड भक्ति मेरे हृदयमें बनी रहे॥ ४॥

हे माता! आप मेरी नगरी काशीमें सदा निवास करें। आप शक्तिस्वरूपा होकर दुर्गादेवीके नामसे यहाँ विराजमान रहें और सर्वदा नगरकी रक्षा करती रहें। हे अम्बिके! इस समय आपने जिस तरह शत्रुदलसे सुदर्शनकी रक्षा की है और उसे विकार-रहित बना दिया है, उसी तरह आप सदा वाराणसीकी रक्षा करें। हे देवि! हे कृपानिधे! जबतक भूलोकमें काशीनगरी सुप्रतिष्ठित होकर विद्यमान रहे, तबतक आप यहाँ विराजमान रहें—आप मुझे यही वरदान दें, इसके अतिरिक्त मैं आपसे और दूसरा क्या माँगूँ?॥ ५—८॥

आप मेरी विविध प्रकारकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करें, मेरे शत्रुओंका नाश करें और जगत्के सभी अमंगलोंको सदाके लिये नष्ट कर डालें॥ ९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार राजा सुबाहुके सम्यक् प्रार्थना करनेपर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा स्तुति करके अपने समक्ष खड़े राजा सुबाहुसे कहने लगीं—॥ १०॥

दुर्गाजी बोलीं—हे राजन्! जबतक यह पृथिवी रहेगी, तबतक सभी लोकोंकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर इस मुक्तिपुरी काशीमें निवास करूँगी॥ ११॥

अथो सुदर्शनस्तत्र समागम्य मुदान्वितः।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव जगदम्बिकाम्॥ १२

अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं
त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः।
भक्तानुकम्पी सकलो जनोऽस्ति
विमुक्तभक्तेरवनं व्रतं ते॥ १३

त्वं देवि सर्वं सृजसि प्रपञ्चं
श्रुतं मया पालयसि स्वसृष्टम्।
त्वमत्सि संहारपरे च काले
न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै॥ १४

करोमि किं ते वद देवि कार्यं
क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाशु।
कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाहं
गच्छामि तिष्ठे विहरामि मातः॥ १५

व्यास उवाच

तं तथा भाषमाणं तु देवी प्राह दयान्विता।
गच्छायोध्यां महाभाग कुरु राज्यं कुलोचितम्॥ १६

स्मरणीया सदाहं ते पूजनीया प्रयत्नतः।
शं विधास्याम्यहं नित्यं राज्ये ते नृपसत्तम॥ १७

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः।
मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः॥ १८

अर्चा मदीया नगरे स्थापनीया त्वयानघ।
पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालं भक्तिपूर्वकम्॥ १९

शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा।
नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च॥ २०

चैत्रेऽश्विने तथाषाढे माघे कार्यो महोत्सवः।
नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः॥ २१

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः।
कर्तव्या नृपशार्दूल तथाष्टम्यां सदा बुधैः॥ २२

इसके बाद सुदर्शन बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करके परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति करने लगे—॥ १२॥

अहो! मैं आपकी कृपाका वर्णन कहाँतक करूँ! आपने मुझ जैसे भक्तिहीनकी भी रक्षा कर ली। अपने भक्तोंपर तो सभी लोग अनुकम्पा करते हैं, किंतु भक्तिरहित प्राणीकी भी रक्षा करनेका व्रत आपने ही ले रखा है॥ १३॥

मैंने सुना है कि आप ही समस्त विश्व-प्रपंचकी रचना करती हैं और अपनेद्वारा सृजित उस जगत्का पालन करती हैं तथा यथोचित समय उपस्थित होनेपर उसे अपनेमें समाहित कर लेती हैं; तब आपने जो मेरी रक्षा की, उसमें कोई आश्चर्य नहीं॥ १४॥

हे देवि! अब यह बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ; मैं कहाँ जाऊँ? मुझे शीघ्र आदेश दीजिये। मैं इस समय किंकर्तव्यविमूढ हो रहा हूँ। हे माता! मैं आपकी ही आज्ञासे जाऊँगा, ठहरूँगा या विहार करूँगा॥ १५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस सुदर्शनसे भगवतीने दयापूर्वक कहा—हे महाभाग! अब तुम अयोध्या जाओ और अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार राज्य करो॥ १६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तुम प्रयत्नके साथ सदा मेरा स्मरण तथा पूजन करते रहना और मैं भी तुम्हारे राज्यका सर्वदा कल्याण करती रहूँगी॥ १७॥

अष्टमी, चतुर्दशी और विशेष करके नवमी तिथिको विधि-विधानसे मेरी पूजा अवश्य करते रहना। हे अनघ! तुम अपने नगरमें मेरी प्रतिमा स्थापित करना और प्रयत्नके साथ भक्तिपूर्वक तीनों समय मेरा पूजन करते रहना॥ १८-१९॥

शरत्कालमें सर्वदा नवरात्रविधानके अनुसार भक्तिभावसे युक्त होकर मेरी महापूजा करनी चाहिये। हे महाराज! चैत्र, आश्विन, आषाढ़ तथा माघमासमें नवरात्रके अवसरपर मेरा महोत्सव मनाना चाहिये और विशेषरूपसे मेरी महापूजा करनी चाहिये॥ २०-२१॥

हे नृपशार्दूल! विज्ञजनोंको चाहिये कि वे भक्तियुक्त होकर कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तथा अष्टमीको सदा मेरी पूजा करें॥ २२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
नता सुदर्शनेनाथ स्तुता च बहुविस्तरम्॥ २३

अन्तर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते।
प्रणेमुस्तं समागम्य यथा शक्रं सुरास्तथा॥ २४

सुबाहुरपि तं नत्वा स्थितश्चाग्रे मुदान्वितः।
ऊचुः सर्वे महीपाला अयोध्याधिपतिं तदा॥ २५

त्वमस्माकं प्रभुः शास्ता सेवकास्ते वयं सदा।
कुरु राज्यमयोध्यायां पालयास्मान्नृपोत्तम॥ २६

त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टा विश्वेश्वरी शिवा।
आदिशक्तिर्भवानी सा चतुर्वर्गफलप्रदा॥ २७

धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्यो धरातले।
यस्माच्च त्वत्कृते देवी प्रादुर्भूता सनातनी॥ २८

न जानीमो वयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम।
चण्डिकायास्तमोयुक्ता मायया मोहिताः सदा॥ २९

धनदारसुतानां च चिन्तनेऽभिरताः सदा।
मग्ना महार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले॥ ३०

पृच्छामस्त्वां महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते।
केयं शक्तिः कुतो जाता किंप्रभावा वदस्व तत्॥ ३१

भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽति दयापराः।
तस्मान्नो वद काकुत्स्थ देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ३२

यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृपवरोत्तम॥ ३३

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा तैस्तु ध्रुवसन्धिसुतो नृपः।
विचिन्त्य मनसा देवीं तानुवाच मुदान्वितः॥ ३४

व्यासजी बोले—राजा सुदर्शनके स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं॥ २३॥

उन भगवतीको अन्तर्हित देखकर वहाँ उपस्थित सभी राजाओंने आकर सुदर्शनको उसी प्रकार प्रणाम किया जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं॥ २४॥

महाराज सुबाहु भी उन्हें प्रणाम करके बड़े हर्षपूर्वक उनके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर उन सभी राजाओंने अयोध्यापति सुदर्शनसे कहा—॥ २५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आप हमारे स्वामी तथा शासक हैं और हम आपके सेवक हैं। अब आप अयोध्यामें राज्य करें और हमारा पालन करें॥ २६॥

हे महाराज! आपकी कृपासे हमने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली उन विश्वेश्वरी, शिवा और आदिशक्ति भवानीका दर्शन पा लिया॥ २७॥

आप इस धरतीपर धन्य, कृतकृत्य और बड़े पुण्यात्मा हैं; क्योंकि आपके लिये साक्षात् सनातनी देवी प्रकट हुईं॥ २८॥

हे नृपसत्तम! तमोगुणसे युक्त और सदा मायासे मोहित रहनेवाले हम सभी लोग भगवती चण्डिकाका प्रभाव नहीं जानते। हम सदा धन, स्त्री और पुत्रोंकी चिन्तामें व्यग्र रहकर काम-क्रोधरूपी मत्स्योंसे भरे घोर महासागरमें डूबे रहते हैं॥ २९-३०॥

हे महाभाग! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव हम आपसे यह पूछ रहे हैं कि ये शक्ति कौन हैं, कहाँसे उत्पन्न हुई हैं और इनका कैसा प्रभाव है? वह सब बताइये॥ ३१॥

साधु पुरुष बड़े दयालु होते हैं। अतएव आप हमारे लिये इस संसार-सागरकी नौका बन जाइये। हे काकुत्स्थ! अब आप भगवतीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन कीजिये॥ ३२॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनका जो प्रभाव हो, जो स्वरूप हो तथा वे जैसे प्रकट हुई हों; यह सब हम आपसे सुनना चाहते हैं, आप बतायें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—राजाओंके यह पूछनेपर ध्रुवसन्धिके पुत्र राजा सुदर्शन मन-ही-मन भगवतीका स्मरण करके हर्षपूर्वक उनसे कहने लगे—॥ ३४॥

सुदर्शन उवाच

किं ब्रवीमि महीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम्।
ब्रह्मादयो न जानन्ति सेशाः सुरगणास्तथा॥ ३५

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा।
सात्त्विकीयं महीपाला जगत्पालनतत्परा॥ ३६

सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने।
संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता॥ ३७

निर्गुणा परमा शक्तिः सर्वकामफलप्रदा।
सर्वेषां कारणं सा हि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः॥ ३८

निर्गुणा सर्वथा ज्ञातुमशक्या योगिभिर्नृपाः।
सगुणा सुखसेव्या सा चिन्तनीया सदा बुधैः॥ ३९

राजान ऊचुः

बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः।
कथं ज्ञाता त्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा॥ ४०

उपासिता कथं चैव पूजिता च कथं नृप।
या प्रसन्ना तु साहाय्यं चकार त्वरयान्विता॥ ४१

सुदर्शन उवाच

बालभावान्मया प्राप्तं बीजं तस्याः सुसम्मतम्।
स्मरामि प्रजपन्नित्यं कामबीजाभिधं नृपाः॥ ४२

ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताम्बिका शिवा।
स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया पराम्॥ ४३

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य राजानो भक्तितत्पराः।
तां मत्वा परमां शक्तिं निर्ययुः स्वगृहान्प्रति॥ ४४

सुबाहुरगमत्काश्यां तमापृच्छ्य सुदर्शनम्।
सुदर्शनोऽपि धर्मात्मा निर्जगाम सुकोसलान्॥ ४५

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! उन जगदम्बाके उत्तम चरित्रको मैं क्या कहूँ; क्योंकि ब्रह्मा आदि तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी उन्हें नहीं जानते॥ ३५॥

हे राजाओ! वे भगवती सबकी आदिस्वरूपा हैं, महालक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, वे वरेण्य हैं और उत्तम सात्त्विकी शक्तिके रूपमें समस्त विश्वका पालन करनेमें तत्पर रहती हैं॥ ३६॥

वे अपने रजोगुणी स्वरूपसे सृष्टि करती, सत्वगुणी स्वरूपसे पालन करती और तमोगुणी स्वरूपसे इसका संहार करती हैं, इसी कारण वे त्रिगुणात्मिका कही गयी हैं। परम शक्तिस्वरूपा निर्गुणा भगवती समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। हे श्रेष्ठ राजाओ! वे ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी भी आदिकारण हैं॥ ३७-३८॥

हे राजाओ! योगीलोग भी निर्गुणा भगवतीको जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं। अतः बुद्धिमानोंको चाहिये कि सरलतापूर्वक सेवनीय सगुणा भगवतीकी निरन्तर आराधना करें॥ ३९॥

राजागण बोले—बाल्यावस्थामें ही आप वनवासी हो गये थे तथा भयसे व्याकुल थे। तब आपको उन उत्तम परमा शक्तिका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?॥ ४०॥

हे नृप! आपने उनकी उपासना और पूजा कैसे की, जिससे शीघ्रतापूर्वक प्रसन्न होकर उन्होंने आपकी सहायता की॥ ४१॥

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! बाल्यकालमें ही मुझे उनका अतिश्रेष्ठ बीजमन्त्र प्राप्त हो गया था। मैं उसी कामराज नामक बीजमन्त्रका सदा जप करता हुआ भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ॥ ४२॥

ऋषियोंके द्वारा उन कल्याणमयी भगवतीके विषयमें बताये जानेपर मैंने उन्हें जाना और तभीसे मैं परम भक्तिके साथ दिन-रात उन परा शक्तिका स्मरण किया करता हूँ॥ ४३॥

व्यासजी बोले—सुदर्शनका वचन सुनकर वे राजा भी भक्तिपरायण हो गये और उन देवीको ही परम शक्ति मानकर अपने-अपने घर चले गये॥ ४४॥

सुदर्शनसे अनुमति लेकर महाराज सुबाहु काशी चले गये और धर्मात्मा सुदर्शन वहाँसे अयोध्याकी ओर चल पड़े॥ ४५॥

मन्त्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितं मृधे।
जितं सुदर्शनञ्चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः॥ ४६

आगच्छन्तं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः।
उपायनान्युपादाय प्रययुः सम्मुखे जनाः॥ ४७

तथा प्रकृतयः सर्वे नानोपायनपाणयः।
ध्रुवसन्धिसुतं मत्वा मुदिताः प्रययुः प्रजाः॥ ४८

स्त्रियोपसंयुतः सोऽथ प्राप्यायोध्यां सुदर्शनः।
सम्मान्य सर्वलोकांश्च ययौ राजा निवेशनम्॥ ४९

बन्दिभिः स्तूयमानस्तु वन्द्यमानश्च मन्त्रिभिः।
कन्याभिः कीर्यमाणश्च लाजैः सुमनसैस्तथा॥ ५०

राजा शत्रुजित् युद्धमें मारा गया और सुदर्शन विजयी हुए—यह सुनकर मन्त्रीलोग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे॥ ४६॥

राजा सुदर्शनके आगमनका समाचार सुनकर साकेतके निवासी विविध प्रकारके उपहार लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और सब राजकर्मचारीगण भी हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री लेकर आये। महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनको राजाके रूपमें जानकर अयोध्याकी समस्त प्रजा आनन्दविभोर हो गयी॥ ४७-४८॥

अपनी स्त्रीके साथ अयोध्यामें पहुँचकर सब लोगोंका सम्मान करके राजा सुदर्शन राजभवनमें गये। उस समय बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे, मन्त्रीगण उनकी वन्दना कर रहे थे और कन्याएँ उनके ऊपर लाजा (धानका लावा) तथा पुष्प बिखेर रही थीं॥ ४९-५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सुदर्शनेन देवीमहिमवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

~~○~~

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुदर्शनका शत्रुजित्‌की माताको सान्त्वना देना, सुदर्शनद्वारा अयोध्यामें तथा राजा सुबाहुद्वारा काशीमें देवी दुर्गाकी स्थापना

व्यास उवाच

गत्वायोध्यां नृपश्रेष्ठो गृहं राज्ञः सुहृद्वृतः।
शत्रुजिन्मातरं प्राह प्रणम्य शोकसंकुलाम्॥ १

मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल।
न पिता ते युधाजिच्च शपे ते चरणौ तथा॥ २

दुर्गया तौ हतौ संख्ये नापराधो ममात्र वै।
अवश्यंभाविभावेषु प्रतीकारो न विद्यते॥ ३

न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनी।
स्वकर्मवशगो जीवो भुङ्क्ते भोगान्सुखासुखान्॥ ४

व्यासजी बोले—अयोध्या पहुँचकर नृपश्रेष्ठ सुदर्शन अपने मित्रोंके साथ राजभवनमें गये। वहाँपर शत्रुजित्‌की परम शोकाकुल माताको प्रणामकर उन्होंने कहा—हे माता! मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके पुत्र तथा आपके पिता युधाजित्‌को युद्धमें मैंने नहीं मारा है॥ १-२॥

स्वयं भगवती दुर्गाने रणभूमिमें उनका वध किया है; इसमें मेरा अपराध नहीं है। होनी तो अवश्य होकर रहती है, उसे टालनेका कोई उपाय नहीं है॥ ३॥

हे मानिनि! अपने मृत पुत्रके विषयमें आप शोक न करें; क्योंकि जीव अपने पूर्वकर्मोंके अधीन होकर सुख-दुःखरूपी भोगोंको भोगता है॥ ४॥

दासोऽस्मि तव भो मातर्यथा मम मनोरमा।
तथा त्वमपि धर्मज्ञे न भेदोऽस्ति मनागपि॥ ५

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
तस्मान्न शोचितव्यं ते सुखे दुःखे कदाचन॥ ६

दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्।
आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्॥ ७

दैवाधीनमिदं सर्वं नात्माधीनं कदाचन।
न शोकेन तदात्मानं शोषयेन्मतिमान्नरः॥ ८

यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते।
तथा स्वकर्मवशगो देही सर्वत्र वर्तते॥ ९

अहं वनगतो मातर्नाभवं दुःखमानसः।
चिन्तयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति वेद्मि च॥ १०

मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी मम।
भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौ गहनं वनम्॥ ११

लुण्ठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता।
पाथेयञ्च हृतं सर्वं बालपुत्रा निराश्रया॥ १२

माता गृहीत्वा मां प्राप्ता भारद्वाजाश्रमं प्रति।
विदल्लोऽयं समायातस्तथा धात्रेयिकाबला॥ १३

मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः समन्ततः।
पोषिताः फलनीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः॥ १४

दुःखं न मे तदा ह्यासीत्सुखं नाद्य धनागमे।
न वैरं न च मात्सर्यं मम चित्ते तु कर्हिचित्॥ १५

नीवारभक्षणं श्रेष्ठं राजभोगात्परन्तपे।
तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः क्वचित्॥ १६

हे माता! मैं आपका दास हूँ। जैसे मनोरमा मेरी माता हैं, वैसे ही आप भी मेरी माता हैं। हे धर्मज्ञे! आपमें और उनमें मेरे लिये कुछ भी भेद नहीं है॥ ५॥

अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। अतएव सुख-दुःखके विषयमें आपको कभी भी शोक नहीं करना चाहिये॥ ६॥

मनुष्यको चाहिये कि दुःखकी स्थितिमें अधिक दुःखवालोंको तथा सुखकी स्थितिमें अधिक सुखवालोंको देखे; अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके अधीन न करे। यह सब दैवके अधीन है, अपने अधीन कभी नहीं। अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि शोकसे अपनी आत्माको न सुखाये॥ ७-८॥

जैसे कठपुतली नट आदिके संकेतपर नाचती है, उसी प्रकार जीवको भी अपने कर्मके अधीन होकर सर्वत्र रहना पड़ता है॥ ९॥

हे माता! अपने किये हुए कर्मका फल भोगना ही पड़ता है—यह सोचते हुए मैं वनमें गया था, इसलिये मेरे मनमें दुःख नहीं हुआ। इस बातको मैं अभी भी जानता हूँ॥ १०॥

इसी अयोध्यामें मेरे नाना मारे गये, माता विधवा हो गयी। भयसे व्याकुल वह मुझे लेकर घोर वनमें चली गयी। रास्तेमें चोरोंने उसे लूट लिया, उसके वस्त्रतक उतार लिये और समस्त राह-सामग्री छीन ली। वह बालपुत्रा निराश्रय होकर मुझे लिये हुए भारद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँची। ये मन्त्री विदल्ल तथा अबला दासी हमारे साथ गये थे॥ ११—१३॥

आश्रमके मुनियों और मुनिपत्नियोंने दया करके नीवार तथा फलोंसे भलीभाँति हमारा पालन किया और हम तीनों वहीं रहने लगे॥ १४॥

उस समय निर्धन होनेके कारण न मुझे दुःख था और न अब धन आ जानेपर सुख ही है। मेरे मनमें कभी भी वैर तथा ईर्ष्याकी भावना नहीं रहती॥ १५॥

हे परन्तपे! राजसी भोजनकी अपेक्षा नीवारभक्षण श्रेष्ठ है; क्योंकि राजस अन्न खानेवाला नरकमें जा सकता है, किंतु नीवारभोजी कभी नहीं॥ १६॥

धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेण विजानता।
सञ्जित्येन्द्रियवर्गं वै यथा न नरकं व्रजेत्॥ १७

मानुष्यं दुर्लभं मातः खण्डेऽस्मिन्भारते शुभे।
आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु॥ १८

प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं धर्मसाधनम्।
स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु॥ १९

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता।
पुत्रशोकं परित्यज्य तमाहाश्रुविलोचना॥ २०

सापराधास्मि पुत्राहं कृता पित्रा युधाजिता।
हत्वा मातामहं तेऽत्र हृतं राज्यं तु येन वै॥ २१

न तं वारयितुं शक्ता तदाहं न सुतं मम।
यत्कृतं कर्म तेनैव नापराधोऽस्ति मे सुत॥ २२

तौ मृतौ स्वकृतेनैव कारणं त्वं तयोर्न च।
नाहं शोचामि तं पुत्रं सदा शोचामि तत्कृतम्॥ २३

पुत्रस्त्वमसि कल्याण भगिनी मे मनोरमा।
न च क्रोधो न शोको मे त्वयि पुत्र मनागपि॥ २४

कुरु राज्यं महाभाग प्रजाः पालय सुव्रत।
भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकण्टकम्॥ २५

तदाकर्ण्य वचो मातुर्नत्वा तां नृपनन्दनः।
जगाम भवनं रम्यं यत्र पूर्वं मनोरमा॥ २६

न्यवसत्तत्र गत्वा तु सर्वानाहूय मन्त्रिणः।
दैवज्ञानथ पप्रच्छ मुहूर्तं दिवसं शुभम्॥ २७

सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम्।
सिंहासने स्थितां देवीं पूजयिष्ये सदाप्यहम्॥ २८

स्थापयित्वासने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम्।
राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः कृतम्॥ २९

इन्द्रियोंपर सम्यक् नियन्त्रण करके विज्ञ पुरुषको धर्मका आचरण करना चाहिये, जिससे उसे नरकमें न जाना पड़े॥ १७॥

हे माता! इस पवित्र भारतवर्षमें मानवजन्म दुर्लभ है। आहारादिका सुख तो निश्चय ही सभी योनियोंमें मिल सकता है। स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मनुष्यतनको पाकर धर्मसाधन करना चाहिये; क्योंकि अन्य योनियोंमें यह दुर्लभ है॥ १८-१९॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके यह कहनेपर लीलावती बहुत लज्जित हुई और पुत्रशोक त्यागकर आँखोंमें आँसू भरके बोली—॥ २०॥

हे पुत्र! मेरे पिता युधाजित्ने मुझे अपराधिनी बना दिया। उन्होंने ही तुम्हारे नानाका वध करके राज्यका हरण कर लिया था॥ २१॥

हे तात! उस समय मैं उन्हें तथा अपने पुत्रको रोकनेमें समर्थ नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया, उसमें मेरा अपराध नहीं था॥ २२॥

वे दोनों अपने ही कर्मसे मृत्युको प्राप्त हुए हैं। उनकी मृत्युमें तुम कारण नहीं हो। अतएव मैं अपने उस पुत्रके लिये शोक नहीं करती। मैं सदा उसके किये कर्मकी चिन्ता करती रहती हूँ॥ २३॥

हे कल्याण! अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो और मनोरमा मेरी बहन है। हे पुत्र! तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी शोक या क्रोध नहीं है॥ २४॥

हे महाभाग! अब तुम राज्य करो और प्रजाका पालन करो। हे सुव्रत! भगवतीकी कृपासे ही तुम्हें यह अकंटक राज्य प्राप्त हुआ है॥ २५॥

माता लीलावतीका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम करके राजकुमार सुदर्शन उस भव्य भवनमें गये, जहाँ पहले उनकी माता मनोरमा रहा करती थीं। वहाँ जाकर उन्होंने सब मन्त्रियों तथा ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभ दिन और मुहूर्त पूछा और कहा कि सोनेका सुन्दर सिंहासन बनवाकर उसपर विराजमान देवीका मैं नित्य पूजन करूँगा। उस सिंहासनपर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्थापना करनेके बाद ही मैं राज्यकार्य संचालित करूँगा, जैसा मेरे पूर्वज श्रीराम आदिने किया है। सभी नागरिकजनोंको चाहिये

पूजनीया सदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः।
माननीया शिवा शक्तिः सर्वकामार्थसिद्धिदा॥ ३०

इत्युक्ता मन्त्रिणस्ते तु चक्रुर्वै राजशासनम्।
प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम्॥ ३१

प्रतिमां कारयित्वाथ मुहूर्तेऽथ शुभे दिने।
द्विजानाहूय वेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः॥ ३२

हवनं विधिवत्कृत्वा पूजयित्वाथ देवताम्।
प्रासादे मतिमान् देव्याः स्थापयामास भूमिपः॥ ३३

उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणां च निःस्वनैः।
ब्राह्मणानां वेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप॥ ३४

व्यास उवाच

प्रतिष्ठाप्य शिवां देवीं विधिवद्वेदवादिभिः।
पूजां नानाविधां राजा चकारातिविधानतः॥ ३५

कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम्।

विख्यातश्चाम्बिका देवी कोसलेषु बभूव ह॥ ३६

राज्यं प्राप्य नृपः सर्वं सामन्तकनृपानथ।
वशे चक्रेऽतिधर्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः॥ ३७

यथा रामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्य रघुर्यथा।
प्रजानां वै सुखं तद्वन्मर्यादापि तथाभवत्॥ ३८

धर्मो वर्णाश्रमाणां च चतुष्पादभवत्तथा।
नाधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले॥ ३९

ग्रामे ग्रामे च प्रासादांश्चक्रुः सर्वे जनाधिपाः।
देव्याः पूजा तदा प्रीत्या कोसलेषु प्रवर्तिता॥ ४०

कि वे सभी प्रकारके काम, अर्थ और सिद्धि प्रदान करनेवाली कल्याणमयी भगवती आदिशक्तिका पूजन तथा सम्मान करते रहें॥ २६—३०॥

राजा सुदर्शनके ऐसा कहनेपर मन्त्रीगण राजाज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये। उन्होंने शिल्पियोंद्वारा एक बहुत सुन्दर मन्दिर तैयार कराया॥ ३१॥

तदनन्तर राजाने देवीकी प्रतिमा बनवाकर शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें वैदिक विद्वानोंको बुलाकर उसकी स्थापना की॥ ३२॥

तत्पश्चात् विधिवत् हवन तथा देवपूजन करके बुद्धिमान् राजाने उस मन्दिरमें देवीकी प्रतिमा स्थापित की॥ ३३॥

हे राजन्! उस समय ब्राह्मणोंके वेदघोष, विविध गानों तथा वाद्योंकी ध्वनिके साथ बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया॥ ३४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वेदवादी विद्वानोंद्वारा कल्याणमयी देवीकी विधिवत् स्थापना कराकर राजा सुदर्शनने बड़े विधानके साथ नाना प्रकारकी पूजा सम्पन्न की॥ ३५॥

इस प्रकार राजा सुदर्शन भगवतीकी पूजा करके अपना पैतृक राज्य प्राप्तकर विख्यात हो गये और कोसल देशमें अम्बिकादेवी भी विख्यात हो गयीं॥ ३६॥

सम्पूर्ण राज्य प्राप्त करनेके बाद सद्धर्मसे विजय प्राप्त करनेवाले राजा सुदर्शनने सभी धर्मात्मा सामन्त राजाओंको अपने अधीन कर लिया॥ ३७॥

जिस प्रकार अपने राज्यमें राम हुए और जिस प्रकार दिलीपके पुत्र राजा रघु हुए उसी प्रकार सुदर्शन भी हुए। जैसे उनके राज्यमें प्रजाओंको सुख था और मर्यादा थी, वैसा ही राजा सुदर्शनके राज्यमें भी था॥ ३८॥

उनके राज्यमें वर्णाश्रमधर्म चारों चरणोंसे समृद्ध हुआ। उस समय धरतीतलपर किसीका भी मन अधर्ममें लिप्त नहीं होता था॥ ३९॥

कोसलदेशके सभी राजाओंने प्रत्येक ग्राममें देवीके मन्दिर बनवाये। तबसे समस्त कोसलदेशमें प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी॥ ४०॥

सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम्।
कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः॥ ४१

तत्र तस्या जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः।
पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह॥ ४२

विख्याता सा बभूवाथ दुर्गा देवी धरातले।
देशे देशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत॥ ४३

सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा।
भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा॥ ४४

शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप।
आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः॥ ४५

नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः।
अर्चनं हवनं यागं देव्या भक्तिपरा जनाः॥ ४६

महाराज सुबाहुने भी काशीमें मन्दिरका निर्माण कराकर भक्तिपूर्वक दुर्गादेवीकी दिव्य प्रतिमा स्थापित की॥ ४१॥

काशीके सभी लोग प्रेम और भक्तिमें तत्पर होकर विधिवत् दुर्गादेवीकी उसी प्रकार पूजा करने लगे, जैसे भगवान् विश्वनाथजीकी करते थे॥ ४२॥

हे महाराज! तबसे इस धरातलपर देश-देशमें भगवती दुर्गा विख्यात हो गयीं और लोगोंमें उनकी भक्ति बढ़ने लगी। उस समय भारतवर्षमें सब जगह सभी वर्णोंमें भवानी ही सबकी पूजनीया हो गयीं॥ ४३-४४॥

हे नृप! सभी लोग भगवती शक्तिको मानने लगे, उनकी भक्तिमें निरत रहने लगे और वेद-वर्णित स्तोत्रोंके द्वारा उनके जप तथा ध्यानमें तत्पर हो गये। इस प्रकार भक्तिपरायण लोग सभी नवरात्रोंमें विधानपूर्वक भगवतीका पूजन, हवन तथा यज्ञ करने लगे॥ ४५-४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीस्थापनवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

* * *

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नवरात्रव्रत-विधान, कुमारीपूजामें प्रशस्त कन्याओंका वर्णन

जनमेजय उवाच

नवरात्रे तु सम्प्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम।
विधानं विधिवद् ब्रूहि शरत्काले विशेषतः॥ १

किं फलं खलु कस्तत्र विधिः कार्यो महामते।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम्।
शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥ ३

वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम्।
द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै॥ ४

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! नवरात्रके आनेपर और विशेष करके शारदीय नवरात्रमें क्या करना चाहिये? उसका विधान आप मुझे भलीभाँति बताइये॥ १॥

हे महामते! उस पूजनका क्या फल है और उसमें किस विधिका पालन करना चाहिये। हे द्विजवर! कृपया विस्तारके साथ मुझे यह सब बताइये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं पवित्र नवरात्रव्रतके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये। शरत्कालके नवरात्रमें विशेष करके यह व्रत करना चाहिये॥ ३॥

उसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्त ऋतुके नवरात्रमें भी इस व्रतको करे। ये दोनों ऋतुएँ सब प्राणियोंके लिये यमदंष्ट्रा कही गयी हैं॥ ४॥

शरद्वसन्तनामानौ दुर्गमौ प्राणिनामिह।
तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता॥ ५

द्वावेव सुमहाघोरावृतू रोगकरौ नृणाम्।
वसन्तशरदावेव सर्वनाशकरावुभौ॥ ६

तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चण्डिकापूजनं बुधैः।
चैत्राश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्वं नराधिप॥ ७

अमावास्यां च सम्प्राप्य सम्भारं कल्पयेच्छुभम्।
हविष्यं चाशनं कार्यमेकभुक्तं तु तद्दिने॥ ८

मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः समे देशे शुभे स्थले।
हस्तषोडशमानेन स्तम्भध्वजसमन्वितः॥ ९

गौरमृद्गोमयाभ्याञ्च लेपनं कारयेत्ततः।
तन्मध्ये वेदिका शुभ्रा कर्तव्या च समा स्थिरा॥ १०

चतुर्हस्ता च हस्तोच्छ्रा पीठार्थं स्थानमुत्तमम्।
तोरणानि विचित्राणि वितानञ्च प्रकल्पयेत्॥ ११

रात्रौ द्विजानथामन्त्र्य देवीतत्त्वविशारदान्।
आचारनिरतान्दान्तान्वेदवेदाङ्गपारगान्॥ १२

प्रतिपद्दिवसे कार्यं प्रातःस्नानं विधानतः।
नद्यां नदे तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा॥ १३

प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः।
अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यं मधुपूर्वकम्॥ १४

वस्त्रालङ्करणादीनि देयानि च स्वशक्तितः।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विभवे सति कर्हिचित्॥ १५

विप्रैः सन्तोषितैः कार्यं सम्पूर्णं सर्वथा भवेत्।
नव पञ्च त्रयश्चैको देव्याः पाठे द्विजाः स्मृताः॥ १६

शरत् तथा वसन्त नामक ये दोनों ऋतुएँ संसारमें प्राणियोंके लिये दुर्गम हैं। अतएव आत्मकल्याणके इच्छुक व्यक्तिको बड़े यत्नके साथ यह नवरात्रव्रत करना चाहिये॥ ५॥

ये वसन्त तथा शरद्—दोनों ही ऋतुएँ बड़ी भयानक हैं और मनुष्योंके लिये रोग उत्पन्न करनेवाली हैं। ये सबका विनाश कर देनेवाली हैं। अतएव हे राजन्! बुद्धिमान् लोगोंको शुभ चैत्र तथा आश्विनमासमें भक्तिपूर्वक चण्डिकादेवीका पूजन करना चाहिये॥ ६-७॥

अमावस्या आनेपर व्रतकी सभी शुभ सामग्री एकत्रित कर ले और उस दिन एकभुक्त व्रत करे और हविष्य ग्रहण करे॥ ८॥

किसी समतल तथा पवित्र स्थानमें सोलह हाथ लम्बे-चौड़े और स्तम्भ तथा ध्वजाओंसे सुसज्जित मण्डपका निर्माण करना चाहिये॥ ९॥

उसको सफेद मिट्टी और गोबरसे लिपवा दे। तत्पश्चात् उस मण्डपके बीचमें सुन्दर, चौरस और स्थिर वेदी बनाये॥ १०॥

वह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और हाथभर ऊँची होनी चाहिये। पीठके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करे तथा विविध रंगोंके तोरण लटकाये और ऊपर चाँदनी लगा दे॥ ११॥

रात्रिमें देवीका तत्त्व जाननेवाले, सदाचारी, संयमी और वेद-वेदांगके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुआँ अथवा घरपर ही विधिवत् स्नान करे॥ १२-१३॥

प्रातःकालके समय नित्यकर्म करके ब्राह्मणोंका वरण-कर उन्हें मधुपर्क तथा अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण करे॥ १४॥

अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें वस्त्र, अलंकार आदि प्रदान करे। धन रहते हुए इस काममें कभी कृपणता न करे॥ १५॥

सन्तुष्ट ब्राह्मणोंके द्वारा किया हुआ कर्म सम्यक् प्रकारसे परिपूर्ण होता है। देवीका पाठ करनेके लिये नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मण बताये गये हैं॥ १६॥

वरयेद् ब्राह्मणं शान्तं पारायणकृते तदा।
स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमन्त्रविधानतः॥ १७

वेद्यां सिंहासनं स्थाप्यं क्षौमवस्त्रसमन्वितम्।
तत्र स्थाप्याम्बिका देवी चतुर्हस्तायुधान्विता॥ १८

रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता।
दिव्याम्बरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता॥ १९

शङ्खचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिता शिवा।
अष्टादशभुजा वापि प्रतिष्ठाप्या सनातनी॥ २०

अर्चाभावे तथा यन्त्रं नवार्णमन्त्रसंयुतम्।
स्थापयेत्पीठपूजार्थं कलशं तत्र पार्श्वतः॥ २१

पञ्चपल्लवसंयुक्तं वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतम्।
सुतीर्थजलसम्पूर्णं हेमरत्नैः समन्वितम्॥ २२

पार्श्वे पूजार्थसम्भारान्परिकल्प्य समन्ततः।
गीतवादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मङ्गलाय वै॥ २३

तिथौ हस्तान्वितायां च नन्दायां पूजनं वरम्।
प्रथमे दिवसे राजन् विधिवत्कामदं नृणाम्॥ २४

नियमं प्रथमं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत्।
उपवासेन नक्तेन चैकभुक्तेन वा पुनः॥ २५

करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमनुत्तमम्।
साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम्॥ २६

यथाशक्ति प्रकर्तव्यो नियमो व्रतहेतवे।
पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्॥ २७

चन्दनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगन्धिभिः।
मन्दारकरजाशोकचम्पकैः करवीरकैः॥ २८

मालतीब्रह्मकापुष्पैस्तथा बिल्वदलैः शुभैः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः॥ २९

देवीभागवतका पारायण करनेके कार्यमें किसी शान्त ब्राह्मणका वरण करे और वैदिक मन्त्रोंसे स्वस्तिवाचन कराये॥ १७॥

वेदीपर रेशमी वस्त्रसे आच्छादित सिंहासन स्थापित करे। उसके ऊपर चार भुजाओं तथा उनमें आयुधोंसे युक्त देवीकी प्रतिमा स्थापित करे। भगवतीकी प्रतिमा रत्नमय भूषणोंसे युक्त, मोतियोंके हारसे अलंकृत, दिव्य वस्त्रोंसे सुसज्जित, शुभलक्षणसम्पन्न और सौम्य आकृतिकी हो। वे कल्याणमयी भगवती शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हों और सिंहपर सवार हों; अथवा अठारह भुजाओंसे सुशोभित सनातनी देवीको प्रतिष्ठित करे॥ १८—२०॥

भगवतीकी प्रतिमाके अभावमें नवार्णमन्त्रयुक्त यन्त्रको पीठपर स्थापित करे और पीठपूजाके लिये पासमें कलश भी स्थापित कर ले॥ २१॥

वह कलश पंचपल्लवयुक्त, वैदिक मन्त्रोंसे भलीभाँति संस्कृत, उत्तम तीर्थके जलसे पूर्ण और सुवर्ण तथा पंचरत्नमय होना चाहिये॥ २२॥

पासमें पूजाकी सब सामग्रियाँ रखकर उत्सवके निमित्त गीत तथा वाद्योंकी ध्वनि भी करानी चाहिये॥ २३॥

हस्तनक्षत्रयुक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथिमें पूजन श्रेष्ठ माना जाता है। हे राजन्! पहले दिन विधिवत् किया हुआ पूजन मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला होता है॥ २४॥

सबसे पहले उपवासव्रत, एकभुक्तव्रत अथवा नक्तव्रत—इनमेंसे किसी एक व्रतके द्वारा नियम करनेके पश्चात् ही पूजा करनी चाहिये॥ २५॥

[पूजनके पहले प्रार्थना करते हुए कहे—] हे माता! मैं सर्वश्रेष्ठ नवरात्रव्रत करूँगा। हे देवि! हे जगदम्बे! [इस पवित्र कार्यमें] आप मेरी सम्पूर्ण सहायता करें॥ २६॥

इस व्रतके लिये यथाशक्ति नियम रखे। उसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक विधिवत् भगवतीका पूजन करे॥ २७॥

चन्दन, अगरु, कपूर तथा मन्दार, करंज, अशोक, चम्पा, कनैल, मालती, ब्राह्मी आदि सुगन्धित पुष्पों, सुन्दर बिल्वपत्रों और धूप-दीपसे विधिवत् भगवती जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २८—२९॥

फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै।
नारिकेलैर्मातुलुङ्गैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥ ३०

नारङ्गैः पनसैश्चैव तथा पूर्णफलैः शुभैः।
अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप ॥ ३१

मांसाशनं ये कुर्वन्ति तैः कार्यं पशुहिंसनम्।
महिषाजवराहाणां बलिदानं विशिष्यते ॥ ३२

देव्यग्रे निहता यान्ति पशवः स्वर्गमव्ययम्।
न हिंसा पशुजा तत्र निघ्नतां तत्कृतेऽनघ ॥ ३३

अहिंसा याज्ञिकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये।
देवतार्थे विसृष्टानां पशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा ॥ ३४

होमार्थं चैव कर्तव्यं कुण्डं चैव त्रिकोणकम्।
स्थण्डिलं वा प्रकर्तव्यं त्रिकोणं मानतः शुभम् ॥ ३५

त्रिकालं पूजनं नित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः।
गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ३६

नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम्।
वस्त्रालङ्करणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः ॥ ३७

एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं च वा ॥ ३८

विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं राजञ्छक्तिमखे सदा ॥ ३९

एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप।
परमज्ञा तु भोगानां गन्धादीनां च बालिका ॥ ४०

कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह।
त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका ॥ ४१

रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता।
चण्डिका सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शाम्भवी ॥ ४२

नववर्षा भवेद् दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी।
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता ॥ ४३

एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता।
तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा ॥ ४४

उस अवसरपर अर्घ्य भी प्रदान करे। हे राजन्! नारियल, बिजौरा नीबू, दाडिम, केला, नारंगी, कटहल तथा बिल्वफल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंके साथ भक्तिपूर्वक अन्नका नैवेद्य एवं पवित्र बलि अर्पित करे॥ ३०—३४॥

होमके लिये त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये अथवा त्रिकोणके मानके अनुरूप उत्तम वेदी बनानी चाहिये॥ ३५॥

विविध प्रकारके सुन्दर द्रव्योंसे प्रतिदिन भगवतीका त्रिकाल (प्रातः-सायं-मध्याह्न) पूजन करना चाहिये और गायन, वादन तथा नृत्यके द्वारा महान् उत्सव मनाना चाहिये॥ ३६॥

[व्रती] नित्य भूमिपर सोये और वस्त्र, आभूषण तथा अमृतके सदृश दिव्य भोजन आदिसे कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३७॥

नित्य एक ही कुमारीका पूजन करे अथवा प्रतिदिन एक-एक कुमारीकी संख्याके वृद्धिक्रमसे पूजन करे अथवा प्रतिदिन दुगुने-तिगुनेके वृद्धिक्रमसे और या तो प्रत्येक दिन नौ कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३८॥

अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार भगवतीकी पूजा करे, किंतु हे राजन्! देवीके यज्ञमें धनकी कृपणता न करे॥ ३९॥

हे राजन्! पूजाविधिमें एक वर्षकी अवस्थावाली कन्या नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि वह कन्या गन्ध और भोग आदि पदार्थोंके स्वादसे बिलकुल अनभिज्ञ रहती है। कुमारी कन्या वह कही गयी है, जो दो वर्षकी हो चुकी हो। तीन वर्षकी कन्या त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कन्या कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दस वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। इससे ऊपरकी अवस्थावाली कन्याका पूजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सभी कार्योंमें निन्द्य मानी जाती है। इन नामोंसे कुमारीका विधिवत् पूजन सदा करना चाहिये। अब मैं इन नौ कन्याओंके पूजनसे प्राप्त होनेवाले फलोंको कहूँगा॥ ४०—४४॥

कुमारी पूजिता कुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम्।
शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिं करोति वै॥ ४५

त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत्।
धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः॥ ४६

विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः।
सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम्॥ ४७

कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्।
ऐश्वर्यधनकामश्च चण्डिकां परिपूजयेत्॥ ४८

पूजयेच्छाम्भवीं नित्यं नृप सम्मोहनाय च।
दुःखदारिद्र्यनाशाय संग्रामे विजयाय च॥ ४९

क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने।
दुर्गां च पूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च॥ ५०

वाञ्छितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा।
रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः॥ ५१

श्रीरस्त्विति च मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः।
श्रीयुक्तमन्त्रैरथवा बीजमन्त्रैरथापि वा॥ ५२

कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया।
कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम्॥ ५३

सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी।
त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥ ५४

कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजितानिशम्।
पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम्॥ ५५

'कुमारी' नामकी कन्या पूजित होकर दुःख तथा दरिद्रताका नाश करती है; वह शत्रुओंका क्षय और धन, आयु तथा बलकी वृद्धि करती है॥ ४५॥

'त्रिमूर्ति' नामकी कन्याका पूजन करनेसे धर्म-अर्थ-कामकी पूर्ति होती है, धन-धान्यका आगम होता है और पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है॥ ४६॥

जो राजा विद्या, विजय, राज्य तथा सुखकी कामना करता हो, उसे सभी कामनाएँ प्रदान करनेवाली 'कल्याणी' नामक कन्याका नित्य पूजन करना चाहिये॥ ४७॥

शत्रुओंका नाश करनेके लिये भक्तिपूर्वक 'कालिका' कन्याका पूजन करना चाहिये। धन तथा ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवालेको 'चण्डिका' कन्याकी सम्यक् अर्चना करनी चाहिये॥ ४८॥

हे राजन्! सम्मोहन, दुःख-दारिद्र्यके नाश तथा संग्राममें विजयके लिये 'शाम्भवी' कन्याकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ४९॥

क्रूर शत्रुके विनाश एवं उग्र कर्मकी साधनाके निमित्त और परलोकमें सुख पानेके लिये 'दुर्गा' नामक कन्याकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये॥ ५०॥

मनुष्य अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये 'सुभद्रा' की सदा पूजा करे और रोगनाशके निमित्त 'रोहिणी' की विधिवत् आराधना करे॥ ५१॥

'श्रीरस्तु' इस मन्त्रसे अथवा किन्हीं भी श्रीयुक्त देवीमन्त्रसे अथवा बीजमन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ५२॥

जो भगवती कुमारके रहस्यमय तत्त्वों और ब्रह्मादि देवताओंकी भी लीलापूर्वक रचना करती हैं, उन 'कुमारी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५३॥

जो सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे तीन रूप धारण करती हैं, जिनके अनेक रूप हैं तथा जो तीनों कालोंमें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं, उन भगवती 'त्रिमूर्ति' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५४॥

निरन्तर पूजित होनेपर जो भक्तोंका नित्य कल्याण करती हैं, सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन भगवती 'कल्याणी' का मैं भक्तिपूर्वक पूजन करता हूँ॥ ५५॥

रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै।
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥ ५६

जो देवी सम्पूर्ण जीवोंके पूर्वजन्मके संचित कर्मरूपी बीजोंका रोपण करती हैं, उन भगवती रोहिणीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ५६॥

काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्॥ ५७

जो देवी काली कल्पान्तमें चराचरसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें विलीन कर लेती हैं, उन भगवती 'कालिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५७॥

चण्डिकां चण्डरूपाञ्च चण्डमुण्डविनाशिनीम्।
तां चण्डपापहरिणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्। ५८

अत्यन्त उग्र स्वभाववाली, उग्ररूप धारण करनेवाली, चण्ड-मुण्डका संहार करनेवाली तथा घोर पापोंका नाश करनेवाली उन भगवती 'चण्डिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५८॥

अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता।
यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥ ५९

वेद जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं वेदोंके द्वारा जिनकी उत्पत्ति अकारण बतायी गयी है, उन सुखदायिनी भगवती 'शाम्भवी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५९॥

दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी।
दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्॥ ६०

जो अपने भक्तको सर्वदा संकटसे बचाती हैं, बड़े-बड़े विघ्नों तथा दुःखोंका नाश करती हैं और सभी देवताओंके लिये दुर्ज्ञेय हैं, उन भगवती 'दुर्गा' की मैं पूजा करता हूँ॥ ६०॥

सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा।
अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥ ६१

जो पूजित होनेपर भक्तोंका सदा कल्याण करती हैं, उन अमंगलनाशिनी भगवती 'सुभद्रा' की मैं पूजा करता हूँ॥ ६१॥

एभिर्मन्त्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः।
वस्त्रालङ्करणैर्माल्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ ६२

विद्वानोंको चाहिये कि वस्त्र, भूषण, माला, गन्ध आदि श्रेष्ठ उपचारोंसे इन मन्त्रोंके द्वारा सर्वदा कन्याओंका पूजन करें॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
कुमारीपूजावर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कुमारीपूजामें निषिद्ध कन्याओंका वर्णन, नवरात्रव्रतके माहात्म्यके प्रसंगमें सुशील नामक वणिक्की कथा

व्यास उवाच

हीनाङ्गीं वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणाङ्किताम्।
गन्धस्फुरितहीनाङ्गीं विशालकुलसम्भवाम्॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] जो कन्या किसी अंगसे हीन हो, कोढ़ तथा घावयुक्त हो, जिसके शरीरके किसी अंगसे दुर्गन्ध आती हो और जो विशाल कुलमें उत्पन्न हुई हो—ऐसी कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ १॥

जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम्।
सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनाङ्किताम्॥ २

जन्मसे अन्धी, तिरछी नजरसे देखनेवाली, कानी, कुरूप, बहुत रोमवाली, रोगी तथा रजस्वला कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ २॥

क्षामां गर्भसमुद्भूतां गोलकां कन्यकोद्भवाम्।
वर्जनीयाः सदा चैताः सर्वपूजादिकर्मसु॥ ३

अरोगिणीं सुरूपाङ्गीं सुन्दरीं व्रणवर्जिताम्।
एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत्॥ ४

ब्राह्मणी सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजा।
लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा॥ ५

ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजाः।
वैश्यैस्त्रिवर्गजाः पूज्याश्चतस्रः पादसम्भवैः॥ ६

कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत्।
नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि॥ ७

अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके।
अष्टम्यां च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा॥ ८

पुराष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी।
प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह॥ ९

अतोऽष्टम्यां विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा।
नानाविधोपहारैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ १०

पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानां च भोजनैः।
फलपुष्पोपहारैश्च तोषयेज्जगदम्बिकाम्॥ ११

उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः।
उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तफलदं नृप॥ १२

सप्तम्यां च तथाष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः।
त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात्॥ १३

पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा।
सम्पूर्णं तद् व्रतं प्रोक्तं विप्राणां चैव भोजनैः॥ १४

अत्यन्त दुर्बल, समयसे पूर्व ही गर्भसे उत्पन्न, विधवा स्त्रीसे उत्पन्न तथा कन्यासे उत्पन्न—ये सभी कन्याएँ पूजा आदि सभी कार्योंमें सर्वथा त्याज्य हैं॥ ३॥

रोगसे रहित, रूपवान् अंगोंवाली, सौन्दर्यमयी, व्रणरहित तथा एक वंशमें (अपने माता-पितासे) उत्पन्न कन्याकी ही विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ४॥

समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्राह्मणकी कन्या, विजय-प्राप्तिके लिये राजवंशमें उत्पन्न कन्या तथा धन-लाभके लिये वैश्यवंश अथवा शूद्रवंशमें उत्पन्न कन्या पूजनके योग्य मानी गयी है॥ ५॥

ब्राह्मणको ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; वैश्योंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—तीनों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी तथा शूद्रको चारों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी पूजा करनी चाहिये। शिल्पकर्ममें लगे हुए मनुष्योंको यथायोग्य अपने-अपने वंशमें उत्पन्न कन्याओंकी पूजा करनी चाहिये। नवरात्र-विधिसे भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजाकी जानी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति नवरात्रपर्यन्त प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ है, तो उसे अष्टमी तिथिको विशेषरूपसे अवश्य पूजन करना चाहिये॥ ६—८॥

प्राचीन कालमें दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाली महाभयानक भगवती भद्रकाली करोड़ों योगिनियोंसहित अष्टमी तिथिको ही प्रकट हुई थीं॥ ९॥

अतः अष्टमीको विशेष विधानसे सदा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उस दिन विविध प्रकारके उपहारों, गन्ध, माला, चन्दनके अनुलेप, पायस आदिके हवन, ब्राह्मण-भोजन तथा फल-पुष्पादि उपहारोंसे भगवतीको प्रसन्न करना चाहिये॥ १०-११॥

हे राजन्! पूरे नवरात्रभर उपवास करनेमें असमर्थ लोगोंके लिये तीन दिनका उपवास भी यथोक्त फल प्रदान करनेवाला बताया गया है॥ १२॥

भक्तिभावसे केवल सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन रात्रियोंमें देवीकी पूजा करनेसे सभी फल सुलभ हो जाते हैं॥ १३॥

पूजन, हवन, कुमारी-पूजन तथा ब्राह्मण-भोजन—इनको सम्पन्न करनेसे वह नवरात्र-व्रत पूरा हो जाता है—ऐसा कहा गया है॥ १४॥

व्रतानि यानि चान्यानि दानानि विविधानि च।
नवरात्रव्रतस्यास्य नैव तुल्यानि भूतले॥ १५

धनधान्यप्रदं नित्यं सुखसन्तानवृद्धिदम्।
आयुरारोग्यदं चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा॥ १६

विद्यार्थी वा धनार्थी वा पुत्रार्थी वा भवेन्नरः।
तेनेदं विधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम्॥ १७

विद्यार्थी सर्वविद्यां वै प्राप्नोति व्रतसाधनात्।
राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वदा॥ १८

पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न कृतं व्रतमुत्तमम्।
ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवन्ति पुत्रवर्जिताः॥ १९

वन्ध्या च या भवेन्नारी विधवा धनवर्जिता।
अनुमा तत्र कर्तव्या नेयं कृतवती व्रतम्॥ २०

नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले।
स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि॥ २१

रक्तचन्दनसंमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः।
भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ॥ २२

नाराधिता येन शिवा सनातनी
दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्धरा।
दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले
नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः॥ २३

यां विष्णुरिन्द्रो हरपद्मजौ तथा
वह्निः कुबेरो वरुणो दिवाकरः।
ध्यायन्ति सर्वार्थसमाप्तिनन्दिता-
स्तां किं मनुष्या न भजन्ति चण्डिकाम्॥ २४

इस पृथ्वीलोकमें जितने भी प्रकारके व्रत एवं दान हैं, वे इस नवरात्रव्रतके तुल्य नहीं हैं; क्योंकि यह व्रत सदा धन-धान्य प्रदान करनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला, आयु तथा आरोग्य प्रदान करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ १५-१६॥

अतएव विद्या, धन अथवा पुत्र—इनमेंसे मनुष्य किसीकी भी कामना करता हो, उसे इस सौभाग्यदायक तथा कल्याणकारी व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये॥ १७॥

इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे विद्या चाहनेवाला मनुष्य समस्त विद्या प्राप्त कर लेता है और अपने राज्यसे वंचित राजा फिरसे अपना राज्य प्राप्त कर लेता है॥ १८॥

पूर्वजन्ममें जिन लोगोंद्वारा यह उत्तम व्रत नहीं किया गया है, वे इस जन्ममें रोगग्रस्त, दरिद्र तथा सन्तानरहित होते हैं॥ १९॥

जो स्त्री वन्ध्या, विधवा अथवा धनहीन है; उसके विषयमें यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उसने [अवश्य ही पूर्वजन्ममें] यह व्रत नहीं किया था॥ २०॥

इस पृथ्वीलोकमें जिस प्राणीने उक्त नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं किया, वह इस लोकमें वैभव प्राप्त करके स्वर्गमें आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता है?॥ २१॥

जिसने लाल चन्दनमिश्रित कोमल बिल्वपत्रोंसे भवानी जगदम्बाकी पूजा की है, वह इस पृथ्वीपर राजा होता है॥ २२॥

जिस मनुष्यने दुःख तथा सन्तापका नाश करनेवाली, सिद्धियाँ देनेवाली, जगत्‌में सर्वश्रेष्ठ, शाश्वत तथा कल्याणस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना नहीं की; वह इस पृथ्वीतलपर सदा ही अनेक प्रकारके कष्टोंसे ग्रस्त, दरिद्र तथा शत्रुओंसे पीड़ित रहता है॥ २३॥

विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, कुबेर, वरुण तथा सूर्य समस्त कामनाओंसे परिपूर्ण होकर हर्षके साथ जिन भगवतीका ध्यान करते हैं, उन देवी चण्डिकाका ध्यान मनुष्य क्यों नहीं करते?॥ २४॥

स्वाहास्वधानाममनुप्रभावै-
स्तृप्यन्ति देवाः पितरस्तथैव।
यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरन्ति
यन्नामयुग्मं श्रुतिभिर्मुनीन्द्राः॥ २५

यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो
नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च।
नूनं करोति जगतः किल भस्म शम्भु-
स्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः॥ २६

नैकोऽस्ति सर्वभुवनेषु तया विहीनो
देवो नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा।
गन्धर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं
यः स्पन्दितुं भवति शक्तियुतो यथेच्छम्॥ २७

तां न सेवेत कश्चण्डीं सर्वकामार्थदां शिवाम्।
व्रतं तस्या न कः कुर्याद्वाञ्छन्नर्थचतुष्टयम्॥ २८

महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतं चरेत्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा॥ २९

पुरा कश्चिद्वणिग्दीनो धनहीनः सुदुःखितः।
कुटुम्बी चाभवत्कश्चित् कोसले नृपसत्तम॥ ३०

अपत्यानि बहून्यस्याभवन्क्षुत्पीडितानि च।
भक्ष्यं किञ्चित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः॥ ३१

भुंक्ते स्म कार्यकर्तासौ परस्याथ बुभुक्षितः।
कुटुम्बभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः॥ ३२

सदा धर्मरतः शान्तः सदाचारश्च सत्यवाक्।
अक्रोधनश्च धृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः॥ ३३

सम्पूज्य देवता नित्यं पितॄनप्यतिथींस्तदा।
भुञ्जाने पोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनं वणिक्॥ ३४

देवगण इनके 'स्वाहा' नाममन्त्रके प्रभावसे तथा पितृगण 'स्वधा' नाममन्त्रके प्रभावसे तृप्त होते हैं। इसीलिये महान् मुनिजन प्रसन्नतापूर्वक सभी यज्ञों तथा श्राद्धकार्योंमें मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' एवं 'स्वधा' नामोंका उच्चारण करते हैं॥ २५॥

जिनकी इच्छासे ब्रह्मा इस विश्वका सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु अनेकविध अवतार लेते हैं और शंकरजी जगत्‌को भस्मसात् करते हैं, उन कल्याणकारिणी भगवतीको मनुष्य क्यों नहीं भजता?॥ २६॥

सभी भुवनोंमें कोई भी ऐसा देवता, मनुष्य, पक्षी, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच एवं पर्वत नहीं है; जो उन भगवतीकी शक्तिके बिना अपनी इच्छासे शक्तिसम्पन्न होकर स्पन्दित होनेमें समर्थ हो॥ २७॥

सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन कल्याणदायिनी चण्डिकाकी सेवा भला कौन नहीं करेगा? चारों प्रकारके पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-को चाहनेवाला कौन प्राणी उन भगवतीके नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं करेगा?॥ २८॥

यदि कोई महापापी भी नवरात्रव्रत करे तो वह समस्त पापोंसे मुक्ति पा लेता है, इसमें लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालमें कोसलदेशमें दीन, धनहीन, अत्यन्त दुःखी एवं विशाल कुटुम्बवाला एक वैश्य रहता था॥ ३०॥

उसकी अनेक सन्तानें थीं, जो धनाभावके कारण क्षुधासे पीड़ित रहा करती थीं; सायंकालमें उसके लड़कोंको खानेके लिये कुछ मिल जाता था तथा वह भी कुछ खा लेता था। इस प्रकार वह वणिक् भूखा रहते हुए सर्वदा दूसरोंका काम करके धैर्यपूर्वक परिवारका पालन-पोषण कर रहा था॥ ३१-३२॥

वह सर्वदा धर्मपरायण, शान्त, सदाचारी, सत्यवादी, क्रोध न करनेवाला, धैर्यवान्, अभिमानरहित तथा ईर्ष्याहीन था॥ ३३॥

प्रतिदिन देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी पूजा करके वह अपने परिवारजनोंके भोजन कर लेनेके उपरान्त स्वयं भोजन करता था॥ ३४॥

एवं गच्छति काले वै सुशीलो नामतो गुणैः।
दारिद्र्यार्तो द्विजं शान्तं पप्रच्छातिबुभुक्षितः॥ ३५

सुशील उवाच

भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाद्य महामते।
कथं दारिद्र्यनाशः स्यादिति मे निश्चयेन वै॥ ३६

धनैषणा मे नैवास्ति धनी स्यामिति मानद।
कुटुम्बभरणार्थं वै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम॥ ३७

पुत्री सुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदते भृशम्।
तावन्मात्रं गृहे नान्नं मुष्टिमेकां ददाम्यहम्॥ ३८

विसर्जितो यतो गेहाद् गतो बालो रुदन्मया।
अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किं करोमि धनं विना॥ ३९

विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम्।
दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम्॥ ४०

तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि दयानिधे।
तपो दानं व्रतं किञ्चिद् ब्रूहि मन्त्रं जपं तथा॥ ४१

येनाहं पोष्यवर्गस्य करोमि द्विज पोषणम्।
तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल॥ ४२

त्वत्प्रसादात्कुटुम्बं मे सुखितं प्रभवेदिह।
तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिन्त्य च॥ ४३

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गुणोंके कारण सुशील नामसे ख्यातिप्राप्त उस वणिक्‌ने दरिद्रता तथा क्षुधा-पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल होकर एक शान्तस्वभाव ब्राह्मणसे पूछा॥ ३५॥

सुशील बोला—हे महाबुद्धिसम्पन्न ब्राह्मण-देवता! आज मुझपर कृपा करके यह बताइये कि मेरी दरिद्रताका नाश निश्चितरूपसे कैसे हो सकता है?॥ ३६॥

हे मानद! मुझे धनकी अभिलाषा तो नहीं है; किंतु हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे कोई ऐसा उपाय पूछ रहा हूँ, जिससे मैं कुटुम्बके भरण-पोषणमात्रके लिये धनसम्पन्न हो जाऊँ॥ ३७॥

मेरी पुत्री और पुत्र [क्षुधासे पीड़ित होकर] भोजनके लिये बहुत रोते हैं और मेरे घरमें इतना भी अन्न नहीं रहता कि मैं उन्हें एक मुट्ठीभर अन्न दे सकूँ॥ ३८॥

रोते हुए बालकको मैंने घरसे निकाल दिया और वह चला गया। इसलिये मेरा हृदय शोकाग्निमें जल रहा है। धनके अभावमें मैं क्या करूँ?॥ ३९॥

मेरी पुत्री विवाहके योग्य हो चुकी है, किंतु मेरे पास धन नहीं है। अब मैं क्या करूँ? वह दस वर्षसे अधिककी हो गयी है; इस प्रकार कन्यादानका समय बीता जा रहा है॥ ४०॥

हे विप्रेन्द्र! इसीलिये मैं अत्यधिक चिन्तित हूँ। हे दयानिधान! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव मुझे कोई ऐसा तप, दान, व्रत, मन्त्र तथा जप बताइये, जिससे मैं अपने आश्रितजनोंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हो जाऊँ। हे द्विज! बस मुझे उतना ही धन मिल जाय और मैं उससे अधिक धनके लिये प्रार्थना नहीं करता॥ ४१-४२॥

हे महाभाग! आपकी कृपासे मेरा परिवार अवश्य सुखी हो सकता है। अतएव आप अपने ज्ञानबलसे भलीभाँति विचार करके वह उपाय बताइये॥ ४३॥

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तथा तेन ब्राह्मणः संशितव्रतः।
उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम॥ ४४

वैश्यवर्य कुरुष्वाद्य नवरात्रव्रतं शुभम्।
पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा॥ ४५

वेदपारायणं शक्तिजपहोमादिकं तथा।
कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्यं भविष्यति॥ ४६

एतस्मादपरं किञ्चिद् व्रतं नास्ति धरातले।
नवरात्राभिधं वैश्य पावनं सुखदं तथा॥ ४७

ज्ञानदं मोक्षदं चैव सुखसन्तानवर्धनम्।
शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा॥ ४८

राज्यभ्रष्टेन रामेण सीताविरहितेन च।
किष्किन्धायां व्रतं चैतत्कृतं दुःखातुरेण वै॥ ४९

प्रतप्तेनापि रामेण सीताविरहवह्निना।
विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै॥ ५०

तेन प्राप्ताथ वैदेही कृत्वा सेतुं महार्णवे।
हत्वा मन्दोदरीनाथं कुम्भकर्णं महाबलम्॥ ५१

मेघनादं सुतं हत्वा कृत्वा भूपं विभीषणम्।
पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ५२

नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेण विशांवर।
सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणामिततेजसा॥ ५३

व्यास उवाच

इति विप्रवचः श्रुत्वा स वैश्यस्तं द्विजं गुरुम्।
कृत्वा जग्राह सन्मन्त्रं मायाबीजाभिधं नृप॥ ५४

जजाप परया भक्त्या नवरात्रमतन्द्रितः।
नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम्॥ ५५
नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः।

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! उसके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उस ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उस वैश्यसे कहा—॥ ४४॥

हे वैश्यवर्य! अब तुम पवित्र नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करो। इसमें तुम भगवतीकी पूजा, हवन, ब्राह्मणभोजन, वेदपाठ, उनके मन्त्रका जप और होम आदि यथाशक्ति सम्पन्न करो। इससे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा॥ ४५-४६॥

हे वैश्य! नवरात्र नामक इस पवित्र तथा सुखदायक व्रतसे बढ़कर इस पृथ्वीतलपर अन्य कोई भी व्रत नहीं है॥ ४७॥

यह नवरात्रव्रत सर्वदा ज्ञान तथा मोक्षको देनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला एवं शत्रुओंका पूर्णरूपसे विनाश करनेवाला है॥ ४८॥

राज्यसे च्युत तथा सीताके वियोगसे अत्यन्त दुःखित श्रीरामने किष्किन्धापर्वतपर इस व्रतको किया था। सीताकी विरहाग्निसे अत्यधिक सन्तप्त श्रीरामने उस समय नवरात्रव्रतके विधानसे भगवती जगदम्बाकी भलीभाँति पूजा की थी॥ ४९-५०॥

इसी व्रतके प्रभावसे उन्होंने महासागरपर सेतुकी रचनाकर महाबली मन्दोदरीपति रावण, कुम्भकर्ण तथा रावणपुत्र मेघनादका संहार करके सीताको प्राप्त किया। विभीषणको लंकाका राजा बनाकर पुनः अयोध्या लौटकर उन्होंने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया था॥ ५१-५२॥

हे वैश्यवर! इस प्रकार अमित तेजवाले श्रीरामजीने इस नवरात्रव्रतके प्रभावसे पृथ्वीतलपर महान् सुख प्राप्त किया॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ब्राह्मणका यह वचन सुनकर उस वैश्यने उन्हें अपना गुरु मान लिया और उनसे मायाबीज नामक उत्तम मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की॥ ५४॥

तत्पश्चात् आलस्यहीन होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूरे नवरात्रभर उसने उस मन्त्रका जप किया और अनेकविध उपहारोंसे आदरपूर्वक भगवतीका पूजन किया। इस प्रकार मायाबीजपरायण उस वैश्यने नौ

नवमे वत्सरान्ते तु महाष्टम्यां महेश्वरी॥ ५६

अर्धरात्रे तु सञ्जाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम्॥ ५७

वर्षोंतक यह अनुष्ठान किया। नौवें वर्षके अन्तमें महाष्टमी तिथिको अर्धरात्रि आनेपर महेश्वरीने उसे अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक प्रकारके वरदानोंसे कृतकृत्य कर दिया॥ ५५—५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीपूजामहत्त्ववर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

~~~

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीरामचरित्रवर्णन

जनमेजय उवाच

कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम्।
राज्यभ्रष्टः कथं सोऽथ कथं सीता हृता पुनः॥ १

व्यास उवाच

राजा दशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा।
सूर्यवंशधरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः॥ २

चत्वारो जज्ञिरे तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः॥ ३

राज्ञः प्रियकराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः।
कौसल्यायाः सुतो रामः कैकेय्या भरतः स्मृतः॥ ४

सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ।
ते जाता वै किशोराश्च धनुर्बाणधराः किल॥ ५

सूनवः कृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः।
कौशिकेन तदागत्य प्रार्थितो रघुनन्दनः॥ ६

राघवं मखरक्षार्थं सूनुं षोडशवार्षिकम्।
तस्मै सोऽयं ददौ रामं कौशिकाय सलक्ष्मणम्॥ ७

तौ समेत्य मुनिं मार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ।
ताटका निहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना॥ ८

जनमेजय बोले—श्रीरामने भगवती जगदम्बाके इस सुखप्रदायक व्रतका अनुष्ठान किस प्रकार किया, वे राज्यच्युत कैसे हुए और फिर सीता-हरण किस प्रकार हुआ?॥ १॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्यापुरीमें राज्य करते थे। वे सूर्यवंशमें श्रेष्ठ राजाके रूपमें प्रतिष्ठित थे और वे देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करते थे॥ २॥

उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए; जो लोकमें राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नामसे विख्यात हुए। गुण तथा रूपमें पूर्ण समानता रखनेवाले वे सभी महाराज दशरथको अत्यन्त प्रिय थे। उनमें राम महारानी कौसल्याके तथा भरत महारानी कैकेयीके पुत्र कहे गये। रानी सुमित्राके लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामवाले जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों किशोरावस्थामें ही धनुष-बाणधारी हो गये॥ ३—५॥

महाराज दशरथने सुख बढ़ानेवाले अपने चारों पुत्रोंके संस्कार भी सम्पन्न कर दिये। तब एक समय महर्षि विश्वामित्र ने दशरथके यहाँ आकर उनसे रघुनन्दन रामको माँगा॥ ६॥

महाराज दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये लक्ष्मण-सहित सोलहवर्षीय पुत्र रामको विश्वामित्रको समर्पित कर दिया॥ ७॥

प्रियदर्शन वे दोनों भाई मुनिके साथ मार्गमें चल दिये। रामचन्द्रजीने मुनियोंको सदा पीड़ित करनेवाली तथा अत्यन्त भयानक रूपवाली ताटकाको
~~~

रामेणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदा सदा।
यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः॥ ९

मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तो बाणवेगतः।
एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम्॥ १०

गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मणकौशिकाः।
अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताबला॥ ११

विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह।
बभञ्ज शिवचापञ्च जनकेन पणीकृतम्॥ १२

उपयेमे ततः सीतां जानकीञ्च रमांशजाम्।
लक्ष्मणाय ददौ राजा पुत्रीमेकां तथोर्मिलाम्॥ १३

कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतुर्भ्रातरावुभौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभलक्षणौ॥ १४

एवं दारक्रियास्तेषां भ्रातॄणां चाभवन्नृप।
चतुर्णां मिथिलायां तु यथाविधि विधानतः॥ १५

राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजा दशरथस्तदा।
राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै॥ १६

सम्भारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्वकल्पितौ।
वरौ संप्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम्॥ १७

राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने।
रामाय वनवासञ्च चतुर्दशसमास्तथा॥ १८

रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुतः।
जगाम दण्डकारण्यं राक्षसैरुपसेवितम्॥ १९

राजा दशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः।
जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन्॥ २०

रास्तेमें ही मात्र एक बाणसे मार डाला। उन्होंने दुष्ट सुबाहुका वध किया तथा मारीचको अपने बाणसे दूर फेंककर उसे मृतप्राय कर दिया और यज्ञ-रक्षा की। इस प्रकार यज्ञ-रक्षाका महान् कृत्य सम्पन्न करके राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्रने मिथिलापुरीके लिये प्रस्थान किया। जाते समय मार्गमें रामने अबला अहल्याको शापसे मुक्ति प्रदान करके उसे पापरहित कर दिया॥ ८—११॥

इसके बाद वे दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ जनकपुर पहुँच गये और वहाँ श्रीरामने जनकजीद्वारा प्रतिज्ञाके रूपमें रखे शिव-धनुषको तोड़ दिया और लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न जनकनन्दिनी सीताके साथ विवाह किया। राजा जनकने दूसरी पुत्री उर्मिलाका विवाह लक्ष्मणके साथ कर दिया॥ १२-१३॥

शीलसम्पन्न तथा शुभलक्षणोंसे युक्त दोनों भाई भरत तथा शत्रुघ्नने कुशध्वजकी दो पुत्रियों [माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति]-को पत्नीरूपमें प्राप्त किया॥ १४॥

हे राजन्! इस प्रकार उन चारों भाइयोंका विवाह मिथिलापुरीमें ही विधि-विधानसे सम्पन्न हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् महाराज दशरथने अपने बड़े पुत्र रामको राज्य करनेयोग्य देखकर उन्हें राज्य-भार सौंपनेका मनमें निश्चय किया॥ १६॥

राजतिलक-सम्बन्धी सामग्रियोंका प्रबन्ध हुआ देखकर रानी कैकेयीने अपने वशीभूत महाराज दशरथसे पूर्वकल्पित दो वरदान माँगे॥ १७॥

उसने पहले वरदानके रूपमें अपने पुत्र भरतके लिये राज्य तथा दूसरे वरदानके रूपमें महात्मा रामको चौदह वर्षोंका वनवास माँगा॥ १८॥

कैकेयीका वचन मानकर श्रीरामचन्द्रजी सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकवन चले गये, जहाँ राक्षस रहते थे॥ १९॥

तदनन्तर पुत्रके वियोगजनित शोकसे सन्तप्त पुण्यात्मा दशरथने पूर्वकालमें एक ऋषिद्वारा प्रदत्त शापका स्मरण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये॥ २०॥

भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै।
राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया॥ २१

पञ्चवट्यां वसन् रामो रावणावरजां वने।
शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिस्मरातुराम्॥ २२

खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः।
चक्रुः संग्राममतुलं रामेणामिततेजसा॥ २३

स जघान खरादींश्च दैत्यानतिबलान्वितान्।
मुनीनां हितमन्विच्छन् रामः सत्यपराक्रमः॥ २४

गत्वा शूर्पणखा लङ्कां खरदूषणघातनम्।
दूषिता कथयामास रावणाय च राघवात्॥ २५

सोऽपि श्रुत्वा विनाशं तं जातः क्रोधवशः खलः।
जगाम रथमारुह्य मारीचस्याश्रमं तदा॥ २६

कृत्वा हेममृगं नेतुं प्रेषयामास रावणः।
सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनमसम्भवम्॥ २७

सोऽथ हेममृगो भूत्वा सीतादृष्टिपथं गतः।
मायावी चातिचित्राङ्गश्चरन्प्रबलमन्तिके॥ २८

तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता।
चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा॥ २९

अविचार्याथ रामोऽपि तत्र संस्थाप्य लक्ष्मणम्।
सशरं धनुरादाय ययौ मृगपदानुगः॥ ३०

सारङ्गोऽपि हरिं दृष्ट्वा मायाकोटिविशारदः।
दृश्यादृश्यो बभूवाथ जगाम च वनान्तरम्॥ ३१

मत्वा हस्तगतं रामः क्रोधाकृष्टधनुः पुनः।
जघान चातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमं मृगम्॥ ३२

माता कैकेयीके कृत्यके कारण पिताजीकी मृत्यु देखकर भरतजीने भाई श्रीरामका हित करनेकी इच्छासे अयोध्याका समृद्ध राज्य स्वीकार नहीं किया॥ २१॥

उधर पंचवटीमें निवास करते हुए श्रीरामने रावणकी छोटी बहन अतिशय कामातुर शूर्पणखाको कुरूप बना दिया॥ २२॥

तब खर-दूषण आदि राक्षसोंने उसे कटी हुई नासिकावाली देखकर अमित तेजस्वी रामके साथ घोर संग्राम किया॥ २३॥

उस संग्राममें सत्यपराक्रमी श्रीरामने मुनियोंका कल्याण करनेकी इच्छासे अत्यन्त बलशाली खर आदि राक्षसोंका संहार कर दिया॥ २४॥

तत्पश्चात् लंका जाकर उस दुष्ट शूर्पणखाने रामके द्वारा खर-दूषणके संहारका समाचार रावणसे बताया॥ २५॥

वह दुष्ट रावण भी संहारके विषयमें सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और तब रथपर सवार होकर वह मारीचके आश्रममें पहुँच गया॥ २६॥

सीता-हरणके उद्देश्यसे रावणने मायावी मारीचको असम्भव स्वर्ण-मृग बनाकर सीताको प्रलोभित करनेके लिये भेजा॥ २७॥

तत्पश्चात् वह मायावी मारीच अत्यन्त अद्भुत अंगोंवाला स्वर्ण-मृग बनकर चरते-चरते सीताजीके सन्निकट पहुँच गया और उन्होंने उसे देख लिया॥ २८॥

उसे देखकर दैवी प्रेरणासे स्वाधीनपतिका स्त्रीकी भाँति सीताने श्रीरामसे कहा—हे कान्त! आप इस मृगका चर्म ले आइये॥ २९॥

राम भी बिना कुछ सोचे-समझे लक्ष्मणको सीताके रक्षार्थ वहीं छोड़कर धनुष तथा बाण लेकर उस मृगके पीछे-पीछे दौड़ पड़े॥ ३०॥

करोड़ों प्रकारकी माया रचनेका ज्ञान रखनेवाला मृगरूपधारी वह मारीच भी रामको अपने पीछे दौड़ता देखकर कभी दिखायी पड़ते हुए तथा कभी आँखोंसे ओझल होते हुए एक वनसे दूसरे वनमें बहुत दूर चला गया॥ ३१॥

रामने अब उसे हस्तगत समझकर क्रोधपूर्वक धनुष खींचकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे उस कृत्रिम मृगको मार डाला॥ ३२॥

स हतोऽतिबलात्तेन चुक्रोश भृशदुःखितः।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति मायावी नश्वरः खलः॥ ३३

स शब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्या संश्रुतस्तदा।
राघवस्येति सा मत्वा दीना देवरमब्रवीत्॥ ३४

गच्छ लक्ष्मण तूर्णं त्वं हतोऽसौ रघुनन्दनः।
त्वामाह्वयति सौमित्रे साहाय्यं कुरु सत्वरम्॥ ३५

तत्राह लक्ष्मणः सीतामम्ब रामवधादपि।
नाहं गच्छेऽद्य मुक्त्वा त्वामसहायामिहाश्रमे॥ ३६

आज्ञा मे राघवस्यात्र तिष्ठेति जनकात्मजे।
तदतिक्रमभीतोऽहं न त्यजामि तवान्तिकम्॥ ३७

दूरं वै राघवं दृष्ट्वा वने मायाविना किल।
त्यक्त्वा त्वां नाधिगच्छामि पदमेकं शुचिस्मिते॥ ३८

कुरु धैर्यं न मन्येऽद्य रामं हन्तुं क्षमं क्षितौ।
नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामि विलंघ्य रामभाषितम्॥ ३९

व्यास उवाच

रुदती सुदती प्राह तं तदा विधिनोदिता।
अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्॥ ४०

अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति।
प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह सङ्गतम्॥ ४१

नाहं तथाविधा नारी स्वैरिणी कुहकाधम।
मृते रामे पतिं त्वां न कर्तुमिच्छामि कामतः॥ ४२

नागमिष्यति चेद्रामो जीवितं सन्त्यजाम्यहम्।
विना तेन न जीवामि विधुरा दुःखिता भृशम्॥ ४३

रामके प्रबल प्रहारसे आहत होकर वह मरणोन्मुख मायावी तथा नीच मृग चीख-चीखकर चिल्लाने लगा—हा लक्ष्मण! अब मैं मारा गया॥ ३३॥

उसके गगन-भेदी चीत्कारकी ध्वनिको सीताने सुन लिया। 'यह तो रामकी पुकार है'—ऐसा मानकर उन्होंने दुःखी होकर देवर लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! ऐसा प्रतीत होता है कि वे रघुनन्दन राम आहत हो गये हैं। अतः तुम शीघ्र जाओ। हे सुमित्रानन्दन! वे तुम्हें पुकार रहे हैं; वहाँ शीघ्र ही पहुँचकर उनकी सहायता करो॥ ३४-३५॥

तब लक्ष्मणजीने सीतासे कहा—हे माता! रामका वध ही क्यों न हो; मैं आपको इस आश्रममें इस समय असहाय छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता। हे जनकनन्दिनि! मुझे रामकी आज्ञा है कि तुम इसी आश्रममें रहना। उनकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें मैं डरता हूँ। अतः आपका सामीप्य नहीं छोड़ सकता। हे शुचिस्मिते! वह मायावी भगवान् श्रीरामको बहुत दूर दौड़ा ले गया है—यह जान करके मैं आपको छोड़कर यहाँसे एक पग भी नहीं जा सकता। आप धैर्य धारण कीजिये। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि इस समय सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें श्रीरामको मारनेमें कोई समर्थ नहीं है। रामके आदेशका उल्लंघन करके तथा आपको यहाँ छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा॥ ३६—३९॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सुन्दर दाँतोंवाली तथा सौम्य स्वभाववाली सीताने दैवसे प्रेरित होकर शुभ लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे रोते हुए यह कठोर वचन कहा—॥ ४०॥

हे सुमित्रातनय! अब मैं जान गयी कि तुम मेरे प्रति अनुरागयुक्त हो और भरतकी प्रेरणासे मेरे प्रयोजनसे यहाँ आये हो॥ ४१॥

हे कुहकाधम! मैं उस तरहकी स्वच्छन्द स्त्री नहीं हूँ। मैं रामके मृत हो जानेपर भी सुखके लिये तुम्हें अपना पति कभी नहीं बना सकती॥ ४२॥

यदि राम नहीं लौटेंगे तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि उनके बिना मैं विधवा होकर अत्यधिक दुःखी जीवन नहीं जी सकती॥ ४३॥

गच्छ वा तिष्ठ सौमित्रे न जानेऽहं तवेप्सितम्।
क्व गतं तेऽत्र सौहार्दं ज्येष्ठे धर्मरते किल॥ ४४

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या लक्ष्मणो दीनमानसः।
प्रोवाच रुद्धकण्ठस्तु तां तदा जनकात्मजाम्॥ ४५

किमात्थ क्षितिजे वाक्यं मयि क्रूरतरं किल।
किं वदस्यत्यनिष्टं ते भावि जाने धिया ह्यहम्॥ ४६

इत्युक्त्वा निर्ययौ वीरस्तां त्यक्त्वा प्ररुदन्भृशम्।
अग्रजस्य ययौ पश्यञ्छोकार्तः पृथिवीपते॥ ४७

गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटाकृतिः।
भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे॥ ४८

जानकी तं यतिं मत्वा दत्त्वार्घ्यं वन्यमादरात्।
भैक्ष्यं समर्पयामास रावणाय दुरात्मने॥ ४९

तां पप्रच्छ स दुष्टात्मा नम्रपूर्वं मृदुस्वरम्।
कासि पद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनी प्रिये॥ ५०

पिता कस्तेऽथ वामोरु भ्राता कः कः पतिस्तव।
मूढेवैकाकिनी चात्र स्थितासि वरवर्णिनि॥ ५१

निर्जने विपिने किं त्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये।
उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा॥ ५२

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विदेहजा।
दिव्यं दिष्ट्या यतिं ज्ञात्वा मन्दोदर्याः पतिं तदा॥ ५३

हे लक्ष्मण! तुम जाओ या रहो। मुझे तुम्हारी वास्तविक इच्छाका पता नहीं है। धर्मपरायण ज्येष्ठ भाईके प्रति आपका प्रेम अब कहाँ चला गया?॥ ४४॥

सीताका वह वचन सुनकर लक्ष्मणके मनमें अत्यधिक कष्ट हुआ। रुदनके कारण रुँधे कण्ठसे उन्होंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—॥ ४५॥

हे भूमिकन्ये! आप इस प्रकारके अति कठोर वचन मेरे लिये क्यों कह रही हैं? मेरा मन तो यह कह रहा है कि आपके समक्ष कोई अनिष्टकर परिस्थिति उत्पन्न होनेवाली है॥ ४६॥

[व्यासजीने कहा—] हे महाराज जनमेजय! ऐसा कहकर अत्यधिक विलाप करते हुए वीर लक्ष्मण सीताको वहीं छोड़कर चल दिये और अत्यधिक शोकाकुल होकर बड़े भाई रामको चारों ओर देखते हुए आगेकी ओर बढ़ते गये॥ ४७॥

इस प्रकार लक्ष्मणके वहाँसे चले जानेपर कपट स्वभाववाले रावणने साधु-वेष धारणकर उस आश्रममें प्रवेश किया॥ ४८॥

जानकी उस दुष्टात्मा रावणको संन्यासी समझकर आदरपूर्वक वन्य सामग्रियोंका अर्घ्य प्रदान करके भिक्षा देने लगीं॥ ४९॥

तब उस दुरात्माने अत्यन्त विनम्र भावसे मधुर वाणीमें सीताजीसे पूछा—हे पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाली प्रिये! तुम कौन हो और इस वनमें अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५०॥

हे वामोरु! तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे भाई तथा पति कौन हैं? हे सुन्दरि! तुम एक मूढ़ स्त्रीकी भाँति यहाँ अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५१॥

हे प्रिये! इस निर्जन वनमें क्यों रह रही हो? तुम तो महलोंमें निवास करनेयोग्य हो। देवकन्याके समान कान्तिवाली तुम एक मुनिपत्नीकी भाँति इस कुटियामें क्यों रह रही हो?॥ ५२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उसका यह वचन सुनकर विदेहतनया सीताजीने मन्दोदरीके पति रावणको दैववश एक दिव्य संन्यासी समझकर उत्तर दिया॥ ५३॥

राजा दशरथः श्रीमांश्चत्वारस्तस्य वै सुताः।
तेषु ज्येष्ठः पतिर्मेऽस्ति रामनामेति विश्रुतः॥ ५४

विवासितोऽथ कैकेय्या कृते भूपतिना वरे।
चतुर्दश समा रामो वसतेऽत्र सलक्ष्मणः॥ ५५

जनकस्य सुता चाहं सीतानाम्नीति विश्रुता।
भङ्क्त्वा शैवं धनुः कामं रामेणाहं विवाहिता॥ ५६

रामबाहुबलेनात्र वसामो निर्भया वने।
काञ्चनं मृगमालोक्य हन्तुं मे निर्गतः पतिः॥ ५७

लक्ष्मणोऽपि पुनः श्रुत्वा रवं भ्रातुर्गतोऽधुना।
तयोर्बाहुबलादत्र निर्भयाहं वसामि वै॥ ५८

मयेदं कथितं सर्वं वृत्तान्तं वनवासके।
तेऽत्रागत्यार्हणां ते वै करिष्यन्ति यथाविधि॥ ५९

यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया।
आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले॥ ६०

तस्मात्त्वां परिपृच्छामि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः।
कोऽसि त्रिदण्डिरूपेण विपिने त्वं समागतः॥ ६१

रावण उवाच

लङ्केशोऽहं मरालाक्षि श्रीमान्मन्दोदरीपतिः।
त्वत्कृते तु कृतं रूपं मयेत्थं शोभनाकृते॥ ६२

आगतोऽहं वरारोहे भगिन्या प्रेरितोऽत्र वै।
जनस्थाने हतौ श्रुत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ॥ ६३

अङ्गीकुरु नृपं मां त्वं त्यक्त्वा तं मानुषं पतिम्।
हतराज्यं गतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम्॥ ६४

दशरथ नामक लक्ष्मीसम्पन्न एक राजा हैं, उनके चार पुत्र हैं। उनमें सबसे बड़े पुत्र जो 'राम' नामसे विख्यात हैं, वे ही मेरे पति हैं॥ ५४॥

कैकेयीने महाराज दशरथसे वरदान माँगकर रामको चौदह वर्षके लिये वनवास दिला दिया। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ अब यहींपर रह रहे हैं॥ ५५॥

मैं राजा जनककी पुत्री हूँ तथा 'सीता' नामसे विख्यात हूँ। शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामने मेरा पाणिग्रहण किया है॥ ५६॥

उन्हीं रामके बाहुबलका आश्रय लेकर मैं निर्भीक होकर इस वनमें रहती हूँ। एक स्वर्ण-मृग देखकर उसे मारनेके लिये मेरे पति गये हुए हैं॥ ५७॥

अपने भाईका शब्द सुनकर लक्ष्मण भी इस समय उधर ही गये हुए हैं। उन्हीं दोनोंके बाहुबलसे मैं यहाँ निडर होकर रहती हूँ॥ ५८॥

मैंने आपको वनवास-सम्बन्धी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। अब वे लोग यहाँ आकर आपका विधिपूर्वक सत्कार करेंगे॥ ५९॥

संन्यासी विष्णुस्वरूप होता है, इसीलिये मैंने आपकी पूजा की है। राक्षसोंके समुदायद्वारा सेवित इस भयंकर जंगलमें यह आश्रम बना हुआ है। इसलिये मैं आपसे यह पूछती हूँ कि त्रिदण्डीके रूपमें इस वनमें पधारे हुए आप कौन हैं? आप मेरे समक्ष सत्य कहिये॥ ६०-६१॥

रावण बोला—हे हंसनयने! मैं मन्दोदरीका पति तथा लंकाका नरेश श्रीमान् रावण हूँ। हे सुन्दर आकृतिवाली! तुम्हारे लिये ही मैंने इस प्रकारका वेष बनाया है॥ ६२॥

हे सुन्दरि! जनस्थानमें अपने भाई खर-दूषणके मारे जानेका समाचार सुनकर तथा अपनी बहन शूर्पणखाद्वारा प्रेरित किये जानेपर मैं यहाँ आया हूँ॥ ६३॥

अब तुम उस राज्यच्युत, लक्ष्मीहीन, निर्बल, वनवासी तथा मानवयोनिवाले पतिको छोड़कर मुझ राजाको स्वीकार कर लो॥ ६४॥

पट्टराज्ञी भव त्वं मे मन्दोदर्युपरि स्फुटम्।
दासोऽस्मि तव तन्वङ्गि स्वामिनी भव भामिनि॥ ६५

तुम मेरी बात मानकर मन्दोदरीसे भी बड़ी पटरानी बन जाओ, मैं सत्य कहता हूँ। हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे भामिनि! तुम मेरी स्वामिनी हो जाओ॥ ६५॥

जेताहं लोकपालानां पतामि तव पादयोः।
करं गृहाण मेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि॥ ६६

समस्त लोकपालोंपर विजय प्राप्त करनेवाला मैं तुम्हारे चरणोंपर पड़ता हूँ। हे जनकनन्दिनि! तुम इस समय मेरा हाथ पकड़ लो और मुझे सनाथ कर दो॥ ६६॥

पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽबले।
जनको मामुवाचेत्थं पणबन्धो मया कृतः॥ ६७

हे अबले! मैंने पहले भी तुम्हारे पिता जनकसे तुम्हें प्राप्त करनेके लिये याचना की थी, किंतु उस समय उन्होंने मुझसे यह कहा था कि मैं [धनुषभंगकी] शर्त रख चुका हूँ॥ ६७॥

रुद्रचापभयान्नाहं सम्प्राप्तस्तु स्वयंवरे।
मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम्॥ ६८

शंकरजीके धनुषके भयके कारण मैं उस समय स्वयंवरमें सम्मिलित नहीं हुआ था। उसी समयसे विरह-वेदनासे पीड़ित मेरा मन तुममें ही लगा हुआ है॥ ६८॥

वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः।
आगतोऽस्म्यसितापाङ्गि सफलं कुरु मे श्रमम्॥ ६९

हे श्याम नयनोंवाली! तुम इस वनमें रह रही हो—यह सुनकर तुम्हारे प्रति पूर्व प्रेमके अधीन हुआ मैं यहाँ आया हूँ; अब तुम मेरा परिश्रम सार्थक कर दो॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
रामचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

~~~

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सीताहरण, रामका शोक और लक्ष्मणद्वारा उन्हें सान्त्वना देना

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचो दुष्टं जानकी भयविह्वला।
वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनो वाचमुवाच ह॥ १

पौलस्त्य किमसद्वाक्यं त्वमात्थ स्मरमोहितः।
नाहं वै स्वैरिणी किन्तु जनकस्य कुलोद्भवा॥ २

व्यासजी बोले—रावणका कुविचारपूर्ण वचन सुनकर सीता भयसे व्याकुल होकर काँप उठीं। पुनः मनको स्थिर करके उन्होंने कहा—हे पुलस्त्यके वंशज! कामके वशीभूत होकर तुम ऐसा अनर्गल वचन क्यों कह रहे हो? मैं स्वैरिणी नारी नहीं हूँ, बल्कि महाराज जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हूँ॥ १-२॥

गच्छ लङ्कां दशास्य त्वं रामस्त्वां वै हनिष्यति।
मत्कृते मरणं तत्र भविष्यति न संशयः॥ ३

हे दशकन्धर! तुम लंका चले जाओ, नहीं तो श्रीराम निश्चय ही तुम्हें मार डालेंगे। मेरे लिये ही तुम्हारी मृत्यु होगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥
~~~

इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ।
गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम्॥ ४

सोऽथ कृत्वा निजं रूपं जगामोटजमन्तिकम्।
बलाज्जग्राह तां बालां रुदतीं भयविह्वलाम्॥ ५

रामरामेति क्रन्दन्तीं लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः।
गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य सत्वरः॥ ६

गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रुद्धो जटायुषा।
संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वनान्तरे॥ ७

हत्वा तं तां गृहीत्वा च गतोऽसौ राक्षसाधिपः।
लङ्कायां क्रन्दती तात कुररीव दुरात्मना॥ ८

अशोकवनिकायां सा स्थापिता राक्षसीयुता।
स्ववृत्तान्नैव चलिता सामदानादिभिः किल॥ ९

रामोऽपि तं मृगं हत्वा जगामादाय निर्वृतः।
आयान्तं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम्॥ १०

एकाकिनीं प्रियां हित्वा किमर्थं त्वमिहागतः।
श्रुत्वा स्वनं तु पापस्य राघवस्त्वब्रवीदिदम्॥ ११

सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणपीडितः।
प्रभोऽत्राहं समायातः कालयोगान्न संशयः॥ १२

तदा तौ पर्णशालायां गत्वा वीक्ष्यातिदुःखितौ।
जानक्यन्वेषणे यत्नमुभौ कर्तुं समुद्यतौ॥ १३

मार्गमाणौ तु सम्प्राप्तौ यत्रासौ पतितः खगः।
जटायुः प्राणशेषस्तु पतितः पृथिवीतले॥ १४

तेनोक्तं रावणेनाद्य हृतासौ जनकात्मजा।
मया निरुद्धः पापात्मा पातितोऽहं मृधे पुनः॥ १५

ऐसा कह करके वे सीताजी जगत्‌को रुलानेवाले रावणके प्रति 'चले जाओ, चले जाओ' इस प्रकार बोलती हुई पर्णशालामें अग्निकुण्डके पास चली गयीं॥ ४॥

इतनेमें वह रावण अपना वास्तविक रूप धारण करके तुरन्त पर्णशालामें उनके पास जा पहुँचा और उसने भयसे व्याकुल होकर रोती हुई उस बाला सीताको बलपूर्वक पकड़ लिया॥ ५॥

हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!—ऐसा बार-बार कहकर विलाप करती हुई सीताको पकड़कर और उन्हें अपने रथपर बैठाकर रावण शीघ्रतापूर्वक निकल गया। तब अरुणपुत्र जटायुने जाते हुए उस रावणको मार्गमें रोक दिया। उस वनमें दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा॥ ६-७॥

हे तात! अन्तमें वह राक्षसराज रावण जटायुको मारकर और सीताको साथ लेकर चला गया। तदनन्तर उस दुष्टात्माने कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई सीताको लंकामें अशोकवाटिकामें रख दिया और उसकी रखवालीके लिये राक्षसियोंको नियुक्त कर दिया। उस राक्षसके साम-दान आदि उपायोंसे भी सीताजी अपने सतीत्वसे विचलित नहीं हुईं॥ ८-९॥

उधर श्रीराम भी स्वर्ण-मृगको शीघ्र मारकर उसे लिये हुए प्रसन्नतापूर्वक [आश्रमकी ओर] चल पड़े। मार्गमें आते हुए लक्ष्मणको देखकर वे बोले—भाई! यह तुमने कैसा विषम कार्य कर दिया? वहाँ प्रिया सीताको अकेली छोड़कर तथा इस पापीकी पुकार सुनकर तुम इधर क्यों चले आये?॥ १०-११॥

तब सीताके वचनरूपी बाणसे आहत लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैं कालकी प्रेरणासे यहाँ चला आया हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

तदनन्तर वे दोनों पर्णशालामें जाकर वहाँकी स्थिति देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और जानकीको खोजनेका प्रयत्न करने लगे॥ १३॥

खोजते हुए वे उस स्थानपर पहुँचे जहाँ पक्षिराज 'जटायु' गिरा पड़ा था। वह पृथ्वीपर मृतप्राय पड़ा हुआ था। उसने बताया कि रावण जानकीको अभी हर ले गया है। मैंने उस पापीको रोका, किंतु उसने युद्धमें मुझे मारकर गिरा दिया॥ १४-१५॥

इत्युक्त्वासौ गतप्राणः संस्कृतो राघवेण वै।
कृत्वौर्ध्वदैहिकं रामलक्ष्मणौ निर्गतौ ततः॥ १६

कबन्धं घातयित्वासौ शापाच्चामोचयत्प्रभुः।
वचनात्तस्य हरिणा सख्यं चक्रेऽथ राघवः॥ १७

हत्वा च वालिनं वीरं किष्किन्धाराज्यमुत्तमम्।
सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः॥ १८

तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः।
चिन्तयञ्जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम्॥ १९

लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः।
सौमित्रे कैकयसुता जाता पूर्णमनोरथा॥ २०

न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना।
नागमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनन्दिनीम्॥ २१

गतं राज्यं वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया।
पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति॥ २२

दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भरतानुज।
आवयोः का गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा॥ २३

प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल।
वनेऽतिदुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च॥ २४

त्यक्त्वा त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः।
दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम्॥ २५

न कोऽप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः।
अकिञ्चनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति॥ २६

किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे।
न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल॥ २७

ऐसा कहकर वह जटायु मर गया। तब श्रीरामने उसका दाह-संस्कार किया। उसकी समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके श्रीराम और लक्ष्मण वहाँसे आगे बढ़े॥ १६॥

मार्गमें कबन्धका वध करके भगवान् श्रीरामने उसे शापसे छुड़ाया और उसीके कथनानुसार उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की॥ १७॥

तदनन्तर पराक्रमी वालीका वध करके श्रीरामने कार्यसाधनहेतु किष्किन्धाका उत्तम राज्य अपने सखा सुग्रीवको दे दिया॥ १८॥

वहींपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने रावणके द्वारा अपहृत अपनी प्रिया जानकीके विषयमें मनमें सोचते हुए वर्षाके चार मास व्यतीत किये॥ १९॥

सीताके विरहमें अत्यन्त दुःखित श्रीरामने एक दिन लक्ष्मणसे कहा—हे सौमित्रे! कैकेयीकी कामना पूरी हो गयी। अभीतक जानकी नहीं मिली, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। जनकतनया सीताके बिना मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा॥ २०-२१॥

राज्य चला गया, वनवास करना पड़ा, पिताजी मृत हो गये और प्रिया सीता भी हर ली गयी। इस प्रकार मुझे पीड़ित करता हुआ दुर्दैव आगे न जाने क्या करेगा?॥ २२॥

हे भरतानुज! प्राणियोंके प्रारब्धको जान पाना अत्यन्त कठिन है। हे तात! अब हम दोनोंकी न जाने कौन-सी दुःखद गति होगी?॥ २३॥

मनुके कुलमें जन्म पाकर हम राजकुमार हुए; फिर भी हमलोग पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके कारण वनमें अत्यधिक दुःख भोग रहे हैं॥ २४॥

हे सौमित्रे! तुम भी भोगोंका परित्याग करके दैवयोगसे मेरे साथ निकल पड़े; तो फिर अब यह कठिन कष्ट भोगो॥ २५॥

हमारे कुलमें मेरे समान दुःख भोगनेवाला, अकिंचन, असमर्थ तथा क्लेशयुक्त व्यक्ति न हुआ है और न होगा॥ २६॥

हे लक्ष्मण! अब मैं क्या करूँ? मैं शोकसागरमें डूब रहा हूँ, मुझ असहायको इससे पार होनेका कोई

न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः।
कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेऽस्मिन्स्वकृतेऽनुज॥ २८

गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिन्द्रसमोपमम्।
वने वासस्तु सम्प्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम्॥ २९

बालभावाच्च वैदेही चलिता चावयोः सह।
नीता दैवेन दुष्टेन श्यामा दुःखतरां दशाम्॥ ३०

लङ्केशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखे भविष्यति।
पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम्॥ ३१

न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत्।
स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा॥ ३२

त्यजेत्प्राणान्नियंतृत्वे मैथिली भरतानुज।
न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम्॥ ३३

मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम्।
मृता चेदसितापाङ्गी किं मे देहेन लक्ष्मण॥ ३४

एवं विलपमानं तं रामं कमललोचनम्।
लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सान्त्वयन्नृतया गिरा॥ ३५

धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह।
आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम्॥ ३६

आपदि सम्पदि तुल्या धैर्याद्भवन्ति ते धीराः।
अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवन्ति विभवेऽपि॥ ३७

संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि।
शोकस्तु कीदृशस्तत्र देहेऽनात्मनि च क्वचित्॥ ३८

उपाय नहीं सूझता। हे वीर! मेरे पास न धन है, न बल; एकमात्र तुम ही मेरा साथ देनेवाले हो। हे अनुज! अपने ही द्वारा किये इस कर्मभोगके विषयमें अब मैं किसपर क्रोध करूँ?॥ २७-२८॥

इन्द्र और यमके राज्यकी तरह हाथमें आया हुआ राज्य क्षणभरमें चला गया और वनवास प्राप्त हुआ; विधिकी रचनाको कौन जान सकता है?॥ २९॥

बाल-स्वभावके कारण सीता भी हम दोनोंके साथ चली आयी। दुष्ट दैवने उस सुन्दरीको अत्यधिक दुःखपूर्ण स्थितिमें पहुँचा दिया॥ ३०॥

वह सुन्दरी जानकी लंकापति रावणके घरमें किस प्रकार दुःखित जीवन व्यतीत करती होगी? वह पतिव्रता है, शीलवती है और मुझसे अत्यधिक अनुराग रखती है॥ ३१॥

हे लक्ष्मण! वह जनकनन्दिनी उस रावणके वशमें कभी नहीं हो सकती, सुन्दर शरीरवाली वह विदेहतनया सीता स्वैरिणीकी भाँति भला किस प्रकार आचरण करेगी?॥ ३२॥

हे भरतानुज! वह मैथिली अधिक नियन्त्रण किये जानेपर अपने प्राण त्याग देगी, किंतु यह सुनिश्चित है कि वह रावणकी वशवर्तिनी नहीं होगी॥ ३३॥

हे वीर! यदि जानकी मर गयी तो मैं भी निस्सन्देह अपने प्राण त्याग दूँगा; क्योंकि हे लक्ष्मण! श्यामनयना सीताके मृत हो जानेपर मुझे अपने देहसे क्या लाभ?॥ ३४॥

इस प्रकार विलाप करते हुए उन कमलनयन रामको सत्यपूर्ण वाणीसे सान्त्वना प्रदान करते हुए धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—॥ ३५॥

हे महाबाहो! आप इस समय दैन्यभाव छोड़कर धैर्य धारण कीजिये। मैं उस अधम राक्षसको मारकर जानकीको वापस ले आऊँगा॥ ३६॥

विपत्ति तथा सम्पत्ति—इन दोनों ही स्थितियोंमें धैर्य धारण करते हुए जो एक समान रहते हैं, वे ही धीर होते हैं, किंतु अल्प बुद्धिवाले लोग तो सम्पत्तिकी दशामें भी कष्टमें पड़े रहते हैं॥ ३७॥

संयोग तथा वियोग—ये दोनों ही दैवके अधीन होते हैं। शरीर तो आत्मासे भिन्न है, अतः उसके लिये शोक कैसा?॥ ३८॥

राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा।
तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति॥ ३९

प्राप्तव्यं सुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित्।
नान्यथा जानकीजाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना॥ ४०

वानराः सन्ति भूयांसो गमिष्यन्ति चतुर्दिशम्।
शुद्धिं जनकनन्दिन्या आनयिष्यन्ति ते किल॥ ४१

ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र गत्वा कृत्वा पराक्रमम्।
हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम्॥ ४२

ससैन्यं भरतं वापि समाहूय सहानुजम्।
हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाग्रज॥ ४३

रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा।
तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव॥ ४४

एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान्।
किं पुनः ससहायो वै रावणं कुलपांसनम्॥ ४५

जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन।
हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकण्टकम्॥ ४६

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन॥ ४७

मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखसमुद्भवे।
स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन॥ ४८

इन्द्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन।
नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे॥ ४९

स्थितः पङ्कजमध्ये च बहुवर्षगणानपि।
अज्ञातवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम्॥ ५०

जिस प्रकार [प्रतिकूल समय आनेपर] राज्यसे निर्वासित होकर हमें वनवास भोगना पड़ा तथा सीताहरण हुआ, उसी प्रकार अनुकूल समय आनेपर संयोग भी हो जायगा॥ ३९॥

हे सीतापते! सुखों तथा दुःखोंके भोगसे छुटकारा कहाँ? वह तो निःसन्देह भोगना ही पड़ता है। अतः आप इस समय शोकका त्याग कर दीजिये॥ ४०॥

बहुतसे वानर हैं; वे चारों दिशाओंमें जायँगे और जानकीकी खोज-खबर ले आयेंगे। [पता लग जानेपर] मार्गकी जानकारी करके मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और आक्रमण करके उस पापकर्मवाले रावणका वध करके जानकीजीको अवश्य ले आऊँगा॥ ४१-४२॥

अथवा हे अग्रज! यदि इससे कार्य न चलेगा, तो मैं भरत तथा शत्रुघ्नको भी सेनासमेत बुला लूँगा और हमलोग उस शत्रुको मार डालेंगे; आप वृथा क्यों चिन्ता कर रहे हैं?॥ ४३॥

पूर्वकालमें राजा रघुने केवल एक रथसे ही चारों दिशाओंको जीत लिया था। हे राघवेन्द्र! आप उसी वंशके होकर शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ४४॥

अकेला मैं सभी देवताओं तथा दानवोंको जीतनेमें समर्थ हूँ, तब फिर आप-जैसे सहायकके रहते उस कुलकलंकी रावणका वध करनेमें क्या कठिनाई है?॥ ४५॥

अथवा हे रघुनन्दन! मैं महाराज जनकको सहायताके लिये बुलाकर देवताओंके कण्टकस्वरूप उस दुराचारी रावणका वध कर डालूँगा॥ ४६॥

हे रघुनन्दन! सुखके बाद दुःख तथा दुःखके बाद सुख पहियेकी धुरीकी तरह आया-जाया करते हैं। सदा एक स्थिति नहीं रहती। सुख-दुःखके आनेपर जिसका मन कातर हो जाता है, वह शोकसागरमें निमग्न रहता है और कभी सुखी नहीं रह सकता॥ ४७-४८॥

हे राघव! पूर्वकालमें इन्द्रके ऊपर भी विपत्ति आयी थी, तब सभी देवताओंने उनके स्थानपर राजा नहुषको स्थापित कर दिया था। उस समय इन्द्रने भयवश अपना पद त्यागकर बहुत दिनोंतक कमलवनमें छिपकर अज्ञातवास किया था। समय बदलनेपर

पुनः प्राप्तं निजं स्थानं काले विपरिवर्तिते।
नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः॥ ५१

इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमन्य च।
अगस्तिकोपात्सञ्जातः सर्पदेहो महीपतिः॥ ५२

तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव।
उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता॥ ५३

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते।
किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि॥ ५४

व्यास उवाच

इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः।
त्यक्त्वा शोकं तथात्यर्थं बभूव विगतज्वरः॥ ५५

उन्होंने पुनः अपना पद प्राप्त कर लिया और नहुषको शापवश अजगरके रूपमें होकर पृथ्वीपर गिरना पड़ा। ब्राह्मणोंका अपमान करके इन्द्राणीको पानेकी इच्छाके कारण ही अगस्त्यमुनिके कोपपूर्वक शाप देनेसे राजा नहुष सर्पदेहवाले हो गये थे॥ ४९—५२॥

अतः हे राघव! दुःख आनेपर शोक नहीं करना चाहिये। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि ऐसी परिस्थितिमें मनको उद्यमशील बनाकर समयकी प्रतीक्षा करता रहे॥ ५३॥

हे महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं। हे जगत्पते! आप सर्वसमर्थ हैं; तब एक प्राकृत पुरुषकी भाँति आप अपने मनमें अत्यन्त शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार लक्ष्मणकी बातोंसे रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको सान्त्वना मिली और वे शोक त्यागकर बिलकुल निश्चिन्त हो गये॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
लक्ष्मणकृतरामशोकसान्त्वनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीराम और लक्ष्मणके पास नारदजीका आना और उन्हें नवरात्रव्रत करनेका परामर्श देना, श्रीरामके पूछनेपर नारदजीका उनसे देवीकी महिमा और नवरात्रव्रतकी विधि बतलाना, श्रीरामद्वारा देवीका पूजन और देवीद्वारा उन्हें विजयका वरदान देना

व्यास उवाच

एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः।
आजगाम तदाकाशान्नारदो भगवानृषिः॥ १

रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम्।
गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान्॥ २

दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम्।
आसनं चार्घपाद्यञ्च कृतवानमितद्युतिः॥ ३

पूजां परमिकां कृत्वा कृताञ्जलिरुपस्थितः।
उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः॥ ४

व्यासजी बोले—इस प्रकार राम और लक्ष्मण परस्परमें परामर्श करके ज्यों ही चुप हुए, त्यों ही आकाशमार्गसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये॥ १॥

उस समय वे स्वर तथा ग्रामसे विभूषित अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा बृहद्रथन्तर सामका गायन करते हुए उनके समीप पहुँचे॥ २॥

उन्हें देखते ही अमित तेजवाले श्रीरामने उठकर उन्हें श्रेष्ठ पवित्र आसन प्रदान किया और तत्पश्चात् अर्घ्य तथा पाद्यसे उनकी पूजा की॥ ३॥

भलीभाँति पूजा करनेके बाद भगवान् श्रीराम हाथ जोड़कर खड़े हो गये और फिर मुनिके आज्ञा देनेपर उनके पास ही बैठ गये॥ ४॥

उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम्।
पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः॥ ५

कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः।
हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना॥ ६

सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम्।
पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता॥ ७

तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै।
मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप॥ ८

पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी।
रावणेन वने दृष्टा तपस्यन्ती शुचिस्मिता॥ ९

प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव।
तिरस्कृतस्तयासौ वै जग्राह कबरं बलात्॥ १०

शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम्।
कुपिता त्यक्तुमिच्छन्ती देहं संस्पर्शदूषितम्॥ ११

दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले।
अयोनिजा वरा नारी त्यक्त्वा देहं जहावपि॥ १२

सेयं रमांशसम्भूता गृहीता तेन रक्षसा।
विनाशार्थं कुलस्यैव व्याली स्रगिव सम्भ्रमात्॥ १३

तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः।
प्रार्थितस्य हरेरंशादजवंशेऽप्यजन्मनः॥ १४

कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा।
सतीधर्मरता सीता त्वां ध्यायन्ती दिवानिशम्॥ १५

तब अपने अनुज लक्ष्मणके साथ बैठे हुए खिन्न-मनस्क रामसे मुनीन्द्र नारदजी प्रेमपूर्वक कुशलक्षेम पूछने लगे॥ ५॥

नारदजी बोले—हे राघव! आप इस समय साधारण मनुष्यके समान शोकाकुल क्यों हैं? मैं यह जानता हूँ कि दुष्ट रावण सीताको हर ले गया है। जब मैं देवलोकमें गया था, तभी मैंने वहाँ सुना कि अपनी मृत्युको न जाननेसे ही मोहके वशीभूत होकर रावणने जनकनन्दिनीका हरण कर लिया है॥ ६-७॥

हे काकुत्स्थ! आपका जन्म ही रावणके निधनके लिये हुआ है। हे नराधिप! इसी कार्यसिद्धिके लिये सीताका हरण हुआ है॥ ८॥

पूर्वजन्ममें ये वैदेही एक मुनिकी तपस्विनी कन्या थीं। उस पवित्र मुसकानवाली कन्याको रावणने वनमें तप करते हुए देखा। हे राघव! तब रावणने उससे प्रार्थना की कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ। इसपर उसके द्वारा तिरस्कृत किये गये रावणने बलपूर्वक उसके केश पकड़ लिये॥ ९-१०॥

हे राम! रावणके स्पर्शसे दूषित अपनी देहको त्यागनेकी आकांक्षा रखती हुई उस तापसी मुनिकन्याने अत्यन्त कुपित होकर उसे तत्काल यह घोर शाप दे दिया कि हे दुरात्मन्! तुम्हारे विनाशके लिये मैं भूतलपर गर्भसे जन्म न लेकर एक श्रेष्ठ स्त्रीके रूपमें प्रकट होऊँगी—ऐसा कहकर उस तापसीने अपना शरीर त्याग दिया॥ ११-१२॥

लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न यह सीता वही हैं; जिसे भ्रमवश माला समझकर नागिनको धारण करनेवाले व्यक्तिकी भाँति रावणने अपने ही वंशका नाश करनेके लिये हर लिया है॥ १३॥

हे काकुत्स्थ! आपका भी जन्म उसी रावणके नाशके लिये देवताओंके प्रार्थना करनेपर अनादि भगवान् विष्णुके अंशसे अजवंशमें हुआ है॥ १४॥

हे महाबाहो! आप धैर्य धारण करें; वे किसी दूसरेके वशमें नहीं हो सकतीं! वे सतीधर्मपरायण सीता लंकामें दिन-रात आपका ध्यान करती हुई रह रही हैं॥ १५॥

कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम्।
पानार्थं प्रेषितं तस्याः पीतं चैवामृतं तथा॥ १६

सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता।
जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया॥ १७

उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव।
व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि साम्प्रतम्॥ १८

नवरात्रोपवासञ्च भगवत्याः प्रपूजनम्।
सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः॥ १९

मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंसितैः।
दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि॥ २०

विष्णुना चरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा।
तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै॥ २१

सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम्।
विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै॥ २२

विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः।
भृगुणाथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च॥ २३

गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम्।
तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च॥ २४

इन्द्रेण वृत्रनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम्।
त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुरा कृतम्॥ २५

हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते।
विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतन्द्रितः॥ २६

श्रीराम उवाच

का देवी किंप्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया।
व्रतं किं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ २७

नारद उवाच

शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी।
सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी॥ २८

स्वयं इन्द्रने एक पात्रमें कामधेनुका दूध सीताको पीनेके लिये भेजा था, उस अमृततुल्य दूधको उन्होंने पी लिया है। वे कामधेनुके दुग्धपानसे भूख-प्यासके दुःखसे रहित हो गयी हैं। मैंने उन कमलनयनीको स्वयं देखा है॥ १६-१७॥

हे राघवेन्द्र! मैं उस रावणके नाशका उपाय बताता हूँ। अब आप इसी आश्विनमासमें श्रद्धापूर्वक नवरात्रव्रत कीजिये॥ १८॥

हे राम! नवरात्रमें उपवास तथा जप-होमके विधानसे किया गया भगवती-पूजन समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है। देवीको पवित्र बलि देकर तथा दशांश हवन करके आप पूर्ण शक्तिशाली बन जायँगे॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा स्वर्ग-लोकमें विराजमान इन्द्रने भी इसका अनुष्ठान किया था॥ २१॥

हे राम! सुखी मनुष्यको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये और कष्टमें पड़े हुए मनुष्यको तो यह व्रत विशेषरूपसे करना चाहिये॥ २२॥

हे काकुत्स्थ! विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ और कश्यप भी इस व्रतको कर चुके हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसी प्रकार हरण की गयी पत्नीवाले गुरु बृहस्पतिने भी इस व्रतको किया था। इसलिये हे राजेन्द्र! रावणके वध तथा सीताकी प्राप्तिके लिये आप इस व्रतको कीजिये। पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरके वधके लिये तथा शिवने त्रिपुरदैत्यके वधकें लिये यह सर्वश्रेष्ठ व्रत किया था। हे महामते! इसी प्रकार भगवान् विष्णुने भी मधुदैत्यके वधके लिये सुमेरुपर्वतपर यह व्रत किया था, अतः हे काकुत्स्थ! आप भी आलस्यरहित होकर विधिपूर्वक यह व्रत कीजिये॥ २३—२६॥

श्रीराम बोले—हे दयानिधे! आप सर्वज्ञ हैं, अतः मुझे विधिपूर्वक बताइये कि वे कौन देवी हैं, उनका प्रभाव क्या है, वे कहाँसे उत्पन्न हुई हैं, उनका नाम क्या है तथा वह व्रत कौन-सा है?॥ २७॥

नारदजी बोले—हे राम! सुनिये—वे देवी नित्य, सनातनी और आद्याशक्ति हैं, वे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देती हैं और अपनी आराधनासे सभी प्रकारके कष्ट दूर कर देती हैं॥ २८॥

कारणं सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनां रघूद्वह।
तस्याः शक्तिं विना कोऽपि स्पन्दितुं न क्षमो भवेत्॥ २९

विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम।
रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्या शक्तिः परा शिवा॥ ३०

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये।
तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिः कुतो भवेत्॥ ३१

न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः।
न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः॥ ३२

तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै।
संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुणा शिवा॥ ३३

सा भूत्वा सगुणा पश्चात्करोति भुवनत्रयम्।
पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन्दत्त्वा शक्तीश्च सर्वशः॥ ३४

तां ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।
सा विद्या परमा ज्ञेया वेदाद्या वेदकारिणी॥ ३५

असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल।
गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे॥ ३६

अकारादिक्षकारान्तैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः।
असंख्येयानि नामानि भवन्ति रघुनन्दन॥ ३७

श्रीराम उवाच

विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः।
करोम्यद्यैव श्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याः पूजनं तथा॥ ३८

नारद उवाच

पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदम्बिकाम्।
उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः॥ ३९

आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्यस्मिन्महीपते।
देवकार्यविधानार्थमुत्साहं प्रकरोम्यहम्॥ ४०

हे रघुनन्दन! वे ब्रह्मा आदि देवताओं तथा समस्त जीवोंकी कारणस्वरूपा हैं। उनसे शक्ति पाये बिना कोई हिल-डुल सकनेमें भी समर्थ नहीं है॥ २९॥

वे ही मेरे पिता ब्रह्माकी सृष्टि-शक्ति हैं, विष्णुकी पालन-शक्ति हैं तथा शंकरकी संहार-शक्ति हैं। वे कल्याणमयी पराम्बा अन्य शक्तिरूपा भी हैं॥ ३०॥

इन तीनों लोकोंमें जो कुछ भी कहीं भी सत् या असत् पदार्थ है, उसकी उत्पत्तिमें निमित्तकारण इस देवीके अतिरिक्त और कौन हो सकता है?॥ ३१॥

इस सृष्टिके आरम्भमें जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्रादि देवता, पृथ्वी और पर्वत आदि कुछ भी नहीं रहता, तब उस समय वे निर्गुणा, कल्याणमयी, परा प्रकृति ही परमपुरुषके साथ विहार करती हैं॥ ३२-३३॥

वे ही बादमें सगुणा शक्ति बनकर सर्वप्रथम ब्रह्मा आदिका सृजन करके और उन्हें शक्तियाँ प्रदानकर तीनों भुवनोंकी सम्यक् रचना करती हैं॥ ३४॥

उन आदिशक्तिको जानकर प्राणी संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। विद्यास्वरूपा, वेदोंकी आदिकारण, वेदोंको प्रकट करनेवाली तथा परमा उन भगवतीको अवश्य जानना चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्मादि देवताओंने गुण-कर्मके विधानानुसार उनके असंख्य नाम कल्पित किये हैं, मैं कहाँतक बताऊँ? हे रघुनन्दन! 'अ' कारसे लेकर 'क्ष' पर्यन्त सभी स्वरों तथा वर्णोंके संयोगसे उनके असंख्य नाम बनते हैं॥ ३६-३७॥

श्रीराम बोले—हे देवर्षे! इस नवरात्रव्रतका विधान मुझे संक्षेपमें बताइये; मैं आज ही श्रद्धापूर्वक श्रीदेवीका विधिवत् पूजन करूँगा॥ ३८॥

नारदजी बोले—हे राम! किसी समतल भूमिपर पीठासन बनाकर उसपर भगवती जगदम्बिकाकी स्थापना करके विधानपूर्वक नौ दिन उपवास कीजिये। हे राजन्! इस कार्यमें मैं आचार्य बनूँगा; क्योंकि देवताओंके कार्य करनेमें मैं अधिक उत्साह रखता हूँ॥ ३९-४०॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान्।
कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाम्बिकां शिवाम्॥ ४१

विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान् हरिः।
सम्प्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन्गिरिवरे तदा॥ ४२

उपवासपरो रामः कृतवान्व्रतमुत्तमम्।
होमञ्च विधिवत्तत्र बलिदानञ्च पूजनम्॥ ४३

भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसम्मतम्।
अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा॥ ४४

सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता।
गिरिशृङ्गे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा॥ ४५

मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता।

देव्युवाच

राम राम महाबाहो तुष्टास्म्यद्य व्रतेन ते॥ ४६

प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते।
नारायणांशसम्भूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे॥ ४७

रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वममैररसि।
पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा घोरञ्च राक्षसम्॥ ४८

त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता।
भूत्वा कच्छपरूपस्तु धृतवान्मन्दरं गिरिम्॥ ४९

अकूपारं प्रमन्थानं कृत्वा देवानपोषयः।
कोलरूपं परं कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम्॥ ५०

धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं जघान च।
नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा॥ ५१

प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव।
वामनं वपुरास्थाय पुरा छलितवान्बलिम्॥ ५२

भूत्वेन्द्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः।
जमदग्निसुतस्त्वं मे विष्णोरंशेन सङ्गतः॥ ५३

व्यासजी बोले—नारदजीका वचन सुनकर प्रतापी श्रीरामने उसे सत्य मानकर तदनुसार एक सुन्दर पीठासन बनवाकर उसपर अम्बिकाकी स्थापना की। व्रतधारी भगवान् श्रीरामने आश्विनमास लगनेपर उस श्रेष्ठ पर्वतपर उन भगवतीका पूजन किया। उपवासपरायण श्रीरामने यह श्रेष्ठ व्रत करते हुए विधिवत् होम, बलिदान और पूजन किया। इस प्रकार दोनों भाइयोंने नारदजीके द्वारा बताये गये इस व्रतको प्रेमपूर्वक सम्पन्न किया। उनसे सम्यक् पूजित होकर अष्टमीकी मध्यरात्रिकी वेलामें भगवती दुर्गाने सिंहपर सवार होकर उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। तदनन्तर भक्तिभावसे प्रसन्न उन भगवतीने पर्वतके शिखरपर स्थित होकर लक्ष्मणसहित रामसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ४१—४५$\frac{१}{२}$॥

देवी बोलीं—हे राम! हे महाबाहो! इस समय मैं आपके व्रतसे सन्तुष्ट हूँ। आपके मनमें जो भी हो, उस अभिलषित वरको माँग लीजिये। आप पवित्र मनुवंशमें नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। हे राम! देवताओंके प्रार्थना करनेपर रावणके वधके लिये आप अवतरित हुए हैं। पूर्वकालमें मत्स्यरूप धारणकर भयानक राक्षसका वध करके देवताओंके हितकी इच्छावाले आपने ही वेदोंकी रक्षा की थी। पुनः कच्छपके रूपमें अवतार लेकर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया, जिससे समुद्रका मन्थन करके [अमृतपान कराकर] देवताओंका पोषण किया था। हे राम! आपने वराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंकी नोंकपर पृथ्वीको रख लिया और हिरण्याक्षका वध किया था। हे राघव! हे राम! पूर्वकालमें नरसिंहका रूप धारणकर प्रह्लादकी रक्षा करके आपने हिरण्यकशिपुका वध किया था। इसी प्रकार पूर्वकालमें वामनका रूप धारण करके आपने बलिको छला था। उस समय इन्द्रका लघु भ्राता बनकर आपने देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया था। पुनः भगवान् विष्णुके अंशसे जमदग्निके

कृत्वान्तं क्षत्रियाणां तु दानं भूमेरदाद् द्विजे।
तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः॥ ५४

प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वै रावणेनातिपीडितैः।
कपयस्ते सहाया वै देवांशा बलवत्तराः॥ ५५

भविष्यन्ति नरव्याघ्र मच्छक्तिसंयुता ह्यमी।
शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः॥ ५६

भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्र त्वयानघ।
वसन्ते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया॥ ५७

हत्वाथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम्।
एकादशसहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले॥ ५८

कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गन्तासि त्रिदिवं पुनः।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः॥ ५९

समाप्य तद् व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमीदिने।
विजयापूजनं कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः॥ ६०

कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च
प्रकटपरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः।
उदधितटगतोऽसौ सेतुबन्धं विधाया-
प्यहनदमरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः॥ ६१

यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम्।
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम्॥ ६२

सन्त्यन्यानि पुराणानि विस्तराणि बहूनि च।
श्रीमद्भागवतस्यास्य न तुल्यानीति मे मतिः॥ ६३

पुत्र परशुरामके रूपमें अवतरित होकर क्षत्रियोंका अन्त करके आपने सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी थी। उसी प्रकार हे काकुत्स्थ! रावणके द्वारा अत्यधिक सताये गये सभी देवताओंके प्रार्थना करनेपर इस समय आप ही दशरथपुत्र श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ४६—५४½॥

हे नरोत्तम! देवताओंके अंशसे उत्पन्न ये परम बलशाली वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर आपके सहायक होंगे। शेषनागके अंशस्वरूप आपके ये अनुज लक्ष्मण रावणके पुत्र मेघनादका वध करनेवाले होंगे। हे अनघ! इस विषयमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५५-५६½॥

वसन्त ऋतुके नवरात्रमें आप परम श्रद्धाके साथ [पुनः] मेरी पूजा कीजिये। तत्पश्चात् पापी रावणका वध करके आप सुखपूर्वक राज्य कीजिये। हे रघुश्रेष्ठ! इस प्रकार ग्यारह हजार वर्षोंतक भूतलपर राज्य करके पुनः आप देवलोकके लिये प्रस्थान करेंगे॥ ५७-५८½॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती दुर्गा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न मनसे उस व्रतका समापन करके दशमी तिथिको विजयापूजन करके तथा अनेकविध दान देकर वहाँसे प्रस्थान कर दिया॥ ५९-६०॥

वानरराज सुग्रीवकी सेनाके साथ अपने अनुज-सहित विख्यात यशवाले तथा पूर्णकाम लक्ष्मीपति श्रीराम साक्षात् परमा शक्तिकी प्रेरणासे समुद्रतटपर पहुँचे। वहाँ सेतु-बन्धन करके उन्होंने देवशत्रु रावणका संहार किया॥ ६१॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवीके उत्तम चरित्रका श्रवण करता है, वह अनेक सुखोंका उपभोग करके परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ६२॥

यद्यपि अन्य बहुतसे विस्तृत पुराण हैं, किंतु वे इस श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके तुल्य नहीं हैं, ऐसी मेरी धारणा है॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
रामाय देवीवरदानं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

* * *

॥ तृतीयः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

चतुर्थः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

वसुदेव, देवकी आदिके कष्टोंके कारणके सम्बन्धमें जनमेजयका प्रश्न

जनमेजय उवाच

वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ।
प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन॥ १

शूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान्।
श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान्॥ २

देवानामपि पूज्योऽभून्नाम्ना चानकदुन्दुभिः।
कारागारे कथं बद्धः कंसस्य धर्मतत्परः॥ ३

देवक्या भार्यया सार्धं किमागः कृतवानसौ।
देवक्या बालषट्कस्य विनाशश्च कृतः पुनः॥ ४

तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च।
कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः॥ ५

गोकुले च कथं नीतो भगवान्सात्वतां पतिः।
गतो जन्मान्तरं कस्मात्पितरौ निगडे स्थितौ॥ ६

देवकी वसुदेवौ च कृष्णस्यामिततेजसः।
कथं न मोचितौ वृद्धौ पितरौ हरिणामुना॥ ७

जगत्कर्तुं समर्थेन स्थितेन जनकोदरे।
प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेयं महात्मभिः॥ ८

जन्म वै वासुदेवस्य यत्रासीत्परमात्मनः।
के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता॥ ९
शिलायां निर्गता व्योम्नि जाता त्वष्टभुजा पुनः।

जनमेजय बोले—हे वासवेय! हे मुनिवर! हे सर्वज्ञाननिधे! हे अनघ! हमारे कुलकी वृद्धि करनेवाले हे स्वामिन्! मैं [श्रीकृष्णके विषयमें] पूछना चाहता हूँ॥ १॥

मैंने सुना है कि परम प्रतापी श्रीमान् वसुदेव राजा शूरसेनके पुत्र थे, जिनके पुत्ररूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु अवतरित हुए थे॥ २॥

आनकदुन्दुभि नामसे विख्यात वे वसुदेव देवताओंके भी पूज्य थे। धर्मपरायण होते हुए भी वे कंसके कारागारमें क्यों बन्द हुए? उन्होंने अपनी भार्या देवकीसहित ऐसा क्या अपराध किया था, जिससे ययातिके कुलमें उत्पन्न कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया गया?॥ ३-४½॥

साक्षात् भगवान् विष्णुने वसुदेवके पुत्ररूपमें कारागारमें जन्म क्यों ग्रहण किया? देवताओंके अधिपति भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलमें किस प्रकार ले जाये गये और वे भगवान् होते हुए भी जन्मान्तरको क्यों प्राप्त हुए? अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके माता-पिता वसुदेव और देवकीको बन्धनमें क्यों आना पड़ा? जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ उन भगवान् श्रीकृष्णने माता देवकीके गर्भमें स्थित रहते हुए ही अपने वृद्ध माता-पिताको बन्धनसे मुक्त क्यों नहीं कर दिया? उन वसुदेव तथा देवकीने महात्माओंद्वारा भी दुःसाध्य ऐसे कौन-से कर्म पूर्वजन्ममें किये थे, जिससे उनके यहाँ परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ? वे छः पुत्र कौन थे, वह कन्या कौन थी, जिसे कंसने पत्थरपर पटक दिया था और वह हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी तथा पुनः अष्टभुजाके रूपमें प्रकट हुई?॥ ५-९½॥

गार्हस्थ्यञ्च हरेर्ब्रूहि बहुभार्यस्य चानघ॥ १०

कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागं च तस्य वै।
किंवदन्त्या श्रुतं यत्तन्मनो मोहयतीव मे॥ ११

चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहि यथातथम्।
नरनारायणौ देवौ पुराणावृषिसत्तमौ॥ १२

धर्मपुत्रौ महात्मानौ तपश्चेरतुरुत्तमम्।
यौ मुनी बहुवर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ १३

निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ।
विष्णोरंशौ जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम्॥ १४

तयोरंशावतारौ हि जिष्णुकृष्णौ महाबलौ।
प्रसिद्धौ मुनिभिः प्रोक्तौ सर्वज्ञैर्नारदादिभिः॥ १५

विद्यमानशरीरौ तौ कथं देहान्तरं गतौ।
नरनारायणौ देवौ पुनः कृष्णार्जुनौ कथम्॥ १६

यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रं मुक्त्यर्थं मुनिसत्तमौ।
तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ॥ १७

शूद्रः स्वधर्मनिष्ठस्तु देहान्ते क्षत्रियस्तु सः।
शुभाचारो मृतो यो वै स शूद्रो ब्राह्मणो भवेत्॥ १८

ब्राह्मणो निःस्पृहः शान्तो भवरोगाद्विमुच्यते।
विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ॥ १९

तपसा शोषितात्मानौ क्षत्रियौ तौ बभूवतुः।
केन तौ कर्मणा शान्तौ जातौ शापेन वा पुनः॥ २०

ब्राह्मणौ क्षत्रियौ जातौ कारणं तन्मुने वद।
यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादिति श्रुतः॥ २१

कृष्णस्यापि हि गान्धार्याः शापेनैव कुलक्षयः।
प्रद्युम्नहरणं चैव शम्बरेण कथं कृतम्॥ २२

हे अनघ! बहुत-सी पत्नियोंवाले श्रीकृष्णके गृहस्थ-जीवन, उसमें उनके द्वारा किये गये कार्यों तथा अन्तमें उनके शरीर-त्यागके विषयमें बताइये। किंवदन्तीके आधारपर मैंने भगवान् श्रीकृष्णका जो चरित्र सुना है, उससे मेरा मन परम विस्मयमें पड़ गया है। अतः आप उनके चरित्रका सम्यक् रूपसे वर्णन कीजिये॥ १०-११½॥

पुरातन, धर्मपुत्र, महात्मा तथा देवस्वरूप ऋषिश्रेष्ठ नर-नारायणने उत्तम तप किया था। जगत्‌के कल्याणार्थ निराहार, जितेन्द्रिय तथा स्पृहारहित रहते हुए काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य—इन छहोंपर पूर्ण नियन्त्रण रखकर साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप जिन नर-नारायण मुनियोंने पुण्यक्षेत्र बदरिकाश्रममें बहुत वर्षोंतक श्रेष्ठ तपस्या की थी, नारद आदि सर्वज्ञ मुनियोंने प्रसिद्ध तथा महाबलसम्पन्न अर्जुन तथा श्रीकृष्णको उन्हीं दोनोंका अंशावतार बताया है। उन भगवान् नर-नारायणने एक शरीर धारण करते हुए भी दूसरा जन्म क्यों प्राप्त किया और पुनः वे कृष्ण तथा अर्जुन कैसे हुए?॥ १२—१६॥

जिन मुनिप्रवर नर-नारायणने मुक्तिहेतु कठोर तपस्या की थी; उन महातपस्वी तथा योगसिद्धिसम्पन्न दोनों देवोंने मानव-शरीर क्यों प्राप्त किया?॥ १७॥

अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाला शूद्र अगले जन्ममें क्षत्रिय होता है और जो शूद्र वर्तमान जन्ममें पवित्र आचरण करता है, वह मृत्युके अनन्तर ब्राह्मण होता है। कामनाओंसे रहित शान्त-स्वभाव ब्राह्मण पुनर्जन्मरूपी रोगसे मुक्त हो जाता है, किंतु उनके विषयमें तो सर्वथा विपरीत स्थिति दिखायी देती है। उन नर-नारायणने तपस्यासे अपना शरीरतक सुखा दिया, फिर भी वे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हो गये। शान्त-स्वभाव वे दोनों अपने किस कर्मसे अथवा किस शापसे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हुए? हे मुने! वह कारण बताइये॥ १८—२०½॥

मैंने यह भी सुना है कि यादवोंका विनाश ब्राह्मणके शापसे हुआ था और गान्धारीके शापसे ही श्रीकृष्णके वंशका विनाश हुआ था। शम्बरासुरने

वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने।
पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम्॥ २३

द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्माहुरत्ययात्।
न ज्ञातं वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा॥ २४

सन्देहोऽयं महान्ब्रह्मन्निःसन्देहं कुरु प्रभो।
यत्पत्न्यो वासुदेवस्य दस्युभिर्लुण्ठिता हृताः॥ २५

स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम।
संशयो जायते ब्रह्मंश्चित्तान्दोलनकारकः॥ २६

विष्णोरंशः समुद्भूतः शौरिर्भूभारहारकृत्।
स कथं मथुराराज्यं भयात्त्यक्त्वा जनार्दनः॥ २७

द्वारवत्यां गतः साधो ससैन्यः ससुहृद्गणः।
अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै॥ २८

पापात्मनां विनाशाय धर्मसंस्थापनाय च।
तत्कथं वासुदेवेन चौरास्ते न निपातिताः॥ २९

यैर्हृता वासुदेवस्य पत्न्यः संलुण्ठिताश्च ताः।
स्तेनास्ते किं न विज्ञाताः सर्वज्ञेन सता पुनः॥ ३०

भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः।
अर्चिताश्च महात्मानः पाण्डवा धर्मतत्पराः॥ ३१

कृष्णभक्ताः सदाचारा युधिष्ठिरपुरोगमाः।
ते कृत्वा राजसूयञ्च यज्ञराजं विधानतः॥ ३२

दक्षिणा विविधा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः।
पाण्डुपुत्रास्तु देवांशा वासुदेवाश्रिता मुने॥ ३३

घोरं दुःखं कथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतञ्च तत्।
किं तत्पापं महारौद्रं येन ते पीडिताः सदा॥ ३४

कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नका अपहरण क्यों किया? देवाधिदेव जनार्दन वासुदेवके रहते सूतिकागृहसे पुत्रका हरण हो जाना एक अत्यन्त अद्भुत बात है। द्वारकाके किलेमें श्रीकृष्णके दुर्गम राजमहलसे पुत्रका हरण हो गया; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी दिव्य दृष्टिसे क्यों नहीं देख लिया? हे ब्रह्मन्! यह एक महान् शंका मेरे समक्ष उपस्थित है। हे प्रभो! आप मुझे सन्देह-मुक्त कर दीजिये॥ २१—२४½॥

देवदेव श्रीकृष्णके स्वर्गगमनके अनन्तर उनकी पत्नियोंको लुटेरोंने लूट लिया; हे मुनिराज! वह कैसे हुआ? हे ब्रह्मन्! मनको आन्दोलित कर देनेवाला यह संदेह मुझे हो रहा है॥ २५-२६॥

श्रीकृष्ण भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे और उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा था। हे साधो! ऐसे वे जनार्दन जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य छोड़कर अपनी सेना तथा बन्धु-बान्धवोंके सहित द्वारकापुरी क्यों चले गये? ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्णका अवतार पृथ्वीको भारसे मुक्त करने, पापाचारियोंको विनष्ट करने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये हुआ था, फिर भी वासुदेवने उन लुटेरोंको क्यों नहीं मार डाला, जिन लुटेरोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूटा तथा उनका हरण किया? सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीकृष्ण उन चोरोंको क्यों नहीं जान सके?॥ २७—३०॥

भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्यका वध पृथ्वीका भार-हरणस्वरूप कार्य कैसे माना गया? युधिष्ठिर आदि सदाचारवान्, महात्मा, धर्मपरायण, पूज्य तथा श्रीकृष्ण-भक्त उन पाण्डवोंने यज्ञोंके राजा कहे जानेवाले राजसूय-यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक अनेक प्रकारकी दक्षिणाएँ दीं। हे मुने! वे पाण्डु-पुत्र देवताओंके अंशसे प्रादुर्भूत थे तथा श्रीकृष्णके आश्रित थे, फिर भी उन्हें इतने महान् कष्ट क्यों भोगने पड़े? उस समय उनके पुण्य कार्य कहाँ चले गये थे? उन्होंने ऐसा कौन-सा महाभयानक पाप किया था, जिसके कारण वे सदा कष्ट पाते रहे?॥ ३१—३४॥

द्रौपदी च महाभागा वेदीमध्यात्समुत्थिता।
रमांशजा च साध्वी च कृष्णभक्तियुता तथा॥ ३५

सा कथं दुःखमतुलं प्राप घोरं पुनः पुनः।
दुःशासनेन सा केशे गृहीता पीडिता भृशम्॥ ३६

रजस्वला सभायां तु नीता भीतैकवाससा।
विराटनगरे दासी जाता मत्स्यस्य सा पुनः॥ ३७

धर्षिता कीचकेनाथ रुदती कुररी यथा।
हृता जयद्रथेनाथ क्रन्दमानातिदुःखिता॥ ३८

मोचिता पाण्डवैः पश्चाद् बलवद्भिर्महात्मभिः।
पूर्वजन्मकृतं पापं किं तद्येन च पीडिताः॥ ३९

दुःखान्यनेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते।
राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः॥ ४०

दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन वै।
देवांशानां कथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे॥ ४१

सदाचारैस्तु कौन्तेयैर्भीष्मद्रोणादयो हताः।
छलेन धनलाभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत्॥ ४२

प्रेरिता वासुदेवेन पापे घोरे महात्मना।
कुलं क्षयितवन्तस्ते हरिणा परमात्मना॥ ४३

वरं भिक्षाटनं साधोर्नीवारैर्जीवनं वरम्।
योधान्न हत्वा लोभेन शिल्पेन जीवनं वरम्॥ ४४

पुण्यात्मा द्रौपदी यज्ञकी वेदीके मध्यसे प्रकट हुई थी। वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी, साध्वी थी तथा सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें लीन रहती थी। उस द्रौपदीने भी बार-बार महाभीषण संकट क्यों प्राप्त किया? दुःशासनके द्वारा उसे बाल पकड़कर घसीटा गया तथा अत्यधिक प्रताड़ित किया गया। केवल एक वस्त्र धारण की हुई वह भयाकुल द्रौपदी रजस्वलावस्थामें ही कौरवोंकी सभामें ले जायी गयी। पुनः उसे विराटनगरमें मत्स्यनरेशकी दासी बनना पड़ा। कीचकके द्वारा अपमानित होनेपर वह कुररी पक्षीकी भाँति बहुत रोयी थी। पुनः जयद्रथने उसका अपहरण कर लिया, जिसपर वह करुणक्रन्दन करती हुई अत्यधिक दुःखित हुई थी। बादमें बलवान् महात्मा पाण्डवोंने उसे मुक्त कराया था। क्या यह उन सबके पूर्वजन्ममें किये गये पापकृत्यका फल था, जो वे इतने पीड़ित हुए?॥ ३५—३९॥

हे महामते! उन्हें नानाविध कष्ट प्राप्त हुए, मुझे इसका कारण बताइये। यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञ करनेपर भी मेरे उन पूर्वजोंने महान् कष्ट प्राप्त किया। लगता है पूर्वजन्ममें कृत कर्मोंका ही यह फल है। देवताओंके अंश होनेपर भी उन्हें कष्ट प्राप्त हुआ; मुझे यह महान् सन्देह है!॥ ४०-४१॥

महान् सदाचारपरायण पाण्डवोंने जगत्को नाशवान् जाननेके बावजूद भी धनके लोभसे छद्मका आश्रय लेकर भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य आदिका संहार किया॥ ४२॥

महात्मा वासुदेवने उन्हें इस घोर पापकृत्यके लिये प्रेरित किया और उन्हीं परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित किये जानेपर उन पाण्डवोंने अपने कुलका विनाश कर डाला॥ ४३॥

सज्जन पुरुषोंके लिये भिक्षा माँगकर अथवा नीवार आदि खाकर जीवन बिता लेना श्रेयस्कर होता है। लोभके वशीभूत होकर वीर पुरुषोंका वध न करके शिल्पकार्य आदिके माध्यमसे जीवन-यापन करना उत्तम होता है॥ ४४॥

विच्छिन्नस्तु त्वया वंशो रक्षितो मुनिसत्तम।
समुत्पाद्य सुतानाशु गोलकाञ्छत्रुनाशनान्॥ ४५

सोऽल्पेनैव तु कालेन विराटतनयासुतः।
तापसस्य गले सर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम्॥ ४६

न कोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्य कुलोद्भवः।
तापसं मौनसंयुक्तं पित्रा किं तत्कृतं मुने॥ ४७

एतैरन्यैश्च सन्देहैर्विकलं मे मनोऽधुना।
स्थिरं कुरु पितः साधो सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ ४८

हे मुनिसत्तम! आपने वंशके समाप्त हो जानेपर शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ गोलक पुत्रोंको [नियोगद्वारा] उत्पन्न करके शीघ्र ही वंशकी रक्षा की थी॥ ४५॥

कुछ ही समयके पश्चात् विराटपुत्री उत्तराके पुत्र महाराज परीक्षित्ने एक तपस्वीके गलेमें मृत सर्प डाल दिया। यह अद्भुत घटना कैसे घटित हो गयी?॥ ४६॥

क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ब्राह्मणसे द्वेष नहीं करता है। हे मुने! मेरे पिताने मौनव्रत धारण किये हुए उन तपस्वीके साथ ऐसा क्यों किया?॥ ४७॥

इन तथा अन्य कई प्रकारकी शंकाओंसे मेरा मन इस समय आकुलित हो रहा है। हे तात! हे साधो! हे दयानिधे! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव [सन्देहोंको दूर करके] मेरे मनको शान्त कीजिये॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
जनमेजयप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

~~0~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यासजीका जनमेजयको कर्मकी प्रधानता समझाना

सूत उवाच

एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः।
परीक्षितसुतं शान्तं ततो वै जनमेजयम्॥ १

उवाच संशयच्छेत्तृ वाक्यं वाक्यविशारदः।

व्यास उवाच

राजन् किमेतद्वक्तव्यं कर्मणां गहना गतिः॥ २

दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा।
यदा समुत्थितं चैतद् ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम्॥ ३

कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः।
अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः॥ ४

नानायोनिषु जायन्ते म्रियन्ते च पुनः पुनः।
कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन॥ ५

सूतजी बोले—हे मुनियो! ऐसा पूछे जानेपर पुराणवेत्ता, वाणीविशारद सत्यवती-पुत्र महर्षि व्यासने शान्त स्वभाववाले परीक्षित्-पुत्र जनमेजयसे उनके सन्देहोंको दूर करनेवाले वचन कहे—॥ १½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस विषयमें क्या कहा जाय। कर्मोंकी बड़ी गहन गति होती है। कर्मकी गति जाननेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानवोंकी क्या बात! जब इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डका आविर्भाव हुआ, उसी समयसे कर्मके द्वारा सभीकी उत्पत्ति होती आ रही है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। आदि तथा अन्तसे रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न होते हैं। वे जीव नानाविध योनियोंमें बार-बार पैदा होते हैं और मरते हैं। कर्मसे रहित जीवका देह-संयोग कदापि सम्भव नहीं है॥ २—५॥

शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम्।
त्रिविधानि हि तान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये॥ ६

सञ्चितानि भविष्यन्ति प्रारब्धानि तथा पुनः।
वर्तमानानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणां किल॥ ७

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां तद्वशत्वं नराधिप।
सुखं दुःखं जरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा॥ ८

कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः।
दैवाधीनाश्च सर्वेषां प्रभवन्ति नराधिप॥ ९

रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवन्ति हि।
देवानां मानवानाञ्च तिरश्चां च तथा पुनः॥ १०

विकाराः सर्व एवैते देहेन सह सङ्गताः।
पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः॥ ११

उत्पत्तिः सर्वजन्तूनां विना कर्म न विद्यते।
कर्मणा भ्रमते सूर्यः शशाङ्कः क्षयरोगवान्॥ १२

कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैव न संशयः।
अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्म विद्यते॥ १३

तेनेह शाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा॥ १४

न जानन्ति किमेतद्वै नित्यं वानित्यमेव च।
मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते॥ १५

कार्याभावः कथं वाच्यः कारणे सति सर्वथा।
माया नित्या कारणञ्च सर्वेषां सर्वदा किल॥ १६

कर्मबीजं ततोऽनित्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः।
भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजन्कर्मनियन्त्रितम्॥ १७

शुभ, अशुभ तथा मिश्र—इन कर्मोंसे यह जगत् सदा व्याप्त रहता है। तत्त्वोंके ज्ञाता जो विद्वान् हैं; उन्होंने संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म बताये हैं। कर्मोंका त्रैविध्य इस शरीरमें अवश्य विद्यमान रहता है॥ ६-७॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी उस कर्मके वशवर्ती होते हैं। सुख, दुःख, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ आदि—ये सभी देहगत गुण हैं। हे राजेन्द्र! ये दैवके अधीन होकर सभी जीवोंको प्राप्त होते हैं॥ ८-९॥

राग, द्वेष आदि भाव स्वर्गमें भी होते हैं और इस प्रकार ये भाव देवताओं, मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंमें भी विद्यमान रहते हैं॥ १०॥

पूर्वजन्मके किये हुए वैर तथा स्नेहके कारण ये समस्त विकार शरीरके साथ सदा ही संलग्न रहते हैं॥ ११॥

समस्त जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती है। कर्मसे ही सूर्य नियमित रूपसे परिभ्रमण करता है और चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त रहता है॥ १२॥

अपने कर्मके प्रभावसे ही रुद्रको मुण्डोंकी माला धारण करनी पड़ती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आदि-अन्तरहित यह कर्म ही जगत्का कारण है॥ १३॥

स्थावर-जंगमात्मक यह समग्र शाश्वत विश्व उसी कर्मके प्रभावसे नियन्त्रित है। सभी मुनिगण इस कर्ममय जगत्की नित्यता तथा अनित्यताके विचारमें सदा डूबे रहते हैं। फिर भी वे नहीं जान पाते कि यह जगत् नित्य है अथवा अनित्य। जबतक माया विद्यमान रहती है, तबतक यह जगत् नित्य प्रतीत होता है॥ १४-१५॥

कारणकी सर्वथा सत्ता रहनेपर कार्यका अभाव कैसे कहा जा सकता है? माया नित्य है और वही सर्वदा सबका कारण है॥ १६॥

अतएव कर्मबीजकी अनित्यतापर बुद्धिमान् पुरुषोंको सदा चिन्तन करना चाहिये। हे राजन्! सम्पूर्ण जगत् कर्मके द्वारा नियन्त्रित होकर सदा परिवर्तित होता रहता है॥ १७॥

नानायोनिषु राजेन्द्र नानाधर्ममयेषु च।
इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसः॥ १८

युगे युगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम्।
त्यक्त्वा वैकुण्ठसंवासं सुखभोगाननेकशः॥ १९

विण्मूत्रमन्दिरे वासं संत्रस्तः कोऽभिवाञ्छति।
पुष्पावचयलीलां च जलकेलिं सुखासनम्॥ २०

त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवाञ्छति बुद्धिमान्।
तूलिकां मृदुसंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम्॥ २१

त्यक्त्वाधोमुखवासं च कोऽभिवाञ्छति पण्डितः।
गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च नानाभावसमन्वितम्॥ २२

मुक्त्वा को नरके वासं मनसापि विचिन्तयेत्।
सिन्धुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्॥ २३

विण्मूत्ररसपानञ्च क इच्छेन्मतिमान्नरः।
गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये॥ २४

तद्भीताश्च प्रकुर्वन्ति मुनयो दुस्तरं तपः।
हित्वा भोगञ्च राज्यञ्च वने यान्ति मनस्विनः॥ २५

यद्भीतास्तु विमूढात्मा कस्तं सेवितुमिच्छति।
गर्भे तुदन्ति कृमयो जठराग्निस्तपत्यधः॥ २६

वपासंवेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते।
वरं कारागृहे वासो बन्धनं निगडैर्वरम्॥ २७

अल्पमात्रं क्षणं नैव गर्भवासः क्वचिच्छुभः।
गर्भवासे महद्दुःखं दशमासनिवासनम्॥ २८

हे राजेन्द्र! यदि अमित तेजवाले भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे जन्म लेनेके लिये स्वतन्त्र होते तो वे नानाविध योनियोंमें, नानाविध धर्म-कर्मानुरूप युगोंमें तथा अनेक प्रकारकी निम्न योनियोंमें जन्म क्यों लेते? अनेक प्रकारके सुखभोगों और वैकुण्ठपुरीका निवास छोड़कर मल-मूत्रवाले स्थान (उदर)-में भयभीत होकर भला कौन रहना चाहेगा? फूल चुननेकी क्रीड़ा, जल-विहार तथा सुखदायक आसनका परित्यागकर कौन बुद्धिमान् गर्भगृहमें वास करना चाहेगा? कोमल रूईसे निर्मित गद्दे तथा दिव्य शय्याको छोड़कर गर्भमें औंधे मुँह पड़े रहना भला कौन विद्वान् पुरुष पसन्द कर सकता है? अनेक प्रकारके भावोंसे युक्त गीत, वाद्य तथा नृत्यका परित्याग करके गर्भरूपी नरकमें रहनेका मनमें विचारतक भला कौन कर सकता है? ऐसा कौन बुद्धिमान् व्यक्ति होगा जो लक्ष्मीके अद्भुत भावोंके अत्यन्त कठिनाईसे त्याग करनेयोग्य रसको छोड़कर मल-मूत्रका रस पीनेकी इच्छा करेगा? अतएव तीनों लोकोंमें गर्भवाससे बढ़कर नरकस्वरूप अन्य कोई स्थल नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्या करते हैं। बड़े-बड़े मनस्वी पुरुष जिस गर्भवाससे डरकर राज्य तथा सुखका परित्याग करके वनमें चले जाते हैं, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो उसके सेवनकी इच्छा करेगा?॥ १८—२५½॥

गर्भमें कीड़े काटते हैं और नीचेसे जठराग्नि तपाती रहती है। हे राजन्! उस समय शरीरमें अतिशय दुर्गन्धयुक्त मज्जा लगी रहती है; तो फिर वहाँ कौन-सा सुख है? कारागारमें रहना और बेड़ियोंमें बँधे रहना अच्छा है, किंतु एक क्षणके अल्पांश कालतक भी गर्भमें रहना कदापि शुभ नहीं होता। गर्भवासमें जीवको अत्यधिक पीड़ा होती है; वहाँ दस महीनेतक रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त दारुण योनि-यन्त्रसे बाहर आनेमें महान् कष्ट प्राप्त होता है। बाल्यावस्थामें भी अज्ञानता तथा न बोल पानेके कारण बहुत कष्ट मिलता है। परतन्त्र तथा अत्यन्त भयभीत बालक भूख तथा प्यासकी पीड़ाके कारण अशक्त रहता है। भूखे बालकको रोता हुआ देखकर माता [रोनेका कारण जाननेके लिये]

तथा निःसरणे दुःखं योनियन्त्रेऽतिदारुणे।
बालभावे तदा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम्॥ २९

क्षुत्तृष्णावेदनाशक्तः परतन्त्रोऽतिकातरः।
क्षुधिते रुदिते बाले माता चिन्तातुरा तदा॥ ३०

भेषजं पातुमिच्छन्ती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम्।
नानाविधानि दुःखानि बालभावे भवन्ति वै॥ ३१

किं सुखं विबुधा दृष्ट्वा जन्म वाञ्छन्ति चेच्छया।
संग्रामममरैः सार्धं सुखं त्यक्त्वा निरन्तरम्॥ ३२

कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम्।
सर्वथैव नृपश्रेष्ठ सर्वे ब्रह्मादयः सुराः॥ ३३

कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवन्ति सुखासुखे।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम॥ ३४

तपसा दानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत्।
क्षीणे पुण्येऽथ शक्रोऽपि पतत्येव न संशयः॥ ३५

रामावतारयोगेन देवा वानरतां गताः।
तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः॥ ३६

एवं युगे युगे विष्णुरवतारानेकशः।
करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम्॥ ३७

पुनः पुनर्हरेरेवं नानायोनिषु पार्थिव।
अवतारा भवन्त्यन्ये रथचक्रवदद्भुताः॥ ३८

दैत्यानां हननं कर्म कर्तव्यं हरिणा स्वयम्।
अंशांशेन पृथिव्यां वै कृत्वा जन्म महात्मना॥ ३९

तदहं संप्रवक्ष्यामि कृष्णजन्मकथां शुभाम्।
स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णो यदोः कुले॥ ४०

कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान्।
गोवृत्तिरभवद्राजन् पूर्वशापानुभावतः॥ ४१

कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र महीपते।
अदितिः सुरसा चैवमासतुः पृथिवीपते॥ ४२

चिन्ताग्रस्त हो उठती है और पुनः किसी बड़े रोगजनित कष्टका अनुमान करके उसे दवा पिलानेकी इच्छा करने लगती है। इस प्रकार बाल्यावस्थामें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, तब विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं!॥ २६—३१½ ॥

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो देवताओंके साथ रहते हुए निरन्तर सुख-भोगका त्याग करके श्रमपूर्ण तथा सुखनाशक युद्ध करनेकी इच्छा रखेगा; हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मादि सभी देवता भी अपने किये कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। हे नृपोत्तम! सभी देहधारी जीव चाहे मनुष्य, देवता या पशु-पक्षी हों, अपने-अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल पाते हैं॥ ३२—३४॥

मनुष्य तप, यज्ञ तथा दानके द्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त हो जाता है और पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्र भी च्युत हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं॥ ३५॥

रामावतारके समय देवता कर्मबन्धनके कारण वानर बने थे और कृष्णावतारमें भी कृष्णकी सहायताके लिये देवता यादव बने थे॥ ३६॥

इस प्रकार प्रत्येक युगमें धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रेरित होकर अनेक अवतार धारण करते हैं॥ ३७॥

हे राजन्! इस प्रकार रथचक्रकी भाँति विविध प्रकारकी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अद्भुत अवतार बार-बार होते रहते हैं॥ ३८॥

महात्मा भगवान् विष्णु अपने अंशांशसे पृथ्वीपर अवतार लेकर दैत्योंका वधरूपी कार्य सम्पन्न करते हैं। इसलिये अब मैं यहाँ श्रीकृष्णके जन्मकी पवित्र कथा कह रहा हूँ। वे साक्षात् भगवान् विष्णु ही यदुवंशमें अवतरित हुए थे॥ ३९-४०॥

हे राजन्! कश्यपमुनिके अंशसे प्रतापी वसुदेवजी उत्पन्न हुए थे, जो पूर्वजन्मके शापवश इस जन्ममें गोपालनका काम करते थे॥ ४१॥

हे महाराज! हे पृथ्वीपते! उन्हीं कश्यपमुनिकी दो पत्नियाँ—अदिति और सुरसाने भी शापवश पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया था। हे भरतश्रेष्ठ! उन

देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ।
वरुणेन महाञ्छापो दत्तः कोपादिति श्रुतम्॥ ४३

राजोवाच

किं कृतं कश्यपेनागो येन शप्तो महानृषिः।
सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्व महामते॥ ४४
कथञ्च भगवान्विष्णुस्तत्र जातोऽस्ति गोकुले।
वासी वैकुण्ठनिलये रमापतिरखण्डितः॥ ४५
निदेशात्कस्य भगवान्वर्तते प्रभुरव्ययः।
नारायणः सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः॥ ४६
स कथं सदनं त्यक्त्वा कर्मवानिव मानुषे।
करोति जननं कस्मादत्र मे संशयो महान्॥ ४७
प्राप्य मानुषदेहं तु करोति च विडम्बनम्।
भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि॥ ४८
कामः क्रोधोऽमर्षशोकौ वैरं प्रीतिश्च कर्हिचित्।
सुखं दुःखं भयं नृणां दैन्यमार्जवमेव च॥ ४९
दुष्कृतं सुकृतं चैव वचनं हननं तथा।
पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम्॥ ५०
लोभो दम्भस्तथा मोहः कपटः शोचनं तथा।
एते चान्ये तथा भावा मानुष्ये सम्भवन्ति हि॥ ५१
स कथं भगवान्विष्णुस्त्यक्त्वा सुखमनश्वरम्।
करोति मानुषं जन्म भावैस्तैस्तैरभिद्रुतम्॥ ५२
किं सुखं मानुषं प्राप्य भुवि जन्म मुनीश्वर।
किं निमित्तं हरिः साक्षाद् गर्भवासं करोति वै॥ ५३
गर्भदुःखं जन्मदुःखं बालभावे तथा पुनः।
यौवने कामजं दुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम्॥ ५४
दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम।
कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः पुनः॥ ५५
प्राप्य रामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना।
दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे॥ ५६

दोनोंने देवकी और रोहिणी नामक बहनोंके रूपमें जन्म लिया था। मैंने यह सुना है कि क्रुद्ध होकर वरुणने उन्हें महान् शाप दिया था॥ ४२-४३॥

राजा बोले—हे महामते! महर्षि कश्यपने कौन-सा ऐसा अपराध किया था, जिसके कारण उन्हें स्त्रियोंसहित शाप मिला; इसे मुझे बताइये॥ ४४॥

वैकुण्ठवासी, अविनाशी, रमापति भगवान् विष्णुको गोकुलमें जन्म क्यों लेना पड़ा?॥ ४५॥

सबके स्वामी, अविनाशी, देवश्रेष्ठ, युगके आदि तथा सबको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण किसके आदेशसे व्यवहार करते हैं और वे अपने स्थानको छोड़कर मानव-योनिमें जन्म लेकर मनुष्योंकी भाँति सब काम क्यों करते हैं; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है॥ ४६-४७॥

भगवान् विष्णु स्वयं मानव-शरीर धारण करके हीन मनुष्य-जन्ममें अनेकविध लीलाएँ दिखाते हुए प्रपंच क्यों करते हैं?॥ ४८॥

काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय, दीनता, सरलता, पाप, पुण्य, वचन, मारण, पोषण, चलन, ताप, विमर्श, आत्मश्लाघा, लोभ, दम्भ, मोह, कपट और चिन्ता—ये तथा अन्य भी नाना प्रकारके भाव मनुष्य-जन्ममें विद्यमान रहते हैं॥ ४९—५१॥

वे भगवान् विष्णु शाश्वत सुखका त्याग करके इन भावोंसे ग्रस्त मनुष्य-जन्म किसलिये धारण करते हैं? हे मुनीश्वर! इस पृथ्वीपर मानव-जन्म पाकर कौन-सा सुख मिल जाता है? वे साक्षात् भगवान् विष्णु किस कारणसे गर्भवास करते हैं?॥ ५२-५३॥

गर्भवासमें दुःख, जन्मग्रहणमें दुःख, बाल्यावस्थामें दुःख, यौवनावस्थामें कामजनित दुःख एवं गार्हस्थ्य जीवनमें तो बहुत बड़ा दुःख होता है॥ ५४॥

हे विप्रवर! ये अनेक कष्ट मानव-जीवनमें प्राप्त होते हैं, तो फिर वे भगवान् विष्णु अवतार क्यों लेते हैं?॥ ५५॥

ब्रह्मयोनि भगवान् विष्णुको रामावतार ग्रहण करके अत्यन्त दारुण वनवासकालमें घोर कष्ट प्राप्त हुआ था। उन्हें सीता-वियोगसे उत्पन्न महान् दुःख प्राप्त हुआ

सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः।
कान्तात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना॥ ५७

तथा कृष्णावतारेऽपि जन्म रक्षागृहे पुनः।
गोकुले गमनं चैव गवां चारणमित्युत॥ ५८

कंसस्य हननं कष्टाद् द्वारकागमनं पुनः।
नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान् कथम्॥ ५९

स्वेच्छया कः प्रतीक्षेत मुक्तो दुःखानि ज्ञानवान्।
संशयं छिन्धि सर्वज्ञ मम चित्तप्रशान्तये॥ ६०

तथा अनेक बार राक्षसोंसे युद्ध करना पड़ा। अन्तमें महान् आत्मावाले इन श्रीरामको पत्नी-परित्यागकी असीम वेदना भी सहनी पड़ी॥ ५६-५७॥

उसी प्रकार कृष्णावतारमें भी बन्दीगृहमें जन्म, गोकुल-गमन, गोचारण, कंसका वध और पुनः कष्टपूर्वक द्वारकाके लिये प्रस्थान—इन अनेकविध सांसारिक दुःखोंको भगवान् कृष्णने क्यों भोगा?॥ ५८-५९॥

ऐसा कौन ज्ञानी व्यक्ति होगा जो मुक्त होता हुआ भी स्वेच्छासे इन दुःखोंकी प्रतीक्षा करेगा? हे सर्वज्ञ! मेरे मनकी शान्तिके लिये सन्देहका निवारण कीजिये॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कर्मणो जन्मादिकारणत्वनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

वसुदेव और देवकीके पूर्वजन्मकी कथा

व्यास उवाच

कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल।
सर्वेषां चैव देवानामंशावतरणेष्वपि॥ १

वसुदेवावतारस्य कारणं शृणु तत्त्वतः।
देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम्॥ २

एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरत्।
याचितोऽयं बहुविधं न ददौ धेनुमुत्तमाम्॥ ३

वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम्।
प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः॥ ४

किं करोमि महाभाग मत्तोऽसौ न ददाति गाम्।
शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे॥ ५

भार्ये द्वे अपि तत्रैव भवेतां चातिदुःखिते।
यतो वत्सा रुदन्त्यत्र मातृहीनाः सुदुःखिताः॥ ६

मृतवत्सादितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले।
कारागारनिवासा च तेनापि बहुदुःखिता॥ ७

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार ग्रहण करने तथा इसी प्रकार सभी देवताओंके भी अंशावतार ग्रहण करनेके बहुतसे कारण हैं॥ १॥

अब वसुदेव, देवकी तथा रोहिणीके अवतारोंका कारण यथार्थ रूपसे सुनिये॥ २॥

एक बार महर्षि कश्यप यज्ञकार्यके लिये वरुणदेवकी गौ ले आये। [यज्ञ-कार्यकी समाप्तिके पश्चात्] वरुणदेवके बहुत याचना करनेपर भी उन्होंने वह उत्तम धेनु वापस नहीं दी॥ ३॥

तत्पश्चात् उदास मनवाले वरुणदेवने जगत्के स्वामी ब्रह्माके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे अपना दुःख कहा॥ ४॥

हे महाभाग! मैं क्या करूँ? वह अभिमानी कश्यप मेरी गाय नहीं लौटा रहा है। अतएव मैंने उसे शाप दे दिया कि मानवयोनिमें जन्म लेकर तुम गोपालक हो जाओ और तुम्हारी दोनों भार्याएँ भी मानवयोनिमें उत्पन्न होकर अत्यधिक दुःखी रहें। मेरी गायके बछड़े मातासे वियुक्त होकर अति दुःखित हैं और रो रहे हैं, अतएव पृथ्वीलोकमें जन्म लेनेपर यह अदिति भी मृतवत्सा होगी। इसे कारागारमें रहना पड़ेगा, उससे भी उसे महान् कष्ट भोगना होगा॥ ५—७॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यादोनाथस्य पद्मभूः।
समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः॥ ८

कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्य धेनवः।
हृताः पुनर्न दत्ताश्च किमन्यायं करोषि च॥ ९

जानन् न्यायं महाभाग परवित्तापहारणम्।
कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ १०

अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुञ्चति।
लोभं नरकदं नूनं पापाकरमसम्मतम्॥ ११

कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुं समर्थः किं करोम्यहम्।
सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभो वै कलितो मया॥ १२

धन्यास्ते मुनयः शान्ता जितो यैर्लोभ एव च।
वैखानसैः शमपरैः प्रतिग्रहपराङ्मुखैः॥ १३

संसारे बलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्योऽवरः सदा।
कश्यपोऽपि दुराचारः कृतस्नेहो दुरात्मना॥ १४

ब्रह्मापि तं शशापाथ कश्यपं मुनिसत्तमम्।
मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम्॥ १५

अंशेन त्वं पृथिव्यां वै प्राप्य जन्म यदोः कुले।
भार्याभ्यां संयुतस्तत्र गोपालत्वं करिष्यसि॥ १६

व्यास उवाच

एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेन च ब्रह्मणा।
अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च॥ १७

तथा दित्यादितिः शप्ता शोकसन्तप्तया भृशम्।
जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै॥ १८

व्यासजी बोले—जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणका यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माने मुनि कश्यपको वहाँ बुलाकर उनसे कहा—हे महाभाग! आपने लोकपाल वरुणकी गायोंका हरण क्यों किया; और फिर आपने उन्हें लौटाया भी नहीं। आप ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं?॥ ८-९॥

हे महाभाग! न्यायको जानते हुए भी आपने दूसरेके धनका हरण किया। हे महामते! आप तो सर्वज्ञ हैं; तो फिर आपने यह अन्याय क्यों किया?॥ १०॥

अहो! लोभकी ऐसी महिमा है कि वह महान्-से-महान् लोगोंको भी नहीं छोड़ता है। लोभ तो निश्चय ही पापोंकी खान, नरककी प्राप्ति करानेवाला और सर्वथा अनुचित है॥ ११॥

महर्षि कश्यप भी उस लोभका परित्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं हुए तो मैं क्या कर सकता हूँ। अन्ततः मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि लोभ सदासे सबसे प्रबल है॥ १२॥

शान्त स्वभाववाले, जितेन्द्रिय, प्रतिग्रहसे पराङ्मुख तथा वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किये हुए वे मुनिलोग धन्य हैं, जिन्होंने लोभपर विजय प्राप्त कर ली है॥ १३॥

संसारमें लोभसे बढ़कर अपवित्र तथा निन्दित अन्य कोई चीज नहीं है; यह सबसे बलवान् शत्रु है। महर्षि कश्यप भी इस नीच लोभसे स्नेह करनेके कारण दुराचारमें लिप्त हो गये॥ १४॥

अतएव मर्यादाकी रक्षाके लिये ब्रह्माजीने भी अपने परमप्रिय पौत्र मुनिश्रेष्ठ कश्यपको शाप दे दिया कि तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर यदुवंशमें जन्म लेकर वहाँ अपनी दोनों पत्नियोंके साथ गोपालनका कार्य करोगे॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अंशावतार लेने तथा पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये वरुणदेव तथा ब्रह्माजीने उन महर्षि कश्यपको शाप दे दिया था॥ १७॥

उधर कश्यपकी भार्या दितिने भी अत्यधिक शोकसन्तप्त होकर अदितिको शाप दे दिया कि क्रमसे तुम्हारे सातों पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्युको प्राप्त हो जायँ॥ १८॥

जनमेजय उवाच

कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेन्द्रजननी मुने।
कारणं वद शापे च शोकस्तु मुनिसत्तम॥ १९

सूत उवाच

पारीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः।
राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः॥ २०

व्यास उवाच

राजन् दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे।
कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे॥ २१

अदित्यां मघवा पुत्रो यदाभूदतिवीर्यवान्।
तदा तु तादृशं पुत्रं चकमे दितिरोजसा॥ २२

पतिमाहासितापाङ्गी पुत्रं मे देहि मानद।
इन्द्रतुल्यबलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम्॥ २३

तामुवाच मुनिः कान्ते स्वस्था भव मयोदिते।
व्रतान्ते भविता तुभ्यं शतक्रतुसमः सुतः॥ २४

सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकार व्रतमुत्तमम्।
निषिक्तं मुनिना गर्भं बिभ्राणा सुमनोहरम्॥ २५

भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा।
पवित्रा धारणायुक्ता बभूव वरवर्णिनी॥ २६

एवं जातः सुसम्पूर्णो यदा गर्भोऽतिवीर्यवान्।
शुभ्रांशुमतिदीप्ताङ्गीं दितिं दृष्ट्वा तु दुःखिता॥ २७

मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यति महाबलः।
दित्यास्तदा मम सुतस्तेजोहीनो भवेत्किल॥ २८

इति चिन्तापरा पुत्रमिन्द्रं चोवाच मानिनी।
शत्रुस्तेऽद्य समुत्पन्नो दितिगर्भेऽतिवीर्यवान्॥ २९

उपायं कुरु नाशाय शत्रोरद्य विचिन्त्य च।
उत्पत्तिरेव हन्तव्या दित्या गर्भस्य शोभन॥ ३०

जनमेजय बोले—हे मुने! दितिके द्वारा उसकी अपनी बहन तथा इन्द्रकी माता अदिति क्यों शापित की गयी? हे मुनिवर! आप दितिके शोक तथा उसके द्वारा प्रदत्त शापका कारण मुझे बताइये॥ १९॥

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवती-पुत्र व्यासजी पूर्ण सावधान होकर राजाको शापका कारण बतलाने लगे॥ २०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! दक्षप्रजापतिकी दिति और अदिति नामक दो सुन्दर कन्याएँ थीं। दोनों ही कश्यपमुनिकी प्रिय तथा गौरवशालिनी पत्नियाँ बनीं॥ २१॥

जब अदितिके अत्यन्त तेजस्वी पुत्र इन्द्र हुए, तब वैसे ही ओजस्वी पुत्रके लिये दितिके भी मनमें इच्छा जाग्रत् हुई॥ २२॥

उस समय सुन्दरी दितिने कश्यपजीसे प्रार्थना की—हे मानद! इन्द्रके ही समान बलशाली, वीर, धर्मात्मा तथा परम शक्तिसम्पन्न पुत्र मुझे भी देनेकी कृपा करें॥ २३॥

तब मुनि कश्यपने उनसे कहा—प्रिये! धैर्य धारण करो, मेरे द्वारा बताये गये व्रतको पूर्ण करनेके अनन्तर इन्द्रके समान पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा॥ २४॥

कश्यपमुनिकी बात स्वीकार करके दिति उस उत्तम व्रतके पालनमें तत्पर हो गयी। उनके ओजसे सुन्दर गर्भ धारण करती हुई वह सुन्दरी दिति पयोव्रतमें स्थित रहकर भूमिपर सोती थी और पवित्रताका सदा ध्यान रखती थी। इस प्रकार क्रमशः जब वह महान् तेजस्वी गर्भ पूर्ण हो गया, तब शुभ्र ज्योतियुक्त तथा दीप्तिमान् अंगोंवाली दितिको देखकर अदिति दुःखित हुई॥ २५—२७॥

[उसने अपने मनमें सोचा—] यदि दितिके गर्भसे इन्द्रतुल्य महाबली पुत्र उत्पन्न होगा तो निश्चय ही मेरा पुत्र निस्तेज हो जायगा॥ २८॥

इस प्रकार चिन्ता करती हुई मानिनी अदितिने अपने पुत्र इन्द्रसे कहा—प्रिय पुत्र! इस समय दितिके गर्भमें तुम्हारा अत्यन्त पराक्रमशाली शत्रु विद्यमान है। हे शोभन! तुम सम्यक् विचार करके उस शत्रुके नाशका प्रयत्न करो, जिससे दितिकी गर्भोत्पत्ति ही विनष्ट हो जाय॥ २९-३०॥

वीक्ष्य तामसितापाङ्गीं सपत्नीभावमास्थिताम्।
दुनोति हृदये चिन्ता सुखमर्मविनाशिनी॥ ३१

राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैव भवेद्रिपुः।
तस्मादङ्कुरितं हन्याद् बुद्धिमानहितं किल॥ ३२

लोहशङ्कुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम।
येन केनाप्युपायेन पातयाद्य शतक्रतो॥ ३३

सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वया सुतः।
दित्या गर्भो महाभाग मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ३४

व्यास उवाच

श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्य मनसा ततः।
जगामापरमातुः स समीपममराधिपः॥ ३५

ववन्दे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप।
प्रोवाच विनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम्॥ ३६

इन्द्र उवाच

मातस्त्वं व्रतयुक्तासि क्षीणदेहातिदुर्बला।
सेवार्थमिह सम्प्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे॥ ३७

पादसंवाहनं तेऽहं करिष्यामि पतिव्रते।
गुरुशुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम्॥ ३८

न मे किमपि भेदोऽस्ति तथादित्या शपे किल।
इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा संवाहनपरोऽभवत्॥ ३९

संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना।
श्रान्ता व्रतकृशा सुप्ता विश्वस्ता परमा सती॥ ४०

तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम्।
रूपं कृत्वातिसूक्ष्मञ्च शस्त्रपाणिः समाहितः॥ ४१

मुझसे सपत्नीभाव रखनेवाली उस सुन्दरी दितिको देखकर सुखका नाश कर देनेवाली चिन्ता मेरे मनको सताने लगती है॥ ३१॥

जब शत्रु बढ़ जाता है तब राजयक्ष्मा रोगकी भाँति वह नष्ट नहीं हो पाता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि वह ऐसे शत्रुको अंकुरित होते ही नष्ट कर डाले॥ ३२॥

हे देवेन्द्र! दितिका वह गर्भ मेरे हृदयमें लोहेकी कीलके समान चुभ रहा है, अतः जिस किसी भी उपायसे तुम उसे नष्ट कर दो। हे महाभाग! यदि तुम मेरा हित करना चाहते हो तो साम, दान आदिके बलसे दितिके गर्भस्थ शिशुका संहार कर डालो॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब अपनी माताकी वाणी सुनकर देवराज इन्द्र मन-ही-मन उपाय सोचकर अपनी विमाता दितिके पास गये। उस पापबुद्धि इन्द्रने विनयपूर्वक दितिके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊपरसे मधुर किंतु भीतरसे विषभरी वाणीमें विनम्रतापूर्वक उससे कहा—॥ ३५-३६॥

इन्द्र बोले—हे माता! आप व्रतपरायण हैं, और अत्यन्त दुर्बल तथा कृशकाय हो गयी हैं। अतः मैं आपकी सेवा करनेके लिये आया हूँ। मुझे बताइये, मैं क्या करूँ? हे पतिव्रते! मैं आपके चरण दबाऊँगा; क्योंकि बड़ोंकी सेवासे मनुष्य पुण्य तथा अक्षय गति प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरे लिये माता अदिति तथा आपमें कुछ भी भेद नहीं है। ऐसा कहकर इन्द्र उनके दोनों चरण पकड़कर दबाने लगे॥ ३९॥

पादसंवाहनका सुख पाकर सुन्दर नेत्रोंवाली उस दितिको नींद आने लगी। वह परम सती दिति थकी हुई थी, व्रतके कारण दुर्बल हो गयी थी और उसे इन्द्रपर विश्वास था, अतः वह सो गयी॥ ४०॥

दितिको नींदके वशीभूत देखकर इन्द्र अपना अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर हाथमें शस्त्र लेकर बड़ी सावधानीके साथ दितिके शरीरमें प्रवेश कर गये॥ ४१॥

उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै।
गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः॥ ४२

रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा।
मा रुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम्॥ ४३

शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानि च।
तदा चैकोनपञ्चाशन्मरुतश्चाभवन्नृप॥ ४४

तदा प्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथाकृतम्।
इन्द्रेण छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता॥ ४५

भगिनीकृतं तु सा बुद्ध्वा शशाप कुपिता तदा।
अदितिं मघवन्तञ्च सत्यव्रतपरायणा॥ ४६

यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना।
तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु॥ ४७

यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः।
अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः॥ ४८

तस्याः पुत्रास्तु नश्यन्तु जाता जाताः पुनः पुनः।
कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम्॥ ४९

अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति।

व्यास उवाच

इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनन्दनः॥ ५०

उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव।
मा कोपं कुरु कल्याणि पुत्रास्ते बलवत्तराः॥ ५१

भविष्यन्ति सुराः सर्वे मरुतो मघवत्सखाः।
शापोऽयं तव वामोरु त्वष्टाविंशेऽथ द्वापरे॥ ५२

अंशेन मानुषं जन्म प्राप्य भोक्ष्यति भामिनी।
वरुणेनापि दत्तोऽस्ति शापः सन्तापितेन च॥ ५३

उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति।

व्यास उवाच

पतिनाश्वासिता देवी सन्तुष्टा साभवत्तदा॥ ५४

इस प्रकार योगबलद्वारा दितिके उदरमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर इन्द्रने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले॥ ४२॥

उस समय वज्राघातसे दुःखित हो गर्भस्थ शिशु रुदन करने लगा। तब धीरेसे इन्द्रने उससे 'मा रुद' 'मत रोओ'—ऐसा कहा॥ ४३॥

तत्पश्चात् इन्द्रने पुनः उन सातों टुकड़ोंके सात-सात खण्ड कर डाले। हे राजन्! वे ही टुकड़े उनचास मरुद्गणके रूपमें प्रकट हो गये॥ ४४॥

उस छली इन्द्रद्वारा अपने गर्भको वैसा (विकृत) किया गया जानकर सुन्दर दाँतोंवाली वह दिति जाग गयी और अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध करने लगी॥ ४५॥

यह सब बहन अदितिद्वारा किया गया है—ऐसा जानकर सत्यव्रतपरायण दितिने कुपित होकर अदिति और इन्द्र दोनोंको शाप दे दिया कि जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र इन्द्रने छलपूर्वक मेरा गर्भ छिन्न-भिन्न कर डाला है, उसी प्रकार उसका त्रिभुवनका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाय। जिस प्रकार पापिनी अदितिने गुप्त पापके द्वारा मेरा गर्भ गिराया है और मेरे गर्भको नष्ट करवा डाला है, उसी प्रकार उसके पुत्र भी क्रमशः उत्पन्न होते ही नष्ट हो जायँगे और वह पुत्र-शोकसे अत्यन्त चिन्तित होकर कारागारमें रहेगी। अन्य जन्ममें भी इसकी सन्तानें मर जाया करेंगी॥ ४६—४९½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार मरीचिपुत्र कश्यपने दितिप्रदत्त शापको सुनकर उसे सान्त्वना देते हुए प्रेमपूर्वक यह वचन कहा—हे कल्याणि! तुम क्रोध मत करो, तुम्हारे पुत्र बड़े बलवान् होंगे। वे सब उनचास मरुद् देवता होंगे, जो इन्द्रके मित्र बनेंगे। हे सुन्दरि! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें तुम्हारा शाप सफल होगा। उस समय अदिति मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर अपने किये कर्मका फल भोगेगी। इसी प्रकार दुःखित वरुणने भी उसे शाप दिया है। इन दोनों शापोंके संयोगसे यह अदिति मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होगी॥ ५०—५३½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार पति कश्यपके आश्वासन देनेपर दिति सन्तुष्ट हो गयी और वह

नोवाच विप्रियं किञ्चित्ततः सा वरवर्णिनी।
इति ते कथितं राजन् पूर्वशापस्य कारणम्॥ ५५
अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृपसत्तम॥ ५६

पुनः कोई अप्रिय वाणी नहीं बोली। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको अदितिके पूर्व शापका कारण बताया। हे नृपश्रेष्ठ! वही अदिति अपने अंशसे देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई॥ ५४—५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
दित्या अदित्यै शापदानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा जनमेजयको मायाकी प्रबलता समझाना

राजोवाच

विस्मितोऽस्मि महाभाग श्रुत्वाख्यानं महामते।
संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बन्धनात्॥ १

राजा बोले—हे महाभाग! इस आख्यानको सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। हे महामते! यह संसार पापका मूर्तरूप है। इसके बन्धनसे मनुष्य किस प्रकार मुक्त हो सकता है?॥ १॥

कश्यपस्यापि दायादस्त्रिलोकीविभवे सति।
कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्याज्जुगुप्सितम्॥ २

जब तीनों लोकोंका वैभव पास रखते हुए भी कश्यपमुनिकी संतान इन्द्रने ऐसा पापकर्म कर डाला, तब कौन मनुष्य पाप नहीं कर सकता?॥ २॥

गर्भे प्रविश्य बालस्य हननं दारुणं किल।
सेवामिषेण मातुश्च कृत्वा शपथमद्भुतम्॥ ३

अद्भुत शपथ लेकर सेवाके बहाने माताके गर्भमें प्रविष्ट होकर बालककी हत्या करना तो बड़ा भयानक पाप है!॥ ३॥

शास्ता धर्मस्य गोप्ता च त्रिलोक्याः पतिरप्युत।
कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्यादसाम्प्रतम्॥ ४

सबके शासक, धर्मके रक्षक और तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्रने जब ऐसा निन्दित कर्म कर डाला, तब फिर दूसरा कौन नहीं करेगा?॥ ४॥

पितामहा मे संग्रामे कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम्।
कृतवन्तस्तथाश्चर्यं दुष्टं कर्म जगद्गुरो॥ ५

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो धर्मांशोऽपि युधिष्ठिरः।
सर्वे विरुद्धधर्मेण वासुदेवेन नोदिताः॥ ६

हे जगद्गुरो! मेरे पितामह लोगोंने भी कुरुक्षेत्रके संग्राममें ऐसा ही विस्मयकारी दारुण और निन्दित कर्म किया था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण तथा धर्मके अंशरूप युधिष्ठिर—इन सभीने भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे धर्मविरुद्ध कर्म किया था॥ ५-६॥

असारतां विजानन्तः संसारस्य सुमेधसः।
देवांशाश्च कथं चक्रुर्निन्दितं धर्मतत्पराः॥ ७

संसारकी असारता जानते हुए भी उन प्रतिभाशाली तथा देवांशसे उत्पन्न धर्मपरायण पाण्डवोंने भी ऐसा गर्हित कर्म क्यों किया?॥ ७॥

कास्था धर्मस्य विप्रेन्द्र प्रमाणं किं विनिश्चितम्।
चलचित्तोऽस्मि सञ्जातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम्॥ ८

हे द्विजेन्द्र! यदि ऐसी बात है तो धर्मपर किसकी आस्था होगी और धर्मके विषयमें सैद्धान्तिक प्रमाण ही क्या रह जायगा? यह वृत्तान्त सुनकर तो मेरा मन चंचल हो उठा है॥ ८॥

आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान्।
पुरुषो विषयासक्तो रागी भवति सर्वथा॥ ९

रागो द्वेषो भवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम्।
द्वेषादसत्यवचनं वक्तव्यं स्वार्थसिद्धये॥ १०

जरासन्धविघातार्थं हरिणा सत्त्वमूर्तिना।
छलेन रचितं रूपं ब्राह्मणस्य विजानता॥ ११

तदाप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः।
अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते॥ १२

कीदृशोऽयं कृतो यज्ञः किमर्थं शमवर्जितः।
परलोकपदार्थं वा यशसे वान्यथा किल॥ १३

धर्मस्य प्रथमः पादः सत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः।
द्वितीयस्तु तथा शौचं दया पादस्तृतीयकः॥ १४

दानं पादश्चतुर्थश्च पुराणज्ञा वदन्ति वै।
तैर्विहीनः कथं धर्मस्तिष्ठेदिह सुसम्मतः॥ १५

धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदं भवेत्।
धर्मे स्थिरा मतिः क्वापि न कस्यापि प्रतीयते॥ १६

छलार्थञ्च यदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः।
येन वामनरूपेण वञ्चितोऽसौ बलिर्नृपः॥ १७

विहर्ता शतयज्ञस्य वेदाज्ञापरिपालकः।
धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ १८

स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना।
जितं केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा॥ १९

छलकर्मविदा चायं सन्देहोऽत्र महान्मम।
वञ्चयित्वा वञ्चितेन सत्यं वद द्विजोत्तम॥ २०
पुराणकर्ता त्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः।

यदि आप्त वचनको प्रमाण मानें, तो फिर कौन पुरुष आप्त है? विषयासक्त मनुष्यमें राग आ ही जाता है और अपना स्वार्थ भंग होनेपर उसमें निःसन्देह राग-द्वेषकी बहुलता हो जाती है। द्वेषके कारण अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये असत्य भाषण करना पड़ता है॥ ९-१०॥

परम ज्ञानी और सत्त्वगुणके मूर्तस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी जरासन्धके वधके लिये छलसे ब्राह्मणका वेष धारण किया था। जब सत्त्वमूर्ति भी इस प्रकारके होते हैं, तब किस आप्त पुरुषको प्रमाण माना जाय? उसी प्रकार [राजसूय] यज्ञके अवसरपर अर्जुनने भी वैसा ही कर्म किया था॥ ११-१२॥

जिस यज्ञमें अशान्तिका वातावरण रहा, उस यज्ञको किस श्रेणीका यज्ञ कहा जाय? वह यज्ञ परलोकमें परमपदकी प्राप्तिके लिये किया गया था अथवा सुयश पानेके लिये किया गया था या अन्य किसी कार्यकी सिद्धिके लिये किया गया था?॥ १३॥

श्रुतिका यह वचन है कि धर्मका प्रथम चरण सत्य, दूसरा चरण पवित्रता, तीसरा चरण दया तथा चतुर्थ चरण दान है। पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। इन चारोंके बिना परम आदृत धर्म कैसे टिक सकता है?॥ १४-१५॥

तब मेरे पूर्वजोंके द्वारा किया गया वह धर्मविहीन यज्ञ-कर्म [उत्तम] फल देनेवाला कैसे हो सकता था? इससे तो यही प्रतीत होता है कि उस समय किसीका भी कहीं भी धर्ममें अटल विश्वास नहीं था॥ १६॥

जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने भी छलनेहेतु वामनका रूप धारण किया था, जिन्होंने वामनरूपसे राजा बलिको ठग लिया था॥ १७॥

महाराज बलि सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, वेदोंकी आज्ञाका पालन करनेवाले, धर्मात्मा, दानी, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय थे। ऐसे महापुरुषको परम प्रभावशाली भगवान् विष्णुने अकस्मात् पदच्युत कर दिया। अतः हे कृष्णद्वैपायन! उन दोनोंमें कौन जीता? वंचना करके छलकर्ममें निपुण भगवान् वामनकी विजय हुई या छले गये राजा बलिकी; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे द्विजश्रेष्ठ! मुझे सत्य बात बताइये; क्योंकि आप पुराणोंके रचयिता, धर्मज्ञ तथा महान् बुद्धिसम्पन्न हैं॥ १८—२०½॥

व्यास उवाच

जितं वै बलिना राजन् दत्ता येन च मेदिनी॥ २१

त्रिविक्रमोऽपि नाम्ना यः प्रथितो वामनोऽभवत्।
छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप॥ २२

सम्प्राप्तं हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च।
सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलं धर्मस्य पार्थिव॥ २३

दुःसाध्यं देहिनां राजन्सत्यं सर्वात्मना किल।
माया बलवती भूप त्रिगुणा बहुरूपिणी॥ २४

ययेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः।
तस्माच्छलवता सत्यं कुतोऽविद्धं भवेन्नृप॥ २५

मिश्रेण जनिता चैव स्थितिरेषा सनातनी।
वैखानसाश्च मुनयो निःसङ्गा निष्प्रतिग्रहाः॥ २६

सत्ययुक्ता भवन्त्यत्र वीतरागा गतस्पृहाः।
दृष्टान्तदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः॥ २७

अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप।
नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु नृपसत्तम॥ २८

धर्मशास्त्रेषु चाङ्गेषु सगुणै रचितेष्विह।
सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणो न करोति वै॥ २९

गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसङ्गताः।
निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा॥ ३०

भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि तदासक्तं मनस्तथा॥ ३१

करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः॥ ३२

सर्वे मायावशा राजन् सानुक्रीडति तैरिह।
सर्वान्वै मोहयत्येषा विकुर्वत्यनिशं जगत्॥ ३३

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस राजा बलिकी ही विजय हुई, जिसने समस्त भूमण्डलका दान कर दिया था। हे राजन्! जो त्रिविक्रम नामसे विख्यात थे, वे भगवान् विष्णु वामन बने। हे नरेन्द्र! उन्होंने छल करनेके लिये यह वामनरूप धारण किया था और इसी छलके परिणामस्वरूप उन श्रीहरिको राजा बलिका द्वारपाल बनना पड़ा। अतः हे राजन्! सत्यसे बढ़कर धर्मका मूल और कुछ नहीं है॥ २१—२३॥

हे राजन्! सम्यक् प्रकारसे सत्यका पालन करना प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है। अनेक रूप धारण करनेवाली त्रिगुणात्मिका माया बड़ी बलवती है, जिसने तीनों गुणोंसे सम्मिश्रित इस विश्वकी रचना की है। अतः हे राजन्! छल-कपट करनेवालेसे बिना प्रभावित हुए यह सत्य कैसे रह सकता है?॥ २४-२५॥

सत्त्व, रज और तम—इन्हीं तीनों गुणोंके मेलसे संसारका प्रादुर्भाव हुआ, यही सृष्टिका सनातन नियम है। केवल अनासक्त, प्रतिग्रहशून्य, रागरहित और तृष्णाविहीन वानप्रस्थ तथा मुनिजन अवश्य सत्यपरायण होते हैं, किंतु वैसे लोग केवल दृष्टान्त दिखानेके लिये ही बनाये गये हैं॥ २६-२७॥

हे राजन्! उनके अतिरिक्त सब कुछ सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणोंसे ओत-प्रोत है। हे नृपश्रेष्ठ! पुराणों, वेदों, धर्मशास्त्रों, वेदांगों और सगुण प्राणियोंद्वारा रचित ग्रन्थोंमें भी कहीं एकवाक्यता नहीं मिलती; सगुण प्राणी ही सगुण कार्य करता है, निर्गुणसे सगुण कार्य नहीं हो सकता; क्योंकि वे सभी गुण मिश्रित हैं, वे पृथक्-पृथक् नहीं रहते। इसी कारण किसीकी भी बुद्धि सत्य तथा सनातनधर्ममें टिक नहीं पाती॥ २८—३०॥

हे महाराज! संसारकी सृष्टिके समय मायासे मोहित मनुष्यकी इन्द्रियाँ अत्यन्त चंचल हो जाती हैं और उनमें आसक्त मन उन गुणोंसे प्रेरित होकर विविध प्रकारके भाव प्रकट करने लगता है। हे राजन्! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीडा करती रहती है। यह माया सभीको मोहमें डाल देती है और जगत्में निरन्तर विकार उत्पन्न किया करती है॥ ३१—३३॥

असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः।
इन्द्रियार्थांश्चिन्तयानो न प्राप्नोति यदा नरः॥ ३४

तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते।
कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः॥ ३५

कृताकृतं न जानन्ति प्राणिनस्तद्वशं गताः।
विभवे सत्यहङ्कारः प्रबलः प्रभवत्यपि॥ ३६

अहङ्काराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च।
सङ्कल्पा बहवस्तत्र विकल्पाः प्रभवन्ति च॥ ३७

ईर्ष्यासूया तथा द्वेषः प्रादुर्भवति चेतसि।
आशा तृष्णा तथा दैन्यं दम्भोऽधर्ममतिस्तथा॥ ३८

प्राणिनां प्रभवन्त्येते भावा मोहसमुद्भवाः।
यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा॥ ३९

अहङ्काराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम्।
अहंभावकृतं सर्वं प्रभवेद्वै न शौचवत्॥ ४०

रागलोभात्कृतं कर्म सर्वाङ्गं शुद्धिवर्जितम्।
प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्च द्रष्टव्या विबुधैः किल॥ ४१

अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि।
द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः॥ ४२

विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम।
मनोऽतिनिर्मलं यस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत्॥ ४३

तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थफलं लभेत्।
कर्तारः कर्मणां सर्वे आचार्यर्त्विजादयः॥ ४४

स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम्।
देशकालक्रियाद्रव्यकर्तॄणां शुद्धता यदि॥ ४५

मन्त्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते।
शत्रूणां नाशमुद्दिश्य स्ववृद्धिं परमां तथा॥ ४६

हे राजन्! सर्वप्रथम अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य असत्यका सहारा लेता है। उस समय इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करते हुए जब मनुष्य अपना अभीष्ट नहीं पाता, तो वह उसके लिये छल करने लगता है। इस प्रकार छलके कारण वह पापमें प्रवृत्त हो जाता है। काम, क्रोध और लोभ मनुष्योंके सबसे बड़े शत्रु हैं। इनके वशमें होनेके कारण प्राणी कर्तव्य-अकर्तव्यको नहीं जान पाते। ऐश्वर्य बढ़ जानेपर अहंकार और भी बढ़ जाता है। अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे विनाश हो जाता है। मोहके कारण मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प होने लगते हैं। उस समय मनमें ईर्ष्या, असूया तथा द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। प्राणियोंके हृदयमें आशा, तृष्णा, दीनता, दम्भ और अधार्मिक बुद्धि—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं। ये भावनाएँ प्राणियोंमें मोहसे ही उत्पन्न होती हैं। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत और नियम जो कुछ भी सत्कर्म हैं, उन्हें भी मनुष्य अहंकारके ही वशीभूत होकर निरन्तर करता है, उनका अहंभावसे किया गया सारा कार्य वैसा नहीं होता, जैसा कि शुद्ध अन्तःकरणसे किया जाता है। आसक्ति एवं लोभसे किया हुआ कोई भी कर्म सर्वथा अशुद्ध होता है॥ ३४—४०½॥

बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे सर्वप्रथम द्रव्य-शुद्धिपर विचार कर लें। द्रोहरहित कर्म करके अर्जित किया हुआ धन धर्मकार्यमें प्रशस्त माना गया है। हे नृपश्रेष्ठ! द्रोहपूर्वक उपार्जित किये हुए द्रव्यके द्वारा मनुष्य जो उत्तम कार्य करता है, समय आनेपर उसका विपरीत फल प्राप्त होता है। जिसका मन परम पवित्र है, वही पूर्ण फलका अधिकारी होता है और मनके विकारपूर्ण रहनेपर उसे यथार्थ फल नहीं मिलता॥ ४१—४३½॥

जब कर्म करानेवाले ऋत्विक्, आचार्य आदि लोगोंका चित्त शुद्ध रहता है, तभी पूर्ण फल प्राप्त होता है। यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्ता और मन्त्र—इन सबकी शुद्धता रहती है, तभी कर्मोंका पूरा फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य शत्रुनाश तथा अपनी अभिवृद्धिके उद्देश्यसे पुण्यकर्म करता है तो उसे भी वैसा ही

करोति सुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल।
स्वार्थासक्तः पुमान्नित्यं न जानाति शुभाशुभम्॥ ४७

दैवाधीनः सदा कुर्यात्पापमेव न सत्कृतम्।
प्राजापत्याः सुराः सर्वे ह्यसुराश्च तदुद्भवाः॥ ४८

सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः।
सत्त्वोद्भवाः सुराः सर्वेऽप्युक्ता वेदेषु मानुषाः॥ ४९

रजोद्भवास्तामसास्तु तिर्यंचः परिकीर्तिताः।
सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम्॥ ५०

तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे।
सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा॥ ५१

असन्तुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः।
अहङ्कारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृप॥ ५२
रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप॥ ५३

विपरीत फल मिलता है। स्वार्थमें लिप्त मनुष्य शुभाशुभका ज्ञान नहीं रख पाता और दैवाधीन होकर सदा पाप ही किया करता है, पुण्य नहीं॥ ४४—४७½॥

प्रजापति ब्रह्मासे ही देवता उत्पन्न हुए हैं और उन्हींसे असुरोंकी भी उत्पत्ति हुई है। वे सब-के-सब स्वार्थमें लिप्त होकर एक-दूसरेके विरुद्ध काम करते हैं। वेदोंमें कहा गया है कि सत्त्वगुणसे सभी देवता, रजोगुणसे मनुष्य तथा तमोगुणसे पशु-पक्षी आदि तिर्यक्‌योनिके जीव उत्पन्न होते हैं। अतएव जब सत्त्वगुणसे उत्पन्न देवताओंमें भी निरन्तर आपसमें वैरभाव रहता है तब पशु-पक्षियोंमें परस्पर जातिवैर उत्पन्न होनेमें क्या आश्चर्य! देवता भी सदैव द्रोहमें तत्पर रहते हैं और तपस्यामें विघ्न डाला करते हैं। हे नृप! वे सदा असन्तुष्ट रहते हुए द्वेषपरायण होकर आपसमें विरोधभाव रखते हैं। अतः हे राजन्! जब यह संसार ही अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह राग-द्वेषसे हीन हो ही कैसे सकता है?॥ ४८—५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अधमजगतः स्थितिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

~~०~~

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नर-नारायणकी तपस्यासे चिन्तित होकर इन्द्रका उनके पास जाना और मोहिनी माया प्रकट करना तथा उससे भी अप्रभावित रहनेपर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंको भेजना

व्यास उवाच

अथ किं बहुनोक्तेन संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम।
धर्मात्माद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद्भवति कर्हिचित्॥ १

रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम्।
आद्ये युगेऽपि राजेन्द्र किमद्य कलिदूषिते॥ २

देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा।
मानुषाणां तिरश्चां च का वार्ता नृप गण्यते॥ ३

द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता।
अद्रोहिणि तथा शान्ते विद्वेषः खलता स्मृता॥ ४

व्यासजी बोले—हे नृपोत्तम! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ? इस संसारमें कहीं बिरला ही ऐसा कोई धर्मात्मा पुरुष होगा जो द्रोहभावसे रहित हो। यह चर-अचर सम्पूर्ण संसार राग-द्वेषसे ओत-प्रोत है। हे राजेन्द्र! सत्ययुगमें भी यह संसार ऐसा ही था, तब कलिसे दूषित इसके विषयमें क्या कहा जाय?॥ १-२॥

हे राजन्! जब देवता भी सदा ईर्ष्यायुक्त, द्रोहसे भरे हुए और छल-परायण रहते हैं, तब मनुष्य तथा पशु-पक्षियोंकी बात ही क्या है? यदि कोई मनुष्य द्रोह करनेवालेके प्रति द्रोहभाव रखे तो यह समानताकी बात है, किंतु द्रोह न करनेवाले तथा शान्त स्वभाववालेके प्रति विद्वेष रखनेको नीचता कहा गया है॥ ३-४॥

यः कश्चित्तापसः शान्तो जपध्यानपरायणः।
भवेत्तस्य जपे विघ्नकर्ता वै मघवा परम्॥ ५

सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवासतां कलिः।
मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगे स्मृतौ॥ ६

कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः।
अन्यथान्ययुगानां वै सर्वे धर्मपरायणाः॥ ७

वासना कारणं राजन् सर्वत्र धर्मसंस्थितौ।
तस्यां वै मलिनायां तु धर्मोऽपि मलिनो भवेत्॥ ८

मलिना वासना सत्यं विनाशायेति सर्वथा।
ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति स्मृतः॥ ९

ब्राह्मणः सत्यसम्पन्नो वेदधर्मरतः सदा।
दक्षस्य दुहितारो हि वृता दश महात्मना॥ १०

विवाहविधिना सम्यङ् मुनिना गृहधर्मिणा।
तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मः सत्यवतां वरः॥ ११

हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप।
योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह॥ १२

नरनारायणौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम्।
प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे॥ १३

तपस्विषु धुरीणौ तौ पुराणौ मुनिसत्तमौ।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे॥ १४

हरेरंशौ स्थितौ तत्र नरनारायणावृषी।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु चक्राते तप उत्तमम्॥ १५

तापितं च जगत्सर्वं तपसा सचराचरम्।
नरनारायणाभ्यां च शक्रः क्षोभं तदा ययौ॥ १६

चिन्ताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत्।
किं कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ॥ १७

सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं मे ग्रहीष्यतः।
विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि॥ १८

यदि कोई तपस्वी शान्त होकर जप-ध्यानमें लीन हो जाता है तो इन्द्र उसके जपमें विघ्न डालनेहेतु तत्पर हो जाते हैं॥ ५॥

सज्जन पुरुषोंके लिये हर समय सत्ययुग दिखलायी पड़ता है और दुष्ट लोगोंके लिये सर्वदा कलियुग ही रहता है। जिस युगमें क्रिया तथा योग व्यवस्थित रहते हैं, वे द्वापर तथा त्रेतारूप मध्यम युग मध्यम कोटिके लोगोंके लिये कहे गये हैं॥ ६॥

अतः किसी समय भी कोई सत्यधर्मा हो सकता है अथवा सभी युगोंमें जो चाहे धर्मपरायण हो सकता है। हे राजन्! सर्वत्र धर्मकी स्थितिमें वासना ही प्रधान कारण मानी गयी है। उसमें मलिनता आ जानेपर धर्म भी मलिन हो जाता है। मलिन वासना विनाशके लिये होती है; यह सर्वथा सत्य है॥ ७-८½॥

ब्रह्माजीके हृदयसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो धर्म—इस नामसे कहा गया। वह ब्राह्मण सत्यसम्पन्न और वैदिक धर्ममें सदा संलग्न रहनेवाला था। उस गृहस्थधर्मी महात्मा मुनिने पाणिग्रहणकी विधिसे दक्षप्रजापतिकी दस कन्याओंका सम्यक् रूपसे वरण किया। सत्यव्रतियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मने उनसे 'हरि', 'कृष्ण', 'नर' और 'नारायण' नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्! उनमें 'हरि' और 'कृष्ण' ये दोनों योगाभ्यास करने लगे तथा नर और नारायण ये दोनों हिमालयपर्वतके शिखरपर जाकर 'बदरिकाश्रम' तीर्थमें कठिन तपस्या करने लगे॥ ९—१३॥

वे प्राचीन मुनिश्रेष्ठ नर और नारायण तपस्वियोंमें सबसे प्रधान थे। गंगाके विस्तृत तटपर रहकर ब्रह्मचिन्तन करते हुए भगवान् विष्णुके अंशावतार नर-नारायणने वहाँ पूरे एक हजार वर्षोंतक कठोर तप किया। उनके तपसे चराचरसहित सम्पूर्ण संसार सन्तप्त हो गया। इससे इन्द्रके मनमें नर-नारायणके प्रति क्षोभ उत्पन्न हो गया॥ १४—१६॥

तब चिन्तित होकर इन्द्रने अपने मनमें सोचा—अब मुझे क्या करना चाहिये? ये धर्मपुत्र नर-नारायण तपस्वी तथा ध्यानपरायण हैं। ये पूर्णरूपसे सिद्ध होकर मेरा श्रेष्ठ आसन ग्रहण कर लेंगे, अतः किस प्रकार विघ्न उत्पन्न करूँ, जिससे तप न कर सकें॥ १७-१८॥

उत्पाद्य कामं क्रोधञ्च लोभं वाप्यतिदारुणम्।
इत्युद्दिश्य सहस्राक्षः समारुह्य गजोत्तमम्॥ १९

विघ्नकामस्तु तरसा जगाम गन्धमादनम्।
गत्वा तत्राश्रमे पुण्ये तावपश्यच्छतक्रतुः॥ २०

तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ।
ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसू॥ २१

धर्मपुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः।
इति सञ्चिन्त्य तौ दृष्ट्वा तदोवाच शचीपतिः॥ २२

किं वा कार्यं महाभागौ ब्रूतं धर्मसुतौ किल।
ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुं यातोऽस्म्यहमृषी॥ २३

अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल।

व्यास उवाच

एवं पुनः पुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः॥ २४

नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ।
ततो वै मोहिनीं मायां चकार भयदां वृषः॥ २५

वृकान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च समुत्पाद्याबिभीषयत्।
वर्षं वातं तथा वह्निं समुत्पाद्य पुनः पुनः॥ २६

भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम्।
भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी॥ २७

नरनारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः।
वरदाने प्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः॥ २८

व्याघ्रसिंहादिभिः क्रान्तौ चलितौ नाश्रमात्स्वकात्।
न तयोर्ध्यानभङ्गं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत्॥ २९

इन्द्रोऽपि सदनं गत्वा चिन्तयामास दुःखितः।
चलितौ भयलोभाभ्यां नेमौ मुनिवरोत्तमौ॥ ३०

अब इनके मनमें काम, क्रोध अथवा अत्यन्त भीषण लोभ उत्पन्न करके तपमें विघ्न करना चाहिये। यह विचारकर इन्द्र अपने उत्तम ऐरावत हाथीपर सवार होकर उनके तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे गन्धमादनपर्वतपर शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने उस पवित्र आश्रममें तप करते हुए नर-नारायणको देखा॥ १९-२०॥

उस समय तपके प्रभावसे दीप्त शरीरवाले वे दोनों ऋषि उगे हुए सूर्यकी भाँति प्रतीत हो रहे थे। [इन्द्रने सोचा—] क्या ये ब्रह्मा और विष्णु प्रकट हुए हैं अथवा दो सूर्य उदित हो गये हैं? धर्मके ये दोनों पुत्र अपने तपद्वारा न जाने क्या कर देंगे? ऐसा विचार करके शचीपति इन्द्रने नर-नारायणकी ओर देखकर उनसे कहा—हे महाभाग धर्मनन्दन! आपलोगोंका क्या कार्य है, बताइये। मैं श्रेष्ठ वर अभी प्रदान करता हूँ। हे ऋषियो! मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ। वर अदेय हो तो भी मैं दूँगा; क्योंकि मैं आप लोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ॥ २१—२३½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उनके सामने खड़े होकर इन्द्रने बार-बार उनसे [वरदान माँगनेको] कहा, किंतु ध्यानमग्न तथा दृढ़चित्त वे दोनों ऋषि नहीं बोले। तब इन्द्रने अपनी भयदायिनी मोहिनी माया प्रकट की। उन्होंने भेड़िये, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंको उत्पन्न करके उन्हें भयभीत किया। इसी प्रकार वर्षा, वायु तथा अग्नि उत्पन्न करके इन्द्रने अपनी मोहिनी माया रचकर उन दोनोंको भयभीत करनेकी चेष्टा की किंतु धर्मपुत्र वे दोनों मुनि इस भयसे भी वशमें नहीं किये जा सके। ऐसे उन नर-नारायणको देखकर इन्द्र अपने भवन चले गये। वे नर-नारायण वरदानके लोभमें नहीं आये और अग्नि तथा वायुसे भयभीत नहीं हुए। व्याघ्र, सिंह आदिके आक्रमण करनेपर भी वे दोनों अपने आसनसे हिलेतक नहीं। उन दोनोंके ध्यानको भंग करनेमें उस समय कोई भी समर्थ नहीं हो सका॥ २४—२९॥

इन्द्र भी अपने घर पहुँचकर दुःखित होकर विचार करने लगे कि मुनिवरोंमें उत्तम ये दोनों ऋषि भय तथा लोभसे विचलित नहीं हुए। वे तो महाविद्या,

चिन्तयन्तौ महाविद्यामादिशक्तिं सनातनीम्।
ईश्वरीं सर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम्॥ ३१

ध्यायतां कः क्षमो लोके बहुमायाविदप्युत।
यन्मूलाः सकला माया देवासुरकृताः किल॥ ३२

ते कथं बाधितुं शक्ता ध्यायन्ति गतकल्मषाः।
वाग्बीजं कामबीजञ्च मायाबीजं तथैव च॥ ३३

चित्ते यस्य भवेत्तं तु बाधितुं कोऽपि न क्षमः।
मायया मोहितः शक्रो भूयस्तस्य प्रतिक्रियाम्॥ ३४

कर्तुं कामवसन्तौ तु समाहूयाब्रवीद्वचः।
मनोभव वसन्तेन रत्या युक्तो व्रजाधुना॥ ३५

अप्सरोभिः समायुक्तस्तरसा गन्धमादनम्।
नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ॥ ३६

कुरुतस्तप एकान्ते स्थितौ बदरिकाश्रमे।
गत्वा तत्र समीपे तु तयोर्मन्मथ मार्गणैः॥ ३७

चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाधुना।
मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाशु च॥ ३८

वशीकुरु महाभाग मुनी धर्मसुतावपि।
को ह्यस्मिन् सर्वसंसारे देवो दैत्योऽथ मानवः॥ ३९

यस्ते बाणवशं प्राप्तो न याति भृशताडितः।
ब्रह्माहं गिरिजानाथश्चन्द्रो वह्निर्विमोहितः॥ ४०

गणना कानयोः काम त्वद्बाणानां पराक्रमे।
वाराङ्गनागणोऽयं ते सहायार्थं मयेरितः॥ ४१

आगमिष्यति तत्रैव रम्भादीनां मनोरमः।
एका तिलोत्तमा रम्भा कार्यं साधयितुं क्षमा॥ ४२

त्वमेवैकः क्षमः कामं मिलितैः कस्तु संशयः।
कुरु कार्यं महाभाग ददामि तव वाञ्छितम्॥ ४३

आदिशक्ति, सनातनी, सब लोकोंकी स्वामिनी और अद्भुत परा-प्रकृतिका ध्यान कर रहे थे। देवताओं तथा असुरोंके द्वारा रची गयी सारी माया जिन भगवतीसे ही उत्पन्न होती है, उनका ध्यान करनेवालेको विचलित करनेमें कौन समर्थ है, चाहे वह कितना ही बड़ा मायाविज्ञ क्यों न हो? जो लोग कल्मषरहित होकर भगवतीका ध्यान करते हैं, वे भला कैसे विचलित किये जा सकते हैं? देवीका वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज—यह जिसके हृदयमें विद्यमान है, उसे विचलित करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ ३०—३३½॥

अब मायासे मोहित इन्द्रने पुनः उनका प्रतीकार करनेहेतु कामदेव तथा वसन्तको बुलाकर यह वचन कहा—हे कामदेव! तुम वसन्त और रतिको लेकर अनेक अप्सराओंके साथ उस गन्धमादनपर्वतपर अभी शीघ्रतापूर्वक जाओ। वहाँ 'नर-नारायण' नामक दो प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि बदरिकाश्रमके एकान्त स्थानमें स्थित होकर तपस्या कर रहे हैं। हे मन्मथ! उनके पास जाकर तुम अपने बाणोंसे उनके चित्तको कामासक्त कर दो। उनका मोहन तथा उच्चाटन करके तुम अपने बाणोंसे उन्हें शीघ्र आहत कर डालो; मेरा यह कार्य अभी सिद्ध करो॥ ३४—३८॥

इस प्रकार हे महाभाग! धर्मके पुत्र उन दोनों मुनियोंको वशीभूत कर लो। इस सम्पूर्ण संसारमें देवता, दैत्य या मनुष्य कौन ऐसा है, जो तुम्हारे बाणके वशीभूत होकर अत्यन्त कामासक्त न हो जाय? हे कामदेव! जब ब्रह्मा, मैं (इन्द्र), शिव, चन्द्रमा या अग्नि भी मोहित हो जाते हैं तब तुम्हारे बाणोंके पराक्रमके सामने उन दोनोंकी क्या गणना है?॥ ३९-४०½॥

तुम्हारी सहायताके लिये मेरे द्वारा यह रम्भा आदि अप्सराओंका समूह भेजा जा रहा है, जो वहाँ पहुँच जायगा। अकेली तिलोत्तमा या रम्भा ही इस कार्यको करनेमें समर्थ है अथवा तुम अकेले भी इसे करनेमें समर्थ हो, तब सभी सम्मिलित रूपसे कार्य सिद्ध कर लेंगे; इसमें सन्देहकी बात ही क्या? हे महाभाग! तुम मेरे इस कार्यको सम्पन्न करो, मैं तुम्हें वांछित वस्तु प्रदान करूँगा॥ ४१—४३॥

प्रलोभितौ मयात्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ।
स्थानान्न चलितौ शान्तौ वृथायं मे गतः श्रमः॥ ४४

तथा वै मायया कृत्वा भीषितौ तापसौ भृशम्।
तथापि नोत्थितौ स्थानाद्देहरक्षापरौ न तौ॥ ४५

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शक्रं प्राह मनोभवः।
वासवाद्य करिष्यामि कार्यं ते मनसेप्सितम्॥ ४६

यदि विष्णुं महेशं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम्।
ध्यायन्तौ तौ तदास्माकं भवितारौ वशौ मुनी॥ ४७

देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथञ्चन।
कामराजं महाबीजं चिन्तयन्तं मनस्यलम्॥ ४८

तां देवीं चेन्महाशक्तिं संश्रितौ भक्तिभावतः।
न तदा मम बाणानां गोचरौ तापसौ किल॥ ४९

इन्द्र उवाच

गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्र समुद्यतैः।
कार्यं ममातिदुःसाध्यं कर्ता हितमनुत्तमम्॥ ५०

व्यास उवाच

इति तेन समादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः।
यत्र तौ धर्मपुत्रौ द्वौ तेपाते दुष्करं तपः॥ ५१

मैंने उन दोनों तपस्वियोंको वरदानोंके द्वारा बहुत प्रलोभन दिया, किंतु वे अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए, बल्कि शान्त बैठे रहे। मेरा यह परिश्रम व्यर्थ चला गया। मैंने माया रचकर उन तपस्वियोंको बहुत डराया, फिर भी वे अपने आसनसे नहीं उठे। वे दोनों शरीररक्षाके लिये जरा भी चिन्तित नहीं हैं॥ ४४-४५॥

व्यासजी बोले—इन्द्रका यह वचन सुनकर कामदेवने उनसे कहा—हे इन्द्र! मैं अभी आपका मनोवांछित कार्य करूँगा। यदि वे दोनों मुनि विष्णु, शिव, ब्रह्मा अथवा सूर्य किसीका ध्यान करते होंगे, तो वे हमारे वशमें हो जायँगे। मैं केवल कामराज महाबीज 'क्लीं' का अपने मनमें चिन्तन करनेवाले देवीभक्तको वशमें करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हूँ। यदि वे भक्ति-भावसे महाशक्तिस्वरूपा देवीकी उपासनामें लगे होंगे, तो मेरे बाणोंका प्रभाव उन तपस्वियोंपर नहीं पड़ेगा॥ ४६—४९॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग! जानेके लिये उद्यत इन सभीके साथ तुम वहाँ जाओ। यद्यपि मेरा यह कार्य अत्यन्त दुःसाध्य है, फिर भी तुम इस हितकर तथा उत्तम कार्यको पूर्ण कर ही लोगे॥ ५०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार इन्द्रका आदेश पाकर वे लोग पूरी तैयारीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वे धर्मपुत्र नर-नारायण कठोर तपस्या कर रहे थे॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
नरनारायणकथावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

कामदेवद्वारा नर-नारायणके समीप वसन्त ऋतुकी सृष्टि, नारायणद्वारा उर्वशीकी उत्पत्ति, अप्सराओंद्वारा नारायणसे स्वयंको अंगीकार करनेकी प्रार्थना

व्यास उवाच

प्रथमं तत्र सम्प्राप्तो वसन्तः पर्वतोत्तमे।
पुष्पिताः पादपाः सर्वे द्विरेफालिविराजिताः॥ १

आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः।
सालास्तालास्तमालाश्च मधूकाः पुष्पिता बभुः॥ २

व्यासजी बोले—सर्वप्रथम उस पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादनपर वसन्त पहुँचा। उस पर्वतपर स्थित सभी वृक्ष पुष्पित हो गये और उनपर भ्रमरोंके समूह मँडराने लगे॥ १॥

आम, मौलसिरी, रम्य, तिलक, सुन्दर किंशुक, साल, ताल, तमाल तथा महुए—ये सब-के-सब फूलोंसे सुशोभित हो गये॥ २॥

बभूवुः कोकिलालापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः।
वल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वा आलिलिङ्गुर्नगोत्तमान्॥ ३

प्राणिनः स्वासु भार्यासु प्रेमयुक्ताः स्मरातुराः।
बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम्॥ ४

ववुर्मन्दाः सुगन्धाश्च सुस्पर्शा दक्षिणानिलाः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाभवन्॥ ५

रतियुक्तस्ततः कामः पूरयन्पञ्चमार्गणान्।
चकार त्वरितस्तत्र वासं बदरिकाश्रमे॥ ६

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च गत्वा तत्र वराश्रमे।
गानं चक्रुः सुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम्॥ ७

तच्छ्रुत्वा मधुरोद्गीतं कोकिलानाञ्च कूजितम्।
भ्रमरालिविरावञ्च प्रबुद्धौ तौ मुनीश्वरौ॥ ८

ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितं वनम्।
जातौ चिन्तापरौ तत्र नरनारायणावृषी॥ ९

किमद्य शिशिरापायः संवृतः समयं विना।
प्राणिनो विह्वलाः सर्वे लक्ष्यन्तेऽतिस्मरातुराः॥ १०

कालधर्मविपर्यासः कथमद्य दुरासदः।
नरं नारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ११

नारायण उवाच

पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिताः प्रतिभान्ति वै।
कोकिलालापसङ्घुष्टा भ्रमरालिविराजिताः॥ १२

शिशिरं भीममातङ्गं दारयन्स्वखरैर्नखैः।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने॥ १३

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना॥ १४

वृक्षोंकी डालियोंपर कोयलोंकी मनोहारिणी कूक आरम्भ हो गयी। पुष्पोंसे लदी हुई सभी लताएँ ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ने लगीं॥ ३॥

सभी प्राणी अपनी-अपनी भार्याओंमें प्रेमासक्त हो गये तथा मत्त होकर परस्पर क्रीड़ा करने लगे॥ ४॥

मन्द, सुगन्धयुक्त तथा सुखद स्पर्शवाली दक्षिणी हवाएँ चलने लगीं। उस समय मुनियोंकी भी वृत्तियाँ अतीव चंचल हो उठीं॥ ५॥

तत्पश्चात् अपनी भार्या रतिके साथ कामदेव भी अपने पंचबाणोंको छोड़ता हुआ तत्काल बदरिकाश्रम पहुँचकर वहाँ रहने लगा॥ ६॥

संगीतकलामें अत्यन्त प्रवीण रम्भा और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ भी उस रमणीक बदरिकाश्रममें पहुँचकर स्वर तथा तानमें आबद्ध गीत गाने लगीं॥ ७॥

उस मधुर गायन, कोयलोंकी कूक तथा भ्रमर-समूहोंका गुंजार सुनकर उन दोनों मुनिवरोंका ध्यान भंग हो गया॥ ८॥

असमयमें ही वसन्तका आगमन तथा सम्पूर्ण वनको पुष्पोंसे सुशोभित देखकर वे दोनों नर तथा नारायणऋषि चिन्तित हो उठे [वे सोचने लगे कि] क्या आज समय पूरा हुए बिना ही शिशिर ऋतु बीत गयी? इस समय तो समस्त प्राणी कामसे पीड़ित होनेके कारण अत्यन्त विह्वल दिखायी पड़ रहे हैं। कालके स्वभाव तथा नियममें यह अद्भुत परिवर्तन आज कैसे हो गया? विस्मयके कारण विस्फारित नेत्रोंवाले मुनि नारायण नरसे कहने लगे॥ ९—११॥

नारायण बोले—हे भाई! देखो, ये सभी वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुए सुशोभित हो रहे हैं। इन वृक्षोंपर कोयलोंकी मधुर ध्वनि हो रही है तथा भ्रमरोंकी पंक्तियाँ विराजमान हैं॥ १२॥

हे मुने! यह वसन्तरूपी सिंह अपने पलाशपुष्परूपी तीखे नाखूनोंसे शिशिररूपी भयानक हाथीको विदीर्ण करता हुआ यहाँ आ पहुँचा है॥ १३॥

हे देवर्षे! लाल अशोक जिसके हाथ हैं, किंशुकके पुष्प जिसके पैर हैं, नील अशोक जिसके केश हैं, विकसित श्याम कमल जिसका मुख है,

नीलेन्दीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी।
प्रोत्फुल्लकुन्दरदना मञ्जरीकर्णशोभिता॥ १५

बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्धुवारनखोद्भवा।
पुंस्कोकिलस्वरा पुण्या कदम्बवसना शुभा॥ १६

बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वननूपुरा।
वासन्ती बद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा॥ १७

पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे॥ १८

अकाले किमियं प्राप्ता विस्मयोऽयं ममाधुना।
तपोविघ्नकरा नूनं देवर्षे परिचिन्तय॥ १९

श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम्।
आवयोस्तपिभङ्गाय कृतं मघवता किल॥ २०

ऋतुराडन्यथाकाले प्रीतिं सञ्जनयेत्कथम्।
विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनासुरशत्रुणा॥ २१

वाताः सुगन्धाः शीताश्च समायान्ति मनोहराः।
नान्यत्कारणमस्तीह शतक्रतुकृतिं विना॥ २२

इति ब्रुवति विप्राग्र्ये देवे नारायणे विभौ।
सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा॥ २३

ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा।
विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि॥ २४

मन्मथं मेनकां चैव रम्भां चैव तिलोत्तमाम्।
पुष्पगन्धां सुकेशीं च महाश्वेतां मनोरमाम्॥ २५

प्रमद्वरां घृताचीञ्च गीतज्ञां चारुहासिनीम्।
चन्द्रप्रभां च सोमां च कोकिलालापमण्डिताम्॥ २६

विद्युन्मालाम्बुजाक्ष्यौ च तथा काञ्चनमालिनीम्।
एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदान्तिके॥ २७

तासां द्व्यष्टसहस्राणि पञ्चाशदधिकानि च।
वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम्॥ २८

नीले कमल जिसके नेत्र हैं, बिल्व-वृक्षके फल जिसके स्तन हैं, खिले हुए कुन्दके फूल जिसके दाँत हैं, आमके बौर जिसके कान हैं, बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के पुष्प जिसके शुभ्र अधर हैं, सिन्धुवारके पुष्प जिसके नख हैं, कोयलके समान जिसका स्वर है, कदम्बके पुष्प जिस सुन्दरीके पावन वस्त्र हैं, मयूरपंखोंके समूह जिसके आभूषण हैं, सारसोंका स्वर जिसका नूपुर है, माधवी लता जिसकी करधनी है—ऐसी मत्त हंसके समान गतिवाली तथा इंगुदीके पत्तोंको रोमस्वरूप धारण की हुई वसन्तश्री इस बदरिकाश्रममें छायी हुई है॥ १४—१८॥

मुझे तो यह महान् आश्चर्य हो रहा है कि असमयमें यह यहाँ क्यों आ गयी? हे देवर्षे! आप यह निश्चित समझिये कि इस समय यह हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाली है॥ १९॥

ध्यान भंग कर देनेवाला यह देवांगनाओंका गीत सुनायी दे रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम दोनोंका तप नष्ट करनेके लिये इन्द्रने ही यह उपक्रम रचा है। अन्यथा ऋतुराज वसन्त अकालमें कैसे प्रीति प्रकट कर सकता है? जान पड़ता है कि भयभीत होकर असुरोंके शत्रु इन्द्रके द्वारा ही यह विघ्न उपस्थित किया गया है। सुरभित, शीतल एवं मनोहर हवाएँ चल रही हैं; इसमें इन्द्रकी चालके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है॥ २०—२२॥

विप्रवर विभु भगवान् नारायण ऐसा कह ही रहे थे कि कामदेव आदि सभी दिखायी पड़ गये। भगवान् नर तथा नारायणने उन सबको प्रत्यक्ष देखा और इससे उन दोनोंके मनमें महान् आश्चर्य हुआ॥ २३-२४॥

कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी, महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, गीतज्ञ और सुन्दर हास्य करनेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलके समान आलाप करनेवाली सोमा, विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी और कांचनमालिनी—इन्हें तथा अन्य भी बहुत-सी सुन्दर अप्सराओंको नर-नारायणने अपने पास उपस्थित देखा। उनकी संख्या सोलह हजार पचास थी, कामदेवकी उस विशाल सेनाको देखकर वे दोनों मुनि चकित हो गये॥ २५—२८॥

प्रणम्याग्रे स्थिताः सर्वा देववाराङ्गनास्तदा।
दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यमालोपशोभिताः॥ २९

जगुश्छलेन ताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम्।
तत्तथावस्थितं दिव्यं मन्मथादिविवर्धनम्॥ ३०

शुश्राव भगवान्विष्णुर्नरो नारायणस्तदा।
श्रुत्वा प्रोवाच तास्तत्र प्रीत्या नारायणो मुनिः॥ ३१

आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम्।
भवत्योऽतिथिधर्मेण प्राप्ताःस्वर्गात्सुमध्यमाः॥ ३२

व्यास उवाच

साभिमानस्तु सञ्जातस्तदा नारायणो मुनिः।
इन्द्रेण प्रेषिता नूनं तथा विघ्नचिकीर्षया॥ ३३

वराक्यः का इमाः सर्वाः सृजाम्यद्य नवाः किल।
एताभ्यो दिव्यरूपाश्च दर्शयामि तपोबलम्॥ ३४

इति सञ्चिन्त्य मनसा करेणोरुं प्रताड्य वै।
तरसोत्पादयामास नारीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥ ३५

नारायणोरुसम्भूता ह्युर्वशीति ततः शुभा।
ददृशुस्ताः स्थितास्तत्र विस्मयं परमं ययुः॥ ३६

तासां च परिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुन्दरीः।
प्रादुश्चकार तरसा तदा मुनिरसम्भ्रमः॥ ३७

गायन्त्यश्च हसन्त्यश्च नानोपायनपाणयः।
प्रणेमुस्ता मुनी सर्वाः स्थिताः कृत्वाञ्जलिं पुरः॥ ३८

तां वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं
देवाङ्गना हि मुमुहुः प्रविमोहयन्त्यः।
ऊचुश्च तौ प्रमुदिताननपद्मशोभा
रोमोद्गमोल्लसितचारुनिजाङ्गवल्ल्यः॥ ३९

उस समय दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य मालाओंसे सुशोभित देवलोककी वे अप्सराएँ प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयीं॥ २९॥

तत्पश्चात् वे अनेक प्रकारके हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई छलपूर्वक पृथ्वीतलपर अत्यन्त दुर्लभ एवं कामवासनावर्धक गीत गाने लगीं। भगवान् नर-नारायणने उस गीतको सुना। तदनन्तर उसे सुनकर नारायणमुनिने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—तुमलोग आनन्दसे बैठो, मैं तुम्हारा अद्भुत आतिथ्य-सत्कार करूँगा। हे सुन्दरियो! तुमलोग स्वर्गसे यहाँ आयी हो, अतएव हमारी अतिथिस्वरूपा हो॥ ३०—३२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस समय मुनि नारायण अभिमानमें आकर सोचने लगे कि निश्चितरूपसे इन्द्रने हमारे तपमें बाधा डालनेकी इच्छासे इन्हें भेजा है। ये सब बेचारी क्या चीज हैं, मैं अभी अपना तपोबल दिखाता हूँ और इनसे भी अधिक दिव्य रूपवाली नवीन अप्सराएँ उत्पन्न करता हूँ॥ ३३-३४॥

मनमें ऐसा विचार करके उन्होंने हाथसे अपनी जंघापर आघातकर तत्काल एक सर्वांगसुन्दरी स्त्री उत्पन्न कर दी॥ ३५॥

वह सुन्दरी भगवान् नारायणके ऊरुदेश (जंघा)-से उत्पन्न हुई थी, अतः उसका नाम उर्वशी पड़ा। वहाँ उपस्थित वे अप्सराएँ उर्वशीको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं॥ ३६॥

तदनन्तर उन अप्सराओंकी सेवाके लिये मुनिने तत्काल उतनी ही अन्य अत्यन्त सुन्दर अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। हाथमें विविध प्रकारके उपहार लिये हँसती हुई तथा मधुर गीत गाती हुई उन सब अप्सराओंने उन मुनियोंको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं॥ ३७-३८॥

लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली वे [इन्द्रप्रेषित] अप्सराएँ तपस्याकी विभूति उस विस्मयकारिणी उर्वशीको देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उन अप्सराओंके मुखकमल आनन्दातिरेकसे खिल उठे तथा उनके मनोहर शरीररूपी वल्लरियोंपर रोमांचरूपी अंकुर निकल आये। वे अप्सराएँ उन दोनों मुनियोंसे कहने लगीं—॥ ३९॥

कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं
धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः।
अस्मत्कटाक्षविषदिग्धशरेण दग्धः
को वा न तत्र भवतां मनसो व्यथा न॥ ४०

ज्ञातौ युवां नरहरेः परमांशभूतौ
देवौ मुनी शमदमादिनिधी सदैव।
सेवानिमित्तमिह नो गमनं न कामं
कार्यं हरेः शतमखस्य विधातुमेव॥ ४१

भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः
सम्पादितं न विदितं खलु सञ्चितं तत्।
चित्तं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्या-
मस्मद्विधे किल कृतागसि तापमुक्तम्॥ ४२

कुर्वन्ति नैव विबुधास्तपसो व्ययं वै
शापेन तुच्छफलदेन महानुभावाः।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिनीनां
तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम्॥ ४३

प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ
धर्मात्मजौ निजतपोरुचिशोभिताङ्गौ।

नरनारायणावूचतुः

ब्रुवन्तु वाञ्छितान् कामान्ददावस्तुष्टमानसौ॥ ४४

यान्तु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलोचनाम्।
उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा॥ ४५

दत्तावाभ्यां मघवतः प्रीणनायोरुसम्भवा।
स्वस्त्यस्तु सर्वदेवेभ्यो यथेष्टं प्रव्रजन्तु च॥ ४६
(न कस्यापि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम्।)

अहो! हम मूर्ख अप्सराएँ आपकी स्तुति कैसे करें? हम तो आपके धैर्य तथा तपके प्रभावको देखकर परम विस्मयमें पड़ गयी हैं। ऐसा कौन है जो हमलोगोंके कटाक्षरूपी विषसे बुझे बाणोंसे दग्ध न हो गया हो, फिर भी आपके मनको थोड़ी भी व्यथा नहीं हुई॥ ४०॥

अब हमलोगोंको ज्ञात हो गया कि आप दोनों देवस्वरूप मुनि साक्षात् भगवान् विष्णुके परम अंश हैं और सदा ही शम, दम आदि गुणोंके निधान हैं। आप दोनोंकी सेवाके लिये यहाँ हमारा आगमन नहीं हुआ है, अपितु देवराज इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही हम सब यहाँ आयी हुई हैं॥ ४१॥

न जाने हमारे किस भाग्यसे आप दोनों मुनिवरोंके दर्शन हुए। हम यह नहीं जान पा रही हैं कि हमारे द्वारा सम्पादित किस संचित पुण्यकर्मका यह फल है। [शाप देनेमें समर्थ होते हुए भी] आप दोनों मुनियोंने हम-जैसे अपराधीजनोंको स्वजन समझकर अपने चित्तको क्षमाशील बनाया और हमें सन्तापरहित कर दिया। विवेकशील महानुभाव तुच्छ फल देनेवाले शापको उपयोगमें लाकर अपने तपका अपव्यय नहीं करते॥ ४२ १/२ ॥

व्यासजी बोले—उन अति विनम्र देवसुन्दरियोंका वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाले, काम तथा लोभको जीत लेनेवाले तथा अपनी तपस्याके प्रभावसे देदीप्यमान अंगोंवाले वे धर्मपुत्र मुनिवर नर-नारायण प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४३ १/२ ॥

नर-नारायण बोले—हम दोनों तुम सभीपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमलोग अपने वांछित मनोरथ बताओ, हम उसे देंगे। इस सुन्दर नयनोंवाली उर्वशीको भी अपने साथ लेकर तुम सब स्वर्गके लिये प्रस्थान करो। उपहारस्वरूप यह मनोहर युवती अब यहाँसे तुमलोगोंके साथ जाय॥ ४४-४५॥

ऊरुसे प्रादुर्भूत इस उर्वशीको इन्द्रके प्रसन्नार्थ हमने उनको दे दिया है। सभी देवताओंका कल्याण हो और अब सभी लोग इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ४६॥ (अब इसके बाद तुमलोग किसीकी तपस्यामें विघ्न मत उत्पन्न करना।)

देव्य ऊचुः

क्व गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपङ्कजम्।
नारायण सुरश्रेष्ठ भक्त्या परमया मुदा॥ ४७

वाञ्छितं चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन।
तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम्॥ ४८

पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परन्तप।
भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर॥ ४९

त्वया चोत्पादिता नार्यः सन्त्यन्याश्चारुलोचनाः।
उर्वश्याद्यास्तथा यान्तु स्वर्गं वै भवदाज्ञया॥ ५०

स्त्रीणां षोडशसाहस्रं तिष्ठत्वत्र शतार्धकम्।
सेवां तेऽत्र करिष्यामो युवयोस्तापसोत्तमौ॥ ५१

वाञ्छितं देहि देवेश सत्यवाग्भव माधव।
आशाभङ्गो हि नारीणां हिंसनं परिकीर्तितम्॥ ५२

कामार्तानाञ्च मुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः।
भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः॥ ५३

त्यक्तुं नार्हसि देवेश समर्थोऽसि जगत्पते।

नारायण उवाच

पूर्णं वर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं मयात्र वै॥ ५४

जितेन्द्रियेण चार्वङ्ग्यः कथं भङ्गं करोम्यतः।
नेच्छा कामे सुखे काचित्सुखधर्मविनाशके॥ ५५

पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम्।

अप्सरस ऊचुः

शब्दादीनां च पञ्चानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम्॥ ५६

आनन्दरसमूलं वै नान्यदस्ति सुखं किल।
अतोऽस्माकं महाराज वचनं कुरु सर्वथा॥ ५७

देवियाँ बोलीं—हे महाभाग! हे नारायण! हे सुरश्रेष्ठ! परमभक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक हम सभी अप्सराएँ आपके चरणकमलोंका सांनिध्य प्राप्त कर चुकी हैं; अब हम सब कहाँ जायँ?॥ ४७॥

हे नाथ! हे मधुसूदन! हे कमलपत्राक्ष! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वांछित वरदान देना चाहते हैं, तो हम अपने मनकी इच्छा प्रकट कर रही हैं॥ ४८॥

हे देवेश! आप हमारे पति बन जायँ। हे परन्तप! हमलोगोंके इसी वरदानको पूर्ण कीजिये। हे जगदीश्वर! आपकी सेवा करनेमें हम सभीको प्रसन्नता होगी॥ ४९॥

आपने जिन उर्वशी आदि सुन्दर नयनोंवाली अन्य रमणियोंको उत्पन्न किया है, वे अब आपकी आज्ञासे स्वर्ग चली जायँ। हे श्रेष्ठ तपस्वियो! हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहीं रहेंगी और यहाँ हम सब आप दोनोंकी सेवा करेंगी॥ ५०-५१॥

हे देवेश! आप हमारा मनोवांछित वर दीजिये और अपने सत्यव्रतका पालन कीजिये। हे माधव! धर्मज्ञ तथा तत्त्वदर्शी मुनियोंने प्रेमासक्त स्त्रियोंकी आशाको भंग करना हिंसा बताया है। दैवयोगसे हम अप्सराएँ भी स्वर्गसे यहाँ आकर आप दोनोंके प्रेमरससे संसिक्त हो गयी हैं। हे देवेश! आप हमारा त्याग न कीजिये। हे जगत्पते! आप तो सर्वसमर्थ हैं॥ ५२-५३½॥

नारायण बोले—इन्द्रियोंको जीतकर मैंने पूरे एक हजार वर्षोंतक यहाँ तपस्या की है, अतएव हे सुन्दरियो! उसे कैसे नष्ट कर दूँ? सुख तथा धर्मका नाश करनेवाले वासनात्मक सुखमें मेरी कोई रुचि नहीं है। पाशविक धर्मके समान सुखमें विवेकशील पुरुष कैसे प्रवृत्त हो सकता है?॥ ५४-५५½॥

अप्सराएँ बोलीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच सुखोंमें स्पर्श-सुख सर्वश्रेष्ठ है। यह आनन्दरसका मूल है और इससे बढ़कर अन्य कोई भी सुख नहीं है। अतः हे महाराज! आप हमारी बात मान लीजिये॥ ५६-५७॥

निर्भरं सुखमासाद्य चरस्व गन्धमादने।
यदि वाञ्छसि नाकत्वं नाधिको गन्धमादनात्॥ ५८
रमस्वात्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाः सुराङ्गनाः॥ ५९

पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हुए आप गन्धमादन-पर्वतपर विचरण कीजिये। यदि आप स्वर्ग-प्राप्तिकी आकांक्षा रखते हैं तो यह निश्चय जान लीजिये कि वह स्वर्ग इस गन्धमादनसे अच्छा नहीं है। अतः हम सभी अप्सराओंको अंगीकार करके आप इस दिव्य स्थानमें विहार कीजिये॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे अप्सरसां नारायणसमीपे प्रार्थनाकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

अप्सराओंके प्रस्तावसे नारायणके मनमें ऊहापोह और नरका उन्हें समझाना तथा अहंकारके कारण प्रह्लादके साथ हुए युद्धका स्मरण कराना

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्मपुत्रः प्रतापवान्।
विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाधुना॥ १

हास्योऽहं मुनिवृन्देषु भविष्याम्यद्य सङ्गमात्।
अहंकारादिदं प्राप्तं दुःखं नात्र विचारणा।
मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहङ्कृतिः॥ २

मूलं संसारवृक्षस्य यतः प्रोक्तो महात्मभिः।
दृष्ट्वा मौनं समाधाय न स्थितोऽहं समागतम्॥ ३

वाराङ्गनागणं जुष्टं तेनासं दुःखभाजनम्।
उत्पादितास्तथा नार्यो मया धर्मव्ययेन वै॥ ४

तास्तु मां बाधितुं वृत्ताः कामार्ताः प्रमदोत्तमाः।
ऊर्णनाभिरिवाद्याहं जालेन स्वकृतेन वै॥ ५

बद्धोऽस्मि सुदृढेनात्र किं कर्तव्यमतः परम्।
यदि चिन्तां समुत्सृज्य सन्त्यजाम्यबला इमाः॥ ६

शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यन्ति सर्वा भग्नमनोरथाः।
मुक्तोऽहं सञ्चरिष्यामि विजने परमं तपः॥ ७
तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्ष्यामि सुन्दरीगणम्।

व्यासजी बोले—उन देवांगनाओंका वचन सुनकर धर्मपुत्र प्रतापी नारायण अपने मनमें विचार करने लगे कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं इस समय विषयभोगमें लिप्त होता हूँ तो मुनिसमुदायमें उपहासका पात्र बनूँगा। अहंकारसे ही मुझे यह दुःख प्राप्त हुआ है; इसमें कोई संशय नहीं। धर्मके विनाशका मूल तथा प्रधान कारण अहंकार है। अतः महात्माओंने उसे संसाररूपी वृक्षका मूल कहा है॥ १-२½॥

इन वारांगनाओंके समूहको आया हुआ देखकर मैं मौन धारणकर स्थित नहीं रह सका और प्रसन्नतापूर्वक मैंने इनसे वार्तालाप किया, इसीलिये मैं दुःखका भाजन हुआ। अपने धर्मका व्यय करके मैंने उन उर्वशी आदि स्त्रियोंकी व्यर्थ रचना की। ये कामार्त अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेमें प्रवृत्त हैं। मकड़ियोंके द्वारा बनाये गये जालकी भाँति अब अपने ही द्वारा उत्पादित सुदृढ़ जालमें मैं बुरी तरह फँस गया हूँ, अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि चिन्ता छोड़कर इन स्त्रियोंको अस्वीकार कर देता हूँ तो अपना मनोरथ निष्फल हुआ पाकर ये भ्रष्ट स्त्रियाँ मुझे शाप देकर चली जायँगी। तब इनसे छुटकारा पाकर मैं निर्जन स्थानमें कठोर तप करूँगा। अतएव क्रोध उत्पन्न करके मैं इनका परित्याग कर दूँगा॥ ३—७½॥

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा मुनिर्नारायणस्तदा॥ ८

विमर्शमकरोच्चित्ते सुखोत्पादनसाधने।
द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः सन्तापकारकः॥ ९

कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः।
क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम्॥ १०

दुःखदां सर्वभूतानां नरकारामदीर्घिकाम्।
यथाग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा॥ ११

देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः।

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्यमानं तं भ्रातरं दीनमानसम्॥ १२

उवाच वचनं तथ्यं नरो धर्मसुतोऽनुजः।

नर उवाच

नारायण महाभाग कोपं यच्छ महामते॥ १३

शान्तं भावं समाश्रित्य नाशयाहङ्कृतिं पराम्।
पुराहङ्कारदोषेण तपो नष्टं किलावयोः॥ १४

संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह।
दिव्यवर्षसहस्रं तु प्रह्लादेन महाद्भुतम्॥ १५

दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्रावाभ्यां सुरोत्तम।
तस्मात्क्रोधं परित्यज्य शान्तो भव मुनीश्वर॥ १६

(शान्तत्वं तपसो मूलं मुनिभिः परिकीर्तितम्।)

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शान्तोऽभूद्धर्मनन्दनः।

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ प्रह्लादेन महात्मना॥ १७

विष्णुभक्तेन शान्तेन कथं युद्धं कृतं पुरा।
कृतवन्तौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी॥ १८

तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशान्तमानसावुभौ।
समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च॥ १९

व्यासजी बोले—मुनि नारायणने ऐसा निश्चय करके अपने मनमें विचार किया कि सुख-प्राप्तिके समस्त साधनोंमें [अहंकारके बाद] यह क्रोध दूसरा प्रबल शत्रु है, जो अत्यन्त कष्ट प्रदान करता है। यह क्रोध संसारमें काम तथा लोभसे भी अधिक भयंकर है। क्रोधके वशीभूत प्राणी प्राणघातक हिंसातक कर डालता है, जो (हिंसा) सभी प्राणियोंके लिये दुःखदायिनी तथा नरकरूपी बगीचेकी बावलीके तुल्य है। जिस प्रकार वृक्षोंके परस्पर घर्षणसे उत्पन्न अग्नि वृक्षको ही जला डालती है, उसी प्रकार शरीरसे उत्पन्न भीषण क्रोध उसी शरीरको जला डालता है॥ ८—११½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार खिन्नमनस्क होकर चिन्तन करते हुए अपने भाई नारायणसे उनके लघु भ्राता धर्मपुत्र नरने यह तथ्यपूर्ण वचन कहा॥ १२½ ॥

नर बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महामते! आप क्रोधका त्याग कीजिये और शान्तभावका आश्रय लेकर इस प्रबल अहंकारका नाश कीजिये; क्योंकि पूर्व समयमें इसी अहंकारके दोषसे हम दोनोंका तप विनष्ट हो गया था॥ १३-१४॥

अहंकार तथा क्रोध—इन्हीं दोनों भावोंके कारण हमलोगोंको असुरराज प्रह्लादके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंतक अत्यन्त अद्भुत युद्ध करना पड़ा था। हे सुरश्रेष्ठ! उस युद्धमें हम दोनोंको महान् क्लेश मिला था। अतएव हे मुनीश्वर! आप क्रोधका परित्याग करके शान्त हो जाइये॥ १५-१६॥ (मुनियोंने शान्तिको तपस्याका मूल बतलाया है।)

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर धर्मपुत्र नारायण शान्त हो गये॥ १६½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि शान्त स्वभाववाले विष्णुभक्त महात्मा प्रह्लादने पूर्वकालमें यह युद्ध क्यों किया और ऋषि नर-नारायणने भी संग्राम क्यों किया?॥ १७-१८॥

धर्मपुत्र नर-नारायण—ये दोनों ही अत्यन्त शान्त स्वभाववाले तपस्वी थे। ऐसी स्थितिमें दैत्यपुत्र प्रह्लाद तथा उन दोनों ऋषियोंका सम्पर्क कैसे हुआ?॥ १९॥

संग्रामस्तु कथं ताभ्यां कृतस्तेन महात्मना।
प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्मा ज्ञानवान्विष्णुतत्परः॥ २०

नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ।
तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम्॥ २१

तदा तपसि धर्मे च श्रम एव हि केवलम्।
क्व जपः क्व तपश्चर्या पुरा सत्ययुगेऽपि च॥ २२

तादृशैर्न जितं चित्तं क्रोधाहङ्कारसंवृतम्।
न क्रोधो न च मात्सर्यमहङ्कारांकुरं विना॥ २३

अहङ्कारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल।
वर्षकोटिसहस्त्रं तु तपः कृत्वातिदारुणम्॥ २४

अहङ्कारांकुरे जाते व्यर्थं भवति सर्वथा।
यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥ २५

अहङ्कारांकुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति।
प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणा समयुध्यत॥ २६

तदा व्यर्थं कृतं सर्वं सुकृतं किल भूतले।
नरनारायणौ शान्तौ विहाय परमं तपः॥ २७

कृतवन्तौ यदा युद्धं क्व शमः सुकृतं पुनः।
ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्यामजेया यद्यहङ्कृतिः॥ २८

मादृशानाञ्च का वार्ता मुनेऽहङ्कारसंक्षये।
अहङ्कारपरित्यक्तो न कोऽप्यस्ति जगत्त्रये॥ २९

न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा।
मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा॥ ३०

अहङ्कारनिबद्धस्तु न कदाचिद्विमुच्यते।
अहङ्कारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३१

प्रह्लाद भी अत्यन्त धर्मपरायण, ज्ञानसम्पन्न तथा विष्णुभक्त थे, तब महात्मा प्रह्लादने उन ऋषियोंके साथ युद्ध क्यों किया?॥ २०॥

तपस्वी नर-नारायण भी प्रह्लादकी ही भाँति सात्त्विक भावसे सम्पन्न थे। उन दोनों ऋषियों तथा प्रह्लादमें यदि परस्पर वैर उत्पन्न हो गया तो फिर उनकी तपस्या तथा धर्माचरणके पालनमें केवल परिश्रम ही उनके हाथ लगा। उस सत्ययुगमें भी उनके जप तथा घोर तप कहाँ चले गये थे?॥ २१-२२॥

वैसे वे महात्मा भी क्रोध और अहंकारसे भरे अपने मनको वशमें नहीं कर सके। अहंकाररूपी बीजके अंकुरित हुए बिना क्रोध तथा मात्सर्य उत्पन्न नहीं होते हैं। यह निश्चित है कि काम-क्रोध आदि अहंकारसे ही उत्पन्न होते हैं। हजार करोड़ वर्षोंतक घोर तपस्या करनेके पश्चात् भी यदि अहंकारका अंकुरण हुआ तो फिर सब कुछ निरर्थक हो जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार नहीं ठहरता, उसी प्रकार अहंकाररूपी अंकुरके समक्ष पुण्य नहीं ठहर पाता है॥ २३—२५½॥

हे महाभाग! प्रह्लादने भी भगवान् नर-नारायणके साथ संग्राम किया, जिसके कारण पृथ्वीपर उनके द्वारा अर्जित समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया॥ २६½॥

शान्त स्वभाववाले नर-नारायण भी अपनी कठिन तपस्या त्यागकर यदि युद्ध करनेमें तत्पर हुए तो फिर उनकी शान्तिवृत्ति तथा पुण्यशीलताका क्या महत्त्व रहा?॥ २७½॥

हे मुने! जब सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न इस प्रकारके वे दोनों महात्मा भी अहंकारपर विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे, तब मेरे-जैसे व्यक्तियोंके लिये अहंकार नष्ट करनेकी बात ही क्या है? इस त्रिलोकमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो अहंकारसे मुक्त हो, इसी तरह ऐसा कोई भी न तो हुआ है और न होगा, जो अहंकारसे पूर्णतया मुक्त हो॥ २८-२९½॥

काष्ठ तथा लोहेकी जंजीरमें बँधा हुआ व्यक्ति बन्धनमुक्त हो सकता है, किंतु अहंकारसे बँधा व्यक्ति कभी भी नहीं छूट सकता। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अहंकारसे व्याप्त है॥ ३०-३१॥

भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते।
ब्रह्मज्ञानं कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते॥ ३२

मतं मीमांसकानां वै सम्मतं भाति सुव्रत।
महान्तोऽपि सदा युक्ताः कामक्रोधादिभिर्मुने॥ ३३

मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम।

व्यास उवाच

कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत॥ ३४

कटकं कुण्डलञ्चैव सुवर्णसदृशं भवेत्।
अहङ्कारोद्भवं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥ ३५

पटस्तन्तुवशः प्रोक्तस्तद्वियुक्तः कथं भवेत्।
मायागुणैस्त्रिभिः सर्वं रचितं स्थिरजङ्गमम्॥ ३६

सतृणस्तम्बपर्यन्तं का तत्र परिदेवना।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते चाहङ्कारमोहिताः॥ ३७

भ्रमन्त्यस्मिन्महागाधे संसारे नृपसत्तम।
वसिष्ठनारदाद्याश्च मुनयो ज्ञानिनः परम्॥ ३८

तेऽभिभूताः संसरन्ति संसारेऽस्मिन्पुनः पुनः।
न कोऽप्यस्ति नृपश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु देहभृत्॥ ३९

एभिर्मायागुणैर्मुक्तः शान्त आत्मसुखे स्थितः।
कामक्रोधौ तथा लोभो मोहोऽहङ्कारसम्भवः॥ ४०

न मुञ्चन्ति नरं सर्वं देहवन्तं नृपोत्तम।
अधीत्य वेदशास्त्राणि पुराणानि विचिन्त्य च॥ ४१

कृत्वा तीर्थाटनं दानं ध्यानञ्चैव सुरार्चनम्।
करोति विषयासक्तः सर्वं कर्म च चौरवत्॥ ४२

विचारयति नो पूर्वं काममोहमदान्वितः।
कृते युगेऽपि त्रेतायां द्वापरे कुरुनन्दन॥ ४३
विद्धोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाद्य कलौ पुनः।

अहंकारी मनुष्य मल-मूत्रसे प्रदूषित इस संसारमें चक्कर काटता रहता है, तो फिर इस मोहाच्छन्न संसारमें ब्रह्मज्ञानकी कल्पना ही कहाँ रह गयी?॥ ३२॥

हे सुव्रत! मुझे तो मीमांसकोंका कर्म-सिद्धान्त ही उचित प्रतीत होता है। हे मुने! जब महान्-से-महान् लोग भी काम, क्रोध आदिसे सदा ग्रस्त रहते हैं, तब हे मुनिश्रेष्ठ! इस कलियुगमें मुझ-जैसे लोगोंकी बात ही क्या?॥ ३३½॥

व्यासजी बोले—हे भारत (जनमेजय)! कारणसे कार्य भिन्न कैसे हो सकता है? कड़ा तथा कुण्डल आकारमें भिन्न होते हुए भी स्वर्णके सदृश होते हैं। चराचरसहित समस्त ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न हुआ है। [धागेसे निर्मित होनेके कारण] वस्त्र उसके अधीन कहा गया है, अतएव वस्त्ररूपी कार्य तन्तुरूपी कारणसे पृथक् कैसे रह सकता है? जब मायाके तीनों गुणोंद्वारा ही तिनकेसे लेकर पर्वततक स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विरचित है, तब सृष्टिके विषयमें खेद किस बातका? हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी अहंकारसे मोहित होकर इस अत्यन्त अगाध संसारमें भ्रमण करते रहते हैं। वसिष्ठ, नारद आदि परम ज्ञानी मुनिगण भी अहंकारके वशवर्ती होकर इस संसारमें बार-बार आते-जाते रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है जो मायाके इन गुणोंसे मुक्त होकर शान्ति धारण करता हुआ आत्मसुखका अनुभव कर सके। हे नृपश्रेष्ठ! अहंकारसे उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ तथा मोह किसी भी देहधारी प्राणीको नहीं छोड़ते॥ ३४—४०½॥

वेद-शास्त्रोंका अध्ययन, पुराणोंका पर्यालोचन, तीर्थभ्रमण, दान, ध्यान तथा देव-पूजन करके भी विषयासक्त प्राणी चोरोंकी भाँति सभी कर्म करता रहता है। काम, मोह और मदसे युक्त होनेके कारण प्राणी आरम्भमें कुछ विचार ही नहीं करता॥ ४१—४२½॥

हे कुरुनन्दन! सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें भी धर्मका विरोध किया गया था, तो आज कलियुगमें

स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा॥ ४४

एवंविधोऽस्ति संसारो नात्र कार्या विचारणा।
साधवो विरला लोके भवन्ति गतमत्सराः॥ ४५

जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टान्तार्थं व्यवस्थिताः।

राजोवाच

ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः॥ ४६

जितेन्द्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम्।
दुनोमि पातकं स्मृत्वा पितुर्मम महात्मनः॥ ४७

कृतस्तपस्विनः कण्ठे मृतसर्पो ह्यघं विना।
अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः॥ ४८

न जाने बुद्धिसम्मोहात्किं वा कार्यं भविष्यति।
मधु पश्यति मूढात्मा प्रपातं नैव पश्यति॥ ४९

करोति निन्दितं कर्म नरकान्न बिभेति च।
कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्तद्वदस्व मे॥ ५०

प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै।
प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्तद्वदस्व मे॥ ५१

सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे।
नरनारायणौ शान्तौ तापसौ मुनिसत्तमौ॥ ५२

कृतवन्तौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद।
वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम्॥ ५३

एषणारहितौ कस्माच्चक्रतुः प्रधनं महत्।
प्रह्लादोऽपि च धर्मात्मा ज्ञात्वा देवौ सनातनौ॥ ५४

कृतवान्स कथं युद्धं नरनारायणौ मुनी।
एतद्विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम्॥ ५५

उसकी बात ही क्या! इसमें तो द्रोह, स्पर्धा, लोभ तथा क्रोध सर्वदा ही विद्यमान हैं। संसार ऐसे ही स्वभाववाला है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। संसारमें मत्सरहीन साधु पुरुष विरले ही होते हैं। क्रोध तथा ईर्ष्यापर विजय प्राप्त कर लेनेवाले तो दृष्टान्तमात्रके लिये मिलते हैं॥ ४३—४५½॥

राजा बोले—वे लोग धन्य तथा पुण्यात्मा हैं, जिन्होंने मद तथा मोहसे छुटकारा प्राप्त कर लिया है। जो सदाचारपरायण तथा जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने मानो तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अपने महात्मा पिताके पापका स्मरण करके मैं दुःखित रहता हूँ। उन्होंने बिना किसी अपराधके एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया। अतः हे मुनिवर! अब मेरे आगे उनकी क्या गति होगी? बुद्धिके मोहग्रस्त हो जानेपर क्या कार्य हो जायगा, यह मैं नहीं जानता। मूर्ख मनुष्य केवल मधु देखता है, किंतु उसके पास ही विद्यमान [गहरे] प्रपातकी ओर नहीं निहारता। वह निन्दनीय कर्म करता रहता है और नरकसे नहीं डरता॥ ४६—४९½॥

[हे मुने!] अब आप मुझे विस्तारपूर्वक यह बताइये कि पूर्वकालमें प्रह्लादके साथ नर-नारायणका घोर युद्ध क्यों हुआ था? प्रह्लाद पाताल-लोकसे सारस्वत महातीर्थ पवित्र बदरिकाश्रममें कैसे पहुँचे, यह भी मुझे बताइये। शान्त स्वभाववाले मुनिश्रेष्ठ नर-नारायण तो महान् तपस्वी थे; तब हे मानद! उन दोनोंने प्रह्लादके साथ युद्ध किस कारणसे किया?॥ ५०—५२½॥

प्रायः धन अथवा स्त्रीके लिये लोगोंमें परस्पर शत्रुता होती है। तब हर प्रकारकी इच्छाओंसे रहित उन दोनोंने वह भीषण युद्ध क्यों किया और उन नर-नारायणको सनातन देवता जानते हुए भी महात्मा प्रह्लादने उनके साथ युद्ध क्यों किया? हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारपूर्वक इसका कारण सुनना चाहता हूँ॥ ५३—५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अहङ्कारावर्तनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

* * *

अथाष्टमोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको प्रह्लादकी कथा सुनाना और इस प्रसंगमें च्यवनऋषिके पाताललोक जानेका वर्णन

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा विप्रो राज्ञा पारीक्षितेन वै।
उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासः सत्यवतीसुतः॥ १

जनमेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः।
चित्तं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्य वै॥ २

तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः।
विप्रावमानपापेन यमलोकं गतस्य वै॥ ३

पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम्।
पुत्रेति नाम सार्थं स्यात्तेन तस्य मुनीश्वराः॥ ४

सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरि मृतं तथा।
विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम्॥ ५

पितुर्गतिं निशम्यासौ निर्वेदं गतवान्नृपः।
पारीक्षितो महाभागः सन्तप्तो भयविह्वलः॥ ६

पप्रच्छाथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिन्दितः।
नरनारायणस्येमां कथां परमविस्तृताम्॥ ७

व्यास उवाच

स यदा निहतो रौद्रो हिरण्यकशिपुर्नृप।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्सुतः॥ ८

तस्मिञ्छासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके।
मखैर्भूमौ नृपतयो यजन्तः श्रद्धयान्विताः॥ ९

ब्राह्मणाश्च तपोधर्मतीर्थयात्राश्च कुर्वते।
वैश्याश्च स्वस्ववृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः॥ १०

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा जनमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत विप्र व्यासजीने विस्तारपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया॥ १॥

धर्मपरायण राजा जनमेजय भी उत्तरापुत्र अपने पिता परीक्षित्‌की कुत्सित चेष्टाको सोच-सोचकर अत्यन्त दुःखी हो गये थे॥ २॥

विप्रको अपमानित करनेके परिणामस्वरूप पापके कारण यमलोकको प्राप्त अपने उन पिताके उद्धारके लिये वे निरन्तर अपने मनमें अनेक प्रकारके उपाय सोचा करते थे॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! जब पुत्र अपने पिताकी ‘पुम्’ नामक नरकसे रक्षा कर देता है, तभी उसका ‘पुत्र’ नाम सार्थक होता है॥ ४॥

जब उन्हें यह विदित हुआ कि एक महलकी ऊपरी मंजिलमें स्नान-दान किये बिना ही विप्रके शापवश सर्प-दंशसे महाराज परीक्षित्‌की मृत्यु हुई थी, तब अपने पिताकी दुर्गति सुनकर वे राजा जनमेजय अत्यन्त दुःखित हुए और शोकसे सन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उठे॥ ५-६॥

इसके अनन्तर निष्पाप राजा जनमेजयने अपने घरपर स्वतः आये हुए महामुनि व्याससे नर-नारायणकी अति विस्तृत इस कथाके विषयमें पूछा॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जब नृसिंहभगवान्‌के द्वारा उस भयानक हिरण्यकशिपुका वध हो गया, तब प्रह्लाद नामक उसके पुत्रका राज्याभिषेक किया गया॥ ८॥

देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन-सम्मान करनेवाले उस दैत्यराज प्रह्लादके शासनकालमें पृथ्वीलोकके सभी राजागण श्रद्धापूर्वक यज्ञादिका अनुष्ठान करने लगे॥ ९॥

ब्राह्मणलोग तपश्चरण, धर्मानुष्ठान तथा तीर्थाटनमें तत्पर हो गये; वैश्यसमुदाय अपने-अपने व्यावसायिक कार्योंमें लग गये तथा शूद्रगण सेवापरायण हो गये॥ १०॥

नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट्।
राज्यं चकार तत्रैव प्रजापालनतत्परः॥ ११

कदाचिद् भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम्॥ १२

रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामवातरत्।
उत्तरन्तं प्रजग्राह नागो विषभयङ्करः॥ १३

गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनिसत्तमः।
सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जनार्दनम्॥ १४

संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः।
न प्राप च्यवनो दुःखं नीयमानो रसातलम्॥ १५

द्विजिह्वेन मुनिस्त्यक्तो निर्विण्णेनातिशङ्किना।
मां शपेत मुनिः क्रुद्धस्तापसोऽयं महानिति॥ १६

चचार नागकन्याभिः पूजितो मुनिसत्तमः।
विवेशाप्यथ नागानां दानवानां महत्पुरम्॥ १७

कदाचिद् भृगुपुत्रं तं विचरन्तं पुरोत्तमे।
ददर्श दैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्मवत्सलः॥ १८

दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा।
पप्रच्छ कारणं किं ते पातालागमने वद॥ १९

प्रेषितोऽसि किमिन्द्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम।
दैत्यविद्वेषयुक्तेन मम राज्यदिदृक्षया॥ २०

च्यवन उवाच

किं मे मघवता राजन् यदहं प्रेषितः पुनः।
दूतकार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव॥ २१

नृसिंहभगवान्‌ने उस दैत्यराज प्रह्लादको पाताललोकके राजसिंहासनपर स्थापित कर दिया था और वे वहींपर प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्य करने लगे॥ ११॥

एक बार भृगुके पुत्र महातपस्वी च्यवन नर्मदामें स्नान करनेके लिये व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें पहुँचे॥ १२॥

वहाँपर रेवा नामक महानदीको देखकर वे उसमें उतरने लगे। इसी बीच एक भयंकर विषधर सर्पने उतरते हुए मुनिको पकड़ लिया॥ १३॥

तदनन्तर उन महामुनि च्यवनको वह नागराज खींचकर पाताललोकमें ले गया। तब उन भयाक्रान्त मुनिने मन-ही-मन देवाधिदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया॥ १४॥

मुनि च्यवनके द्वारा हृदयसे कमलनयन भगवान् विष्णुका स्मरण किये जानेपर वह भयंकर सर्प विषहीन हो गया। अतएव रसातलमें ले जाये गये उन मुनिको कष्ट नहीं हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखी तथा सशंकित उस सर्पने यह सोचकर उन्हें छोड़ दिया कि ये महातपस्वी मुनि क्रोधित होकर कहीं मुझे शाप न दे दें॥ १६॥

वहाँकी नागकन्याओंद्वारा पूजित होते हुए मुनिश्रेष्ठ च्यवन पाताललोकमें विचरण करने लगे। वे नागों तथा दानवोंके विशाल पुरमें भी आने-जाने लगे॥ १७॥

एक बार उन धर्मानुरागी दैत्यराज प्रह्लादने अपनी श्रेष्ठ पुरीमें विचरण करते हुए उन भृगुपुत्र मुनि च्यवनको देखा॥ १८॥

मुनिको देखकर दैत्यराज प्रह्लादने उनकी पूजा की और उनसे पूछा कि पाताललोकमें आपके आगमनका क्या कारण है, आप मुझे बताइये?॥ १९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! क्या दैत्योंके प्रति द्वेष-भाव रखनेवाले इन्द्रने मेरे राज्यके विषयमें जानकारीके लिये आपको यहाँ भेजा है? आप मुझे सच-सच बताइये॥ २०॥

च्यवन बोले—हे राजन्! इन्द्रसे मेरा क्या प्रयोजन है, जो कि वे मुझे यहाँ भेजें और मैं उनके दूतका कार्य करता हुआ आपके नगरमें घूमता फिरूँ?॥ २१॥

विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्परम्।
मा शङ्कां कुरु दैत्येन्द्र वासवप्रेषितस्य वै॥ २२

स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम।
नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाहिना॥ २३

जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणादिव।
मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै॥ २४

अत्रागतेन राजेन्द्र मयाप्तं तव दर्शनम्।
विष्णुभक्तोऽसि दैत्येन्द्र तद्भक्तं मां विचिन्तय॥ २५

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचः श्लक्ष्णं हिरण्यकशिपोः सुतः।
पप्रच्छ परया प्रीत्या तीर्थानि विविधानि च॥ २६

प्रह्लाद उवाच

पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनिसत्तम।
पाताले च तथाकाशे तानि नो वद विस्तरात्॥ २७

च्यवन उवाच

मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे।
तथा मलिनचित्तानां गङ्गापि कीकटाधिका॥ २८

प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम्।
तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवन्ति वै॥ २९

गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्ति नगराणि च।
व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेटास्तथापरे॥ ३०

निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथापरे।
हूणबङ्गखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम॥ ३१

पिबन्ति सर्वदा गाङ्गं जलं ब्रह्मोपमं सदा।
स्नानं कुर्वन्ति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः॥ ३२

तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष।
किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयोपहतात्मसु॥ ३३

हे दैत्यराज! आप मुझे महर्षि भृगुका धर्मनिष्ठ तथा ज्ञाननेत्रसम्पन्न पुत्र च्यवन जानिये। आप मेरे प्रति इन्द्रके द्वारा भेजे गये किसी दूतकी शंका मत करें॥ २२॥

हे नृपश्रेष्ठ! मैं नर्मदानदीमें स्नान करनेके लिये पुण्यतीर्थमें गया था। मैं नदीमें उतरा ही था कि एक विशाल सर्पने मुझे पकड़ लिया॥ २३॥

मेरे द्वारा भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे वह सर्प विषहीन हो गया और विष्णुस्मरणके प्रभावसे मैं उस नागसे मुक्त हो गया॥ २४॥

हे राजेन्द्र! यहाँ आनेसे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो गया। हे दैत्यराज! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं और मुझे भी उनका भक्त ही समझिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—महर्षि च्यवनका मधुर वचन सुनकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद अत्यन्त प्रेमपूर्वक नानाविध तीर्थोंके विषयमें उनसे पूछने लगे॥ २६॥

प्रह्लाद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पृथ्वी, पाताल तथा आकाशमें कौन-कौनसे पवित्र तीर्थ हैं? उनके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक मुझे बताइये॥ २७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मन, वचन तथा कर्मसे शुद्ध प्राणियोंके लिये तो पद-पदपर तीर्थ हैं, किंतु दूषित मनवाले प्राणियोंके लिये गंगा भी मगधसे अधिक अपवित्र हो जाती हैं॥ २८॥

यदि मनुष्यका मन शुद्ध तथा पापरहित हो गया तो उसके लिये सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। गंगाके तटपर तो सर्वत्र नानाविध नगर, गोष्ठ (गायोंका बाड़ा), बाजार, गाँव तथा अनेक कस्बे वहाँ बसे हैं। हे दैत्यराज! निषादों, धीवरों, हूणों, बंगों, खसों तथा म्लेच्छ जातियोंका निवास भी वहाँ रहता है। हे दैत्येन्द्र! वे सदैव ब्रह्मसदृश गंगाजलका पान करते हैं और अपनी इच्छासे त्रिकाल गंगा-स्नान भी करते हैं। किंतु हे धर्मात्मन्! उनमेंसे कोई एक भी शुद्ध अन्तःकरणवाला नहीं हो पाता। तब नानाविध वासनाओंसे प्रदूषित चित्तवाले लोगोंके लिये तीर्थका क्या फल हो सकता है?॥ २९—३३॥

कारणं मन एवात्र नान्यद्राजन्विचिन्तय।
मनःशुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता॥ ३४

तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रात्मवञ्चनात्।
तत्रैवाचरितं पापमानन्त्याय प्रकल्पते॥ ३५

यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति॥ ३६

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा॥ ३७

तथैवाचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिध्यति।
अन्यथा तु कृतं सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात्॥ ३८

(हीनवर्णस्य संसर्गं तीर्थे गत्वा सदा त्यजेत्।)
भूतानुकम्पनं चैव कर्तव्यं कर्मणा धिया।
यदि पृच्छसि राजेन्द्र तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम्॥ ३९

प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम्।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले॥ ४०

पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नैमिषं गन्तुमुद्यतः॥ ४१

नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः।

प्रह्लाद उवाच

उत्तिष्ठन्तु महाभागा गमिष्यामोऽद्य नैमिषम्॥ ४२

द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्।

हे राजन्! आप यह निश्चित समझिये कि मन ही इसमें प्रमुख कारण है; इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं। अतः शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको निरन्तर अपने मनको शुद्ध बनाये रखना चाहिये॥ ३४॥

तीर्थमें निवास करनेवाला प्राणी भी आत्मवंचनाके कारण महापापी हो जाता है। वहाँ किया गया पाप अनन्तगुना हो जाता है॥ ३५॥

जिस प्रकार इन्द्रवारुणका फल पक जानेपर भी मीठा नहीं होता, उसी प्रकार दूषित भावनाओंवाला मनुष्य तीर्थमें करोड़ों बार स्नान करके भी पवित्र नहीं हो पाता॥ ३६॥

अतः कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम अपने मनको शुद्ध कर लेना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ३७॥

उसी प्रकार आचार-शुद्धि भी आवश्यक है; इसके अनन्तर ही तीर्थयात्राकी पूर्ण सिद्धि होती है। इसके विपरीत उसका किया हुआ सारा कर्म उसी क्षण व्यर्थ हो जाता है॥ ३८॥

(तीर्थमें पहुँचकर नीच प्राणीके संसर्गका सर्वदाके लिये त्याग कर देना चाहिये।) कर्म तथा बुद्धिसे प्राणियोंके प्रति सदा दयाभाव रखना चाहिये। फिर भी हे राजेन्द्र! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं आपको प्रमुख तीर्थोंके विषयमें बता रहा हूँ॥ ३९॥

प्रथम श्रेणीका तीर्थ पुण्यमय नैमिषारण्य है। इसी प्रकार चक्रतीर्थ, पुष्करतीर्थ तथा अन्य भी अनेक तीर्थ पृथ्वीलोकमें हैं, जिनकी संख्या निश्चित नहीं है। हे नृपश्रेष्ठ! और भी बहुत-से पवित्र स्थान हैं॥ ४०½॥

व्यासजी बोले—च्यवनऋषिका वचन सुनकर राजा प्रह्लाद नैमिषारण्यतीर्थ जानेको तैयार हो गये। हर्षातिरेकसे परिपूर्ण हृदयवाले प्रह्लादने अन्य दैत्योंको भी चलनेकी आज्ञा दी॥ ४१½॥

प्रह्लाद बोले—हे महाभाग दैत्यगण! आपलोग उठिये, हम सभी लोग आज नैमिषारण्य चलेंगे। वहाँ हमलोग पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन भगवान् अच्युत (विष्णु)-का दर्शन करेंगे॥ ४२½॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा॥ ४३
तेनैव सह पातालान्निर्ययुः परया मुदा।
ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः॥ ४४
नैमिषारण्यमासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः।
प्रह्लादस्तत्र तीर्थेषु चरन्दैत्यैः समन्वितः॥ ४५
सरस्वतीं महापुण्यां ददर्श विमलोदकाम्।
तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः॥ ४६
मनः प्रसन्नं सञ्जातं स्नात्वा सारस्वते जले।
विधिवत्तत्र दैत्येन्द्रः स्नानदानादिकं शुभे॥ ४७
चकारातिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने॥ ४८

व्यासजी बोले—विष्णुभक्त प्रह्लादके ऐसा कहनेपर वे समस्त दानव परम प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ पाताललोकसे निकल पड़े। उन महाबली दैत्यों तथा दानवोंने एक साथ नैमिषारण्य पहुँचकर आनन्दपूर्वक स्नान किया। दैत्योंके साथ वहाँके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए प्रह्लादने स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा महापुण्यदायिनी सरस्वतीनदीका दर्शन किया। हे नृपश्रेष्ठ! उस पवित्र तीर्थमें सरस्वतीके जलमें स्नान करनेसे महात्मा प्रह्लादका मन प्रसन्न हो गया। दैत्येन्द्र प्रह्लादने उस शुभ तथा परम पावन तीर्थमें प्रसन्न मनसे स्नान, दान आदि कर्म विधिवत् सम्पन्न किये॥ ४३—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादतीर्थयात्रावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

प्रह्लादजीका तीर्थयात्राके क्रममें नैमिषारण्य पहुँचना और वहाँ नर-नारायणसे उनका घोर युद्ध, भगवान् विष्णुका आगमन और उनके द्वारा प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय देना

व्यास उवाच

कुर्वंस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः।
न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा॥ १

ददर्श बाणानपरान्नानाजातीयकांस्तदा।
गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान्॥ २

चिन्तयामास मनसा कस्येमे विशिखास्त्विह।
ऋषीणामाश्रमे पुण्ये तीर्थे परमपावने॥ ३

एवं चिन्तयतानेन कृष्णाजिनधरौ मुनी।
समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा॥ ४

तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते।
शार्ङ्गमाजगवञ्चैव तथाक्षय्यौ महेषुधी॥ ५

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार तीर्थके कृत्य सम्पन्न करते हुए हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादको अपने समक्ष एक विशाल छायासम्पन्न वटवृक्ष दिखायी पड़ा॥ १॥

वहाँपर प्रह्लादने गीधोंके पंखोंसे सुसज्जित, नुकीले तथा शिलापर घर्षित करके अत्यन्त दीप्त एवं उज्ज्वल बनाये गये अनेक प्रकारके बाण देखे॥ २॥

उन्हें देखकर प्रह्लादने मनमें सोचा कि इस परम पवित्र तीर्थमें ऋषियोंके पुण्यमय आश्रममें ये बाण किसके हैं?॥ ३॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए प्रह्लादने कृष्ण-मृगचर्म धारण किये हुए तथा सिरपर विशाल जटाओंसे सुशोभित धर्मपुत्र नर-नारायण मुनियोंको देखा॥ ४॥

उनके आगे धनुर्वेदोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न चमकीले शार्ङ्ग तथा आजगव नामक दो धनुष तथा दो अक्षय तरकस रखे हुए थे॥ ५॥

ध्यानस्थौ तौ महाभागौ नरनारायणावृषी।
दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा॥ ६

क्रोधरक्तेक्षणस्तौ तु प्रोवाचासुरपालकः।
किं भवद्भ्यां समारब्धो दम्भो धर्मविनाशनः॥ ७

न श्रुतं नैव दृष्टं हि संसारेऽस्मिन्कदापि हि।
तपसश्चरणं तीव्रं तथा चापस्य धारणम्॥ ८

विरोधोऽयं युगे चाद्ये कथं युक्तं कलिप्रियम्।
ब्राह्मणस्य तपो युक्तं तत्र किं चापधारणम्॥ ९

क्व जटाधारणं देहे क्वेषुधी च विडम्बनौ।
धर्मस्याचरणं युक्तं युवयोर्दिव्यभावयोः॥ १०

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नरः प्रोवाच भारत।
का ते चिन्तात्र दैत्येन्द्र वृथा तपसि चावयोः॥ ११

सामर्थ्ये सति यत्कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि।
आवां कार्यद्वये मन्द समर्थौ लोकविश्रुतौ॥ १२

युद्धे तपसि सामर्थ्यं त्वं पुनः किं करिष्यसि।
गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे॥ १३

ब्रह्मतेजो दुराराध्यं न त्वं वेद विमोहितः।
विप्रचर्चा न कर्तव्या प्राणिभिः सुखमीप्सुभिः॥ १४

प्रह्लाद उवाच

तापसौ मन्दबुद्धी स्थो मृषा वां गर्वमोहितौ।
मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके॥ १५

उन महाभाग धर्मपुत्र नर-नारायण ऋषियोंको उस समय ध्यानावस्थित देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये हुए दैत्याधिपति असुररक्षक प्रह्लादने उनसे कहा—आप दोनोंने धर्मको नष्ट करनेवाला यह कैसा पाखण्ड कर रखा है?॥ ६-७॥

इस प्रकारकी घोर तपस्या तथा धनुष-धारण करना—ऐसा तो इस संसारमें न कभी सुना गया और न देखा ही गया॥ ८॥

ये तो परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं। कलियुगके लिये प्रिय यह विरोधभाव भला सत्ययुगमें किस प्रकार उचित है? ब्राह्मणके लिये तो तपश्चरण ही उचित है, उन्हें धनुष-धारण करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ ९॥

कहाँ तो मस्तकपर जटा धारण करना और कहाँ यह तरकस रखना—ये दोनों बातें आडम्बरमात्र हैं। दिव्य भावनावाले आप दोनोंके लिये धर्मका आचरण ही उचित है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे भारत! प्रह्लादका यह वचन सुनकर मुनिवर नरने कहा—हे दैत्येन्द्र! हम दोनोंकी तपस्याके विषयमें आप यह व्यर्थ चिन्ता क्यों कर रहे हैं?॥ ११॥

सामर्थ्यसम्पन्न हो जानेपर व्यक्ति जो कुछ करता है, उसका वह सब कुछ पूर्ण हो जाता है। हे मन्दबुद्धि! हम इन दोनों प्रकारके कार्योंको [एक साथ] करनेमें समर्थ हैं; इसके लिये हम लोकमें प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

युद्ध तथा तपस्या दोनोंमें हम समान रूपसे समर्थ हैं। फिर इस विषयमें आप पूछकर क्या करेंगे? आप इच्छानुसार अपने रास्ते चले जाइये, यहाँ व्यर्थकी बात क्यों कर रहे हैं?॥ १३॥

मोहग्रस्त होनेके कारण आप अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त किये जानेवाले ब्रह्मतेजको नहीं जानते। सुखकी कामना करनेवाले प्राणियोंको ब्राह्मणोंसे बहस नहीं करनी चाहिये॥ १४॥

प्रह्लाद बोले—आप दोनों तपस्वी मन्द बुद्धिवाले हैं और व्यर्थ ही अहंकारके वशवर्ती हो गये हैं। धर्मसेतुका प्रवर्तन करनेवाले मुझ दैत्येन्द्र प्रह्लादके रहते

न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माचरणं पुनः।
का शक्तिस्तव युद्धेऽस्ति दर्शयाद्य तपोधन॥ १६

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवाच ह।
युद्धस्वाद्य मया सार्धं यदि ते मतिरीदृशी॥ १७
अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसुराधम।
(युद्धे श्रद्धा न ते पश्चाद्भविष्यति कदाचन।)

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रः कुपितस्तदा॥ १८
प्रह्लादो बलवानत्र प्रतिज्ञामारुरोह सः।
येन केनाप्युपायेन जेष्यामि तावुभावपि॥ १९
नरनारायणौ दान्तावृषी तपिसमन्वितौ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम्॥ २०
आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दञ्च चकार ह।
नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्राञ्छिलाशितान्॥ २१
मुमोच बहुशः क्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव॥ २२
तान्दैत्यराजस्तपनीयपुङ्खा-
शिचच्छेद बाणैस्तरसा समेत्य।
समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टा-
नन्यान्मुमोचाशु रुषान्वितो वै॥ २३
दैत्याधिपस्तानपि तीव्रवेगै-
श्छित्त्वा जघानोरसि तं मुनीन्द्रम्।
नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च
क्रुद्धोऽहनदैत्यपतिं बाहुदेशे॥ २४
सेन्द्राः सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं
द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च।
नरस्य वीर्यं युधि संस्थितस्य
ते तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः॥ २५
ववर्ष दैत्याधिप आत्तचापः
शिलीमुखानम्बुधरो यथापः।
आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं
मुमोच बाणाञ्छितहेमपुङ्खान्॥ २६

इस पवित्र तीर्थमें इस प्रकारका अधर्मपूर्ण आचरण उचित नहीं है। हे तपोधन! आपमें कितनी शक्ति है, इसे युद्धमें अभी प्रदर्शित कीजिये॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—तब प्रह्लादका वचन सुनकर ऋषि नरने उनसे कहा—यदि आपकी ऐसी ही धारणा है तो मेरे साथ इसी समय युद्ध कर लीजिये। हे असुराधम! आज मैं तुम्हारा सिर विदीर्ण कर डालूँगा (इसके बाद युद्ध करनेकी तुम्हारी कभी इच्छा नहीं होगी)॥ १७½॥

व्यासजी बोले—तब ऋषि नरका वचन सुनकर दैत्यपति प्रह्लाद कुपित हो उठे। बलशाली उन प्रह्लादने प्रतिज्ञा की कि जिस किसी भी उपायसे मैं इन दोनों जितेन्द्रिय तथा परम तपस्वी नर-नारायण ऋषियोंको जीतकर रहूँगा॥ १८-१९½॥

व्यासजी बोले—ऐसा वचन बोलकर दैत्य प्रह्लादने धनुष उठाकर और शीघ्रतापूर्वक उसे खींचकर प्रत्यंचाकी टंकार की। हे राजन्! मुनि नरने भी धनुष लेकर शिलापर घिसकर तेज किये हुए अनेक तीक्ष्ण बाण प्रह्लादके ऊपर क्रोधपूर्वक छोड़े॥ २०—२२॥

दैत्यराज प्रह्लादने अपने सुनहले पंखोंवाले बाणोंसे शीघ्र ही उन बाणोंको आते ही काट डाला। तब नर अपने द्वारा छोड़े गये बाणोंको प्रह्लादद्वारा छिन्न किया गया देखकर अत्यन्त कोपाविष्ट हो शीघ्रतासे उनपर अन्य बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २३॥

दैत्यपति प्रह्लादने उन बाणोंको भी अपने द्रुतगामी बाणोंसे काटकर उन मुनिराज नरके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। नरने भी क्रुद्ध होकर अपने तीव्रगामी पाँच बाणोंसे दैत्येन्द्र प्रह्लादके बाहुदेशपर प्रहार किया॥ २४॥

इन्द्रसहित सभी देवगण उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिये विमानोंमें बैठकर आकाशमण्डलमें स्थित हो गये। वे कभी समरांगणमें विराजमान नरके पराक्रमकी प्रशंसा करते थे और फिर कभी दैत्यपति प्रह्लादके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगते थे॥ २५॥

धनुष धारण किये हुए दैत्यराज प्रह्लाद इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, मानो मेघ जल बरसा रहे हों। [ऋषि नर भी अपना] अप्रतिम शार्ङ्ग धनुष लेकर तीक्ष्ण तथा सुनहले पंखवाले बाण छोड़ रहे थे॥ २६॥

बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु
जयैषिणोः पार्थिव देवदैत्ययोः।
ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते
पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः॥ २७

चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स
मुमोच बाणानतितीव्रवेगान्।
चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णै-
र्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाशु ॥ २८

ततो नारायणं बाणैः प्रह्लादश्चातिकर्षितैः।
ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम्।
नारायणोऽपि तं वेगान्मुक्तैर्बाणैः शिलाशितैः॥ २९

तुतोदातीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम्।
सन्निपातोऽम्बरे तत्र दिदृक्षूणां बभूव ह॥ ३०

देवानां दानवानाञ्च कुर्वतां जयघोषणम्।
उभयोः शरवर्षेण छादिते गगने तदा॥ ३१
दिवापि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत्।
ऊचुः परस्परं देवा दैत्याश्चातीव विस्मिताः॥ ३२

अदृष्टपूर्वं युद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम्।
देवर्षयोऽथ गन्धर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः॥ ३३

विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः।
नारदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी॥ ३४

नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा।
तारकासुरयुद्धञ्च तथा वृत्रासुरस्य च॥ ३५

मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणा चेदृशं कृतम्।
प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च॥ ३६

करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाद्भुतकर्मणा।

व्यास उवाच

दिने दिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः॥ ३७

हे राजन्! इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेके इच्छुक उन ऋषि नर तथा दैत्यराज प्रह्लादके बीच भीषण युद्ध होने लगा। आकाशमार्गमें स्थित वे [देवतागण] प्रसन्नचित्त होकर उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे॥ २७॥

अचानक प्रह्लाद कुपित हो उठे और उन्होंने अति तीव्रगामी बाण ऋषि नारायणपर छोड़े। धर्मपुत्र नारायणने शीघ्र ही उन बाणोंको अपने धनुषसे छोड़े गये अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे खण्ड-खण्ड कर डाला॥ २८॥

दैत्यराज प्रह्लाद समरांगणमें डटकर खड़े अतीव पराक्रमी तथा सनातन धर्मपुत्र नारायणपर अपने अति तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। नारायणने भी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये अपने वेगपूर्वक छोड़े गये बाणोंके द्वारा सम्मुख खड़े दैत्यपति प्रह्लादको अत्यन्त भीषण चोट पहुँचायी। उस युद्धका अवलोकन करनेके इच्छुक देवताओं तथा दैत्योंका एक विशाल समूह अपने-अपने पक्षका जयघोष करते हुए आकाशमें एकत्र हो गया॥ २९-३०½ ॥

दोनों पक्षोंकी बाणवर्षासे आकाशके आच्छादित हो जानेपर उस समय इतना घना अन्धकार हो गया कि दिन भी रातके समान प्रतीत होने लगा। इससे अति आश्चर्यचकित होकर देवता तथा दैत्य परस्पर कहने लगे कि यह अत्यन्त भयावह संग्राम हो रहा है। ऐसा भीषण युद्ध तो पहले कभी नहीं देखा गया। बड़े-बड़े देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, विद्याधर तथा चारणगण इस युद्धको देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये॥ ३१—३३½ ॥

उस युद्धका अवलोकन करनेके लिये मुनि नारद तथा पर्वत भी आये हुए थे। नारदमुनिने पर्वतसे कहा—ऐसा घोर संग्राम पहले नहीं हुआ था; तारकासुरयुद्ध, वृत्रासुरका युद्ध यहाँतक कि मधु-कैटभका युद्ध भी वैसा नहीं हुआ था, जैसा कि इस समय नारायणके द्वारा किया गया। प्रह्लाद अत्यन्त वीर हैं जो कि वे अद्भुत कर्मवाले सिद्धिसम्पन्न नारायणके साथ यह बराबरीका युद्ध कर रहे हैं॥ ३४—३६½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार प्रतिदिन तथा प्रतिरात्रि बार-बार युद्ध करते हुए वे दोनों दैत्य तथा

चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ।
नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्य शरासनम्॥ ३८

तरसैकेन बाणेन स चान्यद्धनुराददे।
नारायणस्तु तरसा मुक्त्वान्यञ्च शिलीमुखम्॥ ३९

तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः।
छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे॥ ४०

नारायणस्तु चिच्छेद विशिखैराशु कोपितः।
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रः परिघं तु समाददे॥ ४१

जघान धर्मजं तूर्णं बाह्वोर्मध्येऽतिकोपनः।
तमायान्तं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः॥ ४२

चिच्छेद परिघं घोरं दशभिस्तमताडयत्।
गदामादाय दैत्येन्द्रः सर्वायसमयीं दृढाम्॥ ४३

जानुदेशे जघानाशु देवं नारायणं रुषा।
गदया चापि गिरिवत्संस्थितः स्थिरमानसः॥ ४४

धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाशु शिलीमुखान्।
गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्दृढाम्॥ ४५

विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षका गगने स्थिताः।
स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा॥ ४६

चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि।
तामापतन्तीं संवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया॥ ४७

सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह।
दिव्यवर्षशतं चैव तद्युद्धं परमं तयोः॥ ४८

जातं विस्मयदं राजन् सर्वेषां तत्र चाश्रमे।
तदाजगाम तरसा पीतवासाश्चतुर्भुजः॥ ४९

प्रह्लादस्याश्रमं तत्र जगाम च गदाधरः।
चतुर्भुजो रमाकान्तो रथाङ्गदरपद्मभृत्॥ ५०

तपस्वी घोर संग्राममें तत्पर रहे। नारायणने एक बाणसे प्रह्लादका धनुष काट दिया। तब प्रह्लादने तत्काल दूसरा धनुष ले लिया। नारायणने हस्तकौशल दिखाते हुए पुनः बड़ी शीघ्रतासे दूसरा बाण चलाकर उस धनुषको भी बीचोबीचसे काट डाला। इस प्रकार नारायण बार-बार धनुष काटते जाते थे और प्रह्लाद दूसरा धनुष लेते जाते थे। अन्तमें नारायणने कुपित होकर अपने बाणोंसे उसके धनुषको शीघ्रतासे पुनः काट दिया। उस धनुषके भी कट जानेपर दैत्यराज प्रह्लादने अपना परिघ उठा लिया और अत्यन्त क्रोधित होकर बड़ी फुर्तीसे धर्मपुत्र नारायणकी भुजाओंपर प्रहार किया॥ ३७—४१½॥

प्रतापी नारायणने अपनी ओर आते हुए उस परिघको नौ बाणोंसे काट दिया और दस बाणोंसे प्रह्लादपर चोट की॥ ४२½॥

तत्पश्चात् दैत्येन्द्र प्रह्लादने पूर्णतः लोहमयी सुदृढ़ गदा उठाकर क्रोधपूर्वक नारायणमुनिकी जाँघपर शीघ्रतापूर्वक प्रहार किया॥ ४३½॥

उस गदा-प्रहारसे भी धर्मपुत्र नारायण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थिरचित्त होकर खड़े रहे। तदनन्तर परम पराक्रमी भगवान् नारायणने बड़ी तेजीसे अनेक बाण छोड़े और दैत्यपति प्रह्लादकी सुदृढ़ गदाको खण्ड-खण्ड कर दिया। आकाशमें स्थित होकर युद्ध देखनेवाले बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४४-४५½॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रह्लादने शक्ति उठाकर कुपित हो बलपूर्वक बड़ी तेजीसे नारायणके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। तब सामने आती हुई उस शक्तिको देखकर नारायणने एक ही बाणसे बड़ी आसानीसे उसके सात खण्ड कर दिये और साथ ही सात बाणोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया॥ ४६—४७½॥

हे राजन्! इस प्रकार सबको विस्मित कर देनेवाला वह युद्ध एक सौ दिव्य वर्षतक चलता रहा। तदनन्तर चार भुजाओंसे शोभा पानेवाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु शीघ्रतापूर्वक उस आश्रममें आ गये। तत्पश्चात् हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले वे चतुर्भुज लक्ष्मीपति विष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पहुँचे॥ ४८—५०॥

दृष्ट्वा तमागतं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः।
प्रणम्य परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रत्युवाच ह॥ ५१

प्रह्लाद उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल माधव।
कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ।
संग्रामस्तु मया देव कृतः पूर्णं शतं समाः॥ ५२
सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान्।

विष्णुरुवाच

सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष॥ ५३
तापसौ न जितात्मानौ नरनारायणौ जितौ।
गच्छ त्वं वितलं राजन् कुरु भक्तिं ममाचलाम्॥ ५४
नाभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह॥ ५५
नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः॥ ५६

वहाँ उन्हें आये हुए देखकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ५१॥

प्रह्लाद बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे भक्तवत्सल! हे माधव! मैं इन दोनों तपस्वियोंको युद्धमें क्यों नहीं जीत सका? हे देव! मैंने देवताओंके पूरे सौ वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, फिर भी ये जीते न जा सके—मुझे यह महान् आश्चर्य है!॥ ५२½ ॥

विष्णु बोले—हे आर्य! ये दोनों सिद्ध पुरुष हैं और मेरे अंशसे आविर्भूत हैं; अतः [इन्हें न जीत पानेमें] आश्चर्य क्या! नर-नारायण नामसे प्रसिद्ध इन जितात्मा तपस्वियोंको तुम नहीं जीत सकते। अतः हे राजन्! तुम अपने वितललोकको चले जाओ और वहाँ मेरी अविचल भक्ति करो। हे महामते! तुम इन दोनों तपस्वियोंसे विरोध मत करो॥ ५३-५४½ ॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुसे ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यपति प्रह्लाद असुरोंके साथ वहाँसे प्रस्थित हो गये। तदनन्तर नर-नारायण पुनः तपस्यामें संलग्न हो गये॥ ५५-५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रह्लादनारायणयोर्युद्धे विष्णोरागमनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

~~0~~

अथ दशमोऽध्यायः

राजा जनमेजयद्वारा प्रह्लादके साथ नर-नारायणके युद्धका कारण पूछना, व्यासजीद्वारा उत्तरमें संसारके मूल कारण अहंकारका निरूपण करना तथा महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुको शाप देनेकी कथा

जनमेजय उवाच

सन्देहोऽयं महानत्र पाराशर्य कथानके।
नरनारायणौ शान्तौ वैष्णवांशौ तपोधनौ॥ १
तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौ वन्याशनपरौ सदा।
धर्मपुत्रौ महात्मानौ तापसौ सत्यसंस्थितौ॥ २
कथं रागसमायुक्तौ जातौ युद्धे परस्परम्।
संग्रामं चक्रतुः कस्मात्त्यक्त्वा तपमिनुत्तमाम्॥ ३

जनमेजय बोले—हे व्यासजी! इस कथानकमें मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि जब वे नर-नारायण शान्तस्वभाव, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, तपको ही अपना सर्वस्व माननेवाले, तीर्थमें निवास करनेवाले, सत्त्वगुणसम्पन्न, वनके फल-मूलका सदा आहार करनेवाले, धर्मपुत्र, महात्मा, तपस्वी तथा सत्यनिष्ठ थे; तब वे युद्धमें परस्पर राग-द्वेषसे ग्रस्त कैसे हो गये और उन्होंने उत्कृष्ट तपस्याका त्याग करके संग्राम क्यों किया?॥ १—३॥

प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल।
हित्वा शान्तिसुखं युद्धं कृतवन्तौ कथं मुनी॥ ४

कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी।
कथयस्व महाभाग कारणं विग्रहस्य वै॥ ५

(कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्य वै)
युद्धबुद्धिः कथं जाता तयोश्च तद्विरक्तयोः।
तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्याञ्च केन हेतुना॥ ६

मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परन्तप।
कृतमत्युत्कटं ताभ्यां तपः सर्वफलप्रदम्॥ ७

मुनिभ्यां शान्तचित्ताभ्यां प्राप्तं किं फलमद्भुतम्।
तपसा पीडितो देहः संग्रामेण पुनः पुनः॥ ८

दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ।
न राज्यार्थे धने वापि न दारेषु गृहेषु च॥ ९

किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना।
निरीहः पुरुषः कस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम्॥ १०

दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम्।
सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा॥ ११

न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी।
धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ॥ १२

कृतवन्तौ कथं युद्धं दुःखं धर्मविनाशकम्।
त्यक्त्वा तपः समाधीतं सुखारामं महत्फलम्॥ १३

संयुगं दारुणं कृष्ण नैव मूर्खोऽपि वाञ्छति।
श्रुतो मया ययातिस्तु च्युतः स्वर्गान्महीपतिः॥ १४

अहङ्कारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले।
यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः॥ १५

उन दोनों मुनियोंने शान्ति-सुखका त्याग करके प्रह्लादके साथ पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक युद्ध किसलिये किया?॥ ४॥

उन दोनों मुनियोंने प्रह्लादके साथ वह संग्राम क्यों किया? हे महाभाग! आप मुझे उस युद्धका कारण बताइये॥ ५॥

(स्त्री, धन तथा कोई कार्यविशेष ही प्रायः युद्धके कारण होते हैं।) उन विरक्त मुनियोंको युद्धका विचार क्यों उत्पन्न हुआ? हे परन्तप! उन्होंने उस प्रकारका तप किसीको प्रसन्न करनेके लिये, सुखभोगके लिये अथवा स्वर्गके लिये—किस उद्देश्यसे किया था? शान्त चित्तवाले उन मुनियोंने समस्त फल प्रदान करनेवाला कठोर तप तो किया था, किंतु उन्होंने कौन-सा अद्भुत फल प्राप्त किया? उन्होंने तपस्यासे शरीरको कष्ट दिया और पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक बार-बार संग्राम करके परिश्रमके द्वारा अपनेको संतप्त किया। उन मुनियोंने न राज्यके लिये, न धनके लिये, न स्त्रीके लिये और न तो गृहके लिये ही यह युद्ध किया तो फिर उन्होंने महात्मा प्रह्लादके साथ किसलिये युद्ध किया?॥ ६—९$\frac{१}{२}$॥

युद्ध शरीरके लिये कष्टदायक होता है—इस सनातन बातको जानते हुए कोई तृष्णारहित पुरुष आखिर ऐसा युद्ध किसलिये करेगा? हे धर्मज्ञ! उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य इस लोकमें सदा सुखदायी कर्म ही करता है, दुःखप्रद कर्म नहीं—यह सनातन सिद्धान्त है। तब धर्मपुत्र, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, सर्वज्ञ तथा सभी गुणोंसे विभूषित उन मुनियोंने वह दुःखदायक तथा धर्मविनाशक युद्ध क्यों किया? हे व्यासजी! कोई मूर्ख भी अच्छी प्रकार आचरित, सुख तथा आनन्द देनेवाले और महाफलदायी तपका त्याग करके दारुण युद्ध करना नहीं चाहता॥ १०—१३$\frac{१}{२}$॥

मैंने सुना है कि राजा ययाति स्वर्गसे च्युत हो गये थे। अहंकारजन्य पापके कारण वे पृथ्वीतलपर गिरा दिये गये थे। वे यज्ञकर्ता, दानी और धर्मनिष्ठ थे; किंतु केवल थोड़ेसे अहंकारभरे शब्दोंका उच्चारण करनेके कारण वज्रपाणि इन्द्रने उन्हें [स्वर्गसे पृथ्वीपर] गिरा दिया था। यह निश्चित है कि बिना अहंकारके

शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना।
अहङ्कारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः॥ १६

किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम्।

व्यास उवाच

राजन् संसारमूलं हि त्रिविधः परिकीर्तितः॥ १७

अहङ्कारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये।
स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृता किल॥ १८

कारणेन विना कार्यं न भवत्येव निश्चयः।
तपो दानं तथा यज्ञाः सात्त्विकात्प्रभवन्ति ते॥ १९

राजसाद्वा महाभाग तामसात्कलहस्तथा।
क्रिया स्वल्पापि राजेन्द्र नाहङ्कारं विना क्वचित्॥ २०

शुभा वाप्यशुभा वापि प्रभवत्यपि निश्चयः।
अहङ्काराद् बन्धकारी नान्योऽस्ति जगतीतले॥ २१

येनेदं रचितं विश्वं कथं तद्रहितं भवेत्।
ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुरहङ्कारयुतास्त्वमी॥ २२

अन्येषां चैव का वार्ता मुनीनां वसुधाधिप।
अहङ्कारावृतं विश्वं भ्रमतीदं चराचरम्॥ २३

पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वं कर्मवशानुगम्।
देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते॥ २४

रथाङ्गवदसर्वार्थं भ्रमणं सर्वदा स्मृतम्।
विष्णोरप्यवताराणां संख्यां जानाति कः पुमान्॥ २५

विततेऽस्मिंस्तु संसारे उत्तमाधमयोनिषु।
नारायणो हरिः साक्षान्मात्स्यं वपुरुपाश्रितः॥ २६

कामठं सौकरं चैव नारसिंहञ्च वामनम्।
युगे युगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः॥ २७
अवतारानसंख्यातान्करोति विधियन्त्रितः।

युद्ध हो ही नहीं सकता। अन्ततः मुनिको उस युद्धका क्या फल मिला, उससे तो केवल उनका पुण्य ही नष्ट हुआ॥ १४—१६½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! धर्मका निर्णय करते समय सर्वज्ञ मुनियोंने अहंकारको ही संसारका मूल कारण कहा है और इसे [सत्त्वादि भेदसे] तीन प्रकारका बतलाया है। [ऐसी स्थितिमें] शरीरधारी होकर मुनि नारायण उस अहंकारका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते थे? यह निश्चित है कि बिना कारणके कार्य नहीं होता॥ १७-१८½॥

तप, दान तथा यज्ञ सात्त्विक अहंकारसे होते हैं। हे महाभाग! राजस और तामस अहंकारसे कलह उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! यह निश्चय है कि छोटी-सी भी क्रिया चाहे वह शुभ हो अथवा अशुभ—बिना अहंकारके कभी नहीं हो सकती। जगत्‌में अहंकारसे बढ़कर बन्धनमें डालनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। अतः जिस अहंकारसे ही यह विश्व निर्मित है, उसके बिना यह संसार कैसे रह सकता है?॥ १९—२१½॥

हे पृथ्वीपते! जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अहंकारयुक्त रहते हैं, तब अन्य प्राणियों और मुनियोंकी बात ही क्या? यह चराचर जगत् अहंकारके वशीभूत होकर भ्रमण करता रहता है। सभी जीव कर्मके अधीन हैं और उसीके अनुसार बार-बार उनका जन्म तथा मरण होता रहता है। हे महीपते! देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका इस संसारमें बराबर चक्कर काटना रथके पहियेके भ्रमणके समान बताया गया है॥ २२—२४½॥

इस विस्तृत संसारमें उत्तम-अधम सभी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन मनुष्य जान सकता है? साक्षात् नारायण श्रीहरिको मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह और वामनतकका शरीर धारण करना पड़ा। वे जगत्प्रभु, वासुदेव, भगवान् जनार्दन भी विधिके अधीन होकर विभिन्न युगोंमें असंख्य अवतार धारण करते रहते हैं॥ २५—२७½॥

वैवस्वते महाराज सप्तमे भगवान्हरिः॥ २८

मन्वन्तरेऽवतारान्वै चक्रे ताञ्छृणु तत्त्वतः।
भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरः प्रभुः॥ २९

अवताराननेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः।

राजोवाच

सन्देहोऽयं महाभाग हृदये मम जायते॥ ३०

भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह।
हरिणा च मुनेस्तस्य विप्रियं किं कृतं मुने॥ ३१

यद्रोषाद् भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः।

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम्॥ ३२

पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः।
यदा तदा सुरैः सार्धं कृतं संख्यं परस्परम्॥ ३३

कृते संख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत।
हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत॥ ३४

देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः।
संग्रामो ह्यभवद् घोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा॥ ३५

पूर्णं वर्षशतं राजँल्लोकविस्मयकारकम्।
देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः॥ ३६

निर्वेदं परमं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम्।
विरोचनसुतं राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप॥ ३७

जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गन्धमादने।
प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह॥ ३८

यतः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम्।
ततः सुरैर्जिता दैत्या इन्द्रेणामिततेजसा॥ ३९
विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप।

हे महाराज! सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् श्रीहरिने जो-जो अवतार लिये थे, उन्हें आप ध्यानपूर्वक सुनें। हे महाराज! देवश्रेष्ठ और सबके स्वामी भगवान् विष्णुको महर्षि भृगुके शापके कारण अनेक अवतार धारण करने पड़े थे॥ २८-२९½ ॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे पितामह! मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है कि भृगुने भगवान्‌को शाप क्यों दे दिया? हे मुने! भगवान् विष्णुने उन भृगुमुनिका कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर महर्षि भृगुने सभी देवताओंद्वारा नमस्कार किये जानेवाले भगवान् विष्णुको शाप दे दिया॥ ३०-३१½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको भृगुके शापका कारण बताता हूँ। पूर्वकालमें कश्यपतनय हिरण्यकशिपु नामक एक राजा था। उस समय जब भी वह देवताओंके साथ परस्पर संघर्ष करने लगता था, तब युद्ध आरम्भ हो जानेपर सारा संसार व्याकुल हो उठता था॥ ३२-३३½ ॥

बादमें हिरण्यकशिपुका वध हो जानेपर प्रह्लाद राजा बने। शत्रुओंको कष्ट पहुँचानेवाले वे प्रह्लाद भी देवताओंको पीड़ित करने लगे। अतः इन्द्र और प्रह्लादमें भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। हे राजन्! पूरे सौ वर्षतक देवताओंने लोगोंको अचम्भेमें डाल देनेवाला भीषण युद्ध किया और प्रह्लादको पराजित कर दिया। हे राजन्! तब शाश्वत धर्मको समझकर वे महान् विरक्तिको प्राप्त हुए और विरोचनपुत्र बलिको राज्यपर प्रतिष्ठित करके तप करनेके लिये गन्धमादनपर्वतपर चले गये॥ ३४—३७½ ॥

राज्य प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली राजा बलिने देवताओंसे शत्रुता कर ली, जिससे [देवताओं और दैत्योंमें] पुनः परस्पर अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा। उसमें देवताओं तथा अमित तेजस्वी इन्द्रने दैत्योंको जीत लिया। हे राजन्! उस समय इन्द्रके सहायक बनकर भगवान् विष्णुने दैत्योंको राज्यसे च्युत कर दिया॥ ३८-३९½ ॥

ततः पराजिता दैत्याः काव्यस्य शरणं गताः ॥ ४०

किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन् साहाय्यं नः प्रतापवान्।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम् ॥ ४१

यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मन्त्रविदुत्तम।

व्यास उवाच

इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः ॥ ४२

मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भोऽसुराः।
मन्त्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि ॥ ४३

करिष्यामि कृतोत्साहा भवन्तु विगतज्वराः।

व्यास उवाच

ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात् ॥ ४४

देवैः श्रुतस्तु वृत्तान्तः सर्वैश्चारमुखात्किल।
तत्र संमन्त्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम् ॥ ४५

मन्त्रं चक्रुः सुसंविग्नाः काव्यमन्त्रप्रभावतः।
योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्न च्यावयन्ति वै ॥ ४६

प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे।
दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः संरुष्टाः शस्त्रपाणयः ॥ ४७

जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान् हरिणोदिताः।
वध्यमानास्तु ते दैत्याः सन्त्रस्ता भयपीडिताः ॥ ४८

काव्यस्य शरणं जग्मू रक्ष रक्षेति चाब्रुवन्।
ताञ्छुक्रः पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान् ॥ ४९

मा भैष्टेति वचः प्राह मन्त्रौषधिबलाद्विभुः।
दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल ॥ ५०

तदनन्तर हारे हुए दैत्य [अपने गुरु] शुक्राचार्यकी शरणमें गये। [सभी दैत्य उनसे कहने लगे—] हे ब्रह्मन्! आप प्रतापशाली होते हुए भी हमारी सहायता क्यों नहीं कर रहे हैं? हे मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ! यदि हमारी रक्षाहेतु आप सहायक न हुए तो हमलोग यहाँ नहीं रह पायेंगे और निश्चय ही हमें पातालमें जाना पड़ेगा ॥ ४०-४१½ ॥

व्यासजी बोले—दैत्योंके ऐसा कहनेपर दयालु शुक्राचार्यमुनिने उनसे कहा—हे असुरो! डरो मत। मैं अपने तेजसे [तुमलोगोंको धरातलपर] स्थापित करूँगा और मन्त्रों तथा औषधियोंसे सर्वदा तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। तुमलोग चिन्तामुक्त होकर उत्साह बनाये रखो ॥ ४२-४३½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यका आश्रय पाकर वे दैत्य निर्भय हो गये। उधर देवताओंने गुप्तचरोंसे यह समाचार सुन लिया। तत्पश्चात् शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावको समझकर अत्यन्त घबराये हुए देवताओंने इन्द्रके साथ परस्पर मन्त्रणा करके यह योजना बनायी कि जबतक शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावसे दैत्य हमें राज्यच्युत करें, उसके पहले ही हमलोग युद्ध करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दें और बलपूर्वक उनका वध करके बचे हुए दैत्योंको पाताल भेज दें ॥ ४४—४६½ ॥

तदनन्तर अत्यधिक रोषमें भरे देवताओंने हाथोंमें शस्त्र धारणकर दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् विष्णुसहित सभी देवता उनपर टूट पड़े। तब देवताओंके द्वारा मारे जा रहे वे दैत्य आतंकित तथा भयभीत होकर शुक्राचार्यकी शरणमें गये और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा बार-बार कहने लगे ॥ ४७-४८½ ॥

देवताओंके द्वारा पीड़ित किये गये उन महाबली दैत्योंको देखकर मन्त्र और औषधिके प्रभावसे शक्तिशाली बने शुक्राचार्यने उनसे 'डरो मत'—ऐसा वचन कहा। तब शुक्राचार्यको देखते ही सभी देवता उन दैत्योंको छोड़कर चले गये ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
भृगुशापकारणवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

मन्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये शुक्राचार्यका तपस्यारत होना, देवताओंद्वारा दैत्योंपर आक्रमण, शुक्राचार्यकी माताद्वारा दैत्योंकी रक्षा और इन्द्र तथा विष्णुको संज्ञाशून्य कर देना, विष्णुद्वारा शुक्रमाताका वध

व्यास उवाच

तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह।
ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं यच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः॥ १

विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनिष्यति जनार्दनः।
वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षो यथा हतः॥ २

यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः।
तथा सर्वान्कृतोत्साहो हनिष्यति न चान्यथा॥ ३

न मे मन्त्रबलं सम्यक्प्रतिभाति यथा हरिम्।
जेतुं यूयं समर्थाः स्थ मया त्राताः सुरानथ॥ ४

तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं कियन्तं दानवोत्तमाः।
अहमद्य महादेवं मन्त्रार्थं प्रव्रजामि वै॥ ५

प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि साम्प्रतम्।
युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः॥ ६

दैत्या ऊचुः

पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम।
शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम्॥ ७

निहता बलिनः सर्वे केचिच्छिष्टाश्च दानवाः।
नाद्य युक्ताश्च संग्रामे स्थातुमेवं सुखावहाः॥ ८

शुक्र उवाच

यावदहं मन्त्रविद्यामानयिष्यामि शङ्करात्।
तावद्भवद्भिः स्थातव्यं तपोयुक्तैः शमान्वितैः॥ ९

सामदानादयः प्रोक्ता विद्वद्भिः समयोचिताः।
देशं कालं बलं वीरैर्ज्ञात्वा शक्तिं बलं बुधैः॥ १०

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् देवताओंके चले जानेपर शुक्राचार्यने उन दैत्योंसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे जो कहा था, उसे तुमलोग सुनो। दैत्योंके वधके लिये भगवान् विष्णु सदा प्रयत्नरत रहते हैं, वे दैत्योंका वध अवश्य करेंगे। जैसे वाराहका रूप धारण करके उन्होंने हिरण्याक्षका वध किया और नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारा, उसी प्रकार उत्साहसम्पन्न होकर वे सब दैत्योंका संहार करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ १—३॥

मुझे जान पड़ता है कि वैसा समुचित मन्त्रबल अभी मेरे पास नहीं है, जिससे मेरे द्वारा सुरक्षित होकर तुमलोग इन्द्र तथा देवताओंको जीतनेमें समर्थ हो सको। अतः हे श्रेष्ठ दानवगण! तुमलोग कुछ समयतक प्रतीक्षा करो। मैं मन्त्रसिद्धिके लिये आज ही भगवान् शिवके पास जा रहा हूँ। हे श्रेष्ठ दानवो! महादेवजीसे मन्त्र लेकर मैं तत्काल आऊँगा और यथावत् रूपमें तुमलोगोंको सिखा दूँगा॥ ४—६॥

दैत्योंने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! देवताओंसे पराजित होकर हमलोग अत्यन्त निर्बल हो गये हैं, अतः उतने समयतक प्रतीक्षा करनेके लिये हम पृथ्वीपर रहनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? सभी पराक्रमी दानव मारे जा चुके हैं और जो शेष बचे हुए हैं, सुखकी इच्छा करनेवाले वे अब युद्धमें ठहरनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७-८॥

शुक्राचार्य बोले—जबतक मैं शिवजीसे मन्त्रविद्या लेकर नहीं आता हूँ, तबतक तुमलोग शान्ति और तपस्यासे युक्त होकर यहीं रुके रहो॥ ९॥

विद्वानोंने कहा है कि समयानुसार साम, दान आदिका प्रयोग करना चाहिये। बुद्धिमान् तथा वीर पुरुष देश, काल, बल, शक्ति और सेनाकी जानकारी करके ही अपना सामर्थ्य दिखाते हैं॥ १०॥

सेवाथ समये कार्या शत्रूणां शुभकाम्यया।
स्वशक्त्युपचये काले हन्तव्यास्ते मनीषिभिः॥ ११

तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै।
तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकाङ्क्षया॥ १२

प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः।
युध्यामहे पुनर्देवान्मान्त्रमास्थाय वै बलम्॥ १३

इत्युक्त्वाथ भृगुस्तेभ्यो जगाम कृतनिश्चयः।
महादेवं महाराज मन्त्रार्थं मुनिसत्तमः॥ १४

दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसन्निधौ।
सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां प्रत्ययप्रदम्॥ १५

प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृपः।
असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम्॥ १६

न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च।
देवास्तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्युताः॥ १७

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत्।
ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते॥ १८

न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः।
विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ताः सुसंस्थिताः॥ १९

दैत्या दम्भं समालम्ब्य तापसास्तपिसंयुताः।
कश्यपस्याश्रमे वासं चक्रुः काव्यागमेच्छया॥ २०

काव्यो गत्वाथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च।
उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्यमिति प्रभुः॥ २१

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ।
पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च॥ २२

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अपने कल्याणकी इच्छासे समयपर शत्रुओंकी भी सेवा करे और अपनी शक्तिका संचय हो जानेपर उन्हें मार डाले॥ ११॥

अतः देवताओंकी विनती करके छलपूर्वक सामनीतिका प्रयोग करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षाके साथ अपने-अपने घरोंमें रहो॥ १२॥

हे दानवो! महादेवजीसे मन्त्र प्राप्त करके मैं आऊँगा और तब उसी मन्त्रबलका आश्रय लेकर हमलोग देवताओंसे युद्ध करेंगे॥ १३॥

हे महाराज! उन दानवोंसे ऐसा कहकर दृढ़ संकल्पवाले मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य मन्त्रप्राप्तिके लिये शिवजीके पास चले गये॥ १४॥

तदनन्तर दैत्योंने सत्यवादी, धैर्यवान् तथा देवताओंके विश्वासपात्र प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा॥ १५॥

असुरोंके साथ वहाँ जाकर राजा प्रह्लाद विनय-सम्पन्न होकर देवताओंसे नम्रतायुक्त वचन बोले। हे देवताओ! हम सभी लोगोंने शस्त्र रख दिये हैं और कवचका त्याग कर दिया है। अब हम वल्कल धारण करके तपस्या करेंगे॥ १६-१७॥

प्रह्लादका वचन सुनकर देवताओंने उसे सत्य मान लिया और इसके बाद वे निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे लौट गये॥ १८॥

तब दैत्योंके शस्त्र त्याग देनेपर देवता युद्धसे विरत हो गये और चिन्तारहित होकर अपने-अपने घर जाकर स्वस्थचित्त हो क्रीडाविलासमें संलग्न हो गये॥ १९॥

उस समय दैत्यगण पाखण्डका सहारा लेकर तपस्वीके रूपमें तपस्यारत होकर शुक्राचार्यके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए कश्यपमुनिके आश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उधर, मुनि शुक्राचार्यने कैलासपर्वतपर पहुँचकर शंकरजीको प्रणाम किया। भगवान् शिवके पूछनेपर कि 'आपका क्या कार्य है?'—उन्होंने कहा—हे देव! मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी विजयके लिये उन मन्त्रोंको चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके भी पास न हों॥ २१-२२॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शङ्करः शिवः।
चिन्तयामास मनसा किं कर्तव्यमतः परम्॥ २३

सुरेषु द्रोहबुद्ध्यासौ मन्त्रार्थमिह साम्प्रतम्।
प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च॥ २४

रक्षणीया मया देवा इति सञ्चिन्त्य शङ्करः।
दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः॥ २५

पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्छिराः।
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि॥ २६

इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं बाढमित्यब्रवीद्वचः।
व्रतं चराम्यहं देव त्वयाज्ञप्तः सुरेश्वर॥ २७

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम्।
धूमपानरतः शान्तो मन्त्रार्थं कृतनिश्चयः॥ २८

ततो देवाः परिज्ञाय काव्यं व्रतरतं तदा।
दैत्यान्दम्भरतांश्चैव बभूवुर्मन्त्रतत्पराः॥ २९

विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप।
ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः॥ ३०

तानागतान्समीक्ष्याथ सायुधान्दंशितांस्तथा।
आसंस्ते भयसंविग्ना दैत्या देवान्समन्ततः॥ ३१

उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भयकर्शिताः।
अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान्॥ ३२

न्यस्तशस्त्रे भयवति आचार्ये व्रतमास्थिते।
दत्त्वाभयं पुरा देवाः सम्प्राप्ता नो जिघांसया॥ ३३

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सर्वज्ञ और कल्याणकारी भगवान् शिव मनमें सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? ये दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति द्रोह-बुद्धिसे युक्त होकर उन दैत्योंकी विजयके लिये मन्त्रहेतु इस समय यहाँ आये हैं, अतः मुझे देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये—ऐसा सोचकर शिवजीने उन्हें यह अत्यन्त कठोर और दुष्कर व्रत करनेको कहा—पूरे एक हजार वर्षोंतक यदि आप सिर नीचे करके कणधूम (भूसीके धुएँ)-का पान करेंगे, तभी आपका कल्याण होगा और आप मन्त्र प्राप्त कर सकेंगे॥ २३—२६॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर उन्होंने महेश्वरको प्रणाम करके यह वचन कहा—'बहुत अच्छा', हे देव! हे सुरेश्वर! आपने मुझे जो आदेश दिया है, मैं उस व्रतका पालन करूँगा॥ २७॥

व्यासजी बोले—शिवजीसे ऐसा कहकर मन्त्रप्राप्तिके लिये दृढ़संकल्प शुक्राचार्यजी शान्त होकर धुएँका सेवन करते हुए कठोर व्रत करने लगे॥ २८॥

तब उस समय शुक्राचार्यको व्रतमें संलग्न तथा दैत्योंको [तपस्वी बनकर] पाखण्डमें निरत देखकर देवता लोग आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २९॥

हे राजन्! भलीभाँति विचार करके सभी देवता संग्रामके लिये उद्यत हो गये और शस्त्रास्त्र धारणकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ वे बड़े-बड़े दानव विद्यमान थे॥ ३०॥

तदनन्तर दैत्यगण उन आये हुए देवताओंको आयुधोंसे सज्जित और कवच धारण किये तथा अपनेको उनसे सब ओरसे घिरा देखकर भयसे व्याकुल हो उठे॥ ३१॥

वे भयातुर दानव तुरंत उठकर खड़े हो गये और युद्धके लिये उद्यत बलाभिमानी देवताओंसे सारगर्भित वचन कहने लगे—हमने शस्त्र रख दिये हैं, हम भयभीत हैं और हमारे आचार्य इस समय व्रतमें संलग्न हैं। हे देवताओ! पहले अभयदान देकर भी आप लोग हमें मारनेकी इच्छासे आ गये। हे

सत्यं वः क्व गतं देवा धर्मश्च श्रुतिनोदितः।
न्यस्तशस्त्रा न हन्तव्या भीताश्च शरणं गताः॥ ३४

देवा ऊचुः

भवद्भिः प्रेषितः काव्यो मन्त्रार्थं कुहकेन च।
तपो ज्ञातं हि युष्माकं तेन युध्याम एव हि॥ ३५

सज्जा भवन्तु युद्धाय संरब्धाः शस्त्रपाणयः।
शत्रुश्छिद्रेण हन्तव्य एष धर्मः सनातनः॥ ३६

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्या विचार्य च परस्परम्।
पलायनपराः सर्वे निर्गता भयविह्वलाः॥ ३७

शरणं दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम्।
दृष्ट्वा ताननतिसन्तप्तानभयं च ददावथ॥ ३८

काव्यमातोवाच

न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः।
मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति॥ ३९

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्याः स्थितास्तत्र गतव्यथाः।
निरायुधा ह्यसंभ्रान्तास्तत्राश्रमवरेऽसुराः॥ ४०

देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्य दानवांस्ते पदानुगाः।
अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम्॥ ४१

तत्रागताः सुराः सर्वे हन्तुं दैत्यान्समुद्यताः।
वारिताः काव्यमात्रापि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान्॥ ४२

हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वा काव्यमातातिवेपिता।
उवाच सर्वान्सनिद्रांस्तपसा वै करोम्यहम्॥ ४३

देवगण! आप लोगोंका सत्य और श्रुतिसम्मत वह धर्म कहाँ चला गया कि 'जो शस्त्र रख चुके हों, भयभीत हों और शरणागत हो गये हों, उन्हें नहीं मारना चाहिये'॥ ३२—३४॥

देवता बोले—आप लोगोंने छलसे शुक्राचार्यको मन्त्र प्राप्त करनेके लिये भेजा है। हम आपलोगोंके तपको जान गये हैं, इसीलिये हमलोग युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं॥ ३५॥

अब क्षुब्ध हुए आपलोग भी हाथोंमें शस्त्र धारणकर युद्धके लिये तैयार हो जाइये। यह सनातन सिद्धान्त है कि जब शत्रु दुर्बल हो, तभी उसे मार डालना चाहिये॥ ३६॥

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सभी दैत्य आपसमें विचार करके भागनेके लिये तत्पर हो गये और भयसे व्याकुल होकर वहाँसे निकल भागे॥ ३७॥

वे भयभीत दैत्य शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें गये। उन दैत्योंको बहुत सन्तप्त देखकर उन्होंने अभय प्रदान कर दिया॥ ३८॥

शुक्राचार्यकी माताने कहा—हे दानवगण! डरो मत, डरो मत; तुम लोग भय छोड़ दो। मेरे पास रहनेवालोंको भय हो ही नहीं सकता॥ ३९॥

यह वचन सुनकर दैत्योंकी व्यथा दूर हो गयी और वे शस्त्रास्त्र त्यागकर पूर्ण रूपसे निश्चिन्त हो वहींपर उनके उत्तम आश्रममें रहने लगे॥ ४०॥

तब दैत्योंको पलायित देखकर वे देवता उनके पैरोंके चिह्नोंके पीछे-पीछे जाते हुए उनके बलाबलका बिना विचार किये हठात् उनके पास पहुँच गये॥ ४१॥

वहाँपर आये हुए सभी देवता आश्रममें रहनेवाले दैत्योंका वध करनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यकी माताके रोकनेपर भी उन दैत्योंको मारने लगे॥ ४२॥

इस प्रकार देवताओंके द्वारा उन्हें मारे जाते हुए देखकर शुक्राचार्यकी माता बहुत काँपने लगीं और बोलीं—मैं अभी समस्त देवताओंको अपने तपके प्रभावसे निद्राग्रस्त कर दे रही हूँ॥ ४३॥

इत्युक्त्वा प्रेरिता निद्रा तानागत्य पपात च।
सेन्द्रा निद्रावशं याता देवा मूकवदास्थिताः॥ ४४

इन्द्रं निद्राजितं दृष्ट्वा दीनं विष्णुरभाषत।
मां त्वं प्रविश भद्रं ते नये त्वां च सुरोत्तम॥ ४५

एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः।
निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षितः॥ ४६

रक्षितं हरिणा दृष्ट्वा शक्रं तत्र गतव्यथम्।
काव्यमाता ततः क्रुद्धा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ४७

मघवंस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपोबलात्।
पश्यतां सर्वदेवानामीदृशं मे तपोबलम्॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तु तया देवौ विष्णिवन्द्रौ योगविद्यया।
अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ सम्बभूवतुः॥ ४९

विस्मितास्तु तदा देवा दृष्ट्वा तावतिबाधितौ।
चक्रुः किलकिलाशब्दं ततस्ते दीनमानसाः॥ ५०

क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुं प्राह शचीपतिः।
विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं मधुसूदन॥ ५१

जह्येनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो।
तपसा दर्पितां दुष्टां मा विचारय माधव॥ ५२

इत्युक्तो भगवान्विष्णुः शक्रेण प्रथितेन च।
चक्रं सस्मार तरसा घृणां त्यक्त्वाथ माधवः॥ ५३

स्मृतमात्रं तु सम्प्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम्।
दधार च करे क्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः॥ ५४

ऐसा कहकर उन्होंने निद्राको प्रेरित किया। उस निद्राने देवताओंके पास आकर उनपर अपना प्रभाव डाल दिया, जिससे इन्द्रसहित सभी देवता निद्राके वशीभूत हो गये और गूँगेकी भाँति पड़े रहे॥ ४४॥

इन्द्रको निद्राके द्वारा नियन्त्रित तथा दीन देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे देवश्रेष्ठ! तुम मुझमें प्रविष्ट हो जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें अन्यत्र पहुँचाता हूँ॥ ४५॥

विष्णुके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र उनमें प्रवेश कर गये और उन श्रीहरिसे रक्षित होकर वे निर्भय तथा निद्रारहित हो गये॥ ४६॥

तब भगवान् विष्णुके द्वारा रक्षित इन्द्रको व्यथाशून्य देखकर शुक्राचार्यकी माता कुपित हो उठीं और यह वचन बोलीं—हे इन्द्र! सभी देवताओंके देखते-देखते मैं अपने तपोबलसे विष्णुसहित तुम्हें खा जाऊँगी; ऐसा मेरा तपोबल है॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर उन्होंने अपनी योगविद्याके द्वारा इन्द्र तथा विष्णुको आक्रान्त कर दिया और वे दोनों महात्मा स्तब्ध हो गये॥ ४९॥

उन दोनोंको बहुत बड़े संकटमें पड़ा देखकर देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ और वे दुःखीचित्त हो जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ ५०॥

देवताओंको चीखते-चिल्लाते देखकर इन्द्रने विष्णुसे कहा—हे मधुसूदन! मैं [इस समय] आपकी अपेक्षा अधिक आक्रान्त हूँ। अतः हे विष्णो! हे प्रभो! यह हमें जबतक भस्म न कर दे, आप तपस्याके अभिमानमें चूर इस दुष्टाको शीघ्रतापूर्वक मार डालिये। हे माधव! अब आप सोच-विचार न करें॥ ५१-५२॥

कीर्तिमान् इन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने दया छोड़कर तत्काल सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। विष्णुके वशमें रहनेवाला वह चक्र उनके स्मरण करते ही आ पहुँचा और इन्द्रसे प्रेरित होकर उन्होंने कुपित हो उसके वधके लिये चक्रको अपने हाथमें ले लिया॥ ५३-५४॥

गृहीत्वा तत्करे चक्रं शिरश्चिच्छेद रंहसा।
हतां दृष्ट्वा तु तां शक्रो मुदितश्चाभवत्तदा॥ ५५

देवाश्चातीव सन्तुष्टा हरिं जय जयेति च।
तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे सञ्जाता विगतज्वराः॥ ५६

इन्द्रविष्णू तु सञ्जातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ।
स्त्रीवधाच्छंकमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम्॥ ५७

उस चक्रको हाथमें लेकर भगवान् विष्णुने बड़े वेगसे उसका सिर काट दिया। तब उसे मृत देखकर इन्द्र हर्षित हो उठे। सभी देवता भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर विष्णुकी जयकार करने लगे। वे प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और सन्तापरहित हो गये॥ ५५-५६॥

स्त्रीवधसे [होनेवाले पाप] तथा भृगुमुनिके भीषण शापकी शंका करते हुए वे भगवान् विष्णु तथा इन्द्र उसी समयसे दुःखीचित्त रहने लगे॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
शुक्रमातुर्वधवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

महात्मा भृगुद्वारा विष्णुको मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप देना, इन्द्रद्वारा अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके लिये अर्पित करना, देवगुरु बृहस्पतिद्वारा शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंका पुरोहित बनना

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः।
वेपमानोऽतिदुःखार्तः प्रोवाच मधुसूदनम्॥ १

भृगुरुवाच

अकृत्यं ते कृतं विष्णो जानन्पापं महामते।
वधोऽयं विप्रजाताया मनसा कर्तुमक्षमः॥ २

आख्यातस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः।
तथासौ तामसः शम्भुर्विपरीतं कथं स्मृतम्॥ ३

तामसस्त्वं कथं जातः कृतं कर्मातिनिन्दितम्।
अवध्या स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा॥ ४

शपामि त्वां दुराचारं किमन्यत्प्रकरोमि ते।
विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाहं शक्रकारणात्॥ ५

न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन।
सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशयः॥ ६

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस भयानक वधको देखकर भगवान् भृगु अत्यन्त कुपित हुए और दुःखसे व्याकुल होकर काँपते हुए वे मधुसूदन विष्णुसे कहने लगे॥ १॥

भृगु बोले—हे महाबुद्धिमान् विष्णो! जो नहीं करना चाहिये वह पाप आपने जान-बूझकर कर डाला। विप्र-स्त्रीके इस वधकी तो मनसे कल्पना करना भी अनुचित है॥ २॥

आप तो सत्त्वगुणसे सम्पन्न कहे गये हैं, ब्रह्मा रजोगुणी और शिव तमोगुणी बताये गये हैं; तब आपने अपने गुणके विपरीत कार्य क्यों किया? आप तामसी कैसे हो गये, जिससे आपने यह घोर निन्दनीय कर्म कर डाला? हे विष्णो! आपने उस अवध्य तथा निरपराध स्त्रीको क्यों मार डाला?॥ ३-४॥

[उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा कि] अब मैं तुझ दुराचारीको शाप दे रहा हूँ, इसके अतिरिक्त तुम्हारा क्या प्रतीकार करूँ? अरे पापी! तुमने इन्द्रके हितके लिये मुझे विधुर बना दिया। हे मधुसूदन! मैं इन्द्रको शाप नहीं दूँगा, बल्कि तुम्हें ही शाप दूँगा। कृष्ण सर्पसदृश दुरभिप्रायवाले तुम सदा छल करनेमें ही तत्पर रहते हो॥ ५-६॥

ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल।
तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्षं मे जनार्दन॥ ७

अवतारा मृत्युलोके सन्तु मच्छापसम्भवाः।
प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन॥ ८

व्यास उवाच

ततस्तेनाथ शापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः।
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥ ९

राजोवाच

भृगुभार्या हता तत्र चक्रेणामिततेजसा।
गार्हस्थ्यञ्च पुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः॥ १०

व्यास उवाच

इति शप्त्वा हरिं रोषात्तदादाय शिरस्त्वरन्।
काये संयोज्य तरसा भृगुः प्रोवाच कार्यवित्॥ ११

अद्य त्वां विष्णुना देवि हतां सञ्जीवयाम्यहम्।
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा॥ १२

तेन सत्येन जीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्।
पश्यन्तु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत्॥ १३

अद्भिस्त्वां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात्।
सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम्॥ १४

व्यास उवाच

अद्भिः सम्प्रोक्षिता देवी सद्यः सञ्जीविता तदा।
उत्थिता परमप्रीता भृगोर्भार्या शुचिस्मिता॥ १५

ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव।
साधु साध्विति तं तां तु तुष्टुवुः सर्वतो दिशम्॥ १६

एवं सञ्जीविता तेन भृगुणा वरवर्णिनी।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवाः सेन्द्रा विलोक्य तत्॥ १७

हे जनार्दन! जो मुनि तुम्हें सात्त्विक कहते हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं। मैंने तो प्रत्यक्ष जान लिया कि तुम तमोगुणी तथा दुराचारी हो। अतः हे जनार्दन! मेरे शापसे मृत्युलोकमें तुम्हारे अनेक अवतार हों और [इस स्त्री-वधजन्य] पापके कारण बार-बार गर्भवाससे होनेवाले दुःखको भोगो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—उसी शापके कारण भगवान् विष्णु धर्मका ह्रास होनेपर संसारके कल्याणके लिये बार-बार मानवरूपोंमें प्रकट होते हैं॥ ९॥

राजा बोले—[हे व्यासजी!] जब अमित तेजस्वी चक्रके द्वारा भृगुपत्नीका वध हो गया, उसके बाद महात्मा भृगुका गार्हस्थ्य-जीवन कैसे व्यतीत हुआ?॥ १०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार रोषपूर्वक भगवान् विष्णुको शाप देकर कार्यकुशल महर्षि भृगु तत्काल उस [कटे] सिरको लेकर शीघ्रतापूर्वक [अपनी पत्नीके] धड़में जोड़ करके बोले—हे देवि! विष्णुके द्वारा तुम मारी जा चुकी हो, किंतु अब मैं तुम्हें फिरसे जीवित कर रहा हूँ। यदि मैं सम्पूर्ण धर्म जानता हूँ तथा उसका सम्यक् आचरण करता हूँ और सदा सत्य भाषण करता हूँ तो उसी सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ। सभी देवता मेरे महान् तेज-बलको देख लें। यदि मुझमें सत्य, पवित्रता, वेदाध्ययन तथा तपस्याका बल होगा तो मैं उन्हींके प्रभावसे शीतल जलसे तुम्हारा प्रोक्षण करके तुम्हें जीवित कर दूँगा॥ ११—१४॥

व्यासजी बोले—तब जलसे प्रोक्षित करते ही मधुर मुसकानवाली वे भृगुपत्नी शीघ्र ही जीवित हो गयीं और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उठकर खड़ी हो गयीं॥ १५॥

तब सोकर उठी हुईके समान उसे देखकर सब ओरसे लोग ‘साधु-साधु’—ऐसा कहकर भृगुमुनि तथा उनकी भार्या दोनोंकी स्तुति करने लगे॥ १६॥

इस प्रकार उन महर्षि भृगुने उस सुन्दरीको जीवित कर दिया। यह देखकर इन्द्रसहित सभी देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे॥ १७॥

इन्द्रः सुरानथोवाच मुनिना जीविता सती।
काव्यस्तप्त्वा तपो घोरं किं करिष्यति मन्त्रवित्॥ १८

व्यास उवाच

गता निद्रा सुरेन्द्रस्य देहेऽक्षेममभून्नृप।
स्मृत्वा काव्यस्य वृत्तान्तं मन्त्रार्थमतिदारुणम्॥ १९

विमृश्य मनसा शक्रो जयन्तीं स्वसुतां तदा।
उवाच कन्यां चार्वङ्गीं स्मितपूर्वमिदं वचः॥ २०

गच्छ पुत्रि मया दत्ता काव्याय त्वं तपस्विने।
समाराधय तन्वङ्गि मत्कृते तं वशं कुरु॥ २१

उपचारैर्मुनिं तैस्तैः समाराध्य मनःप्रियैः।
भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे॥ २२

सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा।
तमपश्यद्विशालाक्षी पिबन्तं धूममाश्रमे॥ २३

तस्य देहं समालोक्य स्मृत्वा वाक्यं पितुस्तदा।
कदलीदलमादाय वीजयामास तं मुनिम्॥ २४

निर्मलं शीतलं वारि समानीय सुवासितम्।
पानाय कल्पयामास भक्त्या परमया लघु॥ २५

छायां वस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति।
रचयामास तन्वङ्गी स्वयं धर्मे स्थिता सती॥ २६

फलान्यानीय दिव्यानि पक्वानि मधुराणि च।
मुमोचाग्रे मुनेस्तस्य भक्षार्थं विहितानि च॥ २७

कुशाः प्रादेशमात्रा हि हरिताः शुकसन्निभाः।
दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये॥ २८

निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम्।
तस्मिन्मुनौ चादरस्था चकार व्यजनं शनैः॥ २९

तत्पश्चात् इन्द्रने देवताओंसे कहा—भृगुमुनिने अपनी साध्वी भार्याको जीवित कर दिया। साथ ही मन्त्रज्ञानी शुक्राचार्य कठोर तपस्या करके [शिवसे मन्त्र प्राप्तकर] पता नहीं क्या कर डालेंगे!॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मन्त्रप्राप्तिके लिये शुक्राचार्यके अत्यन्त कठोर तपका स्मरण करके इन्द्रकी नींद समाप्त हो गयी और उनके शरीरमें व्याकुलता होने लगी॥ १९॥

तब मनमें भली-भाँति विचार करके इन्द्रने सुन्दर स्वरूपवाली अपनी पुत्री जयन्तीसे मुसकराते हुए कहा—हे पुत्रि! मैंने तुम्हें तपस्वी शुक्राचार्यको सौंप दिया। अतः हे तन्वंगि! अब तुम जाओ और मेरे कल्याणके लिये उनकी सेवा करो और उन्हें वशमें कर लो। उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर उनके मनको प्रिय लगनेवाले विविध उपचारोंसे उन्हें प्रसन्न करके मेरा भय दूर करो॥ २०—२२॥

विशाल नयनोंवाली वह सुन्दर कन्या पिताकी बात सुनकर [शुक्राचार्यके] आश्रममें गयी और वहाँपर उसने मुनिको [नीचेकी ओर सिर करके] धुएँका सेवन करते हुए देखा॥ २३॥

तब उनके [तपोरत] शरीरको देखकर और पिताकी बात याद करके वह केलेका एक पत्ता लेकर मुनिको पंखा झलने लगी॥ २४॥

तबसे वह उनके पीनेके लिये अत्यन्त स्वच्छ, शीतल, सुगन्धित तथा रुचिकर जल ले आकर [उनके समक्ष] श्रद्धापूर्वक उपस्थित किया करती। सूर्यके मध्य आकाशमें होते ही वह सुन्दरी उनके ऊपर वस्त्रसे छतरी बनाकर छाया कर देती थी। वह साध्वी सदा पातिव्रत्य धर्मका पालन करती थी॥ २५-२६॥

वह शास्त्रविहित दिव्य, पके तथा मीठे फल लाकर खानेके लिये उन मुनिके समक्ष रख देती थी। वह कन्या उनके नित्यकर्मके सम्पादनार्थ पुष्प और तोतेके वर्णके समान प्रादेशमात्र मापवाले हरे-हरे कुश उनके आगे प्रस्तुत कर देती थी। उनके शयनके लिये वह कोमल-कोमल पत्तोंका बिछौना तैयार करती थी और फिर उन मुनिके प्रति आदरभाव रखकर धीरे-धीरे पंखा झलने लगती थी॥ २७—२९॥

हावभावादिकं किञ्चिद्विकारजननं च तत्।
न चकार जयन्ती सा शापभीता मुनेस्तदा॥ ३०

स्तुतिं चकार तन्वङ्गी गीर्भिस्तस्य महात्मनः।
सुभाषिण्यनुकूलाभिः प्रीतिकर्त्रीभिरप्युत॥ ३१

प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च।
मनोऽनुकूलं सततं कुर्वन्ती व्यचरत्तदा॥ ३२

इन्द्रोऽपि सेवकांस्तत्र प्रेषयामास चातुरः।
प्रवृत्तिं ज्ञातुकामो वै मुनेस्तस्य जितात्मनः॥ ३३

एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराभवत्।
निर्विकारा जितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती॥ ३४

पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः।
वरेण छन्दयामास काव्यं प्रीतमना हरः॥ ३५

ईश्वर उवाच

यच्च किञ्चिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन।
प्रतिपश्यसि यत्सर्वं यच्च वाच्यं न कस्यचित्॥ ३६

सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः।
अवध्यः सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः॥ ३७

व्यास उवाच

एवं दत्त्वा वराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत।
काव्यस्तामथ संवीक्ष्य जयन्तीं वाक्यमब्रवीत्॥ ३८

कासि कस्यासि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम्।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे॥ ३९

किं वाञ्छसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने।
प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाद्य वरं वरय सुव्रते॥ ४०

मुनिके शापसे भयभीत होकर वह जयन्ती उनके मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला कोई हाव-भाव प्रदर्शित नहीं करती थी॥ ३०॥

सुकुमार अंगोंवाली तथा मृदुभाषण करनेवाली वह कन्या उन महात्माके मनके अनुकूल तथा प्रीति उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे उनकी स्तुति करती थी। तत्पश्चात् उनके जाग जानेपर आचमनके लिये जल लाकर रख देती थी। इस प्रकार सदा उनके मनके अनुकूल कार्य करती हुई उनके साथ व्यवहार करती थी॥ ३१-३२॥

चिन्तासे व्याकुल इन्द्र भी उन जितेन्द्रिय मुनिकी प्रवृत्ति जाननेकी इच्छासे अपने सेवक भेजते रहते थे॥ ३३॥

इस प्रकार वह साध्वी कन्या क्रोधपर विजय प्राप्त करके, निर्विकार होकर तथा ब्रह्मचर्यपरायण रहती हुई बहुत वर्षोंतक मुनिकी सेवामें संलग्न रही॥ ३४॥

तदनन्तर हजार वर्ष पूर्ण होनेपर महेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक वे शुक्राचार्यसे वर माँगनेके लिये कहने लगे॥ ३५॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! हे भृगुनन्दन! जगत्में जो कुछ भी विद्यमान है, आप जो सब देख रहे हैं तथा जो किसीकी भी वाणीका विषय नहीं है—उन सबके स्वामित्वसे आप युक्त हो जायँगे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप सभी प्राणियोंसे अवध्य होंगे। आप प्रजाओंके स्वामी तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ ३६-३७॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जयन्तीको देखकर शुक्राचार्यने उससे कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो; मुझे अपनी अभिलाषा बताओ। हे सुन्दरि! तुम यहाँ किसलिये आयी हो, अपना कार्य बताओ। हे सुनयने! तुम क्या चाहती हो; यदि वह कार्य दुष्कर भी हो तो भी मैं उसे अभी कर दूँगा। हे सुव्रते! आज मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ, अतः वर माँग लो॥ ३८—४०॥

ततः सा तु मुनिं प्राह जयन्ती मुदितानना।
चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि॥ ४१

शुक्र उवाच

ज्ञातं मया तथापि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम्।
करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया॥ ४२

जयन्त्युवाच

शक्रस्याहं सुता ब्रह्मन् पित्रा तुभ्यं समर्पिता।
जयन्ती नामतश्चाहं जयन्तावरजा मुने॥ ४३

सकामास्मि त्वयि विभो वाञ्छितं कुरु मेऽधुना।
रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम्॥ ४४

शुक्र उवाच

मया सह त्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनि।
सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया॥ ४५

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्।
तया सहावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः॥ ४६

अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः।
दैत्यास्तमागतं श्रुत्वा कृतार्थं मन्त्रसंयुतम्॥ ४७

अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः।
नापश्यन् रममाणं ते जयन्त्या सह संयुतम्॥ ४८

तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते।
चिन्तापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः॥ ४९

अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम्।
स्वगृहान्दैत्यवर्यास्ते चिन्ताविष्टा भयातुराः॥ ५०

रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रः प्रोवाच तं गुरुम्।
बृहस्पतिं महाभागं किं कर्तव्यमितः परम्॥ ५१

तदनन्तर प्रसन्न मुखमण्डलवाली जयन्तीने मुनिसे कहा—हे भगवन्! आप तो अपनी तपस्यासे मेरा अभिलषित जान लेनेमें समर्थ हैं॥ ४१॥

शुक्राचार्य बोले—वह तो मैंने जान लिया, फिर भी जो तुम्हारा मनोभिलषित है, उसे तुम मुझे बताओ। मैं हर तरहसे तुम्हारा कल्याण करूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ॥ ४२॥

जयन्ती बोली—हे ब्रह्मन्! मैं इन्द्रकी पुत्री हूँ और पिताजीने मुझे आपको सौंप दिया है। हे मुने! मेरा नाम जयन्ती है और मैं जयन्तकी छोटी बहन हूँ॥ ४३॥

हे विभो! मैं आपपर आसक्त हूँ, अतः मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। हे महाभाग! मैं पातिव्रत-धर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक आपके साथ विहार करूँगी॥ ४४॥

शुक्राचार्य बोले—हे सुश्रोणि! हे भामिनि! तुम सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहती हुई दस वर्षोंतक इच्छानुसार मेरे साथ यहाँ विहार करो॥ ४५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर शुक्राचार्यने घर जाकर जयन्तीके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् मायासे आच्छादित होकर सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए वे ऐश्वर्यसम्पन्न मुनि शुक्राचार्य देवी जयन्तीके साथ दस वर्षोंतक वहाँ रहे॥ ४६$\frac{१}{२}$॥

गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल हो मन्त्रसे युक्त होकर आया हुआ सुनकर सभी दैत्य उनके दर्शनकी इच्छासे प्रसन्नतापूर्वक उनके घर गये, किंतु वे उन्हें देख न सके; क्योंकि उस समय वे जयन्तीके साथ विहार कर रहे थे॥ ४७-४८॥

इससे उन सभी दैत्योंका मन उदास हो गया और उनके सभी उद्योग व्यर्थ हो गये। वे बहुत चिन्तित और दुःखी होकर उन्हें बार-बार खोजते रहे। अन्तमें [मायासे] आच्छादित उन मुनिको न देखकर वे चिन्तित तथा भयभीत दैत्य जैसे आये थे वैसे ही अपने घर लौट गये॥ ४९-५०॥

तत्पश्चात् शुक्राचार्यको विहार करता हुआ जानकर इन्द्रने अपने गुरु महाभाग बृहस्पतिसे कहा—अब क्या किया जाय?॥ ५१॥

गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय।
अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या सञ्चिन्त्य मानद॥ ५२

हे ब्रह्मन्! आप दानवोंके पास जाइये और मायाके द्वारा उन्हें मोहमें डाल दीजिये। हे मानद! बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके आप हमारा कार्य सिद्ध कर दीजिये॥ ५२॥

तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणं सुसंवृतम्।
ज्ञात्वा तद्रूपमास्थाय दैत्यान्प्रति ययौ गुरुः॥ ५३

इन्द्रकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति शुक्राचार्यको मायाच्छादित होनेके कारण [अदृश्य हो जयन्तीके साथ] क्रीडा करते जानकर उन्हींका रूप धारण करके दैत्योंके पास गये॥ ५३॥

गत्वा तत्रातिभक्त्यासौ दानवान्समुपाह्वयत्।
आगतास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः॥ ५४

वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े आदरके साथ दानवोंको बुलवाया। तब सभी दानव आ गये और उन्होंने शुक्राचार्यको अपने सम्मुख देखा॥ ५४॥

प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वातिमोहिताः।
न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम्॥ ५५

मायासे विमोहित सभी दैत्य [उन छद्मवेषधारी देवगुरु बृहस्पतिको ही] शुक्राचार्य समझकर उन्हें प्रणाम करके उनके समक्ष खड़े हो गये। वे शुक्राचार्यका कृत्रिम रूप प्रकट करनेवाली देवगुरु बृहस्पतिकी मायाको नहीं जान सके॥ ५५॥

तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया।
स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय वै॥ ५६

अहं वो बोधयिष्यामि विद्यां प्राप्ताममायया।
तपसा तोषितः शम्भुर्युष्मत्कल्याणहेतवे॥ ५७

तत्पश्चात् छद्म मायासे शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले गुरु बृहस्पतिने उनसे कहा—मेरे यजमानोंका स्वागत है। मैं आपलोगोंके हितके लिये अब आ गया हूँ। मैंने आप सबके कल्याणके लिये तपस्याके द्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न कर लिया और अब मैं उनसे प्राप्त विद्याको निष्कपट भावसे आपलोगोंको बता दूँगा॥ ५६-५७॥

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसो जातास्ते दानवोत्तमाः।
कृतकार्यं गुरुं मत्वा जहृषुस्ते विमोहिताः॥ ५८

प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातङ्का गतव्यथाः।
देवेभ्यश्च भयं त्यक्त्वा तस्थुः सर्वे निरामयाः॥ ५९

यह सुनकर वे श्रेष्ठ दानव प्रसन्नचित्त हो गये। गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल समझकर वे मोहग्रस्त दानव बहुत हर्षित हुए और उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। वे भयमुक्त तथा सन्तापरहित हो गये। अब देवताओंका भय छोड़कर वे सभी दैत्य स्वस्थचित्त होकर रहने लगे॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
जयन्त्या शुक्रसहवासवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

शुक्राचार्यरूपधारी बृहस्पतिका दैत्योंको उपदेश देना

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा पश्चाद् भृगुरूपेण वर्तता।
छलेनैव हि दैत्यानां पौरोहित्येन धीमता॥ १

राजा बोले—[हे व्यासजी!] तत्पश्चात् शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले बुद्धिमान् गुरु बृहस्पतिने छलपूर्वक दैत्योंका पुरोहित बनकर क्या किया?॥ १॥

गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा।
सुतोऽङ्गिरस एवासौ स कथं छलकृन्मुनिः॥ २

धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम्।
कथितं मुनिभिर्येन परमात्मापि लभ्यते॥ ३

वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ता चेद्दानवान्प्रति।
कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी॥ ४

आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्माण्डविभवेऽपि न।
तदर्थं मुनयो मिथ्या प्रवर्तन्ते कथं मुने॥ ५

शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम्।
छलकर्मप्रवृत्ते वाविगीतत्वं गुरौ कथम्॥ ६

देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः।
तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल॥ ७

अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि।
तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः॥ ८

क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य सन्देहोऽयं ममात्मनः।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये॥ ९

हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथान्ये सुरसत्तमाः।
सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणाञ्च का कथा॥ १०

कामक्रोधाभिसन्तप्ता लोभोपहतचेतसः।
छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः॥ ११

वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा।
एते पापरताः कात्र गतिर्धर्मस्य मानद॥ १२

इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधाः परदाराभिलम्पटाः।
आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद॥ १३

वे तो देवताओंके गुरु हैं, सदासे सभी विद्याओंके निधान हैं और महर्षि अंगिराके पुत्र हैं; तब उन मुनिने छल क्यों किया?॥ २॥

मुनियोंने समस्त धर्मशास्त्रोंमें सत्यको ही धर्मका मूल बताया है, जिससे परमात्मातक प्राप्त किये जा सकते हैं॥ ३॥

जब बृहस्पति भी दानवोंसे झूठ बोले, तब संसारमें कौन गृहस्थ सत्य बोलनेवाला हो सकेगा?॥ ४॥

हे मुने! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका वैभव पासमें हो जानेपर भी [कोई व्यक्ति अपने] आहारसे अधिक नहीं खा सकता, तब उसीके निमित्त मुनिलोग भी मिथ्या-भाषणमें किसलिये प्रवृत्त हो जाते हैं?॥ ५॥

इस प्रकारके अशिष्ट आचरणसे देवगुरु बृहस्पतिके वचनोंकी प्रामाणिकता क्या नष्ट नहीं हो गयी और इस छलकर्ममें लिप्त होनेसे उन्हें निष्कलंक कैसे कहा जा सकता है?॥ ६॥

मुनियोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे तथा पशु-पक्षियोंको तमोगुणसे उत्पन्न बतलाया है॥ ७॥

यदि स्वयं देवगुरु बृहस्पति ही साक्षात् मिथ्या-भाषणमें प्रवृत्त हो गये, तब रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त कौन प्राणी सत्यवादी हो सकेगा?॥ ८॥

इस प्रकार तीनों लोकोंके मिथ्यापरायण हो जानेपर धर्मकी स्थिति कहाँ होगी और सभी प्राणियोंकी क्या दशा होगी? यही मेरा संदेह है॥ ९॥

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा और भी दूसरे महान् देवतागण—सब छलकार्यमें निपुण हैं, तब मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ १०॥

सभी देवता और तपोधन मुनिगण भी काम तथा क्रोधसे सन्तप्त और लोभसे व्याकुलचित्त होकर छल-प्रपंचमें तत्पर रहते हैं॥ ११॥

हे मानद! जब वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और गुरु बृहस्पति—ये लोग भी पाप-कर्ममें संलग्न हो गये, तब धर्मकी क्या दशा होगी?॥ १२॥

इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मातक कामके वशीभूत हो गये, तब हे मुने! आप ही बतायें कि इन भुवनोंमें शिष्टता कहाँ रह गयी?॥ १३॥

वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियानघ।
सर्वे लोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा॥ १४

व्यास उवाच

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा॥ १५

रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।
(रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप)
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते॥ १६

सम्प्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः सम्बाध्यते किल।
कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति॥ १७

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एव हि कारणम्।
पञ्चविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा॥ १८

काले मरणधर्मास्ते सन्देहः कोऽत्र ते नृप।
परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वे भवन्ति च॥ १९

विप्लुतिर्ह्यविशेषेण स्वकार्ये समुपस्थिते।
कामः क्रोधस्तथा लोभद्रोहाहङ्कारमत्सराः॥ २०

देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवति तान्पुनः।
संसारोऽयं महाराज सदैवैवंविधः स्मृतः॥ २१

नान्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल।
कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरति दारुणम्॥ २२

कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः।
कदाचित्तु रमारङ्गरञ्जितः परमेश्वरः॥ २३

रमते किल वैकुण्ठे तद्वशस्तरुणो विभुः।
कदाचिद्दानवैः सार्धं युद्धं परमदारुणम्॥ २४

करोति करुणासिन्धुस्तद्बाणापीडितो भृशम्।
कदाचिज्जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम्॥ २५

सुखदुःखाभिभूतोऽसौ भवत्येव न संशयः।
शेषे शेते कदाचिद्वै योगनिद्रासमावृतः॥ २६
काले जागर्ति विश्वात्मा स्वभावप्रतिबोधितः।

हे पुण्यात्मन्! जब वे सब देवता और मुनिलोग भी लोभके वशीभूत हैं, तब उपदेश ग्रहण करनेके विचारसे किसका वचन प्रमाण माना जाय?॥ १४॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] चाहे विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और बृहस्पति ही क्यों न हों—देहधारी तो विकारोंसे युक्त रहता ही है॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेशतक आसक्तिसे ग्रस्त हैं। (हे राजन्! आसक्त प्राणी कौन-सा अनर्थ नहीं कर बैठता) आसक्तिसे युक्त प्राणी भी चतुराईके कारण विरक्तकी भाँति दिखायी पड़ता है, किंतु संकट उपस्थित होनेपर वह [सत्त्व, रज, तम] गुणोंसे आबद्ध हो जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कैसे हो सकता है? ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंके भी मूल कारण गुण ही हैं। उनके भी शरीर पचीस तत्त्वोंसे बने हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! समय आ जानेपर वे भी मृत्युको प्राप्त होते हैं, इसमें आपको संशय कैसा?॥ १६—१८½॥

यह पूर्णरूपसे स्पष्ट है कि दूसरोंको उपदेश देनेमें सभी लोग शिष्ट बन जाते हैं, किंतु अपना कार्य पड़नेपर उस उपदेशका पूर्णतः लोप हो जाता है। जो काम, क्रोध, लोभ, द्रोह, अहंकार और डाह आदि विकार हैं; उन्हें छोड़नेमें कौन-सा देहधारी प्राणी समर्थ हो सकता है? हे महाराज! यह संसार सदासे ही इसी प्रकार शुभाशुभसे युक्त कहा गया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१½॥

कभी भगवान् विष्णु घोर तपस्या करते हैं, कभी वे ही सुरेश्वर अनेक प्रकारके यज्ञ करते हैं, कभी वे परमेश्वर विष्णु लक्ष्मीके प्रेम-रसमें सिक्त होकर उनके वशीभूत हो वैकुण्ठमें विहार करते हैं। वे करुणासागर विष्णु कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण युद्ध करते हैं और उनके बाणोंसे आहत हो जाते हैं। [उस युद्धमें] वे कभी विजयी होते हैं और कभी दैववश पराजित भी हो जाते हैं। इस प्रकार वे भी सुख तथा दुःखसे प्रभावित होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। वे विश्वात्मा कभी योगनिद्राके वशवर्ती होकर शेषशय्यापर शयन करते हैं और कभी सृष्टिकाल आनेपर योगमायासे प्रेरित होकर जाग भी जाते हैं॥ २२—२६½॥

शर्वो ब्रह्मा हरिश्चेति इन्द्राद्या ये सुरास्तथा॥ २७

मुनयश्च विनिर्माणैः स्वायुषो विचरन्ति हि।
निशावसाने सञ्जाते जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २८

म्रियते नात्र सन्देहो नृप किञ्चित्कदापि च।
स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छन्ति पार्थिव॥ २९

प्रभवन्ति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः।
तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥ ३०

नात्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव।
संसारोऽयं तु सन्दिग्धः कामक्रोधादिभिर्नृप॥ ३१

दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित्।
यो बिभेतीह संसारे स दारान्न करोत्यपि॥ ३२

विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो विचरत्यविशङ्कितः।
तस्माद् बृहस्पतेर्भार्या शशिना लम्भिता पुनः॥ ३३

गुरुणा लम्भिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् रागलोभादिभिर्वृतः॥ ३४

गार्हस्थ्यञ्च समास्थाय कथं मुक्तो भवेन्नरः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हित्वा संसारसारताम्॥ ३५

आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम्॥ ३६

भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप।
तस्या आराधनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च॥ ३७

मुक्तिं भजेत मतिमान्नान्यः पन्थास्त्वितः परः।
आराधिता महेशानी न यावत्कुरुते कृपाम्॥ ३८

तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोऽन्योऽस्ति दयया युतः।
करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया॥ ३९
यस्यास्तु भजनेनैव जीवन्मुक्तत्वमश्नुते।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि जो देवता तथा मुनिगण हैं—वे भी अपनी आयुके परिमाणकालतक ही जीवित रहते हैं। हे राजन्! अन्तकाल आनेपर स्थावर-जंगमात्मक यह जगत् भी विनष्ट हो जाता है, इसमें कभी भी कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये। हे भूपाल! अपनी आयुका अन्त हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि देवता भी विनष्ट हो जाते हैं और [सृष्टिकाल आनेपर] पुनः ये उत्पन्न भी हो जाते हैं॥ २७—२९½ ॥

अतएव देहधारी प्राणी काम आदि भावोंसे ग्रस्त हो ही जाता है; हे राजन्! इस विषयमें आपको कभी भी विस्मय नहीं करना चाहिये। हे राजन्! यह संसार तो काम, क्रोध आदिसे ओतप्रोत है। इनसे पूर्णतः मुक्त तथा परम तत्त्वको जाननेवाला पुरुष दुर्लभ है॥ ३०-३१½ ॥

जो इस संसारमें [काम, क्रोध आदि विकारोंसे] डरता है, वह विवाह नहीं करता। वह समस्त प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर निर्भीकतापूर्वक विचरता है। इसके विपरीत संसारसे आबद्ध रहनेके कारण ही बृहस्पतिकी पत्नीको चन्द्रमाने रख लिया था और देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी पत्नीको अपना लिया था। इस प्रकार इस संसार-चक्रमें राग, लोभ आदिसे जकड़ा हुआ मनुष्य गृहस्थीमें आसक्त रहकर भला मुक्त कैसे हो सकता है?॥ ३२—३४½ ॥

अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ संसारमें आसक्तिका त्याग करके सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती महेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये। हे राजन्! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उन्हींके मायारूपी गुणसे आच्छादित होकर उन्मत्त तथा मदिरापान करके मतवाले मनुष्यकी भाँति चक्कर काटता रहता है॥ ३५-३६½ ॥

उन्हींकी आराधनाके द्वारा [सत्त्व आदि] सभी गुणोंको पराभूत करके बुद्धिमान् मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आराधित होकर महेश्वरी जबतक कृपा नहीं करतीं, तबतक सुख कैसे हो सकता है? उनके सदृश दयावान् दूसरा कौन है? अतः निष्कपट भावसे करुणासागर भगवतीकी आराधना करनी चाहिये, जिनके भजनसे मनुष्य जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकता है॥ ३७—३९½ ॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी॥ ४०

निःश्रेणिकाग्रात्पतिता अध इत्येव विद्महे।
अहङ्कारावृतं विश्वं गुणत्रयसमन्वितम्॥ ४१

असत्येनापि सम्बद्धं मुच्यते कथमन्यथा।
हित्वा सर्वं ततः सर्वैः संसेव्या भुवनेश्वरी॥ ४२

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च।
कदा शुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह॥ ४३

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा।
कृत्वा काव्यस्वरूपञ्च प्रच्छन्नेन महात्मना॥ ४४

गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम्।
विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा॥ ४५

विद्यार्थं शरणं प्राप्ता भृगुं मत्वातिमोहिताः।
गुरुणा विप्रलब्धास्ते लोभात्को वा न मुह्यति॥ ४६

दशवर्षात्मके काले सम्पूर्णसमये तदा।
जयन्त्या सह क्रीडित्वा काव्यो याज्यानचिन्तयत्॥ ४७

आशया मम मार्गं ते पश्यन्तः संस्थिताः किल।
गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान्॥ ४८

मा देवेभ्यो भयं तेषां मद्भक्तानां भवेदिति।
सञ्चिन्त्य बुद्धिमास्थाय जयन्तीं प्रत्युवाच ह॥ ४९

देवानेवोपसंयान्ति पुत्रा मे चारुलोचने।
समयस्तेऽद्य सम्पूर्णो जातोऽयं दशवार्षिकः॥ ५०

तस्माद् गच्छाम्यहं देवि द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे।
पुनरेवागमिष्यामि तवान्तिकमनुद्रुतः॥ ५१

दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जिसने उन महेश्वरीकी उपासना नहीं की, वह मानो अन्तिम सीढ़ीसे फिसलकर गिर गया—मैं तो यही धारणा रखता हूँ। सम्पूर्ण विश्व अहंकारसे आच्छादित है, तीनों गुणोंसे युक्त है तथा असत्यसे बँधा हुआ है, तब प्राणी मुक्त कैसे हो सकता है? अतः सब कुछ छोड़कर सभी लोगोंको भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये॥ ४०—४२॥

राजा बोले—हे पितामह! शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिने वहाँ दैत्योंके पास पहुँचकर क्या किया और शुक्राचार्य पुनः कब लौटे? वह हमें बताइये॥ ४३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब गोपनीय ढंगसे शुक्राचार्यका स्वरूप बनाकर देवगुरुने जो कुछ किया, वह मैं बताता हूँ, आप सुनिये॥ ४४॥

देवगुरु बृहस्पतिने दैत्योंको बोध प्रदान किया। तब शुक्राचार्यको अपना गुरु समझकर और उनपर पूर्ण विश्वास करके सभी दैत्य उन्हींके कथनानुसार व्यवहार करने लगे॥ ४५॥

अत्यधिक मोहितचित्त वे दैत्य बृहस्पतिको शुक्राचार्य समझकर विद्याप्राप्तिके लिये उनके शरणागत हुए। देवगुरु बृहस्पतिने भी उन्हें बहुत ठगा। [यह सत्य है कि] लोभसे कौन-सा प्राणी मोहमें नहीं पड़ जाता॥ ४६॥

तब जयन्तीके साथ क्रीडा करते-करते निर्धारित प्रतिज्ञासम्बन्धी दस वर्षकी अवधि पूर्ण हो जानेपर शुक्राचार्य अपने यजमानोंके विषयमें विचार करने लगे कि मेरी राह देखते हुए वे आशान्वित हो बैठे होंगे। अतः अब मैं चलकर अपने उन अत्यन्त भयभीत यजमानोंको देखूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरे उन भक्तोंके सम्मुख देवताओंसे कोई भय उत्पन्न हो गया हो॥ ४७-४८½॥

यह सोचकर अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने जयन्तीसे कहा—हे सुनयने! मेरे पुत्रसदृश दैत्यगण देवताओंके पास कालक्षेप कर रहे हैं। प्रतिज्ञानुसार तुम्हारे साथ रहनेका दस वर्षका समय पूरा हो चुका है, अतः हे देवि! अब मैं अपने यजमानोंसे मिलने जा रहा हूँ। हे सुमध्यमे! मैं पुनः तुम्हारे पास शीघ्र ही लौट आऊँगा॥ ४९—५१॥

तथेति तमुवाचाथ जयन्ती धर्मवित्तमा।
यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये॥ ५२

तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगाम त्वरितस्ततः।
अपश्यद्दानवानां च पार्श्वे वाचस्पतिं तदा॥ ५३

छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयन्तं छलेन तान्।
जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिन्दापरं तथा॥ ५४

भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम्।
अहिंसा परमो धर्मोऽहन्तव्या ह्याततायिनः॥ ५५

द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दर्शितं हिंसनं पशोः।
जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा मता॥ ५६

एवंविधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च।
ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः॥ ५७

चिन्तयामास मनसा मम द्वेष्यो गुरुः किल।
वञ्चिताः किल धूर्तेन याज्या मे नात्र संशयः॥ ५८

धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम्।
गुरुरप्यनृतं ब्रूते प्रेरितो येन पाप्मना॥ ५९

प्रमाणं वचनं यस्य सोऽपि पाखण्डधारकः।
गुरुः सुराणां सर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः॥ ६०

किं किं न लभते लोभान्मलिनीकृतमानसः।
अन्योऽपि गुरुरप्येवं जातः पाखण्डपण्डितः॥ ६१

शैलूषचेष्टितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः।
वञ्चयत्यतिसम्मूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ ॥ ६२

परम धर्मपरायणा जयन्तीने उनसे कहा—हे धर्मज्ञ! बहुत ठीक है, आप स्वेच्छापूर्वक जाइये। मैं आपका धर्म लुप्त नहीं होने दूँगी॥ ५२॥

उसका यह वचन सुनकर शुक्राचार्य वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि दैत्योंके पास विराजमान होकर बृहस्पति छद्मरूप धारण करके शान्तचित्त हो छलसे उन्हें अपने द्वारा रचित जिन-धर्म तथा यज्ञनिन्दापरक वचनोंकी शिक्षा इस प्रकार दे रहे हैं—'हे देवताओंके शत्रुगण! मैं सत्य तथा आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ कि अहिंसा सर्वोपरि धर्म है।' आततायियोंको भी नहीं मारना चाहिये। भोगपरायण तथा अपनी जिह्वाके स्वादके लिये सदा तत्पर रहनेवाले द्विजोंने वेदमें पशुहिंसाका उल्लेख कर दिया है, किंतु सच्चाई यह है कि अहिंसाको ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है'॥ ५३—५६॥

इस प्रकारकी वेद-शास्त्रविरोधी बातें कहते हुए देवगुरु बृहस्पतिको देखकर वे भृगुपुत्र शुक्राचार्य आश्चर्यचकित हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि यह देवगुरु तो मेरा शत्रु है। इस धूर्तने मेरे यजमानोंको अवश्य ठग लिया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७-५८॥

नरकके द्वारस्वरूप तथा पापके बीजरूप उस उग्र लोभको धिक्कार है, जिस लोभरूप पापसे प्रेरित होकर देवगुरु बृहस्पति भी झूठ बोल रहे हैं॥ ५९॥

जिनका वचन प्रमाण माना जाता है और जो समस्त देवताओंके गुरु तथा धर्मशास्त्रोंके प्रवर्तक हैं, वे भी पाखण्डके पोषक हो गये हैं॥ ६०॥

लोभसे विकृत मनवाला प्राणी क्या-क्या नहीं कर डालता। दूसरोंकी क्या बात, जबकि साक्षात् देवगुरु ही इस प्रकारके पाखण्डके पण्डित हो गये हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी ये धूर्तोंकी सारी भाव-भंगिमाएँ बनाकर मेरे इन घोर अज्ञानी दैत्य यजमानोंको ठग रहे हैं॥ ६१-६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे शुक्ररूपेण गुरुणा दैत्यवञ्चनावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शुक्राचार्यद्वारा दैत्योंको बृहस्पतिका पाखण्डपूर्ण कृत्य बताना, बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्योंका उन्हें फटकारना, क्रुद्ध शुक्राचार्यका दैत्योंको शाप देना, बृहस्पतिका अन्तर्धान हो जाना, प्रह्लादका शुक्राचार्यजीसे क्षमा माँगना और शुक्राचार्यका उन्हें प्रारब्धकी बलवत्ता समझाना

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा तानुवाच हसन्निव।
वञ्चिता मत्स्वरूपेण दैत्याः किं गुरुणा किल॥ १

अहं काव्यो गुरुश्चायं देवकार्यप्रसाधकः।
अनेन वञ्चिता यूयं मद्याज्या नात्र संशयः॥ २

मा श्रद्धध्वं वचोऽस्यार्या दाम्भिकोऽयं मदाकृतिः।
अनुगच्छत मां याज्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम्॥ ३

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दृष्ट्वा तौ सदृशौ पुनः।
विस्मयं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चिताः॥ ४

स तान्वीक्ष्य सुसम्भ्रान्तान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह।
गुरुर्वो वञ्चयत्येव मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः॥ ५

प्राप्तो वञ्चयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये।
मा विश्वासं वचस्तस्य कुरुध्वं दैत्यसत्तमाः॥ ६

प्राप्ता विद्या मया शम्भोर्युष्मानध्यापयामि ताम्।
देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः॥ ७

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं काव्यरूपधरस्य ते।
विश्वासं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चयात्॥ ८

काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किल दानवाः।
बुबुधुर्न गुरोर्मायामोहिताः कालपर्ययात्॥ ९

व्यासजी बोले—मनमें ऐसा सोचकर उन दैत्योंसे शुक्राचार्यने हँसते हुए कहा—हे दैत्यगण! मेरा स्वरूप बनाये हुए इस देवगुरु बृहस्पतिने तुमलोगोंको ठग लिया क्या? शुक्राचार्य मैं हूँ और ये तो देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाले देवगुरु बृहस्पति हैं। हे मेरे यजमानो! इन्होंने तुम सबको अवश्य ठग लिया; इसमें सन्देह नहीं है। हे आर्यो! इनकी बातोंपर विश्वास मत करो। ये पाखण्डी हैं तथा मेरा स्वरूप बनाये हुए हैं। हे यजमानो! तुमलोग मेरा अनुसरण करो और इन बृहस्पतिका त्याग कर दो॥ १—३॥

उनका यह वचन सुनकर और फिर उन दोनोंको समान रूपवाला देखकर सभी दैत्य महान् आश्चर्यमें पड़ गये। पुनः उन्होंने विचार किया कि हो सकता है ये ही शुक्राचार्य हों॥ ४॥

इस प्रकार उन दैत्योंको अत्यन्त विस्मित देखकर [शुक्राचार्यरूपधारी] गुरु बृहस्पतिने यह बात कही—मेरा स्वरूप बनाये हुए ये देवगुरु बृहस्पति तुम सबको धोखा दे रहे हैं। ये देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त तुमलोगोंको ठगनेके लिये आये हुए हैं। हे श्रेष्ठ दैत्यगण! तुमलोग इनकी बातपर विश्वास मत करो। मैंने शंकरजीसे विद्या प्राप्त कर ली है और उसे तुम सबको पढ़ा रहा हूँ। इस प्रकार मैं तुम्हें देवताओंपर विजय दिला दूँगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५—७॥

शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिका यह वाक्य सुनकर उन दैत्योंको पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही निश्चितरूपसे [हमारे गुरु] शुक्राचार्य हैं। उस समय शुक्राचार्यने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया फिर भी समयके फेरसे गुरु बृहस्पतिकी मायासे मोहित होनेके कारण वे दैत्य समझ नहीं सके॥ ८-९॥

एवं ते निश्चयं कृत्वा ततो भार्गवमब्रुवन्।
अयं गुरुर्नो धर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः॥ १०

दशवर्षाणि सततमयं नः शास्ति भार्गवः।
गच्छ त्वं कुहको भासि नास्माकं गुरुरप्युत॥ ११

इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः।
जगृहुस्तं गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्याभिवाद्य च॥ १२

काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाथ शशाप च।
दैत्यान्विबोधितान्मत्वा गुरुणा चातिवञ्चितान्॥ १३

यस्मान्मया बोधिता वै गृह्णीयुर्न च मे वचः।
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ॥ १४

मदवज्ञाफलं कामं स्वल्पे काले ह्यवाप्स्यथ।
तदास्य कपटं सर्वं परिज्ञातं भविष्यति॥ १५

व्यास उवाच

इत्युक्त्वासौ जगामाशु भार्गवः क्रोधसंयुतः।
बृहस्पतिर्मुदं प्राप्य तस्थौ तत्र समाहितः॥ १६

ततः शप्तान्गुरुर्ज्ञात्वा दैत्यांस्तान्भार्गवेण हि।
जगाम तरसा त्यक्त्वा स्वरूपं स्वं विधाय च॥ १७

गत्वोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यं मया ध्रुवम्।
शप्ताः शुक्रेण ते दैत्या मया त्यक्ताः पुनः किल॥ १८

निराधाराः कृता नूनं यतध्वं सुरसत्तमाः।
संग्रामार्थं महाभाग शापदग्धा मया कृताः॥ १९

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवा मुदमाप्तवान्।
जहृषुश्च सुराः सर्वे प्रतिपूज्य बृहस्पतिम्॥ २०

ऐसा निश्चय करनेके उपरान्त उन्होंने शुक्राचार्यसे कहा—ये ही हमारे गुरु हैं। ये धर्मात्मा हमें बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं और हमारा हित करनेमें तत्पर हैं। इन शुक्राचार्यजीने हमें निरन्तर दस वर्षतक शिक्षा दी है। तुम चले जाओ, तुम धूर्त जान पड़ते हो; तुम हमारे गुरु बिलकुल नहीं हो सकते॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उन मूर्ख दैत्योंने शुक्राचार्यको बार-बार फटकारा और बृहस्पतिको प्रेमपूर्वक प्रणाम तथा अभिवादन करके उन्हें ही अपना गुरु स्वीकार कर लिया॥ १२॥

देवगुरु बृहस्पतिने इन दैत्योंको पूर्णरूपसे सिखा-पढ़ा दिया है तथा इन्हें खूब ठगा है—ऐसा मानकर और इन्हें गुरु बृहस्पतिमें तन्मय देखकर शुक्राचार्य बहुत कुपित हुए और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरे बार-बार समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी, इसलिये नष्ट बुद्धिवाले तुम सब पराभवको प्राप्त होओगे। तुमलोग थोड़े ही समयमें मेरे तिरस्कारका फल पाओगे। तब इनका सारा कपट तुम सबको मालूम पड़ जायगा॥ १३—१५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधमें भरे शुक्राचार्य तत्काल चल दिये और [शुक्राचार्यरूपधारी] बृहस्पति प्रसन्न होकर निश्चिन्तभावसे वहाँ रहने लगे॥ १६॥

तदनन्तर शुक्राचार्यके द्वारा उन दैत्योंको शापित हुआ जानकर गुरु बृहस्पति तत्काल उन्हें छोड़कर अपना रूप धारणकर वहाँसे चल पड़े। उन्होंने जाकर इन्द्रसे कहा—मैंने [आपका] सम्पूर्ण कार्य भलीभाँति बना दिया है। शुक्राचार्यने उन दैत्योंको शाप दे दिया और बादमें मैंने भी उनका त्याग कर दिया। अब मैंने उन्हें पूर्णरूपसे असहाय बना दिया है। अतः हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग युद्धके लिये अब उद्योग करें। हे महाभाग! मैंने उन दैत्योंको शापसे दग्ध कर दिया है॥ १७—१९॥

गुरु बृहस्पतिका यह वचन सुनकर इन्द्र बहुत आनन्दित हुए और सभी देवता भी हर्षित हो उठे। तत्पश्चात् गुरु बृहस्पतिकी पूजा करके वे युद्धके लिये

संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः।
निर्ययुर्मिलिताः सर्वे दानवाभिमुखाः सुराः॥ २१

सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान्।
अन्तर्हितं गुरुं चैव बभूवुश्चिन्तयान्विताः॥ २२

परस्परमथोचुस्ते मोहितास्तस्य मायया।
सम्प्रसाद्यो महात्मा च यातोऽसौ रुष्टमानसः॥ २३

वञ्चयित्वा गतः पापो गुरुः कपटपण्डितः।
भ्रातृस्त्रीलम्भनः प्रायो मलिनोऽन्तर्बहिः शुचिः॥ २४

किं कुर्मः क्व च गच्छामः कथं काव्यं प्रकोपितम्।
कुर्वीमहि सहायार्थं प्रसन्नं हृष्टमानसम्॥ २५

इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे मिलिता भयकम्पिताः।
प्रह्लादं पुरतः कृत्वा जग्मुस्ते भार्गवं पुनः॥ २६

प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा।
भार्गवस्तानुवाचाथ रोषसंरक्तलोचनः॥ २७

मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया।
न गृहीतं वचो योग्यं तदा याज्या हितं शुचि॥ २८

तदावगणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः।
प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममावमानजं फलम्॥ २९

तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्रासौ कपटाकृतिः।
वञ्चकः सुरकार्यार्थी नाहं तद्वद्धि वञ्चकः॥ ३०

व्यास उवाच

एवं ब्रुवन्तं शुक्रं तु वाक्यसन्दिग्धया गिरा।
प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वा चरणौ ततः॥ ३१

मन्त्रणा करने लगे। आपसमें भलीभाँति सोच-विचार करके सभी देवता एक साथ मिलकर दानवोंसे लड़नेके लिये वहाँसे निकल पड़े॥ २०-२१॥

उधर महाबली देवताओंको युद्धकी तैयारी करके आक्रमणके लिये उद्यत तथा शुक्राचार्यरूपधारी गुरु बृहस्पतिको अन्तर्हित जान करके दैत्यगण बहुत चिन्तित हुए॥ २२॥

अब उन देवगुरुकी मायासे मोहित वे दैत्य आपसमें कहने लगे कि वे गुरु शुक्राचार्य कुपितमन होकर यहाँसे चले गये, अतः हमें उन महात्माको भलीभाँति मनाना चाहिये॥ २३॥

वह पापी और कपटकार्यमें अत्यन्त प्रवीण देवगुरु हमें ठगकर चला गया। अपने भाईकी पत्नीके साथ अनाचार करनेवाला वह भीतरसे कलुषित है तथा ऊपरसे पवित्र प्रतीत होता है॥ २४॥

अब हम क्या करें और कहाँ जायँ? अत्यन्त कुपित गुरु शुक्राचार्यको अपनी सहायताके लिये हम किस तरह हर्षित तथा प्रसन्नचित्त करें॥ २५॥

ऐसा विचार करके वे सब एकजुट हुए। प्रह्लादको आगे करके भयसे काँपते हुए वे दैत्य पुनः भृगुपुत्र शुक्राचार्यके पास गये। [वहाँ पहुँचकर] उन्होंने मौन धारण किये हुए उन मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले शुक्राचार्य उनसे कहने लगे॥ २६-२७॥

हे यजमानो! मैंने तुमलोगोंको बहुत समझाया, किंतु देवगुरुकी मायासे व्यामुग्ध रहनेके कारण तुम-लोगोंने मेरा उचित, हितकर और निष्कपट वचन नहीं माना॥ २८॥

उस समय उनके वशवर्ती हुए तुम सबने मेरी अवहेलना की। मदसे उन्मत्त रहनेवाले तुम सबको मेरे अपमान करनेका फल अवश्य मिल गया॥ २९॥

तुमलोगोंका सर्वस्व छिन गया। अब तुमलोग वहींपर चले जाओ; जहाँ वह कपटी, छली और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाला बृहस्पति विद्यमान है; मैं उसकी तरह वंचक नहीं हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार संदेहयुक्त वाणीमें बोलते हुए शुक्राचार्यके दोनों पैर पकड़कर प्रह्लाद उनसे कहने लगे—॥ ३१॥

प्रह्लाद उवाच

भार्गवाद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथातुरान्।
त्यक्तुं नार्हसि सर्वज्ञ त्वद्धितांस्तनयान्हि नः॥ ३२

गते त्वयि तु मन्त्रार्थं शैलूषेण दुरात्मना।
त्वद्वेषमधुरालापैर्वयं तेन प्रवञ्चिताः॥ ३३

अज्ञानकृतदोषेण नैव कुप्यति शान्तिमान्।
सर्वज्ञस्त्वं विजानासि चित्तं नः प्रवणं त्वयि॥ ३४

ज्ञात्वा नस्तपसा भावं त्यज कोपं महामते।
ब्रुवन्ति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः॥ ३५

जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातपसमागमात्।
भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति॥ ३६

क्रोधश्चाण्डालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः।
तस्माद्रोषं परित्यज्य प्रसादं कुरु सुव्रत॥ ३७

यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान्।
त्वया त्यक्ता महाभाग गमिष्यामो रसातलम्॥ ३८

व्यास उवाच

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा भार्गवो ज्ञानचक्षुषा।
विलोक्य सुमना भूत्वा तानुवाच हसन्निव॥ ३९

न भेतव्यं न गन्तव्यं दानवा वा रसातलम्।
रक्षयिष्यामि वो याज्यान्मन्त्रैरवितथैः किल॥ ४०

हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य शृणुध्वं तत्तु निश्चयम्।
वचनं मम धर्मज्ञाः श्रुतं यद् ब्रह्मणः पुरा॥ ४१

अवश्यम्भाविनो भावाः प्रभवन्ति शुभाशुभाः।
दैवं न चान्यथा कर्तुं क्षमः कोऽपि धरातले॥ ४२

प्रह्लाद बोले—हे भार्गव! हे सर्वज्ञ! अत्यन्त दुःखी होकर आज पास आये हुए अपने पुत्रतुल्य तथा हितचिन्तक हम यजमानोंका आप त्याग न करें॥ ३२॥

मन्त्र-प्राप्तिके लिये आपके चले जानेपर उस कपटी तथा दुष्टात्मा बृहस्पतिने आपकी वेश-भूषा तथा मधुर वाणीके द्वारा हमलोगोंको खूब ठगा॥ ३३॥

शान्तिसम्पन्न व्यक्ति किसीके द्वारा अनजानमें किये गये अपराधसे कुपित नहीं होता। आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः जानते ही हैं कि हमलोगोंका चित्त सदा आपमें ही अनुरक्त रहता है॥ ३४॥

अतः हे महामते! अपने तपोबलसे हमलोगोंका भाव जानकर आप क्रोधका त्याग कर दीजिये; क्योंकि सभी मुनिगण कहा करते हैं कि साधुपुरुषोंका क्रोध क्षणभरके लिये ही होता है॥ ३५॥

जल स्वभावसे शीतल होता है, किंतु अग्नि और धूपके संपर्कसे वह गर्म हो जाता है। वही जल आग तथा धूपका संयोग दूर होते ही पुनः शीतलता प्राप्त कर लेता है॥ ३६॥

क्रोध चाण्डालरूप होता है; बुद्धिमान् लोगोंको इसका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये। अतः हे सुव्रत! क्रोध छोड़कर आप हमपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३७॥

हे महाभाग! यदि आप क्रोधका त्याग नहीं करते बल्कि अत्यन्त दुःखित हमलोगोंका ही त्याग कर देते हैं, तो आपसे परित्यक्त होकर हम सब रसातलमें चले जायँगे॥ ३८॥

व्यासजी बोले—प्रह्लादका वचन सुनकर शुक्राचार्य ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देख करके प्रसन्नचित्त हो उनसे हँसते हुए बोले—॥ ३९॥

हे दानवो! तुमलोगोंको अब न तो डरना है और न रसातलमें ही जाना है। मैं अपने अचूक मन्त्रोंसे तुम सब यजमानोंकी निश्चय ही रक्षा करूँगा॥ ४०॥

हे धर्मज्ञो! पूर्वकालमें मैंने ब्रह्माजीसे जो सुना है, वह हितकर, सत्य तथा अटल बात मैं तुमलोगोंको बता रहा हूँ, मेरी वह बात सुनिये—॥ ४१॥

निश्चित रूपसे होनेवाली शुभ या अशुभ घटनाएँ होकर रहती हैं। धरातलपर कोई भी प्राणी प्रारब्धको टाल पानेमें समर्थ नहीं है॥ ४२॥

अद्य मन्दबला यूयं कालयोगादसंशयम्।
देवैर्जिताः सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ॥ ४३

प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माभ्यभाषत।
भुक्तं राज्यं भवद्भिश्च पूर्णं सर्वं समृद्धिमत्॥ ४४

युगानि दश पूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि।
दैवयोगाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम्॥ ४५

सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति।
पौत्रस्त्रैलोक्यविजयी राज्यं प्राप्स्यति ते बलिः॥ ४६

यदा वामनरूपेण हृतं देवेन विष्णुना।
तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन जिष्णुना॥ ४७

हृतं येन बले राज्यं देववाञ्छार्थसिद्धये।
त्वमिन्द्रो भविता चाग्रे स्थिते सावर्णिके मनौ॥ ४८

भार्गव उवाच

इत्युक्तो हरिणा पौत्रस्तव प्रह्लाद साम्प्रतम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत्॥ ४९

एकदा वासवेनासौ बलिर्गर्दभरूपभाक्।
शून्ये गृहे स्थितः कामं भयभीतः शतक्रतोः॥ ५०

पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा।
किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुङ्गव॥ ५१

भोक्ता त्वं सर्वलोकस्य दैत्यानां च प्रशासिता।
(न लज्जा खररूपेण तव राक्षससत्तम।)
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्यराजो बलिस्तदा॥ ५२

प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्र शोकः शतक्रतो।
यथा विष्णुर्महातेजा मत्स्यकच्छपतां गतः॥ ५३

इसमें संदेह नहीं कि तुमलोग आज समयके फेरसे क्षीण बलवाले हो गये हो, अतः एक बार देवताओंसे पराजित होकर तुमलोगोंको पातालमें जाना ही पड़ेगा॥ ४३॥

अब तुमलोगोंका समय-परिवर्तन उपस्थित हुआ है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा था। कुछ दिनों पूर्व तुमलोगोंने सब प्रकारसे समृद्ध राज्यसुखका भोग किया था। उस समय देवताओंपर आक्रमण करके उनके मस्तकपर चरण रखकर तुमलोगोंने दैवयोगसे पूरे दस युगोंतक इस दिव्य त्रिलोकीपर शासन किया था॥ ४४-४५॥

[अब आगे आनेवाले] सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हें वह राज्य पुनः प्राप्त होगा। तुम्हारा पौत्र बलि तीनों लोकोंमें विजयी होकर राज्यको पुनः प्राप्त कर लेगा॥ ४६॥

जिस समय वामनरूप धारण करके भगवान् विष्णुने [राजा बलिका राज्य] छीन लिया था, उस समय भगवान् विष्णुने आपके पौत्र बलिसे कहा था—हे बले! मैंने तुम्हारा यह राज्य देवताओंकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये छीना है, किंतु आगे सावर्णि मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर तुम इन्द्र होओगे॥ ४७-४८॥

शुक्राचार्य बोले—हे प्रह्लाद! भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा कहा गया तुम्हारा पौत्र बलि इस समय सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहकर डरे हुएकी भाँति गुप्तरूपसे विचरण कर रहा है॥ ४९॥

एक समयकी बात है—इन्द्रसे भयभीत बलि गर्दभका रूप धारण करके एक सूने घरमें स्थित थे, तभी [वहाँ पहुँचकर] इन्द्र उन बलिसे बार-बार पूछने लगे—हे दैत्यश्रेष्ठ! आपने गर्दभका रूप क्यों धारण किया है? आप तो समस्त लोकोंका भोग करनेवाले और दैत्योंके शासक हैं। (हे राक्षसश्रेष्ठ! क्या गर्दभका रूप धारण करनेमें आपको लज्जा नहीं लगती?)॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$॥

तब इन्द्रकी वह बात सुनकर बलिने इन्द्रसे यह वचन कहा—हे शतक्रतो! इसमें शोक कैसा? जैसे महान् तेजस्वी भगवान् विष्णुने मत्स्य और कच्छपका

तथाहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः।
यथा त्वं कमले लीनः संस्थितो ब्रह्महत्यया॥ ५४

पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहं खररूपधृक्।
दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन॥ ५५

कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा।

भार्गव उवाच

इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम्॥ ५६

प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानञ्च जग्मतुः।
इत्येतत्ते समाख्याता मया दैवबलिष्ठता॥ ५७
दैवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ५८

रूप धारण किया था, उसी प्रकार मैं भी समयके फेरसे गर्दभरूपसे स्थित हूँ। जिस प्रकार तुम ब्रह्महत्यासे दुःखी होकर कमलमें छिपकर पड़े रहे, उसी तरह मैं भी आज गर्दभका रूप धारण करके स्थित हूँ। हे पाकशासन! दैवके अधीन रहनेवालोंको क्या दुःख और क्या सुख? दैव जिस रूपमें जो चाहता है, वैसा निश्चितरूपसे करता है॥ ५२—५५$\frac{१}{२}$॥

शुक्राचार्य बोले—इस प्रकार बलि और देवराज इन्द्रने परस्पर उत्तम बातें करके परम सन्तुष्टि प्राप्त की और इसके बाद वे अपने-अपने स्थानको चले गये। यह मैंने तुमसे प्रारब्धकी बलवत्ताका भलीभाँति वर्णन कर दिया। देवताओं, असुरों और मानवोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत् दैवके अधीन है॥ ५६—५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादेन शुक्रकोपसान्त्वनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~o~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देवता और दैत्योंके युद्धमें दैत्योंकी विजय, इन्द्रद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीका प्रकट होकर दैत्योंके पास जाना, प्रह्लादद्वारा भगवतीकी स्तुति, देवीके आदेशसे दैत्योंका पातालगमन

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः।
प्रह्लादस्तु सुसंहृष्टो बभूव नृपनन्दनः॥ १

ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठञ्च प्रह्लादस्तानुवाच ह।
कृतेऽपि युद्धे न जयो भविष्यति कदाचन॥ २

तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः।
संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे॥ ३

निरुद्यमानां दैवं हि प्रधानमसुराधिप।
केन दृष्टं क्व वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम्॥ ४

तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थाय साम्प्रतम्।
भवाग्रे दैत्यवर्य त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ ५

व्यासजी बोले—उन महात्मा शुक्राचार्यका यह वचन सुनकर राजकुमार प्रह्लाद अत्यन्त हर्षित हुए। प्रारब्धको बलवान् मानकर प्रह्लादने उन दैत्योंसे कहा—युद्ध करनेपर भी विजय कभी नहीं होगी॥ १-२॥

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उन दानवोंने अभिमानसे चूर होकर कहा—हमें तो निश्चितरूपसे संग्राम करना चाहिये। दैव क्या है! इसे हमलोग नहीं जानते। हे दानवेश्वर! उद्यमरहित लोगोंके लिये ही दैव प्रधान होता है। दैवको किसने देखा है, कहाँ देखा है, दैव कैसा है और उसे किसने बनाया है! अतएव अब हमलोग बलका आश्रय लेकर युद्ध करेंगे। हे दैत्यश्रेष्ठ! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, आप केवल हमारे आगे रहें॥ ३—५॥

इत्युक्तस्तैस्तदा राजन् प्रह्लादः प्रबलारिहा।
सेनानीश्च तदा भूत्वा देवान्युद्धे समाह्वयत्॥ ६

तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान्।
सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान्समयोधयन्॥ ७

संग्रामस्तु तदा घोरः शक्रप्रह्लादयोरभूत्।
पूर्णं वर्षशतं तत्र मुनीनां विस्मयावहः॥ ८

वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः।
जयमापुस्तदा दैत्याः प्रह्लादप्रमुखा नृप॥ ९

तदैवेन्द्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम्।
संस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम्॥ १०

इन्द्र उवाच

जय देवि महामाये शूलधारिणि चाम्बिके।
शङ्खचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे॥ ११

नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके।
दशतत्त्वात्मिके मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि॥ १२

महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणि।
प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके॥ १३

पञ्चकोशान्तरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि।
आनन्दकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते॥ १४

मातः प्रसीद सुमुखी भव हीनसत्त्वां-
स्त्रायस्व नो जननि दैत्यपराजितान् वै।
त्वं देवि नः शरणदा भुवने प्रमाणा
शक्तासि दुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते॥ १५

हे राजन्! तब उन दैत्योंके ऐसा कहनेपर महाबली शत्रुओंको भी मार डालनेवाले प्रह्लादने उनका सेनाध्यक्ष बनकर देवताओंको युद्धके लिये ललकारा॥ ६॥

दैत्योंको समरांगणमें डटे हुए देखकर उन सभी देवताओंने भी अपनी पूरी तैयारी कर ली और वे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ ७॥

तदनन्तर इन्द्र और प्रह्लादका वह भीषण संग्राम पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वह युद्ध मुनियोंको विस्मित कर देनेवाला था॥ ८॥

हे राजन्! शुक्राचार्यके द्वारा संरक्षित प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्योंने उस हो रहे महायुद्धमें विजय प्राप्त की॥ ९॥

तब इन्द्रने गुरु बृहस्पतिके वचनानुसार सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाली, मुक्ति देनेवाली तथा परम कल्याणस्वरूपिणी भगवतीका मन-ही-मन स्मरण किया॥ १०॥

इन्द्र बोले—हे महामाये! हे शूलधारिणि! हे अम्बिके! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा खड्गसे सुशोभित हाथोंवाली! हे अभय प्रदान करनेवाली! हे देवि! आपकी जय हो॥ ११॥

हे भुवनेश्वरि! हे शक्ति! हे शाक्तादि छः दर्शनोंकी नायिकास्वरूपिणि! हे दस तत्त्वोंकी अधिष्ठातृदेवि! हे महाबिन्दुस्वरूपिणि! हे माता! आपको नमस्कार है॥ १२॥

हे महाकुण्डलिनीस्वरूपे! हे सच्चिदानन्दरूपिणि! हे प्राणाग्निहोत्रविद्ये! हे दीपशिखात्मिके! हे [अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय] पंचकोशोंमें सदा विराजमान रहनेवाली! हे पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि! हे आनन्दकलिके! सभी उपनिषदोंद्वारा स्तुत हे माता! आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

हे माता! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें और प्रफुल्लित मुखमण्डलवाली हो जायँ। हे जननि! दैत्योंसे पराजित हम निर्बलोंकी रक्षा कीजिये। हे देवि! एकमात्र आप ही हमें शरण प्रदान करनेवाली हैं; आप संसारमें प्रमाणस्वरूपा हैं। हे समस्त पराक्रमोंसे युक्त भगवति! हमलोगोंका दुःख दूर करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं॥ १५॥

ध्यायन्ति येऽपि सुखिनो नितरां भवन्ति
दुःखान्विताविगतशोकभयास्तथान्ये ।
मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसङ्गाः
संसारवारिधिजलं प्रतरन्ति सन्तः ॥ १६

त्वं देवि विश्वजननि प्रथितप्रभावा
संरक्षणार्थमुदितार्तिहरप्रतापा ।
संहर्तुमेतदखिलं किल कालरूपा
को वेत्ति तेऽम्ब चरितं ननु मन्दबुद्धिः ॥ १७

ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च
इन्द्रो यमोऽथ वरुणोऽग्निसमीरणौ च।
ज्ञातुं क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा
यस्याः प्रभावमतुलं निगमागमाश्च ॥ १८

धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महान्तः
संसारदुःखरहिताः सुखसिन्धुमग्नाः।
ये भक्तिभावरहिता न कदापि दुःखा-
म्भोधिं जनिक्षयतरङ्गमुमे तरन्ति ॥ १९

ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च
क्रीडन्ति धन्याः शिबिकाधिरूढाः।
तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे
नानोपहारैरिति चिन्तयामि ॥ २०

ये पूज्यमाना वरवारणस्था
विलासिनीवृन्दविलासयुक्ताः ।
सामन्तकैश्चोपनतैर्व्रजन्ति
मन्ये हि तैस्त्वं किल पूजितासि ॥ २१

व्यास उवाच

एवं स्तुता मघवता देवी विश्वेश्वरी तदा।
प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा ॥ २२

शङ्खचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना।
रक्ताम्बरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषणा ॥ २३

जो भी आपका ध्यान करते हैं, वे परम सुखी हो जाते हैं; और [आपकी उपासना न करनेवाले] दूसरे लोग दुःखी तथा शोक और भयसे युक्त रहते हैं। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले अहंकारशून्य तथा आसक्तिरहित संतलोग संसार-सागरके असीम जलको पार कर लेते हैं ॥ १६ ॥

हे देवि! हे विश्वजननि! आप विस्तृत प्रभाववाली हैं। भक्तोंकी रक्षाके लिये आप प्रकट हो जाती हैं। आप भक्तजनोंका दुःख दूर करनेमें समर्थप्रतापवाली हैं। इस सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेके लिये आप कालस्वरूपिणी हैं। हे अम्ब! कौन मन्दबुद्धि प्राणी आपका चरित्र जान सकता है?॥ १७ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु, निगम, आगम तथा महातपस्वी मुनिगण भी आपकी अनुपम महिमाको जाननेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १८ ॥

हे उमे! जो आपकी भक्तिमें तत्पर हैं, वे ही परम धन्य हैं और सांसारिक दुःखोंसे मुक्त होकर सुखके समुद्रमें डूबे रहते हैं; किंतु जो लोग आपकी भक्तिभावनासे वंचित हैं, वे जन्म-मरणरूपी तरंगोंवाले दुःखमय भवसागरको कभी भी पार नहीं कर सकते ॥ १९ ॥

जिन भाग्यशाली लोगोंके ऊपर स्वच्छ चँवर डुलाये जा रहे हैं, जो हास-विलासका सुख भोग रहे हैं तथा जो सुन्दर यानोंपर सवारी कर रहे हैं—उनके विषयमें मैं तो यही सोचता हूँ कि उन्होंने पूर्वजन्ममें अनेकविध पूजनोपचारोंसे निश्चय ही आपकी पूजा की है ॥ २० ॥

पूजित होते हुए जो लोग उत्तम हाथियोंपर विराजमान रहते हैं, जो रमणियोंके साथ आमोद-प्रमोदमें संलग्न हैं और जो विनम्र सामंतोंके साथ चलते हैं, मैं मानता हूँ कि उन्होंने अवश्य आपकी पूजा की है ॥ २१ ॥

व्यासजी बोले—तब इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती विश्वेश्वरी तुरंत प्रकट हो गयीं। उस समय वे सिंहपर बैठी हुई थीं; वे चार भुजाओंसे युक्त थीं; उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर रखा था; उनके नेत्र सुन्दर थे; वे लाल वस्त्र पहने हुए थीं और वे देवी दिव्य मालाओंसे विभूषित थीं ॥ २२-२३ ॥

तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदना गिरा।
भयं त्यजन्तु भो देवाः शं विधास्ये किलाधुना॥ २४

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढातिसुन्दरी।
जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः॥ २५

प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वा देवीं पुरःस्थिताम्।
ऊचुः परस्परं भीताः किं कर्तव्यमितस्तदा॥ २६

देवं नारायणं चात्र सम्प्राप्ता चण्डिका किल।
महिषान्तकरी नूनं चण्डमुण्डविनाशिनी॥ २७

निहनिष्यति नः सर्वानम्बिका नात्र संशयः।
वक्रदृष्ट्या यया पूर्वं निहतौ मधुकैटभौ॥ २८

एवं चिन्तातुरान्वीक्ष्य प्रह्लादस्तानुवाच ह।
योद्धव्यं नाथ गन्तव्यं पलाय्य दानवोत्तमाः॥ २९

नमुचिस्तानुवाचाथ पलायनपरानिह।
हनिष्यति जगन्माता रुषिता किल हेतिभिः॥ ३०

तथा कुरु महाभाग यथा दुःखं न जायते।
व्रजामोऽद्यैव पातालं तां स्तुत्वा तदनुज्ञया॥ ३१

प्रह्लाद उवाच

स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
सर्वेषां जननीं शक्तिं भक्तानामभयङ्करीम्॥ ३२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित्।
तुष्टाव जगतां धात्रीं कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ ३३

मालासर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम्।
सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः॥ ३४

प्रसन्न मुखमण्डलवाली भगवतीने उन देवताओंसे कहा—हे देवताओ! आपलोग भयका त्याग कर दें, अब मैं आपलोगोंका कल्याण अवश्य करूँगी॥ २४॥

तब ऐसा कहकर सिंहपर सवार वे परम सुन्दर भगवती तुरंत वहाँ चल पड़ीं, जहाँ अभिमानी दानव विद्यमान थे॥ २५॥

प्रह्लाद आदि सभी प्रमुख दानव भगवतीको सामने स्थित देखकर भयभीत हो आपसमें कहने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये?॥ २६॥

सम्भवतः यह चण्डिका भगवान् नारायणसे मिलकर यहाँ आयी है। इसीने महिषासुरका वध किया था तथा चण्ड-मुण्डका विनाश किया था। जिसने पूर्वकालमें अपनी वक्रदृष्टिसे मधु-कैटभका संहार कर डाला था, वह अम्बिका हम सबको अवश्य मार डालेगी॥ २७-२८॥

इस प्रकार उन्हें चिन्तासे व्याकुल देखकर प्रह्लादने उनसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! इस समय हमें युद्ध नहीं करना चाहिये, बल्कि भागकर यहाँसे चले जाना चाहिये॥ २९॥

तब भागनेकी चेष्टा करनेवाले उन दैत्योंसे नमुचिने कहा—ये जगन्माता भगवती कुपित होकर शस्त्रोंसे हमलोगोंका संहार अवश्य कर देंगी। [इसके बाद उसने प्रह्लादसे कहा—] हे महाभाग! आप ऐसा उपाय करें, जिससे हमलोगोंको दुःख न मिले। उन भगवतीकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे हमलोग इसी क्षण पातालके लिये प्रस्थान कर दें॥ ३०-३१॥

प्रह्लाद बोले—सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली, सभी प्राणियोंकी माता तथा भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली शक्तिस्वरूपा भगवती महामायाकी मैं स्तुति करता हूँ॥ ३२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमार्थवेत्ता विष्णुभक्त प्रह्लाद दोनों हाथ जोड़कर जगज्जननी भगवतीकी स्तुति करने लगे—॥ ३३॥

जिनमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मालामें सर्पकी भाँति प्रतीत हो रहा है, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा उन 'ह्रीं' मूर्तिधारिणी भगवतीको नमस्कार है॥ ३४॥

त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
अन्ये निमित्तमात्रास्ते कर्तारस्तव निर्मिताः॥ ३५

नमो देवि महामाये सर्वेषां जननी स्मृता।
को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च॥ ३६

मातुः पुत्रेषु को भेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च।
तथैव देवेष्वस्मासु न कर्तव्यस्त्वयाधुना॥ ३७

यादृशास्तादृशा मातः सुतास्ते दानवाः किल।
यतस्त्वं विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता॥ ३८

तेऽपि स्वार्थपरा नूनं यथैव वयमप्युत।
नान्तरं दैत्यसुरयोर्भेदोऽयं मोहसम्भवः॥ ३९

धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम्।
तथैव देवा देवेशि को भेदोऽसुरदेवयोः॥ ४०

तेऽपि कश्यपदायादा वयं तत्सम्भवाः किल।
कुतो विरोधसम्भूतिर्जाता मातस्तवाधुना॥ ४१

न तथा विहितं मातस्त्वयि सर्वसमुद्भवे।
साम्यतैव त्वया स्थाप्या देवेष्वस्मासु चैव हि॥ ४२

गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाः सुरासुराः।
गुणान्विता भवेयुस्ते कथं देहभृतोऽमराः॥ ४३

कामः क्रोधश्च लोभश्च सर्वदेहेषु संस्थिताः।
वर्तन्ते सर्वदा तस्मात् कोऽक्रोधी भवेज्जनः॥ ४४

यह स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण विश्व आपसे ही उत्पन्न हुआ है। जो दूसरे कर्ता हैं, वे तो निमित्तमात्र हैं; क्योंकि वे भी आपके बनाये हुए हैं॥ ३५॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महामाये! आप सभी प्राणियोंकी जननी कही गयी हैं। स्वयं आपके ही द्वारा बनाये गये देवताओं और दैत्योंमें आपका यह कैसा भेदभाव!॥ ३६॥

पुत्र अच्छे हों अथवा बुरे, उनमें माताका कैसा भेदभाव? उसी प्रकार देवताओं और हम दैत्योंमें आपको इस समय भेदभाव नहीं करना चाहिये॥ ३७॥

हे माता! दानव चाहे जिस किसी भी प्रकारके हों, किंतु वे आपके ही पुत्र हैं; क्योंकि आप पुराणोंमें विश्वजननी बतायी गयी हैं॥ ३८॥

वे देवता भी तो निश्चितरूपसे वैसे ही स्वार्थी हैं जैसे हम दैत्यगण। देवताओं और दैत्योंमें अन्तर नहीं है। यह भेद केवल मोहजनित है॥ ३९॥

जैसे हमलोग धन, स्त्री आदिके भोगोंमें दिन-रात आसक्त रहते हैं, वैसे ही देवता भी तो [विषय-भोगोंमें लीन] रहते हैं। अतः हे देवेश्वरि! असुरों और देवताओंमें भेद कैसा?॥ ४०॥

वे भी कश्यपजीकी संतान हैं और हम भी उन्हीं कश्यपजीसे उत्पन्न हुए हैं। हे माता! ऐसी स्थितिमें हमारे प्रति आपके मनमें यह विरोधभाव कैसे उत्पन्न हो गया?॥ ४१॥

हे माता! जब सबकी उत्पत्तिमें आप ही मूल कारण हैं, तो इस प्रकार भेद करना आपके लिये उचित नहीं है। देवताओं तथा हम दैत्योंमें आपको समान व्यवहार रखना चाहिये॥ ४२॥

गुणोंसे सम्बन्ध होनेके कारण ही सम्पूर्ण देवता तथा दैत्य उत्पन्न हुए हैं। तब गुणोंसे युक्त केवल वे देहधारी देवता ही आपके प्रिय क्यों हैं?॥ ४३॥

काम, क्रोध और लोभ सभी प्राणियोंके भीतर सदा विद्यमान रहते हैं। अतः कौन व्यक्ति विरोधभावसे शून्य रह सकता है?॥ ४४॥

त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात्।
मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया॥ ४५

अन्यथा खलु भ्रातॄणां विरोधः कीदृशोऽनघे।
त्वं चेनेच्छसि चामुण्डे वीक्षितुं कलहं किल॥ ४६

जानामि धर्मं धर्मज्ञे वेद्मि चाहं शतक्रतुम्।
तथापि कलहोऽस्माकं भोगार्थं देवि सर्वदा॥ ४७

एकः कोऽपि न शास्तास्ति संसारे त्वां विनाम्बिके।
स्पृहावतस्तु कः कर्तुं क्षमते वचनं बुधः॥ ४८

देवासुरैरयं सिन्धुर्मथितः समये क्वचित्।
विष्णुना विहितो भेदः सुधारत्नच्छलेन वै॥ ४९

त्वयासौ कल्पितः शौरिः पालकत्वे जगद्गुरुः।
तेन लक्ष्मीः स्वयं लोभाद् गृहीतामरसुन्दरी॥ ५०

ऐरावतस्तथेन्द्रेण पारिजातोऽथ कामधुक्।
उच्चैःश्रवाः सुरैः सर्वं गृहीतं वैष्णवेच्छया॥ ५१

अनयं तादृशं कृत्वा जाता देवास्तु साधवः।
(अन्यायिनः सुरा नूनं पश्य त्वं धर्मलक्षणम्।)
संस्थापिताः सुरा नूनं विष्णुना बहुमानिना॥ ५२

नूनं दैत्याः पराभूवन्पश्य त्वं धर्मलक्षणम्।
क्व धर्मः कीदृशो धर्मः क्व कार्यं क्व च साधुता॥ ५३

कथयामि च कस्याग्रे सिद्धं मैमांसिकं मतम्।
तार्किका युक्तिवादज्ञा विधिज्ञा वेदवादकाः॥ ५४

मैं तो समझता हूँ कि अपने विनोदके लिये आपने ही युद्ध देखनेकी इच्छासे निश्चय ही [हम दैत्यों तथा देवताओंके बीच] भेद उत्पन्न करके परस्पर यह विरोधभाव पैदा कर दिया है। अन्यथा हे अनघे! भाइयोंमें परस्पर विरोध कैसा? हे चामुण्डे! यदि आप [दैत्यों तथा देवताओंमें] कलह देखना न चाहतीं तो यह विरोधभाव नहीं होता॥ ४५-४६॥

हे धर्मज्ञे! मैं धर्मको जानता हूँ और इन्द्रको भी भलीभाँति जानता हूँ, तथापि हे देवि! भोगके लिये हमलोगोंके बीच कलह सदासे होता रहा है॥ ४७॥

हे अम्बिके! आपके अतिरिक्त संसारमें कोई भी एक शासक नहीं है। कौन बुद्धिमान् प्राणी किसी लोभीकी बातपर विश्वास करेगा? किसी समयकी बात है देवताओं और असुरोंने मिलकर इस समुद्रका मन्थन किया। किंतु विष्णुने अमृतरत्नके विभाजनमें छलपूर्वक देवताओं और असुरोंमें भेदभाव किया॥ ४८-४९॥

आपने पालन-कार्यके लिये विष्णुको जगद्गुरु बनाया है, किंतु उन्होंने लोभवश दिव्य सुन्दरी लक्ष्मीको स्वयं अपना लिया॥ ५०॥

उसी प्रकार विष्णुकी ही इच्छासे इन्द्रने ऐरावत हाथी, पारिजात, कामधेनु तथा उच्चैःश्रवा घोड़ेको ले लिया तथा अन्य देवताओंने शेष सब कुछ ग्रहण कर लिया॥ ५१॥

इस प्रकारका अन्याय करके देवता साधु बन गये! (यदि आप धर्मका लक्षण देखें तो उससे ज्ञात हो जायगा कि देवता निश्चितरूपसे अन्यायी हैं।) महाभिमानी विष्णुने ऐसे अन्यायी देवताओंको उच्च स्थानोंपर प्रतिष्ठित किया। इसके विपरीत दैत्यगण पराभूत हुए; अब आप ही धर्मका लक्षण देख लीजिये। धर्म कहाँ है, धर्मका स्वरूप कैसा है, कैसा कार्य हुआ है और साधुता कहाँ है?॥ ५२-५३॥

अब मैं किसके आगे अपनी बात कहूँ? मैमांसिक मत तो प्रसिद्ध ही है। [मीमांसक निरीश्वरवादका समर्थन करते हैं] नैयायिक विद्वान् युक्तिवादके ज्ञाता और वैदिक विद्वान् विधिके ज्ञाता कहे गये हैं।

उक्ताः सकर्तृकं विश्वं विवदन्ते जडात्मकाः।
कर्ता भवति चेदस्मिन्संसारे वितते किल॥ ५५

विरोधः कीदृशस्तत्र चैककर्मणि वै मिथः।
वेदे नैकमतिः कस्माच्छास्त्रेष्वपि तथा पुनः॥ ५६

नैकवाक्यं वचस्तेषामपि वेदविदां पुनः।
यतः स्वार्थपरं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ५७

निःस्पृहः कोऽपि संसारे न भवेन्न भविष्यति।
शशिनाथ गुरोर्भार्या हृता ज्ञात्वा बलादपि॥ ५८

गौतमस्य तथेन्द्रेण जानता धर्मनिश्चयम्।
गुरुणानुजभार्या च भुक्ता गर्भवती बलात्॥ ५९

शप्तो गर्भगतो बालः कृतश्चान्धस्तथा पुनः।
विष्णुना च शिरश्छिन्नं राहोश्चक्रेण वै बलात्॥ ६०

अपराधं विना कामं तदा सत्त्ववताम्बिके।
पौत्रो धर्मवतां शूरः सत्यव्रतपरायणः॥ ६१

यज्वा दानपतिः शान्तः सर्वज्ञः सर्वपूजकः।
कृत्वाथ वामनं रूपं हरिणा छलवेदिना॥ ६२

वञ्चितोऽसौ बलिः सर्वं हृतं राज्यं पुरा किल।
तथापि देवान्धर्मस्थान्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६३

वदन्ति चाटुवादांश्च धर्मवादाज्जयं गताः।
एवं ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६४

शरणा दानवाः सर्वे जहि वा रक्ष वा पुनः।

श्रीदेव्युवाच

सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम्॥ ६५

कुरुध्वं दानवाः सर्वे निर्भया गतमन्यवः।
कालः प्रतीक्ष्यो युष्माभिः कारणं स शुभेऽशुभे॥ ६६

कुछ लोग विश्वको सकर्तृक मानते हैं। [उनमें कुछ लोग विश्वका रचयिता 'पुरुष' को और कुछ लोग 'प्रकृति' को बताते हैं] जड़वादी लोग इससे विपरीत प्रकारकी बात करते हैं। यदि इस विस्तृत संसारमें कोई एक कर्ता होता तो एक ही कर्मके विषयमें लोगोंमें परस्पर विरोध कैसे होता? वेदमें एक मत नहीं है और उसी प्रकार शास्त्रोंमें भी मतैक्य नहीं है। उन वेदविदोंके वचनमें भी एकवाक्यता नहीं है; क्योंकि यह समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् ही स्वार्थपरायण है। संसारमें कोई भी न तो निःस्पृह हुआ है और न होगा॥ ५४—५७½ ॥

चन्द्रमाने जान-बूझकर अपने गुरु बृहस्पतिकी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया। उसी प्रकार धर्मका निर्णय जानते हुए भी इन्द्रने महर्षि गौतमकी पत्नीके साथ अनाचार किया। देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी गर्भवती भार्याके साथ रमण किया और गर्भस्थ शिशुको शाप दे दिया तथा उसे अन्धा बना दिया॥ ५८-५९½ ॥

हे अम्बिके! सत्त्व-सम्पन्न होते हुए भी विष्णुने बलपूर्वक सुदर्शनचक्रसे निरपराध राहुका सिर काट लिया। मेरा पौत्र बलि धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, वीर, सत्यव्रतमें संलग्न रहनेवाला, यज्ञकर्ता, महादानी, शान्त, सर्वज्ञ तथा सबका सम्मान करनेवाला था। पूर्वकालमें कपटज्ञानी विष्णुने वामनका रूप धारण करके उस बलिके साथ भी छल किया और उसका सारा राज्य छीन लिया। फिर भी विद्वान् लोग देवताओंको धर्मनिष्ठ कहते हैं और चाटुकारितापूर्ण वचन बोलते हैं कि धर्मवादी होनेके कारण ही देवता विजयको प्राप्त हुए। हे जगज्जननि! यह सब सोच-समझकर आप जैसा चाहें, वैसा करें। सभी दानव आपकी शरणमें हैं, अब आप उनका संहार करें अथवा उनकी रक्षा करें॥ ६०—६४½ ॥

श्रीदेवी बोलीं—हे दानवो! तुम सबलोग पाताल चले जाओ और वहाँपर निर्भय तथा शोकरहित होकर इच्छानुसार निवास करो। अभी तुमलोगोंको समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। वह काल ही अच्छे या बुरे कार्यमें कारण बनता है॥ ६५-६६॥

सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा।
त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम्॥ ६७

कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि।
तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयान्त्वद्य महीतलम्॥ ६८

ममाज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा रसातलम्॥ ६९

प्रणम्य दानवाः सर्वे गताः शक्त्याभिरक्षिताः।
अन्तर्दधे ततो देवी देवाः स्वभुवनं गताः॥ ७०

त्यक्त्वा वैरं स्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः।

एतदाख्यानमखिलं यः शृणोति वदत्यथ॥ ७१
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम्॥ ७२

परम सन्तोषी लोगोंको सभी जगह सदा सुख-ही-सुख है, किंतु लोभयुक्त मनवाले लोगोंको तीनों लोकोंका राज्य मिल जानेपर भी सुख नहीं प्राप्त होता। सत्ययुगमें भी नानाविध भोगोंके रहते प्रबल कामनावाले लोगोंका सुख कभी पूरा नहीं हुआ। अतः सभी दैत्य मेरी आज्ञा मानकर इस पृथ्वीको छोड़कर अभी पातालमें चले जायँ और वहाँ निष्पाप होकर रहें॥ ६७-६८½॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर सभी दानवोंने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी शक्तिसे रक्षित होकर वे वहाँसे चल पड़े। तत्पश्चात् भगवती अन्तर्धान हो गयीं और देवता अपने-अपने लोक चले गये। उस समय सभी देवता तथा दानव वैर-भाव छोड़कर रहने लगे॥ ६९-७०½॥

जो मनुष्य इस सम्पूर्ण कथानकको सुनता अथवा कहता है, वह सभी दुःखोंसे मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ७१-७२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे देवीकथनेन दानवानां रसातलं प्रति गमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

भगवान् श्रीहरिके विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

जनमेजय उवाच

भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुतकर्मणः।
अवताराः कथं जाताः कस्मिन्मन्वन्तरे विभो॥ १

विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथां हरेः।
पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम्॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि अवतारान् हरेर्यथा।
यस्मिन्मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप॥ ३

येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै।
तत्सर्वं नृप वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाधुना॥ ४

धर्मस्यैवावतारोऽभूच्चाक्षुषे मनुसम्भवे।
नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले॥ ५

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विभो! अद्भुत चरित्रवाले भगवान् विष्णुने भृगुके शापसे किस मन्वन्तरमें किस प्रकार अवतार ग्रहण किये। हे धर्मज्ञ! हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेपर समस्त सुख सुलभ करानेवाली तथा पापोंका नाश कर देनेवाली भगवान् विष्णुकी अवतार-कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे नराधिप! जिस मन्वन्तर तथा जिस युगमें जैसे-जैसे भगवान् विष्णुके अवतार हुए हैं, उन अवतारोंको मैं बता रहा हूँ, आप सुनें। हे नृप! भगवान् नारायणने जिस रूपसे जो कार्य किया, वह सब मैं आपको इस समय संक्षेपमें बताता हूँ॥ ३-४॥

चाक्षुष मन्वन्तरमें साक्षात् विष्णुका धर्मावतार हुआ था। उस समय वे धर्मपुत्र होकर नर-नारायण नामसे धरातलपर विख्यात हुए॥ ५॥

अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीये तु युगे पुनः।
दत्तात्रेयावतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः॥ ६

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयोऽमी देवसत्तमाः।
पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्यात्रेर्भार्यया वृताः॥ ७

अनसूयात्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा सती।
यया सम्प्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः॥ ८

ब्रह्माभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम्।
दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं ते प्रपेदिरे॥ ९

नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये।
चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः॥ १०

हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान् हरिः।
चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम्॥ ११

बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा।
चकार रूपं भगवान् वामनं कश्यपान्मुनेः॥ १२

छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहार ह।
पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक्॥ १३

युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान् हरिः।
जमदग्निसुतो जातो रामो नाम महाबलः॥ १४

क्षत्रियान्तकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने॥ १५

यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारस्तु राजेन्द्र कथितः पापनाशनः॥ १६

त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः।
नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ॥ १७

इस वैवस्वत मन्वन्तरके दूसरे चतुर्युगमें भगवान्‌का दत्तात्रेयावतार हुआ। वे भगवान् श्रीहरि महर्षि अत्रिके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए॥ ६॥

उन अत्रिमुनिकी भार्या अनसूयाकी प्रार्थनापर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये तीनों महान् देवता उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ७॥

अत्रिकी पत्नी साध्वी अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थीं, जिनके सम्यक् रूपसे प्रार्थना करनेपर वे तीनों देवता उनके पुत्ररूपमें अवतरित हुए॥ ८॥

उनमें ब्रह्माजी सोम (चन्द्रमा)-रूपमें, साक्षात् विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें और शंकरजी दुर्वासाके रूपमें उनके यहाँ पुत्रत्वको प्राप्त हुए॥ ९॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चौथे चतुर्युगमें दो प्रकारके रूपोंवाला मनोहर नृसिंहावतार हुआ। भगवान् श्रीविष्णुने उस समय हिरण्यकशिपुका सम्यक् वध करनेके लिये ही देवताओंको भी चकित कर देनेवाला नारसिंहरूप धारण किया था॥ १०-११॥

भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिका शमन करनेके उद्देश्यसे उत्तम त्रेतायुगमें कश्यपमुनिके यहाँ वामनरूपसे अवतार धारण किया था। उन वामनरूपधारी विष्णुने यज्ञमें राजा बलिको छलकर उनका राज्य हर लिया और उन्हें पातालमें स्थापित कर दिया॥ १२-१३॥

उन्नीसवें चतुर्युगके त्रेता नामक युगमें भगवान् विष्णु महर्षि जमदग्निके परशुराम नामक महाबली पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १४॥

क्षत्रियोंका नाश कर डालनेवाले उन प्रतापी, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय परशुरामने सम्पूर्ण पृथ्वी [क्षत्रियोंसे छीनकर] महात्मा कश्यपको दे दी थी॥ १५॥

हे राजेन्द्र! मैंने अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके पापनाशक 'परशुराम' नामक अवतारका यह वर्णन कर दिया॥ १६॥

भगवान् विष्णुने त्रेतायुगमें रघुके वंशमें दशरथपुत्र रामके रूपमें अवतार धारण किया था। इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें साक्षात् नर तथा नारायणके अंशसे कल्याणप्रद तथा महाबली अर्जुन

अष्टाविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुनशौरिणौ।
धराभारावतारार्थं जातौ कृष्णार्जुनौ भुवि॥ १८

कृतवन्तौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम्।
एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल॥ १९

भवन्ति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः।
प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम्॥ २०

यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशं जगत्।
पुरुषस्य प्रियार्थं सा रचयत्यखिलं जगत्॥ २१

सृष्ट्वा पुरा हि भगवाञ्जगदेतच्चराचरम्।
सर्वादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः॥ २२

निरालम्बो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः।
उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा॥ २३

उत्पत्तिकालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा।
सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा॥ २४

कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी।
तया युक्तोऽसृजद् ब्रह्मा विष्णुः पाति तयान्वितः॥ २५

रुद्रः संहरते कामं तया सम्मिलितः शिवः।
सा चैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम्॥ २६

कुत्रचित्स्थापयामास दानवानां जयाय च।
एवमस्मिंश्च संसारे सुखदुःखान्विताः किल॥ २७

भवन्ति प्राणिनः सर्वे विधितन्त्रनियन्त्रिताः॥ २८

और श्रीकृष्ण पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही भूमण्डलपर अवतार लिया और कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किया॥ १७-१८$\frac{१}{२}$॥

हे राजन्! इस प्रकार प्रकृतिके आदेशानुसार युग-युगमें भगवान् विष्णुके अनेक अवतार हुआ करते हैं। यह सम्पूर्ण त्रिलोकी प्रकृतिके अधीन रहती है। ये भगवती प्रकृति जैसे चाहती हैं वैसे ही जगत्को निरन्तर नचाया करती हैं। परमपुरुषकी प्रसन्नताके लिये ही वे समस्त संसारकी रचना करती हैं॥ १९—२१॥

प्राचीनकालमें इस चराचर जगत्का सृजन करके सबके आदिरूप, सर्वत्र गमन करनेवाले, दुर्ज्ञेय, महान्, अविनाशी, स्वतन्त्र, निराकार, निःस्पृह और परात्पर वे भगवान् जिन मायारूपिणी भगवतीके संयोगसे उपाधिरूपमें [ब्रह्मा, विष्णु, महेश] तीन प्रकारके प्रतीत होते हैं, वे ही 'परा प्रकृति' हैं॥ २२-२३॥

उत्पत्ति और कालके योगसे ही वे कल्याणमयी प्रकृति उस परमात्मासे भिन्न भासती हैं। सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे प्रकृति ही विश्वकी रचना करती हैं, सम्यक् रूपसे पालन करती हैं और कल्पके अन्तमें संहार भी कर देती हैं। इस प्रकार वे विश्वमोहिनी भगवती प्रकृति ही तीन रूपोंमें विराजमान रहती हैं। उन्हींसे संयुक्त होकर ब्रह्माने जगत्की सृष्टि की है, उन्हींसे सम्बद्ध होकर विष्णु पालन करते हैं और उन्हींके साथ मिलकर कल्याणकारी रुद्र संहार करते हैं॥ २४-२५$\frac{१}{२}$॥

पूर्वकालमें उन भगवती परा प्रकृतिने ही ककुत्स्थवंशी नृपश्रेष्ठको उत्पन्न करके दानवोंको पराजित करनेके लिये उन्हें कहींपर स्थापित कर दिया। इस प्रकार इस संसारमें सभी प्राणी विधिके नियमोंमें बँधकर सदा सुख तथा दुःखसे युक्त रहते हैं॥ २६—२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
हरेर्नानावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

~~0~~

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायणद्वारा अप्सराओंको वरदान देना, राजा जनमेजयद्वारा व्यासजीसे श्रीकृष्णावतारका चरित सुनानेका निवेदन करना

जनमेजय उवाच

वाराङ्गनास्त्वयाख्याता नरनारायणाश्रमे।
एकं नारायणं शान्तं कामयानाः स्मरातुराः॥ १

शप्तुकामस्तदा जातो मुनिर्नारायणश्च ताः।
निवारितो नरेणाथ भ्रात्रा धर्मविदा नृप॥ २

किं कृतं मुनिना तेन व्यसने समुपस्थिते।
ताभिः संकल्पितेनाथ कामार्थाभिर्भृशं मुने॥ ३

शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहुप्रार्थनया पुनः।
याचितेन विवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना॥ ४

इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितं तस्य मोक्षदम्।
नारायणस्य मे ब्रूहि विस्तरेण पितामह॥ ५

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः।
धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते॥ ६

शप्तुकामस्तु संदृष्टो नरेणाथ यदा हरिः।
वारितोऽसौ समाश्वास्य मुनिर्नारायणस्तदा॥ ७

शान्तकोपस्तदोवाच तास्तपस्वी महामुनिः।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं मधुरं धर्मनन्दनः॥ ८

अस्मिञ्जन्मनि चार्वङ्ग्यः कृतसंकल्पवानहम्।
आवाभ्याञ्च न कर्तव्यः सर्वथा दारसंग्रहः॥ ९

तस्माद् गच्छन्तु त्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि।
धर्मज्ञा न प्रकुर्वन्ति व्रतभङ्गं परस्य वै॥ १०

शृङ्गारेऽस्मिन् रसे नूनं स्थायीभावो रतिः स्मृतः।
कथं करोमि सम्बन्धं तदभावे सुलोचनाः॥ ११

जनमेजय बोले—हे मुने! आप नर-नारायणके आश्रममें आयी हुई अप्सराओंकी चर्चा पहले ही कर चुके हैं, जो काम-पीड़ित होकर शान्तचित्त मुनि नारायणपर आसक्त हो गयी थीं। उसके बाद मुनि नारायण उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। इसपर उनके भाई धर्मवेत्ता नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया था॥ १-२॥

हे मुने! अत्यन्त कामासक्त उन अप्सराओं के द्वारा [अपने मनमें पतिरूपमें] संकल्पित किये गये उन मुनि नारायणने इस विषम संकटके उपस्थित होनेपर क्या किया? इन्द्रके द्वारा प्रेषित उन वारांगनाओंके बार-बार बहुत प्रार्थना करके विवाहके लिये याचित उन भगवान् नारायणमुनिने क्या किया? हे पितामह! मैं उन नारायणमुनिका यह मोक्षदायक चरित्र सुनना चाहता हूँ; विस्तारके साथ मुझे बतायें॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताऊँगा। हे धर्मज्ञ! उन महात्मा धर्मपुत्र नारायणका चरित्र विस्तारपूर्वक मैं आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

जब नरने मुनि नारायणको शाप देनेके लिये उद्यत देखा तब उन्होंने नारायणको आश्वासन देकर [वैसा करनेसे] रोक दिया॥ ७॥

तत्पश्चात् क्रोधके शान्त हो जानेपर महामुनि तपस्वी धर्मपुत्र नारायण उन अप्सराओंसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए यह मधुर वचन कहने लगे—॥ ८॥

हे सुन्दरियो! हमने इस जन्ममें संकल्प कर रखा है कि हम दोनों कभी भी विवाह नहीं करेंगे। अतः मेरे ऊपर कृपा करके आपलोग स्वर्ग लौट जायँ। धर्मज्ञ लोग दूसरेका व्रत भंग नहीं करते॥ ९-१०॥

हे सुन्दर नेत्रोंवाली! इस शृंगार-रसमें रतिको ही स्थायी भाव कहा गया है। अतः [ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेके कारण] उसके अभावमें मैं सम्बन्ध कैसे कर सकता हूँ?॥ ११॥

कारणेन विना कार्यं न भवेदिति निश्चयः।
कविभिः कथितं शास्त्रे स्थायीभावो रसः किल॥ १२

धन्यः सुचारुसर्वाङ्गः सभाग्योऽहं धरातले।
प्रीतिपात्रं यतो जातो भवतीनामकृत्रिमम्॥ १३

भवतीभिः कृपां कृत्वा रक्षणीयं व्रतं मम।
भविष्यामि महाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि॥ १४

अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रभविष्यामि सर्वथा॥ १५

तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्य जन्म पृथक्पृथक्।
भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नीभावं गमिष्यथ॥ १६

इत्याश्वास्य हरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम्।
व्यसर्जयत्स भगवाञ्जग्मुश्च विगतज्वराः॥ १७

एवं विसर्जितास्तेन गताः स्वर्गं तदाङ्गनाः।
शक्राय कथयामासुः कारणं सकलं पुनः॥ १८

आश्रुत्य मघवांस्ताभ्यो वृत्तान्तं तस्य विस्तरात्।
तुष्टाव तं महात्मानं नारीर्दृष्ट्वा तथोर्वशीः॥ १९

इन्द्र उवाच

अहो धैर्यं मुनेः कामं तथैव च तपोबलम्।
येनोर्वश्यः स्वतपसा तादृग्रूपाः प्रकल्पिताः॥ २०

इति स्तुत्वा प्रसन्नात्मा बभूव सुरराट् ततः।
नारायणोऽपि धर्मात्मा तपस्यभिरतोऽभवत्॥ २१

इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तान्तमद्भुतम्।
नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुनेः॥ २२

तौ हि कृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणाय च।
जातौ तौ भरतश्रेष्ठ भृगोः शापवशादिह॥ २३

कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता है—यह सुनिश्चित है। कवियोंने शास्त्रमें कहा है कि स्थायीभाव ही रसस्वरूप है॥ १२॥

समस्त सुन्दर अंगोंवाला मैं इस धरातलपर धन्य तथा सौभाग्यशाली हूँ जो कि आपलोगोंका स्वाभाविक प्रीतिपात्र बन सका॥ १३॥

हे महाभागाओ! आपलोग कृपा करके मेरे व्रतकी रक्षा करें। मैं दूसरे जन्ममें आपलोगोंका पति अवश्य बनूँगा॥ १४॥

हे विशाल नेत्रोंवाली सुन्दरियो! देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं अट्ठाईसवें द्वापरमें इस धरातलपर निश्चितरूपसे अवतरित होऊँगा॥ १५॥

उस समय आपलोग भी राजाओंकी कन्याएँ होकर पृथक्-पृथक् जन्म ग्रहण करेंगी और मेरी भार्याएँ बनकर पत्नी-भावको प्राप्त होंगी॥ १६॥

पाणिग्रहणका ऐसा आश्वासन देकर भगवान् नारायण-मुनिने उन्हें विदा किया और वे अप्सराएँ भी कामव्यथासे रहित होकर वहाँसे चली गयीं॥ १७॥

इस प्रकार उनसे विदा पाकर वे अप्सराएँ स्वर्ग पहुँचीं और फिर उन्होंने इन्द्रको सारा वृत्तान्त बता दिया॥ १८॥

तदनन्तर उन अप्सराओंसे नारायणमुनिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर तथा साथमें आयी उर्वशी आदि नारियोंको देखकर इन्द्र उन महात्मा नारायणकी प्रशंसा करने लगे॥ १९॥

इन्द्र बोले—अहो, उन मुनिका ऐसा अपार धैर्य तथा तपोबल है, जिन्होंने अपने तपके प्रभावसे उन्हीं अप्सराओंके सदृश रूपवाली अन्य उर्वशी आदि अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। नारायणमुनिकी यह प्रशंसा करके देवराज इन्द्रका मन प्रसन्नतासे परिपूर्ण हो गया। उधर, धर्मात्मा नारायण भी तपस्यामें संलग्न हो गये॥ २०-२१॥

[हे राजन्!] इस प्रकार मैंने आपसे मुनि नारायण और महामुनि नरके सम्पूर्ण अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कर दिया॥ २२॥

हे भरतश्रेष्ठ! वे ही नर-नारायण भृगुके शापवश पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इस लोकमें पराक्रमी कृष्ण तथा अर्जुनके रूपमें अवतरित हुए थे॥ २३॥

राजोवाच

कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे।
सन्देहो मम चित्तेऽस्ति तं निवारय मानद॥ २४

ययोः पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनन्तौ महाबलौ।
देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौ कथं मुने॥ २५

कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान्।
ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत्॥ २६

जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स कथं गतः।
कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान्कथम्॥ २७

पित्रादिसेवितं देशं समृद्धं पावनं किल।
त्यक्त्वा देशान्तरेऽनार्ये गतवान्स कथं हरिः॥ २८

कुलञ्च द्विजशापेन कथमुत्सादितं हरेः।
भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातनः॥ २९

देहं मुमोच तरसा जगाम च दिवं हरिः।
पापिष्ठानाञ्च भारेण व्याकुलाभूच्च मेदिनी॥ ३०

ते हता वासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा।
लुण्ठिता यैर्हरेः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः॥ ३१

भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः।
वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्थिवः॥ ३२

सोमदत्तादयः सर्वे निहताः समरे नृपाः।
तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हृतः कथम्॥ ३३

कृष्णपत्न्यः कथं दुःखं प्राप्ताः प्रान्ते पतिव्रताः।
सन्देहोऽयं मुनिश्रेष्ठ चित्ते मे परिवर्तते॥ ३४

वसुदेवस्तु धर्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः।
त्यक्तवान्स कथं प्राणानपमृत्युं जगाम ह॥ ३५

पाण्डवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे च निरताः सदा।
ते कथं दुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम॥ ३६

राजा बोले—हे मानद! अब आप कृष्णावतारकी कथा विस्तारके साथ मुझसे कहिये और मेरे मनमें जो सन्देह है, उसका निवारण कीजिये॥ २४॥

हे मुने! महाबली श्रीकृष्ण और बलराम जिनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए, उन वसुदेव और देवकीको दुःखका भागी क्यों होना पड़ा?॥ २५॥

जिनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्रीहरि उनके पुत्र बने थे, वे ही [वसुदेव और देवकी] बेड़ियोंमें बद्ध होकर कंसके द्वारा बहुत वर्षोंतक क्यों सताये गये?॥ २६॥

वे श्रीकृष्ण उत्पन्न तो मथुरामें हुए, किंतु गोकुल क्यों ले जाये गये? बादमें कंसका वध करके उन्होंने द्वारकामें निवास क्यों किया? अपने पिता आदिके द्वारा सेवित, समृद्धिसम्पन्न तथा पवित्र स्थानको छोड़कर वे भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे अनार्य देशमें क्यों चले गये?॥ २७—२८॥

एक ब्राह्मणके शापसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका नाश क्यों हो गया? पृथ्वीका भार उतारकर उन सनातन भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत देहत्याग कर दिया और वे स्वर्ग चले गये। जिन पापियोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हो उठी थी, उन्हें तो अमित कर्मोंवाले भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने मार डाला था, किंतु जिन चोरोंने भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण कर लिया था, उन्हें वे क्यों नहीं मार सके?॥ २९—३१॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण, राजा बाह्लीक, वैराट, विकर्ण, राजा धृष्टद्युम्न, सोमदत्त आदि सभी राजागण युद्धमें मार डाले गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनका भार तो पृथ्वीपरसे उतार दिया, किंतु वे चोरोंका भार क्यों नहीं मिटा सके? कृष्णकी पतिव्रता पत्नियोंको निर्जन स्थानमें इस प्रकारका दुःख क्यों मिला? हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह संदेह बार-बार हो रहा है॥ ३२—३४॥

धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रशोकसे सन्तप्त होकर अपने प्राण त्याग दिये; इस प्रकार वे अकालमृत्युको क्यों प्राप्त हुए?॥ ३५॥

हे मुनिवर! पाण्डव धर्मनिष्ठ थे और भगवान् कृष्णमें सदा तल्लीन रहते थे; फिर भी उन्हें दुःख क्यों भोगना पड़ा?॥ ३६॥

द्रौपदी च महाभागा कथं दुःखस्य भागिनी।
वेदीमध्याच्च सञ्जाता लक्ष्म्यंशसम्भवा किल॥ ३७

सभायां सा समानीता रजोदोषसमन्विता।
बाला दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता॥ ३८

पीडिता सिन्धुराज्ञाथ वनमध्यगता सती।
तथैव कीचकेनापि पीडिता रुदती भृशम्॥ ३९

पुत्राः पञ्चैव तस्यास्तु निहता द्रौणिना गृहे।
सुभद्रायाः सुतो युद्धे बाल एव निपातितः॥ ४०

तथा च देवकीपुत्रा षट् कंसेन निषूदिताः।
समर्थेनापि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा॥ ४१

यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनं पुनः।
कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनाञ्च लुण्ठनम्॥ ४२

विष्णुना चेश्वरेणापि साक्षान्नारायणेन च।
उग्रसेनस्य सेवा वै दासवत्सततं कृता॥ ४३

सन्देहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ।
सर्वजन्तुसमानत्वं व्यवहारे निरन्तरम्॥ ४४

हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम्।
ईश्वरस्य हरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः॥ ४५

तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत्।
अलौकिकेन हरिणा कृतं कर्म महीतले॥ ४६

हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः।
क्वैश्वर्यशक्तिः प्रथिता हरिणा मुनिसत्तम॥ ४७

रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाथ पलायनम्।
कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा॥ ४८

मथुरामण्डलं त्यक्त्वा समृद्धं कुलसम्मतम्।
जरासन्धभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम्॥ ४९

महाभागा द्रौपदीको दुःख क्यों सहने पड़े? वह तो साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी और वेदीके मध्यसे प्रकट हुई थी। रजोधर्मसे युक्त उस युवती द्रौपदीको उसके बाल पकड़कर घसीटते हुए दुःशासन सभामें ले आया था। वनमें गयी हुई उस पतिव्रताको सिन्धुराज जयद्रथने सताया, उसी प्रकार [अज्ञातवासके समय] कीचकने भी रोती-कलपती उस द्रौपदीको बहुत पीड़ा पहुँचायी। अश्वत्थामाने घरके अन्दर ही उसके पाँच पुत्रोंको मार डाला। सुभद्रापुत्र अभिमन्यु बाल्यावस्थामें ही युद्धमें मार डाला गया। उसी प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया। किंतु [सब कुछ करनेमें] समर्थ होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रारब्धको नहीं टाल सके॥ ३७—४१॥

यादवोंको शाप मिला और इसके बाद प्रभास-क्षेत्रमें उनका निधन हो गया। इस प्रकार भयंकर कुलनाश हो गया और अन्तमें उनकी पत्नियोंका हरण भी हो गया। भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण, ईश्वर और विष्णु थे; फिर भी उन्होंने दासकी भाँति उग्रसेनकी सदा सेवा की। हे महाभाग! मुनि नारायणके विषयमें मुझे यह सन्देह है कि आचार-व्यवहारमें वे सदा साधारण प्राणियोंके समान ही रहते थे॥ ४२—४४॥

सभी प्राणियोंके समान हर्ष-शोकादि भाव उनमें भी क्यों थे? उन भगवान् श्रीकृष्णकी भी यह अन्यथा गति क्यों हुई?॥ ४५॥

अतः आप श्रीकृष्णके महान् चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और उन लोकोत्तर भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीतलपर किये गये कर्मोंको भी बताइये॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्ण दैत्योंकी आयु समाप्त होनेपर भी बड़े कष्टसे उन्हें मार पाये। उस समय उनकी विख्यात ईश्वरीय शक्ति कहाँ थी?॥ ४७॥

रुक्मिणीहरणके समय वे वासुदेव श्रीकृष्ण उसे लेकर भाग गये थे। उस समय तो उन्होंने चौर-तुल्य आचरण किया था॥ ४८॥

समृद्धिशाली तथा अपने पूर्वजोंके द्वारा प्रतिष्ठित किये गये मथुरामण्डलको छोड़कर वे श्रीकृष्ण जरासन्धके

तदा केनापि न ज्ञातो भगवान्हरिरीश्वरः।
किञ्चित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन् कारणं व्रजगोपनम्॥ ५०

एते चान्ये च बहवः सन्देहा वासवीसुत।
नाशयाद्य महाभाग सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम॥ ५१

गोप्यस्तथैकः सन्देहो हृदयान्न निवर्तते।
पाञ्चाल्याः पञ्चभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम्॥ ५२

सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदन्ति मनीषिणः।
पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः॥ ५३

भीष्मेणापि कृतं किं वा देवरूपेण भूतले।
गोलकौ तौ समुत्पाद्य यत्तु वंशस्य रक्षणम्॥ ५४

धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः परिदर्शितः।
येन केनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः॥ ५५

भयसे द्वारका चले गये थे। उस समय कोई भी नहीं जान सका कि ये श्रीकृष्ण ही भगवान् विष्णु हैं। हे ब्रह्मन्! [श्रीकृष्णके द्वारा अपनेको] व्रजमें छिपाये रखनेका कुछ कारण आप मुझे बताइये॥ ४९-५०॥

हे सत्यवतीनन्दन! ये तथा और भी दूसरे बहुत-से सन्देह हैं। हे महाभाग! हे द्विजवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतः आज आप उन्हें दूर कर दीजिये॥ ५१॥

एक और गोपनीय सन्देह है जो मेरे मनसे नहीं निकल पा रहा है। क्या द्रौपदीके पाँच पतियोंका होना लोकमें निन्दनीय नहीं है? विद्वज्जन तो सदाचारको ही प्रमाण मानते हैं; तब समर्थ होकर भी उन पाण्डवोंने पशु-धर्म क्यों स्वीकार किया?॥ ५२-५३॥

देवतास्वरूप भीष्मपितामहने भी भूतलपर दो गोलक सन्तानें उत्पन्न कराकर अपने वंशकी जो रक्षा की, क्या यह उचित है? मुनियोंके द्वारा जो धर्मनिर्णय प्रदर्शित किया गया है कि जिस किसी भी उपायसे पुत्रोत्पत्ति करनी चाहिये, उसे धिक्कार है!॥ ५४-५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे सुराङ्गनानां प्रति नारायणवरदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

पापभारसे व्यथित पृथ्वीका देवलोक जाना, इन्द्रका देवताओं और पृथ्वीके साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्माजीका पृथ्वी तथा इन्द्रादि देवताओंसहित विष्णुलोक जाकर विष्णुकी स्तुति करना, विष्णुद्वारा अपनेको भगवतीके अधीन बताना

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितं महत्।
अवतारकारणं चैव देव्याश्चरितमद्भुतम्॥ १

धरैकदा भराक्रान्ता रुदती चातिकर्शिता।
गोरूपधारिणी दीना भीतागच्छत्त्रिविष्टपम्॥ २

पृष्टा शक्रेण किं तेऽद्य वर्तते भयमित्यथ।
केन वै पीडितासि त्वं किं ते दुःखं वसुन्धरे॥ ३

तच्छ्रुत्वेला तदोवाच शृणु देवेश मेऽखिलम्।
दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रान्तोऽस्मि मानद॥ ४

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं श्रीकृष्णके महान् चरित्र, उनके अवतारके कारण और भगवतीके अद्भुत चरित्रका वर्णन करूँगा॥ १॥

एक समयकी बात है—[पापियोंके] भारसे व्यथित, अत्यधिक कृश, दीन तथा भयभीत पृथ्वी गौका रूप धारण करके रोती हुई स्वर्गलोक गयी॥ २॥

वहाँ इन्द्रने पूछा—हे वसुन्धरे! इस समय तुम्हें कौन-सा भय है, तुम्हें किसने पीड़ा पहुँचायी है और तुम्हें क्या दुःख है?॥ ३॥

यह सुनकर पृथ्वीने कहा—हे देवेश! यदि आप पूछ ही रहे हैं तो मेरा सारा दुःख सुन लीजिये। हे मानद! मैं भारसे दबी हुई हूँ॥ ४॥

जरासन्धो महापापी मागधेषु पतिर्मम।
शिशुपालस्तथा चैद्यः काशिराजः प्रतापवान्॥ ५

रुक्मी च बलवान्कंसो नरकश्च महाबलः।
शाल्वः सौभपतिः क्रूरः केशी धेनुकवत्सकौ॥ ६

सर्वे धर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः।
पापाचारा मदोन्मत्ताः कालरूपाश्च पार्थिवाः॥ ७

तैरहं पीडिता शक्र भाराक्रान्ताक्षमा विभो।
किं करोमि क्व गच्छामि चिन्ता मे महती स्थिता॥ ८

पीडिताहं वराहेण विष्णुना प्रभविष्णुना।
शक्र जानीहि हरिणा दुःखाद्दुःखतरं गता॥ ९

यतोऽहं दुष्टदैत्येन कश्यपस्यात्मजेन वै।
हृताहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे॥ १०

तदा सूकररूपेण विष्णुना निहतोऽप्यसौ।
उद्धृताहं वराहेण स्थापिता हि स्थिरा कृता॥ ११

नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यां सुखशायिनी।
न शक्तास्म्यद्य देवेश भारं वोढुं दुरात्मनाम्॥ १२

अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः।
तदाहं पीडिता शक्र गन्तास्म्याशु रसातलम्॥ १३

तस्मात्त्वं देवदेवेश दुःखरूपार्णवस्य च।
पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते॥ १४

इन्द्र उवाच

इले किं ते करोम्यद्य ब्रह्माणं शरणं व्रज।
अहं तत्रागमिष्यामि स ते दुःखं हरिष्यति॥ १५

तच्छ्रुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा।
शक्रोऽपि पृष्ठतः प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः॥ १६

मगधदेशका राजा महापापी जरासन्ध, चेदिनरेश शिशुपाल, प्रतापी काशिराज, रुक्मी, बलवान् कंस, महाबली नरकासुर, सौभनरेश शाल्व, क्रूर केशी, धेनुकासुर और वत्सासुर—ये सभी राजागण धर्महीन, परस्पर विरोध रखनेवाले, पापाचारी, मदोन्मत्त और साक्षात् कालस्वरूप हो गये हैं॥ ५—७॥

हे इन्द्र! उनसे मुझे बहुत व्यथा हो रही है। मैं उनके भारसे दबी हुई हूँ और अब [उनका भार सहनेमें] मैं असमर्थ हो गयी हूँ। हे विभो! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मुझे यही महान् चिन्ता है॥ ८॥

हे इन्द्र! पूर्वमें मैं [दानव हिरण्याक्षसे] पीड़ित थी। उस समय परम ऐश्वर्यशाली वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने मेरा उद्धार किया था। यदि वे वराहरूप धारण करके मेरा उद्धार न किये होते तो उससे भी अधिक दुःखकी स्थितिमें मैं न पहुँचती—आप ऐसा जानिये॥ ९॥

कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझे चुरा लिया था और उस महासमुद्रमें डुबो दिया था। उस समय भगवान् विष्णुने सूकरका रूप धारणकर उसका संहार किया और मेरा उद्धार किया। तदनन्तर उन वराहरूपधारी विष्णुने मुझे स्थापित करके स्थिर कर दिया अन्यथा मैं इस समय पातालमें स्वस्थचित्त रहकर सुखपूर्वक सोयी रहती। हे देवेश! अब मैं दुष्टात्मा राजाओंका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ १०—१२॥

हे इन्द्र! अब आगे अट्ठाईसवाँ दुष्ट कलियुग आ रहा है। उस समय मैं और भी पीड़ित हो जाऊँगी तब तो मैं शीघ्र ही रसातलमें चली जाऊँगी। अतएव हे देवदेवेश! इस दुःखरूपी महासागरसे मुझे पार कर दीजिये; मेरा बोझ उतार दीजिये, मैं आपके चरणोंमें नमन करती हूँ॥ १३-१४॥

इन्द्र बोले—हे वसुन्धरे! मैं इस समय तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ! तुम ब्रह्माकी शरणमें जाओ, वे ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे, मैं भी वहाँ आ जाऊँगा॥ १५॥

यह सुनकर पृथ्वीने तत्काल ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान कर दिया। उसके पीछे-पीछे इन्द्र भी सभी देवताओंके साथ वहाँ पहुँच गये॥ १६॥

सुरभीमागतां तत्र दृष्ट्वोवाच प्रजापतिः।
महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम्॥ १७

कस्माद्रुदसि कल्याणि किं ते दुःखं वदाधुना।
पीडितासि च केन त्वं पापाचारेण भूर्वद॥ १८

धरोवाच

कलिरायाति दुष्टोऽयं बिभेमि तद्भयादहम्।
पापाचाराः प्रजास्तत्र भविष्यन्ति जगत्पते॥ १९

राजानश्च दुराचाराः परस्परविरोधिनः।
चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्णवैरिणः॥ २०

तान्हत्वा नृपतीन्भारं हर मेऽद्य पितामह।
पीडितास्मि महाराज सैन्यभारेण भूभृताम्॥ २१

ब्रह्मोवाच

नाहं शक्तस्तथा देवि भारावतरणे तव।
गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः॥ २२

स ते भारापनोदं वै करिष्यति जनार्दनः।
पूर्वं मयापि ते कार्यं चिन्तितं सुविचार्य च॥ २३

तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्र देवो जनार्दनः।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वेदकर्तासौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम्॥ २४

जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः।
तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः॥ २५

ब्रह्मोवाच

सहस्रशीर्षास्त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात्।
त्वं वेदपुरुषः पूर्वं देवदेवः सनातनः॥ २६

भूतपूर्वं भविष्यच्च वर्तमानं च यद्विभो।
अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते॥ २७

एतावान्महिमा तेऽस्ति को न वेत्ति जगत्त्रये।
त्वं कर्ताप्यविता हन्ता त्वं सर्वगतिरीश्वरः॥ २८

हे महाराज! उस आयी हुई धेनुको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर तथा ध्यान-दृष्टिद्वारा उसे पृथ्वी जान करके ब्रह्माजीने कहा—हे कल्याणि! तुम किसलिये रो रही हो और तुम्हें कौन-सा दुःख है; मुझे अभी बताओ। हे पृथ्वि! किस पापाचारीने तुम्हें पीड़ा पहुँचायी है, मुझे बताओ॥ १७-१८॥

धरा बोली—हे जगत्पते! यह दुष्ट कलि अब आनेवाला है। मैं उसीके आतंकसे डर रही हूँ; क्योंकि उस समय सभी लोग पापाचारी हो जायँगे। सभी राजालोग दुराचारी हो जायँगे, आपसमें विरोध करनेवाले होंगे और चोरीके कर्ममें संलग्न रहेंगे। वे राक्षसके रूपमें एक-दूसरेके पूर्णरूपसे शत्रु बन जायँगे। हे पितामह! उन राजाओंका वध करके मेरा भार उतार दीजिये। हे महाराज! मैं राजाओंकी सेनाके भारसे दबी हुई हूँ॥ १९—२१॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! तुम्हारा भार उतारनेमें मैं सर्वथा समर्थ नहीं हूँ। अब हम दोनों चक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके धाम चलते हैं। वे जनार्दन तुम्हारा भार अवश्य उतार देंगे। मैंने पहलेसे ही भलीभाँति विचार करके तुम्हारा कार्य करनेकी योजना बनायी है। [उन्होंने इन्द्रसे कहा—] हे सुरश्रेष्ठ! जहाँपर भगवान् जनार्दन विद्यमान हैं, अब आप वहींपर चलें॥ २२-२३$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हुए और देवताओं तथा गोरूपधारिणी पृथ्वीको साथमें लेकर विष्णुलोकके लिये प्रस्थित हो गये। [वहाँ पहुँचकर] भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले ब्रह्माजी वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे॥ २४-२५॥

ब्रह्माजी बोले—आप हजार मस्तकोंवाले, हजार नेत्रोंवाले और हजार पैरोंवाले हैं। आप देवताओंके भी आदिदेव तथा सनातन वेदपुरुष हैं। हे विभो! हे रमापते! भूतकाल, भविष्यकाल तथा वर्तमानकालका जो भी हमारा अमरत्व है, उसे आपने ही हमें प्रदान किया है। आपकी इतनी बड़ी महिमा है कि उसे त्रिलोकीमें कौन नहीं जानता? आप ही सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले और संहार करनेवाले हैं। आप सर्वव्यापी और सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ २६—२८॥

व्यास उवाच

इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुडध्वजः।
दर्शनञ्च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः॥ २९

पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः।
ततस्त्वागमने तेषां कारणञ्च सविस्तरम्॥ ३०

तमुवाचाब्जजो नत्वा धरादुःखञ्च संस्मरन्।
भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन॥ ३१

भुवि धृत्वावतारं त्वं द्वापरान्ते समागते।
हत्वा दुष्टान्नृपानुर्व्या हर भारं दयानिधे॥ ३२

विष्णुरुवाच

नाहं स्वतन्त्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा।
नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा॥ ३३

योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ग्रथितं गुणसूत्रतः॥ ३४

यथा सा स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत।
तथा करोति सुहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः॥ ३५

यद्यहं स्यां स्वतन्त्रो वै चिन्तयन्तु धिया किल।
कुतोऽभवं मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे॥ ३६

तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः।
किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे॥ ३७

कोलो वाथ नृसिंहो वा वामनो वाभवं कुतः।
जमदग्निसुतः कस्मात्सम्भवेयं पितामह॥ ३८

नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले।
क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथं पुनः॥ ३९

तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रो भूत्वा द्विजोत्तमः।
क्षत्रियान्हतवानाजौ निर्दयो गर्भगानपि॥ ४०

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करनेपर पवित्र हृदयवाले वे गरुडध्वज भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये और उन्होंने ब्रह्मा आदि देवताओंको अपने दर्शन दिये। प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णुने देवताओंका स्वागत किया और विस्तारपूर्वक उनके आगमनका कारण पूछा॥ २९-३०॥

तदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम करनेके उपरान्त पृथ्वीके दुःखका स्मरण करते हुए उनसे कहा—हे विष्णो! हे जनार्दन! अब पृथ्वीका भार दूर कर देना आपका कर्तव्य है। अतः हे दयानिधे! द्वापरका अन्तिम समय उपस्थित होनेपर आप पृथ्वीपर अवतार लेकर दुष्ट राजाओंको मारकर पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ ३१-३२॥

विष्णु बोले—इस विषयमें मैं (विष्णु), ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण—कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् योगमायाके अधीन रहता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ [सात्त्विक, राजस, तामस] गुणोंके सूत्रोंद्वारा उन्हींमें गुँथा हुआ है॥ ३३-३४॥

हे सुव्रत! वे हितकारिणी भगवती सर्वप्रथम स्वेच्छापूर्वक जैसा करना चाहती हैं, वैसा ही करती हैं। हमलोग भी सदा उनके ही अधीन रहते हैं॥ ३५॥

अब आपलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार करें कि यदि मैं स्वतन्त्र होता तो महासमुद्रमें मत्स्य और कच्छपरूपधारी क्यों बनता? तिर्यक्-योनियोंमें कौन-सा भोग प्राप्त होता है, क्या यश मिलता है, कौन-सा सुख होता है और कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? [इस प्रकार] क्षुद्रयोनियोंमें जन्म लेनेवाले मुझ विष्णुको क्या फल मिला?॥ ३६-३७॥

यदि मैं स्वतन्त्र होता तो सूकर, नृसिंह और वामन क्यों बनता? इसी प्रकार हे पितामह! मैं जमदग्निपुत्र (परशुराम)-के रूपमें उत्पन्न क्यों होता? इस भूतलपर मैं [क्षत्रियोंके संहार जैसा] नृशंस कर्म क्यों करता और उनके रुधिरसे समस्त सरोवरोंको क्यों भर डालता? उस समय मैं जमदग्निपुत्र परशुरामके रूपमें जन्म लेकर एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी युद्धमें क्षत्रियोंका संहार क्यों करता और घोर निर्दयी बनकर गर्भस्थ शिशुओंतकको भला क्यों मारता?॥ ३८—४०॥

रामो भूत्वाथ देवेन्द्र प्राविशद्दण्डकं वनम्।
पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः॥ ४१

असहायो ह्यपाथेयो भीषणे निर्जने वने।
कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः॥ ४२

न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया पिहितस्तदा।
उटजे जानकीं त्यक्त्वा निर्गतस्तत्पदानुगः॥ ४३

लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः।
वारितोऽपि मयात्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः॥ ४४

भिक्षुरूपं ततः कृत्वा रावणः कपटाकृतिः।
जहार तरसा रक्षो जानकीं शोककर्शिताम्॥ ४५

दुःखार्तेन मया तत्र रुदितञ्च वने वने।
सुग्रीवेण च मित्रत्वं कृतं कार्यवशान्मया॥ ४६

अन्यायेन हतो वाली शापाच्चैव निवारितः।
सहायान्वानरान् कृत्वा लङ्कायां चलितः पुनः॥ ४७

बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्च ममानुजः।
विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः॥ ४८

गरुडेन तदागत्य मोचितौ भ्रातरौ किल।
चिन्ता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति॥ ४९

हृतं राज्यं वने वासो मृतस्तातः प्रिया हृता।
युद्धं कष्टं ददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति॥ ५०

प्रथमं तु महद्दुःखमराज्यस्य वनाश्रयम्।
राजपुत्र्यान्वितस्यैव धनहीनस्य मे सुराः॥ ५१

वराटिकापि पित्रा मे न दत्ता वननिर्गमे।
पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः॥ ५२
चतुर्दशैव वर्षाणि नीतानि च तदा मया।
क्षात्रं धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने॥ ५३

हे देवेन्द्र! रामका अवतार लेकर मुझे दण्डकवनमें पैदल विचरण करना पड़ा, गेरुआ वस्त्र धारण करना पड़ा और जटा-वल्कलधारी बनना पड़ा। उस निर्जन वनमें असहाय रहते हुए तथा पासमें बिना किसी भोज्य-सामग्रीके ही निर्लज्ज होकर आखेट करते हुए मैं इधर-उधर भटकता रहा॥ ४१-४२॥

उस समय मायासे आच्छादित रहनेके कारण मैं उस मायावी स्वर्ण-मृगको नहीं पहचान सका और जानकीको पर्णकुटीमें छोड़कर उस मृगके पीछे-पीछे निकल पड़ा॥ ४३॥

मेरे बहुत मना करनेपर भी प्राकृत गुणोंसे व्यामुग्ध होनेके कारण लक्ष्मण भी उस सीताको छोड़कर मेरे पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए वहाँसे निकल पड़े॥ ४४॥

तदनन्तर कपटस्वभाव राक्षस रावणने भिक्षुकका रूप धारण करके शोकसे व्याकुल जानकीका तत्काल हरण कर लिया॥ ४५॥

तब दुःखसे व्याकुल होकर मैं वन-वन भटकता हुआ रोता रहा और अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मैंने सुग्रीवसे मित्रता की। मैंने अन्यायपूर्वक वालीका वध किया तथा उसे शापसे मुक्ति दिलायी और इसके बाद वानरोंको अपना सहायक बनाकर लंकाकी ओर प्रस्थान किया॥ ४६-४७॥

[वहाँ युद्धमें] मैं तथा मेरा छोटा भाई लक्ष्मण दोनों ही नागपाशोंसे बाँध दिये गये। हम दोनोंको अचेत पड़ा देखकर सभी वानर आश्चर्यचकित हो गये। तब गरुड़ने आकर हम दोनों भाइयोंको छुड़ाया। उस समय मुझे महान् चिन्ता होने लगी कि दैव अब न जाने क्या करेगा? राज्य छिन गया, वनमें वास करना पड़ा, पिताकी मृत्यु हो गयी और प्रिय सीता हर ली गयी। युद्ध कष्ट दे ही रहा है, अब आगे दैव न जाने क्या करेगा!॥ ४८—५०॥

हे देवतागण! सर्वप्रथम दुःख तो मुझ राज्यविहीनका वनवास हुआ; वनके लिये चलते समय राजकुमारी सीता मेरे साथ थीं और मेरे पास धन भी नहीं था। वन जाते समय पिताजीने मुझे एक वराटिका (कौड़ी) भी नहीं दी; असहाय तथा धनविहीन मैं पैदल ही निकल पड़ा। उस समय क्षत्रियधर्मका त्याग करके व्याधवृत्तिके द्वारा मैंने उस महावनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये॥ ५१—५३॥

दैवाद्युद्धे जयः प्राप्तो निहतोऽसौ महासुरः।
आनीता च पुनः सीता प्राप्तायोध्या मया तथा॥ ५४

वर्षाणि कतिचित्तत्र सुखं संसारसम्भवम्।
प्राप्तं राज्यञ्च सम्पूर्णं कोसलानधितिष्ठता॥ ५५

पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येन वै तदा।
लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया॥ ५६

कान्ताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम्।
पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्त्वा धरात्मजा॥ ५७

एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरन्तरम्।
परतन्त्रेण मे नूनं स्वतन्त्रः को भवेत्तदा॥ ५८

पश्चात्कालवशात्प्राप्तः स्वर्गो मे भ्रातृभिः सह।
परतन्त्रस्य का वार्ता वक्तव्या विबुधेन वै॥ ५९

परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय।
तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः॥ ६०

तदनन्तर भाग्यवश युद्धमें मुझे विजय प्राप्त हुई और वह महान् असुर रावण मारा गया। इसके बाद मैं सीताको ले आया और मुझे अयोध्या फिरसे प्राप्त हो गयी। इस प्रकार जब मुझे सम्पूर्ण राज्य मिल गया, तब कोसलदेशपर अधिष्ठित रहते हुए मैंने वहाँपर कुछ वर्षोंतक सांसारिक सुखका भोग किया॥ ५४-५५॥

इस प्रकार पूर्वकालमें जब मुझे राज्य प्राप्त हो गया तब मैंने लोकनिन्दाके भयसे वनमें सीताका परित्याग कर दिया। इसके बाद मुझे पुनः पत्नी-वियोगसे होनेवाला भयंकर दुःख प्राप्त हुआ। वह धरानन्दिनी सीता पृथ्वीको भेदकर पातालमें चली गयी॥ ५६-५७॥

इस प्रकार रामावतारमें भी मैं परतन्त्र होकर निरन्तर दुःख पाता रहा। तब भला दूसरा कौन स्वतन्त्र हो सकता है? तत्पश्चात् कालके वशीभूत होकर मुझे अपने भाइयोंके साथ स्वर्ग जाना पड़ा। अतः कोई भी विद्वान् पराधीन व्यक्तिकी क्या बात करेगा? हे कमलोद्भव! आप यह जान लीजिये कि जैसे मैं परतन्त्र हूँ वैसे ही आप, शंकर तथा अन्य सभी बड़े-बड़े देवता भी निश्चितरूपसे परतन्त्र हैं॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे ब्रह्माणं प्रति विष्णुवाक्यं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन, भगवतीद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर अपनी शक्तिसे पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन देना

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह प्रजापतिम्।
यन्मायामोहितः सर्वस्तत्त्वं जानाति नो जनः॥ १

वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम्।
परमं पुरुषं शान्तं सच्चिदानन्दमव्ययम्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ऐसा कहनेके उपरान्त भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे फिर कहा—जिन भगवतीकी मायासे मोहित रहनेके कारण सभी लोग परमतत्त्वको नहीं जान पाते, उन्हींकी मायासे आच्छादित रहनेके कारण हम लोग भी जगद्गुरु, शान्तस्वरूप, सच्चिदानन्द तथा अविनाशी परमपुरुषका स्मरण नहीं कर पाते॥ १-२॥
~~~

अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः।
न जानीमो वयं धातः परं वस्तु सनातनम्॥ ३

यन्मायामोहितश्चाहं सदा वर्ते परात्मनः।
परवान्दारुपाञ्चाली मायिकस्य यथा वशे॥ ४

भवतापि तथा दृष्टा विभूतिस्तस्य चाद्भुता।
कल्पादौ भवयुक्तेन मयापि च सुधार्णवे॥ ५

मणिद्वीपेऽथ मन्दारविटपे रासमण्डले।
समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुता न वचसापि च॥ ६

तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरन्त्वद्य सुराः शिवाम्।
सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः॥ ७

व्यास उवाच

इत्युक्ता हरिणा देवा ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम्।
सस्मरुर्मनसा देवीं योगमायां सनातनीम्॥ ८

स्मृतमात्रा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
पाशाङ्कुशवराभीतिधरा देवी जपारुणा।
दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम्॥ ९

देवा ऊचुः

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्विस्फुलिङ्गा विभावसोः।
तथा जगद्यदेतस्या निर्गतं तां नता वयम्॥ १०

यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।
तां चितं भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम्॥ ११

यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम्।
संविद्रूपां च तां देवीं स्मरामः सा प्रचोदयात्॥ १२

हे ब्रह्मन्! मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं शिव हूँ—इसी [अभिमानसे] मोहित हमलोग उस सनातन परम-तत्त्वको नहीं जान पाते॥ ३॥

उस परमात्माकी मायासे मोहित मैं उसी प्रकार सदा उसके अधीन रहता हूँ, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है॥ ४॥

कल्पके आरम्भमें आप (ब्रह्मा)-ने, शिवने तथा मैंने भी सुधासागरमें उस परमात्माकी अद्भुत विभूतिका दर्शन किया था। मणिद्वीपमें मन्दारवृक्षके नीचे चल रहे रासमण्डलमें एकत्रित सभामें भी वह विभूति साक्षात् देखी गयी थी; न कि वह केवल कही-सुनी गयी बात है॥ ५-६॥

अतएव इस अवसरपर सभी देवता उसी परमा शक्ति, कल्याणकारिणी, सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली, माया-स्वरूपिणी तथा परमात्माकी आद्याशक्ति भगवतीका स्मरण करें॥ ७॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि देवता सदा विराजमान रहनेवाली भगवती योगमायाका एकाग्र मनसे ध्यान करने लगे॥ ८॥

उनके स्मरण करते ही भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया। उस समय वे देवी जपाकुसुमके समान रक्तवर्णसे सुशोभित थीं और उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण कर रखी थी। उन परम सुन्दर भगवतीको देखकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे॥ ९॥

देवता बोले—जिस प्रकार मकड़ीकी नाभिसे तन्तु तथा अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार यह जगत् जिनसे प्रकट हुआ है, उन भगवतीको हम नमस्कार करते हैं॥ १०॥

जिनकी मायाशक्तिसे सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्णतः ओत-प्रोत है, उन चित्स्वरूपिणी करुणासिन्धु भुवनेश्वरीका हम स्मरण करते हैं॥ ११॥

जिन्हें न जाननेसे संसारमें बार-बार जन्म होता रहता है और जिनका ज्ञान हो जानेसे भव-बन्धनका नाश हो जाता है, उन ज्ञानस्वरूपिणी भगवतीका हम स्मरण करते हैं। वे हमें [सन्मार्गपर चलनेके लिये]

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ १३

मातर्नताः स्म भुवनार्तिहरे प्रसीद
शन्नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे।
भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं
मह्या महेश्वरि सतां कुरु शं भवानि॥ १४

यद्यम्बुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्
किं ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम्।
एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं
धृत्वा तृणं दह हुताश पदाभिलाषैः॥ १५

कंसः कुजोऽथ यवनेन्द्रसुतश्च केशी
बार्हद्रथो बकबकीखरशाल्वमुख्याः।
येऽन्ये तथा नृपतयो भुवि सन्ति तांस्त्वं
हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः॥ १६

ये विष्णुना न निहताः किल शङ्करेण
ये वा विगृह्य जलजाक्षि पुरन्दरेण।
ते ते मुखं सुखकरं सुसमीक्षमाणाः
संख्ये शरैर्विनिहता निजलीलया ते॥ १७

शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च
नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि।
किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनन्तो
धर्तुं धराञ्च रजनीशकलावतंसे॥ १८

इन्द्र उवाच

वाचा विना विधिरलं भवतीह विश्वं
कर्तुं हरिः किमु रमारहितोऽथ पातुम्।
संहर्तुमीश उमयोज्झित ईश्वरः किं
ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः॥ १९

प्रेरित करें। हम उन महालक्ष्मीको जानें। हम सर्वशक्तिमयी भगवतीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें [सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेकी] प्रेरणा प्रदान करें॥ १२-१३॥

संसारका कष्ट हरनेवाली हे माता! हम आपको प्रणाम करते हैं, आप प्रसन्न होइये। हे दयासे आर्द्र हृदयवाली! हमारा कल्याण कीजिये; हमारा यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये। हे महेश्वरि! असुर-समुदायका संहार करके पृथ्वीका भार उतार दीजिये। हे भवानि! आप सज्जनोंका कल्याण करें॥ १४॥

हे कमलनयने! यदि आप देवताओंपर दया नहीं करेंगी तो वे समरांगणमें तलवारों तथा बाणोंसे [दैत्योंपर] प्रहार करनेमें समर्थ कैसे हो सकेंगे? इस बातको आपने स्वयं [यक्षोपाख्यान-प्रसंगमें] यक्षरूप धारण करके 'हे हुताशन! आप इस तिनकेको जला दें' इत्यादि पद-कथनोंके द्वारा व्यक्त कर दिया है॥ १५॥

हे माता! कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, बृहद्रथ-पुत्र जरासन्ध, बकासुर, पूतना, खर और शाल्व आदि तथा इनके अतिरिक्त और भी जो दुष्ट राजागण पृथ्वीपर हैं, उन्हें मारकर आप शीघ्र ही पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ १६॥

हे कमलनयने! जिन दैत्योंको भगवान् विष्णु, शिव और इन्द्र भी [कई बार] युद्ध करके नहीं मार सके, वे दैत्य युद्धभूमिमें आपका सुखदायक मुखमण्डल देखते हुए आपकी लीलासे आपके बाणोंके द्वारा मार डाले गये॥ १७॥

चन्द्रकलाको मस्तकपर धारण करनेवाली हे देवदेवि! विष्णु, शिव आदि प्रमुख देवता भी आपकी शक्तिके बिना हिलने-डुलनेतकमें समर्थ नहीं हैं। इसी प्रकार क्या शेषनाग भी आपकी शक्तिके बिना पृथ्वीको धारण कर सकनेमें समर्थ हैं?॥ १८॥

इन्द्र बोले—[हे माता!] क्या सरस्वतीके बिना ब्रह्मा इस विश्वकी सृष्टि करनेमें, लक्ष्मीके बिना विष्णु पालन करनेमें और पार्वतीके बिना शिवजी संहार करनेमें समर्थ हो सकते हैं? वे महान् देवगण उन्हीं [तीनों महाशक्तियों]-के साथ अपना-अपना कार्य कर सकनेमें समर्थ होते हैं॥ १९॥

विष्णुरुवाच

कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाहं
नापीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः।
कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं
त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम्॥ २०

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान्।
किं तत्कार्यं वदन्त्वद्य करोमि विगतज्वराः॥ २१
असाध्यमपि लोकेऽस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम्।
शंसन्तु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः॥ २२

देवा ऊचुः

वसुधेयं भराक्रान्ता सम्प्राप्ता विबुधान्प्रति।
रुदती वेपमाना च पीडिता दुष्टभूभुजैः॥ २३
भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि।
देवानामीप्सितं कार्यमेतदेवाधुना शिवे॥ २४
घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत्।
दानवोऽतिबलाक्रान्तस्तत्सहायाश्च कोटिशः॥ २५
तथा शुम्भो निशुम्भश्च रक्तबीजस्तथापरः।
चण्डमुण्डौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः॥ २६
दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चाति वीर्यवान्।
अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः॥ २७
तथैव च सुरारींश्च जहि सर्वान्महीश्वरान्।
(भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम्।)

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी देवानाहाम्बिका शिवा॥ २८
सम्प्रहस्यासितापाङ्गी मेघगम्भीरया गिरा।

श्रीदेव्युवाच

मयेदं चिन्तितं पूर्वमंशावतरणं सुराः॥ २९
भारावतरणं चैव यथा स्याद्दुष्टभूभुजाम्।
मया सर्वे निहन्तव्या दैत्येशा ये महीभुजः॥ ३०

विष्णु बोले—हे अनघे! आपकी कलासे रहित होकर न तो ब्रह्मा इस त्रिलोकीकी रचना कर सकनेमें, न तो मैं इसका पालन कर सकनेमें और न तो शिव इसका संहार कर सकनेमें समर्थ हैं। हे समस्त विभवोंकी स्वामिनि! इसका सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ निश्चितरूपसे आप ही प्रतीत होती हैं॥ २०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन देवताओंने जब देवीकी स्तुति की, तब उन्होंने उन देवेश्वरोंसे कहा—वह कौन-सा कार्य है? आपलोग सन्तापरहित होकर बतायें, मैं अभी करूँगी। इस संसारमें देवताओंके द्वारा अभिलषित जो असाध्य कार्य भी होगा, उसे मैं करूँगी। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग अपना तथा पृथ्वीका दुःख मुझे बताइये॥ २१-२२॥

देवता बोले—दुष्ट राजाओंसे पीड़ित यह पृथ्वी उनके भारसे व्याकुल होकर रोती तथा थर-थर काँपती हुई हम देवताओंके पास आयी। हे भुवनेश्वरि! आप इसका भार उतार दें। हे शिवे! इस समय हम देवताओंका यही अभीष्ट कार्य है॥ २३-२४॥

हे माता! पूर्वकालमें आप अत्यधिक बलसम्पन्न दानव महिषासुरका वध कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आप उसके करोड़ों सहायकों, शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबली चण्ड-मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह, अतिशय बलवान् कराल तथा दूसरे भी अनेक क्रूर दानवोंको मार चुकी हैं। उसी प्रकार आप हम देवताओंके शत्रुरूप सभी दुष्ट राजाओंका वध कीजिये। (दुष्ट राजाओंका वध करके पृथ्वीका दुःसह भार उतार दीजिये)॥ २५—२७½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवताओंके ऐसा कहनेपर नीले नेत्रप्रान्तवाली कल्याणमयी भगवती हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं—॥ २८½॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवताओ! मैंने यह पहलेसे ही सोच रखा है कि मैं अंशावतार धारण करूँ, जिससे पृथ्वीपरसे दुष्ट राजाओंका भार उतर जाय। हे महाभाग देवताओ! मन्द तेजवाले जरासन्ध आदि जो बड़े-बड़े दैत्य राजागण हैं, उन सबको मैं अपनी

मागधाद्या महाभागाः स्वशक्त्या मन्दतेजसः।
भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्य धरातले॥ ३१

मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः।
कश्यपो भार्यया सार्धं दिविजानां प्रजापतिः॥ ३२

यादवानां कुले पूर्वं भवितानकदुन्दुभिः।
तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः॥ ३३

अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः।
तदाहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले॥ ३४

कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः।
कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले॥ ३५

शेषं च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम्।
मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंक्षयम्॥ ३६

दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरान्ते सुनिश्चितम्।
इन्द्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम्॥ ३७

धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः।
वाय्वंशो भीमसेनश्चाश्विन्यंशौ च यमावपि॥ ३८

वसोरंशोऽथ गाङ्गेयः करिष्यति बलक्षयम्।
व्रजन्तु च भवन्तोऽद्य धरा भवतु सुस्थिरा॥ ३९

भारावतरणं नूनं करिष्यामि सुरोत्तमाः।
कृत्वा निमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याहं न संशयः॥ ४०

कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम्।
असूयेर्ष्या मतिस्तृष्णा ममताभिमता स्पृहा॥ ४१

जिगीषा मदनो मोहो दोषैर्नंक्ष्यन्ति यादवाः।
ब्राह्मणस्य च शापेन वंशनाशो भविष्यति॥ ४२

भगवानपि शापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम्।
भवन्तोऽपि निजाङ्गैश्च सहायाः शार्ङ्गधन्वनः॥ ४३

प्रभवन्तु सनारीका मथुरायां च गोकुले।

शक्तिसे मार डालूँगी। हे देवतागण! आपलोग भी अपने-अपने अंशोंसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मेरी शक्तिसे युक्त होकर भार उतारें॥ २९—३१½ ॥

मेरे अवतार लेनेसे पूर्व देवताओंके प्रजापति कश्यप अपनी पत्नीके साथ यदुकुलमें वसुदेव नामसे अवतीर्ण होंगे। उसी प्रकार भृगुके शापसे अविनाशी भगवान् विष्णु अपने अंशसे वहींपर वसुदेवके पुत्रके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ ३२-३३½ ॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उस समय मैं भी गोकुलमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होऊँगी और देवताओंका सारा कार्य सिद्ध करूँगी। कारागारमें अवतीर्ण हुए [कृष्णरूपधारी] विष्णुको मैं गोकुलमें पहुँचा दूँगी और देवकीके गर्भसे शेषभगवान्को खींचकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दूँगी। मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे दोनों ही दुष्टोंका विनाश करेंगे। द्वापरके व्यतीत होते ही दुष्ट राजाओंका पूर्णरूपसे संहार बिलकुल निश्चित है॥ ३४—३६½ ॥

साक्षात् इन्द्रके अंशस्वरूप अर्जुन भी [उन दुष्ट राजाओंके] बलका नाश करेंगे। धर्मके अंशरूप महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशरूप भीमसेन तथा दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशरूप नकुल-सहदेव भी उत्पन्न होंगे। [उसी समय] वसुके अंशसे अवतीर्ण गंगापुत्र भीष्म उन दुष्ट राजाओंकी शक्ति नष्ट करेंगे॥ ३७—३८½ ॥

हे श्रेष्ठ देवतागण! अब आपलोग जायँ और पृथ्वी भी निश्चिन्त होकर रहे। मैं उन अंशावतारी लोगोंको निमित्तमात्र बनाकर अपनी शक्तिसे इस पृथ्वीका भार दूर करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। मैं क्षत्रियोंका यह संहार कुरुक्षेत्रमें करूँगी॥ ३९-४०½ ॥

असूया, ईर्ष्या, बुद्धि, तृष्णा, ममता, अपनी प्रिय वस्तुकी इच्छा, स्पृहा, विजयकी अभिलाषा, काम और मोह—इन दोषोंके कारण सभी यादव नष्ट हो जायँगे। ब्राह्मणके शापसे उनके वंशका नाश हो जायगा और उसी शापवश भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शरीरका त्याग कर देंगे। अब आपलोग भी अपनी शक्तिस्वरूपा भार्याओंसहित अपने-अपने अंशोंसे मथुरा तथा गोकुलमें अवतरित हों और शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सहायक बनें॥ ४१—४३½ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी योगमाया परात्मनः॥ ४४
सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि च।
धरापि सुस्थिरा जाता तस्या वाक्येन तोषिता॥ ४५
ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय।
प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्महोदयम्।
सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुर्धर्मतत्पराः॥ ४६

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमात्माकी योगमाया भगवती अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर पृथ्वीसहित सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। पृथ्वी भी उन भगवतीकी वाणीसे सन्तुष्ट होकर शान्तचित्त हो गयी। हे जनमेजय! वह औषधियों और लताओंसे सम्पन्न हो गयी। प्रजाएँ सुखी हो गयीं, द्विजगणोंकी महान् उन्नति होने लगी और सभी मुनिगण सन्तुष्ट होकर धर्मपरायण हो गये॥ ४४—४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देवान् प्रति देवीवाक्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा जनमेजयको भगवतीकी महिमा सुनाना तथा कृष्णावतारकी कथाका उपक्रम

व्यास उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा।
कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया॥ १

व्यासजी बोले—हे भारत! सुनिये, अब मैं आपको पृथ्वीका भार उतारने और कुरुक्षेत्र तथा प्रभासक्षेत्रमें योगमायाके द्वारा सेनाके संहारका वृत्तान्त बताऊँगा॥ १॥

यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः।
भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च॥ २
क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मतिः।
मायया विहितो योगो विष्णोर्जन्म धरातले॥ ३

भृगुके शापके प्रताप तथा महामायाकी शक्तिसे ही अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुका आविर्भाव यदुवंशमें हुआ था। मेरा यह मानना है कि पृथ्वीका भार उतारना तो निमित्तमात्र था, वस्तुतः योगमायाने ही इस संयोगका विधान कर दिया था कि धरातलपर भगवान् विष्णुका अवतार हो॥ २-३॥

किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि।
नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणानपरान्किमु॥ ४

हे राजन्! इसमें आश्चर्य कैसा! वे भगवती योगमाया जब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंको भी निरन्तर नचाती रहती हैं, तब त्रिगुणात्मक सामान्यजनकी क्या बात!॥ ४॥

गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम्।
विष्णोरापादितं सम्यग्यया विगतलीलया॥ ५

उन भगवतीने अपनी रहस्यमयी लीलासे भगवान् विष्णुको भी सम्यक् रूपसे मल, मूत्र तथा स्नायुसे भरे गर्भवाससे होनेवाला दुःख भोगनेको विवश कर दिया था॥ ५॥

पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः।
विदितं ते यथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः॥ ६

पूर्वकालमें रामावतारके समय भी उन्हीं योगमायाने जिस प्रकार देवताओंको वानर बना दिया था और [राम-रूपमें अवतीर्ण] भगवान् विष्णुको दुःखपाशसे व्यथित कर दिया था, वह तो आपको विदित ही है॥ ६॥

अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप।
योगिनो मुक्तसङ्गाश्च भुक्तिकामा मुमुक्षवः॥ ७

तामेव समुपासन्ते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्।
यद्भक्तिलेशलेशांशलेशलेशलवांशकम् ॥ ८

लब्ध्वा मुक्तो भवेज्जन्तुस्तां न सेवेत को जनः।
भुवनेशीत्येव वक्त्रे ददाति भुवनत्रयम्॥ ९

मां पाहीत्यस्य वचसो देयाभावादृणान्विता।
विद्याविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव॥ १०

विद्यया मुच्यते जन्तुर्बध्यतेऽविद्यया पुनः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगाः॥ ११

अवताराः सर्व एव यन्त्रिता इव दामभिः।
कदाचिच्च सुखं भुंक्ते वैकुण्ठे क्षीरसागरे॥ १२

कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः।
हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै विततान्प्रकरोति च॥ १३

कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत।
कदाचिच्छयने शेते योगनिद्रामुपाश्रितः॥ १४

न स्वतन्त्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः।
तथा ब्रह्मा तथा रुद्रस्तथेन्द्रो वरुणो यमः॥ १५

कुबेरोऽग्नी रवीन्दू च तथान्ये सुरसत्तमाः।
मुनयः सनकाद्याश्च वसिष्ठाद्यास्तथापरे॥ १६

सर्वेऽम्बावशगा नित्यं पाञ्चालीव नरस्य च।
नसि प्रोता यथा गावो विचरन्ति वशानुगाः॥ १७

तथैव देवताः सर्वाः कालपाशनियन्त्रिताः।
हर्षशोकादयो भावा निद्रातन्द्रालसादयः॥ १८

सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः।
अमरा निर्जराः प्रोक्ता देवाश्च ग्रन्थकारकैः॥ १९

हे महाराज! अहंता और ममताके इस सुदृढ़ बन्धनसे सभी लोग आबद्ध हैं। अतः अनासक्त तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाले योगीजन और भोगकी कामना करनेवाले लोग भी उन्हीं कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं। जिन योगमायाकी भक्तिके लेशलेशांशके लेशलेशलवांशको प्राप्त करके प्राणी मुक्त हो जाता है, उनकी उपासना कौन व्यक्ति नहीं करेगा? 'हे भुवनेशि!' ऐसा उच्चारण करनेवालेको वे भगवती तीनों लोक प्रदान कर देती हैं और 'मेरी रक्षा कीजिये' इस वाक्यके कहनेपर [उसे पहले ही त्रिलोक दे देनेके कारण] अब कुछ भी न दे पानेसे वे उस भक्तकी ऋणी हो जाती हैं। हे राजन्! आप उन भगवतीके विद्या तथा अविद्या—ये दो रूप जानिये। विद्यासे प्राणी मुक्त होता है और अविद्यासे बन्धनमें पड़ता है॥ ७—१०½ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब उनके अधीन रहते हैं। भगवान्के सभी अवतार रस्सीसे बँधे हुएके समान भगवतीसे ही नियन्त्रित रहते हैं। भगवान् विष्णु कभी वैकुण्ठमें और कभी क्षीरसागरमें आनन्द लेते हैं, कभी अत्यधिक बलशाली दानवोंके साथ युद्ध करते हैं, कभी बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, कभी तीर्थमें कठोर तपस्या करते हैं और हे सुव्रत! कभी योगनिद्राके वशीभूत होकर शय्यापर सोते हैं। वे भगवान् मधुसूदन कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहते॥ ११—१४½ ॥

ऐसे ही ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अन्य श्रेष्ठ देवतागण, सनक आदि मुनि और वसिष्ठ आदि महर्षि—ये सब-के-सब बाजीगरके अधीन कठपुतलीकी भाँति सदा भगवतीके वशमें रहते हैं। जिस प्रकार नथे हुए बैल अपने स्वामीके अधीन रहकर विचरण करते हैं, उसी प्रकार सभी देवता कालपाशमें आबद्ध रहते हैं॥ १५—१७½ ॥

हे राजन्! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदि भाव सभी देहधारियोंके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। ग्रन्थकारोंने देवताओंको अमर (मृत्युरहित) तथा निर्जर (बुढ़ापारहित) कहा है, किंतु वे निश्चय ही केवल नामसे अमर हैं, अर्थसे कभी भी वैसे नहीं हैं।

अभिधानतश्चार्थतो न ते नूनं तादृशाः क्वचित्।
उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरन्तरम्॥ २०

अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्च कथं पुनः।
कथं दुःखाभिभूता वा जायन्ते विबुधोत्तमाः॥ २१

कथं देवाश्च वक्तव्या व्यसने क्रीडनं कथम्।
क्षणादुत्पत्तिनाशश्च दृश्यतेऽस्मिन्न संशयः॥ २२

जलजानां च कीटानां मशकानां तथा पुनः।
उपमा न कथं चैषामायुषोऽन्ते मराः स्मृताः॥ २३

ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुषस्तथा।
मनुष्या ह्यमरा देवास्तस्माद् ब्रह्मा परः स्मृतः॥ २४

रुद्रस्तथा तथा विष्णुः क्रमशश्च भवन्ति हि।
नश्यन्ति क्रमशश्चैव वर्धन्ति चोत्तरोत्तरम्॥ २५

नूनं देहवतो नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च।
चक्रवद् भ्रमणं राजन् सर्वेषां नात्र संशयः॥ २६

मोहजालावृतो जन्तुर्मुच्यते न कदाचन।
मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति॥ २७

उत्पित्सुकाल उत्पत्तिः सर्वेषां नृप जायते।
तथैव नाशः कल्पान्ते ब्रह्मादीनां यथाक्रमम्॥ २८

निमित्तं यस्तु यन्नाशे स घातयति तं नृप।
नान्यथा तद्भवेन्नूनं विधिना निर्मितं तु यत्॥ २९

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा।
तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः॥ ३०

जिनमें सदा उत्पत्ति, स्थिति और विनाश नामक अवस्थाएँ रहती हैं, वे अमर और निर्जर कैसे कहे जा सकते हैं? वे देवता विबुध (विशेष बुद्धिवाले) होते हुए भी दुःखोंसे पीड़ित क्यों होते हैं? जब वे भी [सामान्य लोगोंकी भाँति] व्यसन तथा क्रीडामें आसक्त रहते हैं, तब उन्हें देव क्यों कहा जाय? इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य जीवोंकी भाँति इनकी भी क्षणमें उत्पत्ति होती है और क्षणमें नाश होता है। [ऐसी स्थितिमें] इनकी उपमा जलमें उत्पन्न होनेवाले कीटों और मच्छरोंसे क्यों न दी जाय? और जब आयुके समाप्त होनेपर वे भी मर जाते हैं, तब उन्हें [अमर न कहकर] 'मर' क्यों न कहा जाय?॥ १८—२३॥

कुछ मनुष्य एक वर्षकी आयुवाले और कुछ सौ वर्षकी आयुवाले होते हैं, उनसे अधिक आयुवाले देवता होते हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले ब्रह्मा कहे गये हैं। ब्रह्मासे अधिक आयुवाले शिव हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले विष्णु हैं। अन्तमें वे भी नष्ट होते हैं और इसके बाद वे फिरसे क्रमशः उत्पन्न होते हैं और उत्तरोत्तर बढ़ते हैं॥ २४-२५॥

हे राजन्! निश्चितरूपसे सभी देहधारियोंकी मृत्यु होती है और मरे हुए प्राणीका जन्म होता है। इस प्रकार पहियेकी भाँति सभी प्राणियोंका [जन्म-मृत्युका] चक्कर लगा रहता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

मोहके जालमें फँसा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं होता; क्योंकि मायाके रहते मोहका बन्धन नष्ट नहीं होता है॥ २७॥

हे राजन्! सृष्टिके समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी उत्पत्ति होती है और कल्पके अन्तमें क्रमशः उनका नाश भी हो जाता है॥ २८॥

हे नृप! जिसके नाशमें जो निमित्त बन चुका है, उसीके द्वारा उसकी मृत्यु होती है। विधाताने जो रच दिया है, वह अवश्य होता है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ २९॥

जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, दुःख अथवा सुख—जो सुनिश्चित है, वह उसी रूपमें अवश्य प्राप्त होता है; इसके विपरीत दूसरा सिद्धान्त है ही नहीं॥ ३०॥

सर्वेषां सुखदौ देवौ प्रत्यक्षौ शशिभास्करौ।
न नश्यति तयोः पीडा क्वचित्तद्वैरिसम्भवा॥ ३१

भास्करस्य सुतो मन्दः क्षयी चन्द्रः कलङ्कवान्।
पश्य राजन् विधेः सूत्रं दुर्वारं महतामपि॥ ३२

वेदकर्ता जगत्स्रष्टा बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः।
सोऽपि विक्लवतां प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम्॥ ३३

शिवस्यापि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम्।
सोऽभवद्दुःखसन्तप्तः कामार्तश्च जनार्तिहा॥ ३४

कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिन्द्यां पतितः शिवः।
सापि श्यामजला जाता तन्निदाघवशान्नृप॥ ३५

कामार्तो रममाणस्तु नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम्।
गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम्॥ ३६

पतत्वद्यैव ते लिङ्गं निर्लज्जेति भृशं किल।
पपौ चामृतवापीञ्च दानवैर्निर्मितां मुदे॥ ३७

इन्द्रोऽपि च वृषो भूत्वा वाहनत्वं गतः क्षितौ।
आद्यस्य सर्वलोकस्य विष्णोरेव विवेकिनः॥ ३८

सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता।
यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल॥ ३९

राजन् मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः।
रामो विरहसन्तप्तो रुरोद भृशमातुरः॥ ४०

योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा।
भक्षिता वा हृता केन रुदन्नुच्चतरं ततः॥ ४१

प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले सूर्य तथा चन्द्रदेव सबको सुख प्रदान करते हैं, किंतु उनके शत्रु [राहु]-के द्वारा उन्हें होनेवाली पीड़ा दूर नहीं होती। सूर्यपुत्र शनैश्चर 'मन्द' और चन्द्रमा 'क्षयरोगी तथा कलंकी' कहे जाते हैं। हे राजन्! देखिये, बड़े-बड़े देवताओंके भी विषयमें विधिका विधान अटल है॥ ३१—३२॥

ब्रह्माजी वेदकर्ता, जगत्की सृष्टि करनेवाले तथा सबको बुद्धि देनेवाले हैं, किंतु वे भी सरस्वतीको देखकर विकल हो गये॥ ३३॥

जब शिवजीकी भार्या सती अपने शरीरको दग्ध करके मर गयी, तब लोगोंका दुःख दूर करनेवाले होते हुए भी वे शिवजी शोकसन्तप्त तथा पीड़ित हो गये। उस समय कामाग्निसे जलते हुए देहवाले शिवजी यमुनानदीमें कूद पड़े। तब हे राजन्! उनके तापके कारण यमुनाजीका जल श्यामवर्णका हो गया॥ ३४-३५॥

भृगुके वनमें जाकर जब वे शिवजी दिगम्बर होकर विहार करने लगे, तब भृगुमुनिने अतीव आतुर उन शिवजीको यह शाप दे दिया—हे निर्लज्ज! तुम्हारा लिंग अभी कटकर गिर जाय। तब शान्तिके लिये शिवजीने दानवोंके द्वारा निर्मित बावलीका अमृत पिया॥ ३६-३७॥

बैल बनकर इन्द्रको भी धरातलपर [सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थका] वाहन बनना पड़ा। समस्त लोकके आदिपुरुष और महान् विवेकशील भगवान् विष्णुकी सर्वज्ञता तथा प्रभुशक्ति उस समय कहाँ चली गयी थी, जब [रामावतारमें] वे स्वर्णमृग-सम्बन्धी उस विशेष रहस्यको बिलकुल नहीं जान सके!॥ ३८-३९॥

हे राजन्! मायाका बल तो देखिये कि भगवान् श्रीराम भी कामसे व्याकुल हुए। उन श्रीरामने सीताके वियोगसे संतप्त तथा व्याकुल होकर बहुत विलाप किया था। वे विह्वल होकर जोर-जोरसे रोते हुए वृक्षोंसे पूछते-फिरते थे कि सीता कहाँ चली गयी? उसे कोई [हिंसक जन्तु] खा गया या किसीने हर लिया?॥ ४०-४१॥

लक्ष्मणाहं मरिष्यामि कान्ताविरहदुःखितः।
त्वं चापि मम दुःखेन मरिष्यसि वनेऽनुज॥ ४२

आवयोर्मरणं ज्ञात्वा माता मम मरिष्यति।
शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तः कथं जीवितुमर्हति॥ ४३

सुमित्रा जीवितं जह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता।
पूर्णकामाथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता॥ ४४

हा सीते क्व गतासि त्वं मां विहाय स्मरातुरा।
एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवय कृशोदरि॥ ४५

किं करोमि क्व गच्छामि त्वदधीनञ्च जीवितम्।
समाश्वासय दीनं मां प्रियं जनकनन्दिनि॥ ४६

एवं विलपता तेन रामेणामिततेजसा।
वने वने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा॥ ४७

शरण्यः सर्वलोकानां रामः कमललोचनः।
शरणं वानराणां स गतो मायाविमोहितः॥ ४८

सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम्।
जघान रावणं वीरं कुम्भकर्णं महोदरम्॥ ४९

आनीय च ततः सीतां रामो दिव्यमकारयत्।
सर्वज्ञोऽपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना॥ ५०

किं ब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत्।
यया विश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल॥ ५१

एवं नानावतारेऽत्र विष्णुः शापवशं गतः।
करोति विविधाश्चेष्टा दैवाधीनः सदैव हि॥ ५२

तवाहं कथयिष्यामि कृष्णस्यापि विचेष्टितम्।
प्रभवं मानुषे लोके देवकार्यार्थसिद्धये॥ ५३

हे लक्ष्मण! मैं तो अपनी भार्याके वियोगसे दुःखित होकर मर जाऊँगा और हे अनुज! मेरे दुःखसे तुम भी इस वनमें मर जाओगे। इस प्रकार हम दोनोंकी मृत्यु जान करके मेरी माता कौसल्या मर जायँगी। शत्रुघ्न भी इस महान् दुःखसे पीड़ित होकर कैसे जीवित रह पायेगा? तब पुत्रमरणसे व्यथित होकर माता सुमित्रा भी अपने प्राण त्याग देंगी, किंतु अपने पुत्र भरतके साथ कैकेयीकी कामना अवश्य पूर्ण हो जायगी॥ ४२—४४॥

हा सीते! मुझे पीड़ित छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? हे मृगलोचने! आओ, आओ। हे कृशोदरि! मुझे जीवन प्रदान करो। हे जनकनन्दिनि! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा जीवन तो तुम्हारे अधीन है। अपने प्रिय मुझ दुःखितको सान्त्वना प्रदान करो॥ ४५-४६॥

इस प्रकार विलाप करते हुए तथा वन-वन भटकते हुए वे अमित तेजस्वी राम जनकपुत्री सीताको नहीं खोज पाये। तत्पश्चात् समस्त लोकोंको शरण देनेवाले वे कमलनयन श्रीराम मायासे मोहित होकर वानरोंकी शरणमें गये। उन वानरोंको सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँधा और पराक्रमी रावण, कुम्भकर्ण तथा महोदरका संहार किया॥ ४७—४९॥

तदनन्तर दुष्टात्मा रावणके द्वारा सीताको हरी गयी समझकर सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीरामने उन्हें लाकर उनकी अग्निपरीक्षा करायी॥ ५०॥

हे महाराज! योगमायाकी महिमा बहुत बड़ी है। मैं उन योगमायाके विषयमें क्या कहूँ, जिनके द्वारा नचाया हुआ यह सम्पूर्ण विश्व निरन्तर चक्कर काट रहा है॥ ५१॥

इस प्रकार शापके वशीभूत होकर भगवान् विष्णु इस लोकमें [धारण किये गये] अनेक अवतारोंमें दैवके अधीन होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं॥ ५२॥

अब मैं आपसे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य-लोकमें भगवान् श्रीकृष्णके अवतार तथा उनकी लीलाका वर्णन करूँगा॥ ५३॥

कालिन्दीपुलिने रम्ये ह्यासीन्मधुवनं पुरा।
लवणो मधुपुत्रस्तु तत्रासीद्दानवो बली॥ ५४

द्विजानां दुःखदः पापो वरदानेन गर्वितः।
निहतोऽसौ महाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै॥ ५५

शत्रुघ्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम्।
वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना॥ ५६

स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः।
निवेश्य राज्ये मतिमान्काले प्राप्ते दिवं गतः॥ ५७

सूर्यवंशक्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे।
मथुरां मुक्तिदां राजन् ययातितनयः पुरा॥ ५८

शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः।
माथुराञ्छूरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप॥ ५९

तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्च वरुणस्य वै।
वसुदेवोऽतिविख्यातः शूरसेनसुतस्तदा॥ ६०

वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः।
उग्रसेनो बभूवाथ कंसस्तस्यात्मजो महान्॥ ६१

अदितिर्देवकी जाता देवकस्य सुता तदा।
शापाद्वै वरुणस्याथ कश्यपानुगता किल॥ ६२

दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना।
विवाहे रचिते तत्र वागभूद् गगने तदा॥ ६३

कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसम्भवः।
अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हन्ता भविष्यति॥ ६४

तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः।
देववाचं तु तां मत्वा सत्यां चिन्तामवाप सः॥ ६५

किं करोमीति सञ्चिन्त्य विमर्शमकरोत्तदा।
निहत्यैनां न मे मृत्युर्भवेदद्यैव सत्वरम्॥ ६६

प्राचीन समयकी बात है—यमुनाके मनोहर तटपर मधुवन नामक एक वन था। वहाँ लवणासुर नामवाला एक बलवान् दानव रहता था, जो मधुका पुत्र था॥ ५४॥

वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर वह पापी दैत्य ब्राह्मणोंको दुःख देता था। हे महाभाग! लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने संग्राममें उसका वध कर दिया। उस मदोन्मत्तको मारकर उन्होंने मथुरा नामक परम सुन्दर नगरी बसायी॥ ५५-५६॥

कमलके समान नेत्रोंवाले अपने दो पुत्रोंको राज्यकार्यमें नियुक्त करके वे बुद्धिमान् शत्रुघ्न समय आ जानेपर स्वर्ग चले गये॥ ५७॥

सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर उस मुक्तिदायिनी मथुराको यादवोंने अधिकारमें कर लिया। हे राजन्! पूर्वकालमें राजा ययातिका शूरसेन नामक एक पराक्रमी पुत्र था, जो वहाँका राजा हुआ। हे राजन्! उसने मथुरा और शूरसेन दोनों ही राज्योंके विषयोंका भोग किया॥ ५८—५९॥

वहाँपर वरुणदेवके शापवश महर्षि कश्यपके अंशस्वरूप परम यशस्वी वसुदेवजी शूरसेनके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। पिताके मर जानेपर वे वसुदेवजी वैश्यवृत्तिमें संलग्न होकर जीवन-यापन करने लगे। उस समय वहाँके राजा उग्रसेन थे और उनका कंस नामक एक प्रतापी पुत्र था॥ ६०-६१॥

वरुणदेवके ही शापके कारण कश्यपकी अनुगामिनी अदिति भी राजा देवककी पुत्री देवकीके रूपमें उत्पन्न हुईं। महात्मा देवकने उस देवकीको वसुदेवको सौंप दिया। विवाह सम्पन्न हो जानेके पश्चात् वहाँ आकाशवाणी हुई—हे महाभाग कंस! इस देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला आठवाँ ऐश्वर्यशाली पुत्र तुम्हारा संहारक होगा॥ ६२—६४॥

उस आकाशवाणीको सुनकर महाबली कंस आश्चर्यचकित हो गया। उस आकाशवाणीको सत्य मानकर वह चिन्तामें पड़ गया। 'अब मैं क्या करूँ' ऐसा भलीभाँति सोच-विचारकर उसने यह निश्चय किया कि यदि मैं देवकीको इसी समय शीघ्र मार डालूँ तो मेरी मृत्यु नहीं होगी। मृत्युका भय उत्पन्न करनेवाले

उपायो नान्यथा चास्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे।
इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिन्तयत्॥ ६७

पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहो स्वसा।
पापेनापि प्रकर्तव्या देहरक्षा विपश्चिता॥ ६८

प्रायश्चित्तेन पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा।
प्राणरक्षा प्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा॥ ६९

विचिन्त्य मनसा कंसः खड्गमादाय सत्वरः।
जग्राह तां वरारोहां केशेष्वाकृष्य पापकृत्॥ ७०

कोशात्खड्गमुपाकृष्य हन्तुकामो दुराशयः।
पश्यतां सर्वलोकानां नवोढां तां चकर्ष ह॥ ७१

हन्यमानाञ्च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत्।
वसुदेवानुगा वीरा युद्धायोद्यतकार्मुकाः॥ ७२

मुञ्च मुञ्चेति प्रोचुस्तं ते तदाद्भुतसाहसाः।
कृपया मोचयामासुर्देवकीं देवमातरम्॥ ७३

तद्युद्धमभवद् घोरं वीराणाञ्च परस्परम्।
वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना॥ ७४

वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे।
कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये यदुसत्तमाः॥ ७५

पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिशा।
न हन्तव्या त्वया वीर विवाहोत्सवसङ्गमे॥ ७६

स्त्रीहत्या दुःसहा वीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा।
भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्या विजानता॥ ७७

अन्तर्हितेन केनापि शत्रुणा तव चास्य वा।
उदितेति कुतो न स्याद्वागनर्थकरी विभो॥ ७८

यशसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च।
अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप॥ ७९

इस विषम अवसरपर दूसरा कोई उपाय नहीं है, किंतु यह मेरी पूज्य चचेरी बहन है। अतः इसकी हत्या कैसे करूँ, वह ऐसा सोचने लगा॥ ६५—६७॥

उसने पुनः सोचा—अरे! यही बहन तो मेरी मृत्युस्वरूपा है। बुद्धिमान् मनुष्यको पापकर्मसे भी अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये। बादमें प्रायश्चित्त कर लेनेसे उस पापकी शुद्धि हो जाती है। अतः चतुर लोगोंको चाहिये कि पापकर्मसे भी अपने प्राणकी रक्षा कर लें॥ ६८–६९॥

मनमें ऐसा सोचकर पापी कंसने बाल खींचकर उस सुन्दरी देवकीको तुरंत पकड़ लिया। तत्पश्चात् म्यानसे तलवार निकालकर उसे मारनेकी इच्छासे बुरे विचारोंवाला कंस सभी लोगोंके सामने ही उस नवविवाहिता देवकीको अपनी ओर खींचने लगा॥ ७०-७१॥

उसे मारी जाती देखकर लोगोंमें महान् हाहाकार मच गया। वसुदेवजीके वीर साथीगण धनुष लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये। अद्भुत साहसवाले वे सब कंससे कहने लगे—कृपा करके इसे छोड़ दो, छोड़ दो। वे देवमाता देवकीको कंससे छुड़ाने लगे॥ ७२-७३॥

तब शक्तिशाली कंसके साथ वसुदेवजीके पराक्रमी सहायकोंका घोर युद्ध होने लगा। उस भीषण लोमहर्षक युद्धके निरन्तर होते रहनेपर जो श्रेष्ठ तथा वृद्ध यदुगण थे, उन्होंने कंसको युद्ध करनेसे रोक दिया॥ ७४-७५॥

[उन्होंने कंससे कहा—] हे वीर! यह तुम्हारी पूजनीय चचेरी बहन है। इस विवाहोत्सवके शुभ अवसरपर तुम्हें इस अबोध देवकीकी हत्या नहीं करनी चाहिये। हे वीर! स्त्रीहत्या दुःसह कार्य है; यह यशका नाश करनेवाली है और इससे घोर पाप लगता है। केवल आकाशवाणी सुनकर तुम-जैसे बुद्धिमान्‌को बिना सोचे-समझे यह हत्या नहीं करनी चाहिये॥ ७६-७७॥

हे विभो! हो-न-हो तुम्हारे या इन वसुदेवके किसी गुप्त शत्रुने यह अनर्थकारी वाणी बोल दी हो। हे राजन्! तुम्हारा यश और वसुदेवका गार्हस्थ्य नष्ट करनेके लिये किसी मायावी शत्रुने यह कृत्रिम वाणी घोषित कर दी हो॥ ७८-७९॥

बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषितभाषया।
यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणा कृतः॥ ८०

पितृष्वसा न हन्तव्या विवाहसमये पुनः।
भवितव्यं महाराज भवेच्च कथमन्यथा॥ ८१

एवं तैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत्तो नाभवद्यदा।
तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञः प्रत्यभाषत॥ ८२

कंस सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम्।
दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः॥ ८३

जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदि प्रभो।
कुम्भीपाके तदा घोरे पतन्तु मम पूर्वजाः॥ ८४

श्रुत्वाथ वचनं सत्यं पौरवा ये पुरःस्थिताः।
ऊचुस्ते त्वरिताः कंसं साधु साधु पुनः पुनः॥ ८५

न मिथ्या भाषते क्वापि वसुदेवो महामनाः।
केशं मुञ्च महाभाग स्त्रीहत्या पातकं तथा॥ ८६

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः कंसो यदुवृद्धैर्महात्मभिः।
क्रोधं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सत्यवाक्यानुमोदितः॥ ८७

ततो दुन्दुभयो नेदुर्वादित्राणि च सस्वनुः।
जयशब्दस्तु सर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि॥ ८८

प्रसाद्य कंसं प्रतिमोच्य देवकीं
महायशाः शूरसुतस्तदानीम्।
जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो
नवोढया वीतभयस्तरस्वी॥ ८९

तुम वीर होकर भी आकाशवाणीसे डर रहे हो। तुम्हारे यशरूपी वृक्षको उखाड़ फेंकनेके लिये तुम्हारे किसी शत्रुने ही यह चाल चली है॥ ८०॥

जो कुछ भी हो, विवाहके इस अवसरपर तुम्हें बहनकी हत्या तो करनी ही नहीं चाहिये। हे महाराज! होनहार तो होगी ही, उसे कोई कैसे टाल सकता है?॥ ८१॥

इस प्रकार उन वृद्ध यादवोंके समझानेपर भी जब वह कंस पापकर्मसे विरत नहीं हुआ, तब नीतिज्ञ वसुदेवजीने उससे कहा—हे कंस! तीनों लोक सत्यपर टिके हुए हैं, अतः मैं इस समय तुमसे सत्य बोल रहा हूँ। उत्पन्न होते ही देवकीके सभी पुत्रोंको लाकर मैं आपको दे दूँगा। हे विभो! यदि क्रमसे उत्पन्न होते हुए ही प्रत्येक पुत्र आपको न दे दूँ तो मेरे पूर्वज भयंकर कुम्भीपाक नरकमें गिर पड़ें॥ ८२—८४॥

वसुदेवजीका यह सत्य वचन सुनकर वहाँ जो नागरिक सामने खड़े थे, वे कंससे तुरंत बोल उठे—'बहुत ठीक, बहुत ठीक। महात्मा वसुदेव कभी भी झूठ नहीं बोलते। हे महाभाग! अब इस देवकीके केश छोड़ दीजिये; क्योंकि स्त्रीहत्या पाप है'॥ ८५-८६॥

व्यासजी बोले—उन महात्मा वृद्ध यादवोंके इस प्रकार समझानेपर कंसने क्रोध त्यागकर वसुदेवजीके सत्य वचनपर विश्वास कर लिया॥ ८७॥

तब दुन्दुभियाँ तथा अन्य बाजे ऊँचे स्वरमें बजने लगे और उस सभामें उपस्थित सभी लोगोंके मुखसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ८८॥

इस प्रकार उस समय महायशस्वी वसुदेवजी कंसको प्रसन्न करके उससे देवकीको छुड़ाकर उस नवविवाहिताके साथ अपने इष्टजनोंसहित निर्भय होकर शीघ्रतापूर्वक घर चले गये॥ ८९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे कृष्णावतारकथोपक्रमवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~o~~

अथैकविंशोऽध्यायः

देवकीके प्रथम पुत्रका जन्म, वसुदेवद्वारा प्रतिज्ञानुसार उसे कंसको अर्पित करना और कंसद्वारा उस नवजात शिशुका वध

व्यास उवाच

अथ काले तु सम्प्राप्ते देवकी देवरूपिणी।
गर्भं दधार विधिवद्वसुदेवेन सङ्गता॥ १

पूर्णेऽथ दशमे मासे सुषुवे सुतमुत्तमम्।
रूपावयवसम्पन्नं देवकी प्रथमं यदा॥ २

तदाह वसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः।
भावित्वाच्च महाभागो देवकीं देवमातरम्॥ ३

वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे।
मोचिता त्वं महाभागे शपथेन मया तदा॥ ४

इमं पुत्रं सुकेशान्ते दास्यामि भ्रातृसूनवे।
(खले कंसे विनाशार्थं दैवे किं वा करिष्यसि।)
विचित्रकर्मणां पाको दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः॥ ५

सर्वेषां किल जीवानां कालपाशानुवर्तिनाम्।
भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्॥ ६

प्रारब्धं सर्वथैवात्र जीवस्य विधिनिर्मितम्।

देवक्युवाच

स्वामिन् पूर्वं कृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः॥ ७

तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वा किं न याति क्षयं हि तत्।
लिखितो धर्मशास्त्रेषु प्रायश्चित्तविधिर्नृप॥ ८

पूर्वार्जितानां पापानां विनाशाय महात्मभिः।
ब्रह्महा हेममहारी च सुरापो गुरुतल्पगः॥ ९

द्वादशाब्दव्रते चीर्णे शुद्धिं याति यतस्ततः।
मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधानतः॥ १०

व्यासजी बोले—हे राजन्! इसके बाद समय आनेपर देवस्वरूपिणी देवकीने वसुदेवके संयोगसे विधिवत् गर्भ धारण किया॥ १॥

दसवाँ माह पूर्ण होनेपर जब देवकीने अत्यन्त रूपसम्पन्न तथा सुडौल अंगोंवाले अत्युत्तम प्रथम पुत्रको जन्म दिया तब सत्यप्रतिज्ञासे बँधे हुए महाभाग वसुदेवने होनहारसे विवश होकर देवमाता देवकीसे कहा—॥ २-३॥

हे सुन्दरि! अपने सभी पुत्र कंसको अर्पित कर देनेकी मेरी प्रतिज्ञाको तुम भलीभाँति जानती हो। हे महाभागे! उस समय इसी प्रतिज्ञाके द्वारा मैंने तुम्हें कंससे मुक्त कराया था। अतएव हे सुन्दर केशोंवाली! मैं यह पुत्र तुम्हारे चचेरे भाई कंसको अर्पित कर दे रहा हूँ। (जब दुष्ट कंस अथवा प्रारब्ध विनाशके लिये उद्यत ही है तो तुम कर ही क्या सकोगी?) अद्भुत कर्मोंका परिणाम आत्मज्ञानसे रहित प्राणियोंके लिये दुर्ज्ञेय होता है। कालके पाशमें बँधे हुए समस्त जीवोंको अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल निश्चितरूपसे भोगना ही पड़ता है। प्रत्येक जीवका प्रारब्ध निश्चित-रूपसे विधिके द्वारा ही निर्मित है॥ ४—६½॥

देवकी बोली—हे स्वामिन्! मनुष्योंको अपने पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है; किंतु क्या तीर्थाटन, तपश्चरण एवं दानादिसे वह कर्म-फल नष्ट नहीं हो सकता है? हे महाराज! पूर्व अर्जित पापोंके विनाशके लिये महात्माओंने धर्मशास्त्रोंमें तो नानाविध प्रायश्चित्तके विधानका उल्लेख किया है॥ ७-८½॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, स्वर्णका हरण करनेवाला, सुरापान करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला महापापी भी बारह वर्षोंतक व्रतका अनुष्ठान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। हे अनघ! उसी प्रकार मनु आदिके द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्तका विधानपूर्वक

तथा कृत्वा नरः पापान्मुच्यते वा न वानघ।
विगीतवचनास्ते किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥ ११

याज्ञवल्क्यादयः सर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः।
भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो॥ १२

आयुर्वेदः स मिथ्यैव मन्त्रवादास्तथाखिलाः।
उद्यमस्तु वृथा सर्वमेवं चेद्दैवनिर्मितम्॥ १३

भवितव्यं भवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका।
अग्निष्टोमादिकं व्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम्॥ १४

यदा तदा प्रमाणं हि वृथैव परिभाषितम्।
वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदः कुतो न हि॥ १५

उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपञ्चश्चित्तकल्पितः॥ १६

यथायं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः।
मिथ्या यदि प्रकर्तव्यं वचनं शुभमिच्छता॥ १७

न तत्र दूषणं किञ्चित्प्रवदन्ति मनीषिणः।

वसुदेव उवाच

निशामय महाभागे सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ १८

उद्यमः खलु कर्तव्यः फलं दैववशानुगम्।
त्रिविधानीह कर्माणि संसारेऽत्र पुराविदः॥ १९

प्रवदन्तीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च।
सञ्चितानि च जीर्णानि प्रारब्धानि सुमध्यमे॥ २०

वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीह देहिनाम्।
शुभाशुभानि कर्माणि बीजभूतानि यानि च॥ २१

बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठन्ति सर्वथा।
पूर्वदेहं परित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः॥ २२

स्वर्गं वा नरकं वापि प्राप्नोति स्वकृतेन वै।
दिव्यं देहञ्च सम्प्राप्य यातनादेहमर्थजम्॥ २३
भुनक्ति विविधान् भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथवा।

अनुष्ठान करके मनुष्य क्या पापसे मुक्त नहीं हो जाता है? [यदि प्रायश्चित्त-विधानके द्वारा पापसे मुक्ति नहीं मिलती है तो] क्या याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रप्रणेता तत्त्वदर्शी मुनियोंके वचन निरर्थक हो जायँगे? हे स्वामिन्! होनी होकर ही रहती है—यदि यह निश्चित है तब तो सभी आयुर्वेद एवं सभी मन्त्रशास्त्र झूठे सिद्ध हो जायँगे और इस प्रकार भाग्यलेखके समक्ष सभी उद्यम अर्थहीन हो जायँगे॥ ९—१३॥

'जो होना है, वह अवश्य घटित होता है' यदि [यही सत्य है] तो सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होना व्यर्थ हो जायगा और अग्निष्टोम आदि स्वर्गप्राप्तिके शास्त्र-सम्मत साधन भी निरर्थक हो जायँगे। जब वेद-शास्त्रादिके उपदेश ही व्यर्थ हो गये, तब उन प्रमाणोंके झूठा हो जानेपर क्या धर्मका समूल नाश नहीं हो जायगा?॥ १४-१५॥

उद्यम करनेपर सिद्धिकी प्रत्यक्ष प्राप्ति हो जाती है। अतएव अपने मनमें भलीभाँति सोच करके कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरा यह बालक पुत्र बच जाय। किसीके कल्याणकी इच्छासे यदि झूठ बोल दिया जाय तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ १६-१७½॥

वसुदेव बोले—हे महाभागे! सुनो, मैं तुमसे यह सत्य कह रहा हूँ। मनुष्यको उद्यम करना चाहिये, उसका फल दैवके अधीन रहता है। प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने इस संसारमें प्राणियोंके तीन प्रकारके कर्म पुराणों तथा शास्त्रोंमें बताये हैं। हे सुमध्यमे! संचित, प्रारब्ध और वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म देहधारियोंके होते हैं। हे सुजघने! प्राणियोंद्वारा सम्पादित जो भी शुभाशुभ कर्म होते हैं, वे बीजका रूप धारण कर लेते हैं और अनेक जन्मोंके उपार्जित वे कर्म समय पाकर फल देनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं॥ १८—२१½॥

जीव अपना पूर्व शरीर छोड़कर अपने द्वारा किये गये कर्मोंके अधीन होकर स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है। सुकर्म करनेवाला जीव दिव्य शरीर प्राप्त करके स्वर्गमें नानाविध सुखोंका उपभोग करता है तथा दुष्कर्म करनेवाला विषयभोगजन्य यातना देह प्राप्त करके नरकमें अनेक प्रकारके कष्ट भोगता है॥ २२-२३½॥

भोगान्ते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते॥ २४

लिङ्गदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम्।
तदैव सञ्चितेभ्यश्च कर्मभ्यः कर्मभिः पुनः॥ २५

योजयत्येव तं कालं कर्माणि प्राक्कृतानि च।
देहेनानेन भाव्यानि शुभानि चाशुभानि च॥ २६

प्रारब्धानि च जीवेन भोक्तव्यानि सुलोचने।
प्रायश्चित्तेन नश्यन्ति वर्तमानानि भामिनि॥ २७

सञ्चितानि तथैवाशु यथार्थं विहितेन च।
प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत्॥ २८

तेनायं ते कुमारो वै देयः कंसाय सर्वथा।
न मिथ्या वचनं मेऽस्ति लोकनिन्दाभिदूषितम्॥ २९

अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम्।
दैवाधीनं हि सर्वेषां मरणं जननं तथा॥ ३०

तस्माच्छोको न कर्तव्यो देहिना हि निरर्थकः।
सत्यं यस्य गतं कान्ते वृथा तस्यैव जीवितम्॥ ३१

इहलोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः।
अतो देहि सुतं सुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम्॥ ३२

सत्यसंस्तरणाद्देवि शुभमग्रे भविष्यति।
कर्तव्यं सुकृतं पुम्भिः सुखे दुःखे सति प्रिये॥ ३३

(सत्यसंरक्षणाद्देवि शुभमेव भविष्यति)

व्यास उवाच

इत्युक्तवति कान्ते सा देवकी शोकसंयुता।
ददौ पुत्रं प्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी॥ ३४

वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम्।
जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः॥ ३५

इस प्रकार भोग पूर्ण हो जानेपर जब पुनः उसके जन्मका समय आता है, तब लिंगदेहके साथ संयोग होनेपर उसकी 'जीव' संज्ञा हो जाती है। उसी समय जीवका संचित कर्मोंसे सम्बन्ध हो जाता है और पुनः लिंगदेहके आविर्भावके समय परमात्मा उन कर्मोंके साथ जीवको जोड़ देते हैं। हे सुलोचने! इसी शरीरके द्वारा जीवको संचित, वर्तमान और प्रारब्ध—इन तीन प्रकारके शुभ अथवा अशुभ कर्म भोगने पड़ते हैं। हे भामिनि! केवल वर्तमान कर्म ही प्रायश्चित्त आदिके द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। इसी प्रकार समुचित शास्त्रोक्त उपायोंद्वारा संचित कर्मोंको भी विनष्ट किया जा सकता है, किंतु प्रारब्ध कर्मोंका क्षय तो भोगसे ही सम्भव है, अन्यथा नहीं॥ २४—२८॥

अतएव मुझे तुम्हारे इस पुत्रको हर प्रकारसे कंसको अर्पित कर ही देना चाहिये। ऐसा करनेसे मेरा वचन भी मिथ्या नहीं होगा और लोकनिन्दाका दोष भी मुझे नहीं लगेगा॥ २९॥

इस अनित्य संसारमें महापुरुषोंके लिये धर्म ही एकमात्र सार-तत्त्व है। इस लोकमें प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। अतएव हे प्रिये! प्राणियोंको व्यर्थ शोक नहीं करना चाहिये। इस संसारमें जिसने सत्य छोड़ दिया उसका जीवन निरर्थक ही है॥ ३०-३१॥

जिसका यह लोक बिगड़ गया, उसके लिये परलोक कहाँ? अतः हे सुन्दर भौंहोंवाली! यह बालक मुझे दे दो और मैं इसे कंसको सौंप दूँ॥ ३२॥

हे देवि! सत्य-पथका अनुगमन करनेसे आगे कल्याण होगा। हे प्रिये! सुख अथवा दुःख—किसी भी परिस्थितिमें मनुष्योंको सत्कर्म ही करना चाहिये। (हे देवि! सत्यकी भलीभाँति रक्षा करनेसे कल्याण ही होगा)॥ ३३॥

व्यासजी बोले—अपने प्रिय पतिके ऐसा कहनेपर शोक-सन्तप्त तथा काँपती हुई मनस्विनी देवकीने वह नवजात शिशु वसुदेवको दे दिया॥ ३४॥

धर्मात्मा वसुदेव भी अपने पुत्र उस अबोध शिशुको लेकर कंसके महलकी ओर चल पड़े। मार्गमें लोग उनकी प्रशंसा कर रहे थे॥ ३५॥

लोका ऊचुः

पश्यन्तु वसुदेवं भो लोका एवं मनस्विनम्।
स्ववाक्यमनुरुध्यैव बालमादाय यात्यसौ॥ ३६

मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः।
सफलं जीवितं चास्य धर्मं पश्यन्तु चाद्भुतम्॥ ३७

यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि।

व्यास उवाच

इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप॥ ३८

ददावस्मै कुमारं तं जातमात्रममानुषम्।
कंसोऽपि विस्मयं प्राप्तो दृष्ट्वा धैर्यं महात्मनः॥ ३९

गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः।
धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य ज्ञातः पुत्रसमर्पणात्॥ ४०

मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाष्टमः।
न हन्तव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम्॥ ४१

अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते।
इत्युक्त्वा वसुदेवाय ददावाशु खलः शिशुम्॥ ४२

गच्छत्वयं गृहे बालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः।
तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा॥ ४३

कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातये शिशुम्।
अष्टमाद्देवकीपुत्रान्मम मृत्युरुदाहृतः॥ ४४

अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम्।
साधु साध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मन्त्रिसत्तमाः॥ ४५

विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति।
गतेषु तेषु सम्प्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः॥ ४६

लोगोंने कहा—हे नागरिको! इस मनस्वी वसुदेवको देखो; इस अबोध बालकको लेकर ये द्वेषरहित एवं सत्यवादी वसुदेव अपने वचनकी रक्षाके लिये आज इसे मृत्युको समर्पित करने जा रहे हैं। इनका जीवन सफल हो गया है। इनके इस अद्भुत धर्मपालनको देखो, जो साक्षात् कालस्वरूप कंसको अपना पुत्र देनेके लिये जा रहे हैं॥ ३६-३७½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार लोगोंद्वारा प्रशंसित होते हुए वे वसुदेव कंसके महलमें पहुँच गये और उस दिव्य नवजात शिशुको कंसको अर्पित कर दिया। महात्मा वसुदेवके इस धैर्यको देखकर कंस भी विस्मित हो गया॥ ३८-३९॥

उस बालकको अपने हाथोंमें लेकर कंसने मुसकराते हुए यह वचन कहा—हे शूरसेनतनय! आप धन्य हैं; आज आपके इस पुत्र-समर्पणके कृत्यसे मैंने आपका महत्त्व जान लिया॥ ४०॥

यह बालक मेरी मृत्युका कारण नहीं है; क्योंकि आकाशवाणीके द्वारा देवकीका आठवाँ पुत्र मेरी मृत्युका कारण बताया गया है। अतएव मैं इस बालकका वध नहीं करूँगा, आप इसे अपने घर ले जाइये॥ ४१॥

हे महामते! आप मुझे देवकीका आठवाँ पुत्र दे दीजियेगा। ऐसा कहकर उस दुष्ट कंसने तुरंत वह शिशु वसुदेवको वापस दे दिया॥ ४२॥

राजा कंसने कहा कि यह बालक अपने घर जाय और सकुशल रहे। तत्पश्चात् उस बालकको लेकर शूरसेन-पुत्र वसुदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने घरकी ओर चल पड़े॥ ४३॥

इसके बाद कंसने भी अपने मन्त्रियोंसे कहा कि मैं इस शिशुकी व्यर्थ ही हत्या क्यों करता; क्योंकि मेरी मृत्यु तो देवकीके आठवें पुत्रसे कही गयी है, अतः देवकीके प्रथम शिशुका वध करके मैं पाप क्यों करूँ? तब वहाँ विद्यमान श्रेष्ठ मन्त्रिगण 'साधु, साधु'—ऐसा कहकर और कंससे आज्ञा पाकर अपने-अपने घर चले गये। उनके चले जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारदजी वहाँ आ गये॥ ४४—४६॥

अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादि चकारोग्रसुतस्तदा।
पप्रच्छ कुशलं राजा तत्रागमनकारणम्॥ ४७

नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः।
कंस कंस महाभाग गतोऽहं हेमपर्वतम्॥ ४८

तत्र ब्रह्मादयो देवा मन्त्रं चक्रुः समाहिताः।
देवक्यां वसुदेवस्य भार्यायां सुरसत्तमः॥ ४९

वधार्थं तव विष्णुश्च जन्म चात्र करिष्यति।
तत्कथं न हतः पुत्रस्त्वया नीतिं विजानता॥ ५०

कंस उवाच

अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम्।

नारद उवाच

न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभाम्॥ ५१

मायाबलं च देवानां न त्वं वेत्सि वदामि किम्।
रिपुरल्पोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता॥ ५२

सम्मेलनक्रियायां तु सर्वे ते ह्यष्टमाः स्मृताः।
मूर्खस्त्वमरिसन्त्यागः कृतोऽयं जानता त्वया॥ ५३

इत्युक्त्वाशु गतः श्रीमान्नारदो देवदर्शनः।
गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम्।
पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मन्दधीः॥ ५४

उस समय उग्रसेन-पुत्र कंसने श्रद्धापूर्वक उठकर विधिवत् अर्घ्य, पाद्य आदि अर्पण किया और पुनः कुशल-क्षेम तथा उनके आगमनका कारण पूछा॥ ४७॥

तब नारदजीने मुसकराकर कंससे यह वचन कहा—हे कंस! हे महाभाग! मैं सुमेरुपर्वतपर गया था। वहाँ ब्रह्मा आदि देवगण एकत्र होकर आपसमें मन्त्रणा कर रहे थे कि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु आपके संहारके उद्देश्यसे अवतार लेंगे; तो फिर नीतिका ज्ञान रखते हुए भी आपने उस शिशुका वध क्यों नहीं किया?॥ ४८—५०॥

कंस बोला—आकाशवाणीके द्वारा बताये गये अपने मृत्यु-रूप [देवकीके] आठवें पुत्रका मैं वध करूँगा॥ ५०½॥

नारदजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! आप शुभ तथा अशुभ राजनीतिको नहीं जानते हैं और देवताओंकी माया-शक्ति भी नहीं जानते हैं। अब मैं क्या बताऊँ? अपना कल्याण चाहनेवाले वीरको छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ५१-५२॥

[गणितशास्त्रकी] सम्मेलन-क्रियाके आधारपर तो सभी पुत्र आठवें कहे जा सकते हैं। आप मूर्ख हैं; क्योंकि ऐसा जानते हुए भी आपने शत्रुको छोड़ दिया है॥ ५३॥

ऐसा कहकर श्रीमान् देवदर्शन नारद वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले गये। नारदके चले जानेपर कंसने उस बालकको मँगवाकर उसे पत्थरपर पटक दिया और उस मन्दबुद्धि कंसको महान् सुख प्राप्त हुआ॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां कंसेन देवकीप्रथमपुत्रवधवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देवकीके छः पुत्रोंके पूर्वजन्मकी कथा, सातवें पुत्रके रूपमें भगवान् संकर्षणका अवतार, देवताओं तथा दानवोंके अंशावतारोंका वर्णन

जनमेजय उवाच

किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह।
यज्जातमात्रो निहतस्तथा तेन दुरात्मना॥ १

जनमेजय बोले—हे पितामह! उस बालकने ऐसा कौन-सा पापकर्म किया था, जिससे जन्म लेते ही उसको दुष्टात्मा कंसने मार डाला?॥ १॥

नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः।
कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः॥ २

कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः।
स कथं प्रेरयामास मुनिः कंसं खलं तदा॥ ३

संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहि सर्वं सविस्तरम्।
येन कर्मविपाकेन बालको निधनं गतः॥ ४

व्यास उवाच

नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा कलहप्रियः।
देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह॥ ५

न मिथ्याभाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन।
सत्यवक्ता सुराणां स कर्तव्ये निरतः शुचिः॥ ६

एवं षड् बालकास्तेन जाता जाता निपातिताः।
षड् गर्भाः शापयोगेन सम्भूय मरणं गताः॥ ७

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तेषां शापस्य कारणम्।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पुत्रा मरीचेः षणमहाबलाः॥ ८

ऊर्णायां चैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः।
ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम्॥ ९

शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशन्त्वधः।
कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भा विशाम्पते॥ १०

अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः।
जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वशापभयान्नृप॥ ११

तस्मिञ्जन्मनि शान्ताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः।
तेषां प्रीतोऽभवद् ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ॥ १२

महान् ज्ञानी, धर्मपरायण तथा ब्रह्मवेत्ता होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ नारदने इस प्रकारका पाप क्यों किया? विद्वज्जनोंने पाप करने तथा करानेवाले—इन दोनोंको समान पापी बताया है; तो फिर उन देवर्षि नारदने इस पापकर्मके लिये दुष्ट कंसको प्रेरित क्यों किया?॥ २-३॥

इस विषयमें मुझे यह महान् सन्देह हो गया है। जिस कर्मफलसे वह बालक मारा गया, उसके बारेमें मुझे सब कुछ विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४॥

व्यासजी बोले—देवर्षि नारदको कौतुक करना तथा कलह करा देना अत्यन्त प्रिय है। अतः देवताओंका कार्य साधनेके लिये ही उन्होंने उपस्थित होकर यह सब किया था॥ ५॥

उन मुनि नारदकी बुद्धि झूठ बोलनेमें कभी भी प्रवृत्त नहीं हो सकती। सत्यवादी तथा पवित्र हृदयवाले वे सदा देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं॥ ६॥

इस प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंको बारी-बारीसे जन्म लेते ही मार डाला। पूर्वजन्ममें प्राप्त शापके कारण वे छः बालक जन्म लेते ही मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ७॥

हे राजन्! सुनिये, अब मैं उनके शापका कारण बताऊँगा। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचिकी भार्या ऊर्णाके गर्भसे छः अत्यन्त बलशाली पुत्र उत्पन्न हुए; ये धर्मशास्त्रमें पूर्णरूपसे निष्णात थे॥ ८½॥

एक बार ब्रह्माजीको अपनी पुत्री सरस्वतीके साथ समागमके लिये उद्यत देखकर वे हँस पड़े थे। तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया कि तुमलोगोंका पतन हो जाय और तुम सब दैत्ययोनिमें जन्म लो। हे महाराज! इस प्रकार वे छहों पुत्र कालनेमिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ९-१०॥

हे राजन्! अगले जन्ममें वे हिरण्यकशिपुके पुत्र हुए। उनका पूर्वज्ञान अभी बना हुआ था। अतः वे सब पूर्वशापसे भयभीत होकर उस जन्ममें समाहितचित्त हो शान्तभावसे तप करने लगे। इससे ब्रह्माजीने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन छहोंको वरदान दे दिया॥ ११-१२॥

ब्रह्मोवाच

शप्ता यूयं मया पूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः।
तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवन्तु वाञ्छितं वरम्॥ १३

व्यास उवाच

ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः।
ब्रह्माणमब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः॥ १४

गर्भा ऊचुः

पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वाञ्छितं वरम्।
अवध्या दैवतैः सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः॥ १५

गन्धर्वसिद्धपतिभिर्वधो माभूत्पितामह।

व्यास उवाच

तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति॥ १६

गच्छन्तु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः।
दत्त्वा वरं गतो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाभवन्॥ १७

हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह।
यस्माद्विहाय मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः॥ १८

वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन्।
युष्माभिर्हापितः स्नेहस्ततो युष्मांस्त्यजाम्यहम्॥ १९

यूयं व्रजन्तु पाताले षड्गर्भा विश्रुता भुवि।
पाताले निद्रयाविष्टास्तिष्ठन्तु बहुवत्सरान्॥ २०

ततस्तु देवकीगर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः।
पिता वः कालनेमिस्तु तत्र कंसो भविष्यति॥ २१

स एव जातमात्रान्वो वधिष्यति सुदारुणः।

व्यास उवाच

एवं शप्तांस्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः पुनः॥ २२

जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः।
शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसंस्थितः॥ २३

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग पुत्रो! मैंने क्रोधमें आकर उस समय तुम लोगोंको शाप दे दिया था। मैं तुम सभीपर परम प्रसन्न हूँ; अतएव अपना अभिलषित वर माँगो॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन ब्रह्माका वचन सुनकर उनके मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर उन सबने ब्रह्माजीसे वर माँग लिया॥ १४॥

बालक बोले—हे पितामह! यदि आज आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमें मनोवांछित वरदान दीजिये। हमलोगोंको सभी देवता, मानव और महानाग न मार सकें। हे पितामह! यहाँतक कि गन्धर्व तथा बड़े-से-बड़े सिद्ध पुरुषोंसे भी हमारा वध न हो सके॥ १५½॥

व्यासजी बोले—तब ब्रह्माजीने उनसे कहा कि यह सब पूर्ण होगा। हे महाभाग्यशाली बालको! अब तुमलोग जाओ। यह सत्य होकर रहेगा; इसमें सन्देह नहीं है। जब ब्रह्माजी वरदान देकर चले गये, तब वे सब परम प्रसन्न हुए॥ १६-१७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! [वरदानकी बात जानकर] हिरण्यकशिपु कुपित होकर उनसे बोला—हे पुत्रो! तुमलोगोंने मेरी उपेक्षा करके अपनी तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न किया है। उनसे प्रार्थना करके वरदान पाकर तुमलोग अत्यधिक बलशाली हो गये हो। तुम सभीने अपने पिताके स्नेहको अपमानित किया है; अतएव मैं तुमलोगोंका परित्याग करता हूँ॥ १८-१९॥

अब तुमलोग पाताललोक चले जाओ। इस पृथ्वीपर तुमलोग 'षड्गर्भ' नामसे विख्यात होओगे। पाताललोकमें तुमलोग बहुत वर्षोंतक निद्राके वशीभूत रहोगे। तत्पश्चात् तुमलोग क्रमसे प्रतिवर्ष देवकीके गर्भसे उत्पन्न होते रहोगे और पूर्वजन्मका तुम्हारा पिता कालनेमि उस समय कंस नामसे उत्पन्न होगा। वह अत्यन्त क्रूर कंस तुमलोगोंको उत्पन्न होते ही मार डालेगा॥ २०-२१½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार हिरण्यकशिपुसे शापित होकर वे क्रमसे एक-एक करके देवकीके गर्भमें आते गये और कंस पूर्वशापसे प्रेरित होकर उन षड्गर्भरूप देवकीके पुत्रोंका वध करता गया। इसके बाद शेषनागके अंशावतार बलभद्रजी देवकीके सातवें गर्भमें आये॥ २२-२३॥

विस्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया।
नीतश्च रोहिणीगर्भे कृत्वा संकर्षणं बलात्॥ २४

पतितः पञ्चमे मासि लोकख्यातिं गतस्तदा।
कंसोऽपि ज्ञातवांस्तत्र देवकीगर्भपातनम्॥ २५

मुदं प्राप स दुष्टात्मा श्रुत्वा वार्तां सुखावहाम्।
अष्टमे देवकीगर्भे भगवान्सात्वतां पतिः॥ २६

उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च।

राजोवाच

वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाभवत्॥ २७

हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम।
अन्ये च येंऽशा देवानां तत्र जातास्तु तान्वद॥ २८

भारावतरणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयानघ।

व्यास उवाच

सुराणामसुराणां च ये येंऽशा भुवि विश्रुताः॥ २९

तानहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण शृणुष्व तान्।
वसुदेवः कश्यपांशो देवकी च तथादितिः॥ ३०

बलदेवस्त्वनन्तांशो वर्तमानेषु तेषु च।
योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण इति श्रुतः॥ ३१

तस्यांशो वासुदेवस्तु विद्यमाने मुनौ तदा।
नरस्तस्यानुजो यस्तु तस्यांशोऽर्जुन एव च॥ ३२

युधिष्ठिरस्तु धर्मांशो वाय्वंशो भीम इत्युत।
अश्विन्यंशौ ततः प्रोक्तौ माद्रीपुत्रौ महाबलौ॥ ३३

सूर्यांशः कर्ण आख्यातो धर्मांशो विदुरः स्मृतः।
द्रोणो बृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तु शिवांशजः॥ ३४

तत्पश्चात् योगमायाने अपने योगबलसे उस गर्भको च्युत कर दिया और हठात् खींचकर उसे रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया॥ २४॥

इसी बीच लोगोंको यह बात मालूम हो गयी कि पाँचवें महीनेमें ही देवकीका गर्भस्राव हो गया। कंस भी देवकीके गर्भपातका समाचार जान गया। अपने लिये यह सुखप्रद समाचार सुनकर वह दुरात्मा कंस बहुत प्रसन्न हुआ॥ २५½॥

उधर देवताओंके कार्यको सिद्ध करने तथा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये जगत्पति भगवान् विष्णु देवकीके आठवें गर्भमें विराजमान हो गये॥ २६½॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने यह बता दिया कि वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अंशावतार थे और उनके यहाँ शेषनाग तथा भगवान् विष्णु अपने-अपने अंशोंसे उत्पन्न हुए। हे अनघ! देवताओंके अन्य जो-जो अंशावतार पृथ्वीकी प्रार्थनापर उसका भार उतारनेके लिये हुए हैं, उन्हें भी बताइये॥ २७-२८½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवताओं तथा असुरोंके जो-जो अंश लोकमें विख्यात हुए हैं, उनके विषयमें मैं संक्षिप्तरूपमें बता रहा हूँ; आप उन्हें सुनिये—वसुदेव कश्यपके अंशसे तथा देवकी अदितिके अंशसे उत्पन्न थीं॥ २९-३०॥

बलदेवजी शेषनागके अंश थे। इन सभीके अवतरित हो जानेपर जिन धर्मपुत्र श्रीमान् नारायणके विषयमें कहा जा चुका है, उन्हींके अंशसे ही साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया। मुनिवर नारायणके श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हो जानेपर उनके नर नामक जो छोटे भाई हैं, उनके अंशस्वरूप अर्जुनका प्राकट्य हुआ॥ ३१-३२॥

महाराज युधिष्ठिर धर्मके अंश, भीमसेन पवनदेवके अंश तथा माद्रीके दोनों महाबली पुत्र नकुल एवं सहदेव दोनों अश्विनीकुमारोंके अंश कहे गये हैं॥ ३३॥

कर्ण सूर्यके अंशसे प्रकट हुए और विदुरको धर्मका अंश बताया गया है। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंशसे तथा उनका पुत्र अश्वत्थामा शिवके अंशसे उत्पन्न थे॥ ३४॥

समुद्रः शन्तनुः प्रोक्तो गङ्गा भार्या मता बुधैः।
देवकस्तु समाख्यातो गन्धर्वपतिरागमे॥ ३५

वसुर्भीष्मो विराट्स्तु मरुद्गण इति स्मृतः।
अरिष्टस्य सुतो हंसो धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः॥ ३६

मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथापरः।
दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम्॥ ३७

सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररुरुदाहृतः।
पावकांशो धृष्टद्युम्नः शिखण्डी राक्षसस्तथा॥ ३८

सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः।
द्रुपदो वरुणस्यांशो द्रौपदी च रमांशजा॥ ३९

द्रौपदीतनयाः पञ्च विश्वेदेवांशजाः स्मृताः।
कुन्तिः सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गान्धारराजजा॥ ४०

कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वा देववाराङ्गनाः स्मृताः।
राजानश्च तथा सर्वे असुराः शक्रनोदिताः॥ ४१

हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपाल उदाहृतः।
विप्रचित्तिर्जरासन्धः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि॥ ४२

कालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा।
अरिष्टो बलिपुत्रस्तु ककुद्मी गोकुले हतः॥ ४३

अनुह्लादो धृष्टकेतुर्भगदत्तोऽथ बाष्कलः।
लम्बः प्रलम्बः सञ्जातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत्॥ ४४

वाराहश्च किशोरश्च दैत्यौ परमदारुणौ।
मल्लौ तावेव सञ्जातौ ख्यातौ चाणूरमुष्टिकौ॥ ४५

विद्वानोंका मानना है कि समुद्रके अंशसे महाराज शन्तनु तथा गंगाके अंशसे उनकी भार्या उत्पन्न हुई थीं। पुराणप्रसिद्ध गन्धर्वराजके अंशसे महाराज देवक उत्पन्न हुए थे॥ ३५॥

भीष्मपितामहको वसुका तथा राजा विराटको मरुद्-गणोंका अंशावतार बताया गया है। महाराज धृतराष्ट्र अरिष्टनेमिके पुत्र हंसके अंशसे उत्पन्न कहे गये हैं॥ ३६॥

कृपाचार्यको किसी एक मरुद्गणका अंश तथा कृतवर्माको किसी दूसरे मरुद्गणका अंश बताया गया है। [हे राजन्!] दुर्योधनको कलिका अंश तथा शकुनिको द्वापरका अंश समझिये॥ ३७॥

प्रसिद्ध सोमनन्दन सुवर्चा पृथ्वीपर सोमप्ररु नामसे विख्यात हुए। धृष्टद्युम्न अग्नि तथा शिखण्डी राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुए॥ ३८॥

प्रद्युम्न सनत्कुमारके अंश कहे गये हैं। द्रुपद वरुणके अंश थे तथा द्रौपदी साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थीं॥ ३९॥

द्रौपदीके पाँचों पुत्र विश्वेदेवके अंशसे उत्पन्न माने गये हैं। कुन्ती सिद्धिके अंशसे, माद्री धृतिके अंशसे तथा गान्धारी मतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं॥ ४०॥

भगवान् कृष्णकी सभी पत्नियाँ देवताओंकी रमणियोंके अंशसे उत्पन्न कही गयी हैं। इन्द्रके द्वारा भेजे हुए सब दैत्य धरातलपर आकर दुराचारी नरेश बने थे॥ ४१॥

शिशुपालको हिरण्यकशिपुका अंश कहा गया है। जरासन्ध विप्रचित्तिका तथा शल्य प्रह्लादका अंशावतार था॥ ४२॥

कालनेमि कंस हुआ तथा हयशिराको केशीका जन्म प्राप्त हुआ। बलिपुत्र ककुद्मी अरिष्टासुर बना, जो गोकुलमें मारा गया॥ ४३॥

अनुह्लाद धृष्टकेतु बना और बाष्कल भगदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ। लम्बने प्रलम्बासुरके रूपमें जन्म लिया तथा खर धेनुकासुर हुआ॥ ४४॥

अत्यन्त भयंकर वाराह और किशोर नामक दोनों दैत्य चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानोंके रूपमें प्रख्यात हुए॥ ४५॥

दितिपुत्रस्तथारिष्टो गजः कुवलयाभिधः।
बलिपुत्री बकी ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः॥ ४६

दितिका पुत्र अरिष्टासुर कुवलयापीड नामक हाथी हुआ। बलिकी पुत्री पूतना (बकी) राक्षसी बनी और उसका छोटा भाई बकासुर कहलाया॥ ४६॥

यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः।
तेषामंशैस्तु सञ्जातो द्रोणपुत्रो महाबलः॥ ४७

द्रोणपुत्र महाबली अश्वत्थामा यम, रुद्र, काम और क्रोध—इन चारोंके अंशसे उत्पन्न हुआ था॥ ४७॥

अंशावतरणे पूर्वं दैतेया राक्षसास्तथा।
जाताः सर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे॥ ४८

पूर्वकालमें अंशावतारके समय जो दैत्य तथा राक्षस उत्पन्न हुए थे, पृथ्वीपरसे उनका भार उतारनेके लिये सभी देवता अपने-अपने अंशसे उत्पन्न हुए॥ ४८॥

एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप।
सुराणां चासुराणां च पुराणेषु प्रकीर्तितम्॥ ४९

हे राजन्! पुराणोंमें इन देवताओं तथा असुरोंके अंशावतारोंका जो वर्णन किया गया है, वह सब मैंने आपसे कह दिया॥ ४९॥

यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिं गताः।
हरिणा च तदा दत्तौ केशौ खलु सितासितौ॥ ५०

जब ब्रह्मा आदि देवता प्रार्थना करनेके लिये भगवान् विष्णुके पास गये थे तब विष्णुजीने उन्हें श्वेत तथा श्याम वर्णवाले दो केश प्रदान किये थे॥ ५०॥

श्यामवर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः सङ्कर्षणस्तथा।
भारावतारणार्थं तौ जातौ देवांशसम्भवौ॥ ५१

तदनन्तर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् कृष्ण श्यामवर्ण विष्णुका अंश लेकर तथा बलरामजी श्वेतवर्ण शेषनागका अंश लेकर अवतरित हुए॥ ५१॥

अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः॥ ५२

जो प्राणी भक्ति-भावनासे इस अंशावतारकी कथाका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित आनन्दित रहता है॥ ५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देवदानवानामंशावतरणवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीका उन्हें गोकुल पहुँचाना और वहाँसे योगमायास्वरूपा कन्याको लेकर आना, कंसद्वारा कन्याके वधका प्रयास, योगमायाद्वारा आकाशवाणी करनेपर कंसका अपने सेवकोंद्वारा नवजात शिशुओंका वध कराना

व्यास उवाच

हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना।
सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च॥ १

अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतन्द्रितः।
प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिन्तयन्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उग्रसेनपुत्र कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिये जानेपर तथा सातवाँ गर्भ गिर जानेके पश्चात् वह राजा कंस नारदजीके कथनानुसार अपनी मृत्युके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करते हुए सावधानीपूर्वक आठवें गर्भको [गिरनेसे] बचानेका प्रयत्न करने लगा॥ १-२॥

समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः।
अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम्॥ ३

तदेयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया।
प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये॥ ४

रोहिण्यास्तनयो रामो गोकुले समजायत।
यतः कंसभयोद्विग्ना संस्थिता सा च कामिनी॥ ५

कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम्।
स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत्॥ ६

वसुदेवस्तु कामिन्याः प्रेमतन्तुनियन्त्रितः।
पुत्रोत्पत्तिं च सञ्चिन्त्य प्रविष्टः सह भार्यया॥ ७

देवकीगर्भगो विष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये।
संस्तुतोऽमरसङ्घैश्च व्यवर्धत यथाक्रमम्॥ ८

सञ्जाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रावणे शुभे।
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ते कृष्णपक्षेऽष्टमीदिने॥ ९

कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः।
रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमन्दिरे॥ १०

अष्टमो देवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति।
रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः॥ ११

हत्वैनं बालकं दैत्याः सुखं स्वप्स्यामि मन्दिरे।
निवृत्तिवर्जिते दुःखे नाशिते चाष्टमे सुते॥ १२

खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठन्तु धृतकार्मुकाः।
निद्रातन्द्राविहीनाश्च सर्वत्र निहितेक्षणाः॥ १३

व्यास उवाच

इत्यादिश्यासुरगणान् कृशोऽतिभयविह्वलः।
मन्दिरं स्वं जगामाशु न लेभे दानवः सुखम्॥ १४

उचित समय आनेपर भगवान् श्रीहरि अपने अंशके साथ वसुदेवमें प्रविष्ट होकर देवकीके गर्भमें विराजमान हो गये॥ ३॥

उसी समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे भगवती योगमायाने अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया॥ ४॥

कंसके भयसे उद्विग्न होकर गोकुलमें कालक्षेप कर रही वसुदेव-भार्या रोहिणीके गर्भसे पुत्ररूपमें बलरामजी प्रकट हो चुके थे॥ ५॥

तदनन्तर कंसने देववन्दिता देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया और उनकी रखवालीके लिये बहुतसे सेवक नियुक्त कर दिये॥ ६॥

अपनी पत्नी देवकीके पुत्र-प्रसवकी बातको ध्यानमें रखते हुए तथा उनके प्रेमपाशमें आबद्ध रहनेके कारण वसुदेवजी भी उनके साथ कारागारमें ही रहने लगे॥ ७॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये देवकीके गर्भमें विराजमान भगवान् विष्णु देवसमुदायद्वारा स्तूयमान होते हुए धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होने लगे॥ ८॥

श्रावणमासमें दसवाँ महीना पूर्ण हो जानेपर (भाद्रपद-मासके) कृष्णपक्षमें रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ अष्टमी तिथिके उपस्थित होनेपर भयसे व्याकुल कंसने सभी दानवोंसे कहा कि आपलोग इस समय गर्भकक्षमें विद्यमान देवकीकी रखवाली करें॥ ९-१०॥

देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक मेरा शत्रु होगा। अतएव आपलोगोंको मेरे कालरूप उस बालककी यत्नपूर्वक रखवाली करनी चाहिये॥ ११॥

हे दैत्यो! इस समय मैं अत्यन्त उद्वेगकारी तथा दुःखदायी आठवें गर्भसे उत्पन्न होनेवाले इस बालकका वध कर लेनेके बाद ही अपने महलमें सुखपूर्वक सो सकूँगा॥ १२॥

आप सभी लोग अपने हाथोंमें तलवार, भाला और धनुष धारण करके निद्रा तथा आलस्यसे रहित होकर चारों ओर दृष्टि रखियेगा॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन दैत्योंको यह आज्ञा देकर भयाकुल तथा [चिन्ताके कारण] अति दुर्बल दानव कंस तत्काल अपने महलमें चला गया, किंतु वहाँ भी वह सुखकी नींद नहीं सो पा रहा था॥ १४॥

निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह।
किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम॥ १५

बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठन्त्यत्र भयानकाः।
नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽस्ति समयः पुरा॥ १६

प्रेषितव्यस्त्वया पुत्रो मन्दिरे मम मानिनि।
पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसा किल॥ १७

अपत्यं ते प्रदास्यामि कंसस्य प्रत्ययाय वै।
किं कर्तव्यं प्रभो चात्र विषमे समुपस्थिते॥ १८

व्यत्ययः सन्ततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः।
दूरे तिष्ठस्व कान्ताद्य लज्जा मेऽतिदुरत्यया॥ १९

परावृत्य मुखं स्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा तं महाभागं देवकी देवसम्मतम्॥ २०

बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम्।
तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम्॥ २१

पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा।
पश्य पुत्रमुखं कान्त दुर्लभं हि तव प्रभो॥ २२

अद्यैनं कालरूपोऽसौ घातयिष्यति भ्रातृजः।
वसुदेवस्तथेत्युक्त्वा तमादाय करे सुतम्॥ २३

अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः।
वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिन्ताविष्टो बभूव ह॥ २४

किं करोमि कथं न स्याद्दुःखमस्य कृते मम।
एवं चिन्तातुरे तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी॥ २५

वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा।
वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः॥ २६

रक्षपालास्तथा सर्वे मया निद्राविमोहिताः।
विवृतानि कृतान्यष्ट कपाटानि च शृङ्खलाः॥ २७
मुक्त्वैनं नन्दगेहे त्वं योगमायां समानय।

तत्पश्चात् मध्यरात्रिमें देवकीने वसुदेवजीसे कहा—महाराज! मेरे प्रसवका समय आ गया है, अब मैं क्या करूँ?॥ १५॥

यहाँपर बहुतसे भयंकर रक्षक नियुक्त हैं। यहाँ आनेके पूर्व नन्दकी पत्नी यशोदासे मेरी यह बात निश्चित हुई थी। [उन्होंने कहा था—] 'हे मानिनि! तुम अपने पुत्रको मेरे घर भेज देना, मैं मन लगाकर तुम्हारे पुत्रका पालन-पोषण करूँगी। कंसको विश्वास दिलानेके लिये मैं तुम्हें इसके बदले अपनी सन्तान दे दूँगी।' अतः हे प्रभो! इस विषम परिस्थितिमें अब हमें क्या करना चाहिये? हे शूरतनय! आप इन दोनों सन्तानोंकी अदला-बदली करनेमें कैसे समर्थ हो सकेंगे? हे कान्त! आप अपना मुख फेरकर मुझसे दूर होकर बैठिये; क्योंकि दुस्तर लज्जाके कारण मैं संकोचमें पड़ रही हूँ। हे स्वामिन्! इसके अतिरिक्त यहाँ कुछ विशेष कर ही क्या सकती हूँ॥ १६—१९½॥

देवतुल्य महाभाग वसुदेवसे ऐसा कहकर देवकीने उसी अर्धरात्रिकी शुभ वेलामें एक परम अद्भुत बालकको जन्म दिया। उस सुन्दर बालकको देखकर देवकीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २०-२१॥

[पुत्रप्राप्तिके कारण] हर्षातिरेकसे प्रफुल्लित अंग-प्रत्यंगोंवाली महाभागा देवकीने पतिसे कहा—हे कान्त! अपने पुत्रका मुख तो देख लीजिये; क्योंकि हे प्रभो! इसका दर्शन आपके लिये फिर सर्वथा दुर्लभ हो जायगा। कालरूपी मेरा भाई कंस आज ही इसका वध कर डालेगा। तब 'ठीक है'—ऐसा कहकर वसुदेवजी उस पुत्रको अपने हाथोंमें लेकर अद्भुत कर्मशाली अपने उस पुत्रका मुख निहारने लगे। तत्पश्चात् अपने पुत्रका मुख देखकर वसुदेवजी इस चिन्तासे आकुल हो गये कि मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे इस बालकके लिये मुझे विषाद न हो॥ २२—२४½॥

वसुदेवजीके इस प्रकार चिन्तामग्न होनेपर उन्हें सम्बोधित करके आकाशमें स्पष्ट शब्दोंमें आकाशवाणी हुई—हे वसुदेव! तुम इस बालकको लेकर तत्काल गोकुल पहुँचा दो। सभी रक्षकगण मेरे द्वारा निद्रासे अचेत कर दिये गये हैं, आठों फाटकोंको खोल दिया गया है तथा जंजीरें तोड़ दी गयी हैं। इस बालकको नन्दके घर छोड़कर वहाँसे तुम योगमायाको उठा लाओ॥ २५—२७½॥

श्रुत्वैवं वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गतः॥ २८
विवृतं द्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप।
तमादाय ययावाशु द्वारपालैरलक्षितः॥ २९

कालिन्दीतटमासाद्य पूरं दृष्ट्वा सुनिश्चितम्।
तदैव कटिदघ्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा॥ ३०

योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभिः।
गत्वा तु गोकुलं शौरिर्निशीथे निर्जने पथि॥ ३१

नन्दद्वारे स्थितः पश्यन्विभूतिं पशुसंज्ञिताम्।
तदैव तत्र सञ्जाता यशोदा गर्भसम्भवा॥ ३२

योगमायांशजा देवी त्रिगुणा दिव्यरूपिणी।
जातां तां बालिकां दिव्यां गृहीत्वा करपङ्कजे॥ ३३

तत्रागत्य ददौ देवी सैरन्ध्रीरूपधारिणी।
वसुदेवः सुतं दत्त्वा सैरन्ध्रीकरपङ्कजे॥ ३४

तामादाय ययौ शीघ्रं बालिकां मुदिताशयः।
कारागारे ततो गत्वा देवक्याः शयने सुताम्॥ ३५

निःक्षिप्य संस्थितः पार्श्वे चिन्ताविष्टो भयातुरः।
रुरोद सुस्वरं कन्या तदैवागतसंज्ञकाः॥ ३६

उत्तस्थुः सेवका राज्ञः श्रुत्वा तद्रुदितं निशि।
तमूचुर्भूपतिं गत्वा त्वरितास्तेऽतिविह्वलाः॥ ३७

देवक्याश्च सुतो जातः शीघ्रमेहि महामते।
तदाकर्ण्य वचस्तेषां शीघ्रं भोजपतिर्ययौ॥ ३८
प्रावृतं द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत्।

यह वाणी सुनकर उस कारागृहमें निरुद्ध वसुदेवजी बाहरकी ओर गये। हे राजन्! इस प्रकार वसुदेवजी फाटकोंको खुला हुआ देखकर बड़ी शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर द्वारपालोंकी दृष्टिसे बचते हुए तत्काल कारागारसे निकल पड़े॥ २८-२९॥

यमुनाके किनारे पहुँचकर उन्होंने देखा कि इस पारसे उस पार अगाध जल आप्लावित हो रहा है। उनका गोकुल जाना भी सुनिश्चित था। उनके जलमें उतरते ही नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजीमें कमरभर पानी हो गया॥ ३०॥

योगमायाके प्रभावसे वसुदेवजीने सहजतापूर्वक यमुनाजीको पार कर लिया और वे उस आधी रातमें सुनसान मार्गपर चलते हुए गोकुलमें पहुँचकर नन्दके द्वारपर विपुल गौ-सम्पदा देखते हुए वहाँ स्थित हो गये॥ ३१½॥

उसी समय योगमायाके अंशसे जायमान दिव्यरूपमयी त्रिगुणात्मिका भगवतीने यशोदाके गर्भसे अवतार लिया था। तदनन्तर सैरन्ध्रीका रूप धारण करके स्वयं भगवतीने उत्पन्न उस अलौकिक बालिकाको अपने करकमलमें ग्रहण करके वहाँ जाकर वसुदेवजीको दे दिया। वसुदेवजी भी अपने पुत्रको देवीरूपा सैरन्ध्रीके करकमलमें रखकर योगमायास्वरूपा उस बालिकाको लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे तत्काल चल पड़े॥ ३२—३४½॥

कारागारमें पहुँचकर उन्होंने देवकीकी शय्यापर बालिकाको लिटा दिया और भय तथा चिन्तासे युक्त होकर वे पासहीमें एक ओर जाकर बैठ गये॥ ३५½॥

इतनेमें कन्याने उच्च स्वरमें रोना आरम्भ किया। तब प्रसवकालको सूचित करनेके लिये नियुक्त कंसके सेवकगण रातमें रोनेकी वह ध्वनि सुनकर जाग पड़े। आनन्दसे विह्वल वे सेवक तत्काल उसी समय जाकर राजासे बोले—हे महामते! देवकीका पुत्र उत्पन्न हो गया, आप शीघ्र चलिये॥ ३६-३७½॥

उनका यह वचन सुनते ही भोजपति कंस तत्काल जा पहुँचा और वहाँपर दरवाजा खुला हुआ देखकर कंसने वसुदेवजीको बुलवाया॥ ३८½॥

कंस उवाच

सुतमानय देवक्या वसुदेव महामते॥ ३९
मृत्युर्मे चाष्टमो गर्भस्तन्निहन्मि रिपुं हरिम्।

व्यास उवाच

श्रुत्वा कंसवचः शौरिर्भयत्रस्तविलोचनः॥ ४०
तामादाय सुतां पाणौ ददौ चाशु रुदन्निव।
दृष्ट्वाथ दारिकां राजा विस्मयं परमं गतः॥ ४१
देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम्।
वसुदेवः कथं कुर्यादनृतं सङ्कटे स्थितः॥ ४२
रक्षपालाश्च मे सर्वे सावधाना न संशयः।
कुतोऽत्र कन्यका कामं क्व गतः स सुतः किल॥ ४३
सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः कालस्य विषमा गतिः।
इति सञ्चिन्त्य तां बालां गृहीत्वा पादयोः खलः॥ ४४
पोथयामास पाषाणे निर्घृणः कुलपांसनः।
सा करान्निःसृता बाला ययावाकाशमण्डलम्॥ ४५
दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना।
किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान् रिपुः॥ ४६
हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वां नराधमम्।
इत्युक्त्वा सा गता कन्या गगनं कामगा शिवा॥ ४७
कंसस्तु विस्मयाविष्टो गतो निजगृहं तदा।
आनाय्य दानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८
बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टो भयातुरः।
गच्छन्तु दानवाः सर्वे मम कार्यार्थसिद्धये॥ ४९
जातमात्राश्च हन्तव्या बालका यत्र कुत्रचित्।
पूतनैषा व्रजत्वद्य बालघ्नी नन्दगोकुलम्॥ ५०
जातमात्रान्विनिघ्नन्ती शिशूंस्तत्र ममाज्ञया।
धेनुको वत्सकः केशी प्रलम्बो बक एव च॥ ५१
सर्वे तिष्ठन्तु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया।

कंस बोला—हे महामतिसम्पन्न वसुदेव! देवकीके पुत्रको यहाँ ले आओ। देवकीका आठवाँ गर्भ मेरी मृत्यु है, अतः मैं उस विष्णुरूप अपने शत्रुका वध करूँगा॥ ३९½॥

व्यासजी बोले—कंसका वचन सुनकर भयसे सन्त्रस्त नयनोंवाले वसुदेवजीने शीघ्र ही उस कन्याको ले जाकर कंसके हाथोंमें रोते हुए रख दिया। उस बालिकाको देखकर राजा कंस बड़ा विस्मित हुआ॥ ४०-४१॥

आकाशवाणी तथा नारदजीका वचन—दोनों ही मिथ्या सिद्ध हुए और यहाँ संकटकी स्थितिमें पड़ा हुआ यह वसुदेव भी झूठी बात भला कैसे बना सकता है? मेरे सभी रक्षक भी सावधान थे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। तब यह बालिका कहाँसे आ गयी और वह बालक कहाँ चला गया? कालकी बड़ी विषम गति होती है, अतएव इसके सम्बन्धमें अब किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४२-४३½॥

ऐसा सोचकर उस दुष्ट, निर्मम तथा कुलकलंकी कंसने बालिकाके दोनों पैर पकड़कर पत्थरपर पटका। किंतु वह कन्या कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी। वहाँ दिव्य रूप धारण करके उस कन्याने मधुर स्वरमें उससे कहा—'अरे पापी! मुझे मारनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा; तेरा महाबलशाली शत्रु तो जन्म ले चुका है। वे दुराराध्य परमपुरुष तुझ नराधमका वध अवश्य करेंगे।' ऐसा कहकर स्वेच्छा-विहारिणी तथा कल्याणकारिणी भगवतीस्वरूपा वह कन्या आकाशमें चली गयी॥ ४४—४७॥

यह सुनकर आश्चर्यसे युक्त कंस अपने महलके लिये प्रस्थान कर गया। वहाँ बकासुर, धेनुकासुर तथा वत्सासुर आदि दानवोंको बुलवाकर अत्यन्त कुपित तथा भयाक्रान्त कंसने उनसे कहा—हे दानवो! मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये तुम सभी यहाँसे अभी प्रस्थान करो और जहाँ कहीं भी तुमलोगोंको नवजात शिशु मिलें, उन्हें अवश्य मार डालना। बालघातिनी यह पूतना अभी नन्दराजके गोकुलमें चली जाय। वहाँ सद्यःप्रसूत जितने बालक मिलें, उन्हें यह पूतना मेरी आज्ञासे मार डाले। धेनुक, वत्सक, केशी, प्रलम्ब और बक—ये समस्त असुर मेरा कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे वहाँ निरन्तर विद्यमान रहें॥ ४८—५१½॥

इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसो ययौ निजगृहं खलः ॥ ५२
चिन्ताविष्टोऽतिदीनात्मा चिन्तयित्वैव तं पुनः ॥ ५३

इस प्रकार सभी दैत्योंको आदेश देकर वह दुष्ट कंस अपने भवनमें चला गया। अपने शत्रुरूप उस बालकके विषयमें बार-बार सोचकर वह अत्यन्त चिन्तातुर तथा खिन्नमनस्क हो गया॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे कंसं प्रति योगमायावाक्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा, कृष्णपुत्रका प्रसूतिगृहसे हरण, कृष्णद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवती चण्डिकाद्वारा सोलह वर्षके बाद पुनः पुत्रप्राप्तिका वर देना

व्यास उवाच

प्रातर्नन्दगृहे जातः पुत्रजन्ममहोत्सवः।
किंवदन्त्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] प्रातःकाल नन्दजीके घरमें पुत्रजन्मका बड़ा भारी समारोह सम्पन्न हुआ, यह बात चारों ओर फैल गयी और कंसने भी किसी दूतके मुखसे यह सुन लिया॥ १॥

जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसन्ति हि।
पशवो दासवर्गश्च सर्वे ते नन्दगोकुले॥ २

तेन शङ्कासमाविष्टो गोकुलं प्रति भारत।
नारदेनापि तत्सर्वं कथितं कारणं पुरा॥ ३

गोकुले ये च नन्दाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः।
देवकीवसुदेवाद्याः सर्वे ते शत्रवः किल॥ ४

कंस यह पहलेसे ही जानता था कि वसुदेवकी अन्य भार्या, पशु तथा सेवकगण—सब-के-सब गोकुलमें नन्दके यहाँ रह रहे हैं। हे भारत! इस कारणसे गोकुलके प्रति कंसका सन्देह और बढ़ गया। नारदजीने भी सभी कारण पहले ही बता दिये थे। उन्होंने कह दिया था कि गोकुलमें नन्द आदि गोप, उनकी पत्नियाँ, देवकी तथा वसुदेव आदि जो भी लोग हैं, वे सब देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये वे निश्चितरूपसे तुम्हारे शत्रु हैं॥ २—४॥

इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौ कुलाधमः।
जातः कोपमना राजन् कंसः परमपापकृत्॥ ५

हे राजन्! देवर्षि नारदने जब यह बात बतायी थी तो बड़े-से-बड़े पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला वह कुलकलंकी कंस अत्यधिक कुपित हो गया था॥ ५॥

पूतना निहता तत्र कृष्णेनामिततेजसा।
बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः॥ ६

प्रलम्बो निहतस्तेन तथा गोवर्धनो धृतः।
श्रुत्वैतत्कर्म कंसस्तु मेने मरणमात्मनः॥ ७

अपरिमित तेजवाले श्रीकृष्णने पूतना, बकासुर, वत्सासुर, महाबली धेनुकासुर तथा प्रलम्बासुरको मार डाला और गोवर्धनपर्वतको उठा लिया—इस अद्भुत कर्मको सुनकर कंसने यह अनुमान लगा लिया कि मेरा भी मरण अब सुनिश्चित है॥ ६-७॥

तथा विनिहतः केशी ज्ञात्वा कंसोऽतिदुर्मनाः।
धनुर्यागमिषेणाशु तावानेतुं प्रचक्रमे॥ ८

[महान् बलशाली] केशी भी मार डाला गया—यह जानकर कंस अत्यधिक खिन्नमनस्क हो गया, तब उसने धनुष-यज्ञके बहाने [कृष्ण तथा बलराम] दोनोंको शीघ्र ही मथुरामें बुलानेकी योजना बनायी॥ ८॥

अक्रूरं प्रेषयामास क्रूरः पापमतिस्तदा।
आनेतुं रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ॥ ९

रथमारोप्य गोपालौ गोकुलाद् गान्दिनीसुतः।
आगतो मथुरायां तु कंसादेशे स्थितः किल॥ १०

तावागत्य तदा तत्र धनुर्भङ्गञ्च चक्रतुः।
हत्वाथ रजकं कामं गजं चाणूरमुष्टिकम्॥ ११

शलं च तोशलं चैव निजघान हरिस्तदा।
जघान कंसं देवेशः केशेष्वाकृष्य लीलया॥ १२

पितरौ मोचयित्वाथ गतदुःखौ चकार ह।
उग्रसेनाय राज्यं तद्ददावरिनिषूदनः॥ १३

वसुदेवस्तयोस्तत्र मौञ्जीबन्धनपूर्वकम्।
कारयामास विधिवद् व्रतबन्धं महामनाः॥ १४

उपनीतौ तदा तौ तु गतौ सान्दीपनालयम्।
विद्याः सर्वाः समभ्यस्य मथुरामागतौ पुनः॥ १५

जातौ द्वादशवर्षीयौ कृतविद्यौ महाबलौ।
मथुरायां स्थितौ वीरौ सुतावानकदुन्दुभेः॥ १६

मागधस्तु जरासन्धो जामातृवधदुःखितः।
कृत्वा सैन्यसमाजं स मथुरामागतः पुरीम्॥ १७

स सप्तदशवारं तु कृष्णेन कृतबुद्धिना।
जितः संग्राममासाद्य मधुपुर्यां निवासिना॥ १८

पश्चाच्च प्रेरितस्तेन स कालयवनाभिधः।
सर्वम्लेच्छाधिपः शूरो यादवानां भयङ्करः॥ १९

निर्दयी तथा पापबुद्धि कंसने असीम पराक्रमी श्रीकृष्ण तथा बलरामका वध करनेके उद्देश्यसे उन्हें बुलानेके लिये अक्रूरको भेजा॥ ९॥

तदनन्तर कंसका आदेश मानकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर गोकुल गये और दोनों गोपालों—श्रीकृष्ण तथा बलरामको रथपर बैठाकर गोकुलसे मथुरा लौट आये॥ १०॥

वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण तथा बलरामने धनुषको तोड़ा। पुनः रजक, कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिकका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णने शल तथा तोशलका वध किया। तत्पश्चात् देवेश श्रीकृष्णने कंसके बाल पकड़कर लीलापूर्वक उसको भी मार डाला॥ ११-१२॥

तदनन्तर शत्रुविनाशक श्रीकृष्णने अपने माता-पिताको कारागारसे मुक्त कराकर उनका कष्ट दूर किया और उग्रसेनको उनका राज्य वापस दिला दिया॥ १३॥

तदनन्तर महामना वसुदेवने उन दोनोंका मौंजी-बन्धन तथा उपनयन-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया॥ १४॥

उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् वे दोनों सान्दीपनिऋषिके आश्रममें विद्याध्ययनके लिये गये और समस्त विद्याओंका अध्ययन करके पुनः मथुरा लौट आये॥ १५॥

आनकदुन्दुभि (वसुदेवजी)-के पुत्र कृष्ण और बलराम बारह वर्षकी अवस्थामें ही सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात तथा महान् बलशाली होकर मथुरामें ही निवास करने लगे॥ १६॥

उधर अपने जामाता कंसके वधसे मगधनरेश जरासन्ध अत्यन्त दुःखित हुआ और उसने विशाल सेना संगठितकर मथुरापुरीपर आक्रमण कर दिया॥ १७॥

किंतु मधुपुरी (मथुरा)-में निवास करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णने समरांगणमें उपस्थित होकर सत्रह बार उसे पराजित किया॥ १८॥

इसके बाद जरासन्धने यादव-समुदायके लिये भयदायक तथा सम्पूर्ण म्लेच्छोंके अधिपति कालयवन नामक योद्धाको श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये प्रेरित किया॥ १९॥

श्रुत्वा यवनमायान्तं कृष्णः सर्वान् यदूत्तमान्।
आनाय्य च तथा राममुवाच मधुसूदनः॥ २०

भयं नोऽत्र समुत्पन्नं जरासन्धान्महाबलात्।
किं कर्तव्यं महाभाग यवनः समुपैति वै॥ २१

प्राणत्राणं प्रकर्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम्।
सुखेन स्थीयते यत्र स देशः खलु पैतृकः॥ २२

सदोद्वेगकरः कामं किं कर्तव्यः कुलोचितः।
शैलसागरसान्निध्ये स्थातव्यं सुखमिच्छता॥ २३

यत्र वैरिभयं न स्यात्स्थातव्यं तत्र पण्डितैः।
शेषशय्यां समाश्रित्य हरिः स्वपिति सागरे॥ २४

तथैव च भयाद्भीतः कैलासे त्रिपुरार्दनः।
तस्मान्नात्रैव स्थातव्यमस्माभिः शत्रुतापितैः॥ २५

द्वारवत्यां गमिष्यामः सहिताः सर्व एव वै।
कथिता गरुडेनाद्य रम्या द्वारवती पुरी॥ २६

रैवताचलसान्निध्ये सिन्धुकूले मनोहरा।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुङ्गवाः॥ २७

गमनाय मतिं चक्रुः सकुटुम्बाः सवाहनाः।
शकटानि तथोष्ट्रांश्च वाम्यश्च महिषास्तथा॥ २८

धनपूर्णानि कृत्वा ते निर्ययुर्नगराद् बहिः।
रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः॥ २९

अग्रे कृत्वा प्रजाः सर्वाश्चेलुः सर्वे यदूत्तमाः।
कतिचिद्दिवसैः प्रापुः पुरीं द्वारवतीं किल॥ ३०

शिल्पिभिः कारयामास जीर्णोद्धारं हि माधवः।
संस्थाप्य यादवांस्तत्र तावेतौ बलकेशवौ॥ ३१

कालयवनको आता सुनकर मधुसूदन श्रीकृष्णने सभी प्रसिद्ध यादवों तथा बलरामको बुलाकर कहा—महाबलशाली जरासन्धसे हमलोगोंको यहाँ बराबर भय बना हुआ है। [उसीकी प्रेरणासे] कालयवन यहाँ आ रहा है। हे महाभाग! ऐसी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?॥ २०-२१॥

इस समय घर, सेना और धन छोड़कर हमें प्राण बचा लेना चाहिये। जहाँ भी सुखपूर्वक रहनेका प्रबन्ध हो जाय, वही पैतृक देश होता है॥ २२॥

इसके विपरीत उत्तम कुलके निवास करनेयोग्य पैतृक भूमिमें भी यदि सदा अशान्ति बनी रहती हो तो ऐसे स्थानपर रहनेसे क्या लाभ? अतः सुखकी कामना करनेवालेको पर्वत या समुद्रके पास निवास कर लेना चाहिये॥ २३॥

जिस स्थानपर शत्रुओंका भय नहीं रहता, ऐसे स्थानपर ही विज्ञजनोंको रहना चाहिये। भगवान् विष्णु शेषशय्याका आश्रय लेकर समुद्रमें शयन करते हैं और इसी प्रकार त्रिपुरदमन भगवान् शंकर भी कैलासपर्वतपर निवास करते हैं। अतएव शत्रुओंद्वारा निरन्तर सन्तप्त किये गये हमलोगोंको अब यहाँ नहीं रहना चाहिये। अब हम सभी लोग एक साथ द्वारकापुरी चलेंगे। गरुडने मुझसे बताया है कि द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीक तथा मनोहर है, जो समुद्रके तटपर तथा रैवतपर्वतके समीप विराजमान है॥ २४—२६½॥

व्यासजी बोले—श्रीकृष्णकी यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर सभी श्रेष्ठ यादवोंने अपने परिवारजनों तथा वाहनोंके साथ जानेका निश्चय कर लिया। गाड़ियों, ऊँटों, घोड़ियों और भैंसोंपर धन-सामग्री लादकर तथा श्रीकृष्ण और बलरामको आगे करके वे सभी यादवश्रेष्ठ अपने परिजनोंको साथ लेकर नगरसे बाहर हो गये। समस्त प्रजाजनोंको आगे-आगे करके सभी श्रेष्ठ यादव चल पड़े। वे सब कुछ ही दिनोंमें द्वारकापुरी पहुँच गये॥ २७—३०॥

श्रीकृष्णने कुशल शिल्पकारोंसे द्वारकापुरीका जीर्णोद्धार कराया, सभी यादवोंको वहाँ बसाकर वे श्रीकृष्ण और बलराम तत्काल मथुरा लौटकर उस

तरसा मथुरामेत्य संस्थितौ निर्जनां पुरीम्।
तदा तत्रैव सम्प्राप्तो बलवान् यवनाधिपः॥ ३२

ज्ञात्वैनमागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद् बहिः।
पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः॥ ३३

पीताम्बरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः।
तं दृष्ट्वा पुरतो यान्तं कृष्णं कमललोचनम्॥ ३४

यवनोऽपि पदातिः सन्पृष्ठतोऽनुगतः खलः।
प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुन्दो महाबलः॥ ३५

प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः।
तत्रैवान्तर्दधे विष्णुर्मुचुकुन्दं समीक्ष्य च॥ ३६

तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत।
मत्वा तं वासुदेवं स पादेनाताडयन्नृपम्॥ ३७

प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः।
तं दग्ध्वा मुचुकुन्दोऽथ ददर्श कमलेक्षणम्॥ ३८

वासुदेवं सुदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम्।
जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः॥ ३९

उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि।
अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपालस्वयंवरात्॥ ४०

राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः।
ततो जाम्बवतीं सत्यां मित्रविन्दाञ्च भामिनीम्॥ ४१

कालिन्दीं लक्ष्मणां भद्रां तथा नाग्नजितीं शुभाम्।
पृथक्पृथक्समानीयाप्युपयेमे जनार्दनः॥ ४२

अष्टावेव महीपाल पत्न्यः परमशोभनाः।
प्रासूत रुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम्॥ ४३

जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः।
हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छम्बरेण बलीयसा॥ ४४
नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यै समर्पितः।

निर्जन पुरीमें रहने लगे। उसी समय शक्तिशाली कालयवन भी वहाँ आ गया। कालयवनको आया जानकर वे पीताम्बरधारी तथा ऐश्वर्यसम्पन्न मधुसूदन भगवान् जनार्दन नगरसे बाहर निकल पड़े और जोर-जोर हँसते हुए उसके आगे-आगे पैदल ही चलने लगे॥ ३१-३३½॥

उन कमललोचन श्रीकृष्णको अपने आगे जाता देखकर वह दुष्ट कालयवन उनके पीछे-पीछे पैदल ही चलता रहा। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनसहित वहाँ पहुँच गये, जहाँ महाबली राजर्षि मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। मुचुकुन्दको देखकर भगवान् कृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३४-३६॥

वह कालयवन भी वहीं पहुँच गया। उसने देखा कि कोई सो रहा है। राजर्षि मुचुकुन्दको कृष्ण समझकर कालयवनने उनके ऊपर पैरसे प्रहार किया॥ ३७॥

[कालयवनद्वारा पाद-प्रहार किये जानेसे] वे जग गये और क्रोधसे आँखें लाल किये हुए महाबली मुचुकुन्दने [उसकी ओर दृष्टिपात करके] उसे भस्म कर दिया। उसे जलानेके बाद मुचुकुन्दने अपने समक्ष कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उपस्थित देखा। तदनन्तर देवाधिदेव वासुदेवको प्रणाम करके वे वनकी ओर प्रस्थान कर गये। भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामको साथ लेकर द्वारकापुरी चले गये॥ ३८-३९॥

इस प्रकार उग्रसेनको पुनः राजा बनाकर वे इच्छापूर्वक विहार करने लगे। इसके बाद शिशुपालके साथ रुक्मिणीके सुनिश्चित किये गये विवाहहेतु आयोजित स्वयंवरसे भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीका हरण कर लिया और उसके साथ राक्षसविधिसे विवाह कर लिया। तत्पश्चात् जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा तथा नाग्नजिती—इन दिव्य सुन्दरियोंको बारी-बारीसे ले आकर श्रीकृष्णने उनके साथ भी पाणिग्रहण किया। हे भूपाल! श्रीकृष्णकी ये ही परम सुन्दर आठ पत्नियाँ थीं। इनमें रुक्मिणीने देखनेमें परम सुन्दर पुत्र प्रद्युम्नको जन्म दिया॥ ४०—४३॥

मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। महाबली शम्बरासुरने प्रसवगृहसे उस बालकका हरण कर लिया और उसे अपनी नगरीमें ले जाकर मायावतीको सौंप दिया॥ ४४½॥

वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रं शोकसमन्वितः॥ ४५

जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा।
वृत्रासुरादयो दैत्या लीलयैव यया हताः॥ ४६

ततोऽसौ योगमायायाश्चकार परमां स्मृतिम्।
वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः॥ ४७

श्रीकृष्ण उवाच

मातर्मयातितपसा परितोषिता त्वं
प्राग्जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चितासि।
धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये
किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः॥ ४८

सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे
केनापि दुष्टमनसाप्यथ कौतुकाद्वा।
मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं
लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता॥ ४९

दुर्गो महानतितरां नगरी सुगुप्ता
तत्रापि मेऽस्ति सदनं किल मध्यभागे।
अन्तःपुरे च पिहितं ननु सूतिगेहं
बालो हृतः खलु तथापि ममैव दोषात्॥ ५०

नाहं गतः परपुरं न च यादवाश्च
रक्षावतीव नगरी किल वीरवर्यैः।
माया तवैव जननि प्रकटप्रभावा
मे बालकः परिहृतः कुहकेन केन॥ ५१

नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं
को वेद मन्दमतिरल्पविदेव देही।
क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा
हर्ताम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम्॥ ५२

उधर, अपने पुत्रका हरण देखकर शोक-सन्तप्त वासुदेव श्रीकृष्णने भक्तिभावयुक्त हृदयसे उन भगवती योगमायाकी शरण ली, जिन्होंने वृत्रासुर आदि दैत्योंका लीलामात्रसे वध कर दिया था॥ ४५-४६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त सारगर्भित अक्षरों तथा वाक्योंसे युक्त मंगलमय स्तवनोंके द्वारा योगमायाका पुण्य-स्मरण करने लगे॥ ४७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे माता! पूर्वकालमें मैंने धर्मपुत्र नारायणके रूपमें बदरिकाश्रममें घोर तपस्या करके तथा पुष्प आदिसे आपकी विधिवत् पूजा करके आपको प्रसन्न किया था। हे जननि! क्या अपने प्रति मेरे उस भक्तिभावको आपने विस्मृत कर दिया?॥ ४८॥

किस कुत्सित हृदयवाले दुराचारीने प्रसूतिगृहसे मेरे पुत्रका हरण कर लिया? अथवा किसीने मेरा अभिमान दूर करनेके लिये कौतूहलवश यह प्रपंच रच दिया है। हे अम्ब! चाहे जो हो, किंतु आज अपने भक्तजनकी लाज रखना आपका परमोचित कर्तव्य है॥ ४९॥

चारों ओर दुस्तर खाइयोंसे अति सुरक्षित मेरी नगरी है, उसमें भी मेरा भवन मध्य भागमें स्थित है और उस भवनके अन्तःपुरमें प्रसूतिगृह स्थित है, जिसके दरवाजे बन्द रहते हैं; फिर भी मेरे पुत्रका हरण हो गया। यह तो मेरे दोषके ही कारण हुआ॥ ५०॥

मैं द्वारकापुरी छोड़कर किसी अन्य नगरमें नहीं गया और यादवगण भी वहाँसे कहीं नहीं गये थे। महान् वीरोंके द्वारा नगरीकी पूर्ण सुरक्षा की गयी थी। हे माता! इसमें तो मुझे आपकी ही मायाका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित हो रहा है, जिसकी प्रेरणासे किसी मायावीने मेरे पुत्रका हरण कर लिया है॥ ५१॥

हे माता! जब मैं आपके अत्यन्त गुप्त चरित्रको नहीं जान पाया तो फिर मन्दबुद्धि तथा अल्पज्ञ ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके चरित्रको जान सकता है। मेरे पुत्रका हरण करनेवाला कहाँ चला गया, जिसे मेरे सैनिक देखतक नहीं पाये, हे अम्बिके! यह आपकी ही रची हुई मायाका प्रभाव है॥ ५२॥

चित्रं न तेऽत्र पुरतो मम मातृगर्भो
नीतस्त्वयार्धसमये किल माययासौ।
यं रोहिणी हलधरं सुषुवे प्रसिद्धं
दूरे स्थिता पतिपरा मिथुनं विनापि॥ ५३

सृष्टिं करोषि जगतामनुपालनं च
नाशं तथैव पुनरप्यनिशं गुणैस्त्वम्।
को वेद तेऽम्ब चरितं दुरितान्तकारि
प्रायेण सर्वमखिलं विहितं त्वयैतत्॥ ५४

उत्पाद्य पुत्रजननप्रभवं प्रमोदं
दत्त्वा पुनर्विरहजं किल दुःखभारम्।
त्वं क्रीडसे सुललितैः खलु तैर्विहारै-
र्नो चेत्कथं मम सुताप्तिरतिर्वृथा स्यात्॥ ५५

मातास्य रोदिति भृशं कुररीव बाला
दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव।
कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रमितप्रभावे
मातस्त्वमेव शरणं भवपीडितानाम्॥ ५६

सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो
दुःखस्य देवि भवने विबुधा वदन्ति।
तत्किं करोमि जननि प्रथमे प्रनष्टे
पुत्रे ममाद्य हृदयं स्फुटतीव मातः॥ ५७

यज्ञं करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा
दैवं च पूजनमथाखिलदुःखहा त्वम्।
मातः सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाशु
त्वं वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय॥ ५८

आपके लिये यह कोई विचित्र बात नहीं है; क्योंकि मेरे प्रकट होनेके पूर्व आपने अपनी मायाके प्रभावसे माता देवकीके पाँच महीनेके गर्भको खींचकर [माता रोहिणीके गर्भमें] स्थापित कर दिया था। वसुदेवजी कारागारमें निरुद्ध थे; उनसे दूर रहती हुई पतिपरायणा माता रोहिणीने सम्पर्कके बिना ही उसे जन्म दिया, जो हलधर नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ५३॥

हे अम्ब! आप सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके द्वारा जगत्का सृजन, पालन तथा संहार निरन्तर करती रहती हैं। हे जननि! आपके पापनाशक चरित्रको कौन जान सकता है? वास्तविकता तो यह है कि यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच आपके ही द्वारा विरचित है॥ ५४॥

आप पहले प्राणियोंके समक्ष पुत्र-जन्मसे होनेवाले असीम आनन्दको उपस्थित करके पुनः पुत्र-वियोगजनित दुःखका भार उनके ऊपर ला देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन सुललित प्रपंचोंकी रचना करके आप अपना मनोरंजन करती हैं। यदि ऐसा न होता तो पुत्र-प्राप्तिजनित मेरा आनन्द व्यर्थ क्यों होता?॥ ५५॥

हे अमित प्रभाववाली भगवति! इस बालककी माता कुररी पक्षीकी भाँति रो रही है। वह बेचारी सदा मेरे पास ही रहती है, जिसे देखकर मेरा दुःख और भी बढ़ जाता है। हे माता! आप ही तो भवव्याधिसे पीड़ित प्राणियोंकी एकमात्र शरण हैं; हे ललिते! आप उसका दुःख क्यों नहीं समझ रही हैं?॥ ५६॥

हे देवि! विद्वज्जन कहते हैं कि पुत्र-जन्मके अवसरपर सुखकी कोई सीमा नहीं रहती तथा उसके नष्ट हो जानेपर दुःखकी भी सीमा नहीं रहती। हे जननि! अब मैं क्या करूँ? हे माता! अपने प्रथम पुत्रके विनष्ट हो जानेपर मेरा हृदय अब विदीर्ण होता जा रहा है॥ ५७॥

मैं आपको प्रसन्न करनेवाला अम्बायज्ञ करूँगा, नवरात्रव्रत करूँगा और विधि-विधानसे आपका पूजन करूँगा; क्योंकि आप सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाली हैं। हे माता! यदि मेरा पुत्र जीवित हो तो आप मुझे शीघ्र उसे दिखा दीजिये; क्योंकि आप समस्त प्रकारके शोकोंका शमन करनेमें समर्थ हैं॥ ५८॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम्॥ ५९

श्रीदेव्युवाच

शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयं ते पुरातनः।
तस्य योगेन पुत्रस्ते शम्बरेण हृतो बलात्॥ ६०

अतस्ते षोडशे वर्षे हत्वा तं शम्बरं बलात्।
आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्न संशयः॥ ६१

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी चण्डिका चण्डविक्रमा।
भगवानपि पुत्रस्य शोकं त्यक्त्वाभवत्सुखी॥ ६२

व्यासजी बोले—असाध्य-से-असाध्य कार्योंको भी सहज भावसे कर सकनेमें समर्थ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती उन जगद्गुरु वासुदेवके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर बोलीं—॥ ५९॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवेश! आप शोक न करें। यह आपका पूर्वजन्मका शाप है; उसीके परिणामस्वरूप शम्बरासुरने आपके पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ ६०॥

सोलह वर्षका हो जानेपर वह पुत्र मेरी कृपासे उस शम्बरासुरका संहार करके स्वयं ही घर आ जायगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमसे सम्पन्न भगवती चण्डिका अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्र-शोक त्यागकर प्रसन्न हो गये॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देव्या कृष्णशोकापनोदनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा शाम्भवी मायाकी बलवत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीद्वारा उन्हें वरदान देना

राजोवाच

सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव।
वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिं विलोक्य च॥ १

नारायणांशसम्भूतो वासुदेवः प्रतापवान्।
कथं स सूतिकागाराद्धृतो बालो हरेरपि॥ २

सुगुप्तनगरे रम्ये गुप्तेऽथ सूतिकागृहे।
प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः॥ ३

न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम्।
जायते महदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत॥ ४

राजा बोले—हे मुनिवर! आपकी इस बातसे तथा साक्षात् विष्णुके अंशावतार भगवान् कृष्णके ऊपर कष्टका पड़ना देखकर मुझे सन्देह हो रहा है॥ १॥

भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्ण [अपरिमित] प्रतापसे सम्पन्न थे, फिर भी भगवान्के उस पुत्रका प्रसव-गृहसे हरण कैसे सम्भव हुआ?॥ २॥

वह दैत्य शम्बरासुर चारों ओरसे भलीभाँति सुरक्षित रमणीय नगरके अत्यन्त गुप्त स्थानमें अवस्थित प्रसव-गृहमें प्रवेश करके उस बालकको कैसे उठा ले गया?॥ ३॥

यह बड़ी विचित्र तथा अद्भुत बात है कि भगवान् श्रीकृष्ण भी इसे नहीं जान पाये। हे सत्यवतीनन्दन! मेरे मनमें [इस बातको लेकर] महान् आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है!॥ ४॥

ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन्न ज्ञातं केशवेन यत्।
हरणं तत्रसंस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात्॥ ५

व्यास उवाच

माया बलवती राजन्नराणां बुद्धिमोहिनी।
शाम्भवी विश्रुता लोके को वा मोहं न गच्छति॥ ६

मानुषं जन्म सम्प्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः।
भवन्ति देहजाः कामं न देवा नासुरास्तदा॥ ७

क्षुत्तृण्निद्रा भयं तन्द्रा व्यामोहः शोकसंशयः।
हर्षश्चैवाभिमानश्च जरामरणमेव च॥ ८

अज्ञानं ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्यासूया मदः श्रमः।
एते देहभवा भावाः प्रभवन्ति नराधिप॥ ९

यथा हेममृगं रामो न बुबोध पुरोगतम्।
जानक्या हरणञ्चैव जटायुमरणं तथा॥ १०

अभिषेकदिने रामो वनवासं न वेद च।
तथा न ज्ञातवान् रामः स्वशोकान्मरणं पितुः॥ ११

अज्ञवद्विचचारासौ पश्यमानो वने वने।
जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात्॥ १२

सहायान् वानरान्कृत्वा हत्वा शक्रसुतं बलात्।
सागरे सेतुबन्धञ्च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम्॥ १३

प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान्।
संग्रामं कृतवान्घोरं दुःखं प्राप रणाजिरे॥ १४

बन्धनं नागपाशेन प्राप रामो महाबलः।
गरुडान्मोक्षणं पश्चादन्वभूद्रघुनन्दनः॥ १५

हे ब्रह्मन्! वहाँ द्वारकापुरीमें वासुदेव श्रीकृष्णके विद्यमान रहते हुए भी सूतिका-गृहसे बच्चेके हरणकी जानकारी उन्हें नहीं हो सकी; मुझे इसका कारण बताइये॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! प्राणियोंकी बुद्धिको विमोहित कर देनेवाली माया बड़ी बलवती होती है; यह शाम्भवी नामसे प्रसिद्ध है। संसारमें कौन-सा प्राणी है, जो [इस मायाके प्रभावसे] मोहित नहीं हो जाता है॥ ६॥

मनुष्य-जन्म पाते ही प्राणीमें समस्त मानवोचित गुण उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी गुण देहसे सम्बन्ध रखते हैं। देवता अथवा दानव—कोई भी इससे परे नहीं है॥ ७॥

भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, व्यामोह, शोक, सन्देह, हर्ष, अभिमान, बुढ़ापा, मृत्यु, अज्ञान, ग्लानि, वैर, ईर्ष्या, परदोषदृष्टि, मद और थकावट—ये देहके साथ उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! ये भाव सभीपर अपना प्रभाव डालते हैं॥ ८-९॥

जिस प्रकार श्रीराम अपने समक्ष विचरणशील स्वर्ण-मृगकी वास्तविकताको नहीं जान पाये और वे सीताहरण तथा जटायुमरणकी घटना भी नहीं जान सके॥ १०॥

श्रीराम यह भी नहीं जान सके कि अभिषेकके दिन ही उन्हें वनवास होगा और वे अपने वियोगजनित शोकसे पिताकी मृत्यु भी नहीं जान पाये॥ ११॥

रावणके द्वारा बलपूर्वक हरी गयी सीताके सम्बन्धमें श्रीराम कुछ भी नहीं जान सके थे और एक अज्ञानी पुरुषकी भाँति उन्हें खोजते हुए वन-वनमें भटकते रहे॥ १२॥

तदनन्तर उन्होंने बलपूर्वक वालीका वध करके वानरोंको अपना सहायक बनाकर सागरपर सेतु बाँधा और पुनः उस समुद्रको पार करके उन्होंने सभी दिशाओंमें बड़े-बड़े शूरवीर वानरोंको भेजा। तत्पश्चात् संग्रामभूमिमें रावणके साथ घोर युद्ध किया, जिसमें उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ा॥ १३-१४॥

महाबली होते हुए भी श्रीरामको नागपाशमें बँधना पड़ा; बादमें गरुडकी सहायतासे वे रघुनन्दन बन्धनमुक्त हुए॥ १५॥

अहनद्रावणं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
मेघनादं निकुम्भञ्च कुपितो रघुनन्दनः॥ १६

अदूष्यत्वञ्च जानक्या न विवेद जनार्दनः।
दिव्यञ्च कारयामास ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम्॥ १७

लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम्।
अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः॥ १८

न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ।
मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ॥ १९

पातालगमनं चैव जानक्या ज्ञातवान्न च।
राघवः कोपसंयुक्तो भ्रातरं हन्तुमुद्यतः॥ २०

कालस्यागमनञ्चैव न विवेद खरान्तकः।
मानुषं देहमाश्रित्य चक्रे मानुषचेष्टितम्॥ २१

तथैव मानुषान्भावान्नात्र कार्या विचारणा।
पूर्वं कंसभयात्प्राप्तो गोकुले यदुनन्दनः॥ २२

जरासन्धभयात्पश्चाद् द्वारवत्यां गतो हरिः।
अधर्मं कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरणञ्च यत्॥ २३

शिशुपालवृतायाश्च जानन्धर्मं सनातनम्।
शुशोच बालकं कृष्णः शम्बरेण हृतं बलात्॥ २४

मुमोद जानन्पुत्रं तं हर्षशोकयुतस्ततः।
सत्यभामाज्ञया यत्तु युयुधे स्वर्गतः किल॥ २५

इन्द्रेण पादपार्थं तु स्त्रीजितत्वं प्रकाशयन्।
जहार कल्पवृक्षं यः पराभूय शतक्रतुम्॥ २६

मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधरः प्रभुः।
बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम्॥ २७
दत्त्वाथ कानकं कृष्णं मोचयामास भामिनी।

श्रीरामने कोप करके समरभूमिमें रावण, महाबली कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा निकुम्भका संहार किया॥ १६॥

भगवान् श्रीरामको जानकीकी निर्दोषताका भी परिज्ञान नहीं हो सका और उन्होंने शुद्धताकी परीक्षाहेतु प्रज्वलित अग्निमें उनका प्रवेश कराया॥ १७॥

तत्पश्चात् दशरथपुत्र श्रीरामने परम पवित्र तथा प्रिय सीताको लोकनिन्दाके भयसे दूषित मानकर उनका परित्याग कर दिया॥ १८॥

वे श्रीराम अपने पुत्रों लव-कुशको नहीं पहचान सके। बादमें महर्षि वाल्मीकिने उन्हें बताया कि वे दोनों महाबली बालक उन्हींके पुत्र हैं॥ १९॥

वे रघुनन्दन श्रीराम सीताके पाताल जानेकी भी बात नहीं जान पाये। वे कुपित होकर भाईका वध करनेको उद्यत हो गये॥ २०॥

दानव खरके संहारक श्रीरामको कालके आगमनका भी ज्ञान नहीं हो सका। मानव-शरीर धारण करके उन्होंने मनुष्योंके समान कार्य किये॥ २१॥

ऐसे ही श्रीकृष्णने भी सभी मानवोचित भाव प्रदर्शित किये, इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यदुनन्दन श्रीकृष्ण पहले कंसके भयसे गोकुल जानेको विवश हुए। कुछ समयके पश्चात् जरासन्धके भयसे मथुरा छोड़कर श्रीकृष्णको द्वारका जाना पड़ा। वे ही श्रीकृष्ण अधर्मपूर्ण कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए जो कि उन्होंने सनातन धर्मको जानते हुए भी शिशुपालके द्वारा वरण की गयी रुक्मिणीका हरण कर लिया। शम्बरासुरके द्वारा पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिये जानेपर उसके लिये श्रीकृष्ण शोकाकुल हो उठे और [भगवतीसे] पुत्रके जीवित होनेकी बात जानकर वे प्रसन्न हो गये। इस प्रकार हर्ष तथा शोक—इन दोनोंसे वे प्रभावित रहे॥ २२—२४½॥

सत्यभामाकी आज्ञासे स्वर्गमें जाकर कल्पवृक्षके लिये उन्होंने इन्द्रके साथ युद्ध किया। युद्धमें इन्द्रको परास्त करके अपना स्त्रीवशित्व प्रकट करते हुए श्रीकृष्णने इन्द्रसे वह कल्पवृक्ष छीन लिया था। मानिनी सत्यभामाका मान रखनेके लिये प्रभु श्रीकृष्ण काष्ठमूर्तिके रूपमें चित्रित हो गये और सत्यभामाने पति कृष्णको वृक्षमें बाँधकर उन्हें नारदको दान कर दिया। तत्पश्चात् सत्यभामाने सोनेका कृष्ण दानमें देकर उन्हें नारदजीसे मुक्त कराया॥ २५—२७½॥

दृष्ट्वा पुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ॥ २८

कृष्णं जाम्बवती दीना ययाचे सन्ततिं शुभाम्।
स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः॥ २९

उपमन्युर्मुनिर्यत्र शिवभक्तः परन्तपः।
उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः॥ ३०

जग्राह पुत्रकामस्तु मुण्डी दण्डी बभूव ह।
उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः॥ ३१

जजाप शिवमन्त्रं तु शिवध्यानपरो हरिः।
द्वितीये तु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदा हरिः॥ ३२

तृतीये वायुभक्षस्तु पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थितः।
षष्ठे तु भगवान् रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः॥ ३३

दर्शनञ्च ददौ तत्र सोमः सोमकलाधरः।
आजगाम वृषारूढः सुरैरिन्द्रादिभिर्वृतः॥ ३४

ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगन्धर्वसेवितः।
सम्बोधयन्वासुदेवं शङ्करस्तमुवाच ह॥ ३५

तुष्टोऽस्मि कृष्ण तपसा तवोग्रेण महामते।
ददामि वाञ्छितान्कामान्ब्रूहि यादवनन्दन॥ ३६

मयि दृष्टे कामपूरे कामशेषो न सम्भवेत्।

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा शङ्करं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः॥ ३७

पपात पादयोस्तस्य दण्डवत्प्रेमसंयुतः।
स्तुतिं चकार देवेशो मेघगम्भीरया गिरा॥ ३८

स्थितस्तु पुरतः शम्भोर्वासुदेवः सनातनः।

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन॥ ३९

विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्यकारक।
नीलकण्ठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः॥ ४०

शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तु ते।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत॥ ४१

रुक्मिणीके प्रद्युम्न आदि विशिष्ट गुणसम्पन्न पुत्रोंको देखकर दीनभावसे जाम्बवतीने कृष्णसे सुन्दर सन्तानहेतु याचना की, तब तपस्या करनेका निश्चय करके वे पर्वतपर चले गये, जहाँ महान् तपस्वी तथा शिवभक्त मुनि उपमन्यु विराजमान थे॥ २८-२९½॥

वहाँपर पुत्राभिलाषी श्रीकृष्णने उपमन्युको अपना गुरु बनाकर उनसे पाशुपत-दीक्षा ली और वे वहींपर मुण्डित होकर दण्डी हो गये। महीनेभर फलाहार करते हुए श्रीकृष्णने घोर तपस्या की और शिवके ध्यानमें लीन होकर शिवमन्त्रका जप किया। दूसरे महीनेमें केवल जल पीकर और एक पैरसे खड़े होकर श्रीकृष्णने कठोर तप किया। तीसरे महीनेमें वे वायुभक्षण करते हुए पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित रहे। तत्पश्चात् छठे महीनेमें भगवान् रुद्र उनके भक्तिभावसे प्रसन्न हो गये और उन चन्द्रकलाधारी भगवान् शंकरने पार्वतीसहित उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे नन्दी बैलपर सवार होकर वहाँ आये थे और इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए थे। उस समय ब्रह्मा और विष्णु भी उनके साथ थे तथा साक्षात् यक्ष और गन्धर्व उनकी निरन्तर सेवा कर रहे थे। उन वासुदेव श्रीकृष्णको सम्बोधित करते हुए शंकरजीने कहा—हे कृष्ण! हे महामते! तुम्हारी इस कठोर तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। अतः हे यादवनन्दन! तुम अपने वांछित मनोरथ बताओ, मैं उन्हें दूँगा। सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले मुझ शिवका दर्शन हो जानेपर कोई भी कामना शेष नहीं रह जाती॥ ३०—३६½॥

व्यासजी बोले—उन भगवान् शंकरको प्रसन्न देखकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण प्रेमपूर्वक उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। तदनन्तर देवेश्वर सनातन श्रीकृष्ण शंकरजीके सम्मुख खड़े होकर मेघ-सदृश गम्भीर वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ३७-३८½॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सभी प्राणियोंके कष्टके विनाशक! हे विश्वयोने! हे दैत्यमर्दन! हे त्रैलोक्यकारक! आपको नमस्कार है। हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है, आप त्रिशूलधारीको बार-बार नमस्कार है। दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले आप पार्वतीवल्लभको नमस्कार है। हे सुव्रत! आपके

जन्म मे सफलं जातं नत्वा ते पादपङ्कजम्।
बद्धोऽहं स्त्रीमयैः पाशैः संसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो॥ ४२

शरणं तेऽद्य सम्प्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन।
सम्प्राप्य मानुषं जन्म खिन्नोऽहं दुःखनाशन॥ ४३

त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना।
गर्भवासे महद्दुःखं प्राप्तं मदनदाहक॥ ४४

जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले।
जातोऽहं नन्दगोपालो बल्लवाज्ञाकरस्तथा॥ ४५

गोरजःकीर्णकेशस्तु भ्रमन्वृन्दावने घने।
म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः॥ ४६

त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो।
ययातिशापबद्धेन तस्मै दत्तं भयाद्विभो॥ ४७

राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षापरेण च।
उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया॥ ४८

राजासौ यादवानां वै कृतो नः पूर्वजैः किल।
गार्हस्थ्यं दुःखदं शम्भो स्त्रीवश्यं धर्मखण्डनम्॥ ४९

पारतन्त्र्यं सदा बन्धमोक्षवार्तात्र दुर्लभा।
रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जाम्बवती मम॥ ५०

प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनान्तक।
सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै॥ ५१

दर्शनसे मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। आपके चरणकमलका नमन करके मेरा जन्म सफल हो गया। हे जगद्गुरो! इस संसारमें आकर मैं स्त्रीरूपी बन्धनोंमें आबद्ध हो गया हूँ॥ ३९—४२॥

हे त्रिलोचन! अपनी रक्षाके लिये आज मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे दुःखनाशन! मानव-जन्म पाकर मैं बहुत खिन्न हो गया हूँ। हे भव! शरणमें आये हुए तथा सांसारिक दुःखोंसे भयभीत मुझ दीनकी इस समय आप रक्षा कीजिये। हे मदनदाहक! मैंने गर्भमें रहकर बहुत कष्ट पाया है। जन्मकालसे ही गोकुलमें रहते हुए मुझे कंससे भयभीत रहना पड़ा। तत्पश्चात् नन्दके यहाँ मुझे गो-पालनका कार्य करना पड़ा और गायोंके खुरसे उड़ी हुई धूलसे धूसरित केशपाशवाला होकर घने वृन्दावनमें इधर-उधर विचरण करता हुआ मैं ग्वालोंकी आज्ञाका पालन करनेको विवश हुआ॥ ४३—४५$\frac{१}{२}$॥

हे विभो! उसके बाद म्लेच्छराज कालयवनके भयसे सन्त्रस्त होकर मथुरा-जैसी दुर्लभ तथा शुभ पैतृक भूमि छोड़कर मुझे द्वारकापुरी चले जाना पड़ा। हे विभो! राजा ययातिके शापवश भयके कारण अपने कुल-धर्मकी रक्षामें तत्पर मैंने समृद्धिमयी मथुरा तथा द्वारकापुरीका राज्य उग्रसेनको सौंप दिया और सदा उनका दास बनकर उनकी सेवा की। हमारे पूर्वजोंने उन उग्रसेनको ही यादवोंका राजा बनाया था॥ ४६—४८$\frac{१}{२}$॥

हे शम्भो! गृहस्थीका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद होता है। इसमें सदा स्त्रीके वशीभूत रहना पड़ता है और अनेक धार्मिक मर्यादाओंका उल्लंघन हो जाता है। इसमें परतन्त्रता तथा स्त्रीपुत्रादिका बन्धन सदा बाँधे रखता है। इस जीवनमें मोक्षकी वार्ता तो दुर्लभ रहती है॥ ४९$\frac{१}{२}$॥

रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर मेरी भार्या जाम्बवतीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तपस्या करनेके लिये मुझे प्रेरित किया। अतएव हे मदनान्तक! पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मुझे यह तपस्या करनी पड़ी। हे देवेश! [पुत्र-प्राप्तिके लिये] आपसे याचना करनेमें मुझे लज्जाका अनुभव हो रहा है। हे जगद्गुरो! आप मुक्तिदाता तथा भक्तवत्सल देवेश्वरकी आराधनाके बाद उनके

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो।
कस्त्वामाराध्य देवेशं मुक्तिदं भक्तवत्सलम्॥ ५२

प्रसन्नं याचते मूढः फलं तुच्छं विनाशि यत्।
सोऽयं मायाविमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो॥ ५३

कामिन्या प्रेरितः शम्भो मुक्तिदं त्वां जगत्पते।
जानामि दुःखदं शम्भो संसारं दुःखसाधनम्॥ ५४

अनित्यं नाशधर्माणं तथापि विरतिर्न मे।
शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मि क्षितिमण्डले॥ ५५

भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यन्त्रितः।

व्यास उवाच

इत्युक्तवन्तं गोविन्दं प्रत्युवाच महेश्वरः॥ ५६

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्राः शत्रुनिषूदन।
स्त्रीणां षोडशसाहस्त्रं भविष्यति शतार्धकम्॥ ५७

तासु पुत्रा दश दश भविष्यन्ति महाबलाः।
इत्युक्त्वोपररामाशु शङ्करः प्रियदर्शनः॥ ५८

उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो संसारेऽस्मिन्नराधिप॥ ५९

गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह।
ततो वर्षशतान्ते तु द्विजशापाज्जनार्दन॥ ६०

गान्धार्याश्च तथा शापाद्भविता ते कुलक्षयः।
परस्परं निहत्याजौ पुत्रास्ते शापमोहिताः॥ ६१

गमिष्यन्ति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथापरे।
सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम्॥ ६२

शोकस्तत्र न कर्तव्यो भवितव्यं प्रति प्रभो।
अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते॥ ६३

तत्र शोको न कर्तव्यो नूनं मम मतं सदा।
अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन॥ ६४
चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यन्ति मृते त्वयि।

प्रसन्न हो जानेपर कौन मूर्ख ऐसे विनाशशील तथा तुच्छ फलकी कामना करेगा? हे शम्भो! हे जगत्पते! हे विभो! अपनी भार्या जाम्बवतीसे प्रेरित होकर आपकी मायासे विमूढचित्त यह मैं आप मुक्तिदातासे पुत्र-सुखकी याचना कर रहा हूँ॥ ५०—५३½ ॥

हे शम्भो! मैं जानता हूँ कि यह संसार कष्टदायक, दुःखोंका आगार, अनित्य तथा विनाशशील है, फिर भी इसके प्रति मेरे मनमें वैराग्य-भावका उदय नहीं हो पा रहा है। नारायणका अंश होते हुए भी पूर्वजन्मके शापके कारण मायापाशमें आबद्ध होकर नानाविध कष्ट भोगनेके लिये मुझे पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ा॥ ५४-५५½ ॥

व्यासजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महेश्वरने उनसे कहा—हे शत्रुदमन! आपके बहुतसे पुत्र होंगे; आपकी सोलह हजार पचास भार्याएँ भी होंगी। उनमेंसे प्रत्येक स्त्रीसे दस-दस महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होंगे—ऐसा कहकर प्रियदर्शन शिवजी चुप हो गये॥ ५६—५८॥

तत्पश्चात् प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णसे देवी पार्वतीने कहा—हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे नराधिप! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे। इसके बाद हे जनार्दन! सौ वर्ष व्यतीत होनेपर एक विप्र तथा गान्धारीके शापके कारण आपके कुलका नाश हो जायगा। शापवश अज्ञानमें पड़कर आपके वे पुत्र तथा अन्य सभी यादव आपसमें एक दूसरेको मारकर रणभूमिमें विनष्ट हो जायँगे और आप अपने भाई बलरामके साथ यह शरीर छोड़कर दिव्य लोकको प्रयाण करेंगे॥ ५९—६२॥

हे प्रभो! आपको होनहारके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई भी प्रतीकार सम्भव नहीं है। हे मधुसूदन! मेरा सर्वदा यही निश्चित मन्तव्य रहा है कि भावीके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये। हे कृष्ण! आपके प्रयाण कर जानेपर अष्टावक्रके शापके कारण आपकी भार्याएँ चोरोंद्वारा हर ली जायँगी॥ ६३-६४½ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुः सोमः ससुरमण्डलः ॥ ६५

उपमन्युं प्रणम्याथ कृष्णोऽपि द्वारकां ययौ।
यस्माद् ब्रह्मादयो राजन् सन्ति यद्यप्यधीश्वराः ॥ ६६

तथापि मायाकल्लोलयोगसंक्षुभितान्तराः।
तदधीनाः स्थिताः सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमाः ॥ ६७

यथा यथा पूर्वभवं कर्म तेषां तथा तथा।
प्रेरयत्यनिशं माया परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ६८

न वैषम्यं न नैर्घृण्यं भगवत्यां कदाचन।
केवलं जीवमोक्षार्थं यतते भुवनेश्वरी ॥ ६९

यदि सा नैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम्।
तदा मायां विना भूतं जडं स्यादेव नित्यशः ॥ ७०

तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिकं च यत्।
करोति सततं देवी प्रेरयत्यनिशं च तत् ॥ ७१

तस्माद् ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यः संशयो न हि।
मायान्तःपातिनः सर्वे मायाधीनाः सुरासुराः ॥ ७२

स्वतन्त्रा सैव देवेशी स्वेच्छाचारविहारिणी।
तस्मात्सर्वात्मना राजन् सेवनीया महेश्वरी ॥ ७३

नातः परतरं किञ्चिदधिकं भुवनत्रये।
एतद्धि जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदस्मृतिः ॥ ७४

माभूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम्।
अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ ७५

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवान् शिव समस्त देवताओं तथा पार्वतीसमेत अन्तर्धान हो गये। इसके बाद अपने गुरु उपमन्युको प्रणाम करके श्रीकृष्ण भी द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए। हे राजन्! यद्यपि ब्रह्मा आदि देवता लोकके अधीश्वर हैं, फिर भी मायारूपिणी नदीकी उत्ताल तरंगोंके आघात-प्रत्याघातसे क्षुब्ध अन्तःकरणवाले बनकर वे भी उसी प्रकार उस मायाके अधीन रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है ॥ ६५—६७ ॥

उनके पूर्वजन्मके संचित कर्म जिस प्रकारके होते हैं, उसीके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया उन्हें सदा प्रेरित करती रहती है। उन भगवतीके हृदयमें किसी प्रकारकी विषमता अथवा निर्दयताका लेशमात्र भी नहीं रहता। वे अखिल भुवनकी ईश्वरी केवल जीवोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं ॥ ६८-६९ ॥

यदि वे भगवती इस चराचर जगत्की सृष्टि न करतीं तो समग्र जीव-जगत् माया-शक्तिके बिना सर्वदाके लिये जड़ ही रह जाता। अतएव वे भगवती करुणा करके यह जगत् और जीव आदि जो भी हैं, उनकी रचना करती हैं और उन्हें कर्मशील बनानेके लिये सतत प्रेरणा देती रहती हैं ॥ ७०-७१ ॥

अतएव ब्रह्मादि देवताओंके भी इस प्रकार माया-विमोहित हो जानेमें सन्देह नहीं करना चाहिये; क्योंकि समस्त देवता तथा दानव मायासे निरन्तर आवृत रहते हुए भगवती योगमायाके अधीन रहते हैं ॥ ७२ ॥

स्वेच्छया विचरण एवं विहार करनेवाली वे देवेश्वरी ही स्वतन्त्र हैं। अतएव हे राजन्! उन महेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। तीनों लोकोंमें उनसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। उन पराशक्ति भगवती योगमायाके पावन चरणोंका सदा स्मरण बना रहे—यही जीवनकी सफलता है ॥ ७३-७४ ॥

मेरा जन्म उस कुलमें न हो, जहाँ देवीकी उपासना न होती हो। मैं उन देवीका ही अंश हूँ, दूसरा नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ; तब मैं शोकका भागी नहीं

इत्यभेदेन तां नित्यां चिन्तयेज्जगदम्बिकाम्।
ज्ञात्वा गुरुमुखादेनां वेदान्तश्रवणादिभिः॥ ७६

नित्यमेकाग्रमनसा भावयेदात्मरूपिणीम्।
मुक्तो भवति तेनाशु नान्यथा कर्मकोटिभिः॥ ७७

श्वेताश्वतरादयः सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः।
आत्मरूपां हृदा ज्ञात्वा विमुक्ता भवबन्धनात्॥ ७८

ब्रह्मविष्ण्वादयस्तद्वद् गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा।
तामेव समुपासन्ते सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ७९

इति ते कथितं राजन् यद्यत्पृष्टं त्वयानघ।
प्रपञ्चतापत्रस्तेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ८०

एतत्ते कथितं राजन्मयाख्यानमनुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं परमाद्भुतम्॥ ८१

य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते॥ ८२

सूत उवाच

एतन्मया श्रुतं व्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम्।
पुराणं पञ्चमं नूनं श्रीमद्भागवताभिधम्॥ ८३

हो सकता। इस अभेदबुद्धिसे युक्त रहते हुए उन सनातन जगदम्बाका चिन्तन करना चाहिये। गुरुके उपदेशसे वेदान्तश्रवण आदिके द्वारा भगवतीके स्वरूपको जानकर नित्य एकाग्र मनसे उन आत्मस्वरूपिणी योगमायाकी भावना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे प्राणी भव-बन्धनसे शीघ्र ही छूट जाता है, अन्यथा करोड़ों कर्मोंसे भी नहीं छूट सकता॥ ७५—७७॥

निर्मल अन्तःकरणवाले सभी श्वेताश्वतर आदि ऋषिगण उन्हीं आत्मस्वरूपिणी भगवतीका अपने हृदयमें साक्षात्कार करके भव-बन्धनसे मुक्त हुए हैं। उन्हींकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा गौरी, लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन्हीं सच्चि-दानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ७८-७९॥

हे राजन्! हे अनघ! नानाविध प्रपंचोंके तापसे त्रस्त आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने वह सब बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८०॥

हे महाराज! मैंने आपको यह परमश्रेष्ठ आख्यान सुनाया है; जो सर्वपापविनाशक, पुण्यदायक, पुरातन तथा अत्यन्त अद्भुत कथानक है॥ ८१॥

जो इस वेदतुल्य पुराणका नित्य श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवीलोकमें महान् आनन्द प्राप्त करता है॥ ८२॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] मैंने व्यासजीद्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये इस श्रीमद् [देवी] भागवत नामक पंचम महापुराणको उनसे सुना था॥ ८३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पराशक्तेः सर्वज्ञत्वकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

~~o~~

॥ चतुर्थः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

पञ्चमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा त्रिदेवोंकी तुलनामें भगवतीकी उत्तमताका वर्णन

ऋषय ऊचुः

भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम्।
कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम्॥ १

सन्देहोऽत्र महाभाग वासुदेवकथानके।
जायते नः प्रोच्यमाने विस्तरेण महामते॥ २

वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम्।
विष्णोरंशावतारेण शिवस्याराधनं कृतम्॥ ३

वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः।
जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया॥ ४

ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ सम्प्रपूजितौ।
न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम॥ ५

सूत उवाच

शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यासश्रुतञ्च यत्।
प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम्॥ ६

वृत्तान्तं व्यासतः श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तदा।
पुनः पप्रच्छ मेधावी सन्देहं परमं गतः॥ ७

जनमेजय उवाच

सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम्।
तथापि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुञ्चति॥ ८

कृष्णेनाराधितः शम्भुस्तपस्तप्त्वातिदारुणम्।
विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना॥ ९

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने यह बहुत ही उत्तम कथा कही, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णके सर्वपापविनाशक तथा अलौकिक चरित्रका वर्णन है॥ १॥

हे महाभाग! हे महामते! [आपके द्वारा] विस्तारपूर्वक कहे जा रहे श्रीकृष्णके इस कथानकमें हमें सन्देह हो रहा है॥ २॥

[एक तो] विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णने वनमें जाकर घोर तप किया और शिवकी आराधना की; पुनः जगज्जननी श्रीदेवी भगवती पूर्णाकी अंशस्वरूपा देवी पार्वतीने श्रीकृष्णको जो वरदान दिया; ईश्वर होते हुए भी श्रीकृष्णने शिव तथा पार्वतीकी उपासना क्यों की? क्या श्रीकृष्णमें शिवकी अपेक्षा कोई न्यूनता थी? यही हमारा सन्देह है॥ ३—५॥

सूतजी बोले—हे महाभाग मुनिगण! व्यासजीसे इसका जो कारण मैंने सुना है, उसे आपलोग सुनिये। अब मैं भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे परिपूर्ण कथा कहता हूँ॥ ६॥

व्यासजीसे यह वृत्तान्त सुनकर प्रतिभावान् राजा जनमेजय और भी अधिक सन्देहमें पड़ गये; तब उन्होंने फिर पूछा॥ ७॥

जनमेजय बोले—हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मैंने परमकारणस्वरूपा भगवतीके विषयमें सुना। फिर भी मनकी वृत्ति संशयसे मुक्त नहीं हो पा रही है॥ ८॥

हे महाभाग! मुझे यह महान् विस्मय है कि देवोंके भी देव विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्णने अति उग्र तपस्या करके भगवान् शिवकी आराधना की। जो

यः सर्वात्मापि सर्वेशः सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः।
स कथं कृतवान्घोरं तपः प्राकृतवद्धरिः॥ १०

जगत्कर्तुं क्षमः कृष्णस्तथा पालयितुं क्षमः।
संहर्तुमपि कस्मात्स दारुणं तप आचरत्॥ ११

व्यास उवाच

सत्यमुक्तं त्वया राजन् वासुदेवो जनार्दनः।
क्षमः सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदनः॥ १२

तथापि मानुषं देहमाश्रितः परमेश्वरः।
कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान्॥ १३

वृद्धानां पूजनं चैव गुरुपादाभिवन्दनम्।
ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा॥ १४

शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नतिः।
दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम्॥ १५

कामः क्रोधस्तथा लोभः काले काले भवन्ति हि।
तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत्॥ १६

सौबलीशापजाद्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात्।
निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम्॥ १७

हरणं लुण्ठनं तद्वत्तत्पत्नीनां नराधिप।
अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च॥ १८

अज्ञत्वं हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयोः।
एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम्॥ १९

विष्णोरंशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ।
अंशजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने॥ २०

स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम्।
सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः॥ २१

सभी जीवोंकी आत्मा, सभीके ईश्वर और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाले हैं—उन भगवान् कृष्णने भी सामान्य प्राणियोंकी भाँति घोर तप क्यों किया? भगवान् श्रीकृष्ण तो जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ हैं; तब भी उन्होंने इतनी उग्र तपस्या किसलिये की?॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आपने सत्य कहा है। दैत्यदमन भगवान् वासुदेव देवताओंके सभी कार्य करनेमें समर्थ थे; फिर भी उन परमेश्वर श्रीकृष्णने मानव-देह धारण करनेके कारण वर्णाश्रमधर्मसे सम्बन्धित मानवोचित कार्य सम्पादित किये थे। उन्होंने वृद्धजनोंकी पूजा, गुरु-जनोंकी चरण-वन्दना, ब्राह्मणोंकी सेवा तथा देवताओंकी आराधना की। शोकके अवसरपर वे शोकाकुल हुए तथा हर्षकी स्थितिमें हर्षित हुए। [अवसरके अनुसार] उन्होंने दीनताका प्रदर्शन किया, नानाविध लोकापवादोंको सहन किया तथा अपनी स्त्रियोंके साथ लीला-विहार किया। जिस प्रकार मानवमें समय-समयपर काम, क्रोध तथा लोभ होते रहते हैं, उसी प्रकारके भाव उनके भी मनमें जाग्रत् हुए; क्योंकि गुणमय देहमें निर्गुणत्व कैसे हो सकता है?॥ १२—१६॥

सुबलसुता गान्धारी तथा ब्राह्मण अष्टावक्रके शापजनित दोषके कारण यादवोंका विनाश हुआ और भगवान् कृष्णको देह-त्याग करना पड़ा॥ १७॥

हे राजन्! उसी प्रकार उनकी स्त्रियोंका हरण हुआ, उनका धन लूट लिया गया तथा अर्जुन उन लुटेरोंपर अपना अस्त्र चलानेमें पुरुषार्थहीन हो गये॥ १८॥

श्रीकृष्णको अपने घरसे प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके हरणकी जानकारी नहीं हो पायी। इस प्रकार यह मानव-शरीर पाकर उन्होंने साधारण प्राणीकी भाँति सभी मानवीय चेष्टाओंका प्रदर्शन किया॥ १९॥

तब भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न इन श्रीकृष्णने यदि शिवजीकी उपासना की तो इसमें आश्चर्य क्या?॥ २०॥

वे प्रभु सबके ईश्वर हैं तथा विष्णुकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे सुषुप्तस्थान (कारण-देह)-के स्वामी हैं। इसीलिये वे विष्णुके द्वारा भी पूजित

तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते।
अकारो भगवान्ब्रह्माप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्॥ २२

मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी।
उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः॥ २३

अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥ २४

विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः।
तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने॥ २५

इच्छया ब्रह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्बभौ।
मूलरुद्रस्यांशभूतो रुद्रनामा द्वितीयकः॥ २६

सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा।
देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे॥ २७

अवतारा हरेरेवं प्रभवन्ति युगे युगे।
योगमायाप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा॥ २८

या नेत्रपक्ष्मपरिसञ्चलनेन सम्य-
ग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा।
सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्
नानावतारकलने परिभूयमानान्॥ २९

सूतीगृहाद् व्रजनमप्यनया नियुक्तं
संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः।
सम्प्रापितश्च मथुरां विनियोजितश्च
श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्तः॥ ३०

हैं। कृष्ण आदि उन्हीं विष्णुके अंशसे अवतीर्ण हैं तब वे शिवकी पूजा क्यों नहीं करेंगे? ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका रूप है, 'म्' भगवान् शिवका रूप है और अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरीका रूप है। ये उत्तरोत्तर क्रमसे एक-दूसरेसे उत्तम हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ २१—२३॥

अतएव समस्त शास्त्रोंमें देवी सर्वोत्तम मानी गयी हैं। वे भगवती बिन्दुरूप नित्य अर्धमात्रामें स्थित हैं, जो [अर्धमात्रा] विशेषरूपसे उच्चारित नहीं की जा सकती॥ २४॥

ब्रह्माजीसे भी बढ़कर विष्णु तथा विष्णुसे भी बढ़कर भगवान् शिव हैं। अतः श्रीकृष्णद्वारा शिवकी आराधनामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २५॥

सृजन-कार्यके लिये जब ब्रह्माजीने शिवकी उपासना की तब इच्छापूर्वक उन्हें वरदान देनेके लिये शिवजी उन्हींके मुखसे प्रकट हो गये, जो मूलरुद्र कहलाये। पुनः उन मूलरुद्रके अंशसे द्वितीय रुद्र उत्पन्न हुए। वे रुद्रदेव भी सबके पूजनीय हैं तो फिर मूलरुद्रके विषयमें कहना ही क्या? देवीतत्त्वके सांनिध्यमें रहनेके कारण ही शिवजीमें उत्तमता कही गयी है॥ २६-२७॥

भगवती योगमायाके ही प्रभावसे प्रत्येक युगमें भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार होते रहते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८॥

अत्यन्त निगूढ रहस्योंवाली जो भगवती अप्रत्यक्षरूपसे नेत्रकी पलक झँपनेमात्रमें भलीभाँति जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार कर देती हैं; वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको अनेकविध रूपोंमें अवतार ग्रहण करनेमें निरन्तर दुःखोंसे व्याकुल करती रहती हैं॥ २९॥

इन्हीं योगमायाके द्वारा श्रीकृष्णको प्रसूतिगृहसे निकालकर गोपराज नन्दके भवनमें पहुँचाकर उनकी रक्षा की गयी। वे योगमाया ही कंसके विनाशार्थ श्रीकृष्णको मथुरा ले गयीं। जरासन्धसे अत्यन्त भयाक्रान्त चित्तवाले श्रीकृष्णको द्वारका बनानेकी प्रेरणा भी उन्हीं भगवतीने दी॥ ३०॥

निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता
नार्योऽष्टसम्मततराः स्वकलासमुत्थाः।
तासां विलासवशगं तु विधाय कामं
दासीकृतो हि भगवाननयाप्यनन्तः॥ ३१

एकापि बन्धनविधौ युवती समर्था
पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम।
किं नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च
तं स्वीकृतं शुकमिवातिनिबन्धयन्ति॥ ३२

सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन
प्राप्तं सुरेन्द्रभवनं हरिणा तदानीम्।
कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणा-
मीशः प्रियासदनभूषणतां य आप॥ ३३

यो भीमजां हि हतवाञ्छिशुपालकादी-
ञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः।
जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं
कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ विजातः॥ ३४

अहङ्कारवशः प्राणी करोति च शुभाशुभम्।
विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनातिपातिना॥ ३५

अहङ्काराद्धि सञ्जातमिदं स्थावरजङ्गमम्।
मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसम्भवात् ॥ ३६

अहङ्कारपरित्यक्तो यदा भवति पद्मजः।
तदा विमुक्तो भवति नोचेत्संसारकर्मकृत्॥ ३७

तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः।
न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदराः॥ ३८

उन्होंने ही अपनी कला-शक्तिसे सोलह हजार पचास रानियों तथा आठ पटरानियोंकी रचना करके पुनः भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलासके वशीभूत करके उन अनन्त शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्णको उनका वशवर्ती बना दिया॥ ३१॥

केवल एक ही युवती अपने लौहमय सुदृढ़ पाशमें पुरुषको बाँध सकनेमें समर्थ है तो फिर जिसकी सोलह हजार पचास भार्याएँ हों उसके विषयमें क्या कहना? वे सब तो उस पुरुषको पालित तोतेकी भाँति अपनी इच्छाके अनुरूप नियन्त्रित कर ही सकती हैं॥ ३२॥

सत्राजित्की पुत्री सत्यभामाके वशीभूत श्रीकृष्ण उसके कहनेपर प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके भवनमें पहुँच गये। वहाँपर इन्द्रके साथ युद्ध करके उन्होंने तरुराज कल्पवृक्ष छीन लिया और उससे अपनी प्रिया सत्यभामाके महलको सुशोभित किया॥ ३३॥

समस्त धार्मिक अनुष्ठानोंको विधिपूर्वक करनेकी इच्छावाले भगवान् श्रीकृष्णने शिशुपाल आदि वीरोंको जीतकर [पूर्वतः वाग्दत्ता] रुक्मिणीका हरण कर लिया और अपने बलके प्रभावसे उसे अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया। किसी दूसरेकी भार्या हरण करनेकी यह कौन-सी विधि निर्मित हो गयी?॥ ३४॥

अत्यन्त दारुण अध:पतन करानेवाले मोहजालसे विमोहित तथा अहंकारके वशीभूत मनुष्य नानाविध शुभ तथा अशुभ कार्य करता है॥ ३५॥

मूलप्रकृतिजन्य उग्र अहंकारसे ही इस स्थावर-जंगमात्मक जगत्की उत्पत्ति हुई है और इसीसे विष्णु, शिव आदि देवोंका भी प्रादुर्भाव हुआ है॥ ३६॥

जब ब्रह्माजी पूर्णरूपसे अहंकारसे रहित होते हैं, तब वे सृष्टिके निर्माण-कार्यसे मुक्त हो जाते हैं; अन्यथा अहंकारके वशवर्ती होकर वे सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त रहते हैं॥ ३७॥

उस अहंकारसे मुक्त प्राणी सांसारिक बन्धनसे छूट जाता है और उसके वशीभूत हुआ प्राणी सांसारिक बन्धनमें पड़ जाता है। हे राजन्! स्त्री, धन, घर, पुत्र तथा सहोदर भाई—ये सब बन्धनके मूल

बन्धनं प्राणिनां राजन्नहङ्कारस्तु बन्धकः।
अहं कर्ता मया चेदं कृतं कार्यं बलीयसा॥ ३९

करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत्।
कारणेन विना कार्यं न सम्भवति कर्हिचित्॥ ४०

यथा न दृश्यते जातो मृत्पिण्डेन विना घटः।
विष्णुः पालयिता विश्वस्याहङ्कारसमन्वितः॥ ४१

अन्यथा सर्वदा चिन्ताम्बुधौ मग्नः कथं भवेत्।
अहङ्कारविमुक्तस्तु यदा भवति मानवः॥ ४२

अवतारप्रवाहेषु कथं मज्जेच्छुभाशयः।
मोहमूलमहङ्कारः संसारस्तत्समुद्भवः॥ ४३

अहङ्कारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः।
त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा॥ ४४

तामसस्तु महाराज ब्रह्मविष्णुशिवादिषु।
त्रिविधस्त्रिषु राजेन्द्र काजेशादिषु सर्वदा॥ ४५

अहङ्कारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अहङ्कारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः॥ ४६

मायाविमोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः।
करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः॥ ४७

मन्दोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसङ्कटे।
न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत्॥ ४८

कारण नहीं हैं, अपितु अहंकार ही प्राणियोंके लिये बन्धनकारी वस्तु है। मैं ही कर्ता हूँ, यह कार्य मैंने अपने ही सामर्थ्यसे पूरा किया है, यह कार्य पूरा कर लूँगा, यह कार्य अभी कर लेता हूँ—इन भावनाओंके कारण प्राणी स्वयं बँधता चला जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कदापि नहीं होता है, जैसे मिट्टीके पिण्डके बिना घड़ा न तो बन सकता है, न दिखायी पड़ सकता है॥ ३८—४०½॥

जब भगवान् विष्णु अहंकारके वशवर्ती होते हैं तभी वे विश्वका पालन करनेमें समर्थ होते हैं। नहीं तो वे सदा [सृष्टिपालनके] चिन्तारूपी समुद्रमें डूबे क्यों रहते?॥ ४१½॥

अहंकारमुक्त होकर यदि वे मनुष्यरूप ग्रहण करें तो निर्मलचित्त हुए वे अवतार-प्रवाहमें होनेवाले (सुख-दुःखादि)-में कैसे डूबें-उतराएँ?॥ ४२½॥

अहंकार ही अज्ञानका मूल कारण है तथा उसीसे इस जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। अहंकारसे विहीन प्राणीको अज्ञानता तथा सांसारिक बन्धन—दोनों ही नहीं होते॥ ४३½॥

हे महाराज! इस जगत्‌में सत्त्वगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी—ये तीन प्रकारके पुरुष कहे गये हैं। हे राजेन्द्र! सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य सम्पन्न करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तीनों देवताओंमें भी ये तीन गुण सदा विद्यमान रहते हैं। तत्त्वदर्शी मुनियोंने अहंकारको ही जगत्‌की उत्पत्तिका परम कारण बताया है। अतएव इसमें सन्देह नहीं है कि ये ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी उसी अहंकारसे आबद्ध हैं॥ ४४—४६॥

मायासे विमोहित मन्द बुद्धिवाले कुछ मनीषी कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे नानाविध अवतार ग्रहण करते हैं, किंतु जब कोई मन्दमति प्राणी भी अतिशय दुःखप्रद गर्भमें निवास करना पसन्द नहीं करता तो फिर सर्वविद्यासम्पन्न वे चक्रधारी भगवान् विष्णु अवतार ग्रहण करना क्यों चाहेंगे?॥ ४७-४८॥

कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले।
स्वेच्छया प्रवदन्त्यद्धा गतो हि मधुसूदनः॥ ४९

वैकुण्ठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम्।
चिन्ताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसम्मिते॥ ५०

तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः।
न वाञ्छन्ति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम्॥ ५१

स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः।
गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि॥ ५२

जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं देवमानुषतिर्यगम्॥ ५३

मायातन्त्रीनिबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः।
भ्रमन्ति बन्धमायान्ति लीलया चोर्णनाभवत्॥ ५४

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे कौसल्या तथा देवकीके मल-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भमें आये थे। किंतु वैकुण्ठ-भवन छोड़कर करोड़ों चिन्ताओंके आगार विषतुल्य दुःखदायक गर्भवासमें आनेसे उन्हें कौन-सा सुख प्राप्त हुआ होगा?॥ ४९-५०॥

जब साधारण प्राणी भी तपस्या करके, विविध प्रकारके यज्ञ सम्पन्न करके तथा नाना प्रकारके दान देकर अत्यन्त दुःखद गर्भवास नहीं चाहते तब यदि भगवान् विष्णु स्वतन्त्र होते तो उस गर्भवासको क्यों चाहते? यदि वे अपने वशमें होते तो गर्भवासके प्रति उनकी रुचि क्यों होती?॥ ५१-५२॥

अतः हे महाराज! आप यह जान लीजिये कि ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्, सभी देव, मानव तथा पशु-पक्षी योगमाया आदिशक्ति भगवतीके वशमें हैं॥ ५३॥

मकड़ीके तन्तुजालमें फँसे कीटकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि ये सभी देव उन भगवतीकी लीलासे मायारूपी बन्धनमें पड़ जाते हैं और आवागमनके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे योगमायाप्रभाववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

महिषासुरके जन्म, तप और वरदान-प्राप्तिकी कथा

राजोवाच

योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात्।
ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम॥ १

महादेवीप्रभावं वै श्रोतुं को नाभिवाञ्छति।
यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम्॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते।
श्रद्दधानाय शान्ताय न ब्रूयात्स तु मन्दधीः॥ ३

राजा बोले—हे स्वामिन्! आपने भगवती योगेश्वरीका यह प्रभाव विस्तारपूर्वक कहा। अब आप उन महामायाका चरित्र कहिये, उसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है। जो मनुष्य इस बातको भलीभाँति जानता है कि यह स्थावर-जंगमात्मक संसार उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, वह उन महादेवीके प्रभावको क्यों नहीं सुनना चाहेगा?॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। हे महामते! जो वक्ता श्रद्धालु एवं शान्तचित्त श्रोतासे भगवतीकी कथा नहीं कहता, वह तो मन्द बुद्धिका होता है॥ ३॥

पुरा युद्धमभूद् घोरं देवदानवसेनयोः।
पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ॥ ४

महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप उत्तमम्।
गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम्॥ ५

वर्षाणामयुतं पूर्णं चिन्तयन्हृदि देवताम्।
तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ६

तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसारूढश्चतुर्मुखः।
वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वाञ्छितम्॥ ७

महिष उवाच

अमरत्वं देवदेव वाञ्छामि द्रुहिण प्रभो।
यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह॥ ८

ब्रह्मोवाच

उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल॥ ९

नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुङ्गव।
महामहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा॥ १०

एकं स्थानं परित्यज्य मरणस्य महीपते।
प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते॥ ११

महिष उवाच

न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह।
पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषा मां का हनिष्यति॥ १२

तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज।
अबला हन्त मां हन्तुं कथं शक्ता भविष्यति॥ १३

ब्रह्मोवाच

यदा कदापि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम्।
न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर॥ १४

हे राजन्! प्राचीन कालकी बात है, जिस समय भूतलपर महिषासुर नामक राजा राज्य करता था, उस समय देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंमें भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ४॥

हे राजेन्द्र! उन्हीं दिनों सुमेरुपर्वतपर जाकर उस महिष नामक दानवने हृदयमें अपने इष्ट देवताका ध्यान करते हुए पूरे दस हजार वर्षोंतक देवताओंतकको चकित कर देनेवाला उत्तम तथा कठोर तप किया॥ ५$\frac{१}{२}$ ॥

हे महाराज! उसकी तपस्यासे लोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये, अतः हंसपर सवार होकर वे चतुर्मुख ब्रह्मा वहाँ प्रकट होकर उससे बोले—हे धर्मात्मन्! वर माँगो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा॥ ६-७॥

महिष बोला—हे देवदेव! हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! मैं अमरत्व चाहता हूँ। हे पितामह! आप ऐसा वर दीजिये, जिससे मुझे मृत्युका भय न रहे॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—[इस जगत्‌में] उत्पन्न हुएका मरना और मरे हुएका जन्म लेना निश्चित है। समस्त जीवोंका जन्म और मरण अनिवार्यरूपसे होता रहता है। हे दैत्यप्रवर! समयानुसार सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश हो जाता है, यहाँतक कि बड़े-बड़े पर्वतों एवं समुद्रोंका भी नाश हो जाता है॥ ९-१०॥

अतः हे राजन्! मृत्युसम्बन्धी अपनी यह धारणा छोड़कर हे साधो! दूसरा जो भी वर तुम्हारे मनमें हो, वह माँग लो॥ ११॥

महिष बोला—हे पितामह! देव, दानव और मानव—इनमें किसी भी पुरुषसे मेरी मृत्यु न हो। इस प्रकार जब पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होगी, तब भला कौन-सी स्त्री मुझे मार सकेगी? अतएव हे कमलयोने! मेरी मृत्यु किसी स्त्रीके हाथ होनेका वरदान दीजिये; क्योंकि कोई अबला भला मुझे मारनेमें कैसे समर्थ हो सकेगी?॥ १२-१३॥

ब्रह्माने कहा—हे दानवेन्द्र! जब भी तुम्हारी मृत्यु होगी किसी स्त्रीसे ही होगी। हे महाभाग महिषासुर! पुरुषसे तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी॥ १४॥

व्यास उवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम्।
सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदान्वितः॥ १५

राजोवाच

महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली।
कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना॥ १६

व्यास उवाच

दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमण्डले।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां दानवोत्तमौ॥ १७

तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः।
बहून्वर्षगणान्कामं पुण्ये पञ्चनदे जले॥ १८

करम्भस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः।
वृक्षं रसालवटं प्राप्य रम्भोऽग्निमसेवत॥ १९

पञ्चाग्निसाधनासक्तः स रम्भस्तु यदाभवत्।
ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति॥ २०

गत्वा पञ्चनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह।
वासवस्तु करम्भं तं तदा जग्राह पादयोः॥ २१

निजघान च तं दुष्टं करम्भं वृत्रसूदनः।
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रम्भः कोपं परं गतः॥ २२

स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्त्वा करेण ह।
केशपाशे गृहीत्वाशु वामेन क्रोधसंयुतः॥ २३

दक्षिणेन करेणोग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्।
छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निना प्रतिबोधितः॥ २४

उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि।
आत्महत्यातिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः॥ २५

वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते।
मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति॥ २६

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार उसे वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वह दैत्यश्रेष्ठ महिषासुर भी प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १५॥

राजा बोले—वह महिषासुर किसका पुत्र था, वह महान् बलशाली कैसे हो गया था और उस महान् दैत्यको महिषका रूप कैसे मिला था?॥ १६॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! दनुके रम्भ और करम्भ—नामक दो पुत्र थे। वे दोनों दानवश्रेष्ठ भूमण्डलपर बहुत प्रसिद्ध थे॥ १७॥

हे महाराज! वे दोनों सन्तानहीन थे, अतः वे पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने लगे। उनमें करम्भने पवित्र पंचनदके जलमें डूबकर अनेक वर्षोंतक कठोर तप किया और रम्भ दूधवाले वटवृक्षके नीचे जाकर पंचाग्निका सेवन करने लगा॥ १८-१९॥

बहुत कालतक जब रम्भ पंचाग्नि-साधना करता रह गया, तब यह जानकर इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और वे उन दोनों दानवोंके पास पहुँच गये॥ २०॥

पंचनदके जलमें प्रविष्ट होकर इन्द्रने ग्राहका रूप धारण कर लिया और उस करम्भको दोनों पैरोंसे पकड़ लिया। इस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने उस करम्भको मार डाला॥ २१½॥

तब अपने भाईका वध सुनकर रम्भ अत्यधिक कुपित हुआ। उसने अपने हाथसे अपना सिर काटकर उसे अग्निमें होम कर देनेकी इच्छा की। तदुपरान्त वह तत्काल अत्यन्त क्रोधके साथ बायें हाथसे अपने केशपाश पकड़कर दाहिने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर जैसे ही अपना सिर काटनेको उद्यत हुआ, तभी अग्निदेव [प्रकट होकर] उसे समझाने लगे॥ २२—२४॥

[अग्निदेव उससे] बोले—हे दैत्य! तुम अपना ही सिर काटना चाहते हो; तुम तो बड़े मूर्ख हो। आत्महत्या अत्यन्त ही दुःसाध्य कर्म है। इसे करनेके लिये तुम कैसे तैयार हो गये?॥ २५॥

तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो हो, वह वरदान माँग लो। मरो मत, मरनेसे तुम्हारा कौन-सा कार्य हो जायगा?॥ २६॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं रम्भः पावकस्य सुभाषितम्।
ततोऽब्रवीद्वचो रम्भस्त्यक्त्वा केशकलापकम्॥ २७

यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वाञ्छितं वरम्।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्दनः॥ २८

अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः।
कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवन्दितः॥ २९

पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम्।
पुत्रस्तव महाभाग मरणाद्विरमाधुना॥ ३०

यस्यां चित्तं तु रम्भ त्वं प्रमदायां करिष्यसि।
तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः॥ ३१

व्यास उवाच

इत्युक्तो वह्निना रम्भो वचनं चित्तरञ्जनम्।
श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः॥ ३२

यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियान्वितम्।
दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः॥ ३३

मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्याञ्च योषितम्।
सा समागाच्च तरसा कामयन्ती मुदान्विता॥ ३४

रम्भोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः।
सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः॥ ३५

तां गृहीत्वाथ पातालं प्रविवेश मनोहरम्।
महिषेभ्यश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल॥ ३६

कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत्।
स्वयमागत्य तं हन्तुं दानवः समुपाद्रवत्॥ ३७

व्यासजी बोले—अग्निदेवका सुन्दर वचन सुनकर रम्भने अपना केशपाश छोड़कर कहा—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वांछित वरदान दीजिये कि मुझे तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला तथा शत्रु-सेनाका विनाश करनेवाला पुत्र प्राप्त हो। वह देवता, दानव तथा मनुष्य—इन सभीसे सर्वथा अजेय हो। वह महापराक्रमी, अपने इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करनेमें समर्थ तथा सभी लोगोंके लिये वन्दनीय हो॥ २७—२९॥

अग्निदेवने उससे कहा कि जैसी तुम्हारी अभिलाषा है, वैसा ही होगा। हे महाभाग! तुम्हें वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा, किंतु अब तुम मरनेका विचार छोड़ दो॥ ३०॥

हे महाभाग! हे रम्भ! जिस भी स्त्रीके प्रति तुम्हारे मनमें आसक्ति-भाव आ जायगा, उसीसे तुम्हें वह महाबलशाली पुत्र उत्पन्न होगा॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अग्निदेवने उससे ऐसा कहा। तब उनका मनमोहक वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ रम्भ अग्निको प्रणाम करके वहाँसे चला गया और एक ऐसे स्थानपर जा पहुँचा जो रमणीक, समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा यक्षोंसे घिरा हुआ था॥ ३२½॥

वहाँ एक रूपवती तथा मदमत्त महिषीको देखकर वह दानवश्रेष्ठ किसी अन्य स्त्रीको छोड़कर उसीपर आसक्त हो गया। वह महिषी भी उसे प्रसन्नतापूर्वक चाहती हुई तत्काल उसके साथ रमणके लिये तैयार हो गयी। होनहारसे प्रेरित होकर रम्भने उसके साथ समागम किया और उसके वीर्यसे वह महिषी गर्भवती हो गयी॥ ३३—३५॥

तत्पश्चात् उसे अपने साथ लेकर रम्भने मनोहर पाताललोकमें प्रवेश किया और वहाँपर महिषोंसे अपने मनोनुकूल उस प्रियतमाकी रक्षा करता हुआ वह सुखपूर्वक रहने लगा॥ ३६॥

किसी दिन एक दूसरे महिषने कामासक्त होकर उस महिषीको दौड़ा लिया। यह देखकर दानव रम्भ स्वयं वहाँ आकर उसे मारनेके लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकर

स्वरक्षार्थं समागत्य महिषं समताडयत्।
सोऽपि तं निजघानाशु शृङ्गाभ्यां काममोहितः॥ ३८

ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदये भृशम्।
भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्च्छितः॥ ३९

मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम्।
सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता॥ ४०

पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः।
कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः॥ ४१

रुदती सा भृशं दीना दृष्ट्वा यक्षैर्भयातुरा।
धावमानं च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः॥ ४२

युद्धं समभवद् घोरं यक्षाणां च हयारिणा।
शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले॥ ४३

मृतं रम्भं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम्।
चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये॥ ४४

महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा।
प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना सह पावकम्॥ ४५

वार्यमाणापि यक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम्।
ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम्॥ ४६

महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः।
रम्भोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः॥ ४७

रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः।
अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः॥ ४८

एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान्।
अवध्यस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम॥ ४९

अपनी रक्षाके लिये रम्भने उस महिषपर कठोर प्रहार किया। तब उस कामातुर महिषने भी अपनी सींगोंसे रम्भपर शीघ्रतासे प्रहार करना आरम्भ कर दिया॥ ३७-३८॥

उस महिषके द्वारा तीक्ष्ण सींगोंसे हृदयस्थलमें गहरी चोट पहुँचानेके कारण रम्भ शीघ्र ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया॥ ३९॥

पतिके मर जानेपर अत्यन्त शोकाकुल तथा भयग्रस्त वह महिषी वहाँसे भाग चली। वेगपूर्वक भागती हुई वह एक वटवृक्षके नीचे पहुँचकर वहाँ रहनेवाले यक्षोंकी शरणमें जा पहुँची॥ ४०॥

वह कामार्त और बल तथा वीर्यसे मदोन्मत्त कामासक्त महिष भी उसकी कामना करता हुआ उसके पीछे-पीछे गया॥ ४१॥

यक्षोंने उस महिषसे पीड़ित तथा भयभीत होकर रोती हुई उस महिषीको देख लिया और महिषको दौड़ता हुआ देखकर उस महिषीकी रक्षाके लिये वे यक्ष वहाँ आ गये॥ ४२॥

अब उस महिषके साथ यक्षोंका विकराल युद्ध होने लगा और अन्तमें बाणसे आहत होकर वह महिष शीघ्र ही भूमिपर गिर पड़ा॥ ४३॥

तदनन्तर उन यक्षोंने परम प्रिय मृत रम्भको लाकर उसकी देह-शुद्धिके लिये उसे चितापर रख दिया। तब उस महिषीने अपने पतिको चितापर रखा हुआ देखकर उसके साथ स्वयं भी अग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया॥ ४४-४५॥

यक्षोंके मना करनेपर भी अपने प्रिय पतिके साथ वह महिषी विकराल लपटोंवाली अग्निमें प्रविष्ट हो गयी॥ ४६॥

उसी समय एक महाबली महिष चिताके मध्यसे प्रकट हो गया तथा अन्य शरीर धारण करके वह पुत्रप्रेमी रम्भ भी चिताके मध्यभागसे निकल पड़ा। इस प्रकार रक्तबीज तथा महान् बलशाली महिषासुर उत्पन्न हुए। तदनन्तर श्रेष्ठ दानवोंने उस महिषासुरका राज्याभिषेक कर दिया॥ ४७-४८॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार महिषासुर तथा पराक्रमी रक्तबीज उत्पन्न हुए। वह महिषासुर देवताओं, दानवों तथा मनुष्योंसे अवध्य था॥ ४९॥

इत्येतत्कथितं राजन् जन्म तस्य महात्मनः।
वरप्रदानञ्च तथा प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम्॥ ५०

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको उस महान् महिषासुरके जन्म तथा उससे सम्बन्धित वरदान-प्राप्तिका प्रसंग विस्तारपूर्वक बता दिया॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महिषासुरका दूत भेजकर इन्द्रको स्वर्ग खाली करनेका आदेश देना, दूतद्वारा इन्द्रका युद्धहेतु आमन्त्रण प्राप्तकर महिषासुरका दानववीरोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेका आदेश देना

व्यास उवाच

एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः।
प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरदान पानेके कारण अभिमानयुक्त उस महाबली दानव महिषासुरने राज्य प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्को अपने अधीन कर लिया॥ १॥

पृथिवीं पालयामास सागरान्तां भुजार्जिताम्।
एकच्छत्रां निरातङ्कां वैरिवर्गविवर्जिताम्॥ २

उसने समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको अपने बाहुबलसे जीतकर शत्रु-समुदायसे रहित कर दिया तथा वह निर्भय होकर एकच्छत्र राज्य करने लगा॥ २॥

सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो मदोत्कटः।
धनाध्यक्षस्तथा ताम्रः सेनायुतसमावृतः॥ ३

उसका सेनाध्यक्ष चिक्षुर महापराक्रमी एवं मदमत्त था। ताम्र उसका कोषाध्यक्ष था, जिसके पास दस हजार सैनिक थे॥ ३॥

असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः।
त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबन्धको बलदर्पितः॥ ४

एते सैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा।
आवृत्य संस्थिताः काममृद्धां सागरमेखलाम्॥ ५

उस समय असिलोमा, उदर्क, बिडालाख्य, बाष्कल, त्रिनेत्र तथा बलोन्मत्त कालबन्धक—इन दानवोंने अपनी-अपनी विशाल सेनाओंके साथ सागरान्त समृद्धिशालिनी पृथ्वीको घेरकर राज्य स्थापित किया॥ ४-५॥

करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः।
निहता ये बलोदग्राः क्षात्त्रधर्मव्यवस्थिताः॥ ६

जो पुराने नरेश थे, वे भी अब महिषासुरको कर देने लगे। उनमें भी जो स्वाभिमानी थे और क्षात्र-धर्मानुसार जिन्होंने उसका सामना किया, वे मार डाले गये॥ ६॥

ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः।
महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमण्डले॥ ७

हे महाराज! सम्पूर्ण भूमण्डलपर ब्राह्मणलोग महिषासुरके अधीन हो गये और उसे यज्ञभाग देने लगे॥ ७॥

एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः।
स्वर्गं जेतुं मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः॥ ८

इस प्रकार एकच्छत्र राज्य स्थापित करके वरदानसे गर्वित वह महिषासुर स्वर्गपर भी विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा करने लगा॥ ८॥

प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम्।
स सन्देशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट्॥ ९

गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ।
ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशङ्कः सुरसन्निधौ॥ १०

मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ मा चिरम्।
सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः॥ ११

स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम्।
तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते॥ १२

नोचेद्वज्रं गृहाणाशु युद्धाय बलसूदन।
पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम्॥ १३

अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसङ्घप।
युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते रमते मनः॥ १४

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः।
उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा॥ १५

न जानेऽहं सुमन्दात्मन् यतस्त्वं मददर्पितः।
चिकित्सां संकरिष्यामि रोगस्यास्य प्रभोस्तव॥ १६

अतः परं करिष्यामि मूलस्यास्य निमूलनम्।
गच्छ दूत तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम्॥ १७

शिष्टैर्दूता न हन्तव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम्।
युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत॥ १८

हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः।
शृङ्गयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम्॥ १९

दर्पः शृङ्गबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया।
विषाणे ते परिच्छिद्य संहरिष्यामि तद् बलम्॥ २०

महिषासुरने इन्द्रके पास अपना एक दूत भेजा। उस दैत्यराजने दूतको बुलाकर उससे कहा—हे वीर! जाओ, हे महाबाहो! तुम मेरा दूतकार्य करो। हे अनघ! तुम निडर होकर स्वर्गमें देवताओंके पास जाकर वहाँ इन्द्रसे कहो—हे सहस्राक्ष! तुम स्वर्ग छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहो, शीघ्र चले जाओ। अथवा हे देवेश! महान् महिषासुरकी सेवा करो॥ ९—११॥

यदि तुम राजा महिषासुरकी शरणागति स्वीकार कर लो तो वे तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। अतएव हे इन्द्र! तुम महिषासुरकी शरणमें चले जाओ॥ १२॥

अन्यथा हे बलसूदन! युद्धके लिये शीघ्र ही अपना वज्र उठा लो। हमारे पूर्वजोंने तुम्हें पराजित किया है, अतएव हम तुम्हारा पुरुषार्थ जानते हैं॥ १३॥

अहल्याके साथ अनाचार करनेवाले तथा देवसमुदायके अधिपति हे इन्द्र! मैं तुम्हारे बलसे भलीभाँति परिचित हूँ। तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा जहाँ तुम्हारा मन करे, वहाँ चले जाओ॥ १४॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! दूतका वचन सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे; फिर भी उन्होंने मुसकराकर दूतसे कहा—हे मन्दबुद्धि! मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि तुम अभिमानके मदमें इतना चूर क्यों हो गये हो! मैं तुम्हारे स्वामी महिषासुरके अभिमानरूपी इस रोगकी चिकित्सा अवश्य करूँगा। इसके बाद मैं इस रोगको जड़से नष्ट कर दूँगा। हे दूत! अब तुम जाओ और उस महिषासुरसे मेरी कही गयी बात बता दो। शिष्टजनोंको चाहिये कि दूतोंका वध न करें, अतः मैं तुम्हें छोड़ दे रहा हूँ॥ १५—१७½॥

[वहाँ जाकर मेरी तरफसे उससे कह देना—] हे महिषीपुत्र! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो शीघ्र आ जाओ। हे महिषासुर! तुम तो घास खानेवाले जड प्रकृतिके जीव हो। अतः मुझे तुम्हारा बल ज्ञात है। मैं तुम्हारी सींगोंसे एक सुदृढ़ धनुष बनाऊँगा। तुम्हारे अभिमानका कारण मुझे विदित है। तुम्हें अपनी सींगोंके बलपर गर्व है, अतएव तुम्हारी सींगोंको काटकर मैं उस अभिमानबलको समाप्त कर

यद् बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः।
कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम॥ २१

व्यास उवाच

इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः।
जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह॥ २२

दूत उवाच

राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ।
मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः॥ २३

यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद् ब्रवीम्यहम्।
प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः॥ २४

प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना।
इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी॥ २५

केवलं चेत्प्रियं ब्रूयान्न ते कार्यं भविष्यति।
परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता॥ २६

यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरन्ति विषोपमाः।
तथा भृत्यमुखान्नाथ निःसरन्ति कथं गिरः॥ २७

यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते।
तादृशानि न मे जिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित्॥ २८

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः।
भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः॥ २९

समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः।
लाङ्गूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन्॥ ३०

भो भो दैत्याः सुरेन्द्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा।
बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः॥ ३१

दूँगा। हे महिषाधम! जिन सींगोंके बलपर तुम गर्वोन्मत्त हो तथा अपनेको सर्वसमर्थ समझते हो, केवल उन्हींसे आघात करनेमें तुम कुशल हो; युद्ध करनेमें तुम दक्ष नहीं हो सकते॥ १८—२१॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर वह दूत तत्काल वहाँसे चल दिया। वह उन्मत्त महिषासुरके पास पहुँचा और उसे प्रणाम करके कहने लगा—॥ २२॥

दूत बोला—हे राजन्! वह देवराज इन्द्र आपको कुछ भी नहीं समझ रहा है। देवसेनासे सम्पन्न होनेके कारण वह अपनेको पूर्ण बलवान् मानता है॥ २३॥

उस मूर्खने जो कुछ कहा है, उसके अतिरिक्त दूसरी बात मैं कैसे कहूँ? सेवकको अपने स्वामीके समक्ष सत्य तथा प्रिय वाणी बोलनी चाहिये॥ २४॥

कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सेवकको अपने स्वामीके आगे सदा सत्य तथा प्रिय वचन बोलना चाहिये। हे महाराज! यही नीति संसारमें सदासे कल्याणप्रद होती आयी है॥ २५॥

किंतु यदि केवल प्रिय लगनेवाली बात ही कहूँ तो इससे आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा। साथ ही अपना कल्याण चाहनेवाले सेवकको अपने स्वामीसे कठोर बात कभी नहीं कहनी चाहिये॥ २६॥

हे नाथ! शत्रुके मुखसे जिस तरहकी विषतुल्य बातें निकलती हैं, उस तरहकी बातें सेवकके मुखसे कैसे निकल सकती हैं?॥ २७॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रने जिस प्रकारके वाक्य बोले हैं, उन्हें कह सकनेमें मेरी जिह्वा कभी भी समर्थ नहीं है॥ २८॥

व्यासजी बोले—उस दूतका रहस्यपूर्ण वचन सुनकर घास खानेवाले महिषासुरका मन पूर्णरूपसे क्रोधके वशीभूत हो गया॥ २९॥

सभी दैत्योंको बुलाकर क्रोधके मारे लाल आँखोंवाला महिषासुर अपनी पूँछ पीठपर रख करके मूत्र त्याग करते हुए उनसे कहने लगा—हे दैत्यो! वह इन्द्र निश्चय ही युद्ध करना चाहता है। अतः तुमलोग सेना संगठित करो। हमें उस देवाधमको जीतना है॥ ३०-३१॥

मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः।
न बिभेम्येकतः कामं हनिष्याम्यद्य सर्वथा॥ ३२

शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः।
बलकर्ता हि कुहको लम्पटः परदारहृत्॥ ३३

अप्सरोबलसम्मत्तस्तपोविघ्नकरः खलः।
छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः॥ ३४

नमुचिर्निहतो येन कृत्वा सन्धिं दुरात्मना।
शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन छद्मना॥ ३५

विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः।
नानारूपधरः कामं बलकृद्दम्भपण्डितः॥ ३६

कृत्वा कोलाकृतिं येन हिरण्याक्षो निपातितः।
हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः॥ ३७

नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनन्दनाः।
विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित्॥ ३८

किं करिष्यति मे विष्णुरिन्द्रो वा बलवत्तरः।
रुद्रो वापि न मे शक्तः प्रतिकर्तुं रणाङ्गणे॥ ३९

त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम्।
धनदं पावकं चैव चन्द्रसूर्यौ विजित्य च॥ ४०

यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः।
जित्वा देवसमूहञ्च विहरिष्यामि दानवैः॥ ४१

न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः।
मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति॥ ४२

मेरे सम्मुख भला कौन पराक्रमी बन सकता है? यदि उस इन्द्रके समान करोड़ों लोग मेरे सामने आ जायँ तो भी मैं नहीं डरूँगा, तब उस अकेले इन्द्रसे कैसे डर सकता हूँ? उसको तो मैं अब निश्चितरूपसे मार डालूँगा॥ ३२॥

वह इन्द्र शान्त स्वभाववाले लोगोंपर अपने पराक्रमका प्रदर्शन तथा तपस्वियोंपर अपने बलका प्रयोग करता है। वह मायावी, व्यभिचारी तथा दूसरेकी स्त्रीका हरण करनेवाला है॥ ३३॥

वह दुष्ट अपनी अप्सराओंके बलबूते दूसरोंकी तपस्यामें विघ्न डालता है, शत्रुकी कमजोरी देखकर अवसरवादिताका लाभ उठाकर उसपर प्रहार करता है, वह सदासे पापकृत्योंमें रत रहनेवाला तथा घोर विश्वासघात करनेवाला है॥ ३४॥

भयके मारे उस छली इन्द्रने पहले विश्वास-प्रदर्शनके लिये अनेक प्रकारकी शपथें खाकर नमुचि नामक दैत्यसे सन्धि स्थापित की, किंतु बादमें उस दुष्टात्माने छलपूर्वक नमुचिको मार डाला॥ ३५॥

विष्णु तो कपटका आचार्य, मायावी, झूठी प्रतिज्ञाएँ करनेमें बड़ा ही कुशल, बहुरूपिया, सैन्य-बलका संचय करनेवाला तथा महान् पाखण्डी है। उसीने सूकरका रूप धारणकर हिरण्याक्षका वध कर डाला और नृसिंहका रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका संहार किया॥ ३६-३७॥

अतएव हे दनुके वंशजो! मैं उसका वशवर्ती कभी भी नहीं होऊँगा और देवताओंका कहीं भी कदापि विश्वास नहीं करूँगा॥ ३८॥

विष्णु तथा इन्द्र—ये दोनों मेरा क्या कर लेंगे? यहाँतक कि उनसे भी अधिक शक्तिशाली रुद्र भी युद्ध-भूमिमें मेरा प्रतीकार कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्यको जीतकर मैं स्वर्गपर अधिकार कर लूँगा॥ ३९-४०॥

अब हमलोग यज्ञका भाग प्राप्त करेंगे तथा सोमरसका पान करनेवाले होंगे। मैं देवसमुदायको जीतकर दानवोंके साथ विहार करूँगा॥ ४१॥

हे दानवो! वरदानके कारण मुझे देवताओंका भय नहीं है। पुरुषसे मेरी मृत्यु हो ही नहीं सकती; तब भला स्त्री मेरा क्या कर लेगी?॥ ४२॥

पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान्।
दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वन्तु त्वरिताश्चराः॥ ४३

एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः।
शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसङ्गमे॥ ४४

शृङ्गाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल।
न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः॥ ४५

अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा।
तस्मात्सज्जा भवन्त्वद्य देवलोकजयाय वै॥ ४६

जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नन्दने।
मन्दारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः॥ ४७

कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः।
देवगन्धर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः॥ ४८

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची च तिलोत्तमा।
प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा॥ ४९

विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः।
रञ्जयिष्यन्ति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः॥ ५०

सर्वे सज्जा भवन्त्वद्य रोचतां गमनं दिवि।
संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मङ्गलमुत्तमम्॥ ५१

रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम्।
समाहूय च सम्पूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम्॥ ५२

व्यास उवाच

इति सन्दिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा।
जगाम त्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदान्वितः॥ ५३

हे गुप्तचरो! पातालमें तथा पर्वतोंपर रहनेवाले बड़े-बड़े दानव-वीरोंको तत्काल यहाँ बुलाकर उन्हें मेरी सेनाओंका अध्यक्ष बना दो॥ ४३॥

हे दानवो! मैं तो अकेला ही समस्त देवताओंको जीतनेमें समर्थ हूँ, फिर भी शोभा बढ़ानेकी दृष्टिसे आप सबको भी बुलाकर देवताओंके साथ होनेवाले संग्राममें ले चलूँगा॥ ४४॥

मैं अपनी सींगों तथा खुरोंसे देवताओंको निश्चितरूपसे मार डालूँगा। वरदानके प्रभावसे मुझे देवताओंसे भय नहीं है॥ ४५॥

देवता, दानव तथा मनुष्य—सभीसे मैं अवध्य हूँ, अतः आप सब देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये अब तैयार हो जायँ॥ ४६॥

हे दैत्यो! देवलोकको जीतकर मैं नन्दनवनमें विहार करूँगा। मन्दारपुष्पकी मालाएँ धारण करके आपलोग देवांगनाओंके साथ रहेंगे, कामधेनुके दुग्धका सेवन करेंगे, प्रसन्नतापूर्वक अमृत-पान करेंगे और देवताओं तथा गन्धर्वोंके गीतों तथा मनमोहक हाव-भाव-युक्त नृत्योंका आनन्द लेंगे॥ ४७-४८॥

उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा, विप्रचित्ति आदि नृत्य तथा गायन-कलामें अति निपुण अप्सराएँ विविध प्रकारके मद्य पिलाकर आप सभीका मनोरंजन करेंगी॥ ४९-५०॥

देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिये देवलोकके लिये प्रस्थान करना यदि आपलोगोंको उचित लगे तो आप सब उत्तम मंगलाचार सम्पन्न करके आज ही चलनेके लिये तैयार हो जाइये॥ ५१॥

समस्त दानवोंकी रक्षाके लिये मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्यको बुलाकर उनका पूजन करके उन परम गुरुको यज्ञ-कार्यमें नियुक्त कीजिये॥ ५२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार दानववीरोंको आदेश देकर वह पापबुद्धि महिषासुर प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने भवनको चला गया॥ ५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भगवतीमाहात्म्ये दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रका देवताओं तथा गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करना तथा बृहस्पतिद्वारा जय-पराजयमें दैवकी प्रधानता बतलाना

व्यास उवाच

गते दूते सुरेन्द्रोऽपि समाहूय सुरानथ।
यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान् ॥ १

महिषो नाम दैत्येन्द्रो रम्भपुत्रो महाबलः।
वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः॥ २

तस्य दूतोऽद्य सम्प्राप्तः प्रेषितस्तेन भोः सुराः।
स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः॥ ३

त्यज देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव।
सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः॥ ४

दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति।
नतेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन॥ ५

नोचेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरु स्वयम्।
गते मयि स दैत्येन्द्रस्त्वरितः समुपेष्यति॥ ६

इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः।
किं कर्तव्यमतः कार्यं चिन्तयध्वं सुरोत्तमाः॥ ७

दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः।
विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः॥ ८

उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धि यथाबलम्।
दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाथ पराजयः॥ ९

व्यासजी बोले—हे राजन्! दूतके चले जानेपर इन्द्रने भी यम, वायु, कुबेर तथा वरुण—इन देवताओंको बुलाकर यह बात कही॥ १॥

रम्भका पुत्र महाबली दैत्यराज महिषासुर इस समय वरदानके अभिमानमें मदोन्मत्त हो गया है। वह सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें पारंगत है॥ २॥

हे देवताओ! स्वर्ग-प्राप्तिकी कामना करनेवाले उस लोभी महिषासुरके द्वारा भेजा गया दूत आज ही यहाँ आया था। उसने मुझसे इस प्रकारकी बात कही—॥ ३॥

हे शक्र! तुम तत्काल देवलोक छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, वहाँ चले जाओ; अथवा हे वासव! महान् महिषासुरका सेवकत्व स्वीकार कर लो॥ ४॥

वे दैत्यराज महिषासुर बड़े दयालु हैं। वे आपके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध अवश्य कर देंगे। विनम्र सेवकोंपर वे कभी भी क्रोध नहीं करते हैं॥ ५॥

हे देवेश! यदि आपको यह स्वीकार नहीं है तो युद्धके लिये सेनाके संगठनमें जुट जाइये। मेरे वहाँ पहुँचते ही वे दैत्येन्द्र महिषासुर [देवलोकपर आक्रमणके लिये] यहाँ शीघ्र आ पहुँचेंगे॥ ६॥

ऐसा कहकर दुष्टात्मा दानव महिषासुरका वह दूत यहाँसे चला गया। हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग विचार कीजिये कि अब क्या करना चाहिये?॥ ७॥

हे देवताओ! स्वयं बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अपने बलका अभिमान करनेवाले, बलशाली तथा सदा उद्यमशील शत्रुकी तो विशेषरूपसे उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ८॥

अतः हमलोगोंको अपने बल तथा विवेकके अनुसार पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये। जीत अथवा हार तो दैवके अधीन रहती है॥ ९॥

सन्धियोगो न चात्रास्ति खले सन्धिर्निरर्थकः।
सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः॥ १०

यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः।
प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः॥ ११

इङ्गितज्ञाश्च निःसङ्गा निःस्पृहाः सत्यवादिनः।
सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः॥ १२

वीराणां च परिज्ञानं कृत्वायान्तु त्वरान्विताः।
ज्ञात्वा दैत्यपतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम्॥ १३

करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वा दुर्गसंग्रहम्।
विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा।
सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत्॥ १४

तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः।
नात्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु च सर्वथा॥ १५

एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्माच्चारा व्रजन्तु वै।
ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च॥ १६

विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च।
अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम्॥ १७

सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा।

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम्॥ १८

प्रेषयामास देवेन्द्रः परिज्ञानाय पार्थिव।
दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम्॥ १९

इस परिस्थितिमें सन्धिकी भी सम्भावना नहीं है; क्योंकि नीचके साथ की गयी सन्धि व्यर्थ सिद्ध होती है। अतएव बार-बार विचार करके केवल सज्जनोंके साथ ही सन्धि करनी चाहिये॥ १०॥

इस समय अचानक आक्रमण करना भी उचित नहीं है। अतएव सर्वप्रथम शीघ्रगामी तथा सुगमतासे प्रवेश करनेमें दक्ष गुप्तचर वहाँ भेजे जाने चाहिये, जो शत्रुओंके अभिप्राय समझनेमें समर्थ, किसीके साथ अधिक भावासक्ति न रखनेवाले, निर्लोभी तथा सत्यवादी हों। वे गुप्तचर शत्रु-सेनाकी गतिविधि, प्रस्थान, सेनाकी ठीक-ठीक संख्या और शत्रुदलके वीरोंकी वास्तविक जानकारी करके शीघ्रतापूर्वक वापस आ जायँ। इस प्रकार दैत्यपति महिषासुरकी सेनाके बलाबलको भलीभाँति जान लेनेके पश्चात् मैं शीघ्र ही आक्रमण अथवा किलेबन्दी करनेका प्रबन्ध करूँगा। सर्वदा भलीभाँति सोच-समझकर बुद्धिमान् मनुष्यको कार्य करना चाहिये; क्योंकि बिना विचार किये अचानक किया गया कार्य हर तरहसे दुःखदायक ही होता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्योंको सम्यक् रूपसे विचार-विमर्श करके ऐसा कार्य करना चाहिये, जो सुखकर हो॥ ११—१४½ ॥

दानवोंमें मतभेद पैदा करनेवाली भेदनीतिका आश्रय लेना भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि उनमें पूर्ण मतैक्य है। अतएव इस कार्यके लिये पहले गुप्तचर भेजे जायँ। उनके द्वारा उन दानवोंके बलाबलको जाननेके पश्चात् श्रेष्ठ नीतिविदोंसे भलीभाँति विचार करके उन कार्योंके लिये नीति निर्धारित की जानी चाहिये। नीतिसे हटकर किया गया कार्य अज्ञात औषधिके सेवनसे उत्पन्न होनेवाले कष्टकी भाँति विपरीत फल देनेवाला होता है॥ १५—१७½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार उन सभी देवताओंसे विचार-विमर्श करके देवराज इन्द्रने शत्रुपक्षके रहस्योंकी जानकारीके उद्देश्यसे एक कार्यकुशल गुप्तचर भेजा॥ १८½ ॥

उस दूतने तत्काल पहुँचकर शत्रुपक्षके सैन्य-बलाबलकी जानकारी प्राप्त की और पुनः इन्द्रके पास वापस आकर उनको सब कुछ बता दिया। शत्रुसेनाकी

निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम्।
ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः॥ २०

देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम्।
मन्त्रं मन्त्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः॥ २१

उवाचाङ्गिरसश्रेष्ठं समासीनं वरासने।

इन्द्र उवाच

भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः॥ २२

सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः।
दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः॥ २३

योद्धुकामः समायाति बहुभिर्दानवैर्वृतः।
तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मन्त्रविदाधुना॥ २४

तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंयतः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः॥ २५

विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः।

गुरुरुवाच

स्वस्थो भव सुरेन्द्र त्वं धैर्यमालम्ब्य मारिष॥ २६

व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्यमाशु वै।
जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि॥ २७

स्थातव्यं धैर्यमालम्ब्य तस्माद् बुद्धिमता सदा।
भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो॥ २८

उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः।
मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा॥ २९

दैवाधीनं च जानन्तो योगध्यानपरायणाः।
तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः॥ ३०

सुखं भवतु वा मा वा दैवे का परिदेवना।
विना पुरुषकारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात्॥ ३१

तैयारीके विषयमें जानकर इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने देवताओंको तैयारीमें लगनेकी आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् मन्त्रविदोंमें श्रेष्ठ पुरोधा देवगुरु बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्र उनके साथ परामर्श करने लगे। उत्तम आसनपर विराजमान श्रेष्ठ अंगिरापुत्र बृहस्पतिसे इन्द्रने कहा॥ १९—२१½॥

इन्द्र बोले—हे देवगुरो! हे विद्वन्! हमलोगोंको क्या करना चाहिये, हमें बताइये। आप सर्वज्ञ हैं। आज उत्पन्न इस विषम परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे अवलम्ब हैं। महाबली तथा मदोन्मत्त दानव महिषासुर बहुतसे दानवोंको अपने साथ लेकर हम सबसे युद्ध करनेके लिये यहाँ आ रहा है। आप मन्त्रणाविद् हैं, अतएव इस समय कोई प्रतिक्रियात्मक युक्ति बतानेकी कृपा करें। जैसे शुक्राचार्य दानवोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम देवताओंके कष्टका निवारण करने हेतु आप सदा उद्यत रहते हैं॥ २२—२४½॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर अपने मनमें भलीभाँति सोचकर सदा कार्यसिद्धिके लिये तत्पर रहनेवाले बृहस्पति इन्द्रसे कहने लगे॥ २५½॥

गुरु बोले—हे देवेन्द्र! आप निश्चिन्त हो जाइये। हे महानुभाव! धैर्य धारण कीजिये, विषम परिस्थिति आ जानेपर सहसा धैर्य नहीं खोना चाहिये। हे सुराध्यक्ष! हार तथा जीत सदा दैवाधीन होती हैं, अतएव बुद्धिमान् प्राणीको चाहिये कि वह सदैव धैर्य धारण करके स्थित रहे। हे शतक्रतो! होनी होकर रहती है, ऐसा समझते हुए मनुष्यको अपनी सामर्थ्यके अनुसार सदा उद्यम करना चाहिये। सब कुछ दैवके अधीन है—यह जानते हुए भी योगध्यानपरायण मुनिगण भी मुक्ति-प्राप्ति हेतु निरन्तर उद्यमशील रहते हैं। अतएव मनुष्यको अपने सामर्थ्यानुसार सदैव उद्योग करते रहना चाहिये॥ २६—३०॥

सुख मिले अथवा न मिले—इस दैवाधीन विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता? बिना पुरुषार्थ किये ही संयोगसे सिद्धि मिल जाय—ऐसा मानकर अन्धे तथा

अन्धवत्पङ्गुवत्कामं न तथा मुदमावहेत्।
कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते॥ ३२

न तत्र दूषणं तस्य दैवाधीने शरीरिणि।
कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मन्त्रे न च मन्त्रणे॥ ३३

न रथे नायुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप।
बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते॥ ३४

बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत्।
कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम्॥ ३५

दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना।
उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप॥ ३६

दुःखदे सुखदे वापि तत्र तौ न विचिन्तयेत्।
दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्॥ ३७

आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्।
धैर्यमेवावगन्तव्यं हर्षशोकोद्भवे बुधैः॥ ३८

अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम्।
दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः॥ ३९

हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद् बुद्धिनिश्चयात्।
किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाव्ययः॥ ४०

लँगड़ेकी भाँति अकर्मण्य होकर प्रसन्नतापूर्वक पड़े रहना उचित नहीं है। पुरुषार्थ करनेपर भी यदि सिद्धि नहीं मिलती है तो इसमें उस व्यक्तिका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैवके अधीन रहता है। कार्यकी सिद्धि न सेनासे, न मन्त्रसे, न मन्त्रणासे, न रथसे और न तो आयुधसे ही मिलती है। हे सुरेन्द्र! सफलता तो निश्चितरूपसे दैवके अधीन रहती है॥ ३१—३३½॥

[ऐसा भी देखा जाता है कि] बलशाली कष्ट पाता है तथा बलहीन सुखोपभोग करता है, बुद्धिमान् भूखा ही सो जाता है तथा बुद्धिहीन अनेक उत्तम भोज्य पदार्थोंका सेवन करता है, कायर व्यक्तिकी जीत हो जाती है तथा वीर पराजित हो जाता है। हे सुराधिप! यह समस्त जगत् ही दैवके अधीन है, तो फिर चिन्ताकी आवश्यकता ही क्या? ऐसा दृढ़ विश्वास करके भाग्यको उद्योगके साथ संयोजित कर देना चाहिये॥ ३४—३६॥

उद्योग करनेके बाद सुख प्राप्त हो अथवा दुःख—इन दोनोंके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दुःख आनेपर अपनेसे अधिक दुःखीजनोंको तथा सुख आनेपर अधिक सुखी व्यक्तिको देखना चाहिये॥ ३७॥

अपने आपको शत्रुतुल्य हर्ष तथा शोकको अर्पित नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषोंको हर्ष या शोकके उपस्थित होनेपर धैर्यका अवलम्बन करना चाहिये॥ ३८॥

अधीर हो जानेसे जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख धैर्य धारण करनेसे कभी नहीं होता। किंतु सुख तथा दुःखके अवसरपर सहनशील बने रहना अति दुर्लभ है॥ ३९॥

जब हर्ष अथवा शोक उत्पन्न हों तब अपनी बुद्धिसे निश्चय करके उनसे अप्रभावित बने रहना चाहिये। वैसी परिस्थितिमें सोचना चाहिये कि दुःख क्या है; और यह दुःख किसे होता है? मैं तो सदा

चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखञ्च किम्।
प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने॥ ४१

जरामृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः।
शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिन्तने॥ ४२

शरीरं नाहमथवा तत्सम्बन्धी न चाप्यहम्।
सप्तैकषोडशादिभ्यो विभिन्नोऽहं सदा सुखी॥ ४३

प्रकृतिर्विकृतिर्नाहं किं मे दुःखं सदा पुनः।
इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा भव निर्ममः॥ ४४

उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो।
ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्॥ ४५

सन्तोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते।
अथवा यदि न ज्ञानं ममत्वनाशने किल॥ ४६

ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप।
प्रारब्धकर्मणां नाशो नाभोगाल्लक्ष्यते किल॥ ४७

यद्भावि तद्भवत्येव का चिन्ता सुखदुःखयोः।
सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम॥ ४८

सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष।
तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥ ४९

अथवा मन्त्रयित्वाद्य कुरु यत्नं यथाविधि।
कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति॥ ५०

गुणोंसे रहित और अविनाशी हूँ। मैं तो चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न आत्मतत्त्व हूँ, तब सुख अथवा दुःखसे मेरा क्या प्रयोजन? भूख तथा प्यासका सम्बन्ध प्राणसे, शोक तथा मोहका सम्बन्ध मनसे एवं जरा तथा मृत्युका सम्बन्ध शरीरसे है। मैं तो इन छहों ऊर्मियोंसे रहित कल्याणस्वरूप हूँ। शोक तथा मोह शरीरके गुण हैं; इनके विषयमें सोचनेकी मुझे क्या आवश्यकता?॥ ४०—४२॥

मैं न शरीर हूँ और न तो इससे मेरा कोई सम्बन्ध है। मैं तो महदादि सात विकृतियों, एक प्रकृति तथा सोलह विकारोंसे पृथक् रहनेवाला सदा सुखस्वरूप हूँ। मैं न प्रकृति हूँ और न तो विकृति हूँ; तब मुझे दुःख किस बातका? हे देवेश! अपने मनमें ऐसा निश्चय करके आप ममतारहित हो जाइये। हे शतयज्ञकर्ता इन्द्र! आपके दुःखनाशका यही प्रधान उपाय है; क्योंकि ममता सबसे बड़ा दुःख है तथा निर्ममता सबसे बड़ा सुख है॥ ४३—४५॥

हे शचीपते! सन्तोषसे बढ़कर सुखका कोई भी स्थान नहीं है। अथवा हे देवराज! यदि आपके पास ममताको नष्ट करनेवाले ज्ञानका अभाव हो तो प्रारब्धके विषयमें विवेकका आश्रय लेना परमावश्यक है। बिना भोगके प्रारब्ध कर्मोंका नाश कभी नहीं हो सकता॥ ४६-४७॥

हे आर्य! सभी देवता आपके सहायक हों अथवा केवल आपकी बुद्धि सहायक बने—जो होना है वह होकर रहेगा, तब सुख अथवा दुःखके विषयमें चिन्ता क्या?॥ ४८॥

हे महाभाग! सुखके उपभोगसे पुण्यका क्षय होता है और दुःख भोगनेसे पापका नाश होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको सुख-क्षयकी स्थितिमें हर प्रकारसे प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये॥ ४९॥

अथवा हे महाराज! यदि आपकी इच्छा हो तो विधिवत् परामर्श करके आप यत्न करनेमें तत्पर हो जाइये। प्रयत्न करनेपर भी जो होना होगा, वही होगा॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भयातुरेन्द्रादिदेवैः सुरगुरुणा सह परामर्शवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

~~०~~

अथ पञ्चमोऽध्यायः

इन्द्रका ब्रह्मा, शिव और विष्णुके पास जाना, तीनों देवताओंसहित इन्द्रका युद्धस्थलमें आना तथा चिक्षुर, बिडाल और ताम्रको पराजित करना

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम्।
युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै॥ १

नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः।
निरुद्यमं न शंसन्ति कातरा न च सोद्यमाः॥ २

यतीनां भूषणं ज्ञानं सन्तोषो हि द्विजन्मनाम्।
उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम्॥ ३

उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च।
तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम॥ ४

बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुधमुत्तमम्।
सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः॥ ५

रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम्।
स्वसैन्याभिनिवेशञ्च महिषं प्रति मानद॥ ६

व्यास उवाच

इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह।
सुरेन्द्रं युद्धसंरक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा॥ ७

बृहस्पतिरुवाच

प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निर्वारयाम्यहम्।
सन्दिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये॥ ८

न तेऽत्र दूषणं किञ्चिद्भवितव्ये शचीपते।
सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति॥ ९

व्यासजी बोले—हे महाराज! यह सुनकर सहस्रनेत्र इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा कि मैं महिषासुरके विनाशके लिये अब युद्धकी तैयारी अवश्य करूँगा; क्योंकि उद्योगके बिना न राज्य, न सुख और न तो यशकी ही प्राप्ति होती है। उद्यमहीनकी प्रशंसा न तो कायर लोग करते हैं और न उद्योगपरायण॥ १-२॥

संन्यासियोंका आभूषण ज्ञान है तथा ब्राह्मणोंका आभूषण सन्तोष है; किंतु अपनी उन्नतिकी आकांक्षा रखनेवाले लोगोंके लिये उद्योगपरायण रहते हुए शत्रुसंहारका कार्य ही आभूषण है॥ ३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उद्यमका आश्रय लेकर ही मैंने वृत्रासुर, नमुचि तथा बल आदि दैत्योंका संहार किया था; उसी प्रकार मैं महिषासुरका भी वध करूँगा॥ ४॥

आप देवगुरु बृहस्पति तथा श्रेष्ठ आयुध वज्र मेरे महान् बलके रूपमें सुलभ हैं। साथ ही भगवान् विष्णु तथा अविनाशी शिवजी मेरी सहायता अवश्य करेंगे॥ ५॥

हे मानद! अब मैं महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिये सेनाकी तैयारीके उद्योगमें लग रहा हूँ। हे साधो! अब आप मेरे कल्याणार्थ रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ कीजिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धके लिये सर्वथा तत्पर उन सुरेन्द्रसे मुसकराकर बृहस्पतिने यह वचन कहा—॥ ७॥

बृहस्पति बोले—इस समय मैं आपको युद्धके लिये न तो प्रेरित करूँगा और न तो इससे आपको रोकूँगा ही; क्योंकि युद्ध करनेवालेकी हार तथा जीत दोनों ही अनिश्चित रहती हैं॥ ८॥

हे शचीपते! इस होनहारके विषयमें आपका कोई दोष नहीं है। जो भी सुख-दुःख पूर्वतः निर्धारित है, वह तो अवश्य ही प्राप्त होगा॥ ९॥

न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा।
यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि॥ १०

शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन।
स्वाश्रमस्थेन सम्प्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम्॥ ११

बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराधिप।
क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात्॥ १२

तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः।
कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप॥ १३

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः।
ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत्॥ १४

पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः।
ग्रहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगं करोत्यलम्॥ १५

अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः।
योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः॥ १६

तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः।
सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ १७

ब्रह्मोवाच

गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम्।
शङ्करं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम्॥ १८

ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह।
मिलित्वा मन्त्रमाधाय देशं कालं विचिन्त्य च॥ १९

बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च।
साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति॥ २०

भविष्यमें आपको प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके विषयमें मुझे कोई भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि हे वासव! आप यह बात भलीभाँति जानते हैं कि पूर्व समयमें अपनी भार्याके हरणके अवसरपर मुझे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा था॥ १०॥

हे शत्रुनिषूदन! चन्द्रमाने मेरी पत्नीका हरण कर लिया था, जिसके फलस्वरूप अपने आश्रममें रहते हुए मुझे सभी सुखोंका विनाश करनेवाला महान् कष्ट झेलना पड़ा॥ ११॥

हे सुराधिप! मैं सभी लोकोंमें परम बुद्धिमान्‌के रूपमें विश्रुत हूँ; किंतु जब मेरी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया गया था तो उस समय मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी?॥ १२॥

अतएव हे सुराधिप! बुद्धिमान् लोगोंको सदा यत्नपरायण होना चाहिये। कार्यकी सिद्धि तो निश्चितरूपसे सदा दैवके ही अधीन रहती है॥ १३॥

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिका यह सत्य तथा अर्थयुक्त वचन सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर उन्हें प्रणाम करके बोले—॥ १४॥

हे पितामह! हे देवाध्यक्ष! इस समय महिषासुर नामक दैत्य मेरे स्वर्गलोकपर अपना अधिकार स्थापित करनेकी कामनासे सैन्यबलकी तैयारी कर रहा है॥ १५॥

अन्य दानव भी उसकी सेनामें सम्मिलित हो रहे हैं। वे सब-के-सब सदा युद्धके लिये आतुर रहनेवाले, महान् पराक्रमी तथा युद्धकलामें अत्यन्त प्रवीण हैं॥ १६॥

उस दानवसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें यहाँ आया हूँ। हे महाप्राज्ञ! आप तो सर्ववेत्ता हैं तथा मेरी सहायता करनेमें पूर्ण समर्थ हैं॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हमलोग इसी समय शीघ्रतापूर्वक कैलास चलें और वहाँसे शंकरजीको आगे करके बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णुभगवान्‌के पास चलें। तत्पश्चात् सभी देवगणोंके साथ परस्पर मिलकर देश-कालके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करके एक समुचित निर्णय लेकर ही युद्ध करना चाहिये। अपनी शक्ति तथा निर्बलताका सम्यक् ज्ञान किये बिना विवेकका त्याग करके दुःसाहसपूर्ण कार्य करनेवाला व्यक्ति पतनको प्राप्त होता है॥ १८—२०॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह।
ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः॥ २१

तुष्टाव शङ्करं गत्वा वेदमन्त्रैर्महेश्वरम्।
प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति॥ २२

स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाच चात्मनः।
महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात्॥ २३

तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह।
करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम्॥ २४

व्यास उवाच

इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः।
स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः॥ २५

ब्रह्मा हंससमारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः।
शङ्करो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः॥ २६

मयूरवाहनः स्कन्दो यमो महिषवाहनः।
कृत्वा सैन्यसमायोगं यावत्ते निर्ययुः सुराः॥ २७

तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम्।
तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः॥ २८

बाणैः खड्गैस्तथा प्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः।
गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः॥ २९

मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः।
अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम्॥ ३०

सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः।
मघवन्तं पञ्चभिस्तैः सायकैः समताडयत्॥ ३१

तुराषाडपि तांश्छित्त्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः।
हृदये चार्धचन्द्रेण ताडयामास तं कृती॥ ३२

बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि।
करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः॥ ३३

व्यासजी बोले—यह सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीको आगे करके समस्त लोकपालोंके साथ कैलासकी ओर चल पड़े॥ २१॥

कैलास पहुँचकर इन्द्रने वेदमन्त्रोंके द्वारा शिवजीकी स्तुति की। तत्पश्चात् [स्तुतिगानसे] अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त भगवान् शंकरको आगे करके वे विष्णुलोक गये॥ २२॥

उन देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उन्होंने वहाँ अपने आनेका उद्देश्य बताया तथा वरदान पानेके कारण गर्वोन्मत्त महिषासुरसे उत्पन्न उग्र भयके बारेमें उनसे कहा॥ २३॥

उनके भयको सुनकर भगवान् विष्णुने देवताओंसे कहा कि हम देवगण युद्ध करेंगे और उस दुर्जयका वध कर डालेंगे॥ २४॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर चल पड़े॥ २५॥

ब्रह्माजी हंसपर चढ़े, विष्णुभगवान्‌ने गरुडको अपना वाहन बनाया, शंकरजी वृषभपर सवार हुए, इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे, स्वामी कार्तिकेय मोरपर चढ़े और यमराज महिषपर आरूढ़ हुए। इस प्रकार अपनी सैन्य तैयारी करके देवता लोग ज्यों ही आगे बढ़े, तभी उन्हें महिषासुरके द्वारा पालित मदोन्मत्त दानवी-सेना सामने मिल गयी। इसके बाद वहींपर देवताओं तथा दानवोंकी सेनामें भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ २६—२८॥

वे एक-दूसरेपर बाण, तलवार, भाला, मूसल, परशु, गदा, पट्टिश, शूल, चक्र, शक्ति, तोमर, मुद्गर, भिन्दिपाल, हल तथा अन्य अति भयंकर शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे॥ २९-३०॥

महिषासुरके सेनापति महाबली चिक्षुरने हाथीपर चढ़कर इन्द्रपर पाँच बाणोंसे प्रहार किया॥ ३१॥

युद्धकुशल इन्द्रने भी तत्काल अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर अपने अर्धचन्द्र नामक बाणसे उसके हृदय-स्थलपर आघात किया॥ ३२॥

उस बाणसे आहत होकर सेनानायक चिक्षुर हाथीपर बैठे-बैठे ही मूर्च्छित हो गया। इसके बाद इन्द्रने हाथीकी सूँड़पर वज्रसे प्रहार किया॥ ३३॥

तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह।
दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत्॥ ३४

गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम्।
वरुणादीन्परान्देवान्हत्वागच्छ ममान्तिकम्॥ ३५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाख्यो महाबलः।
आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम्॥ ३६

वासवस्तं समायान्तं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः॥ ३७

स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः।
पञ्चाशद्भिर्जघानाशु वासवञ्च शिलीमुखैः॥ ३८

तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः।
जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः॥ ३९

स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः।
गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि॥ ४०

स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः।
परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम्॥ ४१

दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात्।
समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुरान् रणे॥ ४२

तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम्।
अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ४३

सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः।
बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः॥ ४४

उस वज्रके आघातसे हाथीकी सूँड़ कट गयी और वह सेनाके बीच भाग खड़ा हुआ। उसे देखकर दानवराज महिषासुर कुपित हो गया और उसने बिडाल नामक दानवसे कहा—हे महाबाहो! हे वीर! तुम जाओ और बलके अभिमानमें चूर इन्द्रको मार डालो, साथ ही वरुण आदि अन्य देवताओंका भी वध करके शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ॥ ३४-३५॥

व्यासजी बोले—उसकी बात सुनकर वह महाबली बिडाल एक मतवाले हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये इन्द्रकी ओर चल पड़ा॥ ३६॥

उसे अपनी ओर आते देखकर इन्द्रने कुपित होकर विषधर सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे बिडालपर प्रहार किया॥ ३७॥

उस बिडालने शीघ्र ही अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे इन्द्रके बाण काटकर पुनः तत्काल अपने पचास बाणोंसे इन्द्रपर आघात किया॥ ३८॥

तब इन्द्रने भी क्रुद्ध होकर उसके उन बाणोंको काटकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ३९॥

अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर इन्द्रने अपनी गदासे उसके हाथीकी सूँड़पर प्रहार किया॥ ४०॥

अपनी सूँड़पर गदाके आघातसे वह हाथी बार-बार आर्तनाद करने लगा और पीछे घूमकर भागता हुआ वह दैत्य-सेनाको ही कुचलने लगा, जिससे दानवोंकी सेना भयाकुल हो उठी॥ ४१॥

तत्पश्चात् हाथीको युद्धभूमिसे भागा देखकर वह दानव बिडाल लौटकर चला गया और पुनः एक सुन्दर रथपर सवार होकर देवताओंके समक्ष रणमें उपस्थित हो गया॥ ४२॥

इन्द्रने बिडालको रथपर सवार होकर पुनः समरांगणमें आया हुआ देखकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात करना आरम्भ कर दिया॥ ४३॥

वह महाबली बिडाल भी अत्यन्त कुपित होकर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा। इस प्रकार विजयके इच्छुक उन दोनोंके बीच भीषण युद्ध होने लगा॥ ४४॥

इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः।
जयन्तमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः॥ ४५

जयन्तस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनान्तरे।
पञ्चभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम्॥ ४६

स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि।
अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात्॥ ४७

तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्च्छिते।
जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः॥ ४८

सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम्।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४९

चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम्।
प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम्॥ ५०

ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागम्य रणाजिरे।
शरवृष्टिं चकाराशु तडित्वानिव सागरे॥ ५१

वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा।
यमश्च महिषारूढो दण्डमादाय निर्ययौ॥ ५२

तत्र युद्धमभूद् घोरं देवदानवयोर्मिथः।
बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः॥ ५३

दण्डेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च।
न चचाल महाबाहुः संग्रामाङ्गणतस्तदा॥ ५४

चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान्।
इन्द्रादीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन् रणाजिरे॥ ५५

तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः।
निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः॥ ५६

क्रोधके प्रभावसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले इन्द्रने बिडालको विशेष बलवान् देखकर जयन्तको अपना अग्रणी बना लिया और अब उसके साथ मिलकर वे युद्ध करने लगे॥ ४५॥

जयन्तने धनुषपर चढ़ाकर प्रबलतापूर्वक खींचे गये पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे मदोन्मत्त उस दानव बिडालके वक्षःस्थलपर आघात किया॥ ४६॥

उन बाणोंके आघातसे मूर्च्छित होकर बिडाल रथपर गिर पड़ा, तब उसका सारथि तत्काल रथ लेकर रण-भूमिसे बाहर निकल गया॥ ४७॥

उस बिडालके मूर्च्छित होकर युद्धभूमिसे बाहर चले जानेपर देवसेनामें महान् विजय-घोष तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी॥ ४८॥

सभी देवता प्रसन्न होकर इन्द्रकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४९॥

तत्पश्चात् देवताओंके द्वारा किये गये उस विजय-घोषको सुनकर महिषासुर कुपित हो उठा। उसने शत्रुओंके अभिमानको चूर-चूर कर देनेवाले ताम्र नामक दानवको युद्धक्षेत्रमें भेजा॥ ५०॥

ताम्र बहुत-से सैनिकोंके साथ समरांगणमें आकर इस प्रकार वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगा मानो मेघ समुद्रमें जल बरसा रहा हो॥ ५१॥

उस समय वरुणदेव पाश लेकर तथा यमराज हाथमें दण्ड धारण करके महिषपर चढ़कर [युद्धभूमिमें] शीघ्र ही पहुँच गये॥ ५२॥

अब देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर बाणों, तलवारों, मुसलों, बर्छियों तथा फरसोंसे भीषण संग्राम होने लगा॥ ५३॥

यमराजके द्वारा अपने हाथसे फेंके गये दण्डसे ताम्र आहत हो गया, किंतु वह महाबाहु ताम्र समरांगणसे हिलातक नहीं॥ ५४॥

ताम्र उस संग्रामभूमिमें वेगपूर्वक धनुषको खींच-खींचकर अति तीक्ष्ण बाण छोड़कर इन्द्र आदि देवताओंपर शीघ्रतासे प्रहार करने लगा॥ ५५॥

वे देवता कुपित होकर पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये तीक्ष्ण दिव्य बाणोंसे दानवोंको मारने लगे और 'ठहरो-ठहरो' कहकर चिल्लाने लगे॥ ५६॥

निहतस्तैः सुरैर्दैत्यो मूर्च्छामाप रणाङ्गणे।
हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयातुरे॥ ५७

उन देवताओंके प्रहारसे घायल होकर दैत्य ताम्र युद्धभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब भयाक्रान्त दैत्यसेनामें महान् हाहाकार मच गया॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे दैत्यसैन्यपराजयो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णु और शिवके साथ महिषासुरका भयानक युद्ध

व्यास उवाच

ताम्रेऽथ मूर्च्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं देवानुपजगाम ह॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार दानव ताम्रके मूर्च्छित हो जानेपर महिषासुर कुपित हो गया और एक विशाल गदा लेकर देवताओंके समक्ष जा डटा॥ १॥

तिष्ठन्त्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल।
सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि॥ २

इत्युक्त्वासौ गजारूढं सम्प्राप्य मदगर्वितः।
जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः॥ ३

हे देवताओ! तुम सब ठहरो; मैं अभी अपनी गदासे तुम सभीको मार डालूँगा। बलिभाग (हविष्य) खानेवाले तुम सब तो सदासे बलहीन रहे हो—ऐसा कहकर अभिमानके मदमें चूर वह महाबाहु महिषासुर हाथीपर बैठे हुए इन्द्रके पास पहुँचकर उसने उनके बाहुमूलपर अपनी गदासे तीव्र आघात किया॥ २-३॥

सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदाञ्च ताम्।
प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति॥ ४

इन्द्रने अपने भयंकर वज्रसे उस गदाको तुरंत काट दिया और वे महिषासुरको मारनेकी इच्छासे बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसकी ओर बढ़े॥ ४॥

हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम्।
ययाविन्द्रं महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवान्तिकम्॥ ५

तत्पश्चात् वह महिषासुर भी कुपित होकर अपने हाथमें चमचमाती हुई तलवार लेकर प्रहार करते हुए महाबली इन्द्रके सामने पहुँच गया॥ ५॥

बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम्।
आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम्॥ ६

तब उन दोनोंमें नानाविध आयुधोंके द्वारा समस्त प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाला तथा मुनिजनोंको भी विस्मित कर देनेवाला भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ६॥

चकाराशु तदा दैत्यो मायां मोहकरीं किल।
शाम्बरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम्॥ ७

तत्पश्चात् दैत्य महिषासुरने सम्पूर्ण जगत्को नष्ट कर देनेवाली तथा मुनियोंको भी मोहित कर देनेवाली मोहकारिणी शाम्बरी मायाका तत्काल प्रयोग किया॥ ७॥

कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।
ददृशुः सायुधाः सर्वे निघ्नन्तो देववाहिनीम्॥ ८

उस मायाके प्रभावसे महिषासुरके ही रूपवाले तथा उसीके समान पराक्रमी करोड़ों महिषासुर अनेक प्रकारके आयुध लेकर देवसेनाका संहार करते हुए दिखायी पड़े॥ ८॥

मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम्।
बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल॥ ९

वरुणोऽपि सुसन्त्रस्तस्तथैव धननायकः।
यमो हुताशनः सूर्यः शीतरश्मिर्भयातुरः॥ १०

पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः॥ ११

तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृतमात्राः सुरोत्तमाः।
हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामा वरायुधाः॥ १२

शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम्।
मुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता॥ १३

वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः।
योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत्॥ १४

महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा।
उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः॥ १५

असिलोमात्रिनेत्रश्च बाष्कलोऽन्धक एव च।
एते चान्ये च बहवो युद्धकामा विनिर्ययुः॥ १६

सन्नद्धा धृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः।
परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान्॥ १७

बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः।
सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः॥ १८

अन्धको हरिमासाद्य पञ्चबाणाञ्छिलाशितान्।
मुमोच विषसन्दिग्धान्कर्णाकृष्टान्महाबलान्॥ १९

वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा।
चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशनः॥ २०

तब दैत्य महिषासुरद्वारा उत्पन्न की गयी उस मोहकरी मायाको देखकर इन्द्र विस्मयमें पड़ गये तथा भयसे बहुत व्याकुल हो उठे॥ ९॥

वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा भी भयभीत हो गये और सभीके मनमें त्रास छा गया। सभी देवगण माया-विमोहित होकर भाग खड़े हुए और वे सावधान होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवका स्मरण करने लगे॥ १०-११॥

स्मरण करते ही उनकी रक्षाकी कामनासे श्रेष्ठ आयुध धारण करके सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अपने-अपने वाहन हंस, गरुड तथा वृषभपर आरूढ होकर वहाँ आ गये॥ १२॥

मोहकारिणी उस आसुरी मायाको देखकर भगवान् विष्णुने अपना तेजोमय सुदर्शन चक्र चला दिया, जिसके प्रचण्ड तेजसे वह माया समाप्त हो गयी॥ १३॥

तदनन्तर सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले उन देवताओंको देखकर उनसे युद्ध करनेकी इच्छासे वह महिषासुर परिघ लेकर उनकी ओर दौड़ा॥ १४॥

इसके बाद महावीर महिषासुर, सेनाध्यक्ष चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल तथा अन्धक—ये दानव एवं इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दानव युद्धकी अभिलाषासे निकल पड़े॥ १५-१६॥

उन कवचधारी, धनुष धारण करनेवाले, रथारूढ तथा मदोन्मत्त दानवोंने सभी देवताओंको उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार भेड़िये अत्यन्त कोमल बछड़ोंको घेर लेते हैं॥ १७॥

तदनन्तर एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे मदोन्मत्त दानव तथा देवता बाण-वृष्टि करने लगे॥ १८॥

इसी बीच अन्धकासुरने भगवान् विष्णुके समक्ष पहुँचकर सानपर चढ़ाये गये, विषमें दग्ध किये गये तथा कानतक खींचे गये अत्यन्त शक्तिशाली पाँच बाण छोड़े॥ १९॥

शत्रुदमन भगवान् विष्णुने भी बड़ी तत्परताके साथ अपने तीव्रगामी बाणोंसे अन्धकासुरके उन बाणोंको दूरसे ही काट डाला और फिर उसके ऊपर पाँच बाण छोड़े॥ २०॥

तयोः परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययोः।
बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ २१

महेशान्धकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पञ्चाशद्दिनपर्यन्तं बभूव च परस्परम्॥ २२

इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः ।
यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३

असिलोमवरुणयोर्युद्धं परमदारुणम्।
गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम्॥ २४

स गदापातखिन्नाङ्गो निःश्वसन्नवतिष्ठत।
शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसान्त्वयन्॥ २५

स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं महाबलम्।
समाकृष्य धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून्॥ २६

अन्धकोपरि कोपेन हन्तुकामो जनार्दनः।
दानवोऽपि च तान्बाणांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः॥ २७

पञ्चाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः।
वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वञ्चयित्वा शरोत्तमान्॥ २८

चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम्।
त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत्॥ २९

ननाद च महाराज देवान्सम्मोहयन्निव।
दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्य शार्ङ्गिणः॥ ३०

जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा।
वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचावृतान्॥ ३१

गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवं समुपाद्रवत्।
तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः॥ ३२
स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्च्छितः।

इस प्रकार विष्णु तथा अन्धकासुर—उन दोनोंमें बाण, तलवार, चक्र, मूसल, गदा, बर्छी तथा फरसोंसे भीषण युद्ध होने लगा॥ २१॥

इसी प्रकार महेश्वर तथा अन्धकासुरके बीच भीषण रोमांचकारी युद्ध निरन्तर पचास दिनोंतक होता रहा॥ २२॥

उसी तरह इन्द्र तथा बाष्कल, महिषासुर तथा भगवान् रुद्र, यमराज तथा त्रिनेत्र, महाहनु तथा कुबेर एवं असिलोमा तथा वरुणके बीच महाभीषण युद्ध हुआ। इसी बीच अन्धकासुरने अपनी गदासे भगवान् विष्णुके वाहन गरुडपर प्रहार किया। गदाके प्रहारसे घायल अंगोंवाले गरुड लम्बी साँस खींचते हुए स्थित हो गये। तत्पश्चात् देवाधिदेव विष्णुने अपने दाहिने हाथसे सहलाकर महाबली गरुडको सान्त्वना प्रदान करते हुए उन्हें स्वस्थचित्त किया। तब भगवान् विष्णुने अन्धकका संहार करनेके विचारसे अपना शार्ङ्गधनुष खींचकर उसके ऊपर बहुत-से बाण छोड़े॥ २३—२६½॥

दानव अन्धकने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और इसके बाद सानपर चढ़ाकर तेज बनाये गये पचास बाण भगवान् विष्णुके ऊपर कुपित होकर एक ही साथ छोड़े। भगवान् विष्णुने भी उन उत्तम बाणोंको तत्क्षण निष्फल करके अपना हजार अरोंवाला सुदर्शन चक्र अन्धकासुरके ऊपर वेगपूर्वक चलाया। तब अन्धकासुरने भगवान् विष्णुद्वारा छोड़े गये सुदर्शन चक्रको अपने चक्रसे काफी दूरसे ही विफल कर दिया। हे महाराज [जनमेजय]! इसके बाद देवताओंको सम्मोहित करते हुए उसने भीषण गर्जना की॥ २७—२९½॥

तत्पश्चात् शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रको विफल हुआ देखकर सभी देवता शोकाकुल हो उठे तथा दानवगण हर्षित हो गये। तब भगवान् विष्णु भी देवताओंको चिन्तामग्न देखकर अपनी कौमोदकी गदा लेकर दानव अन्धकपर झपट पड़े। श्रीहरिने बड़े वेगसे उस मायावीके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। वह दैत्य गदाके प्रहारसे पूर्णरूपसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०—३२½॥

तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः॥ ३३

आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः।
वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायान्तं क्रुधान्वितम्॥ ३४

चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नन्दयन्सुरान्।
शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि॥ ३५

सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान्।
तयोर्युद्धमभूद्राजन् परस्परभयावहम्॥ ३६

गदया ताडयामास केशवो मस्तकोपरि।
स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्च्छितः॥ ३७

हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः।
स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः॥ ३८

गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम्।
परिघेणाहतस्तेन मूर्च्छामाप जनार्दनः॥ ३९

मूर्च्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडो रणात्।
परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ४०

भयं प्रापुः सुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे।
क्रन्दमानान्सुरान्वीक्ष्य शङ्करः शूलभृत्तदा॥ ४१

महिषं तरसाभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः।
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शङ्करस्योरसि स्फुटम्॥ ४२

जगर्ज स च दुष्टात्मा वञ्चयित्वा त्रिशूलकम्।
शङ्करोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः॥ ४३
तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः।

उसे इस प्रकार गिरा हुआ देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और अपनी घोर गर्जनासे भयभीत करता हुआ भगवान् विष्णुके सामने आ गया। भगवान् विष्णुने भी उस महिषासुरको कुपित होकर अपने समक्ष आया देखकर देवताओंको आनन्दित करते हुए अपने धनुषकी प्रत्यंचासे भयानक टंकार उत्पन्न की। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु महिषासुरके ऊपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी बौछार करने लगे। उसने भी अपने बाणसमूहोंसे उन आते हुए बाणोंको आकाशमें ही काट डाला। हे राजन्! इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अति भीषण युद्ध हुआ॥ ३३—३६॥

भगवान् विष्णुने गदासे महिषासुरके मस्तकपर प्रहार किया। मस्तकपर उस गदाके आघातसे मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। [यह देखकर] उसकी सेनामें अति भीषण हाहाकार मच गया। कुछ ही क्षणोंमें अपनी वेदनाको भूलकर वह दैत्य फिर उठकर खड़ा हो गया। उसने तत्काल एक परिघ लेकर मधुसूदन श्रीविष्णुके सिरपर प्रहार किया। उस परिघके प्रहारसे आहत होकर भगवान् विष्णु मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। तब गरुड मूर्च्छाको प्राप्त उन भगवान् विष्णुको युद्धस्थलसे लेकर बाहर चले गये। इस प्रकार जगत्पति विष्णुके समरांगणसे लौट जानेपर इन्द्र आदि प्रधान देवता भयभीत हो गये और दुःखसे पीड़ित होकर युद्धभूमिमें चीखने-चिल्लाने लगे॥ ३७—४०½॥

तत्पश्चात् शूलधारी भगवान् शंकरने देवताओंको इस प्रकार करुण क्रन्दन करते हुए देखकर अत्यन्त क्रोधके साथ महिषासुरके पास द्रुतगतिसे पहुँचकर उसपर भीषण प्रहार किया। उस महिषासुरने भी भगवान् शंकरके वक्षःस्थलपर अपनी शक्ति (बर्छी)-से तेज प्रहार किया और उनके त्रिशूलप्रहारको विफल करके उस दुष्टात्माने बड़ी तेज गर्जना की। वक्षपर प्रहार होनेपर भी भगवान् शंकरको कोई पीड़ा नहीं हुई और क्रोधसे आँखें लाल करके उन्होंने उसपर अपने त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ४१—४३½॥

संलग्नं शङ्करं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना॥ ४४

आजमाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्च्छां प्रहारजाम्।
महिषस्तु तदा वीक्ष्य सम्प्राप्तौ हरिशङ्करौ॥ ४५

युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ।
कोपयुक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ॥ ४६

जगाम सम्मुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः।
माहिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम्॥ ४७

चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि।
धुन्वञ्छृङ्गे महाकायो दारुणो जलदो यथा॥ ४८

शृङ्गाभ्यां पर्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान्।
दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ॥ ४९

चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणाम्।
कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः॥ ५०

चिक्षेप गिरिशृङ्गं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम्।
आपतन्तं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतां पतिः॥ ५१

विशिखैः शतधा चक्रे चक्रेणाशु जघान तम्।
हरिचक्राहतः संख्ये मूर्च्छामाप स दैत्यराट्॥ ५२

उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः।
गदापाणिर्महाघोरो दानवः पर्वतोपमः॥ ५३

मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पाञ्चजन्यं समुज्ज्वलम्॥ ५४

पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम्।
तेन शब्देन शङ्खस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः।
बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः॥ ५५

इसी बीच दुष्टात्मा महिषासुरके साथ भगवान् शंकरको इस प्रकार युद्धरत देखकर प्रहारजनित मूर्च्छाका त्याग करके वहाँ भगवान् विष्णु आ गये। उस समय युद्धके लिये उत्सुक महापराक्रमी विष्णु तथा शिवको श्रेष्ठ सुदर्शन चक्र तथा त्रिशूल धारण करके लड़नेके लिये अपने समक्ष उपस्थित देखकर वह महाबली महिषासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। तत्पश्चात् वह विशालबाहु दैत्य उन दोनों देवताओंको अपने समीप आया हुआ देखकर महिषका रूप धारण करके पूँछ हिलाता हुआ युद्ध करनेके लिये उनके समक्ष पहुँच गया। देवताओंको आतंकित करते हुए उस विशालकाय तथा भयावह महिषासुरने अपनी सींगें फटकारते हुए मेघकी भाँति भीषण गर्जना की तथा वह अपनी सींगोंसे पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा॥ ४४—४८$\frac{१}{२}$ ॥

उस दानवको देखकर महापराक्रमी देवश्रेष्ठ विष्णु तथा शंकर उसके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगे। भगवान् विष्णु तथा शिवको अपने ऊपर बाण-वृष्टि करते हुए देखकर महिषासुरने अपनी पूँछमें एक भयानक पर्वतशिखर लपेटकर उनके ऊपर फेंका। उस पर्वतशिखरको आते देखकर भगवान् विष्णुने अपने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये और फिर सुदर्शन चक्रसे उसके ऊपर शीघ्रतासे प्रहार किया। भगवान् विष्णुके चक्रसे आहत होकर वह दैत्यराज महिषासुर युद्धमें मूर्च्छित हो गया। किंतु थोड़ी ही देरमें वह मनुष्यका शरीर धारण करके उठ खड़ा हुआ। पर्वतके समान शरीरवाला वह महाभयानक दैत्य हाथमें गदा धारणकर देवताओंको भयभीत करता हुआ मेघके समान जोर-जोरसे गरजने लगा॥ ४९—५३$\frac{१}{२}$ ॥

उस नादको सुनकर भगवान् विष्णुने तीव्रतर ध्वनि उत्पन्न करनेके लिये बड़ी तेजीसे अपना देदीप्यमान पांचजन्य नामक शंख बजाया। शंखकी उस ध्वनिसे समस्त दानव भयभीत हो गये और तपोधन ऋषिगण तथा देवता आनन्दमग्न हो गये॥ ५४-५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरस्येन्द्रादिदेवैः सह युद्धवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

महिषासुरको अवध्य जानकर त्रिदेवोंका अपने-अपने लोक लौट जाना, देवताओंकी पराजय तथा महिषासुरका स्वर्गपर आधिपत्य, इन्द्रका ब्रह्मा और शिवजीके साथ विष्णुलोकके लिये प्रस्थान

व्यास उवाच

असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तदा।
त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ॥ १

कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम्।
पपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदर्शनैः॥ २

गरुडञ्च नखाघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम्।
जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी॥ ३

वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान्।
हन्तुकामो हरिः काममवापाशु क्रुधान्वितः॥ ४

यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान तम्।
तावत्सोऽतिबलः शृङ्गी शृङ्गाभ्यां न्यहनद्धरिम्॥ ५

वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः।
पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनं निजम्॥ ६

गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शङ्करोऽपि भयान्वितः।
अवध्यं तं परं मत्वा ययौ कैलासपर्वतम्॥ ७

ब्रह्मापि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ भयात्।
मघवा वज्रमालम्ब्य तस्थावाजौ महाबलः॥ ८

वरुणः शक्तिमालम्ब्य धैर्यमालम्ब्य संस्थितः।
यमोऽपि दण्डमादाय यत्तः समरतत्परः॥ ९

ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः।
पावकः शक्तिमादाय तत्राभूद्युद्धमानसः॥ १०

नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थितावुभौ।
वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ॥ ११

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] महिषासुरने समस्त दानवोंको खिन्नमनस्क देखकर महिषका वह रूप छोड़कर तत्काल सिंहका रूप धारण कर लिया॥ १॥

तत्पश्चात् भयानक गर्जन करके गर्दनके बाल (अयाल) फैलाकर अपने तीक्ष्ण नख दिखाकर देवताओंको भयभीत करता हुआ वह देवसेनापर टूट पड़ा॥ २॥

उसने गरुडके ऊपर अपने नाखूनोंसे आघात करके उन्हें रक्तसे लथपथ कर दिया। पुनः सिंहरूपधारी उस दानवने विष्णुकी भुजापर अपने नखोंसे प्रहार किया॥ ३॥

भगवान् विष्णुने उसे देखकर कुपित हो तत्काल अपना सुदर्शन चक्र लेकर उस दैत्यको मार डालनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उसपर चला दिया॥ ४॥

भगवान् विष्णुने उस महिषासुरपर ज्यों ही अपने चक्रसे तेज प्रहार किया त्यों ही वह महान् शक्तिशाली महिषका रूप धारणकर भगवान् विष्णुको अपनी सींगोंसे मारने लगा॥ ५॥

वक्षःस्थलपर सींगके आघातसे व्याकुल होकर भगवान् विष्णु बड़े वेगसे भागकर अपने लोक चले गये। विष्णुको पलायित देखकर शंकरजी भी बहुत भयभीत हो गये और उसे सर्वथा अवध्य मानकर कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी उसके डरसे तत्काल अपने लोक चले गये॥ ६-७½॥

महाबली इन्द्र वज्र धारण किये हुए समरांगणमें डटे रहे। वरुणदेव अपना पाशास्त्र लेकर धैर्यपूर्वक खड़े रहे। यमराज अपना दण्ड धारण किये युद्ध करनेके लिये सावधान होकर खड़े थे। यक्षाधिपति कुबेर युद्ध करनेके लिये पूर्णरूपसे उद्यत थे और अग्निदेव बर्छी लेकर युद्ध करनेके विचारसे स्थित थे। नक्षत्रोंके नायक चन्द्रमा तथा भगवान् सूर्य—दोनों एक साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हो गये और उस दानवश्रेष्ठ महिषासुरको देखकर उन्होंने युद्ध करनेका निश्चय कर लिया॥ ८—११॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात्।
विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च॥ १२

कृत्वा हि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा।
देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत्॥ १३

ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत्।
संग्रामे सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः॥ १४

शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप च महाबलः।
जघान सुरसङ्घांश्च दानवो मदगर्वितः॥ १५

खुराघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य भ्रमणेन च।
स जघान रुषाविष्टो महिषः परमाद्भुतः॥ १६

ततो देवाः सगन्धर्वा भयमाजग्मुरुद्यताः।
मघवा महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत्॥ १७

सङ्गरं सम्परित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ।
यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयातुराः॥ १८

महिषोऽपि जयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः।
ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिन्द्रेण गच्छता॥ १९

तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम्।
स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं स्वर्गं गन्तुं मनो दधे॥ २०

तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः।
जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयातुरैः॥ २१

इन्द्रासने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत्।
दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषु सः॥ २२

एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम्।
अवापैन्द्रपदं कामं दानवो मदगर्वितः॥ २३

निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः।
एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे॥ २४

इतनेमें क्रूर सर्पोंके समान बाण-समूहोंकी वर्षा करती हुई क्रुद्ध दानवी सेना वहाँ आ गयी॥ १२॥

वह दानवराज महिषका रूप धारण करके खड़ा था। उस समय देवता तथा असुर-पक्षके योद्धाओंका भीषण गर्जन होने लगा॥ १३॥

देवताओं तथा दानवोंके बीच हो रहे महाभयानक संग्राममें धनुषकी टंकार तथा ताल ठोंकनेकी ध्वनि मेघ-गर्जना जैसी प्रतीत हो रही थी॥ १४॥

अभिमानमें चूर महाबली दैत्य महिषासुर अपनी सींगोंसे पर्वत-शिखर फेंक-फेंककर देवसमूहपर प्रहार कर रहा था॥ १५॥

क्रोधमें भरे हुए उस परम अद्भुत महिषासुरने अपने खुरोंके आघातसे तथा पूँछ घुमाकर बहुत-से देवताओंपर प्रहार किया॥ १६॥

तत्पश्चात् लड़नेके लिये उद्यत देवता तथा गन्धर्व भयभीत हो गये और महिषासुरको देखकर इन्द्र भी भाग गये॥ १७॥

संग्राम छोड़कर शचीपति इन्द्रके भाग जानेपर यमराज, धनाध्यक्ष कुबेर तथा वरुणदेव—ये सब भी भयभीत होकर भाग चले॥ १८॥

महिषासुर भी अपनी जीत मानकर अपने घर चला गया। इन्द्रके भाग जानेके बाद उनके द्वारा त्यक्त ऐरावत हाथी, सूर्यका उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा दूध देनेवाली कामधेनु गौको उसने हस्तगत कर लिया। तत्पश्चात् उसने शीघ्र ही सेनाको साथमें लेकर स्वर्ग जानेका मनमें निश्चय किया॥ १९-२०॥

इसके बाद शीघ्र ही देवलोक पहुँचकर महिषासुरने भयाक्रान्त देवताओंके द्वारा पहलेसे ही छोड़ दिये गये उनके राज्यपर आधिपत्य कर लिया॥ २१॥

इसके बाद उस रमणीय इन्द्रासनपर महिषासुर आसीन हुआ और उसने राज्य-संचालनार्थ देवताओंके स्थानपर दानवोंको स्थापित कर दिया॥ २२॥

इस प्रकार पूरे सौ वर्षतक भीषण युद्ध करके अभिमानमें चूर उस दैत्यने इन्द्रपद प्राप्त किया॥ २३॥

सभी देवता उस महिषासुरसे प्रताड़ित होकर स्वर्गसे निकल गये और बहुत वर्षोंतक पर्वतकी गुफाओंमें घूमते-फिरते रहे॥ २४॥

श्रान्ताः सर्वे तदा राजन् ब्रह्माणं शरणं ययुः।
प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम्॥ २५

पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः।
मरीचिप्रमुखैः शान्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ २६

किन्नरैः सिद्धगन्धर्वैश्चारणोरगपन्नगैः।
तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम्॥ २७

देवा ऊचुः

धातः किमेतदखिलार्तिहराम्बुजन्म
जन्माभिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान् यत्।
सम्पीडितान् रणजितानसुराधिपेन
स्थानच्युतान् गिरिगुहाकृतसन्निवासान्॥ २८

पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेता-
न्सन्त्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान्।
यस्त्वं सुरांस्तव पदाम्बुजभक्तियुक्ता-
न्दैत्यार्दितांश्च कृपणान् यदुपेक्षसेऽद्य॥ २९

अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितान्तं
मखहविरपि योग्यं ब्राह्मणैराददाति।
सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा
जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम्॥ ३०

किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं
जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम्।
ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवि-
त्तस्मात्प्रभो ते प्रणताः स्म पादयोः॥ ३१

यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ
नानाचरित्रः खलु पापमानसः।
पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टित-
स्त्रातासि देवेश विधेहि शं विभो॥ ३२

हे राजन्! तब थके हुए सभी देवतागण ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उस महिषासुरके भयसे त्रस्त वे सभी देवता समस्त वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान्, शान्त स्वभाववाले और स्वयं ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मरीचि आदि प्रमुख मुनियों एवं सिद्धों, किन्नरों, गन्धर्वों, चारणों, उरगों तथा पन्नगोंद्वारा निरन्तर सेवित, रजोगुणसे सम्पन्न, चार मुखवाले, जगन्नाथ, प्रजापति, वेदगर्भ, कमलके आसनपर विराजमान तथा समस्त संसारके गुरु देवाधिदेव ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे॥ २५—२७॥

देवता बोले—हे सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाले पद्मयोनि ब्रह्माजी! इस समय सभी देवता संग्राममें दानवेन्द्र महिषासुरसे पराजित होकर गिरि-कन्दराओंमें कालक्षेप कर रहे हैं। स्थानच्युत हो जानेके कारण उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ रहा है। हमारी ऐसी दशा देखकर भी क्या आपको दया नहीं आती, यह कैसी विचित्र बात है!॥ २८॥

क्या निर्लोभी पिता सैकड़ों अपराधोंसे युक्त अपने पुत्रोंको त्यागकर उन्हें कष्टमें पड़े रहना देख सकता है? तब फिर दैत्योंद्वारा सताये गये असहाय देवताओंकी, जो आपके चरणकमलकी भक्तिमें लगे रहते हैं, उपेक्षा आज आप क्यों कर रहे हैं?॥ २९॥

[दुष्ट] महिषासुर देवलोकका साम्राज्य भोग रहा है। ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञमें दी हुई पवित्र हविको वह स्वयं ले लेता है। वह दुष्टात्मा असुर स्वर्गके पारिजातपुष्पोंको अपने उपभोगमें लाता है तथा समुद्रकी निधिस्वरूपा उस कामधेनु गौका भी उपयोग कर रहा है॥ ३०॥

हे देवेश! हमलोग देवताओंकी विषम स्थितिका वर्णन कहाँतक करें? आप तो अपने ज्ञानसे दैत्योंकी सारी कुचेष्टा जानते हैं; आप सम्पूर्ण कार्योंको जाननेवाले हैं। अतः हे प्रभो! हम सभी देवता आपके चरणोंमें आ पड़े हैं॥ ३१॥

हे देवेश! देवता जहाँ कहीं भी जाते हैं [वहीं पहुँचकर] विविध चरित्रोंवाला, पापमय विचारोंवाला तथा दुष्ट आचरणवाला वह महिषासुर उन्हें पीड़ित करने लगता है। हे विभो! अब आप ही हमारे रक्षक हैं; हमारा कल्याण कीजिये॥ ३२॥

नो चेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः
कं शान्तिकर्तारमनन्ततेजसम्।
यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं
धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम्॥ ३३

व्यास उवाच

इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम्।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम्॥ ३४

तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुखं सञ्जनयन्निव॥ ३५

ब्रह्मोवाच

किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः।
स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः॥ ३६

व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे कैलासं पर्वतोत्तमम्।
शङ्करं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम्॥ ३७

ततो व्रजाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः।
मिलित्वा देवकार्यञ्च विमृशामो विशेषतः॥ ३८

इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये।
देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ॥ ३९

तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम्।
आगच्छन्तं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद् बहिः॥ ४०

दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृताभिवादनौ भृशम्।
प्रणतौ च सुरैः सर्वैः सन्तुष्टौ सम्बभूवतुः॥ ४१

आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्यो गिरिजापतिः।
उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके॥ ४२

कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः।
पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासागमने विभुः॥ ४३

यदि आप हमारी रक्षा नहीं करेंगे तो दैत्योंके भीषण अत्याचाररूपी दावानलसे पीड़ित हमलोग आप सदृश शान्तिदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजापति, देवताओंके पूज्य, आदिपिता तथा कल्याणकारी प्रभुको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ?॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर प्रजापति ब्रह्माको प्रणाम करने लगे। उन सबके मुखपर अत्यन्त उदासी छायी हुई थी। तब उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी उन्हें सुख पहुँचाते हुए मधुर वाणीमें कहने लगे—॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! मैं क्या करूँ? वर पानेके कारण वह दैत्य अभिमानी हो गया है। उसका वध कोई स्त्री ही कर सकती है, पुरुष नहीं। ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या कर सकता हूँ?॥ ३६॥

हे देवताओ! हम सबलोग पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर चलें। [वहाँ विराजमान] सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता भगवान् शंकरको आगे करके वहाँसे वैकुण्ठधामको चलें, जहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं। उनसे मिलकर हमलोग देवताओंके कार्यके विषयमें विशेषरूपसे विचार करेंगे॥ ३७-३८॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर कार्यसिद्धिके लिये देवताओंको साथ लेकर कैलासकी ओर चल पड़े॥ ३९॥

तभी शिवजी अपने ध्यानयोगसे सभी देवताओंसहित ब्रह्माजीको आता हुआ जानकर अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ ४०॥

एक-दूसरेको देखकर उन्होंने परस्पर प्रणाम किया। उन सभी देवताओंने भी भगवान् शंकर तथा ब्रह्माको प्रणाम किया और वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४१॥

शिवजी वहाँ सभी देवताओंको पृथक्-पृथक् आसन देकर सबके यथास्थान बैठ जानेपर स्वयं भी अपने आसनपर बैठ गये। तब ब्रह्माजीसे कुशल-प्रश्न करके भगवान् शिवने देवताओंसे कैलास आनेका कारण पूछा॥ ४२-४३॥

शिव उवाच

किमत्रागमनं ब्रह्मन् कृतं देवैः सवासवैः।
भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल॥ ४४

ब्रह्मोवाच

महिषेण सुरेशान पीडिताः स्वर्निवासिनः।
भ्रमन्ति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः॥ ४५

यज्ञभुग्महिषो जातस्तथान्ये सुरशत्रवः।
पीडिता लोकपालाश्च त्वामद्य शरणं गताः॥ ४६

मया ते भवनं शम्भो प्रापिताः कार्यगौरवात्।
यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर॥ ४७

त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावन।

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रहसन्निव॥ ४८

वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति।

शिव उवाच

भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो॥ ४९

अनर्थदञ्च देवानां किं कर्तव्यमतः परम्।
ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः॥ ५०

का समर्था वरा नारी तं हन्तुं मददर्पितम्।
न मे भार्या न ते भार्या संग्रामं गन्तुमर्हति॥ ५१

गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः।
इन्द्राणी च महाभागा न युद्धकुशलास्ति हि॥ ५२

कान्या हन्तुं समर्थास्ति तं पापं मददर्पितम्।
ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम्॥ ५३

स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम्।
सोऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने॥ ५४

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! इन्द्र आदि देवताओंके साथ आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? हे महाभाग! वह कारण अवश्य बताइये॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरेशान! महिषासुर स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रादि देवताओंको महान् कष्ट दे रहा है और उसके भयसे त्रस्त होकर ये देवगण पर्वतोंकी कन्दराओंमें घूम रहे हैं॥ ४५॥

महिषासुर यज्ञ-भाग स्वयं ग्रहण कर रहा है। अन्य अनेक दैत्य भी देवताओंके शत्रु बन गये हैं। उन सबसे पीड़ित होकर ये सभी लोकपाल आपकी शरणमें आये हुए हैं। हे शम्भो! इसी गुरुतर कार्यके लिये मैंने इन देवताओंको आपके भवनपर पहुँचा दिया है। अतः हे सुरेश्वर! अब इनके कार्यके विषयमें जो उचित जान पड़े, वह आप करें। हे भूतभावन! सम्पूर्ण देवताओंका भार अब आपपर है॥ ४६-४७½ ॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान् शंकर मुसकराते हुए कोमल वाणीमें ब्रह्माजीसे यह वचन कहने लगे—॥ ४८½ ॥

शिवजी बोले—हे विभो! आपने ही तो पूर्वकालमें [महिषासुरको] वरदान देकर देवताओंके लिये ऐसा अनर्थकारी कार्य किया है। अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिये? [आपके वरके प्रभावसे ही] वह इतना बली, पराक्रमी तथा सभी देवताओंके लिये भयदायक हो गया है॥ ४९-५०॥

अभिमानमें चूर रहनेवाले उस दानवको मारनेमें कौन श्रेष्ठ स्त्री समर्थ हो सकती है? न तो मेरी भार्या 'रुद्राणी' और न आपकी भार्या 'ब्रह्माणी' ही संग्राममें जानेयोग्य हैं। महाभाग्यवती ये देवियाँ संग्रामभूमिमें जाकर भी भला युद्ध किस प्रकार करेंगी? इन्द्रकी पत्नी महाभागा इन्द्राणी भी युद्धकलामें कुशल नहीं हैं। तब दूसरी कौन-सी देवांगना उस मदोन्मत्त पापीको मारनेमें समर्थ है?॥ ५१-५२½ ॥

अतः मेरा तो यह विचार है कि हमलोग इसी समय भगवान् विष्णुके पास चलकर और उनकी स्तुति करके देवताओंका कार्य करनेके लिये उन्हींको

मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिन्तनम्।
प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम्॥ ५५

व्यास उवाच

इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः।
उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः॥ ५६

स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति।
मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकराञ्छुभान्॥ ५७

ववुर्वाताः शुभाः शान्ताः सुगन्धाः शुभशंसिनः।
पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः॥ ५८

निर्मलं चाभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा।
गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत्॥ ५९

शीघ्रतापूर्वक प्रेरित करें। परम बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वे विष्णु सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेमें कुशल हैं। उन्हीं वासुदेवसे मिलकर इस कार्यके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये। वे किसी प्रपंच अथवा बुद्धिसे कार्य सिद्ध होनेका उपाय बना देंगे॥ ५३—५५॥

व्यासजी बोले—भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर ब्रह्मा आदि समस्त श्रेष्ठ देवता 'यह ठीक है'—ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वे सब अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो शिवजीके साथ तुरन्त वैकुण्ठकी ओर चल दिये। उस समय कार्यसिद्धिके सूचक अनेक शुभ शकुन देखकर वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। शुभ सूचना देनेवाली शीतल, मन्द तथा सुगन्धित हवाएँ चलने लगीं और पवित्र पक्षी सर्वत्र मार्गमें मंगलमयी बोली बोलने लगे। आकाश निर्मल हो गया और दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। इस प्रकार देवताओंकी यात्रामें मानो सब मंगल ही मंगल हो गया॥ ५६—५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे पराजितदेवतानां शङ्करशरणगमनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

ब्रह्माप्रभृति समस्त देवताओंके शरीरसे तेजःपुंजका निकलना और उस तेजोराशिसे भगवतीका प्राकट्य

व्यास उवाच

तरसा तेऽथ सम्प्राप्य वैकुण्ठं विष्णुवल्लभम्।
ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्यसद्मविराजितम्॥ १
सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम्।
हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम्॥ २

चम्पकाशोककह्लारमन्दारबकुलावृतैः।
मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः॥ ३

कोकिलारावसन्नादैः शिखण्डैर्नृत्यरञ्जितैः।
भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम्॥ ४

सुनन्दनन्दनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः।
संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः॥ ५

व्यासजी बोले—हे राजन्! उन देवताओंने शीघ्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके प्रिय धाम वैकुण्ठमें पहुँचकर वहाँ उन श्रीहरिका विशाल सदन देखा, जो सम्पूर्ण शोभाओंसे युक्त तथा दिव्य महलोंसे सुशोभित था। सुन्दर तथा सुखदायक वह भवन सरोवर, बावली एवं नदियोंसे सुशोभित था, जिनमें हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। उस भवनके चारों ओर सुशोभित हो रहे दिव्य उपवनोंमें चम्पा, अशोक, कह्लार, मन्दार, मौलसिरी, मालती, तिलक, आमड़ा और कुरबक आदि विविध प्रकारके वृक्ष लगे हुए थे। उपवनोंमें चारों ओर कोयलोंकी कूक सुनायी दे रही थी, मोर नृत्य कर रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। नन्द-सुनन्द आदि भक्तिपरायण पार्षद तथा

प्रासादै रत्नखचितैः काञ्चनैश्चित्रमण्डितैः।
अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः॥ ६

गायद्भिर्देवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः।
रञ्जितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्ठैर्मनोहरैः॥ ७

मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृतादरैः।
स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मण्डितं सदनं हरेः॥ ८

ते च विष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाकृती।
वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ॥ ९

गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु सङ्गतान्।
द्वारस्थान् ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान्॥ १०

व्यास उवाच

विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाथ विष्णुसन्निधौ।
सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः॥ ११

विजय उवाच

देवदेव महाराज रमाकान्त सुरारिहन्।
समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठन्ति वै विभो॥ १२

ब्रह्मा रुद्रस्तथेन्द्रश्च वरुणः पावको यमः।
स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः॥ १३

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः।
निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः॥ १४

गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान्।
प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान्॥ १५

प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम्।
तुष्टुवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम्॥ १६

त्याग-वृत्तिसम्पन्न अनन्य भक्त भगवान् विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ रत्नजटित महल बने हुए थे, जिनपर सुनहरे चित्र बने हुए थे; सुन्दर-सुन्दर कक्षोंसे सुशोभित वे महल ऊँचाईमें आकाशको छू रहे थे। वहाँ देवता और गन्धर्व गा रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थीं और वह मनको मुग्ध करनेवाले तथा मधुर कण्ठध्वनिवाले किन्नरोंसे मण्डित था। वैदिक सूक्तोंके द्वारा आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए शान्त स्वभाववाले वेदपाठपरायण मुनियोंसे वह भवन अत्यन्त सुशोभित हो रहा था॥ १—८॥

भगवान् विष्णुके भवनपर पहुँचकर देवताओंने सुन्दर स्वरूपवाले तथा हाथमें स्वर्णकी छड़ी धारण किये हुए जय-विजय नामक द्वारपालोंको देखकर उनसे कहा कि आप दोनोंमेंसे कोई एक जाकर भगवान् विष्णुसे कह दे कि आपके दर्शनकी अभिलाषासे ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता द्वारपर खड़े हैं॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर विजयने तुरन्त भगवान् विष्णुके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके सभी देवताओंके आगमनकी बात उनको बतायी॥ ११॥

विजयने कहा—हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे दैत्योंका दमन करनेवाले लक्ष्मीकान्त! हे विभो! इस समय सभी देवता आये हुए हैं और वे द्वारपर खड़े हैं। आपके दर्शनके इच्छुक ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम आदि देवता वेदवाक्योंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु विजयकी बात सुनकर देवोंसे मिलनेहेतु अत्यधिक उत्साहित होकर शीघ्रतापूर्वक अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ १४॥

वहाँ जाकर भगवान् विष्णुने द्वारपर स्थित उन देवताओंको थकानसे व्याकुल तथा दुःखित देखकर अपनी प्रेमभरी दृष्टिसे उन्हें आनन्दित किया॥ १५॥

उन सभी देवताओंने दैत्योंका संहार करनेवाले तथा वेदोंके द्वारा सुनिश्चित किये गये (तत्त्वस्वरूप) देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और मधुर वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १६॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
दयासिन्धो महाराज त्राहि नः शरणागतान्॥ १७

विष्णुरुवाच

विशन्तु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयन्तु वः।
आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः॥ १८

चिन्तातुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः।
ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम्॥ १९

देवा ऊचुः

महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा।
असाध्येनातिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना॥ २०

यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान्।
अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमन्ति च भयातुराः॥ २१

वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन।
तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम्॥ २२

समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद।
कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन॥ २३

धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽसि नरैः किल।
का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे॥ २४

उमा मा वा शची विद्या का समर्थास्य घातने।
महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि॥ २५

विचिन्त्य बुद्ध्या यत्सर्वं मरणस्यास्य कारणम्।
कुरु कार्यं च देवानां भक्तवत्सल भूधर॥ २६

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव।
युद्धं कृतं पुरास्माभिस्तथापि न मृतो ह्यसौ॥ २७

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले! हे दयासिन्धो! हे महाराज! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ १७॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! आप सभी लोग आसनोंपर बैठ जाइये और फिर अपना कुशल-क्षेम बताइये। आपलोग एक साथ मिलकर यहाँ किसलिये आये हुए हैं? ब्रह्मा तथा शिवसहित आप सभी देवता चिन्तामग्न, दुःखित और उदास क्यों हो गये हैं? आपलोग अपना प्रयोजन शीघ्र बताएँ॥ १८-१९॥

देवता बोले—हे महाराज! पापकर्ममें संलग्न, अजेय, महादुष्ट, वरदान पाकर अभिमानमें चूर तथा पापी महिषासुरसे हमलोग पीड़ित हैं॥ २०॥

ब्राह्मणोंद्वारा देवताओंको दिये गये यज्ञभागोंको वह स्वयं ग्रहण कर लेता है। हम सभी देवता उससे भयभीत होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें भटकते फिरते हैं॥ २१॥

हे मधुसूदन! ब्रह्माजीके वरदानसे वह अजेय बन गया है, अतः इस कार्यको अत्यन्त गुरुतर जानकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दानवोंकी मायाको जाननेवाले तथा दानवोंका वध करनेवाले हे कृष्ण! आप ही देवताओंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं, अतः उसके वधका कोई उपाय कीजिये॥ २२-२३॥

विधाताने उसे वर दे दिया है कि तुम पुरुषमात्रसे सदा अवध्य रहोगे। तब ऐसी कौन स्त्री होगी जो रणमें उस शठको मार सके?॥ २४॥

क्या भगवती पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी अथवा सरस्वती भी इस अत्यन्त दुष्ट तथा वरदानके कारण अत्यन्त अभिमानी महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होंगी? अतएव हे भक्तवत्सल! हे भूधर! आप अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके उसके मरणका जो भी उपाय हो उसके द्वारा हमलोगोंका यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये॥ २५-२६॥

व्यासजी बोले—यह बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए उनसे कहने लगे—पहले भी हमलोगोंने महिषासुरसे युद्ध किया था, किंतु वह नहीं मारा जा सका॥ २७॥

अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसम्पदा।
उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात्॥ २८

हयारिं वरदृप्तञ्च मायाशतविशारदम्।
हन्तुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः॥ २९

प्रार्थयन्तु च तेजोंऽशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा पुनः।
उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंऽशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा॥ ३०

आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः।
तस्यै सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च॥ ३१

सर्वायुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता।
हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम्॥ ३२

व्यास उवाच

इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनात्ततः।
स्वयमेवोद्बभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः॥ ३३

रक्तवर्णं शुभाकारं पद्मरागमणिप्रभम्।
किञ्चिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमण्डितम्॥ ३४

निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना।
विस्मितौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ॥ ३५

शङ्करस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम्।
रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत्॥ ३६

भयङ्करञ्च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम्।
घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम्॥ ३७

ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम्।
नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति॥ ३८

ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम्।
आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम्॥ ३९

अब एक ही उपाय है कि यदि सभी देवताओंके तेजसे कोई श्रेष्ठ रूपवती सुन्दरी उत्पन्न की जाय तो वही समरांगणमें उसे अपने पराक्रमसे मार सकती है। हम सबकी शक्तिके अंशोंसे निर्मित कोई वीर नारी ही सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें निपुण और वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर उस महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होगी॥ २८-२९॥

अब आप सभी देवतागण तेजांशोंसे प्रार्थना करें; साथ ही हमारी स्त्रियाँ भी प्रार्थना करें, जिससे कि उन आविर्भूत तेजांशोंके द्वारा एक तेजोराशि उत्पन्न हो जाय॥ ३०॥

उस समय रुद्र आदि हम सब मुख्य देवतागण त्रिशूल आदि जो भी दिव्य आयुध हैं, वह सब उसे दे देंगे। तत्पश्चात् सभी प्रकारके आयुध धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न वह देवी उस दुराचारी, पापी तथा मदोन्मत्त दानवको मार डालेगी॥ ३१-३२॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहते ही ब्रह्माजीके मुखसे अपने आप एक अत्यन्त असह्य तेजःपुंज निकल पड़ा। वह तेज लाल रंगका था, उसकी आकृति सुन्दर थी, वह पद्मराग मणिके समान प्रभावाला था। उसमें कुछ शीतलता एवं ऊष्णता भी थी और वह अनेक किरणोंसे सुशोभित था। हे महाराज! भगवान् विष्णु और शिवने भी उस निःसृत तेजको देखा। [उसे देखकर] अमित पराक्रमवाले वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये॥ ३३—३५॥

तत्पश्चात् शंकरजीके शरीरसे भी चाँदीके सदृश वर्णवाला, अत्यन्त अद्भुत, तीव्र, देखनेमें असह्य तथा महाप्रचण्ड तेज निकला जो दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला तथा देवताओंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला था। वह भयानक रूपवाला, पर्वतके समान विशाल तथा साक्षात् दूसरे तमोगुण जैसा था॥ ३६-३७॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुके शरीरसे सत्त्वगुण-सम्पन्न, नीलवर्ण और अत्यन्त दीप्तिमान् दूसरी तेजोराशि प्रकट हुई॥ ३८॥

इसके बाद इन्द्रके शरीरसे विचित्र आकारवाला, असह्य, पूर्ण गोलाकार और सर्वगुणात्मक तेज प्रादुर्भूत हुआ॥ ३९॥

कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समन्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च॥ ४०

अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम्।
निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः॥ ४१

तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः।
तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम्॥ ४२

पश्यतां तत्र देवानां तेजःपुञ्जसमुद्भवा।
बभूवातिवरा नारी सुन्दरी विस्मयप्रदा॥ ४३

त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा।
अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी॥ ४४

श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा।
ताम्रपाणितला कान्ता दिव्यभूषणभूषिता॥ ४५

अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमण्डिता।
सम्भूतासुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा॥ ४६

जनमेजय उवाच

कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम।
विस्तरं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम्॥ ४७

एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथक् स्थितम्।
अङ्गानि चैव तस्यास्तु सर्वतेजोमयानि वा॥ ४८

भिन्नभागविभागेन जातान्यङ्गानि यानि तु।
मुखनासाक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च॥ ४९

ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीराङ्गसमुद्भवम्।
बभूव यस्य देवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम्॥ ५०

आयुधाभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा।
तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखाम्बुजनिर्गतम्॥ ५१

कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुणके भी शरीरोंसे सभी ओर महान् तेज निकलने लगा। इसी प्रकार अन्य देवताओंके शरीरोंसे भी अतिशय प्रदीप्त तेज निकला। वह महान् तेजोराशि अत्यन्त दीप्तिमान् थी॥ ४०-४१॥

दूसरे हिमालयपर्वतके सदृश उस महादिव्य तेजोराशिको देखकर विष्णु आदि सभी प्रधान देवता आश्चर्यचकित हो गये॥ ४२॥

उसी क्षण वहाँ सभी देवताओंके देखते-देखते उस तेजःपुंजसे अत्यन्त श्रेष्ठ, सुन्दर तथा सबको विस्मित कर देनेवाली एक स्त्री प्रकट हो गयी॥ ४३॥

सभी देवताओंके शरीरसे आविर्भूत वह नारी त्रिगुणात्मिका, अठारह भुजाओंवाली, मनोहर, त्रिवर्णा तथा विश्वको मोहमें डाल देनेवाली साक्षात् महालक्ष्मी थीं। वे उज्ज्वल मुखवाली, कृष्णवर्णके नेत्रोंवाली, अत्यन्त लाल अधरोष्ठसे सुशोभित, ताम्रवर्णकी हथेलीसे सुन्दर लगनेवाली, कान्तिसे सम्पन्न तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थीं॥ ४४-४५॥

देवताओंके शरीरसे उत्पन्न तेजोराशिसे प्रकट वे अठारह भुजाओंवाली भगवती असुरोंका विनाश करनेके लिये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हो गयीं॥ ४६॥

जनमेजय बोले—हे कृष्णद्वैपायन! हे महाभाग! हे सर्वज्ञ! हे मुनिवर! अब आप उन भगवतीके शरीरकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उन सब देवताओंके शरीरसे निकला हुआ तेज बादमें एकत्र हो गया अथवा पृथक्-पृथक् ही रहा? उनके अंग-प्रत्यंग विभिन्न देवताओंके तेजसे सम्पन्न थे अथवा नहीं? उनके शरीरके विभिन्न अंग—मुख, नासिका, नेत्र आदि अलग-अलग देवताओंके तेजसे निर्मित थे अथवा सब तेज एक साथ मिलकर बने थे? हे व्यासजी! उनके शरीरके अंगोंकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक बताइये। जिस देवताके तेजसे उनका जो-जो अद्भुत अंग बना, वह सब मुझे बताइये॥ ४७—५०॥

जिन-जिन देवताओंने उन भगवतीको जो-जो आयुध तथा आभूषण आदि समर्पित किये, आपके मुखारविन्दसे निकली सारी बात मैं सुनना चाहता हूँ।

न हि तृप्याम्यहं ब्रह्मन् सुधामयरसं पिबन्।
चरितञ्च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखाम्भोजनिःसृतम्॥ ५२

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम्॥ ५३

व्यास उवाच

शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण ब्रवीमि ते।
यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम्॥ ५४

न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः।
याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन॥ ५५

कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः।
वाचारम्भणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत्॥ ५६

सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये।
नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात्॥ ५७

यथा नटो रङ्गगतो नानारूपो भवत्यसौ।
एकरूपस्वभावोऽपि लोकरञ्जनहेतवे॥ ५८

तथैषा देवकार्यार्थमरूपापि स्वलीलया।
करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च॥ ५९

कार्यकर्मानुसारेण नामानि प्रभवन्ति हि।
धात्वर्थगुणयुक्तानि गौणानि सुबहून्यपि॥ ६०

तद्वै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप।
यथा तेजःसमुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम्॥ ६१

शङ्करस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपङ्कजम्।
श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम्॥ ६२

केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाभवन्।
वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः॥ ६३

हे ब्रह्मन्! आपके मुखकमलसे निकले महालक्ष्मीके चरित्ररूपी अमृतमय रसका पान करते हुए मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ ५१-५२॥

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उन राजा जनमेजयका यह वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र श्रीव्यासजी उन्हें प्रसन्न करते हुए यह मधुर वचन कहने लगे॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे महाभाग! हे कुरुश्रेष्ठ! सुनिये, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनके शरीरकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक आपसे कहता हूँ॥ ५४॥

स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र भी भगवतीके यथार्थ रूपको बता पानेमें कभी भी समर्थ नहीं हैं तब देवीका जो रूप है, जैसा है और जिस उद्देश्यसे बना है, उसे मैं कैसे जान सकता हूँ? बस, मेरी वाणी इतना ही कह सकती है कि वे भगवती प्रकट हुईं॥ ५५-५६॥

वे देवी नित्यस्वरूपा हैं और सदा ही सर्वत्र विराजमान रहती हैं। वे एक होती हुई भी गुरुतर कार्य पड़नेपर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये नाना प्रकारके रूप धारण कर लेती हैं॥ ५७॥

जिस प्रकार नाटकका कोई नट एक होता हुआ भी रंगमंचपर जाकर लोगोंके मनोरंजनहेतु अनेक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार रूपरहित तथा निर्गुणा होती हुई भी ये भगवती देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी लीलासे अनेक सगुण रूप धारण कर लिया करती हैं और किये जानेवाले कर्मके अनुसार धात्वर्थ-गुणसंयुक्त उनके अनेक गौण नाम पड़ जाते हैं॥ ५८—६०॥

हे राजन्! देवताओंके तेजसमूहसे उन भगवतीका मनोहर रूप जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे मैं अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ ६१॥

भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उन भगवतीका गौरवर्ण, सुन्दर आकारवाला तथा अत्यन्त विशाल मुखकमल निर्मित हुआ॥ ६२॥

यमराजके तेजसे उनके कोमल, घुँघराले, बहुत लम्बे, मेघके समान कृष्ण वर्णवाले और मनोहर केश बने॥ ६३॥

नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा।
कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम्॥ ६४

वक्रे स्निग्धे कृष्णवर्णे सन्ध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ।
जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते॥ ६५

वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ सम्बभूवतुः।
नातिदीर्घौ नातिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः॥ ६६

तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा।
सञ्जाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा॥ ६७

दन्ताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुन्दाग्रसदृशाः समाः।
सञ्जाताः सुप्रभा राजन् प्राजापत्येन तेजसा॥ ६८

अधरश्चातिरक्तोऽस्याः सञ्जातोऽरुणतेजसा।
उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकेयस्य तेजसा॥ ६९

अष्टादशभुजाकारा बाहवो विष्णुतेजसा।
वसूनां तेजसाङ्गुल्यो रक्तवर्णास्तथाभवन्॥ ७०

सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम्।
ऐन्द्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिवलिसंयुतम्॥ ७१

जङ्घोरू वरुणस्याथ तेजसा सम्बभूवतुः।
नितम्बः स तु सञ्जातो विपुलस्तेजसा भुवः॥ ७२

एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम्।
समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमुद्भवा॥ ७३

तां दृष्ट्वा सुष्ठुसर्वाङ्गीं सुदतीं चारुलोचनाम्।
मुदं प्रापुः सुराः सर्वे महिषेण प्रपीडिताः॥ ७४

विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च।
प्रयच्छन्तु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि साम्प्रतम्॥ ७५

स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः।
समर्पयन्तु सर्वेऽद्य देव्यै नानायुधानि वै॥ ७६

अग्निके तेजसे उन भगवतीके तीनों नेत्र बने। तीन प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित वे नेत्र काले, लाल तथा श्वेत थे॥ ६४॥

उनकी भौंहें दोनों सन्ध्याओंके तेजसे बनीं। वे टेढ़ी, चिकनी, काले रंगकी, अत्यन्त तेजोमय तथा कामदेवके धनुषकी भाँति प्रतीत हो रही थीं॥ ६५॥

उनके दोनों उत्तम कान वायुके तेजसे बने, जो न बहुत बड़े तथा न बहुत छोटे थे। वे कामदेवके झूलेके सदृश प्रतीत हो रहे थे। तिलके फूलके समान आकृतिवाली, अत्यन्त मनोहर और स्निग्ध नाक कुबेरके तेजसे उत्पन्न हुई॥ ६६-६७॥

हे राजन्! उन देवीके नुकीले, चिकने, चमकीले, कुन्दके अग्रभागके सदृश तथा समान दाँत प्रजापतिके तेजसे उत्पन्न हुए॥ ६८॥

उनका रक्तवर्ण अधरोष्ठ अरुणके तेजसे उत्पन्न हुआ तथा ऊपरका अत्यन्त मनोहर उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओष्ठ) कार्तिकेयके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ६९॥

उन देवीकी अठारह भुजाएँ विष्णुके तेजसे प्रकट हुईं तथा उनकी रक्तवर्णकी अँगुलियाँ वसुओंके तेजसे उत्पन्न हुईं। उनके दोनों उत्तम स्तन चन्द्रमाके तेजसे आविर्भूत हुए तथा तीन रेखाओंसे युक्त उनका मध्यभाग इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ। उनकी जाँघें तथा ऊरु-प्रदेश वरुणके तेजसे उत्पन्न हुए तथा उनका विशाल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ७०—७२॥

हे राजन्! इस प्रकार उस तेजोराशिसे सुन्दर आकारवाली, दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा मधुर स्वरवाली भगवती नारी-रूपमें प्रकट हुईं॥ ७३॥

मनोहर अंग-प्रत्यंगवाली, सुन्दर दाँतोंवाली तथा भव्य नेत्रोंवाली उन देवीको देखकर महिषासुरसे पीड़ित समस्त देवता अत्यन्त आनन्दित हो उठे॥ ७४॥

उसी समय भगवान् विष्णुने सभी देवताओंसे कहा—हे देवताओ! अब आपलोग अपने-अपने सभी शुभ भूषण एवं आयुध इन देवीको प्रदान करें। अपने-अपने आयुधोंसे नानाविध तेजस्वी शस्त्रास्त्र उत्पन्न करके सभी लोग शीघ्र ही देवीको अर्पित कर दें॥ ७५-७६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्याः स्वरूपोद्भववर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

~~~
~~~

अथ नवमोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीको आयुध और आभूषण समर्पित करना तथा उनकी स्तुति करना, देवीका प्रचण्ड अट्टहास करना, जिसे सुनकर महिषासुरका उद्विग्न होकर अपने प्रधान अमात्यको देवीके पास भेजना

व्यास उवाच

देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा।
ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च॥ १

क्षीरोदश्चाम्बरे दिव्ये रक्ते सूक्ष्मे तथाजरे।
निर्मलञ्च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमण्डितम्॥ २

ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कुण्डले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै॥ ३

केयूरान्कङ्कणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान्।
ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः॥ ४

नूपुरौ सुस्वरौ कान्तौ निर्मलौ रत्नभूषितौ।
ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः॥ ५

तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः।
अङ्गुलीयकरत्नानि तेजोवन्ति च सर्वशः॥ ६

अम्लानपङ्कजां मालां गन्धाढ्यां भ्रमरानुगाम्।
तथैव वैजयन्तीञ्च वरुणः सम्प्रयच्छत॥ ७

हिमवानथ सन्तुष्टो रत्नानि विविधानि च।
ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम्॥ ८

भूषणैर्भूषिता दिव्यैः सा रराज वरा शुभा।
सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता॥ ९

विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथाङ्गकम्।
सहस्रारं सुदीप्तञ्च देवारिशिरसां हरम्॥ १०

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। वे तुरंत महालक्ष्मीको वस्त्र, आभूषण और अपने-अपने आयुध प्रदान करने लगे॥ १॥

क्षीरसागरने देवीको दिव्य, रक्तवर्णवाले, महीन तथा कभी भी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र; निर्मल तथा मनोहर हार; करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दिव्य चूडामणि; दो सुन्दर कुण्डल तथा कड़े प्रसन्नतापूर्वक दिये। विश्वकर्माने भुजाओंपर धारण करनेके लिये बाजूबन्द और अनेक प्रकारके रत्नजटित दिव्य कंकण प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रदान किये। साथ ही त्वष्टाने मधुर ध्वनिवाले, चमकीले, स्वच्छ, रत्नजटित और सूर्यके समान प्रकाशमान दो नूपुर पैरोंमें पहननेके लिये उन्हें प्रदान किये॥ २—५॥

महासमुद्रने उन्हें गलेमें धारण करनेके लिये मनोहर कण्ठहार और रत्नोंसे निर्मित तेजोमय अँगूठियाँ प्रदान कीं॥ ६॥

वरुणदेवने कभी न मुरझानेवाले कमलोंकी माला, जो सुगन्धसे परिपूर्ण थी तथा जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे और वैजयन्ती नामक माला भगवतीको प्रदान की॥ ७॥

हिमवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णके समान चमकीले वर्णवाला एक मनोहर सिंह वाहनके रूपमें प्रदान किया॥ ८॥

सभी लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर रूपवाली वे कल्याणमयी श्रेष्ठ भगवती दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर सिंहपर आरूढ़ होकर अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं॥ ९॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे उत्पन्न करके सहस्र अरोंवाला, तेजसम्पन्न और दैत्योंका सिर काट लेनेकी सामर्थ्यवाला एक चक्र उन्हें प्रदान किया॥ १०॥

स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शङ्करः शूलमुत्तमम्।
ददौ देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम्॥ ११

वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शङ्खं समुज्ज्वलम्।
घोषवन्तं स्वशङ्खात्तु समुत्पाद्य सुमङ्गलम्॥ १२

हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम्।
प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनीम्॥ १३

इषुधिं बाणपूर्णञ्च चापं चाद्भुतदर्शनम्।
मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम्॥ १४

स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविन्द्रोऽतिदारुणम्।
घण्टामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुन्दराम्॥ १५

ददौ दण्डं यमः कामं कालदण्डसमुद्भवम्।
येनान्तं सर्वभूतानामकरोत्काल आगते॥ १६

ब्रह्मा कमण्डलुं दिव्यं गङ्गावारिप्रपूरितम्।
ददावस्यै मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च॥ १७

कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप।
परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ॥ १८

धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम्।
पङ्कजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम्॥ १९

गदां कौमोदकीं त्वष्टा घण्टाशतनिनादिनीम्।
अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम्॥ २०

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यञ्च दंशनम्।
ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः॥ २१

शंकरजीने अपने त्रिशूलसे उत्पन्न करके भगवतीको एक ऐसा उत्तम त्रिशूल अर्पण किया, जो दानवोंको काट डालनेकी शक्तिसे सम्पन्न तथा देवताओंके भयका नाश करनेवाला था॥ ११॥

वरुणदेवने अपने शंखसे उत्पन्न करके प्रसन्नचित्त होकर देवीजीको एक ऐसा शंख प्रदान किया; जो मंगलमय, अत्यन्त उज्ज्वल तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला था॥ १२॥

अग्निदेवने प्रसन्नचित्त होकर सैकड़ों शत्रुओंका संहार करनेवाली, मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाली तथा दैत्योंका विनाश करनेवाली एक शक्ति उन्हें प्रदान की॥ १३॥

पवनदेवने उन भगवती महालक्ष्मीको बाणोंसे भरा हुआ एक तरकस तथा देखनेमें अत्यन्त अद्भुत, कठिनाईसे खींचा जा सकनेवाला और कर्कश टंकार करनेवाला धनुष प्रदान किया॥ १४॥

देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे उत्पन्न करके एक अत्यन्त भयंकर वज्र तथा ऐरावत हाथीसे उतारकर एक परम सुन्दर तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला घण्टा तुरंत भगवतीको अर्पण किया॥ १५॥

यमराजने अपने कालदण्डसे आविर्भूत एक ऐसा दण्ड भगवतीको प्रदान किया, जिससे वे समय आनेपर सभी प्राणियोंका अन्त करते थे॥ १६॥

ब्रह्माजीने गंगाजलसे परिपूर्ण दिव्य कमण्डलु और वरुणदेवने अपना पाश उन्हें प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया॥ १७॥

हे राजन्! कालने महालक्ष्मीको खड्ग तथा ढाल दिये और विश्वकर्माने उन्हें तीक्ष्ण परशु अर्पण किया॥ १८॥

कुबेरने भगवतीको एक सुवर्णमय पानपात्र तथा वरुणने उन्हें दिव्य तथा मनोहर कमल-पुष्प प्रदान किया॥ १९॥

प्रसन्न मनवाले त्वष्टाने सैकड़ों घण्टोंके समान ध्वनि करनेवाली और दानवोंका विनाश कर डालनेवाली कौमोदकी नामक गदा उन्हें प्रदान की। साथ ही उन त्वष्टाने जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको अनेक प्रकारके अस्त्र तथा अभेद्य कवच प्रदान किये और सूर्यदेवने उन्हें अपनी किरणें प्रदान कीं॥ २०-२१॥

सायुधां भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः।
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम्॥ २२

देवा ऊचुः

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः।
भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः॥ २३

कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः।
सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः॥ २४

पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीञ्च या।
अन्तःस्थिता यमयति वन्दे तामीश्वरीं पराम्॥ २५

मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम्।
अन्तःस्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नुमः शिवाम्॥ २६

कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापितान्।
जहि पापं हयारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम्॥ २७

खलं मायाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम्।
दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम्॥ २८

त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले।
पीडितान्दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तु ते॥ २९

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा।
तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः॥ ३०

देव्युवाच

भयं त्यजन्तु गीर्वाणा महिषान्मन्दचेतसः।
हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम्॥ ३१

इस प्रकार सभी आयुधों तथा आभूषणोंसे युक्त उन भगवतीको देखकर देवतागण अत्यन्त विस्मित हुए और त्रैलोक्यमोहिनी उन कल्याणकारिणी देवीकी स्तुति करने लगे॥ २२॥

देवता बोले—शिवाको नमस्कार है। कल्याणी, शान्ति और पुष्टि देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवतीको नमस्कार है। देवी रुद्राणीको निरन्तर नमस्कार है॥ २३॥

आप कालरात्रि, अम्बा तथा इन्द्राणीको बार-बार नमस्कार है। आप सिद्धि, बुद्धि, वृद्धि तथा वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

पृथ्वीके भीतर स्थित रहकर जो पृथ्वीको नियन्त्रित करती हैं, किंतु पृथ्वी जिन्हें नहीं जान पातीं, उन परा परमेश्वरीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २५॥

जो मायाके अन्दर स्थित रहनेपर भी मायाके द्वारा नहीं जानी जा सकीं तथा जो मायाके अन्दर विराजमान रहकर उसे प्रेरणा प्रदान करती हैं, उन जन्मरहित तथा प्रेरणा प्रदान करनेवाली भगवती शिवाको हम नमस्कार करते हैं॥ २६॥

हे माता! आप हमारा कल्याण करें और शत्रुओंसे संत्रस्त हम देवताओंकी रक्षा करें। आप अपने तेजसे इस मोहग्रस्त पापी महिषासुरका वध कर डालें। यह महिषासुर दुष्ट, घोर मायावी, केवल स्त्रीके द्वारा मारा जा सकनेवाला, वरदान प्राप्त करनेसे अभिमानी, समस्त देवताओंको दुःख देनेवाला तथा अनेक रूप धारण करनेवाला महादुष्ट है॥ २७-२८॥

हे भक्तवत्सले! एकमात्र आप ही सभी देवताओंकी शरण हैं; दानव महिषासुरसे पीड़ित हम देवताओंकी आप रक्षा कीजिये। हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सब देवताओंके स्तुति करनेपर समस्त सुख प्रदान करनेवाली महादेवी मुसकराकर उन देवताओंसे यह मंगलमय वचन कहने लगीं॥ ३०॥

देवी बोलीं—हे देवतागण! आपलोग मन्दबुद्धि महिषासुरका भय त्याग दें। मैं वर पानेके कारण अभिमानमें चूर तथा मोहग्रस्त उस महिषासुरको आज ही रणमें मार डालूँगी॥ ३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम्।
चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत्॥ ३२

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेन्द्राश्चान्ये सुरास्तथा।
कम्पयुक्ता भयत्रस्ता वर्तन्ते महिषात्किल॥ ३३

अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः।
कालः कर्तास्ति दुःखानां सुखानां प्रभुरीश्वरः॥ ३४

सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा।
मुह्यन्ति क्लेशसन्तप्ता महिषेण प्रपीडिताः॥ ३५

इति कृत्वा स्मितं देवी साट्टहासं चकार ह।
उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम्॥ ३६

चकम्पे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम्।
चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान्॥ ३७

मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः।
भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तत्स्वनं महत्॥ ३८

जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः।
महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः॥ ३९

किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशङ्कितः।
गच्छन्तु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम्॥ ४०

कृतः केनायमत्युग्रः शब्दः कर्णव्यथाकरः।
देवो वा दानवो वापि यो भवेत्स्वनकारकः॥ ४१

गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयन्त्विह।
हनिष्यामि दुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम्॥ ४२

क्षीणायुष्यं मन्दमतिं नयामि यमसादनम्।
पराजिताः सुराः कामं न गर्जन्ति भयातुराः॥ ४३

नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम्।
त्वरिता मामुपायान्तु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम्॥ ४४

व्यासजी बोले—देवताओंसे ऐसा कहकर वे भगवती अत्यन्त उच्च स्वरमें हँस पड़ी। [वे बोलीं—] इस संसारमें यह बड़ी विचित्र बात है कि यह सारा जगत् ही भ्रम तथा मोहसे ग्रसित है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि तथा अन्य देवता भी महिषासुरसे भयभीत होकर काँपने लगते हैं॥ ३२-३३॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! दैवबल बड़ा ही भयानक और दुर्जय है। काल ही सुख और दुःखका कर्ता है। यही सबका प्रभु तथा ईश्वर है। सृष्टि, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ रहते हुए भी वे ब्रह्मा आदि मोह-ग्रस्त हो जाते हैं, कष्ट भोगते हैं और महिषासुरके द्वारा सताये जाते हैं॥ ३४-३५॥

मुसकराकर ऐसा कहनेके पश्चात् देवी अट्टहास करने लगीं। उस अट्टहासका महाभयानक गर्जन दानवोंको भयभीत कर देनेवाला था॥ ३६॥

उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी काँपने लगी, सभी पर्वत चलायमान हो उठे और अगाध महासमुद्रमें विक्षोभ उत्पन्न होने लगा। उस शब्दसे सुमेरुपर्वत हिलने लगा और सभी दिशाएँ गूँज उठीं। उस तीव्र ध्वनिको सुनकर सभी दानव भयभीत हो गये। सभी देवता परम प्रसन्न होकर 'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो'—ऐसा उन देवीसे कहने लगे॥ ३७-३८$\frac{१}{२}$॥

अभिमानमें चूर महिषासुर भी वह ध्वनि सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उस ध्वनिसे सशंकित महिषासुरने दैत्योंसे पूछा—यह कैसी ध्वनि है? इस ध्वनिके उद्गम-स्थलको जाननेके लिये दूतगण तत्काल यहाँसे जायँ। कानोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह अति भीषण शब्द किसने किया है? देवता या दानव जो कोई भी इस ध्वनिको उत्पन्न करनेवाला हो, उस दुष्टात्माको पकड़कर मेरे पास ले आयें। ऐसा गर्जन करनेवाले उस अभिमानके मदमें उन्मत्त दुराचारीको मैं मार डालूँगा। मैं क्षीण-आयु तथा मन्दबुद्धिवाले उस दुष्टको अभी यमपुरी पहुँचा दूँगा। देवता मुझसे पराजित होकर भयभीत हो गये हैं, अतः वे ऐसा गर्जन कर ही नहीं सकते। दानव भी ऐसा नहीं कर सकते; क्योंकि वे सब तो मेरे अधीन हैं, तो फिर यह

अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥ ४५

अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां वरायुधधरां शुभाम्॥ ४६

दधतीं चषकं हस्ते पिबन्तीं च मुहुर्मधु।
संवीक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशङ्किताः॥ ४७

सकाशे महिषस्याशु तमूचुः स्वनकारणम्।

दूता ऊचुः

देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदङ्गना॥ ४८

सर्वाङ्गभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता।
न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा॥ ४९

सिंहारूढायुधधरा चाष्टादशकरा वरा।
सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता॥ ५०

सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका।
अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवन्ति मुदान्विताः॥ ५१

जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो।
न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः॥ ५२

किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुन्दरी।
द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजःपरिधर्षिताः॥ ५३

शृङ्गारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता।
दृष्ट्वैवैवंविधां नारीमसम्भाष्य समागताः॥ ५४
वयं त्वदाज्ञया राजन् किं कर्तव्यमतःपरम्।

मूर्खतापूर्ण चेष्टा किसकी हो सकती है? अब दूतगण इस शब्दके कारणका पता लगाकर मेरे पास शीघ्र आयें। तत्पश्चात् मैं स्वयं वहाँ जाकर ऐसा व्यर्थ कर्म करनेवाले उस पापीका वध कर दूँगा॥ ३९—४४½॥

व्यासजी बोले—महिषासुरके ऐसा कहनेपर वे दूत [शब्दके कारणका पता लगाते-लगाते] समस्त सुन्दर अंगोंवाली, अठारह भुजाओंवाली, दिव्य विग्रहमयी, सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, उत्तम आयुध धारण करनेवाली और हाथमें मधुपात्र लेकर बार-बार उसका पान करती हुई भगवतीके पास पहुँच गये। उन्हें देखकर वे भयभीत हो गये और व्याकुल तथा सशंकित होकर वहाँसे भाग चले। महिषासुरके पास आकर वे उससे ध्वनिका कारण बताने लगे॥ ४५—४७½॥

दूत बोले—हे दैत्येन्द्र! वह कोई प्रौढा स्त्री और देवीकी भाँति दिखायी देती है। उस स्त्रीके सभी अंगोंमें आभूषण विद्यमान हैं तथा वह सभी प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित है। वह स्त्री न तो मानवी है और न तो आसुरी है। दिव्यविग्रहवाली वह स्त्री बड़ी मनोहर है। अठारह भुजाओंवाली वह श्रेष्ठ नारी नानाविध आयुध धारण करके सिंहपर विराजमान है। वही स्त्री गर्जन कर रही है। वह मदोन्मत्त दिखायी दे रही है। वह निरन्तर मद्यपान कर रही है। हमें ऐसा जान पड़ता है कि वह अभी विवाहिता नहीं है॥ ४८—५०½॥

देवतागण आकाशमें स्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उसकी इस प्रकार स्तुति कर रहे हैं—'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो' और 'शत्रुओंका वध करो'। हे प्रभो! मैं यह नहीं जानता कि वह सुन्दरी कौन है, किसकी पत्नी है, वह सुन्दरी यहाँ किसलिये आयी हुई है और वह क्या करना चाहती है? उस स्त्रीके तेजसे चकाचौंध हमलोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हो सके। वह स्त्री शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत—इन सभी रसोंसे परिपूर्ण थी। इस प्रकारकी अद्भुत स्वरूपवाली नारीको देखकर हमलोग बिना कुछ कहे ही आपके आज्ञानुसार लौट आये। हे राजन्! अब इसके बाद क्या करना है?॥ ५१—५४½॥

महिष उवाच

गच्छ वीर मयादिष्टो मन्त्रिश्रेष्ठ बलान्वितः॥ ५५

सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम्।
नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह॥ ५६

अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम्।
करोमि पट्टमहिषीं तां मरालभ्रुवं मुदा॥ ५७

प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना।
रसभङ्गो यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम्॥ ५८

श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्या रूपस्य सम्पदा।

व्यास उवाच

महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं मन्त्रिसत्तमः॥ ५९

जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः।
गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम्॥ ६०

विनयावनतः श्लक्ष्णं मन्त्री मधुरया गिरा।

प्रधान उवाच

कासि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम्॥ ६१

पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः।
स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैः किल॥ ६२

ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने।
दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा॥ ६३

श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम्।
द्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः॥ ६४

मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति।
यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहे वयम्॥ ६५

तर्ह्येहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः।
नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम्॥ ६६

महिषासुर बोला—हे वीर! हे मन्त्रिश्रेष्ठ! तुम मेरे आदेशसे सेना साथमें लेकर जाओ और साम आदि उपायोंसे उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको यहाँ ले आओ। यदि वह स्त्री साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे भी यहाँ न आये तो उस सुन्दरीको बिना मारे ही पकड़कर मेरे पास ले आओ, यदि वह मृगनयनी प्रीतिपूर्वक आयेगी तो मैं हंसके समान भौंहोंवाली उस स्त्रीको प्रसन्नतापूर्वक अपनी पटरानी बनाऊँगा। मेरी इच्छा समझकर जिस प्रकार रसभंग न हो, वैसा करना। मैं उसकी रूपराशिकी बात सुनकर मोहित हो गया हूँ॥ ५५—५८½ ॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह कोमल वाणी सुनकर वह श्रेष्ठ मन्त्री हाथी, घोड़े और रथ साथ लेकर तुरंत चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर कुछ दूर खड़े होकर वह सचिव कोमल तथा मधुर वाणीमें विनम्रतापूर्वक उस दृढ़ निश्चयवाली नारीसे कहने लगा॥ ५९-६०½ ॥

प्रधान बोला—हे मधुरभाषिणि! तुम कौन हो और यहाँ क्यों आयी हो? हे महाभागे! मेरे मुखसे ऐसा कहलाकर मेरे स्वामीने तुमसे यह बात पूछी है॥ ६१½ ॥

उन्होंने समस्त देवताओंको जीत लिया है और वे मनुष्योंसे अवध्य हैं। हे चारुलोचने! ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण वे बहुत गर्वयुक्त रहते हैं। वे दैत्यराज महिष बड़े बलवान् हैं और अपनी इच्छाके अनुसार वे सदा विविध रूप धारण कर सकते हैं॥ ६२-६३ ॥

सुन्दर वेष तथा मनोहर विग्रहवाली आप यहाँ आयी हुई हैं—ऐसा सुनकर मेरे प्रभु महाराज महिषासुर आपको देखना चाहते हैं। वे मनुष्यका रूप धारण करके आपके पास आयेंगे। हे सुन्दर अंगोंवाली! आपकी जो इच्छा होगी, हम उसीको मान लेंगे॥ ६४-६५ ॥

हे बालमृगके समान नेत्रोंवाली! अब आप उन बुद्धिमान् राजा महिषके पास चलें और नहीं तो मैं स्वयं जाकर आपके प्रेममें लीन राजा महिषको यहाँ ले आऊँ॥ ६६ ॥

तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम्।
वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव॥ ६७

करभोरु वदाशु त्वं संविधेयं मया तथा॥ ६८

हे देवेशि! आपके मनमें जैसी इच्छा होगी, मैं वही करूँगा। आपके रूपके विषयमें सुनकर वे पूर्णरूपसे आपके वशवर्ती हो गये हैं। हे करभोरु! आप शीघ्र बताएँ; मैं उसीके अनुसार कार्य करूँगा॥ ६७-६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे महिषमन्त्रिणा देवीवार्तावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

देवीद्वारा महिषासुरके अमात्यको अपना उद्देश्य बताना तथा अमात्यका वापस लौटकर देवीद्वारा कही गयी बातें महिषासुरको बताना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा।
तमुवाच महाराज मेघगम्भीरया गिरा॥ १

व्यासजी बोले—हे महाराज! उसकी यह बात सुनकर नारीश्रेष्ठ भगवती जोरसे हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगीं॥ १॥

देव्युवाच

मन्त्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल।
महालक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम्॥ २

देवी बोलीं—हे मन्त्रिवर! मुझे देवमाताके रूपमें जानो। मैं सभी दैत्योंका नाश करनेवाली तथा महालक्ष्मी नामसे विख्यात हूँ॥ २॥

प्रार्थिताहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च।
पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभागबहिष्कृतैः॥ ३

तस्मादिहागतास्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा।
एकाकिनी न सैन्येन संयुता मन्त्रिसत्तम॥ ४

दानवेन्द्र महिषासुरसे पीड़ित और यज्ञभागसे बहिष्कृत सभी देवताओंने उसके संहारके लिये मुझसे प्रार्थना की है। हे मन्त्रिश्रेष्ठ! इसलिये उसके वधके लिये पूर्णरूपसे तत्पर होकर मैं बिना किसी सेनाके अकेली ही आज यहाँ आयी हूँ॥ ३-४॥

यत्त्वयाहं सामपूर्वं कृत्वा स्वागतमादरात्।
उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टास्मि तेऽनघ॥ ५

नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल।
कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु॥ ६

हे अनघ! तुमने जो शान्तिपूर्वक आदरके साथ मेरा स्वागत करके मधुर वाणीमें मुझसे बात की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ; अन्यथा अपनी कालाग्निके समान दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर देती। मधुरतासे युक्त वचन भला किसके लिये प्रीतिकारक नहीं होता!॥ ५-६॥

गच्छ तं महिषं पापं वद मद्वचनादिदम्।
गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ७

नोचेत्कृतागसं दुष्टं हनिष्यामि रणाङ्गणे।
मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वं गन्तासि यमसादनम्॥ ८

अब तुम जाओ और मेरे शब्दोंमें उस पापी महिषासुरसे कह दो—यदि तुम्हें जीवित रहनेकी अभिलाषा हो तो अभी पाताललोकमें चले जाओ, नहीं तो मैं तुझ पापी तथा दुष्टको रणभूमिमें मार डालूँगी। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले होकर तुम यमपुरी चले जाओगे॥ ७-८॥

दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम्।
हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यन्ति सत्वरम्॥ ९

हे मूर्ख! इसे मेरी दयालुता समझकर तुम यहाँसे शीघ्र चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे मार दिये जानेपर देवतागण निश्चय ही तत्काल स्वर्गका राज्य पा

तस्माद् गच्छस्व त्यक्त्वैको मेदिनीञ्च ससागराम्।
पातालं तरसा मन्द यावद् बाणा न मेऽपतन्॥ १०

युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर।
वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम्॥ ११

युगे युगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल।
असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणाङ्गणे॥ १२

साफल्यं कुरु शस्त्राणां धारणे तु श्रमोऽन्यथा।
तद्युध्यस्व मया सार्धं समरे स्मरपीडितः॥ १३

मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन् यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः।
स्त्रीवध्यत्वे त्वया मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः॥ १४

कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहं त्वामुपागता।
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हन्तुं कृतागसम्॥ १५

यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम्।
हित्वा भूसुरसद्माद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ १६

व्यास उवाच

इत्युक्तः स ततो देव्या मन्त्रिश्रेष्ठो बलान्वितः।
प्रत्युवाच निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम्॥ १७

देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता।
क्वासौ क्व त्वं कथं युद्धमसम्भाव्यमिदं किल॥ १८

एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः।
महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि सङ्गतम्॥ १९

सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम्।
पदातिगणसंविद्धं नानायुधविराजितम्॥ २०

जायँगे। इसलिये हे दुष्ट! जबतक मेरे बाण तुझपर नहीं गिरते, उसके पूर्व ही तुम शीघ्रतापूर्वक समुद्रसहित पृथ्वीका त्याग करके पाताललोक चले जाओ॥ ९-१०॥

हे असुर! यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी इच्छा हो तो अपने सभी महाबली वीरोंको साथ लेकर शीघ्र आ जाओ। मैं सबको यमपुरी पहुँचा दूँगी॥ ११॥

हे महामूढ! मैंने युग-युगमें तुम्हारे-जैसे असंख्य दैत्योंका संहार किया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें भी रणमें मार डालूँगी। [मेरा सामना करके] तुम मेरे शस्त्र धारण करनेके परिश्रमको सफल करो, नहीं तो यह श्रम व्यर्थ हो जायगा। कामपीड़ित तुम रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करो॥ १२-१३॥

हे दुरात्मन्! तुम इस बातपर अभिमान मत करो कि मुझे ब्रह्माका वर प्राप्त हो गया है। हे मूढ़! केवल स्त्रीके द्वारा वध्य होनेके कारण तुमने श्रेष्ठ देवताओंको बहुत पीड़ित किया है॥ १४॥

अतः ब्रह्माजीका वचन सत्य करना है, इसीलिये स्त्रीका अनुपम रूप धारण करके मैं तुझ पापीका संहार करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। हे मूढ! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो इसी समय देवलोक छोड़कर तुम सर्पोंसे भरे पाताललोकको अथवा जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ चले जाओ॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—देवीने उससे ऐसा कहा, तब उनकी बात सुनकर वह पराक्रमशाली मन्त्रिश्रेष्ठ उनसे सारगर्भित वचन कहने लगा—॥ १७॥

हे देवि! आप अभिमानमें चूर होकर एक साधारण स्त्रीके समान बात कर रही हैं। कहाँ वे महिषासुर और कहाँ आप, यह युद्ध तो असम्भव ही दीखता है॥ १८॥

आप यहाँ अकेली हैं और उसपर भी सद्यः युवावस्थाको प्राप्त सुकुमार बाला हैं। [इसके विपरीत] वे महिषासुर विशाल शरीरवाले हैं; ऐसी स्थितिमें उनकी और आपकी तुलना कल्पनातीत है॥ १९॥

उनके पास हाथी-घोड़े और रथसे परिपूर्ण, पैदल सैनिकोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके आयुधोंसे सज्जित अनेक प्रकारकी सेना है॥ २०॥

कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने।
मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे॥ २१

यदि त्वां परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम्।
शृङ्गारे तद्विरुद्धं हि रसभङ्गाद् बिभेम्यहम्॥ २२

राजास्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान्।
साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः॥ २३

नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम्।
मिथ्याभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम्॥ २४

स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम्।
तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया॥ २५

राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल।
कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम्॥ २६

पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि।
पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते॥ २७

त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम्।
सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात्॥ २८

देव्युवाच

शृणु साचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम्।
शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिन्त्य च॥ २९

महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल।
पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव साम्प्रतम्॥ ३०

मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत्।
उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना किल॥ ३१

मालतीके पुष्पोंको कुचल डालनेमें गजराजको भला कौन-सा परिश्रम करना पड़ता है। हे सुजघने! उसी प्रकार युद्धमें आपको मारनेमें महिषासुरको कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा॥ २१॥

यदि मैं आपको थोड़ा भी कठोर वचन कह दूँ तो वह शृंगाररसके विरुद्ध होगा; और मैं रसभंगसे डरता हूँ॥ २२॥

हमारे राजा महिषासुर देवताओंके शत्रु हैं, किंतु वे आपके प्रति अनुरागयुक्त हैं। [मेरे राजाने कहा है कि] मैं आपसे साम तथा दाननीतियोंसे पूर्ण वचन ही बोलूँ, अन्यथा मैं झूठ बोलनेवाली, मिथ्या अभिमानमें भरकर चतुरता दिखानेवाली और रूप तथा यौवनके अभिमानमें चूर रहनेवाली आपको इसी समय अपने बाणसे मार डालता॥ २३-२४॥

आपके अलौकिक रूपके विषयमें सुनकर मेरे स्वामी मोहित हो गये हैं। उनकी प्रसन्नताके लिये ही मुझे प्रिय वचन बोलना पड़ रहा है॥ २५॥

उनका सम्पूर्ण राज्य तथा धन आपका है; क्योंकि वे महाराज महिषासुर निश्चय ही आपके दास हो चुके हैं। अतः हे विशालनयने! इस मृत्युदायक रोषका त्याग करके उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित कीजिये॥ २६॥

हे भामिनि! मैं भक्तिभावसे आपके चरणोंपर गिर रहा हूँ। हे पवित्र मुसकानवाली! आप शीघ्र ही महाराज महिषकी पटरानी बन जाइये॥ २७॥

महिषासुरको स्वीकार कर लेनेसे आपको तीनों लोकोंका सम्पूर्ण उत्तम वैभव तथा समस्त सांसारिक सुख प्राप्त हो जायगा॥ २८॥

देवी बोलीं—हे सचिव! सुनो, मैं बुद्धिचातुर्यसे सम्यक् विचार करके तथा शास्त्रप्रतिपादित मार्गसे निर्णय करके सारभूत बातें बताऊँगी॥ २९॥

तुम्हारी बातोंसे मैंने अपनी बुद्धिद्वारा जान लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमन्त्री हो और तुम भी [उसीकी तरह] पशुबुद्धिस्वभाववाले हो॥ ३०॥

जिस राजाके तुम्हारे-जैसे मन्त्री हों, वह बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? ब्रह्माने निश्चय ही तुम दोनोंका यह समान योग रचा है॥ ३१॥

यदुक्तं स्त्रीस्वभावासि तद्विचारय मूढ किम्।
पुमान्नाहं तत्स्वभावाभवं स्त्रीवेषधारिणी॥ ३२

याचितं मरणं पूर्वं स्त्रिया त्वत्प्रभुणा यथा।
तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः॥ ३३

कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम्।
प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना॥ ३४

तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कर्तुमुपागता।
कथं बिभेमि त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः॥ ३५

विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत्।
विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा॥ ३६

किं सैन्यैरायुधैः किं वा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः।
मरणं साम्प्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम्॥ ३७

यदायं देहसम्बन्धो जीवस्य कालयोगतः।
तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः॥ ३८

यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम्।
तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः॥ ३९

ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते।
तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते॥ ४०

ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः।
मरिष्यामो न मन्यन्ते ते मूढा मन्दचेतसः॥ ४१

हे मूर्ख! तुमने जो यह कहा कि 'तुम स्त्रीस्वभाववाली हो', तो अब तुम इस बातपर जरा विचार करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ? वस्तुतः उसीके स्वभाववाली मैं इस समय स्त्रीवेषधारिणी हो गयी हूँ॥ ३२॥

तुम्हारे स्वामी महिषासुरने पूर्वकालमें जो स्त्रीसे मारे जानेका वरदान माँगा था, उसीसे मैं समझती हूँ कि वह महामूर्ख है। वह वीररसका थोड़ा भी जानकार नहीं है॥ ३३॥

स्त्रीके द्वारा मारा जाना पराक्रमहीनके लिये भले ही सुखकर हो, किंतु वीरके लिये यह कष्टप्रद होता है। महिषकी अपनी जो बुद्धि हो सकती है, उसीके अनुसार तुम्हारे स्वामीने ऐसा वरदान माँगा। इसीलिये मैं स्त्री-रूप धारण करके अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। मैं तुम्हारे धर्मशास्त्र-विरोधी वचनोंसे क्यों डरूँ?॥ ३४-३५॥

जब दैव प्रतिकूल होता है, तब एक तिनका भी वज्र-तुल्य हो जाता है और जब वह दैव अनुकूल होता है, तब वज्र भी तूल (रूई)-के समान कोमल हो जाता है॥ ३६॥

जिसकी मृत्यु सन्निकट हो उसके लिये सेना, अस्त्र-शस्त्र तथा किलेकी सुरक्षा, सैन्यबल आदि प्रपंचोंसे क्या लाभ!॥ ३७॥

जब कालयोगसे देहके साथ जीवका सम्बन्ध स्थापित होता है, उसी समय विधाताके द्वारा सुख, दुःख तथा मृत्यु—सब कुछ निर्धारित कर दिया जाता है। दैवने जिस प्राणीकी मृत्यु जिस प्रकारसे निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकारसे होगी, इसके विपरीत नहीं; यह पूर्ण सत्य है॥ ३८-३९॥

जिस प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवताओंके भी जन्म और मृत्यु सुनिश्चित किये गये रहते हैं, समय आनेपर उसी प्रकारसे उनका भी जन्म-मरण होता है तब अन्य लोगोंके विषयमें विचार ही क्या! उन ब्रह्मा आदि मरणधर्माके वरदानसे गर्वित होकर जो लोग यह समझते हैं कि 'हम नहीं मरेंगे' वे मूर्ख तथा अल्पबुद्धिवाले हैं॥ ४०-४१॥

तस्माद् गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम्।
यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल॥ ४२

मघवा स्वर्गमाप्नोतु देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥ ४३

अन्यथा चेन्मतिर्मन्द महिषस्य दुरात्मनः।
तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः॥ ४४

मन्यसे सङ्गरे भग्ना देवा विष्णुपुरोगमाः।
दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः॥ ४५

व्यास उवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा चिन्तयामास दानवः।
किं कर्तव्यं मया युद्धं गन्तव्यं वा नृपं प्रति॥ ४६

विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै।
तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ॥ ४७

इयं बुद्धिः समीचीना यद् व्रजामि कलिं विना।
यथागतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम्॥ ४८

स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमतां वरः।
करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह॥ ४९

सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह।
जये पराजये वापि भूपतेरप्रियं भवेत्॥ ५०

यदि मां सुन्दरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः।
येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल॥ ५१

तस्मात्तत्रैव गत्वाहं बोधयिष्यामि तं नृपम्।
यथाद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः॥ ५२

अतएव अब तुम शीघ्र जाओ और अपने राजासे मेरी बात कह दो। इसके बाद तुम्हारे राजा जैसी आज्ञा दें, तुम वैसा करो। इन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हो जाय और देवताओंको यज्ञका भाग मिलने लगे। तुमलोग यदि जीवित रहना चाहते हो, तो पाताललोक चले जाओ और हे मूर्ख! यदि दुष्टात्मा महिषासुरका विचार विपरीत हो, तो वह मरनेके लिये तैयार होकर मेरे साथ युद्ध करे॥ ४२—४४॥

यदि तुम यह मानते हो कि विष्णु आदि प्रधान देवता तो युद्धमें पहले ही परास्त किये जा चुके हैं, तो उस समय उसका कारण था—विपरीत भाग्य तथा ब्रह्माजीका वरदान॥ ४५॥

व्यासजी बोले—देवीका यह वचन सुनकर वह दानव सोचने लगा—अब मुझे क्या करना चाहिये? मैं इसके साथ युद्ध करूँ या राजा महिषके पास लौट चलूँ॥ ४६॥

[किंतु यह भी है कि] कामातुर महाराज महिषने विवाहके लिये [उसे राजी करनेकी] मुझे आज्ञा दी है तो फिर रसभंग करके मैं राजाके पास लौटकर कैसे जाऊँ?॥ ४७॥

अन्तमें अब मुझे यही विचार उचित प्रतीत होता है कि बिना युद्ध किये ही राजाके पास शीघ्र चला जाऊँ और जैसा सामने उपस्थित है, वैसा उनको बता दूँ। उसके बाद बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजा महिष अपने चतुर मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करके जो उचित समझेंगे, उसे करेंगे॥ ४८-४९॥

मुझे अचानक इस स्त्रीके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जय अथवा पराजय—इन दोनोंमें राजाका अप्रिय हो सकता है॥ ५०॥

यदि यह सुन्दरी मुझे मार डाले अथवा मैं ही जिस किसी उपायसे इसको मार डालूँ, तब भी राजा महिष निश्चितरूपसे कुपित होंगे। अतः अब मैं वहींपर चलकर इस सुन्दरीके द्वारा आज जो कुछ कहा गया है, वह सब राजा महिषको बता दूँगा। तत्पश्चात् उनकी जैसी रुचि होगी, वैसा वे करेंगे॥ ५१-५२॥

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ।
प्रणम्य तमुवाचेदं कृताञ्जलिरमात्यकः॥ ५३

मन्त्र्युवाच

राजन् देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता।
अष्टादशभुजा रम्या वरायुधधरा परा॥ ५४

सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि।
महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया॥ ५५

पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः।
स तवाज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति॥ ५६

त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने।
महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव॥ ५७

इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मयावेशमोहिता।
मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः॥ ५८

महिषीगर्भसम्भूतं पशूनामधमं किल।
बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया॥ ५९

का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत्।
मादृशी मन्दबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह॥ ६०

महिषी महिषं नाथं सशृङ्गा शृङ्गसंयुतम्।
कुरुते क्रन्दमाना वै नाहं तत्सदृशी शठा॥ ६१

करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम्।
गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ६२

परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया।
तच्छ्रुत्वाहं समायातः प्रविचिन्त्य पुनः पुनः॥ ६३

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके वह बुद्धिमान् मन्त्री राजा (महिष)-के पास गया और उसे प्रणामकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ ५३॥

मन्त्री बोला—हे राजन्! सुन्दर रूपवाली वह देवी सिंहपर आरूढ है, उस मनोहर देवीकी अठारह भुजाएँ हैं और उस श्रेष्ठ देवीने उत्तम कोटिके आयुध धारण कर रखे हैं॥ ५४॥

हे महाराज! मैंने उससे कहा—हे भामिनि! तुम राजा महिषसे प्रेम कर लो और तीनों लोकोंके स्वामी उन महाराजकी प्रिय पटरानी बन जाओ। केवल तुम्हीं उनकी पटरानी बननेयोग्य हो; इसमें कोई संशय नहीं है। वे तुम्हारे आज्ञाकारी बनकर सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे। हे सुमुखि! महाराज महिषको पतिरूपमें प्राप्त करके तुम चिरकालतक तीनों लोकोंके ऐश्वर्यका उपभोगकर समस्त स्त्रियोंमें सौभाग्यवती बन जाओ॥ ५५—५७॥

मेरा यह वचन सुनकर विशाल नयनोंवाली वह सुन्दरी गर्वके आवेगसे विमोहित होकर मुसकराती हुई मुझसे यह बात बोली—मैं देवताओंका हित करनेके विचारसे महिषीके गर्भसे उत्पन्न उस अधम पशु (महिष)-को देवीके लिये बलि चढ़ा दूँगी॥ ५८-५९॥

हे मन्दबुद्धे! इस संसारमें भला कौन मूर्ख स्त्री महिषको पतिरूपमें स्वीकार कर सकती है? क्या मुझ-जैसी स्त्री पशुस्वभाववाले उस महिषासुरसे प्रेम कर सकती है?॥ ६०॥

हे मूर्ख! सींगवाली तथा जोर-जोरसे चिल्लानेवाली कोई महिषी ही उस शृंगधारी महिषको अपना पति बना सकती है; किंतु मैं वैसी मूर्ख नहीं हूँ। [देवीने पुनः कहलाया है] मैं तो देवताओंके शत्रु तुझ महिषासुरके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगी और तुम्हें मार डालूँगी। हे दुष्ट! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा है, तो अभी पाताललोक चले जाओ॥ ६१-६२॥

हे राजन्! उस मदमत्त स्त्रीने ऐसी बहुत कठोर बात मुझसे कही। उसे सुनकर बार-बार विचार करनेके बाद मैं यहाँ लौट आया हूँ॥ ६३॥

रसभङ्गं विचिन्त्यैव न युद्धं तु मया कृतम्।
आज्ञां विना तवात्यन्तं कथं कुर्यां वृथोद्यमम्॥ ६४

सातीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनी।
भवितव्यं न जानामि किं वा भावि भविष्यति॥ ६५

कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मन्त्रोऽतीव दुरासदः।
युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम्॥ ६६

आपका रसभंग न हो—यह सोचकर मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया और फिर आपकी आज्ञाके बिना मैं व्यर्थ ही युद्ध कैसे कर सकता था?॥ ६४॥

हे राजन्! वह स्त्री सदा अपने बलसे अत्यन्त उन्मत्त रहती है। होनीके विषयमें मैं नहीं जानता; आगे न जाने क्या होगा! इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं। इसमें परामर्श देना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। इस समय हमारे लिये युद्ध करना अथवा पलायन कर जाना—इन दोनोंमें कौन श्रेयस्कर होगा, इसका निर्णय मैं नहीं कर पा रहा हूँ॥ ६५-६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे मन्त्रीद्वारा महिषासुरेण देव्या सह विवाहप्रस्तावो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

महिषासुरका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करना और ताम्रको भगवतीके पास भेजना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः।
मन्त्रिवृद्धान् समाहूय राजा वचनमब्रवीत्॥ १

राजोवाच

मन्त्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम्।
आगता देवविहिता मायेयं शाम्बरीव किम्॥ २

कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषु विचक्षणाः।
सामादिषु च कर्तव्यः कोऽत्र मह्यं ब्रुवन्तु च॥ ३

मन्त्रिण ऊचुः

सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियञ्च नृपसत्तम।
कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल॥ ४

सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत्।
यथौषधं नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम्॥ ५

सत्यस्य श्रोता मन्ता च दुर्लभः पृथिवीपते।
वक्तापि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः॥ ६

व्यासजी बोले—मन्त्रीकी यह बात सुनकर मदोन्मत्त राजा महिषासुर अपने वयोवृद्ध मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे यह वचन कहने लगा॥ १॥

राजा बोला—हे मन्त्रिगण! आपलोग निर्भीकता-पूर्वक मुझे शीघ्र बतायें कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? आपलोग इस कार्यमें प्रवीण हैं, साथ ही साम तथा दण्ड आदि नीतियोंमें भी कुशल हैं। कहीं देवताओंके द्वारा रची गयी शाम्बरी मायाके रूपमें तो यह नहीं आयी हुई है? अतः आपलोग मुझे यह बतायें कि इस समय किस नीतिका सहारा लिया जाय?॥ २-३॥

मन्त्रिगण बोले—हे नृपश्रेष्ठ! बुद्धिमान् लोगोंको सदा सत्य और प्रिय बोलना चाहिये तथा सम्यक् विचार करके हितकर कार्य करना चाहिये॥ ४॥

हे राजन्! सत्य वचन कल्याणकारी होता है और प्रिय वचन [प्रायः] अहितकर होता है। इस लोकमें अप्रिय वचन भी मनुष्योंके लिये उसी प्रकार हितकारक होता है, जैसे औषधि अरुचिकर होते हुए भी मनुष्योंके रोगोंका नाश करनेवाली होती है॥ ५॥

हे पृथिवीपते! सत्य बातको सुनने तथा माननेवाला दुर्लभ है। सत्य बोलनेवाला तो परम दुर्लभ है; किंतु चाटुकारितापूर्ण बातें करनेवाले बहुत-से लोग हैं॥ ६॥

कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह।
शुभं वाप्यशुभं वापि को वेत्ति भुवनत्रये॥ ७

राजोवाच

स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवन्त्वद्य पृथक्पृथक्।
येषां हि यादृशो भावस्तच्छ्रुत्वा चिन्तयाम्यहम्॥ ८

बहूनां मतमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः।
यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः॥ ९

व्यास उवाच

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः।
उवाच तरसा वाक्यं रञ्जयन्पृथिवीपतिम्॥ १०

विरूपाक्ष उवाच

राजन्नारी वराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता।
विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया॥ ११

को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्तै रणदुर्मदैः।
अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम्॥ १२

जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कान्ताभयेन वै।
दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत्॥ १३

तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चण्डिकां प्रति।
हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव साम्प्रतम्॥ १४

सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल।
निषूदयामि दुर्मर्षां चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ १५

बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवान्तिकम्।
वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन् बलं मम॥ १६

हे राजन्! इस गूढ़ विषयमें हमलोग कुछ कैसे कह सकते हैं, और फिर इस त्रिलोकीमें भविष्यमें होनेवाले शुभ अथवा अशुभ परिणामके विषयमें कौन जान सकता है?॥ ७॥

राजा बोला—आपलोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अलग-अलग विचार प्रकट करें। जिसका जो भाव होगा, उसे सुनकर मैं स्वयं विचार करूँगा; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अनेक लोगोंके मन्तव्य सुनकर और फिर उनपर बार-बार विचार करके उनमेंसे अपने लिये जो कल्याणप्रद हो, उसी कामको करें॥ ८-९॥

व्यासजी बोले—उसकी यह बात सुनकर महाबली विरूपाक्ष राजा महिषको प्रसन्न करते हुए शीघ्र कहने लगा॥ १०॥

विरूपाक्ष बोला—हे राजन्! वह बेचारी स्त्री मदमत्त होकर जो कुछ बोल रही है, उन बातोंको आप केवल धमकीभर समझें॥ ११॥

यह जानते हुए कि झूठ और साहस स्त्रियोंकी आदत होती है, भला कौन एक स्त्रीके कहे हुए युद्धोन्मादी कठोर वाक्योंसे डरेगा?॥ १२॥

हे राजन्! तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके भी आज आप स्त्रीके भयसे ग्रस्त हो गये हैं! उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनेपर इस लोकमें अवश्य ही आप-जैसे वीरकी अपकीर्ति होगी॥ १३॥

अतएव हे महाराज! मैं अकेला ही उस चण्डिकासे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ और उसे निश्चितरूपसे मार डालूँगा। अब आप भयमुक्त हो जायँ॥ १४॥

अपनी सेनाके साथ वहाँ जाकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे मैं उस दुःसह तथा प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्न चण्डिकाका निश्चय ही वध कर दूँगा अथवा उसे नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही आपके पास ले आऊँगा, जिससे वह सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाय। हे राजन्! अब आप मेरा पराक्रम देखिये॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्।
सत्यमुक्तं वचो राजन् विरूपाक्षेण धीमता॥ १७

ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया।
कामातुरैषा सुदती लक्ष्यतेऽप्यनुमानतः॥ १८

भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता।
भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति॥ १९

हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः।
वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम्॥ २०

वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः।
यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि॥ २१

हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः।
बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः॥ २२

पुष्पाञ्जलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च।
का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव॥ २३

तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु।
ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम्॥ २४

विपरीतं परिज्ञातं तेनारसविदा किल।
पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव॥ २५

विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत्।
करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया॥ २६
वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा।

व्यासजी बोले—विरूपाक्षकी बात सुनकर दुर्धरने कहा—हे राजन्! बुद्धिमान् विरूपाक्षने यथार्थ बात कही है। प्रतिभासम्पन्न आप अब मेरी भी उत्तम बात सुन लें। अनुमानसे ऐसा प्रतीत होता है कि सुन्दर दाँतोंवाली यह स्त्री कामातुर है। अपने रूपके गर्वमें चूर इस प्रकारकी नायिकाएँ अपने प्रियको डरा-धमकाकर वशमें करनेका प्रयास करती हैं; वैसे ही यह सुन्दरी भी आपको धमकाकर अपने वशमें करना चाहती है॥ १७—१९॥

यह तो मानिनी स्त्रियोंका हाव-भाव होता है और रसका महान् ज्ञाता ही उस हाव-भावको समझ पाता है। आसक्त प्रेमीके प्रति किसी स्त्रीकी ऐसी वक्रोक्ति होती ही है, जिसे कामशास्त्रका विद्वान् कोई विरला पुरुष ही समझ पाता है। जैसे उसने कहा है—'मैं तुम्हें युद्धक्षेत्रमें बाणोंसे मार डालूँगी', इस कथनमें बहुत बड़ा रहस्य निहित है, जिसे रहस्यविद् ही भलीभाँति समझ सकते हैं। मानिनी स्त्रियोंके बाण तो उनके कटाक्ष ही कहे गये हैं और हे राजन्! उनके व्यंग्यपूर्ण वचन दूसरे पुष्पांजलिमय बाण हैं; क्योंकि कटाक्षको छोड़कर वह अन्य प्रकारके बाण भला आपपर क्या चला सकेगी? जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिमें आपपर बाण चलानेकी शक्ति नहीं है, तब वैसी स्त्रियोंमें अन्य बाण चलानेकी शक्ति कहाँ है? उसने अमात्यसे जो कहा था—'हे मन्द! मैं तुम्हारे राजाको अपने नेत्रबाणोंसे बेध डालूँगी' इस कथनका तात्पर्य उन रसज्ञानसे विहीन मन्त्रीने विपरीत ही समझ लिया था॥ २०—२४½॥

उसने प्रधान अमात्यसे जो यह कहा था कि 'मैं तुम्हारे स्वामीको रणमयी शय्यापर गिरा दूँगी'—इस कथनका तात्पर्य उस स्त्रीके द्वारा विपरीत रतिक्रीडाका किया जाना समझना चाहिये। साथ ही उसने जो यह बात कही थी कि 'मैं उन्हें प्राणहीन कर दूँगी'—तो [हे राजन्!] पुरुषोंमें वीर्यको ही प्राण कहा गया है, अतः उस स्त्रीके कथनका तात्पर्य आपको वीर्यहीन कर देनेसे है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं॥ २५-२६½॥

व्यंग्याधिक्येन वाक्येन वरयत्युत्तमा नृप॥ २७

तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः।
इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम्॥ २८

सामदानद्वयं तस्या नान्योपायोऽस्ति भूपते।
रुष्टा वा गर्विता वापि वशगा मानिनी भवेत्॥ २९

तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवान्तिकम्।
किं बहूक्तेन मे राजन् कर्तव्या वशवर्तिनी॥ ३०

गत्वा मयाधुनैवेयं किङ्करीव सदैव ते।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः॥ ३१

उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम्।
हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम्॥ ३२

नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा।
व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद॥ ३३

चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी।
निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा॥ ३४

अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता।
केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा॥ ३५

आयुधान्यपि तावन्ति धृतानि बलवन्ति च।
विपरीतमिदं मन्ये सर्वं कालकृतं नृप॥ ३६

स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि।
तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम्॥ ३७

कृष्णाम्बरधरा नारी रुदती च गृहाङ्गणे।
दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिन्तितव्यस्तदत्ययः॥ ३८

हे राजन्! व्यंग्यभरे इस कथनके द्वारा वह सुन्दरी आपको पतिके रूपमें वरण करना चाहती है। रसशास्त्रके विद्वानोंको विचारपूर्वक इस कथनका अभिप्राय भलीभाँति जान लेना चाहिये। हे महाराज! ऐसा जानकर आपको उसके प्रति रसमय व्यवहार करना चाहिये। हे राजन्! साम (प्रिय वचन) और दान (प्रलोभन आदि)—ये ही दो उपाय उसे वशमें करनेके हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। रुष्ट अथवा मदगर्वित कोई भी मानिनी स्त्री इन उपायोंसे वशवर्तिनी हो जाती है। उसी प्रकारके मधुर वचनोंसे प्रसन्न करके मैं उसे आपके पास ले आऊँगा। हे राजन्! बहुत कहनेसे क्या लाभ! अभी वहाँ जाकर मैं उस स्त्रीको एक दासीकी भाँति सदाके लिये आपके वशमें कर दूँगा॥ २७—३०$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—दुर्धरकी यह बात सुनकर तत्त्वविद् ताम्र बोला—हे राजन्! अब आप मेरेद्वारा कही गयी बात सुनिये जो तर्कयुक्त, धर्मसे ओतप्रोत, रसमय तथा नीतिसे भरी हुई है॥ ३१-३२॥

हे मानद! यह बुद्धिसम्पन्न स्त्री न कामातुर है, न आपपर आसक्त है और न तो उसने व्यंग्यपूर्ण बातें ही कही हैं॥ ३३॥

हे महाबाहो! यह तो महान् आश्चर्य है कि एक अत्यधिक रूपवती और मनोहर स्त्री बिना किसीका आश्रय लिये अकेली ही युद्धहेतु आयी हुई है। अठारह भुजाओंसे सम्पन्न ऐसी पराक्रमशालिनी तथा सुन्दर स्त्री किसीके भी द्वारा तीनों लोकोंमें न तो देखी गयी और न तो सुनी ही गयी। उसने अनेक प्रकारके सुदृढ़ आयुध धारण कर रखे हैं। हे राजन्! इससे मैं तो यह मानता हूँ कि समयने सब कुछ हमारे विपरीत कर दिया है॥ ३४—३६॥

मैंने रातमें अपशकुनसूचक अनेक स्वप्न देखे हैं, इससे मैं तो यह समझता हूँ कि अब निश्चय ही हमारा विनाश आ चुका है॥ ३७॥

मैंने आज ही उषाकालमें स्वप्न देखा कि काले वस्त्र धारण किये एक स्त्री घरके आँगनमें रुदन कर रही है। यह विनाशसूचक स्वप्न विचारणीय है॥ ३८॥

विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवन्ति गृहे गृहे।
उत्पाता विविधा राजन् प्रभवन्ति गृहे गृहे॥ ३९

तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किञ्चिदेव हि।
यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया॥ ४०

नैषास्ति मानुषी नो वा गान्धर्वी न तथासुरी।
देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो॥ ४१

कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम्।
कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ ४२

को वेद दैवकर्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा।
अवलम्ब्य धिया धैर्यं स्थातव्यं वै विचक्षणैः॥ ४३

जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप।
कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये॥ ४४

महिष उवाच

गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः।
तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम्॥ ४५

न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव।
हन्तव्या नान्यथा कामं माननीया प्रयत्नतः॥ ४६

वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः।
येन केनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी॥ ४७

त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महता वृतः।
तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः॥ ४८

किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम्।
कामाद्वा वैरभावाच्च माया कस्येयमित्युत॥ ४९

आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम्।
पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथायोग्यं यथाबलम्॥ ५०

हे राजन्! आजकल घर-घरमें भयानक पक्षी रोया करते हैं और घर-घरमें विविध प्रकारके उपद्रव होते रहते हैं। इससे मैं तो यह समझता हूँ कि इसमें निश्चितरूपसे कुछ और ही कारण है, तभी तो युद्धके लिये कृतसंकल्प यह स्त्री आपको ललकार रही है॥ ३९-४०॥

हे राजन्! यह न तो मानुषी, न गान्धर्वी और न आसुरी ही है; अपितु इसे देवताओंकी रची हुई मोहकरी माया समझना चाहिये॥ ४१॥

अतः मेरा यह दृढ़ मत है कि इस समय कायरता नहीं प्रदर्शित करनी चाहिये, अपितु हर तरहसे युद्ध करना चाहिये; जो होना होगा वह होगा। भविष्यमें विधाताके द्वारा किये जानेवाले शुभ या अशुभके बारेमें कौन जानता है? अतः विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि बुद्धिपूर्वक धैर्य धारण करके समयकी प्रतीक्षा करें॥ ४२-४३॥

हे नरेश! प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। तीनों लोकोंमें कोई भी व्यक्ति इसके विपरीत कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४४॥

महिष बोला—हे महाभाग! हे ताम्र! युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके तुम जाओ और धर्मपूर्वक उस मानिनी स्त्रीको जीतकर यहाँ ले आओ॥ ४५॥

यदि संग्राममें वह स्त्री तुम्हारे अधीन न हो सके, तब तुम उसे मार डालना; नहीं तो जहाँतक सम्भव हो, प्रयत्नपूर्वक उसका सम्मान करना॥ ४६॥

हे सर्वज्ञ! तुम पराक्रमी तथा कामशास्त्रके पूर्ण विद्वान् हो, अतः किसी भी युक्तिसे उस सुन्दरीपर विजय प्राप्त करना॥ ४७॥

हे वीर! हे महाबाहो! विशाल सेनाके साथ तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और वहाँ पहुँचकर बार-बार चिन्तन-मनन करके इसका पता लगाओ कि यह किसलिये आयी हुई है? तुम यह भी ज्ञात करना कि वह कामभाव अथवा वैरभाव—किस भावसे आयी है और वह किसकी माया है?॥ ४८-४९॥

आरम्भमें इन बातोंकी जानकारी कर लेनेपर तुम यह पता करना कि वह क्या करना चाहती है? तत्पश्चात् उसकी सबलता तथा निर्बलताको भलीभाँति समझकर ही उसके साथ तुम युद्ध करना॥ ५०॥

कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च।
यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया॥ ५१

व्यास उवाच

इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः।
निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम्॥ ५२

गच्छन्मार्गे दुरात्मासौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान्।
विस्मयञ्च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान्॥ ५३

स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरिस्थिताम्।
स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम्॥ ५४

तामुवाच विनीतः सन् वाक्यं मधुरया गिरा।
सामभावं समाश्रित्य विनयावनतः स्थितः॥ ५५

देवि दैत्येश्वरः श्रृङ्गी त्वद्रूपगुणमोहितः।
स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च॥ ५६

भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये।
पतिं तं प्राप्य मृद्वङ्गि नन्दने विहराद्भुते॥ ५७

सर्वाङ्गसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम्।
सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः॥ ५८

करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम्।
पुष्पकन्दुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः॥ ५९

भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं प्रयोजनम्।
कटाक्षा विशिखाः सन्ति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः॥ ६०

संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता।
लोभासक्ताः प्रकुर्वन्ति संग्रामञ्च परस्परम्॥ ६१

तुम उसके समक्ष न तो कायरता प्रदर्शित करना और न बिलकुल निर्दयताका ही व्यवहार करना। उसकी जैसी मनोदशा देखना, उसीके अनुसार उससे बर्ताव करना॥ ५१॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह बात सुनकर कालके वशीभूत वह ताम्र राजा महिषको प्रणाम करके सेनाके साथ चल पड़ा। चलते समय मार्गमें यमका द्वार दिखलानेवाले अत्यन्त भयानक अपशकुनोंको देख-देखकर वह बहुत विस्मित तथा भयभीत होता था॥ ५२-५३॥

देवीके समीप पहुँचकर उसने देखा कि वे सिंहपर सवार हैं, वे विविध प्रकारके आयुधोंसे विभूषित हैं तथा सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं। तदनन्तर उस ताम्रने विनम्र भावसे खड़े होकर सामनीतिका आश्रय लेकर मधुर वाणीमें शान्तिपूर्वक देवीसे यह वचन कहा—हे देवि! दैत्योंके अधिपति तथा विशाल सींगोंवाले राजा महिष आपके रूप तथा गुणपर मोहित होकर आपसे विवाह करनेकी अभिलाषा रखते हैं॥ ५४—५६॥

विशाल नयनों तथा सुकुमार अंगोंवाली हे सुन्दरि! देवताओंके लिये भी अजेय उन महिषसे आप प्रेम कीजिये और उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करके अद्भुत नन्दनवनमें विहार कीजिये॥ ५७॥

सभी प्रकारके सुखोंके निधानस्वरूप इस सर्वांगसुन्दर शरीरको प्राप्त करके हर तरह सुख भोगना चाहिये और दुःखका तिरस्कार करना चाहिये, यही बात सर्वमान्य है॥ ५८॥

हे करभोरु! आपने अपने हाथोंमें ये आयुध किसलिये धारण कर रखे हैं? कमलके समान कोमल आपके ये हाथ तो पुष्पोंके गेंद धारण करनेयोग्य हैं॥ ५९॥

भौंहरूपी धनुषके रहते आपको यह धनुष धारण करनेसे क्या प्रयोजन है और जब आपके पास ये कटाक्षरूपी बाण हैं तो फिर व्यर्थ बाणोंको धारण करनेसे क्या लाभ?॥ ६०॥

इस संसारमें युद्ध दुःखदायी होता है, अतः ज्ञानीजनको युद्ध नहीं करना चाहिये। राज्य तथा धनके लोलुप लोग ही परस्पर युद्ध करते हैं॥ ६१॥

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः।
भेदनं निजगात्राणां कस्य तज्जायते मुदे॥ ६२

तस्मात्त्वमपि तन्वङ्गि प्रसादं कर्तुमर्हसि।
भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम्॥ ६३

स तेऽत्र वाञ्छितं सर्वं करिष्यति मनोरथम्।
त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नात्र संशयः॥ ६४

वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम्।
संग्रामे जयसन्देहः कष्टं प्राप्य न संशयः॥ ६५

जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वरवर्णिनि।
भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम्॥ ६६

पुत्रस्ते भविता कान्तः सोऽपि राजा भविष्यति।
यौवने क्रीडयित्वान्ते वार्धक्ये सुखमाप्स्यसि॥ ६७

पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या? अपने अंगोंका छिद जाना भला किसकी प्रसन्नताका कारण बन सकता है? अतएव हे तन्वंगि! आप कृपा करें और देवताओं तथा दानवोंके द्वारा पूजित मेरे स्वामी महिषको पतिके रूपमें स्वीकार कर लें॥ ६२-६३॥

वे आपके सभी वांछित मनोरथ पूर्ण कर देंगे और उन्हें पतिरूपमें पाकर आप सदाके लिये उनकी पटरानी बन जायँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

हे देवि! आप मेरी बात मान लें, इससे आपको उत्तम सुख मिलेगा। कष्ट पाकर भी संग्राममें विजयका सन्देह बना रहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६५॥

हे सुन्दरि! आप राजनीति भलीभाँति जानती हैं, अतः हजारों-हजारों वर्षोंतक राज्यसुखका भोग करें॥ ६६॥

आपको तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा; वह भी राजा बनेगा। इस प्रकार आप युवावस्थामें क्रीड़ासुख प्राप्त करके वृद्धावस्थामें आनन्द प्राप्त करेंगी॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ताम्रकृतं देवीं प्रति विस्त्रंसनवचनवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

देवीके अट्टहाससे भयभीत होकर ताम्रका महिषासुरके पास भाग आना, महिषासुरका अपने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार-विमर्श तथा दुर्धर, दुर्मुख और बाष्कलकी गर्वोक्ति

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदम्बिका।
मेघगम्भीरया वाचा हसन्ती तमुवाच ह॥ १

देव्युवाच

गच्छ ताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मन्दचेतसम्।
महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम्॥ २

यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी।
नाहं तथा शृङ्गवती लम्बपुच्छा महोदरी॥ ३

न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम्।
धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम्॥ ४

व्यासजी बोले—उस ताम्रकी वह बात सुनकर भगवती जगदम्बिका मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे हँसते हुए कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—हे ताम्र! तुम अपने स्वामी महिषके पास जाओ और मरनेको उद्यत, मन्दबुद्धि, अति कामातुर तथा ज्ञानशून्य उस मूर्खसे कहो कि जिस प्रकार तुम्हारी माता महिषी घास खानेवाली, प्रौढा, विशाल सींगोंवाली, लम्बी पूँछवाली तथा महान् उदरवाली है; वैसी मैं नहीं हूँ॥ २-३॥

मैं न देवराज इन्द्रको, न विष्णुको, न शिवको, न कुबेरको, न वरुणको, न ब्रह्माको और न तो

एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै।
वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति॥ ५

नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः।
सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः॥ ६

निर्गुणो निर्ममोऽनन्तो निरालम्बो निराश्रयः।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः॥ ७

सर्वावासक्षमः शान्तः सर्वदृक्सर्वभावनः।
तं त्यक्त्वा महिषं मन्दं कथं सेवितुमुत्सहे॥ ८

प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम्।
अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम्॥ ९

जीवितेच्छास्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै।
समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि सङ्गरे॥ १०

कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत्।
अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः॥ ११

मूर्खस्त्वमसि यद् ब्रूषे पतिं मे भज भामिनि।
क्वाहं क्व महिषः शृङ्गी सम्बन्धः कीदृशो द्वयोः॥ १२

गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येऽहं सबान्धवम्।
यज्ञभागं देवलोकं नोचेत्त्यक्त्वा सुखी भव॥ १३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम्।
कल्पान्तसदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम्॥ १४

चकम्पे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः।
गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्त्रंसुर्गर्जितस्वनात्॥ १५

अग्निदेवको ही चाहती हूँ। जब मैंने इन देवताओंकी उपेक्षा कर दी, तब भला मैं एक पशुका उसके किस गुणसे प्रसन्न होकर वरण करूँगी; इससे तो संसारमें मेरी निन्दा ही होगी!॥ ४-५॥

मैं पतिका वरण करनेवाली साधारण स्त्री नहीं हूँ। मेरे पति तो साक्षात् प्रभु हैं। वे सब कुछ करनेवाले, सबके साक्षी, कुछ भी न करनेवाले, इच्छारहित, सदा रहनेवाले, निर्गुण, मोहरहित, अनन्त, निरालम्ब, आश्रयरहित, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, साक्षी, पूर्ण, पूर्ण आशयवाले, कल्याणकारी, सबको आश्रय देनेमें समर्थ, शान्त, सबको देखनेवाले तथा सबकी भावनाओंको जाननेवाले हैं। उन प्रभुको छोड़कर मैं मूर्ख महिषको अपना पति क्यों बनाना चाहूँगी?॥ ६—८॥

[उससे कह देना—] अब तुम उठकर युद्ध करो। मैं तुम्हें या तो यमका वाहन बना दूँगी अथवा मनुष्योंके लिये पानी ढोनेवाला महिष बना दूँगी॥ ९॥

अरे पापी! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो शीघ्र ही समस्त दानवोंको साथ लेकर पाताललोक चले जाओ, अन्यथा मैं युद्धमें मार डालूँगी॥ १०॥

इस संसारमें समान कुल तथा आचारवालोंका परस्पर सम्बन्ध सुखदायक होता है, इसके विपरीत बिना सोचे-समझे यदि सम्बन्ध हो जाता है, तो वह बड़ा दुःखदायी होता है॥ ११॥

[अरे महिष!] तुम मूर्ख हो जो यह कहते हो कि 'हे भामिनि! मुझे पतिरूपमें स्वीकार कर लो।' कहाँ मैं और कहाँ तुम सींग धारण करनेवाले महिष! हम दोनोंका यह कैसा सम्बन्ध! अतः अब तुम [पाताललोक] चले जाओ अथवा मुझसे युद्ध करो, मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित निश्चय ही मार डालूँगी, नहीं तो देवताओंका यज्ञभाग दे दो और देवलोक छोड़कर सुखी हो जाओ॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर देवीने बड़े जोरसे अद्भुत गर्जन किया। वह गर्जन प्रलयकालीन भीषण ध्वनिके समान तथा दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला था। उस नादसे पृथ्वी काँप उठी और पर्वत डगमगाने लगे तथा दैत्योंकी पत्नियोंके गर्भ गिर गये॥ १४-१५॥

ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा।
पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषान्तिकम्॥ १६

नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन्।
बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप॥ १७

तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्सटः।
तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम्॥ १८

ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः।
चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम्॥ १९

दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः।
पलायने कृते श्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः॥ २०

बुद्धिमन्तो दुराधर्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः।
मन्त्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये॥ २१

मन्त्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः।
मन्त्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः॥ २२

मन्त्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा।
तस्माद्भेदभयाद् गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता॥ २३

तदत्र मन्त्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम्।
कालदेशानुसारेण विचिन्त्य नीतिनिर्णयम्॥ २४

या योषात्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता।
एकाकिनी निरालम्बा कारणं तद्विचिन्त्यताम्॥ २५

युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम्।
श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये॥ २६

उस शब्दको सुनकर ताम्रके मनमें भय व्याप्त हो गया और तब वह वहाँसे भागकर महिषासुरके पास जा पहुँचा॥ १६॥

हे राजन्! उसके नगरमें जो भी दैत्य थे, वे सब बड़े चिन्तित हुए। वे उस ध्वनिके प्रभावसे बधिर हो गये और वहाँसे भागने लगे॥ १७॥

उसी समय देवीका सिंह भी क्रोधपूर्वक अपने अयालों (गर्दनके बालों)-को फैलाकर बड़े जोरसे दहाड़ा। उस गर्जनसे सभी दैत्य बहुत डर गये॥ १८॥

ताम्रको वापस आया हुआ देखकर महिषासुरको बहुत विस्मय हुआ। वह उसी समय मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगा कि अब आगे क्या किया जाय?॥ १९॥

[उसने कहा—] हे श्रेष्ठ दानवो! हमें आत्मरक्षार्थ किलेके भीतर ही रहना चाहिये अथवा बाहर निकलकर युद्ध करना चाहिये अथवा भाग जानेमें ही हमारा कल्याण है?॥ २०॥

आपलोग बुद्धिमान्, अजेय तथा सभी शास्त्रोंके विद्वान् हैं। अतः मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये आपलोग अत्यन्त गुप्त मन्त्रणा करें; क्योंकि मन्त्रणाको ही राज्यका मूल कहा गया है। यदि मन्त्रणा सुरक्षित (गुप्त) रहती है, तभी राज्यकी सुरक्षा सम्भव है। अतएव राजाको चाहिये कि बुद्धिमान् तथा सदाचारी मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २१-२२॥

मन्त्रणाके खुल जानेपर राज्य तथा राजा—इन दोनोंका विनाश हो जाता है। अतः अपने अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि भेद खुल जानेके भयसे सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २३॥

अतः इस समय आप मन्त्रिगण नीति-निर्णयपर सम्यक् विचार करके देश-कालके अनुसार मुझे सार्थक तथा हितकर परामर्श प्रदान करें॥ २४॥

देवताओंद्वारा निर्मित जो यह अत्यन्त बलवती स्त्री बिना किसी सहायताके अकेली ही यहाँ आयी हुई है, उसके रहस्यपर आपलोग विचार करें॥ २५॥

वह बाला हमें युद्धके लिये चुनौती दे रही है, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है? इसमें मेरी विजय होगी अथवा पराजय—इसे तीनों लोकोंमें भला कौन जानता है?॥ २६॥

न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः।
दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपराजयौ॥ २७

उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम्।
अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २८

तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलम्बनम्।
न समर्थजनानां हि दैवं कुत्रापि लक्ष्यते॥ २९

उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकातरयोर्मतम्।
विचिन्त्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात्॥ ३०

व्यास उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः।
बिडालाख्यो महाराजमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ ३१

राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः॥ ३२

मरणं ते परिज्ञाय स्त्रिया सर्वात्मना सुरैः।
प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसा॥ ३३

तेऽपि छन्नाः स्थिताः खेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः।
समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यन्ति युयुत्सवः॥ ३४

पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः।
वधिष्यन्ति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति॥ ३५

एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप।
भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा॥ ३६

योद्धव्यं न त्वयाद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो।
प्रमाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते॥ ३७

न तो बहुत संख्यावालोंकी ही सदा विजय होती है और न तो अकेला रहते हुए भी किसीकी पराजय ही होती है। युद्धमें जय तथा पराजयको सदा दैवके अधीन जानना चाहिये॥ २७॥

पुरुषार्थवादी लोग कहते हैं कि दैव क्या है, उसे किसने देखा है; इसीलिये तो बुद्धिमान् उसे 'अदृष्ट' कहते हैं। उसके होनेमें क्या प्रमाण है? वह केवल कायरोंको आशा बँधानेका साधन है, सामर्थ्यवान् लोग उसे कहीं नहीं देखते। उद्यम और दैव—ये दोनों ही वीर तथा कायर लोगोंकी मान्यताएँ हैं। अतः बुद्धिपूर्वक सारी बातोंपर विचार करके हमें कर्तव्यका निश्चय करना चाहिये॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—राजा महिषकी यह सारगर्भित बात सुनकर महायशस्वी बिडालाख्यने हाथ जोड़कर अपने महाराज महिषासुरसे यह वचन कहा—हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस स्त्रीके विषयमें सावधानीपूर्वक बार-बार यह पता लगाया जाना चाहिये कि यह यहाँ किसलिये और कहाँसे आयी हुई है तथा यह किसकी पत्नी है?॥ ३१-३२॥

[मैं तो यह समझता हूँ कि] 'स्त्रीके द्वारा ही आपकी मृत्यु होगी'—ऐसा भलीभाँति जानकर सभी देवताओंने अपने तेजसे उस कमलनयनी स्त्रीका निर्माण करके यहाँ भेजा है॥ ३३॥

युद्ध देखनेकी इच्छावाले वे देवता भी आकाशमें छिपकर विद्यमान हैं और अवसर आनेपर युद्धकी इच्छावाले देवता भी उसकी सहायता करेंगे॥ ३४॥

उस स्त्रीको आगे करके वे विष्णु आदि प्रधान देवता युद्धमें हम सबका वध कर देंगे और वह स्त्री भी आपको मार डालेगी॥ ३५॥

हे नरेश! मैंने तो यही समझा है कि उन देवताओंका यही अभीष्ट है, किंतु मुझे भविष्यमें होनेवाले परिणामका बिलकुल ज्ञान नहीं है। हे प्रभो! मैं इस समय यह भी नहीं कह सकता कि आप युद्ध न करें। हे महाराज! देवताओंके द्वारा निर्मित इस कार्यमें कुछ भी निर्णय लेनेमें आप ही प्रमाण हैं॥ ३६-३७॥

तदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात्।
विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम्॥ ३८

विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनी नृप।
युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्बलदर्पितैः॥ ३९

दुर्मुख उवाच

राजन् युद्धे जयो नोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल।
पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम्॥ ४०

इन्द्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम्।
एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम्॥ ४१

तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः।
यद्भावि तद्भवत्येव कात्र चिन्ता विपश्यतः॥ ४२

मरणेऽत्र यशःप्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम्।
उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै॥ ४३

पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये।
तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा॥ ४४

व्यास उवाच

दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत्।
प्रणतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविदः॥ ४५

बाष्कल उवाच

राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातरप्रिये।
अहमेको हनिष्यामि चण्डीं चञ्चललोचनाम्॥ ४६

उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च।
भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम॥ ४७

हम अनुयायियोंका तो यही धर्म है कि अवसर आनेपर आपके लिये सदा मरनेको तैयार रहें अथवा आपके साथ आनन्दपूर्वक रहें॥ ३८॥

हे राजन्! अद्भुत बात तो यह है कि बलाभिमानी और सेनासम्पन्न हमलोगोंको एक स्त्री युद्धके लिये चुनौती दे रही है॥ ३९॥

दुर्मुख बोला—हे राजन्! मैं यह पूर्णरूपसे जानता हूँ कि आज युद्धमें विजय निश्चितरूपसे हमलोगोंकी होगी। हमलोगोंको पलायन नहीं करना चाहिये; क्योंकि युद्धसे भाग जाना पुरुषोंकी कीर्तिको नष्ट करनेवाला होता है॥ ४०॥

इन्द्र आदि देवताओंके साथ भी युद्धमें जब हमलोगोंने यह निन्दनीय कार्य नहीं किया था, तब उस अकेली स्त्रीको सामने पाकर उससे डरकर भला कौन पलायन करेगा?॥ ४१॥

अतः अब हमें युद्ध आरम्भ कर देना चाहिये, युद्धमें हमारी मृत्यु हो अथवा विजय। जो होना होगा वह तो होगा ही। यथार्थ ज्ञानवालेको इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता?॥ ४२॥

रणभूमिमें मरनेपर कीर्ति मिलेगी और विजयी होनेपर जीवनमें सुख मिलेगा। इन दोनों ही बातोंको मनमें स्थिर करके हमें आज ही युद्ध छेड़ देना चाहिये॥ ४३॥

युद्धसे पलायन कर जानेसे हमारा यश नष्ट हो जायगा। आयुके समाप्त हो जानेपर मृत्यु होनी तो निश्चित ही है। अतएव जीवन तथा मरणके लिये व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४४॥

व्यासजी बोले—दुर्मुखका विचार सुनकर बात करनेमें परम प्रवीण बाष्कल हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक राजा महिषासुरसे यह वचन कहने लगा॥ ४५॥

बाष्कल बोला—हे राजन्! कायर लोगोंके लिये प्रिय इस [पलायन] कार्यके विषयमें आपको विचार नहीं करना चाहिये। मैं उस चंचल नेत्रोंवाली चण्डीको अकेला ही मार डालूँगा॥ ४६॥

हमें सर्वदा उत्साहसे सम्पन्न रहना चाहिये; क्योंकि उत्साह ही वीररसका स्थायीभाव है। हे नृपश्रेष्ठ! भयानक रस तो वीररसका वैरी है॥ ४७॥

तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्धमद्भुतम्।
नयिष्यामि नरेन्द्राहं चण्डिकां यमसादनम्॥ ४८

न बिभेमि यमादिन्द्रात्कुबेराद्वरुणादपि।
वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शङ्कराच्छशिनो रवेः॥ ४९

एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता।
अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितैः॥ ५०

पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम्।
भवतात्र न गन्तव्यं संग्रामेऽप्यनया समम्॥ ५१

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्रं बाष्कले मदगर्विते।
प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्॥ ५२

दुर्धर उवाच

महिषाहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम्।
अष्टादशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम्॥ ५३

राजन् भीषयितुं त्वां वै मायैषा निर्मिता सुरैः।
विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम्॥ ५४

राजनीतिरियं राजन् मन्त्रिकृत्यं तथा शृणु।
सात्त्विका राजसाः केचित्तामसाश्च तथापरे॥ ५५

मन्त्रिणस्त्रिविधा लोके भवन्ति दानवाधिप।
सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयन्ति स्वशक्तिभिः॥ ५६

आत्मकृत्यं प्रकुर्वन्ति स्वामिकार्याविरोधतः।
एकचित्ता धर्मपरा मन्त्रशास्त्रविशारदाः॥ ५७

राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा।
कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया॥ ५८

तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा।
प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते॥ ५९

अतएव हे राजन्! भयका त्याग करके मैं अद्भुत युद्ध करूँगा। हे नरेन्द्र! मैं उस चण्डिकाको मारकर उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा॥ ४८॥

मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, चन्द्रमा और सूर्यसे भी नहीं डरता, तब उस अकेली तथा मदोन्मत्त स्त्रीसे भला क्यों डरूँगा? पत्थरपर सान धरे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे मैं उस स्त्रीका वध कर दूँगा। आज आप मेरा बाहुबल तो देखिये और इस स्त्रीके साथ युद्ध करनेके लिये आपको संग्राममें जानेकी आवश्यकता नहीं है; आप केवल सुखपूर्वक विहार कीजिये॥ ४९—५१॥

व्यासजी बोले—दैत्यराज महिषसे मदोन्मत्त बाष्कलके ऐसा कहनेपर वहाँ उपस्थित दुर्धर अपने राजा महिषासुरको प्रणाम करके कहने लगा॥ ५२॥

दुर्धर बोला—हे महाराज महिष! रहस्यमय ढंगसे आयी हुई उस देवनिर्मित अठारह भुजाओंवाली तथा मनोहर देवीपर मैं विजय प्राप्त करूँगा॥ ५३॥

हे राजन्! आपको भयभीत करनेके लिये ही देवताओंने इस मायाकी रचना की है। यह एक विभीषिकामात्र है—ऐसा जानकर आप अपने मनकी व्याकुलता दूर कर दीजिये॥ ५४॥

हे राजन्! यह सब तो राजनीतिकी बात हुई, अब आप मन्त्रियोंका कर्तव्य सुनिये। हे दानवेन्द्र! तीन प्रकारके मन्त्री संसारमें होते हैं। उनमें कुछ सात्त्विक, कुछ राजस तथा अन्य तामस होते हैं। सात्त्विक मन्त्री अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करते हैं। वे अपने स्वामीके कार्यमें बिना कोई अवरोध उत्पन्न किये अपना कार्य करते हैं। ऐसे मन्त्री एकाग्रचित्त, धर्मपरायण तथा मन्त्रशास्त्रों (मन्त्रणासे सम्बन्धित शास्त्र)-के विद्वान् होते हैं॥ ५५—५७॥

राजस प्रकृतिके मन्त्री चंचल चित्तवाले होते हैं और वे सदा अपना कार्य साधनेमें लगे रहते हैं। जब कभी उनके मनमें आ जाता है, तब वे अपने स्वामीका भी काम कर देते हैं॥ ५८॥

तामस प्रकृतिके मन्त्री लोभपरायण होते हैं और वे सदैव अपना कार्य सिद्ध करनेमें संलग्न रहते हैं। वे अपने स्वामीका कार्य विनष्ट करके भी अपना

समये ते विभिद्यन्ते परैस्तु परिवञ्चिताः।
स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशन्ति गृहस्थिताः॥ ६०

कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्तासिवत्सदा।
संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा॥ ६१

विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन् कदाचन।
विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मन्त्रहानिः सदैव हि॥ ६२

खलाः किं किं न कुर्वन्ति विश्वस्ता लोभतत्पराः।
तामसाः पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा॥ ६३

तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाहं रणमस्तके।
चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम॥ ६४

गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरः।
पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः॥ ६५

कार्य सिद्ध करते हैं। वे समय आनेपर परपक्षके लोगोंसे प्रलोभन पाकर अपने स्वामीका भेद खोल देते हैं और घरमें बैठे-बैठे अपनी कमजोरी शत्रुपक्षके लोगोंको बता देते हैं। ऐसे मन्त्री म्यानमें छिपी तलवारकी भाँति अपने स्वामीके कार्यमें बाधा डालते हैं और संग्रामकी स्थिति उत्पन्न होनेपर सदा उन्हें डराते रहते हैं॥ ५९—६१॥

हे राजन्! उन मन्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनका विश्वास करनेपर काम बिगड़ जाता है और गुप्त भेद भी खुल जाता है। लोभी, तमोगुणी, पापी, बुद्धिहीन, शठ तथा खल मन्त्रियोंका विश्वास कर लेनेपर वे क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालते?॥ ६२-६३॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! मैं स्वयं युद्धभूमिमें जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप किसी भी तरहकी चिन्ता न करें। मैं उस दुराचारिणी स्त्रीको पकड़कर आपके पास शीघ्र ले आऊँगा। आप मेरा बल तथा धैर्य देखें। मैं अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करूँगा॥ ६४-६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीपराजयकरणाय दुर्धरप्रबोधवचनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

~~o~~

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

बाष्कल और दुर्मुखका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तौ महाबाहू दैत्यौ बाष्कलदुर्मुखौ।
जग्मतुर्मददिग्धाङ्गौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ॥ १

तौ गत्वा समरे देवीमूचतुर्वचनं तदा।
दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगम्भीरया गिरा॥ २

देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना।
वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम्॥ ३

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर अभिमानसे चूर अंगोंवाले तथा सभी शस्त्रास्त्रोंके विशारद वे दोनों महाबाहु दैत्य बाष्कल तथा दुर्मुख समरांगणकी ओर चल पड़े॥ १॥

इसके बाद वे दोनों मदोन्मत्त दानव समरभूमिमें पहुँचकर मेघ-गर्जनके समान गम्भीर वाणीमें देवीसे कहने लगे॥ २॥

हे देवि! हे सुन्दरि! जिन महान् महिषासुरने सभी देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली है; सभी दैत्योंके अधिष्ठाता उन नरेश महिषासुरका आप वरण कर लें॥ ३॥

स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम्।
भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल॥ ४

त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचिस्मिते।
महिषे परमं भावं कुरु कान्ते मनोगतम्॥ ५

कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम्।
त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वाञ्छितम्॥ ६

देव्युवाच

जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता।
मन्दबुद्धिबलात्यर्थं भजेयं महिषं शठम्॥ ७

कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजन्ति कुलस्त्रियः।
अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः॥ ८

का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम्।
पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी॥ ९

गच्छतं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मुखौ।
वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम्॥ १०

पातालं गच्छ वाभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया।
रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम्॥ ११

हत्वाहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम।
इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे यथेच्छसि तथा कुरु॥ १२

मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन।
भविष्यति चतुष्पाद दिवि वा गिरिकन्दरे॥ १३

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ।
धनुर्बाणधरौ वीरौ युद्धकामौ बभूवतुः॥ १४

वे सभी लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य-रूप धारण करके तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत होकर एकान्तमें आपसे मिलनेके लिये आयेंगे॥ ४॥

हे सुन्दर मुसकानवाली देवि! [उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लेनेपर] आपको तीनों लोकोंका वैभव निश्चय ही प्राप्त हो जायगा। अतः हे कान्ते! उन महिषासुरके प्रति आप अपने मनमें परम प्रेमभाव रखिये॥ ५॥

हे कोकिलभाषिणि! महान् पराक्रमी महिषासुरको अपना पति बनाकर आप स्त्रियोंके लिये अभीष्ट अद्भुत सांसारिक सुख प्राप्त करेंगी॥ ६॥

देवी बोलीं—अरे दुष्ट! क्या तुम यह समझ रहे हो कि यह कोई काममोहित, बुद्धिहीन तथा बलरहित नारी है? मैं उस मूर्ख महिषासुरकी सेवा कैसे कर सकती हूँ?॥ ७॥

कुलीन स्त्रियाँ कुल, चरित्र तथा गुणमें समानता रखनेवाले एवं रूप, चतुरता, बुद्धि, व्यवहार, क्षमा आदिसे विशेषरूपसे सम्पन्न पुरुषको ही स्वीकार करती हैं॥ ८॥

ऐसी कौन देवरूपिणी नारी होगी, जो कामातुर होकर पशुरूपधारी तथा पशुओंमें भी अधम महिषको अपना पति बनाना चाहेगी?॥ ९॥

हे बाष्कल और दुर्मुख! तुम लोग तत्काल अपने राजा महिषासुरके पास जाओ और हाथीके समान विशाल शरीरवाले तथा शृङ्गधारी उस दानवसे मेरा सन्देश कह दो—'तुम पाताललोक चले जाओ अथवा यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करो। संग्राम होनेपर ही इन्द्र निर्भय हो सकते हैं—यह निश्चित है। मैं तुम्हारा वध करके ही जाऊँगी, बिना तुम्हें मारे मैं नहीं जा सकती। हे महामूर्ख! यह समझकर अब तुम जो चाहते हो वैसा करो। हे चतुष्पाद! बिना मुझको पराजित किये पृथ्वीके किसी भी भागमें, अन्तरिक्ष या पर्वतकी गुफामें कहीं भी अब तुम्हें शरण नहीं मिलेगी'॥ १०—१३॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर क्रोधसे तमतमाये नेत्रोंवाले वे दोनों दैत्य धनुष-बाण लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये॥ १४॥

कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता।
उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह॥ १५

भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति।
कृत्वातिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये॥ १६

तयोस्तु बाष्कलस्तूर्णं सम्मुखोऽभूद् रणाङ्गणे।
दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः॥ १७

तयोर्युद्धमभूद् घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा।
बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मन्दचेतसाम्॥ १८

ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम्।
जघान पञ्चभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ १९

दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः।
सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरिस्थिताम्॥ २०

सापि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम्।
जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः॥ २१

अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम्।
बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हन्तुमुपाययौ॥ २२

आगच्छन्तं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम्।
चण्डिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले॥ २३

बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः।
चिक्षेप च गदां सोऽपि चण्डिकां चण्डविक्रमः॥ २४

तमागच्छन्तमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि।
जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः॥ २५

वे भगवती जगदम्बा भी गम्भीर गर्जना करके निर्भीक भावसे विराजमान थीं। हे कुरुनन्दन! वे दोनों दैत्य घनघोर बाण-वृष्टि करने लगे॥ १५॥

भगवती जगदम्बा भी देवताओंकी कार्य-सिद्धिके निमित्त अत्यन्त मधुर नाद करती हुई उन दोनों दानवोंपर बाण-समूह बरसाने लगीं॥ १६॥

उन दोनोंमेंसे बाष्कल शीघ्रतापूर्वक समरभूमिमें देवीके सामने आ गया। उस समय दुर्मुख केवल दर्शक बनकर देवीकी ओर मुख करके खड़ा रहा॥ १७॥

अब भगवती तथा बाष्कलके बीच बाणों, तलवार तथा परिघके प्रहारसे भीषण युद्ध होने लगा, जो उत्साहहीन चित्तवाले लोगोंके लिये भयदायक था॥ १८॥

तत्पश्चात् युद्धके लिये उन्मत्त उस बाष्कलको देखकर जगदम्बिका कुपित हो गयीं और उन्होंने पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीखे बनाये गये तथा कानोंतक खींचे गये पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ १९॥

उस दानवने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे देवीके बाणोंको काट दिया और पुनः सिंहपर विराजमान भगवतीपर सात बाणोंसे प्रहार किया॥ २०॥

देवी भगवतीने उसके बाणोंको काटकर पानी चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए दस बाणोंसे उस दुष्टपर प्रहार किया और वे बार-बार जोर-जोरसे हँसने लगीं॥ २१॥

जगदम्बाने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका धनुष काट डाला। तब बाष्कल भी गदा लेकर देवीको मारनेके लिये उनकी ओर दौड़ा॥ २२॥

अभिमानमें चूर उस दानवको हाथमें गदा लिये आता हुआ देखकर देवी चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसे धराशायी कर दिया॥ २३॥

बाष्कल मुहूर्तभर पृथ्वीपर पड़ा रहा, इसके बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और प्रचण्ड, पराक्रमी उस वीरने भी भगवतीपर गदा चला दी॥ २४॥

उस दैत्यको सामने आते देखकर भगवतीने कुपित होकर बाष्कलके वक्षःस्थलपर त्रिशूलसे प्रहार किया, जिससे वह गिर पड़ा और मर गया॥ २५॥

पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः।
जयेति च मुदा देवाश्चुक्रुशुर्गगने स्थिताः॥ २६

तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः।
आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ २७

तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः।
धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः॥ २८

तमागच्छन्तमालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
कोपयन्ती दानवं तं ज्याघोषञ्च चकार ह॥ २९

सोऽपि बाणान्मुमोचाशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान्।
स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च॥ ३०

तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप।
बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा ॥ ३१

रणभूमौ तदा जाता रुधिरौघवहा नदी।
पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा॥ ३२

यथा सन्तरणार्थाय यमकिङ्करनायकैः।
तुम्बीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा॥ ३३

रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा।
शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः॥ ३४

गोमायुसारमेयाश्च काकाः कङ्का अयोमुखाः।
गृध्राः श्येनाश्च खादन्ति शरीराणि दुरात्मनाम्॥ ३५

ववौ वायुश्च दुर्गन्धो मृतानां देहसङ्गतः।
अभूत्किलकिलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम्॥ ३६

तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः कालमोहितः।
देवीमुवाच गर्वेण कृत्वा चोर्ध्वकरं शुभम्॥ ३७

बाष्कलके गिरते ही उस दुरात्माकी सेना भाग गयी और आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जय-जयकार करने लगे॥ २६॥

उस दैत्यके मार दिये जानेपर महाबली दुर्मुख क्रोधसे आँखें लाल किये रणभूमिमें देवीके समक्ष आया॥ २७॥

उस समय वह वैभवशाली दैत्य 'अरी अबले! ठहरो, ठहरो'—ऐसा बार-बार कहते हुए धनुष-बाण धारण करके कवच पहने हुए रथपर सवार था॥ २८॥

उस दानवको अपनी ओर आते देखकर देवीने शंखध्वनि की और उसे कुपित करती हुई वे अपने धनुषकी टंकार करने लगीं॥ २९॥

दुर्मुख भी बड़ी तेजीसे सर्पके समान विषैले तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा। तब महामायाने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और वे गर्जन करने लगीं॥ ३०॥

हे राजन्! बाण, शक्ति, गदा, मूसल और तोमर आदिके प्रहारसे उन दोनोंमें परस्पर भयंकर युद्ध होने लगा॥ ३१॥

उस समय रणभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली। उसके तटपर गिरे हुए मस्तक इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो वैतरणी पार करनेके लिये तैरना सीखनेवाले यमदूतोंके द्वारा प्रसन्नतापूर्वक तुम्बीफल लाकर रख दिये गये हों॥ ३२-३३॥

भूमिपर कटकर गिरे शवों तथा उन्हें खानेवाले भेड़िये आदि जन्तुओंसे वह रणभूमि अत्यन्त भयंकर तथा दुर्गम हो गयी थी॥ ३४॥

सियार, कुत्ते, कौए, कंक, अयोमुख नामक पक्षी, गिद्ध और बाज उन दुष्ट दानवोंके शरीरको [नोच-नोचकर] खा रहे थे॥ ३५॥

मृतकोंके शरीरके संसर्गसे दुर्गन्धित हवा चल रही थी और मांसाहारी पक्षियोंकी किलकिला ध्वनि हो रही थी॥ ३६॥

तब कालसे मोहित वह दुरात्मा दुर्मुख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और गर्वके साथ अपनी सुन्दर भुजा उठाकर देवीसे कहने लगा—॥ ३७॥

गच्छ चण्डि हनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे।
दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम्॥ ३८

देव्युवाच

आसन्नमरणः कामं प्रलपस्यद्य मोहितः।
अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथायं बाष्कलो हतः॥ ३९

गच्छ वा तिष्ठ वा मन्द मरणं यदि रोचते।
हत्वा त्वां वै वधिष्यामि बालिशं महिषीसुतम्॥ ४०

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः।
मुमोच बाणवृष्टिं तु चण्डिकां प्रति दारुणाम्॥ ४१

सापि तां तरसा छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः।
जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा॥ ४२

तयोः परस्परं युद्धं सञ्जातं चातिकर्कशम्।
भयदं कातराणाञ्च शूराणां बलवर्धनम्॥ ४३

देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम्।
तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभञ्ज रथमुत्तमम्॥ ४४

रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा।
गदां गृहीत्वा दुर्धर्षां जगाम चण्डिकां प्रति॥ ४५

चकार स गदाघातं सिंहमौलौ महाबलः।
न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः॥ ४६

अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरःस्थितम्।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत्॥ ४७

छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः।
जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम्॥ ४८

हे चण्डिके! हे मूर्ख बाले! भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा अथवा हे वामोरु! मदसे मत्त महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ ३८॥

देवी बोलीं—अब तुम्हारी मृत्यु समीप है, तभी तुम मोहित होकर ऐसा प्रलाप कर रहे हो। अभी मैं तुम्हें भी उसी प्रकार मार डालूँगी, जैसे मैंने इस बाष्कलको मारा है॥ ३९॥

हे मूर्ख! भाग जाओ और यदि तुम्हें मृत्यु अच्छी लगती हो तो रुके रहो। तुम्हें मारनेके बाद मैं मूर्ख महिषासुरका भी संहार कर दूँगी॥ ४०॥

देवीका वह वचन सुनकर मरणोन्मुख दुर्मुख भगवती चण्डिकाके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगा॥ ४१॥

भगवतीने भी कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस बाण-वृष्टिको तत्काल व्यर्थ करके उस दैत्यपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरपर किया था॥ ४२॥

अब उन दोनोंमें बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंके लिये भयदायक तथा वीरोंके लिये उत्साहवर्धक था॥ ४३॥

देवीने बड़ी फुर्तीके साथ उसके हाथमें स्थित धनुषको काट डाला और उसी तरह अपने पाँच बाणोंसे उसके उत्तम रथको छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ४४॥

रथके नष्ट हो जानेपर महाबाहु दुर्मुख अपनी भयानक गदा लेकर पैदल ही भगवती चण्डिकाकी ओर दौड़ा॥ ४५॥

[उनके पास पहुँचकर] उस महाबली दैत्यने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार कर दिया, किंतु महाशक्तिशाली सिंह गदासे मारे जानेपर भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ॥ ४६॥

उसी समय जगदम्बाने हाथमें गदा लिये हुए उस दुर्मुखको सम्मुख उपस्थित देखकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसके किरीटयुक्त मस्तकको काट दिया॥ ४७॥

मस्तक कट जानेपर दुर्मुख जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। तब देवता परम प्रसन्न होकर देवीकी जय-जयकार करने लगे॥ ४८॥

तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः ।
पुष्पवृष्टिं तथा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ४९

दुर्मुखके मर जानेपर आकाशमें विद्यमान देवता भगवतीकी स्तुति करने लगे। उनपर पुष्प बरसाने लगे तथा उनकी जयकार करने लगे ॥ ४९ ॥

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः ।
जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥ ५०

रणभूमिमें उस महान् दानवको मरा हुआ देखकर ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आनन्दित हो उठे ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे महिषसेनाधिपबाष्कलदुर्मुखनिपातनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

चिक्षुर और ताम्रका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्च्छितः ।
उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत् ॥ १

निहतौ दानवौ शूरौ रणे दुर्मुखबाष्कलौ ।
तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यन्तु दैवचेष्टितम् ॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! दुर्मुख मार दिया गया—यह सुनकर महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित हो गया और दानवोंसे बार-बार कहने लगा—'यह क्या हो गया?' दुर्मुख और बाष्कल तो बड़े शूर-वीर दानव थे। एक सुकुमार नारीने उन्हें रणभूमिमें मार डाला, यह तो महान् आश्चर्य है! दैवका विधान तो देखो ॥ १-२ ॥

कालो हि बलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः ।
नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः ॥ ३

समय बड़ा बलवान् होता है, वही परतन्त्र मनुष्योंके पुण्य तथा पापके अनुसार सदा उनके सुखों-दुःखोंका निर्माण करता है ॥ ३ ॥

निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् ।
ब्रुवन्तु मिलिताः सर्वे यद्युक्तं कार्यसङ्कटे ॥ ४

ये दोनों ही श्रेष्ठ दानव मार डाले गये हैं, अब इसके बाद क्या करना चाहिये? इस विषम स्थितिमें सब लोग विचार करके जो उचित हो, बतायें ॥ ४ ॥

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्र महिषेऽतिबलान्विते ।
चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः ॥ ५

राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने ।
इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः ॥ ६

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! इस प्रकार महाशक्तिशाली महिषासुरके कहनेपर उसके महारथी सेनाध्यक्ष चिक्षुरने कहा—हे राजन्! स्त्रीको मार डालनेमें चिन्ता किस बातकी! मैं उसे मार डालूँगा ॥ ५$\frac{१}{२}$ ॥

द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् ।
महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः ॥ ७

ऐसा कहकर वह चिक्षुराख्य रथपर बैठकर दूसरे महाबली ताम्रको अपना अंगरक्षक बनाकर सेनाकी तुमुल ध्वनिसे आकाश एवं दिशाओंको निनादित करता हुआ युद्धके लिये चल पड़ा ॥ ६-७ ॥

तमागच्छन्तमालोक्य देवी भगवती शिवा ।
चकार शङ्खज्याघोषं घण्टानादं महाद्भुतम् ॥ ८

तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः ।
किमेतदिति भाषन्तो दुद्रुवुर्भयकम्पिताः ॥ ९

उसे आता हुआ देखकर कल्याणमयी भगवतीने अद्भुत शंखध्वनि, घण्टानाद तथा धनुषकी टंकार की। उस ध्वनिसे सभी राक्षस भयभीत हो गये। 'यह क्या'—ऐसा कहते हुए वे भयसे काँपने लगे तथा भाग खड़े हुए ॥ ८-९ ॥

चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान्।
उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम्॥ १०

अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम्।
तिष्ठन्त्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि॥ ११

इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः।
आगत्य सङ्गरे देवीमित्युवाच गतव्यथः॥ १२

किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान्।
नाहं बिभेमि तन्वङ्गि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम्॥ १३

स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम्।
उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने॥ १४

स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुन्दरि।
न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन॥ १५

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः।
भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम्॥ १६

धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम्।
लालितोऽयं प्रियो देहः कृन्तनीयः शितैः शरैः॥ १७

तैलाभ्यङ्गैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः।
पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः परेषुभिः॥ १८

देहं छित्त्वासिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः।
धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत्॥ १९

त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकाङ्क्षसे यतः।
सुखं सम्भोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि सङ्गरे॥ २०

खड्गपातं गदाघातं भेदनञ्च शिलीमुखैः।
मरणान्ते तु संस्कारो गोमायुमुखकर्षणम्॥ २१

उन्हें भागते हुए देखकर चिक्षुराख्यने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—तुम्हारे सामने कौन-सा भय आ गया? मैं इस मदोन्मत्त नारीको आज ही बाणोंद्वारा मार डालूँगा। हे दैत्यो! तुम लोग भय छोड़कर लड़ाईके मोर्चेपर डटे रहो॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उस पराक्रमी दैत्यश्रेष्ठ चिक्षुरने हाथमें धनुष उठा लिया और युद्धभूमिमें आकर वह निश्चिन्ततापूर्वक भगवतीसे कहने लगा—हे विशालाक्षि! अन्य साधारण मनुष्योंको भयभीत करती हुई तुम क्यों गरज रही हो? तुम्हारा यह व्यर्थ गर्जन सुनकर मैं भयभीत नहीं हो सकता॥ १२-१३॥

हे सुलोचने! स्त्रीका वध करना पाप है तथा इससे जगत्में अपकीर्ति होती है—यह जानकर मेरा चित्त तुम्हें मारनेसे विचलित हो रहा है। हे सुन्दरि! तुम-जैसी स्त्रियोंके कटाक्षों तथा हाव-भावोंसे समरका कार्य सम्पन्न हो जाता है; कभी कहीं भी शस्त्रोंद्वारा स्त्रीका युद्ध नहीं हुआ है॥ १४-१५॥

हे सुन्दरि! तुम्हें तो पुष्पसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, तब फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या; क्योंकि तुम्हारी-जैसी सुन्दरियोंके शरीरमें मालतीकी पंखुड़ी भी पीड़ा उत्पन्न कर सकती है॥ १६॥

इस संसारमें क्षात्रधर्मानुयायी लोगोंके जन्मको धिक्कार है; क्योंकि वे बड़े प्यारसे पाले गये अपने शरीरको भी तीक्ष्ण बाणोंसे छिदवाते हैं!॥ १७॥

तेलकी मालिशसे, फूलोंकी हवासे तथा स्वादिष्ट भोजन आदिसे पोषित इस प्रिय शरीरको शत्रुओंके बाणोंसे बिंधवाते हैं। तलवारकी धारसे अपना शरीर कटवाकर मनुष्य धनवान् होना चाहते हैं। ऐसे धनको धिक्कार है जो प्रारम्भमें ही दुःख देनेवाला होता है; तो बादमें क्या वह सुख देनेवाला हो सकता है?॥ १८-१९॥

हे सुन्दरि! तुम भी मूर्ख ही हो, तभी तो सम्भोगजन्य सुखको त्यागकर युद्धकी इच्छा कर रही हो। युद्धमें तुम कौन-सा लाभ समझ रही हो?॥ २०॥

युद्धमें तलवारें चलती हैं, गदाका प्रहार होता है और बाणोंसे शरीरका बेधन किया जाता है। मृत्युके अन्तमें सियार अपने मुँहसे नोच-नोचकर उस देहका संस्कार करते हैं॥ २१॥

तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम्।
रणे मृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः॥ २२

तस्माद् गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः।
भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम्॥ २३

व्यास उवाच

एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदम्बिका।
किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पण्डितः॥ २४

नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा।
न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते॥ २५

मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एव हि।
राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः॥ २६

संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यशःस्तम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम्॥ २७

देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम्।
हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव॥ २८

जीवितेच्छास्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव।
तदा गच्छन्तु पातालं दानवाः सर्व एव ते॥ २९

मुमूर्षा यदि वश्चित्ते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः।
सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना॥ ३०

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दानवो बलदर्पितः।
मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमिवापराम्॥ ३१

चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा।
जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः॥ ३२

युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम्।
गदया घातयामास तं रथाजगदम्बिका॥ ३३

धूर्त कवियोंने उसी युद्धकी अत्यन्त प्रशंसा की है कि रणभूमिमें मरनेवालोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। उनका यह कहना केवल अर्थवादमात्र है॥ २२॥

अतः हे वरारोहे! तुम्हारा मन जहाँ लगे, वहाँ चली जाओ अथवा तुम देवताओंका दमन करनेवाले मेरे स्वामी महाराज महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ २३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार बोलते हुए उस दैत्यसे भगवती जगदम्बाने कहा—मूर्ख! तुम अपनेको बुद्धिमान् पण्डितके समान मानकर व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? तुम न तो नीतिशास्त्र जानते हो, न आन्वीक्षिकी विद्या ही जानते हो, तुमने कभी न वृद्धोंकी सेवा की है और न तो तुम्हारी बुद्धि ही धर्मपरायण है॥ २४-२५॥

क्योंकि तुम मूर्खकी सेवामें लगे रहते हो, अतः तुम भी मूर्ख हो। जब तुम्हें राजधर्म ही ज्ञात नहीं, तब मेरे सामने क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहे हो?॥ २६॥

संग्राममें महिषासुरका वध करके समरांगणको रुधिरसे पंकमय बनाकर अपना यश-स्तम्भ सुदृढ़ स्थापितकर मैं सुखपूर्वक चली जाऊँगी॥ २७॥

देवताओंको दुःख देनेवाले इस दुराचारी तथा मदोन्मत्त दानवको मैं अवश्य मार डालूँगी। तुम सावधान होकर युद्ध करो। हे मूर्ख! यदि तुम्हें तथा महिषासुरको जीनेकी अभिलाषा हो तो सभी दानव पाताललोकको शीघ्र ही चले जायँ; अन्यथा यदि तुमलोगोंके मनमें मरनेकी इच्छा हो तो तुरंत युद्ध करो। यह मेरा संकल्प है कि मैं सभी दानवोंको मार डालूँगी॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—देवीका वचन सुनकर बलके अभिमानसे युक्त वह दैत्य उनपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, मानो दूसरे मेघ ही जलकी धारा बरसा रहे हों॥ ३१॥

तब भगवतीने अपने तीक्ष्ण बाणोंद्वारा उसके सभी बाण काट डाले और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंसे उसपर प्रहार किया। उन दोनोंमें परस्पर विस्मयकारी युद्ध होने लगा। जगदम्बाने अपने वाहन सिंहपरसे ही उस दैत्यपर गदासे प्रहार किया॥ ३२-३३॥

मूर्च्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाभिहतो भृशम्।
मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः॥ ३४

तं तथामूर्च्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः।
आजगाम रणे योद्धुं चण्डिकां प्रति चापलात्॥ ३५

आगच्छन्तं तु तं वीक्ष्य हसन्ती प्राह चण्डिका।
एह्येहि दानवश्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम्॥ ३६

किं भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषैः।
महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम्॥ ३७

किं भवद्भिर्हतैर्मन्दैर्ममापि विफलः श्रमः।
अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि॥ ३८

तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयन्त्विह।
पश्येन्मां सोऽपि मन्दात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम्॥ ३९

ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह।
चण्डिकां प्रति कोपेन कर्णाकृष्टशरासनः॥ ४०

भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शरासनम्।
बाणान्मुमोच तरसा हन्तुकामा सुराहितम्॥ ४१

चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्च्छां त्यक्त्वोत्थितः पुनः।
गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्सम्मुखः क्षणात्॥ ४२

चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ।
युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणाङ्गणे॥ ४३

कुपिता च महामाया ववर्ष शरसन्ततिम्।
चकार दानवान् सर्वान् बाणक्षततनुच्छदान्॥ ४४

असुराः क्रोधसम्मूढा बभूवुः शरताडिताः।
चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रति रुषान्विताः॥ ४५

गदासे अत्यधिक आहत होनेके कारण वह दुष्टात्मा दैत्य मूर्च्छित हो गया और दो मुहूर्ततक पाषाणकी भाँति रथपर ही पड़ा रहा॥ ३४॥

इस प्रकार उसे मूर्च्छित देखकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला ताम्र नामक दैत्य चण्डिकासे लड़नेके लिये वेगपूर्वक रणमें उपस्थित हो गया॥ ३५॥

उसे आते देखकर भगवती चण्डिका उससे हँसती हुई बोलीं—अरे दानवश्रेष्ठ! आओ-आओ, अभी तुम्हें यमलोक भेज देती हूँ॥ ३६॥

निर्बल और समाप्त आयुवाले तुमलोगोंके यहाँ आनेसे क्या लाभ? वह मूर्ख महिषासुर घरमें रहकर अपने जीनेका कौन-सा उपाय कर रहा है? देवताओंके शत्रु, दुष्टात्मा तथा पापी महिषासुरका संहार किये बिना तुम मूर्खोंको मारनेसे मुझे क्या लाभ होगा? इससे तो मेरा परिश्रम भी व्यर्थ हो जायगा, अतः तुमलोग घरपर जाकर महिषासुरको यहाँ भेज दो, जिससे वह मन्दबुद्धि भी मैं जिस रूपमें स्थित हूँ, उसमें मुझको देख ले॥ ३७—३९॥

भगवतीका वचन सुनकर वह ताम्र कुपित हो धनुषको कानतक खींचकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४०॥

देवताओंके शत्रु उस दैत्यको मारनेकी इच्छावाली ताम्राक्षी भगवती भी धनुष खींचकर उसके ऊपर वेगपूर्वक बाण छोड़ने लगीं॥ ४१॥

इतनेमें बलवान् चिक्षुराख्य भी मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ और तुरंत बाणसहित धनुष लेकर देवीके सामने आकर खड़ा हो गया॥ ४२॥

चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों ही अत्यन्त उग्र बलवान् और महान् वीर थे। अब वे दोनों ही मिलकर भगवती जगदम्बासे रणमें युद्ध करने लगे॥ ४३॥

तब महामाया क्रोधित होकर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगीं, और उन्होंने अपने बाणोंके प्रहारसे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न कर दिये॥ ४४॥

उन बाणोंसे आहत होकर सभी असुर क्रोधसे व्याकुल हो गये तथा रोषपूर्वक देवीपर बाणसमूह छोड़ने लगे। उस समय समस्त रणभूमिमें भगवतीके

बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः।
शिलीमुखक्षताः सर्वे वसन्ते च वने रणे॥ ४६

बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः॥ ४७

ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणं दृढम्।
जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च॥ ४८

नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषान्विता।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा॥ ४९

छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली।
बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके॥ ५०

पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः।
खड्गमादाय तरसा दुद्राव चण्डिकां प्रति॥ ५१

भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम्।
दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे॥ ५२

एकेन पातितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः।
कण्ठाच्च मस्तकं तस्य कृन्तितं चापरैः शरैः॥ ५३

एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ।
भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु सन्त्रस्तमानसम्॥ ५४

देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे।
पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः॥ ५५

ऋषयो देवगन्धर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः।
ऊचुस्ते जय देवीति चाम्बिकेति पुनः पुनः॥ ५६

बाणोंसे घायल सभी राक्षस ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे वसन्त ऋतुमें वनमें किंशुकके लाल पुष्प दिखायी पड़ते हों॥ ४५-४६॥

उस समरभूमिमें ताम्रके साथ देवीका भीषण युद्ध होने लगा। इसे देखनेवाले जो देवता आकाशमें स्थित थे, वे आश्चर्यचकित हो गये॥ ४७॥

उसी समय ताम्रने लोहेका बना हुआ एक सुदृढ़ तथा भयंकर मूसल लेकर देवीके सिंहके सिरपर प्रहार किया और वह जोरसे हँसने तथा गरजने लगा॥ ४८॥

तब उसे गरजता हुआ देखकर भगवती क्रोधित हो गयीं और उन्होंने तुरंत अपनी तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक काट डाला॥ ४९॥

सिर कट जानेपर भी वह मस्तकविहीन बलशाली ताम्र मूसल लिये हुए कुछ क्षणतक घूमता रहा, इसके बाद वह समरांगणमें गिर पड़ा॥ ५०॥

ताम्रको गिरा हुआ देखकर महाबली चिक्षुराख्य खड्ग लेकर बड़े वेगसे चण्डिकाकी ओर झपटा॥ ५१॥

हाथमें तलवार लिये उस दानवको रणमें अपनी ओर आते देखकर देवीने भी तुरंत पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ५२॥

भगवतीने एक बाणसे उसका खड्ग काट दिया, दूसरेसे उसका हाथ काट दिया और अन्य बाणोंसे उसका मस्तक कण्ठसे अलग कर दिया॥ ५३॥

इस प्रकार युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले उन दोनों क्रूर राक्षसोंका वध हो गया, तब उन दोनोंकी सेना भयभीत होकर चारों दिशाओंमें शीघ्रतापूर्वक भाग चली॥ ५४॥

उन दोनों दानवोंको रणमें मारा गया देखकर आकाशमें विराजमान सम्पूर्ण देवता आह्लादित हो गये और प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जयध्वनि करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। ऋषि, देवता, गन्धर्व, वेताल, सिद्ध और चारण—वे सब 'देवीकी जय, अम्बिकाकी जय' ऐसा बार-बार बोलने लगे॥ ५५-५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
ताम्रचिक्षुराख्यवधवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

बिडालाख्य और असिलोमाका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः।
प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान्॥ १

असिलोमबिडालाख्यप्रमुखान् युद्धदुर्मदान्।
सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान्॥ २

ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम्।
अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीम्॥ ३

असिलोमाग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव।
विनयावनतः शान्तो देवीं दैत्यवधोद्यताम्॥ ४

असिलोमोवाच

देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुन्दरि।
आगतासि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः॥ ५

कारणं कथयाद्य त्वं त्वया सन्धिं करोम्यहम्।
काञ्चनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च॥ ६

यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम्।
किमर्थं युद्धकामासि दुःखसन्तापवर्धनम्॥ ७

कथयन्ति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम्।
कोमलेऽतीव ते देहे पुष्पघातासहे भृशम्॥ ८

किमर्थं शस्त्रसम्पातान्सहसीति विसिस्मिये।
चातुर्यस्य फलं शान्तिः सततं सुखसेवनम्॥ ९

तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि।
संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः॥ १०

व्यासजी बोले—उस देवीने चिक्षुराख्य तथा ताम्रका वध कर दिया—यह सुनकर महिषासुरको बड़ा विस्मय हुआ। अब उसने विशाल सेनासे युक्त, शस्त्रास्त्र लिये हुए तथा कवच धारण किये हुए असिलोमा, बिडालाख्य आदि प्रमुख युद्धोन्मत्त तथा महाबली दैत्योंको भगवतीका वध करनेके लिये भेजा॥ १-२॥

वहाँपर उन्होंने सिंहके ऊपर विराजमान, अठारह भुजाओंसे सुशोभित, खड्ग तथा ढाल धारण की हुई दिव्यस्वरूपवाली भगवतीको देखा॥ ३॥

तब असिलोमा दैत्योंके वधके लिये उद्यत देवीके पास जाकर विनयावनत होकर शान्तिपूर्वक उनसे हँसते हुए कहने लगा—॥ ४॥

असिलोमा बोला—हे देवि! सच्ची बात बताइये, आप यहाँ किस प्रयोजनसे आयी हैं? हे सुन्दरि! इन निरपराध दैत्योंको आप क्यों मार रही हैं? इसका कारण बताइये। मैं अभी आपके साथ सन्धि करनेको तैयार हूँ। हे वरारोहे! सुवर्ण, मणि, रत्न और अच्छे-अच्छे पात्र जो भी आप चाहती हैं, उन्हें लेकर यहाँसे शीघ्र चली जाइये। आप युद्धकी इच्छुक क्यों हैं? महात्मा पुरुष कहते हैं कि युद्ध दुःख तथा सन्तापको बढ़ानेवाला और सम्पूर्ण सुखोंका विघातक होता है॥ ५—७½॥

मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है कि पुष्पका भी आघात न सह सकनेवाले अपने अत्यन्त सुकोमल शरीरमें आप शस्त्रोंके आघात सहनेके लिये क्यों तैयार हैं? चातुर्यका फल तो शान्ति और निरन्तर सुख भोगना है। अतः एकमात्र दुःखके कारणस्वरूप इस संग्रामको आप क्यों करना चाहती हैं? इस संसारमें सुख ग्रहण करना चाहिये और दुःखका परित्याग करना चाहिये—यही सर्वमान्य नियम है॥ ८—१०॥

तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः।
आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम्॥ ११

नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिन्तकैः।
सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने॥ १२

तथापि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्।
परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि॥ १३

स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले।
अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत्॥ १४

परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः।
अविरोधेन कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम्॥ १५

तस्मात्त्वमपि कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु।
अपराधं विना दैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके॥ १६

दयाधर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः।
तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः॥ १७

कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव।

देव्युवाच

त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता॥ १८

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम्।
विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा॥ १९

न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यन्ती साक्षिरूपिणी।
न मे कदापि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता॥ २०

धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम्।
व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा॥ २१

साधूनां रक्षणं कार्यं हन्तव्या येऽप्यसाधवः।
वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः॥ २२
युगे युगे तानेवाहमवतारान्बिभर्मि च।

वह सुख भी नित्य और अनित्यके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। आत्मज्ञानसम्बन्धी सुखको 'नित्य' और भोगजनित सुखको 'अनित्य' माना गया है। वेद और शास्त्रके तत्त्वका चिन्तन करनेवाले लोगोंको चाहिये कि उस विनाशशील अनित्य सुखको त्याग दें। हे वरानने! यदि आप नास्तिकका मत स्वीकार करती हों तो भी इस यौवनको पाकर उत्तमसे उत्तम सुखोंका भोग करें। हे कृशोदरि! हे भामिनि! यदि परलोकके विषयमें आपको सन्देह हो तो इस पृथ्वीपर ही सदाचारपूर्वक रहती हुई स्वर्गीय सुख प्राप्त करनेमें सदा तत्पर रहें, नहीं तो शरीरमें यह यौवन अनित्य है—ऐसा समझकर आपको सदा सत्कर्म करते रहना चाहिये॥ ११—१४॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे दूसरोंको पीड़ित करनेके कार्यका त्याग कर दें। अतः बिना विरोधके धर्म, अर्थ और कामका सेवन करना चाहिये। इसलिये हे कल्याणि! आप अपनी बुद्धि धर्मकृत्यमें लगाइये। हे अम्बिके! आप हम दैत्योंको बिना अपराधके क्यों मार रही हैं? दयाभाव पुरुषमात्रका शरीर है और सत्यमें ही उसका प्राण प्रतिष्ठित कहा गया है। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दया और सत्यकी सदा रक्षा करें। हे देवि! आप दानवोंके संहारमें अपना प्रयोजन बतायें?॥ १५—१७½॥

देवी बोलीं—हे महाबाहो! तुमने जो यह पूछा है कि मैं यहाँ क्यों आयी हूँ—उसे बताती हूँ और दानववधका प्रयोजन भी बताती हूँ। हे दैत्य! मैं सदा साक्षी बनकर सभी प्राणियोंके न्याय तथा अन्यायको देखती हुई सब लोकोंमें निरन्तर विचरती रहती हूँ। मुझे न तो कभी भोगविलासकी इच्छा है, न लोभ है और न किसीके प्रति द्वेषभाव ही है॥ १८—२०॥

धर्मकी मर्यादा रखनेके लिये मैं इस संसारमें विचरण करती रहती हूँ। साधुपुरुषोंकी रक्षा करना—अपने इस व्रतका मैं सदा पालन करती हूँ। अनेक अवतार धारण करके मैं सज्जनोंकी रक्षा करती हूँ, जो असाधु हैं उनका संहार करती हूँ और वेदोंका संरक्षण करती हूँ। मैं प्रत्येक युगमें उन अवतारोंको धारण करती रहती हूँ॥ २१-२२½॥

महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हन्तुमुद्यतः ॥ २३
ज्ञात्वाहं तद्वधार्थं भोः प्राप्तास्मि राक्षसाधुना।
तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम् ॥ २४

गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यमेतदुदाहृतम्।
ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम् ॥ २५

किमन्यान् प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह।
सन्धिश्चेत्कर्तुमिच्छास्ति राज्ञस्तव मया सह ॥ २६
सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथासुखम्।
देवद्रव्यं तु यत्किञ्चिद्धृतं जित्वा रणे सुरान्।
तद्दत्त्वा यान्तु पातालं प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ २७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असिलोमा पुरःस्थितः।
बिडालाख्यं महावीरं पप्रच्छ प्रीतिपूर्वकम् ॥ २८

असिलोमोवाच

श्रुतं तेऽद्य बिडालाख्य भवान्या कथितं च यत्।
एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः सन्धिरेव वा ॥ २९

बिडालाख्य उवाच

न सन्धिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी
युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन्।
दृष्ट्वा हतान् प्रेरयते तथास्मा-
न्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥ ३०
(दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां
धर्मः सदा मानविवर्जितानाम्।
आज्ञापराणां वशवर्तिकानां
पाञ्चालिकानामिव सूत्रभेदात् ॥)
गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च
मयापि वक्तव्यमिदं कठोरम्।
गच्छन्तु पातालमितश्च सर्वे
दत्त्वाथ रत्नानि धनं सुराणाम् ॥ ३१

दुराचारी महिषासुर देवताओंको मार डालनेके लिये उद्यत है—यह जानकर मैं उसके वधके लिये इस समय यहाँ उपस्थित हुई हूँ। हे दानव! मैं उस दुराचारी तथा सुरद्रोही महाबली महिषको मार डालूँगी ॥ २३-२४ ॥

अब तुम इच्छानुसार जाओ या रुके रहो, मैंने तुमसे यह सब सच-सच बतला दिया। अतः जाकर अपने उस दुराचारी राजा महिषसे कह दो—'आप अन्य दैत्योंको क्यों भेजते हैं? स्वयं युद्ध कीजिये।' यदि तुम्हारे राजाकी इच्छा मेरे साथ सन्धि करनेकी हो, तो सभी दैत्य शत्रुता छोड़कर सुखपूर्वक पाताल चले जायँ। देवताओंको जीतकर जो भी देवद्रव्य असुरोंने छीन लिया है, वह सब वापस करके वे उस पातालपुरीमें चले जायँ, जहाँ इस समय प्रह्लाद विराजमान हैं ॥ २५—२७ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार देवीका वचन सुनकर असिलोमा भगवतीके सामने ही महान् शूरवीर बिडालाख्यसे प्रीतिपूर्वक पूछने लगा— ॥ २८ ॥

असिलोमा बोला—बिडालाख्य! देवीने अभी-अभी जो कहा है, वह तो तुमने सुन लिया, इस स्थितिमें हमें सन्धि या विग्रह—क्या करना चाहिये? ॥ २९ ॥

बिडालाख्य बोला—युद्धमें मृत्युको निश्चित जानते हुए भी हमारे अभिमानी महाराज सन्धि नहीं करना चाहते। समरमें बहुत-से योद्धा मारे जा चुके हैं—यह देखकर भी वे हमें भेज रहे हैं। दैवको टाल सकनेमें भला कौन समर्थ है! ॥ ३० ॥

(सम्मानकी भावनासे रहित, स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाले तथा सदा उनके अधीन रहनेवाले सेवकोंका सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है। सूतके संकेतपर नर्तन करनेवाली कठपुतलीकी भाँति वे सदा परतन्त्र रहते हैं।)

अतः उन महिषासुरके सामने जाकर मेरे अथवा तुम्हारे द्वारा ऐसा अप्रिय वचन कैसे कहा जा सकता है कि देवताओंके धन एवं रत्न वापस करके सभी दानव यहाँसे पातालको लौट चलें? ॥ ३१ ॥

(प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव
न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम्।
सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं
मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम्॥)

न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो
राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम्॥ ३२

न नूनं तत्र गन्तव्यं हितं वा वक्तुमादरात्।
प्रष्टुं वापि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति॥ ३३

इति सञ्चिन्त्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये।
स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा॥ ३४

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ।
धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसङ्गतौ॥ ३५

प्रथमं तु बिडालाख्यः सप्तबाणान्मुमोच ह।
असिलोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित्॥ ३६

चिच्छेद तांस्तथाप्राप्तानम्बिका स्वशरैः शरान्।
बिडालाख्यं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः॥ ३७

प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समराङ्गणे।
मूर्च्छितोऽथ ममाराशु दानवो दैवयोगतः॥ ३८

बिडालाख्यं हतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः।
असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः॥ ३९

ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः।
देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्मनाम्॥ ४०

तथापि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया।
महिषो मन्दबुद्धिश्च न जानाति प्रियाप्रिये॥ ४१

(सदा प्रिय वचन बोलना चाहिये, किंतु वह असत्य न हो। वचन हितकारक तथा प्रिय होना चाहिये। यदि वचन सत्य होनेपर भी प्रिय न हो तो ऐसी दशामें बुद्धिमान् मनुष्योंके लिये मौन ही श्रेष्ठ होता है।)

नीतिशास्त्रका कथन है कि वीर पुरुषोंको चाहिये कि वे मिथ्या वचनोंद्वारा राजाको धोखेमें न डालें॥ ३२॥

[सत्य बात तो यह है कि] आदरके साथ हितकी बात कहने अथवा पूछनेके लिये हमलोगोंको वहाँ नहीं चलना चाहिये। वहाँ जानेपर राजा महिषासुर कोपाविष्ट हो जायँगे। यह विचारकर अब हमलोगोंको यहाँ युद्ध ही करना चाहिये। जहाँ प्राणका संशय हो वहाँ स्वामीके कार्यको मुख्य मानकर मृत्युको तृणसदृश समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार विचार करके वे दोनों वीर युद्धके लिये तत्पर हो गये और कवच धारण करके हाथोंमें धनुष-बाण लेकर रथपर आरूढ हो देवीके सामने आ डटे॥ ३५॥

सर्वप्रथम बिडालाख्यने देवीके ऊपर सात बाण चलाये। अस्त्र चलानेमें अत्यन्त निपुण असिलोमा दूर जाकर दर्शकके रूपमें खड़ा हो गया॥ ३६॥

भगवती जगदम्बाने अपने बाणोंसे बिडालाख्यके द्वारा चलाये गये उन बाणोंको काट डाला और पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये तीन बाणोंसे बिडालाख्यपर आघात किया॥ ३७॥

उन बाणोंकी असह्य वेदनासे पीड़ित होकर वह दैत्य समरभूमिमें गिर पड़ा, उसे मूर्च्छा आ गयी और कालयोगसे वह मर गया॥ ३८॥

इस प्रकार भगवतीके बाणसमूहोंसे रणमें बिडालाख्यको मारा गया देखकर असिलोमा भी हाथमें धनुष लेकरके युद्ध करनेके लिये तैयार होकर सामने आ गया और दाहिना हाथ ऊपर उठाकर अभिमानपूर्वक बोला—हे देवि! मैं जानता हूँ कि सभी दुराचारी दानव मारे जायँगे, फिर भी पराधीन होनेके कारण मुझे युद्ध करना ही होगा। वह मन्दबुद्धि महिषासुर अपने प्रिय तथा अप्रियके विषयमें नहीं जानता॥ ३९—४१॥

तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया।
मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाप्यशुभं भवेत्॥ ४२

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि॥ ४३

इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः।
देवी चिच्छेद तान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजान्तिके॥ ४४

अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः।
वीक्षितामरसङ्घैश्च कोपपूर्णानना तदा॥ ४५

शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल।
स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा॥ ४६

असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः।
दुद्राव चण्डिकां कोपात्सिंहं मूर्ध्नि जघान ह॥ ४७

सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजान्तरे।
अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा॥ ४८

उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः।
सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयाम्बिकाम्॥ ४९

कृतं तेन प्रहारं तु वञ्चयित्वा विशांपते।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कण्ठतः॥ ५०

छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ।
हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः॥ ५१

जय देवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्।
देवदुन्दुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः॥ ५२

उसके सामने हितकर वचन भी यदि अप्रिय है तो मुझे नहीं बोलना चाहिये। अब वीरधर्मके अनुसार मर जाना ही मेरे लिये उचित है—वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ। मैं तो दैवको ही बलवान् मानता हूँ, अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, तभी तो आपके बाणोंसे हत होकर दानव पृथ्वीपर गिरते जा रहे हैं॥ ४२-४३॥

ऐसा कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणवृष्टि करने लगा। देवीने अपने पासतक न पहुँचे हुए उन बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और अपने अन्य शीघ्रगामी बाणोंसे असिलोमाको शीघ्रतापूर्वक बींध डाला। उस समय आकाशमें स्थित देवताओंने देखा कि भगवतीका मुखमण्डल क्रोधसे भर उठा है। देवीके बाणोंसे बिंधे शरीरवाला तथा बहती हुई रुधिरकी धारासे युक्त वह दैत्य ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पुष्पित हुआ पलाशका वृक्ष हो॥ ४४—४६॥

अब असिलोमा लोहेकी बनी एक विशाल गदा लेकर बड़ी तेजीसे चण्डिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधपूर्वक सिंहके सिरपर उसने गदासे प्रहार कर दिया। परंतु देवीके सिंहने उस बलवान् दानवके द्वारा किये गये गदा-प्रहारकी कुछ भी परवाह न करके अपने नखोंद्वारा उसके वक्षःस्थलको फाड़ डाला॥ ४७-४८॥

तब उस महाविकराल दैत्यने हाथमें गदा लिये ही बड़े वेगसे उछलकर सिंहके मस्तकपर सवार हो भगवतीके ऊपर गदासे प्रहार किया॥ ४९॥

हे राजन्! उसके द्वारा किये गये प्रहारको रोककर देवीने तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक गर्दनसे अलग कर दिया। इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह दानवराज तुरंत गिर पड़ा। अब उस दुरात्माकी सेनामें हाहाकार मच गया॥ ५०-५१॥

हे राजन्! देवीकी जय हो—ऐसा कहकर देवतागण भगवतीकी स्तुति करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और किन्नरगण देवीका यशोगान करने लगे॥ ५२॥

निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणाङ्गणे।
निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात्॥ ५३

भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्रणं कृतम्।
भग्नाः केचिद् गता मन्दा महिषं प्रति दुःखिताः॥ ५४

चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः।
असिलोमबिडालाख्यौ निहतौ नृपसत्तम॥ ५५

अन्ये ये सैनिका राजन् सिंहेन भक्षिताश्च ते।
एवं ब्रुवन्तो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम्॥ ५६

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा।
बभूव चिन्ताकुलितो विमना दुःखसंयुतः॥ ५७

मारे गये उन दोनों दैत्योंको समरांगणमें गिरा हुआ देखकर शेष सम्पूर्ण सैनिकोंको सिंहने अपने पराक्रमद्वारा मार गिराया और कुछ दानवोंको खा डाला और इस प्रकार उस युद्धभूमिको दानवोंसे रहित कर दिया। कुछ अंग-भंग हुए मूर्ख दानव दुःखी होकर महिषासुरके पास पहुँचे और 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए वे चीखने-चिल्लाने तथा रोने लगे—'हे नृपश्रेष्ठ! असिलोमा और बिडालाख्य दोनों ही मारे गये। हे राजन्! अन्य जो भी सैनिक थे, उन्हें सिंह खा गया' ऐसा कहते हुए उन्होंने राजाको दुःखमें डाल दिया॥ ५३—५६॥

उनकी बात सुनकर महिषासुर खिन्नमनस्क, चिन्तासे व्याकुल, उदास तथा दुःखी हो गया॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
असिलोमबिडालाख्यवधवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

महिषासुरका रणभूमिमें आना तथा देवीसे प्रणय-याचना करना

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः।
दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम्॥ १

सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम्।
आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम्॥ २

सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः।
राजन् रथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः॥ ३

सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः।
आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः॥ ४

मानुषं देहमास्थाय संग्रामे गन्तुमुद्यतः।
विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम्॥ ५

शृङ्गिणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति।
नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि॥ ६

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी बात सुनकर राजा महिष क्रोधित हो उठा और उसने सारथिसे कहा—हजार गधोंसे जुते हुए, ध्वजा तथा पताकाओंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके आयुधोंसे परिपूर्ण, सुन्दर चक्कों तथा जुएसे विभूषित तथा प्रकाशमान मेरा अद्भुत रथ तुरंत ले आओ॥ १-२॥

सारथिने भी तत्क्षण रथ लाकर उससे कहा—हे राजन्! सुसज्जित करके रथ ला दिया गया जो द्वारपर खड़ा है; यह सभी आयुधोंसे समन्वित तथा उत्तम आस्तरणोंसे युक्त है॥ ३$\frac{१}{२}$॥

रथके आनेकी बात सुनकर महाबली दानवराज महिष मनुष्यका रूप धारण करके युद्धभूमिमें जानेको तैयार हुआ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं अपने महिषरूपमें जाऊँगा तो देवी मुझ शृंगयुक्त महिषको देखकर अवश्य उदास हो जायगी। स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चातुर्य अत्यन्त प्रिय होता है। अतः आकर्षक रूप तथा चातुर्यसे सम्पन्न होकर मैं उसके

तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति।
यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति॥ ७

ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः।
इति सञ्चिन्त्य मनसा दानवेन्द्रो महाबलः॥ ८

त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः।
सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः॥ ९

दिव्याम्बरधरः कान्तः पुष्पबाण इवापरः।
रथोपविष्टः केयूरस्त्रग्वी बाणधनुर्धरः॥ १०

सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः।
मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम्॥ ११

तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा।
बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शङ्खमवादयत्॥ १२

स शङ्खनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम्।
समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव॥ १३

देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल।
नरो वाथ तथा नारी सुखं वाञ्छति सर्वथा॥ १४

सुखं संयोगजं नृणां नासंयोगे भवेदिह।
संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह॥ १५

भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः।
तत्र प्रीतिभवानादौ कथयामि यथामति॥ १६

मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः।
भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः॥ १७

उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः।
तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः॥ १८

पास जाऊँगा, जिससे मुझे देखते ही वह युवती प्रेमयुक्त—मोहित हो जायगी। मुझे भी इसी स्थितिमें सुख होगा, अन्य किसी स्वरूपसे नहीं॥ ४—७½॥

मनमें ऐसा विचार करके महाबली वह दानवेन्द्र महिषरूप छोड़कर एक सुन्दर पुरुष बन गया। वह सभी प्रकारके आयुधको धारण किये हुए था, वह ऐश्वर्यसम्पन्न था, वह सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत था, उसने दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। केयूर और हार पहने तथा हाथमें धनुष-बाण धारण किये रथपर बैठा हुआ वह कान्तिमान् दैत्य दूसरे कामदेवके सदृश प्रतीत हो रहा था। मानिनी सुन्दरियोंका भी मन हर लेनेवाला ऐसा सुन्दर रूप बनाकर वह मदोन्मत्त दैत्य अपनी विशाल सेनाके साथ देवीकी ओर चला॥ ८—११॥

अनेक वीरोंसे घिरे हुए उस दैत्यराज महिषासुरको आया हुआ देखकर देवीने अपना शंख बजाया॥ १२॥

लोगोंको आश्चर्यचकित कर देनेवाली उस शंखध्वनिको सुनकर भगवतीके पास आकर वह दैत्य हँसता हुआ उनसे कहने लगा—॥ १३॥

हे देवि! इस परिवर्तनशील जगत्में रहनेवाला व्यक्ति वह स्त्री अथवा पुरुष चाहे कोई भी हो, सब प्रकारसे सुख ही चाहता है। इस लोकमें सुख मनुष्योंको संयोगमें ही प्राप्त होता है, वियोगमें सुख होता ही नहीं। संयोग भी अनेक प्रकारका होता है। मैं उन भेदोंको बताता हूँ, सुनो। कहीं उत्तम प्रीतिके कारण संयोग हो जाता है और कहीं स्वभावतः संयोग हो जाता है, इनमें सर्वप्रथम मैं प्रीतिसे उत्पन्न होनेवाले संयोगके विषयमें अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ १४—१६॥

माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग उत्तम कहा गया है। भाईका भाईके साथ संयोग किसी प्रयोजनसे होता है, अतः वह मध्यम माना गया है। उत्तम सुख प्रदान करनेके कारण पहले प्रकारके संयोगको उत्तम तथा उससे कम सुख प्रदान करनेके कारण [दूसरे प्रकारके] संयोगको मध्यम कहा गया है॥ १७-१८॥

नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः।
विविधावृतचित्तानां प्रसङ्गपरिवर्तिनाम्॥ १९

अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः।
अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे सुखदः सदा॥ २०

नारीपुरुषयोः कान्ते समानवयसोः सदा।
संयोगो यः समाख्यातः स एवात्युत्तमः स्मृतः॥ २१

अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः।
चातुर्यरूपवेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा॥ २२

परस्परसमुत्कर्षः कथ्यते हि परस्परम्।
तं चेत्करोषि संयोगं वीरेण च मया सह॥ २३

अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्तिः स्यात्ते न संशयः।
नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये॥ २४

इन्द्रादयः सुराः सर्वे संग्रामे विजिता मया।
रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना॥ २५

भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा यथा।
पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि॥ २६

वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः।
यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाहं करवाणि वै॥ २७

आज्ञापय विशालाक्षि तथाहं प्रकरोम्यथ।
चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि॥ २८

आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल।
प्रपन्नं पाहि रम्भोरु कामबाणैः प्रपीडितम्॥ २९

धर्माणामुत्तमो धर्मः शरणागतरक्षणम्।
त्वदीयोऽस्म्यसितापाङ्गि सेवकोऽहं कृशोदरि॥ ३०

मरणान्तं वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम्।
पादौ नतोऽस्मि तन्वङ्गि त्यक्त्वा नानायुधानि ते॥ ३१

विविध विचारोंसे युक्त चित्तवाले तथा प्रसंगवश एकत्रित नौकामें बैठे हुए लोगोंके मिलनेको विद्वानोंने स्वाभाविक संयोग कहा है। बहुत कम समयके लिये सुख प्रदान करनेके कारण विद्वानोंके द्वारा इसे कनिष्ठ संयोग कहा गया है॥ १९½॥

अत्युत्तम संयोग संसारमें सदा सुखदायक होता है। हे कान्ते! समान अवस्थावाले स्त्री-पुरुषका जो संयोग है, वही अत्युत्तम कहा गया है। अत्युत्तम सुख प्रदान करनेके कारण ही उसे उस प्रकारका संयोग कहा गया है। चातुर्य, रूप, वेष, कुल, शील, गुण आदिमें समानता रहनेपर परस्पर सुखकी अभिवृद्धि कही जाती है॥ २०—२२½॥

यदि तुम मुझ वीरके साथ संयोग करोगी तो तुम्हें अत्युत्तम सुखकी प्राप्ति होगी; इसमें सन्देह नहीं है। हे प्रिये! मैं अपनी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता हूँ। मैंने इन्द्र आदि सभी देवताओंको संग्राममें जीत लिया है। मेरे भवनमें इस समय जो भी दिव्य रत्न हैं, उन सबका तुम उपभोग करो; अथवा इच्छानुसार उसका दान करो। अब तुम मेरी पटरानी बन जाओ। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारा दास हूँ॥ २३—२६॥

तुम्हारे कहनेसे मैं देवताओंसे वैर करना भी छोड़ दूँगा; इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हें जैसे भी सुख मिलेगा, मैं वही करूँगा। हे विशालनयने! अब तुम मुझे आज्ञा दो और मैं उसका पालन करूँ। हे मधुरभाषिणि! मेरा मन तुम्हारे रूपपर मोहित हो गया है॥ २७-२८॥

हे सुन्दरि! मैं [तुम्हें पानेके लिये] व्याकुल हूँ, इसलिये इस समय तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे रम्भोरु! कामबाणसे आहत मुझ शरणागतकी रक्षा करो। शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सभी धर्मोंमें उत्तम धर्म है। श्याम नेत्रोंवाली हे कृशोदरि! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं मरणपर्यन्त सत्य वचनका पालन करूँगा, इसके विपरीत नहीं करूँगा। हे तन्वंगि! नानाविध आयुधोंको त्यागकर मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत हूँ॥ २९—३१॥

दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणैः।
जन्मप्रभृति चार्वङ्गि दैन्यं नाचरितं मया॥ ३२

ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम्।
चरितं मम जानन्ति रणे ब्रह्मादयः सुराः॥ ३३

सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि।

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा॥ ३४

प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी।

देव्युवाच

नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना॥ ३५

तस्य चेच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत्।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा॥ ३६

तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्।
जडाहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना॥ ३७

अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा।
न ग्राम्यसुखवाञ्छा मे कदाचिदपि जायते॥ ३८

मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन् यत्स्त्रीसङ्गं चिकीर्षसि।
नरस्य बन्धनार्थाय शृङ्खला स्त्री प्रकीर्तिता॥ ३९

लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते।
किमिच्छसि च मन्दात्मन् मूत्रागारस्य सेवनम्॥ ४०

शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि।
नारीसङ्गे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि॥ ४१

त्यज वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावनौ।
पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ४२

अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि साम्प्रतम्।
प्रेषिताहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव॥ ४३

हे विशालाक्षि! मैं कामदेवके बाणोंद्वारा सन्तप्त हो रहा हूँ, अतः तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरि! जन्मसे लेकर आजतक मैंने ब्रह्मा आदि देवताओंके समक्ष भी दीनता नहीं प्रदर्शित की, किंतु तुम्हारे समक्ष आज उसे प्रकट कर रहा हूँ। ब्रह्मा आदि देवता समरांगणमें मेरे चरित्रको जानते हैं। हे भामिनि! वही मैं आज तुम्हारी दासता स्वीकार करता हूँ, मेरी ओर देखो॥ ३२-३३½॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस दैत्य महिषासुरसे हँसकर अनुपम सौन्दर्यमयी भगवती मुसकानके साथ यह वचन कहने लगीं॥ ३४½॥

देवी बोलीं—मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषको नहीं चाहती। हे दैत्य! मैं उनकी इच्छाशक्ति हूँ, मैं ही सारे संसारकी सृष्टि करती हूँ। वे विश्वात्मा मुझे देख रहे हैं; मैं उनकी कल्याणमयी प्रकृति हूँ। निरन्तर उनके सांनिध्यके कारण ही मुझमें शाश्वत चेतना है। वैसे तो मैं जड़ हूँ, किंतु उन्हींके संयोगसे मैं चेतनायुक्त हो जाती हूँ जैसे चुम्बकके संयोगसे साधारण लोहेमें भी चेतना उत्पन्न हो जाती है॥ ३५—३७½॥

मेरे मनमें कभी भी विषयभोगकी इच्छा नहीं होती। हे मन्दबुद्धि! तुम मूर्ख हो जो कि स्त्रीसंग करना चाहते हो; पुरुषको बाँधनेके लिये स्त्री जंजीर कही गयी है। लोहेसे बँधा हुआ मनुष्य बन्धनमुक्त हो भी सकता है, किंतु स्त्रीके बन्धनमें बँधा हुआ प्राणी कभी नहीं छूटता। हे मूर्ख! मूत्रागार (गुह्य अंग)-का सेवन क्यों करना चाहते हो? सुखके लिये मनमें शान्ति धारण करो। शान्तिसे ही तुम सुख प्राप्त कर सकोगे। स्त्रीसंगसे बहुत दुःख मिलता है—इस बातको जानते हुए भी तुम अज्ञानी क्यों बनते हो?॥ ३८—४१॥

तुम देवताओंके साथ वैरभाव छोड़ दो और पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करो। यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो तो पाताललोक चले जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। इस समय मुझमें पूर्ण शक्ति विद्यमान है। हे दानव! सभी देवताओंने तुम्हारा नाश करनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है॥ ४२-४३॥

सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृदम्।
दर्शितं तेन तुष्टास्मि जीवन्गच्छ यथासुखम्॥ ४४

सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुञ्चामि जीवितम्।
मरणेच्छास्ति चेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम्॥ ४५

हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः॥ ४६

उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः।
बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने॥ ४७

कोमलां चारुसर्वाङ्गीं नारीं नरविमोहिनीम्।
जित्वा हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वशः॥ ४८

किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने।
रोचते यदि चार्वङ्गि विवाहं कुरु मां भज॥ ४९

नोचेद् गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता।
नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया॥ ५०

हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद् गच्छ यथासुखम्।
का शोभा मे भवेदन्ते हत्वा त्वां चारुलोचनाम्॥ ५१

स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया।
गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने॥ ५२

तथापि मे फलं न स्याद् बलाद्भोगसुखं कुतः।
प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः॥ ५३

पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कान्तामुखाम्बुजात्।
तत्तथैव हि नारीणां न स्याच्च पुरुषं विना॥ ५४

मैं तुमसे यह सत्य कह रही हूँ, तुमने वाणीद्वारा सौहार्दपूर्ण भाव प्रदर्शित किया है, अतः मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अब तुम जीवित रहते ही सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ। केवल सात पग साथ चलनेपर ही सज्जनोंमें मैत्री हो जाती है, इसी कारण मैं तुम्हें जीवित छोड़ दे रही हूँ। हे वीर! यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुम मेरे साथ आनन्दसे युद्ध कर सकते हो। हे महाबाहो! मैं तुम्हें युद्धमें मार डालूँगी; इसमें संशय नहीं है॥ ४४-४५$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर कामसे मोहित दानव [पुनः] मधुर वाणीमें मीठी बातें करने लगा—हे सुन्दरि! हे सुमुखि! कोमल, सुन्दर अंगोंवाली तथा पुरुषोंको मोह लेनेवाली तुझ युवतीके ऊपर प्रहार करनेमें मुझे भय लगता है। हे कमललोचने! विष्णु, शिव आदि बड़े-बड़े देवताओं और सब लोकपालोंपर विजय प्राप्त करके क्या अब तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा?॥ ४६—४८$\frac{१}{२}$॥

हे सुन्दर अंगोंवाली! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ विवाह कर लो और मेरा सेवन करो; अन्यथा तुम जहाँसे आयी हो, उसी देशमें इच्छानुसार चली जाओ। मैं तुम्हारे साथ मित्रता कर चुका हूँ, इसलिये तुमपर प्रहार नहीं करूँगा। यह मैंने तुम्हारे लिये हितकर तथा कल्याणकारी बात बतायी है; इसलिये तुम सुखपूर्वक यहाँसे चली जाओ। सुन्दर नेत्रोंवाली तुझ रमणीका वध करनेसे मेरी कौन-सी गरिमा बढ़ जायगी? स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका पाप बहुत ही जघन्य होता है॥ ४९—५१$\frac{१}{२}$॥

हे वरानने! वैसे तो मैं तुम्हें बलपूर्वक पकड़कर अपने घर निश्चितरूपसे ले जा सकता हूँ, किंतु बलप्रयोगसे मुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा, उसमें भोगसुख कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव हे सुकेशि! मैं बहुत विनीतभावसे तुमसे कह रहा हूँ कि जैसे पुरुषको अपनी प्रियाके मुखकमलके बिना सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार स्त्रियोंको भी पुरुषके बिना सुख नहीं मिलता॥ ५२—५४॥

संयोगे सुखसम्भूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः।
कान्तासि रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥ ५५

चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो।
तवोपदिष्टं केनेदं भोगानां परिवर्जनम्॥ ५६

वञ्चितासि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह।
मुञ्चाग्रहमिमं कान्ते कुरु कार्यं सुशोभनम्॥ ५७

सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल।
विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति सावित्र्या च सहात्मभूः॥ ५८

रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा।
का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम्॥ ५९

येन त्वमसितापाङ्गि न करोषि पतिं शुभम्।
कामः क्वाद्य गतः कान्ते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः॥ ६०

मादनैः पञ्चभिः कामं न ताडयति मन्दधीः।
मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुन्दरि॥ ६१

अबलेति च मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान्।
मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया सह॥ ६२

तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुञ्चति शिलीमुखान्।
अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः॥ ६३

सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि।
त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यसि॥ ६४

मन्दोदरीव तन्वङ्गि परित्यज्य शुभं नृपम्।
अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम्।
कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलान्तरा॥ ६५

संयोगमें सुख उत्पन्न होता है और वियोगमें दुःख। तुम सुन्दर, रूपवती और सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो। [यह सब होते हुये भी] तुझमें चतुरता क्यों नहीं है, जिससे तुम मुझे स्वीकार नहीं कर रही हो? इस तरह भोगोंको छोड़ देनेका परामर्श तुम्हें किसने दिया है? हे मधुरभाषिणि! [ऐसा करके] किसी शत्रुने तुम्हें धोखा दिया है॥ ५५-५६१/२ ॥

हे कान्ते! अब तुम यह आग्रह छोड़ दो और अत्यन्त सुन्दर कार्य करनेमें तत्पर हो जाओ। विवाह सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें और मुझे दोनोंको सुख प्राप्त होगा। विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, शंकर पार्वतीके साथ तथा इन्द्र शचीके साथ रहकर ही सुशोभित होते हैं। पतिके बिना कौन स्त्री चिरस्थायी सुख प्राप्त कर सकती है? हे सुन्दरि! [कौन-सा ऐसा कारण है] जिससे तुम मुझ-जैसे उत्तम पुरुषको अपना पति नहीं बना रही हो?॥ ५७—५९१/२ ॥

हे कान्ते! न जाने मन्दबुद्धि कामदेव इस समय कहाँ चला गया जो अपने अत्यन्त कोमल तथा मादक पंचबाणोंसे तुम्हें आहत नहीं कर रहा है। हे सुन्दरि! मुझे तो लगता है कि कामदेव भी तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया है और तुम्हें अबला समझते हुए वह अपने बाण नहीं छोड़ रहा है। हे तिरछी चितवनवाली सुन्दरि! सम्भव है उस कामदेवको भी मेरे साथ कुछ शत्रुता हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर बाण न चलाता हो। अथवा यह भी हो सकता है कि मेरे सुखका नाश करनेवाले मेरे शत्रु देवताओंने उस कामदेवको मना कर दिया हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर [अपने बाणोंसे] प्रहार नहीं कर रहा है॥ ६०—६३१/२ ॥

हे मृगशावकके समान नेत्रोंवाली! मुझे त्यागकर तुम मन्दोदरीकी भाँति पश्चात्ताप करोगी, हे तन्वंगि! पतिरूपमें प्राप्त सुन्दर तथा अनुकूल राजाका त्याग करके बादमें वह मन्दोदरी जब कामार्त तथा मोहसे व्याकुल अन्तःकरणवाली हो गयी, तब उसने एक धूर्तको अपना पति बना लिया था॥ ६४-६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषद्वारा देवीप्रबोधनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महिषासुरका देवीको मन्दोदरी नामक राजकुमारीका आख्यान सुनाना

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम्।
का सा मन्दोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तो नृपस्तया॥ १

शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम्।
विस्तरेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः॥ २

महिष उवाच

सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले।
घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान्॥ ३

चन्द्रसेनाभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः।
न्यायदण्डधरः शान्तः प्रजापालनतत्परः॥ ४

सत्यवादी मृदुः शूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः।
शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः॥ ५

तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा।
सदाचारातिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा॥ ६

नाम्ना गुणवती कान्ता सर्वलक्षणसंयुता।
सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम्॥ ७

पिता चातीव सन्तुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम्।
मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः॥ ८

इन्दोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिने दिने।
दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा॥ ९

वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने।
मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः॥ १०

तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कम्बुग्रीवोऽतिविश्रुतः।
ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे स युक्तोऽस्या वरः शुभः॥ ११
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वविद्यार्थपारगः।

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] उसका यह वचन सुनकर भगवतीने उस दानवसे पूछा—वह स्त्री मन्दोदरी कौन थी और वह राजा कौन था, जिसे उसने त्याग दिया था?॥ १॥

बादमें उसने जिसे पति बनाया, वह धूर्त राजा कौन था? उस स्त्रीको पुनः जिस प्रकार दुःख मिला हो, वह कथानक विस्तारपूर्वक बताओ॥ २॥

महिषासुर बोला—पृथ्वीतलपर विख्यात सिंहल नामक एक देश है। उसमें बहुत ही घने-घने वृक्ष हैं और वह धन-धान्यसे समृद्ध है॥ ३॥

वहाँ चन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता था, जो बड़ा धर्मात्मा, शान्तस्वभाव, प्रजापालनमें तत्पर, न्यायपूर्वक शासन-कार्य करनेवाला, सत्यवादी, मृदु स्वभाववाला, वीर, सहिष्णु, नीतिशास्त्रका सागर, शास्त्रवेत्ता, सब धर्मोंका ज्ञाता और धनुर्वेदमें अत्यन्त प्रवीण था॥ ४-५॥

उसकी भार्या भी रूपवती, सुन्दरी, सौभाग्यशालिनी, सद्गुणी, सदाचारिणी, अत्यन्त सुन्दर मुखवाली, पतिभक्तिमें लीन रहनेवाली, मनोहर और सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसका नाम गुणवती था। उसने प्रथम गर्भसे एक अति सुन्दर कन्याको जन्म दिया॥ ६-७॥

उस मनोरम कन्याको पाकर पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े हर्षके साथ उसका नाम मन्दोदरी रखा॥ ८॥

वह कन्या चन्द्रमाकी कलाके समान दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अत्यन्त मनोहारिणी वह कन्या जब दस वर्षकी हुई, तब उसके वरके लिये राजा चन्द्रसेन प्रतिदिन चिन्तित रहने लगे॥ ९½॥

उस समय मद्रदेशके अधिपति सुधन्वा नामवाले एक पराक्रमी नरेश थे। कम्बुग्रीव नामसे अति विख्यात उनका एक पुत्र था, जो बहुत मेधावी था। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा कि कम्बुग्रीव उस कन्याके योग्य वर है। वह सुन्दर, सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त विद्याओंमें पारंगत है॥ १०-११½॥

राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया॥ १२

कम्बुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम्।
सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम्॥ १३

विवाहं ते पिता कर्तुं कम्बुग्रीवेण वाञ्छति।
तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा॥ १४

नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे।
कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा॥ १५

स्वातन्त्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि।
पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे॥ १६

स्वातन्त्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः।
तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम्॥ १७

विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ।
वक्तव्यं वचनं सम्यक्त्वदधीनास्मि सर्वदा॥ १८

श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये।
पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखाद्दुःखतरं स्मृतम्॥ १९

कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि।
तदा महत्तरं दुःखं सपत्नीसम्भवं भवेत्॥ २०

तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ।
संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः॥ २१

स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि।
श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः॥ २२

उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः।
पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम्॥ २३
अपराधं विना कान्तां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम्।

तब राजाने गुणवती नामवाली अपनी प्रिय रानीसे पूछा—[मेरा विचार है कि] मैं अपनी सुन्दर पुत्री मन्दोदरीको कम्बुग्रीवको सौंप दूँ॥ १२½ ॥

पतिकी यह बात सुनकर उस रानीने अपनी पुत्रीसे आदरपूर्वक पूछा—तुम्हारे पिता कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं॥ १३½ ॥

तब यह सुनकर मन्दोदरीने मातासे यह वचन कहा—मैं पति नहीं बनाऊँगी, विवाह करनेमें मेरी अभिरुचि नहीं है। मैं सदा कौमार्यव्रतका आश्रय लेकर अपना जीवन व्यतीत करूँगी। मैं स्वतन्त्रतापूर्वक सदा कठोर तप करूँगी। हे माता! संसारसागरमें परतन्त्रता परम दुःख है। स्वतन्त्रतासे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डितजनोंने कहा है, अतएव मैं बन्धनसे मुक्त रहूँगी, मुझे पतिसे कोई भी प्रयोजन नहीं है॥ १४—१७॥

विवाह होते समय अग्निके साक्ष्यमें [प्रतिज्ञा-रूपमें] यह वचन कहना पड़ता है—'[हे पतिदेव!] अब मैं सदाके लिये पूर्णरूपसे आपके अधीन हो चुकी हूँ।' इसके अतिरिक्त ससुरालमें सास तथा देवर आदि लोगोंकी दासी बनकर रहना तथा सदा पतिके अनुकूल रहना अत्यन्त दुःखदायक बताया गया है॥ १८-१९॥

कहीं यदि पतिने अन्य स्त्रीके साथ विवाह कर लिया तब तो सौतसे मिलनेवाला महान् दुःख उपस्थित हो जाता है। उस समय पतिके प्रति ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो जाता है, कलह भी होने लगता है। हे माता! संसारमें सुख कहाँ है? और विशेष करके स्वभावसे ही परतन्त्र नारियोंके लिये इस स्वप्नधर्मा संसारमें सुख है ही नहीं॥ २०-२१½ ॥

हे माता! मैंने सुना है कि प्राचीनकालमें राजा उत्तानपादके एक 'उत्तम' नामक पुत्र थे, जो समस्त धर्मोंके ज्ञाता एवं ध्रुवके कनिष्ठ भ्राता थे। उन्होंने अपनी धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, पतिके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली, प्रिय तथा सुन्दर पत्नीको बिना किसी अपराधके ही वनमें छोड़ दिया था॥ २२-२३½ ॥

एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि॥ २४

कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद्दुःखभाजनम्।
वैधव्यं परमं दुःखं शोकसन्तापकारकम्॥ २५

परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे।
मदनाग्निविदग्धायाः किं सुखं पतिसङ्गजम्॥ २६

तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम।
एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा॥ २७

न च वाञ्छति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी।
व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा॥ २८

न काङ्क्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा।
भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः॥ २९

विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम्।
वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता॥ ३०

यौवनस्याङ्कुरा जाता नारीणां कामदीपकाः।
तथापि सा वयस्याभिः प्रेरितापि पुनः पुनः॥ ३१

चकमे न पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी।
एकदोद्यानदेशे सा विहर्तुं बहुपादपे॥ ३२

जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरन्ध्रीगणसेविता।
रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमिता लताः॥ ३३

पुष्पाणि चिन्वती रम्या वयस्याभिः समावृता।
कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैववशात्तदा॥ ३४

आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः।
एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः॥ ३५
सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः।

पतिके रहते हुए भी इस प्रकारके अनेक दुःख स्त्रीको सहने पड़ते हैं। दैवयोगसे उसकी मृत्यु हो जानेपर स्त्रीको [विधवा बनकर] दुःख उठाना पड़ता है; क्योंकि वैधव्य परम दुःखमय होता है तथा नानाविध शोक एवं संताप उत्पन्न करता रहता है। पतिके परदेश चले जानेपर कामदेवकी अग्निमें जलती हुई स्त्रीको घरमें अत्यधिक दुःख सहना पड़ता है, तो फिर उसे पतिसंगजनित क्या सुख प्राप्त हुआ? अतएव मेरा तो यही मत है कि स्त्रियोंको विवाह कभी नहीं करना चाहिये॥ २४—२६½॥

[पुत्रीके] ऐसा कहनेपर उसकी माताने अपने पतिसे कहा—कौमारव्रत धारण करनेकी इच्छावाली वह राजकुमारी पतिकी कामना नहीं करती है। संसारसे विरक्त रहकर वह सदा व्रत और जपमें तत्पर रहना चाहती है। [पतिसंगजनित] अनेक दोषोंको जाननेवाली वह कन्या विवाह नहीं करना चाहती॥ २७-२८½॥

अपनी भार्याकी बात सुनकर राजा चन्द्रसेन भी चुप रह गये। अपनी पुत्रीको विवाहकी इच्छासे रहित भाववाली जानकर राजाने भी उसका विवाह नहीं किया। वह मन्दोदरी भी माता-पिताके द्वारा भलीभाँति रक्षित होती हुई घरपर ही रहने लगी। कुछ समय पश्चात् नारियोंमें कामोत्तेजना उत्पन्न करनेवाले यौवन-सम्बन्धी लक्षण उसमें विकसित होने लगे। उस समय उसकी सखियोंने विवाहके लिये उसे बार-बार प्रेरित किया, फिर भी ज्ञान-तत्त्वकी बातें कहकर वह मन्दोदरी पति बनानेके लिये तैयार न हुई॥ २९—३१½॥

एक दिन सुन्दर मुखवाली वह कन्या अपनी दासियोंके साथ बहुत-से वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानमें आनन्दपूर्वक विहार करनेके लिये गयी। उस कृशोदरीने वहाँ पुष्पित लताओंको देखा और अपनी सखियोंके साथ पुष्प चुनती हुई वह वहींपर क्रीडाविहार करने लगी॥ ३२-३३½॥

उसी समय उस मार्गसे संयोगवश कोसलनरेश वीरसेन आ गये। वे महान् शूरवीर तथा बहुत विख्यात थे। वे रथपर अकेले ही आरूढ़ थे तथा उनके साथ कुछ सेवक भी थे और सेना उनके पीछे धीरे-धीरे चली आ रही थी॥ ३४-३५½॥

दृष्टस्तस्या वयस्याभिर्दूरतः पार्थिवस्तदा॥ ३६

मन्दोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरः पथि।
रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः॥ ३७

मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह।
एवं ब्रुवत्यां तत्रासौ कोसलेन्द्रः समागतः॥ ३८

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं विस्मयं प्राप भूपतिः।
उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ परिचारिकाम्॥ ३९

केयं बाला विशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे।
एवं पृष्टा तु सैरन्ध्री तमुवाच शुचिस्मिता॥ ४०

प्रथमं ब्रूहि मे वीर पृच्छामि त्वां सुलोचन।
कोऽसि त्वं किमिहायातः किं कार्यं वद साम्प्रतम्॥ ४१

इति पृष्टस्तु सैरन्ध्र्या तामुवाच महीपतिः।
कोसलो नाम देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः॥ ४२

तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये।
वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा॥ ४३

मार्गभ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम्।

सैरन्ध्र्युवाच

चन्द्रसेनसुता राजन्नाम्ना मन्दोदरी किल॥ ४४

उद्याने रन्तुकामेयं प्राप्ता कमललोचना।
श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम्॥ ४५

सैरन्ध्रि चतुरासि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय।
ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजास्मि चारुलोचने॥ ४६

गान्धर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि।
न मे भार्यास्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम्॥ ४७

वाञ्छामि रूपसम्पन्नां सुकुलां कामिनीं किल।
अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति॥ ४८
अनुकूलः पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः।

तभी उसकी सखियोंने दूरसे ही राजाको देख लिया और [उनमेंसे किसी युवतीने] मन्दोदरीसे कहा—विशाल भुजाओंवाला, रूपवान् तथा दूसरे कामदेवके समान एक पुरुष रथपर सवार होकर इस मार्गसे चला आ रहा है। मैं तो यह मानती हूँ कि यहाँ भाग्यवश कोई राजा ही आ गया है॥ ३६–३७½ ॥

वह युवती ऐसा कह रही थी कि इतनेमें कोसल-नरेश वीरसेन वहाँ आ गये। उस श्याम कटाक्षोंवाली मन्दोदरीको देखकर राजा विस्मयमें पड़ गये। रथसे तुरंत उतरकर उन्होंने दासीसे पूछा—विशाल नेत्रोंवाली यह युवती कौन है और किसकी पुत्री है? मुझे शीघ्र बताओ॥ ३८–३९½ ॥

इस प्रकार पूछे जानेपर मधुर मुसकानवाली दासीने उनसे कहा—सुन्दर नेत्रोंवाले हे वीर! पहले आप मुझे बतायें, मैं आपसे पूछ रही हूँ कि आप कौन हैं? यहाँ किसलिये आये हैं और यहाँ आपका कौन-सा कार्य है? [यह सब] अभी बतानेकी कृपा करें॥ ४०–४१ ॥

दासीके यह पूछनेपर राजाने उससे कहा—पृथ्वीपर अत्यन्त अद्भुत कोसल नामक एक देश है। हे प्रिये! वीरसेन नामवाला मैं उसी देशका शासक हूँ। मेरी विशाल चतुरंगिणी सेना पीछे-पीछे आ रही है। मार्ग भूल जानेके कारण यहाँ आये हुए मुझको तुम कोसलदेशका राजा समझो॥ ४२–४३½ ॥

सैरन्ध्री बोली—हे राजन्! यह महाराज चन्द्रसेनकी पुत्री है और इसका नाम मन्दोदरी है। कमलसदृश नेत्रोंवाली यह राजकुमारी विहार करनेकी इच्छासे इस उपवनमें आयी है॥ ४४½ ॥

उसकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्रीसे कहा—हे सैरन्ध्रि! तुम चतुर हो, अतः राजकुमारीको समझा दो। 'हे सुनयने! मैं ककुत्स्थवंशमें उत्पन्न एक राजा हूँ। अतः हे कामिनि! तुम गान्धर्व-विवाहके द्वारा मुझे पति बना लो। हे सुश्रोणि! मेरी कोई भार्या नहीं है। मैं भी अद्भुत यौवनावस्थासे सम्पन्न, रूपवती और कुलीन युवतीकी आकांक्षा रखता हूँ। अथवा [यदि गान्धर्व-विवाह पसन्द न हो तो] तुम्हारे पिता विधि-विधानसे तुमको मुझे सौंप दें। मैं सर्वथा तुम्हारे अनुकूल पति होऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है'॥ ४५—४८½ ॥

महिष उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरन्ध्री प्राह तां तदा ॥ ४९

प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा ।
मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ५०

रूपवान्बलवान्कान्तो वयसा त्वत्समः पुनः ।
प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुन्दरि सर्वथा ॥ ५१

पितापि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा ।
विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम् ॥ ५२

इत्याहास्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
पुत्रीं प्रबोधयन्त्वेतां सैरन्ध्र्यः सेवने रताः ॥ ५३

वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः ।
भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोऽब्रवीन्मनुः ॥ ५४

भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात् ।
तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ५५

मन्दोदर्युवाच

नाहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तप अद्भुतम् ।
निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः ॥ ५६

सैरन्ध्र्युवाच

दुर्जयो देवि कामोऽसौ कालोऽसौ दुरतिक्रमः ।
तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुन्दरि ॥ ५७

अन्यथा व्यसनं नूनमापतेदिति निश्चयः ।
इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्योवाचाथ तां सखीम् ॥ ५८

यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् ।
न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके ॥ ५९

महिष उवाच

इति तस्यास्तु निर्बन्धं ज्ञात्वा प्राह नृपं पुनः ।
गच्छ राजन् यथाकामं नेयमिच्छति सत्पतिम् ॥ ६०

महिष बोला—तब वीरसेनका वचन सुनकर कामशास्त्रमें प्रवीण सैरन्ध्रीने हँसकर उस मन्दोदरीसे मधुर वाणीमें कहा—हे मन्दोदरि! सूर्यवंशमें उत्पन्न ये राजा यहाँ आये हैं। ये रूपवान्, बलवान् तथा आयुमें तुम्हारे ही तुल्य हैं। हे सुन्दरि! ये राजा सम्यक् प्रकारसे तुझमें प्रेमासक्त हो गये हैं॥ ४९—५१॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम्हारी विवाहयोग्य अवस्था हो गयी है और तुम वैराग्यभावसे युक्त रहती हो—यह जानकर तुम्हारे पिता भी सदा चिन्तित रहते हैं। उन महाराजने बार-बार लंबी साँस लेकर हमलोगोंसे यह कहा था—'हे दासियो! तुमलोग सदा उसकी सेवामें संलग्न रहती हो, अतः तुम्हीं लोग मेरी इस पुत्रीको समझाओ।' किंतु हमलोग तुझ हठधर्मपरायणासे कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। [फिर भी हम तुम्हें बता देना चाहती हैं कि] पतिकी सेवा ही स्त्रियोंके लिये परम धर्म है—ऐसा मनुने कहा है। पतिकी सेवा करनेवाली स्त्री स्वर्ग प्राप्त कर लेती है। अतएव हे विशाल नेत्रोंवाली! तुम विधिपूर्वक विवाह कर लो॥ ५२—५५॥

मन्दोदरी बोली—मैं पति नहीं बनाऊँगी; मैं अद्भुत तप करूँगी। हे बाले! तुम इस राजाको मना कर दो; यह निर्लज्ज मेरी ओर क्यों देख रहा है?॥ ५६॥

सैरन्ध्री बोली—हे देवि! यह कामदेव अजेय है तथा कालका अतिक्रमण भी अत्यन्त कठिन है। अतएव हे सुन्दरि! तुम मेरे इस कल्याणकारी वचनको मान लेनेकी कृपा करो। अन्यथा [तुम्हारे ऊपर कभी-न-कभी] संकट अवश्य पड़ेगा; यह मेरा दृढ़ विश्वास है॥ ५७½॥

उसकी यह बात सुनकर राजकुमारीने उस सखीसे कहा—हे परिचारिके! दैवयोगसे जो भी होनेवाला है वह हो, किंतु मैं विवाह बिलकुल नहीं करूँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९॥

महिष बोला—उस राजकुमारीका निश्चित विचार जानकर सैरन्ध्रीने राजासे पुनः कहा—हे राजन्! आप इच्छानुसार यहाँसे जा सकते हैं। यह राजकुमारी उत्तम पति बनाना नहीं चाहती॥ ६०॥

नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया।
कोसलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः॥ ६१

उसकी बात सुनकर राजा वीरसेन उदास हो गये और उस राजकुमारीके प्रति आसक्तिरहित होकर अपनी सेनाके साथ कोसलदेशके लिये प्रस्थित हो गये॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देवीमहिषसंवादे राजपुत्रीमन्दोदरीवृत्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

दुर्धर, त्रिनेत्र, अन्धक और महिषासुरका वध

महिष उवाच

तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेन्दुमती शुभा।
विवाहयोग्या सञ्जाता सुरूपावरजा यदा॥ १

तस्या विवाहः संवृत्तः सञ्जातश्च स्वयंवरः।
राजानो बहुदेशीयाः सङ्गतास्तत्र मण्डपे॥ २

तया वृतो नृपः कश्चिद् बलवान् रूपसंयुतः।
कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः॥ ३

तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृपं तु सा।
चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम्॥ ४

पितरं प्राह तन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः।
इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह॥ ५

चन्द्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः।
प्रसन्नेन च मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत्॥ ६

तमाहूय नृपं गेहे विवाहविधिना ददौ।
कन्यां मन्दोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु॥ ७

चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत्।
जगाम स्वगृहं तुष्टो राजापि सहितः स्त्रिया॥ ८

महिष बोला—उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामकी एक छोटी बहन थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अत्यन्त रूपवती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई, तब उसके विवाहकी तैयारी होने लगी। उसका स्वयंवर रचाया गया, स्वयंवरके मण्डपमें अनेक देशोंके राजा एकत्रित हुए॥ १-२॥

इन्दुमतीने उनमेंसे एक बलशाली, रूपवान्, कुलीन, शीलवान् तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न राजाका वरण कर लिया॥ ३॥

उसी समय वह मन्दोदरी दैवयोगसे एक धूर्त, शठ तथा चातुर्यसम्पन्न राजाको देखकर कामातुर हो उठी और उसपर मोहित हो गयी॥ ४॥

उस कोमलांगीने अपने पितासे कहा—हे पिताजी! अब आप मेरा भी विवाह कर दीजिये। मद्रदेशके राजाको यहाँ देखकर अब मेरी भी विवाह करनेकी इच्छा हो गयी है॥ ५॥

पुत्रीने एकान्तमें अपने पितासे जो कुछ कहा था, उसे सुनकर राजा चन्द्रसेन प्रसन्नमनसे उसके भी विवाहकार्यकी व्यवस्थामें संलग्न हो गये॥ ६॥

तत्पश्चात् मद्रदेशके उन राजाको अपने घर बुलाकर उन्होंने वैवाहिक विधिके अनुसार उन्हें अपनी कन्या मन्दोदरी सौंप दी और बहुत-सा वैवाहिक उपहार प्रदान किया॥ ७॥

मद्रनरेश चारुदेष्ण भी उस सुन्दरीको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सन्तुष्ट होकर स्त्रीके साथ अपने घर चला गया॥ ८॥

रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान्।
कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल॥ ९

सैरन्ध्र्या कथितं तस्यै तया दृष्टः पतिस्तथा।
उपालम्भं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषान्विता॥ १०

कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः।
क्रीडयँल्लालयन्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा॥ ११

न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयंवरे।
किं कृतं तु मया मोहाद्वञ्चिताहं नृपेण ह॥ १२

किं करोम्यद्य सन्तापं निर्लज्जे निर्घृणे शठे।
का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम्॥ १३

अद्यप्रभृति संसारे सुखं त्यक्तं मया खलु।
पतिसम्भोगजं सर्वं सन्तोषोऽद्य मया कृतः॥ १४

अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम।
देहत्यागः क्रियते चेद्धत्यातीव दुरत्यया॥ १५

पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्रापि न सुखं भवेत्।
हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः॥ १६

तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया।
कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं पुनः॥ १७

महिष उवाच

इति सञ्चिन्त्य सा नारी दुःखशोकपरायणा।
स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः॥ १८

तस्मात्त्वमपि कल्याणि मामनादृत्य भूपतिम्।
अन्यं कापुरुषं मन्दं कामार्ता संश्रयिष्यसि॥ १९

राजाओंमें श्रेष्ठ वह चारुदेष्ण बहुत दिनोंतक उस कामिनीके साथ रमण करता रहा। एक दिन वह किसी दासीके साथ एकान्तमें रमण कर रहा था। सैरन्ध्रीने यह बात मन्दोदरीको बता दी और उसने स्वयं जाकर पतिको [उस स्थितिमें] देख लिया। तब उसने मुसकराकर क्रोधके साथ राजाको बहुत उपालम्भ दिया॥ ९-१०॥

इसके बाद पुनः किसी दिन मन्दोदरीने राजाको एक रूपवती दासीके साथ एकान्तमें क्रीड़ाविहार करते हुए देख लिया। [यह देखकर] उस समय उसे महान् कष्ट हुआ॥ ११॥

वह सोचने लगी कि जब मैंने इसे स्वयंवरमें देखा था, तब मैं इस शठके विषयमें ऐसा नहीं समझ पायी थी। मैंने मोहवश यह क्या कर डाला? इस राजाने तो मुझे ठग लिया॥ १२॥

अब मैं क्या करूँ; केवल सन्ताप ही मिला। ऐसे निर्लज्ज, निर्दयी और धूर्त पतिके प्रति प्रेम कैसे हो सकता है! अब मेरे जीवनको धिक्कार है॥ १३॥

आजसे मैं संसारमें पतिके साथ सहवाससे प्राप्त होनेवाले सारे सुखका त्याग कर रही हूँ; अब मैंने सन्तोष कर लिया॥ १४॥

मैंने वह काम कर डाला, जिसे मुझे नहीं करना चाहिये था, इसीलिये वह मेरे लिये कष्टदायक सिद्ध हुआ। अब यदि मैं देहत्याग करती हूँ तो वह दुस्तर आत्महत्याके समान होगा। यदि पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी सुख नहीं मिलेगा और वहाँपर मैं अपनी सखियोंकी हँसीका पात्र बनी रहूँगी; इसमें कोई संशय नहीं है। अतः वैराग्ययुक्त होकर भोगविलासके सुखका परित्याग करके कालयोगसे मुझे यहींपर निवास करना चाहिये॥ १५—१७॥

महिष बोला—ऐसा विचार करके वह नारी सांसारिक सुखका परित्याग करके दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रहती हुई अपने पतिके घरपर ही रह गयी॥ १८॥

अतः हे कल्याणि! उसी प्रकार तुम भी मुझ राजा पतिका अनादर करके पुनः कामातुर होनेपर किसी अन्य मूर्ख तथा कायर पुरुषका आश्रय ग्रहण करोगी॥ १९॥

वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम्।
अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः॥ २०

देव्युवाच

मन्दात्मन् गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु साम्प्रतम्।
हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम्॥ २१

यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव।
तदा तेषां च रक्षार्थं देहं सन्धारयाम्यहम्॥ २२

अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च।
सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम्॥ २३

सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताहं सुरैः किल।
त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वा स्थास्यामि निश्चला॥ २४

तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम्।
सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २५

व्यास उवाच

इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः।
युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामाङ्गणभूमिषु॥ २६

मुमोच तरसा बाणान्कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान्।
देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः॥ २७

तयोः परस्परं युद्धं सम्बभूव भयप्रदम्।
देवानां दानवानाञ्च परस्परजयैषिणाम्॥ २८

मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच च शिलीमुखान्।
देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान्॥ २९

ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः।
दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृङ्गवत्॥ ३०

अतः स्त्रियोंके लिये परम हितकारी तथा सच्ची मेरी यह बात मान लो। इसे न मानकर तुम बहुत कष्ट उठाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! अब तुम पातालोक भाग जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हें तथा सभी असुरोंको मारकर सुखपूर्वक यहाँसे चली जाऊँगी॥ २१॥

हे दानव! जब-जब साधु पुरुषोंपर संकट आता है, तब-तब उनकी रक्षाके लिये मैं देह धारण करती हूँ॥ २२॥

हे दैत्य! वास्तवमें मैं निराकार और अजन्मा हूँ, तथापि देवताओंकी रक्षा करनेके लिये रूप और जन्म धारण करती हूँ; यह तुम निश्चित समझ लो॥ २३॥

मैं सत्य कहती हूँ कि देवताओंने तुम्हारा वध करनेके लिये मुझसे प्रार्थना की थी। हे महिष! तुझे मारकर मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँगी॥ २४॥

अतएव अब तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा असुरोंकी निवासभूमि पाताललोकको चले जाओ। अब मैं तुम्हें निश्चय ही मार डालूँगी, मैं यह बिलकुल सच कह रही हूँ॥ २५॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर महिषासुर धनुष लेकर युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामभूमिमें डट गया॥ २६॥

वह पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये बाणोंको कानतक खींचकर बड़े वेगसे छोड़ने लगा। तब भगवतीने कुपित होकर अपने लौहमुख बाणोंसे उसके बाणोंको काट डाला॥ २७॥

अब देवी और दानव महिषमें भीषण संग्राम होने लगा। वह युद्ध अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले देवताओं और दानवोंके लिये बड़ा भयदायक था॥ २८॥

उसी समय दुर्धर नामक दैत्य बीचमें आकर भगवतीको कुपित करता हुआ उनपर अतिशय दारुण और विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २९॥

तब भगवतीने क्रोधित होकर उसपर तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा प्रहार किया, जिससे दुर्धर प्राणहीन होकर पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०॥

तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित्।
आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम्॥ ३१

अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान्।
त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदम्बिका॥ ३२

अन्धकस्त्वाजगामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम्।
गदया लोहमय्याशु सिंहं विव्याध मस्तके॥ ३३

सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम्।
चखाद तरसा मांसमन्धकस्य रुषान्वितः॥ ३४

तान् रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः।
चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान्॥ ३५

द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः।
गदया ताडयामास दैत्यं वक्षसि चाम्बिका॥ ३६

स गदाभिहतो मूर्च्छामवापामरबाधकः।
विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः॥ ३७

जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः।
सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम्॥ ३८

विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह।
नखैर्विदारयामास देवीसिंहं मदोत्कटम्॥ ३९

तच्च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः।
शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः क्रूरैराशीविषैरिव॥ ४०

त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजो भूत्वा मदस्रवः।
शैलशृङ्गं करे कृत्वा चिक्षेप चण्डिकां प्रति॥ ४१

दुर्धरको मृत देखकर शस्त्रोंका महान् ज्ञाता त्रिनेत्र रणभूमिमें आकर सात बाणोंसे भगवती परमेश्वरीपर आघात करने लगा॥ ३१॥

वे बाण देवीके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीचहीमें उन्होंने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट दिया। तत्पश्चात् जगदम्बाने अपने त्रिशूलसे त्रिनेत्रको मार डाला॥ ३२॥

तब त्रिनेत्रको मारा गया देखकर तुरंत अन्धक आ गया और उसने अपनी लौहमयी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया, किंतु सिंह क्रोधमें भरकर अपने तीक्ष्ण नखोंके प्रहारसे उस महान् बलशाली दानवका वध करके उसका मांस खाने लगा॥ ३३-३४॥

उन्हें रणमें मारा गया देखकर महिषासुरको बहुत आश्चर्य हुआ। अतएव वह और भी वेगके साथ अति तीक्ष्ण और पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए बाणोंको छोड़ने लगा॥ ३५॥

किंतु भगवतीने उन बाणोंको अपने पास पहुँचनेके पहले ही अपने बाणोंसे काटकर उनके दो टुकड़े कर दिये। इसी समय जगदम्बाने महिषासुरके वक्षपर अपनी गदासे आघात किया॥ ३६॥

देवताओंको दुःख देनेवाला महिष गदासे घायल होकर मूर्च्छित हो गया। किंतु उस वेदनाको सहन करके वह पापी उठ खड़ा हुआ और पुनः तुरंत आकर उसने कोपाविष्ट होकर अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। तब सिंह भी नखोंके आघातसे उस महान् असुरको विदीर्ण करने लगा॥ ३७-३८॥

तब महिषासुरने मानवरूप त्यागकर सिंहका रूप धारण कर लिया और वह अपने नखोंसे भगवतीके मतवाले सिंहको चीरने लगा॥ ३९॥

उसे सिंहरूपमें देखकर भगवती क्रोधित हो उठीं और अपने लौहमुख, तीक्ष्ण, क्रूर एवं सर्पसदृश बाणोंसे उसे बींधने लगीं॥ ४०॥

तदनन्तर सिंहरूप त्यागकर महिषासुरने मद बहाते हुए हाथीका रूप धारण करके अपनी सूँड़से एक विशाल शैलशिखर उठाकर चण्डिकापर फेंका॥ ४१॥

आगच्छन्तं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः।
चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदम्बिका॥ ४२

उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि व्यवस्थितः।
नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम्॥ ४३

विहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा।
हन्तुकामो हरिं कोपाद्दारुणो बलवत्तरः॥ ४४

तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सा रुषान्विता।
उत्तमाङ्गे जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा॥ ४५

तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम्।
माहिषं रूपमास्थाय शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा॥ ४६

पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृङ्गाघातैर्महासुरः।
ताडयामास तन्वङ्गीं घोररूपो भयानकः॥ ४७

पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात्।
प्रेषयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा॥ ४८

तामुवाच बलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणाङ्गणे।
अद्याहं त्वां हनिष्यामि रूपयौवनभूषिताम्॥ ४९

मूर्खासि मदमत्ताद्य यन्मया सह सङ्गरम्।
करोषि मोहितातीव मृषा बलवती खरा॥ ५०

हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपण्डितान्।
ये नारीं पुरतः कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मां शठाः॥ ५१

देव्युवाच

मा गर्वं कुरु मन्दात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे।
करिष्यामि निरातङ्कान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान्॥ ५२

पीत्वाद्य माधवीं मिष्टां शातयामि रणेऽधम।
देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भयकारकम्॥ ५३

उस पर्वतशिखरको आते देखकर भगवती जगदम्बाने पत्थरपर घिसकर तेज किये गये बाणोंसे उसे तिल-तिल करके काट डाला और वे बड़ी जोरसे अट्टहास करने लगीं॥ ४२॥

उस समय देवीका सिंह उछलकर उसके मस्तकपर चढ़ बैठा और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उस गजरूपधारी महिषको विदीर्ण करने लगा॥ ४३॥

अब महिषने क्रोधपूर्वक उस सिंहको मारनेके विचारसे हाथीका रूप त्यागकर अत्यन्त भीषण और बलवान् आठ पैरोंवाले शरभका रूप धारण कर लिया॥ ४४॥

उस शरभको देखकर जगदम्बाने अतिशय क्रोधमें भरकर उसके मस्तकपर खड्गसे आघात किया। तब उसने भी भगवतीपर प्रहार किया॥ ४५॥

अब उन दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा। उसी समय उसने महिषरूप धारण करके अपनी सींगोंसे देवीके ऊपर आघात किया॥ ४६॥

विकराल रूपवाला तथा भयानक वह महान् असुर अपनी पूँछके घुमाने तथा सींगोंसे कोमल अंगोंवाली देवीपर प्रहार करने लगा॥ ४७॥

वह पापी अपनी पूँछसे पर्वतोंको सींगपर रखकर बड़े वेगसे घुमाता हुआ हँसकर अति प्रसन्नतापूर्वक भगवतीके ऊपर फेंकने लगा॥ ४८॥

बलसे उन्मत्त उस दानवने भगवतीसे कहा—हे देवि! ठहरो। रूप और यौवनसे सम्पन्न तुमको मैं आज मार डालूँगा॥ ४९॥

तुम मूर्ख हो जो कि मदमत्त हो मेरे साथ युद्ध कर रही हो। तुम अज्ञानवश अपनेको व्यर्थ ही बलवती समझकर मुखर हो रही हो॥ ५०॥

तुम्हें मारनेके बाद मैं उन सब कपटपण्डित देवताओंको मार डालूँगा, जो शठ देवतागण एक स्त्रीको आगे करके मुझे जीतना चाहते हैं॥ ५१॥

देवी बोलीं—अरे मूर्ख! व्यर्थ अभिमान मत करो, रणभूमिमें ठहर जाओ, ठहर जाओ। तुम्हें मारकर मैं देवताओंको निर्भय बना दूँगी॥ ५२॥

अरे अधम! मैं अभी मधुर मद्य पीकर देवताओंके लिये दुःखदायी और मुनियोंको भयभीत करनेवाले तुझ पापीको रणमें काट डालूँगी॥ ५३॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम्।
पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धन्तुकामा महासुरम्॥ ५४

पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा।
दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान्॥ ५५

देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम्।
जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनाञ्च निःस्वनैः॥ ५६

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पिशाचोरगचारणाः।
किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः॥ ५७

सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः।
मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपण्डितः॥ ५८

चण्डिकापि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि।
ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना॥ ५९

ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्च्छामाप मुहूर्तकम्।
पुनरुत्थाय चामुण्डां पद्भ्यां वेगादताडयत्॥ ६०

विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः।
रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम्॥ ६१

ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम्।
करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम्॥ ६२

पश्य चक्रं मदान्धाद्य तव कण्ठनिकृन्तनम्।
क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना॥ ६३

इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका।
शिरश्छिन्नं रथाङ्गेन दानवस्य तदा रणे॥ ६४

सुस्राव रुधिरं चोष्णं कण्ठनालाद् गिरेर्यथा।
गैरिकाद्यरुणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम्॥ ६५

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक उस दैत्यको मार डालनेके विचारसे भगवती मद्यपूर्ण सोनेका पात्र लेकर बारम्बार उसे पीने लगीं॥ ५४॥

उस मीठे द्राक्षारसको पीकर भगवती बड़े वेगसे अपना त्रिशूल उठाकर देवताओंको हर्षित करती हुई उस दानवपर झपटीं॥ ५५॥

उस समय देवता प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे और पुष्पवर्षा करने लगे। वे दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ देवीकी जय हो—ऐसा बार-बार कहने लगे॥ ५६॥

सभी ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, चारण और किन्नरगण आकाशमण्डलमें स्थित होकर उस युद्धको देखकर आनन्दित हो रहे थे॥ ५७॥

कपटकार्यमें प्रवीण वह महिषासुर रणभूमिमें बार-बार विविध प्रकारके मायामय शरीर धारण करके भगवतीपर प्रहार करने लगा॥ ५८॥

तब क्रोधसे लाल नेत्र करके चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे उस पापीके हृदयदेशपर बलपूर्वक आघात किया॥ ५९॥

उससे आहत होकर महिषासुर भूमिपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया, किंतु मुहूर्तभर बाद पुनः उठकर अपने पैरोंसे वेगपूर्वक देवी चामुण्डाको मारने लगा। इस प्रकार पदप्रहारोंसे देवीको चोट पहुँचाकर वह बारम्बार हँसने लगा और देवताओंको भयभीत कर देनेवाली भीषण ध्वनि करके चिल्लाने लगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर भगवतीने हजार अरों और सुन्दर नाभिवाला एक उत्कृष्ट चक्र हाथमें लेकर अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे उच्च स्वरमें कहा—अरे मदान्ध! तुम्हारे गलेको काट डालनेवाले इस चक्रकी ओर देखो। तनिक देर और ठहरकर अब तुम यमलोकके लिये प्रस्थान कर दो॥ ६२-६३॥

ऐसा कहकर जगदम्बाने युद्धभूमिमें उस दारुण चक्रको चला दिया। तब चक्रसे उस दानवका सिर कट गया। उस समय उसके कण्ठकी नलीसे इस प्रकार उष्ण रक्त बहने लगा, जैसे गेरू आदिसे युक्त लाल पानीका झरना बड़े वेगके साथ पर्वतसे गिर रहा हो। [मस्तक कट जानेपर] उस दानवका

कबन्धस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ।
जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः॥ ६६

सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ।
दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव सङ्गरे॥ ६७

मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः।
मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप॥ ६८

आनन्दं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते।
मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ॥ ६९

चण्डिकापि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता।
देवास्तत्राययुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम्॥ ७०

धड़ घूमता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंके [मुखसे] सुखकी वृद्धि करनेवाला विजयघोष होने लगा॥ ६४—६६॥

अब भगवतीका महाबली सिंह मानो भूखसे व्याकुल होकर रणभूमिमें भागते हुए दानवोंको खाने लगा॥ ६७॥

हे नृप! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर जो कोई दानव मरनेसे शेष बच गये थे, वे भयसे सन्त्रस्त होकर पाताल चले गये॥ ६८॥

उसके मर जानेपर भूमण्डलपर जो भी देवता, मुनिगण, मनुष्य और साधुजन थे, वे परम आनन्दित हो गये॥ ६९॥

भगवती चण्डिका भी रणभूमि छोड़कर एक पवित्र स्थानमें विराजमान हो गयीं। देवता भी उन सुख प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्तुति करनेकी इच्छासे शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे महिषासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~o~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यास उवाच

अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥ १

देवा ऊचुः

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः
शक्त्या तवैव हरते ननु चान्तकाले।
ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीना-
स्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री॥ २

कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं
श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमलाजपा च।
पुष्टिः कलाथ विजया गिरिजा जया त्वं
तुष्टिः प्रमा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च॥ ३

व्यासजी बोले—महिषासुरका संहार देखकर इन्द्र आदि प्रधान देवता परम प्रसन्न हुए और वे जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ १॥

देवता बोले—हे देवि! आपकी ही शक्तिसे ब्रह्मा इस जगत्का सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं और शिवजी प्रलयकालमें संहार करते हैं। आपकी शक्तिसे रहित हो जानेपर वे कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेवाली आप ही हैं॥ २॥

इस संसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रमा, बुद्धि, उमा, रमा,

विद्या क्षमा जगति कान्तिरपीह मेधा
सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन्।
आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं
को वा क्षमः सकललोकनिवासभूमे॥ ४

त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ
धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम्।
पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्था-
स्यत्येतदम्ब निखिलं बहुभारयुक्तम्॥ ५

ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान्विमूढा
मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान्।
शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये॥ ६

ये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञे
वह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविः समृद्धम्।
स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा
त्वामेव किं न हि यजन्ति ततो हि मूढाः॥ ७

भोगप्रदासि भवतीह चराचराणां
स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम्।
स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्व-
त्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः॥ ८

मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदा-
द्वन्ध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान्।
नोच्छेदयन्ति पुरुषा निपुणाः कथञ्चि-
त्तस्मात्त्वमप्यतितरां परिपासि दैत्यान्॥ ९

यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैरराती-
न्देवाङ्गनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ।
देहान्तरेऽपि करुणारसमाददाना
तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय॥ १०

विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा—ये सब शक्तियाँ आप ही हैं। इस त्रिलोकीमें आप विख्यात हैं। सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली हे देवि! आपकी इन शक्तियोंके बिना कौन व्यक्ति कुछ भी स्वयं कर सकनेमें समर्थ है?॥ ३-४॥

हे अम्ब! धारणा शक्ति भी निश्चितरूपसे आप ही हैं, अन्यथा कच्छप और शेषनाग इस पृथ्वीको धारण कर सकनेमें कैसे समर्थ हो पाते? पृथ्वी-शक्ति भी आप ही हैं। यदि आप इस रूपमें न होतीं तो प्रचुर भारसे सम्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् आकाशमें कैसे ठहर सकता था॥ ५॥

हे जननि! जो मनुष्य मायाके गुणोंसे प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, अग्नि, यम, वायु, गणेश आदि प्रमुख देवताओंकी स्तुति करते हैं, वे अज्ञानी ही हैं; क्योंकि क्या वे देवता भी आपकी कृपाशक्तिके बिना उन मनुष्योंको कार्य-फल प्रदान करनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ ६॥

हे अम्ब! जो लोग सुविस्तृत यज्ञमें देवताओंको अधिकृत करके अग्निमें पुष्कल आहुति देते हैं, वे मन्दमति हैं; क्योंकि यदि स्वाहाके रूपमें आप न होतीं, तो वे देवता हविर्द्रव्यको कैसे पाते? तब फिर वे मूढ़ आपका ही यजन क्यों नहीं करते?॥ ७॥

आप जगत्के चराचर प्राणियोंको भोग प्रदान करती हैं और अपने अंशोंसे उन्हें नित्य जीवन देती हैं। हे जननि! जिस प्रकार आप अपने प्रिय देवताओंका पोषण करती हैं, उसी प्रकार अपने शत्रुओंका भी पालन करती हैं॥ ८॥

हे माता! बुद्धिमान् पुरुष विनोदके लिये उद्यानमें लगाये गये वृक्षोंमेंसे कुछ वृक्षोंके फल और पत्तोंसे रहित हो जाने अथवा उन वृक्षोंका रस कड़ुवा निकल जानेपर भी उन्हें कभी भी नहीं काटते, उसी प्रकार आप भी [अपने ही बनाये हुए] दैत्योंकी भलीभाँति रक्षा करती हैं॥ ९॥

करुणारससे ओत-प्रोत हृदयवाली आप रणभूमिमें बाणोंद्वारा शत्रुओंका जो संहार करती हैं, वह भी उनका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही होता है; क्योंकि दूसरे जन्ममें देवांगनाओंके साथ क्रीड़ा-विहार करनेकी इच्छावाला उन्हें जानकर ही आपके द्वारा ऐसा किया जाता है; ऐसा आपका अद्भुत चरित्र है॥ १०॥

चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न सन्ति
त्वच्चिन्तितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः।
येषां कृते जननि देहनिबन्धनं ते
क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः॥ ११

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशङ्कराणां
सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम्॥ १२

ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च
ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान्।
धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते
कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे॥ १३

विद्या त्वमेव सुखदासुखदाप्यविद्या
मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम्।
मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मन्दधीभि-
र्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाज्ञैः॥ १४

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं
पादाम्बुजं तव भजन्ति सुरास्तथान्ये।
तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजन्ति
भ्रान्ताः पतन्ति सततं भवसागरे ते॥ १५

चण्डि त्वदङ्घ्रिजलजोत्थरजःप्रसादै-
र्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ।
शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु
त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ॥ १६

वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां
वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः।
त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां
यस्माद्भवन्ति मनुजा न हि तद्विहीनाः॥ १७

हे माता! बड़ी विलक्षण बात तो यह है कि विख्यात प्रभावोंवाले उन दैत्योंका संहार जो आपके संकल्पमात्रसे ही सम्भव था, इसके लिये आपको अवतार लेना पड़ा। यह शरीर धारण करके आप वास्तवमें इसीके सहारे लीला करती हैं; इसमें कोई दूसरा कारण नहीं है॥ ११॥

जो मनुष्य इस विकराल कलिके उपस्थित होनेपर भी आपकी आराधना नहीं करते, अपितु आपके ही द्वारा निर्मित विष्णु, शिव आदि देवताओंकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, वे लोग पुराण-चतुर धूर्तजनोंके द्वारा निश्चित रूपसे ठग लिये गये हैं॥ १२॥

यह जानकर भी कि देवता आपके अधीन हैं तथा दैत्योंके द्वारा छिन्न-भिन्न और प्रताड़ित किये जाते हैं—जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूलोकमें अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे मानो हाथमें अत्यन्त प्रकाशमान दीपक लेकर भी किसी जलरहित भयानक कूपमें जा गिरते हैं॥ १३॥

हे माता! आप ही सुखदायिनी विद्या तथा दुःखदायिनी अविद्या हैं और आप ही मनुष्योंके जन्म-मृत्युका दुःख दूर करनेवाली हैं। हे जननि! मोक्षकी कामना करनेवाले लोग तो आपकी आराधना करते हैं, किंतु मन्दबुद्धि अज्ञानी तथा विषयभोगपरायण मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते॥ १४॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवतागण आपके शरणदायक चरणकमलकी निरन्तर उपासना करते हैं, किंतु जो अल्पबुद्धि मनुष्य भ्रमित होकर मनसे आपकी आराधना नहीं करते, वे संसार-सागरमें बार-बार गिरते हैं॥ १५॥

हे चण्डिके! आपके चरण-कमलसे उत्पन्न हुई धूलिके प्रभावसे ही ब्रह्मा सृष्टिके प्रारम्भमें सम्पूर्ण भुवनकी रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। इस लोकमें जो मनुष्य आपकी उपासना नहीं करता, वह अभागा है॥ १६॥

हे देवि! आप ही देवताओं तथा दैत्योंकी वाग्देवता हैं। यदि आप मुखमें विराजमान न रहतीं, तो बड़े-बड़े देवता भी बोलनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। मुख होनेपर भी मनुष्य उस वाक्शक्तिके बिना बोल नहीं सकता॥ १७॥

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां
तान्सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात्॥ १८

शम्भोः पपात भुवि लिङ्गमिदं प्रसिद्धं
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।
तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तु
तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥ १९

योऽभूद् गजाननगणाधिपतिर्महेशा-
त्तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः।
जानन्ति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं
त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम्॥ २०

चित्रं त्वयारिजनतापि दयार्द्रभावा-
द्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम्।
नोचेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितान्तं
दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावा-
ज्जानन्ति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम्।
केऽन्ये भवन्ति मनुजा विदितुं समर्थाः
सम्मोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः॥ २२

क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं
पादाम्बुजं न हि भजन्ति विमूढचित्ताः।
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं
ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम्॥ २३

हे जननि! महर्षि भृगुने कुपित होकर भगवान् विष्णुको शाप दे दिया, जिससे उन्हें पृथ्वीपर बारम्बार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और छली वामनका अवतार लेना पड़ा। तो फिर [एक ऋषिके शापसे अपनी रक्षा न कर पानेवाले ऐसे विष्णु आदि] उन देवताओंकी उपासना करनेवाले लोगोंको मृत्युका भय क्यों नहीं बना रहेगा?॥ १८॥

हे माता! सम्पूर्ण संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि भृगुमुनिके काननमें गये हुए भगवान् शिवका लिंग मुनिके शापके कारण कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा था। अतः जो मनुष्य पृथ्वीपर उन कापालिक शिवको ही भजते हैं, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें भी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?॥ १९॥

शिवसे जो गणोंके अधिपति गणेश उत्पन्न हुए हैं—उन गणेशको जो लोग भजते हैं, उनकी यह शरणागति व्यर्थ है। हे देवि! वे लोग सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली तथा सुखपूर्वक आराधनीय आप जगज्जननीको नहीं जानते हैं॥ २०॥

यह बड़ी विचित्र बात है कि आपने अपने शत्रु-दैत्योंपर भी दया करके उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे रणमें मारकर स्वर्गलोक भेज दिया। यदि आप ऐसा न करतीं तो वे अपने कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले घोर नरकमें बड़े-से-बड़े दुःख और विपत्तिमें पड़ जाते॥ २१॥

जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी अहंकारके कारण आपकी महिमा नहीं जानते, तब आपके अमित प्रभाववाले गुणोंसे मोहित तुच्छ मनुष्य आपकी महिमाको कैसे जान सकेंगे?॥ २२॥

जो मुनिगण आपके स्वरूपको बड़ी कठिनतासे ध्यानमें आनेवाला समझकर आपके चरणकमलकी उपासना नहीं करते; अपितु सूर्य, अग्नि आदिकी उपासनामें लगे रहते हैं, वे मूढ़बुद्धि अनेकविध कष्ट पाते हैं। समस्त श्रुतियोंके द्वारा प्रतिपादित वेदसारस्वरूप परमार्थतत्त्वको वे नहीं जान पाते॥ २३॥

---

* इस पुराणमें जगदम्बा पराशक्तिकी विशिष्टता प्रदर्शित करनेके लिये ही अन्य देवोंकी उपासनासे विरत रहनेकी बात कही गयी है। वैसे तो भगवती एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवगण भी परमात्मप्रभुके ही स्वरूप हैं; उनमें कोई भेद नहीं है।

मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः
कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात्।
लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च
विष्ण्वीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४

कुर्वन्ति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्र्या-
न्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ।
तेषां न कुप्यसि दयां कुरुषेऽम्बिके त्वं
तान्मोहमन्त्रनिपुणान्प्रथयस्यलं च ॥ २५

तुर्ये युगे भवति चातिबलं गुणस्य
तुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि।
त्वां गोपयन्ति निपुणाः कवयः कलौ वै
त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवन्ति ॥ २६

ध्यायन्ति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां
विद्यां पराञ्च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः।
ते नाप्नुवन्ति जननीजठरे तु दुःखं
धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥ २७

चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि येन सोऽपि
व्यक्तो जगत्सु विदितो भवकृत्यकर्ता।
कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्
कर्तुं विहर्तुमपि सञ्चलितुं स्वशक्त्या ॥ २८

तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं
किं वा क्षमाणि जगदम्ब यतो जडानि।
किं चेन्द्रियाणि गुणकर्मयुतानि सन्ति
देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥ २९

मैं तो यही समझता हूँ कि अद्भुत प्रभावोंवाले जो आपके सत्त्व, रज और तम गुण हैं, वे ही मनुष्योंको उन्हींकी अपनी ही बुद्धिद्वारा विरचित अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें उलझाकर उन्हें विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश आदिका उपासक बनाकर आपके भक्तिभावसे सर्वथा विमुख कर देते हैं ॥ २४ ॥

हे अम्बिके! जो लोग विष्णु तथा शिवकी पूजा और भक्तिसे परिपूर्ण शास्त्रोंके उपदेशद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरणोंसे विमुख कर देते हैं, उनके ऊपर भी आप क्रोध नहीं करती हैं, बल्कि दया ही करती हैं और इसके अतिरिक्त मोहन आदि मन्त्रोंके ज्ञाताओंको भी आप संसारमें बहुत प्रसिद्ध बना देती हैं ॥ २५ ॥

सत्ययुगमें सत्त्वगुणकी प्रबलता रहती है, अतः उस युगमें असत्-शास्त्रोंपर आस्था नहीं हो पाती। किंतु कलिमें तो कवित्वके अभिमानी लोग आपकी उपेक्षा करते हैं और आपहीके द्वारा बनाये गये देवताओंकी स्तुति करते हैं ॥ २६ ॥

इस पृथ्वीतलपर अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरणवाले जो सात्त्विक मुनिगण मुक्ति-फल प्रदान करनेवाली योगसिद्धा एवं पराविद्यास्वरूपिणी आप भगवतीका ध्यान करते हैं, वे पुनः माताके गर्भमें आकर कष्ट नहीं पाते। जो मनुष्य आपमें ध्यानमग्न हैं, वे धन्य हैं ॥ २७ ॥

आप चित्-शक्ति हैं और वही चित्-शक्ति परमात्मामें विद्यमान है, जिसके कारण वे भी [नाम और रूपसे] अभिव्यक्त होकर इस जगत्के सृजन, पालन एवं संहाररूपी कार्योंके कर्ताके रूपमें लोकोंमें प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्माके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जो आपसे रहित होकर अपनी शक्तिसे इस जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेमें समर्थ हो सकता है? ॥ २८ ॥

हे जगदम्बे! क्या चित्-शून्य तत्त्व जगत्की रचना करनेमें समर्थ हो सकते हैं? चूँकि तत्त्व जड़ हैं, अतः वे जगत्की रचनामें समर्थ नहीं हैं। हे देवि! यद्यपि इन्द्रियाँ गुण तथा कर्मसे युक्त हैं, फिर भी आपसे रहित होकर क्या वे फल प्रदान कर सकती हैं? ॥ २९ ॥

देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं
गृह्णीयुरम्ब विधिवत्प्रतिपादितं किम्।
स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता
तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम्॥ ३०

सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ
त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान्।
कालेऽत्सि विश्वमपि ते चरितं भवाद्यं
जानन्ति नैव मनुजाः क्व नु मन्दभाग्याः॥ ३१

हत्वासुरं महिषरूपधरं महोग्रं
मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम्।
कां ते स्तुतिं जननि मन्दधियो विदामो
वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः॥ ३२

कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा
वैरी हतो भुवनकण्टकदुर्विभाव्यः।
कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेया-
प्यस्मांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे॥ ३३

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा।
अन्यत्कार्यं च दुःसाध्यं ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः॥ ३४

यदा यदा हि देवानां कार्यं स्यादतिदुर्घटम्।
स्मर्तव्याहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चापदम्॥ ३५

देवा ऊचुः

सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु साम्प्रतम्।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः॥ ३६

हे माता! यदि आप यज्ञोंमें 'स्वाहा' के रूपमें निमित्त न बनतीं तो क्या देवगण उन यज्ञोंमें मुनियोंके द्वारा विधिवत् प्रदत्त आहुति-रूप यज्ञभाग प्राप्त करते? अतः यह निश्चय हो गया कि आप ही विश्वका पालन करती हैं॥ ३०॥

सृष्टिके प्रारम्भमें इस सम्पूर्ण जगत्की रचना आपने ही की है, आप ही विष्णु-शिव आदि प्रमुख देवताओं तथा दिक्पालोंकी रक्षा करती हैं और प्रलयकालमें आप ही सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें विलीन कर लेती हैं। [हे देवि!] जब ब्रह्मा आदि देवता भी आपके आद्य चरित्रको नहीं जान पाते, तब मन्दभाग्य हम देवता उसे कैसे जान सकते हैं?॥ ३१॥

हे माता! आपने महिषका रूप धारण करनेवाले अत्यन्त उग्र असुरका वध करके इस देवसमुदायकी रक्षा की है। हे जननि! जब वेद भी यथार्थरूपसे आपकी गतिको नहीं जान पाये, तब हम मन्दबुद्धि देवता उसे कैसे जान सकते हैं, हम कैसे आपकी स्तुति करें?॥ ३२॥

विख्यात प्रभाववाली हे जननि! आपने जगत्में महान् कार्य किया है जो कि आपने संसारके अचिन्त्य कण्टकस्वरूप हमारे शत्रु दुरात्मा महिषासुरका वध कर दिया। ऐसा करके आपने सम्पूर्ण लोकोंमें अपनी कीर्ति स्थापित कर दी है, अब आप सारे संसारपर अनुग्रह करें और हमारी रक्षा करें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवीने मधुर स्वरमें उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवतागण! इसके अतिरिक्त भी कोई दुःसाध्य कार्य हो तो उसे आपलोग बता दीजिये। जब-जब आप देवताओंके सामने कोई महान् दुःसाध्य कार्य उपस्थित हो, तब-तब आपलोग मेरा स्मरण कीजियेगा; मैं उस संकटको शीघ्र ही दूर कर दूँगी॥ ३४-३५॥

देवता बोले—हे देवि! इस समय आपने हमारा सारा कार्य पूर्ण कर दिया है जो कि आपके द्वारा हमारा शत्रु यह महिषासुर मार डाला गया॥ ३६॥

स्मरिष्यामो यथा तेऽम्ब सदैव पदपङ्कजम्।
तथा कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचञ्चलाम्॥ ३७

अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा।
इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजन्ते कुतो जनाः॥ ३८

द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरन्तरम्।
नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि॥ ३९

तस्माजीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति।
पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु॥ ४०

प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः।
मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः॥ ४१

सुखे वाप्यथवा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम्।
पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः॥ ४२

अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पादाम्बुजरेणुतः।

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवान्तरधीयत।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम्॥ ४३

हे अम्ब! हे जगज्जननि! अब आप हमारे मनमें अपने प्रति ऐसी अविचल भक्ति स्थापित कीजिये कि हम सदा आपके चरण-कमलका स्मरण करते रहें॥ ३७॥

माता ही [अपनी सन्तानके] हजारों अपराध सह सकती है—ऐसा समझकर लोग जगत्की उत्पत्तिस्वरूपा भगवतीकी उपासना क्यों नहीं करते?॥ ३८॥

इस देहरूपी वृक्षपर जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी रहते हैं। उन दोनोंमें सर्वदा मित्रता बनी रहती है, किंतु उनका तीसरा सखा ऐसा कोई भी नहीं है, जो अपराधको सह सके। अतएव यह जीव आप-जैसे मित्रको त्यागकर क्या करेगा? देवताओं और मानवोंकी योनिमें वह प्राणी पापी, मन्दभागी और अधम है, जो अत्यन्त दुर्लभ देह पाकर भी आपका स्मरण नहीं करता॥ ३९-४०½॥

हम मन, वाणी और कर्मसे बार-बार यह सत्य कह रहे हैं कि सुख अथवा दुःख—प्रत्येक परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे लिये अद्भुत शरण हैं। हे देवि! आप अपने समस्त श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा हमारी निरन्तर रक्षा करें। आपके चरणकमलोंकी धूलिको छोड़कर हमारे लिये कोई दूसरा शरण नहीं है॥ ४१-४२½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब उन्हें अन्तर्हित देखकर देवता बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीसान्त्वनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

देवीका मणिद्वीप पधारना तथा राजा शत्रुघ्नका भूमण्डलाधिपति बनना

जनमेजय उवाच

अथाद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं
देव्या जगच्छान्तिकरं परञ्च।
न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः
कथामृतं ते मुखपद्मजातम्॥ १

जनमेजय बोले—हे मुने! अब मैंने भगवतीके अत्यन्त अद्भुत तथा जगत्को शान्ति प्रदान करनेवाले प्रभावको तो देख लिया, फिर भी हे द्विजवर! आपके मुखारविन्दसे निकली हुई सुधामयी कथाको बार-बार

अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां
चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते।
देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं
दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २

कस्तृप्तिमाप्नोति कथामृतेन
भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरन्ध्रः ।
पीतेन येनामरतां प्रयाति
धिक्तान्नरान् ये न पिबन्ति सादरम्॥ ३

लीलाचरित्रं जगदम्बिकाया
रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम्।
संसारवार्धेस्तरणं नराणां
कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः॥ ४

मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च
संसारिणो रोगयुताश्च केचित्।
तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं
सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति॥ ५

तथा विशेषेण मुने नृपाणां
धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम्।
मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबन्ति
कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः॥ ६

यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी
सत्कुन्दपुष्पैरथ चम्पकैश्च।
बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता
नृपा भवन्तीत्यनुमेयमेवम्॥ ७

ये भक्तिहीनाः समवाप्य देहं
तं मानुषं भारतभूमिभागे।
यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना
रोगान्विताः सन्ततिवर्जिताश्च॥ ८

सुनते हुए भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। [अब आप बतायें] भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर उन प्रधान देवताओंने क्या किया? देवीका यह परम पावन चरित्र मनुष्योंके अल्प पुण्योंसे प्राप्त हो सकना सर्वथा दुर्लभ ही है॥ १-२॥

अल्पभाग्यवाले मनुष्यको छोड़कर भगवतीके कथाश्रवणमें सदा तत्पर कर्णपुटवाला ऐसा कौन होगा जो देवीके कथामृतसे तृप्ति प्राप्त कर लेता है? जिस कथामृतका पान करनेसे मनुंष्य अमरत्व प्राप्त कर लेता है, उसे जो आदरपूर्वक नहीं पीते, उन मनुष्योंको धिक्कार है॥ ३॥

भगवती जगदम्बाका लीलाचरित्र देवताओं और बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी रक्षाका परम साधन है। [यह लीलाचरित्र] मनुष्योंको संसारसागरसे पार करनेके लिये एक नौका है। कृतज्ञजन उस चरित्रको भला कैसे त्याग सकते हैं?॥ ४॥

जीवन्मुक्त तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अथवा रोगग्रस्त जो कोई भी सांसारिक प्राणी हों, उन सबको चाहिये कि वे अपने कर्णपुटसे भगवतीके इस सर्वार्थदायक कथामृतका पान करते रहें—ऐसा वेदवेत्ता कहते हैं। हे मुने! धर्म, अर्थ और काममें तत्पर राजाओंको तो विशेष रूपसे कथामृतका पान करना चाहिये। जब मुक्त प्राणीतक उस कथामृतका पान करते हैं, तब मुक्तिसे वंचित जन इसका पान क्यों न करें!॥ ५-६॥

यह अनुमान करना चाहिये कि जिन लोगोंने अपने पूर्वजन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्पों, चम्पाके पुष्पों तथा बिल्वपत्रोंसे भगवतीका पूजन किया है, वे ही इस जन्ममें भूतलपर भोग तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न राजा होते हैं॥ ७॥

जो मनुष्य [पवित्र] भारत-भूभागमें यह मानवशरीर पाकर भी भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं तथा जिन्होंने उनकी आराधना नहीं की, वे सदा धन-धान्यसे हीन, रोगग्रस्त और निःसन्तान रहते हैं; साथ

भ्रमन्ति नित्यं किल दासभूता
आज्ञाकराः केवलभारवाहाः।
दिवानिशं स्वार्थपराः कदापि
नैवाप्नुवन्त्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९

अन्धाश्च मूका बधिराश्च खञ्जाः
कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः।
तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं
नाराधिता तैः सततं भवानी॥ १०

ये राजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाः
संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः।
दृश्यन्ति ये वा विभवैः समेता-
स्तैः पूजिताम्बेत्यनुमेयमेव॥ ११

तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरितमुत्तमम्।
कथयस्व कृपां कृत्वा दयावानसि साम्प्रतम्॥ १२

हत्वा तं महिषं पापं स्तुता सम्पूजिता सुरैः।
क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजःसमुद्भवा॥ १३

कथितं ते महाभाग गतान्तर्धानमाशु सा।
स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी॥ १४

लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे वा समाश्रिता।
अथवा हेमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना॥ १५

व्यास उवाच

पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम्।
क्रीडास्थानं सदा देव्या वल्लभं परमं स्मृतम्॥ १६

यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे।
पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे॥ १७

यः सुधासिन्धुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः।
नानारूपैः सदा तत्र विहारं कुरुतेऽम्बिका॥ १८

ही वे लोग दूसरोंके दास बनकर निरन्तर घूमते रहते हैं और आज्ञाकारी होकर दूसरोंका भार ढोया करते हैं। वे दिन-रात स्वार्थसाधनमें लगे रहते हैं, फिर भी उन्हें अपना पेट भरनेतकके लिये अन्न कभी नहीं मिलता॥ ८-९॥

इस संसारमें जो लोग अन्धे, गूँगे, बहरे, लूले और कोढ़ीके रूपमें कष्ट भोग रहे हैं, उनके विषयमें विद्वानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उन्होंने भगवतीकी निरन्तर आराधना नहीं की है॥ १०॥

जो लोग राजोचित भोगसे युक्त, ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अनेक मनुष्योंसे सेवित और वैभवशाली दिखायी पड़ते हैं, उनके विषयमें यह अनुमान लगाना चाहिये कि उन्होंने अवश्य ही जगदम्बाकी उपासना की है॥ ११॥

अतएव हे सत्यवतीनन्दन! अब आप कृपा करके भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये; आप बड़े दयालु हैं॥ १२॥

उस पापी महिषासुरका वध करनेके पश्चात् देवताओंसे भलीभाँति पूजित होकर सभी देवताओंके तेजसे प्रादुर्भूत वे भगवती महालक्ष्मी कहाँ चली गयीं?॥ १३॥

हे महाभाग! आपने अभी कहा है कि वे तुरंत अन्तर्धान हो गयीं। स्वर्गलोक अथवा मृत्युलोक किस जगह वे भगवती भुवनेश्वरी प्रतिष्ठित हुईं? वे वहींपर विलीन हो गयीं या वैकुण्ठधाममें विराजने लगीं अथवा वे सुमेरुपर्वतपर विराजमान हुईं, अब आप मुझे यह सब यथार्थरूपमें बतायें॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इसके पहले मैं आपसे रमणीय मणिद्वीपका वर्णन कर चुका हूँ। वह भगवतीका क्रीडास्थल है तथा उनके लिये सदा परम प्रिय बतलाया गया है। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्त्रीरूपमें परिणत हो गये थे और पुनः पुरुषत्व पाकर वे अपने-अपने कार्योंमें संलग्न हो गये। वह परम सुन्दर द्वीप सुधासागरके मध्यमें विराजमान है। भगवती जगदम्बा वहाँ अनेक रूपोंमें सदा विहार करती रहती हैं॥ १६—१८॥

स्तुता सम्पूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा।
यत्र संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी॥ १९

देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा।
रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम्॥ २०

अयोध्याधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं महिषस्यासने शुभे॥ २१

दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः।
स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते॥ २२

गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते।
धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा॥ २३

पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता।
पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा॥ २४

गावश्च क्षीरसम्पन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम्।
नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः॥ २५

ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा।
क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः॥ २६

शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः।
न्यायदण्डधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः॥ २७

अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां सम्बभूव ह।
आकरा धनदा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः॥ २८

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम।
देवीभक्तिपराः सर्वे सम्बभूवुर्धरातले॥ २९

सर्वत्र यज्ञयूपाश्च मण्डपाश्च मनोहराः।
मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः॥ ३०

[महिषासुरके वधके पश्चात्] देवताओंसे स्तुत तथा भलीभाँति पूजित होकर वे सनातनी मायाशक्ति भगवती शिवा उसी मणिद्वीपमें चली गयीं, जहाँ वे निरन्तर विहार करती रहती हैं॥ १९॥

उन सर्वेश्वरी भगवतीको अन्तर्हित देखकर देवताओंने सूर्यवंशमें उत्पन्न, महाबली एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अयोध्याधिपति शत्रुघ्न नामक पराक्रमी राजाको महिषासुरके सुन्दर आसनपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार इन्द्र आदि सभी प्रधान देवता शत्रुघ्नको राज्य प्रदान करके अपने-अपने वाहनोंसे अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २०—२२॥

हे भूपते! उन देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीपर धर्मराज्य स्थापित हो गया और प्रजाएँ सुखी हो गयीं। मेघ उचित समयपर जल बरसाते थे और पृथ्वीपर उत्तम धान्य उत्पन्न होते थे। वृक्ष फलों तथा फूलोंसे सदा लदे रहते थे और वे लोगोंके लिये बड़े सुखदायक हो गये॥ २३-२४॥

घड़ेके समान थनवाली दुधारू गौएँ मनुष्योंको उनकी इच्छाके अनुसार दूध दिया करती थीं। स्वच्छ एवं शीतल जलवाली नदियाँ सुगमतापूर्वक बहती थीं और पक्षियोंसे सुशोभित रहती थीं॥ २५॥

ब्राह्मण वेदतत्त्वोंके ज्ञाता हो गये और यज्ञकर्ममें प्रवृत्त रहने लगे। क्षत्रिय धर्मभावनासे ओतप्रोत हो गये और सदा दान तथा अध्ययनमें तत्पर रहने लगे। सभी राजा शस्त्रविद्या प्राप्त करनेमें संलग्न हो गये, वे सदा प्रजाओंकी रक्षा करने लगे, उनका दण्ड-विधान न्यायके अनुसार चलने लगा और वे शान्तिगुणसे सम्पन्न हो गये॥ २६-२७॥

सभी प्राणियोंमें परस्पर मेल-जोल रहने लगा, खानोंसे मनुष्योंको अपार धन प्राप्त होने लगा और गोशालाएँ गोसमुदायसे सम्पन्न हो गयीं॥ २८॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस समय धरातलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये सब-के-सब देवीकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ २९॥

सर्वत्र मनोहर यज्ञमण्डप तथा यज्ञयूप दृष्टिगोचर होते थे। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंद्वारा सम्पन्न किये गये यज्ञोंसे सारी पृथ्वी सुशोभित होने लगी॥ ३०॥

पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः।
पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः॥ ३१

न पाखण्डं न वाधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले।
वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाभवन्॥ ३२

कलहो नैव केषाञ्चिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः।
सर्वत्र सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा॥ ३३

सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन।
नानावृष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम्॥ ३४

न रोगो न च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम्।
सर्वत्र सुखसम्पन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः॥ ३५

क्रीडन्ति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव।
न चौरा न च पाखण्डा वञ्चका दम्भकास्तथा॥ ३६

पिशुना लम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप।
न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते॥ ३७

सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः।
त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः॥ ३८

सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथापरे।
सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृत्तयः॥ ३९

प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः।
यज्ञांस्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः॥ ४०

पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन।
दानमध्ययनञ्चैव यजनं तु तृतीयकम्॥ ४१
त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप।

उस समय स्त्रियाँ पातिव्रतधर्मपरायण, सुशील तथा सत्यनिष्ठ थीं और पुत्र पिताके प्रति श्रद्धा रखनेवाले तथा धर्मशील होते थे॥ ३१॥

पृथ्वीतलपर पाखण्ड तथा अधर्म कहीं भी नहीं रह गया। उस समय वेदवाद और शास्त्रवादके अतिरिक्त अन्य कोई वाद प्रचलित नहीं थे॥ ३२॥

उस समय किसीमें भी परस्पर कलह नहीं होता था, दीनता नहीं थी और किसीकी अशुभ बुद्धि नहीं रह गयी थी। सभी जगह लोग सुखी थे और आयु पूर्ण होनेपर ही उनकी मृत्यु होती थी, किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी॥ ३३॥

मित्रोंमें वियोग नहीं होता था, किसीपर कभी विपत्तियाँ नहीं आती थीं, अनावृष्टि नहीं होती थी, न अकाल पड़ता था और न तो दुःखदायिनी महामारी ही मनुष्योंको ग्रसित करती थी॥ ३४॥

न किसीको रोग था और न तो लोगोंका आपसमें डाह तथा विरोध ही था। सर्वत्र नर तथा नारी सब प्रकारसे सुखी थे। सभी मनुष्य स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति आनन्द भोगते थे। हे राजन्! उस समय चोर, पाखण्डी, धोखेबाज, दम्भी, चुगलखोर, लम्पट तथा जड़ प्रकृतिवाले मनुष्य नहीं रह गये थे। हे भूपते! वेदोंसे द्वेष करनेवाले तथा पापी मनुष्य उस समय नहीं थे, अपितु सभी लोग धर्मनिष्ठ थे और नित्य ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते थे॥ ३५—३७½॥

सृष्टिधर्मके तीन प्रकार होनेके कारण ब्राह्मण भी तीन प्रकारके थे—सात्त्विक, राजस तथा तामस। उनमें सत्त्व-वृत्तिवाले सभी सात्त्विक ब्राह्मण वेदोंके ज्ञाता तथा [यज्ञकार्योंमें] दक्ष, दान लेनेकी प्रवृत्तिसे रहित, दयालु तथा संयम रखनेवाले थे। वे धर्मपरायण रहकर सात्त्विक अन्नोंसे यज्ञ करते हुए सदा पुरोडाशके द्वारा विधिविधानसे हवन करते थे और पशुबलिके द्वारा कभी भी यज्ञ सम्पन्न नहीं करते थे। हे राजन्! वे सात्त्विक ब्राह्मण दान, अध्ययन और यज्ञ—इन्हीं तीनों कार्योंमें सदा अभिरुचि रखते थे*॥ ३८—४१½॥

---

* सात्त्विक ब्राह्मणोंद्वारा किये जानेवाले निरामिष यज्ञकी प्रशंसा करनेसे यह स्पष्ट है कि मांस-भक्षणादि तथा काम-क्रोधादि विकार रजोगुण तथा तमोगुणसे उत्पन्न हो जाते हैं, अतः सर्वथा त्याज्य हैं; इन्हें भ्रमवश विधि नहीं समझना चाहिये।

राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥ ४२

षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः।
यजनं याजनं दानं तथैव च प्रतिग्रहः ॥ ४३

अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट्।
तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः ॥ ४४

राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः।
महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः ॥ ४५

बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा।
क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः ॥ ४६

कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे।
एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते ॥ ४७

अनुद्वेगः प्रजानां वै सम्बभूव धनागमः।
बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः ॥ ४८

वृक्षा बहुफलाश्चासन्मानवा रोगवर्जिताः।
नाधयो नेतयः क्वापि प्रजानां दुःखदायकाः ॥ ४९

न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले
सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव।
निगमविहितधर्मे तत्पराश्चण्डिकाया-
श्चरणसरसिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥ ५०

राजस ब्राह्मण वेदके विद्वान् थे और वे क्षत्रियोंके पुरोहित होते थे। वे यथाविधि मांसभक्षी थे। वे सदा छः कर्मोंमें ही संलग्न रहते थे। यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना—ये ही उनके छः कर्म थे ॥ ४२-४३½ ॥

तामस प्रकृतिवाले ब्राह्मण क्रोधी और राग-द्वेषपरायण रहते थे। वे सदा राजाओंके यहाँ कर्मचारीके रूपमें कार्य करते थे। वे कुछ-कुछ अध्ययनमें भी संलग्न रहते थे ॥ ४४½ ॥

इस प्रकार महिषासुरका वध हो जानेपर सभी ब्राह्मण सुखी, वेदपरायण, व्रतनिष्ठ तथा दान-धर्ममें संलग्न हो गये; क्षत्रिय प्रजापालनमें लग गये; वैश्य व्यवसायमें तत्पर हो गये और कुछ अन्य वैश्य कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा तथा सूदपर धन देनेके कर्ममें प्रवृत्त हो गये। इस प्रकार महिषासुरके संहारके पश्चात् सारा जनसमुदाय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया ॥ ४५—४७ ॥

प्रजाओंकी व्याकुलता दूर हो गयी, उन्हें पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा, गौएँ परम सुन्दर तथा बहुत दूध देनेवाली हो गयीं, नदियाँ प्रचुर जलसे भर गयीं, वृक्ष बहुत अधिक फलोंसे लद गये और सभी मनुष्य रोगरहित हो गये। कहीं भी किसी प्राणीको मानसिक व्याधियाँ तथा प्राकृतिक आपदाएँ व्यथित नहीं करती थीं ॥ ४८-४९ ॥

उस समय सभी प्राणी अकालमृत्युको प्राप्त नहीं होते थे, वे सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न तथा नीरोग रहते थे। वेदप्रतिपादित धर्ममें तत्पर रहते हुए सभी लोगोंने भगवती चण्डिकाके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगा दिया था ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषवधानन्तरं पृथिवीसुखवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

* * *

अथैकविंशोऽध्यायः

शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम्।
सुखदं सर्वजन्तूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं देवीका उत्तम चरित्र कहता हूँ; यह सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देनेवाला तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ।
बभूवतुर्महावीरौ अवध्यौ पुरुषैः किल॥ २

बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा।
दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ॥ ३

हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे।
देवानाञ्च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह॥ ४

चण्डमुण्डौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः।
धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे॥ ५

तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम्।
स्तुता सम्पूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे॥ ६

राजोवाच

कावेतावसुरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ।
केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ॥ ७

तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ।
कथञ्च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम्॥ ८

व्यास उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम्॥ ९

पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमण्डले।
पातालतश्च सम्प्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ॥ १०

तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम्।
अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोकपावने॥ ११

वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ।
एकत्रैवासनं कृत्वा तेपाते परमं तपः॥ १२

[पूर्वकालमें] शुम्भ और निशुम्भ नामक दो [असुर] भाई थे। वे बड़े बलवान्, महापराक्रमी तथा पुरुषोंसे अवध्य थे॥ २॥

उनके पास बहुत-से सैनिक थे। वे दोनों वीर देवताओंको सदा दुःख देते रहते थे। वे बड़े दुराचारी तथा मदमत्त थे। उनके पास बहुत अधिक दानव थे॥ ३॥

अम्बिकाने देवताओंके हितके लिये उन दोनों दानवोंको उनके परिचरोंसमेत अत्यन्त भीषण संग्राममें मार डाला॥ ४॥

महाबाहु चण्ड-मुण्ड, महाभयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचन नामक असुर—वे सब भी भगवतीके द्वारा रणभूमिमें मारे गये थे॥ ५॥

उन सबका वध करके भगवती अम्बिकाने देवताओंका बहुत बड़ा भय दूर कर दिया। तदनन्तर देवताओंने पवित्र सुमेरुपर्वतपर उन देवीका स्तवन तथा विधिवत् पूजन किया॥ ६॥

राजा बोले—पूर्वकालमें ये दोनों दानव कौन थे, वे बड़े-बड़े बलशालियोंसे भी श्रेष्ठ कैसे हुए, उन्हें राजसिंहासनपर किसने प्रतिष्ठित किया, स्त्रीके द्वारा वे कैसे मारे गये, किस देवताकी तपस्याके परिणामस्वरूप प्राप्त वरदानसे वे महाबली हुए? और किस प्रकार वे मारे गये? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब आप समस्त पापोंका नाश करनेवाली, सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली, मंगलमयी तथा भगवतीके चरित्रसे ओत-प्रोत दिव्य कथा सुनिये॥ ९॥

पूर्वकालमें शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्य पातालसे भूमण्डलपर आ गये। वे दोनों भाई देखनेमें बड़े सुन्दर थे॥ १०॥

पूर्ण वयस्क होनेपर उन दोनोंने जगत्पावन पुष्कर तीर्थमें अन्न तथा जलका परित्याग करके कठोर तप आरम्भ कर दिया॥ ११॥

योगसाधनामें तत्पर रहनेवाले शुम्भ और निशुम्भ एक ही स्थानपर आसन लगाकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते रहे॥ १२॥

तयोस्तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तत्रागतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम्॥ १३

तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ।
उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल॥ १४

वाञ्छितं वां वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह।
कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम्॥ १५

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ।
प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा॥ १६

दण्डवत्प्रणिपातञ्च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती।
ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा॥ १७

देवदेव दयासिन्धो भक्तानामभयप्रद।
अमरत्वञ्च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो॥ १८

मरणादपरं किञ्चिद्भयं नास्ति धरातले।
तस्माद्भयाच्च सन्त्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ॥ १९

त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे।
परिस्फोटय विश्वात्मन् सद्यो मरणजं भयम्॥ २०

ब्रह्मोवाच

किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा।
अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये॥ २१

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल॥ २२

मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः।
अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वाञ्छितम्॥ २३

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ।
ऊचतुः प्रणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम्॥ २४

अन्तमें समस्त लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो गये और हंसपर आरूढ़ होकर वहाँ आ गये॥ १३॥

ध्यानमग्न होकर बैठे हुए उन दोनोंको देखकर जगत्‌के रचयिता ब्रह्माजीने कहा—हे महाभाग! तुम दोनों उठो, मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ। तुमलोगोंका जो भी अभीष्ट वर हो उसे बताओ, मैं अवश्य दूँगा। तुम दोनोंका तपोबल देखकर तुमलोगोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके विचारसे ही मैं यहाँ आया हूँ॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर समाहित चित्तवाले उन दोनोंका ध्यान टूट गया। तब प्रदक्षिणा करके उन्होंने दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् तपके कारण दुर्बल शरीरवाले दोनों दानवोंने ब्रह्माजीसे बड़ी दीनतापूर्वक गद्गद वाणीमें यह मधुर वचन कहा—हे देवदेव! हे दयासिन्धो! हे भक्तोंको अभय देनेवाले ब्रह्मन्! हे विभो! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं, तो हमें अमरत्व प्रदान कीजिये। मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई भी भय इस पृथ्वीलोकमें नहीं है, उसी भयसे सन्त्रस्त होकर हम दोनों आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे देवदेवेश! आप हमारी रक्षा कीजिये। हे जगत्कर्ता! हे क्षमानिधान! हे विश्वात्मा! आप हमारे मरणजन्य भयको शीघ्र ही दूर कीजिये॥ १६—२०॥

ब्रह्माजी बोले—तुम लोगोंने यह कैसा सर्वथा नियमविरुद्ध वरदान माँगा है, तीनों लोकोंमें किसीके द्वारा किसीके भी लिये यह वरदान सर्वथा अदेय है। जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म निश्चित है। विश्वकी रचना करनेवाले प्रभुने यह नियम पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है। सभी प्राणियोंको निश्चितरूपसे मरना ही पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। अतः इसके अतिरिक्त तुमलोगोंका जो भी दूसरा अभिलषित वर हो, उसे माँग लो, मैं अभी देता हूँ॥ २१—२३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर उन दोनों दानवोंने परस्पर भलीभाँति विचार करनेके उपरान्त अपने सम्मुख खड़े उन ब्रह्माजीको

पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः।
अवध्यत्वं कृपासिन्धो देहि नौ वाञ्छितं वरम्॥ २५

नारी बलवती कास्ति या नौ नाशं करिष्यति।
न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे॥ २६

अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पङ्कजोद्भव।
भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा॥ २७

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वाञ्छितं वरम्।
ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम्॥ २८

गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ।
भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा॥ २९

शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयं शुभम्।
कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः॥ ३०

शुम्भाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम्।
सेवनार्थं तदैवाशु सम्प्राप्ता दानवोत्तमाः॥ ३१

चण्डमुण्डौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ।
सम्प्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ॥ ३२

धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चण्डविक्रमः।
शुम्भञ्च भूपतिं श्रुत्वा तदागाद् बलसंयुतः॥ ३३

रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य सङ्गतः॥ ३४

तस्यैकं कारणं राजन् संग्रामे युध्यतः सदा।
देहाद्रुधिरसम्पातस्तस्य शस्त्राहतस्य च॥ ३५

जायते च यदा भूमावुत्पद्यन्ते ह्यनेकशः।
तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः॥ ३६

प्रणाम करके कहा—हे कृपासिन्धो! देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी—इनमेंसे किसी भी पुरुषजातिके द्वारा हमारा मरण न हो—यही हमारा अभीष्ट वर है, इसे आप हमें प्रदान करें। ऐसी कौन बलवती स्त्री है, जो हम दोनोंका नाश कर सके? इस चराचर त्रिलोकीमें किसी भी स्त्रीसे हम नहीं डरते। हे ब्रह्मन्! हम दोनों भाई पुरुषोंसे अवध्य होवें। हमें स्त्रियोंसे कोई डर नहीं है; क्योंकि वे तो स्वभावसे ही अबला होती हैं॥ २४—२७॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उन्हें अभिलषित वर दे दिया और प्रसन्नमनसे अपने स्थानपर चले गये॥ २८॥

ब्रह्माजीके अपने लोक चले जानेपर वे दोनों दानव भी अपने घर चले गये। उन्होंने वहाँपर शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाकर उनका पूजन किया॥ २९॥

तत्पश्चात् किसी उत्तम दिन और नक्षत्रमें सोनेका दिव्य तथा सुन्दर सिंहासन बनवाकर मुनिने राज्य-स्थापनाके लिये उन्हें प्रदान किया। उन्होंने ज्येष्ठ होनेके कारण शुम्भको वह सुन्दर राजसिंहासन समर्पित किया। उसी समय अनेक श्रेष्ठ दानव उसकी सेवा करनेके लिये शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये॥ ३०-३१॥

बलाभिमानी तथा महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड—ये दोनों भाई भी अपनी सेना तथा बहुत-से रथ, घोड़े और हाथी साथमें लेकर उनके पास आ गये॥ ३२॥

शुम्भको राजा बना हुआ सुनकर उसीके रूपवाला धूम्रलोचन नामक प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य भी उस समय सेनासहित वहाँ पहुँच गया॥ ३३॥

उसी प्रकार वरदानके प्रभावसे अत्यधिक बलशाली तथा शूरवीर रक्तबीज भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ आकर सम्मिलित हो गया। हे राजन्! उसके अतिशय बलवान् होनेका एक कारण यह था कि संग्राममें युद्ध करते हुए उस रक्तबीजके शस्त्राहत होनेपर उसके शरीरसे जब भूमिपर रुधिर गिरता था, उसी समय उसके ही समान क्रूर और हाथोंमें शस्त्र धारण किये बहुत-से वीर पुरुष उत्पन्न हो जाते थे। रक्तबिन्दुओंसे उत्पन्न वे पुरुष उसी रक्तबीजके आकार, रूप और पराक्रमवाले होते थे

सम्भवन्ति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।
युद्धं पुनस्ते कुर्वन्ति पुरुषा रक्तसम्भवाः॥ ३७

अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः।
अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः॥ ३८

अन्ये च बहवः शूराश्चतुरङ्गसमन्विताः।
शुम्भञ्च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः॥ ३९

असंख्याता तदा जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः।
पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया॥ ४०

सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा।
जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च॥ ४१

चकारासौ महायुद्धं लोकपालैः समन्ततः।
वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि॥ ४२

स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः।
भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्य महात्मनः॥ ४३

भ्रातरं मूर्च्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः।
तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः॥ ४४

कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा।
निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्च सर्वशः॥ ४५

ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया।
कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम्॥ ४६

त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना।
नन्दनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः॥ ४७

सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः।
कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह॥ ४८

अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह।
यमञ्चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा॥ ४९

वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च।
वायोः कार्यं निशुम्भश्च चकार स्वबलान्वितः॥ ५०

और वे सभी पुनः युद्ध करने लगते थे। इसलिये संग्राममें महापराक्रमी तथा अजेय समझा जानेवाला वह महान् असुर रक्तबीज सभी प्राणियोंसे अवध्य हो गया था॥ ३४—३८॥

इसके अतिरिक्त चतुरंगिणी सेनासे युक्त अन्य बहुत-से पराक्रमी दानव भी शुम्भको अपना राजा मानकर उसके सेवक बन गये॥ ३९॥

उस समय शुम्भ और निशुम्भके पास असंख्य सेना हो गयी थी और उन्होंने अपने बलके प्रभावसे भूमण्डलका सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४०॥

तत्पश्चात् शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले निशुम्भने अपनी सेना सुसज्जित करके इन्द्रको जीतनेहेतु बड़े वेगसे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] उसने लोकपालोंके साथ घोर युद्ध किया। तब इन्द्रने उसके वक्षपर वज्रसे प्रहार किया। उस वज्राघातसे आहत होकर दानव शुम्भका छोटा भाई निशुम्भ भूमिपर गिर पड़ा। तब परम साहसी उस निशुम्भकी सेना भाग गयी॥ ४१—४३॥

अपने भाईको मूर्च्छित हुआ सुनकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला शुम्भ वहाँ आकर सभी देवताओंको बाणोंसे मारने लगा॥ ४४॥

इस प्रकार किसी भी कार्यको कठिन न समझनेवाले उस शुम्भने भीषण युद्ध किया और इन्द्रसहित सभी देवताओं तथा लोकपालोंको पराजित कर दिया॥ ४५॥

तब उस शुम्भने अपने पराक्रमके प्रभावसे कल्पवृक्ष और कामधेनुसहित इन्द्रपदको अधिकारमें कर लिया। उस दुस्साहसी शुम्भने तीनों लोकोंपर आधिपत्य जमा लिया और देवताओंको मिलनेवाले यज्ञभागोंका हरण कर लिया। नन्दनवन पा करके वह महान् असुर आनन्दित हुआ और अमृतके पानसे उसे बहुत सुख मिला॥ ४६-४७½॥

उसने कुबेरको जीतकर उनके राज्यपर अधिकार कर लिया और सूर्य तथा चन्द्रमाका भी अधिकार छीन लिया। उसने यमराजको परास्त करके उनका पद स्वयं ले लिया। इसी प्रकार अपने बलके प्रभावसे वरुणका राज्य अपने अधीन करके वह शुम्भ राज्य-शासन स्वयं करने लगा और अग्नि तथा वायुके कार्य स्वयं करने लगा॥ ४८—५०॥

ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः।
सन्त्यज्य नन्दनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे॥ ५१

हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने।
निरालम्बा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः॥ ५२

विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च।
उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च॥ ५३

न प्रापुस्ते सुखं क्वापि स्थानभ्रष्टा विचेतसः।
लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल॥ ५४

बलवन्तो महाभागा बहुज्ञा धनसंयुताः।
काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवन्ति नराधिप॥ ५५

चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम्।
यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः॥ ५६

दातारं याचकं चैव बलवन्तं तथाबलम्।
पण्डितं विकलं कामं शूरं चातीव कातरम्॥ ५७

मखानाञ्च शतं कृत्वा प्राप्येन्द्रासनमुत्तमम्।
पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी॥ ५८

कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम्।
तमेवातीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम्॥ ५९

न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते।
ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम्॥ ६०

विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु।
हरः कपाली सञ्जातः कालेनैव बलीयसा॥ ६१

तब [असुरोंके द्वारा] तिरस्कृत और राज्य छिन जानेके कारण नष्ट शोभावाले सभी देवता नन्दनवन छोड़कर पर्वतोंकी गुफाओंमें चले गये॥ ५१॥

अधिकारसे वंचित होकर वे सब निर्जन वनमें भटकने लगे। अब उनका कोई सहारा नहीं रहा, उनके रहनेकी जगह नहीं रही, वे तेजहीन और आयुधविहीन हो चुके थे। इस प्रकार सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओं, निर्जन उद्यानों और नदियोंकी घाटियोंमें विचरण करने लगे॥ ५२-५३॥

हे महाराज! स्थानभ्रष्ट हो जानेके कारण उन बेचारे लोकपालोंको कहीं भी सुख नहीं मिल रहा था, और फिर यह सुनिश्चित भी है कि सुख सदा प्रारब्धके अधीन रहता है॥ ५४॥

हे नराधिप! बलशाली, बड़े भाग्यवान्, महान् ज्ञानी तथा धनसम्पन्न व्यक्ति भी विपरीत समय उपस्थित होनेपर दुःख तथा कष्ट पाते हैं॥ ५५॥

हे महाराज! उस कालकी गति बड़ी ही विचित्र होती है, जो एक साधारण मनुष्यको राजा बना देता है और उसके बाद राजाको भिखारी बना देता है। वही काल दाताको याचक, बलवान्‌को निर्बल, पण्डितको अज्ञानी और वीरको अत्यन्त कायर बना देता है॥ ५६-५७॥

सौ अश्वमेधयज्ञ करनेके बाद सर्वोत्कृष्ट इन्द्रासन प्राप्त करके भी बादमें समयके फेरसे इन्द्रको असीम कष्ट उठाना पड़ा था—कालकी ऐसी विचित्र गति होती है॥ ५८॥

समय ही मनुष्यको धर्मात्मा तथा ज्ञानवान् बनाता है और फिर उसी व्यक्तिको पापी तथा अत्यल्प ज्ञानसे भी हीन बना देता है॥ ५९॥

अतः कालकी इस अद्भुत गतिके विषयमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यही काल ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको भी इसी प्रकार संकटमें डाल देता है। बलवान् कालके ही प्रभावसे भगवान् विष्णुको सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेना पड़ा और शिवजीको कपाली होना पड़ा॥ ६०-६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भनिशुम्भद्वारा स्वर्गविजयवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और उनका प्राकट्य

व्यास उवाच

पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह।
एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम॥ १

भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिन्तामापुः सुदुस्तराम्।
गुरुं दुःखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः॥ २

किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः।
उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्य विनिवृत्तये॥ ३

उपचारपरा नूनं वेदमन्त्राः सहस्रशः।
वाञ्छितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल॥ ४

इष्टयो विविधाः प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः।
ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः॥ ५

विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे।
तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः॥ ६

भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति॥ ७

बृहस्पतिरुवाच

सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते।
न स्वतन्त्राः सुराधीश तथैकान्तफलप्रदाः॥ ८

मन्त्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम्।
जाताः स्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम्॥ ९

इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु।
ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यन्ति किमिष्टयः॥ १०

अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते।
उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम्॥ ११

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सभी देवता पराजित हो गये। इसके बाद शुम्भ राज्यपर शासन करने लगा। इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये॥ १॥

तत्पश्चात् राज्यच्युत होनेके कारण देवता महान् दुस्सह चिन्तामें पड़ गये। दुःखसे व्याकुल हुए वे देवता गुरु बृहस्पतिसे आदरपूर्वक यह पूछने लगे॥ २॥

हे गुरो! अब हम क्या करें, आप हमें बतायें। आप सर्वज्ञ महामुनि हैं। हे महाभाग! दुःखकी निवृत्तिका उपाय भी तो होता है। हजारों ऐसे वैदिक मन्त्र हैं, जो उपचारोंसे परिपूर्ण हैं और सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। सूत्रोंने उनका भलीभाँति निदर्शन भी किया है। सभी वांछित फल प्रदान करनेवाले अनेक प्रकारके यज्ञ भी बताये गये हैं। हे मुने! आप उनका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि आप उनकी क्रिया-विधिको भलीभाँति जानते हैं॥ ३—५॥

शत्रुओंके विनाशके लिये वेदमें जैसा उपाय बताया गया है, अब आप विधिपूर्वक उसका अनुष्ठान कीजिये, जिससे हमारे दुःखका पूर्णरूपसे नाश हो जाय। हे आंगिरस! दानवोंके विनाशके लिये आप अपनी बुद्धिके अनुसार आज ही अभिचारकर्म आरम्भ करनेकी कृपा कीजिये॥ ६-७॥

बृहस्पति बोले—हे देवराज! वेदोंमें बताये गये सभी मन्त्र प्रारब्धके अनुसार ही फल प्रदान करनेवाले हैं। वे स्वतन्त्र नहीं हैं और नियमके अनुसार ही फल प्रदान करते हैं॥ ८॥

उन मन्त्रोंके देवता तो आप ही लोग हैं। जब आपलोग स्वयं समयके फेरसे कष्टमें पड़े हुए हैं तो मैं कौन-सा उपाय करूँ?॥ ९॥

यज्ञ-कर्मोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण आदिकी पूजा की जाती है और वे आप सब देवता ही स्वयं विपत्ति भोग रहे हैं, तब यज्ञ क्या कर सकेंगे?॥ १०॥

अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई प्रतीकार नहीं है; फिर भी [संकटसे बचनेके लिये] उपाय तो करना ही चाहिये, यह शिष्ट पुरुषोंका उपदेश है॥ ११॥

दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः।
उपायवादिनो दैवं प्रवदन्ति निरर्थकम्॥ १२

दैवं चैवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौ नृणाम्।
केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन॥ १३

उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः।
तस्माद् ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनः पुनः॥ १४

पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम्।
युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ॥ १५

आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि।
यदा यदा वो देवेशा आपदो दैवसम्भवाः॥ १६

प्रभवन्ति तदा कामं स्मर्तव्याहं सुरैः सदा।
स्मृताहं नाशयिष्यामि युष्माकं परमापदः॥ १७

तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे।
आराधनं चण्डिकायाः कुरुध्वं प्रेमपूर्वकम्॥ १८

मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः।
जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति॥ १९

दुःखस्यान्तोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशयः।
तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम्॥ २०

स्तुता सम्पूजिता सद्यो वाञ्छितार्थान् प्रदास्यति।
निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम्॥ २१

सुराः सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम्॥ २२

हिमालयं महाराज देवीध्यानपरायणाः।
मायाबीजं हृदा नित्यं जपन्तः सर्व एव हि॥ २३

नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम्।
तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्च भक्त्या परमया युताः॥ २४

कुछ विद्वान् कहते हैं कि दैव सबसे बलवान् होता है और उपायवादी लोग दैवको निरर्थक बताते हैं, किंतु मनुष्योंके लिये दैव और उपाय दोनों ही आवश्यक माने गये हैं। मात्र दैवका आश्रय लेकर कभी भी बैठे नहीं रहना चाहिये। अपनी बुद्धिसे विचार करके सम्यक् रूपसे प्रयत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। इसलिये भलीभाँति बार-बार सोच-विचारकर मैं आप सभीको उपाय बता रहा हूँ॥ १२—१४॥

पूर्वकालमें जब भगवती जगदम्बाने आपलोगोंपर प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था, उस समय आपलोगोंके स्तुति करनेपर उन्होंने यह वरदान दिया था—'आपलोगोंके स्मरण करनेपर मैं सदा आपलोगोंकी विपत्ति दूर करूँगी। हे देवेश्वरो! जब-जब आपलोगोंपर दैव-जन्य आपदाएँ आयें, तब-तब आप देवतागण मेरा ध्यान कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं आपलोगोंकी बड़ी-से-बड़ी विपत्तियोंका नाश कर दूँगी'॥ १५—१७॥

अतः अब आपलोग परम रमणीक हिमालय-पर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये। आपलोग मायाबीजके विधानके ज्ञाता हैं, उसीके पुरश्चरणमें तत्पर हो जाइये। मैं जानता हूँ कि इस अनुष्ठानके प्रभावसे वे भगवती प्रसन्न हो जायँगी॥ १८-१९॥

अब आपलोगोंके दुःखका अन्त दिखायी पड़ रहा है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने सुना है कि वे भगवती उस हिमालयपर्वतपर सदा विराजमान रहती हैं। उनकी स्तुति तथा विधिवत् पूजा करनेपर वे शीघ्र ही आपलोगोंको वांछित फल प्रदान करेंगी। अतः हे देवताओ! आपलोग दृढ़ निश्चय करके हिमालयपर्वतपर जाइये; वे भगवती आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध कर देंगी॥ २०-२१½॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! उनका वचन सुनकर देवता हिमालयपर्वतपर चले गये। वहाँ देवीके ध्यानमें लीन होकर एकाग्र मनसे निरन्तर मायाबीज-मन्त्रका जप करते हुए उन सब देवताओंने भक्तोंके लिये अभयदायिनी महामाया भगवतीको प्रणाम किया और पूर्णभक्तिसे युक्त होकर स्तोत्र-मन्त्रोंसे वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे॥ २२—२४॥

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे
सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते।
नमो दानवान्तप्रदे मानवाना-
मनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥ २५

न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृ-
क्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे।
त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा
प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥ २६

स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धि-
र्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कान्तिशान्ती।
सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे
त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम्॥ २७

यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं
सुराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शान्त्यै।
क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा
स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः॥ २८

कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां
हतोऽसौ महारिर्मदान्धो हयारिः।
दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि
प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता॥ २९

किमत्रास्ति चित्रं यदम्बा सुतं स्वं
मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव।
यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया
कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम्॥ ३०

न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं
वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मा-
न्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥ ३१

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २५॥

हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं॥ २६॥

आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और विश्वकी पुरातन मूल प्रकृति हैं॥ २७॥

आप जिस समय जिन स्वरूपोंसे देवताओंका कार्य सम्पन्न करती हैं, हम शान्तिके लिये आपके उन स्वरूपोंको नमस्कार करते हैं। आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया तथा विवक्षा—इन कल्याणकारी रूपोंसे सभी जीवोंमें निवास करती हैं॥ २८॥

पूर्वकालमें आपने हम देवताओंका कार्य किया था जो कि महान् शत्रु मदान्ध महिषासुरका वध कर डाला था। हे देवि! सभी देवताओंपर आपकी दया सदैव रहती है, आपकी दया पूर्ण प्रसिद्ध है और पुराणों तथा वेदोंमें भी उसका वर्णन किया गया है॥ २९॥

इसमें आश्चर्यकी क्या बात; क्योंकि माता प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् प्रकारसे अपने पुत्रका पालन-पोषण करती ही है। क्योंकि आप देवताओंकी जननी हैं, अतः उनका सहायक बनकर एकाग्र मनसे हमलोगोंका सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करें॥ ३०॥

हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अतः रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें॥ ३१॥

विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातै-
र्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदण्डैः।
रिपून्हन्तुमेवासि शक्ता विनोदा-
त्तथापीह लोकोपकाराय लीला॥ ३२

इदं शाश्वतं नैव जानन्ति मूढा
न कार्यं विना कारणं सम्भवेद्वा।
वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं
त्वमेवासि कर्तास्य विश्वस्य चेति॥ ३३

अजः सृष्टिकर्ता मुकुन्दोऽवितायं
हरो नाशकृद्वै पुराणे प्रसिद्धः।
न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ
त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता॥ ३४

त्रिभिस्त्वं पुराराधिता देवि दत्ता
त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा।
त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति कामं
जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव॥ ३५

ते किं न मन्दमतयो यतयो विमूढा-
स्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयन्ति।
विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां
मुक्तिप्रदां विबुधवृन्दसुवन्दिताङ्घ्रिम्॥ ३६

ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा
दम्भास्त एव प्रतिभान्ति नूनम्।
ध्यायन्ति न त्वां कमलाञ्च लज्जां
कान्तिं स्थितिं कीर्तिमथापि पुष्टिम्॥ ३७

हरिहरादिभिरप्यथ सेविता
त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा।
भुवि भजन्ति न येऽल्पधियो नरा
जननि ते विधिना खलु वञ्चिताः॥ ३८

जलधिजापदपङ्कजरञ्जनं
जतुरसेन करोति हरिः स्वयम्।
त्रिनयनोऽपि धराधरजाङ्घ्रिपं-
कजपरागनिषेवणतत्परः॥ ३९

यद्यपि बिना बाण चलाये; बिना मुष्टिप्रहार किये और बिना त्रिशूल, तलवार, बर्छी, दण्ड आदिका प्रयोग किये भी आप विनोदपूर्वक शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं, फिर भी जगत्‌के उपकारके लिये ही आपकी यह लीला दृष्टिगोचर होती है॥ ३२॥

आपका यह रूप सनातन है—इस रहस्यको अविवेकी लोग नहीं जानते हैं। [हे माता!] बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। अतः अनुमान और प्रमाणके आधारपर हम यही जानते हैं कि इस विश्वकी रचना करनेवाली आप ही हैं॥ ३३॥

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शंकर संहारकर्ताके रूपमें पुराणमें प्रसिद्ध हैं, किंतु क्या वे तीनों देव आपसे उत्पन्न नहीं हुए हैं? युगके प्रारम्भमें केवल आप ही रहती हैं, अतः आप ही सबकी माता हैं॥ ३४॥

हे देवि! पूर्वकालमें इन तीनोंने आपकी आराधना की थी, तब आपने उन्हें अपनी समस्त प्रबल शक्ति प्रदान की थी। वास्तवमें उसी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं॥ ३५॥

जो संन्यासी लोग विश्वकी जननी, परम विद्या-स्वरूपिणी, समस्त वांछित फल प्रदान करनेवाली, मुक्तिदायिनी तथा सभी देवताओंसे वन्दित चरणोंवाली आप भगवतीकी उपासना नहीं करते, क्या वे मन्दबुद्धि तथा अज्ञानी नहीं हैं?॥ ३६॥

विष्णु, शिव तथा सूर्यकी आराधना करनेवाले जो लोग कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टि नामोंसे विख्यात आप भगवतीका ध्यान नहीं करते हैं, वे निश्चितरूपसे दम्भी प्रतीत होते हैं॥ ३७॥

विष्णु और शंकर आदि श्रेष्ठ देवता तथा असुर भी आपकी पूजा करते हैं। अतः हे माता! इस जगत्‌में जो मन्दबुद्धि मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते, निश्चय ही विधाताने उन्हें ठग लिया है॥ ३८॥

भगवान् विष्णु अपने पास लक्ष्मीरूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलोंमें स्वयं महावर लगाते हैं। इसी प्रकार त्रिनेत्र भगवान् शिव भी अपने पास पार्वती-रूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलकी रजके सेवनमें निरन्तर तत्पर रहते हैं; तब अन्य

किमपरस्य नरस्य कथानकै-
स्तव पदाब्जयुगं न भजन्ति के।
विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां
कृतधियो मुनयोऽपि भजन्ति ते॥ ४०

देवि त्वदङ्घ्रिभजने न जना रता ये
संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी।
ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवन्ति
दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः॥ ४१

ये काष्ठभारवहने यवसावहारे
कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः।
जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदङ्घ्रिसेवा
पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदापि॥ ४२

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैः सर्वैरम्बिका करुणान्विता।
प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता॥ ४३

दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता।
दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचन्दनचर्चिता॥ ४४

जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता।
अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता॥ ४५

जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात्।
दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी॥ ४६

देवान्स्तुतिपरानाह मेघगम्भीरया गिरा।
प्रेमपूर्वं स्मितं कृत्वा कोकिलामञ्जुवादिनी॥ ४७

देव्युवाच

भो भोः सुरवराः कात्र भवद्भिः स्तूयते भृशम्।
किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिन्ताविष्टाः कुतः पुनः॥ ४८

मनुष्यकी बात ही क्या! आपके चरणकमलोंकी आराधना कौन नहीं करते? घर-गृहस्थीसे विरक्त बुद्धिमान् मुनिगण भी दया और क्षमारूपमें प्रतिष्ठित आप भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ३९-४०॥

हे देवि! जो लोग आपके चरणोंकी उपासनामें संलग्न नहीं रहते, उन्हें निश्चय ही इस संसाररूप अगाध कूपमें गिरना पड़ता है। वे पतित लोग कुष्ठ, गुल्म और शिरोरोगसे ग्रस्त रहते हैं, दरिद्रता तथा दीनतासे युक्त रहते हैं और सुखोंसे सदा वंचित रहते हैं॥ ४१॥

हे माता! धन और स्त्रीसे रहित जो मनुष्य लकड़ीका बोझ ढोने और तृण आदिका वहन करनेमें लगे हैं, [उनके विषयमें] हम तो यही समझते हैं कि उन मन्दबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें आपके चरणोंकी उपासना कभी नहीं की॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार समस्त देवताओंके स्तुति करनेपर अम्बिका करुणासे ओत-प्रोत होकर तुरंत प्रकट हो गयीं। [उस समय] वे भगवती रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थीं, उन्होंने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था, वे अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य मालाओंसे सुशोभित हो रही थीं, दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त थीं, जगत्को मोहित कर देनेवाले सौन्दर्यसे सम्पन्न थीं और समस्त शुभ लक्षणोंसे समन्वित थीं। इस प्रकार अद्वितीय स्वरूपवाली वे भगवती देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं॥ ४३—४५॥

दिव्य रूप धारण करनेवाली तथा विश्वको मोह लेनेमें समर्थ कामदेवको भी मोहित करनेवाली वे भगवती गंगामें स्नान करनेकी अभिलाषासे पर्वतकी कन्दरासे बाहर निकली थीं॥ ४६॥

कोकिलके समान मधुर बोलनेवाली भगवती प्रेमपूर्ण भावसे मुसकराकर स्तुति करनेमें संलग्न देवताओंसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगीं॥ ४७॥

देवी बोलीं—हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग यहाँपर इतनी बड़ी स्तुति किसलिये कर रहे हैं? आपलोग इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल क्यों हैं? मुझे अपना कार्य बताइये॥ ४८॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसम्पदा।
प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः॥ ४९

देवा ऊचुः

देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताः स्म कृपार्णवे।
पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान्॥ ५०

पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकण्टकम्।
महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याहं सदापदि॥ ५१

स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम्।
तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि॥ ५२

अद्य शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ।
उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल॥ ५३

रक्तबीजश्च बलवांश्चण्डमुण्डौ तथासुरौ।
एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं महाबलैः॥ ५४

गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले।
कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे॥ ५५

देवास्त्वदङ्घ्रिभजने निरताः सदैव
ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः।
तान्देवि दुःखरहितान् कुरु भक्तियुक्ता-
न्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम्॥ ५६

सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाद्य
स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद् युगादौ।
जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः
स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः॥ ५७

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर उनके रूप-वैभवसे मोहित श्रेष्ठ देवताओंका हृदय उत्साहसे परिपूर्ण हो गया, जिससे वे प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ४९॥

देवता बोले—जगत्को नियन्त्रणमें रखनेवाली हे देवि! हम आपकी स्तुति कर रहे हैं, हम आपके शरणागत हैं। हे कृपासिन्धो! दैत्योंसे सताये गये हम देवताओंकी सम्पूर्ण दुःखोंसे रक्षा कीजिये॥ ५०॥

हे महादेवि! पूर्वकालमें देवताओंके लिये कंटक बने महिषासुरका वध करके आपने हमें वर प्रदान किया था—'आपलोग संकटमें मुझे सदा याद कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं दैत्योंके द्वारा आपलोगोंको पहुँचायी गयी पीड़ाका निःसन्देह नाश कर दूँगी।' हे देवि! इसीलिये हमलोगोंने आपका स्मरण किया है॥ ५१-५२॥

इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव उत्पन्न हुए हैं, जो देखनेमें महाभयंकर हैं। वे [हमारे कार्योंमें] विघ्न डाला करते हैं। वे पुरुषोंसे सर्वथा अवध्य हैं। ऐसे ही बलशाली दानव रक्तबीज तथा चण्ड और मुण्ड भी हैं। इन सभी तथा अन्य महाबली दानवोंने हम देवताओंका राज्य छीन लिया है। हे महाबले! हमलोगोंका दूसरा कोई अवलम्ब नहीं, एकमात्र आप ही हमारी शरण हैं। हे सुमध्यमे! आप दुःखित देवताओंका कार्य सिद्ध करें॥ ५३—५५॥

देवता आपके चरणोंकी उपासनामें सदैव संलग्न रहते हैं। [इस समय] वे सब महान् बलशाली दैत्योंके द्वारा विपत्तिमें डाल दिये गये हैं। अतः हे देवि! आप उन भक्तिपरायण देवताओंको दुःखरहित कर दीजिये। हे माता! आप दुःखित देवताओंका आश्रय बन जाइये॥ ५६॥

हे देवि! युगके आरम्भमें इस विश्वकी रचना आप भगवतीने स्वयं की थी—यह जानकर आप इस समय सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा करें। हे जननि! हे माता! अपने बलसे मदान्वित तथा अभिमानमें चूर दानव जगत्में लोगोंको पीड़ित कर रहे हैं॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवकृतदेव्याराधनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य, देवीकी कालिकारूपमें परिणति, चण्ड-मुण्डसे देवीके अद्भुत सौन्दर्यको सुनकर शुम्भका सुग्रीवको दूत बनाकर भेजना, जगदम्बाका विवाहके विषयमें अपनी शर्त बताना

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः।
स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह॥ १

पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चाम्बिका यदा।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते॥ २

निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वती तनुव्यत्ययात्।
कृष्णरूपाथ सञ्जाता कालिका सा प्रकीर्तिता॥ ३

मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी।
कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा॥ ४

अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम्।
सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम्॥ ५

ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता।
तिष्ठन्तु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह॥ ६

कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे।
निशुम्भादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे॥ ७

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा।
कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः॥ ८

सा गत्वोपवने तस्थावम्बिका कालिकान्विता।
जगावथ कलं तत्र जगन्मोहनमोहनम्॥ ९

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब शत्रुओंसे सन्त्रस्त देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवतीने अपने शरीरसे एक दूसरा रूप प्रकट कर दिया॥ १॥

जब भगवती पार्वतीके विग्रहकोशसे अम्बिका प्रकट हुईं, तब वे सम्पूर्ण जगत्‌में 'कौशिकी' इस नामसे कही जाने लगीं। पार्वतीके शरीरसे उन भगवती कौशिकीके निकल जानेसे शरीर क्षीण हो जानेके कारण वे पार्वती कृष्णवर्णकी हो गयीं। अतः वे कालिका नामसे विख्यात हुईं॥ २-३॥

वे कालिका स्याहीके समान काले वर्णकी थीं तथा महाभयंकर प्रतीत होती थीं। दैत्योंके लिये भयवर्धिनी तथा [भक्तोंके लिये] समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे भगवती 'कालरात्रि' इस नामसे पुकारी जाने लगीं॥ ४॥

समस्त आभूषणोंसे मण्डित और लावण्यगुणसे सम्पन्न वह भगवतीका दूसरा रूप (कौशिकी) अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा था॥ ५॥

तदनन्तर अम्बिकाने मुसकराकर देवताओंसे यह कहा—आपलोग निर्भय रहें, मैं आपके शत्रुओंका वध अभी कर डालूँगी। आपलोगोंका कार्य मुझे सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न करना है। मैं समरांगणमें विचरण करूँगी और आपलोगोंके कल्याणके लिये निशुम्भ आदि दानवोंका संहार करूँगी॥ ६-७॥

तब ऐसा कहकर गर्वोन्मत्त वे भगवती कौशिकी सिंहपर सवार हो गयीं और देवी कालिकाको साथमें लेकर शत्रुके नगरकी ओर चल पड़ीं॥ ८॥

कालिकासहित देवी अम्बिका वहाँ पहुँचकर नगरके उपवनमें रुक गयीं। तत्पश्चात् उन्होंने जगत्‌को मोहमें डालनेवालेको भी मोहित करनेवाला गीत गाना आरम्भ कर दिया॥ ९॥

श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः।
मुदञ्च परमां प्रापुरमरा गगने स्थिताः॥ १०

तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भसेवकौ।
चण्डमुण्डाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया॥ ११

आगतौ ददृशाते तु तां तदा दिव्यरूपिणीम्।
अम्बिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम्॥ १२

दृष्ट्वा तां दिव्यरूपाञ्च दानवौ विस्मयान्वितौ।
जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुम्भस्य नृपसत्तम॥ १३

तौ गत्वा तं समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे।
ऊचतुर्मधुरां वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम्॥ १४

राजन् हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी।
सम्प्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता॥ १५

नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गन्धर्वपुरे तथा।
न दृष्टा न श्रुता क्वापि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा॥ १६

गानञ्च तादृशं राजन् करोति जनरञ्जनम्।
मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वे मधुरस्वरमोहिताः॥ १७

ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता।
गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्यास्ति कामिनी॥ १८

ज्ञात्वानय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम्।
निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवंविधा किल॥ १९

देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप।
कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णासि नृपोत्तम॥ २०

इन्द्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा।
गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल॥ २१

उस मधुर गानको सुनकर पशु-पक्षी भी मोहित हो गये और आकाशमण्डलमें स्थित देवतागण अत्यन्त आनन्दित हो उठे॥ १०॥

उसी समय शुम्भके चण्ड तथा मुण्ड नामक दो सेवक जो भयंकर दानव थे, स्वेच्छापूर्वक घूमते हुए वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि दिव्य स्वरूपवाली भगवती अम्बिका गायनमें लीन हैं और कालिका उनके सम्मुख विराजमान हैं॥ ११-१२॥

हे नृपश्रेष्ठ! उन दिव्य रूपवाली भगवतीको देखकर दोनों दानव विस्मयमें पड़ गये। वे तुरंत शुम्भके पास जा पहुँचे॥ १३॥

अपने महलमें बैठे हुए उस दानवराज शुम्भके पास जाकर उन दोनोंने सिर झुकाकर राजाको प्रणाम करके मधुर वाणीमें कहा—॥ १४॥

हे राजन्! कामदेवको भी मोहित कर देनेवाली एक सुन्दरी हिमालयसे यहाँ आयी हुई है। वह सिंहपर सवार है तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है॥ १५॥

ऐसी उत्तम स्त्री न स्वर्गमें है और न गन्धर्वलोकमें। सम्पूर्ण पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी न तो कहीं देखी गयी और न सुनी ही गयी॥ १६॥

हे राजन्! वह ऐसा गाती है कि उसके गानेपर सभी मुग्ध हो जाते हैं। उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर मृग भी उसके पास बैठे रह जाते हैं॥ १७॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप यह पता लगाइये कि यह किसकी पुत्री है और किसलिये यहाँ आयी हुई है? [उसके बाद] उसे अपने यहाँ रख लीजिये; क्योंकि वह सुन्दरी आपके योग्य है॥ १८॥

यह जानकारी प्राप्त करके आप उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको अपने घर ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये; क्योंकि ऐसी स्त्री निश्चितरूपसे संसारमें नहीं है॥ १९॥

हे राजन्! आप देवताओंके सम्पूर्ण रत्न अपने अधिकारमें कर चुके हैं, तो फिर हे नृपश्रेष्ठ! इस सुन्दरीको भी आप अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते?॥ २०॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक इन्द्रका ऐश्वर्ययुक्त ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष और सप्तमुखवाला उच्चैःश्रवा घोड़ा छीन लिया॥ २१॥

विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम्।
त्वयात्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम्॥ २२

कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन् समाहृतः।
छत्रं जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात्॥ २३

पाशश्चापि निशुम्भेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम।
गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च॥ २४

अम्लानपङ्कजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ।
भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च॥ २५

मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः।
त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यद्वर्ण्यते नृप॥ २६

कामधेनुर्गृहीताद्य वर्तते सागरोद्भवा।
मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः॥ २७

एवं सर्वाणि रत्नानि त्वयात्तानि बलादपि।
कस्मान्न गृह्यते कान्तारत्नमेषा वराङ्गना॥ २८

सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ।
अनया सम्भविष्यन्ति रत्नभूतानि भूपते॥ २९

त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया।
तस्मात्तामानयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम्॥ ३०

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम्।
प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम्॥ ३१

गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण।
वक्तव्यञ्च तथा तत्र यथाभ्येति कृशोदरी॥ ३२

उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कान्तासु सुविचक्षणैः।
सामदाने इति प्राहुः शृङ्गाररसकोविदाः॥ ३३

हे नृप! आपने ब्रह्माजीके हंसध्वजसम्पन्न, दिव्य तथा रत्नमय अद्भुत विमानको बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया॥ २२॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक कुबेरकी पद्म नामक निधिको छीन लिया है और वरुणके श्वेत छत्रको अपने अधिकारमें कर लिया है॥ २३॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपके भाई निशुम्भने भी वरुणको पराजित करके उसके पाशको हठपूर्वक छीन लिया है॥ २४॥

हे महाराज! आपके भयसे समुद्रने कभी भी न मुरझानेवाली कमल-पुष्पोंकी माला और विविध प्रकारके रत्न आपको प्रदान किये हैं॥ २५॥

आपने मृत्युको जीतकर उसकी शक्तिको तथा यमराजको जीतकर उसके अति भीषण दण्डको अपने पूर्ण अधिकारमें कर लिया है। हे राजन्! आपके पराक्रमका और क्या वर्णन किया जाय? समुद्रसे प्रादुर्भूत कामधेनु आपने छीन ली, जो इस समय आपके पास विद्यमान है। हे राजन्! मेनका आदि अप्सराएँ भी आपके अधीन पड़ी हुई हैं॥ २६-२७॥

इस प्रकार जब आपने सभी रत्न बलपूर्वक छीन लिये हैं, तब नारियोंमें रत्नस्वरूपा इस सुन्दरीको भी अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते?॥ २८॥

हे भूपते! आपके गृहमें विद्यमान समस्त विपुल रत्न इस सुन्दरीसे सुशोभित होकर यथार्थरूपमें रत्नस्वरूप हो जायँगे॥ २९॥

हे दैत्यराज! तीनों लोकोंमें ऐसी सुन्दरी स्त्री नहीं है। अतः आप उस मनोहारिणी स्त्रीको शीघ्र ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये॥ ३०॥

व्यासजी बोले—चण्ड-मुण्डके मधुमय अक्षरोंसे युक्त यह मधुर वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाला शुम्भ अपने समीपमें बैठे हुए सुग्रीवसे कहने लगा—॥ ३१॥

हे बुद्धिसम्पन्न सुग्रीव! तुम दूत बनकर जाओ और मेरा यह कार्य सम्पन्न करो। वहाँ तुम ऐसी बातचीत करना, जिससे वह कृशोदरी यहाँ आ जाय॥ ३२॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको स्त्रियोंके विषयमें साम और दान—इन दो उपायोंका प्रयोग करना चाहिये—ऐसा शृंगाररसके विद्वानोंने कहा है॥ ३३॥

भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते।
निग्रहे रसभङ्गः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः॥ ३४

सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा।
का न याति वशे दूत कामिनी कामपीडिता॥ ३५

व्यास उवाच

सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुम्भोक्तं सुप्रियं पटु।
जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदम्बिका॥ ३६

सोऽपश्यत्सुमुखीं कान्तां सिंहस्योपरि संस्थिताम्।
प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम्॥ ३७

दूत उवाच

वरोरु त्रिदशारातिः शुम्भः सर्वाङ्गसुन्दरः।
त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः॥ ३८

तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना।
त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनातिविदूयता॥ ३९

वचनं तस्य तन्वङ्गि शृणु प्रेमपुरःसरम्।
प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधिपस्त्वयि॥ ४०

देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम्।
यज्ञभागानहं कान्ते गृह्णामीह स्थितः सदा॥ ४१

हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता।
यानि रत्नानि देवानां तानि चाहृतवानहम्॥ ४२

भोक्ताहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनि।
वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः॥ ४३

त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयान्तरम्।
त्वदधीनः कृतः कामं किङ्करोऽस्मि करोमि किम्॥ ४४

भेदनीतिका प्रयोग करनेपर रसका आभासमात्र हो पाता है और दण्डनीतिका प्रयोग करनेपर रसभंग ही हो जाता है, अतः विद्वान् पुरुषोंने इन दोनोंको दोषपूर्ण बताया है॥ ३४॥

हे दूत! ऐसी कौन स्त्री होगी; जो साम, दान—इन मुख्य नीतियोंसे सम्पन्न, मधुर तथा हास-परिहाससे परिपूर्ण वाक्योंके द्वारा कामपीड़ित होकर वशमें न हो जाय॥ ३५॥

व्यासजी बोले—शुम्भके द्वारा कही गयी अत्यन्त प्रिय तथा चातुर्यपूर्ण बात सुनकर सुग्रीव बड़े वेगसे उधर चल पड़ा, जहाँ जगदम्बिका विराजमान थीं॥ ३६॥

वहाँपर उसने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती सिंहपर सवार है। तब जगदम्बिकाको प्रणाम करके वह मधुर वाणीमें कहने लगा—॥ ३७॥

दूत बोला—हे सुजघने! देवताओंके शत्रु राजा शुम्भ सर्वांगसुन्दर और पराक्रमी हैं। सबको जीतकर वे तीनों लोकोंके अधिपति हो गये हैं॥ ३८॥

आपके सौन्दर्यके विषयमें सुनकर आपपर आसक्त मनवाले उन्हीं महाराज शुम्भने व्याकुल होकर मुझे आपके पास भेजा है॥ ३९॥

हे तन्वंगि! दैत्यपति शुम्भने आपको प्रणाम करके जो प्रेमपूर्ण वचन कहा है, उनके उस वचनको आप सुनें—॥ ४०॥

हे कान्ते! मैंने सभी देवताओंको जीत लिया है, इस समय मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। मैं यहाँ रहते हुए सदा यज्ञभाग प्राप्त करता हूँ॥ ४१॥

मैंने स्वर्गलोककी सभी सार वस्तुएँ छीन ली हैं और उसे रत्नविहीन कर दिया है। देवताओंके पास जो भी रत्न थे, उन सबको मैंने हर लिया है॥ ४२॥

हे भामिनि! तीनों लोकोंमें सभी रत्नोंका भोग करनेवाला एकमात्र मैं ही हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य—ये सब मेरे अधीन रहते हैं॥ ४३॥

तुम्हारे गुणोंने कानोंके मार्गसे मेरे हृदयमें प्रवेश करके मुझे पूर्णरूपसे तुम्हारे वशमें कर दिया है। अब मैं क्या करूँ? मैं तो तुम्हारा दास बन गया हूँ॥ ४४॥

त्वमाज्ञापय रम्भोरु तत्करोमि वशानुगः।
दासोऽहं तव चार्वङ्गि रक्ष मां कामबाणतः॥ ४५

भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम्।
त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्॥ ४६

तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि।
अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः॥ ४७

सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने।
यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुन्दरि॥ ४८

इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमन्थरे।
वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद् ब्रूहि मधुरं वचः॥ ४९

शुम्भाय चञ्चलापाङ्गि तद् ब्रवीम्यहमाशु वै।

व्यास उवाच

तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम्॥ ५०

तं प्राह मधुरां वाचं देवी देवार्थसाधिका।

देव्युवाच

जानाम्यहं निशुम्भं च शुम्भं चातिबलं नृपम्॥ ५१

जेतारं सर्वदेवानां हन्तारञ्चैव विद्विषाम्।
राशिं सर्वगुणानाञ्च भोक्तारं सर्वसम्पदाम्॥ ५२

दातारं चातिशूरं च सुन्दरं मन्मथाकृतिम्।
द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं सुरमानुषैः॥ ५३

ज्ञात्वा समागतास्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम्।
रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये॥ ५४

तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवागतास्मि वै।
दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः॥ ५५

गन्धर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः।
सर्वे शुम्भभयाद्भीता वेपमाना विचेतसः॥ ५६

हे रम्भोरु! मैं तुम्हारे अधीन हूँ, तुम मुझे जो भी आज्ञा प्रदान करो, उसे मैं करूँगा। हे सुन्दर अंगोंवाली! मैं तुम्हारा दास हूँ, कामबाणसे मेरी रक्षा करो॥ ४५॥

हे मरालाक्षि! तुम्हारे अधीन हुए मुझ कामातुरको तुम स्वीकार कर लो और तीनों लोकोंकी स्वामिनी बनकर उत्कृष्ट सुखोंका उपभोग करो॥ ४६॥

हे कान्ते! मैं मरणपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा। हे वरारोहे! मैं देवता, असुर तथा मनुष्योंसे अवध्य हूँ। हे सुमुखि! [मुझे पति बनाकर] तुम सदा सौभाग्यवती रहोगी। हे सुन्दरि! जहाँ तुम्हारा मन लगे, वहाँ विहार करना॥ ४७-४८॥

मदसे अलसायी हुई हे कामिनि! [मेरे स्वामी] उन शुम्भकी बातपर अपने मनमें भलीभाँति विचार करके तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें कहो। हे चंचल कटाक्षवाली! मैं वह सन्देश तुरंत शुम्भसे निवेदन करूँगा॥ ४९$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—दूतका वह वचन सुनकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली भगवती अत्यन्त मधुर मुसकान करके मीठी वाणीमें उससे कहने लगीं॥ ५०$\frac{१}{२}$॥

देवी बोलीं—मैं महाबली राजा शुम्भ तथा निशुम्भ—दोनोंको जानती हूँ। उन्होंने सभी देवताओंको जीत लिया है और अपने शत्रुओंका संहार कर डाला है, वे सभी गुणोंकी राशि हैं और सब सम्पदाओंका भोग करनेवाले हैं। वे दानी, महापराक्रमी, सुन्दर, कामदेवसदृश रूपवाले, बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न और देवताओं तथा मनुष्योंसे अवध्य हैं—यह जानकर मैं उस महान् असुरको देखनेकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। जैसे रत्न अपनी शोभाको और अधिक बढ़ानेके लिये सुवर्णके पास आता है, वैसे ही मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहाँ आयी हूँ॥ ५१—५४$\frac{१}{२}$॥

सभी देवताओं, पृथ्वीलोकमें मान प्रदान करनेवाले सभी मनुष्यों, गन्धर्वों, राक्षसों तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाले जो भी अन्य लोग हैं; उन सबको मैंने देख लिया है। सब-के-सब शुम्भके आतंकसे डरे हुए हैं, भयके मारे काँपते रहते हैं और सदा व्याकुल रहते हैं॥ ५५-५६॥

श्रुत्वा शुम्भगुणानत्र प्राप्तास्म्यद्य दिदृक्षया।
गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भं महाबलम्॥ ५७

निर्जने श्लक्ष्णया वाचा वचनं वचनान्मम।
त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुन्दरम्॥ ५८

दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम्।
जेतारं सर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम्॥ ५९

भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम्।
पतिकामास्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप॥ ६०

स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायाता महामते।
ममास्ति कारणं किञ्चिद्विवाहे राक्षसोत्तम॥ ६१

बालभावाद् व्रतं किञ्चित्कृतं राजन् मया पुरा।
क्रीडन्त्या च वयस्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया॥ ६२

स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः।
मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम्॥ ६३

तं वरिष्याम्यहं कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम्।
जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः॥ ६४

किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र ज्ञात्वा मे हीदृशं बलम्॥ ६५

जित्वा मां स्वबलेनात्र वाञ्छितं कुरु चात्मनः।
त्वं वा तवानुजो भ्राता समेत्य समराङ्गणे।
जित्वा मां समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर॥ ६६

शुम्भके गुण सुनकर उन्हें देखनेकी इच्छासे मैं इस समय यहाँ आयी हुई हूँ। हे महाभाग्यशाली दूत! तुम जाओ और महाबली शुम्भसे एकान्त स्थानमें मधुर वाणीमें मेरे शब्दोंमें यह बात कहो—हे राजन्! आपको बलवानोंमें सबसे बली, सुन्दरोंमें अति सुन्दर, दानी, गुणी, पराक्रमी, सभी विद्याओंमें पारंगत, सभी देवताओंको जीत लेनेवाला, कुशल, प्रतापी, श्रेष्ठ कुलवाला, समस्त रत्नोंका भोग करनेवाला, स्वतन्त्र तथा अपनी शक्तिसे समृद्धिशाली बना हुआ जानकर मैं आपको पति बनानेकी इच्छुक हूँ। हे नराधिप! मैं भी निश्चितरूपसे आपके योग्य हूँ। हे महामते! मैं आपके इस नगरमें अपनी इच्छासे आयी हूँ। किंतु हे राक्षसश्रेष्ठ! मेरे विवाहमें कुछ शर्त है। हे राजन्! पूर्वमें मैंने सखियोंके साथ खेलते समय बालस्वभाववश अपने शारीरिक बलके अभिमानके कारण संयोगसे उन सखियोंके समक्ष एकान्तमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मेरे समान पराक्रम रखनेवाला जो वीर रणमें मुझे स्पष्टरूपसे जीत लेगा, उसके बलाबलको जानकर ही मैं पतिरूपमें उसका वरण करूँगी। मेरी यह बात सुनकर सखियोंके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और वे जोर-जोरसे हँसने लगीं। [वे कहने लगीं] 'इसने शीघ्रतापूर्वक यह कैसी भीषण तथा अद्भुत प्रतिज्ञा कर ली।' अतएव हे राजेन्द्र! आप भी मेरे ऐसे पराक्रमको जानकर यहींपर अपने बलसे मुझे जीतकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लीजिये। हे सुन्दर! आप अथवा आपका छोटा भाई समरांगणमें आकर युद्धके द्वारा मुझे जीतकर [मेरे साथ] विवाह कर लें॥ ५७—६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्या सुग्रीवदूताय स्वव्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शुम्भका धूम्रलोचनको देवीके पास भेजना और धूम्रलोचनका देवीको समझानेका प्रयास करना

व्यास उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः।
किं ब्रूषे रुचिरापाङ्गि स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात्॥ १

व्यासजी बोले—भगवतीका वह वचन सुनकर वह दूत विस्मित हो गया और उसने देवीसे कहा—हे सुन्दर कटाक्षवाली! तुम स्त्रीस्वभावके कारण साहसपूर्वक यह क्या बोल रही हो?॥ १॥

इन्द्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथापरे।
तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनि॥ २

त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुम्भं समरे जयेत्।
का त्वं कमलपत्राक्षि तस्याग्रे युधि साम्प्रतम्॥ ३

अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुन्दरि।
बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम्॥ ४

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भस्तव रूपेण मोहितः।
त्वाञ्च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये॥ ५

त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं सम्मान्य वचनं मम।
भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६

शृङ्गारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा।
सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः॥ ७

नागमिष्यसि चेद् बाले संक्रुद्धः पृथिवीपतिः।
अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति साम्प्रतम्॥ ८

केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः।
त्वां नयिष्यन्ति वामोरु तरसा शुम्भसन्निधौ॥ ९

स्वलज्जां रक्ष तन्वङ्गि साहसं सर्वथा त्यज।
मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै॥ १०

क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसङ्गजम्।
सारासारं परिच्छेद्य कुरु मे वचनं पटु॥ ११
भज शुम्भं निशुम्भं वा लब्धासि परमं सुखम्।

हे भामिनि! हे देवि! जिन्होंने इन्द्र आदि देवताओं तथा अन्य दैत्योंको पराजित कर दिया है, उन्हें तुम संग्राममें जीतनेकी अभिलाषा कैसे रखती हो?॥ २॥

त्रिलोकीमें वैसा कोई नहीं है, जो शुम्भको संग्राममें जीत सके; तब हे कमलसदृश नेत्रोंवाली! तुम कौन-सी सामर्थ्यशालिनी हो जो इस समय युद्धमें उनके सामने टिक सको?॥ ३॥

हे सुन्दरि! बिना सोचे-समझे कोई बात नहीं बोलनी चाहिये, अपितु अपने तथा शत्रुके बलको जानकर ही समयके अनुसार बोलना चाहिये॥ ४॥

तीनों लोकोंके अधिपति महाराज शुम्भ तुम्हारे रूपपर मोहित हो गये हैं और तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं। अतः हे प्रिये! उनका मनोरथ पूर्ण करो॥ ५॥

मूर्खतापूर्ण स्वभाव त्यागकर मेरी बातको मान करके तुम शुम्भ अथवा निशुम्भ किसीको [पतिरूपमें] स्वीकार कर लो; मैं तुम्हारे लिये यह हितकर बात कह रहा हूँ॥ ६॥

सभी बुद्धिमान् प्राणियोंको चाहिये कि बड़े हर्षके साथ शृंगाररसका उपभोग करें; क्योंकि यह सभी नौ रसोंमें उत्तम माना गया है॥ ७॥

हे बाले! यदि तुम मेरे साथ नहीं चलोगी तो राजा शुम्भ अत्यन्त कुपित होकर अन्य बहुत-से सेवकोंको अभी भेजकर तुम्हें बलपूर्वक पकड़वाकर ले जायँगे॥ ८॥

हे वामोरु! वे बलाभिमानी दानव तुम्हारे केश-पाश पकड़कर बलपूर्वक तुम्हें निश्चय ही शुम्भके पास ले जायँगे॥ ९॥

अतः हे कोमलांगी! अपनी लज्जाकी रक्षा करो और इस दुस्साहसको पूर्णरूपसे छोड़ दो। तुम सम्मानित होकर उनके पास चलो; क्योंकि तुम सम्मानकी पात्र हो॥ १०॥

कहाँ तीक्ष्ण बाणोंसे होनेवाला युद्ध और कहाँ रतिक्रीड़ासे उत्पन्न होनेवाला सुख! सार-असार बातपर सही-सही विचार करके तुम मेरे हितकर वचनको मान लो और शुम्भ अथवा निशुम्भको अपना पति स्वीकार कर लो; इससे तुम परम सुख प्राप्त करोगी॥ ११½ ॥

देव्युवाच

सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि॥ १२

निशुम्भशुम्भौ जानामि बलवन्ताविति ध्रुवम्।
प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत्॥ १३

तस्माद् ब्रूहि निशुम्भञ्च शुम्भं वा बलवत्तरम्।
विना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात्॥ १४

जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु साम्प्रतम्।
युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप॥ १५

युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर।
बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ मा चिरम्॥ १६

त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते।
इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात्॥ १७

स विचार्य यथायुक्तं करिष्यति महाबलः।
संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यं भाषणं किल॥ १८

शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम्।

व्यास उवाच

अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद् बलसंयुतम्॥ १९

हेतुयुक्तं प्रगल्भञ्च विस्मितः प्रययौ तदा।
गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनः पुनः॥ २०

प्रणम्य पादयोः प्रह्वः प्रत्युवाच नृपञ्च तम्।
राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः॥ २१

दूत उवाच

सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिन्तापरो ह्यहम्।
सत्यं प्रियं च राजेन्द्र वचनं दुर्लभं किल॥ २२

अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा।
साक्षात्कुतः समायाता कस्य वा किंबलाबला॥ २३

देवी बोलीं—हे महाभाग दूत! तुम बात करनेमें निपुण हो; यह सत्य है। शुम्भ और निशुम्भ निश्चय ही बलवान् हैं—यह मैं जानती हूँ। किंतु मैंने बाल्यकालसे ही जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे मिथ्या कैसे किया जाय? अतः तुम निशुम्भसे अथवा उससे भी बलवान् शुम्भसे कह दो कि बिना युद्ध किये मात्र सौन्दर्यके बलपर कोई भी मेरा पति नहीं बन सकेगा। मुझे अपने बलसे जीतकर वह अभी पाणिग्रहण कर ले। हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मैं अबला होती हुई भी युद्धकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। यदि तुम समर्थ हो तो मेरे साथ युद्ध करो और वीरधर्मका पालन करो। इसके अतिरिक्त यदि मेरे त्रिशूलसे डरते हो और यदि जीनेकी तुम्हारी अभिलाषा है तो स्वर्ग और पृथ्वीलोकको छोड़कर अविलम्ब पाताललोक चले जाओ। हे दूत! अभी जाकर अपने स्वामीसे आदरपूर्वक ये बातें कह दो। इसके बाद वे महाबली शुम्भ विचार करके जो उचित होगा, उसे करेंगे। संसारमें यही दूतधर्म है कि जो सच्ची बात हो, उसे वैसा-का-वैसा शत्रु और स्वामी—दोनोंके प्रति अवश्य कह दे। हे धर्मज्ञ! तुम भी वैसा ही व्यवहार करो; विलम्ब मत करो॥ १२—१८½ ॥

व्यासजी बोले—उस समय भगवती जगदम्बाके नीतियुक्त, शक्तिसम्पन्न, हेतुपूर्ण और ओजस्वी वचन सुनकर वह दूत आश्चर्यचकित हो गया और वहाँसे लौट गया। दैत्यपति शुम्भके पास पहुँचकर बार-बार विचार करके वह दूत विनम्र भावसे अपने राजाको प्रणाम करके उनसे नीतिपूर्ण, मधुरतासे युक्त तथा मनोहर बात कहने लगा॥ १९—२१ ॥

दूत बोला—हे राजेन्द्र! सत्य और प्रिय बात कहनी चाहिये, इसीलिये मैं अत्यन्त चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ; क्योंकि जो सत्य हो और प्रिय भी हो, वैसा वचन निश्चय ही दुर्लभ है। अप्रिय बोलनेवाले दूतोंपर राजा सर्वथा कुपित हो सकते हैं, [तथापि अपना धर्मपालन करते हुए मैं सच्ची बात कह रहा हूँ] वह स्त्री कहाँसे आयी है, किसकी पुत्री है और कितनी

न ज्ञानगोचरं किञ्चित्किं ब्रवीमि विचेष्टितम्।
युद्धकामा मया दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी॥ २४

तया यत्कथितं सम्यक् तच्छृणुष्व महामते।
मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः॥ २५

सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा।
यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पञ्च विधुनोति वै॥ २६

तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल।
न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम॥ २७

तस्माद्युध्यस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु।
तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाहं समुपागतः॥ २८

यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम्।
सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी॥ २९

निश्चला वर्तते भूप यद्योग्यं तद्विधीयताम्।

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः॥ ३०

पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम्।

शुम्भ उवाच

भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते॥ ३१

नार्येका योद्धुकामास्ति समाह्वयति साम्प्रतम्।
अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः॥ ३२

यद्रोचते निशुम्भात्र तत्कर्तव्यं मया किल।

निशुम्भ उवाच

न मया न त्वया वीर गन्तव्यं रणमूर्धनि॥ ३३

प्रेषयस्व महाराज त्वरितं धूम्रलोचनम्।
स गत्वा तां रणे जित्वा गृहीत्वा चारुलोचनाम्॥ ३४
आगमिष्यति शुम्भात्र विवाहः संविधीयताम्।

सबल अथवा निर्बल है—इनमेंसे कुछ भी मैं नहीं जान सका, तब मैं उसके मनकी बात क्या बताऊँ! मुझे तो वह घमण्डी, कटु बोलनेवाली और सदा युद्धके लिये उत्सुक दिखायी पड़ती थी॥ २२—२४॥

हे महामते! उस स्त्रीने जो कुछ कहा है, उसे आप भलीभाँति सुनें—'मैंने पहले ही बाल्यावस्थामें सखियोंके समक्ष विनोदवश विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा, उसी समान बलवालेका मैं पतिरूपसे वरण करूँगी। हे नृपश्रेष्ठ! मेरी वह प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं की जानी चाहिये। अतः हे धर्मज्ञ! मेरे साथ युद्ध करो और मुझे जीतकर अपने अधीन कर लो'॥ २५—२७½ ॥

उस स्त्रीके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। हे महाराज! अब आप जैसे भी अपना हित समझते हों, वैसा ही करें। आयुधोंसे सुसज्जित तथा सिंहपर सवार वह युद्धके लिये दृढ़ संकल्प किये हुए है। हे भूप! वह अपनी बातपर अडिग है, अतः जो उचित हो उसे आप करें॥ २८-२९½ ॥

व्यासजी बोले—अपने दूत सुग्रीवका यह वचन सुनकर राजा शुम्भने पासमें ही बैठे हुए शूरवीर तथा महाबली भाई निशुम्भसे पूछा॥ ३०½ ॥

शुम्भ बोला—हे भाई! इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, हे महामते! सच-सच बताओ। एक स्त्री युद्ध करनेकी अभिलाषा रखती है, इस समय [हमें युद्धके लिये] बुला रही है। अतः युद्धस्थलमें मैं जाऊँ अथवा सेना लेकर तुम जाओगे? हे निशुम्भ! इस विषयमें तुम्हें जो अच्छा लगेगा, निश्चय ही मैं वही करूँगा॥ ३१-३२½ ॥

निशुम्भ बोला—हे वीर! अभी रणक्षेत्रमें न मुझे और न तो आपको ही जाना चाहिये। हे महाराज! शीघ्र ही धूम्रलोचनको भेज दीजिये। वहाँ जाकर युद्धमें उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको जीतकर और उसे पकड़कर वह यहाँ ले आयेगा। तत्पश्चात् हे शुम्भ! आप उसके साथ सम्यक् विवाह कर लीजिये॥ ३३-३४½ ॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः॥ ३५
कोपात्सम्प्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम्।

शुम्भ उवाच

धूम्रलोचन गच्छाशु सैन्येन महतावृतः॥ ३६

गृहीत्वानय तां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम्।
देवो वा दानवो वापि मनुष्यो वा महाबलः॥ ३७

तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हन्तव्यस्तरसा त्वया।
तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः॥ ३८

शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा कार्यमनुत्तमम्।
रक्षणीया त्वया साध्वी मुञ्चन्ती मृदुमार्गणान्॥ ३९

यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी।
तत्सहायाश्च हन्तव्या ये रणे शस्त्रपाणयः॥ ४०

सर्वथा सा न हन्तव्या रक्षणीया प्रयत्नतः।

व्यास उवाच

इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः॥ ४१

प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे।
असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा॥ ४२

स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम्।
दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः॥ ४३

उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम्।
शृणु देवि महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहातुरः॥ ४४

दूतं प्रेषितवान्पार्श्वे तव नीतिविशारदः।
रसभङ्गभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम्॥ ४५

तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने।
वचसा तेन मे भर्ता चिन्ताविष्टमना नृपः॥ ४६

बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः।
दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव॥ ४७

यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः।
न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु मानिनि॥ ४८

व्यासजी बोले—अपने छोटे भाईकी वह बात सुनकर शुम्भने पासमें ही बैठे हुए धूम्रलोचनको जानेके लिये क्रोधपूर्वक आदेश दिया॥ ३५$\frac{१}{२}$॥

शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन! तुम एक विशाल सेना लेकर अभी जाओ और अपने बलके मदमें चूर रहनेवाली उस मूढ़ स्त्रीको पकड़कर ले आओ। देवता, दानव या महाबली मनुष्य—कोई भी जो उसकी सहायताके लिये उपस्थित हो, उसे तुम तुरंत मार डालना। उसके साथमें रहनेवाली कालीको भी मारकर पुनः उस सुन्दरीको पकड़ करके और इस प्रकार मेरा यह अत्युत्तम कार्य सम्पन्नकर यहाँ शीघ्र आ जाओ। हे वीर! कोमल बाणोंको छोड़ती हुई उस सुकोमल शरीरवाली कृशोदरी साध्वी स्त्रीकी तुम प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना। हाथमें शस्त्र धारण किये हुए उसके जो भी सहायक रणमें हों, उन्हें मार डालना, किंतु उसे मत मारना; सब तरहसे प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना॥ ३६—४०$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—अपने राजा शुम्भका यह आदेश पाकर धूम्रलोचन उसे प्रणाम करके सेना साथ लेकर तुरंत युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उसके साथमें साठ हजार राक्षस थे॥ ४१-४२॥

वहाँ पहुँचकर उसने एक मनोहर उपवनमें विराजमान भगवती जगदम्बाको देखा। हरिणके बच्चेके समान नेत्रोंवाली देवीको देखकर वह विनम्रतापूर्वक उनसे मधुर, हेतुयुक्त तथा सरस वचन कहने लगा—हे महाभाग्यवती देवि! सुनो, शुम्भ तुम्हारे विरहसे अत्यन्त व्याकुल हैं। नीतिनिपुण महाराजने रसभंग होनेके भयसे उद्विग्न होकर शान्तिपूर्वक तुम्हारे पास स्वयं एक दूत भेजा था॥ ४३—४५॥

हे सुमुखि! उसने लौटकर विपरीत बात कह दी। उस बातसे मेरे स्वामी महाराज शुम्भके मनमें बहुत चिन्ता व्याप्त हो गयी है। हे रसतत्त्वको जाननेवाली! शुम्भ इस समय कामसे विमोहित हो गये हैं। वह दूत तुम्हारे सहेतुक वचनोंको नहीं समझ सका। तुमने जो यह कठिन वचन कहा था कि 'जो मुझे संग्राममें जीतेगा', उस संग्रामका

रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः।
रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः॥ ४९

सुखदः प्रथमः कान्ते दुःखदश्चारिजः स्मृतः।
जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल॥ ५०

रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते।
इति तज्ज्ञं विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः॥ ५१

प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महतावृतम्।
चतुरासि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु॥ ५२

भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम्।
पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्॥ ५३

जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित्।
विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति॥ ५४

भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी।
एवं सङ्गरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित्॥ ५५

जित्वा त्वां सुखशय्यायां परिश्रान्तां करिष्यति।
रक्तदेहां नखाघातैर्दन्तैश्च खण्डिताधराम्॥ ५६

स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः।
भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव॥ ५७

दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये।
वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम्॥ ५८

भज शुम्भं गणाध्यक्षं माननीयातिमानिनी।
मन्दभाग्याश्च ते नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये॥ ५९

तात्पर्य वह नहीं जान सका। हे मानिनि! संग्राम दो प्रकारका होता है—कामजनित और उत्साहजनित। पात्रभेदसे समय-समयपर इनका अलग-अलग अर्थ किया जाता है। हे वामोरु! उन दोनोंमें आप-जैसी युवतीके साथ होनेवाले संग्रामको कामजनित संग्राम और शत्रुके साथ होनेवाले संग्रामको उत्साहजनित संग्राम कहा गया है॥ ४६—४९॥

हे कान्ते! उनमें प्रथम रतिजन्य संग्राम सुखदायक और शत्रुके साथ किया जानेवाला उत्साहजन्य संग्राम दुःखदायक कहा गया है। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ; तुम्हारे मनमें रतिजन्य संग्रामका भाव है। मुझको यह सब जाननेमें निपुण समझकर ही महाराज शुम्भने विशाल सेनाके साथ इस समय मुझे आपके पास भेजा है॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$॥

हे महाभागे! तुम बड़ी चतुर हो। मेरे मधुर वचन सुनो। देवताओंका अभिमान चूर्ण कर देनेवाले त्रिलोकाधिपति शुम्भको [पतिरूपसे] स्वीकार कर लो और उनकी प्रिय पटरानी बनकर अत्युत्तम सुखोंका उपभोग करो॥ ५२-५३॥

कामसम्बन्धी बलका रहस्य जाननेवाले विशालबाहु शुम्भ तुम्हें जीत लेंगे। तुम उनके साथ विचित्र हाव-भाव करो, वे भी वैसे ही हाव-भाव प्रदर्शित करेंगे। यह कालिका [उस अवसरपर] हास-विलासकी साक्षी रहेगी। इस प्रकार कामतत्त्वके परमवेत्ता मेरे स्वामी शुम्भ कामयुद्धके द्वारा तुम्हें सुखशय्यापर जीतकर शिथिल कर देंगे। वे महाराज शुम्भ अपने नखोंके आघातसे तुम्हें रक्तरंजित शरीरवाली बना देंगे, दाँतोंसे काटकर तुम्हारे ओठोंको खण्डित कर देंगे, तुम्हें पसीनेसे तर कर देंगे और मर्दित कर डालेंगे; तब तुम्हारा रतिसंग्रामसम्बन्धी मनोरथ पूर्ण हो जायगा॥ ५४—५७॥

हे प्रिये! तुम्हें देखते ही शुम्भ पूर्णरूपसे तुम्हारे वशीभूत हो जायँगे। अतएव मेरी उचित, कल्याणकारी और सुखकर बात मान लो। तुम माननीयोंमें अत्यन्त मानिनी हो, अतः गणाध्यक्ष शुम्भको स्वीकार कर लो। जो शस्त्रयुद्धसे प्रेम रखते हैं, वे अवश्य ही मन्दभाग्य हैं। रतिक्रीड़ामें प्रीति रखनेवाली हे कान्ते!

न तदर्हासि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे।
अशोकं कुरु राजानं पादाघातविकासितम्॥ ६०

बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु॥ ६१

तुम शस्त्रयुद्धके योग्य नहीं हो। जैसे कामिनीके पदप्रहारसे अशोक, मुख मदिराके सेचनसे मौलसिरी और कुरबक प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार तुम भी महाराज शुम्भको शोकरहित और आह्लादित करो॥ ५८—६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये देवीपार्श्वे धूम्रलोचनदूतप्रेषणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

भगवती काली और धूम्रलोचनका संवाद, कालीके हुंकारसे धूम्रलोचनका भस्म होना तथा शुम्भका चण्ड-मुण्डको युद्धहेतु प्रस्थानका आदेश देना

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः।
प्रत्युवाच तदा काली प्रहस्य ललितं वचः॥ १

विदूषकोऽसि जाल्म त्वं शैलूष इव भाषसे।
वृथा मनोरथांश्चित्ते करोषि मधुरं वदन्॥ २

बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना।
कुरु युद्धं वृथा वादं मुञ्च मूढमतेऽधुना॥ ३

हत्वा शुम्भं निशुम्भञ्च त्वदन्यान्वा बलाधिकान्।
देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम्॥ ४

क्वासौ मन्दमतिः शुम्भः क्व वा विश्वविमोहिनी।
अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः॥ ५

सिंही किं त्वतिकामार्ता जम्बुकं कुरुते पतिम्।
करिणी गर्दभं वापि गवयं सुरभिः किमु॥ ६

गच्छ शुम्भं निशुम्भं च वद सत्यं वचो मम।
कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाधुना॥ ७

व्यास उवाच

कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः।
तामुवाच महाभाग क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ८

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] यह बात कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब भगवती काली हँसकर सुन्दर वचन बोलीं—धूर्त! तुम तो पूरे विदूषक हो और नटों-जैसी बात करते हो। मधुर बोलते हुए तुम व्यर्थ ही मनमें अनेकविध कामनाएँ कर रहे हो॥ १-२॥

हे मूढमते! दुष्टात्मा शुम्भने तुझ बलवान्को सेनासे सुसज्जित करके युद्धहेतु भेजा है, अतः अब युद्ध करो और व्यर्थकी बातें छोड़ दो॥ ३॥

ये देवी कुपित होकर शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे अन्य बलवान् दैत्योंका अपने बाणोंके प्रहारसे संहार करके अपने धामको चली जायँगी॥ ४॥

कहाँ वह मन्दमति शुम्भ और कहाँ ये विश्व-मोहिनी जगदम्बा! इन दोनोंका विवाह इस संसारमें सर्वथा अनुपयुक्त है॥ ५॥

क्या अत्यधिक कामार्त होनेपर भी सिंहिनी सियारको, हथिनी किसी गर्दभको अथवा सुरभि किसी सामान्य वृषभको अपना पति बना सकती है?॥ ६॥

अब तुम शुम्भ-निशुम्भके पास चले जाओ और उनसे मेरी यह सच्ची बात कह दो कि 'तुम मेरे साथ युद्ध करो; अन्यथा इसी समय शीघ्र पाताललोक चले जाओ'॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! देवी कालिकाका यह वचन सुनते ही वह दैत्य धूम्रलोचन क्रोधके मारे आँखें लाल करके उनसे कहने लगा—

दुर्दर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहञ्च मदगर्वितम्।
गृहीत्वैनां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल॥ ९

रसभङ्गभयात्कालि बिभेमि त्विह साम्प्रतम्।
नोचेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये॥ १०

कालिकोवाच

किं विकत्थसि मन्दात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम्।
स्वशक्त्या मुञ्च विशिखान्गन्तासि यमसंसदि॥ ११

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम्।
कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः॥ १२

देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः।
तां स्तुवन्तो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः॥ १३

तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चातिदारुणम्।
बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम्॥ १४

कालिका बाणपातैस्तु हत्वा पूर्वं खरानथ।
बभञ्ज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः॥ १५

स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव।
बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत॥ १६

सापि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसङ्गतान्।
मुमोचान्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका॥ १७

तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः।
बभञ्ज च रथं वेगात्सूतं हत्वा खरानपि॥ १८

चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः।
मुदं चक्रे सुराणां सा शङ्खनादं तथाकरोत्॥ १९

दुर्दर्शे! अभी तुझे तथा इस मदोन्मत्त सिंहको युद्धमें मारकर और इस स्त्रीको लेकर मैं राजा शुम्भके पास अवश्य चला जाऊँगा॥ ८-९॥

कलहमें अनुराग रखनेवाली हे काली! रसमें भंग पड़नेकी शंकासे मैं इस समय डर रहा हूँ, नहीं तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हें अभी मार डालता॥ १०॥

कालिका बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम अनर्गल प्रलाप क्यों कर रहे हो, धनुर्धर वीरोंका यह धर्म नहीं है। तुम अपनी पूरी शक्तिसे बाण चलाओ। तुम तो अभी यमलोक जानेवाले हो॥ ११॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर वह दैत्य धूम्रलोचन अपना सुदृढ़ धनुष लेकर भगवती कालिकाके ऊपर पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये बाणोंकी घोर वर्षा करने लगा॥ १२॥

उस समय इन्द्र आदि प्रधान देवता उत्तम विमानोंमें बैठकर यह युद्ध देख रहे थे। वे देवीकी स्तुति करते हुए उनकी जयकार कर रहे थे॥ १३॥

परस्पर उन दोनोंमें बाण, खड्ग, गदा, शक्ति तथा मुसल आदि शस्त्रोंसे अत्यन्त भीषण तथा उग्र युद्ध होने लगा॥ १४॥

भगवती कालिकाने पहले अपने बाण-प्रहारोंसे [उसके रथमें जुते] खच्चरोंको मारकर बादमें उसके सुदृढ़ रथको भी चूर्ण कर दिया, फिर वे बार-बार अट्टहास करने लगीं॥ १५॥

हे भारत! क्रोधाग्निमें जलता हुआ-सा वह दानव धूम्रलोचन दूसरे रथपर सवार हो गया और कालिकाके ऊपर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा॥ १६॥

उसके बाण भगवतीके पास पहुँच भी नहीं पाते थे कि वे उन बाणोंको काट डालती थीं। तत्पश्चात् वे कालिका अन्य तीव्रगामी बाण उस दानवके ऊपर छोड़ने लगीं॥ १७॥

उन बाणोंसे उसके हजारों सहायक सैनिक मारे गये। तत्पश्चात् देवी कालिकाने उसके खच्चरों तथा सारथिको शीघ्रतापूर्वक मारकर उस रथको भी नष्ट कर दिया। उसके बाद देवीने अपने सर्प-सदृश बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक उसका धनुष काट डाला। ऐसा करके देवीने देवताओंको आनन्दित कर दिया और वे शंखनाद करने लगीं॥ १८-१९॥

विरथः परिघं गृह्य सर्वलोहमयं दृढम्।
आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः॥ २०

वाचा निर्भर्त्सयन्कालीं करालः कालसन्निभः।
अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपे पिङ्गलोचने॥ २१

इत्युक्त्वा सहसागत्य परिघं क्षिपते यदा।
हुङ्कारेणैव तं भस्म चकार तरसाम्बिका॥ २२

दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका भयविह्वलाः।
चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेत्यब्रुवन्पथि॥ २३

देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम्।
मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः॥ २४

रणभूमिस्तदा राजन् दारुणा समपद्यत।
निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा॥ २५

गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जम्बुकास्तथा।
ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान् रणभूमिषु॥ २६

अम्बिका तद्रणस्थानं त्यक्त्वा दूरं स्थलान्तरे।
गत्वा चकार चाप्युग्रं शङ्खनादं भयप्रदम्॥ २७

तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुम्भः सद्मनि संस्थितः।
दृष्ट्वाथ दानवान्भग्नानागतान् रुधिरोक्षितान्॥ २८

छिन्नपादकराक्षांश्च मञ्चकारोपितानपि।
भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रन्दमानाननेकशः॥ २९

वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः।
कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना॥ ३०

सैन्यं कुत्र गतं मन्दाः कथयन्तु यथोचितम्।
कस्यायं शङ्खनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः॥ ३१

अब रथसे विहीन वह धूम्रलोचन कुपित होकर एक लोहमय मजबूत परिघ लेकर देवीके रथके सन्निकट आ गया॥ २०॥

कालसदृश भयंकर वह धूम्रलोचन वाणीसे भगवती कालीको फटकारते हुए कहने लगा—'कुरूपा तथा पिंगलनेत्रोंवाली! मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा' ऐसा कहकर वह ज्यों ही कालिकापर परिघ चलानेको उद्यत हुआ, देवीने अपने हुंकारमात्रसे उसे तुरंत भस्म कर दिया॥ २१-२२॥

तब दैत्य धूम्रलोचनको भस्म हुआ देखकर सभी सैनिक भयाक्रान्त होकर 'हा तात'—ऐसा कहते हुए तुरंत मार्ग पकड़कर भाग चले॥ २३॥

उस धूम्रलोचनको मारा गया देखकर आकाशमें विद्यमान देवगण प्रसन्न होकर भगवतीपर पुष्प बरसाने लगे॥ २४॥

हे राजन्! मरे हुए दानवों, घोड़ों, खच्चरों और हाथियोंसे [पट जानेके कारण] वह रणभूमि उस समय बड़ी भयानक लग रही थी। युद्धभूमिमें पड़े हुए मृत दानवोंको देखकर गीध, कौए, बाज, सियार और पिशाच नाचने तथा कोलाहल करने लगे॥ २५-२६॥

अब भगवती अम्बिकाने उस रणभूमिको छोड़कर वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर अत्यन्त तीव्र तथा भयदायक शंखनाद किया॥ २७॥

अपने महलमें स्थित शुम्भको भी वह भयानक शंख-ध्वनि सुनायी पड़ी। उसी समय उसने भागकर आये हुए बहुत-से दैत्योंको देखा। उनमेंसे बहुतोंके अंग भंग हो गये थे और वे रक्तसे लथपथ थे। अनेक दैत्योंके हाथ-पैर कट गये थे और नेत्र भग्न हो गये थे। कुछ दैत्य तो शय्या आदिपर लादकर लाये जा रहे थे; बहुतोंकी पीठ, कमर और गर्दन टूट गयी थी। सब-के-सब जोर-जोरसे चीख रहे थे। उन्हें देखकर शुम्भ-निशुम्भने सैनिकोंसे पूछा—'धूम्रलोचन कहाँ गया? तुमलोग इस तरह अंग-भंग होकर क्यों आये हो और उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको क्यों नहीं ले आये? हे मूर्खो! सही-सही बताओ कि मेरी सेना कहाँ गयी और भयको बढ़ानेवाला यह किसका शंखनाद इस समय सुनायी पड़ रहा है?'॥ २८—३१॥

गणा ऊचुः

बलञ्च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः।
कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम्॥ ३२

शङ्खनादोऽम्बिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते।
हर्षदः सुरसङ्घानां दानवानाञ्च शोककृत्॥ ३३

यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो।
रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः॥ ३४

गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः।
दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम्॥ ३५

निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति।
विचारं कुरु राजेन्द्र मन्त्रिभिर्मन्त्रवित्तमैः॥ ३६

विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका।
भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता॥ ३७

निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढा मदोत्कटा।
चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमञ्जसा॥ ३८

सन्धिर्वा विग्रहो वाद्य स्थानं निर्याणमेव च।
मन्त्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि॥ ३९

तत्सन्निधौ बलं नास्ति तथापि शत्रुतापन।
पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यन्ति किलापदि॥ ४०

समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशङ्करौ।
लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः॥ ४१

रक्षोगणाश्च गन्धर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा।
तत्सहायाश्च मन्तव्याः समये सुरतापन॥ ४२

अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम्।
अम्बिकायाः सहायाशा तत्कार्याशा न काचन॥ ४३

एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम्।
का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः॥ ४४

गण बोले—सम्पूर्ण सेना मार डाली गयी और धूम्रलोचनका भी संहार कर दिया गया। रणभूमिमें यह अमानुषिक कार्य कालिकाके द्वारा किया गया है॥ ३२॥

उसी अम्बिकाकी यह शंखध्वनि है, जो सम्पूर्ण नभमण्डलको व्याप्त करके सुशोभित हो रही है। यह ध्वनि देवगणोंके लिये हर्षप्रद और दानवोंके लिये कष्टदायक है॥ ३३॥

हे विभो! जब देवीके सिंहने सारे सैनिकोंका विनाश कर डाला और उनके बाण-प्रहारोंसे दैत्योंके रथ टूट गये तथा घोड़े मार डाले गये, तब आकाशमें स्थित देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे॥ ३४½॥

इस प्रकार समस्त सेनाका विनाश तथा धूम्रलोचनका वध देखकर हमलोगोंने निश्चय कर लिया कि अब हमारी विजय नहीं हो सकती। अतएव हे राजेन्द्र! अब आप मन्त्रणाका उत्तम ज्ञान रखनेवाले अपने मन्त्रियोंसे इस विषयपर विचार कर लीजिये। हे महाराज! यह आश्चर्य है कि जगदम्बास्वरूपिणी वह मदमत्त बाला बिना किसी सेनाके ही सिंहपर सवार होकर निर्भयभावसे आपसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें अकेली खड़ी है। हे महाराज! हमें तो यह सब बड़ा विचित्र और अद्भुत प्रतीत हो रहा है। अतएव अब आप शीघ्र मन्त्रणा करके सन्धि, युद्ध, उदासीन होकर स्थित रहना अथवा पलायन—इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार जो चाहें, वह कार्य करें॥ ३५—३९॥

हे शत्रुतापन! यद्यपि उसके पास सेना नहीं है फिर भी उसकी विपत्तिमें सभी देवता उसके सहायक बनकर उपस्थित हो जायँगे। ज्ञात हुआ है कि भगवान् विष्णु और शिव भी समयानुसार उसके पासमें विद्यमान रहते हैं; सभी लोकपाल आकाशमें रहते हुए भी इस समय उस देवीके पास विद्यमान हैं। हे सुरतापन! राक्षसगण, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य—इन सबको समय आनेपर उसका सहायक समझना चाहिये॥ ४०—४२॥

हमारी बुद्धिसे तो हर तरहसे ऐसा जान पड़ता है कि वे अम्बिका किसीसे भी कोई सहायता अथवा कार्यकी अपेक्षा नहीं रखतीं। वे अकेली ही सम्पूर्ण चराचर जगत्का नाश करनेमें समर्थ हैं, तो फिर सब दानवोंकी बात ही क्या—यह सत्य है॥ ४३-४४॥

इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु।
हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः॥ ४५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुम्भः परबलार्दनः।
कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः॥ ४६

भ्रातः कालिकयाद्यैव निहतो धूम्रलोचनः।
बलञ्च शातितं सर्वं गणा भग्नाः समागताः॥ ४७

अम्बिका शङ्खनादं वै करोति मदगर्विता।
ज्ञानिनां चैव दुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा॥ ४८

तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते।
बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी॥ ४९

पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमितः परम्।
अभोग्या चाम्बिका नूनं कारणादत्र चागता॥ ५०

युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम्।
लघुं ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्यसङ्कटे॥ ५१

निशुम्भ उवाच

न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा।
युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयानघ॥ ५२

ससैन्योऽहं गमिष्यामि रणे तु प्रवराश्रितः।
हत्वा तामागमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम्॥ ५३

अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति।
मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः॥ ५४

हे महाभाग! यह सब भलीभाँति समझ-बूझकर आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये। सेवकोंको तो अपने स्वामीसे हितकर, सत्य और नपी-तुली बात कहनी चाहिये॥ ४५॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर शत्रुसेनाको विनष्ट कर डालनेवाले शुम्भने अपने छोटे भाई निशुम्भको एकान्त स्थानमें ले जाकर वहाँ स्थित हो उससे पूछा—हे भाई! आज कालिकाने अकेले ही धूम्रलोचनको मार डाला, सारी सेना नष्ट कर दी और शेष सैनिक अंग-भंग होकर भाग आये हैं। अभिमानमें चूर रहनेवाली वही अम्बिका शंखनाद कर रही है॥ ४६-४७½॥

कालकी गतिको पूर्णरूपसे समझना ज्ञानियोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। [कालकी प्रेरणासे] तृण वज्र बन जाता है, वज्र तृण बन जाता है और बलशाली प्राणी बलहीन हो जाता है; दैवकी ऐसी विचित्र गति है॥ ४८-४९॥

हे महाभाग! मैं तुमसे पूछता हूँ कि अब आगे मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा लगता है कि यह अम्बिका किसी उद्देश्यसे यहाँ आयी हुई है। अतः निश्चय ही वह हमारे भोगके योग्य नहीं है॥ ५०॥

हे वीर! तुम मुझे शीघ्र बताओ कि इस समय भाग जाना उचित है या युद्ध करना? यद्यपि तुम छोटे हो, फिर भी इस संकटके समय मैं तुम्हें बड़ा मान रहा हूँ॥ ५१॥

निशुम्भ बोला—हे अनघ! इस समय न तो भागना उचित है और न तो किलेमें छिपना ही ठीक है। अब तो इस स्त्रीके साथ हर प्रकारसे युद्ध करना ही श्रेयस्कर है॥ ५२॥

श्रेष्ठ सेनापतियोंको लेकर मैं अपनी सेनाके साथ युद्धभूमिमें जाऊँगा और उस कालिकाको मारकर तथा अबला अम्बिकाको पकड़कर शीघ्र यहाँ ले आऊँगा और यदि बलवान् दैवके कारण इसके विपरीत हो जाय तो मेरे मर जानेपर बार-बार सोच-विचारकर ही आप कोई कार्य कीजियेगा॥ ५३-५४॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा शुम्भः प्रोवाच चानुजम्।
तिष्ठ त्वं चण्डमुण्डौ द्वौ गच्छेतां बलसंयुतौ॥ ५५

शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम्।
चण्डमुण्डौ महावीरौ तां हन्तुं सर्वथा क्षमौ॥ ५६

इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भः सम्भाष्य च महाबलौ।
उवाच वचनं राजा चण्डमुण्डौ पुरःस्थितौ॥ ५७

गच्छतं चण्डमुण्डौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ।
हन्तुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम्॥ ५८

गृहीत्वाथ निहत्याजौ कालिकां पिङ्गलोचनाम्।
आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम्॥ ५९

सा नायाति गृहीतापि गर्विता चाम्बिका यदि।
तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याहवमण्डिता॥ ६०

छोटे भाई निशुम्भकी यह बात सुनकर शुम्भने उससे कहा—अभी तुम ठहरो, पहले पराक्रमी चण्ड-मुण्ड जायँ। खरगोश पकड़नेके लिये हाथी छोड़ना उचित नहीं है। चण्ड-मुण्ड बड़े वीर हैं, अतः ये दोनों उसे मार डालनेमें हर तरहसे समर्थ हैं॥ ५५-५६॥

अपने भाई निशुम्भसे ऐसा कहकर और उससे परामर्श करके राजा शुम्भने समक्ष बैठे हुए महान् बलशाली चण्ड-मुण्डसे कहा—हे चण्ड-मुण्ड! तुम दोनों अपनी सेना लेकर उस निर्लज्ज और मदोन्मत्त अबलाका वध करनेके लिये शीघ्र जाओ। हे महाभागो! रणभूमिमें पिंग-नेत्रोंवाली उस कालिकाको मारकर और अम्बिकाको पकड़कर—यह महान् कार्य करके यहाँ लौट आओ। यदि वह मदोन्मत्त अम्बिका पकड़ी जानेपर भी नहीं आती तो अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उस रणभूषिताका भी वध कर देना॥ ५७—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देव्या सह युद्धाय चण्डमुण्डप्रेषणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

भगवती अम्बिकासे चण्ड-मुण्डका संवाद और युद्ध, देवी कालिकाद्वारा चण्ड-मुण्डका वध

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ।
जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महतान्वितौ॥ १

दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम्।
ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः॥ २

बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम्।
निशुम्भञ्च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम्॥ ३

त्वमेकासि वरारोहे कालिकासिंहसंयुता।
जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम्॥ ४

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] तदनन्तर शुम्भसे ऐसा आदेश पाकर महाबली चण्ड-मुण्ड विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर चल पड़े॥ १॥

तब देवताओंका हित करनेवाली देवीको वहाँ युद्धभूमिमें विद्यमान देखकर वे दोनों महापराक्रमी दानव उनसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ २॥

हे बाले! क्या तुम देवताओंकी सेनाका नाश करनेवाले शुम्भ तथा इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेके कारण उद्धत स्वभाववाले महापराक्रमी निशुम्भको नहीं जानती हो?॥ ३॥

हे सुन्दरि! तुम यहाँ अकेली हो। हे दुर्बुद्धे! तुम मात्र कालिका और सिंहको साथ लेकर सभी प्रकारकी सेनाओंसे सम्पन्न शुम्भको जीतना चाहती हो!॥ ४॥

मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वापि नरोऽपि वा।
देवास्त्वां प्रेरयन्त्येव विनाशाय तवैव ते॥ ५

विमृश्य कुरु तन्वङ्गि कार्यं स्वपरयोर्बलम्।
अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वञ्च कुरुषे मृषा॥ ६

किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः।
शुम्भस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः॥ ७

ऐरावतकरच्छेत्तुर्दन्तिदारणकारिणः।
जयिनः सुरसङ्घानां कार्यं कुरु मनोगतम्॥ ८

वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम्।
हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम्॥ ९

दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधैः।
सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः॥ १०

चतुरासि पिकालापे पश्य शुम्भबलं महत्।
प्रत्यक्षं सुरसङ्घानां मर्दनेन महोदयम्॥ ११

प्रत्यक्षञ्च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल।
सन्देहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते॥ १२

शत्रुः सुराणां परमः शुम्भः समरदुर्जयः।
तस्मात्त्वां प्रेरयन्त्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः॥ १३

तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वञ्चितासि शुचिस्मिते।
दुःखाय तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका॥ १४

क्या कोई स्त्री या पुरुष तुम्हें सत्परामर्श देनेवाला नहीं है? देवतालोग तो तुम्हारे विनाशके लिये ही तुम्हें प्रेरित कर रहे हैं॥ ५॥

हे सुकुमार अंगोंवाली! तुम अपने तथा शत्रुके बलके विषयमें सम्यक् विचार करके ही कार्य करो। अठारह भुजाओंके कारण तुम अपनेपर व्यर्थ ही अभिमान करती हो॥ ६॥

देवताओंको जीतनेवाले तथा समरभूमिमें पराक्रम दिखानेवाले शुम्भके समक्ष तुम्हारी इन बहुत-सी व्यर्थ भुजाओं तथा श्रम प्रदान करनेवाले आयुधोंसे क्या लाभ? अतः तुम ऐरावतकी सूँड़ काट डालनेवाले, हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले और देवताओंको जीत लेनेवाले शुम्भका मनोवांछित कार्य करो॥ ७-८॥

हे कान्ते! तुम वृथा गर्व करती हो। हे विशालाक्षि! तुम मेरी प्रिय बात मान लो, जो तुम्हारे लिये हितकर, सुखद तथा दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ ९॥

शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् तथा बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दुःख देनेवाले कार्योंका दूरसे ही त्याग कर दें और सुख प्रदान करनेवाले कार्योंका सेवन करें॥ १०॥

हे कोयलके समान मधुर बोलनेवाली! तुम तो बड़ी चतुर हो। तुम देवताओंके मर्दनसे अभ्युदयको प्राप्त तथा महान् शुम्भबलको प्रत्यक्ष देख लो। प्रत्यक्ष प्रमाणका त्याग करके अनुमानका आश्रय लेना बिलकुल व्यर्थ है। किसी सन्देहात्मक कार्यमें विद्वान् पुरुष प्रवृत्त नहीं होते॥ ११-१२॥

शुम्भ देवताओंके महान् शत्रु हैं। वे संग्राममें अजेय हैं। इसीलिये दैत्येन्द्र शुम्भके द्वारा प्रताड़ित किये गये देवता तुम्हें युद्धके लिये प्रेरित कर रहे हैं॥ १३॥

हे सुन्दर मुसकानवाली! तुम देवताओंके मधुर वचनोंसे ठग ली गयी हो। तुम्हारे प्रति देवताओंकी यह शिक्षा उनका कार्य सिद्ध करनेवाली तथा तुम्हें दुःख प्रदान करनेवाली है॥ १४॥

कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत्।
देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यमब्रवम्॥ १५

भज शुम्भं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम्।
चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम्॥ १६

ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुम्भशासनात्।
निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम्॥ १७

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा चण्डस्य जगदम्बिका।
मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीत्॥ १८

गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वञ्चकं वचः।
त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भं कस्माद्‌व्रजे पतिम्॥ १९

न मे कश्चित्पतिः कार्यो न कार्यं पतिना सह।
स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय॥ २०

शुम्भा मे बहवो दृष्टा निशुम्भाश्च सहस्रशः।
घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः॥ २१

ममाग्रे देववृन्दानि विनष्टानि युगे युगे।
नाशं यास्यन्ति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै॥ २२

काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्यसंहारकारकः।
वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसन्ततेः॥ २३

कुरु युद्धं वीरधर्मरक्षायै त्वं महामते।
मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः॥ २४

किं ते कार्यं निशुम्भेन शुम्भेन च दुरात्मना।
वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम्॥ २५

शुम्भो निशुम्भश्चैवान्ये ये चात्र तव बान्धवाः।
सर्वे तवानुगाः पश्चादागमिष्यन्ति साम्प्रतम्॥ २६

अपना ही कार्य साधनेमें तत्पर रहनेवाले मित्रका त्यागकर धर्ममार्गपर चलनेवाले मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। देवता बड़े ही स्वार्थी हैं, मैंने तुमसे यह सत्य कहा है, अतः तुम देवताओंके शासक, विजेता, तीनों लोकोंके स्वामी, चतुर, सुन्दर, वीर और कामशास्त्रमें प्रवीण शुम्भको स्वीकार कर लो। शुम्भके अधीन रहनेसे तुम समस्त लोकोंका वैभव प्राप्त करोगी। अतएव दृढ़ निश्चय करके तुम सौन्दर्यसम्पन्न शुम्भको अपना पति बना लो॥ १५—१७॥

व्यासजी बोले—चण्डकी यह बात सुनकर जगदम्बाने मेघके समान गम्भीर ध्वनिमें गर्जना की और वे बोलीं—धूर्त! भाग जाओ; तुम यह छलयुक्त बात व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? विष्णु, शिव आदिको छोड़कर मैं शुम्भको अपना पति किसलिये बनाऊँ?॥ १८-१९॥

न तो मुझे किसीको पति बनाना है और न तो पतिसे मेरा कोई काम ही है; क्योंकि जगत्‌के सभी प्राणियोंकी स्वामिनी मैं ही हूँ; इसे तुम सुन लो॥ २०॥

मैंने हजारों-हजार शुम्भ तथा निशुम्भ देखे हैं और पूर्वकालमें मैंने सैकड़ों दैत्यों तथा दानवोंका वध किया है॥ २१॥

प्रत्येक युगमें अनेक देवसमुदाय मेरे सामने ही नष्ट हो चुके हैं। दैत्योंके समूह अब फिर विनाशको प्राप्त होंगे। दैत्योंका विनाशकारी समय अब आ ही गया है। अतएव तुम अपनी सन्ततिकी रक्षाके लिये व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो॥ २२-२३॥

हे महामते! तुम वीरधर्मकी रक्षाके लिये मेरे साथ युद्ध करो। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, इसे टाला नहीं जा सकता। अतः महात्मा लोगोंको यशकी रक्षा करनी चाहिये॥ २४॥

दुराचारी शुम्भ तथा निशुम्भसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? अतः अब तुम श्रेष्ठ वीरधर्मका आश्रय लेकर देवलोक स्वर्ग चले जाओ॥ २५॥

अब शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे जो अन्य बन्धु-बान्धव हैं, वे सब भी बादमें तुम्हारा अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचेंगे॥ २६॥

क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम्।
विषादं त्यज मन्दात्मन् कुरु युद्धं विशांपते॥ २७

त्वामहं निहनिष्यामि भ्रातरं तव साम्प्रतम्।
ततः शुम्भं निशुम्भं च रक्तबीजं मदोत्कटम्॥ २८

अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाहं समराङ्गणे।
गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम्॥ २९

गृहाणास्त्रं वृथापुष्ट कुरु युद्धं मयाधुना।
किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम्॥ ३०

व्यास उवाच

तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चण्डमुण्डौ क्रुधान्वितौ।
ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ॥ ३१

सापि शङ्खस्वनं चक्रे पूरयन्ती दिशो दश।
सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद् बली॥ ३२

तेन नादेन शक्राद्या जहर्षुरमरास्तदा।
मुनयो यक्षगन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः॥ ३३

युद्धं परस्परं तत्र जातं कातरभीतिदम्।
चण्डिकाचण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः॥ ३४

चण्डमुक्ताञ्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः।
मुमोच पुनरुग्रान्सा बाणांश्च पन्नगानिव॥ ३५

गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा।
शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः॥ ३६

मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं पपात तरसा रणे।
मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः॥ ३७

बाणजालं महद् दृष्ट्वा क्रुद्धा तत्राम्बिका भृशम्।
कोपेन वदनं तस्या बभूव घनसन्निभम्॥ ३८
कदलीपुष्पनेत्रञ्च भृकुटीकुटिलं तदा।

हे मन्दात्मन्! मैं अब क्रमशः सभी दैत्योंका संहार कर डालूँगी। हे विशांपते! अब विषाद त्यागो और मेरे साथ युद्ध करो॥ २७॥

मैं इसी समय तुम्हारा तथा तुम्हारे भाईका वध कर दूँगी। तत्पश्चात् शुम्भ, निशुम्भ, मदोन्मत्त रक्तबीज तथा अन्य दानवोंको रणभूमिमें मारकर मैं अपने धामको चली जाऊँगी। अब तुम यहाँ ठहरो अथवा शीघ्र भाग जाओ॥ २८-२९॥

व्यर्थ ही स्थूल शरीर धारण करनेवाले हे दैत्य! तुरंत शस्त्र उठा लो और मेरे साथ अभी युद्ध करो। कायरोंको सदा प्रिय लगनेवाली व्यर्थ बातें क्यों बोल रहे हो?॥ ३०॥

व्यासजी बोले—देवीके इस प्रकार उत्तेजित करनेपर दैत्य चण्ड-मुण्ड क्रोधसे भर उठे और अपने बलके अभिमानमें चूर उन दोनोंने वेगपूर्वक अपने धनुषकी प्रत्यंचाकी भीषण टंकार की॥ ३१॥

उसी समय दसों दिशाओंको गुंजित करती हुई भगवतीने भी शंखनाद किया और बलवान् सिंहने भी कुपित होकर गर्जन किया। उस गर्जनसे इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य और किन्नर बहुत हर्षित हुए॥ ३२-३३॥

तदनन्तर चण्डिका और चण्डमें परस्पर बाण, तलवार, गदा आदिके द्वारा भीषण संग्राम होने लगा; जो कायरोंके लिये भयदायक था॥ ३४॥

चण्डिकाने दैत्य चण्डके द्वारा छोड़े गये बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया और फिर वे चण्डपर अपने सर्पसदृश भयंकर बाण छोड़ने लगीं॥ ३५॥

उस समय संग्राममें आकाशमण्डल बाणोंसे उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जैसे वर्षाऋतुके अन्तमें किसानोंको भय प्रदान करनेवाली टिड्डियोंसे आकाश छा जाता है॥ ३६॥

उसी समय अतीव भयंकर मुण्ड भी सैनिकोंके साथ बड़ी तेजीसे रणभूमिमें आ पहुँचा और क्रोधित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ३७॥

तब [मुण्डके द्वारा प्रक्षिप्त] महान् बाण-समूहको देखकर अम्बिका बहुत कुपित हुईं। क्रोधके कारण उनका मुख मेघके समान काला, आँखें केलेके पुष्पके समान लाल और भौंहें टेढ़ी हो गयीं॥ ३८½॥

निष्क्रान्ता च तदा काली ललाटफलकाद् द्रुतम्॥ ३९

व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका।
मुण्डमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा॥ ४०

खड्गपाशधरातीव भीषणा भयदायिनी।
खट्वाङ्गधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा॥ ४१

विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयन्ती मुहुर्मुहुः।
विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान्॥ ४२

करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता।
मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः॥ ४३

गजान्घण्टान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे।
सारोहान्भक्षयित्वाजौ साट्टहासं चकार ह॥ ४४

तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम्॥ ४५

हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ।
छादयामासतुर्देवीं बाणासारैरनन्तैः॥ ४६

चण्डश्चण्डकरच्छायं चक्रं चक्रधरायुधम्।
चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः॥ ४७

नदन्तं वीक्ष्य तं काली रथाङ्गञ्च रविप्रभम्।
बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम्॥ ४८

तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डं चण्डी शिलाशितैः।
मूर्च्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम्॥ ४९

उसी समय देवीके ललाटपटलसे सहसा भगवती काली प्रकट हुईं। अत्यन्त क्रूर वे काली व्याघ्रचर्म पहने थीं और गजचर्मके उत्तरीय वस्त्रोंसे सुशोभित थीं। उन भयानक कालीने गलेमें मुण्डमाला धारण कर रखी थी और उनका उदर सूखी बावलीके समान प्रतीत हो रहा था। अत्यन्त भीषण तथा भय प्रदान करनेवाली वे भगवती काली हाथमें खड्ग, पाश तथा खट्वांग धारण किये हुई थीं। रौद्र रूपवाली वे काली साक्षात् दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत हो रही थीं॥ ३९—४१॥

विशाल मुख तथा विस्तृत जघनप्रदेशवाली वे भगवती काली बार-बार जिह्वा लपलपाती हुई बड़े वेगसे असुर-सैनिकोंका संहार करने लगीं॥ ४२॥

वे कुपित होकर बड़े-बड़े दैत्यवीरोंको हाथमें पकड़कर अपने मुखमें डाल लेती थीं और धीरे-धीरे उन्हें दाँतोंसे पीस डालती थीं॥ ४३॥

घंटा तथा आरोहियोंसमेत हाथियोंको अपने हाथमें पकड़कर वे देवी उन्हें मुखमें डाल लेती थीं और उन्हें चबा-चबाकर अट्टहास करने लगती थीं। उसी प्रकार वे घोड़ों, ऊँटों और सारथियोंसहित रथोंको अपने मुखमें डालकर दाँतोंसे अत्यन्त भयानक रूपसे चबाने लगती थीं॥ ४४-४५॥

अपनी सेनाको मारे जाते देखकर महान् असुर चण्ड-मुण्डने निरन्तर बाण-वृष्टिके द्वारा भगवतीको आच्छादित कर दिया॥ ४६॥

चण्डने सूर्यके समान तेजस्वी तथा भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रके तुल्य प्रभाववाला चक्र बड़े वेगसे देवीपर चला दिया और वह बार-बार गरजने लगा॥ ४७॥

उसे गर्जन करते देखकर कालीने अपने एक ही बाणसे उसके सूर्य-तुल्य तेजस्वी तथा सुदर्शनचक्र-सदृश प्रभावाले चक्रको काट डाला॥ ४८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस चण्डपर प्रहार किया। देवीके बाणोंसे अत्यधिक घायल होकर वह मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९॥

पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा।
चकार शरवृष्टिञ्च कालिकोपरि कोपतः॥ ५०

चण्डिका मुण्डनिर्मुक्तां शरवृष्टिं सुदारुणाम्।
ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकार तिलशः क्षणात्॥ ५१

अर्धचन्द्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः।
पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां मदवर्जितः॥ ५२

हाहाकारो महानासीद्दानवानां बले तदा।
जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः॥ ५३

विहाय मूर्च्छां चण्डस्तु संगृह्य महतीं गदाम्।
तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे॥ ५४

वञ्चयित्वा गदाघातं तं बबन्ध महासुरम्।
तरसा बाणपाशेन मन्त्रमुक्तेन कालिका॥ ५५

उत्थितस्तु तदा मुण्डो बद्धं दृष्ट्वानुजं बलात्।
आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम्॥ ५६

आगच्छन्तं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम्।
बबन्ध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम्॥ ५७

गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चण्डमुण्डौ शशाविव।
कुर्वती विपुलं हासमाजगामाम्बिकां प्रति॥ ५८

आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये।
रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ॥ ५९

तावानीतौ तदा वीक्ष्य चण्डिका तौ वृकाविव।
अम्बिका कालिकां प्राह माधुरीसंयुतं वचः॥ ६०

वधं मा कुरु मा मुञ्च चतुरासि रणप्रिये।
देवानां कार्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया॥ ६१

उस समय अपने भाईको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर मुण्ड दुःखसे व्याकुल हो उठा और कुपित होकर कालिकाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ५०॥

भगवती चण्डिकाने मुण्डके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण बाणवर्षाको अपने द्वारा छोड़े गये ईषिकास्त्रोंसे बलपूर्वक तिल-तिल करके क्षणभरमें ही नष्ट कर डाला॥ ५१॥

तत्पश्चात् चण्डिकाने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे मुण्डपर पुनः प्रहार किया, जिससे वह महाशक्तिशाली दैत्य मदहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५२॥

[यह देखकर] उस समय दानवोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया। आकाशमें विद्यमान सभी देवताओंकी व्यथा दूर हो गयी और वे हर्षसे भर उठे॥ ५३॥

इसके बाद कुछ देरमें मूर्च्छा दूर होनेपर चण्डने एक विशाल गदा लेकर बड़े वेगसे कालिकाकी दाहिनी भुजापर प्रहार किया॥ ५४॥

भगवती कालिकाने उसके गदाप्रहारको रोककर अभिमन्त्रित करके छोड़े गये बाण-पाशसे उस महान् असुरको शीघ्र ही बाँध लिया॥ ५५॥

उधर जब मुण्ड चेतनामें आया तब अपने अनुजको पाशास्त्रमें बलपूर्वक बँधा देखकर कवच पहने हुए वह अपने हाथमें एक सुदृढ़ शक्ति लेकर आ गया॥ ५६॥

तब भगवती कालीने उस दूसरे भाई दानव मुण्डको बड़े वेगसे अपनी ओर आता हुआ देखकर उसे भी बड़ी मजबूतीसे बाँध लिया॥ ५७॥

इस प्रकार महाबली चण्ड-मुण्डको खरगोशकी तरह पकड़कर जोर-जोरसे हँसती हुई वे कालिका अम्बिकाके पास जा पहुँची। उनके पास आकर कालिका कहने लगीं—हे प्रिये! मैं रणयज्ञमें पशुबलिके लिये इन रणदुर्जय दानवोंको यहाँ ले आयी हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें॥ ५८-५९॥

तब उन लाये गये दोनों दानवोंको भेड़ियेकी तरह दीन-हीन देखकर भगवती अम्बिकाने कालिकासे मधुरताभरी वाणीमें कहा—हे रणप्रिये! न इनका वध करो और न छोड़ो ही। तुम चतुर हो अतः किसी उपायसे अब तुम्हें शीघ्र ही देवताओंका कार्य सिद्ध करना चाहिये॥ ६०-६१॥

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः।
युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते॥ ६२

आलम्भञ्च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन शिरसी तयोः॥ ६३

चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा।
एवं दैत्यौ हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चाम्बिका॥ ६४

कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम्।
चण्डमुण्डौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिके।
चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले॥ ६५

व्यासजी बोले—अम्बिकाकी यह बात सुनकर कालिकाने उनसे पुनः कहा—जिस प्रकार यज्ञभूमिमें यूप स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार विख्यात युद्धयज्ञमें बलिदान-स्तम्भके रूपमें प्रतिष्ठित खड्गके द्वारा मैं आलम्भनपूर्वक इस तरह इनका वध करूँगी, जिससे हिंसा नहीं होगी॥ ६२½ ॥

ऐसा कहकर देवी कालिकाने तुरंत तलवारसे उन दोनोंका सिर काट लिया और वे आनन्दपूर्वक रुधिरपान करने लगीं॥ ६३½ ॥

इस प्रकार उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर अम्बिकाने प्रसन्न होकर कहा—तुमने आज देवताओंका महान् कार्य किया है इसीलिये मैं तुम्हें एक शुभ वरदान दे रही हूँ। हे कालिके! चूँकि तुमने चण्ड-मुण्डका वध किया है, इसलिये अब तुम इस पृथ्वीलोकमें 'चामुण्डा'—इस नामसे अत्यधिक विख्यात होओगी॥ ६४-६५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे चण्डमुण्डवधेन देव्याश्चामुण्डेतिनामवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शुम्भका रक्तबीजको भगवती अम्बिकाके पास भेजना और उसका देवीसे वार्तालाप

व्यास उवाच

हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः।
पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति॥ १

भिन्नाङ्गा विशिखैः केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा।
रुधिरस्त्रावदेहाश्च रुदन्तोऽभिययुः पुरे॥ २

गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चक्रुर्बुम्बारवं मुहुः।
रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका॥ ३

तया हतौ महावीरौ चण्डमुण्डौ सुरार्दनौ।
भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः॥ ४

भीतिदञ्च रणस्थानं कृतं कालिकया प्रभो।
पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः॥ ५

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर मरनेसे बचे सभी सैनिक भागकर राजा शुम्भके पास गये। कुछ सैनिकोंके अंग बाणोंसे छिद गये थे, कुछके हाथ कट गये थे, उनके पूरे शरीरसे रक्त बह रहा था; वे सब रोते हुए नगरमें पहुँचे॥ १-२॥

दैत्यराज शुम्भके पास जाकर वे सब बार-बार चीख-पुकार करने लगे—हे महाराज! हमें बचा लीजिये, बचा लीजिये; नहीं तो आज हमें कालिका खा जायगी। उसने देवताओंका मर्दन करनेवाले महावीर चण्ड-मुण्डको मार डाला और वह बहुत-से सैनिकोंको खा गयी। अंग-भंग हुए हमलोग इस समय भयसे व्याकुल हैं॥ ३-४॥

हे प्रभो! मरे पड़े हाथियों, घोड़ों, ऊँटों तथा पैदल सैनिकोंसे उस कालिकाने युद्धभूमिको अत्यन्त डरावना बना दिया है॥ ५॥

शोणितौघवहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा।
केशशैवलिनी भग्नरथचक्रविराजिता॥ ६

छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुम्बीफलान्विता।
भयदा कातराणां वै सुराणां मोदवर्धिनी॥ ७

कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम्।
क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः॥ ८

सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर।
तथैव कालिका देवी हन्ति बाणैरनेकधा॥ ९

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम्।
करोषि सहितो भ्रात्रा शुम्भेन कुपिताशयः॥ १०

किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी।
यस्या हेतोर्महाराज हन्तुमिच्छसि बान्धवान्॥ ११

दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ।
अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत्॥ १२

चित्रं पश्य विधेः कर्म यदधीनं जगत् प्रभो।
निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयानया॥ १३

जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि साम्प्रतम्।
एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति सुसम्भ्रमः॥ १४

पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने।
वरदानाय सम्प्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ १५

धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत।
तदा त्वयामरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल॥ १६

उसने समरभूमिमें रक्तकी नदी बना डाली है, जिसमें मांस कीचड़की भाँति, मस्तकके केश सेवारके सदृश और टूटे हुए रथोंके पहिये भँवरके समान, सैनिकोंके कटे हाथ आदि मछलीके समान और सिर तुम्बीके फलके तुल्य प्रतीत हो रहे हैं। वह [रुधिर-नदी] कायरोंको भयभीत करनेवाली तथा देवताओंके हर्षको बढ़ानेवाली है॥ ६-७॥

हे महाराज! अब आप दैत्यकुलकी रक्षा कीजिये और शीघ्र पाताललोक चले जाइये; अन्यथा क्रोधमें भरी वह देवी आज ही [सभी दानवोंका] विनाश कर डालेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ८॥

हे दानवेन्द्र! अम्बिकाका वाहन सिंह भी युद्धभूमिमें दानवोंको खाता जा रहा है और कालिकादेवी अपने बाणोंसे [दैत्य सैनिकोंका] अनेक तरहसे वध कर रही है। अतएव हे राजेन्द्र! आप भी कोपके वशीभूत होकर अपने भाई निशुम्भसहित मरनेका व्यर्थ विचार कर रहे हैं॥ ९-१०॥

हे महाराज! राक्षसकुलका नाश करनेवाली यह क्रूर स्त्री, जिसके लिये आप अपने बन्धुओंको मरवा डालना चाहते हैं, यदि आपको प्राप्त हो ही गयी तो यह आपको क्या सुख प्रदान करेगी?॥ ११॥

हे महाराज! जगत्में जय तथा पराजय दैवके अधीन होती है। बुद्धिमान्को चाहिये कि अल्प प्रयोजनके लिये भारी कष्ट न उठाये॥ १२॥

हे प्रभो! जिसके अधीन यह सारा जगत् रहता है, उस विधाताका अद्भुत कर्म देखिये कि इस स्त्रीने अकेले ही सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर डाला॥ १३॥

आप लोकपालोंको जीत चुके हैं और इस समय आपके पास बहुत-से सैनिक भी हैं तथापि एक स्त्री युद्धके लिये आपको ललकार रही है; यह महान् आश्चर्य है!॥ १४॥

पूर्वकालमें आपने पुष्कर तीर्थमें एक देवालयमें तप किया था। उस समय वर प्रदान करनेके लिये लोकपितामह ब्रह्माजी आपके पास आये थे। हे महाराज! जब ब्रह्माजीने आपसे कहा—'हे सुव्रत! वर माँगो' तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेकी यह

देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम।
सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंल्लिङ्गवाचकादपि॥ १७

तस्मात्त्वां हन्तुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो।
युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विचार्यैवं धियाधुना॥ १८

देवी ह्येषा महामाया प्रकृतिः परमा मता।
कल्पान्तकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी॥ १९

उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा।
त्रिगुणा तामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता॥ २०

अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता।
वेदमाता च गायत्री सन्ध्या सर्वसुरालया॥ २१

निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धिप्रदाव्यया।
आनन्दानन्ददा गौरी देवानामभयप्रदा॥ २२

एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावं त्यजानया।
शरणं व्रज राजेन्द्र देवी त्वां पालयिष्यति॥ २३

आज्ञाकरो भवैतस्याः सञ्जीवय निजं कुलम्।
हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवन्तु चिरायुषः॥ २४

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः।
उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्यगुणान्वितम्॥ २५

शुम्भ उवाच

मौनं कुर्वन्तु भो मन्दा यूयं भग्ना रणाजिरात्।
शीघ्रं गच्छत पातालं जीविताशा बलीयसी॥ २६

प्रार्थना की थी—'देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, किन्नर, यक्ष और पुरुषवाचक जो भी प्राणी हैं—इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो'॥ १५—१७॥

हे प्रभो! इसी कारणसे यह श्रेष्ठ स्त्री आपका वध करनेकी इच्छासे आयी हुई है। अतएव हे राजेन्द्र! बुद्धिसे ऐसा विचार करके अब आप युद्ध मत कीजिये॥ १८॥

इन देवी अम्बिकाको ही महामाया और परमा प्रकृति कहा गया है। हे राजेन्द्र! कल्पके अन्तमें ये भगवती ही सम्पूर्ण सृष्टिका संहार करती हैं॥ १९॥

सबपर शासन करनेवाली ये कल्याणमयी देवी सम्पूर्ण लोकों तथा देवताओंको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। ये देवी तीनों गुणोंसे युक्त हैं, फिर भी ये विशेषरूपसे तमोगुणसे युक्त और सभी प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। ये अजेय, विनाशरहित, नित्य, सर्वज्ञ तथा सदा विराजमान रहती हैं। वेदमाता गायत्री और सन्ध्याके रूपमें प्रतिष्ठित ये देवी सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय प्रदान करती हैं। ये देवी निर्गुण तथा सगुण-रूपवाली; स्वयं सिद्धिस्वरूपिणी, सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली, अविनाशिनी, आनन्दस्वरूपा, सबको आनन्द देनेवाली, गौरी नामसे विख्यात तथा देवताओंको अभय प्रदान करनेवाली हैं॥ २०—२२॥

हे महाराज! ऐसा जानकर आप इनके साथ वैरभावका परित्याग कर दीजिये। हे राजेन्द्र! आप इनकी शरणमें चले जाइये; ये भगवती आपकी रक्षा करेंगी। आप इनके सेवक बन जाइये [और इस प्रकार] अपने कुलका जीवन बचा लीजिये; मरनेसे बचे हुए जो दैत्य हैं, वे भी दीर्घजीवी हो जायँ॥ २३-२४॥

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर देवसेनाका मर्दन करनेवाले शुम्भने महान् वीरोंके पराक्रम-गुणसे सम्पन्न यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया॥ २५॥

शुम्भ बोला—अरे मूर्खो! चुप रहो; तुमलोग युद्धभूमिसे भाग आये हो। तुम्हें यदि जीवित रहनेकी प्रबल अभिलाषा है तो तुम सब अभी पाताललोक चले जाओ॥ २६॥

दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिन्तात्र जये मम।
देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीना वयं यथा॥ २७

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽयं यमोऽग्निर्वरुणस्तथा।
सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल॥ २८

का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति।
उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता॥ २९

सर्वथैवं विचार्यैव न शोचन्ति बुधाः क्वचित्।
स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात्॥ ३०

सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम्।
काले भवति सम्प्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम्॥ ३१

ब्रह्मा पतति काले स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः।
नाशं गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः॥ ३२

तथाहमपि कालस्य वशगः सर्वथाधुना।
नाशं जयं वा गन्तास्मि स्वधर्मपरिपालनात्॥ ३३

आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल।
कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम्॥ ३४

करिष्याम्यद्य संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह।
जयो वा मरणं वापि स्वीकरोमि यथा तथा॥ ३५

दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः।
युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानन्त्यभिभाषितम्॥ ३६

उद्यमेन विना कामं न सिध्यन्ति मनोरथाः।
कातरा एव जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ ३७

अदृष्टं बलवन्मूढाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
प्रमाणं तस्य सत्त्वे किमदृश्यं दृश्यते कथम्॥ ३८

जब यह सारा संसार ही दैवके अधीन है, तब विजयके सम्बन्धमें मुझे क्या चिन्ता हो सकती है? जैसे हमलोग दैवके अधीन हैं, वैसे ही ब्रह्मा आदि देवता भी सदा दैवके अधीन रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र—ये सब देवता सदा दैवके अधीन हैं। हे मूर्खो! तब मुझे किस बातकी चिन्ता? जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। जैसी भवितव्यता होती है, उसी प्रकारका उद्यम भी आरम्भ हो जाता है। सब प्रकारसे ऐसा विचार करके विद्वान् लोग कभी शोक नहीं करते। ज्ञानी लोग मृत्युके भयसे अपने धर्मका त्याग नहीं करते॥ २७—३०॥

समय आनेपर दैवकी प्रेरणासे मनुष्योंको सुख, दुःख, आयु, जीवन तथा मरण—ये सब निश्चितरूपसे प्राप्त होते हैं। अपना-अपना समय पूरा हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रसहित सभी देवता भी अपनी आयुके अन्तमें विनाशको प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार मैं भी सर्वथा कालका वशवर्ती हूँ। अतः अब मुझे विनाश अथवा विजय जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं अपने धर्मका सम्यक् पालन करते हुए स्वीकार करूँगा॥ ३१—३३॥

जब इस स्त्रीने मुझे युद्धके लिये ललकारा है, तब [उसके भयसे] भागकर मैं सैकड़ों वर्ष जीवित रहनेकी आशा क्यों करूँ? मैं आज ही उसके साथ युद्ध करूँगा, फिर जो होना है वह होवे। युद्धमें विजय अथवा मृत्यु जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं स्वीकार करूँगा॥ ३४-३५॥

'दैव मिथ्या है'—ऐसा उद्यमवादी विद्वान् कहते हैं। इस प्रकार जो शास्त्रको जानते हैं, उन उद्यमवादी विद्वानोंकी बात युक्तियुक्त भी है॥ ३६॥

बिना उद्यम किये मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होते। केवल कायरलोग ही कहते हैं कि जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। अदृष्ट—प्रारब्ध बलवान् होता है—ऐसी बात मूर्ख कहते हैं न कि पण्डितजन। प्रारब्धकी सत्ता है—इसमें क्या प्रमाण हो सकता है? क्योंकि जो स्वयं अदृष्ट है, वह भला कैसे दिखायी पड़ सकता है?॥ ३७-३८॥

अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका।
अवलम्बं विनैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा॥ ३९

चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी।
उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा॥ ४०

उद्यमे च कृते कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा।
कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि॥ ४१

देशं कालञ्च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम्।
कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा॥ ४२

व्यास उवाच

इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजं महासुरम्।
प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महतावृतम्॥ ४३

शुम्भ उवाच

रक्तबीज महाबाहो गच्छ त्वं समराङ्गणे।
कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम्॥ ४४

रक्तबीज उवाच

महाराज न ते कार्या चिन्ता स्वल्पतरापि वा।
अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव॥ ४५

पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया।
दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात्॥ ४६

व्यास उवाच

इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः।
जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः॥ ४७

हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः।
निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरिस्थिताम्॥ ४८

तमागतं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम्॥ ४९

अदृष्टको कभी किसीने देखा भी है क्या? यह तो मूर्खोंके लिये विभीषिकामात्र है। इसका कोई आधार नहीं है; केवल कष्टकी स्थितिमें मनको ढाँढ़स देनेके लिये वह सहारामात्र अवश्य बन जाता है॥ ३९॥

आटा पीसनेवाली कोई स्त्री चक्कीके पास चुपचाप बैठी रहे, तो बिना उद्यम किये किसी प्रकार भी आटा तैयार नहीं हो सकता॥ ४०॥

उद्यम करनेपर ही हर प्रकारसे कार्य सिद्ध होता है। जब कभी उद्यम करनेमें कमी रह जाती है, तब कार्य किसी तरह सिद्ध नहीं हो पाता है॥ ४१॥

देश, काल, अपना बल तथा शत्रुका बल—इन सबकी पूरी जानकारी करके किया गया कार्य निश्चय ही सिद्ध होता है—यह आचार्य बृहस्पतिका वचन है॥ ४२॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके दैत्यराज शुम्भने महान् असुर रक्तबीजको विशाल सेनाके साथ समरभूमिमें जानेकी आज्ञा दी॥ ४३॥

शुम्भ बोला—हे विशाल भुजाओंवाले रक्तबीज! तुम युद्धभूमिमें जाओ; और हे महाभाग! अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करो॥ ४४॥

रक्तबीज बोला—हे महाराज! आपको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं इस स्त्रीको या तो मार डालूँगा और या तो इसे आपके अधीन कर दूँगा। आप मेरा बुद्धिचातुर्य देखें। [मेरे आगे] देवताओंकी प्रिय यह बाला है ही क्या? मैं इसे युद्धमें बलपूर्वक जीतकर आपकी दासी बना दूँगा॥ ४५-४६॥

व्यासजी बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! ऐसा कहकर महान् असुर रक्तबीज रथपर आरूढ होकर अपनी सेनाके साथ चल पड़ा॥ ४७॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे चारों ओरसे आवृत हुआ रक्तबीज रथपर आरूढ़ होकर पर्वतपर विराजमान भगवतीकी ओर चल दिया॥ ४८॥

उसे आया हुआ देखकर देवीने शंख बजाया। वह शंखनाद सभी दैत्योंके लिये भयदायक तथा देवताओंके लिये हर्षवर्धक था॥ ४९॥

श्रुत्वा शङ्खस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान्।
गत्वा समीपे चामुण्डां बभाषे वचनं मृदु॥ ५०

रक्तबीज उवाच

बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल।
शङ्खनादेन तन्वङ्गि वेत्सि किं धूम्रलोचनम्॥ ५१

रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाहं त्वत्सकाशमिहागतः।
युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे॥ ५२

पश्याद्य मे बलं कान्ते दृष्टा ये कातरास्त्वया।
नाहं पङ्क्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि॥ ५३

वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया।
पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठी कृताथ वा॥ ५४

साहित्यतन्त्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि।
शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम्॥ ५५

रसानाञ्च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ।
शृङ्गारकः शान्तिरसो विद्वज्जनसभासु च॥ ५६

तयोः शृङ्गार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः।
विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः॥ ५७

शच्येन्द्रः शैलसुतया शङ्करः सह शेरते।
वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः॥ ५८

एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम्।
अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः॥ ५९

भवन्ति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वञ्चिताः।
असंसाररसज्ञास्ते वञ्चिता वञ्चनापरैः॥ ६०

मधुरालापनिपुणै रताः शान्तिरसे हि ते।
क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे॥ ६१

उस भीषण शंखध्वनिको सुनकर वह रक्तबीज बड़े वेगसे देवी चामुण्डाके पास पहुँचकर मधुर वाणीमें उनसे कहने लगा॥ ५०॥

रक्तबीज बोला—हे बाले! क्या तुम कायर समझकर अपने शंखनादसे मुझको डरा रही हो? हे कोमलांगि! क्या तुमने मुझे धूम्रलोचन समझ रखा है?॥ ५१॥

मेरा नाम रक्तबीज है। मैं यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ। हे पिकभाषिणि! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो तैयार हो जाओ; मुझे तुमसे भय नहीं है॥ ५२॥

हे कान्ते! अब तुम मेरा पराक्रम देखो। अभीतक तुमने जिन-जिन कायर दैत्योंको देखा है, उनकी श्रेणीका मैं नहीं हूँ। तुम जिस तरहसे चाहो, वैसे लड़ लो॥ ५३॥

हे सुन्दरि! यदि तुमने वृद्धजनोंकी सेवा की हो, नीतिशास्त्रका अध्ययन किया हो, अर्थशास्त्र पढ़ा हो, विद्वानोंकी गोष्ठीमें भाग लिया हो और यदि तुम्हें साहित्य तथा तन्त्रविज्ञानका ज्ञान हो, तो मेरी हितकर, यथार्थ तथा प्रामाणिक बात सुन लो॥ ५४-५५॥

विद्वानोंकी सभाओंमें नौ रसोंके अन्तर्गत शृंगाररस तथा शान्तिरस—ये दो रस ही मुख्य माने गये हैं। उन दोनोंमें भी शृंगाररस रसोंके राजाके रूपमें प्रतिष्ठित है। [इसीके प्रभावसे] विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, इन्द्र शचीके साथ और भगवान् शिव पार्वतीके साथ निवास करते हैं; उसी प्रकार वृक्ष लताके साथ, मृग मृगीके साथ और कपोत कपोतीके साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं॥ ५६—५८॥

इस प्रकार जगत्के समस्त जीवधारी संयोगजनित सुखका अत्यधिक उपभोग करते हैं। जो लोग भोग तथा वैभवका सुख नहीं प्राप्त कर सके हैं और अन्य जो कातर मनुष्य हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं और दैवसे वंचित होकर यति हो जाते हैं। संसारके रसका ज्ञान न रखनेवाले वे लोग मीठी-मीठी बात बोलनेमें निपुण धूर्तों तथा वंचकोंद्वारा ठग लिये जाते हैं और सदा शान्तरसमें निमग्न रहते हैं; किंतु काम, लोभ, भयंकर क्रोध और बुद्धिनाशक मोहके उत्पन्न होते ही

लोभे क्रोधे च दुर्धर्षे मोहे मतिविनाशके।
तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कान्तं मनोहरम्॥ ६२
शुम्भं सुराणां जेतारं निशुम्भं वा महाबलम्।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरःस्थितः।
श्रुत्वा जहास चामुण्डा कालिका चाम्बिका तथा॥ ६३

कहाँ ज्ञान रह जाता है और कहाँ वैराग्य! अतएव हे कल्याणि! तुम भी देवताओंपर विजय प्राप्त कर लेनेवाले मनोहर तथा महाबली शुम्भ अथवा निशुम्भको पति बना लो॥ ५९—६२½॥

व्यासजी बोले—इतना कहकर वह रक्तबीज देवीके सामने चुपचाप खड़ा हो गया। उसकी बातें सुनकर चामुण्डा, कालिका और अम्बिका हँसने लगीं॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे रक्तबीजद्वारा देवीसमीपे शुम्भनिशुम्भसंवादवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

देवीके साथ रक्तबीजका युद्ध, विभिन्न शक्तियोंके साथ भगवान् शिवका रणस्थलमें आना तथा भगवतीका उन्हें दूत बनाकर शुम्भके पास भेजना, भगवान् शिवके सन्देशसे दानवोंका क्रुद्ध होकर युद्धके लिये आना

व्यास उवाच

कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते।
मेघगम्भीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः॥ १

पूर्वमेव मया प्रोक्तं मन्दात्मन् किं विकत्थसे।
दूतस्याग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम्॥ २

सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च।
त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम्॥ ३

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भञ्च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता।
तस्माद्युध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु॥ ४

त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य कार्यार्थसिद्धये।
संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह॥ ५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः।
मुमोच तरसा बाणान्सिंहस्योपरि दारुणान्॥ ६

अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान्।
चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात्॥ ७

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे देवी हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उस रक्तबीजसे यह युक्तिसंगत वचन बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहे हो? मैं तो पहले ही दूतके सामने उचित और हितकर बात कह चुकी हूँ कि यदि तीनों लोकोंमें कोई भी पुरुष रूप, बल और वैभवमें मेरे समान हो तो मैं पतिरूपमें उसका वरण कर लूँगी। अब तुम शुम्भ-निशुम्भसे कह दो कि मैं पूर्वकालमें ऐसी प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, अतः मेरे साथ युद्ध करो और रणमें मुझे जीतकर [मेरे साथ] विधिवत् विवाह कर लो॥ १—४॥

तुम भी शुम्भकी आज्ञासे उसका कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आये हो। अतएव यदि चाहो तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा अपने स्वामीके साथ पाताललोक चले जाओ॥ ५॥

व्यासजी बोले—देवीकी बात सुनकर वह दैत्य क्रोधमें भर उठा और बड़े वेगसे देवीके सिंहपर भीषण बाण छोड़ने लगा॥ ६॥

सर्पसदृश उन बाणोंको देखकर अम्बिकाने दक्षतापूर्वक बड़ी फुर्तीके साथ अपने तीखे बाणोंसे उन्हें आकाशमें ही क्षणभरमें काट डाला॥ ७॥

अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम्।
अम्बिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ ८

देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि।
पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत्॥ ९

सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन्।
ततो बुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम्॥ १०

उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह।

शुम्भ उवाच

निर्यान्तु दानवाः सर्वे काम्बोजाः स्वबलैर्वृताः॥ ११

अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुम्भेन च चतुर्विधम्॥ १२

निर्जगाम मदाविष्टं देवीसमरमण्डले।
तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम्॥ १३

घण्टानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः।
ज्यास्वनं शङ्खनादञ्च चकार जगदम्बिका॥ १४

तेन नादेन सा जाता काली विस्तारितानना।
श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम्॥ १५

जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन्भयमद्भुतम्।
तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्च्छिताः॥ १६

सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः।
तस्मिन्नेवायते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे॥ १७

ब्रह्मादीनाञ्च देवानां शक्तयश्चण्डिकां ययुः।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्॥ १८
तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समराङ्गणे।

इसके बाद अम्बिकाने कानतक खींचकर धनुषसे छोड़े गये तथा पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये अन्य बाणोंसे महान् असुर रक्तबीजपर प्रहार किया॥ ८॥

भगवतीके बाणोंसे आहत होकर पापी रक्तबीज रथपर ही मूर्च्छित हो गया। रक्तबीजके गिर जानेपर बड़ा हाहाकार मच गया। उसके सभी सैनिक चीखने-चिल्लाने लगे और 'हाय! हम मारे गये'—ऐसा कहने लगे॥ ९½॥

तब अपने सैनिकोंका अत्यन्त भीषण क्रन्दन सुनकर शुम्भने सभी दैत्ययोद्धाओंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होनेका आदेश दिया॥ १०½॥

शुम्भ बोला—कम्बोजदेशके सभी दानव तथा उनके अतिरिक्त अन्य महाबली वीर विशेष करके कालकेयसंज्ञक पराक्रमी योद्धा भी अपनी-अपनी सेनाके साथ निकल पड़ें॥ ११½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुम्भके आदेश देनेपर उसकी सारी चतुरंगिणी सेना मदमत्त होकर देवीके संग्रामस्थलके लिये निकल पड़ी। समरभूमिमें आयी हुई उस दानवी सेनाको देखकर भगवती चण्डिका बार-बार भीषण तथा भयदायक घंटानाद करने लगीं। जगदम्बाने धनुषका टंकार तथा शंखनाद किया। उस नादके होते ही भगवती काली भी अपना मुख फैलाकर घोर ध्वनि करने लगीं॥ १२—१४½॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर भगवतीका वाहन बलशाली सिंह भी अद्भुत भय उत्पन्न करता हुआ बड़े जोरका गर्जन करने लगा। वह निनाद सुनकर सभी दैत्य क्रोधके मारे बौखला उठे और वे महाबली दैत्य देवीपर अस्त्र छोड़ने लगे॥ १५-१६½॥

उस भयानक तथा रोमांचकारी महासंग्राममें ब्रह्मा आदि देवताओंकी विभिन्न शक्तियाँ भी चण्डिकाके पास पहुँच गयीं। जिस देवताका जैसा रूप, भूषण तथा वाहन था; ठीक उसी प्रकारके रूप, भूषण तथा वाहनसे युक्त होकर सभी देवियाँ रणक्षेत्रमें पहुँची थीं॥ १७-१८½॥

ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्रकमण्डलुः॥ १९

आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता।
वैष्णवी गरुडारूढा शङ्खचक्रगदाधरा॥ २०

पद्महस्ता समायाता पीताम्बरविभूषिता।
शाङ्करी तु वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी॥ २१

अर्धचन्द्रधरा देवी तथाहिवलया शिवा।
कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता वरानना॥ २२

युद्धकामा समायाता कार्तिकेयस्वरूपिणी।
इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना॥ २३

वज्रहस्तातिरोषाढ्या संग्रामाभिमुखी ययौ।
वाराही शूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता॥ २४

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
याम्या च महिषारूढा दण्डहस्ता भयप्रदा॥ २५

समायाताथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता।
तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा॥ २६

एवंविधास्तथाकारा ययुः स्वस्वबलैर्वृताः।
आगतास्ताः समालोक्य देवी मुदमवाप च॥ २७

स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः।
ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करो लोकशङ्करः॥ २८

समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच ह।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये॥ २९

निशुम्भं चैव शुम्भं च ये चान्ये दानवाः स्थिताः।
हत्वा दैत्यबलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत्॥ ३०

ब्रह्माजीकी शक्ति, जो ब्रह्माणी नामसे प्रख्यात हैं, हाथमें अक्षसूत्र तथा कमण्डलु धारण करके हंसपर आरूढ़ हो वहाँ आयीं। भगवान् विष्णुकी शक्ति वैष्णवी गरुडपर सवार होकर रणभूमिमें आयीं। वे पीताम्बरसे विभूषित थीं तथा उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा था। शंकरकी शक्ति भगवती शिवा बैलपर सवार होकर हाथमें उत्तम त्रिशूल लिये मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये तथा सर्पोंके कंगन पहने वहाँ उपस्थित हुईं॥ १९—२१½॥

भगवान् कार्तिकेयके समान ही रूप धारण करके सुन्दर मुखवाली भगवती कौमारी युद्धकी इच्छासे हाथमें शक्ति धारण करके मयूरपर आरूढ़ होकर आयीं। सुन्दर मुखवाली इन्द्राणी अतिशय उज्ज्वल हाथीपर सवार होकर हाथमें वज्र लिये उग्र क्रोधसे आविष्ट हो समरभूमिमें पहुँचीं। इसी प्रकार सूकरका रूप धारण करके एक विशाल प्रेतपर सवार होकर भगवती वाराही, नृसिंहके समान रूप धारण करके भगवती नारसिंही और यमराजके ही समान रूपवाली भयदायिनी शक्ति भगवती याम्या हाथमें दण्ड धारण किये तथा महिषपर आरूढ़ होकर मधुर-मधुर मुसकराती हुई संग्राममें आयीं। उसी प्रकार वरुणकी शक्ति वारुणी तथा कुबेरकी मदोन्मत्त शक्ति कौबेरी भी समरभूमिमें पहुँच गयीं। इसी तरह अन्य देवताओंकी शक्तियाँ भी उन्हीं देवोंका रूप धारणकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हुईं। उन शक्तियोंको वहाँ उपस्थित देखकर भगवती अम्बिका बहुत हर्षित हुईं। इससे देवता निश्चिन्त तथा प्रसन्न हो गये और दैत्य भयभीत हो उठे॥ २२—२७½॥

लोककल्याणकारी शिवजी भी उन शक्तियोंके साथ वहाँ संग्राममें भगवती चण्डिकाके पास आकर उनसे कहने लगे—देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आप शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य जो भी दानव उपस्थित हैं, उन सबका वध कर दीजिये। साथ ही सारी असुर-सेनाका संहार करके और इस प्रकार संसारको भयमुक्त करके ये समस्त शक्तियाँ अपने-अपने

स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः।
देवा यज्ञभुजः सन्तु ब्राह्मणा यजने रताः॥ ३१

प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वे स्थावरजङ्गमाः।
शमं यान्तु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः॥ ३२

घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा।
व्यास उवाच
एवं ब्रुवति देवेशे शङ्करे लोकशङ्करे॥ ३३

चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्तिरद्भुता।
भीषणातिप्रचण्डा च शिवाशतनिनादिनी॥ ३४

घोररूपाथ पञ्चास्यमित्युवाच स्मितानना।
देवदेव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति॥ ३५

दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुम्भं स्मराकुलम्।
निशुम्भञ्च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शङ्कर॥ ३६

मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै।
देवाः स्वर्गे सुखं यान्तु तुराषाट् स्वासनं शुभम्॥ ३७

प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञभागांश्च देवताः।
जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा॥ ३८

तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः।
अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत्॥ ३९

तदागच्छन्तु तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः।
व्यास उवाच
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः॥ ४०

गत्वाह दैत्यराजानं शुम्भं सदसि संस्थितम्।
शिव उवाच
राजन् दूतोऽहमम्बायास्त्रिपुरान्तकरो हरः॥ ४१

त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाखिलम्।
त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम्॥ ४२

स्थानोंको चली जायँ। [आप यह कार्य सम्पन्न करें जिससे] देवता यज्ञभाग पाने लगें, ब्राह्मण [निर्भय होकर] यज्ञ आदि करनेमें तत्पर हो जायँ, सभी स्थावर-जंगम प्राणी सन्तुष्ट हो जायँ, सब प्रकारके उपद्रव और अकाल आदि आपदाएँ समाप्त हो जायँ, मेघ समयपर वृष्टि करें और कृषि लोगोंके लिये अधिक फलदायिनी हो॥ २८—३२½॥

व्यासजी बोले—लोकका कल्याण करनेवाले देवेश्वर शिवके ऐसा कहनेपर भगवती चण्डिकाके शरीरसे एक अद्भुत शक्ति प्रकट हुई। वह शक्ति अत्यन्त भयंकर तथा प्रचण्ड थी, वह सैकड़ों सियारिनोंके समवेत स्वरके समान ध्वनि कर रही थी और उसका रूप बहुत भयानक था। मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली उस शक्तिने पंचमुख शिवजीसे कहा—हे देवदेव! आप दैत्यराज शुम्भके पास शीघ्र जाइये। हे कामरिपु! इस समय आप मेरे दूतका काम कीजिये। हे शंकर! कामपीड़ित शुम्भ तथा मदोन्मत्त निशुम्भसे मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'तुम सब तत्काल स्वर्ग त्यागकर पाताललोक चले जाओ, जिससे देवगण सुखपूर्वक स्वर्गमें प्रविष्ट हो सकें और इन्द्रको स्वर्गलोक तथा अपना उत्तम इन्द्रासन पुनः प्राप्त हो जाय; साथ ही सभी देवताओंको उनके यज्ञभाग पुनः मिलने लगें। यदि जीवित रहनेकी तुमलोगोंकी बलवती इच्छा हो तो तुमलोग बहुत शीघ्र पाताललोक चले जाओ, जहाँ दानवलोग रहते हैं। अथवा अपने बलका आश्रय लेकर यदि तुम सब युद्धकी इच्छा रखते हो, तो मरनेके लिये आ जाओ, जिससे मेरी सियारिनें तुमलोगोंके कच्चे मांससे तृप्त हो जायँ॥ ३३—३९½॥

व्यासजी बोले—चण्डिकाका यह वचन सुनकर शिव अपनी सभामें बैठे हुए दैत्यराज शुम्भके पास शीघ्र जाकर उससे कहने लगे॥ ४०½॥

शिवजी बोले—हे राजन्! मैं त्रिपुरासुरका संहार करनेवाला महादेव हूँ। अम्बिकाका दूत बनकर मैं इस समय तुम्हारा सम्पूर्ण हित करनेके लिये यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। [देवीने कहलाया है कि] तुमलोग स्वर्ग तथा भूलोक त्यागकर शीघ्र पाताललोक

पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः।
अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम्॥ ४३

संग्रामे वो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै।
इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे॥ ४४

व्यास उवाच

इति दैत्यवरान्देवीवाक्यं पीयूषसन्निभम्।
हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत्॥ ४५

ययासौ प्रेरितः शम्भुर्दूतत्वे दानवान्प्रति।
शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले॥ ४६

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शङ्करोक्तं तु दुष्करम्।
युद्धाय निर्ययुः शीघ्रं दंशिताः शस्त्रपाणयः॥ ४७

तरसा रणमागत्य चण्डिकां प्रति दानवाः।
निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ ४८

कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान्।
कुर्वन्ती व्यचरत्तत्र भक्षयन्ती च दानवान्॥ ४९

कमण्डलुजलाक्षेपगतप्राणान् महाबलान्।
ब्रह्माणी चाकरोत्तत्र दानवान्समराङ्गणे॥ ५०

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा।
जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले॥ ५१

वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेन दानवान्।
गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमाङ्गविवर्जितान्॥ ५२

ऐन्द्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले।
ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुङ्गवान्॥ ५३

वाराही तुण्डघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च।
जघान क्रोधसंयुक्ता शतशो दैत्यदानवान्॥ ५४

नारसिंही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुङ्गवान्।
भक्षयन्ती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः॥ ५५

चले जाओ, जहाँ प्रह्लाद तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि रहते हैं। अथवा यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुरंत सामने आ जाओ; मैं तुम सबको संग्राममें शीघ्र ही मार डालूँगी। तुमलोगोंके कल्याणके लिये महारानी अम्बिकाने ऐसा कहा है॥ ४१—४४॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह अमृत-तुल्य कल्याणकारी सन्देश उन प्रधान दैत्योंको सुनाकर शूलधारी भगवान् शंकर लौट आये॥ ४५॥

भगवती अम्बिकाने शिवजीको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था, अतः वे सम्पूर्ण त्रिलोकीमें 'शिवदूती' इस नामसे विख्यात हुईं॥ ४६॥

शंकरजीके मुखसे कहे गये भगवतीके इस दुष्कर सन्देशको सुनते ही वे दैत्य भी कवच धारण करके तथा हाथोंमें शस्त्र लेकर शीघ्र ही युद्धके लिये निकल पड़े॥ ४७॥

वे दानव बड़े वेगसे रणभूमिमें चण्डिकाके समक्ष आकर कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीखे बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ ४८॥

भगवती कालिका त्रिशूल, गदा और शक्तिसे दानवोंको विदीर्ण करती हुई और उनका भक्षण करती हुई युद्धमें विचरने लगीं॥ ४९॥

भगवती ब्रह्माणी युद्धभूमिमें अपने कमण्डलुके जलके प्रक्षेपमात्रसे उन महाबली दानवोंको प्राणशून्य कर देती थीं॥ ५०॥

वृषभपर विराजमान भगवती माहेश्वरी अपने त्रिशूलसे रणमें दानवोंपर बड़े वेगसे प्रहार करती थीं और उन्हें मारकर धराशायी कर देती थीं॥ ५१॥

भगवती वैष्णवी गदा तथा चक्रके प्रहारसे दानवोंको निष्प्राण तथा सिरविहीन कर डालती थीं॥ ५२॥

इन्द्रकी शक्ति देवी ऐन्द्री ऐरावत हाथीकी सूँड़की चोटसे पीड़ित बड़े-बड़े दैत्योंको अपने वज्रके प्रहारसे भूतलपर गिरा देती थीं॥ ५३॥

देवी वाराही कुपित होकर अपने तुण्ड तथा भयंकर दाढ़ोंके प्रहारसे सैकड़ों दैत्यों और दानवोंको मार डालती थीं॥ ५४॥

देवी नारसिंही अपने तीक्ष्ण नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाती हुई रणभूमिमें विचर रही थीं तथा बार-बार गर्जना कर रही थीं॥ ५५॥

शिवदूती अट्टहासैः पातयामास भूतले।
तांश्चखादाथ चामुण्डा कालिका च त्वरान्विता॥ ५६

शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः।
निजघान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै॥ ५७

वारुणी पाशसम्बद्धान्दैत्यान्समरमस्तके।
पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान्॥ ५८

एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम्।
मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत्॥ ५९

बुम्बारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे।
पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्चक्रुर्देव्या गणोपरि॥ ६०

तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः।
रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान्॥ ६१

गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः।
रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा॥ ६२

सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम्।
आजगाम तदा देवीं क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः॥ ६३

शिवदूती अपने अट्टहाससे ही दैत्योंको धराशायी कर देती थीं और चामुण्डा तथा कालिका बड़ी शीघ्रतासे उन्हें खाने लगती थीं॥ ५६॥

मयूरपर विराजमान भगवती कौमारी देवताओंके कल्याणके लिये कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंका संहार करने लगीं॥ ५७॥

भगवती वारुणी समरांगणमें दैत्योंको अपने पाशमें बाँधकर उन्हें अचेत करके एकके ऊपर एकके क्रमसे गिरा देती थीं और वे निष्प्राण हो जाते थे॥ ५८॥

इस प्रकार उन मातृशक्तियोंके प्रयाससे दानवोंकी वह ओजस्विनी तथा पराक्रमी सेना युद्धभूमिमें तहस-नहस होकर भाग खड़ी हुई॥ ५९॥

उस सेनारूपी समुद्रमें बड़े जोरसे रोने-चिल्लानेकी ध्वनि होने लगी। देवीके गणोंके ऊपर देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ ६०॥

दानवोंकी भयंकर चीत्कार तथा देवताओंकी जयध्वनि सुनकर रक्तबीज बहुत कुपित हुआ। उस समय दैत्योंको पलायित देखकर तथा देवताओंको गरजते हुए देखकर वह महाबली तथा तेजस्वी दैत्य रक्तबीज युद्धभूमिमें स्वयं आ डटा। वह आयुधोंसे सुसज्जित होकर रथपर सवार था और प्रत्यंचाकी अद्भुत टंकार करता हुआ क्रोधके मारे आँखें लाल किये युद्धके लिये देवीके सम्मुख आ गया॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
रक्तबीजेन देव्या युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

* * *

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

रक्तबीजका वध और निशुम्भका युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान

व्यास उवाच

वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम्।
अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम्॥ १
तस्य देहाद्रक्तबिन्दुर्यदा पतति भूतले।
समुत्पतन्ति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय शंकरजीने उस दानव रक्तबीजको यह बड़ा ही अद्भुत वर दे डाला था, मैं उसे बता रहा हूँ; आप सुनिये॥ १॥

उस दानवके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती थी, तब उसीके रूप तथा पराक्रमवाले दानव तुरंत उत्पन्न हो जाते थे। भगवान् शंकरने

असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसम्भवाः।
प्रभवन्त्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः॥ ३

स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः।
अभ्यगात्तरसा संख्ये हन्तुं देवीं सकालिकाम्॥ ४

स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरिसंस्थिताम्।
शक्त्या जघान दैत्येन्द्रस्तां वै कमललोचनाम्॥ ५

गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता।
अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम्॥ ६

रथाङ्गहतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्।
वज्राहतगिरेः शृङ्गान्निर्झरा इव गैरिकाः॥ ७

यत्र यत्र यदा भूमौ पतन्ति रक्तबिन्दवः।
समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः॥ ८

ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च।
रक्तबीजं क्रुधाविष्टा निःससार च शोणितम्॥ ९

ततस्तत्क्षतजाज्जाता रक्तबीजा ह्यनेकशः।
तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मदाः॥ १०

ब्रह्माणी ब्रह्मदण्डेन कुपिता ह्यहनद् भृशम्।
माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम्॥ ११

नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम्।
अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम्॥ १२

कौमारी च तथा शक्त्या वक्षस्येनमताडयत्।
सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्बिभेद निशितैश्च ताः॥ १३

उसे यह बड़ा ही अद्भुत वर दे दिया था कि तुम्हारे रक्तसे असंख्य महान् पराक्रमी दानव उत्पन्न हो जायँगे॥ २-३॥

उस वरदानके कारण अभिमानमें भरा हुआ वह दैत्य अत्यन्त कुपित होकर कालिकासमेत अम्बिकाको मारनेके लिये बड़े वेगसे रणभूमिमें पहुँचा॥ ४॥

गरुडपर विराजमान वैष्णवी शक्तिको देखकर उस दैत्येन्द्रने उन कमलनयनी देवीपर शक्ति (बर्छी)-से प्रहार कर दिया॥ ५॥

तब उस शक्तिशालिनी वैष्णवी शक्तिने अपनी गदासे उस प्रहारको विफल कर दिया और अपने चक्रसे महान् असुर रक्तबीजपर आघात किया॥ ६॥

उस चक्रके लगनेपर रक्तबीजके घायल शरीरसे रक्तकी विशाल धारा बह चली मानो वज्रप्रहारसे घायल पर्वतके शिखरसे गेरूकी धारा बह चली हो॥ ७॥

पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरती थीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों पुरुष उत्पन्न हो जाते थे॥ ८॥

तदनन्तर इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्रीने क्रोधमें भरकर उस महान् असुर रक्तबीजपर वज्रसे आघात किया, जिससे उसके शरीरसे और रक्त निकलने लगा॥ ९॥

तब उसके रक्तसे अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो गये, जो उसीके समान पराक्रमी तथा आकारवाले थे। वे सब-के-सब शस्त्रसम्पन्न तथा युद्धोन्मत्त थे॥ १०॥

ब्रह्माणीने कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे बहुत मारा और देवी माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे उस दानवको विदीर्ण कर दिया। देवी नारसिंहीने अपने नखोंके प्रहारोंसे उस महान् असुरको बींध डाला, देवी वाराहीने क्रुद्ध होकर उस अधम राक्षसको अपने तुण्डप्रहारसे चोट पहुँचायी और भगवती कौमारीने अपनी शक्तिसे उसके वक्षपर प्रहार किया॥ ११-१२½॥

तब वह दानव रक्तबीज भी क्रुद्ध होकर अलग-अलग उन सभी देवियोंको तीखे बाणोंकी घोर वर्षा तथा गदा और शक्तिके प्रहारोंसे चोट पहुँचाने लगा।

गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातृः सर्वाः पृथक्पृथक्।
शक्तयस्तं शराघातैर्विव्यधुस्तत्प्रकोपिताः॥ १४

तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चण्डिका स्वशरैः शितैः।
जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम्॥ १५

तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत्।
तस्मात्तत्सदृशाः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः॥ १६

रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः।
सन्नद्धैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम्॥ १७

प्रहरन्तश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः।
भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः शोककर्षिताः॥ १८

कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यन्ति सहस्रशः।
महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसम्भवाः॥ १९

एकैव चण्डिकात्रास्ति तथा काली च मातरः।
एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत्॥ २०

निशुम्भो वाथ शुम्भो वा सहसा बलसंवृतः।
आगमिष्यति संग्रामे ततोऽनर्थो महान्भवेत्॥ २१

व्यास उवाच

एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिन्तामापुर्महत्तराम्।
यदा तदाम्बिका प्राह कालीं कमललोचनाम्॥ २२

चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम्।
मच्छस्त्रपातसम्भूतं रुधिरं पिब सत्वरा॥ २३

भक्षयन्ती चर रणे दानवानद्य कामतः।
हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदासिमुसलैस्तथा॥ २४

तथा कुरु विशालाक्षि पानं तद्रुधिरस्य च।
बिन्दुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि साम्प्रतम्॥ २५

भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा॥ २६

उसके आघातसे कुपित होकर सभी देवियोंने बाणोंके प्रहारसे उसको बींध डाला। भगवती चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके शस्त्रोंको काट डाला और अत्यन्त कुपित होकर वे अन्य बाणोंसे उस दानवको मारने लगीं॥ १३—१५॥

अब उसके शरीरसे अत्यधिक रक्त निकलने लगा। उस रक्तसे उसी रक्तबीजके समान हजारों वीर उत्पन्न हो गये। इस प्रकार उस रुधिर-राशिसे उत्पन्न रक्तबीजोंसे सारा जगत् भर गया; वे सब कवच पहने हुए थे, आयुधोंसे सुसज्जित थे और अद्भुत युद्ध कर रहे थे॥ १६-१७॥

उन असंख्य रक्तबीजोंको प्रहार करते देखकर देवता भयभीत, आतंकित, विषादग्रस्त और शोकसंतप्त हो गये। [वे सोचने लगे] इस समय रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न ये हजारों विशालकाय और महापराक्रमी दानव किस प्रकार विनष्ट होंगे? यहाँ रणभूमिमें केवल भगवती चण्डिका हैं और उनके साथमें देवी काली तथा कुछ मातृकाएँ हैं; केवल इन्हीं देवियोंको मिलकर सभी दानवोंको जीतना है—यह तो महान् कष्ट है। इसी समय यदि अचानक शुम्भ अथवा निशुम्भ भी सेनाके साथ संग्राममें आ जायगा, तब तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा॥ १८—२१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार जब सभी देवता भयसे व्याकुल होकर अत्यधिक चिन्तित हो उठे, तब भगवती अम्बिकाने कमलसदृश नेत्रोंवाली कालीसे कहा—हे चामुण्डे! तुम शीघ्रतापूर्वक अपना मुख पूर्णरूपसे फैला लो और मेरे शस्त्राघातके द्वारा [रक्तबीजके शरीरसे] निकले रक्तको जल्दी-जल्दी पीती जाओ। तुम दानवोंका भक्षण करती हुई इच्छानुसार युद्धभूमिमें विचरण करो। मैं तीक्ष्ण बाणों, गदा, तलवार तथा मुसलोंसे इन दैत्योंको मार डालूँगी॥ २२—२४॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम इस प्रकारसे इस दैत्यके रुधिरका पान करो, जिससे कि अब एक भी बूँद रक्त भूमिपर न गिरने पाये; तब इस ढंगसे भक्षण किये जानेपर दूसरे दानव उत्पन्न नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार इन दैत्योंका नाश अवश्य हो जायगा, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ २५-२६॥

घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा।
पिबन्ती क्षतजं सर्वं यतमानारिसंक्षये॥ २७

इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम्।
इन्द्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम्॥ २८

व्यास उवाच

इत्युक्ताम्बिकया देवी चामुण्डा चण्डविक्रमा।
पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम्॥ २९

अम्बिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च।
चखाद देहशकलांश्चामुण्डा तान्कृशोदरी॥ ३०

सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुण्डां समघातयत्।
तथापि सा पपावाशु क्षतजं तमभक्षयत्॥ ३१

येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः।
तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गतशोणिताः॥ ३२

कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः।
सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनातिविखण्डितः॥ ३३

रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवा रणे।
पलायनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकम्पिताः॥ ३४

हाहेति विब्रुवन्तस्ते शुम्भं प्रोचुः सविह्वलाः।
रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः॥ ३५

राजन्नम्बिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः।
चामुण्डा तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम्॥ ३६

ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा।
सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे॥ ३७

वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम्।
चरितञ्च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम्॥ ३८

जब मैं इस दैत्यको मारूँ, तब तुम शत्रुसंहाररूपी इस कार्यमें प्रयत्नशील होकर सारा रक्त पीती हुई शीघ्रतापूर्वक इसका भक्षण कर जाना। इस प्रकार दैत्यवध करके स्वर्गका सारा राज्य इन्द्रको देकर हम सब आनन्दपूर्वक यहाँसे चली जायँगी॥ २७-२८॥

व्यासजी बोले—भगवती अम्बिकाके ऐसा कहनेपर प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे निकले हुए समस्त रुधिरको पीने लगीं। जगदम्बा खड्ग तथा मुसलसे उस दैत्यको मारने लगीं और कृशोदरी चामुण्डा उसके शरीरके कटे हुए अंगोंका भक्षण करने लगीं॥ २९-३०॥

अब वह रक्तबीज भी कुपित होकर गदाके प्रहारोंसे चामुण्डाको घायल करने लगा, फिर भी वे शीघ्रतापूर्वक उसका रुधिर पीती रहीं और उसका भक्षण करती रहीं॥ ३१॥

उस दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुए अन्य जो भी महाबली और क्रूर रक्तबीज थे, उन्हें भी चामुण्डाने मार डाला। वे देवी उनका भी रक्त पी गयीं और उन सबको खा गयीं॥ ३२॥

इस प्रकार भगवतीने जब सभी कृत्रिम रक्तबीजोंका भक्षण कर लिया, तब जो वास्तविक रक्तबीज था, उसे भी मारकर उन्होंने खड्गसे उसके अनेक टुकड़े करके भूमिपर गिरा दिया॥ ३३॥

तत्पश्चात् भयंकर रक्तबीजका वध हो जानेपर जो अन्य दानव रणभूमिमें थे, वे भयसे काँपते हुए भाग करके शुम्भके पास पहुँचे। उनका चित्त बहुत व्याकुल था, उनका शरीर रुधिरसे लथपथ था, वे शस्त्रविहीन हो गये थे और अचेत-से हो गये थे। वे हाय, हाय—ऐसा पुकारते हुए शुम्भसे कहने लगे—हे राजन्! अम्बिकाने उस रक्तबीजको मार डाला और चामुण्डा उसकी देहसे निकला सारा रुधिर पी गयी। जो अन्य दानववीर थे, उन सबको देवीके वाहन सिंहने बड़ी तेजीसे मार डाला और शेष दानवोंको भगवती काली खा गयीं॥ ३४—३७॥

हे राजन्! हमलोग आपको युद्धका वृत्तान्त तथा संग्राममें देवीके द्वारा प्रदर्शित किये गये उनके अत्यन्त अद्भुत चरित्रको बतानेके लिये आपके पास आये हुए हैं॥ ३८॥

अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः।
गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः॥ ३९

अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखा भृशम्।
युध्यमाना महाराज वाहनैरायुधैर्युताः॥ ४०

ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः।
रक्तबीजोऽपि राजेन्द्र तरसा विनिपातितः॥ ४१

एकापि दुःसहा देवी किं पुनस्ताभिरन्विता।
सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः॥ ४२

अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम्।
न वैरमनया युक्तं सन्धिरेव सुखप्रदः॥ ४३

आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हन्ति राक्षसान्।
रक्तबीजोऽपि निहतः पीतं तस्यापि शोणितम्॥ ४४

अन्ये निपातिता दैत्याः संग्रामेऽम्बिकया नृप।
चामुण्डया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे॥ ४५

वरं पातालगमनं तस्याः सेवाथवा वरा।
न तु युद्धं महाराज कार्यमम्बिकया सह॥ ४६

न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी।
मायेयं प्रबला देवी क्षपयन्तीयमुत्थिता॥ ४७

व्यास उवाच

इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः।
मुमूर्षुः प्रत्युवाचेदं शुम्भः प्रस्फुरिताधरः॥ ४८

शुम्भ उवाच

यूयं गच्छत पातालं शरणं वा भयातुराः।
हनिष्याम्यहमद्यैव ताञ्च ताश्च समुद्यतः॥ ४९

हे महाराज! यह देवी दैत्य, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, पन्नग, उरग और राक्षस—इन सभीसे सर्वथा अजेय है॥ ३९॥

हे महाराज! इन्द्राणी आदि अन्य प्रमुख देवियाँ भी वहाँ आयी हुई हैं। वे अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर नानाविध आयुध धारण करके घोर युद्ध कर रही हैं। हे राजेन्द्र! उन देवियोंने अपने उत्तम अस्त्रोंसे दानवोंकी सारी सेनाका विध्वंस कर डाला और रक्तबीजको भी बड़ी शीघ्रतासे मार गिराया॥ ४०-४१॥

एकमात्र देवी अम्बिका ही हमलोगोंके लिये असह्य थी, और फिर जब वह उन देवियोंके साथ हो गयी है तब कहना ही क्या? असीम तेजवाला उसका वाहन सिंह भी संग्राममें राक्षसोंका वध कर रहा है॥ ४२॥

अतएव मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करके जो उचित हो, वह कीजिये। इसके साथ शत्रुता उचित नहीं है, अपितु सन्धि कर लेना ही सुखदायक होगा॥ ४३॥

यह आश्चर्य है कि एक स्त्री राक्षसोंका संहार कर रही है! रक्तबीज भी मार डाला गया! देवी चामुण्डा उसका सारा रक्त भी पी गयी! हे नृप! अम्बिकाने संग्राममें अन्य दैत्योंको मार डाला और देवी चामुण्डा उनका सम्पूर्ण मांस खा गयी॥ ४४-४५॥

हे महाराज! अब हमलोगोंके लिये या तो पाताल चला जाना श्रेयस्कर है अथवा उसकी दासता स्वीकार कर लेना; किंतु उस अम्बिकाके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। यह साधारण स्त्री नहीं है, यह देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली है और यह मायारूपिणी शक्तिसम्पन्न देवीके रूपमें दैत्योंका नाश करनेके लिये प्रकट हुई है॥ ४६-४७॥

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी यह यथार्थ बात सुनकर कालसे मोहित तथा मरनेके लिये उद्यत वह काँपते हुए ओठोंवाला शुम्भ उनसे कहने लगा॥ ४८॥

शुम्भ बोला—तुमलोग भयभीत होकर पाताल चले जाओ अथवा उसकी शरणमें चले जाओ, किंतु मैं तो युद्धमें पूर्णरूपसे तत्पर रहते हुए उस अम्बिका तथा उन देवियोंको आज ही मार डालूँगा॥ ४९॥

जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम्।
कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम्॥ ५०

निहत्य पार्षदान्सर्वान् रक्तबीजमुखान् रणे।
प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः॥ ५१

मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम्।
तद्भयं जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः॥ ५२

निशुम्भाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे।
हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा॥ ५३

त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे।
तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये॥ ५४

निशुम्भ उवाच

अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टाञ्च कालिकाम्।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्॥ ५५

मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र वराकायास्तु कारणे।
क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशङ्करम्॥ ५६

त्यक्त्वार्तिं विपुलां भ्रातर्भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्।
आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम्॥ ५७

मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे।
गत्वाहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम्॥ ५८

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः।
रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः॥ ५९

रणभूमिमें सभी देवताओंको जीतकर तथा विशाल राज्यका भोग करके भला एक स्त्रीके भयसे व्याकुल होकर मैं पाताल क्यों चला जाऊँ? रक्तबीज आदि प्रमुख पार्षदोंको रणमें मरवाकर और अपनी विशद कीर्तिका नाश करके प्राणरक्षाके लिये मैं पाताल क्यों चला जाऊँ?॥ ५०-५१॥

कालके द्वारा निर्धारित प्राणियोंकी मृत्यु तो अनिवार्य है। जन्मके साथ ही मृत्युका भय प्राणीके साथ लग जाता है। तब भला कौन (बुद्धिमान्) व्यक्ति दुर्लभ यशका त्याग कर सकता है?॥ ५२॥

हे निशुम्भ! मैं रथपर सवार होकर युद्धभूमिमें जाऊँगा और उसे मारकर ही वापस आऊँगा और यदि मैं उसे मार न सका तो फिर वापस नहीं लौटूँगा॥ ५३॥

हे वीर! तुम भी सेना साथमें लेकर चलो और युद्धमें मेरे सहायक बनो। वहाँ अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर तुम उस स्त्रीको शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दो॥ ५४॥

निशुम्भ बोला—मैं अभी युद्धक्षेत्रमें जाकर दुष्ट कालिकाको मार डालूँगा और उस अम्बिकाको लेकर शीघ्र ही आपके पास आ जाऊँगा॥ ५५॥

हे राजेन्द्र! आप उस बेचारीके विषयमें चिन्ता मत कीजिये। कहाँ यह एक साधारण स्त्री और कहाँ पूरे विश्वको अपने वशमें कर लेनेवाला मेरा बाहुबल! हे भाई! आप इस भारी चिन्ताको छोड़कर सर्वोत्तम सुखोंका उपभोग कीजिये। मैं आदरकी पात्र उस मानिनीको अवश्य ही ले आऊँगा॥ ५६-५७॥

हे राजन्! मेरे रहते युद्धक्षेत्रमें आपका जाना उचित नहीं है। आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं वहाँ जाकर विजयश्री अवश्य ही प्राप्त करूँगा॥ ५८॥

व्यासजी बोले—बड़े भाई शुम्भसे ऐसा कहकर अपने बलपर अभिमान रखनेवाले छोटे भाई निशुम्भने कवच धारण कर लिया और अपनी सेना साथमें लेकर एक विशाल रथपर आरूढ़ हो स्वयं अनेकविध

जगाम तरसा तूर्णं सङ्गरे कृतमङ्गलः।
संस्तुतो बन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः॥ ६०

आयुध लेकर वह पूरी तैयारीके साथ तुरंत बड़ी तेजीसे युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उस समय मंगलाचार किया जा रहा था और बन्दीजन तथा चारण उसका यशोगान कर रहे थे॥ ५९-६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देव्या सह युद्धकरणाय निशुम्भप्रयाणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

देवीद्वारा निशुम्भका वध

व्यास उवाच

निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा।
सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ॥ १

तमाजगाम शुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः।
प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा संग्रामरसपण्डितः॥ २

गगने संस्थिता देवास्तदाभ्रपटलावृताः।
दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रा यक्षगणास्तथा॥ ३

निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम्।
चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम्॥ ४

मुञ्चन्तं शरजालानि निशुम्भं चण्डिका रणे।
वीक्ष्यादाय धनुः श्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः॥ ५

उवाच कालिकां देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः।
मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना॥ ६

दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा।
जयाशां कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया॥ ७

आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित्।
भग्नं हतबलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम्॥ ८

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वह पराक्रमी निशुम्भ अब मृत्यु अथवा विजयका निश्चय करके पूरी तैयारीके साथ सेनासहित समरभूमिमें उपस्थित हो गया॥ १॥

अपनी सेना साथमें लेकर शुम्भ भी उस निशुम्भके पास आ गया और युद्धकलाका पूर्ण ज्ञान रखनेवाला वह दैत्यराज शुम्भ रणमें दर्शक बनकर युद्धका अवलोकन करने लगा॥ २॥

इन्द्रसहित समस्त देवता तथा यक्षगण संग्राम देखनेकी इच्छासे आकाशमण्डलमें मेघपटलोंमें छिपकर विराजमान हो गये॥ ३॥

निशुम्भ रणभूमिमें पहुँचकर सींगका बना हुआ धनुष लेकर भगवती जगदम्बाको भयभीत करता हुआ उनके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा॥ ४॥

युद्धभूमिमें निशुम्भको बाण-समूह छोड़ते हुए देखकर भगवती चण्डिका अपना उत्कृष्ट धनुष धारण करके उच्च स्वरमें बार-बार हँसने लगीं। देवी चण्डिकाने कालीसे कहा—हे काली! इन दोनोंकी मूर्खता तो देखो, ये दोनों इस समय यहाँ मेरे पास मरनेके लिये ही आये हुए हैं॥ ५-६॥

दैत्योंका भीषण संहार तथा रक्तबीजकी मृत्यु देखकर भी मेरी मायासे विमोहित हुए ये दोनों दैत्य विजयकी आशा कर रहे हैं॥ ७॥

यह आशा बड़ी बलवती होती है; यह प्राणियोंको कभी नहीं छोड़ती है। यहाँतक कि अंगहीन, बलहीन, नष्टप्राय, असहाय तथा अचेत प्राणी भी आशाके प्रभावसे छूट नहीं पाता है॥ ८॥

आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धाय समुपागतौ।
निहन्तव्यौ मया कालि रणे शुम्भनिशुम्भकौ॥ ९

आसन्नमरणावेतौ सम्प्राप्तौ दैवमोहितौ।
पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ॥ १०

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कालिकां चण्डी कर्णाकृष्टशरोत्करैः।
छादयामास तरसा निशुम्भं पुरतः स्थितम्॥ ११

दानवोऽपि शरांस्तस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः।
तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम्॥ १२

केसरी केशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम्।
गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा॥ १३

नखैर्दन्तप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान्।
चखाद च विशीर्णाङ्गान् गजानिव मदोत्कटान्॥ १४

एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः॥ १५

अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवीं हन्तुमुपाययुः।
सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः॥ १६

तत्राजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः।
निहत्य कालिकां कोपाद् ग्रहीतुं जगदम्बिकाम्॥ १७

तत्रागत्य ददर्शाजावम्बिकाञ्च पुरःस्थिताम्।
रौद्ररसयुतां कान्तां श्रृङ्गाररससंयुताम्॥ १८

हे कालि! इस प्रकार आशा-पाशमें बँधे हुए ये दोनों शुम्भ-निशुम्भ युद्धके लिये समरभूमिमें आये हुए हैं, अब मुझे इन दोनोंका वध कर देना चाहिये॥ ९॥

आसन्न मृत्युवाले ये दोनों दैत्य प्रारब्धकी प्रेरणासे यहाँ आये हुए हैं। सभी देवताओंके समक्ष आज ही मैं इन्हें मार डालूँगी॥ १०॥

व्यासजी बोले—भगवती चण्डिकाने कालिकासे ऐसा कहकर कानोंतक खींचकर छोड़े गये बाण-समूहोंसे अपने समक्ष खड़े निशुम्भको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया॥ ११॥

दैत्य निशुम्भने भी उन चण्डिकाके बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट डाला। इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ १२॥

देवीका सिंह भी अपने गर्दनके बालोंको झाड़ता हुआ दैत्योंके सेनारूपी समुद्रको उसी प्रकार मथने लगा, जैसे कोई बलवान् हाथी तालाबको मथ रहा हो॥ १३॥

जिस प्रकार कोई सिंह मतवाले हाथियोंके अंग-प्रत्यंग चीरकर खा डालता है, उसी प्रकार भगवतीका वह सिंह अपने समक्ष स्थित दानवोंको अपने नखों तथा दाँतोंके प्रहारसे फाड़कर खाने लगा॥ १४॥

भगवतीके उस सिंहद्वारा दानवी सेनाका इस प्रकार संहार होते देखकर निशुम्भ अपना श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर सिंहके पीछे दौड़ा॥ १५॥

उसी समय कोपके कारण लाल नेत्रोंवाले अन्य बहुत-से प्रधान दानव भी दाँतोंसे अपनी जीभ चबाते हुए भगवतीको मारनेके लिये उनपर टूट पड़े॥ १६॥

उसी अवसरपर कुपित होकर शुम्भ भी कालिकापर प्रहार करके भगवती अम्बिकाको पकड़नेके लिये अपनी सेनाके साथ बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचा॥ १७॥

वहाँ आकर उसने जगदम्बिकाको युद्धभूमिमें अपने सामने खड़ी देखा; जो परम सुन्दरी, शृंगाररससे परिपूर्ण तथा रौद्ररससे भरी हुई थीं॥ १८॥

तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं त्रैलोक्यवरसुन्दरीम्।
सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा॥ १९

विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा।
मरणे निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः॥ २०

तं तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदं वचः।
बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके॥ २१

गच्छध्वं पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम्।
जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वात्रैवायुधानि च॥ २२

अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे।
प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडन्तु विगतज्वराः॥ २३

कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा।
ददाम्यभयदानं वै यान्तु सर्वे यथासुखम्॥ २४

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या निशुम्भो मदगर्वितः।
निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचन्द्रकम्॥ २५

धावमानस्तु तरसासिना सिंहं मदोत्कटम्।
जघानातिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदम्बिकाम्॥ २६

ततो देवी स्वगदया वञ्चयित्वासिपातनम्।
ताडयामास तं बाहोर्मूले परशुना तदा॥ २७

खड्गेन निहतः सोऽपि बाहुमूले महामदः।
संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चण्डिकां तदा॥ २८

सापि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम्।
पपौ पुनः पुनः पानं निशुम्भं हन्तुमिच्छती॥ २९

एवं परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम्।
देवानां दानवानाञ्च परस्परजयैषिणाम्॥ ३०

[स्वभावतः] लाल नेत्रोंवाली, किंतु उस समय कोपके कारण अतिरक्त नयनोंवाली, तीनों लोकोंमें परम सुन्दरी तथा विशाल नेत्रप्रान्तोंवाली उन मनोहर भगवतीको देखकर विजयकी आशा तथा विवाहकी अभिलाषाका दूरसे ही परित्याग करके वह दानव अब अपने मरणका निश्चय-कर हाथमें धनुष लिये हुए खड़ा ही रह गया॥ १९-२०॥

तब भगवतीने युद्धस्थलमें उपस्थित उन सभी दानवोंको सुनाते हुए मुसकराकर उस दैत्यसे यह वचन कहा—हे नीच दानवो! यदि तुम सब जीवित रहनेकी इच्छा रखते हो तो अपने आयुध यहीं छोड़कर पाताललोक या समुद्रमें चले जाओ अथवा तुमलोग समरांगणमें मेरे बाणोंके प्रहारसे निष्प्राण होकर स्वर्गमें सुख प्राप्तकर वहाँ निर्भय होकर विहार करो। कायरता तथा पराक्रम दोनोंका एक साथ रह पाना सम्भव नहीं है। मैं तुम सबको अभयदान देती हूँ; तुम सब सुखपूर्वक चले जाओ॥ २१—२४॥

व्यासजी बोले—उन भगवतीका वचन सुनकर मदोन्मत्त निशुम्भ तीक्ष्ण खड्ग तथा अष्टचन्द्र नामक ढाल लेकर बड़े वेगसे दौड़ा और उसने बलपूर्वक अपने खड्गसे मतवाले सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तलवार घुमाकर जगदम्बापर भी प्रहार किया॥ २५-२६॥

तब भगवतीने अपनी गदासे उसके तलवारके प्रहारको रोककर अपने परशुसे उसके बाहुमूल (कन्धे)-पर आघात किया॥ २७॥

अपने कन्धेपर खड्गसे प्रहार होनेपर भी उस महाभिमानी अहंकारी निशुम्भने उस आघातकी वेदना सहकर भगवती चण्डिकापर पुनः प्रहार किया॥ २८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने भी प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली भीषण घंटाध्वनि की और निशुम्भको मारनेकी इच्छा प्रकट करती हुई उन्होंने बार-बार मधुपान किया॥ २९॥

इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेकी प्रबल इच्छावाले देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ३०॥

पलादाः पक्षिणः क्रूराः सारमेयाश्च जम्बुकाः।
ननृतुश्चातिसन्तुष्टा गृध्राः कङ्काश्च वायसाः॥ ३१

रणभूर्भाति भूयिष्ठपतितासुरवर्ष्मकैः।
रुधिरस्त्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥ ३२

पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः।
प्रययौ चण्डिकां तूर्णं गदामादाय दारुणाम्॥ ३३

सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः।
प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत्॥ ३४

सापि तं कुपितातीव निशुम्भं पुरतः स्थितम्।
प्रहरन्तं समीक्ष्याथ देवी वचनमब्रवीत्॥ ३५

देव्युवाच

तिष्ठ मन्दमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव।
ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद् गन्तासि यमसादनम्॥ ३६

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तरसा देवी कृपाणेन समाहिता।
चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुम्भस्याथ चण्डिका॥ ३७

सच्छिन्नमस्तको देव्या कबन्धोऽतीव दारुणः।
बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान्॥ ३८

देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ।
पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः॥ ३९

तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे।
हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकम्पिते॥ ४०

त्यक्त्वायुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाप्लुताः।
जग्मुर्बुम्बारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम्॥ ४१

तानागतान्सुसम्प्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः।
पप्रच्छ क्व निशुम्भोऽसौ कथं भग्नाः पलायिताः॥ ४२

मांसाहारी क्रूर पक्षी, कुत्ते, सियार, गीध, कंक तथा कौए अति प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे॥ ३१॥

उस समय बहुत-से गिरे हुए दैत्योंके रक्त बहते हुए शरीरोंसे तथा हाथियों और घोड़ोंके देहसे पटी हुई वह रणभूमि अत्यधिक [भयानक] प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

[भूमिपर] गिरे हुए दानवोंको देखकर निशुम्भ अत्यन्त कुपित हो उठा और एक भयंकर गदा लेकर शीघ्रतापूर्वक भगवतीके समक्ष पहुँच गया॥ ३३॥

अभिमानमें चूर उस निशुम्भने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने मुसकराकर पुनः देवीपर प्रहार करके उन्हें चोट पहुँचायी॥ ३४॥

इससे वे भगवती भी अत्यन्त कुपित हो गयीं और समक्ष स्थित होकर प्रहार कर रहे उस निशुम्भको देखकर कहने लगीं—॥ ३५॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! मैं तलवार चला रही हूँ। तुम तबतकके लिये ठहर जाओ, जबतक मेरी यह तलवार तुम्हारी गर्दनतक नहीं पहुँच जाती। इसके बाद तुम यमपुरी निश्चय ही पहुँच जाओगे॥ ३६॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती चण्डिकाने एकाग्रचित्त होकर बड़ी शीघ्रतासे अपने कृपाणसे उस निशुम्भका मस्तक काट दिया॥ ३७॥

इस प्रकार भगवतीके द्वारा सिर कटा हुआ अत्यन्त विकराल वह धड़ हाथमें गदा धारण किये देवगणोंको भयभीत करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा॥ ३८॥

तत्पश्चात् भगवतीने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके दोनों हाथ तथा पैर भी काट दिये। इसके बाद पर्वतके समान शरीरवाला वह पापी दैत्य प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़ा॥ ३९॥

प्रचण्ड पराक्रमवाले उस निशुम्भ दैत्यके गिर जानेपर भयसे कम्पित दानवसेनामें महान् हाहाकार मच गया। रक्तसे लथपथ समस्त दानवसैनिक अपने-अपने सभी आयुध फेंककर चीख-पुकार करते हुए राजभवनकी ओर भाग गये॥ ४०-४१॥

शत्रुओंके संहारकी शक्ति रखनेवाले शुम्भने वहाँ आये हुए उन सैनिकोंको देखकर उनसे पूछा—निशुम्भ कहाँ है और घायल होकर तुम सब युद्धभूमिसे भाग क्यों आये?॥ ४२॥

तच्छुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम्।
राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि॥ ४३

तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः।
वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तान्तं समुपागताः॥ ४४

निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाधुना।
न हि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन् रणाङ्गणे॥ ४५

देवकार्यं समुद्दिश्य कापीयं परमाङ्गना।
हन्तुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिन्तय॥ ४६

नैषा प्राकृतयोषैव देवी शक्तिरनुत्तमा।
अचिन्त्यचरिता क्वापि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि॥ ४७

नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा।
विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा॥ ४८

गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा।
अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता॥ ४९

अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवन्त्यकुतोभयाः।
देवकार्यञ्च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम्॥ ५०

पलायनं परो धर्मः सर्वथा देहरक्षणम्।
रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्मत्सुखताङ्गते॥ ५१

संग्रामे विजयो राजन् भविता ते न संशयः।
कालः करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित्॥ ५२

दानवराज शुम्भका वह वचन सुनकर उन सैनिकोंने अति विनम्रतापूर्वक कहा—हे राजन्! आपके भाई निशुम्भ मृत होकर रणभूमिमें सोये पड़े हैं॥ ४३॥

उस स्त्रीने आपके अनुज (निशुम्भ)-के जो भी अनुचर दानववीर थे, उन्हें मार डाला। यही सब समाचार आपको बतानेके लिये हम यहाँ आये हुए हैं॥ ४४॥

उस चण्डिकाने इसी समय युद्धभूमिमें निशुम्भका संहार किया है। अतएव हे राजन्! उसके साथ समरभूमिमें आपके लिये आज युद्ध करनेका [उचित] अवसर नहीं है॥ ४५॥

आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे दानवकुलका संहार करनेके लिये यह कोई अद्भुत देवी प्रकट हुई है॥ ४६॥

यह सामान्य नारी नहीं है, अपितु देवीरूपिणी कोई अत्युत्तम शक्ति है। अद्भुत चरित्रोंवाली ये देवी देवताओंके भी ज्ञानसे परे हैं॥ ४७॥

ये कल्याणी भगवती अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ हैं, मायाके मूल तत्त्वका पूर्ण ज्ञान रखनेवाली हैं और अद्भुत भूषण तथा समस्त प्रकारके आयुध धारण करनेवाली हैं॥ ४८॥

गूढ़ चरित्रोंवाली इन देवीको जान पाना अत्यन्त कठिन है। ये दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत होती हैं। असीमके भी पार जा सकनेमें समर्थ ये पूर्णतामयी देवी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं॥ ४९॥

समस्त देवतागण अन्तरिक्षमें स्थित होकर देवकार्य सिद्ध करनेवाली परम अद्भुतस्वरूपिणी उन देवीका निर्भीकतापूर्वक स्तवन कर रहे हैं॥ ५०॥

यदि आप शरीरकी रक्षा करना चाहते हैं तो इस समय पलायन ही परम धर्म है। इस शरीरकी रक्षा हो जानेके बाद पुनः आनन्ददायक अनुकूल समय आनेपर संग्राममें आपकी विजय होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे राजन्! कभी-कभी काल बलवान्‌को भी बलहीन बना देता है और पुनः समय आनेपर उसे बलशाली बनाकर विजयकी प्राप्ति

तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि।
दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित्॥ ५३

भिक्षुकं धनदातारं करोति समयान्तरे।
विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः॥ ५४

इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम्।
तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना॥ ५५

सम्मुखो देवतानाञ्च दैत्यानां नाशहेतुकः।
एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते॥ ५६

नानारूपधराप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम्।
कदाचित्सम्भवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा॥ ५७

उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथापरः।
प्रत्यक्षं ते महाराज देवाः सर्वे सवासवाः॥ ५८

करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च।
तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोऽबलयासुराः॥ ५९

निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम्।
नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः॥ ६०

यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च।
कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः॥ ६१

त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः।
तथा विष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः॥ ६२

तथा त्वमपि राजेन्द्र वीक्ष्य कालवशं जगत्।
पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि॥ ६३

करा देता है। कभी-कभी काल विषम परिस्थितिमें दाताको भिखारी बना देता है और पुनः कुछ समय बीतनेपर उसी भिखारीको धन देनेवाला बना देता है॥ ५१—५३½॥

विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता निश्चितरूपसे सदा कालके वशवर्ती हैं। यह काल स्वयं ही सबका स्वामी है। हे राजन्! अभी काल आपके लिये विपरीत है, अतएव आप समयकी प्रतीक्षा कीजिये॥ ५४-५५॥

हे पृथ्वीपते! इस समय काल देवताओंके लिये अनुकूल तथा दैत्योंके लिये विनाशकारी है। कालकी गति सर्वथा एक ही तरहकी नहीं बनी रहती है। यह काल-गति नानाविध रूप भी धारण करती है। अतः कालकी चेष्टापर विचार करते रहना चाहिये। कभी प्राणियोंका जन्म होता है और कभी उनका मरण उपस्थित हो जाता है। एक काल उत्पत्तिका हेतु होता है तो दूसरा काल विनाशका हेतु बन जाता है॥ ५६-५७½॥

हे महाराज! आपके समक्ष इसका प्रमाण विद्यमान है कि पहले इन्द्र आदि सभी देवता आपके लिये अनुकूल समय रहनेपर आपके करदाता बन गये थे, किंतु आज उसी कालके विपरीत हो जानेके कारण एक अबलाने बलशाली असुरोंका संहार कर डाला। यही काल हित भी करता है तथा अहित भी करता है। इस पराजयमें न तो काली कारण हैं और न तो सनातन देवता ही कारण हैं॥ ५८—६०॥

हे राजन्! आपको जैसा उचित जान पड़े भलीभाँति सोच-समझकर आप वैसा ही कीजिये। हमारी समझमें तो यह काल अभी आपके तथा अन्य दानवोंके लिये भी अनुकूल नहीं है॥ ६१॥

किसी समय संग्राममें घायल होकर तथा अपने आयुध छोड़कर इन्द्र आपके सामनेसे भाग गये थे। ऐसे ही विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवता भी आपके समक्ष टिक नहीं पाये थे। अतः हे राजेन्द्र! इस समस्त जगत्को कालके अधीन मानकर आप भी तत्काल पाताललोक चले जाइये; जीवन बचा रहा तो आप कल्याण अवश्य प्राप्त करेंगे॥ ६२-६३॥

मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः।
मङ्गलानि प्रगायन्तो विचरिष्यन्ति सर्वतः॥ ६४

हे महाराज! यदि कहीं आपका निधन हो गया तो आपके शत्रु प्रसन्नतापूर्वक मंगलगान करते हुए निर्भय होकर सर्वत्र विचरण करेंगे॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे युद्धात्प्रत्यागतानां रक्षसां शुम्भाय वार्तावर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शुम्भका रणभूमिमें आना और देवीसे वार्तालाप करना, भगवती कालिकाद्वारा उसका वध, देवीके इस उत्तम चरित्रके पठन और श्रवणका फल

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भो दैत्यपतिस्तथा।
उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः॥ १

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे आकुलित नेत्रोंवाले दानवराज शुम्भने उनसे तुरन्त कहा॥ १॥

शुम्भ उवाच

जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे।
निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम्॥ २

शुम्भ बोला—हे मूर्खो! तुम सब खोटी बात क्यों बोल रहे हो? तुम्हारे वचनोंको मानकर मैं भला अपने जीवनकी रक्षा क्यों करूँ? क्या अपने सचिवों तथा भाई-बन्धुओंका वध कराकर मैं निर्लज्ज बनकर विचरण करूँ?॥ २॥

कालः कर्ता शुभानां वाशुभानां बलवत्तरः।
का चिन्ता मम दुर्वारे तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके॥ ३

प्राणियोंके शुभ अथवा अशुभका कर्ता जब एकमात्र वही अति बलवान् काल है तो मुझे चिन्ता क्या? क्योंकि परोक्षरूपसे सबपर शासन करनेवाला वह काल टाला नहीं जा सकता॥ ३॥

यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत्।
न मे चिन्तास्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा॥ ४

जो हो रहा है, वह होता रहे तथा काल जो कुछ भी कर रहा है, उसे करता रहे; अब तो मुझे जीवन तथा मृत्युके विषयमें किसी भी प्रकारकी चिन्ता नहीं है॥ ४॥

स कालोऽप्यन्यथाकर्तुं भावितो नेशते क्वचित्।
न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वथा॥ ५

कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने।
अकाले वर्षतीवाशु तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम्॥ ६

वह काल भी भवितव्यताको मिटा सकनेमें समर्थ नहीं है। ऐसा भी होता है कि सावनके महीनेमें मेघ सदा नहीं बरसते; अपितु कभी-कभी अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुनमें असमय ही तेज वृष्टि होने लगती है। अतएव [समस्त कार्योंमें] काल ही प्रधान नहीं है॥ ५-६॥

कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम्।
दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः॥ ७

काल तो निमित्तमात्र है, अपितु [इसकी तुलनामें] दैव अधिक बलवान् है। सब कुछ दैवनिर्मित है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ ७॥

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
जेता यः सर्वदेवानां निशुम्भोऽप्यनया हतः॥ ८

मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ। अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि जिस निशुम्भने सभी देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, उसे इस स्त्रीने मार डाला॥ ८॥

रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा।
तदाहं कीर्तिमुत्सृज्य जीविताशां करोमि किम्॥ ९

प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसम्मिते।
निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयं प्रभुः॥ १०

चतुर्युगसहस्त्रं तु ब्रह्मणो दिवसे किल।
पतन्ति भवनात्पञ्च नव चेन्द्रास्तथा पुनः॥ ११

तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोपकल्पते।
तथैव द्विगुणे काले शङ्करः शान्तिमेति च॥ १२

का चिन्ता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते।
मही महीधराणाञ्च नाशः सूर्यशशाङ्कयोः॥ १३

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम्॥ १४

रथो मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे।
जयो वा मरणं वापि भवत्वद्यैव दैवतः॥ १५

इत्युक्त्वा सैनिकाञ्छुम्भो रथमास्थाय सत्वरः।
प्रययावम्बिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले॥ १६

सैन्यं प्रचलितं तस्य सङ्गे तत्र चतुर्विधम्।
हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतं सायुधं बहु॥ १७

तत्र गत्वाचले शुम्भः संस्थितां जगदम्बिकाम्।
त्रैलोक्यमोहिनीं कान्तामपश्यत्सिंहवाहिनीम्॥ १८

सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्वलक्षणसंवृताम्।
स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गन्धर्वयक्षकिन्नरैः॥ १९

पुष्पैश्च पूज्यमानाञ्च मन्दारपादपोद्भवैः।
कुर्वाणां शङ्खनिनदं घण्टानादं मनोहरम्॥ २०

जब महान् शूरवीर रक्तबीज भी विनाशको प्राप्त हो गया, तब अपनी कीर्तिको कलंकित करके मैं ही जीवनकी आशा क्यों करूँ?॥ ९॥

जगत्के रचयिता सर्वसमर्थ स्वयं ब्रह्मा भी दो परार्धका समय बीत जानेपर तत्क्षण ही निधनको प्राप्त हो जाते हैं॥ १०॥

ब्रह्माजीके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग समाप्त हो जाते हैं और इतनी ही अवधिमें चौदह इन्द्रोंका स्वर्गसे पतन हो चुकता है॥ ११॥

इसी प्रकार [ब्रह्माजीके जीवनकालका] दुगुना समय बीतनेपर विष्णुका अन्त हो जाता है तथा इससे भी दूने समयके पश्चात् शंकर भी समाप्त हो जाते हैं॥ १२॥

इसी प्रकार पृथ्वी, पर्वत, सूर्य तथा चन्द्रमा आदिका भी विनाश हो जाता है, तब हे मूर्खो! दैवकी बनायी हुई इस अटल मृत्युके विषयमें क्या चिन्ता है?॥ १३॥

जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है तथा मरनेवालेका जन्म निश्चित है। अतः इस अनित्य शरीरके द्वारा अपनी स्थिर कीर्तिकी रक्षा करनी चाहिये॥ १४॥

शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ तैयार करो। मैं समरांगणमें जाऊँगा। विजय अथवा मरण प्रारब्धानुसार जो भी होनेवाला हो, वह आज ही हो जाय॥ १५॥

सैनिकोंसे ऐसा कहकर वह शुम्भ तुरंत रथपर सवार होकर हिमालयकी ओर चल दिया, जहाँ भगवती विराजमान थीं॥ १६॥

उस समय हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल चलनेवालोंसे सुसज्जित एवं नानाविध आयुधोंसे युक्त विशाल चतुरंगिणी सेना भी उसके साथ चल पड़ी॥ १७॥

उस पर्वतपर पहुँचकर शुम्भने त्रिभुवनको मोहित करनेवाली परम सुन्दरी सिंहवाहिनी भगवती जगदम्बिकाको वहाँ विराजमान देखा। वे सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं; देवता, यक्ष तथा किन्नर आकाशमें स्थित होकर उनकी स्तुति कर रहे थे तथा मन्दारवृक्षके पुष्पोंसे पूजा कर रहे थे और वे मनोहर शंखध्वनि तथा घंटानाद कर रही थीं॥ १८—२०॥

दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुम्भः कामविमोहितः।
पञ्चबाणाहतः कामं मनसा समचिन्तयत्॥ २१

अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम्।
सौकुमार्यञ्च धैर्यञ्च परस्परविरोधि यत्॥ २२

सुकुमारातितन्वङ्गी सद्यः प्रकटयौवना।
चित्रमेतदसौ बाला कामभावविवर्जिता॥ २३

कामकान्तासमा रूपे सर्वलक्षणलक्षिता।
अम्बिकेयं किमेतत्तु हन्ति सर्वान्महाबलान्॥ २४

उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत्।
न मन्त्रा वा मरालाक्षीसाधने सन्निधौ मम॥ २५

सर्वमन्त्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता।
सुन्दरीयं कथं मे स्याद्वशगा वरवर्णिनी॥ २६

पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समराङ्गणात्।
सामदानविभेदैश्च नेयं साध्या महाबला॥ २७

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं विषमे समुपस्थिते।
मरणं नोत्तमं चात्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत्॥ २८

मरणमृषिभिः प्रोक्तं सङ्गरे मङ्गलास्पदम्।
यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल॥ २९

प्राप्तेयं दैवरचिता नारी नरशतोत्तमा।
नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथातिबलाबला॥ ३०

वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि साम्प्रतम्।
हननायागता ह्येषा किं नु साम्ना प्रसीदति॥ ३१

उन्हें देखकर शुम्भ मोहित हो गया। कामबाणसे आहत वह शुम्भ कामासक्त होकर मन-ही-मन सोचने लगा—॥ २१॥

अहो, इसका ऐसा आकर्षक रूप तथा ऐसा अद्भुत चातुर्य है। सुकुमारता तथा धीरता—ये दोनों परस्पर विरोधीभाव इसमें एक साथ विद्यमान हैं!॥ २२॥

अत्यन्त कृश शरीरवाली इस सुकुमारीमें अभी-अभी यौवन प्रस्फुटित हुआ है, किंतु आश्चर्य है कि यह रमणी कामभावनासे रहित है॥ २३॥

रूपमें कामदेवकी पत्नी रतिके समान सुन्दर तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न यह स्त्री कहीं अम्बिका ही तो नहीं, जो सभी महाबली दानवोंका संहार कर रही है॥ २४॥

इस अवसरपर मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे यह मेरी वशवर्तिनी हो जाय? इस हंस-सदृश नेत्रोंवालीको वशमें करनेहेतु मेरे पास कोई मन्त्र भी नहीं है॥ २५॥

सर्वमन्त्रमयी, सबको मोहित करनेवाली, अभिमानमें मत्त रहनेवाली तथा उत्तम लक्षणोंवाली यह सुन्दरी किस प्रकार मेरे वशमें होगी?॥ २६॥

अब युद्धभूमि छोड़कर पाताललोक जाना भी मेरे लिये उचित नहीं है। साम, दान तथा भेद आदि उपायोंसे भी यह महाबलशालिनी वशमें नहीं की जा सकती॥ २७॥

इस विषम परिस्थितिके आ जानेपर अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? स्त्रीके हाथों मर जाना भी उचित नहीं है; क्योंकि ऐसी मृत्यु यशको नष्ट करनेवाली होती है॥ २८॥

ऋषियोंने उस मृत्युको श्रेयस्कर कहा है, जो समरभूमिमें समान बलवाले योद्धाओंके साथ लड़ते-लड़ते प्राप्त हो॥ २९॥

सैकड़ों वीरोंसे श्रेष्ठ, महाबलशालिनी तथा दैव-विरचित यह नारी मेरे कुलके पूर्ण विनाशके लिये यहाँ उपस्थित हुई है॥ ३०॥

मैं इस समय सामनीतिसे युक्त वचनोंका प्रयोग व्यर्थमें क्यों करूँ? क्योंकि यह तो संहारके लिये आयी हुई है, तो फिर सामवचनोंसे यह कैसे

न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्रविभूषिता।
भेदस्तु विफलः कामं सर्वदेववशानुगा॥ ३२

तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम्।
जयो वा मरणं वाद्य भवत्वेव यथाविधि॥ ३३

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा शुम्भः सत्त्वाश्रितोऽभवत्।
युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरःस्थिताम्॥ ३४

देवि युध्यस्व कान्तेऽद्य वृथायं ते परिश्रमः।
मूर्खासि किल नारीणां नायं धर्मः कदाचन॥ ३५

नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम्।
हावभावास्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्यं विचक्षणः॥ ३६

सन्नाहश्चाङ्गरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः।
मन्दप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचन॥ ३७

अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम्।
लज्जैव भूषणं कान्ते न च धाष्ट्र्यं कदाचन॥ ३८

युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते।
स्तनौ सङ्गोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम्॥ ३९

क्व मन्दगमनं कुत्र गदामादाय धावनम्।
बुद्धिदा कालिका तेऽत्र चामुण्डा परनायिका॥ ४०

चण्डिका मन्त्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा।
वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयङ्करः॥ ४१

प्रसन्न हो सकती है? अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे विभूषित होनेके कारण दान आदिके प्रलोभनोंसे भी यह विचलित नहीं की जा सकती। भेदनीति भी निष्फल सिद्ध होगी; क्योंकि सभी देवता इसके वशमें हैं॥ ३१-३२॥

अतएव संग्राममें मर जाना श्रेयस्कर है, किंतु पलायन करना ठीक नहीं है। अब तो प्रारब्धके अनुसार विजय अथवा मृत्यु जो भी होना हो, वह हो॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपने मनमें विचार करके शुम्भने धैर्यका सहारा लिया। अब युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके उसने अपने सामने खड़ी भगवतीसे कहा॥ ३४॥

हे देवि! युद्ध करो, किंतु हे प्रिये! इस समय तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ है। तुम मूर्ख हो; क्योंकि युद्ध करना स्त्रियोंका धर्म कदापि नहीं है॥ ३५॥

स्त्रियोंके नेत्र ही बाण हैं, उनकी भौंहें ही धनुष हैं, उनके हाव-भाव ही शस्त्र हैं और रसज्ञ पुरुष उनका लक्ष्य है॥ ३६॥

अंगराग (शीतल चन्दन आदि) ही उनका कवच है, मनोकामना रथ है तथा धीरे-धीरे मधुर वाणीमें बोलना भेरी-ध्वनि है। अतएव स्त्रियोंके लिये अन्य शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं रहती॥ ३७॥

यदि स्त्रियाँ इनके अतिरिक्त अन्य अस्त्र धारण करें तो यह निश्चितरूपसे उनके लिये विडम्बना ही है। हे प्रिये! लज्जा ही नारियोंका आभूषण है, धृष्टता उन्हें कभी भी शोभा नहीं देती॥ ३८॥

युद्ध करती हुई उत्तम नारी भी कर्कशाके सदृश दिखायी देती है। धनुष खींचते समय कोई स्त्री अपने दोनों स्तनोंको छिपानेमें कैसे सफल हो सकती है?॥ ३९॥

कहाँ नारियोंकी मन्थरगति और कहाँ युद्धमें गदा लेकर दौड़ना। इस समय यह कालिका तथा दूसरी स्त्री चामुण्डा ही तुम्हें बुद्धि देनेवाली हैं। मध्यस्थ होकर चण्डिका मन्त्रणा देती है, कर्कश स्वरवाली शिवा तुम्हारी शुश्रूषामें रहती है और सभी प्राणियोंमें भयंकर सिंह तुम्हारा वाहन है॥ ४०-४१॥

वीणानादं परित्यज्य घण्टानादं करोषि यत्।
रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि॥ ४२

यदि ते सङ्गरेच्छास्ति कुरूपा भव भामिनि।
लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचना॥ ४३

लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः।
ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव॥ ४४

कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम्।
ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति॥ ४५

हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि कामकान्तोपमे मृधे।

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका॥ ४६

स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम।

देव्युवाच

किं विषीदसि मन्दात्मन् कामबाणविमोहितः॥ ४७

प्रेक्षिकाहं स्थिता मूढ कुरु कालिकया मृधम्।
चामुण्डया वा कुर्वेते तव योग्ये रणाङ्गणे॥ ४८

प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे।
इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवी मधुरया गिरा॥ ४९

जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे।

व्यास उवाच

इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी॥ ५०

गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा।
तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम्॥ ५१
पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनाञ्च महात्मनाम्।

हे सुन्दरि! वीणा-वादन छोड़कर तुम यह जो घंटा-नाद कर रही हो, वह सब तुम्हारे रूप तथा यौवनके सर्वथा विपरीत है॥ ४२॥

हे भामिनि! यदि युद्ध करना ही तुम्हें अभीष्ट है तो तुम सर्वप्रथम लम्बे ओठोंवाली, विचित्र नखोंवाली, क्रूर स्वभाववाली, कौए-जैसे वर्णवाली, विकृत आँखोंवाली, लम्बे पैरोंवाली, भयंकर दाँतोंवाली और बिल्लीसदृश नेत्रोंवाली कुरूप स्त्री बन जाओ। ऐसा ही विकराल रूप धारण करके तुम युद्धभूमिमें स्थिरतापूर्वक खड़ी हो जाओ और कर्कश वचन बोलो, तभी मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि हे मृगशावक-सदृश नेत्रोंवाली! हे रतितुल्य सुन्दरि! सुन्दर दाँतोंवाली ऐसी रमणीको देखकर तुम्हें युद्धमें मारनेके लिये मेरा हाथ नहीं उठ पा रहा है॥ ४३—४५½॥

व्यासजी बोले—हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय! उस कामातुर शुम्भको ऐसा बोलते हुए देखकर भगवती जगदम्बा मुसकराकर यह वचन कहने लगीं—॥ ४६½॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! कामबाणसे विमोहित होकर तुम इस प्रकार विषाद क्यों कर रहे हो? हे मूढ! तुम पहले कालिका अथवा चामुण्डाके साथ ही युद्ध कर लो। ये दोनों देवियाँ ही समरांगणमें तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। मैं तो केवल दर्शक बनकर खड़ी हूँ। तुम इन दोनोंपर यथेच्छ प्रहार करो। मैं तुमसे लड़नेकी इच्छा नहीं करती॥ ४७-४८½॥

शुम्भसे ऐसा कहकर भगवतीने मधुर वाणीमें कालिकासे कहा—हे क्रूर कालिके! कुरूपाके साथ लड़नेकी इच्छावाले इस दानवको तुम युद्धमें मार डालो॥ ४९½॥

व्यासजी बोले—भगवतीके इस प्रकार कहनेपर कालरूपिणी कालिका कालसे प्रेरित होकर बड़ी तेजीसे तत्काल गदा उठाकर सावधानीपूर्वक रणमें खड़ी हो गयीं। इसके बाद सभी देवताओं, मुनियों और महात्माओंके देखते-देखते उन दोनोंमें अतीव भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया॥ ५०-५१½॥

गदामुद्यम्य शुम्भोऽथ जघान कालिकां रणे॥ ५२

कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद् भृशम्।
बभंजास्य रथं चण्डी गदया कनकोज्ज्वलम्॥ ५३

खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना।
स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधान्वितः॥ ५४

कालिकाभुजयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा।
वञ्चयित्वा गदाघातं खड्गमादाय सत्वरा॥ ५५

चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम्।
स छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः॥ ५६

अचिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा।
काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम्॥ ५७

चिच्छेद प्रहसन्ती सा सगदं किल साङ्गदम्।
कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात्॥ ५८

काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनास्य त्वरान्विता।
सच्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन्॥ ५९

धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव।
तमागच्छन्तमालोक्य कालिका कमलोपमम्॥ ६०

चकर्त मस्तकं कण्ठाद्रुधिरौघवहं भृशम्।
छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः॥ ६१

प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम्।
गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः॥ ६२
तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुण्डां कालिकां तथा।

शुम्भने अपनी गदा लेकर उससे कालिकापर प्रहार किया। भगवती कालिका भी अपनी गदासे दैत्यराज शुम्भपर तेज प्रहार करने लगीं। भयानक स्वरवाली चण्डीने गदासे उस दैत्यके सुवर्णमय चमकीले रथको चूर-चूर कर डाला और [शुम्भका रथ खींचनेवाले] गदहोंको मारकर उसके सारथिको भी मार डाला॥ ५२-५३½ ॥

अब क्रोधमें भरे हुए शुम्भने अपनी विशाल गदा लेकर अट्टहास करते हुए पैदल ही पहुँचकर कालिकाकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग (वक्षःस्थल)-पर प्रहार किया॥ ५४½ ॥

तब कालिकाने उसके गदा-प्रहारको निष्फल करके शीघ्रतापूर्वक तलवार उठाकर शुम्भके चन्दनचर्चित तथा आयुधयुक्त बायें हाथको काट दिया॥ ५५½ ॥

हाथ कट जाने तथा रथविहीन होनेके बावजूद भी रक्तसे लथपथ वह शुम्भ हाथमें गदा लिये हुए शीघ्रतापूर्वक कालिकाके पास पहुँचकर उनके ऊपर प्रहार करने लगा॥ ५६½ ॥

तब कालीने अपने करवाल (तलवार)-से उसके गदायुक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित दाहिने हाथको हँसते-हँसते काट डाला॥ ५७½ ॥

इसके बाद वह शुम्भ कुपित होकर कालिकापर पैरसे प्रहार करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा। तभी कालिकाने अपनी तलवारसे तुरंत उसके दोनों पैर भी काट डाले॥ ५८½ ॥

हाथ-पैर कट जानेपर भी 'ठहरो-ठहरो' ऐसा कहता हुआ वह शुम्भ कालिकाको भयभीत करते हुए वेगपूर्वक दौड़ता हुआ उनकी ओर बढ़ा॥ ५९½ ॥

उसे आते देखकर कालिकाने उसके कमलसदृश मस्तकको काट दिया, जिससे उसके कण्ठसे रक्तकी अजस्र धारा बहने लगी। मस्तक कट जानेपर पर्वततुल्य वह शुम्भ जमीनपर गिर पड़ा और उसके प्राण शरीरसे निकलकर तत्काल प्रयाण कर गये॥ ६०-६१½ ॥

दैत्य शुम्भको इस प्रकार प्राणविहीन होकर गिरा हुआ देखकर इन्द्रसहित सभी देवता भगवती चामुण्डा तथा कालिकाकी स्तुति करने लगे॥ ६२½ ॥

ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम्॥ ६३
बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः।
हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदम्बिकाम्॥ ६४
त्यक्त्वायुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप।
एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम्॥ ६५
शुम्भादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा।
एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः॥ ६६
शृण्वन्ति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवन्ति हि।
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु॥ ६७
रोगी च मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम्।
शृणोति पठते नित्यं मुक्तिमाञ्जायते नरः॥ ६८

सुखदायक पवन बहने लगा तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयीं। हवन करते समय [शुभ सूचनाके रूपमें] अग्निकी पवित्र ज्वालाएँ दाहिनी ओरसे उठने लगीं॥ ६३$\frac{१}{२}$॥

हे राजन्! जो दानव मरनेसे बच गये थे, वे सभी जगदम्बिकाको प्रणाम करके अपने-अपने आयुध त्यागकर पाताल चले गये॥ ६४$\frac{१}{२}$॥

देवीका उत्तम चरित्र, शुम्भ आदि दैत्योंका वध तथा देवताओंकी रक्षा—इन सबका वर्णन आपसे कर दिया। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य इस समस्त आख्यानका भक्तिभावसे निरन्तर पठन तथा श्रवण करते हैं, वे निश्चितरूपसे कृतार्थ हो जाते हैं। पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त होते हैं, निर्धनको विपुल सम्पदा सुलभ हो जाती है तथा रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। वह सभी वांछित फल प्राप्त कर लेता है और उसे शत्रुओंसे किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। जो मनुष्य इस पवित्र आख्यानका नित्य पठन तथा श्रवण करता है, वह अन्तमें मोक्षका भागी हो जाता है॥ ६५—६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भवधो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा

जनमेजय उवाच

महिमा वर्णितः सम्यक्चण्डिकायास्त्वया मुने।
केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः॥ १
प्रसन्ना कस्य वरदा केन प्राप्तं फलं महत्।
आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे॥ २
उपासनाविधिं ब्रह्मंस्तथा पूजाविधिं वद।
विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः॥ ३

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने भगवती चण्डिकाकी महिमाका भलीभाँति वर्णन किया। अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि तीन चरित्रोंका प्रयोग करके पहले किसने भगवतीकी आराधना की थी?॥ १॥

वे वरदायिनी भगवती किसके ऊपर प्रसन्न हुईं? सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवीकी उपासना करके किसने महान् फल प्राप्त किया? हे कृपानिधान! यह सब बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! हे महाभाग! जगदम्बाकी उपासनाविधि, पूजाविधि तथा हवनविधिका भी विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ ३॥

सूत उवाच

इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः।
प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम्॥ ४

व्यास उवाच

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः।
बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः॥ ५

सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानाञ्च पूजकः।
गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः॥ ६

दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः।
एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः॥ ७

बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम्।
हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः॥ ८

कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः।
सुरथः सैन्यमादाय सम्मुखः समपद्यत॥ ९

युद्धं समभवद् घोरं तस्य तैरतिदारुणैः।
म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम्॥ १०

तथापि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा पराजितः।
भग्नश्च स्वपुरं प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमण्डितम्॥ ११

चिन्तयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः।
प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान्॥ १२

स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमण्डितम्।
कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम्॥ १३

मन्त्रिणः शत्रुवशगा मन्त्रयोग्या न ते किल।
किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिन्तयत्॥ १४

कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः।
शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति॥ १५

पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन।
किन्न ते वै प्रकुर्वन्ति ये लोभवशगा नराः॥ १६
भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बान्धवं तथा।

सूतजी बोले—राजाकी यह बात सुनकर सत्यवतीनन्दन कृष्णद्वैपायन प्रसन्न होकर उन्हें महामाया भगवतीका पूजन-विधान बताने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें स्वारोचिष-मन्वन्तरमें सुरथ नामक एक राजा हुए; जो परम उदार, प्रजापालनमें तत्पर, सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके उपासक, गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सदा अपनी ही भार्यामें अनुरक्त, दानशील, किसीके साथ विरोधभाव न रखनेवाले तथा धनुर्विद्यामें पूर्ण पारंगत थे॥ ५-६½॥

इस प्रकार प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले राजा सुरथसे कुछ पर्वतवासी म्लेच्छोंने अनायास ही शत्रुता ठान ली। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे सुसज्जित चतुरंगिणी सेना लेकर अभिमानमें चूर वे कोलाविध्वंसी सुरथके राज्यपर अधिकार करनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। सुरथ भी अपनी सेना लेकर सामने डट गये। उन महाभयंकर म्लेच्छोंके साथ राजा सुरथका भीषण युद्ध होने लगा॥ ७—९½॥

यद्यपि म्लेच्छोंकी सेना बहुत थोड़ी थी तथा राजाकी सेना अत्यन्त विशाल थी, फिर भी दैवयोगसे उन्होंने राजा सुरथको युद्धमें जीत लिया। इस प्रकार उनसे पराजित हुए राजा सुरथ हताश होकर अपने दुर्गवेष्टित सुरक्षित नगरमें आ गये॥ १०-११॥

तत्पश्चात् प्रतिभासम्पन्न तथा नीतिविशारद राजा सुरथ अपने मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अधीन देखकर अत्यन्त खिन्नमनस्क होकर विचार करने लगे कि मैं खाईं तथा किलेसे सुरक्षित किसी बड़े स्थानपर रहकर समयकी प्रतीक्षा करूँ अथवा मेरे लिये युद्ध करना उचित होगा। मेरे मन्त्री शत्रुके वशीभूत हो गये हैं, इसलिये वे अब परामर्श करनेयोग्य नहीं रह गये हैं, तो अब मैं क्या करूँ? वे राजा सुरथ पुनः मन-ही-मन विचार करने लगे। कदाचित् वे पापी तथा शत्रुके साथ मिले हुए मन्त्री मुझे पकड़कर शत्रुओंको सौंप देंगे, तब क्या होगा? पापबुद्धि पुरुषोंपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो मनुष्य लोभके वशीभूत होते हैं वे क्या-क्या नहीं कर बैठते? लोभपरायण मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सुहृद्

गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः॥ १७

तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाधुना।
मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते॥ १८

इति सञ्चिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः।
एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः॥ १९

असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः।
चिन्तयामास मेधावी क्व गन्तव्यं मया पुनः॥ २०

योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम्।
ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः॥ २१

बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम्।
निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमण्डितम्॥ २२

शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम्।
नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम्॥ २३

होमधूमसुगन्धेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा।
वेदध्वनिसमाक्रान्तं स्वर्गादपि मनोहरम्॥ २४

दृष्ट्वा तमाश्रमं राजा बभूवासौ मुदान्वितः।
भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे॥ २५

आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः।
दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम्॥ २६

मृगाजिनासनं शान्तं तपसातिकृशं ऋजुम्।
अध्यापयन्तं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम्॥ २७

रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्।
आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शमसंयुतम्॥ २८

तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा।
तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः॥ २९

बन्धु-बान्धव, पूजनीय गुरु तथा ब्राह्मणसे भी सदा द्वेष करता है। अतएव इस समय शत्रुपक्षके आश्रयको प्राप्त अत्यन्त पापपरायण अपने मन्त्रिसमुदायपर मुझे बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिये॥ १२—१८॥

इस प्रकार अपने मनमें भलीभाँति विचार करके अत्यन्त दुःखीचित्त राजा सुरथ घोड़ेपर आरूढ होकर अकेले ही उस नगरसे निकल पड़े॥ १९॥

वे बिना किसी सहायकको साथ लिये ही नगरसे बाहर निकलकर एक घने जंगलमें चले गये। प्रतिभासम्पन्न राजा सुरथ सोचने लगे कि अब मुझे कहाँ चलना चाहिये?॥ २०॥

तपस्वी सुमेधाका पवित्र आश्रम यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है—यह जानकर राजा सुरथ वहाँ चले गये॥ २१॥

बहुत प्रकारके वृक्षोंसे युक्त, नदीके तटपर विराजमान, वैरभावसे रहित होकर विचरण करनेवाले पशुओंसे समन्वित, कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे मण्डित, अध्ययनरत शिष्योंके स्वरसे निनादित, सैकड़ों मृगसमूहोंसे घिरे हुए, भलीभाँति पके हुए नीवारान्नसे परिपूर्ण, सुन्दर फल-फूलसे लदे हुए पादपोंसे सुशोभित, होमके सुगन्धित धूमसे प्राणियोंको सदा आनन्दित करनेवाले, निरन्तर वेदध्वनिसे परिव्याप्त तथा स्वर्गसे भी मनोहर उस आश्रमको देखकर वे राजा अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भय त्यागकर मुनिके आश्रममें विश्राम करनेका निश्चय कर लिया॥ २२—२५॥

तत्पश्चात् अपने घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा कि मुनि एक सालवृक्षकी छायामें मृगचर्मके आसनपर बैठे हुए हैं, उनकी आकृति शान्त है, तपस्या करनेके कारण उनका शरीर क्षीण हो गया है, उनका स्वभाव अति कोमल है, वे शिष्योंको पढ़ा रहे हैं, वे वेद-शास्त्रोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् हैं, क्रोध-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हैं, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे परे हैं, ईर्ष्यारहित हैं, आत्मज्ञानके चिन्तनमें संलग्न हैं, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय हैं। उन्हें देखकर अश्रुपूरित नयनोंवाले राजा सुरथ प्रेमपूर्वक उनके आगे दण्डकी भाँति भूतलपर गिर पड़े॥ २६—२९॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः।
शिष्यो ददौ बृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा॥ ३०

उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया।
अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम्॥ ३१

पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिन्तापरः कथम्।
कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विह॥ ३२

किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम्।
करिष्ये वाञ्छितं काममसाध्यमपि यत्तव॥ ३३

राजोवाच

सुरथो नाम राजाहं शत्रुभिश्च पराजितः।
त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं गतः॥ ३४

यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः।
करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले॥ ३५

शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवान्तिकम्।
त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागतवत्सल॥ ३६

ऋषिरुवाच

निर्भयं वस राजेन्द्र नात्र ते शत्रवः किल।
आगमिष्यन्ति बलिनो निश्चयं तपसो बलात्॥ ३७

नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम।
कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः॥ ३८

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा।
उवासाश्रम एवासौ फलमूलाशनः शुचिः॥ ३९

कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः।
चिन्तयामास चिन्तार्तो गृह एव गताशयः॥ ४०

राज्यं मे शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा।
सम्पीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः॥ ४१

तब मुनिने उनसे कहा—उठिये-उठिये, आपका कल्याण हो। तत्पश्चात् गुरुसे आदेश पाकर एक शिष्यने उन्हें आसन प्रदान किया॥ ३०॥

तब वे उठकर मुनिसे आज्ञा लेकर उस आसनपर बैठ गये। इसके बाद सुमेधाऋषिने अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक सत्कार किया। मुनिने उनसे पूछा कि आप यहाँ कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं तथा चिन्तित क्यों हैं? यहाँ आनेका जो भी कारण हो, उसे आप यथारुचि बतायें। आपके आगमनका प्रयोजन क्या है? आप अपने मनके विचारोंको अवश्य बताइये। आपका कोई असाध्य मनोरथ होगा तो उसे भी मैं पूर्ण करूँगा॥ ३१—३३॥

राजा बोले—मैं सुरथ नामवाला राजा हूँ। शत्रुओंसे पराजित होकर मैं राज्य, महल तथा स्त्री—सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ॥ ३४॥

हे ब्रह्मन्! अब आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं श्रद्धापूर्वक वही करूँगा। इस पृथ्वीतलपर आपके अतिरिक्त अब कोई दूसरा मेरा रक्षक नहीं है॥ ३५॥

हे मुनिराज! हे शरणागतवत्सल! शत्रुओंसे मुझे महान् भय उपस्थित है, अतएव मैं आपके पास आया हूँ; अब आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

ऋषि बोले—हे राजेन्द्र! आप निर्भीक होकर यहाँ रहिये। यह निश्चित है कि मेरी तपस्याके प्रभावसे आपके पराक्रमी शत्रु यहाँ नहीं आ सकेंगे॥ ३७॥

हे नृपश्रेष्ठ! यहाँपर आपको हिंसा नहीं करनी चाहिये और वनवासियोंकी भाँति पवित्र नीवार तथा फल-मूल आदिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना चाहिये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—तब मुनिकी यह बात सुनकर राजा सुरथ निर्भय हो गये। अब वे फल-मूलका आहार करते हुए पवित्रताके साथ उस आश्रममें ही रहने लगे॥ ३९॥

किसी समय उस आश्रममें एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए चिन्ताकुल राजा सुरथका चित्त घरकी ओर चला गया और वे सोचने लगे—॥ ४०॥

निरन्तर पापकर्ममें लगे रहनेवाले म्लेच्छ शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया है। उन दुराचारी तथा निर्लज्ज म्लेच्छोंके द्वारा मेरी प्रजा बहुत सतायी जाती होगी॥ ४१॥

गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः।
जाताः स्युर्नात्र सन्देहः शत्रुणा परिपीडिताः॥ ४२

सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः।
दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा॥ ४३

धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः।
द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्प्रापितं किल॥ ४४

कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः।
न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे॥ ४५

इति चिन्तापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा।
तदाजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा॥ ४६

नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः।
पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम्॥ ४७

कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोकपीडितः।
ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री साप्तपदी मता॥ ४८

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः।
उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम्॥ ४९

वैश्य उवाच

मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः।
धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः॥ ५०

पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसाधुभिः।
(कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम्।)
स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै॥ ५१
कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना।

मेरे सभी हाथी तथा घोड़े आहार न पाने तथा शत्रुसे प्रताड़ित किये जानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे; इसमें तो कोई सन्देह नहीं है॥ ४२॥

अपने जिन सेवकोंका मैंने पहले पालन-पोषण किया था, वे सब शत्रुओंके अधीन हो जानेके कारण कष्टका अनुभव करते होंगे॥ ४३॥

उन अति दुराचारी तथा अपव्यय करनेके स्वभाववाले शत्रुओंने मेरा धन द्यूत, मदिरालय एवं वेश्यालयोंमें निश्चित-रूपसे खर्च कर दिया होगा॥ ४४॥

वे पापबुद्धि मेरा समस्त राजकोष व्यसनोंमें नष्ट कर डालेंगे, सत्पात्रोंको दान देनेकी योग्यता भी उन म्लेच्छोंमें नहीं है और मेरे मन्त्री भी अधीनतामें रहनेके कारण उन्हींके जैसे हो गये होंगे॥ ४५॥

महाराज सुरथ वृक्षके नीचे बैठकर इसी चिन्तामें पड़े हुए थे कि उसी समय एक विषादग्रस्त वैश्य वहाँ आ पहुँचा॥ ४६॥

राजाने उस वैश्यको सामने देख लिया। उन्होंने उसे अपने समीपमें बैठा लिया और पुनः उससे पूछा—आप कौन हैं तथा इस वनमें कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं, आप उदास क्यों हैं? चिन्ताग्रस्त रहनेके कारण आप तो पीले वर्णके हो गये हैं? हे महाभाग! सात पग एक साथ चलनेपर ही मैत्री समझ ली जाती है, अतः आप मुझे सब कुछ सच-सच बता दीजिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—राजाका वचन सुनकर वह वैश्यश्रेष्ठ उनके पास बैठ गया और इसे सज्जनसमागम समझकर शान्तचित्त होकर उनसे कहने लगा॥ ४९॥

वैश्य बोला—हे मित्र! मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हूँ और समाधि नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं धनवान्, धर्मकार्योंमें निपुण, सत्यवादी और ईर्ष्यासे रहित हूँ, फिर भी धनके लोभी और कुटिल स्त्री-पुत्रोंने मुझे घरसे निकाल दिया (उन्होंने मुझे कृपण कहकर कठिनाईसे टूटनेवाला माया-बन्धन भी तोड़ दिया), अतः अपने कुटुम्बियोंसे परित्यक्त होकर मैं अभी-अभी इस वनमें आया हूँ। हे प्रिय! आप कौन हैं? मुझे बतायें; आप भाग्यवान् प्रतीत होते हैं॥ ५०-५१½॥

राजोवाच

सुरथो नाम राजाहं दस्युभिः पीडितोऽभवम्॥ ५२

प्राप्तोऽस्मि गतराज्योऽत्र मन्त्रिभिः परिवञ्चितः।
दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम॥ ५३

सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे।
शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम॥ ५४
(अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह।)

वैश्य उवाच

कुटुम्बं मे निरालम्बं मया हीनं सुदुःखितम्।
भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम्॥ ५५

भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम्।
इति चिन्तातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप॥ ५६

कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च।
स्वस्थं न मन्मनो राजन् गृहचिन्ताकुलं भृशम्॥ ५७

राजोवाच

यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः।
तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते॥ ५८

हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः।
तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह॥ ५९

वैश्य उवाच

मनो मे न स्थिरं राजन् भवत्यद्य सुदुःखितम्।
चिन्तयात्र कुटुम्बस्य दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः॥ ६०

राजोवाच

ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम्।
पृच्छावोऽद्य मुनिं शान्तं शोकनाशनमौषधम्॥ ६१

व्यास उवाच

इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः।
मुनिं तौ विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम्॥ ६२

राजा बोले—मैं सुरथ नामका राजा हूँ, मैं दस्युओंसे पीड़ित हूँ। मन्त्रियोंके द्वारा ठगे जानेके कारण राज्यविहीन होकर मैं यहाँ आया हूँ। हे वैश्यश्रेष्ठ! भाग्यवश आप मुझे यहाँ मित्रके रूपमें मिल गये हैं। अब हम दोनों सुन्दर वृक्षोंसे युक्त इस वनमें विहार करेंगे। हे महाबुद्धिमान् वैश्यश्रेष्ठ! चिन्ता छोड़िये और प्रसन्नचित्त होइये (अब आप मेरे साथ यहींपर इच्छानुसार सुखपूर्वक रहिये)॥ ५२—५४॥

वैश्य बोला—मेरा परिवार आश्रयरहित है, मेरे बिना परिवारके लोग अत्यन्त दुःखी होंगे। मेरे बारेमें चिन्ता करते हुए वे रोग तथा शोकसे व्याकुल हो जायँगे॥ ५५॥

हे राजन्! मेरी पत्नी तथा पुत्र शारीरिक सुख पा रहे होंगे अथवा नहीं, इसी चिन्तासे व्याकुल रहनेके कारण मेरा मन शान्त नहीं रह पाता॥ ५६॥

हे राजन्! मैं पुत्र, पत्नी, घर और स्वजनोंको कब देख सकूँगा? गृहकी चिन्तासे अत्यन्त व्याकुल मेरा मन स्वस्थ नहीं हो पाता है॥ ५७॥

राजा बोले—हे महामते! जिन दुराचारी तथा महामूर्ख पुत्र आदिके द्वारा आप घरसे निकाल दिये गये, उन्हें देखकर अब आपको कौन-सा सुख मिलेगा? दुःख देनेवाले सुहृदोंकी अपेक्षा सुख देनेवाला शत्रु श्रेष्ठ है; अतः अपने मनको स्थिर करके आप मेरे साथ आनन्द कीजिये॥ ५८-५९॥

वैश्य बोला—हे राजन्! दुर्जनोंके द्वारा भी अत्यन्त कठिनतासे त्यागे जानेवाले कुटुम्बकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखित मेरा मन इस समय स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६०॥

राजा बोले—राज्यसम्बन्धी चिन्ता मेरे मनको भी दुःखी करती रहती है। अतः अब हम दोनों शान्त प्रकृतिवाले मुनिसे शोकके नाशकी औषधि पूछें॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके राजा और वैश्य—दोनों ही अत्यन्त विनम्र होकर शोकका कारण पूछनेके लिये मुनिके पास गये॥ ६२॥

गत्वा तं प्रणिपत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम्।
आसीनं सम्यगासीनः शान्तं शान्तिमुपागतः॥ ६३

वहाँ जाकर राजा सुरथ आसन लगाकर शान्त बैठे हुए मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके स्वयं भी सम्यक् रूपसे आसनपर बैठकर शान्तिपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्मुनिसमीपे गमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मुनि सुमेधाका सुरथ और समाधिको देवीकी महिमा बताना

राजोवाच

मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः।
पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम सङ्गमम्॥ १

राजा बोले—हे मुने! ये वैश्य हैं, आज ही वनमें इनसे मेरी मित्रता हुई है। पत्नी और पुत्रोंने इन्हें निकाल दिया है और अब यहाँ इन्हें मेरा साथ प्राप्त हुआ है॥ १॥

(कुटुम्बविरहेणासौ दुःखितोऽतीव दुर्मनाः।
न शान्तिमुपयात्येष तथापि मम साम्प्रतम्।
गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते।)
निष्कारणञ्च मे चिन्ता हृदयान्न निवर्तते।
हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशं गताः॥ २

भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना।
कोशक्षयं करिष्यन्ति रिपवोऽतिबलात्क्षणात्॥ ३

(परिवारके वियोगसे ये अत्यन्त दुःखी और विक्षुब्ध हैं; इन्हें शान्ति नहीं मिल पा रही है और इस समय मेरी भी ऐसी ही स्थिति है। हे महामते! राज्य चले जानेके दुःखसे मैं शोकसन्तप्त हूँ।) व्यर्थकी यह चिन्ता मेरे हृदयसे निकल नहीं रही है—मेरे घोड़े दुर्बल हो गये होंगे और हाथी शत्रुओंके अधीन हो गये होंगे। उसी प्रकार सेवकगण भी मेरे बिना दुःखी रहते होंगे। शत्रुगण राजकोशको क्षणभरमें बलपूर्वक रिक्त कर देंगे॥ २-३॥

इत्येवं चिन्तयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम्।
जानामीदं जगन्मिथ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि॥ ४

जानतोऽपि मनो भ्रान्तं न स्थिरं भवति प्रभो।
कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः॥ ५

न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम्।
भ्रमोऽयमिति जानामि तथापि मम मानसः॥ ६

मोहो नैवापसरति किं तत्कारणमद्भुतम्।
स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत्॥ ७

कारणं ब्रूहि मोहस्य ममास्य च दयानिधे।

इस प्रकार चिन्ता करते हुए मुझे न निद्रा आती है और न मेरे शरीरको सुख मिलता है। मैं जानता हूँ कि यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी भाँति मिथ्या है, किंतु हे प्रभो! यह जानते हुए भी मेरा भ्रमित मन स्थिर नहीं होता। मैं कौन हूँ? ये हाथी-घोड़े कौन हैं? ये मेरे कोई सगे-सम्बन्धी भी नहीं हैं। न ये मेरे पुत्र हैं, और न मेरे मित्र हैं, जिनका दुःख मुझे पीड़ित कर रहा है। मैं जानता हूँ कि यह भ्रम है, फिर भी मेरे मनसे सम्बन्ध रखनेवाला मोह दूर नहीं होता, यह बड़ा ही अद्भुत कारण है! हे स्वामिन्! आप सर्वज्ञ और सभी संशयोंका नाश करनेवाले हैं, अतः हे दयानिधे! मेरे इस मोहका कारण बतायें॥ ४—७½॥

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा राज्ञा सुमेधा मुनिसत्तमः॥ ८
तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम्।

व्यासजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधा उनसे शोक और मोहका नाश करनेवाले परम ज्ञानका वर्णन करने लगे॥ ८½॥

ऋषिरुवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कारणं बन्धमोक्षयोः॥ ९

महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह।
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड् वरुणोऽनिलः॥ १०

सर्वे देवा मनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः।
वृक्षाश्च विविधा वल्ल्यः पशवो मृगपक्षिणः॥ ११

मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बन्धमोक्षयोः।
तया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ १२

तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यन्त्रितम्।
त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाविलः॥ १३

ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा।
ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः॥ १४

तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमन्ति परिमोहिताः।
पुरा सत्ययुगे राजन् विष्णुर्नारायणः स्वयम्॥ १५

श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः।
वर्षाणामयुतं यावद् ब्रह्मविद्याप्रसक्तये॥ १६

अनश्वरसुखायासौ चिन्तयानस्ततः परम्।
एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्मापि परमाद्भुते॥ १७

स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये।
कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलान्तरमतिर्हरिः॥ १८

तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यद्दिदृक्षया।
चतुर्मुखोऽपि राजेन्द्र तथैव निःसृतः स्थलात्॥ १९

मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ।
अन्योन्यं पृष्टवन्तौ तौ कस्त्वं कस्त्वमिति स्म ह॥ २०

ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताहं जगतः किल।
विष्णुस्तमाह भो मूर्ख जगत्कर्ताहमच्युतः॥ २१

त्वं कियान्बलहीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः।
सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम्॥ २२

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताता हूँ। महामायाके नामसे विख्यात वे भगवती ही सभी प्राणियोंके बन्धन और मोक्षकी कारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, पवन आदि सभी देवता, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, वृक्ष, विविध लताएँ, पशु, मृग और पक्षी—ये सब मायाके आधीन हैं और बन्धन तथा मोक्षके भाजन हैं। उन महामायाने ही इस जड़-चेतनमय सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है। जब यह जगत् सदा उन्हींके अधीन रहता है और मोहजालमें जकड़ा हुआ है, तब आप किस गणनामें हैं? आप तो मनुष्योंमें रजोगुणसे युक्त एक क्षत्रियमात्र हैं॥ ९—१३॥

वे महामाया ज्ञानियोंकी बुद्धिको भी सदा मोहित किये रहती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि परम ज्ञानी होते हुए भी रागके वशीभूत होकर व्यामोहमें पड़ जाते हैं और संसारमें चक्कर काटा करते हैं॥ १४½॥

हे राजन्! प्राचीन कालमें स्वयं उन भगवान् नारायणने ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति तथा अविनाशी सुखके लिये श्वेतद्वीपमें जाकर ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की थी। हे राजेन्द्र! इसके साथ ही मोहकी निवृत्तिके लिये एक निर्जन प्रदेशमें ब्रह्माजी भी परम अद्भुत तपस्यामें संलग्न हो गये॥ १५—१७½॥

हे राजेन्द्र! किसी समय वासुदेव भगवान् श्रीहरिने दूसरे स्थानपर जानेका विचार किया और वे उस स्थानसे उठकर अन्य स्थलको देखनेकी इच्छासे चल दिये। ब्रह्माजी भी उसी प्रकार अपने स्थानसे निकल पड़े। चतुर्मुख ब्रह्माजी और चतुर्भुज भगवान् विष्णु मार्गमें मिल गये। तब वे दोनों एक-दूसरेसे पूछने लगे—तुम कौन हो, तुम कौन हो?॥ १८—२०॥

ब्रह्माजी भगवान् विष्णुसे बोले—मैं जगत्‌का स्रष्टा हूँ। तब विष्णुने उनसे कहा—हे मूर्ख! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाला मैं विष्णु ही जगत्‌का कर्ता हूँ। तुम कितने शक्तिशाली हो? तुम तो रजोगुणयुक्त और बलहीन हो! मुझे सत्त्वगुणसम्पन्न सनातन नारायण जानो॥ २१-२२॥

मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम्।
शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः॥ २३
मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ।
कथं गर्वायसे मन्द मोहोऽयं त्यज साम्प्रतम्॥ २४
न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते।

ऋषिरुवाच

एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम्॥ २५
स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः।
प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः॥ २६
मध्ये लिङ्गं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम्।
आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥ २७
तौ सम्बोध्य महाभागौ विवदन्तौ परस्परम्।
ब्रह्मन् विष्णो विवादं मा कुरुतां वां परस्परम्॥ २८
लिङ्गस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम्।
यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि॥ २९
एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना।
प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम्॥ ३०
मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह।

ऋषिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ॥ ३१
जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिङ्गमद्भुतदर्शनम्।
पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माप्याकाशमेव च॥ ३२
परिमातुं महालिङ्गं स्वमहत्त्वविवृद्धये।
विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रान्तः सर्वात्मना यतः॥ ३३
न प्रापान्तं स लिङ्गस्य परिवृत्य ययौ स्थलम्।
ब्रह्मागच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम्॥ ३४
शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदावृतः।
आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम्॥ ३५
दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः।
लिङ्गस्य मस्तकादेतद् गृहीतं केतकीदलम्॥ ३६
अभिज्ञानाय चानीतं तव चित्तप्रशान्तये।

दोनों दानवों (मधु-कैटभ)-के द्वारा पीड़ित किये जानेपर तुम मेरी ही शरणमें आये थे, उस समय अत्यन्त भीषण युद्ध करके मैंने तुम्हारी रक्षा की। मैंने ही उन मधु-कैटभ दानवोंका वध किया है, अतः हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों गर्व करते हो? यह तुम्हारा अज्ञान है, इसका शीघ्र त्याग कर दो; क्योंकि इस सम्पूर्ण संसारमें मुझसे बढ़कर कोई नहीं है॥ २३-२४½॥

ऋषि बोले—इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन दोनों—ब्रह्मा-विष्णुके ओठ फड़कने लगे, वे क्रोधमें काँपने लगे और उनकी आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। तभी विवादरत उन दोनोंके मध्य अचानक एक श्वेतवर्ण, अत्यन्त विशाल तथा अद्भुत लिंग प्रकट हो गया। तदनन्तर विवाद करते हुए उन दोनों महानुभावोंको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! तुम दोनों परस्पर विवाद मत करो॥ २५—२८॥

इस लिंगके ऊपरी या निचले छोरका आप दोनोंमेंसे जो पता लगा लेगा, आप दोनोंमें वह सदैवके लिये श्रेष्ठ हो जायगा। इसलिये मेरी वाणीको प्रमाण मानकर तथा इस निरर्थक विवादका त्यागकर आपलोगोंमेंसे एक आकाश और दूसरा पातालकी ओर अभी जाय। इस विवादमें आप दोनोंको एक मध्यस्थ भी अवश्य कर लेना चाहिये॥ २९-३०½॥

ऋषि बोले—उस दिव्य वाणीको सुनकर वे दोनों चेष्टापूर्वक उद्यम करनेके लिये तैयार हो गये और अपने समक्ष स्थित उस देखनेमें अद्भुत लिंगको मापनेके लिये चल पड़े। अपने-अपने महत्त्वकी वृद्धिके लिये उस महालिंगको नापनेहेतु विष्णु पातालकी ओर और ब्रह्मा आकाशकी ओर गये॥ ३१-३२½॥

कुछ दूरतक जानेपर विष्णु पूर्णरूपसे थक गये। वे लिंगका अन्त नहीं प्राप्त कर सके और तब उसी स्थलपर वापस लौट आये। ब्रह्माजी ऊपरकी ओर गये और शिवके मस्तकसे गिरे हुए केतकी पुष्पको लेकर वे भी प्रसन्न हो लौट आये॥ ३३-३४½॥

तब अहंकारसे मोहित ब्रह्मा शीघ्रतापूर्वक आकर विष्णुको केतकी पुष्प दिखाकर यह झूठ बोलने लगे कि मैंने यह केतकी पुष्प इस लिंगके मस्तकसे प्राप्त किया है। आपके चित्तकी शान्तिके लिये पहचानचिह्नके रूपमें मैं इसे लेता आया हूँ॥ ३५-३६½॥

श्रुत्वा तद् ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम्॥ ३७

हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना।
यथार्थवादी मेधावी सदाचारः शुचिः समः॥ ३८

साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते।

ब्रह्मोवाच

दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना॥ ३९

यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति।
इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम्॥ ४०

वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणं प्रत्यबोधयत्।
शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः॥ ४१

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन।
मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारङ्गतोऽस्य ह॥ ४२

गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम्।
केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव॥ ४३

महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत्।

ऋषिरुवाच

तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः॥ ४४

कुपितः केतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद।
गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम॥ ४५

मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैव हि।
ब्रह्मा लज्जापरो भूत्वा ननाम मधुसूदनम्॥ ४६

शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै।
एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम्॥ ४७

अन्येषां प्राणिनां राजन् का वार्ता विभ्रमं प्रति।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः॥ ४८

ब्रह्माजीके उस वचनको सुनकर और केतकी पुष्पको देखकर विष्णुने उनसे कहा—इसका साक्षी कौन है, बताइये। किसी विवादके उपस्थित होनेपर किसी सत्यवादी, बुद्धिमान्, सदाचारी, पवित्र और निष्पक्ष व्यक्तिको साक्षी बनाया जाता है॥ ३७-३८½ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस समय इतने दूर देशसे कौन साक्षी आयेगा? जो सत्य बात है, उसे यह केतकी स्वयं कह देगी॥ ३९½ ॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने केतकीको [साक्ष्यके लिये] प्रेरित किया। तब उसने शीघ्रतापूर्वक विष्णुको सम्बोधित करते हुए कहा कि शिव (लिंग)-के मस्तकपर स्थित मुझे ब्रह्माजी वहाँसे लेकर आये हैं। हे विष्णो! इसमें आपको किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। ब्रह्माजी इस लिंगके पार गये हैं और शिवभक्तोंके द्वारा समर्पित की गयी मुझको लेकर आये हैं—यह मेरा कथन ही प्रमाण है॥ ४०—४२½ ॥

केतकीकी बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए बोले कि मेरे लिये तो महादेव ही प्रमाण हैं। यदि वे ऐसी बात बोल दें तो मैं मान लूँगा॥ ४३½ ॥

ऋषि बोले—तब विष्णुकी बात सुनकर सनातन भगवान् महादेवने क्रुद्ध होकर केतकीसे कहा—असत्यभाषिणि! ऐसा मत बोलो। मेरे मस्तकसे गिरी हुई तुझे ब्रह्मा बीचमें ही पा गये थे। तुमने झूठ बोला है, इसलिये अब मैंने सदैवके लिये तुम्हारा त्याग कर दिया। तब ब्रह्माजीने लज्जित होकर भगवान् विष्णुको नमस्कार किया। उसी दिनसे शिवद्वारा पुष्पोंमेंसे केतकीका त्याग कर दिया गया॥ ४४—४६½ ॥

हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मायाका बल ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देता है, तब दूसरे प्राणियोंके मोहित हो जानेकी क्या बात? स्वयं देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये पापका भय छोड़कर दैत्योंके साथ छल करते रहते हैं। वे ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् माधव अपने सुख और आनन्दको त्यागकर विविध योनियोंमें अवतार लेकर दैत्योंके साथ युद्ध करते हैं। देवताओंके कार्यहेतु अंशावतार ग्रहण करनेवाले सर्वज्ञ तथा

दैत्यान्वञ्चयते चाशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः।
अवतारकरो देवो नानायोनिषु माधवः॥ ४९

त्यक्त्वानन्दसुखं दैत्यैर्युद्धं चैवाकरोद्विभुः।
नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ॥ ५०

सर्वज्ञे देवकार्यांशे का वार्तान्यस्य भूपते।
ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल॥ ५१

बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते।
यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम्॥ ५२

मोहदा ज्ञानदा सैव बन्धमोक्षप्रदा सदा।

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे तस्याः स्वरूपं बलमुत्तमम्॥ ५३

उत्पत्तिकारणं वापि स्थानं परमकं च यत्।

ऋषिरुवाच

न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन॥ ५४

नित्यैव सा परा देवी कारणानां च कारणम्।
वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप॥ ५५

शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा।
चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि॥ ५६

आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये।
यदा स्तुवन्ति तां देवा मनुजाश्च विशाम्पते॥ ५७

प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चाम्बिका।
नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता॥ ५८

आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी।
दैवाधीना न सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप॥ ५९

न कालवशगा नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी।
अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत्॥ ६०

दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका।
पुरुषं रञ्जयत्येका कृत्वा ब्रह्माण्डनाटकम्॥ ६१

रञ्जिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा।
तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ६२

जगद्गुरु भगवान् विष्णुमें भी यह मायाशक्ति अपना प्रभाव डालती है, तब हे राजन्! अन्यकी क्या बात! हे राजन्! वे परम प्रकृतिस्वरूपा महामाया ज्ञानियोंके मनको भी बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं, जिन भगवतीके द्वारा स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है; वे ही ज्ञानदायिनी, मोहदायिनी तथा बन्धन एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं॥ ४७—५२½ ॥

राजा बोले—हे भगवन्! मुझे उनके स्वरूप, उत्तम बल, उनकी उत्पत्तिका कारण और उनके परम धामके विषयमें बताइये॥ ५३½ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! अनादि होनेके कारण उनकी कभी उत्पत्ति नहीं होती। नित्य और सर्वोपरि वे देवी समस्त कारणोंकी भी कारण हैं। हे नृप! वे शक्तिस्वरूपा भगवती सभी प्राणियोंमें सर्वात्मारूपसे विद्यमान रहती हैं। यदि प्राणी शक्तिसे रहित हो जाय तो वह प्राणी शवतुल्य हो जाता है; क्योंकि सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य शक्ति है, वह इन्हींका रूप है। देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये ही उनका प्राकट्य और तिरोधान होता है॥ ५४—५६½ ॥

हे राजन्! जब देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं, तब प्राणियोंके दुःखका नाश करनेके लिये ये भगवती जगदम्बा प्रकट होती हैं, वे देवी परमेश्वरी अनेक रूप धारण करके अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न होकर कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आविर्भूत होती हैं। हे राजन्! अन्य देवताओंकी भाँति वे भगवती दैवके अधीन नहीं हैं। सदा पुरुषार्थका प्रवर्तन करनेवाली वे देवी कालके वशमें नहीं हैं॥ ५७—५९½ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य है, परमपुरुष इसका द्रष्टा है, वह कर्ता नहीं है। वे सत्-असत्स्वरूपा देवी ही इस दृश्यमान जगत्की जननी हैं, वे स्वयं अकेले इस ब्रह्माण्डकी रचना करके परमपुरुषको आनन्दित करती हैं और उन परमपुरुषका मनोरंजन हो जानेके बाद वे भगवती शीघ्र ही सम्पूर्ण सृष्टि-प्रपंचका संहार भी कर देती हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो निमित्तमात्र हैं। वे भगवती ही अपनी लीलासे

कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी।
स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः॥ ६३

दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा।
ते तां ध्यायन्ति देवेशाः पूजयन्ति परां मुदा॥ ६४

ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम्।
एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
मम बुद्ध्यनुसारेण नान्तं जानामि भूपते॥ ६५

उनकी रचना करती हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यों (जगत्का सृजन, पालन और संहार)-में प्रवृत्त करती हैं। वे (देवी) उनमें अपने अंश (शक्ति)-का आरोपणकर उन्हें बलवान् बनाती हैं। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीके रूपमें उन्हें अपनी शक्तियाँ दी हैं। अतः वे त्रिदेव उन्हीं पराम्बाको सृजन, पालन और संहार करनेवाली जानकर प्रसन्नतापूर्वक उनका ध्यान और पूजन करते हैं॥ ६०—६४½॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार देवीका यह उत्तम माहात्म्य आपसे कह दिया, मैं इसका अन्त नहीं जानता हूँ॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मुनि सुमेधाद्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम्।
पूजाविधिञ्च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद॥ १

ऋषिरुवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तस्याः पूजाविधिं शुभम्।
कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम्॥ २

आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लाम्बरो नरः।
आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम्॥ ३

ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्यासनमुत्तमम्।
तत्रोपविश्य विधिवत् त्रिराचम्य मुदान्वितः॥ ४

पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः।
प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च॥ ५

कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु सम्भारं प्रोक्ष्य मन्त्रतः।
कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि॥ ६

राजा बोले—हे भगवन्! अब मुझे उन देवीकी आराधना-विधि भलीभाँति बताइये; साथ ही पूजा-विधि, हवनकी विधि और मन्त्र भी बताइये॥ १॥

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उनके पूजनकी शुभ विधि बताता हूँ, जो मनुष्योंको काम, मोक्ष और ज्ञानको देनेवाली तथा उनके दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ २॥

मनुष्यको सर्वप्रथम विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो श्वेत वस्त्र धारण कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् वह सावधानीपूर्वक आचमन करके पूजा-स्थानको शुद्ध करनेके बाद लिपी हुई भूमिपर उत्तम आसन बिछाकर उसपर बैठ जाय और प्रसन्न होकर विधिपूर्वक तीन बार आचमन करे। अपनी शक्तिके अनुसार पूजाद्रव्यको सुव्यवस्थित ढंगसे रखकर प्राणायाम कर ले, उसके बाद भूतशुद्धि करके और पुनः मन्त्र पढ़कर समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करके देवीमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तत्पश्चात् देशकालका उच्चारणकर विधिपूर्वक न्यास करना चाहिये॥ ३—६॥

शुभे ताम्रमये पात्रे चन्दनेन सितेन च।
षट्कोणं विलिखेद्यन्त्रं चाष्टकोणं ततो बहिः॥ ७

नवाक्षरस्य मन्त्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः।
कृत्वा यन्त्रप्रतिष्ठाञ्च वेदोक्तां संविधाय च॥ ८

अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामन्त्रैः शिवोदितैः।
पूजनं पृथिवीपाल भगवत्याः प्रयत्नतः॥ ९

कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः।
जपेन्नवाक्षरं मन्त्रं सततं ध्यानपूर्वकम्॥ १०

होमं दशांशतः कुर्याद्दशांशेन च तर्पणम्।
भोजनं ब्राह्मणानाञ्च तद्दशांशेन कारयेत्॥ ११

चरित्रत्रयपाठञ्च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत्।
नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम्॥ १२

आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप।
नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता॥ १३

होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमन्त्रैः सुपायसैः।
शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैः सुसंस्कृतैः॥ १४

छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः।
हयारिकुसुमै रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः॥ १५

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः।
कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्॥ १६

निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते।
अपुत्रो लभते पुत्राञ्छुभांश्च वशवर्तिनः॥ १७

राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम्।
शत्रुभिः पीडितो हन्ति रिपुं मायाप्रसादतः॥ १८

विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेन्द्रियः।
अनवद्यां शुभां विद्यां विन्दते नात्र संशयः॥ १९

इसके बाद सुन्दर ताम्रपात्रपर श्वेत चन्दनसे षट्कोण यन्त्र तथा उसके बाहर अष्टकोण यन्त्र लिखना चाहिये। तदनन्तर नवाक्षर मन्त्रके आठ बीज अक्षर आठों कोणोंमें लिखना चाहिये और नौवाँ अक्षर यन्त्रकी कर्णिका (बीच)-में लिखना चाहिये। तदनन्तर वेदमें बतायी गयी विधिसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके अथवा हे राजन्! भगवतीकी धातुमयी प्रतिमा बनाकर शिवतन्त्रोक्त पूजामन्त्रोंसे प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। अथवा सावधान होकर आगमशास्त्रमें बतायी गयी विधिसे विधानपूर्वक पूजन करके ध्यानपूर्वक नवाक्षरमन्त्रका सतत जप करना चाहिये। जपका दशांश होम करना चाहिये, होमका दशांश तर्पण करना चाहिये और तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। प्रतिदिन तीनों चरित्रों (प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र तथा उत्तर चरित्र)-का पाठ करना चाहिये। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये॥ ७—११½॥

हे राजन्! कल्याण चाहनेवालेको आश्विन और चैत्र माहके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक नवरात्रव्रत करना चाहिये। इन नवरात्रोंमें उपवास भी करना चाहिये॥ १२-१३॥

अनुष्ठानमें जपे गये मन्त्रोंके द्वारा शर्करा, घी और मधुमिश्रित पवित्र खीरसे विस्तारपूर्वक हवन करना चाहिये अथवा उत्तम बिल्वपत्रों, लाल कनैलके पुष्पों अथवा शर्करामिश्रित तिलोंसे हवन करना चाहिये। अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशीको विशेषरूपसे देवीपूजन करना चाहिये और इस अवसरपर ब्राह्मणभोजन भी कराना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्धनको धनकी प्राप्ति होती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, पुत्रहीन व्यक्ति सुन्दर और आज्ञाकारी पुत्रोंको प्राप्त करता है और राज्यच्युत राजाको सार्वभौम राज्य प्राप्त हो जाता है। देवी महामायाकी कृपासे शत्रुओंसे पीड़ित मनुष्य अपने शत्रुओंका नाश कर देता है। जो विद्यार्थी इन्द्रियोंको वशमें करके इस पूजनको करता है, वह शीघ्र ही पुण्यमयी उत्तम विद्या प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१९॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं स सर्वसुखभाग्भवेत्॥ २०

नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः।
वाञ्छितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः॥ २१

आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम्।
करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २२

विधिवन्मण्डलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत्।
कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमन्त्रविधानतः॥ २३

यन्त्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि।
वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान्॥ २४

कृत्वोपरि वितानञ्च पुष्पमालासमावृतम्।
धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम्॥ २५

त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चण्डिकायाश्च पूजने॥ २६

धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः।
गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा॥ २७

उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः।
कन्यकानां पूजनञ्च विधेयं विधिपूर्वकम्॥ २८

चन्दनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा।
सुगन्धतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः॥ २९

एवं सम्पूजनं कृत्वा होमं मन्त्रविधानतः।
अष्टम्यां वा नवम्यां वा कारयेद्विधिपूर्वकम्॥ ३०

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने।
कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः॥ ३१

एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं नरः।
नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता॥ ३२

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जो भी भक्तिपरायण होकर जगज्जननी जगदम्बाकी पूजा करता है, वह सब प्रकारके सुखका भागी हो जाता है। जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तितत्पर होकर नवरात्रव्रत करता है, वह सदा मनोवांछित फल प्राप्त करता है॥ २०-२१॥

जो मनुष्य आश्विन शुक्लपक्षमें इस उत्तम नवरात्रव्रतको श्रद्धाभावसे करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २२॥

विधिपूर्वक मण्डलका निर्माण करके पूजा-स्थानका निर्माण करना चाहिये और वहाँपर विधि-विधानसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा कलशकी स्थापना करनी चाहिये॥ २३॥

अत्यन्त सुन्दर यन्त्रका निर्माण करके उसे कलशके ऊपर स्थापित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् कलशके चारों ओर परिष्कृत तथा उत्तम जौका वपन करके पूजा-स्थानके ऊपर पुष्पमालासे अलंकृत चाँदनी लगाकर देवीका मण्डप बनाना चाहिये तथा उसे सदा धूप-दीपसे सम्पन्न रखना चाहिये॥ २४-२५॥

अपनी शक्तिके अनुसार वहाँ [प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल] तीनों समय पूजा करनी चाहिये। देवीकी पूजामें धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, अनेक प्रकारके फल-पुष्प, गीत, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा वेदपारायण—इनके द्वारा भगवतीकी पूजा होनी चाहिये। नानाविध वाद्य बजाकर उत्सव मनाना चाहिये। इस अवसरपर चन्दन, आभूषण, वस्त्र, विविध प्रकारके व्यंजन, सुगन्धित तेल, हार—मनको प्रसन्न करनेवाले इन पदार्थोंसे विधिपूर्वक कन्याओंका पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन सम्पन्न करके अष्टमी या नवमीको मन्त्रोच्चारपूर्वक विधिवत् हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इसके बाद दशमीको पारण करना चाहिये। भक्तिनिष्ठ राजाओंको यथाशक्ति दान भी करना चाहिये॥ २६—३१॥

इस प्रकार पुरुष अथवा पतिव्रता सधवा या विधवा स्त्री जो कोई भी भक्तिपूर्वक नवरात्रव्रत करता है, वह इस लोकमें सुख तथा मनोभिलषित

इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान्।
देहान्ते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः॥ ३३

जन्मान्तरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी।
जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः॥ ३४

नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
आराधनं शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम्॥ ३५

अनेन विधिना राजन् समाराधय चण्डिकाम्।
जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम्॥ ३६

सुखञ्च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः।
पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः॥ ३७

वैश्योत्तम त्वमेवाद्य समाराधय कामदाम्।
देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम्॥ ३८

स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः।
सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः॥ ३९

देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः।
नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः॥ ४०

इह लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः।
भवन्ति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः॥ ४१

निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः।
बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चम्पकैः॥ ४२

अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः।
भवन्ति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः॥ ४३

धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवन्तः
सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः।
निगमपठितमन्त्रैः पूजिता यैर्भवानी
नृपतितिलकमुख्यास्ते भवन्तीह लोके॥ ४४

भोगोंको प्राप्त करता है और वह व्रतपरायण व्यक्ति देह-त्याग होनेपर परम दिव्य देवीलोकको प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

उसे जन्मान्तरमें देवी जगदम्बाकी अविचल भक्ति प्राप्त होती है और उत्तम कुलमें जन्म पाकर वह स्वभावतः सदाचारी होता है॥ ३४॥

नवरात्रव्रतको व्रतोंमें उत्तम व्रत कहा गया है; भगवती शिवाका आराधन सब प्रकारके उत्तम सुखको देनेवाला है॥ ३५॥

हे राजन्! इस विधिसे भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये, इससे शत्रुओंको जीतकर आप अपना उत्तम राज्य पुनः प्राप्त कर लेंगे और हे भूप! अपनी स्त्री-पुत्र आदि स्वजनोंको प्राप्तकर आप अपने भवनमें परम उत्तम सुखका इसी शरीरसे उपभोग करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

हे वैश्यश्रेष्ठ! आप भी आजसे समस्त कामनाओंको देनेवाली, सृष्टि और संहारकी कारणभूता विश्वेश्वरी देवी महामायाकी आराधना कीजिये। इससे आप अपने घर जानेपर अपने लोगोंमें मान्य हो जायँगे और मनोभिलषित सांसारिक सुख प्राप्त करके अन्तमें शुभ देवीलोकमें वास करेंगे—इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८-३९½॥

हे राजन्! जो मनुष्य भगवतीकी आराधना नहीं करते, वे नरकके भागी होते हैं। वे इस लोकमें अत्यन्त दुःखी, विविध व्याधियोंसे पीड़ित, शत्रुओंद्वारा पराजित, स्त्री-पुत्रसे हीन, तृष्णाग्रस्त और बुद्धिभ्रष्ट होते हैं॥ ४०-४१½॥

बिल्वपत्रोंसे तथा कनैल, कमल और चम्पाके फूलोंसे जो जगज्जननीकी आराधना करते हैं, शक्तिस्वरूपा भगवतीकी भक्तिमें रत वे पुण्यशाली लोग विविध प्रकारके सुख प्राप्त करते हैं॥ ४२-४३॥

[हे नृपश्रेष्ठ!] जो लोग वेदोक्त मन्त्रोंसे भवानीका पूजन करते हैं, वे मानव इस संसारमें सब प्रकारके धन, वैभव तथा सुखसे परिपूर्ण, समस्त गुणोंके आगार, माननीय, विद्वान् और राजाओंके शिरोमणि होते हैं॥ ४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भगवत्याः पूजाराधनविधिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

* * *

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सुरथ और समाधिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवतीका प्रकट होना और उन्हें इच्छित वरदान देना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ।
प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम्॥ १

हर्षेणोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ।
कृताञ्जलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ॥ २

भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ।
तव सूक्तसरस्वत्या गङ्गयेव भगीरथः॥ ३

साधवः सम्भवन्तीह परोपकृतितत्पराः।
अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम्॥ ४

पूर्वपुण्यप्रसङ्गेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः।
तवावाभ्यां महाभाग महादुःखविनाशकः॥ ५

भवन्ति मानवा भूमौ बहवः स्वार्थतत्पराः।
परार्थसाधने दक्षाः केचित्क्वापि भवादृशाः॥ ६

दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ वैश्योऽयं चातिदुःखितः।
उभौ संसारसन्तप्तौ तवाश्रमपदे मुदा॥ ७

दर्शनादेव हे विद्वन् गतं दुःखमिहावयोः।
देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव साम्प्रतम्॥ ८

धन्यावावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात्।
पावितौ भवता ब्रह्मन् कृपया करुणार्णव॥ ९

गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं भवार्णवे।
मग्नौ श्रान्ताविति ज्ञात्वा मन्त्रदानेन साम्प्रतम्॥ १०

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर दुःखित हृदयवाले वैश्य और राजाने प्रसन्नतापूर्वक विनम्रभावसे मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। भक्तिपरायण चित्तवाले, शान्त स्वभाववाले तथा हर्षके कारण खिले हुए नेत्रोंवाले वे दोनों वाक्य-विशारद राजा और वैश्य हाथ जोड़कर कहने लगे॥ १-२॥

हे भगवन्! हम दोनों दुःखी जनोंको आपकी सूक्तिरूपिणी वाणीने उसी प्रकार शान्त तथा पवित्र कर दिया, जैसे गंगाने राजा भगीरथको कर दिया था॥ ३॥

सज्जन लोग परोपकारपरायण, स्वाभाविक रूपसे गुणोंके भण्डार और सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले होते हैं। पूर्वजन्मोंके पुण्यके कारण ही महान् दुःखका नाश करनेवाले आपके इस शुभ आश्रममें हम दोनोंका आना हुआ। पृथ्वीपर बहुत-से स्वार्थी मनुष्य होते हैं, परंतु दूसरोंके हित-साधनमें कुशल आप-जैसे कुछ ही लोग कहीं-कहीं मिलते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुःखी हूँ और ये वैश्य अत्यन्त दुःखी हैं। हम दोनों इस संसारसे पीड़ित हैं। हे विद्वन्! आपके इस आश्रममें आकर प्रसन्नतापूर्वक आपके दर्शन और उपदेश-श्रवणसे हमारा शारीरिक तथा मानसिक क्लेश दूर हो गया॥ ४—८॥

हे ब्रह्मन्! आपकी अमृतमयी वाणीके रससे हम दोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये। हे करुणासागर! आपने अपनी कृपासे हम दोनोंको पवित्र कर दिया॥ ९॥

हे साधो! हम दोनों थककर इस संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं—यह जानकर अब आप हम दोनोंका हाथ पकड़िये और मन्त्रदान देकर भवसागरसे पार कर दीजिये॥ १०॥

तपः कृत्वातिविपुलं समाराध्य सुखप्रदाम्।
सम्प्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमन्दिरम्॥ ११

वदनात्तव सम्प्राप्य देवीमन्त्रं नवाक्षरम्।
स्मरणञ्च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ॥ १२

व्यास उवाच

इति संचोदितस्ताभ्यां सुमेधा मुनिसत्तमः।
ददौ मन्त्रं शुभं ताभ्यां ध्यानबीजपुरःसरम्॥ १३

तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं सम्मन्त्र्य गुरुदैवतौ।
जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम्॥ १४

एकान्ते विजने स्थाने कृत्वासनपरिग्रहम्।
उपविष्टौ स्थिरप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ॥ १५

मन्त्रजाप्यरतौ शान्तौ चरित्रत्रयपाठकौ।
निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ॥ १६

तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा।
पादाम्बुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाप्यलम्॥ १७

कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः।
कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने॥ १८

नान्यकार्यपरौ क्वापि बभूवतुः कदाचन।
देवीध्यानपरौ नित्यं जपमन्त्ररतौ सदा॥ १९

एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप।
बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशनौ नृप॥ २०

वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ।
शुष्कपर्णाशनौ दान्तौ जपध्यानपरायणौ॥ २१

पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनञ्च तौ।
प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम्॥ २२

रक्ताम्बरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम्।
कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम्॥ २३

अब अत्यन्त कठोर तपस्या करके हम दोनों सुख प्रदान करनेवाली जगदम्बाका आराधन करके उनका दर्शन प्राप्तकर अपने-अपने घरोंको वापस जायँगे॥ ११॥

आपके मुखसे देवीका नवाक्षरमन्त्र ग्रहण करके हम दोनों निराहार रहकर व्रत करेंगे और उस मन्त्रका जप करेंगे॥ १२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन दोनोंके आग्रह करनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधाने उन्हें ध्यान-बीजसहित देवीका मंगलकारी नवाक्षरमन्त्र प्रदान किया॥ १३॥

वे दोनों वैश्य और राजा मुनिसे मन्त्र और उसके ऋषि, छंद, देवताका ज्ञान प्राप्त करके तथा उनसे आज्ञा लेकर नदीके अत्युत्तम तटपर चले गये॥ १४॥

अत्यन्त कृशकाय वे दोनों एकान्तमें निर्जन स्थानपर आसन लगाकर स्थिरचित्त होकर बैठ गये॥ १५॥

उन दोनोंने शान्तचित्त तथा ध्यानपरायण होकर मन्त्रजप और भगवतीके तीनों चरित्रोंका पाठ करते हुए एक मासका समय व्यतीत कर दिया॥ १६॥

उनके एक मासके व्रतसे ही उनमें भगवती भवानीके चरणकमलमें उत्तम प्रीति उत्पन्न हो गयी और उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी॥ १७॥

वे दोनों नित्य जाकर एक बार महात्मा [सुमेधा] मुनिके चरणोंमें प्रणाम करते थे और वहाँसे लौटकर फिर अपने कुशासनपर बैठ जाते थे। वे दोनों अन्य कोई भी कार्य नहीं करते थे और सदैव देवीके ध्यान तथा मन्त्रजपमें संलग्न रहते थे॥ १८-१९॥

हे राजन्! इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होनेपर वे फलाहारका त्याग करके पत्तेके आहारपर रहने लगे। हे नृप! उन दोनों—वैश्य और राजाने एक वर्षतक सूखे पत्ते खाकर इन्द्रियोंको वशमें करके जप और ध्यानमें रत रहते हुए तप किया॥ २०-२१॥

इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत होनेपर उन दोनोंको किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहारी दर्शन प्राप्त हुआ। राजाने स्वप्नमें देवी जगदम्बिकाको लाल वस्त्र धारण किये हुए तथा सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत देखा॥ २२-२३॥

वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवीं प्रीतियुक्तौ बभूवतुः।
जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ॥ २४

एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ।
चक्रतुस्तौ तदा चिन्तां चित्ते दर्शनलालसौ॥ २५

प्रत्यक्षं दर्शनं देव्या न प्राप्तं शान्तिदं नृणाम्।
देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ॥ २६

इति सञ्चिन्त्य मनसा राजा कुण्डं चकार ह।
त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः॥ २७

संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान्।
जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः॥ २८

तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा।
रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ॥ २९

तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः।
प्राह प्रीतिभरोद्भ्रान्तौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम्॥ ३०

देव्युवाच

वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
तुष्टाहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम॥ ३१

वैश्यं प्राह तदा देवी प्रसन्नाहं महामते।
किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम्॥ ३२

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदान्वितः।
देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥ ३३

तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन् निजं गृहम्।
शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यन्ति पराजिताः॥ ३४

मन्त्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यन्ति पादयोः।
कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम्॥ ३५

स्वप्नमें देवीका दर्शन प्राप्तकर दोनों प्रेमभावसे परिपूर्ण हो गये। अब वे दोनों तीसरे वर्षमें मात्र जलके आहारपर रहने लगे॥ २४॥

इस प्रकार तीन वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् वे दोनों—राजा और वैश्य मनमें देवीके साक्षात् दर्शनकी लालसासे चिन्तित हो उठे॥ २५॥

अत्यन्त दुःखी तथा व्याकुल होकर उन दोनोंने निश्चय किया कि मनुष्योंको शान्ति प्रदान करनेवाली देवीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, अतः अब हम शरीरका त्याग कर देंगे॥ २६॥

ऐसा मनमें विचारकर राजाने एक हाथ प्रमाणका त्रिभुजाकार, सुन्दर तथा सुस्थिर अग्निकुण्ड बनाया। उसमें अग्निकी स्थापना करके राजा अपना मांस काट-काटकर बार-बार हवन करने लगे। साथ ही अत्यन्त भक्तिमान् वह वैश्य भी प्रदीप्त अग्निमें अपना मांस डालने लगा। तत्पश्चात् वे दोनों जब अपने रुधिरसे इन देवीको बलि देनेके लिये उद्यत हुए तब भगवती उन दोनोंको प्रेम-भक्तिमें तन्मय और अत्यन्त दुःखी देखकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनसे कहने लगीं—॥ २७—३०॥

देवी बोलीं—हे राजन्! अपना मनोभिलषित वर माँगो, मैं आज तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। अब मैंने समझ लिया कि तुम मेरे भक्त हो। उसके बाद देवीने वैश्यसे कहा—हे महामते! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा अभीष्ट क्या है? तुम्हारे मनमें जो भी हो माँग लो, मैं उसे दूँगी॥ ३१-३२॥

व्यासजी बोले—उनके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मनवाले राजाने उनसे कहा कि बलपूर्वक मैं शत्रुओंका नाशकर अपना राज्य प्राप्त करूँ—मुझे आज यह वरदान दीजिये॥ ३३॥

तब देवीने उनसे कहा—हे राजन्! अपने घरको जाओ, तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही क्षीण बलवाले होकर पराजित हो जायँगे। हे महाभाग! तुम्हारे मन्त्रिगण आकर तुम्हारे पैरोंपर गिरेंगे। अब आप अपने नगरमें सुखपूर्वक राज्य करें। हे राजन्! अपने विस्तृत

कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप।
देहान्ते जन्म सम्प्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः॥ ३६

व्यास उवाच

वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृताञ्जलिपुटः शुचिः।
न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा॥ ३७
सर्वं बन्धकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम्।
ज्ञानं मे देहि विशदं मोक्षदं बन्धनाशनम्॥ ३८
असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढा मज्जन्ति पामराः।
पण्डिताः सन्तरन्तीह तस्मान्नेच्छन्ति संसृतिम्॥ ३९

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरःस्थितम्।
वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः॥ ४०
इति दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवान्तरधीयत।
अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम्॥ ४१
प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे।
तदैव तस्य सचिवास्तत्रागत्य नृपं प्रजाः॥ ४२
प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्राञ्जलिस्थिताः।
राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे॥ ४३
राज्यं निष्कण्टकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम्॥ ४४
आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मन्त्रिभिः परिवारितः।
सम्प्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वजनबान्धवान्॥ ४५
बुभुजे पृथिवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम्।
वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसङ्गः समन्ततः॥ ४६
कालातिवाहनं तत्र मुक्तबन्धश्चकार ह।
तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ॥ ४७
एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम्।
आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः॥ ४८
दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः।
एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा॥ ४९

साम्राज्यका दस हजार वर्षोंतक शासन करके देहत्यागके बाद सूर्यसे जन्म प्राप्त करके तुम [सावर्णि] मनु होओगे॥ ३४—३६॥

व्यासजी बोले—शुद्धहृदय वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—अब मुझे न घरकी आवश्यकता है, न धनकी और न पुत्रकी ही। हे माता! ये सभी बन्धनमें डालनेवाले और स्वप्नकी भाँति नश्वर हैं, अतः आप मुझे बन्धनका नाश करनेवाला और मोक्ष देनेवाला दिव्य ज्ञान प्रदान करें। इस असार संसारमें अज्ञानी डूब जाते हैं और ज्ञानी पार उतर जाते हैं, इसलिये वे संसारकी इच्छा नहीं करते॥ ३७—३९॥

व्यासजी बोले—तब अपने समक्ष खड़े वैश्यकी बात सुनकर देवी महामायाने कहा—हे वैश्यश्रेष्ठ! तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०॥

इस प्रकार उन दोनोंको वरदान देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर राजा सुरथने उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके घोड़ेपर चढ़कर चलनेका निश्चय किया, तभी उनके प्रजाजनों और मन्त्रिगणोंने वहाँ आकर प्रणाम किया; वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा विनम्र होकर राजासे कहने लगे—हे राजन्! आपके शत्रुगण अपने पापके कारण युद्धमें मारे गये। हे भूप! अब आप अपने नगरमें निवास करके निष्कण्टक राज्य कीजिये॥ ४१—४३$\frac{१}{२}$॥

उनकी बात सुनकर राजा मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रियोंके साथ चल दिये। वे अपने राज्य, स्त्री और बन्धु-बान्धवोंको पाकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगने लगे॥ ४४-४५$\frac{१}{२}$॥

वैश्य भी ज्ञान प्राप्त करके सर्वथा आसक्तिरहित और बन्धनसे मुक्त होकर तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ तथा भगवतीके गुणोंका गान करता हुआ समय व्यतीत करने लगा॥ ४६-४७॥

इस प्रकार देवीकी परम अद्भुत लीला तथा राजा और वैश्यद्वारा की गयी उनकी आराधना एवं फलप्राप्तिको मैंने यथार्थ रूपसे आपसे कहा। देवीके शुभ आविर्भाव और उनके द्वारा दैत्योंके विनाशकी कथा भी मैंने आपसे कही। भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली वे भगवती ऐसे प्रभाववाली हैं!॥ ४८-४९॥

यः शृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम्।
सम्प्राप्नोति नरः सत्यं संसासुखमद्भुतम्॥ ५०

ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा।
पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम्॥ ५१

अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं परमं मतम्॥ ५२

सूत उवाच

जनमेजयेन राज्ञासौ पृष्टः सत्यवतीसुतः।
उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित्॥ ५३

चरितं चण्डिकायास्तु शुम्भदैत्यवधाश्रितम्।
कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः।
इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः॥ ५४

जो मनुष्य उनके इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह संसारमें अद्भुत सुख प्राप्त करता है, यह सत्य है। इस पवित्र और अद्भुत आख्यानका श्रवण करनेसे यह ज्ञान, मोक्ष, कीर्ति और सुख प्रदान करता है। यह मनुष्योंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा समस्त धर्मोंका सार और धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिका परम कारण बताया गया है॥ ५०—५२॥

सूतजी बोले—राजा जनमेजयके पूछनेपर सभी अर्थ-तत्त्वोंको जाननेवाले सत्यवतीपुत्र व्यासने उनसे यह दिव्य देवीभागवतसंहिता कही। परम दयालु भगवान् कृष्णद्वैपायन मुनि व्यासने शुम्भदैत्यके वधकी कथापर आधारित देवी चण्डिकाके चरित्रका वर्णन किया था। हे मुनीश्वरो! समस्त पुराणोंका सारस्वरूप यह इतिहास मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्देवीभक्त्येष्टप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

* * *

॥ पंचमः स्कन्धः समाप्तः॥

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम्। श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ। श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत्। श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः। अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत्॥

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय है। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है; वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये; क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण-विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक—प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता।

[स्कन्दपु० का० २।९६-९७, ९९-१००]

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

षष्ठः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

त्रिशिराकी तपस्यासे चिन्तित इन्द्रद्वारा तपभंगहेतु अप्सराओंको भेजना

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम्।
न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम्॥ १

पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम्।
वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम्॥ २

वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः।
स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना॥ ३

त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः।
शक्रेण घातितः कस्माद् ब्रह्मयोनिर्महाबलः॥ ४

देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः।
तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः पुराणागमवादिभिः॥ ५

विरोधोऽत्र महान् भाति नूनं शतमखेन ह।
छलेन बलवान् वृत्रः शक्रेण विनिपातितः॥ ६

विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः।
प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान् प्रभुः॥ ७

सन्धिं विधाय स ह्येवं मन्त्रितोऽसौ महाबलः।
हरिभ्यां सत्यमुत्सृज्य जलफेनेन शातितः॥ ८

कृतमिन्द्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम्।
महान्तोऽपि च मोहेन वञ्चिताः पापबुद्धयः॥ ९

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूतजी! आपकी वाणीरूपी अत्यन्त मधुर सुधाका पान करके अभी हम सन्तृप्त नहीं हुए हैं। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने जिस उत्तम श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका प्रणयन किया है; उस पुराणकी मंगलमयी, वेदवर्णित, मनोहर, प्रसिद्ध और पापोंका नाश करनेवाली कथाको हम आपसे पुनः पूछना चाहते हैं॥ १-२॥

त्वष्टाका वृत्रासुर नामसे विख्यात पराक्रमी पुत्र महात्मा इन्द्रके द्वारा क्यों मारा गया? त्वष्टा तो देवपक्षके थे और उनका पुत्र अत्यन्त बलवान् था, ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न उस महाबलीका इन्द्रके द्वारा क्यों वध किया गया? पुराणों और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञलोगोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे और पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंको तमोगुणसे उत्पन्न कहा है, परंतु यहाँ तो महान् विरोध प्रतीत होता है कि बलवान् वृत्रासुर सौ यज्ञोंके कर्ता इन्द्रके द्वारा छलपूर्वक मारा गया और इसके लिये भगवान् विष्णुद्वारा प्रेरणा दी गयी जो कि स्वयं महान् सत्त्वगुणी हैं तथा वे परम प्रभु छलपूर्वक वज्रमें प्रविष्ट हुए! सन्धि करके उस महाबली वृत्रको पहले आश्वस्त कर दिया गया, किंतु पुनः विष्णु और इन्द्रने सत्य (सन्धिकी बात)-को छोड़कर जलके फेनसे उसे मार डाला!॥ ३—८॥

हे सूतजी! इन्द्र और विष्णुके द्वारा ऐसा दुःसाहस क्यों किया गया? महान् लोग भी मोहमें फँसकर पापबुद्धि हो जाते हैं॥ ९॥

अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवन्ति सुरसत्तमाः।
सदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः॥ १०
एवं विशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः।
हत्वा वृत्रं तु विश्वस्तं शक्रेण छद्मना पुनः॥ ११
प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम्।
किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः कृतः॥ १२
श्रीदेव्या इति तच्चापि चित्तं मोहयतीह नः।

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम्॥ १३
यथेन्द्रेण च सम्प्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम्।
एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः॥ १४
पारीक्षितेन राज्ञापि स यदाह च तद् ब्रुवे।

जनमेजय उवाच

कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो मघवता मुने॥ १५
सहायं विष्णुमासाद्य छद्मना सात्त्विकेन ह।
कथं च देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना॥ १६
कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुङ्गव।
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे॥ १७
महतां चरितं शृण्वन् को विरज्येत मानवः।
कथयाम्बावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम्॥ १८

व्यास उवाच

धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी
जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा।
पीत्वामृतं देववरास्तु सर्वथा
पाने वितृष्णाः प्रभवन्ति वै पुनः॥ १९
दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः
कथासु राजन् महनीयकीर्तेः।
श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति
वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति॥ २०
युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्
वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे।
दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं
हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव॥ २१

श्रेष्ठ देवगण भी घोर अन्याय-मार्गके अनुगामी हो जाते हैं, जबकि सदाचारके कारण ही देवताओंको विशिष्टता प्राप्त है॥ १०॥

इन्द्रके द्वारा विश्वासमें लेकर वृत्रासुरकी हत्या कर दी गयी—ऐसे विशिष्ट धर्मके द्वारा उनका सदाचार कहाँ रह गया? उन्हें इस ब्रह्महत्या-जनित पापका फल मिला या नहीं? आपने पहले कहा था कि वृत्रासुरका वध स्वयं देवीने ही किया था—इससे हमारा चित्त और भी मोहमें पड़ गया है॥ ११-१२½॥

सूतजी बोले—हे मुनिगण! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्धित और उस हत्यासे इन्द्रको प्राप्त महान् दुःखकी कथा सुनें। ऐसा ही पूर्वकालमें परीक्षित्‌पुत्र राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे पूछा था; तब उन्होंने जो कहा, उसे मैं कहता हूँ॥ १३-१४½॥

जनमेजय बोले—हे मुने! सत्त्वगुणसे सम्पन्न इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर वृत्रासुरको पूर्वकालमें छलपूर्वक क्यों मारा? देवीके द्वारा उस दैत्यका क्यों और किस प्रकार वध किया गया? हे मुनिश्रेष्ठ! एक व्यक्तिका दो लोगोंके द्वारा कैसे वध किया गया—इसे मैं सुनना चाहता हूँ; मुझे महान् कौतूहल है॥ १५—१७॥

कौन मनुष्य महापुरुषोंके चरित्रको सुननेसे विरत होगा। अतः आप वृत्रासुरके वधपर आधारित जगदम्बाके माहात्म्यको कहिये॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं, जो कि आपकी इस प्रकारकी बुद्धि पुराणश्रवणमें अत्यन्त आदरपूर्वक लगी हुई है। श्रेष्ठ देवगण अमृतका पान करके पूर्ण तृप्त हो जाते हैं, परंतु आप इस कथामृतका बार-बार पान करके भी अतृप्त ही हैं। हे राजन्! महान् कीर्तिवाले आपका भक्तिभाव कथाओंमें दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। श्रोता जब एकाग्रमनसे सुनता है तब वक्ता भी प्रसन्नमनसे कथा कहता है॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें इन्द्र तथा वृत्रासुरका जो युद्ध हुआ था और निरपराध शत्रु वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको जो दुःख प्राप्त हुआ था, वह वेद और पुराणमें प्रसिद्ध है॥ २१॥

चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां
यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः।
मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते
चक्रुश्च निन्द्यमनिशं किल पापभीताः॥ २२

विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्
सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम्।
कोऽन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसापि जेतुं
शक्तः समस्तजनमोहकरीं भवानीम्॥ २३

मत्स्यादियोनिषु सहस्रयुगेषु सद्यः
साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र।
नारायणो नरसखो भगवाननन्तः
कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित्॥ २४

देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयं
पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः।
पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति
मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत्॥ २५

न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः
कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित्।
विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो
वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम्॥ २६

अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम्।
जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ॥ २७

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तमवनीपते।
कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः॥ २८

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः।
देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः॥ २९

स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलासृजत्।
विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम्॥ ३०

जब मायाके बलसे मुनिगण भी मोहमें पड़ जाते हैं और वे पापभीरु होकर निरन्तर निन्दनीय कर्म करने लग जाते हैं तब हे राजन्! विष्णु और वज्रधारी इन्द्रने छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरका वध कर दिया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?॥ २२॥

सत्त्वगुणके मूर्तिमान् विग्रह होते हुए भी भगवान् विष्णुने जिनकी मायासे मोहित होकर सदैव छलपूर्वक दैत्योंका संहार किया तब भला ऐसा कौन प्राणी होगा जो सब लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली उन भगवती भवानीको अपने मनोबलसे जीतनेमें सक्षम हो सके!॥ २३॥

भगवतीकी ही प्रेरणासे नरऋषिके सखा नारायण भगवान् अनन्त हजारों युगोंमें मत्स्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं और कभी अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल कार्य करते हैं॥ २४॥

यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है, ये मेरे स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धव हैं—इस मोहमें पड़कर सभी प्राणी पुण्य तथा पापकर्म करते रहते हैं; क्योंकि अत्यन्त बलशाली मायागुणोंसे वे मोहित कर दिये गये हैं॥ २५॥

हे राजन्! इस पृथ्वीपर कार्य और कारणका विज्ञ कोई भी व्यक्ति [उन जगदम्बाकी मायाके] मोहसे छुटकारा नहीं पा सकता; क्योंकि भगवती महामायाके तीनों गुणोंसे मोहित होकर वह पूर्णरूपसे सदा उनके अधीन रहता है॥ २६॥

इसलिये [उन्हीं देवीकी] मायासे मोहित होकर अपना स्वार्थ साधनेमें तत्पर रहनेवाले विष्णु और इन्द्रने छलपूर्वक वृत्रासुरको मार डाला। हे पृथ्वीपते! अब मैं वृत्रासुर और इन्द्रके पारस्परिक पूर्ववैरके कारणकी कथा बताता हूँ॥ २७-२८॥

देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे। वे महान् तपस्वी, देवताओंका कार्य करनेवाले, अति कुशल तथा ब्राह्मणोंके प्रिय थे॥ २९॥

उन्होंने इन्द्रसे द्वेषके कारण तीन मस्तकोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया, जो विश्वरूप नामसे विख्यात हुआ। वह परम मनोहर रूपवाला था॥ ३०॥

त्रिभिः स वदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः।
त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः॥ ३१

वेदानेकेन सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपिबत्।
तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च निरीक्षते॥ ३२

त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम्।
तपस्वी स मृदुर्दान्तो धर्ममेव समाश्रितः॥ ३३

पञ्चाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम्।
जलमध्ये निवासं च हेमन्ते शिशिरे तथा॥ ३४

निराहारो जितात्मासौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
तपश्चचार मेधावी दुष्करं मन्दबुद्धिभिः॥ ३५

तं च दृष्ट्वा तपस्यन्तं खेदमाप शचीपतिः।
विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति॥ ३६

दृष्ट्वा तस्य तपो वीर्यं सत्यं चामिततेजसः।
चिन्तां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः॥ ३७

विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति।
नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः॥ ३८

तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय साम्प्रतम्।
कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः॥ ३९

तथैवाद्य प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः॥ ४०

आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने।
उर्वशीं मेनकां रम्भां घृताचीं च तिलोत्तमाम्॥ ४१

समाहूयाब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः।
प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥ ४२

यत्तो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः।
कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम्॥ ४३

अपने तीन श्रेष्ठ तथा मनोहर मुखोंके कारण वह अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी देता था। वह मुनि अपने तीन मुखोंसे तीन भिन्न-भिन्न कार्य करता था। वह एक मुखसे वेदाध्ययन करता था, एक मुखसे मधुपान करता था और तीसरे मुखसे सब दिशाओंका एक साथ निरीक्षण करता था॥ ३१-३२॥

वह त्रिशिरा भोगका त्याग करके मृदु, संयमी और धर्मपरायण तपस्वी होकर अत्यन्त कठोर तप करने लगा॥ ३३॥

ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापते, वृक्षकी डालीमें पैरके बल अधोमुख लटके रहते एवं हेमन्त और शिशिर ऋतुमें जलमें स्थित रहते थे। सब कुछ त्याग करके जितेन्द्रिय भावसे निराहार रहकर उस बुद्धिमान् [त्रिशिरा]-ने मन्दबुद्धि प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३४-३५॥

उसको तप करते देखकर शचीपति इन्द्र दुःखित हुए। उन्हें यह विषाद हुआ कि कहीं यह इन्द्र न बन जाय॥ ३६॥

उस अत्यन्त तेजस्वी [विश्वरूप]-का तप, पराक्रम और सत्य देखकर इन्द्र निरन्तर इस प्रकार चिन्तित रहने लगे—उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता हुआ यह त्रिशिरा मुझे ही समाप्त कर देगा, इसीलिये बुद्धिमानोंने कहा है कि बढ़ते हुए पराक्रमवाले शत्रुकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इसके तपके नाशका उपाय इसी समय करना चाहिये। कामदेव तपस्वियोंका शत्रु है, कामसे ही तपका नाश होता है। अतः मुझे वैसा ही करना चाहिये, जिससे यह भोगोंमें आसक्त हो जाय॥ ३७—३९½॥

ऐसा मनमें विचारकर बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले उन बुद्धिमान् इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र त्रिशिराको प्रलोभनमें डालनेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी। उन्होंने उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा आदिको बुलाकर कहा—अपने रूपपर गर्व करनेवाली हे अप्सराओ! आज मेरा कार्य आ पड़ा है, तुम सब मेरे उस प्रिय कार्यको सम्पन्न करो॥ ४०—४२॥

मेरा एक महान् दुर्धर्ष शत्रु संयत होकर तपस्या कर रहा है। शीघ्र ही उसके पास जाओ और उसे प्रलोभित करो; इस प्रकार शीघ्र ही मेरा कार्य करो॥ ४३॥

शृङ्गारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ।
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥ ४४

अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम् ।
बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलम्बितः ॥ ४५

भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताबलाः ।
उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४६

तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः ।
मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने ॥ ४७

यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते ।
नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने ॥ ४८

कटाक्षैरङ्गभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो ।
लोलुपं वशमस्माकं करिष्यामो नियन्त्रितम् ॥ ४९

व्यास उवाच

इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ।
कुर्वन्त्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोचितानपि ॥ ५०

गायन्त्यस्तालभेदैस्ता नृत्यन्त्यः पुरतो मुनेः ।
तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वराङ्गनाः ॥ ५१

नापश्यत्स तपोराशिरङ्गनानां विडम्बनम् ।
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा मूकान्धबधिरः स्थितः ॥ ५२

दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे ।
कुर्वन्त्यो गाननृत्यादिप्रपञ्चानतिमोहदान् ॥ ५३

न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः ।
परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ५४

कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् ।
श्रान्ता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥ ५५

अनेक प्रकारके शृंगार-वेषों तथा शरीरके हाव-भावोंसे उसे प्रलोभित करो और मेरे मानसिक सन्तापको शान्त करो; तुमलोगोंका कल्याण हो ॥ ४४ ॥

हे महाभागा अप्सराओ! उसके तपोबलको जानकर मैं व्याकुल हो गया हूँ, वह बलवान् शीघ्र ही मेरा पद छीन लेगा ॥ ४५ ॥

हे अबलाओ! मेरे सामने यह भय आ गया है, तुमलोग शीघ्र ही इसका नाश कर दो। इस कार्यके आ पड़नेपर तुम सब मिलकर आज मेरा उपकार करो ॥ ४६ ॥

उनके इस वचनको सुनकर नारियों (अप्सराओं)-ने उन्हें नमन करते हुए कहा—हे देवराज! आप भय न करें, हम उसे प्रलोभनमें डालनेका प्रयत्न करेंगी ॥ ४७ ॥

हे महातेजस्विन्! जिस प्रकारसे आपको भय न हो, हम वैसा ही करेंगी। उस मुनिको लुभानेके लिये हम नृत्य, गीत और विहार करेंगी। हे विभो! कटाक्षों और अंगोंकी विविध भंगिमाओंसे मुनिको मोहित करके उन्हें लोलुप, अपने वशीभूत तथा नियन्त्रणमें कर लेंगी ॥ ४८-४९ ॥

व्यासजी बोले—इन्द्रसे ऐसा कहकर वे अप्सराएँ त्रिशिराके समीप गयीं और कामशास्त्रमें कहे गये विभिन्न प्रकारके हाव-भावका प्रदर्शन करने लगीं ॥ ५० ॥

वे अप्सराएँ मुनिके सम्मुख अनेक प्रकारके तालोंमें गाती और नाचती हुई उन्हें मोहित करनेके लिये विविध प्रकारके हाव-भाव करती थीं ॥ ५१ ॥

किंतु उन तपस्वीने अप्सराओंकी चेष्टाको देखातक नहीं और इन्द्रियोंको वशमें करके वे गूँगे, अन्धे और बहरेकी तरह बैठे रहे ॥ ५२ ॥

वे अप्सराएँ गान, नृत्य आदि मोहित करनेवाले प्रपंच करती हुई कुछ दिनोंतक उनके श्रेष्ठ आश्रममें रहीं ॥ ५३ ॥

जब उनकी कामचेष्टाओंसे मुनि त्रिशिराका ध्यान विचलित नहीं हुआ, तब वे अप्सराएँ पुनः लौटकर इन्द्रके सम्मुख उपस्थित हुईं ॥ ५४ ॥

अत्यन्त थकी हुई, दीन अवस्थावाली, भयभीत और उदास मुखवाली उन सबने हाथ जोड़कर देवराजसे इस प्रकार कहा— ॥ ५५ ॥

देवदेव महाराज यत्नश्च परमः कृतः।
न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो॥ ५६

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन।
नास्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेन्द्रिये॥ ५७

दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना।
मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि॥ ५८

विसृज्याप्सरसः शक्रश्चिन्तयामास मन्दधीः।
तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसाम्प्रतम्॥ ५९

विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम्।
चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते॥ ६०

हे देवदेव! हे महाराज! हे विभो! हमने महान् प्रयत्न किया, परंतु हम उस दुर्धर्ष मुनिको धैर्यसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं हो पायीं॥ ५६॥

हे पाकशासन! आपको कोई दूसरा ही उपाय करना चाहिये, उन जितेन्द्रिय तपस्वीपर हमारा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता॥ ५७॥

हमारा बड़ा भाग्य है कि तपस्यासे अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले उन महात्मा मुनिने हमें शाप नहीं दिया॥ ५८॥

अप्सराओंको विदा करके क्षुद्रबुद्धि तथा पापबुद्धि इन्द्र उसके ही वधका अनुचित उपाय सोचने लगे॥ ५९॥

हे राजन्! लोक-लज्जा और महान् पापके भयको छोड़कर उन्होंने उसके वधके लिये अपनी बुद्धिको पापमय बना दिया॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
त्रिशिरसस्तपोभङ्गाय देवराजेन्द्रद्वारा नानोपायचिन्तनवर्णनं
नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

* * *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा त्रिशिराका वध, क्रुद्ध त्वष्टाद्वारा अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करके वृत्रासुरको उत्पन्न करना और उसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित करना

व्यास उवाच

अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः
समधिगम्य गजासनसंस्थितः।
त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा
मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम्॥ १
तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं
जितगिरं सुसमाधिवशं गतम्।
रविविभावसुसन्निभमोजसा
सुरपतिः परमापदमभ्यगात्॥ २
कथमसौ विनिहन्तुमहो मया
मुनिरपापमतिः किल सम्मतः।
रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः
कथमुपेक्ष्य इहासनकामुकः॥ ३

व्यासजी बोले—इस प्रकार लोभके वशीभूत होकर पापबुद्धि देवराज इन्द्रने ऐरावत हाथीपर सवार हो त्रिशिराके पास जाकर उस अमेय पराक्रमवाले मुनिको देखा॥ १॥

उसे दृढ़ आसनपर बैठे, वाणीको वशमें किये, पूर्ण समाधिमें स्थित और सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी देखकर देवराज इन्द्र बहुत दुःखित हुए॥ २॥

यह मुनि निष्पापबुद्धि है; इसे मारनेमें मैं कैसे समर्थ हो सकूँगा? तपोबलसे अत्यन्त समृद्ध तथा मेरा आसन प्राप्त करनेकी इच्छावाले इस शत्रुकी उपेक्षा भी कैसे करूँ—ऐसा सोचकर देवसंघके

इति विचिन्त्य पविं परमायुधं
प्रति मुमोच मुनिं तपसि स्थितम्।
शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं
त्रिशिरसं सुरसङ्घपतिः स्वयम्॥ ४
तदभिघातहतः स धरातले
किल पपात ममार च तापसः।
शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं
निपतितं भुवि चाद्भुतदर्शनम्॥ ५
तं निहत्य मुदमाप सुरेश-
श्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः।
हा हतेति भृशमार्तनिस्वनाः
किं कृतं शतमखेन पापिना॥ ६
विनापराधं तपसां निधिर्हतः
शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा।
फलं किलायं तरसा कृतस्य
प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य॥ ७
तं निहत्य तरसा सुरराजो
निर्जगाम निजमन्दिरमाशु।
स हतोऽपि विरराज महात्मा
जीवमान इव तेजसां निधिः॥ ८
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवन्तमिव वृत्रहा।
चिन्तामापातिखिन्नाङ्गः किं वा जीवेदयं पुनः॥ ९
विमृश्य मनसातीव तक्षाणं पुरतः स्थितम्।
मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः॥ १०
तक्षंश्छिन्धि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम।
मा जीवतु महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम्॥ ११
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन्।

तक्षोवाच

महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति॥ १२
ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम्।
त्वया वै निन्दितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम्॥ १३
अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे।
मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृन्तनेन किम्॥ १४
भयं किं तेऽत्र सञ्जातं पाकशासन कथ्यताम्।

स्वामी इन्द्रने अपने तीव्रगामी तथा श्रेष्ठ आयुध वज्रको सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी, तपमें स्थित मुनि त्रिशिराके ऊपर चला दिया॥ ३-४॥

उसके प्रहारसे घायल होकर वे तपस्वी उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े और निष्प्राण हो गये, जैसे वज्रसे विदीर्ण होकर पर्वतोंके शिखर पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं; यह घटना देखनेमें बड़ी अद्भुत थी॥ ५॥

उनको मारकर इन्द्र प्रसन्न हो गये, परंतु वहाँ स्थित अन्य मुनिगण आर्तस्वरमें चिल्लाने लगे कि हाय! हाय! सौ यज्ञ करनेवाले पापी इन्द्रने यह क्या कर डाला!॥ ६॥

पापबुद्धि और दुष्टात्मा शचीपति इन्द्रने इस निरपराध तपोनिधिको मार डाला। इस हत्याजनित पापका फल यह पापी अब शीघ्र ही प्राप्त करे॥ ७॥

उन्हें मारकर देवराज तुरंत ही अपने भवनको जानेके लिये उद्यत हुए। तेजके निधि वे महात्मा (त्रिशिरा) मर जानेपर भी जीवितकी भाँति प्रतीत होते थे॥ ८॥

उसे जीवितकी भाँति भूमिपर गिरा हुआ देखकर अति उदास मनवाले वे वृत्रहन्ता इन्द्र इस चिन्तामें पड़ गये कि कहीं यह फिर जीवित न हो जाय॥ ९॥

मनमें बहुत देरतक विचार करनेके बाद इन्द्रने सामने खड़े तक्षा (बढ़ई)-को देखकर अपने कार्यके अनुरूप बात कही॥ १०॥

हे तक्षन्! मेरा कहा हुआ करो; इसके सिर काट लो, जिससे यह जीवित न रहे। यह महातेजस्वी जीवित न होते हुए भी जीवितकी भाँति प्रतीत होता है। उनकी यह बात सुनकर तक्षाने धिक्कारते हुए कहा—॥ ११$\frac{1}{2}$॥

तक्षा बोला—ये अति विशाल कन्धेवाले प्रतीत हो रहे हैं। मेरा परशु इस कन्धेको काट नहीं सकेगा। अतः मैं इस निन्दनीय कार्यको नहीं करूँगा, आपने तो निन्दित और सत्पुरुषोंद्वारा गर्हित कर्म कर डाला है, मैं पापसे डरता हूँ; फिर मरे हुएको क्यों मारूँ? ये मुनि तो मर गये हैं, फिर इनका सिर काटनेसे क्या प्रयोजन? हे पाकशासन! कहिये, इनसे आपको क्या भय उत्पन्न हुआ है?॥ १२—१४$\frac{1}{2}$॥

इन्द्र उवाच

सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः॥ १५
तस्माद् बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम।

तक्षोवाच

नात्र किं त्रपसे विद्वन् क्रूरेणानेन कर्मणा॥ १६
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम्।

इन्द्र उवाच

प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै॥ १७
शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते।

तक्षोवाच

त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह॥ १८
तं विनाहं कथं पापं करोमि वद मे विभो।

इन्द्र उवाच

मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि॥ १९
शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यन्ति मानवाः।
शुल्केनानेन छिन्धि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम्॥ २०

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षा मुदान्वितः।
कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि॥ २१
छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि।
तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः॥ २२
कलविङ्कास्तित्तिरयस्तथैव च कपिञ्जलाः।
पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा॥ २३
येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा।
तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिञ्जलाः॥ २४
येन सर्वा दिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते।
तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः॥ २५
यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल।
विनिष्पेतुस्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप॥ २६
एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाण्डजान्।
मुमोद मनसा राजन् जगाम त्रिदिवं पुनः॥ २७
गते शक्रे तु तक्षापि स्वगृहं तरसा ययौ।
यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते॥ २८
इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम्।
मेने कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिन्तयन्॥ २९

इन्द्र बोले—यह निर्मल आकृतिवाली देह सजीवकी भाँति दिखायी देती है। यह मेरा शत्रु मुनि पुनः न जीवित हो जाय, इसलिये मैं डरता हूँ॥ १५½॥

तक्षा बोला—हे विद्वन्! क्या इस क्रूर कर्मको करते हुए आपको लज्जा नहीं आती? इस ऋषिपुत्रको मारकर क्या आपको ब्रह्महत्याका भय नहीं है?॥ १६½॥

इन्द्र बोले—मैं बादमें पापके नष्ट होनेके लिये प्रायश्चित्त कर लूँगा। हे महामते! शत्रुको तो सब प्रकारसे छलके द्वारा भी मार देना चाहिये॥ १७½॥

तक्षा बोला—हे इन्द्र! आप लोभके वशीभूत होकर पाप कर रहे हैं। हे विभो! बतायें, मैं उसके बिना पाप क्यों करूँ?॥ १८½॥

इन्द्र बोले—मैं सदैवके लिये तुम्हारे यज्ञभागकी व्यवस्था कर दूँगा। मनुष्य यज्ञभागके रूपमें पशुका सिर तुम्हें देंगे। इस शुल्कके बदलेमें तुम इसके सिर काट दो और मेरा प्रिय कार्य कर दो॥ १९-२०॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हो बढ़ईने अपने सुदृढ़ कुठारसे उसके सिर काट डाले॥ २१॥

कटे हुए तीनों सिर जब भूमिपर गिरे तब उनमेंसे हजारों पक्षी शीघ्रतापूर्वक निकल पड़े। तब गौरैया, तित्तिर और कपिंजल पक्षी शीघ्रतापूर्वक उसके अलग-अलग मुखोंसे निकले॥ २२-२३॥

जिस मुखसे वह वेदपाठ और सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुत-से कपिंजल पक्षी निकले; जिससे वह सभी दिशाओंका निरीक्षण करता था, उससे अत्यन्त तेजस्वी तित्तिर निकले और हे राजन्! जिससे वह मधुपान करता था, उस मुखसे गौरैया पक्षी निकले। इस प्रकार त्रिशिरासे वे पक्षी निकले॥ २४—२६॥

हे राजन्! इस प्रकार उन मुखोंसे पक्षियोंको निकला हुआ देखकर इन्द्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे पुनः स्वर्गको चल दिये॥ २७॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रके चले जानेपर तक्षा भी शीघ्र ही अपने घर चल दिया। श्रेष्ठ यज्ञभाग पाकर वह बहुत प्रसन्न था॥ २८॥

इन्द्रने भी अपने महाबली शत्रुको मारकर अपने भवन जा करके ब्रह्महत्याकी चिन्ता न करते हुए अपनेको कृतकृत्य मान लिया॥ २९॥

तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम्।
चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३०

अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम।
तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः॥ ३१

सुराः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा।
जानातु सर्वं पापात्मा स्वकृतस्य फलं महत्॥ ३२

इत्युक्त्वाग्निं जुहावाथ मन्त्रैराथर्वणोदितैः।
पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः॥ ३३

कृते होमेऽष्टरात्रं तु सन्दीप्ताच्च विभावसोः।
प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः॥ ३४

तं दृष्ट्वाग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम्।
वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवानलम्॥ ३५

उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरःस्थितम्।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम॥ ३६

इत्युक्ते वचने त्वष्ट्रा क्रोधप्रज्वलितेन च।
सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः॥ ३७

जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट्।
किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम्॥ ३८

कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत।
चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम्॥ ३९

नाशयाम्यद्य ते शोकमिति मे व्रतमाहितम्।
तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः॥ ४०

पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान्।
उद्यन्तं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम्॥ ४१

हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतान्तरम्।
क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम्॥ ४२

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम्।
प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम्॥ ४३

उस परम धार्मिक पुत्रको मारा गया सुनकर त्वष्टाने मनमें अत्यन्त क्रोधित हो यह वचन कहा—जिसने मेरे निरपराध मुनिवृत्तिवाले पुत्रको मार डाला है, उसके वधके लिये मैं पुनः पुत्र उत्पन्न करूँगा। देवतालोग मेरे पराक्रम और तपोबलको देख लें; वह पापात्मा भी अपनी करनीका महान् फल जान ले॥ ३०—३२॥

ऐसा कहकर क्रोधसे अत्यन्त व्याकुल त्वष्टा पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे अग्निमें हवन करने लगे॥ ३३॥

आठ रात्रियोंतक प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेपर सहसा अग्निसदृश एक पुरुष प्रकट हुआ॥ ३४॥

वेगपूर्वक अग्निसे प्रकट हुए और अग्निके सदृश प्रकाशमान तथा तेज-बलसे युक्त उस पुत्रको अपने सम्मुख देखकर त्वष्टाने कहा—हे इन्द्रशत्रु! मेरे तपोबलसे तुम शीघ्र बढ़ जाओ॥ ३५-३६॥

क्रोधसे जाज्वल्यमान त्वष्टाके ऐसा कहते ही अग्निके समान कान्तिवाला वह पुत्र द्युलोकको स्तब्ध करता हुआ बड़ा होने लगा॥ ३७॥

बढ़ते-बढ़ते वह पर्वताकार विशाल और काल पुरुषके समान भयानक हो गया। उसने अत्यन्त दुःखित अपने पितासे कहा—मैं क्या करूँ? हे नाथ! मेरा नामकरण कीजिये। हे सुव्रत! मुझे कार्य बताइये, आप चिन्तित क्यों हैं? मुझे अपने दुःखका कारण बताइये। मैं आज ही आपके शोकका नाश कर दूँगा—ऐसा मेरा दृढ़ संकल्प है। जिस पुत्रके रहते पिता दुःखी हो, उस पुत्रसे क्या लाभ! मैं शीघ्र ही समुद्रको पी जाऊँगा, पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा और उगते हुए प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यको रोक दूँगा। मैं देवताओंसहित इन्द्रको तथा यमको अथवा अन्य किसी भी देवताको मार डालूँगा। इन सबको तथा पृथ्वीको भी उखाड़कर समुद्रमें फेंक दूँगा॥ ३८—४२॥

उसका यह प्रिय वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न हो पर्वतके समान विशाल उस पुत्रसे कहा—॥ ४३॥

वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक।
तस्माद् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति॥ ४४
भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः।
त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन्वीर्यवन्ति च॥ ४५
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः।
संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे॥ ४६
शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्रघातेन साम्प्रतम्।
विनापराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च॥ ४७
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम्।
ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम्॥ ४८
इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः।
आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च॥ ४९
ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च।
खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै॥ ५०
शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा।
चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम्॥ ५१
तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुन्दरम्।
रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम्॥ ५२
युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव।
दत्त्वासौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः॥ ५३

हे पुत्र! तुम अभी वृजिन (कष्ट)-से त्राण दिलानेमें समर्थ हो, इसलिये तुम्हारा 'वृत्र'—यह नाम प्रसिद्ध होगा। हे महाभाग! तुम्हारा त्रिशिरा नामका एक तपस्वी भाई था। उसके अत्यन्त शक्तिशाली तीन सिर थे। वह वेद-वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाला, सभी विद्याओंमें निपुण और तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाली तपस्यामें रत था। इन्द्रने वज्रका प्रहार करके उस निरपराधको मार डाला और उसके मस्तक काट डाले। इसलिये हे पुरुषसिंह! तुम उस ब्रह्महत्यारे, पापी, निर्लज्ज, दुष्टबुद्धि तथा मूर्ख इन्द्रको मार डालो॥ ४४—४८॥

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे व्याकुल त्वष्टाने विविध प्रकारके दिव्य तथा प्रबल आयुधोंका निर्माण किया और इन्द्रका वध करनेके लिये उस महाबली (वृत्र)-को दे दिया। उनमें खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर, शार्ङ्गधनुष, बाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शन चक्रके समान कान्तिमान् हजार अरोंवाला दिव्य चक्र, दो दिव्य तथा अक्षय तरकस और अत्यन्त सुन्दर कवच एवं मेघके समान श्याम आभावाला, सुदृढ़, भार सहनेमें समर्थ और तीव्रगामी रथ था। इस प्रकार हे राजन्! समस्त युद्धसामग्री तैयार करके क्रोधसे व्याकुल त्वष्टाने अपने पुत्रको देकर उसे भेज दिया॥ ४९—५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
त्रिशिरवधानन्तरं वृत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

वृत्रासुरका देवलोकपर आक्रमण, बृहस्पतिद्वारा इन्द्रकी भर्त्सना करना और वृत्रासुरको अजेय बतलाना, इन्द्रकी पराजय, त्वष्टाके निर्देशसे वृत्रासुरका ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यारत होना

व्यास उवाच

कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
निर्जगाम रथारूढो हन्तुं शक्रं महाबलः॥ १

तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः।
समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वेदोंमें पारंगत ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर महाबली वृत्रासुर रथपर सवार हो इन्द्रको मारनेके लिये चला॥ १॥

उस समय बहुत-से क्रूर राक्षस जो पहले देवताओंसे पराजित हो गये थे, वृत्रासुरको महान् बलशाली जानकर उसकी सेवाके लिये आ गये॥ २॥

इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम्।
वेगादागत्य वृत्तान्तं शशंसुस्तस्य चेष्टितम्॥ ३

दूता ऊचुः

स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव।
बलवान्स्यन्दने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल॥ ४

अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै।
पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः॥ ५

यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति साम्प्रतम्।
मेरुमन्दरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भीता देवगणा भृशम्।
आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वन्तं दूतभाषितम्॥ ७

गणा ऊचुः

मघवन् दुर्निमित्तानि भवन्ति त्रिदशालये।
बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च॥ ८

काकगृध्रास्तथा श्येनाः कङ्काद्या दारुणाः खगाः।
रुदन्ति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि॥ ९

चीचीकूचीति निनदान्कुर्वन्ति विहगा भृशम्।
वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतन्त्यधः॥ १०

श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च।
राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः॥ ११

प्रपतन्ति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद।
प्रभवन्ति महोत्पाता दिवि भूम्यन्तरिक्षजाः॥ १२

कृष्णाम्बरधरा नार्यो भ्रमन्ति च गृहे गृहे।
यान्तु यान्तु गृहात्तूर्णं कुर्वन्त्यो विकृताननाः॥ १३

रात्रौ स्वप्नेषु कान्तानां सुप्तानां निजमन्दिरे।
केशाँल्लुनन्ति राक्षस्यो भीषयन्त्यो भृशातुराः॥ १४

एवंविधानि देवेश भूकम्पोल्कादयस्तथा।
गोमायवो रुदन्ति स्म निशायां भवनाङ्गणे॥ १५

सरटानां च जालानि प्रभवन्ति गृहे गृहे।
अङ्गप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः॥ १६

इन्द्रके दूत उसे युद्धके लिये आया देखकर शीघ्रतापूर्वक [इन्द्रके पास] आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त और उसकी गतिविधि बताने लगे॥ ३॥

दूत बोले—हे स्वामिन्! वृत्र नामका आपका बलवान् और दुर्धर्ष शत्रु रथपर आरूढ़ होकर राक्षसोंके साथ शीघ्र ही यहाँ आ रहा है; पुत्रशोकसे सन्तप्त और क्रोधाभिभूत त्वष्टाने आपके नाशके लिये अभिचारकर्मसे उसे उत्पन्न किया है॥ ४-५॥

हे महाभाग! शीघ्र ही [रक्षाका] उपाय कीजिये। सुमेरु और मन्दराचलके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाला वह (वृत्रासुर) घोर गर्जन करता हुआ अब शीघ्र यहाँ आ रहा है॥ ६॥

इसी बीच अत्यन्त भयभीत देवगण वहाँ आ करके दूतोंकी बात सुन रहे देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगे॥ ७॥

गण बोले—हे इन्द्र! इस समय स्वर्गमें अनेक प्रकारके अपशकुन हो रहे हैं। पक्षियोंके बहुत ही डरावने शब्द हो रहे हैं। कौए, गिद्ध, बाज और चील आदि क्रूर पक्षी भवनोंके ऊपर बैठकर भयानक स्वरोंमें रोते हैं और अन्य पक्षी भी बार-बार चीची-कूची—ऐसे शब्द कर रहे हैं। [हाथी, घोड़े आदि] वाहनोंकी आँखोंसे लगातार जल (अश्रु)-की धाराएँ नीचे गिर रही हैं। हे महाभाग! भवनोंके ऊपरी भागमें रातमें रोती हुई राक्षसियोंका महाभयानक शब्द सुनायी देता है। हे मानद! हवाके बिना ही ध्वजाएँ टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें महान् उत्पात हो रहे हैं। काले वस्त्र धारण की हुई भयानक मुखवाली स्त्रियाँ 'निकल जाओ; घरसे शीघ्र निकल जाओ'—ऐसा कहती हुई घर-घरमें घूमती हैं। रातमें अपने घरमें सोयी हुई स्त्रियोंको भयभीत करती हुई भयानक राक्षसियाँ स्वप्नोंमें उनके बाल नोचती हैं॥ ८—१४॥

हे देवेन्द्र! इसी प्रकार भूकम्प और उल्कापात आदि उपद्रव भी हो रहे हैं, रात्रिमें हमारे भवनोंके आँगनमें सियार रुदन करते हैं। गिरगिटोंके समूह घर-घरमें उत्पन्न हो रहे हैं, सर्वथा अनिष्टके सूचक अंग-प्रस्फुरण आदि भी होते हैं॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा चिन्तामाप सुरेश्वरः।
बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम्॥ १७

इन्द्र उवाच

ब्रह्मन् किमुत घोराणि निमित्तानि भवन्ति वै।
वाताश्च दारुणा वान्ति प्रपतन्त्युलकाः खतः॥ १८

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने।
बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा॥ १९

कुरु शान्तिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम्।
यथा मे न भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम्॥ २०

बृहस्पतिरुवाच

किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाद्य दुष्कृतं कृतम्।
अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम्॥ २१

अत्युग्रं पुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम्।
विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता॥ २२

परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन।
न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः॥ २३

मोहाल्लोभाद् ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाधुना।
तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम्॥ २४

अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः।
हन्तुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः॥ २५

आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव।
त्वष्ट्रा दत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः॥ २६

समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान्।
देवेन्द्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति॥ २७

कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ।
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः॥ २८

सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिन्तापरायणः॥ २९

व्यासजी बोले—उन लोगोंका यह वचन सुनकर इन्द्र चिन्तित हो उठे और बृहस्पतिको बुलाकर उन्होंने अपनी मनोगत बात पूछी॥ १७॥

इन्द्र बोले—हे ब्रह्मन्! ये भयानक अपशकुन क्यों हो रहे हैं? भयानक आँधियाँ चलती हैं और आकाशसे उल्कापात होते हैं। हे महाभाग! आप सर्वज्ञ, विघ्नका नाश करनेमें समर्थ, बुद्धिमान्, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाले और देवताओंके गुरु हैं। इसलिये हे विधानज्ञ! आप हमारी शान्तिके लिये शत्रुओंका नाश करनेवाला कोई शान्तिकर्म कीजिये। जिस प्रकार मुझे दुःख न हो, आप वैसा कार्य कीजिये॥ १८—२०॥

बृहस्पति बोले—हे सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र! मैं क्या करूँ? तुमने बहुत बड़ा पाप कर डाला है। निरपराध मुनिको मारकर तुमने क्या लाभ प्राप्त कर लिया?॥ २१॥

पुण्य और पापका अत्यन्त उग्र फल शीघ्र ही प्राप्त होता है, इसलिये ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवालोंको विचारपूर्वक कार्य करना चाहिये। दूसरेको कष्ट पहुँचानेका कृत्य कभी नहीं करना चाहिये। दूसरेको कष्ट देनेमें संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता॥ २२-२३॥

हे इन्द्र! तुमने मोह और लोभके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या कर डाली, उसी पापका यह फल आज सहसा उपस्थित हो गया है॥ २४॥

वृत्र नामवाला यह असुर जन्मसे ही देवताओंसे अवध्य है; बहुत-से दानवोंसे घिरा हुआ वह तुम्हें मारनेके लिये चला आ रहा है॥ २५॥

हे इन्द्र! त्वष्टाके द्वारा दिये हुए उन सभी वज्रतुल्य तथा दिव्य आयुधोंको लेकर वह उपस्थित हो रहा है॥ २६॥

दुर्धर्ष तथा प्रतापी वह रथपर आरूढ़ होकर प्रलय मचाते हुए चला आ रहा है। हे देवेन्द्र! उसकी मृत्यु नहीं होगी॥ २७॥

बृहस्पति ऐसा कह ही रहे थे कि वहाँ कोलाहल मच गया। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मुनि, तपस्वी और सभी देवता अपने-अपने भवन छोड़कर भाग चले। उस महान् आश्चर्यको देखकर इन्द्र चिन्तित हो उठे॥ २८-२९॥

आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान्।
आनयध्वं वसून् रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान्॥ ३०

पूषणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम्।
विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः॥ ३१

समागच्छन्तु तरसा शत्रुरायाति साम्प्रतम्।
इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम्॥ ३२

बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमन्दिरात्।
तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥ ३३

युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः।
वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः सम्प्राप्तो मानसोत्तरम्॥ ३४

पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम्।
इन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे॥ ३५

पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः।
तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा॥ ३६

गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः।
मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम्॥ ३७

बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम्।
वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगणः किल॥ ३८

यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात्।
पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ३९

वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदान्वितम्।
प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितः कार्यं मया कृतम्॥ ४०

देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः समरसंस्थिताः।
विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः॥ ४१

इन्द्रः पदातिरगमन्मयानीतो गजोत्तमः।
ऐरावतोऽयं भगवन् गृहाण द्विरदोत्तमम्॥ ४२

न हतास्ते मया यस्मादयुक्तं भीतमारणम्।
आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम्॥ ४३

तब उन्होंने सेवकोंको सेना तैयार करनेका आदेश दिया। 'वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, आदित्यों, पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यमको बुलाओ। सभी श्रेष्ठ देवता आयुधोंके साथ विमानोंपर आरूढ़ होकर यहाँ शीघ्र आ जायँ; क्योंकि अब शत्रु आने ही वाला है'—ऐसी आज्ञा देकर देवराज अपने श्रेष्ठ गजराज ऐरावतपर सवार होकर बृहस्पतिको आगे करके अपने भवनसे बाहर निकले॥ ३०—३२½॥

वैसे ही अन्य सभी देवता भी हाथोंमें शस्त्र लेकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर युद्धका संकल्प करके चल पड़े। उधर वृत्रासुर भी विशाल दानवी सेनाके साथ वृक्षोंसे सुशोभित, रमणीय तथा देवताओंसे सेवित मानसरोवरके उत्तरवर्ती पर्वतपर आ गया। बृहस्पतिको आगे करके सभी देवताओंके साथ इन्द्रने भी उस मानसोत्तर पर्वतपर आकर संग्राम किया॥ ३३—३५½॥

तब गदा, तलवार, परिघ, पाश, बाण, शक्ति और परशु आदि युद्धास्त्रोंके द्वारा वृत्रासुर और इन्द्रमें भयानक युद्ध हुआ। मनुष्यों और विशुद्ध हृदयवाले ऋषियोंके लिये अत्यन्त भयकारी वह युद्ध मानववर्षकी गणनासे सौ वर्षोंतक चला॥ ३६-३७½॥

उस युद्धमें सबसे पहले वरुण और उसके बाद मरुद्गण पलायन कर गये। इसी प्रकार यम, अग्नि, इन्द्र—जो भी थे वे सभी युद्धसे निकल भागे। इन्द्र आदि प्रमुख देवताओंको भागकर जाते देखकर वृत्रासुर भी प्रसन्नतापूर्वक आश्रमस्थित अपने पिताके पास गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—हे पिताजी! मैंने [आपका] कार्य कर दिया॥ ३८—४०॥

युद्धभूमिमें आये हुए इन्द्रसहित सभी देवता मुझसे पराजित हो गये। वे सब उसी प्रकार भयभीत होकर अपने स्थानोंको भाग गये, जैसे सिंहसे डरकर हाथी और मृग भाग जाते हैं। इन्द्र तो पैदल ही भाग गये; मैं हाथियोंमें श्रेष्ठ इस ऐरावतको ले आया हूँ। हे भगवन्! आप इस गजश्रेष्ठको ग्रहण करें॥ ४१-४२॥

मैंने उन सबको इसलिये नहीं मारा; क्योंकि डरे हुएको मारना अनुचित होता है। हे तात! आप पुनः आज्ञा कीजिये कि मैं आपका कौन-सा इच्छित कार्य करूँ?॥ ४३॥

निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः।
इन्द्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः॥ ४४

व्यास उवाच

इति पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदान्वितः।
पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम्॥ ४५

त्वयाहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः।
निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम्॥ ४६

शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय।
तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः॥ ४७

विश्वासो नैव कर्तव्यः केषाञ्चित्पाकशासनः।
शत्रुस्ते छलकर्तास्ति नानाभेदविशारदः॥ ४८

तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम्।
तपसा बलवृद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा॥ ४९

आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम्।
जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमावृतम्॥ ५०

सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शङ्करम्।
वाञ्छितं स वरं दद्यात्सन्तुष्टश्चतुराननः॥ ५१

तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम्।
अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम्॥ ५२

वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम्।
न शान्तिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह॥ ५३

तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः।
न विन्दामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम्॥ ५४

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा।
आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा॥ ५५

सभी देवता भयभीत और युद्धश्रमसे क्लान्त होकर भाग गये; भयभीत इन्द्र भी ऐरावत छोड़कर भाग गया॥ ४४॥

व्यासजी बोले—पुत्रका यह वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न होकर कहा—आज मैं पुत्रवान् हो गया हूँ; मेरा जीवन सफल हो गया॥ ४५॥

हे पुत्र! तुमने आज मुझे पवित्र कर दिया; मेरा मानसिक सन्ताप चला गया। तुम्हारे अद्भुत पराक्रमको देखकर मेरा मन शान्त हो गया॥ ४६॥

हे पुत्र! सुनो, अब मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। हे महाभाग! अब तुम दृढ़तापूर्वक आसनपर बैठकर सावधान होकर तपस्या करो॥ ४७॥

किसीका भी विश्वास मत करना। वह तुम्हारा शत्रु इन्द्र छल करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी भेदनीतिमें निपुण है॥ ४८॥

तपसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तपसे उत्तम राज्यकी प्राप्ति होती है। तपसे बलकी वृद्धि होती है और संग्राममें विजयकी प्राप्ति होती है॥ ४९॥

भगवान् ब्रह्माकी आराधना करके उनसे उत्तम वर प्राप्तकर तुम उस दुराचारी और ब्राह्मणके हत्यारे इन्द्रको मार डालो॥ ५०॥

तुम सावधान और स्थिर होकर कल्याणकारी तथा वरदाता ब्रह्माजीकी आराधना करो। प्रसन्न होनेपर चार मुखवाले वे ब्रह्माजी तुम्हें अभीष्ट वरदान देंगे॥ ५१॥

विश्वकी सृष्टि करनेवाले अमिततेजस्वी ब्रह्माजीको प्रसन्न करके अमरत्व प्राप्तकर तुम अपराधी इन्द्रको मार डालो॥ ५२॥

हे पुत्र! मेरे मनमें उस पुत्रघातीके प्रति वैर बना हुआ है, न मुझे शान्ति प्राप्त होती है और न ही मैं सुखसे सो पाता हूँ॥ ५३॥

उस पापीने मेरे निर्दोष तपस्वी पुत्रको मार डाला है, इसलिये मुझे शान्ति नहीं मिलती। हे वृत्र! तुम मुझ दुःखीका उद्धार करो॥ ५४॥

व्यासजी बोले—तब पिताका वचन सुनकर वृत्रासुर कुपित हो उठा। पितासे आज्ञा लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करनेके लिये चला गया॥ ५५॥

गन्धमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम्।
स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः॥ ५६

त्यक्त्वान्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः।
ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने॥ ५७

मघवा तं तपस्यन्तं ज्ञात्वा चिन्तातुरो ह्यभूत्।
गन्धर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः॥ ५८

यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः।
विद्याधरानप्सरसो देवदूताननेकशः॥ ५९

उपायास्तैः कृताः सम्यक् तपोविघ्नाय मायिभिः।
न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः॥ ६०

गन्धमादनपर्वतपर पहुँचकर पवित्र और मंगलकारिणी देवनदी गंगाजीमें स्नान करके कुशका आसन बिछाकर वह दृढ़तापूर्वक बैठ गया॥ ५६॥

अन्न और जलका त्याग करके योगाभ्यासमें तत्पर होकर मनमें विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ वह दृढ़भावसे आसनपर बैठा रहा॥ ५७॥

उसे तपस्या करता हुआ जानकर इन्द्र चिन्तासे व्यग्र हो उठे। तब [उसके तपमें] विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने गन्धर्वों, अत्यन्त ओजस्वी यक्षों, नागों, सर्पों, किन्नरों, विद्याधरों, अप्सराओं और अनेक देवदूतोंको भेजा। उन मायावियोंद्वारा तपमें विघ्नके लिये भलीभाँति उपाय किये गये, किंतु परम तपस्वी त्वष्टापुत्र वृत्र ध्यानसे विचलित नहीं हुआ॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे ब्रह्मणः समाराधनाय त्वष्ट्रा वृत्रोपदेशवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीका वृत्रासुरको वरदान देना, त्वष्टाकी प्रेरणासे वृत्रासुरका स्वर्गपर आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेना, इन्द्रका पितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकरके साथ वैकुण्ठधाम जाना

व्यास उवाच

निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः।
निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम्॥ १
जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः।
तत्राजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः॥ २
आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव।
त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वाञ्छितम्॥ ३
तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चातिकर्शितम्।
वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव॥ ४

व्यास उवाच

वृत्रस्तदातिविशदां पुरतो निशम्य
वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः।
सन्त्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठ-
त्सञ्जातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः॥ ५

व्यासजी बोले—उस वृत्रासुरको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर तपमें विघ्न डालनेके लिये गये हुए देवगण अपने कार्यकी सिद्धिसे निराश होकर वापस लौट आये॥ १॥

सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो शीघ्रतापूर्वक उसके पास आये॥ २॥

आकर उन्होंने उससे यह कहा—हे त्वष्टाके पुत्र! तुम सुखी होओ, ध्यानका त्यागकर वरदान माँगो, मैं तुम्हारा इच्छित वर दूँगा॥ ३॥

तुम्हें तपस्यासे अत्यन्त कृशकाय देखकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोभिलषित वर माँग लो॥ ४॥

व्यासजी बोले—अपने समक्ष खड़े जगत्के एकमात्र स्रष्टा [ब्रह्माजी]-की अत्यन्त गम्भीर और अमृतरसतुल्य वाणी सुनकर वह वृत्रासुर योग-ध्यान त्यागकर सहसा उठ खड़ा हुआ। हर्षातिरेकसे उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी॥ ५॥

पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातु-
र्बद्धाञ्जलिः पुरत एव समाससाद।
प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रसन्नं
प्रेम्णातिगद्‌गदगिरा विनयेन नम्रः॥ ६

प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य
यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम्।
वाञ्छास्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा
तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम्॥ ७

मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठ-
शुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः।
वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे
यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः॥ ८

व्यास उवाच

इत्थं सम्प्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव।
उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वाञ्छितं सफलं सदा॥ ९

न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा।
भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ १०

इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम्।
वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ॥ ११

शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः।
त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा॥ १२

स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम।
हत्वागच्छ त्रिशिरसो हन्तारं पापसंयुतम्॥ १३

भव त्वं त्रिदशाधीशः सम्प्राप्य विजयं रणे।
ममाधिं छिन्धि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवम्॥ १४

जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥ १५

प्रेमपूर्वक विधाता ब्रह्माजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वह उनके समक्ष स्थित हो गया और तपस्यासे प्रसन्न तथा उत्तम वर देनेवाले ब्रह्माजीसे विनयावनत होकर प्रेमपूर्ण गद्‌गद वाणीमें कहने लगा—॥ ६॥

हे प्रभो! मैंने आज समस्त देवताओंका पद प्राप्त कर लिया जो कि मुझे शीघ्र ही आपका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया। हे नाथ! हे कमलासन! आप सबके मनके भाव जानते हैं, फिर भी मेरे भक्तिपूर्ण मनमें एक दुर्लभ अभिलाषा है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ७॥

लोहे, काष्ठ, सूखे या गीले बाँसद्वारा निर्मित तथा अन्य किसी शस्त्रसे मेरी कभी मृत्यु न हो। मेरा पराक्रम अत्यन्त बढ़ जाय, जिससे युद्धमें मैं उन बलवान् देवताओंसे अजेय हो जाऊँ॥ ८॥

व्यासजी बोले—उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजी उससे हँसते हुए बोले—[हे वत्स!] उठो और [घर] जाओ, तुम्हारा मनोरथ निश्चय ही पूर्ण होगा। तुम्हारा कल्याण हो॥ ९॥

न सूखी, न गीली वस्तुसे, न तो पत्थर या लकड़ीद्वारा निर्मित शस्त्रसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी—यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १०॥

ऐसा वरदान देकर ब्रह्माजी अपने दिव्य लोकको चले गये और वृत्रासुर भी वरदान प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया॥ ११॥

महाबुद्धिमान् वृत्रासुरने पिताके सम्मुख उस वरदानको सुनाया, तब त्वष्टा भी पुत्रके वरदान प्राप्त करनेसे अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ १२॥

उन्होंने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो, मेरे शत्रु और त्रिशिराके हत्यारे पापी इन्द्रको मार डालो; उसे मारकर आ जाओ॥ १३॥

युद्धमें विजय प्राप्तकर तुम देवताओंके अधिपति बनो। पुत्रहत्यासे उत्पन्न मेरे महान् मानसिक सन्तापको तुम दूर करो॥ १४॥

जीवित [अवस्थामें] पिताकी आज्ञाका पालन करने, मृत्युतिथिपर पर्याप्त भोजन कराने तथा गयामें पिण्डदान करने—इन तीनोंसे ही पुत्रका पुत्रत्व सार्थक होता है॥ १५॥

तस्मात्पुत्र ममात्यर्थं दुःखं नाशितुमर्हसि।
त्रिशिरा मम चित्तात्तु नापसर्पति कर्हिचित्॥ १६

सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः।
अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा वृत्रः परमदुर्जयः।
रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात्॥ १८

रणदुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खनादं महाबलम्।
कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९

निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन्।
हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकण्टकम्॥ २०

इत्युक्त्वा निर्जगामाशु स्वसैन्यपरिवारितः।
महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम्॥ २१

तमागच्छन्तमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः।
सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥ २२

सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः।
युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः॥ २३

गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः।
तत्राजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः॥ २४

देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः॥ २५

एवं परस्परं युद्धे सन्दीप्ते भयदे भृशम्।
आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम्॥ २६

तोमरैर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः।
जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्ववरायुधैः॥ २७

अतः हे पुत्र! तुम मेरे बहुत बड़े दुःखको दूर करनेमें समर्थ हो; त्रिशिरा मेरे चित्तसे कभी हटता नहीं है॥ १६॥

उस सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वेदवेत्ताको बिना किसी अपराधके ही पापबुद्धिवाले उस इन्द्रने मार डाला॥ १७॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर परम दुर्जय वृत्रासुर रथपर सवार हो शीघ्र ही [अपने] पिताके घरसे निकल पड़ा। रणभेरियोंकी ध्वनि तथा महान् शंखनाद कराकर उस मदोन्मत्तने प्रस्थान किया॥ १८-१९॥

'इन्द्रको मारकर निष्कण्टक देव-राज्य अधिकृत कर लूँगा'—ऐसा सेवकोंसे कहते हुए वह नीतिवान् वृत्र निकल पड़ा॥ २०॥

ऐसा कहकर सैनिकोंके महान् घोषसे अमरावती (इन्द्रपुरी)-को भयभीत करता हुआ वह अपनी सेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक निकला॥ २१॥

हे भारत! उसे आता हुआ जानकर भयभीत इन्द्र भी शीघ्रतापूर्वक सेनाकी तैयारी कराने लगे॥ २२॥

उन शत्रुदमन इन्द्रने शीघ्र ही सभी लोकपालोंको बुलाकर उन्हें युद्धकी तैयारी करनेके लिये प्रेरित किया, उस समय वे अत्यन्त कान्तिमान् लग रहे थे॥ २३॥

तत्पश्चात् गृध्रव्यूहका निर्माण करके इन्द्र युद्धके लिये डट गये; उसी समय शत्रुसेनाका विध्वंस कर डालनेवाला वृत्रासुर भी वहाँ वेगपूर्वक आ पहुँचा॥ २४॥

तब युद्धक्षेत्रमें अपने-अपने मनमें विजयकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र तथा वृत्रासुरकी देव-दानव सेनाओंमें भीषण संग्राम होने लगा॥ २५॥

इस प्रकार परस्पर युद्धके उग्र और भयंकर हो जानेपर देवगण व्याकुल और दानव अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ २६॥

उस युद्धमें तोमर, भिन्दिपाल, तलवार, परशु और पट्टिश—इन अपने-अपने श्रेष्ठ आयुधोंसे देवता और दैत्य एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे॥ २७॥

एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे।
शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः॥ २८

अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम्।
मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ २९

शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण संभ्रान्ता निर्जरास्तदा।
चुक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः॥ ३०

अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः।
बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः॥ ३१

किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः।
शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतान्तरैः॥ ३२

विना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः।
अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये॥ ३३

बृहस्पतिरुवाच

किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः।
वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठान्तरे रिपोः॥ ३४

व्यास उवाच

देवाश्चिन्तातुराः सर्वे तुरासाहं तथाकृतम्।
दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये॥ ३५

असृजन्त महासत्त्वां जृम्भिकां रिपुनाशिनीम्।
ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह॥ ३६

विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवापतत्।
स्वान्यङ्गान्यपि संक्षिप्य निष्क्रान्तो बलसूदनः॥ ३७

ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंस्थिता।
जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम्॥ ३८

ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम्।
वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम्॥ ३९

इस प्रकारके हो रहे रोमांचकारी और भयंकर संग्राममें क्रोधाभिभूत वृत्रासुरने अचानक इन्द्रको पकड़ लिया॥ २८॥

हे महाराज! वृत्रासुर इन्द्रको कवच-वस्त्र आदिसे रहित करके अपने मुखमें डालकर स्थित हो गया और पूर्ववैरका स्मरण करते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ २९॥

वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रको निगला गया देखकर देवता विस्मित हो गये और अत्यन्त दुःखी होकर 'हा इन्द्र! हा इन्द्र!' कहकर चिल्लाने लगे॥ ३०॥

जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि इन्द्रको वृत्रने मुखमें रखकर छिपा लिया है तो वे अत्यन्त दुःखित होकर बृहस्पतिके पास गये और उनसे दीन वाणीमें बोले—॥ ३१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! देवसेनासे सुरक्षित इन्द्रको वृत्रासुरने अपने मुखमें रख लिया है। अब हम क्या करें? आप हमारे परम गुरु हैं॥ ३२॥

इन्द्रके बिना हमलोग क्या करें, हम सब पराक्रमहीन हो गये हैं। हे विभो! इन्द्रकी मुक्तिके लिये आप शीघ्र ही अभिचार-क्रिया कीजिये॥ ३३॥

बृहस्पति बोले—हे देवताओ! क्या किया जाय? उसने इन्द्रको मुखमें रख लिया है, वृत्रासुरके द्वारा पीड़ित वे इन्द्र उस शत्रुके मुखमें भी जीवित हैं॥ ३४॥

व्यासजी बोले—इन्द्रको उस स्थितिमें प्राप्त देखकर चिन्तित देवताओंने भलीभाँति सोचकर उनकी मुक्तिके लिये शीघ्र ही एक उपाय किया॥ ३५॥

उन्होंने अत्यन्त शक्तिशालिनी और शत्रुनाशिनी जम्हाईका सृजन किया; इससे उसे जम्हाई आते ही उस वृत्रासुरका मुख खुल गया॥ ३६॥

तत्पश्चात् जम्हाई लेते हुए वृत्रासुरके मुखसे बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले इन्द्र अपने अंगोंको संकुचित करके बाहर निकल आये॥ ३७॥

उसी समयसे संसारके सभी प्राणियोंके शरीरमें जम्हाई विद्यमान रहने लगी। इन्द्रको बाहर निकला हुआ देखकर सभी देवता हर्षित हो उठे॥ ३८॥

तब उन दोनोंमें तीनों लोकोंके लिये भयदायक, रोमांचकारी और भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया, जो दस हजार वर्षोंतक चला॥ ३९॥

एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः।
एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत॥ ४०

यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः।
पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः॥ ४१

विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम्।
विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम्॥ ४२

जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा॥ ४३

देवोद्यानानि सर्वाणि भुङ्क्तेऽसौ दानवो बलात्।
ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः॥ ४४

विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशाम्पते।
उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा॥ ४५

कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा।
गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह॥ ४६

स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः।
दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात्॥ ४७

वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः।
त्वष्टातीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः॥ ४८

अमन्त्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत।
किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः॥ ४९

जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः।
महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्राञ्जलयो भृशम्॥ ५०

देवदेव महादेव कृपासिन्धो महेश्वर।
रक्षास्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणातिपराजितान्॥ ५१

युद्ध करनेके लिये संग्राममें एक ओर सभी देवता उपस्थित थे तो दूसरी ओर त्वष्टाका बलशाली पुत्र वृत्रासुर डटा हुआ था॥ ४०॥

वरदानके अहंकारसे उन्मत्त वृत्रासुरका उत्कर्ष जब रणमें प्रबल हो गया, तब उसके तेजसे पराक्रमहीन इन्द्र पराजित हो गये॥ ४१॥

उससे युद्धमें पराजय प्राप्त करके इन्द्रको बहुत व्यथा हुई और उन्हें पराजित देखकर देवगण भी विषादग्रस्त हो गये॥ ४२॥

तब इन्द्र आदि समस्त देवता युद्ध छोड़कर भाग गये और वृत्रासुरने शीघ्रतापूर्वक आकर अमरावतीपर अधिकार कर लिया॥ ४३॥

अब वह दानव समस्त देवोद्यानोंका बलपूर्वक उपभोग करने लगा। उस दैत्य वृत्रासुरके द्वारा गजश्रेष्ठ ऐरावत भी अधिकारमें कर लिया गया॥ ४४॥

हे राजन्! तत्पश्चात् उसने समस्त विमानोंको ग्रहण कर लिया और अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवाको भी अपने अधीन कर लिया॥ ४५॥

उसी प्रकार कामधेनु, कल्पवृक्ष, अप्सराओंका समूह तथा रत्न आदि जो कुछ था; वह सब उस त्वष्टापुत्र वृत्रने अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४६॥

अब राज्यच्युत होकर सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहकर अत्यन्त दुःख प्राप्त करने लगे। वे यज्ञभाग और देवसदन—दोनोंसे वंचित हो गये॥ ४७॥

वृत्रासुर देव-राज्य पाकर मदोन्मत्त हो गया। त्वष्टा भी अत्यन्त सुख प्राप्तकर पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ४८॥

हे भारत! देवगण अपने कल्याणके लिये मुनियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगे कि इस स्थितिके प्राप्त होनेपर अब हमें क्या करना चाहिये—ऐसा विचार करके भयमोहित वे देवगण इन्द्रके साथ कैलासपर्वतपर गये और वहाँ देवाधिदेव भगवान् शंकरको प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ ४९-५०॥

हे देव! हे महादेव! हे कृपासागर! हे महेश्वर! वृत्रासुरसे पूर्णतः पराजित हम भयभीत देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ५१॥

गृहीतं देवसदनं तेन देव बलीयसा।
किं कर्तव्यमतः शम्भो ब्रूहि सत्यं शिवाद्य नः॥ ५२

किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर।
दुःखस्य नाधिगच्छामो विनाशोपायमीश्वर॥ ५३

साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे।
वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो॥ ५४

शिव उवाच

ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम्।
गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिन्तयामो वधोद्यमम्॥ ५५

स शक्तश्च छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः।
शरण्यश्च दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः॥ ५६

विना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति।
तस्मात्तत्र च गन्तव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये॥ ५७

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशङ्करः।
जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम्॥ ५८

गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम्॥ ५९

प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः।
सम्मान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरःस्थितः॥ ६०

किमागताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः।
कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः॥ ६१

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम्।
चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्राञ्जलयस्तथा॥ ६२

हे देव! उस महाबलीने देवलोकपर अधिकार कर लिया है। हे शम्भो! हे शिव! अब हमें क्या करना चाहिये, आप हमें सही-सही बताइये॥ ५२॥

हे महेश्वर! हम राज्यभ्रष्ट क्या करें और कहाँ जायँ? हे ईश्वर! हम इस दुःखके विनाशके लिये कोई भी उपाय नहीं जान पा रहे हैं॥ ५३॥

हे भूतेश! हमारी सहायता कीजिये। हे कृपानिधान! हम सब बहुत दुःखी हैं। हे विभो! वरदानके प्रभावसे मदोन्मत्त वृत्रासुरका वध कीजिये॥ ५४॥

शिवजी बोले—ब्रह्माजीको आगे करके हमलोग विष्णुलोक चल करके वहाँ उन श्रीहरिके पास जाकर उस वृत्रासुरके वधके उपायपर विचार करेंगे॥ ५५॥

वे जनार्दन भगवान् विष्णु शक्तिशाली, छलकार्यमें निपुण, बलवान्, सबसे बुद्धिमान्, शरणदाता और दयाके सागर हैं॥ ५६॥

उन देवदेवेशके बिना हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये हमें वहीं चलना चाहिये॥ ५७॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचारकर ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता शरणदाता और भक्तवत्सल भगवान् विष्णुके लोक गये॥ ५८॥

वैकुण्ठधाममें पहुँचकर वे देवता वेदोक्त पुरुषसूक्तसे उन परमेश्वर जगद्गुरु श्रीहरिकी स्तुति करने लगे॥ ५९॥

तब भगवान् जगन्नाथ कमलापति विष्णु उनके सम्मुख उपस्थित हो गये और सभी देवताओंका सम्मान करके उनसे बोले—॥ ६०॥

हे लोकपालगण! आपलोग ब्रह्मा और शिवजीके साथ यहाँ क्यों आये हैं? हे श्रेष्ठ देवताओ! आप सभी अपने आगमनका कारण बतायें॥ ६१॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी देवगण उन रमापतिसे कुछ बोल न सके और वे चिन्तातुर होकर हाथ जोड़े खड़े ही रहे॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे ब्रह्मनेतृत्वे
सेन्द्रैः सुरैर्विष्णोः शरणगमनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे देवताओंका भगवतीकी स्तुति करना और प्रसन्न होकर भगवतीका वरदान देना

व्यास उवाच

तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित्।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तान्माधवो मेदिनीपते॥ १

विष्णुरुवाच

किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवन्तु कारणं सुराः।
सदसद्वापि यच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे॥ २

देवा ऊचुः

किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते।
सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ३

त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः।
वामनं वपुरास्थाय क्रान्तं त्रिभुवनं पदैः॥ ४

अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः।
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे॥ ५

विष्णुरुवाच

न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसम्मतम्।
तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति॥ ६

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना।
बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केनच्छलेन वा॥ ७

उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः।
सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः॥ ८

ब्रह्मणास्य वरो दत्तस्तपसाराधितेन च।
दुर्जयत्वं च सम्प्राप्तं वरदानप्रभावतः॥ ९

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब सभी तत्त्वोंके ज्ञाता माधव भगवान् विष्णु समस्त देवताओंको चिन्तासे व्याकुल तथा अत्यन्त प्रेमविह्वल देखकर कहने लगे॥ १॥

विष्णु बोले—हे देवगण! आप सबने मौन धारण क्यों कर रखा है? आप सब अपने दुःखका सत्-असत् जो भी कारण हो बतायें, जिसे सुनकर मैं उसे दूर करनेका उपाय करूँगा॥ २॥

देवता बोले—हे विभो! तीनों लोकोंमें कौन-सी वस्तु आपसे अज्ञात है, आप हमारा सारा कार्य [भली प्रकारसे] जानते हैं; तो क्यों बार-बार पूछ रहे हैं?॥ ३॥

पूर्वकालमें आपने बलिको बाँध लिया था और इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया था; आपने वामन-शरीर धारणकर तीनों लोकोंको अपने चरणोंसे नाप लिया था॥ ४॥

हे विष्णो! आपने ही अमृत छीनकर दैत्योंका नाश किया था; आप सभी देवताओंकी समस्त विपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ हैं॥ ५॥

विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ! आपलोग भयभीत न हों। मैं उस वृत्रासुरके वधका सुसंगत उपाय जानता हूँ, उसे मैं बताऊँगा, जिससे आपलोगोंको सुख होगा॥ ६॥

अपनी बुद्धिसे, बलसे, धनसे या जिस किसी भी उपायसे मुझे आपलोगोंका हित अवश्य करना है॥ ७॥

मित्रों और विशेषरूपसे शत्रुओंके प्रति [प्रयोगहेतु] तत्त्वदर्शियोंने साम, दान, दण्ड, भेद—ये चार उपाय बताये हैं॥ ८॥

वृत्रासुरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इसे वरदान दिया है और उस वरदानके प्रभावसे यह दुर्जय हो गया है॥ ९॥

अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः।
ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरञ्जयः॥ १०

दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना सामप्रतारणम्।
प्रलोभ्य वशमानेयो हन्तव्यस्तु ततः परम्॥ ११

गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्रास्ति बलवत्तरः।
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ॥ १२

सङ्गम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि।
मित्रत्वं च समाधाय हन्तव्यः प्रबलो रिपुः॥ १३

अदृश्यः सम्प्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम्।
साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः॥ १४

समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये।
मरणं विबुधास्तस्य नान्यथा सम्भविष्यति॥ १५

गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः।
इन्द्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः॥ १६

यथा स याति विश्वासं तथा कार्यं प्रतारणम्।
गुप्तोऽहं सम्प्रवेक्ष्यामि पविं सञ्छादितं दृढम्॥ १७

विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा।
विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः॥ १८

मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम्।
न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः॥ १९

नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते।
वामनं रूपमाधाय मयायं वञ्चितो बलिः॥ २०

कृत्वा च मोहिनीवेषं दैत्याः सर्वेऽपि वञ्चिताः।
भवन्तः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम्॥ २१

त्वष्टाके द्वारा उत्पन्न किया गया यह वृत्रासुर समस्त प्राणियोंके लिये अजेय हो गया है। शत्रुओंके राज्यको जीत लेनेवाला वह अपनी शक्तिसे अधिक प्रबल हो गया है॥ १०॥

हे देवताओ! बिना सामनीतिके प्रयोगके वह वृत्रासुर देवताओंके लिये दुःसाध्य है, अतः पहले इसे प्रलोभन देकर वशमें करना चाहिये, तत्पश्चात् मार डालना चाहिये॥ ११॥

हे गन्धर्वगण! जहाँ वह बलवान् वृत्रासुर रहता है, वहाँ तुमलोग जाओ और उसपर सामनीतिका प्रयोग करो; तभी उसपर विजय प्राप्त कर सकोगे॥ १२॥

वहाँ जाकर अनेक शपथें खाकर सन्धिके द्वारा उसे विश्वासमें ले करके और पुनः मित्रताकर बादमें उस प्रबल शत्रुको मार डालना चाहिये॥ १३॥

हे श्रेष्ठ देवगण! मैं अदृश्य रूपमें इन्द्रके श्रेष्ठ आयुध वज्रमें प्रवेश कर जाऊँगा और उनकी सहायता करूँगा॥ १४॥

हे देवताओ! अब आपलोग समयकी प्रतीक्षा करें, वृत्रासुरकी आयुके क्षीण होनेपर ही उसकी मृत्यु होगी, अन्य किसी भी प्रकारसे नहीं॥ १५॥

हे गन्धर्वगण! तुमलोग वेष बदलकर ऋषियोंके साथ उसके पास जाओ और वचनबद्धतापूर्वक इन्द्रके साथ उसकी मित्रता करा दो॥ १६॥

जिस प्रकारसे उसका विश्वास दृढ़ हो जाय, वैसा ही आप सबको करना चाहिये। मैं सुदृढ़ तथा आवरणयुक्त वज्रमें गुप्तरूपसे प्रवेश कर जाऊँगा॥ १७॥

जब वृत्रासुरको पूर्ण विश्वास हो जाय तभी इन्द्र उस शत्रुका वध करेंगे। उसके वधका अन्य कोई उपाय नहीं है। वे इन्द्र विश्वासघात करके मेरी सहायतासे वज्रद्वारा पीछेसे उस पापीको मार डालेंगे। इस दुष्ट शत्रुके साथ शठता करनेमें दोष नहीं है। अन्यथा वह बलवान् वीरधर्मसे नहीं मारा जा सकेगा। पूर्वकालमें मैंने भी वामनरूप धारणकर बलिको वंचित किया था और मोहिनीरूप धारणकर सभी दैत्योंको छला था॥ १८—२०½॥

हे देवताओ! अब आप सब लोग एक साथ देवी भगवती शिवाकी शरणमें जायँ और भावपूर्वक

गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमन्त्रैः सुरोत्तमाः।
साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति॥ २२

वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम्।
सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः॥ २३

इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे।
मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम्॥ २४

मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति।
प्रसन्नायां पराम्बायां सर्वं साध्यं भविष्यति॥ २५

नोचेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्यापि भविष्यति।
अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा॥ २६

तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः।
भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः॥ २७

पुरा मयापि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम्।
पञ्चवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ॥ २८

स्तुता मया तदात्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा।
मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ॥ २९

विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ।
तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः॥ ३०

सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः।
एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ३१

जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम्।
एकान्ते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः॥ ३२

तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम्।
भक्तकामदुघामम्बां संसारक्लेशनाशिनीम्॥ ३३

देवा ऊचुः

देवि प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्
वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च।
दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे
प्राप्तांस्त्वदङ्घ्रिकमलं शरणं सदैव॥ ३४

स्तोत्रों और मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करें। वे भगवती योगमाया आपलोगोंकी सहायता करेंगी॥ २१-२२॥

हम सभी उन सात्त्विकी, परा प्रकृति, सिद्धिदात्री, कामनास्वरूपिणी, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली और दुराचारियोंके लिये दुर्लभ देवीकी सदा वन्दना करते हैं॥ २३॥

इन्द्र भी उनकी आराधना करके युद्धमें शत्रुको मार डालेंगे। वे मोहिनी महामाया उस दानव वृत्रासुरको मोहित कर देंगी। तब मायासे मोहित वृत्रासुर सुगमतापूर्वक मारा जा सकेगा। उन पराम्बाके प्रसन्न होनेपर सब कुछ साध्य हो जायगा। अन्यथा किसीकी भी कामनाकी पूर्ति नहीं होगी। वे भगवती सबकी अन्तर्यामिस्वरूपिणी और सभी कारणोंकी भी कारण हैं। इसलिये हे श्रेष्ठ देवगण! शत्रुके विनाशके लिये सात्त्विक भावोंसे युक्त होकर उन प्रकृतिस्वरूपा जगज्जननीका परम आदरपूर्वक भजन कीजिये॥ २४—२७॥

पूर्वकालमें मैंने भी पाँच हजार वर्षोंतक अत्यन्त भीषण युद्ध करके मधु-कैटभका वध किया था। उस समय मैंने उन पराप्रकृतिकी स्तुति की थी, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयी थीं। तत्पश्चात् उनके द्वारा मोहित दोनों दैत्योंको मैंने छलपूर्वक मार डाला था। मोहित किये गये विशाल भुजाओंवाले वे दोनों दानव अत्यन्त मदोन्मत्त थे। इसीलिये आपलोग भी उसी प्रकार भावपूर्वक उन पराप्रकृतिका भजन कीजिये। हे देवगण! वे सब प्रकारसे कार्यकी सिद्धि करेंगी॥ २८—३०½॥

इस प्रकार भगवान् विष्णुसे परामर्श प्राप्त करके वे मन्दार वृक्षोंसे सुशोभित सुमेरुपर्वतके शिखरपर चले गये। वे देवता वहाँ एकान्तमें बैठकर ध्यान, जप और तप करके जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली, भक्तोंके लिये कामधेनुस्वरूपा एवं संसारके क्लेशोंका नाश करनेवाली पराम्बा भगवतीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ ३१—३३॥

देवता बोले—हे देवि! हे दीनोंके कष्ट दूर करनेवाली! हे परमार्थतत्त्वस्वरूपिणि! हमपर प्रसन्न हों, वृत्रासुरके द्वारा सताये गये, युद्धमें अत्यन्त पीड़ित किये गये तथा आपके चरणकमलकी शरणमें सदासे पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ३४॥

त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्
पुत्रानिवातिपतितान् रिपुसङ्कटेऽस्मिन् ।
मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि
कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान्॥ ३५

त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव
ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः।
कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते
भ्रूभङ्गचालनवशाद्विहरन्ति कामम्॥ ३६

माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्
रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान्।
कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधा-
नस्मांस्त्वदङ्घ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७

नूनं मदङ्घ्रिभजनाप्तपदाः किलैते
भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः।
नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा
रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा॥ ३८

दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते
यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः।
मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ न-
स्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न॥ ३९

पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो
व्यापादितो महिषरूपधरः किलाजौ।
अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ
वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः॥ ४०

हे माता! आप समस्त विश्वकी जननी हैं, शत्रुद्वारा उपस्थित किये गये इस संकटमें पड़े हुए हम सबका आप पुत्रोंके समान परिपालन कीजिये। आपसे तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है, तो आप असुरोंके द्वारा पीड़ित देवताओंकी उपेक्षा क्यों कर रही हैं?॥ ३५॥

आपने ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकीकी रचना की है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके ही संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं। आपके भृकुटि-विलासमात्रसे वे [सृजन, पालन तथा संहार] समस्त कार्य करते हैं और यथेच्छ विहार करते हैं; वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं॥ ३६॥

हे देवि! माता प्रत्यक्ष अपराधवाले अपने दुःखी पुत्रोंकी भी कष्टसे सब प्रकारसे रक्षा करती है—यह रीति आपके ही द्वारा निर्मित है; तब हे करुणरसकी समुद्रस्वरूपिणि! आप अपने चरणोंकी शरणमें पड़े हुए हम निरपराध देवताओंका पालन क्यों नहीं कर रही हैं?॥ ३७॥

हे जननि! यदि आप सोचती हों कि मेरे चरणकमलोंकी आराधनासे राज्य प्राप्त करके देवता मेरी भक्ति छोड़कर वैभव-सुखोंके भोगमें आसक्त हो जायँगे और इन्हें मेरे कृपाकटाक्षकी आवश्यकता नहीं रह जायगी तो ऐसा सामान्यतः होता ही है, फिर भी जन्म देनेवाली माता अपने पुत्रके प्रति ऐसी भावना रखे—यह रीति कहीं देखी नहीं गयी॥ ३८॥

हे जननि! आपका भजन त्यागकर हमलोग जो भोगमें निमग्न हैं—इसमें हमारे चित्तमें अपना दोष नहीं प्रतीत होता; क्योंकि मोहकी रचना आपने ही की है और वह हमलोगोंको मोहित कर देता है। ऐसी परिस्थितिमें हे करुणामय स्वभाववाली! आप हमपर दया क्यों नहीं करतीं?॥ ३९॥

हे जननि! पूर्वकालमें आपने हमलोगोंके कल्याणार्थ सभीके लिये भयकारी महिषरूप धारण करनेवाले बलवान् दैत्यराजका वध किया था। हे माता! भय प्रदान करनेवाले वृत्रासुरका भी वध आप क्यों नहीं करतीं?॥ ४०॥

शुम्भस्तथातिबलवाननुजो निशुम्भ-
स्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च।
वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे
मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथासौ॥ ४१

त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः
सन्तापितानतितरां भयविह्वलांश्च।
नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहन्ता
यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या॥ ४२

वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि
जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च।
पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना
नोचेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः॥ ४३

ते प्रापिताः सुरवनं विबुधारयो ये
हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते।
त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे
यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसि वृत्रम्॥ ४४

जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न
प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः।
यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किं
त्वत्पादपङ्कजरतान्ननु पीडयेद्वा॥ ४५

कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽम्ब
पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात्।
मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं
तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम्॥ ४६

धन्यास्त एव मनुजा हि भजन्ति भक्त्या
पादाम्बुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम्।
यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरन्ति
मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः॥ ४७

शुम्भ और उसके बलवान् भाई निशुम्भ—उन दोनों भाइयोंको आपने मार डाला था और उनके अनुचरोंका भी वध कर दिया था। उसी प्रकार हे दयासे आर्द्रहृदयवाली! अत्यन्त बलशाली, उन्मत्त तथा दुष्ट वृत्रासुरको भी मार डालिये। आप इसे विमोहित कर दें, जिससे यह भी उनकी तरह न हो सके। हे माता! असुरोंके द्वारा अत्यधिक पीड़ित किये गये तथा भयसे व्याकुल हम देवताओंका अब आप ही पालन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है जो देवताओंका दुःख दूर कर सके और अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण कष्टके समूहको नष्ट कर सके॥ ४१-४२॥

यदि वृत्रासुरपर आपकी अत्यधिक दया हो तो भी आप हमलोगोंके लिये संतापकारक इस दुष्टको शीघ्र ही मार डालिये। हे भवानि! अपने बाणोंसे इसको पवित्र करती हुई आप पापसे इसका उद्धार कर दीजिये, अन्यथा यह दुष्टबुद्धि वृत्रासुर नरक प्राप्त करेगा॥ ४३॥

जिन दानवोंको युद्धमें आपने बाणोंद्वारा मारकर पवित्र बना दिया, वे नन्दनवनको प्राप्त हो गये। हे दयार्द्र स्वभाववाली! क्या आपने नरकमें गिरनेके भयसे उन शत्रुओंकी रक्षा नहीं की? तो फिर आप वृत्रासुरको क्यों नहीं मारती हैं॥ ४४॥

हम यह जानते हैं कि वह आपका सेवक नहीं, शत्रु ही है; क्योंकि वह दुष्ट पापबुद्धि हम सबको सदैव सताया करता है। आपके चरणकमलोंकी भक्तिमें रत हम देवताओंको पीड़ित करनेवाला वह (वृत्रासुर) आपका भक्त कैसे हो सकता है?॥ ४५॥

हे जननि! हे अम्ब! हम आज आपकी पूजा कैसे करें; क्योंकि पुष्पादि [पूजोपचार] तो आपके द्वारा ही बनाये गये हैं। मन्त्र, हमलोग तथा अन्य सब कुछ आपकी पराशक्तिके ही रूप हैं, अतः हे भवानि! हम केवल आपके चरणोंकी शरण ले सकते हैं॥ ४६॥

वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो भवसागरसे पार उतारनेवाले पोतसदृश आपके चरणकमलका निरन्तर भक्तिभावसे भजन करते हैं और राग, मोह आदि विकारोंसे रहित मोक्षकामी योगी भी मनसे जिसका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४७॥

ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं
त्वां संस्मरन्ति सततं किल होमकाले।
स्वाहां तु तृप्तिजननीममरेश्वराणां
भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम्॥ ४८

मेधासि कान्तिरसि शान्तिरपि प्रसिद्धा
बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम्।
सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मि-
न्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव॥ ४९

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साभवत्तदा।
चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता॥ ५०

पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया।
रणत्किङ्किणिकाजालरसनाबद्धसत्कटिः॥ ५१

कलकण्ठीरवा कान्ता क्वणत्कङ्कणनूपुरा।
चन्द्रखण्डसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता॥ ५२

मन्दस्मितारविन्दास्या नेत्रत्रयविभूषिता।
पारिजातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा॥ ५३

रक्ताम्बरपरीधाना रक्तचन्दनचर्चिता।
प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा॥ ५४

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा।
सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी॥ ५५

सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानन्दरूपिणी।
प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम्॥ ५६
तानाह प्रणतानम्बा किं वः कार्यं ब्रुवन्तु माम्।

समस्त वेदोंमें पारंगत वे यज्ञकर्ता भी निश्चय ही धन्य हैं, जो हवनके समय देवताओंको तृप्ति देनेवाली स्वाहा और पितरोंको तृप्ति देनेवाली स्वधाके रूपमें आपका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४८॥

आप ही मेधा हैं, आप ही कान्ति हैं, आप ही शान्ति हैं और मनुष्योंका महान् मनोरथ पूर्ण करनेवाली प्रख्यात बुद्धि भी आप ही हैं। समस्त ऐश्वर्यकी रचना करके आप इस त्रिलोकीमें कृपा करके अपनी आराधना करनेवालेको वैभव प्रदान करती रहती हैं॥ ४९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर वे भगवती प्रकट हो गयीं। उन्होंने सुन्दर रूप धारण कर रखा था, वे कोमल विग्रहवाली थीं और समस्त आभूषणोंसे सुसज्जित थीं॥ ५०॥

वे पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे युक्त थीं, उनकी कमरमें बँधी हुई करधनीके घुँघरू बज रहे थे॥ ५१॥

उन कान्तिमयी भगवतीकी ध्वनि कोयलके समान थी, उनके हाथोंके कंकण और चरणोंके नूपुर बज रहे थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रसे मण्डित रत्नमुकुट सुशोभित हो रहा था॥ ५२॥

वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं, उनका मुख कमलके समान सुशोभित हो रहा था, वे तीन नेत्रोंसे विभूषित थीं तथा पारिजातके पुष्प-नालकी भाँति उनके शरीरकी कान्ति रक्तवर्ण थी॥ ५३॥

वे लाल रंगके वस्त्र धारण किये हुए थीं और उनके शरीरपर रक्त चन्दन अनुलिप्त था। करुणारसकी सागर वे भगवती प्रसन्न मुख-मण्डलसे शोभा पा रही थीं। वे समस्त शृंगार-वेषसे विभूषित थीं। वे देवी द्वैतभावके लिये अरणीस्वरूपा, परा, सब कुछ जाननेवाली, सबकी रचना करनेवाली, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा, सभी वेदान्तोंद्वारा प्रतिपादित और सच्चिदानन्दरूपिणी हैं। उन देवीको अपने सम्मुख स्थित देखकर देवताओंने उन्हें प्रणाम किया। तब उन प्रणत देवताओंसे भगवती अम्बिकाने कहा—आपलोग मुझे अपना कार्य बतायें॥ ५४—५६½ ॥

देवा ऊचुः

मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम्॥ ५७

यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम्।
आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः॥ ५८

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवान्तरधीयत।
स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदान्विताः॥ ५९

देवता बोले—आप देवताओंके लिये अत्यन्त दुःखदायी इस शत्रु वृत्रासुरको विमोहित कर दीजिये। उसे आप ऐसा विमोहित कर दें, जिससे वह देवताओंपर विश्वास करने लगे और हमारे आयुधमें इतनी शक्ति भर दीजिये, जिससे यह शत्रु मारा जा सके॥ ५७-५८॥

व्यासजी बोले—तब 'तथास्तु'—ऐसा कहकर भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने भवनोंको चले गये॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
देवीसमाराधनाय देवकृतस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका इन्द्रको वृत्रासुरसे सन्धिका परामर्श देना, ऋषियोंकी मध्यस्थतासे इन्द्र और वृत्रासुरमें सन्धि, इन्द्रद्वारा छलपूर्वक वृत्रासुरका वध

व्यास उवाच

एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
(जग्मुः सर्वे च सम्मन्त्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम्।)
ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलन्तमिव तेजसा॥ १

धक्ष्यन्तमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसन्तमिव चामरान्।
ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः॥ २

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम्।

ऋषय ऊचुः

वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयङ्कर॥ ३

व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्माण्डमखिलं किल।
शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम्॥ ४

युवयोर्दुःखदं कामं चिन्तावृद्धिकरं परम्।
न त्वं स्वपिषि सन्तुष्टो न चापि मघवा तथा॥ ५

सुखं स्वपिति चिन्तार्तो द्वयोर्यद्वैरिजं भयम्।
युवयोर्युध्यतोः कालो व्यतीतस्तु महानिह॥ ६

पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः।

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरप्राप्त उन देवता और तपस्वी ऋषिगणोंने (परस्पर मन्त्रणा करके वृत्रासुरके उत्तम आश्रमके लिये प्रस्थान किया) वहाँ तेजसे प्रकाशमान वृत्रासुरको देखा, जो तीनों लोकोंको भस्मसात् करने और देवताओंको निगल जानेके लिये उद्यत प्रतीत होता था। ऋषियोंने वृत्रासुरके समीप जाकर देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये उससे सामनीतिपूर्ण तथा रसमय प्रिय वचन कहा॥ १-२½॥

ऋषि बोले—सब लोकोंके लिये भयंकर हे महाभाग वृत्रासुर! आपने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त कर लिया है, परंतु इन्द्रके साथ आपका वैर आपके सुखको नष्ट करनेवाला है। यह आप दोनोंके लिये दुःखद और चिन्ता बढ़ानेका परम कारण है। न आप सुखसे सो पाते हैं, न ही इन्द्र सन्तुष्ट होकर सोते हैं; क्योंकि आप दोनोंको शत्रु-जन्य भय बना रहता है। आप दोनोंको युद्ध करते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो गया है; इससे देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्योंसहित समस्त प्रजाको कष्ट हो रहा है॥ ३—६½॥

संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः॥ ७

न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः।
संग्रामरसिकाः शूराः प्रशंसन्ति न पण्डिताः॥ ८

युद्धं शृङ्गारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम्।
पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः॥ ९

युद्धे विजयसन्देहो निश्चयं बाणताडनम्।
दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ॥ १०

दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन।
कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा॥ ११

परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम्।
किं सुखं युध्यतः संख्ये बाणवृष्टिभयङ्करे॥ १२

खड्गपातातिरौद्रे च तथारातिसुखप्रदे।
संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम्॥ १३

प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम्।
छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटादिभिः॥ १४

पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वाञ्छति मन्दधीः।
सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा॥ १५

अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरन्तरम्।
वयं च तापसाः सर्वे गन्धर्वाश्च निजाश्रमे॥ १६

सुखवासं गमिष्यामः शान्ते वैरेऽधुनैव वाम्।
संग्रामे युवयोर्धीर वर्तमाने दिवानिशम्॥ १७

पीड्यन्ते मुनयः सर्वे गन्धर्वाः किन्नरा नराः।
सर्वेषां शान्तिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम्॥ १८

मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवन्तु सुखं किल।
मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे॥ १९

शपथं कारयित्वात्र योजयामो मिथः प्रियम्।
शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः॥ २०

इस संसारमें सुख ही ग्राह्य है और दुःख सर्वथा त्याज्य है—यही परम्परा है। वैर करनेवालेको सुख नहीं प्राप्त होता, यह निश्चित सिद्धान्त है। इसलिये युद्धप्रेमी वीर इन्द्रिय सुखको नष्ट करनेवाले युद्धकी प्रशंसा करते हैं, किंतु शृंगाररसके प्रेमी विद्वान् उसकी प्रशंसा नहीं करते। पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंकी तो बात ही क्या?॥ ७—९॥

युद्धमें विजय ही हो—यह सन्देहास्पद है, परंतु उसमें बाणोंसे शरीरको पीड़ा प्राप्त होना निश्चित है। यह समस्त विश्व दैवके अधीन है, उसी प्रकार जय-पराजय भी उसीके अधीन हैं। अतः इन्हें दैवाधीन जानकर युद्ध कभी नहीं करना चाहिये। समयपर स्नान, भोजन, शय्यापर शयन और सेवा-परायण पत्नी—ये ही संसारमें सुखके साधन हैं। बाणवर्षासे भयंकर, खड्ग-प्रहारसे अत्यन्त रौद्र तथा शत्रुको सुख प्रदान करनेवाले संग्राममें युद्ध करनेसे क्या सुख प्राप्त हो सकता है?॥ १०—१२½॥

ऐसा स्पष्ट कथन है कि युद्धमें मरनेसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति होती है—यह तो प्रलोभन और प्रेरणा देनेवाला तथा निरर्थक वचन है। ऐसा कौन मन्दबुद्धि है जो शरीरको अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कराकर सियार और कौओंसे नोचवाकर स्वर्गसुखकी प्राप्तिकी कामना करेगा!॥ १३-१४½॥

हे वृत्र! इन्द्रके साथ तुम्हारी स्थायी मैत्री हो जाय, जिससे तुम्हें और इन्द्र—दोनोंको निरन्तर सुखकी प्राप्ति हो। आप दोनोंका वैर शान्त हो जानेसे हम सब तपस्वी और गन्धर्वगण भी अपने-अपने आश्रमोंमें सुखपूर्वक रह सकेंगे। हे धीर! आप दोनोंके दिन-रातके युद्धमें हम सभी मुनियों, गन्धर्वों, किन्नरों और मनुष्योंको कष्ट प्राप्त होता है। सभी लोगोंको शान्ति प्राप्त हो सके—इस कामनासे हम सब आप दोनोंमें मैत्री कराना चाहते हैं॥ १५—१८॥

हे वृत्र! मुनिगण, तुम्हें और इन्द्रको सुख प्राप्त हो। हमलोग तुम दोनोंकी मित्रता करानेमें मध्यस्थ बनेंगे। हम शपथ कराकर आप दोनोंको एक-दूसरेका प्रिय मित्र बना देंगे। आप जैसा कहेंगे, वैसे ही इन्द्र भी आपके सम्मुख शपथ लेकर आपके मनको प्रेमसे

चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु साम्प्रतम्।
सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः॥ २१
तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वात्यथ।
उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुञ्चति॥ २२
तस्मात्सत्येन सख्यं वा भवत्वद्य यथासुखम्।
एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम्॥ २३
युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च।

व्यास उवाच

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः॥ २४
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः।
भवन्तो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम्॥ २५
सदाचाराः सुशान्ताश्च न विदुश्छलकारणम्।
कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्विषि॥ २६
निर्लज्जे नैव कर्तव्यं सख्यं मतिमता सदा।
निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लम्पटः शठः॥ २७
न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने।
भवन्तो निपुणाः सर्वे न द्रोहमतयः सदा॥ २८
अनभिज्ञास्तु शान्तत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम्।

मुनय ऊचुः

जन्तुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च॥ २९
द्रोहं कृत्वा कुतः शान्तिमाप्नुयान्नष्टचेतनः।
विश्वासघातकर्तारो नरकं यान्ति निश्चयम्॥ ३०
दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः।
निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां सुरापानां च निष्कृतिः॥ ३१
विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि।
समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम्॥ ३२
तेनैव समयेनाद्य सन्धिः स्यादुभयोः किल।

वृत्र उवाच

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा॥ ३३
न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च।
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः॥ ३४
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नान्यथा।

परिपूर्ण कर देंगे। सत्यके आधारपर ही यह पृथ्वी स्थित है, सत्यसे ही भगवान् सूर्य नित्य तपते हैं, सत्यसे ही समयके अनुसार वायु बहती है और सत्यके कारण ही समुद्र भी अपनी मर्यादाका परित्याग नहीं करता। इसलिये सत्यके आधारपर ही आज आप दोनोंमें मित्रता हो जाय, जिससे आपलोग सुखपूर्वक साथ-साथ शयन, क्रीडा, जलकेलि कर सकें और बैठ सकें। इसलिये आप दोनोंको एकत्रित होकर अवश्य ही मित्रता कर लेनी चाहिये। १९—२३½ ॥

व्यासजी बोले—उन महर्षियोंका वचन सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् वृत्रासुरने कहा—हे भगवन्! आप सभी तपस्वीगण मेरे मान्य हैं। आप मुनिगण कभी असत्य भाषण नहीं करते। आपलोग सदाचारी तथा अति शान्त स्वभाववाले हैं और छल करना नहीं जानते। किंतु वैरी, मूर्ख, जड़, कामी, कलंकित और निर्लज्जसे बुद्धिमान्को मित्रता नहीं करनी चाहिये। यह (इन्द्र) निर्लज्ज, दुराचारी, ब्राह्मणघाती, लम्पट और मूर्ख है—इस प्रकारके व्यक्तिका विश्वास नहीं करना चाहिये। आप सभी लोग कुशल हैं, किंतु द्रोह-बुद्धिवाले कभी नहीं हैं। आप सब शान्तचित्त होनेके कारण अतिवादियोंके मनकी बात नहीं जानते॥ २४—२८½ ॥

मुनि बोले—प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो, वह द्रोह करके भी क्या शान्ति प्राप्त कर सकता है? विश्वासघात करनेवाले निश्चय ही नरकमें जाते हैं। विश्वासघाती निश्चितरूपसे दुःख प्राप्त करता है। ब्राह्मणकी हत्या करनेवालों और मद्यपान करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त है, परंतु विश्वासघातियों और मित्रद्रोहियोंके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। अतः हे सर्वज्ञ! आपने मनमें जो शर्त निश्चय कर रखी हो, उसे बताइये; जिससे उस शर्तके अनुसार आज ही आप दोनोंमें सन्धि हो जाय॥ २९—३२½ ॥

वृत्रासुर बोला—हे महाभाग! सभी देवताओंसहित इन्द्र न शुष्क या गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न काष्ठसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें मेरा वध कर सकें। हे विप्रेन्द्रो! इसी शर्तपर मैं इन्द्रसे सन्धि करना चाहता हूँ, अन्यथा नहीं॥ ३३-३४½ ॥

व्यास उवाच

ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः॥ ३५

समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम्।
इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः॥ ३६

साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल।
वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा॥ ३७

बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः।
कदाचिन्नन्दने चोभौ कदाचिद् गन्धमादने॥ ३८

कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः।
एवं कृते च सन्धाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत्॥ ३९

शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिन्तयत्।
रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदासीन्मघवा भृशम्॥ ४०

एवं चिन्तयतस्तस्य कालः समभिवर्तत।
विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे॥ ४१

एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते।
वृत्रस्य मरणोपायान्मनसीन्द्रोऽप्यचिन्तयत्॥ ४२

त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने।
पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम्॥ ४३

न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथञ्चन।
मघवा कृतवैरस्ते सदासूयापरः परैः॥ ४४

लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः।
परदारलम्पटः स पापबुद्धिः प्रतारकः॥ ४५

रन्ध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः।
यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह॥ ४६

सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रन्दमानमनातुरः।
तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथञ्चन॥ ४७
कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः।

व्यासजी बोले—ऋषियोंने उससे आदरपूर्वक कहा—'ठीक है' और तत्पश्चात् देवराज इन्द्रको वहाँ बुलाकर उन्हें वह शर्त सुना दी। इन्द्रने भी मुनियोंकी उपस्थितिमें अग्निको साक्षी करके शपथें लीं और वे सन्तापसे मुक्त हो गये। वृत्रासुर भी उनकी बातोंसे विश्वासमें आ गया और इन्द्रके साथ मित्रकी भाँति व्यवहारपरायण हो गया॥ ३५—३७½॥

वे दोनों कभी नन्दनवनमें, कभी गन्धमादनपर्वतपर और कभी समुद्रके तटपर आनन्दपूर्वक विचरण करते थे। इस प्रकार सन्धि हो जानेपर वृत्रासुर बहुत प्रसन्न रहता था। लेकिन वधकी इच्छावाले इन्द्र उसके वधके उपाय सोचा करते थे। इन्द्र उसकी कमजोरी ढूँढ़नेके लिये सदा उद्विग्न रहते थे॥ ३८—४०॥

इन्द्रके इस प्रकार विचार करते हुए कुछ समय बीत गया। वृत्रासुरको अत्यन्त क्रूर इन्द्रपर अत्यधिक विश्वास हो गया। इस प्रकार सन्धिके कुछ वर्ष बीत जानेपर इन्द्रने मन-ही-मन वृत्रासुरके मरणका उपाय सोच लिया॥ ४१-४२॥

एक बार त्वष्टाने इन्द्रपर बहुत अधिक विश्वास करनेवाले पुत्रसे कहा—हे पुत्र वृत्रासुर! हे महाभाग! मेरी हितकर बात सुनो, जिसके साथ शत्रुता हो चुकी हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। इन्द्र तुम्हारा शत्रु है, वह दूसरोंके द्वारा तुम्हारे गुणोंमें सदा दोष ढूँढ़ा करता है॥ ४३-४४॥

वह सदा लोभसे उन्मत्त रहनेवाला, सबसे द्वेष रखनेवाला, दूसरोंका दुःख देखकर सुखी रहनेवाला, परस्त्रीगामी, पापबुद्धि, कपटी, छिद्रान्वेषी, दूसरोंसे द्रोह करनेवाला, मायावी और अहंकारी है, जिसने कि एक बार माताके उदरमें प्रवेश करके उसके गर्भको सात भागोंमें काट डाला। तब उन्हें रोते देखकर उस निर्दयीने उनके भी पृथक्-पृथक् सात भाग कर दिये।* इसलिये हे पुत्र! उसपर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हे पुत्र! पाप करनेवालेको दुबारा पाप करनेमें क्या लज्जा!॥ ४५—४७½॥

---

* वे ही उनचास मरुद्गण बने।

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः॥ ४८

न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल।
स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम्॥ ४९

सन्ध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीव दारुणे।
ततः सञ्चिन्त्य मघवा वरदानं महात्मनाम्॥ ५०

सन्ध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च।
हन्तव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न संशयः॥ ५१

एकाकी विजने चात्र सम्प्राप्तः समयोचितः।
एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम्॥ ५२

तत्राजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः।
वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः॥ ५३

इन्द्रो बुद्धिं चकाराशु तदा वृत्रवधं प्रति।
इति सञ्चिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे॥ ५४

अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा।
यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महाबलम्॥ ५५

न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात्।
अपां फेनं तदापश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम्॥ ५६

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा।
अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया॥ ५७

परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः।
स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत्॥ ५८

वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम्।
फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति॥ ५९

सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः।
वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा॥ ६०

ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः।
हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः॥ ६१

व्यासजी बोले—इस प्रकार पिताद्वारा कल्याणकारी वचनोंसे समझाये जानेपर भी आसन्न-मृत्यु वृत्रासुरको कुछ भी चेत नहीं हुआ॥ ४८½ ॥

एक दिन उन्होंने (इन्द्रने) उस महान् दैत्यको समुद्रके तटपर देखा। उस समय संध्याकालका अत्यन्त भयंकर मुहूर्त उपस्थित था। तब इन्द्रने महात्मा मुनियोंद्वारा निर्धारित शर्त—वरदानपर यह विचार करके कि यह भयंकर संध्याकाल है, इस समय न दिन है, न रात है, अतः मुझे आज ही इसे अपनी शक्तिसे मार डालना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४९—५१ ॥

यहाँ एकान्त है और यह अकेला है तथा समय भी अनुकूल है—ऐसा विचारकर उन्होंने अपने मनमें अविनाशी भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया। [स्मरण करते ही] पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु वहाँ अदृश्यरूपसे आ गये और वे प्रभु श्रीहरि इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट होकर विराजमान हो गये॥ ५२-५३ ॥

तब इन्द्र वृत्रासुरको मारनेकी युक्ति सोचने लगे कि सभी देवताओं तथा दानवोंसे सर्वथा अजेय इस शत्रुको युद्धमें कैसे मारूँ? यदि छल करके इस महाबलीको आज नहीं मारता तो इस शत्रुके जीवित रहते किसी भी प्रकार कल्याण नहीं है। इन्द्र ऐसा विचार कर ही रहे थे तभी उन्होंने समुद्रमें पर्वतके समान जलफेनको देखा॥ ५४—५६ ॥

यह न सूखा है, न गीला है और यह न तो कोई शस्त्र है, [ऐसा विचारकर] इन्द्रने उस समुद्रफेनको लीलापूर्वक उठा लिया॥ ५७ ॥

तदनन्तर उन्होंने परम भक्तिपूर्वक, पराशक्ति जगदम्बाका स्मरण किया, तब स्मरण करते ही देवीने अपना अंश उस फेनमें स्थापित कर दिया॥ ५८ ॥

इन्द्रने भगवान् श्रीहरिसे युक्त वज्रको उस फेनसे आवृत कर दिया और उस फेनसे आवृत वज्रको वृत्रासुरके ऊपर फेंका॥ ५९ ॥

उस वज्रके अचानक प्रहारसे वह पर्वतकी भाँति गिर पड़ा। तब उसके मर जानेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उठे और ऋषिगण विविध स्तोत्रोंसे देवराज इन्द्रकी स्तुति करने लगे। उस शत्रुके मारे जानेसे प्रसन्नचित्त इन्द्रने देवताओंके साथ उन भगवतीकी

देवीं सम्पूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः।
प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि॥ ६२

देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः।
पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः॥ ६३

त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः।
तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम्॥ ६४

विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः।
ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे॥ ६५

प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा।
हते तस्मिन्सगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः॥ ६६

इत्थं वृत्रः पराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः।
तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः॥ ६७

ततो वृत्रनिहन्त्रीति देवी लोकेषु गीयते।
शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते॥ ६८

पूजा की तथा विविध स्तोत्रोंसे उन्हें प्रसन्न किया, जिनकी कृपासे शत्रु मारा गया॥ ६०—६२॥

तत्पश्चात् इन्द्रने देवोद्यान नन्दनवनमें पराशक्ति भगवतीका मन्दिर बनवाया और उसमें पद्मराग मणियोंसे निर्मित मूर्तिकी स्थापना की और सभी देवता भी तीनों समय उनकी महती पूजा करने लगे; तभीसे श्रीदेवी ही उन देवताओंकी कुलदेवी हो गयीं॥ ६३-६४॥

तब महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयंकर वृत्रके मारे जानेपर इन्द्रने तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा की। उस वृत्रासुरके मर जानेपर कल्याणकारी वायु बहने लगी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरगण हर्षित हो उठे॥ ६५-६६॥

इस प्रकार भगवती पराशक्तिके समुद्रफेनसे संयुक्त होने और उनके द्वारा ही विमोहित किये जानेके कारण वृत्रासुर सहसा इन्द्रके द्वारा मारा गया। इसलिये वे भगवती देवी संसारमें 'वृत्रनिहन्त्री' इस नामसे विख्यात हुईं और वह वृत्रासुर चूँकि प्रकटरूपसे इन्द्रके द्वारा मारा गया था, इसलिये उसे इन्द्रके द्वारा मारा गया, ऐसा कहा जाता है॥ ६७-६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे छद्मनेन्द्रेण फेनद्वारा पराशक्तिस्मरणपूर्वकं वृत्रहननवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

त्वष्टाका वृत्रासुरकी पारलौकिक क्रिया करके इन्द्रको शाप देना, इन्द्रको ब्रह्महत्या लगना, नहुषका स्वर्गाधिपति बनना और इन्द्राणीपर आसक्त होना

व्यास उवाच

अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ।
मनसा शङ्कमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम्॥ १

इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविन्द्रपुरीं ततः।
मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ॥ २

किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वञ्चितः किल।
मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च सङ्गमात्॥ ३

अस्माकं वचनाद् वृत्रो विश्वासमगमत्किल।
विश्वासघातिनः सङ्गाद्वयं विश्वासघातकाः॥ ४

व्यासजी बोले—इस प्रकार उसे गिरा हुआ देखकर मन-ही-मन हत्याके भयसे सशंकित भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकको चले गये॥ १॥

तत्पश्चात् इन्द्र भी भयभीत होकर इन्द्रपुरीको चल दिये। उस शत्रु (वृत्रासुर)-के मारे जानेपर मुनिगण भी भयग्रस्त हो गये कि हमने छलपूर्ण यह कैसा पापकृत्य कर डाला। इन्द्रका साथ देनेसे हमारा 'मुनि' नाम व्यर्थ हो गया॥ २-३॥

हमारी ही बातोंसे वृत्रासुरको विश्वास आया; विश्वासघातीके संगसे हम सब भी विंश्वासघाती हो गये॥ ४॥

धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत्।
यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वञ्चितोऽसुरः॥ ५

पापकी जड़ और अनर्थकारी इस ममताको धिक्कार है, जिसके कारण हमलोगोंने छलपूर्वक शपथ ली और उस असुर (वृत्रासुर)-को धोखा दिया॥ ५॥

मन्त्रकृद् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम्।
पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च॥ ६

पाप करनेका परामर्श देनेवाला, पाप करनेके लिये बुद्धि देनेवाला, पापकी प्रेरणा देनेवाला तथा पाप करनेवालोंका पक्ष लेनेवाला भी निश्चय ही पापकर्ताके समान पापभाजन होता है॥ ६॥

विष्णुनापि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान्।
वज्रं प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना॥ ७

वज्रमें प्रविष्ट होकर वृत्रकी हत्या करनेमें सत्त्वगुणके मूर्तरूप भगवान् विष्णुने इन्द्रकी सहायता की और उसे मारा, अतः उन्होंने भी पाप किया॥ ७॥

नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात् त्रासमश्नुते।
हरिणा हरिसङ्गेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम्॥ ८

स्वार्थपरायण प्राणी पापसे भयभीत नहीं होता। विष्णुने इन्द्रका साथ देकर सर्वथा दुष्कृत कर्म किया॥ ८॥

द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ।
प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ॥ ९

चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-मेंसे दो ही रह गये हैं और दो समाप्त हो गये हैं। उनमें भी प्रथम पदार्थ धर्म और चतुर्थ पदार्थ मोक्ष दोनों त्रिलोकमें दुर्लभ ही हो गये हैं॥ ९॥

अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां सम्मतौ प्रियौ।
धर्माधर्मेति वाग्वादो दम्भोऽयं महतामपि॥ १०

अर्थ और काम ही सबके प्रिय और प्रशस्त माने गये हैं। धर्म और अधर्मकी विवेचना—यह बड़े लोगोंका वाचिक दम्भमात्र ही रह गया है॥ १०॥

मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः।
जग्मुः स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः॥ ११

इस प्रकार मुनिगण भी बार-बार मनमें सन्ताप करके उदासमनसे हतोत्साह होकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ ११॥

त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिन्द्रेण भारत।
रुरोद दुःखसन्तप्तो निर्वेदमगमत्पुनः॥ १२

हे भारत! उधर अपने पुत्रको इन्द्रद्वारा मारा गया सुनकर त्वष्टा दुःखसे सन्तप्त होकर अत्यन्त दुःखित हो रोने लगे; उन्हें इससे बहुत वेदना हुई॥ १२॥

यत्रासौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम्।
संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम्॥ १३

तदनन्तर जहाँ वह (वृत्र) गिरा पड़ा था, वहाँ जाकर उसे उस स्थितिमें देखकर त्वष्टाने विधिपूर्वक उसका पारलौकिक संस्कार कराया॥ १३॥

स्नात्वास्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम्।
शशापेन्द्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम्॥ १४

यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम्।
तथेन्द्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम्॥ १५

तत्पश्चात् स्नान करके, जलाञ्जलि देकर उसका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करनेके पश्चात् उन शोकसन्तप्त त्वष्टाने पापी और मित्रघाती इन्द्रको इस प्रकार शाप दे दिया कि जिस प्रकार शपथोंसे प्रलोभितकर इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है, उसी प्रकार वह भी विधाताद्वारा दिये हुए महान् दुःख प्राप्त करे॥ १४—१५॥

इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः।
मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्॥ १६

जनमेजय उवाच

हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान्।
सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १७

व्यास उवाच

किं पृच्छसि महाभाग सन्देहः कीदृशस्तव।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ १८

बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वापि स्वल्पं वा बहु वा कृतम्।
सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः॥ १९

शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने।
प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत॥ २०

न चापदि सहायोऽभूद्वासुदेवः कथञ्चन।
समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप॥ २१

दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान्।
पिता माता तथा भार्या भ्राता वाथ सहोदरः॥ २२

सेवको वापि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः।
प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम्॥ २३

भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा।
वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः॥ २४

शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः।
को नाम शपथान्कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः॥ २५

जिघांसति सुविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम्।
देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गन्धर्वाणां समागमे॥ २६

सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल।
किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता॥ २७

वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम्।
वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं मतम्॥ २८

इस प्रकार देवराज इन्द्रको शाप देकर सन्तप्त त्वष्टा सुमेरुपर्वतके शिखरका आश्रय लेकर अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे॥ १६॥

जनमेजय बोले—हे पितामह! वृत्रासुरको मारनेके बाद इन्द्रकी क्या दशा हुई? उन्हें बादमें सुख मिला या दुःख, इसे मुझे बताइये॥ १७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तुम क्या पूछ रहे हो, [इस विषयमें] तुम्हें क्या सन्देह है? किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। देवता, राक्षस और मनुष्यसहित बलवान् या दुर्बल कोई भी हो—सभीको अपने द्वारा किये गये अत्यन्त अल्प या अधिक कर्मका फल सर्वथा भोगना ही पड़ता है॥ १८-१९॥

भगवान् विष्णुने वृत्रघाती इन्द्रको इस प्रकारकी मति प्रदान की थी। वे विष्णु उनके वज्रमें प्रविष्ट हुए थे तथा उनके सहायक बने थे; परंतु विपत्तिमें उन्होंने किसी भी तरह सहायता नहीं की। हे राजन्! इस संसारमें अच्छे समयमें सभी लोग अपने बन जाते हैं, किंतु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोई भी सहायक नहीं होता। पिता, माता, पत्नी, सहोदर भाई, सेवक, मित्र एवं औरस पुत्र—कोई भी दैवके प्रतिकूल हो जानेपर सहायता नहीं करता। पाप या पुण्य करनेवाला ही उसका भागी होता है॥ २०—२३½॥

वृत्रके मारे जानेपर अन्य सभी लोग चले गये; इन्द्र तेजहीन हो गये। सभी देवता उसकी निन्दा करने लगे और 'यह ब्रह्महत्यारा है'—ऐसा मन्द स्वरमें कहने लगे। कौन ऐसा होगा जो शपथ खाकर और वचन देकर अत्यन्त विश्वासमें आये हुए तथा मित्रताको प्राप्त मुनिको मारनेकी इच्छा करेगा! उसकी यह बात देवताओंकी सभामें, देवोद्यानमें तथा गन्धर्वोंके समाजमें सर्वत्र फैल गयी। हत्या करनेकी इच्छावाले इन्द्रने आज यह कैसा दुष्कृत कर्म कर डाला! मुनियोंके द्वारा विश्वास दिलाये गये वृत्रासुरको छलपूर्वक मार करके (मानो) इन्द्रने वेदोंकी प्रामाणिकताका त्यागकर सौगतोंका मत स्वीकार कर लिया। इन्द्रने छल करके अत्यन्त साहससे शत्रुको

यदयं निहतः शत्रुर्वञ्चयित्वातिसाहसात्।
को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत्॥ २९

विना शक्रं हरिं वापि यथायं विनिपातितः।
एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम्॥ ३०

शुश्रावेन्द्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः।
यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम्॥ ३१

यं दृष्ट्वा पथि गच्छन्तं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत्।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात्॥ ३२

स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते।
स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल॥ ३३

नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टादशैव तु।
भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः॥ ३४

ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ सञ्जातो मकरादिषु।
विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे॥ ३५

गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृती नरः।
रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु॥ ३६

दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत।
तथेन्द्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम्॥ ३७

न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्वसिद्धिसमन्विते।
पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम्॥ ३८

निःश्वसन्तं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतसम्।
किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः॥ ३९

का चिन्ता वर्तते कान्त तव शत्रुनिषूदन।
कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा॥ ४०

नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिन्तापरो भवान्।

इन्द्र उवाच

नारातिर्बलवान्मेऽस्ति न शान्तिर्न सुखं तथा॥ ४१

ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे।
न नन्दनं सुखकरं नामृतं न गृहं वनम्॥ ४२

मार डाला। वचन देकर भी जिस प्रकार [छलपूर्वक] यह वृत्रासुर मारा गया, वैसा विपरीत आचरण इन्द्र और विष्णुके अतिरिक्त कौन होगा, जो कर सकता है! इस प्रकारकी कथाएँ तथा और भी बातें लोगोंमें व्यापक रूपसे होने लगीं॥ २४—३०॥

इन्द्र भी अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें सुनते रहे। संसारमें जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उसके कलुषित जीवनको धिक्कार है। रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ता है। राजर्षि इन्द्रद्युम्नने कोई पाप नहीं किया था फिर भी कीर्ति नष्ट हो जानेसे वे स्वर्गसे गिर गये थे; तब पाप करनेवाला कैसे नहीं गिरेगा? राजा ययातिका बहुत थोड़ेसे अपराधपर पतन हो गया था। इसी प्रकार एक राजाको अठारह युगोंतक केकड़ेकी योनिमें रहना पड़ा था। भृगुकी पत्नीका मस्तक काटनेके कारण अच्युत भगवान् श्रीहरिको ब्रह्मशापसे मकर आदि रूपोंमें पशुयोनिमें जन्म लेना पड़ा। विष्णुको भी वामन होकर याचनाके लिये बलिके घर जाना पड़ा; तब यदि कुकर्मी मनुष्य दुःख पाये तो क्या आश्चर्य है! हे भारत! श्रीरामचन्द्रजीको भी भृगुके शापसे वनवासकालमें सीतासे वियोगका महान् कष्ट उठाना पड़ा। उसी प्रकार इन्द्रको भी ब्रह्महत्याजनित महान् भय प्राप्त करके समस्त सिद्धियोंसे युक्त भवनमें भी सुख नहीं प्राप्त होता था। उन्हें दीर्घ श्वास लेते, भयग्रस्त, चेतनारहित, खिन्नमनस्क और सभामें न जाते देखकर शचीने पूछा—हे प्रभो! आजकल आप भयभीत क्यों रहते हैं, आपका भयंकर शत्रु तो मर गया है। हे कान्त! हे शत्रुहन्ता! आपको क्या चिन्ता है? हे लोकेश! साधारण मनुष्यकी भाँति लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए आप शोक क्यों करते हैं? आपका कोई बलवान् शत्रु भी तो नहीं है, जिससे आप चिन्ताकुल हों॥ ३१—४०½॥

इन्द्र बोले—हे राज्ञि! यद्यपि अब मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं निरन्तर डरता रहता हूँ। घरमें रहते हुए भी मुझे न सुख है और न शान्ति। नन्दनवन, अमृत, घर तथा वन—कुछ भी मुझे सुखकर नहीं लगता। गन्धर्वोंका

गन्धर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः।
न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः॥ ४३

न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः।
किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते॥ ४४

इति चिन्तापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम्॥ ४५

निर्जगाम गृहान्मन्दो मानसं सर उत्तमम्।
पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्षितः॥ ४६

न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतश्च कल्मषैः।
प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः॥ ४७

असहायस्तुराषाडैच्चिन्तार्तो विकलेन्द्रियः।
ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते॥ ४८

सुराश्चिन्तातुराश्चासन्नुत्याताश्चाभवन्नथ ।
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम्॥ ४९

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः।
अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा॥ ५०

विच्छिन्नस्त्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै।
एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा॥ ५१

विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः।
सम्प्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात्॥ ५२

बभूव विषयासक्तः पञ्चबाणशराहतः।
अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत॥ ५३

शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः।
ऋषीनाह किमिन्द्राणी नोपगच्छति मां किल॥ ५४

भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह।
प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम्॥ ५५

प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः।
अहमिन्द्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः॥ ५६
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम्।

गान और अप्सराओंका नृत्य तथा यहाँतक कि तुम और अन्य देवांगनाएँ भी मुझे सुखकर नहीं लगतीं। न कामधेनु और न ही कल्पवृक्ष मुझे सुख प्रदान करते हैं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी? हे प्रिये! इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं अपने मनमें शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहा हूँ॥ ४१—४४½ ॥

व्यासजी बोले—अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रिय पत्नीसे ऐसा कहकर मूढ इन्द्र घरसे निकल पड़े और उत्तम मानसरोवरको चले गये। भयसे पीडित और शोकसन्तप्त होकर वे एक कमलनालमें प्रविष्ट हो गये। पापकर्मोंसे पराभूत हुए देवराज इन्द्रको कोई जान नहीं सका। वे सर्पके समान चेष्टा करते हुए जलमें छिपकर रह रहे थे। उस समय वे इन्द्र असहाय, चिन्तित और व्याकुल इन्द्रियोंवाले हो गये॥ ४५—४७½ ॥

ब्रह्महत्याके भयसे दुःखी होकर देवराज इन्द्रके अदृश्य हो जानेपर देवगण चिन्तातुर हो उठे तथा अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वगण भी अत्यन्त भयभीत हो गये। उपद्रवोंके होनेसे सम्पूर्ण जगत् अराजकतासे ग्रस्त हो गया। उस समय अनावृष्टि उपस्थित हो गयी और पृथ्वी वैभवशून्य हो गयी, नदियोंके स्त्रोत सूख गये और तालाब बिना जलके हो गये—इस प्रकारकी अराजकताको देखकर स्वर्गके देवताओं और मुनियोंने विचार करके नहुषको इन्द्र बना दिया॥ ४८—५१½ ॥

राज्य प्राप्त करनेपर राजा नहुष धर्मात्मा होते हुए भी राजसी वृत्तिके कारण कामबाणसे आहत हो विषयासक्त हो गये। हे भारत! देवोद्यानोंमें क्रीडारत रहते हुए वे सदा अप्सराओंसे घिरे रहते थे॥ ५२-५३॥

उस राजा नहुषके मनमें इन्द्राणी शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। उसने ऋषियोंसे कहा—मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती? आपलोग और देवताओंने मुझे इन्द्र बनाया, इसलिये हे देवताओ! शचीको मेरी सेवाके लिये भेजिये। हे मुनियो तथा देवताओ! आपलोगोंको मेरा प्रिय कार्य अवश्य करना चाहिये। इस समय मैं देवताओंका इन्द्र और समस्त लोकोंका स्वामी हूँ; शची शीघ्र ही आज मेरे भवनमें आ जायँ॥ ५४—५६½ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा॥ ५७
गत्वा चिन्तातुराः प्रोचुः पौलोमीं प्रणतास्ततः।
इन्द्रपत्नि दुराचारो नहुषस्त्वामिहेच्छति॥ ५८

कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह।
किं कुर्मस्तदधीनाः स्मो येनेन्द्रोऽयं कृतः किल॥ ५९

तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह।
रक्ष मां नहुषाद् ब्रह्मंस्तवास्मि शरणं गता॥ ६०

बृहस्पतिरुवाच

न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहितात्।
न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥ ६१

शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः।
स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्।
स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन॥ ६२

उसकी यह बात सुनकर चिन्तासे व्याकुल देवता तथा ऋषिगण शचीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहने लगे—हे इन्द्रपत्नि! दुराचारी नहुष इस समय आपकी कामना करता है। उसने क्रुद्ध होकर हमसे यह बात कही है 'शचीको यहाँ भेज दीजिये।' हम उसके अधीन हैं, अतः कर ही क्या सकते हैं; क्योंकि उसे इन्द्र बना दिया गया है॥ ५७—५९॥

यह सुनकर दुःखितमन शचीने बृहस्पतिसे कहा—'हे ब्रह्मन्! नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये; मैं आपकी शरणमें हूँ'॥ ६०॥

बृहस्पति बोले—हे देवि! पापसे मोहित नहुषसे तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। हे पुत्रि! मैं सनातनधर्मका त्यागकर तुम्हें उसको नहीं दूँगा॥ ६१॥

जो अधम मनुष्य शरणमें आये हुए तथा दुःखी प्राणीको दूसरोंको सौंप देता है वह प्रलयपर्यन्त नरकमें वास करता है। अतः हे पृथुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारा त्याग कभी नहीं करूँगा॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे इन्द्रस्य पद्मनालप्रवेशानन्तरं नहुषस्य देवेन्द्रपदेऽभिषेकवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

* * *

अथाष्टमोऽध्यायः

इन्द्राणीको बृहस्पतिकी शरणमें जानकर नहुषका क्रुद्ध होना, देवताओंका नहुषको समझाना, बृहस्पतिके परामर्शसे इन्द्राणीका नहुषसे समय माँगना, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास जाना और विष्णुका उन्हें देवीको प्रसन्न करनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेको कहना, बृहस्पतिका शचीको भगवतीकी आराधना करनेको कहना, शचीकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीका प्रकट होना और शचीको इन्द्रका दर्शन होना

व्यास उवाच

नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम्।
चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमाङ्गिरसमाशु वै॥ १

देवानाहाङ्गिरासूनुर्हन्तव्योऽयं मया किल।
इतीन्द्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम्॥ २

इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः।
अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा॥ ३

व्यासजी बोले—वे शची देवगुरुकी शरणमें चली गयी हैं—ऐसा सुनकर कामबाणसे आहत नहुष अंगिरापुत्र बृहस्पतिपर बहुत कुपित हुआ और उसने देवताओंसे कहा—यह अंगिरापुत्र बृहस्पति आज मेरेद्वारा निश्चय ही मारा जायगा; क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि उस मूर्खने इन्द्राणीको अपने घरमें रखा है॥ १-२॥

इस प्रकार नहुषको क्रुद्ध देखकर प्रधान ऋषियोंसहित देवतागण उस दुष्टसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ ३॥

क्रोधं संहर राजेन्द्र त्यज पापमतिं प्रभो।
निन्दन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम्॥ ४

शक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः।
कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगातिपतिव्रता॥ ५

त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो।
त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम्॥ ६

सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम्।
वारमुख्याश्च शतशो वर्तन्तेऽत्र शचीसमाः॥ ७

रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृङ्गारस्य महात्मभिः।
रसहानिर्बलात्कारे कृते सति तु जायते॥ ८

उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम।
तदा वै सुखसम्पत्तिरुभयोरुपजायते॥ ९

तस्माद्भावमिमं मुञ्च परदाराभिमर्शने।
सद्भावं कुरु देवेन्द्र पदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम्॥ १०

ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम्।
तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव॥ ११

नहुष उवाच

गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः।
वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा॥ १२

परोपदेशे कुशला प्रभवन्ति नराः किल।
कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत्॥ १३

मामागच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः।
एतस्याः परमं देवाः सुखमेवं भविष्यति॥ १४

अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद् ब्रवीमि वः।
विनयाद्वा बलाद्वापि तामाशु प्रापयन्त्विह॥ १५

हे राजेन्द्र! क्रोध दूर करो और पापकारिणी बुद्धिका त्याग करो। हे प्रभो! [मनीषियोंने] धर्मशास्त्रोंमें परस्त्रीगमनकी निन्दा की है॥ ४॥

इन्द्रकी पत्नी शची सदासे अत्यन्त साध्वी, सौभाग्यवती और पतिव्रता हैं; फिर अपने पतिके जीवित रहते वे कैसे दूसरेको पति बना सकती हैं?॥ ५॥

हे विभो! आज इस समय आप तीनों लोकोंके स्वामी तथा धर्मके रक्षक हैं। आप-जैसा राजा अधर्ममें स्थित हो जाय तब तो निश्चितरूपसे प्रजाका नाश हो जायगा॥ ६॥

राजाको सब प्रकारसे सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। यहाँ स्वर्गमें तो शचीके सदृश सैकड़ों प्रमुख अप्सराएँ हैं॥ ७॥

महात्माओंने रतिको ही शृंगारका कारण बताया है, बलप्रयोग किये जानेपर तो रसकी हानि ही होती है॥ ८॥

हे नृपश्रेष्ठ! जब [स्त्री-पुरुष] दोनोंमें एक समान प्रेम रहता है, तभी उन दोनोंको अधिक सुख प्राप्त होता है॥ ९॥

अतः हे देवेन्द्र! परस्त्रीगमनकी यह भावना छोड़ दीजिये और श्रेष्ठ आचरण कीजिये; क्योंकि आपको इन्द्र-जैसा अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त है॥ १०॥

हे राजन्! पापसे सम्पत्तिका क्षय होता है और पुण्यसे महान् वृद्धि होती है, इसलिये पापकर्म छोड़कर सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लीजिये॥ ११॥

नहुषने कहा—हे देवताओ! जब देवराज इन्द्रने गौतमकी पत्नीके साथ और चन्द्रमाने बृहस्पतिकी पत्नीके साथ अनाचार किया था, तब तुमलोग कहाँ थे?॥ १२॥

लोग दूसरोंको उपदेश देनेमें बहुत कुशल होते हैं, परंतु उपदेश देनेवाला तथा उसका पालन करनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है॥ १३॥

हे देवताओ! वह शची मेरे पास आ जाय, इसीमें आप सबका परम कल्याण है; इससे उसको भी अत्यन्त सुख मिलेगा॥ १४॥

अन्य किसी भी प्रकारसे मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा, यह मैं तुमलोगोंसे कह रहा हूँ। इसलिये विनयसे या बलपूर्वक तुमलोग उसे शीघ्र ही मुझे प्राप्त कराओ॥ १५॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा।
तमूचुश्चातिसन्त्रस्ता नहुषं मदनातुरम्॥ १६

इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवान्तिकम्।
इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम्॥ १७

व्यास उवाच

ते गत्वाङ्गिरसः पुत्रं प्रोचुः प्राञ्जलयः सुराः।
जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि॥ १८

सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतो यतः।
वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी॥ १९

बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
नाहं त्यक्ष्ये तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम्॥ २०

देवा ऊचुः

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति।
अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति॥ २१

गुरुरुवाच

तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम्।
करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे॥ २२

इन्द्रे जीवति मे कान्ते कथमन्यं करोम्यहम्।
अन्वेषणार्थं गन्तव्यं मया तस्य महात्मनः॥ २३

इति सा समयं कृत्वा वञ्चयित्वा च भूपतिम्।
भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः॥ २४

इति सञ्चिन्त्य मे सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः।
नहुषं सहिता जग्मुरिन्द्रपत्न्या दिवौकसः॥ २५

तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः।
जहर्ष च मुदायुक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत्॥ २६

अद्यास्मि वासवः कान्ते भज मां चारुलोचने।
पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः॥ २७

इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता।
वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर॥ २८

उसकी यह बात सुनकर भयभीत देवताओं और मुनियोंने उस कामातुर नहुषसे कहा—हमलोग सामनीतिसे इन्द्राणीको आपके पास लायेंगे—ऐसा कहकर वे लोग बृहस्पतिके निवासपर चले गये॥ १६-१७॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर वे देवगण अंगिराके पुत्र बृहस्पतिके पास जाकर हाथ जोड़कर उनसे बोले—हमें ज्ञात हुआ है कि इन्द्राणीको आपके घरमें शरण प्राप्त है, उन्हें आज ही नहुषको देना है; क्योंकि वह इन्द्र बना दिया गया है। यह सुलक्षणा सुन्दरी उन्हें पतिके रूपमें वरण कर ले॥ १८-१९॥

यह दारुण वचन सुनकर बृहस्पतिने देवताओंसे कहा—मैं शरणमें आयी हुई इस पतिव्रता शचीका त्याग नहीं करूँगा॥ २०॥

देवगण बोले—तब दूसरा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे वह आज प्रसन्न हो जाय, अन्यथा क्रुद्ध होनेपर वह दुराराध्य हो जायगा॥ २१॥

देवगुरु बोले—सुन्दरी शची वहाँ जाकर राजाको अपनी बातसे अत्यन्त मोहित करके यह शपथ ले कि 'अपने पतिको मृत जाननेके बाद ही मैं आपको अंगीकार करूँगी। अपने पति इन्द्रके जीवित रहते मैं किसी दूसरेको पति कैसे बना लूँ? इसलिये उन महाभागकी खोजके लिये मुझे जाना पड़ेगा।' इस प्रकार वह मेरे कथनके अनुसार शपथ लेकर और राजाको छलकर अपने पतिको लानेका प्रयत्न करे॥ २२—२४॥

ऐसा विचार करके सभी देवता बृहस्पतिको आगे करके इन्द्रपत्नी शचीके साथ नहुषके पास गये॥ २५॥

उन सभीको आया हुआ देखकर वह कृत्रिम इन्द्र नहुष हर्षित हुआ। उस शचीको देखकर वह आनन्दित हो गया और प्रसन्नतापूर्वक बोला—हे प्रिये! आज मैं इन्द्र हूँ, हे सुन्दर नेत्रोंवाली! मुझे पतिरूपमें अंगीकार करो। मैं देवताओंके द्वारा सम्पूर्ण लोकका पूज्य बना दिया गया हूँ॥ २६-२७॥

नहुषके ऐसा कहनेपर शचीने लज्जित होकर काँपते हुए कहा—हे राजन्! हे सुरेश्वर! मैं आपसे एक वरप्राप्तिकी इच्छा करती हूँ। आप कुछ समयतक

किञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम्।
इन्द्रोऽस्तीति न वास्तीति सन्देहो मे हृदि स्थितः॥ २९

ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि।
तावत्क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३०

न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः।
एवमुक्तः स चेन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत्॥ ३१

व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदान्वितः।
सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती॥ ३२

इन्द्रस्यागमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः।
श्रुत्वा तद्वचनं देवा इन्द्राण्या रसवच्छुचि॥ ३३

मन्त्रयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं नृपसत्तम।
ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ ३४

आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम्।
ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः॥ ३५

देवदेव सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः।
अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः॥ ३६

त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्या कुतः प्रभो।
त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि॥ ३७

त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश।
देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत्॥ ३८

यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये।
पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः॥ ३९

पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः।
हयमेधेन सन्तुष्टा देवी श्रीजगदम्बिका॥ ४०

ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति॥ ४१

किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च।
इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम्॥ ४२

प्रतीक्षा करें, जबतक मैं यह निर्णय कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं; क्योंकि इस बातका मेरे मनमें सन्देह है। मनमें इसका निश्चय करनेके अनन्तर मैं आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगी। हे राजेन्द्र! तबतकके लिये क्षमा कीजिये; यह मैं सत्य कह रही हूँ। अभी यह ज्ञात नहीं है कि इन्द्र नष्ट हो गये हैं या कहीं चले गये हैं॥ २८—३०½ ॥

इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर नहुष प्रसन्न हो गया और 'ऐसा ही हो'—यह कहकर उसने उन देवी शचीको प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। राजासे मुक्ति पाकर वह पतिव्रता शची शीघ्रतापूर्वक देवताओंके पास जाकर बोली—आपलोग उद्यमशील होकर इन्द्रको ले आनेका प्रयास करें॥ ३१-३२½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! इन्द्राणीका पवित्र और मधुर वचन सुनकर सभी देवताओंने एकाग्र होकर इन्द्रके विषयमें विचार-विमर्श किया। तदनन्तर वे वैकुण्ठलोक जाकर शरणागतवत्सल आदिदेव भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे। उन वाक्पटुविशारद देवताओंने उद्विग्न होकर इस प्रकार कहा—॥ ३३—३५ ॥

हे देवाधिदेव! ब्रह्महत्यासे पीड़ित देवराज इन्द्र सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर कहीं रह रहे हैं। हे प्रभो! आपके परामर्शसे ही उन्होंने ब्राह्मण वृत्रासुरका वध किया था। तब ब्रह्महत्या कहाँ हुई? हे भगवन्! आप ही उनकी और हम सबकी एकमात्र गति हैं। इस महान् कष्टमें पड़े हुए हम सबकी रक्षा कीजिये और उन इन्द्रके ब्रह्महत्यासे छूटनेका उपाय बताइये।॥ ३६-३७½ ॥

देवताओंका करुण वचन सुनकर भगवान् विष्णु बोले—इन्द्रके पापकी निवृत्तिके लिये अश्वमेधयज्ञ कीजिये; अश्वमेध करनेसे प्राप्त पुण्यसे इन्द्र पवित्र हो जायँगे। इससे वे पुनः देवताओंके इन्द्रत्वको पा जायँगे, फिर कोई भय नहीं रहेगा। अश्वमेधयज्ञसे भगवती श्रीजगदम्बिका प्रसन्न होकर ब्रह्महत्या आदि पाप निश्चितरूपसे नष्ट कर देंगी। जिनके स्मरणमात्रसे पापोंका समूह नष्ट हो जाता है, उन जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये किये गये अश्वमेधयज्ञका क्या कहना! इन्द्राणी भी नित्य भगवती जगदम्बाकी पूजा

आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति।
नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल॥ ४३

विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः।
पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम्॥ ४४

प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम्।
ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः॥ ४५

जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः।
तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः॥ ४६

कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम्।
विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च॥ ४७

पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपद्विभुः।
तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः॥ ४८

विज्वरः समभूद् भूयः कालाकाङ्क्षी स्थितो जले।
अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत॥ ४९

देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम्।
पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला॥ ५०

कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरन्दरः।
कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे॥ ५१

बृहस्पतिरुवाच

त्वमाराधय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम्।
दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम्॥ ५२

आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति।
मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चाम्बिका॥ ५३

इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप।
जग्राह मन्त्रं विधिवद् गुरोर्देव्याः ससाधनम्॥ ५४

विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्।
सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः॥ ५५

करें; भगवती शिवाकी आराधना सुखकारी होगी। हे देवताओ! नहुष भी जगदम्बिकाकी मायासे मोहित होकर शीघ्र ही अपने किये हुए पापसे अवश्य विनष्ट हो जायगा। अश्वमेधयज्ञसे पवित्र होकर इन्द्र भी शीघ्र ही अपने उत्तम इन्द्रपद और वैभवको प्राप्त करेंगे॥ ३८—४४½ ॥

अमित तेजवाले भगवान् विष्णुकी इस शुभ वाणीको सुनकर वे देवगण उस स्थानको चल दिये जहाँ इन्द्र रह रहे थे। बृहस्पतिके नेतृत्वमें देवताओंने इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण अश्वमेध महायज्ञ सम्पन्न कराया॥ ४५-४६½ ॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने ब्रह्महत्याको विभाजितकर वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पृथ्वी और स्त्रियोंपर फेंक दिया। इस प्रकार उसको प्राणि-पदार्थोंमें विसर्जित करके इन्द्र पापरहित हो गये। सन्तापरहित होनेपर भी इन्द्र अच्छे समयकी प्रतीक्षा करते हुए जलमें ही ठहरे रहे। वहाँ सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए जलमें वे एक कमलनालमें स्थित रहे॥ ४७—४९ ॥

देवगण उस अद्भुत कार्यको करके अपने स्थानको चले गये। तब शचीने दुःख और वियोगसे व्याकुल होकर देवगुरु बृहस्पतिसे कहा—यज्ञ करनेपर भी मेरे स्वामी इन्द्र क्यों अदृश्य हैं? हे स्वामिन्! मैं अपने प्रियको कैसे देख सकूँगी; आप मुझे उस उपायको बतायें॥ ५०-५१ ॥

बृहस्पति बोले—हे पौलोमि! तुम देवी भगवती शिवाकी आराधना करो। वे देवी तुम्हारे पापरहित पतिका तुम्हें दर्शन करायेंगी। आराधना करनेपर जगत्का पालन करनेवाली वे भगवती नहुषको शक्तिहीन कर देंगी। वे अम्बिका राजाको मोहित करके उसे उसके स्थानसे गिरा देंगी॥ ५२-५३ ॥

हे राजन्! बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर पुलोमापुत्री शचीने देवगुरुसे पूजाविधिसहित देवीका मन्त्र विधिवत् प्राप्त कर लिया॥ ५४॥

गुरुसे मन्त्रविद्या प्राप्त करके देवी शचीने बलि, पुष्प आदि शुभ अर्चनोंसे भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी सम्यक् आराधना की॥ ५५॥

त्यक्तान्यभोगसम्भारा तापसीवेषधारिणी।
चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा॥ ५६

कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी॥ ५७

सूर्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला।
विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता॥ ५८

पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः।
आपादलम्बिनीं स्वच्छां मुक्तामालां च बिभ्रती॥ ५९

प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता।
आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा॥ ६०

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिका परमेश्वरी।
सौम्यानन्तरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१

सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाक्षररूपिणी।
तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम्॥ ६२

मेघगम्भीरशब्देन मुदमाददती भृशम्।

देव्युवाच

वरं वरय सुश्रोणि वाञ्छितं शक्रवल्लभे॥ ६३

ददाम्यद्य प्रसन्नास्मि पूजिता सुभृशं त्वया।
वरदाहं समायाता दर्शनं सहजं न मे॥ ६४

अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुञ्जैर्हि लभ्यते।
इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणता पुरः॥ ६५

शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम्।
वाञ्छामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम्॥ ६६

नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा।

देव्युवाच

गच्छ त्वमनया दूत्या सार्धं श्रीमानसं सरः॥ ६७

यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता।
तत्र पश्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम्॥ ६८

मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः।

अपने प्रिय पतिके दर्शनकी लालसासे युक्त शची समस्त भोगोंका त्यागकर तपस्विनीका वेश धारणकर देवीका पूजन करने लगीं॥ ५६॥

[आराधना करनेपर] कुछ समय बाद प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे वरदायिनी देवी सौम्य रूप धारण किये हुए हंसपर सवार थीं। वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शीतल, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभासे युक्त और चारों वेदोंसे समन्वित थीं। उन्होंने अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, अभय तथा वर-मुद्राएँ धारण कर रखी थीं, वे चरणोंतक लटकती हुई स्वच्छ मोतियोंकी माला पहने हुए थीं। उनके मुखपर मधुर मुसकान थी और वे तीन नेत्रोंसे सुशोभित थीं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सभी प्राणियोंकी जननी, करुणारूपी अमृतकी सागरस्वरूपा तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी वे परमेश्वरी सौम्य थीं तथा अनन्त रसोंसे आपूरित स्तनयुगलसे सुशोभित हो रही थीं। सबकी अधीश्वरी, सब कुछ जाननेवाली, कूटस्थ और बीजाक्षरस्वरूपिणी वे भगवती उद्यमशील इन्द्रपत्नी शचीसे प्रसन्न होकर मेघके समान अत्यन्त गम्भीर वाणीके द्वारा उन्हें परम हर्षित करती हुई कहने लगीं॥ ५७—६२½ ॥

देवी बोलीं—हे सुन्दर कटिप्रदेशवाली इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो, तुम्हारे द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजित मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें आज वरदान दूँगी। मैं वर प्रदान करनेके लिये आयी हूँ; मेरा दर्शन सहज सुलभ नहीं है। करोड़ों जन्मोंकी संचित पुण्यराशिसे ही यह प्राप्त होता है॥ ६३-६४½ ॥

उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रपत्नी देवी शचीने सम्मुख स्थित होकर उन प्रसन्न भगवती परमेश्वरीसे विनतभावसे कहा—हे माता! मैं अपने पतिका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन, नहुषसे उत्पन्न भयका नाश और अपने पदकी पुनः प्राप्ति चाहती हूँ॥ ६५-६६½ ॥

देवी बोलीं—तुम [मेरी] इस दूतीके साथ मानसरोवर चली जाओ, जहाँ मेरी विश्वकामा नामक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है, वहीं तुम्हें भयभीत और दुःखी इन्द्रके दर्शन हो जायँगे। कुछ समय बाद मैं पुनः राजाको मोहित करूँगी। हे विशालाक्षि! तुम

स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम्॥ ६९
भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात्।

व्यास उवाच

देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता॥ ७०

प्रापयामास सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम्।
सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम्।
मुदिताभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवाञ्छितम्॥ ७१

शान्तचित्त हो जाओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करूँगी। मैं मोहग्रस्त राजा [नहुष]-को इन्द्रपदसे गिरा दूँगी॥ ६७—६९½ ॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर परमेश्वरी इन्द्रपत्नीको ले जाकर देवीकी दूतीने शीघ्रतापूर्वक उनके पति इन्द्रके पास पहुँचा दिया। गुप्तरूपसे रहते हुए अपने पति उन देवराज इन्द्रको देखकर और इस प्रकार चिरकालसे वांछित अपने वरकी प्राप्ति करके वे शची अत्यन्त प्रसन्न हुईं॥ ७०-७१ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
इन्द्राण्या शक्रदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

शचीका इन्द्रसे अपना दुःख कहना, इन्द्रका शचीको सलाह देना कि वह नहुषसे ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें आनेको कहे, नहुषका ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें सवार होना और शापित होकर सर्प होना तथा इन्द्रका पुनः स्वर्गाधिपति बनना

व्यास उवाच

तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं रहः शोकसमन्विताम्।
आखण्डलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा॥ १

कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम्।
दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने॥ २

शच्युवाच

देव देव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह।
पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्तास्मि त्वां दिवस्पते॥ ३

नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने।
त्रिदशैर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः॥ ४

पतिं मां कुरु चार्वङ्गि तुरासाहं सुराधिपम्।
एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन॥ ५

इन्द्र उवाच

कालाकाङ्क्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया।
तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु॥ ६

व्यासजी बोले—विशाल नेत्रोंवाली अपनी शोकाकुल प्रिय पत्नीको वहाँ एकान्तमें देखकर इन्द्र आश्चर्यचकित हो गये और बोले—॥ १॥

हे प्रिये! तुम यहाँ कैसे आयी? तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि मैं यहाँ हूँ? हे शुभानने! मैं सभी प्राणियोंसे अज्ञात रहते हुए यहाँ निवास कर रहा हूँ॥ २॥

शची बोली—हे देव! देवी भगवतीकी कृपासे आप आज मुझे यहाँ ज्ञात हुए हैं। हे देवेन्द्र! उन्हींकी कृपासे मैं आपको पुनः प्राप्त कर सकी हूँ॥ ३॥

देवताओं और मुनियोंने नहुष नामक राजर्षिको आपके आसनपर बैठा दिया है; वह मुझे नित्य कष्ट देता है। वह पापी मुझसे इस प्रकार कहता है—हे सुन्दरि! मुझ देवराज इन्द्रको अपना पति बना लो। हे बलार्दन! अब मैं क्या करूँ?॥ ४-५॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! हे कल्याणि! जिस प्रकार मैं [अनुकूल] समयकी प्रतीक्षा करते हुए प्रारब्धवश यहाँ रह रहा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनको पूर्णरूपसे स्थिर करो॥ ६॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनातिप्रशंसिना।
निःश्वसन्त्याह तं शक्रं वेपमानातिदुःखिता॥ ७

कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम्।
करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः॥ ८

देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः।
तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम्॥ ९

बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः।
कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा॥ १०

तस्माच्चिन्तास्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी।
अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो॥ ११

नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चित्तातिपतिव्रता।
नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम्॥ १२

इन्द्र उवाच

उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने।
शीलं ते दुःखिते काले परित्रातं भविष्यति॥ १३

परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता।
उपायैः कोटिभिः कामभिन्नचित्तातिचञ्चला॥ १४

शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः।
तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते॥ १५

यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः।
तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वञ्चय भूपतिम्॥ १६

एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे।
ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते॥ १७

एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम्।
इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः॥ १८

कामान्धः स मुनीन् याने योजयिष्यति पार्थिवः।
अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति॥ १९

व्यासजी बोले—अपने परम आदरणीय पतिके ऐसा कहनेपर लम्बी साँसें खींचती तथा काँपती हुई वे शची अत्यन्त दुःखित होकर इन्द्रसे कहने लगीं—॥ ७॥

हे महाभाग! मैं कैसे रहूँ? वरदानके द्वारा मदोन्मत्त और अहंकारी बना हुआ वह पापात्मा मुझे अपने वशमें कर लेगा। उससे भयभीत सभी देवताओं और मुनियोंने मुझसे कहा—हे वरारोहे! तुम उस कामातुर देवराजको अंगीकार कर लो॥ ८-९॥

हे शत्रुसूदन! बृहस्पति भी निर्बल ब्राह्मण हैं; वे मेरी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि वे भी तो सदा देवताओंके ही अनुगामी हैं॥ १०॥

अतः हे विभो! मैं वशवर्तिनी नारी हूँ, मुझे यह महान् चिन्ता है कि भाग्यकी इस विपरीत अवस्थामें मैं अनाथ क्या करूँगी?॥ ११॥

मैं कुलटा नहीं हूँ अपितु आपका ही ध्यान करनेवाली पतिव्रता स्त्री हूँ। वहाँ मेरे लिये ऐसा कोई शरण नहीं है, जो मुझ दुःखितकी रक्षा करे॥ १२॥

इन्द्र बोले—हे वरानने! मैं एक उपाय बताता हूँ, तुम उसे इस समय करो। इससे दुःखके समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो जायगी॥ १३॥

करोड़ों उपाय करनेपर भी दूसरेके द्वारा रक्षित स्त्री पतिव्रता नहीं रह सकती; क्योंकि वह कामसे विचलित मनवाली तथा अत्यन्त चंचल होती है॥ १४॥

स्त्रियोंका शील ही पापसे इनकी रक्षा करता है। इसलिये हे पवित्र मुसकानवाली! तुम शीलका आश्रय लेकर धैर्य धारण करो॥ १५॥

जब दुष्ट राजा नहुष तुम्हें बलपूर्वक प्राप्त करनेकी चेष्टा करे तब तुम गुप्त प्रतिज्ञा करके राजाको धोखेमें डाल देना। हे मदालसे! तुम एकान्तमें उसके समीप जाकर कहो—हे जगत्पते! आप ऋषियोंके द्वारा वहन किये जानेवाले दिव्य वाहनसे मेरे पास आयें, ऐसा होनेपर मैं प्रेमपूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है। हे सुश्रोणि! तुम उससे ऐसा बोलना, तब मोहित और कामान्ध वह राजा मुनियोंको अपने वाहनमें लगायेगा; इससे तपस्वी अवश्य ही नहुषको शापसे दग्ध कर देंगे॥ १६—१९॥

साहाय्यं जगदम्बा ते करिष्यति न संशयः।
जगदम्बापदस्मर्तुः सङ्कटं न कदाचन॥ २०

यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम्॥ २१

भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः।

व्यास उवाच

इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति॥ २२

तथेत्युक्त्वातिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा।
नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत्॥ २३

स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि।
दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया॥ २४

यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि।
न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते॥ २५

कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम्।

शच्युवाच

सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव॥ २६

मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो।
वाञ्छितं कुरु कल्याण त्वद्वशाहमतः परम्॥ २७

ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहार्हसि।

नहुष उवाच

कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वाञ्छितम्॥ २८

अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम्।

शच्युवाच

कथं ब्रवीमि राजेन्द्र प्रत्ययो नास्ति मे तव॥ २९

शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव।
राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले॥ ३०

भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी; इसमें सन्देह नहीं है। भगवती जगदम्बाके चरणोंका स्मरण करनेवालेको कभी संकट नहीं होता। यदि संकट उत्पन्न भी हो जाय तो उसे भी अपने कल्याणके लिये ही समझना चाहिये। अतः तुम गुरु बृहस्पतिके कथनानुसार पूर्ण प्रयत्नसे मणिद्वीपवासिनी भगवती भुवनेश्वरीका भजन करो॥ २०-२१½ ॥

व्यासजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर 'वैसा ही होगा'—यह कहकर अत्यन्त विश्वस्त तथा भावी कार्यके प्रति प्रयत्नशील शची नहुषके पास गयीं। नहुष उन्हें देखकर प्रसन्न होता हुआ यह वचन बोला—हे कामिनि! तुम्हारा स्वागत है, मैं तुम्हारे सत्य वचनोंके कारण तुम्हारे अधीन हूँ। तुमने अपने वचनका सत्यतापूर्वक पालन किया, इसलिये मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ। हे मितभाषिणि! तुम जब मेरे समीप आ गयी हो तो मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। तुम्हें अब लज्जा नहीं करनी चाहिये। हे सुन्दर मुसकानवाली! मुझ अनुरक्तको अंगीकार करो। हे विशाल नेत्रोंवाली! अपना कार्य बताओ; मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा॥ २२—२५½ ॥

शची बोलीं—हे कृत्रिम वासव! आपने मेरा सम्पूर्ण कार्य कर दिया है। हे देव! हे विभो! इस समय मेरे मनमें एक अभिलाषा है, उसे आप सुनें। हे कल्याण! मेरा मनोरथ पूर्ण कर दीजिये; इसके बाद मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी, मैं बड़े उत्साहसे अपना मनोरथ कह रही हूँ, आप उसे पूरा करनेमें समर्थ हैं॥ २६-२७½ ॥

नहुष बोला—हे चन्द्रमुखि! तुम अपना कार्य बताओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करता हूँ। हे सुभ्रु! यदि अलभ्य वस्तु होगी तो भी मैं तुम्हें दूँगा; मुझे बताओ॥ २८½ ॥

शची बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं कैसे बताऊँ, मुझे आपका विश्वास नहीं है। हे राजेन्द्र! आप शपथ लें कि मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा; क्योंकि पृथ्वीतलपर सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं। हे राजन्! आपको सत्यसे बँधा जाननेके बाद ही मैं अपना अभिलषित बताऊँगी।

पश्चाद् ब्रवीम्यहं राजन् ज्ञात्वा सत्येन यन्त्रितम्।
कृते चेद्वाञ्छिते भूप सदा ते वशवर्तिनी॥ ३१

भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम।

नहुष उवाच

अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुन्दरि॥ ३२

शपामि सुकृतेनाहं यज्ञदानकृतेन वै।

शच्युवाच

इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा॥ ३३

गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा।
वृषभः शङ्करस्यापि ब्रह्मणो वरटापतिः॥ ३४

मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः।
इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप॥ ३५

यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम्।
वहन्तु त्वां महाराज मुनयः संशितव्रताः॥ ३६

सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वाञ्छितम्।
सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप॥ ३७

तेन ते तेजसो वृद्धिं वाञ्छाम्यहमतन्द्रिता।

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः॥ ३८

मोहितस्तु महादेव्या कृतमोहेन तत्क्षणम्।
उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम्॥ ३९

नहुष उवाच

सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम।
करिष्यामि सुकेशान्ते वचनं तव सर्वथा॥ ४०

न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन्।
अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते॥ ४१

सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे देवर्षयस्तथा।
समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाधिकम्॥ ४२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तां सुसन्तुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम्।
मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः॥ ४३

हे राजन्! मेरी उस अभिलाषाको पूर्ण कर देनेपर मैं सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। हे इन्द्र! यह मेरा सत्यवचन है॥ २९—३१½॥

नहुष बोला—हे सुन्दरि! मैं यज्ञ, दान आदि कृत्योंसे संचित पुण्यकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारे वचनका अवश्य पालन करूँगा॥ ३२½॥

शची बोलीं—इन्द्रके वाहन अश्व, गज और रथ हैं। भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़, यमराजका वाहन महिष, शिवका वाहन वृषभ, ब्रह्माका वाहन हंस, कार्तिकेयका वाहन मयूर और गजाननका वाहन मूषक है। हे सुराधिप! मैं चाहती हूँ कि आपका वाहन ऐसा विलक्षण हो जो विष्णु, रुद्र, असुरों तथा राक्षसोंके भी पास न हो॥ ३३—३५½॥

हे महाराज! अपने व्रतमें अटल रहनेवाले समस्त मुनिगण शिबिका (पालकी)-में आपको ढोयें—हे राजन्! यही मेरी इच्छा है। हे पृथ्वीपते! मैं आपको सभी देवताओंसे महान् समझती हूँ; इसीलिये मैं सावधान रहती हुई आपके तेजकी वृद्धि चाहती हूँ॥ ३६—३७½॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर महादेवीद्वारा प्रकट किये गये मोहसे मोहित हुआ बुद्धिहीन राजा नहुष हँसकर इन्द्रप्रिया शचीको सन्तुष्ट करते हुए यह वचन कहने लगा—॥ ३८—३९॥

नहुष बोला—हे तन्वंगि! तुमने सत्य ही कहा है, यह वाहन मुझे भी रुचिकर है। हे सुन्दर केशपाशवाली! मैं तुम्हारे वचनोंका सम्यक् रूपसे पालन करूँगा॥ ४०॥

हे पवित्र मुसकानवाली! जो अल्प पराक्रमवाला होता है, वही ऋषियोंको पालकी ढोनेमें नहीं लगा सकता; मैं [तुम्हारी इच्छाके अनुसार] वाहनपर आरूढ़ होकर तुम्हारे पास आऊँगा॥ ४१॥

मुझे तीनों लोकोंमें सबसे बड़ा तपस्वी और समर्थ जानकर सप्तर्षि तथा सभी देवर्षि मेरा वहन करेंगे॥ ४२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परम सन्तुष्ट उस नहुषने उन इन्द्रप्रिया शचीको विदा किया, इसके बाद सभी मुनियोंको बुलाकर वह कामातुर उनसे इस प्रकार कहने लगा—॥ ४३॥

नहुष उवाच

अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिसमन्वितः।
कार्यमत्र प्रकुर्वन्तु भवन्तो विगतस्मयाः॥ ४४

इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेन्द्राणी मामुपैति च।
आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः॥ ४५

मुनियानेन देवेन्द्र मामुपैहि सुराधिप।
देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद॥ ४६

एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममात्यन्तं दुरासदम्।
भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः॥ ४७

मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम्।
भवन्तः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम्॥ ४८

अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम्।
अङ्गीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः॥ ४९

अङ्गीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमीकृतमानसः॥ ५०

आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयान्वितः।
वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्प सर्पेति चाब्रवीत्॥ ५१

कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम्।
अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा॥ ५२

वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम्।
कशया ताडयामास पञ्चबाणशराहतः॥ ५३

इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम्।
तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन्॥ ५४

सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान्।
बहुवर्षसहस्राणि यत्र क्लेशो महान्भवेत्॥ ५५

नहुष बोला—हे विप्रगण! मैं आज सर्वशक्तिसम्पन्न इन्द्र हूँ। आपलोग गर्वरहित होकर मेरा कार्य करें॥ ४४॥

इन्द्रपद मुझे प्राप्त हो गया है, परंतु इन्द्राणी अभी मुझे नहीं प्राप्त हो सकी हैं। उन्होंने मेरे पास आकर प्रेमपूर्वक यह बात कही है—'हे सुरेन्द्र! हे सुराधिप! मुनियोंद्वारा ढोयी जानेवाली पालकीसे आप मेरे पास आयें। हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे मानद! आप मेरा यह प्रिय कार्य करें'॥ ४५-४६॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! मेरा यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है, परंतु आप सब दयालुओंको मेरा यह कार्य अवश्य करना चाहिये। इन्द्रपत्नी शचीमें अत्यन्त आसक्त मेरे मनको काम जला रहा है, मैं आप सबकी शरणमें हूँ। अतः मेरे इस महान् कार्यको सम्पन्न करें॥ ४७-४८॥

अगस्त्य आदि प्रमुख ऋषियोंने उसकी यह अनादरपूर्ण बात सुनकर भावीवश उसे कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४९॥

उन तत्त्वदर्शी मुनियोंके द्वारा उस वचनके स्वीकार कर लिये जानेपर शचीके प्रति आसक्तचित्तवाला राजा नहुष प्रसन्न हो गया॥ ५०॥

वह तुरंत एक सुन्दर पालकीपर चढ़कर उसमें बैठ गया और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिये नियुक्तकर उन्हें 'सर्प-सर्प' (शीघ्र चलो-शीघ्र चलो) ऐसा कहने लगा॥ ५१॥

उस कामातुर मूर्खने मुनि अगस्तिके मस्तकका पैरसे स्पर्श कर दिया। कामबाणसे आहत तथा इन्द्राणीके द्वारा आकृष्टचित्तवाले उस राजा नहुषने शीघ्र चलो—ऐसा कहते हुए वातापि नामक राक्षसका भक्षण करनेवाले तथा समुद्रको भी पी जानेवाले उन तपस्विश्रेष्ठ लोपामुद्रापति मुनि अगस्तिपर कोड़ेसे प्रहार भी किया॥ ५२-५३½॥

तब उस कोड़ेके आघातका स्मरण करते हुए मुनिने उसे यह शाप दे दिया। हे दुराचारी! तुम वनमें भयंकर शरीरवाले विशाल सर्प हो जाओ, जहाँ तुम्हें हजारों वर्षोंतक बहुत कष्ट भोगते हुए विचरण करना पड़ेगा और अपने प्रभावसे तुम पुनः स्वर्ग प्राप्त

विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि।
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम तव मोक्षो भविष्यति॥ ५६

प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः।

व्यास उवाच

एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम्॥ ५७

स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत्।
बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति॥ ५८

इन्द्राय सर्ववृत्तान्तं कथयामास विस्तरात्।
तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम्॥ ५९

मुदितोऽभून्महाराज स्थितस्तत्रैव वासवः।
देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि॥ ६०

जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेन्द्रः सरसि स्थितः।
तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तदा॥ ६१

स्वर्गे समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम्।
समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः॥ ६२

स्थापयित्वासने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम्।
इन्द्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये॥ ६३

चिक्रीड नन्दने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया।

व्यास उवाच

एवमिन्द्रेण सम्प्राप्तं दुःखं परमदारुणम्॥ ६४

हत्वासुरं कामरूपं विश्वरूपं महामुनिम्।
पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप॥ ६५

एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम्।
यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन् कथानकमनुत्तमम्॥ ६६

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ६७

करोगे। युधिष्ठिर नामवाले धर्मपुत्रका दर्शनकर और उनके मुखसे अपने प्रश्नोंके उत्तर सुनकर तुम्हारी मुक्ति हो जायगी॥ ५४—५६½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शाप प्राप्तकर राजर्षि नहुष उन मुनिश्रेष्ठकी स्तुति करके अचानक स्वर्गसे गिर पड़ा और सर्परूपधारी हो गया॥ ५७½ ॥

तब बृहस्पतिने शीघ्रतापूर्वक मानसरोवर जाकर इन्द्रसे सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा। हे महाराज (जनमेजय)! राजा नहुषके स्वर्गसे पतन आदिकी बात सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वे इन्द्र अब भी वहींपर स्थित रहे। सभी देवता और मुनि नहुषको पृथ्वीपर गिरा देखकर उसी सरोवरके पास गये, जहाँ इन्द्र रहते थे॥ ५८—६०½ ॥

तत्पश्चात् उन शचीपति इन्द्रको आश्वासन देकर मुनियोंसहित सभी देवता उन्हें सम्मानपूर्वक स्वर्ग ले आये। तदनन्तर वापस आये हुए उन इन्द्रको सभी मुनियों और देवताओंने आसनपर स्थापित करके उनका पवित्र अभिषेक किया। इन्द्र भी अपने पदको प्राप्तकर प्रेमयुक्त शचीके साथ देवप्रासाद और मनोहर नन्दनवनमें क्रीड़ा करने लगे॥ ६१—६३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महामुनि विश्वरूप और वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको अत्यन्त भीषण दुःख प्राप्त हुआ और देवीकी कृपासे उन्होंने पुनः अपना स्थान प्राप्त कर लिया॥ ६४-६५ ॥

हे राजन्! इस प्रकार आपने मुझसे जो पूछा था, वृत्रासुरवधपर आधारित वह सम्पूर्ण उत्तम आख्यान मैंने आपको कह दिया॥ ६६ ॥

जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
नहुषस्वर्गच्युतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

कर्मकी गहन गतिका वर्णन तथा इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका उदाहरण

जनमेजय उवाच

कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याद्भुतकर्मणः।
स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः॥ १

यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमातीव वर्णितः।
सन्देहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः॥ २

देवाधिपत्यमासाद्य दुःसहं दुःखमन्वभूत्।
मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तं स्थानमनुत्तमम्॥ ३

देवेशत्वं च सम्प्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे॥ ४

सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः।
नावाच्यं महतां किञ्चिच्छिष्ये च श्रद्धयान्विते॥ ५

तस्मात्कुरु महाभाग मत्सन्देहापनोदनम्।

सूत उवाच

इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः॥ ६

तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम्।

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम्॥ ७

कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः।
सञ्चितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः॥ ८

अनेकजन्मसञ्जातं प्राक्तनं सञ्चितं स्मृतम्।
सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः॥ ९

शुभं वाप्यशुभं भूप सञ्चितं बहुकालिकम्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा॥ १०

जन्मजन्मनि जीवानां सञ्चितानां च कर्मणाम्।
निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि॥ ११

क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते।
देहं प्राप्य शुभं वापि ह्यशुभं वा समाचरेत्॥ १२

सञ्चितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल।
देहारम्भे च समये कालः प्रेरयतीव तत्॥ १३

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रका आख्यान कहा, जिसमें उनके पदच्युत होने और दुःख प्राप्त करनेका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है तथा जिसमें देवताओंकी भी अधीश्वरी देवी भगवतीकी महिमा विस्तारसे वर्णित हुई है॥ १½ ॥

मुझे महान् सन्देह है कि महान् तपस्वी इन्द्रको देवाधिपतिका पद प्राप्त होनेपर भी दारुण दुःख प्राप्त हुआ। सौ यज्ञ करके उन्होंने अतिश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया; और देवताओंके स्वामीका पद प्राप्त करके भी वे अपने स्थानसे कैसे च्युत हो गये?॥ २-३½ ॥

हे दयानिधे! इस सबका कारण सम्यक् रूपसे बताइये। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जाननेवाले और पुराणोंके प्रवर्तक हैं, महापुरुषोंके लिये अपने श्रद्धालु शिष्यसे कुछ भी अकथ्य नहीं होता, इसलिये हे महाभाग! मेरे सन्देहका निवारण कीजिये॥ ४-५½ ॥

सूतजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर सत्यवतीपुत्र वेदव्यासजी प्रसन्नतापूर्वक उनके प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देने लगे॥ ६½ ॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! इसका अत्यन्त अद्भुत कारण सुनो। श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानियोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं। अनेक जन्मोंका संचित प्राक्तन कर्म संचित-कर्म कहा गया है; फिर वे कर्म भी सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारके होते हैं॥ ७—९ ॥

हे राजन्! बहुत समयके संचित शुभ या अशुभ कर्म पुण्य या पापके रूपमें अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। जीवोंके प्रत्येक जन्मके संचित कर्म बिना भोग किये करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं नष्ट होते॥ १०-११ ॥

जो कर्म किया जा रहा है, उसे वर्तमान कहा जाता है, जीव देह प्राप्तकर शुभ या अशुभ कार्यमें प्रवृत्त होता है। संचित कर्मोंके कारण देह प्राप्त होनेपर काल जीवको पुनः कर्मके लिये प्रेरित करता है॥ १२-१३ ॥

प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः।
प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः॥ १४

पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च।
अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः॥ १५

देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः।
कर्मैव हि महाराज देहारम्भस्य कारणम्॥ १६

कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा॥ १७

दानवा यक्षगन्धर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल।
अन्यथा देहसम्बन्धः कथं भवति भूपते॥ १८

कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः।
तस्मादनेकजन्मोत्थसञ्चितानां च कर्मणाम्॥ १९

मध्ये वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः।
तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा॥ २०

पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च।
तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ॥ २१

जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ।
पुराणपीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता॥ २२

देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः।
नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते॥ २३

नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः।
इन्द्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते॥ २४

प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम्।
आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः॥ २५

यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान्।
विद्यावान्दानवान्वापि स देवांशः प्रपठ्यते॥ २६

तथैवैते मयाख्याताः पाण्डवाः पृथिवीपते।
देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः॥ २७

प्रारब्ध कर्म उसे जानना चाहिये, जिसका भोगसे क्षय हो जाता है। प्राणियोंको यहाँ प्रारब्ध कर्म अवश्य भोगना पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! देवता, मनुष्य, असुर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर—इन सभीको पूर्वकालमें किये गये शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ता है—यह निश्चित है। हे महाराज! सबके देह-धारणका कारण उनका कर्म ही होता है। कर्मके समाप्त हो जानेपर प्राणियोंका जन्म लेना भी समाप्त हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१६½॥

हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि देवता, दानव, यक्ष और गन्धर्व—ये सभी कर्मके वशीभूत हैं, अन्यथा जीवके सुख-दुःखमें भोगका जो कारणरूप देहसम्बन्ध है वह कैसे होता? इसीलिये किसी कालविपाकके योगसे यथासमय अनेक जन्मोंमें किये हुए संचित कर्मोंका प्रभाव प्रकट हो जाता है। उसी प्रारब्धकर्मके वशमें होकर ही मनुष्य पुण्य या पाप करता है, उसी प्रकार देवता आदि भी करते हैं॥ १७—२०½॥

हे राजन्! भगवान् विष्णुके अंशसे धर्मपुत्र नर और नारायण ही कृष्ण और अर्जुनके रूपमें प्रकट हुए। मुनियोंके द्वारा इस पौराणिक आख्यानका विवेचन किया गया है॥ २१-२२॥

जो अधिक वैभवशाली होता है उसे देवांश जानना चाहिये। जो ऋषि नहीं है वह काव्यकी रचना नहीं कर सकता; जो रुद्र नहीं है वह रुद्रकी अर्चना नहीं कर सकता। जिसमें देवांश नहीं है वह अन्नदान नहीं कर सकता और जिसमें विष्णुका अंश नहीं है वह राजा नहीं हो सकता। हे राजन्! विष्णु, इन्द्र, अग्नि, यम और कुबेरसे प्रभुत्व, प्रभाव, कोप और पराक्रम प्राप्त करके ही निश्चितरूपसे यह शरीर बनता है॥ २३—२५॥

इस संसारमें जो कोई बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्यावान् या दानशील है, उसे देवांश कहा जाता है॥ २६॥

हे राजन्! उसी प्रकार मैंने पाण्डवोंको भी देवांश बताया था। वासुदेव श्रीकृष्ण तो नारायणके अंश और उन्हींके समान कान्तियुक्त थे॥ २७॥

शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदुःखयोः।
शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखं दुःखमनन्तरम्॥ २८

देही नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि।
जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः॥ २९

पाण्डवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः।
स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयं क्रतूत्तमम्॥ ३०

वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम्।
अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेन्द्रियैः॥ ३१

सन्तुष्टैस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम्।
नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम्॥ ३२

नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे।
नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं सम्बभूव ह॥ ३३

प्राणिनां देहसम्बन्धे गहना कर्मणो गतिः।
दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा॥ ३४

वासुदेवोऽपि सञ्जातः कारागारेऽतिसङ्कटे।
नीतोऽसौ वसुदेवेन नन्दगोपस्य गोकुलम्॥ ३५

एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत।
पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात्॥ ३६

मोचयामास पितरौ बन्धनाद् भृशदुःखितौ।
उग्रसेनं च राजानञ्चकार मथुरापुरे॥ ३७

जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः।
सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत्॥ ३८

कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः।
देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुम्बो दिवं गतः॥ ३९

पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा।
प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः॥ ४०

एवं ते कथिता राजन् कर्मणो गहना गतिः।
वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः॥ ४१

प्राणियोंका शरीर सुख-दुःखका भाजन होता है; शरीरधारी सुख-दुःख प्राप्त करता रहता है॥ २८॥

कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि सदैव दैवके अधीन रहता है। वह विवश होकर जन्म, मरण, सुख तथा दुःख प्राप्त करता है॥ २९॥

दैववश ही पाण्डव वन गये और पुनः उन्होंने अपना राज्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बाहुबलसे राजसूय नामक उत्तम यज्ञ किया और बादमें अत्यन्त दुःखदायक वनवास उन्हें पुनः प्राप्त हुआ। वहाँ अर्जुनने अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुष्कर तपस्या की। तब [उस तपस्यासे] सन्तुष्ट होकर देवताओंने उन्हें कल्याणकारी वरदान दिया। उस वनवास और नरावतारमें किया गया पुण्य कहाँ गया? नरावतारमें उन्होंने बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या की थी, परंतु अर्जुनके रूपमें उन्हें उस तपस्याका फल नहीं मिला!॥ ३०—३३॥

प्राणियोंके देह-सम्बन्धी कर्मोंकी गति अत्यन्त गहन है; यह देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय है तो मनुष्योंकी क्या बात!॥ ३४॥

वासुदेव श्रीकृष्ण भी अत्यन्त संकटमय कारागारमें उत्पन्न हुए और वसुदेवके द्वारा गोकुलमें नन्दगोपके घर ले जाये गये। हे भारत! वे वहाँ ग्यारह वर्षतक रहे और पुनः मथुरा जाकर उन्होंने बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसका वध किया। तदनन्तर अत्यन्त दुःखित माता-पिताको बन्धनसे मुक्त किया तथा उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा नियुक्त किया। पुनः वे म्लेच्छराज कालयवनके भयसे द्वारका चले गये। श्रीकृष्णने यह सब महान् पराक्रम दैवके अधीन होकर ही किया॥ ३५—३८॥

वे जनार्दन श्रीकृष्ण द्वारकामें अनेक कार्य करके और प्रभासक्षेत्रमें देहका परित्यागकर अपने कुटुम्बसहित स्वर्ग चले गये। विप्रशापके कारण समस्त यादवगण पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, भाइयों और बहनोंसहित प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये और वासुदेव श्रीकृष्ण भी व्याधके बाणसे निधनको प्राप्त हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे कर्मकी गहन गतिका वर्णन कर दिया॥ ३९—४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
कर्मणां गहनगतिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

~~0~~

अथैकादशोऽध्यायः

युगधर्म एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थाका वर्णन

जनमेजय उवाच

भारावतारणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः।
संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति॥ १

पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता।
द्वापरान्तेऽतिदीनार्ता गुरुभारप्रपीडिता॥ २

वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः।
भूभारोत्तारणार्थाय साधूनां रक्षणाय च॥ ३

भगवन् भारते खण्डे देवैः सह जनार्दन।
अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो॥ ४

एवं सम्प्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः।
बभूव सह रामेण भूभारोत्तारणाय वै॥ ५

कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः।
ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह॥ ६

हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा।
बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा॥ ७

यैर्लुण्ठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः।
कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले॥ ८

आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा।
भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता॥ ९

सन्देहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः।
कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः॥ १०

व्यास उवाच

राजन् यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः।
नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम्॥ ११

ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन्।
धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन्॥ १२

धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे।
अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवन्ति हि॥ १३

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम और श्रीकृष्णके अवतारकी बात आपने कही, किंतु मेरे मनमें एक संशय है॥ १॥

द्वापरयुगके अन्तमें अत्यन्त दीन तथा आतुर होकर भारी बोझसे दबी हुई पृथ्वी गौका रूप धारण करके ब्रह्माजीकी शरणमें गयी॥ २॥

तब ब्रह्माजीने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! हे विभो! हे जनार्दन! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये और साधुजनोंकी रक्षाके लिये आप देवताओंके साथ भारतवर्षमें वसुदेवके घरमें शीघ्र ही अवतार लीजिये'॥ ३-४॥

ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलरामके साथ देवकीके पुत्र हुए; तब उन्होंने अनेक दुष्टों तथा सभी दुराचारी और पापबुद्धि राजाओंको ज्ञात करके उन्हें मारकर पृथ्वीका कितना भार उतारा?॥ ५-६॥

भीष्म मारे गये, द्रोणाचार्य मारे गये; इसी प्रकार विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यपुत्र कर्ण मारे गये। परंतु जिन्होंने कृष्णकी पत्नियोंका हरण किया और उनका सारा धन लूट लिया, उन दुष्टोंको तथा जो करोड़ों आभीर, शक, म्लेच्छ और निषाद पृथ्वीतलपर स्थित थे—उन सबको उन्होंने नष्ट क्यों नहीं कर दिया? तब उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका कौन-सा भार उतार दिया! हे महाभाग! मेरे चित्तसे यह सन्देह नहीं हटता है; इस कलियुगमें तो समस्त प्रजा पापपरायण ही दिखायी देती है॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जैसा युग होता है, कालप्रभावसे प्रजा भी वैसी ही होती है, इसके विपरीत नहीं होता; इसमें युगधर्म ही कारण है॥ ११॥

जो धर्मानुरागी जीव हैं, वे सत्ययुगमें हुए; जो धर्म और अर्थसे प्रेम रखनेवाले प्राणी हैं, वे त्रेतायुगमें हुए; धर्म, अर्थ और कामके रसिक प्राणी द्वापरयुगमें हुए और अर्थ तथा काममें आसक्ति रखनेवाले सभी प्राणी इस कलियुगमें होते हैं॥ १२-१३॥

युगधर्मस्तु राजेन्द्र न याति व्यत्ययं पुनः।
कालः कर्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः॥ १४

राजोवाच

ये तु सत्ययुगे जीवा भवन्ति धर्मतत्पराः।
कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठन्ति पुण्यभागिनः॥ १५
त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः।
वर्तन्ते मुनयः श्रेष्ठाः कुत्र ब्रूहि पितामह॥ १६
कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः।
आद्ये युगे क्व यास्यन्ति पापिष्ठा देवनिन्दकाः॥ १७
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते।
सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम्॥ १८

व्यास उवाच

ये वै कृतयुगे राजन् सम्भवन्तीह मानवाः।
कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजन्ति वै॥ १९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम।
स्वधर्मनिरता यान्ति लोकान्कर्मजितान्किल॥ २०
सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा।
अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु॥ २१
एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः।
स्वर्गं यान्तीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः॥ २२
तथा त्रेतायुगे राजन् द्वापरेऽथ युगे तथा।
कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यान्ति मानवाः॥ २३
तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः।
पुनश्च मानुषे लोके भवन्ति भुवि मानवाः॥ २४
यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरन्तश्च पार्थिव।
तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायन्ते किल मानवाः॥ २५
यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा।
नरकात्पापिनः सर्वे भवन्ति भुवि मानवाः॥ २६
एवं कालसमाचारो नान्यथाभूत्कदाचन।
तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा॥ २७

हे राजेन्द्र! युगधर्मका प्रभाव विपरीत नहीं होता है; काल ही धर्म और अधर्मका कर्ता है॥ १४॥

राजा बोले—हे महाभाग! सत्ययुगमें जो धर्मपरायण प्राणी हुए हैं, वे पुण्यशाली लोग इस समय कहाँ स्थित हैं? हे पितामह! त्रेतायुग या द्वापरमें जो दान तथा व्रत करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हुए हैं, वे अब कहाँ विद्यमान हैं; मुझे बतायें। इस कलियुगमें जो दुराचारी, निर्लज्ज, देवनिन्दक और पापी लोग विद्यमान हैं, वे सत्ययुगमें कहाँ जायँगे? हे महामते! यह सब विस्तारपूर्वक कहिये; मैं इस धर्मनिर्णयके विषयमें सब कुछ सुनना चाहता हूँ॥ १५—१८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जो मनुष्य सत्ययुगमें उत्पन्न होते हैं, वे अपने पुण्यकार्योंके कारण देवलोकको चले जाते हैं॥ १९॥

हे नृपश्रेष्ठ! अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मोंमें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने कर्मोंसे अर्जित लोकोंमें चले जाते हैं॥ २०॥

सत्य, दया, दान, एकपत्नीव्रत, सभी प्राणियोंमें अद्रोहभाव तथा सभी जीवोंमें समभाव रखना—यह सत्ययुगका साधारण धर्म है। सत्ययुगमें इसका धर्मपूर्वक पालन करके रजक आदि इतर वर्णके लोग भी स्वर्ग चले जाते हैं। हे राजन्! त्रेता और द्वापरयुगमें यही स्थिति रहती है, किंतु इस कलियुगमें पापी मनुष्य नरक जाते हैं और वे वहाँ तबतक रहते हैं जबतक युगका परिवर्तन नहीं होता, उसके बाद मनुष्यके रूपमें पुनः पृथ्वीपर जन्म लेते हैं॥ २१—२४॥

हे राजन्! जब कलियुगका अन्त और सत्ययुगका आरम्भ होता है, तब पुण्यशाली लोग स्वर्गसे पुनः मनुष्यके रूपमें जन्म लेते हैं॥ २५॥

जब द्वापरका अन्त और कलियुगका प्रारम्भ होता है, तब नरकके सभी पापी पृथ्वीपर मनुष्यके रूपमें उत्पन्न होते हैं॥ २६॥

इस प्रकार युगके अनुरूप ही आचार होता है, उसके विपरीत कभी नहीं। कलियुग असत्-प्रधान होता है, इसलिये उसमें प्रजा भी वैसी ही होती है।

कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत्।
कलौ ये साधवः केचिद् द्वापरे सम्भवन्ति ते॥ २८
तथा त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा।
दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवन्ति कलावपि॥ २९
कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवन्त्यसुखानि च।
पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वन्ति युगभावतः॥ ३०

जनमेजय उवाच

युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः।
यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा॥ ३१

व्यास उवाच

निबोध नृपशार्दूल दृष्टान्तं ते ब्रवीम्यहम्।
साधूनामपि चेतांसि युगभावाद् भ्रमन्ति हि॥ ३२
पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने।
कृता वै कलिना राजन् धर्मज्ञस्य महात्मनः॥ ३३
अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसम्भवः।
तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत्॥ ३४
सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता।
प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः॥ ३५
नूनं सत्ययुगे राजन् ब्राह्मणा वेदपारगाः।
पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः॥ ३६
गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः।
गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः॥ ३७
ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः।
स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः॥ ३८
त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः।
अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः॥ ३९
वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा।
शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप॥ ४०
पराम्बापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे।
तथा त्रेतायुगे किञ्चिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः॥ ४१

दैवयोगसे कभी-कभी इन प्राणियोंके जन्म लेनेमें व्यतिक्रम भी हो जाता है। कलियुगमें कुछ जो साधुजन हैं, वे द्वापरके मनुष्य हैं। उसी प्रकार द्वापरके मनुष्य कभी-कभी त्रेतामें और त्रेताके मनुष्य सत्ययुगमें जन्म लेते हैं। जो सत्ययुगमें दुराचारी मनुष्य होते हैं, वे कलियुगके हैं। वे अपने किये हुए कर्मके प्रभावसे दुःख पाते हैं और पुनः युगप्रभावसे वे वैसा ही कर्म करते हैं॥ २७—३०॥

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप समस्त युगधर्मोंका पूर्णरूपसे वर्णन करें; जिस युगमें जैसा धर्म होता है, उसे मैं जानना चाहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे नृपशार्दूल! ध्यानपूर्वक सुनिये, इस सम्बन्धमें मैं एक दृष्टान्त कहता हूँ। साधुजनोंके मन भी युगधर्मसे प्रभावित होते हैं॥ ३२॥

हे राजेन्द्र! आपके महात्मा और धर्मज्ञ पिताकी भी बुद्धि कलियुगने विप्रका अपमान करनेकी ओर प्रेरित कर दी थी; अन्यथा ययातिके कुलमें पैदा हुए क्षत्रिय राजा परीक्षित् एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प क्यों डालते?॥ ३३-३४॥

हे राजन्! विद्वान्‌को इसे युगका ही प्रभाव समझना चाहिये। इसलिये विशेषरूपसे धर्माचरण ही प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३५॥

हे राजन्! सत्ययुगमें सभी ब्राह्मण वेदके ज्ञाता, पराशक्तिकी पूजामें तत्पर रहनेवाले, देवीदर्शनकी लालसासे युक्त, गायत्री और प्रणवमन्त्रमें अनुरक्त, गायत्रीका ध्यान करनेवाले, गायत्रीजपपरायण, एकमात्र मायाबीजमन्त्रका जप करनेवाले, प्रत्येक गाँवमें भगवती पराम्बाका मन्दिर बनानेके लिये उत्सुक रहनेवाले, अपने-अपने कर्मोंमें निरत रहनेवाले, सत्य-पवित्रता-दयासे समन्वित, वेदत्रयी कर्ममें संलग्न रहनेवाले और तत्त्वज्ञानमें पूर्ण निष्णात होते थे। क्षत्रिय प्रजाओंके भरण-पोषणमें संलग्न रहते थे। हे राजन्! उस पुण्यमय सत्ययुगमें वैश्यलोग कृषि, व्यापार और गो-पालन करते थे तथा शूद्र सेवापरायण रहते थे॥ ३६—४०॥

उस सत्ययुगमें सभी वर्णोंके लोग भगवती पराम्बाके पूजनमें आसक्त रहते थे। उसके बाद त्रेतायुगमें धर्मकी स्थिति कुछ कम हो गयी। सत्ययुगमें

द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्ययुगस्थितिः।
पूर्वं ये राक्षसा राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ४२

पाखण्डनिरताः प्रायो भवन्ति जनवञ्चकाः।
असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः॥ ४३

दाम्भिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः।
शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः॥ ४४

वेदनिन्दाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः।
यथा यथा कलिर्वृद्धिं याति राजंस्तथा तथा॥ ४५

धर्मस्य सत्यमूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत्।
तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः॥ ४६

असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ।
शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः॥ ४७

भविष्यन्ति कलौ राजन् युगे वृद्धिं गताः किल।
कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः॥ ४८

पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप।
स्वभर्तृवञ्चका नित्यं धर्मभाषणपण्डिताः॥ ४९

भवन्त्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे।
आहारशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते॥ ५०

शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम।
वृत्तसङ्करदोषेण जायते धर्मसङ्करः॥ ५१

धर्मस्य सङ्करे जाते नूनं स्याद्वर्णसङ्करः।
एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते॥ ५२

स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते।
महान्तोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप॥ ५३

कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित्।
तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावात्पापकारिणाम्॥ ५४

निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र सामान्योपायतो भवेत्।

जो धर्मकी स्थिति थी, वह द्वापरमें विशेषरूपसे कम हो गयी। हे राजन्! पूर्वयुगोंमें जो राक्षस समझे जाते थे, वे ही कलियुगमें ब्राह्मण माने जाते हैं॥ ४१-४२॥

वे प्रायः पाखण्डी, लोगोंको ठगनेवाले, झूठ बोलनेवाले तथा वेद और धर्मसे दूर रहनेवाले होते हैं। उनमेंसे कुछ तो दम्भी, लोकव्यवहारमें चालाक, अभिमानी, वेदप्रतिपादित मार्गसे हटकर चलनेवाले, शूद्रोंकी सेवा करनेवाले, विभिन्न धर्मोंका प्रवर्तन करनेवाले, वेदनिन्दक, क्रूर, धर्मभ्रष्ट और व्यर्थ वाद-विवादमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे राजन्! जैसे-जैसे कलियुगकी वृद्धि होती है, वैसे-वैसे सत्यमूलक धर्मका सर्वथा क्षय होता जाता है और वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इतर वर्णोंके लोग भी धर्महीन, मिथ्यावादी तथा पापी होते हैं। ब्राह्मण शूद्रधर्ममें संलग्न और प्रतिग्रहपरायण हो जाते हैं॥ ४३—४७॥

हे राजन्! कलियुगका प्रभाव और बढ़नेपर स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी तथा काम, लोभ और मोहसे युक्त हो जायँगी। हे राजन्! वे पापाचारिणी, झूठ बोलनेवाली, सदा कलह करनेवाली, अपने पतिको ठगनेवाली और नित्य धर्मका भाषण करनेमें निपुण होंगी। कलियुगमें इस प्रकारकी पापपरायण स्त्रियाँ होती हैं॥ ४८-४९½॥

हे राजन्! आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और हे नृपश्रेष्ठ! चित्त शुद्ध होनेपर ही धर्मका प्रकाश होता है। आचारसंकरता (दूसरे वर्णोंके अनुसार आचरण)-दोषसे धर्ममें व्यतिक्रम (विकार) उत्पन्न होता है और धर्ममें विकृति होनेपर वर्णसंकरता उत्पन्न होती है। हे राजन्! इस प्रकार सभी धर्मोंसे हीन कलियुगमें अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनायी देती। हे राजन्! धर्मज्ञ और श्रेष्ठजन भी अधर्म करने लग जाते हैं। यह कलियुगका स्वभाव ही है; किसीके भी द्वारा इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। अतः हे राजेन्द्र! इस कालमें स्वभावसे ही पाप करनेवाले मनुष्योंकी निष्कृति सामान्य उपायसे नहीं हो सकती॥ ५०—५४½॥

जनमेजय उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद॥ ५५

कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत्।
यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे॥ ५६

व्यास उवाच

एक एव महाराज तत्रोपायोऽस्ति नापरः।
सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदाम्बुजम्॥ ५७

न सन्त्यघानि तावन्ति यावती शक्तिरस्ति हि।
नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप॥ ५८

अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि।
किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः॥ ५९

प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः।
तस्मात्कलिभयाद्राजन् पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः॥ ६०

निरन्तरं पराम्बाया नामसंस्मरणं चरेत्।
छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत्॥ ६१

देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते।
रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम्॥ ६२

विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम्।
अजपां नाम गायत्रीं जपन्ति निखिला जनाः॥ ६३

महिमानं न जानन्ति मायाया वैभवं महत्।
गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपन्ति हृदयान्तरे॥ ६४

महिमानं न जानन्ति मायाया वैभवं महत्।
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप।
युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ६५

जनमेजय बोले—हे भगवन्! हे समस्त धर्मोंके ज्ञाता! हे समस्त शास्त्रोंमें निपुण! अधर्मके बाहुल्यवाले कलियुगमें मनुष्योंकी क्या गति होती है? यदि उससे निस्तारका कोई उपाय हो तो उसे दयापूर्वक मुझे बतलाइये॥ ५५-५६॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! इसका एक ही उपाय है दूसरा नहीं है; समस्त पापोंके शमनके लिये देवीके चरणकमलका ध्यान करना चाहिये। हे राजन्! देवीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है, उतने पाप तो हैं ही नहीं। इसलिये भयकी क्या आवश्यकता? यदि विवशतापूर्वक भी भगवतीके नामका उच्चारण हो जाय, तो वे क्या-क्या दे देती हैं, उसे जाननेमें भगवान् शंकर आदि भी समर्थ नहीं हैं!॥ ५७—५९॥

भगवती देवीके नामका स्मरण ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त है, इसलिये हे राजन्! मनुष्यको कलिके भयसे पुण्यक्षेत्रमें निवास करना चाहिये और पराम्बाके नामका निरन्तर स्मरण करना चाहिये। जो देवीको भक्तिभावसे नमस्कार करता है, वह प्राणियोंका छेदन-भेदन और सारे संसारको पीड़ित करके भी उन पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६०-६१½॥

हे राजन्! यह मैंने आपसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके रहस्यको कह दिया, इसपर भलीभाँति विचारकर आप देवीके चरणकमलकी आराधना करें। [वैसे तो] सभी लोग 'अजपा' नामक गायत्रीका जप करते हैं, लेकिन वे [मायासे मोहित होनेके कारण] उन महामायाकी महिमा और महान् वैभवको नहीं जानते। सभी ब्राह्मण अपने हृदयमें गायत्रीका जप करते हैं, परंतु वे भी उन महामायाकी महिमा और उनके महान् वैभवको नहीं जानते। हे राजन्! युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें आपने जो कुछ पूछा था, यह सब मैंने कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६२—६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
युगधर्मव्यवस्थावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

* * *

अथ द्वादशोऽध्यायः

पवित्र तीर्थोंका वर्णन, चित्तशुद्धिकी प्रधानता तथा इस सम्बन्धमें विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर वैरकी कथा, राजा हरिश्चन्द्रका वरुणदेवके शापसे जलोदरग्रस्त होना

राजोवाच

तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम।
गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा॥ १
फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः।
विधिं तु तीर्थयात्रायां नियमांश्च विशेषतः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च।
येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्यायनानि च॥ ३
नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती।
नर्मदा गण्डकी सिन्धुर्गोमती तमसा तथा॥ ४
कावेरी चन्द्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा।
चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा॥ ५
एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः।
तासां समुद्रगाः पुण्याः स्वल्पपुण्या ह्यनब्धिगाः॥ ६
समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः।
मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः॥ ७
भवन्ति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा।
पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम्॥ ८
प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च।
विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा॥ ९
श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गन्धमादनः।
सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम्॥ १०
तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम्।
आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ११
विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः।
नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः॥ १२
वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा।
येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नातिविश्रुतः॥ १३

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप मुझे मनुष्यों और देवताओंके द्वारा सेवनीय इस पृथ्वीपर स्थित पुण्य तीर्थों, क्षेत्रों तथा नदियोंके विषयमें बताइये। उन तीर्थोंमें स्नान तथा दानका जैसा फल मिलता है, उसे और विशेषरूपसे तीर्थयात्राकी विधि तथा नियमोंको भी बताइये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उन विविध तीर्थोंका वर्णन करूँगा, जिन तीर्थोंमें देवियोंके प्रशस्त मन्दिर विद्यमान हैं॥ ३॥

नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, कावेरी, चन्द्रभागा, पुण्या, शुभ वेत्रवती, चर्मण्वती, सरयू, तापी तथा साभ्रमती भी हैं—इन्हें मैंने बतला दिया। हे राजन्! इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य नदियाँ भी हैं। उनमेंसे समुद्रमें गिरनेवाली नदियाँ पुण्यमयी हैं तथा समुद्रमें न गिरनेवाली नदियाँ अल्प पुण्यवाली हैं। समुद्रगामिनी नदियोंमें वे बहुत पवित्र हैं जो सदा जलपूरित होकर बहती हैं। श्रावण और भाद्रपद—इन दो महीनोंमें सभी नदियाँ रजस्वला होती हैं; क्योंकि उनमें वर्षाकालमें ग्रामीणजल प्रवाहित होता है॥ ४—७½॥

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, धर्मारण्य, प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और विख्यात अर्बुदारण्य—ये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं। इसी प्रकार श्रीशैल, सुमेरु और गन्धमादन पवित्र पर्वत हैं। सरोवरोंमें सर्वविख्यात मानसरोवर, श्रेष्ठ बिन्दुसर और पवित्र अच्छोदसरोवर पुण्य सरोवर हैं॥ ८—१०½॥

इसी प्रकार शुद्ध मनवाले मुनियोंके आश्रम भी पुण्यस्थल हैं। विख्यात बदरिकाश्रम सदैव पुण्यशाली आश्रमके रूपमें कहा गया है जहाँ नर-नारायण नामके दो मुनियोंने तपस्या की थी। ऐसे ही वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी विख्यात हैं। जिस ऋषिने जहाँ तपस्या की वह आश्रम उसीके नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ११—१३॥

एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले।
मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते॥ १४
एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते।
दर्शनात्पापहारीणि वसन्ति नियमेन च॥ १५
कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसङ्गेन च कानिचित्।
तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा॥ १६
तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते।
द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च॥ १७
पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च।
कदाचिद् द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन॥ १८
दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप।
मनस्तु चञ्चलं राजन्ननेकविषयाश्रितम्॥ १९
कथं शुद्धं भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम्।
कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहङ्कारो मदस्तथा॥ २०
सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च।
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥ २१
स्वधर्मपालनं राजन् सर्वतीर्थफलप्रदम्।
नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः॥ २२
व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते।
क्षालयन्ति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम्॥ २३
मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप।
शक्तानि यदि चेत्तानि गङ्गातीरनिवासिनः॥ २४
मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः।
वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः किल॥ २५
रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा।
चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गङ्गादिभ्योऽतिपावनम्॥ २६
यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यान्तरं मलम्।
विशेषेण तु सत्सङ्गो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते॥ २७
न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न।
न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम्॥ २८

हे राजन्! इस प्रकार इस भूतलपर असंख्य पवित्र पुण्यस्थल हैं, जो मुनियोंद्वारा पवित्र कहे गये हैं। हे राजन्! इन सभी स्थानोंमें देवीके मन्दिर हैं, जो दर्शन कर लेने मात्रसे पापका हरण करते हैं, वहाँ बहुत-से भक्त नियमपूर्वक वास करते हैं। उन कतिपय स्थानोंका वर्णन आगे करूँगा॥ १४-१५½ ॥

हे राजन्! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ, तपस्या और सभी पुण्यकर्म शुद्धिसापेक्ष हैं। द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मानसिक शुद्धिके आधारपर ही तीर्थ, तप और व्रत पवित्र होते हैं। कभी द्रव्यशुद्धि और कभी क्रियाशुद्धि हो पाती है, लेकिन हे राजन्! मानसिक शुद्धि सबके लिये सदा ही दुर्लभ होती है; क्योंकि हे नृप! मन बड़ा चंचल है और अनेक विषयोंमें भटकता रहता है। तब हे राजन्! विविध विषयोंके आश्रित रहनेवाला मन कैसे शुद्ध रह सकता है?॥ १६—१९½ ॥

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मद—ये सभी तपस्या, तीर्थसेवन और व्रतोंमें विघ्नकारी होते हैं। हे राजन्! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह और अपने धर्मका पालन—समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं। नित्यकर्मके परित्याग और मार्गमें संसर्गदोषसे तीर्थमें जाना व्यर्थ हो जाता है, केवल पाप ही लगता है॥ २०—२२½ ॥

हे राजन्! तीर्थ तो केवल शरीरजन्य मलको ही धोते हैं, वे अन्तःकरणको धोनेमें समर्थ नहीं होते। यदि वे तीर्थ [मनको शुद्ध करनेमें] समर्थ होते तो गंगाके तटपर रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठसदृश ईश्वर-चिन्तनपरायण भक्त मुनि द्रोहभावसे युक्त क्यों होते? इस प्रकार तीर्थोंमें रहनेवाले लोग भी सदैव राग-द्वेषपरायण तथा काम-क्रोधसे व्याकुल रहते हैं। अतः चित्तशुद्धिरूपी तीर्थ गंगा आदि तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र है॥ २३—२६॥

हे राजन्! यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठ पुरुषका सत्संग प्राप्त हो जाय तो वह आन्तरिक मैलको धो देता है। हे राजन्! वेद, शास्त्र, व्रत, तप, यज्ञ तथा दान—ये चित्तकी शुद्धिके कारण नहीं हैं॥ २७-२८॥

वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः।
रागद्वेषान्वितः कामं गङ्गातीरसमाश्रितः॥ २९
आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम्॥ ३०
विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः।
शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चन्द्रस्य कारणात्॥ ३१
कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाडीदेहभाक्कृतः।
शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ॥ ३२
निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च।
चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचञ्चुप्रताडनैः॥ ३३
वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ।
युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम्॥ ३४

राजोवाच

कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ।
परस्परं वैरपरौ सञ्जातौ केन हेतुना॥ ३५
शापं परस्परं केन कारणेन महामती।
दत्तवन्तौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम्॥ ३६

व्यास उवाच

हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा।
बभूव रविवंशीयो रामचन्द्रस्य पूर्वजः॥ ३७
अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम्।
प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम्॥ ३८
वरुणस्तस्य सन्तुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते।
दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुन्दरी॥ ३९
राजा बभूव सन्तुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम्।
चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम्॥ ४०
सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षणसंयुतम्।
मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशाम्पते॥ ४१
कृतवाञ्जातकर्मादिसंस्कारविधिमुत्तमम्।
ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥ ४२

ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ वेदविद्यामें पारंगत थे और गंगाजीके तटपर रहते थे, फिर भी वे राग-द्वेषसे युक्त हो गये। विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला आडीबक नामक महायुद्ध हुआ, जो द्वेषके कारण व्यर्थ ही हुआ था। उस युद्धमें परम तपस्वी विश्वामित्र बक हुए थे, उन्हें वसिष्ठने हरिश्चन्द्रके कारण शाप दे दिया था। विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप देकर आडी पक्षीके देहवाला बना दिया। इस प्रकार निर्मल कान्तिवाले वे दोनों मुनि शापके कारण आडी और बक पक्षीके रूपमें हो गये। वे मानसरोवरके तटपर रहने लगे और वहाँ नखों और चोंचके प्रहारसे भयंकर युद्ध करते रहे। वे दोनों ऋषि मदोन्मत्त सिंहोंके समान रोषयुक्त होकर दस हजार वर्षोंतक आपसमें युद्ध करते रहे॥ २९—३४॥

राजा बोले—श्रेष्ठ तपस्वी और धर्मपरायण वे दोनों मुनिश्रेष्ठ किस कारण परस्पर वैरपरायण हुए? उन दोनों बुद्धिमान् ऋषियोंने किस कारणसे एक-दूसरेको शाप दिया? जो मनुष्योंके लिये कष्टकारक और दुःखदायक सिद्ध हुए॥ ३५-३६॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें सूर्यवंशमें त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र नामक एक श्रेष्ठ राजा हुए, जो रामचन्द्रजीके पूर्वज थे॥ ३७॥

वे राजर्षि सन्तानहीन थे, अतः पुत्रकी कामनासे वरुणदेवकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने 'नरमेध' नामक दुष्कर महायज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा की। उस यज्ञका व्रत लेनेसे वरुणदेव उनपर प्रसन्न हो गये और राजाकी परम रूपवती भार्याने गर्भ धारण किया॥ ३८-३९॥

रानीको गर्भवती देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने विधिपूर्वक गर्भको संस्कारित करनेवाला कर्म सम्पन्न कराया॥ ४०॥

हे राजन्! रानीने समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जातकर्म आदि संस्कारकी उत्तम विधि सम्पन्न की। ब्राह्मणोंको विशेषरूपसे स्वर्ण और पयस्विनी गौएँ प्रदान कीं॥ ४१-४२॥

जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसाम्पतिः।
आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तथा॥ ४३

पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम्।
कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम्॥ ४४

कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम्।
सत्यवाग्भव राजेन्द्र संकल्पस्तु त्वया कृतः॥ ४५

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः।
संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृताञ्जलिः॥ ४६

स्वामिन् करोमि तं यज्ञं सर्वथा विधिपूर्वकम्।
मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्यवागहम्॥ ४७

पूर्णे मासे विशुध्येत धर्मपत्नी सुरोत्तम।
विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः स पशोर्मखः॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः।
राजा बभूव सन्तुष्टः किञ्चिच्चिन्तातुरस्तथा॥ ४९

पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये।
आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः॥ ५०

कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम्।
उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा॥ ५१

असंस्कृतं सुतं स्वामिन् यूपे बध्नामि तं कथम्।
संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम्॥ ५२

दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम्।
असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित्॥ ५३

वरुण उवाच

प्रतारयसि राजेन्द्र कृत्वा समयमग्रतः।
दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहो ह्यपुत्रिणः॥ ५४

गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात्।
कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम्॥ ५५

हे महाराज! जब घरमें जन्मोत्सव धूमधामसे मनाया जा रहा था। उसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके वरुणदेव आये, आसन प्रदान करके राजाने विधिवत् उनकी पूजा की। आगमनके विषयमें पूछे जानेपर 'मैं वरुण हूँ'—यह वाक्य उन्होंने राजासे कहा। हे राजेन्द्र! जैसा आपने संकल्प किया था, अब अपने पुत्रको बलिपशु बनाकर परम पवित्र यज्ञ कीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४३—४५॥

उनकी यह बात सुनकर राजा व्यथासे व्याकुल तथा विह्वल हो गये; पुनः अपनी मनोव्यथाको शान्त करके उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर वरुणदेवसे कहा—हे स्वामिन्! मैंने जिस यज्ञका संकल्प लिया है, उस यज्ञको मैं विधिपूर्वक करूँगा और सत्यवादी होऊँगा॥ ४६-४७॥

हे सुरश्रेष्ठ! एक माह पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी [जननाशौचसे] शुद्ध हो जायँगी, पत्नीके शुद्ध हो जानेपर मैं उस पशुयज्ञको करूँगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—राजाके यह कहनेपर वरुणदेव अपने घर चले गये। अब राजा सन्तुष्ट हो गये, किंतु कुछ-कुछ चिन्तातुर रहने लगे॥ ४९॥

एक माह पूर्ण होनेपर वरुणदेव सुन्दर और मृदुभाषी ब्राह्मणका वेश बनाकर परीक्षा लेनेके लिये पुनः राजमहलमें आये॥ ५०॥

तब सम्यक् रूपसे पूजित होकर सुखदायी आसनपर विराजमान उन सुरश्रेष्ठ वरुणसे राजाने विनयपूर्वक उद्देश्यपरक यह बात कही—॥ ५१॥

हे स्वामिन्! पुत्र तो अभी संस्काररहित है, उसे यूपमें कैसे बाँधूँ? संस्कार करके उसे क्षत्रिय बनाकर मैं उस उत्तम यज्ञको सम्पन्न करूँगा॥ ५२॥

हे देव! संस्कारहीन बालकका कहीं भी अधिकार नहीं होता है, अतः यदि मुझपर दया करें तो मुझे अपना सेवक और दीन जानकर कुछ समय और दे दीजिये॥ ५३॥

वरुण बोले—हे राजन्! आप समयको आगे बढ़ाकर धोखा दे रहे हैं; निःसन्तान होनेके कारण आपका पुत्रस्नेह छोड़ना दुष्कर है—इसे मैं जानता हूँ। हे राजेन्द्र! आपकी मधुर वाणी सुनकर मैं घर जा रहा हूँ, कुछ समयतक प्रतीक्षा करके मैं पुनः आपके

भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम्।
अन्यथा त्वयि मुञ्चामि कोपं शापसमन्वितम्॥ ५६

राजोवाच

समावर्तनकर्मान्ते सर्वथा यादसांपते।
कृत्वा पुत्रपशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम्॥ ५७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीतमानसः।
तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत्॥ ५८

रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान्।
सञ्जातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः॥ ५९

यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम्।
भयभीतस्ततः सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः॥ ६०

कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे।
अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः॥ ६१

प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम्।
गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते॥ ६२

प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेन्द्रियः।
किं करोमि गतः क्वापि सुतो मे सुरसत्तम॥ ६३

श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसांपतिः।
शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम्॥ ६४

जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप।
यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपण्डित॥ ६५

इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा।
राजा चिन्तातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः॥ ६६

यदातिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह।
तदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम्॥ ६७

पान्थिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः।
जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज॥ ६८

घर आऊँगा। हे तात! उस समय आपको अपनी बातको सत्य सिद्ध करना होगा, अन्यथा मैं क्रुद्ध होकर आपको शाप दे दूँगा॥ ५४—५६॥

राजा बोले—हे जलाधिनाथ! मैं समावर्तनसंस्कार हो जानेपर पुत्रको यज्ञ-पशु बनाकर विधिपूर्वक यज्ञ करूँगा॥ ५७॥

व्यासजी बोले—राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेव प्रसन्न होकर 'ठीक है'—ऐसा कहकर तुरंत चले गये और राजा भी स्वस्थचित्त हो गये॥ ५८॥

इधर राजाका रोहित नामका वह पुत्र बड़ा हो गया; वह बुद्धिमान् और समस्त विद्याओंमें पारंगत हो गया॥ ५९॥

उसे यज्ञका सब कारण विस्तारपूर्वक ज्ञात हो गया। तब वह अपनी मृत्यु जानकर अत्यन्त भयभीत हो गया॥ ६०॥

[एक दिन] वह बालक राजमहलसे भागकर एक अगम्य पर्वतकी गुफामें चला गया और भयग्रस्त होकर वहाँ रहने लगा॥ ६१॥

समय आनेपर वरुणदेव यज्ञकी अभिलाषासे राजमहलमें पहुँचकर उन राजासे बोले—हे राजन्! यज्ञ कीजिये॥ ६२॥

यह सुनकर उदास मुखवाले राजाने व्यथित होकर उनसे कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं क्या करूँ? मेरा पुत्र कहीं चला गया है॥ ६३॥

राजाकी यह बात सुनकर जलचरोंके अधिपति वरुणदेवने क्रुद्ध होकर असत्यवादी राजाको शाप दे दिया—कपटविशारद हे राजन्! तुमने प्रतिज्ञा करके मुझे धोखा दिया है, अतः तुम्हारे शरीरमें जलोदर नामक रोग हो जाय॥ ६४-६५॥

ऐसा शाप देकर पाशधारी वरुणदेव अपने लोकको चले गये और रोगसे पीड़ित होकर राजा अपने महलमें चिन्तित रहने लगे॥ ६६॥

जब शापजन्य रोगसे राजा बहुत व्यथित हो गये तब उनके पुत्रने भी पिताके रोग-पीड़ित होनेकी बात सुनी॥ ६७॥

किसी पथिकने उससे कहा—हे राजपुत्र! शापके कारण जलोदर रोगसे ग्रस्त तुम्हारे पिता बहुत अधिक दुःखी हैं॥ ६८॥

विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते।
यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम्॥ ६९

किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम्।
देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम॥ ७०

प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः।
त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रन्दति व्याधिपीडितः॥ ७१

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पान्थिकाद्धर्मसंयुतम्।
यदा चक्रे मनो गन्तुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम्॥ ७२

तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत्।
रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव भारत॥ ७३

मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा।
करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम्॥ ७४

हे दुर्बुद्धि! तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया, तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ है; क्योंकि तुम अपने पिताको दुःखी अवस्थामें छोड़कर पर्वतकी गुफामें छिपे हो॥ ६९॥

हे कुपुत्र! तुम्हारे इस शरीरसे तुम्हारे जन्म लेनेका क्या लाभ है, जो तुम अपने पिताको दुःखी करके यहाँ रह रहे हो?॥ ७०॥

राजा हरिश्चन्द्र तुम्हारे लिये दुःखी और व्याधिसे पीड़ित होकर विलाप कर रहे हैं। पिताके लिये सत्पुत्रको प्राणोंतकका त्याग कर देना चाहिये—यह सिद्धान्त है।॥ ७१॥

व्यासजी बोले—तब पथिककी धर्मसंगत बात सुनकर जैसे ही रोहितने पीडाग्रस्त अपने पिताको देखनेके लिये जानेका विचार किया, वैसे ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्र वहाँ आ गये। हे भारत! उन्होंने दयालुकी भाँति एकान्तमें हितकी यह बात कही—हे राजकुमार! तुम मूर्ख हो, जो वहाँ जानेका व्यर्थ विचार कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये क्यों दुःखी हैं?॥ ७२—७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हरिश्चन्द्रस्य
जलोदरव्याधिपीडावर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करना, विश्वामित्रसे प्राप्त वरुणमन्त्रके जपसे शुनःशेपका मुक्त होना, परस्पर शापसे विश्वामित्र और वसिष्ठका बक तथा आडी होना

इन्द्र उवाच

साहसं कृतवान् राजा पूर्वं यत्कथितो मखः।
वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम्॥ १

गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा यूपेऽघृणः पुनः।
पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति व्यथातुरः॥ २

इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा।
स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम्॥ ३

यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्।
गमनाय मतिं चक्रे तदेन्द्रः प्रत्यषेधयत्॥ ४

इन्द्र बोले—पूर्वकालमें राजाने वरुणदेवसे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने प्रिय पुत्रको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करूँगा—यह उन्होंने बड़ा साहस किया था॥ १॥

हे महामते! तुम्हारे वहाँ जानेपर रोगसे दुःखी तुम्हारे निर्दयी पिता तुम्हें यज्ञीय पशु बनाकर यूपमें बाँधकर मार डालेंगे॥ २॥

अमित तेजस्वी इन्द्रके द्वारा इस प्रकार रोक दिये जानेपर मायेश्वरीकी मायासे अत्यन्त मोहित होकर वह राजपुत्र वहीं रुक गया॥ ३॥

इस प्रकार जब-जब वह पिताको रोगसे पीड़ित सुनकर जानेका विचार करता था, तब-तब इन्द्र उसे रोक देते थे॥ ४॥

हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तः पप्रच्छ गुरुमन्तिके।
स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम्॥ ५

राजोवाच

भगवन् किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुलः।
त्राहि मां दुःखमनसं महाव्याधिभयातुरम्॥ ६

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुतः।
त्रयोदशविधाः पुत्राः कथिता धर्मसंग्रहे॥ ७

तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम्।
द्रव्यं दत्त्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम्॥ ८

एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति।
वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम्॥ ९

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रोवाच मन्त्रिणम्।
अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्वतियत्नतः॥ १०

कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता।
समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ॥ ११

सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालकः।
न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहेतवे॥ १२

प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद् द्विजवादिनः।
द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशुः किल॥ १३

इति सञ्चोदितस्तेन सचिवः कार्यहेतवे।
अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे॥ १४

एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुरः।
निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः॥ १५

तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मन्त्रिसत्तमः।
आनयामास दत्त्वार्थं प्रार्थितं यद्धनं तदा॥ १६

समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः।
राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम्॥ १७

एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दुःखी होकर एकान्तमें बैठे हुए सर्वज्ञ और कल्याणकारी गुरु वसिष्ठके पास जाकर पूछा—॥ ५॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त भयभीत और कष्टसे पीड़ित हूँ। इस महाव्याधिसे पीड़ित मुझ दुःखितचित्तकी रक्षा कीजिये॥ ६॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! सुनिये, रोगनाशका एक प्रशस्त उपाय है। धर्मशास्त्रमें तेरह प्रकारके पुत्र कहे गये हैं॥ ७॥

इसलिये किसी ब्राह्मणके उत्तम बालकको उसका मनोभिलषित धन देकर क्रय करके उसे ले आइये और उत्तम यज्ञको सम्पन्न कीजिये॥ ८॥

हे राजन्! इस प्रकार यज्ञ करनेसे आपका रोग नष्ट हो जायगा और वरुणदेव भी हर्षित होकर प्रसन्नचित्त हो जायँगे॥ ९॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर राजाने मन्त्रीसे कहा—हे महामते! सभी स्थानोंमें प्रयत्नपूर्वक पता लगाइये॥ १०॥

यदि कोई लोभी पिता अपने पुत्रको देता है तो वह जितना धन माँगे, उतना देकर उसे ले आइये॥ ११॥

सब प्रकारसे प्रयास करके यज्ञके लिये ब्राह्मणबालक लाना ही चाहिये। मेरे कार्यमें तुम्हें किसी भी प्रकारका बुद्धिशैथिल्य नहीं करना चाहिये॥ १२॥

तुम्हें प्रत्येक ब्राह्मणसे प्रार्थना करनी चाहिये कि धन लेकर राजाको पुत्र दे दीजिये, उसे यज्ञके लिये यज्ञीय पशु बनाना है॥ १३॥

उन राजासे यह आदेश प्राप्तकर मन्त्रीने यज्ञकार्यके लिये राज्यके प्रत्येक गाँव तथा घरमें पता लगाया॥ १४॥

इस प्रकार राज्यमें पता लगाते हुए उसे अजीगर्त नामक एक दुःखी और निर्धन ब्राह्मण मिला, जिसके तीन पुत्र थे॥ १५॥

उस ब्राह्मणने जितना धन माँगा, उतना देकर वह मन्त्रिश्रेष्ठ उसके मझले पुत्र शुनःशेपको ले आया॥ १६॥

कार्यकुशल मन्त्रीने पशुयोग्य ब्राह्मणपुत्र शुनःशेपको लाकर राजाको समर्पित कर दिया॥ १७॥

राजातिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः।
कारयामास सम्भारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान्॥ १८

प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः।
बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा॥ १९

राजन्मा साहसं कार्षीर्मुञ्चैनं द्विजबालकम्।
प्रार्थयाम्यहमायुष्मन् सुखं तेऽद्य भविष्यति॥ २०

क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि।
दयावान्भव राजेन्द्र कुरु मे वचनं नृप॥ २१

परदेहस्य रक्षायै स्वदेहं ये दयापराः।
ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः॥ २२

त्वं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात्।
पापं मा कुरु राजेन्द्र दयावान्भव बालके॥ २३

सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप।
मुञ्चैनं बालकं तस्मात्प्रमाणं यदि मे वचः॥ २४

व्यास उवाच

अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम्।
न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः॥ २५

उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः।
मन्त्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः॥ २६

शुनःशेपोऽपि तं मन्त्रमसकृद्वधकर्शितः।
प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम्॥ २७

स्तुवन्तं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः।
तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः॥ २८

रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ।
विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः॥ २९

इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर यज्ञके लिये सामग्री एकत्र करवायी॥ १८॥

यज्ञके प्रारम्भ होनेपर महामुनि विश्वामित्रने वहाँ शुनः-शेपको बँधा देखकर राजाको मना करते हुए कहा—॥ १९॥

हे राजन्! ऐसा साहस न कीजिये, इस ब्राह्मणबालकको छोड़ दीजिये। हे आयुष्मन्! मैं प्रार्थना करता हूँ, इससे आपको सुखकी प्राप्ति होगी॥ २०॥

यह शुनःशेप क्रन्दन कर रहा है, अतः करुणा मुझे बहुत व्यथित कर रही है। हे राजेन्द्र! मेरी बात मानिये; हे नृप! दयावान् बनिये॥ २१॥

पूर्वकालमें स्वर्गके इच्छुक, पवित्रव्रती तथा दयापरायण जो क्षत्रियगण थे, वे दूसरोंके शरीरकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे देते थे और आप अपने शरीरकी रक्षाके लिये बलपूर्वक ब्राह्मणपुत्रका वध कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! पाप मत कीजिये और इस बालकपर दयावान् होइए॥ २२-२३॥

हे राजन्! अपने देहके प्रति सभीको एक-जैसी प्रीति होती है—यह बात आप स्वयं जानते हैं। यदि आप मेरी बातको प्रमाण मानते हैं तो इस बालकको छोड़ दीजिये॥ २४॥

व्यासजी बोले—दुःखसे अत्यन्त पीड़ित राजाने मुनिकी बातका अनादर करके उस बालकको नहीं छोड़ा; इससे वे तपस्वी मुनि उनके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये॥ २५॥

वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उन दयालु विश्वामित्रने शुनःशेपको पाशधारी वरुणदेवके मन्त्रका उपदेश दिया। अपने वधके भयसे व्याकुल शुनःशेप भी वरुणदेवका स्मरण करते हुए उच्च स्वरसे बार-बार मन्त्रका जप करने लगा॥ २६-२७॥

जलचरोंके अधिपति करुणासिन्धु वरुणदेवने वहाँ आकर स्तुति करते हुए उस ब्राह्मणपुत्र शुनः-शेपको छुड़ा दिया और राजाको रोगमुक्त करके वे वरुणदेव अपने लोकको चले गये। विश्वामित्रने उस बालकको मृत्युसे मुक्ति प्रदान कर दी॥ २८-२९॥

न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः।
रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः॥ ३०

एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः।
सूकरं हन्तुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे॥ ३१

वृद्धब्राह्मणवेषेण विश्वामित्रेण वञ्चितः।
सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम्॥ ३२

पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम्।
वसिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया॥ ३३

क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत्।
बकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दाम्भिक॥ ३४

कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ।
अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम्॥ ३५

बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव।
इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः॥ ३६

त्वमप्याडिर्भवायुष्मन् बकोऽहं यावदेव हि।

व्यास उवाच

एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ॥ ३७

अण्डजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी।
एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वासौ बकरूपभाक्॥ ३८

विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे।
अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम्॥ ३९

आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ।
दिने दिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ॥ ४०

दुःखदं सर्वलोकानां क्रन्दमानावुभौ भृशम्।
चञ्चुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम्॥ ४१

जघ्नतू रुधिरक्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ।
एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी॥ ४२

स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यन्त्रितौ।

राजोवाच

कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ॥ ४३
तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे।

राजाने महात्मा विश्वामित्रकी बात नहीं मानी, अतः वे गाधिपुत्र विश्वामित्र मन-ही-मन राजाके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुए॥ ३०॥

एक समय राजा घोड़ेपर सवार होकर वनमें गये। वे सूअरको मारनेकी इच्छासे ठीक दोपहरके समय कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे॥ ३१॥

वहाँ विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण करके छलपूर्वक उनका सर्वस्व माँग लिया और उनके महान् राज्यपर अपना अधिकार कर लिया॥ ३२॥

जिससे [वसिष्ठके] यजमान राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त कष्ट पाने लगे। एक बार संयोगवश वनमें आये हुए विश्वामित्रसे वसिष्ठने कहा—हे क्षत्रियाधम! हे दुर्बुद्धे! तुमने व्यर्थ ही ब्राह्मणका वेश बना रखा है, बगुलेके समान वृत्तिवाले हे दाम्भिक! तुम व्यर्थमें गर्व क्यों करते हो?॥ ३३-३४॥

हे जाल्म! तुमने मैरे यजमान नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रको बिना अपराधके महान् कष्टमें क्यों डाल दिया?॥ ३५॥

तुम बगुलेके समान ध्यानपरायण हो। अतः तुम 'बक' (बगुला) हो जाओ। वसिष्ठके द्वारा इस प्रकार शापप्राप्त विश्वामित्रने उनसे कहा—हे आयुष्मन्! जबतक मैं बक रहूँगा, तबतक तुम भी आडी पक्षी बनकर रहोगे॥ ३६½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार क्रोधसे व्याकुल उन दोनोंने एक-दूसरेको शाप दे दिया और एक सरोवरके समीप वे दोनों मुनि 'आडी' और 'बक' के रूपमें अण्डोंसे उत्पन्न हुए। दिव्य मानसरोवरके तटपर एक वृक्षपर घोंसला बनाकर बकरूपधारी विश्वामित्र और एक दूसरे वृक्षपर उत्तम घोंसला बनाकर आडीरूपधारी वसिष्ठ परस्पर द्वेषपरायण होकर रहने लगे। वे दोनों कोपाविष्ट होकर प्रतिदिन घोर क्रन्दन करते हुए सभी लोगोंके लिये दुःखदायी युद्ध करते थे। वे दोनों चोंच और पंखोंके प्रहार तथा नखोंके आघातसे परस्पर चोट पहुँचाते थे। रक्तसे लथपथ वे दोनों खिले हुए किंशुकके फूल-जैसे प्रतीत होते थे। हे महाराज! इस प्रकार पक्षीरूपधारी दोनों मुनि शापरूपी पाशमें जकड़े हुए वहाँ बहुत वर्षोंतक पड़े रहे॥ ३७—४२½॥

राजा बोले—हे विप्रर्षे! वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ और विश्वामित्र शापसे किस प्रकार मुक्त हुए, यह मुझे बताइये, मुझे बड़ा कौतूहल है॥ ४३½॥

व्यास उवाच

युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४

तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः।
तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५

शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम्।
ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६

सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान्।
विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥ ४७

मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः।
मैत्रावरुणिनाप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥ ४८

कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम्।
को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९

अहङ्कारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत्।
तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥ ५०

यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम्।
तीर्थं दानं तपः सत्यं यत्किञ्चिद्धर्मसाधनम् ॥ ५१

(श्रद्धात्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा।
तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥
सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा।
तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥
तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः।
कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥)
वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना।
तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥ ५२

देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन्।
ध्यायंस्तस्याः पदाम्भोजं कलिदोषभयार्दितः ॥ ५३

एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम्।
अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४

व्यासजी बोले—लोकपितामह ब्रह्माजी उन दोनोंको युद्ध करते देखकर समस्त दयापरायण देवताओंके साथ वहाँ आये। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उन दोनोंको समझाकर युद्धसे विरत करके परस्पर दिये गये शापसे भी मुक्त कर दिया ॥ ४४-४५½ ॥

इसके बाद सभी देवगण अपने-अपने लोकोंको चले गये, कमलयोनि प्रतापी ब्रह्माजी शीघ्र हंसपर आरूढ़ होकर सत्यलोकको चले गये और प्रजापतिके उपदेशसे परस्पर स्नेह करके विश्वामित्र तथा वसिष्ठजी भी अपने-अपने आश्रमोंको शीघ्र चले गये। हे राजन्! इस प्रकार मैत्रावरुणि वसिष्ठने भी अकारण ही विश्वामित्रके साथ परस्पर दुःखप्रद युद्ध किया था ॥ ४६—४८½ ॥

इस संसारमें मनुष्य, देवता या दैत्य—कौन ऐसा है, जो अहंकारपर विजय प्राप्तकर सदा सुखी रह सके। अतः हे राजन्! चित्तकी शुद्धि महापुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है। उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिये; उसके बिना तीर्थयात्रा, दान, तपस्या, सत्य आदि जो कुछ भी धर्मसाधन है; वह सब निरर्थक है ॥ ४९—५१ ॥

(सबके देहोंमें तथा प्राणियोंके धर्मकर्मोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी—यह तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गयी है। इनमें यथोक्त फल देनेवाली सात्त्विकी श्रद्धा जगत्‌में सदा दुर्लभ होती है। विधिविधानसे युक्त राजसी श्रद्धा उसका आधा फल देनेवाली कही गयी है। हे राजन्! काम-क्रोधके वशीभूत पुरुषोंकी श्रद्धा तामसी होती है। हे नृपश्रेष्ठ! वह फलविहीन होती है और कीर्ति करनेवाली भी नहीं होती।)

कलियुगके दोषोंसे भयभीत व्यक्तिको कथा-श्रवण आदिके द्वारा चित्तको वासनारहित करके देवीकी पूजामें तत्पर रहते हुए, वाणीसे देवीके नामोंको ग्रहण करते हुए, उनके गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा उनके चरण-कमलका ध्यान करते हुए तीर्थ आदिमें नित्य वास करना चाहिये ॥ ५२-५३ ॥

ऐसा करनेसे उसे कभी कलियुगका भय नहीं होगा, इससे पापी प्राणी भी अनायास ही संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे आडीबकयुद्धवर्णनसहितं देवीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेको शाप देना, वसिष्ठका मित्रावरुणके पुत्रके रूपमें जन्म लेना

जनमेजय उवाच

मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम्।
वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह॥ १

किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान् गुणतस्तथा।
ब्रूहि मे वदतांश्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम्॥ २

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः।
निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः॥ ३

मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम्।
मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव॥ ४

राजोवाच

कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः।
चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः॥ ५

अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने।
कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः॥ ६

व्यास उवाच

कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम्।
संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल॥ ७

धर्मं करोतु भूपालश्चरन्तु तापसास्तपः।
सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह॥ ८

कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा।
लोभाहङ्कारसंयुक्ताश्चरन्ति दुश्चरं तपः॥ ९

यजन्ति क्षत्रिया राजन् रजोगुणसमावृताः।
ब्राह्मणास्तु तथा राजन् न कोऽपि सत्त्वसंयुतः॥ १०

ऋषिणासौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात्॥ ११

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला।
दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके॥ १२

जनमेजय बोले—हे महाभाग! ब्रह्माके पुत्र मुनि वसिष्ठका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम कैसे पड़ा? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! किस कर्म अथवा गुणके कारण उन्होंने यह नाम प्राप्त किया। उनके नाम पड़नेका कारण मुझे बताइये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सुनिये, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र हैं, उन महातेजस्वीने निमिके शापसे वह शरीर त्यागकर पुनः जन्म लिया॥ ३॥

हे राजन्! उनका जन्म मित्र और वरुणके यहाँ हुआ था, इसीलिये इस संसारमें सर्वत्र उनका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम विख्यात हुआ॥ ४॥

राजा बोले—राजा निमिने ब्रह्माजीके पुत्र धर्मात्मा वसिष्ठको शाप क्यों दिया? राजाका वह दारुण शाप मुनिको लग गया—यह तो आश्चर्य है!॥ ५॥

हे मुने! निरपराध मुनिको राजाने क्यों शाप दे दिया; हे धर्मज्ञ! उस शापका कारण यथार्थरूपमें बताइये?॥ ६॥

व्यासजी बोले—इसका सम्यक् रूपसे निर्णीत कारण तो मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ। हे राजन्! यह संसार मायाके तीनों गुणोंसे व्याप्त है॥ ७॥

राजा धर्म करें और तपस्वी तप करें—यह स्वाभाविक कर्म है, परंतु सभी प्राणियोंका मन गुणोंसे आबद्ध रहनेके कारण विशुद्ध नहीं रह पाता॥ ८॥

राजालोग काम और क्रोधसे अभिभूत रहते हैं और उसी प्रकार तपस्वीगण भी लोभ और अहंकारयुक्त होकर कठोर तपस्या करते हैं॥ ९॥

हे राजन्! क्षत्रियगण रजोगुणसे युक्त होकर यज्ञ करते थे, वैसे ही ब्राह्मण भी थे। हे राजन्! कोई भी सत्त्वगुणसे युक्त नहीं था॥ १०॥

ऋषिने राजाको शाप दिया और तब राजाने भी मुनिको शाप दे दिया। इस प्रकार दैववशात् दोनोंको बहुत दुःख प्राप्त हुआ॥ ११॥

हे राजन्! इस त्रिगुणात्मक जगत्में प्राणियोंके लिये द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और उज्ज्वल मनःशुद्धि दुर्लभ है॥ १२॥

पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित्।
यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात्॥ १३

महान्तोऽपि न मुच्यन्ते हरिब्रह्महरादयः।
पामरा अपि मुच्यन्ते यथा सत्यव्रतादयः॥ १४

तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये।
तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम्॥ १५

तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च।
रागदम्भादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत्॥ १६

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो निमिर्नाम नराधिपः।
रूपवान् गुणसम्पन्नो धर्मज्ञो लोकरञ्जकः॥ १७

सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः।
द्वादशस्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः॥ १८

पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ।
जयन्तपुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः॥ १९

बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना यजेयमिति राजसी।
यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च॥ २०

इक्ष्वाकुं पितरं पृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिवः।
कारयामास सम्भारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः॥ २१

भृगुमङ्गिरसं चैव वामदेवं च गौतमम्।
वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम्॥ २२

मुनीनामन्त्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान्।
यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान्वेदवित्तमान्॥ २३

राजा सम्भृतसम्भारः सम्पूज्य गुरुमात्मनः।
वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः॥ २४

यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे।
गुरुस्त्वं सर्ववेत्तासि कार्यं मे कुरु साम्प्रतम्॥ २५

यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम्।
पञ्चवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे॥ २६

यह पराशक्तिका ही प्रभाव है और कोई कभी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। जिसपर वे भगवती कृपा करना चाहती हैं, उसे तत्काल मुक्त कर देती हैं॥ १३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि महान् देवता भी मुक्त नहीं हो पाते, किंतु सत्यव्रत आदि जैसे अधम भी मुक्त हो जाते हैं॥ १४॥

यद्यपि तीनों लोकोंमें भगवतीके रहस्यको कोई नहीं जानता है, फिर भी वे भक्तके वशमें हो जाती हैं—ऐसा निश्चित है॥ १५॥

अतः दोषोंके निर्मूलनके लिये उनकी भक्ति करनी चाहिये। यदि वह भक्ति राग, दम्भ आदिसे युक्त हो तो वह नाश करनेवाली होती है॥ १६॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न निमि नामके एक राजा थे। वे रूपवान्, गुणवान्, धर्मज्ञ, प्रजावत्सल सत्यवादी, दानशील, यज्ञ-कर्ता, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे। वे बुद्धिमान् और प्रजापालक राजा निमि इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र थे॥ १७-१८॥

उन्होंने ब्राह्मणोंके हितके लिये गौतममुनिके आश्रमके समीप जयन्तपुर नामका एक नगर बसाया॥ १९॥

उनके मनमें एक बार यह राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि बहुत समयतक चलनेवाले और विपुल दक्षिणावाले यज्ञके द्वारा आराधना करूँ॥ २०॥

तब राजाने यज्ञकार्यके लिये अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार समस्त यज्ञीय सामग्री एकत्र करायी॥ २१॥

इसके बाद राजाने भृगु, अंगिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु—इन सर्वज्ञ, वेदमें पारंगत, यज्ञविद्याओंमें कुशल एवं वेदज्ञ मुनियों और तपस्वियोंको आमन्त्रित किया॥ २२-२३॥

समस्त सामग्री एकत्र कर धर्मज्ञ राजाने अपने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके विनयसे युक्त होकर उनसे कहा—॥ २४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। अतः यज्ञ करानेकी कृपा करें। हे कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं और मेरे गुरु हैं; इस समय आप मेरा कार्य सम्पन्न कीजिये॥ २५॥

मैंने समस्त यज्ञीय सामग्री मँगवा ली है और उसका संस्कार भी करा लिया है। मेरा विचार है कि मैं पाँच हजार वर्षके लिये यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर लूँ॥ २६॥

यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदम्बिका।
तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम्॥ २७

तच्छ्रुत्वासौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम्।
इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम॥ २८

पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः।
स दीक्षां गमितो देवः पञ्चवर्षशतात्मिकाम्॥ २९

तस्मात्त्वमन्तरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव।
इन्द्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः॥ ३०

आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय।

राजोवाच

मया निमन्त्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात्॥ ३१

सम्भाराः सम्भृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो।
इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः॥ ३२

कथं त्यक्त्वाद्य मे कार्यमुद्यतो गन्तुमाशु वै।
न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम॥ ३३

गन्तासि धनलोभेन लोभाकुलितचेतनः।
निवारितोऽपि राज्ञा स जगामेन्द्रमखं गुरुः॥ ३४

राजापि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत्।
इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः॥ ३५

दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि।
निमिना पञ्चसाहस्त्री दीक्षा तत्र कृता नृप॥ ३६

ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युताः।
शक्रयज्ञसमाप्ते तु पञ्चवर्षशतात्मके॥ ३७

आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया।
आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च॥ ३८

तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयापहृतो भृशम्।
नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः॥ ३९

वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भूतोऽवमानतः।
अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः॥ ४०

जिस यज्ञमें भगवती जगदम्बाकी आराधना होती हो, उस यज्ञको मैं उनकी प्रसन्नताके लिये विधिपूर्वक करना चाहता हूँ॥ २७॥

निमिकी वह बात सुनकर वसिष्ठजीने राजासे कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं इन्द्रके द्वारा यज्ञके लिये पहले ही वरण कर लिया गया हूँ। इन्द्र पराशक्तिके प्रीत्यर्थ यज्ञ करनेके लिये तत्पर हैं और देवेन्द्रने पाँच सौ वर्षतक चलनेवाले यज्ञकी दीक्षा ले ली है। अतः हे राजन्! तबतक आप यज्ञ-सामग्रियोंकी रक्षा करें, इन्द्रके यज्ञके पूर्ण हो जानेपर उन देवराजका कार्य सम्पन्न करके मैं आ जाऊँगा। हे राजन्! तबतक आप समयकी प्रतीक्षा करें॥ २८—३०½॥

राजा बोले—हे गुरुदेव! मैंने यज्ञके लिये दूसरे बहुत-से मुनियोंको निमन्त्रित कर दिया है तथा समस्त यज्ञीय सामग्रियाँ भी एकत्र कर ली हैं, मैं इन सबको [इतने समयतक] कैसे सुरक्षित रखूँगा? हे ब्रह्मन्! आप इक्ष्वाकुवंशके वेदवेत्ता गुरु हैं, आज मेरा कार्य छोड़कर आप अन्यत्र जानेके लिये क्यों उद्यत हैं? हे द्विजश्रेष्ठ! यह आपके लिये उचित नहीं है जो कि लोभसे व्याकुलचित्तवाले आप मेरा यज्ञ छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं॥ ३१—३३½॥

राजाके इस प्रकार रोकनेपर भी वे गुरु वसिष्ठ इन्द्रके यज्ञमें चले गये। राजाने भी उदास होकर [अपना आचार्य बनाकर] गौतमऋषिका पूजन किया। उन्होंने हिमालयके पार्श्वभागमें समुद्रके निकट यज्ञ किया और उस यज्ञकर्ममें ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। हे राजन्! निमिने उस पाँच हजार वर्षवाले यज्ञकी दीक्षा ली और ऋत्विजोंको उनके इच्छानुसार धन और गौएँ प्रदान करके उनकी पूजा की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए॥ ३४—३६½॥

इन्द्रके पाँच सौ वर्षवाले यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजी राजाके यज्ञको देखनेकी इच्छासे आये और आकरके राजाके दर्शनके लिये वहाँ रुके रहे॥ ३७-३८॥

उस समय राजा निमि सोये हुए थे और उन्हें गहरी नींद आ गयी थी। सेवकोंने उन्हें नहीं जगाया, जिससे वे राजा मुनिके पास न आ सके। तब अपमानके कारण वसिष्ठजीको क्रोध आ गया। मिलनेके लिये निमिके न आनेसे मुनिश्रेष्ठ कुपित हो उठे। क्रोधके वशीभूत हुए

शापं च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः।
यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वान्यं गुरुमात्मनः॥ ४१

दीक्षितोऽसि बलान्मन्द मामवज्ञाय पार्थिव।
वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि॥ ४२

पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते।

व्यास उवाच

इति तद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः॥ ४३

सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम्।
कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः॥ ४४

उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत्।
मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाकुलः॥ ४५

हित्वा मां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम्।
न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम्॥ ४६

सन्तोषे ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम्।
पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षाद्वेदवेदाङ्गवित्तमः॥ ४७

न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम्।
आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि॥ ४८

त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चण्डालादधिको यतः।
वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः प्रपातितः॥ ४९

तवापि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः।
एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा॥ ५०

परस्परं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ बभूवतुः।
वसिष्ठस्त्वतिचिन्तार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः॥ ५१

निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत्।

वसिष्ठ उवाच

राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै॥ ५२

किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम्।
अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद साम्प्रतम्॥ ५३

उन मुनिने राजाको शाप दे दिया—'हे मूर्ख पार्थिव! मेरे द्वारा मना किये जानेपर भी तुम मुझ गुरुका त्याग करके दूसरेको अपना गुरु बनाकर शक्तिके अभिमानमें मेरी अवहेलना करके यज्ञमें दीक्षित हो गये हो, उससे तुम विदेह हो जाओगे। हे राजन्! तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय और तुम विदेह हो जाओ'॥ ३९—४२½॥

व्यासजी बोले—उनका यह शापवचन सुनकर राजाके सेवकोंने शीघ्रतासे जाकर राजाको जगाया और उन्हें बताया कि मुनि वसिष्ठ बहुत क्रोधित हो गये हैं, तब उन कुपित मुनिके पास आकर निष्पाप राजाने मधुर शब्दोंमें युक्तिपूर्ण तथा सारगर्भित वचन कहा—॥ ४३-४४½॥

हे धर्मज्ञ! इसमें मेरा दोष नहीं है, आप ही लोभके वशीभूत होकर मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर भी मुझ यजमानको छोड़कर चले गये। हे विप्रवर! हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! ब्राह्मणको सदा सन्तोष रखना चाहिये—धर्मके इस सिद्धान्तको जानते हुए भी ऐसा निन्दित कर्म करके आपको लज्जा नहीं आ रही है। आप तो साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र और वेद-वेदांगोंके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं तो भी आप ब्राह्मणधर्मकी अत्यन्त कठिन और सूक्ष्म गतिको नहीं जानते। अपना दोष मुझमें आरोपित करके आप मुझे व्यर्थ ही शाप देना चाहते हैं। सज्जनोंको चाहिये कि क्रोधका त्याग कर दें; क्योंकि यह चण्डालसे भी अधिक दूषित है; क्रोधके वशीभूत होकर आपने मुझे व्यर्थ ही शाप दे दिया है। अतः आपकी भी यह क्रोधयुक्त देह आज ही नष्ट हो जाय॥ ४५—४९½॥

इस प्रकार राजाके द्वारा मुनि और मुनिके द्वारा राजा शापित हो गये और दोनों एक-दूसरेसे शाप पाकर बहुत दुःखी हुए। तब वसिष्ठजी अत्यधिक चिन्तातुर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्होंने राजाके द्वारा प्रदत्त कठिन शापके विषयमें उनसे निवेदन किया॥ ५०-५१½॥

वसिष्ठजी बोले—हे पिताजी! राजा निमिने मुझे शाप दे दिया है कि तुम्हारा यह शरीर आज ही नष्ट हो जाय। अतः शरीर नष्ट होनेसे प्राप्त कष्टके लिये मैं क्या करूँ? इस समय आप मुझे यह बतायें कि दूसरे शरीरकी प्राप्तिमें मेरे पिता कौन होंगे? हे पिताजी! दूसरे देहसे सम्बन्ध होनेपर भी मेरी स्थिति

तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम्।
यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः॥ ५४

समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि।
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच तं सुतम्॥ ५५

मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव।
तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः॥ ५६

पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि।
भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः॥ ५७

एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम्॥ ५८

विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोः किल।
जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम्॥ ५९

कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता वरुणालयम्।
यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता॥ ६०

दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम्।
जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप॥ ६१

विवशौ चारुसर्वाङ्गीं देवकन्यां मनोरमाम्।
आवां त्वमनवद्याङ्गि वरयस्व समाकुलौ॥ ६२

विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि।
तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थितावशा॥ ६३

कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे।
सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना॥ ६४

तयोस्तु पतितं वीर्यं कुम्भे दैवादनावृते।
तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ॥ ६५

अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चापरस्तथा।
मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ॥ ६६

प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः।
इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम्॥ ६७

पूर्ववत् ही रहे। इस शरीरमें जैसा ज्ञान है, वैसा ही उस शरीरमें भी रहे। हे महाराज! आप समर्थ हैं; मुझपर कृपा करने योग्य हैं॥ ५२—५४$\frac{१}{२}$॥

वसिष्ठकी बात सुनकर ब्रह्माजी अपने उस पुत्रसे बोले—तुम मित्रावरुणके तेज हो, अतः इन्हींमें प्रवेश करके स्थिर हो जाओ। कुछ समय बाद तुम उन्हींसे अयोनिज पुत्रके रूपमें प्रकट होओगे; इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार पुनः शरीर प्राप्त करके तुम धर्मनिष्ठ, प्राणियोंके सुहृद्, वेदवेत्ता, सर्वज्ञ और सबके द्वारा पूजित होओगे॥ ५५—५७॥

पिताके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी प्रसन्नतापूर्वक पितामह ब्रह्माजीकी परिक्रमा करके और उन्हें प्रणाम करके वरुणके वासस्थानको चले गये। वसिष्ठजीने अपने उत्तम देहका त्याग करके मित्र और वरुणके शरीरमें जीवांशरूपसे प्रवेश किया॥ ५८-५९॥

हे राजन्! किसी समय परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके स्थानपर आयी॥ ६०॥

हे राजन्! उस रूपयौवनसे सम्पन्न दिव्य अप्सराको देखकर वे दोनों देवता कामातुर हो गये और समस्त सुन्दर अंगोंवाली उस मनोरम देवकन्यासे कहने लगे—हे प्रशस्त अंगोंवाली! विवश तथा व्याकुल हम दोनोंका तुम वरण कर लो और हे वरवर्णिनि! तुम अपनी इच्छाके अनुसार इस स्थानपर विहार करो। उनके इस प्रकार कहनेपर वह देवी उर्वशी मन स्थिर करके मित्रावरुणके घरमें उन दोनोंके साथ विवश होकर रहने लगी। प्रिय दर्शनवाली वह अप्सरा उन दोनोंके भावोंको समझकर वहीं रहने लगी॥ ६१—६४॥

दैववशात् वहाँ रखे हुए एक आवरणरहित कुम्भमें दोनोंका वीर्य स्खलित हो गया; और हे राजन्! उसमेंसे दो अत्यन्त सुन्दर मुनिकुमारोंने जन्म लिया। उनमें पहले अगस्ति थे और दूसरे वसिष्ठ थे। इस प्रकार मित्र और वरुणके तेजसे वे दोनों ऋषिश्रेष्ठ तपस्वी प्रकट हुए॥ ६५-६६॥

महातपस्वी अगस्ति बाल्यावस्थामें ही वन चले गये और महाराज इक्ष्वाकुने अपने पुरोहितके रूपमें दूसरे बालक वसिष्ठका वरण कर लिया॥ ६७॥

वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव।
विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह॥ ६८

एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम्।
शापाद्देहान्तरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले॥ ६९

हे राजन्! आपका यह वंश सुखी रहे, इसलिये राजा इक्ष्वाकुने वसिष्ठका पालन-पोषण किया और विशेषरूपसे इन्हें मुनि जानकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ६८॥

इस प्रकार शापके कारण मित्रावरुणके कुलमें वसिष्ठजीके अन्य शरीरकी प्राप्तिका समस्त आख्यान मैंने आपको बता दिया॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे वसिष्ठस्य मैत्रावरुणिरितिनामवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~~O~~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भगवतीकी कृपासे निमिको मनुष्योंके नेत्र-पलकोंमें वासस्थान मिलना तथा संसारी प्राणियोंकी त्रिगुणात्मकताका वर्णन

जनमेजय उवाच

देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल।
निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद॥ १

व्यास उवाच

वसिष्ठेन च सम्प्राप्तः पुनर्देहो नराधिप।
निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनन्तरम्॥ २

यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाः क्रतौ।
ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिन्तयन्॥ ३

किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः।
अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः॥ ४

किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल।
अवश्यम्भाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे॥ ५

मन्त्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः।
रक्षितं धारयामासुः किञ्चिच्छ्वसनसंयुतम्॥ ६

गन्धैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः।
मन्त्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपूजितम्॥ ७

समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः।
ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप॥ ८

जनमेजय बोले—आपने वसिष्ठकी शरीर-प्राप्तिका वर्णन किया; निमिने पुनः किस प्रकार देह प्राप्त की; यह मुझसे कहिये॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वसिष्ठने जिस प्रकार पुनः शरीर प्राप्त किया, उस प्रकार निमिको शापके बाद पुनः देह नहीं मिली॥ २॥

जब वसिष्ठजीने शाप दिया तो राजाके द्वारा यज्ञमें वरण किये गये ब्राह्मण और ऋत्विज् विचार करने लगे—॥ ३॥

अहो, यज्ञमें दीक्षित ये धर्मनिष्ठ राजा शापसे दग्ध हो गये हैं और यज्ञ भी अपूर्ण ही रह गया है—ऐसेमें हम सबको क्या करना चाहिये? अब हम क्या करें? यह तो विपरीत कार्य हो गया। भवितव्यताके अवश्य होनेके कारण इसका निवारण करनेमें हम असमर्थ हैं॥ ४-५॥

तब उन महात्मा राजाकी देहको ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मन्त्रोंसे सुरक्षित रखा; उनकी श्वास मन्द गतिसे चल रही थी। मन्त्रशक्तिसे उनकी निर्विकार आत्माको देहमें प्रतिष्ठित करके ऋत्विजोंने उसे अनेक प्रकारके गन्ध, माल्य आदिसे सुपूजित कर रखा था॥ ६-७॥

यज्ञके सम्पूर्ण होनेपर वहाँ सभी देवगण आये। हे राजन्! ऋत्विजोंने उन सबकी स्तुति की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। मुनियोंके द्वारा राजाके विषयमें समस्त बातोंको जान लेनेपर स्तोत्रोंसे सन्तुष्ट देवताओंने
~~~

विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन्।
प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत॥ ९

यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते।
देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ १०

दृप्तः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम्।
एवमुक्तो निमेरात्मा सन्तुष्टस्तानुवाच ह॥ ११

न देहे मम वाञ्छास्ति सर्वदैव विनश्वरे।
वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टावस्तु सुरोत्तमाः॥ १२

नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम्।
एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन्॥ १३

प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम्।
मखेनानेन सन्तुष्टा सा तेऽभीष्टं विधास्यति॥ १४

स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १५

प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम्॥ १६

दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि।
प्रसन्नायां देवतायां राजा वव्रे वरं नृप॥ १७

ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि।
नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति॥ १८

ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदम्बिका।
ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः॥ १९

नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति।
निमिषं यान्ति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम्॥ २०

तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा।
पतङ्गाश्च भविष्यन्ति पुनश्चानिमिषाः सुराः॥ २१

इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता।
आमन्त्र्य च मुनीन्सर्वांस्तत्रैवान्तर्हिताभवत्॥ २२

दुःखी मनवाले राजासे कहा—हे राजन्! हे सुव्रत! हम प्रसन्न हैं; वर माँगिये। हे राजर्षे! इस यज्ञके कारण आपको श्रेष्ठ जन्म प्राप्त हो सकता है। देवशरीर, मनुष्यशरीर अथवा आपके मनमें जो इच्छा हो, उसे आप प्राप्त कर सकते हैं; जैसे कि आपके पुरोहित वसिष्ठ गर्वयुक्त होकर मर्त्यलोकमें सुखपूर्वक रह रहे हैं॥ ८—१०½॥

उनके ऐसा कहनेपर निमिकी आत्माने परम सन्तुष्ट होकर उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! सर्वदा विनष्ट होनेवाली इस देहमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी दृष्टिमें मेरा निवास हो, जिससे मैं वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरण करूँ॥ ११-१२½॥

उनसे ऐसा कहे जानेपर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा—हे महाराज! आप कल्याणकारिणी तथा सबकी ईश्वरी भगवतीकी आराधना करें। आपके इस यज्ञसे प्रसन्न होकर वे आपका अभीष्ट अवश्य पूर्ण करेंगी॥ १३-१४॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर उन्होंने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीकी प्रार्थना की॥ १५॥

तब प्रसन्न होकर देवीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। उनके करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान तथा लावण्यसे दीप्तिमान रूपको देखकर सभी कृतकृत्य हो गये और उनके मनमें परम प्रसन्नता हुई। हे राजन्! देवीके प्रसन्न हो जानेपर राजाने वर माँगा—मुझे वह विमल ज्ञान दीजिये, जिससे मोक्ष प्राप्त हो जाय तथा समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मेरा निवास हो जाय॥ १६—१८॥

तब प्रसन्न हुई देवेश्वरी जगदम्बाने कहा—तुम्हें विमल ज्ञान प्राप्त होगा, परंतु अभी तुम्हारा प्रारब्ध शेष है। समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हारा निवास भी होगा। तुम्हारे कारण ही प्राणियोंके नेत्रोंमें पलक गिरानेकी शक्ति होगी। तुम्हारे निवासके कारण ही मनुष्य, पशु तथा पक्षी 'निमिष' (पलक गिरानेवाले) तथा देवता 'अनिमिष' (पलक न गिरानेवाले) होंगे॥ १९—२१॥

इस प्रकार उन राजाको वर देकर और सब मुनियोंको बुलाकर वे श्रीवरदायिनी भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

अन्तर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः।
विचिन्त्य विधिवत्सर्वे निमेर्देहं समाहरन्॥ २३
अरणिं तत्र संस्थाप्य ममन्थुर्मन्त्रवत्तदा।
मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ॥ २४
अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा।
सर्वलक्षणसम्पन्नः साक्षान्निमिरिवापरः॥ २५
अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः।
येनायं जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत्॥ २६
विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये।
समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः॥ २७
एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत्।
नगरी निर्मिता तेन गङ्गातीरे मनोहरा॥ २८
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता।
धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता॥ २९
वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा।
विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः॥ ३०
एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम्।
शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया॥ ३१

राजोवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम्।
श्रुत्वा सन्देहमापन्नं मनो मेऽतीव चञ्चलम्॥ ३२
वसिष्ठो ब्राह्मणः श्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः।
पुत्रः पङ्कजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः॥ ३३
गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा।
यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः॥ ३४
ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसम्भवः।
क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम्॥ ३५

व्यास उवाच

क्षमातिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः।
क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः॥ ३६

देवीके अन्तर्धान हो जानेपर वहाँ उपस्थित मुनिगण विधिवत् विचार करके निमिके शरीरको ले आये और पुत्रप्राप्तिके लिये उसपर अरणिकाष्ठ रखकर वे महात्मा मन्त्र पढ़कर मन्त्रहोमके द्वारा निमिके देहका मन्थन करने लगे॥ २३-२४॥

तब अरणिके मन्थनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न और साक्षात् दूसरे निमिकी भाँति था। अरणिके मन्थनसे इसका जन्म हुआ था, अतः यह 'मिथि'—ऐसा कहा गया और जनकसे जन्म होनेके कारण 'जनक' यह नामवाला हुआ। राजा निमि विदेह हुए, अतः उनके कुलमें उत्पन्न सभी राजा 'विदेह' ऐसा कहे गये॥ २५—२७॥

इस प्रकार निमिके पुत्र राजा जनक प्रसिद्ध हुए। उन्होंने गंगाके तटपर एक सुन्दर नगरीका निर्माण कराया, जो मिथिला नामसे विख्यात है। यह गोपुरों, अट्टालिकाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न और बाजारोंसे सुशोभित है॥ २८-२९॥

इस वंशमें जो अन्य राजा हुए, वे सभी जनक कहे गये; वे सभी विख्यात ज्ञानी और विदेह कहे जाते थे॥ ३०॥

हे राजन्! इस प्रकार निमिकी उत्तम कथाका मैंने आपसे वर्णन किया, शापके कारण उनके विदेह होनेको भी मैंने विस्तारसे कह दिया॥ ३१॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने निमिके शापका कारण बताया, इसे सुनकर मेरा मन संशयग्रस्त और अत्यन्त चंचल हो गया है॥ ३२॥

वसिष्ठजी श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, राजाके पुरोहित थे और वे कमलयोनि ब्रह्माजीके पुत्र थे, तब राजा निमिने उन मुनिको कैसे शाप दिया? निमिने उन्हें गुरु और ब्राह्मण जानकर क्षमा क्यों नहीं किया। यज्ञ-जैसा शुभ कार्य करनेपर भी उन्हें क्रोध कैसे आ गया? धर्मका रहस्य जान करके भी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजाने क्रोधके वशीभूत होकर अपने ब्राह्मण गुरुको शाप क्यों दिया?॥ ३३—३५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय प्राणियोंके लिये क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषरूपसे सामर्थ्यशाली व्यक्तिका क्षमाशील होना इस संसारमें दुर्लभ है॥ ३६॥

सर्वसङ्गपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः।
निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः॥ ३७

कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहङ्कारश्चतुर्थकः।
दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा॥ ३८

न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना।
भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्॥ ३९

न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे।
कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्॥ ४०

मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथान्ये तापसोत्तमाः।
तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि॥ ४१

कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः।
तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धाः सगरात्मजाः॥ ४२

तस्माद्राजन्नहङ्कारात्सञ्जातं भुवनत्रयम्।
कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत्॥ ४३

ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चैवाथ शङ्करः।
प्रभवन्ति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक्॥ ४४

मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकान्तव्यवस्थितौ।
गुणानां सङ्करो राजन्सर्वत्र समवस्थितः॥ ४५

कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल।
कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन॥ ४६

निर्गुणः परमात्मासौ निर्लेपः परमोऽव्ययः।
अलक्ष्यः सर्वसत्त्वानामप्रमेयः सनातनः॥ ४७

तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता।
दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः॥ ४८

परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः॥ ४९

तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः।
यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके॥ ५०

मुनिको चाहिये कि वह सभी आसक्तियोंका परित्याग करनेवाला, तपस्वी, निद्रा तथा भूखपर विजय प्राप्त करनेवाला और योगाभ्यासमें सम्यक् रूपसे निष्ठा रखनेवाला हो॥ ३७॥

काम, क्रोध, लोभ और चौथा अहंकार—ये शत्रु शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं जो सर्वथा दुर्ज्ञेय होते हैं। संसारमें न पहले कोई व्यक्ति हुआ है, न इस समय है और न तो आगे होगा जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ३८-३९॥

न स्वर्गमें, न पृथ्वीलोकमें, न ब्रह्मलोकमें, न विष्णुलोकमें और न तो कैलासमें भी ऐसा कोई व्यक्ति है, जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ४०॥

जो मुनिगण, ब्रह्माजीके सभी पुत्र तथा अन्य श्रेष्ठ तपस्वीलोग हैं, वे भी तीनों गुणोंसे बँधे रहते हैं, तो मर्त्यलोकके मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ ४१॥

कपिलमुनि सांख्यशास्त्रके ज्ञाता, योगाभ्यास-परायण और शुद्ध चित्तवाले थे, किंतु उन्होंने भी दैववश सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया॥ ४२॥

अतः हे राजन्! कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही यह त्रिलोक उत्पन्न हुआ है, तो फिर मनुष्य उससे वियुक्त कैसे रह सकता है?॥ ४३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी त्रिगुणसे बँधे हुए हैं; उनके भी शरीरोंमें गुणोंके पृथक्-पृथक् भाव उत्पन्न होते हैं। जब एकमात्र सत्त्वप्रधान देवताओंकी भी यह स्थिति है तो फिर मनुष्योंकी क्या बात? हे राजन्! गुणोंका संकर (मेल) सर्वत्र विद्यमान है। कभी सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, कभी रजोगुणकी वृद्धि होती है, कभी तमोगुणकी वृद्धि हो जाती है और कभी तीनों गुण बराबर हो जाते हैं॥ ४४—४६॥

वे परमात्मा निर्गुण, निर्लेप, परम अविनाशी, सभी प्राणियोंसे अलक्ष्य, अप्रमेय और सनातन हैं। उसी प्रकार वे परमा शक्ति भी निर्गुण, ब्रह्ममें स्थित, अल्पबुद्धि प्राणियोंके द्वारा दुर्ज्ञेय, समस्त प्राणियोंकी आश्रय हैं। परमात्मा और पराशक्ति—उन दोनोंमें सदासे ऐक्य है। उनका स्वरूप अभिन्न है—यह जानकर प्राणी समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। इस ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है—यह वेदान्तका डिंडिमघोष है। जो यह जान लेता है, वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ४७—५०॥

ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम्।
वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद् बुद्धियोगतः॥ ५१

विकल्पास्तत्र बहवो भवन्ति मतिकल्पिताः।
(कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः परे।
वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद् बुद्धिभ्रंशता।
बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः।)
अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद्दुर्लभं नृप॥ ५२

तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः सङ्गो यदा भवेत्।
शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत॥ ५३

तस्मान्नानुभवज्ञानं सम्भवत्यतिमानुषम्।
अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः॥ ५४

यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया।
तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये॥ ५५

आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्।
शीलं परहितत्वं च कोपाभावः क्षमा धृतिः॥ ५६

सन्तोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम्।
विद्यया तपसा वापि योगाभ्यासेन भूपते॥ ५७

विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन।
(मनस्तु चञ्चलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम्।
तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये।)
कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजाः परिकीर्तिताः॥ ५८

ते तदा न भवन्त्येव यदा वै निर्जितं मनः।
तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ॥ ५९

यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि।
भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः॥ ६०

न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान्।
कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः॥ ६१

स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते।
हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान्॥ ६२

ज्ञान भी दो प्रकारका कहा गया है। प्रथम शाब्दिक ज्ञान बताया गया है। वह ज्ञान बुद्धिकी सहायतासे वेद और शास्त्रके अर्थविज्ञानद्वारा प्राप्त हो जाता है। बुद्धिवैभिन्न्यके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुत-से भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे कुछ ज्ञान कुतर्कसे और कुछ सुतर्कसे कल्पित होते हैं। कुतर्कोंसे भ्रान्तिकी उत्पत्ति होती है और विभ्रमसे बुद्धिनाश हो जाता है। बुद्धिनाशसे प्राणियोंका ज्ञान नष्ट हो जाना कहा गया है।) हे राजन्! अनुभव नामक वह दूसरा ज्ञान तो दुर्लभ होता है। वह ज्ञान तब प्राप्त होता है, जब उसके जाननेवालेका संग हो जाय। हे भारत! शब्दज्ञानसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये अनुभवज्ञान अत्यन्त अलौकिक होता है। शब्दज्ञान अन्तःकरणके अन्धकारको दूर करनेमें उसी प्रकार समर्थ नहीं है जैसे दीपकसम्बन्धी वार्ता करनेसे अन्धकार नष्ट नहीं होता॥ ५१—५४½॥

कर्म वही है, जो बन्धन न करे और विद्या वही है जो मुक्तिके लिये हो। अन्य कर्म तो मात्र परिश्रमके लिये होता है तथा दूसरी विद्या तो मात्र शिल्पसम्बन्धी कौशल है। शील, परोपकार, क्रोधका अभाव, क्षमा, धैर्य और सन्तोष—यह सब विद्याका अत्यन्त उत्तम फल है। हे भूपते! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना काम आदि शत्रुओंका नाश कभी नहीं हो सकता। (हे राजन्! मन चंचल और स्वभावतः अति दुर्ग्रह होता है, तीनों लोकोंमें तीनों प्रकारके प्राणी उसी मनके वशमें रहते हैं) काम-क्रोध आदि भाव चित्तजन्य कहे गये हैं। ये सब उस समय नहीं उत्पन्न होते, जब मनपर विजय पा ली जाती है। हे राजन्! इसीलिये निमिने मुनिको उस प्रकार क्षमा नहीं किया, जिस प्रकार ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको क्षमा कर दिया था। पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्यने नृपश्रेष्ठ ययातिको शाप दे दिया था, लेकिन राजाने क्रोधित होकर मुनिको शाप नहीं दिया और स्वयं वृद्धावस्थाको स्वीकार कर लिया था॥ ५५—६०½॥

हे राजन्! कोई राजा शान्तस्वभाव और कोई क्रूर होता है। स्वभावमें भेद होनेके कारण इसमें किसका दोष कहा जाय? पूर्वकालमें हैहयवंशी क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याजनित पापकी उपेक्षा करके धनके

ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः क्रोधमूर्च्छिताः।
पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम्॥ ६३

लोभसे भृगुवंशी ब्राह्मण पुरोहितोंका कोपाविष्ट होकर समूलोच्छेद कर दिया था॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
देवीमहिम्नि नानाभाववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~~

अथ षोडशोऽध्यायः

हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार

जनमेजय उवाच

कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ते।
ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये॥ १

वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह।
निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वन्ति सत्तमाः॥ २

वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत।
नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति॥ ३

अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः।
बाहुजा बलवन्तोऽपि पापभीताः कथं न ते॥ ४

स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्वाडवान्क्षत्रियर्षभः।
सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि॥ ५

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः।
उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा॥ ६

व्यास उवाच

शृणु पारिक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम्।
आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया॥ ७

कार्तवीर्येति नाम्नाभूद्धैहयः पृथिवीपतिः।
सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः॥ ८

दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव।
सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः॥ ९

जनमेजय बोले—जिन हैहय क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याकी लेशमात्र भी चिन्ता न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया, वे किसके कुलमें उत्पन्न हुए थे?॥ १॥

हे पितामह! उनके वैरका क्या कारण था, आप मुझे बतलाइये। श्रेष्ठजन किसी कारणविशेषके बिना क्रोध कैसे कर सकते हैं?॥ २॥

अपने ही पुरोहितोंके साथ उनकी शत्रुता किसलिये हो गयी थी? सम्भवतः उन क्षत्रियोंकी उस शत्रुताके पीछे कोई महान् कारण रहा होगा। अन्यथा पापसे भयभीत रहनेवाले वे पराक्रमी क्षत्रिय निरपराध एवं पूजनीय ब्राह्मणोंकी हत्या क्यों करते?॥ ३-४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कौन श्रेष्ठ क्षत्रिय होगा, जो अल्प अपराधके कारण ब्राह्मणोंका वध करेगा? मुझे तो इस विषयमें महान् शंका हो रही है, इसका कारण बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

सूतजी बोले—तब राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी परम प्रसन्न हुए और मनमें उस वृत्तान्तका स्मरण करके कहने लगे॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! मेरे द्वारा पूर्वकालमें सम्यक् प्रकारसे ज्ञात, क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस आश्चर्यजनक प्राचीन कथाको आप सुनिये?॥ ७॥

कार्तवीर्य नामक एक हैहयवंशीय राजा हो चुके हैं। सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन बलवान् राजाकी हजार भुजाएँ थीं, वे सहस्रार्जुन भी कहे जाते थे॥ ८॥

वे भगवान् विष्णुके अवतारस्वरूप, दत्तात्रेयके शिष्य, भगवतीके उपासक, परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ तथा भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे॥ ९॥
~~~

यज्वा परमधर्मिष्ठः सदा दानपरायणः।
ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः॥ १०

धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः।
हयरत्नसमृद्ध्याढ्याः सञ्जाताः प्रथिता भुवि॥ ११

स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः।
हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप॥ १२

धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन।
याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्ते हैहया नृप॥ १३

विनयं क्षत्रियाः कृत्वाप्ययाचन्त धनं बहु।
न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीतिवादिनः॥ १४

भूमौ च निदधुः केचिद् भृगवो धनमुत्तमम्।
ददुः केचिद् द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम्॥ १५

कृत्वा स्थानान्तरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः।
त्यक्त्वाश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयान्विताः॥ १६

याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः।
पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः॥ १७

ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात्।
भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः॥ १८

भृगूंस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वा गृहानथ।
चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम्॥ १९

खनताधिगतं वित्तं केनचिद् भृगुवेश्मनि।
ददृशुः क्षत्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः॥ २०

यत्र यत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महीतलात्।
तदा ते पार्श्वभागस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि॥ २१

वे यज्ञ करनेवाले, धर्मनिष्ठ तथा सदैव दान देनेमें रुचि रखनेवाले थे। उन्होंने अनेक यज्ञ करके अपनी विपुल सम्पदा भृगुवंशी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। राजाके द्वारा दिये गये दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी हो गये। घोड़े तथा रत्न आदि सम्पदासे युक्त हो जानेके कारण जगत्‌में वे अतीव प्रसिद्ध हो गये॥ १०-११॥

हे राजन्! नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यार्जुनके दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् उनके स्वर्ग चले जानेपर हैहयवंशी क्षत्रिय धनहीन हो गये॥ १२॥

हे राजन्! किसी समय हैहय क्षत्रियोंको कार्य-विशेषके लिये धनकी आवश्यकता पड़ गयी। तब वे धन माँगनेकी इच्छासे भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये॥ १३॥

उन क्षत्रियोंने अत्यधिक विनम्रतापूर्वक उन ब्राह्मणोंसे धनकी याचना की, किंतु लोभके वशीभूत उन ब्राह्मणोंने कुछ नहीं दिया और बार-बार कहते रहे—'मेरे पास नहीं है, मेरे पास नहीं है'॥ १४॥

हैहयवंशी क्षत्रियोंसे भयभीत होकर कुछ भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी और कुछने अन्य ब्राह्मणोंको दे दी॥ १५॥

भयाक्रान्त तथा लोभके वशीभूत वे सभी भृगुवंशी ब्राह्मण अपना-अपना धन स्थानान्तरित करके अपने आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये॥ १६॥

अपने यजमानोंको दुःखित देखकर भी लोभसे विमोहित ब्राह्मणोंने उन्हें कुछ भी नहीं दिया। उन सभीने भागकर पर्वतकी गुफाओंका आश्रय ग्रहण किया॥ १७॥

हे तात! तत्पश्चात् कष्ट झेल रहे अनेक हैहय क्षत्रियप्रमुख विशेष कार्यवश द्रव्यप्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे॥ १८॥

अपने-अपने आश्रमको सुनसान छोड़कर भृगुवंशी ब्राह्मणोंको बाहर गया हुआ देखकर वे हैहय क्षत्रिय धनके लिये वहाँकी जमीन खोदने लगे॥ १९॥

तत्पश्चात् किसी ब्राह्मणके घरमें जमीन खोद रहे किसी क्षत्रियने कुछ पाया। अब परिश्रमके कारण क्षीणकाय सभी क्षत्रियोंने उस धनको देख लिया। उस समयसे जहाँ-जहाँ भी पता चलता, वे जमीन खोदकर समस्त धन ले लेते थे। धनके लोभसे आस-पास रहनेवाले ब्राह्मणोंके भी घरोंको खोदनेपर उन

निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया।
ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः॥ २२

अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु।
निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्वाडवाञ्छरणागतान्॥ २३

ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः।
आगर्भादनुकृन्तन्तश्चेरुश्चैव महीमिमाम्॥ २४

प्राप्तान्प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः।
आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम्॥ २५

एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः।
हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम्॥ २६

रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्य इव दुःखिताः।
गर्भाश्च कृन्तिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः॥ २७

अन्येऽप्याहुश्च तान्दृप्तान्मुनयस्तीर्थवासिनः।
मुञ्चन्तु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम्॥ २८

अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम्।
यद् गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः॥ २९

अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात्।
तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ३०

तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान्।
भवन्तः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम्॥ ३१

एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम्।
वञ्चयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव॥ ३२

एते प्रतारका दम्भास्तादृशा बकवृत्तयः।
उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते॥ ३३

क्षत्रियोंको पर्याप्त धन दिखलायी पड़ा। इसपर सभी ब्राह्मण रोने-चिल्लाने लगे और भयभीत होकर क्षत्रियोंके शरणागत हो गये॥ २०—२२॥

बार-बार खोजते रहनेपर उन ब्राह्मणोंके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था। फिर भी वे क्षत्रिय उन शरणागत ब्राह्मणोंपर कोप करके बाणोंसे प्रहार करते रहे॥ २३॥

इसके पश्चात् वे उन पर्वतकी गुफाओंमें पहुँच गये, जहाँ भृगुवंशी ब्राह्मण स्थित थे। इस प्रकार गर्भस्थ शिशुओंसहित ब्राह्मणोंको नष्ट करते हुए क्षत्रिय इस पृथ्वीमण्डलपर घूमने लगे॥ २४॥

उन्हें जहाँ कहीं भृगुवंशी बालक, वृद्ध तथा अन्य भी मिल जाते थे, वे पापकी परवा किये बिना उन सभीको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालते थे॥ २५॥

इस प्रकार इधर-उधर सभी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके मार दिये जानेपर उन हैहय क्षत्रियोंने स्त्रियोंको पकड़-पकड़कर उनका गर्भ नष्ट कर डाला। पापकृत्यपर तुले हुए क्षत्रियोंके द्वारा जिन स्त्रियोंके गर्भ नष्ट कर दिये जाते थे, वे बेचारी अत्यन्त दुःखित होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं॥ २६-२७॥

तब अन्य तीर्थवासी मुनियोंने भी अभिमानमें चूर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंसे कहा—हे क्षत्रियो! तुमलोग ब्राह्मणोंपर ऐसा भयंकर क्रोध करना छोड़ दो। हे श्रेष्ठ क्षत्रियो! तुमलोगोंने तो अत्यन्त निन्दनीय तथा अनुचित कार्य आरम्भ कर दिया है जो कि तुमलोग भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका गर्भोच्छेद कर रहे हो। अत्यन्त उग्र पाप अथवा पुण्यका फल इसी लोकमें प्राप्त हो जाता है। इसलिये कल्याणकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको गर्हित कर्मका परित्याग कर देना चाहिये॥ २८—३०॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए उन हैहय क्षत्रियोंने उन परम दयालु मुनियोंसे कहा—आप सभी लोग साधु हैं, अतः पापकर्मोंका रहस्य नहीं जानते॥ ३१॥

छल-छद्मको जाननेवाले इन ब्राह्मणोंने कपट करके हमारे महात्मा पूर्वजोंका सारा धन उसी प्रकार छीन लिया था जैसे कोई लुटेरा किसी पथिकका धन छीन लेता है॥ ३२॥

ये सभी ठग, दम्भी तथा बकवृत्तिवाले (पाखण्डी) हैं। आवश्यक कार्य पड़नेपर हमने विनम्रतापूर्वक इनसे धनकी याचना की थी, किंतु इन्होंने नहीं दिया।

न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्यापि याचिताः।
नास्तीतिवादिनः स्तब्धाः दुःखितान्वीक्ष्य याज्यकान्॥ ३४

धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना।
न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः॥ ३५

न सञ्चितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन।
यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम्॥ ३६

द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः।
वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत्॥ ३७

येन केनाप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम्।
अथवासौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम्॥ ३८

पादवृद्ध्या तथास्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः।
तथापि लोभसन्दिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः॥ ३९

दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी।
दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल॥ ४०

न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः।
राज्ञासौ सर्वथा दण्ड्यो वञ्चको दुःखभाङ्नरः॥ ४१

तस्माद्वयं गुरूनेतान्वञ्चकान्ब्राह्मणाधमान्।
हन्तुं समुद्यताः सर्वे न क्रोधव्यं महात्मभिः॥ ४२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ।
विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदाराननेकशः॥ ४३

भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवन्तं धराधरम्।
प्रपेदिरे रुदन्त्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम्॥ ४४

एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनकामुकैः।
निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः॥ ४५

यहाँतक कि चतुर्थांशवृद्धिपर भी धन माँगनेपर हम याचकोंको अत्यन्त दुःखित देखकर इन निष्ठुर ब्राह्मणोंने 'हमारे पास नहीं है'—ऐसा कहा॥ ३३-३४॥

महाराज कार्तवीर्यसे धन प्राप्त करके इन्होंने किस प्रयोजनसे धनकी रक्षा की? इन्होंने न तो यज्ञ किये और न तो याचकोंको ही प्रचुर दान दिया॥ ३५॥

ब्राह्मणोंको कभी भी धनका संग्रह नहीं करना चाहिये। यज्ञ करने, दान देने तथा सुखोपभोगमें यथेच्छ धनका उपयोग करना चाहिये॥ ३६॥

हे विप्रो! पासमें धन रहनेपर चोर, राजा, अग्नि तथा धूर्तोंसे महान् भय कहा गया है॥ ३७॥

जिस किसी भी उपायसे अपनी ही रक्षा करनेवालेको धन छोड़ देता है अथवा वह व्यक्ति धन छोड़कर स्वयं मर जाता है और दुर्गतिको प्राप्त होता है॥ ३८॥

हम सबने बड़ी विनम्रताके साथ इन लोगोंसे चतुर्थांशवृद्धिपर धन माँगा था, फिर भी लोभके कारण संशयमें पड़े हुए पुरोहितोंने हमें धन नहीं दिया॥ ३९॥

दान, भोग तथा नाश—धनकी इस प्रकारकी गति होती है। पुण्यशाली प्राणियोंके धनकी गति दान तथा भोग है और दुष्ट आत्मावाले प्राणियोंके धनकी गति नाश है। जो कृपण व्यक्ति न दान करता है और न धनका उपभोग करता है, अपितु केवल धनके संग्रहमें लगा रहता है, वह वंचक प्राणी राजाके द्वारा सर्वथा दण्डनीय है और दुःखका भागी होता है॥ ४०-४१॥

इसीलिये इन वंचक गुरुओं तथा अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिये हम सभी उद्यत हुए हैं। आप महात्माजन इसके लिये हमपर कोप न करें॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सहेतुक वचन कहकर उन मुनियोंको पूर्ण आश्वस्त करनेके बाद वे पुनः भृगुकुलकी स्त्रियोंको खोजते हुए भ्रमण करने लगे॥ ४३॥

भयार्त तथा अत्यन्त कृश शरीरवाली भृगुवंशीय पत्नियाँ हिमवान् पर्वतपर रोती तथा काँपती हुई पहुचीं॥ ४४॥

इस प्रकार धनलोलुप तथा पापकर्मोंसे अभिभूत हैहयोंने उन ब्राह्मणोंको बहुत पीड़ित किया तथा उनका संहार किया॥ ४५॥

लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः।
सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः॥ ४६

सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः।
विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा॥ ४७

लोभात्त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि।
मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा॥ ४८

गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा।
लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः॥ ४९

क्रोधात्कामादहङ्काराल्लोभ एव महारिपुः।
प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम्॥ ५०

पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः सत्पथे स्थिताः।
पाण्डवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः॥ ५१

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः।
भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ॥ ५२

तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम्।
कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह॥ ५३

हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पाण्डवात्मजाः।
भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे॥ ५४

तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल।
हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः॥ ५५

लोभ मनुष्योंके देहमें रहनेवाला सबसे बड़ा शत्रु है। यह समस्त दुःखोंका आगार, दुःखदायी तथा प्राणोंका नाश करनेवाला कहा गया है॥ ४६॥

यह लोभ सम्पूर्ण पापोंकी जड़ तथा सभी दुःखोंका कारण है। लोभसे युक्त प्राणी सदा तीनों वर्णोंके लोगोंसे विरोध रखनेवाला होता है॥ ४७॥

लोभके वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुल-धर्मका भी परित्याग कर देते हैं। वे अपने माता, पिता, भाई, बान्धव, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहनतकका वध कर देते हैं। इस प्रकार लोभके वशीभूत मनुष्य पापसे विमोहित होकर कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर डालता॥ ४८-४९॥

क्रोध, काम तथा अहंकारसे भी बढ़कर लोभ महान् शत्रु है। लोभमें पड़कर मनुष्य अपने प्राणतक गँवा देता है; फिर इसके विषयमें और क्या कहा जाय!॥ ५०॥

हे महाराज! आपके पूर्वज धर्मज्ञ तथा सत्पथपर चलनेवाले थे, किंतु वे पाण्डव तथा कौरव लोभके कारण ही मारे गये। जहाँ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, बाह्लीक, भीमसेन, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण थे, फिर भी लोभके वशीभूत उन्होंने आपसमें भीषण युद्ध किया और अपने कुटुम्बका महाविनाश कर डाला। उस युद्धमें द्रोण, भीष्म, पाण्डवोंके पुत्र, भाई, पिता, पुत्र सभी मारे गये॥ ५१—५४॥

अतएव लोभपरायण मनुष्य क्या नहीं कर डालता? [लोभके कारण ही] पापबुद्धि हैहयवंशी क्षत्रियोंने भृगुकुलके समस्त ब्राह्मणोंको मार डाला था॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयैर्धनाहरणेन सह भृगूणां वधवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवतीकी कृपासे भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति, हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिकी कथा

जनमेजय उवाच

कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात्।
मुक्ता वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत्॥ १

हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि।
क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत्॥ २

जनमेजय बोले—भृगुवंशकी स्त्रियोंका पुनः दुःखरूप समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ और उन ब्राह्मणोंकी वंशपरम्परा किस प्रकार स्थिर रही?॥ १॥

लोभके वशीभूत तथा पापाचारी हैहय क्षत्रियोंने उन ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् कौन-सा कार्य किया? उसे आप बताइये॥ २॥

न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन् पिबतस्ते कथामृतम्।
पावनं सुखदं नृणां परलोके फलप्रदम्॥ ३

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात्॥ ४

भृगुपत्न्यो यदा राजन् हिमवन्तं गिरिं गताः।
भयत्रस्ता विभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम्॥ ५

गौरीं तत्र तु संस्थाप्य मृण्मयीं सरितस्तटे।
उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति॥ ६

स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ताः प्रमदोत्तमाः।
युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान्॥ ७

मदंशशक्तिसम्भिन्नः स वः कार्यं विधास्यति।
इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादन्तर्हिताभवत्॥ ८

जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वराङ्गनाः।
काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम्॥ ९

दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये।
पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा॥ १०

विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम्।
गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा॥ ११

इति ब्रुवन्तः सम्प्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः।
सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान्॥ १२

गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा।
रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां प्राणविवर्जिताम्॥ १३

निराधारां क्रन्दमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम्।
गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं यथा॥ १४

साश्रुनेत्रां वेपमानां सङ्क्रुध्य बालकस्तदा।
भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः॥ १५
मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः।

हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा कथित इस पवित्र, लोगोंके लिये सुखदायक तथा परलोकमें फल देनेवाले कथामृतका पान करते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, वे स्त्रियाँ उस भयावह दुःखसे जिस प्रकार मुक्त हुईं, अब मैं उस पापनाशिनी कथाका वर्णन करूँगा॥ ४॥

हे राजन्! जब क्षत्रिय हैहय भृगुकुलकी नारियोंको बहुत पीड़ित करने लगे तब वे भयभीत तथा निराश होकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ ५॥

उन्होंने वहाँ नदीके तटपर गौरीकी मृण्मयी प्रतिमा स्थापित करके निराहार रहते हुए [उपासनामें लीन होकर] अपने मरणके प्रति पूरा निश्चय कर लिया॥ ६॥

एक समय स्वप्नमें भगवती जगदम्बाने उन उत्तम स्त्रियोंके पास पहुँचकर कहा—तुमलोगोंमेंसे किसीकी जंघासे एक पुरुष उत्पन्न होगा। मेरा अंशभूत वही शक्तिमान् पुरुष तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेगा। ऐसा कहकर पराम्बा भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ७-८॥

जागनेपर वे सभी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उनमेंसे किसी चतुर, कामिनी स्त्रीने जो भयसे त्रस्त थी; वंशवृद्धिहेतु अपनी एक जंघामें गर्भ धारण किया॥ ९½॥

जब उन हैहय क्षत्रियोंने व्याकुल तथा तेजयुक्त उस स्त्रीको भागती हुई देखा तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े॥ १०½॥

'यह गर्भ धारण करके वेगपूर्वक भागी जा रही है, इसे पकड़ लो और मार डालो'—इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके पास पहुँच गये॥ ११½॥

भयसे घबरायी हुई वह स्त्री अपने समीप आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी और पुनः गर्भरक्षाके लिये भयसे विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगी॥ १२½॥

तब दयनीय दशावाली, प्राणहीन-सी प्रतीत हो रही, आश्रयहीन, क्षत्रियोंसे पीडित होनेके कारण क्रन्दन करती हुई, सिंहके द्वारा पकड़ी गयी गर्भवती हिरनीके समान प्रतीत होनेवाली, आँसूभरे नेत्रोंवाली तथा थर-थर काँपती हुई माताका रुदन सुनकर वह सुन्दर गर्भस्थ बालक कुपित होकर अपने तेजसे क्षत्रियोंकी नेत्र-ज्योतिका हरण करता हुआ जंघाका भेदन करके दूसरे सूर्यकी भाँति शीघ्र ही बाहर निकल आया॥ १३—१५½॥

दर्शनाद् बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः॥ १६

बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मान्धा इव क्षत्रियाः।
चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति साम्प्रतम्॥ १७

सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात्।
ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत्॥ १८

क्षणाद्वामोघसङ्कल्पाः किं करिष्यन्ति दुःखिताः।
इति सञ्चिन्त्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः॥ १९

ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः।
प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृताञ्जलिपुटाश्च ते॥ २०

ऊचुश्चैनां भयोद्विग्नां दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः।
प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल॥ २१

कृतापराधा रम्भोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः।
दर्शनात्तव तन्वङ्गि जाताः सर्वे विलोचनाः॥ २२

मुखं ते नैव पश्यामो जन्मान्धा इव भामिनि।
अद्भुतं ते तपो वीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः॥ २३

शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे।
अन्धत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि॥ २४

पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु।
उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः॥ २५

अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित्।
भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल॥ २६

अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षन्तव्यं तत्त्वयाधुना।
वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्रियैः सह॥ २७

कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः।
सपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताः स्मो वयं च ते॥ २८

प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन।

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता॥ २९

उस बालककी ओर देखते ही वे सभी दृष्टिहीन हो गये। तत्पश्चात् वे क्षत्रिय जन्मान्धकी भाँति पर्वतकी गुफाओंमें इधर-उधर भटकने लगे। सभी क्षत्रिय मनमें विचार करने लगे कि इस समय यह क्या हो गया है कि हम सभी लोग बालकको देखनेमात्रसे चक्षुहीन हो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी ब्राह्मणीका यह प्रभाव है; क्योंकि सतीव्रत एक महान् बल है। अमोघ संकल्पवाली दुःखित स्त्रियाँ क्षणभरमें न जाने क्या कर डालेंगी!॥ १६—१८½॥

ऐसा मनमें सोचकर नेत्रहीन, निराश्रय तथा चेतना-रहित हैहयवंशी क्षत्रिय उस ब्राह्मणीकी शरणमें गये और उन्होंने भयसे त्रस्त उस स्त्रीको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी नेत्रज्योतिके लिये इस भयाकुल ब्राह्मणीसे कहने लगे—॥ १९-२०½॥

हे सुभगे! हे माता! हम सब आपके सेवक हैं। अब आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइये। हे रम्भोरु! पाप बुद्धिवाले हम क्षत्रियोंने अपराध किया है। हे तन्वंगि! इसीलिये आपको देखते ही हम सब चक्षुविहीन हो गये। हे भामिनि! जन्मसे अन्धे व्यक्तिकी भाँति हम आपका मुखदर्शन कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। आपका तप तथा पराक्रम अद्भुत है; हम पापपरायण कर ही क्या सकते हैं? हे मानदे! हम आपकी शरणमें हैं। हमें नेत्र दीजिये; क्योंकि नेत्रज्योतिसे विहीन हो जाना मृत्युसे भी कष्टकारक होता है। आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये। फिरसे नेत्रज्योति देकर इन समस्त क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लीजिये। इसके बाद पापकर्मसे रहित होकर हमलोग साथ-साथ चले जायँगे। अब हमलोग इस प्रकारका कर्म कभी नहीं करेंगे। अब हम सभी भार्गव ब्राह्मणोंके सेवक हो गये। हमलोगोंने अज्ञानवश जो भी पाप किया है उसे आप क्षमा करें। हम हैहय क्षत्रिय शपथपूर्वक कहते हैं कि आजसे कभी भी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके साथ हमें वैरभाव नहीं रखना चाहिये और यथोचित व्यवहार करना चाहिये। हे सुश्रोणि! आप पुत्रवती होवें। हम आपकी शरणमें हैं। हे कल्याणि! आप कृपा करें; हमलोग अब कभी भी द्वेषभाव नहीं रखेंगे॥ २१—२८½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन क्षत्रियोंकी यह बात सुनकर ब्राह्मणी विस्मयमें पड़ गयी और उसने शरणागत तथा दुर्गतिको प्राप्त उन नेत्रहीन

तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान्।
गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल॥ ३०

नाहं रुषान्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत्।
अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः॥ ३१

चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तम्भितानि रुषावता।
स्वबन्धून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः॥ ३२

अनागसो धर्मपरांस्तापसान्धनकाम्यया।
गर्भानपि यदा यूयं भृगूनघ्नंस्तु पुत्रकाः॥ ३३

तदायमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः।
षडङ्गश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चाञ्जसा॥ ३४

गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये।
सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हन्तुमिच्छति॥ ३५

भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः।
तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः॥ ३६

तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः।
प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति॥ ३७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम्।
प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम्॥ ३८

स सन्तुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः।
गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः॥ ३९

अवश्यम्भाविभावास्ते भवन्ति देवनिर्मिताः।
नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता॥ ४०

पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवन्तु यथासुखम्।
व्रजन्तु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम्॥ ४१

क्षत्रियोंको आश्वासन देकर कहा—हे क्षत्रियो! आपलोग निश्चितरूपसे जान लें कि मैंने आप सबकी दृष्टिका हरण नहीं किया है॥ २९-३०॥

मैं आपलोगोंपर कुपित नहीं हूँ। अब मैं वास्तविक कारण बता रही हूँ, आपलोग सुनिये। मेरी जंघासे उत्पन्न यह भृगुवंशी बालक आज आपलोगोंपर कुपित है। क्षत्रियोंके द्वारा अपने बान्धवों और यहाँतक कि गर्भस्थित बालकोंका वध किये जानेकी बात जानकर कोपाविष्ट इसी बालकने आपलोगोंके नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं॥ ३१-३२॥

हे वत्सगण! जब आपलोग निरपराध, धर्मनिष्ठ तथा तपस्वी भार्गव ब्राह्मणों और गर्भस्थ बालकोंको भी धन-लोलुपतामें पड़कर मार रहे थे तभी मैंने इसे अपनी जंघामें गर्भरूपसे एक सौ वर्षतक धारण किये रखा। भृगुवंशकी वृद्धिके लिये इस गर्भस्थ बालकने छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका बड़े सहजभावसे अध्ययन कर लिया है और अब यह अपने पितृजनोंके वधसे अत्यन्त कुपित होकर आपलोगोंका संहार करना चाहता है॥ ३३—३५॥

मेरा यह पुत्र भगवतीकी कृपासे उत्पन्न हुआ है, जिसके अलौकिक तेजने आपलोगोंके नेत्र हर लिये हैं॥ ३६॥

अतएव आपलोग इसी समय मेरी जंघासे उत्पन्न इस बालकसे विनम्रतापूर्वक याचना कीजिये। चरणोंमें गिरनेसे प्रसन्न होकर यह बालक आपलोगोंकी नेत्रज्योति मुक्त कर देगा॥ ३७॥

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणीका वचन सुनकर हैहयोंने जंघासे उत्पन्न बालकरूप मुनिश्रेष्ठको प्रणाम किया और वे विनयसे युक्त होकर उसकी स्तुति करने लगे॥ ३८॥

तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उस बालकने उन नेत्रहीन क्षत्रियोंसे कहा—हे राजाओ! अब तुमलोग मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके अपने घर लौट जाओ॥ ३९॥

दैवने जो विधान सुनिश्चित कर दिये हैं, वे अवश्य होकर रहते हैं; ज्ञानी व्यक्तिको इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४०॥

सभी ऋषिगण पूर्वकी भाँति सुख प्राप्त करें तथा सभी क्षत्रिय भी अब क्रोधरहित होकर सुखपूर्वक अपने-अपने घरोंके लिये प्रस्थान करें॥ ४१॥

इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः।
और्वमामन्त्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि॥ ४२

ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता।
पालयामास भूपाल तेजस्विनमतन्द्रिता॥ ४३

एवं ते कथितं राजन् भृगूणां तु विनाशनम्।
लोभाविष्टैः क्षत्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल॥ ४४

जनमेजय उवाच

श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्रियाणाञ्च दारुणम्।
कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः॥ ४५

किञ्चित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत।
हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः॥ ४६

यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा।
हैहयः कोऽपि राजाभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः॥ ४७

तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे।
हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा॥ ४८

व्यास उवाच

हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम्।
पुरातनीं सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम्॥ ४९

कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः।
रेवन्तेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः॥ ५०

उच्चैःश्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम्।
जगाम विष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः॥ ५१

भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदागतः।
हयस्थस्तु तदा दृष्टो लक्ष्म्यासौ रविनन्दनः॥ ५२

रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम्।
रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तम्भितलोचना॥ ५३

इस प्रकार उसके कहनेपर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंको दृष्टि प्राप्त हो गयी और वे और्व (ऊरुसे उत्पन्न) उस बालकसे आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये॥ ४२॥

हे राजन्! वह ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी तथा अलौकिक बालकको लेकर अपने आश्रम चली गयी और बड़ी सावधानीपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगी॥ ४३॥

हे राजन्! इस प्रकार भृगुवंशके विनाश तथा लोभके वशीभूत हैहय क्षत्रियोंने जो पापकर्म किया था; उसके विषयमें मैंने आपसे कहा॥ ४४॥

जनमेजय बोले—हे मुने! मैंने क्षत्रियोंके अत्यन्त दारुण कर्मके विषयमें सुन लिया। इहलोक तथा परलोकमें दुःख देनेवाला वह लोभ ही इसमें मूल कारण है॥ ४५॥

हे सत्यवतीनन्दन! मैं संशयग्रस्त हूँ; [इस विषयमें] आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। ये क्षत्रिय राजकुमार इस जगत्‌में हैहय नामसे क्यों प्रसिद्ध हुए?॥ ४६॥

यदुसे यादव हुए तथा भरतसे भारत हुए। उसी प्रकार क्या उन क्षत्रियोंके वंशमें 'हैहय' नामधारी कोई प्रतिष्ठित राजा हुआ था?॥ ४७॥

हे करुणानिधान! उन हैहय क्षत्रियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा किस कर्मसे उनका यह नाम पड़ा? वह कारण मैं सुनना चाहता हूँ॥ ४८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं हैहयोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अति प्राचीन, पुण्यदायिनी तथा पापनाशिनी कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, आप इसे सुनिये॥ ४९॥

हे महाराज! किसी समय अत्यन्त सुन्दर, रूपवान् तथा अपरिमित तेजवाले सूर्यपुत्र जो 'रेवन्त' नामसे विख्यात थे, अपने मनोहर अश्वरत्न उच्चैःश्रवापर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठलोक गये॥ ५०-५१॥

विष्णुके दर्शनके आकांक्षी वे भास्करनन्दन घोड़ेपर सवार होकर जब वहाँ पहुँचे तब लक्ष्मीजीकी दृष्टि अश्वपर विराजमान रेवन्तपर पड़ गयी॥ ५२॥

समुद्रसे प्रादुर्भूत अपने भाई अलौकिक उच्चैःश्रवा घोड़ेको देखकर वे महान् विस्मयमें पड़ गयीं और उसके रूपको स्थिर नेत्रोंसे देखती रह गयीं॥ ५३॥

भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम्।
आगच्छन्तं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः॥ ५४

कोऽयमायाति चार्वङ्गि हयारूढ इवापरः।
स्मरतेजस्तनुः कान्ते मोहयन्भुवनत्रयम्॥ ५५

प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः।
नोवाच वचनं किञ्चित्पृष्टापि च पुनः पुनः॥ ५६

व्यास उवाच

अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम्।
पश्यन्तीं परमप्रेम्णा चञ्चलाक्षीं च चञ्चलाम्॥ ५७

तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने।
मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे॥ ५८

सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद् भविष्यसि।
चञ्चलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः॥ ५९

प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चञ्चला।
तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन॥ ६०

त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता।
वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे॥ ६१

इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः।
रुरोद वेपमाना सा भयभीतातिदुःखिता॥ ६२

तमुवाच रमानाथं शङ्किता चारुहासिनी।
प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता॥ ६३

देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव।
स्वल्पेऽपराधे गोविन्द कस्माच्छापं ददासि मे॥ ६४

न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो।
क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः॥ ६५

भगवान् विष्णुने उस मनोहर रेवन्तको घोड़ेपर बैठकर आता हुआ देखकर लक्ष्मीजीसे प्रेमपूर्वक पूछा—हे सुन्दर अंगोंवाली! हे प्रिये! दूसरे कामदेवके समान तेजोमय शरीरवाला यह कौन है जो घोड़ेपर सवार होकर तीनों लोकोंको मोहित करता हुआ इधर चला आ रहा है॥ ५४-५५॥

उस समय घोड़ेको एकटक देखते रहनेसे दैववशात् उसीमें चित्तयोग हो जानेके कारण भगवान् विष्णुके बार-बार पूछनेपर भी लक्ष्मीजीने कुछ नहीं कहा॥ ५६॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णु कामिनी, चपल नेत्रोंवाली तथा चंचला लक्ष्मीको अत्यन्त मोहित होकर अत्यधिक प्रेमके साथ निहारती हुई तथा उस अश्वमें अनुरक्त बुद्धिवाली देखकर क्रोधित हो उठे और उनसे बोले—हे सुलोचने! तुम क्या देख रही हो? इस घोड़ेको देखकर मोहित हुई तुम मेरे पूछनेपर भी उत्तर नहीं दे रही हो॥ ५७-५८॥

क्योंकि तुम्हारा चित्त सभी ओर रमण करता है अतएव 'रमा' और तुम्हारी चंचलताके कारण तुम 'चला' कही जाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५९॥

जिस प्रकार सामान्य नारी चंचल होती है, उसी प्रकार हे कल्याणि! तुम भी कभी स्थिर स्वभाववाली नहीं रहोगी॥ ६०॥

मेरे पास रहनेपर भी तुम यदि एक अश्वको देखकर मोहित हो गयी हो तो हे वामोरु! तुम अत्यन्त दारुण मर्त्यलोकमें घोड़ीके रूपमें जन्म ग्रहण करो॥ ६१॥

दैवयोगसे भगवान् विष्णुने जब देवी लक्ष्मीको ऐसा शाप दे दिया तब वे अत्यन्त भयभीत तथा दुःखी होकर काँपती हुई रोने लगीं॥ ६२॥

सुन्दर मुसकानवाली लक्ष्मीजी दुविधामें पड़ गयीं और अपने पति भगवान् विष्णुको विनयसे युक्त होकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनसे कहने लगीं—॥ ६३॥

हे देवदेव! हे जगदीश्वर! हे करुणानिधान! हे केशव! हे गोविन्द! एक छोटेसे अपराधके लिये आपने मुझे ऐसा शाप क्यों दे दिया?॥ ६४॥

हे प्रभो! मैंने आपका ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा। मेरे प्रति आपका वह सहज तथा शाश्वत प्रेम कहाँ चला गया?॥ ६५॥

वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने।
सदाहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता॥ ६६

प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द पश्यतोऽद्य तवाग्रतः।
कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता॥ ६७

प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात्।
कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो॥ ६८

हरिरुवाच

यदा ते भविता पुत्रः पृथिव्यां मत्समः प्रिये।
तदा मां प्राप्य तन्वङ्गि सुखिता त्वं भविष्यसि॥ ६९

आपको वज्रपात शत्रुपर करना चाहिये न कि अपने स्नेहीजनपर। आपसे सदा वर पानेयोग्य मैं आज शापके योग्य कैसे हो गयी?॥ ६६॥

हे गोविन्द! मैं इसी समय आपके देखते-देखते आपके सामने प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि आपसे वियुक्त होकर विरहाग्निमें जलती हुई मैं कैसे जीवित रह सकूँगी?॥ ६७॥

हे देवेश! मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे विभो! अब मैं इस दारुण शापसे मुक्त होकर आपका सुखदायी सांनिध्य कब प्राप्त करूँगी?॥ ६८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे तन्वंगि! जब पृथ्वीलोकमें तुम्हें मेरे समान एक पुत्रकी प्राप्ति हो जायगी तब पुनः मुझे प्राप्त करके तुम सुखी हो जाओगी॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयानामुत्पत्तिप्रसङ्गे रमाविष्णुसंवादवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीद्वारा घोड़ीका रूप धारणकर तपस्या करना

जनमेजय उवाच

इति शप्ता भगवता सिन्धुजा कोपयोगतः।
कथं सा वडवा जाता रेवन्तेन च किं कृतम्॥ १

कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी।
संस्थितैकाकिनी बाला परोषितपतिका यथा॥ २

कालं कियन्तमायुष्मन् वियुक्ता पतिना रमा।
संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः॥ ३

समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिन्धुजा।
पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया॥ ४

एतद्वृत्तान्तमार्येश कथयस्व सविस्तरम्।
श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेन्द्र कथाख्यानमनुत्तमम्॥ ५

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै।
कथयामास भो विप्राः कथामेतां सुविस्तराम्॥ ६

जनमेजय बोले—[हे मुने!] इस प्रकार कोप करके भगवान्‌के द्वारा शापित लक्ष्मीजीने घोड़ीके रूपमें किस प्रकार जन्म लिया और इसके बाद रेवन्तने क्या किया?॥ १॥

अपने पतिके प्रवासमें रहनेके कारण उसके वियोगमें एकाकिनी समय व्यतीत करनेवाली नारीकी भाँति लक्ष्मीजीने घोड़ीका रूप धारण करके किस देशमें समय व्यतीत किया?॥ २॥

हे आयुष्मन्! पतिसे वियुक्त रहते हुए लक्ष्मीजीने कितना समय बिताया और पुनः उस निर्जन वनमें रहती हुई उन्होंने क्या किया?॥ ३॥

समुद्रतनया लक्ष्मीको पुनः भगवान् विष्णुका समागम कब प्राप्त हुआ तथा विष्णुसे अलग रहते हुए उन्होंने किस प्रकार पुत्र प्राप्त किया?॥ ४॥

हे आर्येश! इस वृत्तान्तका वर्णन विस्तारके साथ कीजिये। हे विप्रवर! मैं इस अत्युत्तम पौराणिक आख्यानको सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

सूतजी बोले—हे विप्रो! परीक्षित्‌पुत्र जनमेजयके ऐसा पूछनेपर व्यासजी इस अति विस्तृत कथाका वर्णन करने लगे॥ ६॥

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्।
पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम्॥ ७

रेवन्तस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम्।
भयार्तः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम्॥ ८

पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः।
निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम्॥ ९

दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम्।
आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना॥ १०

सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम्।
तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी॥ ११

कालिन्दीतमसासङ्गे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे।
सर्वकामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमण्डिते॥ १२

तत्र स्थिता महादेवं शङ्करं वाञ्छितप्रदम्।
दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चन्द्रशेखरम्॥ १३

पञ्चाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम्।
कर्पूरगौरदेहाभं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्॥ १४

व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्।
कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम्॥ १५

सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम्।
तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः॥ १६

ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते॥ १७

ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः।
प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः॥ १८

तत्रैत्य सगणः शम्भुस्तामाह हरिवल्लभाम्।
तपस्यन्तीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम्॥ १९

किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे।
सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः॥ २०

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये मैं अब वह शुभ, पवित्र, स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त तथा कानोंको प्रिय लगनेवाली पौराणिक कथा कहूँगा॥ ७॥

कामिनी रमाको विष्णुद्वारा शापित की गयी देखकर रेवन्त भयके कारण जगत्पति वासुदेवको दूरसे ही प्रणाम करके चले गये॥ ८॥

जगन्नाथ विष्णुका यह क्रोध देखकर वे तत्काल अपने पिताके पास गये और उन सूर्यसे शापसे सम्बन्धित कथा बतायी॥ ९॥

इसके बाद कमलके समान नेत्रोंवाली वे दुःखित लक्ष्मीजी जगदीश्वर विष्णुजीसे आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करके मृत्युलोकमें आ गयीं। सूर्यकी पत्नीने पूर्वकालमें सुपर्णाक्षकी उत्तरदिशामें यमुना-तमसा नदीके संगमपर सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सुन्दर वनोंसे सुशोभित जिस स्थानपर कठोर तपस्या की थी, वहीं वडवारूपधारिणी वे लक्ष्मीजी शीघ्र पहुँच गयीं॥ १०—१२॥

वहाँ रहकर वे लक्ष्मीजी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले, त्रिशूलधारी, चन्द्रशेखर, पाँच मुखोंवाले, दस भुजाओंवाले, गौरीके शरीरका अर्ध भाग धारण करनेवाले, कर्पूरके समान गौर शरीरवाले, नीले कण्ठसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाले, व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले, हाथीके चर्मका उत्तरीय धारण करनेवाले, गलेमें नरमुण्डकी मालासे मण्डित तथा सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले महादेव शंकरका एकाग्रमनसे ध्यान करने लगीं॥ १३—१५॥

सागरपुत्री लक्ष्मीजीने सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उस तीर्थमें अत्यन्त कठोर तपस्या की॥ १६॥

हे राजन्! महादेव शंकरका ध्यान करते-करते लक्ष्मीजीके मनमें वैराग्यका प्रादुर्भाव हो गया। इस प्रकार [उनको तप करते हुए] एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये॥ १७॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने वृषभपर सवार होकर पार्वतीजीके साथ उन्हें साक्षात् दर्शन दिया॥ १८॥

भगवान् शंकरने अपने गणोंसहित वहाँ आकर तप करती हुई वडवारूपधारिणी महाभागा विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीसे कहा—॥ १९॥

हे कल्याणि! हे जगज्जननि! आप तपस्या क्यों कर रही हैं? मुझे इसका कारण बतायें। आपके पति विष्णु तो स्वयं सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सभी लोकोंका विधान करनेवाले हैं॥ २०॥

हरिं त्यक्त्वाद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम्।
वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ २१

वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः।
नान्यस्मिन्सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित्॥ २२

पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः।
यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया॥ २३

नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि।
तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिन्धुजे॥ २४

लक्ष्मीरुवाच

आशुतोष महेशान शप्ताहं पतिना शिव।
मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे॥ २५

तदोक्तं हरिणा शम्भो शापानुग्रहकारणम्।
विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना॥ २६

यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम्।
भविष्यति च वैकुण्ठवासस्ते कमलालये॥ २७

इत्युक्ताहं तपस्तप्तुमागतास्मि तपोवने।
आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः॥ २८

पतिसङ्गं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम्।
स तु तिष्ठति वैकुण्ठे त्यक्त्वा वामामनागसम्॥ २९

वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शङ्कर।
तव तस्य द्विधा भावो नास्ति नूनं कदाचन॥ ३०

मयैतद् गिरिजाकान्त ज्ञातं पत्युः पुरो हर।
यस्त्वं योऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः॥ ३१

एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम्।
अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयन्त्या भवेच्छिव॥ ३२

हे देवि! भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले जगत्पति वासुदेव जगन्नाथ विष्णुको छोड़कर इस समय आप मेरी आराधना किसलिये कर रही हैं?॥ २१॥

स्त्रियोंके लिये पति ही उनका देवता होता है—इस वेदोक्त वचनका उन्हें पालन करना चाहिये। किसी दूसरेमें कभी कहीं भी भावना नहीं करनी चाहिये॥ २२॥

पतिकी सेवा-शुश्रूषा ही स्त्रियोंका सनातन धर्म है। पति चाहे जैसा भी हो, कल्याणकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको निरन्तर उसकी सेवा करनी चाहिये॥ २३॥

भगवान् विष्णु तो सर्वदा सभी प्राणियोंकी आराधनाके योग्य हैं। अतएव हे सिन्धुजे! उन देवाधिदेवको छोड़कर आप मेरा ध्यान क्यों कर रही हैं?॥ २४॥

लक्ष्मी बोलीं—हे आशुतोष! हे महेशान! हे शिव! हे देवेश! हे दयानिधान! मेरे पतिने मुझे शाप दे दिया है; अतएव इस शापसे आप मेरा उद्धार कीजिये॥ २५॥

हे शम्भो! उस समय मेरे बहुत पूछनेपर दयालु भगवान् विष्णुने शापसे मुक्तिका यह उपाय भी बतला दिया था—'हे कमलालये! जब तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न हो जायगा तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगी और वैकुण्ठधाममें पुनः तुम्हारा वास होगा'॥ २६-२७॥

हे देव! श्रीविष्णुके इस प्रकार कहनेपर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आ गयी और सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले आप परमेश्वरकी आराधना करने लगी॥ २८॥

हे देवदेव! मुझ निरपराध पत्नीको छोड़कर वे विष्णु तो वैकुण्ठमें विराजमान हैं; अतएव पतिके सांनिध्यके बिना मैं पुत्र कैसे प्राप्त कर सकती हूँ?॥ २९॥

हे देवेश! हे शंकर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वर दीजिये। आप तथा श्रीहरिमें निश्चितरूपसे कोई भेद नहीं है॥ ३०॥

हे गिरिजाकान्त! हे हर! जब मैं पतिदेवके पास थी तभीसे मुझे यह ज्ञात है कि जो आप हैं, वही वे हैं तथा जो वे हैं, वही आप हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ३१॥

[आप तथा श्रीविष्णुमें] एकत्व जानकर ही मैंने आपका स्मरण किया है, अन्यथा हे शिव! आपका आश्रय लेनेसे मुझे दोष ही लगता॥ ३२॥

शिव उवाच

कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुन्दरि।
ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिन्धुजे॥ ३३

एकत्वं च न जानन्ति देवाश्च मुनयस्तथा।
ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल॥ ३४

मद्भक्ता वासुदेवस्य निन्दका बहवस्तथा।
विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निन्दापरायणाः॥ ३५

भवन्ति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः।
कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः॥ ३६

सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः।

व्यास उवाच

इति सा शम्भुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा॥ ३७

वृत्तान्तं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे।
शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम्॥ ३८

लक्ष्मीरुवाच

एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः।
दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा॥ ३९

तदाहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल।
प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम्॥ ४०

देवदेव जगन्नाथ यदाहं निर्गतार्णवात्।
मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो॥ ४१

वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा।
वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात्॥ ४२

त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम।
प्रियोऽसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम्॥ ४३

विष्णुरुवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम्।
आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि॥ ४४

कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः।
ध्यायाम्यहं च देवेशं शङ्करं त्रिपुरान्तकम्॥ ४५

शिवस्याहं प्रियः प्राणः शङ्करस्तु तथा मम।
उभयोरन्तरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः॥ ४६

शिव बोले—हे देवि! हे सुन्दरि! मेरे तथा उन विष्णुके एकत्वका ज्ञान तुम्हें किस प्रकार हुआ? हे सिन्धुजे! मुझे सच-सच बताओ॥ ३३॥

देवता, मुनि, ज्ञानी तथा वेदोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् भी तरह-तरहके कुतर्कोंसे ग्रस्त पड़े रहनेके कारण इस ऐक्यभावको नहीं जानते॥ ३४॥

मेरे बहुत-से भक्त वासुदेव श्रीविष्णुके निन्दक हैं तथा श्रीविष्णुके बहुत-से भक्त मेरी निन्दामें लगे रहते हैं। हे देवि! कालभेदके कारण कलियुगमें ऐसे लोग विशेषरूपसे होंगे। हे भद्रे! दूषित आत्मावाले लोगोंद्वारा दुर्ज्ञेय इस एकत्वको आप कैसे जान गयीं? मेरे तथा श्रीविष्णुका ऐक्यभाव जान पाना सर्वथा दुर्लभ है॥ ३५-३६½॥

व्यासजी बोले—प्रसन्न हुए भगवान् शंकरके इस प्रकार पूछनेपर अत्यन्त प्रसन्नमुखवाली हरिप्रिया लक्ष्मीजीने [उस एकत्वसे सम्बन्धित] ज्ञात प्रसंगको शिवजीसे कहना प्रारम्भ किया॥ ३७-३८॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवदेवेश! एक बार भगवान् विष्णुको एकान्तमें पद्मासन लगाकर ध्यानस्थ हो तपस्या करते हुए जब मैंने देखा तब मुझे महान् विस्मय हुआ; और पुनः समाधिसे जगनेपर उन्हें अति प्रसन्न जानकर मैंने पतिदेवसे विनयपूर्वक पूछा—॥ ३९-४०॥

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे प्रभो! जिस समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओं तथा दैत्योंके द्वारा मथे जा रहे समुद्रसे मैं निकली, उस समय पतिकी इच्छासे मैंने सभीकी ओर देखा, सभी देवताओंकी अपेक्षा आप ही श्रेष्ठ हैं—ऐसा निश्चय करके मैंने आपका ही वरण किया था। अतः हे सर्वेश! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? मुझे यह महान् सन्देह है। हे कैटभारे! आप मेरे प्रिय हैं। अतः अपने मनकी बात मुझे बतायें॥ ४१—४३॥

विष्णु बोले—हे प्रिये! मैं जिन सुरश्रेष्ठ, आशुतोष, महेश्वर तथा पार्वतीपति शंकरका ध्यान [अपने] हृदयमें कर रहा हूँ, उनके विषयमें बताऊँगा; सुनो॥ ४४॥

असीम पराक्रमसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकर कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं त्रिपुरासुरके संहारक देवेश शंकरका ध्यान करने लगता हूँ॥ ४५॥

शिवका प्रिय प्राण मैं हूँ तथा मेरे प्रिय प्राण वे हैं। इस प्रकार परस्पर अनुरक्त चित्तवाले हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है॥ ४६॥

नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम्।
भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४७

इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
एकान्ते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय॥ ४८

तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम्।
तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसङ्गमः॥ ४९

व्यास उवाच

इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः।
तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः॥ ५०

स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा तव।
समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः॥ ५१

अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः।
आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः॥ ५२

तथाहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम्।
यथासौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः॥ ५३

पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ।
भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः॥ ५४

सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह।
गन्तासि देवि वैकुण्ठं प्रिया तस्य भविष्यसि॥ ५५

एकवीरेति नाम्नासौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः।
तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति॥ ५६

परं तु विस्मृतासि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम्।
मदान्धा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम्॥ ५७

अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम्।
शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते॥ ५८

अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः॥ ५९
अन्तर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः।

हे विशालनयने! मेरे जो भक्त भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं वे निश्चितरूपसे नरकमें पड़ते हैं; मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ४७॥

हे गिरिजावल्लभ! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवदेव भगवान् विष्णुने ऐसा बताया था। अतएव आपको विष्णुका परम प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया। हे महेशान! अब जैसे मुझे पतिसांनिध्य प्राप्त हो जाय, वैसा आप कीजिये॥ ४८-४९॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीजीका यह वचन सुनकर वाणीविशारद भगवान् शंकरने मधुर वचनोंसे उन्हें आश्वासन देकर कहा—हे पृथुश्रोणि! धैर्य रखो। मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। पतिसे तुम्हारा मिलन अवश्य होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०-५१॥

वे भगवान् जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिये अश्वका रूप धारण करके यहींपर आयेंगे॥ ५२॥

मैं उन मधुसूदनको इस प्रकार प्रेरित करूँगा, जिससे वे मदातुर होकर अश्वरूपमें तुम्हारे पास आयेंगे॥ ५३॥

हे सुभ्रु! उन्हीं नारायणके समान तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। वह पृथ्वीपर राजाके रूपमें प्रतिष्ठित तथा सभी लोगोंसे नमस्कृत होगा॥ ५४॥

हे महाभागे! इस प्रकार पुत्र प्राप्त करके तुम उन्हींके साथ वैकुण्ठलोक चली जाओगी और हे देवि! वहाँ उनकी प्रिया हो जाओगी॥ ५५॥

आपका वह पुत्र एकवीर—इस नामसे लोकमें ख्याति प्राप्त करेगा। उसीसे पृथ्वीपर हैहयवंश विस्तारको प्राप्त होगा॥ ५६॥

किंतु मदान्ध एवं मदचित्त होकर तुमने हृदयमें सदा विराजमान रहनेवाली परमेश्वरी जगदम्बाका विस्मरण कर दिया है, उसीसे तुम्हें ऐसा फल मिला है। अतः हे सिन्धुपुत्रि! उस दोषके शमनके लिये तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली परम देवीकी शरणमें सर्वात्मभावसे जाओ; यदि तुम्हारा मन भगवतीमें लगा होता तो उत्तम घोड़ेपर क्यों जाता?॥ ५७-५८½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवी लक्ष्मीको वरदान देकर गिरिजापति भगवान् शंकर पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये॥ ५९½॥

सापि तत्रैव चार्वङ्गी संस्थिता कमलासना॥ ६०
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम्।
देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमण्डलम् ॥ ६१
प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम्॥ ६२

सुन्दर अंगोंवाली वे लक्ष्मीजी वहीं स्थित रहकर भगवती जगदम्बाके देवासुरोंके शिरोरत्न (मुकुट)-से घर्षित नखमण्डलवाले परम सुन्दर चरणकमलका ध्यान करने लगीं और अपने पति श्रीहरिके अश्वरूप धारण करके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई प्रेमयुक्त गद्गद वाणीसे बार-बार उनकी स्तुति करती रहीं॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे शिवप्रसादेन लक्ष्मीद्वारा भगवत्याः समाराधनवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~~०~~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीको अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुके दर्शन और उनका वैकुण्ठगमन

व्यास उवाच

तस्यै दत्त्वा वरं शम्भुः कैलासं त्वरितो ययौ।
रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मण्डितम्॥ १
तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम्।
प्रेषयामास वैकुण्ठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये॥ २

शिव उवाच

चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम।
यथासौ दुःखितां पत्नीं विशोकां च करिष्यति॥ ३
इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः।
वैकुण्ठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम्॥ ४
नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम्।
संजुष्टं हंसकारण्डमयूरशुककोकिलैः॥ ५
उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम्।
नृत्यगीतकलापूर्णं मन्दारद्रुमसंयुतम्॥ ६
बकुलाशोकतिलकचम्पकालिविमण्डितम् ।
कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम्॥ ७
संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वास्थौ प्राह प्रणम्य च।
जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ॥ ८

व्यासजी बोले—उन लक्ष्मीजीको वरदान देकर भगवान् शंकर देवगणोंसे सेवित तथा अप्सराओंसे सुशोभित रमणीक कैलासपर शीघ्र चले गये॥ १॥

वहाँ पहुँचते ही शंकरजीने लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे अपने कार्यकुशल गण चित्ररूपको वैकुण्ठ भेजा॥ २॥

शिवजी बोले—हे चित्ररूप! तुम विष्णुके पास जाकर मेरे शब्दोंमें यह बात कहो और इस प्रकार यत्न करना, जिससे वे अपनी दुःखी पत्नीको शोकमुक्त कर दें॥ ३॥

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वह चित्ररूप वैष्णवगणोंसे घिरे, अनेक प्रकारके वृक्षसमूहोंसे युक्त, सैकड़ों बावलियोंसे सुशोभित, हंस-सारस-मोर, शुक तथा कोकिलोंसे सुसेवित, पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवनोंवाले, नृत्य तथा गायनकलामें प्रवीण जनोंसे युक्त, मन्दारवृक्षोंसे परिपूर्ण, बकुल-अशोक-तिलक-चम्पक आदि वृक्षोंकी पंक्तियोंसे मण्डित तथा पक्षियोंके कर्णप्रिय कलरवोंसे गुंजित परम धाम वैकुण्ठके लिये शीघ्र ही निकल पड़ा। वहाँ भगवान् विष्णुका भवन देखकर हाथमें दण्ड (छड़ी) धारण किये हुए द्वारपर स्थित जय-विजय नामक दो द्वारपालोंको प्रणाम करके चित्ररूपने उनसे कहा—॥ ४—८॥
~~~

चित्ररूप उवाच

भो निवेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने।
दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना॥ ९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान्।
गत्वा हरिं प्रणम्याह कृताञ्जलिपुटः पुरः॥ १०

देवदेव रमाकान्त करुणाकर केशव।
द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शङ्करस्य समागतः॥ ११

आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज।
चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम्॥ १२

इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः।
प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम्॥ १३

इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम्।
एहीत्याकारयामास जयः शङ्करसेवकम्॥ १४

प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः।
प्रणम्य दण्डवद्विष्णुं कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ १५

दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान् गरुडध्वजः।
चित्ररूपधरं शम्भोः सेवकं विनयान्वितम्॥ १६

पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः।
कुशलं देवदेवस्य सकुटुम्बस्य चानघ॥ १७

कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम्।
अथवा देवतानां च किञ्चित्कार्यं समुत्थितम्॥ १८

दूत उवाच

किमज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज।
वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै॥ १९

प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तुं त्वां जनार्दन।
हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो॥ २०

चित्ररूप बोला—[हे द्वारपालो!] तुमलोग शीघ्र ही भगवान् विष्णुको सूचित कर दो कि शूलपाणि शिवद्वारा भेजा गया उनका दूत यहाँ आया है॥ ९॥

उसकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् जय श्रीहरिके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर बोला—हे देवदेव! हे रमाकान्त! हे करुणाकर! हे केशव! भगवान् शंकरका दूत आया हुआ है; वह द्वारपर खड़ा है। हे गरुडध्वज! आप आदेश दीजिये कि उसे प्रवेश कराया जाय अथवा नहीं। उसका नाम चित्ररूप है। मैं उसके आनेका प्रयोजन नहीं जानता॥ १०—१२॥

ऐसा सुनकर दूतके आनेका कारण पहलेसे ही जाननेवाले भगवान् विष्णुने जयसे कहा—द्वारपर रुके हुए शंकरके भृत्यको यहाँ ले आओ॥ १३॥

यह सुनकर शीघ्रतापूर्वक जाकर 'अंदर आइये'—ऐसा उस शंकरसेवक परम अद्भुत चित्ररूपसे जयने कहा॥ १४॥

अपने चित्ररूप नामके समान ही आकृतिवाले उसको जयने प्रवेश कराया। तब विष्णुको साष्टांग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वहाँ उनके समक्ष वह खड़ा हो गया॥ १५॥

विनयसे युक्त तथा विचित्र रूप धारण करनेवाले उस शम्भुसेवकको देखकर गरुडध्वज भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १६॥

तत्पश्चात् रमापति विष्णुने मुसकराकर उस चित्ररूपसे पूछा—हे पुण्यात्मन्! सपरिवार देवाधिदेव शंकरजीका कुशल तो है॥ १७॥

तुम यहाँ किसलिये भेजे गये हो, शंकरजीका कौन-सा कार्य है अथवा देवताओंका कोई काम तो नहीं आ पड़ा, मुझे बताओ॥ १८॥

दूत बोला—हे गरुडध्वज! हे त्रिकालज्ञ! इस संसारकी कौन-सी बात आपको विदित नहीं है; तथापि इस समय जो बात है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ १९॥

हे जनार्दन! उस बातको बतानेके लिये मैं शंकरजीके द्वारा यहाँ भेजा गया हूँ। हे प्रभो! शिवजीके कहे गये शब्दोंमें मैं आपसे कह रहा हूँ॥ २०॥

तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया।
तपस्तपति कालिन्दीतमसासङ्गमे विभो॥ २१

हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी।
ध्यातुं योग्यामरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः॥ २२

विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेन्न हि।
तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्राप्नोषि किं सुखं हरे॥ २३

दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते।
विनापराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी॥ २४

दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो।
धिक्तस्य जीवितं लोके निन्दितं त्वरिमण्डले॥ २५

सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःखितां भृशम्।
त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यन्ति दिवानिशम्॥ २६

रमां रमय देवेश त्वदुत्सङ्गगतां कुरु।
सर्वलक्षणसम्पन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम्॥ २७

सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम्।
कान्ताविरहजं दुःखं स्मराम्यहमनातुरः॥ २८

मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा।
तदाहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानम्बुजेक्षण॥ २९

संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि माभून्मत्सदृशोऽपरः।
मनसाकरवं शोकं तस्या विरहपीडितः॥ ३०

कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः।
तपस्तप्त्वातिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाध्वरे॥ ३१

हरे किं सुखमापन्नं त्वया सन्त्यज्य कामिनीम्।
एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम्॥ ३२

हे देवेश! उन्होंने कहा है कि 'हे विभो! आपकी भार्या लक्ष्मीजी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं॥ २१॥

देवगण, मानव, यक्ष तथा किन्नरोंके द्वारा आराधनाके योग्य एवं समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण किये हैं॥ २२॥

उन देवीके बिना इस जगत्का कोई भी प्राणी सुखी नहीं रह सकता। हे पुण्डरीकाक्ष! हे हरे! उनका परित्याग करके आप कौन-सा सुख प्राप्त कर रहे हैं?॥ २३॥

हे जगत्पते! दुर्बल तथा निर्धन व्यक्ति भी अपनी भार्याकी रक्षा करता है। तब हे विभो! आपने बिना अपराधके ही उन जगदीश्वरीका त्याग क्यों कर दिया है?॥ २४॥

हे जगद्गुरो! जिसकी भार्या संसारमें दुःख प्राप्त करती है, उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसा व्यक्ति शत्रुसमुदायमें निन्दित होता है॥ २५॥

आपके स्वार्थी शत्रु इस समय लक्ष्मीजीको अत्यन्त दुःखित तथा आपको उनसे विलग देखकर दिन-रात हँसते होंगे॥ २६॥

हे देवेश! आप सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, सुशीला तथा सुन्दर रूपवाली लक्ष्मीजीको अपने अंकमें विराजमान कीजिये और उनके साथ आनन्द प्राप्त कीजिये। सुन्दर मुसकानवाली प्रिया लक्ष्मीको प्राप्तकर आप सुखी हो जाइये॥ २७½॥

उदास रहता हुआ मैं ही स्त्रीवियोगसे उत्पन्न दुःखको समझता हूँ। हे विष्णो! हे कमलनयन! जब मेरी भार्या सती दक्षके यज्ञमें मृत हो गयी थी तब मुझे असहनीय दुःख भोगना पड़ा था। उसके विरहसे पीडित होकर मैं मनमें यह शोक करता था कि इस संसारमें मेरे-जैसा कोई अन्य व्यक्ति न हो। जो सती क्रोधवश दक्षके यज्ञमें जलकर भस्म हो गयी थी, उसे मैंने बहुत समयतक कठोर तपस्या करके गिरिजाके रूपमें पुनः प्राप्त किया था॥ २८—३१॥

हे हरे! आपने अपनी भार्याको छोड़कर एक हजार वर्षकी अवधितक अकेले रहते हुए कौन-सा सुख प्राप्त कर लिया?॥ ३२॥

गत्वाश्वास्य महाभागां समानय निजालयम्।
माभूत्कोऽपीह संसारे विमुक्तो रमया तया॥ ३३

कृत्वा तुरगरूपं त्वं भज तां कमलालयाम्।
उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम्॥ ३४

व्यास उवाच

हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत।
तथेत्युक्त्वा तु तं दूतं प्रेषयामास शङ्करम्॥ ३५

गते दूतेऽथ भगवान्वैकुण्ठात्कामसंयुतः।
जगाम धृत्वा तत्राशु वाजिरूपं मनोहरम्॥ ३६

यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिन्धुजा।
विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम्॥ ३७

सापि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरं पतिम्।
ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना॥ ३८

तयोस्तु सङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः।
कालिन्दीतमसासङ्गे पावने लोकविश्रुते॥ ३९

सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरिवल्लभा।
सुषुवे सुन्दरं बालं तत्रैव सुगुणोत्तरम्॥ ४०

तामाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम्।
त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना॥ ४१

गमिष्यावः स्ववैकुण्ठमावां कृत्वा निजं वपुः।
तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने॥ ४२

लक्ष्मीरुवाच

स्वदेहसम्भवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम्।
स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ॥ ४३

का गतिः स्यादमेयात्मन् बालस्यास्य नदीतटे।
अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह॥ ४४

अतः आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने घर ले आयें। इस संसारमें कोई भी प्राणी उन रमा (लक्ष्मी)-से विमुक्त न होने पाये॥ ३३॥

हे आयुष्मन्! आप अभी अश्वरूप धारण करके पवित्र मुसकानवाली लक्ष्मीके पास जाइये और पुत्र उत्पन्न करके उन्हें [वैकुण्ठ] ले आइये॥ ३४॥

व्यासजी बोले—हे भारत! चित्ररूपकी वह बात सुनकर भगवान् विष्णुने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उस दूतको शंकरजीके पास भेज दिया॥ ३५॥

तत्पश्चात् दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु मनोहर अश्वरूप धारणकर कामयुक्त होकर शीघ्र ही वैकुण्ठसे वहींपर पहुँचे जहाँ घोड़ीका रूप धारणकर सिन्धुतनया लक्ष्मीजी तपस्या कर रही थीं। विष्णुजीने उस स्थानपर पहुँचकर हयरूपधारिणी लक्ष्मीजीको विराजमान देखा। अश्वका रूप धारण किये हुए अपने पति गोविन्दको देखते ही लक्ष्मीजीने भी उन्हें पहचान लिया और वे साध्वी विस्मयमें पड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखती हुई वहीं खड़ी रहीं॥ ३६—३८॥

यमुना और तमसाके लोकप्रसिद्ध पवित्र संगमपर कामार्त उन दोनोंका समागम हुआ॥ ३९॥

इस प्रकार वडवारूपधारिणी वे विष्णुप्रिया गर्भवती हो गयीं और वहींपर उन्होंने सद्गुणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ ४०॥

भगवान् विष्णुने हँसकर उनसे यह समयोचित बात कही—तुम अब अपना यह अश्वीरूप छोड़ दो और पहले जैसा शरीर धारण कर लो॥ ४१॥

हे सुलोचने! हम दोनों अपनी दिव्य देह धारण करके अपने वैकुण्ठधाम चलेंगे और तुमसे उत्पन्न यह कुमार अब यहीं रहे॥ ४२॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ! अपने शरीरसे उत्पन्न पुत्रको छोड़कर मैं कैसे जाऊँ? अपने पुत्रके प्रति स्नेहका त्याग अत्यन्त ही कठिन है॥ ४३॥

हे अमेयात्मन्! इस निर्जन नदीतटपर इस लघुकाय, अनाथ तथा असमर्थ बालककी क्या गति होगी?॥ ४४॥

अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गन्तुं मनो मम।
समर्थं सदयं स्वामिन् भवेदम्बुजलोचन॥ ४५

दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनारायणावुभौ।
विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि॥ ४६

गन्तुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम्।
गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्तास्मि हापितुम्॥ ४७

प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कान्त्या त्वत्सदृशः प्रभो।
गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुण्ठं मधुसूदन॥ ४८

हरिरुवाच

मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने।
तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह॥ ४९

कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम्।
निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने॥ ५०

तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि।
हरिवर्मेति पित्रास्य कृतं नाम सुविश्रुतम्॥ ५१

स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने।
तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः॥ ५२

तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयायं कमलालये।
तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि साम्प्रतम्॥ ५३

तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामाय कामिनि।
गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम्॥ ५४

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके।
विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह॥ ५५

हे कमलनयन! हे स्वामिन्! इस आश्रयहीन पुत्रको छोड़कर मेरा दयालु मन यहाँसे जानेके लिये भला कैसे तैयार हो सकता है?॥ ४५॥

तत्पश्चात् लक्ष्मीजी तथा भगवान् विष्णु दोनों दिव्य शरीर धारणकर उत्तम विमानपर विराजमान हुए; देवगण अन्तरिक्षमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेके इच्छुक भगवान् विष्णुसे लक्ष्मीजीने कहा—हे नाथ! मैं इस पुत्रका त्याग नहीं कर सकती, अतएव इसे भी साथ ले लीजिये। हे प्रभो! मेरा यह प्राणके समान प्रिय पुत्र कान्तिमें आपहीके सदृश है। हे मधुसूदन! इसे लेकर हम दोनों वैकुण्ठ चलेंगे॥ ४७-४८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे वरानने! इस पुत्रके विषयमें शोक करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। यह सुखपूर्वक यहीं रहे; मैंने इसकी रक्षाका उपाय कर दिया है॥ ४९॥

हे वामोरु! इस पुत्रके यहाँ छोड़नेके पीछे कोई महान् तथा आश्चर्यजनक कारण छिपा है। मैं उसे बता रहा हूँ; तुम जान लो॥ ५०॥

इस पृथ्वीपर ययातिके पुत्र तुर्वसु नामक एक प्रसिद्ध राजा हैं। उनके पिताने उनका लोक-प्रसिद्ध हरिवर्मा—यह नाम रखा था। इस समय पुत्रकी कामनावाले वे नरेश एक पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते हुए पूरे एक सौ वर्ष बीत चुके हैं। हे कमलालये! उन्हींके लिये मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। हे सुभ्रु! वहाँ राजाके पास जाकर मैं उन्हें इसी समय भेज दूँगा। हे प्रिये! पुत्रके अभिलाषी उन्हीं राजाको मैं यह पुत्र दे दूँगा और वे इस बालकको लेकर अपने घर चले जायँगे॥ ५१—५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपनी प्रिय भार्याको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका प्रबन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रियाके साथ चले गये॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुत्रजन्मानन्तरं स्वस्वरूपेण वैकुण्ठगमनवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~0~~

अथ विंशोऽध्यायः

राजा हरिवर्माको भगवान् विष्णुद्वारा अपना हैहयसंज्ञक पुत्र देना, राजाद्वारा उसका 'एकवीर' नाम रखना

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा।
मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने॥ १

का गतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवतीसुत।
व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्त्रैर्गृहीतो नातिबालकः॥ २

व्यास उवाच

लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा।
तदैव तत्र चम्पाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल॥ ३

विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप।
मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया॥ ४

विलोक्य तं शिशुं भूमावेकाकिनमनुत्तमम्।
देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम्॥ ५

विमानात्तरसोत्तीर्य चम्पकस्तं शिशुं जवात्।
जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाधनः॥ ६

गृहीत्वा चम्पकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम्।
मदनालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम्॥ ७

सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमाञ्चा सविस्मया।
मुखं चुचुम्ब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम्॥ ८

आलिङ्गितश्चुम्बितश्च तयासौ प्रीतिपूर्वकम्।
उत्सङ्गे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत॥ ९

कृत्वाङ्के तौ समारूढौ विमानं दम्पती मुदा।
पतिं पप्रच्छ चार्वङ्गी प्रहस्य मदनालसा॥ १०

कस्यायं बालकः कान्त त्यक्तः केन च कानने।
पुत्रोऽयं मम देवेन दत्तस्त्र्यम्बकपाणिना॥ ११

जनमेजय बोले—[हे मुनिवर!] मुझे इस विषयमें यह महान् संशय हो रहा है कि भगवान्‌ने उत्पन्न होते ही उस बालकका त्याग कर दिया। निर्जन वनमें उस असहाय बालककी देखभाल किसने की?॥ १॥

हे सत्यवतीनन्दन! उस बालककी क्या गति हुई? बाघ, सिंह आदि हिंसक जानवर उस छोटे-से बालकको उठा तो नहीं ले गये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जब भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मीजी उस स्थानसे चले गये, उसी समय चम्पक नामक विद्याधर उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रेयसी मदनालसाके साथ इच्छापूर्वक विहार करते हुए संयोगवश वहाँ आ पहुँचा॥ ३-४॥

देवपुत्र-तुल्य उस उत्तम शिशुको पृथ्वीपर सुखपूर्वक अकेले खेलते हुए देखकर चम्पकने शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर झटसे उस बालकको उठा लिया और वह उसी प्रकार आनन्दित हो गया, जिस प्रकार कोई धनहीन व्यक्ति धनका खजाना पाकर आनन्दित हो जाता है॥ ५-६॥

कामदेवके समान अत्यन्त सुन्दर उस नवजात शिशुको उठाकर चम्पकने (अपनी पत्नी) मदनालसाको सौंप दिया॥ ७॥

उस बालकको लेते ही प्रेमसे रोमांचित तथा विस्मित मदनालसा हृदयसे लगाकर उस बालकका मुख चूमने लगी॥ ८॥

हे भारत! प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाने तथा चूमनेके पश्चात् उस तन्वंगी मदनालसाने उसे अपना पुत्र समझकर गोदमें ले लिया॥ ९॥

उसे गोदमें लेकर पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक विमानपर आरूढ़ हो गये। तब कमनीय अंगोंवाली मदनालसाने हँसकर अपने पतिसे पूछा—हे कान्त! बालक किसका है तथा किसने इसे निर्जन वनमें छोड़ दिया है? त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने इसे मुझे पुत्ररूपमें दिया है॥ १०-११॥

चम्पक उवाच

प्रिये गत्वाद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै।
देवो वा दानवो वापि गन्धर्वो वा शिशुः किल॥ १२

तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम्।
अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किञ्चिन्मया ध्रुवम्॥ १३

इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चम्पकः।
ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः॥ १४

प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चम्पकस्तु शचीपतिम्।
निवेद्य बालकं प्राह कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ १५

देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने।
कालिन्दीतमसासङ्गे बालकोऽयं स्मरप्रभः॥ १६

कस्यायं बालकः कान्तः कथं त्यक्तः शचीपते।
आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम्॥ १७

अतीव सुन्दरो बालः प्रियाया वल्लभः सुतः।
कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा॥ १८

इन्द्र उवाच

पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह।
हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्यां जातः परन्तपः॥ १९

उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः।
दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च॥ २०

हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः।
आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे॥ २१

तावत् त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम्।
यावन्न याति नृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः॥ २२

गत्वा तत्र विमुञ्चैनं विलम्बं मा कृथा वर।
अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति॥ २३

चम्पक बोला—हे प्रिये! मैं आज ही सब कुछ जाननेवाले इन्द्रके पास जाकर पूछूँगा कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व है। उनसे आदेश प्राप्त करनेके बाद ही मैं वनमें प्राप्त इस बालकको अपना पुत्र बनाऊँगा; बिना उनसे पूछे मुझे कोई भी कार्य निश्चितरूपसे नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

ऐसा कहकर उस मदनालसा तथा पुत्रको लेकर हर्षातिरेकके कारण उत्फुल्ल नेत्रोंवाले उस चम्पकने तुरंत विमानसे इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] प्रेमपूर्वक इन्द्रके चरणोंमें प्रणामकर उस बालकको उन्हें समर्पित करके दोनों हाथ जोड़कर चम्पक खड़ा हो गया और बोला—॥ १४-१५॥

हे देवदेव! कामदेवके समान प्रभावाला यह बालक मुझे परम पवित्र तीर्थ यमुना तथा तमसा नदीके संगम-स्थलपर प्राप्त हुआ था॥ १६॥

हे शचीपते! कान्तिसे सम्पन्न यह बालक किसका है; इसका त्याग क्यों कर दिया गया है? हे देवेश! यदि आपका आदेश हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ॥ १७॥

यह अत्यन्त सुन्दर बालक मेरी पत्नीका प्रिय पुत्र बन गया है। धर्मशास्त्रोंमें कृत्रिम पुत्र भी कहा गया है॥ १८॥

इन्द्र बोले—यह अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। हे महाभाग! हैहयसंज्ञक यह परम तपस्वी बालक लक्ष्मीजीसे उत्पन्न हुआ है॥ १९॥

भगवान् विष्णुने ययातिके पुत्र राजा हरिवर्माको अर्पित करनेके उद्देश्यसे इस बालकको उत्पन्न किया है॥ २०॥

परम धार्मिक राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुसे प्रेरणा प्राप्तकर पुत्रके लिये आज ही उस पावन तीर्थमें पहुँचेंगे। अतएव जबतक भगवान् विष्णुके द्वारा प्रेरित होकर वे राजा उसे लेनेहेतु वहाँ पहुँच नहीं जाते, उससे पूर्व तुम इस सुन्दर बालकको लेकर वहींपर पहुँच जाओ॥ २१-२२॥

हे श्रेष्ठ! वहाँ जाकर इस बालकको छोड़ दो, विलम्ब मत करो; क्योंकि राजा हरिवर्मा [तुमसे पहले पहुँच गये तो] बालकको वहाँ न देखकर अत्यन्त दुःखी होंगे॥ २३॥

तस्माच्चम्पक मुञ्चैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम्।
एकवीरेति नाम्नायं ख्यातः स्यात् पृथिवीतले॥ २४

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा चम्पकस्त्वरयान्वितः।
जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते॥ २५
मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत्।
आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममण्डलम्॥ २६
तदैव कमलाकान्तो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः।
विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति॥ २७
दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः
समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात्।
जहर्ष राजा हरिदर्शनेन
पपात भूमौ खलु दण्डवच्च॥ २८
उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतन्त-
माश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम्।
सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं
तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ॥ २९
देवाधिदेवाखिललोकनाथ
कृपानिधे लोकगुरो रमेश।
मन्दस्य मे ते किल दर्शनं य-
त्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम्॥ ३०
ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेता-
स्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात्।
आशापरोऽहं भगवन्ननन्त
योग्यो न ते दर्शने देवदेव॥ ३१
इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णु-
स्तमाह वाक्येन सुधामयेन।
वृणीष्व राजन् मनसेप्सितं ते
ददामि तुष्टस्तपसा तवेति॥ ३२
ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः
प्रोवाच विष्णुं पुरतः स्थितं च।
तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे
पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे॥ ३३

अतएव हे चम्पक! इस बालकको छोड़ आओ, जिससे राजा पुत्र प्राप्त कर लें। यह पृथ्वीलोकमें 'एकवीर'—इस नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इन्द्रकी यह बात सुनकर चम्पक शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर उस स्थानपर पहुँच गया। बालक पहले जहाँ पड़ा हुआ था, वहींपर उसने बालकको रख दिया और अपने विमानपर चढ़कर अपने स्थानको लौट गया॥ २५-२६॥

इसके तुरंत बाद कमलाकान्त जगद्गुरु भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर राजाके यहाँ पहुँचे॥ २७॥

उस समय राजा हरिवर्माने भगवान् विष्णुको उत्तम विमानसे उतरते हुए देखा। भगवान्‌के दर्शनसे राजा अत्यन्त हर्षित हुए और दण्डकी भाँति उनके समक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २८॥

'हे वत्स! उठो'—ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने भूमिपर पड़े हुए अपने भक्तको आश्वासन दिया। इसके बाद राजा हरिवर्मा भी उल्लसित होकर अपने सामने खड़े वासुदेवकी भक्तिपूर्वक स्पष्ट वाणीमें स्तुति करने लगे—॥ २९॥

हे देवाधिदेव! हे अखिललोकनाथ! हे कृपानिधे! हे लोकगुरो! हे रमेश! आपका जो दर्शन योगिजनोंके लिये भी अलभ्य है, वह मुझ अज्ञानीके लिये तो अत्यन्त ही दुर्लभ था॥ ३०॥

जो लोग कामनारहित तथा विषयोंसे मुक्त हैं, उन्हें ही आपका दर्शन हो सकता है। हे भगवन्! हे अनन्त! हे देवदेव! केवल आशापरायण मैं वास्तवमें आपके दर्शनके योग्य नहीं था॥ ३१॥

इस प्रकार उन राजाके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा—हे राजन्! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें मनोवांछित वरदान दूँगा; तुम माँग लो॥ ३२॥

तत्पश्चात् राजाने अपने सामने स्थित विष्णुके चरणोंमें सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मुरारे! मैंने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की है। अतएव आप मुझे अपने ही सदृश पुत्र दीजिये॥ ३३॥

श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेव-
स्तमाह राजानममोघवाक्यम्।
ययातिसूनो व्रज तत्र तीर्थे
कलिन्दकन्यातमसाप्रसङ्गे ॥ ३४
मयाद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते
तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः।
लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च
कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन्॥ ३५
श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं
सन्तुष्टचित्तः प्रबभूव राजा।
हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम
वैकुण्ठलोकं रमया युतश्च॥ ३६
गते हरौ सोऽथ ययातिसूनु-
र्ययावनुद्धातरथेन राजा।
प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र
वचो निशम्येति जनार्दनस्य॥ ३७
स तत्र गत्वातिमनोहरं तं
ददर्श बालं भुवि खेलमानम्।
मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा
श्लक्ष्णं पदाङ्गुष्ठमनन्यसत्त्वः॥ ३८
तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं
नारायणांशं कमलाप्रसूतम्।
हरिप्रभावं हरिवर्मनामा
हर्षप्रफुल्लाननपङ्कजोऽभूत् ॥ ३९
गृह्णन् सुवेगात् करपङ्कजाभ्यां
बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः।
मूर्धन्युपाघ्राय मुदान्वितोऽसौ
ननन्द राजा सुतमालिलिङ्ग॥ ४०
मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं त-
मुवाच नेत्राम्बुनिरुद्धकण्ठः।
दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन
मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः॥ ४१
तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे
सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम्।
तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण
दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय॥ ४२

राजाकी प्रार्थना सुनकर आदिदेव भगवान् विष्णुने राजासे सार्थक वचन कहा—हे ययातिनन्दन! तुम इसी समय यमुना तथा तमसा नदीके उस पावन संगम तीर्थपर चले जाओ। हे राजन्! आप जैसा पुत्र चाहते हैं, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख दिया है। मेरे तेजसे प्रादुर्भूत वह पुत्र अमित प्रभाववाला है तथा लक्ष्मीजीने उसे उत्पन्न किया है। तुम्हारे लिये ही उसकी उत्पत्ति की गयी है, अतः तुम उसे ग्रहण करो॥ ३४-३५॥

भगवान् विष्णुकी अत्यन्त मधुर वाणी सुनकर राजाके मनमें प्रसन्नता हुई। राजाको यह वरदान देकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ ३६॥

भगवान् विष्णुके चले जानेपर उन जनार्दनकी बात सुनकर आनन्दविभोर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक अप्रतिहत गति वाले रथपर आरूढ़ होकर उस स्थानपर गये, जहाँ बालक स्थित था॥ ३७॥

वहाँ पहुँचनेपर परम तेजस्वी राजाने उस अति मनोहर बालकको एक हाथसे पैरका कोमल अँगूठा मुखमें डालकर भूमिपर खेलता हुआ देखा॥ ३८॥

लक्ष्मीजीसे उत्पन्न भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप तथा उन्हींके समान प्रभावशाली एवं कामदेवके सदृश रूपवान् उस पुत्रको देखकर राजा हरिवर्माका मुखारविन्द हर्षसे खिल उठा। उस बालकको अपने करकमलोंसे बड़ी तेजीसे उठाते हुए राजा हरिवर्मा प्रेमसागरमें मग्न हो गये। प्रसन्नतापूर्वक उसका मस्तक सूँघकर उन राजाने पुत्रका आलिंगन किया और अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया॥ ३९-४०॥

उस बालकका अत्यन्त मनोहर मुख देखकर प्रेमके अश्रुसे रुँधे कण्ठवाले राजाने उससे कहा—हे पुत्र! भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मीके द्वारा तुम मेरे लिये प्रदान किये गये हो। हे पुत्र! नरकभोगके दुःखसे भयभीत होकर मैंने तुम्हारे लिये पूरे सौ वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्या की है। उसी तपसे प्रसन्न होकर रमाकान्त विष्णुने सांसारिक सुख भोगनेके लिये तुम्हें पुत्ररूपमें मुझे प्रदान किया है॥ ४१-४२॥

माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे
त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता।
धन्या तु सा या प्रहसन्तमङ्के
कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात्॥ ४३
त्वमेव संसारसमुद्रनौका-
रूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीधरेण।
इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं
मुदा समादाय ययौ गृहाय॥ ४४
पुरीसमीपे नृपमागतं त-
माकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः।
ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः
सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च॥ ४५
बन्दीजना गायनकाश्च सूताः
समाययुः सम्मुखमाशु राज्ञः।
नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं
जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या॥ ४६
सम्पूजितः पौरजनेन राजा
विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम्।
मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समन्ता-
द्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम॥ ४७
गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः
सुतं समादाय मुदा कराभ्याम्।
राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं
सद्यःप्रसूतं च मनोभवाभम्॥ ४८
राज्ञी गृहीत्वाभिनवं तनूजं
पप्रच्छ राजानमनिन्दिता सा।
राजन् कुतश्चैष सुतः सुजन्मा
प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः॥ ४९
केनैष दत्तः कथयाशु कान्त
चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन।
नृपस्तदोवाच मुदान्वितोऽसौ
प्रिये रमेशेन सुतो हि मह्यम्॥ ५०
लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो
जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः।
सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी
राजा चकारोत्सवमद्भुतं च॥ ५१

लक्ष्मीजी तुम्हारी जननी हैं; तुझ पुत्रको मेरे लिये छोड़कर वे भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठ चली गयी हैं। अब वह माता धन्य होगी, जो तुझ-जैसे हँसते हुए पुत्रको अपनी गोदमें लेकर आनन्द प्राप्त करेगी। हे पुत्र! मेरे लिये संसारसागरको पार करनेके लिये तुम नौकास्वरूप हो, जिसे साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने उत्पन्न किया है। ऐसा कहकर राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर अपने घरकी ओर चले गये॥ ४३-४४॥

राजा नगरके समीप आ गये हैं—ऐसा सुनकर राजाके सभी सचिव तथा उनके प्रजावर्ग पुरोहितोंके साथ समस्त उपहार-सामग्री लेकर उनके पास पहुँच गये॥ ४५॥

सूत, बंदीजन तथा गायकगण भी राजाके सामने उनका यशोगान करते हुए शीघ्र ही आ गये। नगरमें आकर राजा हरिवर्मा अपने सम्मुख उपस्थित लोगोंको [स्नेहभरी] दृष्टि तथा [मधुर] वचनोंसे आश्वस्त करके नगरवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर पुत्रके साथ नगरीमें प्रविष्ट हुए। नगरमें जाते समय रास्तेभर राजाके ऊपर लाजा तथा फूलोंकी वर्षा की जा रही थी॥ ४६-४७॥

सचिवोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें पहुँचनेपर राजाने हर्षपूर्वक कामदेवके तुल्य कान्तिमान् तथा मनोहर नवजात पुत्रको दोनों हाथोंमें लेकर रानीको दे दिया॥ ४८॥

उस बालकको गोदमें लेकर पुण्यात्मा रानीने राजासे पूछा—हे राजन्! कामदेवके समान सुन्दर तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न इस पुत्रको आपने कहाँसे प्राप्त किया? हे कान्त! आप शीघ्र बताइये कि किसने आपको यह बालक दिया है? इस पुत्रने अपने सौन्दर्यसे मेरे मनको वशीभूत कर लिया है। तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—हे प्रिये! हे चंचल नेत्रोंवाली! लक्ष्मीजीसे उत्पन्न तथा भगवान् जनार्दनका अंशस्वरूप यह महान् शक्तिशाली पुत्र मुझे स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने ही दिया है। उस पुत्रको लेकर रानी परम आनन्दित हुईं और राजाने अद्भुत उत्सव मनाया॥ ४९—५१॥

ददौ च दानं किल याचकेभ्यो
गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः।
कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य
नामैकवीरेति चकार विश्रुतम्॥ ५२
सुखं च सम्प्राप्य मुदान्वितोऽसौ
ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः।
पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं
सम्प्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः॥ ५३
इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं
सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा।
विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमानो
व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः॥ ५४

राजाने याचकोंको दान दिया। इस अवसरपर गीत गाये गये तथा अनेक वाद्य बजाये गये। सम्यक् उत्सव करके राजाने अपने पुत्रका 'एकवीर'—यह प्रसिद्ध नाम रखा। वे सुख पाकर बहुत प्रसन्न हुए तथा आनन्दित हुए। इन्द्रके समान पराक्रमशाली राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुके सदृश रूपवान् तथा गुणी पुत्र पाकर वंशऋण (पितृऋण)-से मुक्त हो गये॥ ५२-५३॥

इस प्रकार समस्त देवताओंके अधिपति भगवान् विष्णुके द्वारा अर्पित किये गये उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको प्राप्त करके इन्द्रके समान प्रतापी राजा हरिवर्मा अपनी भार्याके साथ नानाविध सुख भोगते हुए तथा विनोद करते हुए अपने महलमें रहने लगे॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
एकवीराख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~o~~

अथैकविंशोऽध्यायः

आखेटके लिये वनमें गये राजासे एकावलीकी सखी यशोवतीकी भेंट, एकावलीके जन्मकी कथा

व्यास उवाच

जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा।
दिने दिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः॥ १

नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम्।
ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना॥ २

षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि।
तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम्॥ ३

चकार ब्राह्मणान् द्रव्यैः सम्पूज्य विविधैर्धनैः।
गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि॥ ४

वर्षे चैकादशे तस्य मौञ्जीबन्धनकर्म वै।
कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः॥ ५

अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम्।
दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः॥ ६

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् राजा हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। भलीभाँति पालित-पोषित होनेके कारण वह बालक दिनोदिन शीघ्रतासे बढ़ने लगा॥ १॥

इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख प्राप्त करके उन महात्मा नरेशने अपनेको अब तीनों ऋणोंसे मुक्त मान लिया॥ २॥

राजा हरिवर्माने छठें महीनेमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करके तीसरे वर्षमें शुभ मुण्डन-संस्कार विधि-विधानके साथ सम्पन्न किया। इनमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् पूजा करके उन्हें विविध धन-द्रव्यों तथा गौओंका दान किया गया और अन्य याचकोंको भी नानाविध दान दिये॥ ३-४॥

ग्यारहवें वर्षमें उस बालकका यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर राजाने उसको धनुर्वेद पढ़वाया॥ ५॥

राजा हरिवर्माने उस पुत्रको धनुर्वेद तथा राजधर्ममें पूर्ण निष्णात हुआ देखकर उसका राज्याभिषेक करनेका निश्चय किया॥ ६॥

पुष्यार्कयोगसंयुक्ते दिवसे नृपसत्तमः।
कारयामास सम्भारानभिषेकार्थमादरात्॥ ७

द्विजानाहूय वेदज्ञान् सर्वशास्त्रविचक्षणान्।
अभिषेकं चकारासौ विधिवत् स्वात्मजस्य ह॥ ८

जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः।
स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने॥ ९

धनं दत्त्वाथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः।
जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः॥ १०

एकवीरं नृपं कृत्वा सम्मान्य सचिवानथ।
भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी॥ ११

मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम्।
नित्यं पत्रफलाहारश्चिन्तयामास पार्वतीम्॥ १२

एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टान्ते सह भार्यया।
मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा॥ १३

इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाथ हैहयः।
चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदैहिकम्॥ १४

कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनन्दनः।
राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसम्मतम्॥ १५

एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
बुभुजे विविधान् भोगान् सचिवैश्च सुमानितः॥ १६

एकस्मिन् दिवसे राजा मन्त्रिपुत्रैः समन्वितः।
जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान्॥ १७

सम्पश्यन् पादपान् रम्यान् कोकिलालापसंयुतान्।
पुष्पितान् फलसंयुक्तान् षट्पदालिविराजितान्॥ १८

तत्पश्चात् श्रेष्ठ राजाने पुष्यार्क-योगसे युक्त शुभ दिनमें बड़े आदरके साथ अभिषेकहेतु सभी सामग्रियाँ एकत्र करवायीं॥ ७॥

सभी शास्त्रोंमें पूर्ण पारंगत तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्होंने विधिवत् अपने पुत्रका अभिषेक सम्पन्न किया। सभी तीर्थों तथा समुद्रोंसे जल मँगाकर राजाने शुभ दिनमें पुत्रका स्वयं अभिषेक किया॥ ८-९॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको धन देकर तथा पुत्रको राज्य सौंपकर उन राजा हरिवर्माने स्वर्गप्राप्तिकी कामनासे वनके लिये शीघ्र ही प्रस्थान किया॥ १०॥

इस प्रकार एकवीरको राजा बनाकर तथा योग्य मन्त्रियोंको नियुक्तकर इन्द्रियजित् राजा हरिवर्माने अपनी भार्याके साथ वनमें प्रवेश किया॥ ११॥

मैनाकपर्वतके शिखरपर तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ)-का आश्रय लेकर वे राजा प्रतिदिन वनके पत्तों तथा फलोंका आहार करते हुए भगवती पार्वतीकी आराधना करने लगे॥ १२॥

इस प्रकार अपनी भार्याके साथ वानप्रस्थ-आश्रमका पालन करके वे राजा प्रारब्ध कर्मके समाप्त हो जानेपर मृत्युको प्राप्त हुए और अपने पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोक चले गये॥ १३॥

पिता इन्द्रलोक चले गये—ऐसा सुनकर हैहय एकवीरने वैदिक विधानके अनुसार उनका और्ध्वदैहिक संस्कार सम्पन्न किया॥ १४॥

पिताकी सभी श्राद्ध आदि क्रियाएँ सम्पन्न करके सबकी सहमतिसे पिताद्वारा दिये गये राज्यपर वह मेधावी राजकुमार एकवीर शासन करने लगा॥ १५॥

उत्कृष्ट राज्य प्राप्त करके धर्मपरायण एकवीर सभी मन्त्रियोंसे सम्मानित रहते हुए अनेकविध सुखोंका उपभोग करने लगे॥ १६॥

एक दिन प्रतापी राजा एकवीर मन्त्रियोंके पुत्रोंके साथ घोड़ेपर आरूढ़ होकर गंगाके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कोकिलोंकी कूजसे गुंजित, भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित तथा फलों-फूलोंसे लदे मनोहर वृक्षों; वेदपाठकी ध्वनिसे निनादित, हवनके धुएँसे आच्छादित आकाश-मण्डलवाले, मृगोंके छोटे शिशुओंसे आवृत

मुनीनामाश्रमान् दिव्यान् वेदध्वनिनिनादितान्।
होमधूमावृताकाशान् मृगशावसमावृतान्॥ १९

केदाराञ्छालिसम्पक्वान् गोपिकाभिः सुरक्षितान्।
प्रफुल्लपङ्कजारामान्निकुञ्जांश्च मनोरमान्॥ २०

प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान् पनसद्रुमान्।
बकुलांस्तिलकान्नीपान् मन्दारांश्च प्रफुल्लितान्॥ २१

शालांस्तालांस्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान्।
स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम्॥ २२

पङ्कजं चातिगन्धाढ्यमपश्यदवनीपतिः।
दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमललोचनाम्॥ २३

कनकाभां सुकेशीं च कम्बुग्रीवां कृशोदरीम्।
बिम्बोष्ठीं सुन्दरीं किञ्चित्समुद्यत्सुपयोधराम्॥ २४

सुनासां चारुसर्वाङ्गीमपश्यत् कन्यकां नृपः।
रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम्॥ २५

साश्रुनेत्रां क्रन्दमानां विजने कुररीमिव।
संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम्॥ २६

सुनसे ब्रूहि कासि त्वं कस्य पुत्री शुभानने।
गन्धर्वी देवकन्याथ कथं रोदिषि सुन्दरि॥ २७

कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे।
पतिस्ते क्व गतः कान्ते पिता वा ब्रूहि साम्प्रतम्॥ २८

किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममान्तिके।
करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि॥ २९

न राज्ये मम तन्वङ्गि पीडां कोऽपि करोत्यलम्।
न भयं चौरजं कान्ते न राक्षसभयं तथा॥ ३०

मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणा भुवि।
भयं न व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत्॥ ३१

वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे।
करोषि त्राणहीनात्र किं ते दुःखं वदस्व मे॥ ३२

दिव्य मुनि-आश्रमों; गोपिकाओंके द्वारा सुरक्षित तथा पके हुए शालिधान्यसे युक्त खेतों; विकसित कमलोंसे सुशोभित अनेक सरोवरों तथा मनको आकर्षित करनेवाले निकुंजोंको देखा। उन राजा एकवीरने प्रियाल, चम्पक, कटहल, बकुल, तिलक, नीप, पुष्पित मन्दार, शाल, ताल, तमाल, जामुन, आम और कदम्बके आदि वृक्षोंको देखते हुए कुछ दूर आगे जानेपर गंगाके जलमें उत्कृष्ट गन्धयुक्त एक खिला हुआ शतदल कमल देखा। राजाने उस कमलके दक्षिण भागमें कमलसदृश नेत्रोंवाली, स्वर्णके समान कान्तिवाली, सुन्दर केश-पाशवाली, शंखतुल्य गर्दनवाली, कृश कटिप्रदेशवाली, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, किंचित् स्फुट पयोधरवाली, मनोहर नासिकावाली तथा समस्त सुन्दर अंगोंवाली एक सुन्दरी कन्याको देखा। अपनी सखीसे बिछुड़ जानेसे व्याकुल होकर दुःखपूर्वक विलाप करती हुई, निर्जन वनमें आँखोंमें आँसू भरकर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछा॥ १७—२६॥

हे सुन्दर नासिकावाली! तुम कौन हो? हे सुमुखि! तुम किसकी पुत्री हो? तुम गन्धर्वकन्या हो अथवा देवकन्या? हे सुन्दरि! तुम क्यों रो रही हो? यह मुझे बताओ॥ २७॥

हे बाले! तुम यहाँ अकेली क्यों हो? हे पिकस्वरे! तुम्हें यहाँ किसने छोड़ दिया है? हे प्रिये! तुम्हारे पति अथवा पिता इस समय कहाँ चले गये हैं? मुझे बताओ॥ २८॥

हे वक्र भौंहोंवाली! तुम्हें क्या दुःख है? उसे मेरे सामने अभी व्यक्त करो। हे कृशोदरि! मैं सब प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करूँगा॥ २९॥

हे तन्वंगि! मेरे राज्यमें कोई भी प्राणी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचा सकता और हे कान्ते! कहीं न तो चोरोंका भय है और न राक्षसोंका ही भय है॥ ३०॥

मुझ नरेशके शासन करते हुए इस पृथ्वीपर भीषण उत्पात नहीं हो सकते; बाघ अथवा सिंहसे किसीको भय नहीं हो सकता और किसीको कोई भी भय नहीं रहता॥ ३१॥

हे वामोरु! असहाय होकर तुम गंगातटपर क्यों विलाप कर रही हो, तुम्हें क्या दुःख है? मुझे बताओ॥ ३२॥

हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले।
दैवं च मानुषं कान्ते व्रतमेतन्ममाद्भुतम्॥ ३३

विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिन्तितम्।
इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना॥ ३४

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम्।
विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते॥ ३५

प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम्।
तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः॥ ३६

रैभ्यो नाम महाराजः सन्तानरहितो भृशम्।
तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः॥ ३७

सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षणसंयुता।
अपुत्रा दुःखिता कान्तमित्युवाच पुनः पुनः॥ ३८

किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम।
वन्ध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले॥ ३९

इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम्।
चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा॥ ४०

पुत्रकामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम्।
हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात्॥ ४१

आविर्बभूव चार्वङ्गी कन्यका शुभलक्षणा।
बिम्बोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचन्द्रनिभानना॥ ४२

कनकाभा सुकेशान्ता रक्तपाणितला मृदुः।
सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम्॥ ४३

हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा।
होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम्॥ ४४

राजन् पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम्।
एकावलीव सम्भूता हूयमानाद्धुताशनात्॥ ४५

हे कान्ते! मैं जगत्के प्राणियोंके अत्यन्त भीषण दैविक तथा मानुषिक कष्टको भी दूर करता हूँ; यह मेरा अद्भुत व्रत है। हे विशालनयने! बताओ, मैं तुम्हारा वांछित कार्य करूँगा॥ ३३½ ॥

राजाके ऐसा कहनेपर उसे सुनकर मधुरभाषिणी कन्याने कहा—हे राजेन्द्र! सुनिये, मैं आपको अपने शोकका कारण बता रही हूँ। हे राजन्! विपदारहित प्राणी भला क्यों रोयेगा? हे महाबाहो! मैं जिसलिये रो रही हूँ, वह आपको बता रही हूँ। आपके राज्यसे भिन्न दूसरे देशमें रैभ्य नामक एक महान् धार्मिक राजा हैं, वे महाराज सन्तानहीन हैं, उनकी पत्नी रुक्मरेखा—इस नामसे प्रसिद्ध हैं। वे परम रूपवती, बुद्धिमती, पतिव्रता तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। पुत्रहीन होनेसे दुःखित रहनेके कारण वे अपने पतिसे बार-बार कहा करती थीं—हे नाथ! मेरे इस जीवनसे क्या लाभ? इस जगत्में मुझ वन्ध्या, पुत्रहीन तथा सुखरहित नारीके इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है॥ ३४—३९॥

इस प्रकार अपनी भार्यासे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्यने यज्ञके ज्ञाता ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उत्तम यज्ञ सम्पन्न किया॥ ४०॥

पुत्राभिलाषी राजा रैभ्यने शास्त्रोक्त रीतिसे प्रचुर धन दान दिया। घृतकी आहुति अधिक पड़ते रहनेसे तीव्र प्रभायुक्त अग्निसे सुन्दर अंगोंवाली, शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, सुन्दर दाँतों तथा भौंहोंवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, स्वर्णके समान आभावाली, सुन्दर केशोंवाली, रक्त हथेलियोंवाली, कोमल, सुन्दर लाल नेत्रोंवाली, कृश शरीरवाली तथा रक्त पादतल [तलवे]-वाली एक कन्या प्रकट हुई॥ ४१—४३॥

तब होताने अग्निसे उत्पन्न हुई उस कन्याको स्वीकार कर लिया। इसके बाद उस सुन्दर कन्याको लेकर होताने राजा रैभ्यसे कहा—हे राजन्! समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न इस पुत्रीको ग्रहण कीजिये। हवन करते समय अग्निसे उत्पन्न यह कन्या मोतियोंकी मालाके समान प्रतीत होती है। अतः हे राजन्! यह

नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति।
सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया॥ ४६

सन्तोषं कुरु राजेन्द्र दत्ता देवेन विष्णुना।
होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम्॥ ४७

जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसम्मताम्।
गृहीत्वा नृपतिस्तां तु ददौ पत्न्यै वराननाम्॥ ४८

आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुताम्।
सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम्॥ ४९

जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम्।
चकार मङ्गलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम्॥ ५०

पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः।
समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम्॥ ५१

दत्त्वा विसृज्य विप्रेन्द्रान् मुदं प्राप महीपतिः।
दिने दिनेऽसितापाङ्गी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ॥ ५२

मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता।
उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः॥ ५३

पुत्री पुत्रसमात्यर्थं बभूव वल्लभा किल।
राज्ञो मन्त्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते॥ ५४

यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः।
वयस्याहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह॥ ५५

सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम्।
एकावली गन्धवन्ति यत्र पद्मानि पश्यति॥ ५६

तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात्।
सुदूरे जाह्नवीतीरे भवन्ति कमलान्यपि॥ ५७

पुत्री जगत्में 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी। पुत्रतुल्य इस कन्याको प्राप्तकर आप सुखी हो जायँ। हे राजेन्द्र! सन्तोष कीजिये; भगवान् विष्णुने आपको यह कन्या दी है॥ ४४—४६½॥

होताकी बात सुनकर राजाने उस सुन्दर कन्याकी ओर देखकर होताके द्वारा प्रदत्त उस कन्याको अति प्रसन्न होकर ले लिया। राजाने सुन्दर मुखवाली उस कन्याको ले करके अपनी पत्नी रुक्मरेखाको यह कहकर दे दिया कि हे सुभगे! इस कन्याको स्वीकार करो। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस मनोहर कन्याको पाकर रानी बहुत हर्षित हुईं; वे ऐसी सुखी हो गयीं मानो उन्हें पुत्र प्राप्त हो गया हो॥ ४७—४९½॥

तत्पश्चात् राजाने उसके जातकर्म आदि सभी शुभ मंगल कार्य सम्पन्न किये तथा पुत्रजन्मके अवसरपर होनेवाले जो कुछ भी कार्य थे, वे सब उन्होंने विधिपूर्वक सम्पन्न कराये। यज्ञ सम्पन्न करके राजा रैभ्य ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणा देकर तथा सभी विप्रेन्द्रोंको विदाकर अत्यन्त आनन्दित हुए॥ ५०-५१½॥

श्याम नेत्रोंवाली वह कन्या पुत्रवृद्धिके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसे देखकर उस समय रानी अपनेको पुत्रवती समझकर परम आनन्दित हुईं। उस दिन महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रजन्मके अवसरपर मनाया जाता है। वह पुत्री उन दोनोंके लिये पुत्रके ही सदृश प्रिय हो गयी॥ ५२-५३½॥

हे सुबुद्धे! हे कामदेवसदृश रूपवाले! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मन्त्रीकी पुत्री हूँ। मेरा नाम यशोवती है। मेरी तथा एकावलीकी अवस्था समान है। उसके साथ खेलनेके लिये राजाने मुझे उसकी सखी बना दिया। इस प्रकार मैं उसकी सहचरी बनकर प्रेमपूर्वक दिन-रात उसके साथ रहने लगी॥ ५४-५५½॥

एकावली जहाँ भी सुगन्धित कमल देखती थी, वह बाला वहीं खेलने लग जाती थी; अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था। [एक बार] गंगाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे। राजकुमारी एकावली सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ

रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता।
मया निवेदितं राजन् पुत्री ते कमलाकरान्॥ ५८

प्रेक्षमाणातिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने।
निषेधिताथ पित्रासौ गृहे कृत्वा जलाशयान्॥ ५९

कमलान् वापयित्वाथ पुष्पितान् भ्रमरावृतान्।
तथापि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना॥ ६०

तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः।
एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता।
क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च॥ ६१

चली गयी। [इससे चिन्तित होकर] मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—हे राजन्! आपकी पुत्री एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है। तब उसके पिताने घरपर ही अनेक जलाशयोंका निर्माण कराकर उनमें पुष्पित तथा भौंरोंसे आवृत कमल लगवाकर उसे दूर जानेसे मना कर दिया। इसपर भी मनमें कमलोंके प्रति आसक्ति रखनेवाली वह कन्या बाहर निकल जाती थी। तब राजाने उसके साथ हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए रक्षक नियुक्त कर दिये। इस प्रकार रक्षित होकर वह सुन्दरी मेरे तथा सखियोंसहित क्रीडाके लिये गंगातटपर प्रतिदिन आया-जाया करती थी॥ ५६—६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
राजपुत्र्या एकावल्या वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

यशोवतीका एकवीरसे कालकेतुद्वारा एकावलीके अपहृत होनेकी बात बताना

यशोवत्युवाच

प्रातरुत्थाय तन्वङ्गी चलिता च सखीयुता।
चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः॥ १

सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी।
क्रीडार्थमत्र राजेन्द्र सम्प्राप्ता नलिनीं शुभाम्॥ २

अहमप्यनया सार्धं गङ्गातीरे समागता।
अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया॥ ३

एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा।
सहसैव तदायातो दानवो बलसंयुतः॥ ४

कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः।
परिघासिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः॥ ५

दृष्ट्वा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी।
द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपङ्कजैः॥ ६

मयोक्तैकावली राजन् कोऽयं दैत्यः समागतः।
गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पङ्कजलोचने॥ ७

यशोवती बोली—एक बार वह सुन्दरी एकावली प्रातःकाल उठकर अपनी सखियोंके साथ बाहर निकल पड़ी। वह बहुत-से रक्षकोंसे रक्षित थी तथा उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे। हे राजेन्द्र! वह सुन्दरी यहाँ सुन्दर कमलोंके पास क्रीड़ा करनेके लिये आयी थी॥ १-२॥

कमलोंसे खेलनेकी रुचिवाली इस कन्याके साथ मैं भी अप्सराओंसहित गंगाके तटपर आयी थी॥ ३॥

जब मैं तथा एकावली दोनों खेलनेमें व्यस्त हो गयीं, उसी समय हाथोंमें परिघ, तलवार, गदा, धनुष, बाण तथा तोमर धारण किये हुए बहुत-से राक्षसोंके साथ कालकेतु नामक बलवान् दानव वहाँ अकस्मात् आ पहुँचा॥ ४-५॥

उसने कमलोंके साथ क्रीडा करती हुई उस रूप-यौवनसम्पन्न तथा दूसरी कामपत्नी रतिकी भाँति प्रतीत हो रही एकावलीको देख लिया॥ ६॥

हे राजन्! मैंने एकावलीसे कहा—हे कमलनयने! यह कौन-सा दैत्य आ गया है! अब हम दोनों रक्षकोंके पास भाग चलें॥ ७॥

विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात्।
मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज॥ ८

कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः।
गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः॥ ९

रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहाम्बुजलोचनाम्।
त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रन्दमानां कृशोदरीम्॥ १०

त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः।
न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः॥ ११

तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो रक्षकास्तं महाबलम्।
प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम्॥ १२

तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वतः शस्त्रपाणयः।
युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्ये कृतोद्यमाः॥ १३

संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे।
निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः॥ १४

युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति।
वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु॥ १५

पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम।
विक्रोशन्ती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा॥ १६

सापि मामागतां वीक्ष्य किञ्चित्स्वस्थाभवत्तदा।
गताहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः॥ १७

सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तम्भस्वेदसमाकुला।
कण्ठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता॥ १८

स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः।
समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चञ्चललोचनाम्॥ १९

हे राजकुमार! इस प्रकार विचारविमर्श करके सखी एकावली तथा मैं भयभीत होनेके कारण शस्त्रधारी सैनिकोंके बीच तुरंत चली गयी॥ ८॥

वह कामातुर कालकेतु उस मोहिनी एकावलीको देखकर अपनी विशाल गदा लेकर दौड़ता हुआ पासमें आ गया और उसने रक्षकोंको हटाकर डरके मारे काँपती तथा रोती हुई कृश कटिप्रदेशवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली एकावलीको पकड़ लिया॥ ९-१०॥

'इस राजकुमारीको छोड़ दो और मुझे ग्रहण कर लो'—ऐसा मेरे कहनेपर भी उसने मुझे स्वीकार नहीं किया और कामके वशीभूत वह दानव एकावलीको लेकर वहाँसे निकल गया॥ ११॥

रक्षकोंने 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए उस महाबलीको रोककर उसके साथ विस्मयकारक युद्ध किया॥ १२॥

अपने स्वामीके कार्यमें पूर्ण तत्पर तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये उसके सभी क्रूर राक्षसोंने भी रक्षकोंके साथ भीषण युद्ध किया। तब उन रक्षकोंके साथ कालकेतुका संग्राम होने लगा। वह महाबली युद्धमें सभी रक्षकोंको मारकर तथा एकावलीको लेकर राक्षसी सेनाके साथ अपने नगरके लिये चल दिया। दानव कालकेतुके द्वारा अधिकारमें की गयी उस राजकुमारीको रोती हुई देखकर मैं उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँच जाती थी, जहाँ कालकेतु मेरी सखीको लेकर जाता था जिससे कि रोती हुई वह मुझे अपने पीछे आते हुए देख ले॥ १३—१६॥

मुझे आयी हुई देखकर वह भी कुछ स्वस्थचित्त हुई तब मैं उसके पास जाकर उससे बार-बार बातें करने लगी॥ १७॥

हे राजन्! दुःखसे व्याकुल तथा पसीनेसे संसिक्त उस एकावलीने मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया और वह अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी॥ १८॥

तत्पश्चात् उस कालकेतुने प्रेम प्रदर्शित करते हुए मुझसे यह बात कही कि चंचल नेत्रोंवाली अपनी इस भयग्रस्त सखीको धीरज बँधाओ और अपनी इस सखीसे [मेरी बात] कहो—'हे प्रिये! देवलोकके समान अत्यन्त

प्राप्तं ममाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये।
दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रन्दसि कातरा॥ २०

कथयैनां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने।
इत्युक्त्वा मां सखीपार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे॥ २१

जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे।
सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनाम्बुजः॥ २२

एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे।
राक्षसान् गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः॥ २३

द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृप।
प्रबोधय सखीं बालां शोचन्तीं विरहातुराम्॥ २४

पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुङ्क्ष्व यथेप्सितम्।
राज्यं त्वदीयं चन्द्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव॥ २५

पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम्।
नाहं क्षमाप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो॥ २६

इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः।
उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम्॥ २७

कृशोदरि त्वया मन्त्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि।
तेन मे हृदयं कान्ते हृतं ते वशतां गतम्॥ २८

तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः।
भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम्॥ २९

यौवनं याति रम्भोरु चञ्चलं दुर्लभं तदा।
सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च॥ ३०

एकावल्युवाच

पित्राहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै।
हैहयस्तु महाभाग स मया मनसा वृतः॥ ३१

सुन्दर मेरा नगर अब आ ही गया है। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हारा दास हो चुका हूँ। तुम भयभीत होकर क्यों विलाप कर रही हो? हे सुलोचने! अब शान्त हो जाओ'—ऐसा कहकर उसी उत्तम रथमें सखीके पास मुझे भी बैठाकर प्रसन्नताके कारण खिले हुए कमलके समान मुखवाला दुष्ट कालकेतु अपनी भारी सेनाके साथ अपने सुन्दर नगरके लिये शीघ्र ही चल दिया॥ १९—२२॥

वहाँ उस दानवने मुझे तथा एकावलीको एक दिव्य महलमें ठहराकर उस महलकी रक्षाके लिये करोड़ों राक्षस नियुक्त कर दिये॥ २३॥

हे राजन्! दूसरे दिन उस कालकेतुने एकान्तमें मुझसे कहा—विरहसे दुःखित तथा शोक करती हुई अपनी सुन्दर सखीको [मेरे शब्दोंमें] समझाओ—'हे सुश्रोणि! तुम मेरी पत्नी हो जाओ और फिर यथेच्छ सुखोपभोग करो। हे चन्द्रमुखि! अब यह राज्य तुम्हारा है और मैं सदाके लिये तुम्हारा सेवक बन गया हूँ'॥ २४-२५॥

उसका ऐसा दुर्वचन सुनकर मैंने उससे यह बात कही कि हे प्रभो! मैं ऐसा अप्रिय वाक्य नहीं कह सकती, अतः आप ही इससे कहिये॥ २६॥

मेरे ऐसा कहनेपर कामसे आहत चित्तवाले उस दुष्ट दानवने कृश उदरवाली मेरी उस प्रिय सखीसे विनयपूर्वक कहा—॥ २७॥

हे कृशोदरि! तुमने मेरे ऊपर कोई मन्त्र-प्रयोग कर दिया है। हे कान्ते! उसीसे मोहित होकर मेरा मन तुम्हारे वशमें हो चुका है। उसी मन्त्रने मुझे अब तुम्हारा दास बना दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिये कामबाणसे आहत मुझ अत्यन्त विवशको अब तुम स्वीकार कर लो। हे रम्भोरु! तुम्हारा दुर्लभ तथा चंचल यौवन व्यर्थ जा रहा है। इसलिये हे कल्याणि! पतिभावसे मेरा आलिंगन करके इसे सफल कर लो॥ २८—३०॥

एकावली बोली—मेरे पिता राजकुमार हैहयको मुझे देनेका पहले ही निश्चय कर चुके हैं। मैंने भी उन महाभागका मनसे वरण कर लिया है॥ ३१॥

कथमन्यं भजे कान्तं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।
कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम्॥ ३२

यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात्।
परतन्त्रा सदा कन्या न स्वातन्त्र्यं कदाचन॥ ३३

इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः।
न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा॥ ३४

पातालविवरे तस्य पुरं परमसङ्कटे।
राक्षसै रक्षितं दुर्गं मण्डितं परिखावृतम्॥ ३५

तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा।
तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि सुदुःखिता॥ ३६

एकवीर उवाच

कथं त्वमत्र सम्प्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः।
विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने॥ ३७

त्वया च कथितं वाक्यं सन्दिग्धं भाति भामिनि।
हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम साम्प्रतम्॥ ३८

हैहयो नाम राजाहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः।
मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना॥ ३९

एतन्मे संशयं सुभ्रु छेत्तुमर्हसि भामिनि।
अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम्॥ ४०

स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते।
राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता॥ ४१

सनातनधर्मका त्याग करके तथा कन्याधर्म छोड़कर मैं दूसरेको पतिरूपमें कैसे स्वीकार करूँ? आप भी तो शास्त्रीय नियमको जानते ही हैं। पिता कन्याको जिसे सौंप दे, कन्या उसीको पति बना ले। कन्या इस विषयमें सदा पराधीन रहती है, उसे स्वतन्त्रता कभी नहीं रहती॥ ३२-३३॥

[हे राजकुमार!] उस एकावलीके ऐसा कहनेपर भी वह पापात्मा कालकेतु राजकुमारीपर मोहित रहनेके कारण अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और उसने विशाल नेत्रोंवाली एकावलीको तथा उसके पासमें स्थित मुझको नहीं छोड़ा॥ ३४॥

उस कालकेतुका नगर अनेक प्रकारके संकटोंसे युक्त एक पाताल-विवरमें विद्यमान है। वहींपर चारों ओर खाइयोंसे घिरा हुआ तथा राक्षसोंसे पूर्णतया रक्षित उसका सुन्दर दुर्ग है। मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली वहींपर दुःखके साथ पड़ी हुई है। इसलिये उसके विरहसे अत्यन्त व्यथित होकर मैं यहाँ विलाप कर रही हूँ॥ ३५-३६॥

एकवीरने कहा—हे वरानने! उस दुष्टात्मा कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ गयी? इस बातसे मैं बहुत ही आश्चर्यचकित हूँ; तुम मुझसे इस विषयमें बताओ॥ ३७॥

हे भामिनि! अभी तुमने जो कहा है कि एकावलीके पिताने उसका विवाह हैहयके साथ करनेका निश्चय किया है, वह बात मुझे अत्यन्त सन्देहास्पद प्रतीत हो रही है। हैहय नामका राजा मैं ही हूँ; अन्य कोई राजा नहीं है। सुन्दर नेत्रोंवाली वह तुम्हारी सखी अपने पिताके द्वारा कहीं मेरे लिये ही तो कल्पित नहीं की गयी है?॥ ३८-३९॥

हे सुभ्रु! हे भामिनि! तुम मेरे इस सन्देहको दूर करो। मैं उस अधम राक्षसका वध करके उस एकावलीको ले आऊँगा। हे सुव्रते! यदि तुम उस राक्षसका स्थान जानती हो तो वह स्थान मुझे दिखा दो। उसके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह बताया अथवा नहीं कि वह अत्यन्त दुःखित है॥ ४०-४१॥

यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम्।
नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे॥ ४२

बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः।
असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम्॥ ४३

त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान्।
सख्याः पङ्कजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम्॥ ४४

कदा पश्यामि तां कान्तां मोचयित्वातिसङ्कटात्।
इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम्॥ ४५

ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे।
कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद॥ ४६

यशोवत्युवाच

बालभावान्मया मन्त्रो भगवत्या विशांपते।
प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः॥ ४७

तत्रावस्थितया राजन् मया चित्ते विचारितम्।
आराधयामि सततं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ ४८

सा देवी सेविता कामं बन्धमोक्षं करिष्यति।
भक्तानुकम्पिनी शक्तिः समर्था सर्वसाधने॥ ४९

या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः।
कल्पान्ते संहरत्येव निराकारा निराश्रया॥ ५०

इति सञ्चिन्त्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्।
ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि॥ ५१

संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रजाप्यपराभवम्।
उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना॥ ५२

जिसकी ऐसी प्रिय पुत्री हो, क्या वह उसके हरणको नहीं जानता? और फिर उसने एकावलीकी मुक्तिके लिये क्या कोई प्रयास नहीं किया?॥ ४२॥

अपनी पुत्रीको बन्दी बनाया गया जाननेके बाद भी राजा स्थिरचित्त होकर कैसे चुप बैठे हैं? अथवा राजा कुछ कर पानेमें असमर्थ तो नहीं हैं? मुझे इसका कारण शीघ्र बताओ॥ ४३॥

हे कमलनयने! तुमने अपनी सखीके अलौकिक गुणोंको बताकर मेरे चित्तको हर लिया है तथा मैं पूर्ण-रूपसे कामके वशीभूत कर दिया गया हूँ॥ ४४॥

अब तो मेरे मनकी यही अभिलाषा है कि उस प्रियाको इस महान् संकटसे मुक्त करके मैं उसे कब देख लूँ॥ ४५॥

अब उस दानवके अत्यन्त दुर्गम नगरमें जानेका उपाय मुझे बताओ और यह भी बताओ कि उस महान् संकटसे छूटकर तुम यहाँ कैसे आयी?॥ ४६॥

यशोवती बोली—हे राजन्! मैंने बाल्यावस्थासे ही एक सिद्ध ब्राह्मणसे बीज तथा ध्यानसहित भगवतीका मन्त्र प्राप्त किया है॥ ४७॥

हे राजन्! जब मैं कालकेतुके यहाँ थी तभी मैंने अपने मनमें सोचा कि अब मैं प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिकाकी निरन्तर आराधना करूँ। वे भगवती पूर्णरूपसे आराधित होनेपर निश्चितरूपसे मुझे इस बन्धनसे मुक्त करेंगी; क्योंकि भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाली वे शक्तिस्वरूपा चण्डिका सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। जो निराकार तथा निरालम्ब भगवती अपनी शक्तिसे जगत्‌का सृजन करती हैं तथा पालन करती हैं, वे ही कल्पके अन्तमें उसका संहार भी कर देती हैं। मनमें ऐसा सोचकर मैं विश्वकी अधिष्ठात्री, कल्याणकारिणी, लाल वस्त्र धारण करनेवाली, सौम्य विग्रहवाली तथा सुन्दर रक्त नयनोंवाली भगवतीका ध्यान करके मन-ही-मन उनके रूपका स्मरण करके मन्त्रका जप करनेमें तत्पर हो गयी। इस प्रकार मैं समाधि लगाकर एक माहतक भगवती जगदम्बाकी उपासना करती रही॥ ४८—५२॥

स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता।
मामाहामृतया वाचा किं सुप्तासीति चण्डिका॥ ५३

उत्तिष्ठ याहि तरसा गङ्गातीरं मनोहरम्।
आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुङ्गवः॥ ५४

एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः।
दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः॥ ५५

दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः।
मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः॥ ५६

मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः।
स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः॥ ५७

मासुतो विहरंस्तत्र तव त्राता भविष्यति।
हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम्॥ ५८

एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः।
पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः॥ ५९

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी प्रबुद्धाहं तदैव हि।
कथितं स्वप्नवृत्तान्तं देव्याश्चाराधनं तथा॥ ६०

प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा।
विशेषेण च सन्तुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता॥ ६१

गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये।
सत्यवाक्या भगवती सावां मोक्षं विधास्यति॥ ६२

इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया।
मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप॥ ६३

चालिताहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः।
मार्गज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज॥ ६४

तत्पश्चात् मेरे भक्तिभावसे प्रसन्न होकर देवी चण्डिकाने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'तुम सोयी क्यों हो? उठो और तत्काल गंगाजीके मनोहर तटपर चली जाओ; वहींपर विशाल भुजाओंवाले तथा सभी शत्रुओंका दमन करनेवाले नृपश्रेष्ठ हैहय एकवीर आयेंगे। दत्तात्रेयजीने महाविद्या नामक मेरा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान किया है। वे भी भक्तिपूर्वक निरन्तर मेरी उपासना करते रहते हैं। उनका मन सदा मुझमें लगा रहता है तथा वे सदा मेरी पूजामें रत रहते हैं। मेरे प्रति आसक्तिभाव रखनेवाले वे सभी प्राणियोंमें एकमात्र मुझे ही देखते हुए सदा मेरे ही परायण रहते हैं। वे महामति एकवीर ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। वे लक्ष्मीपुत्र एकवीर घूमते हुए गंगातटपर आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे और उस भयानक राक्षस कालकेतुका वध करके मानिनी एकावलीको मुक्त करेंगे। इसके बाद तुम समस्त शास्त्रोंमें निष्णात उन्हीं सुन्दर राजकुमार एकवीरके साथ एकावलीका विवाह करवा देना'॥ ५३—५९॥

ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मैं उसी समय जग गयी। तत्पश्चात् मैंने स्वप्नका वृत्तान्त तथा देवीकी आराधनाकी बात एकावलीको बतायी॥ ६०॥

सारी बातें सुनकर उस कमलनयनीके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली एकावलीने मुझसे कहा—हे प्रिये! तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो। जो भगवती सत्य वाणीवाली हैं, वे हम दोनोंको मुक्त करेंगी॥ ६१-६२॥

हे राजन्! सखी एकावलीके इस प्रकार प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर उस समय प्रस्थान कर देना उचित समझकर मैं उस स्थानसे तुरंत चल पड़ी। हे राजकुमार! भगवती जगदम्बाकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा द्रुतगतिसे चलनेकी क्षमता मुझे प्राप्त हो गयी थी॥ ६३-६४॥

इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम्।
कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा॥ ६५

हे वीर! इस प्रकार मैंने अपने दुःखी होनेका समस्त कारण आपको बता दिया। अब जिस प्रकार मैंने आपको अपने विषयमें बताया, उसी प्रकार आप भी बताइये कि आप कौन हैं तथा किसके पुत्र हैं?॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयैकवीराय यशोवत्यैकावलीमोचनाय देवीस्वप्नवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

~~0~~

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षित एकवीरद्वारा कालकेतुका वध, एकवीर और एकावलीका विवाह तथा हैहयवंशकी परम्परा

व्यास उवाच

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान्।
प्रफुल्लवदनाम्भोजस्तामुवाच विशांपते॥ १

राजोवाच

रम्भोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तान्तो विशदाक्षरः।
हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिन्धुसुतासुतः॥ २

मनो मे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतं किल।
किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः॥ ३

प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया।
तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः॥ ४

ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः।
यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत्॥ ५

एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः।
हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः॥ ६

तेन वाक्येन तन्वङ्गि भृत्योऽहमधुना कृतः।
त्वया तस्याः सुकेशान्ते ब्रूहि किं करवाणि वाम्॥ ७

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस यशोवतीकी बात सुनकर लक्ष्मीपुत्र प्रतापी एकवीरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा और वे उससे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे रम्भोरु! जो तुमने सुन्दर वाणीमें मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो। एकवीर नामसे प्रसिद्ध लक्ष्मीपुत्र हैहय मैं ही हूँ॥ २॥

[एकावलीके विषयमें वर्णन करके] तुमने मेरे मनको परतन्त्र बना दिया है। विरहसे अत्यन्त पीडित मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?॥ ३॥

तुमने सर्वप्रथम एकावलीके सम्पूर्ण लोकको तिरस्कृत कर देनेवाले रूपका जो वर्णन किया है, उससे मेरा मन कामबाणसे आहत होकर व्याकुल हो उठा है॥ ४॥

तत्पश्चात् तुमने उसके जिन गुणोंका मुझसे वर्णन किया है, उनके द्वारा मेरा चित्त हर लिया गया है। पुनः तुमने जो बात कही, इससे मुझे बहुत विस्मय हो गया है। दानव कालकेतुके सामने एकावलीने यह बात कही थी कि मैं हैहयका वरण कर चुकी हूँ, उसके अतिरिक्त मैं किसी अन्यका वरण नहीं कर सकती; यह मेरा निश्चय है। हे तन्वंगि! एकावलीके इस कथनके द्वारा तुमने मुझे उसका दास बना दिया है। हे सुन्दर केशोंवाली! तुम्हीं बताओ, अब मैं तुम दोनोंके लिये क्या करूँ?॥ ५—७॥

स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः।
गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने॥ ८

वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा।
प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी॥ ९

हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि साम्प्रतम्।
विवशां शोकसन्तप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम्॥ १०

विमुक्तदुःखां कृत्वाशु प्रापयिष्यामि ते पुरम्।
पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम्॥ ११

पश्चाद्विवाहं कर्तासौ राजा पुत्र्याः परन्तपः।
एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे॥ १२

भविष्यति स सम्पूर्णः साधनेन तवाधुना।
दर्शयाशु पुरं तस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम्॥ १३

यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम्।
तथा कुरु प्रियं कर्तुं शक्तासि वरवर्णिनि॥ १४

मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च।

व्यास उवाच

तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती॥ १५

तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात्।
मन्त्रं गृहाण राजेन्द्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम्॥ १६

दर्शयिष्यामि तस्याद्य पुरं राक्षसपालितम्।
सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह॥ १७

सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति।
कालकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः॥ १८

तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह।
दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः॥ १९

हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाशु च मे सखीम्।

हे सुलोचने! मैं उस दुष्टात्मा राक्षस कालकेतुके स्थानको नहीं जानता। और फिर उस नगरतक पहुँच सकनेकी मेरी सामर्थ्य भी नहीं है। हे विशाल नयनोंवाली! अब तुम्हीं उपाय बताओ। मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम्हीं समर्थ हो। अतएव जहाँ तुम्हारी सुन्दर सखी एकावली विराजमान है, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचाओ॥ ८-९॥

उस क्रूर राक्षसका वध करके मैं इसी समय विवश तथा शोक-सन्तप्त तुम्हारी प्रिय सखी राजकुमारी एकावलीको मुक्त करा लूँगा॥ १०॥

राजकुमारी एकावलीको संकटसे मुक्ति दिलाकर शीघ्र ही उसे तुम्हारे पुरमें पहुँचा दूँगा और उसके पिताको सौंप दूँगा॥ ११॥

तत्पश्चात् शत्रुतापक राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विवाह कर सकेंगे। हे प्रियंवदे! इस प्रकार तुम्हारे सहयोगसे मेरे तथा तुम्हारे मनकी कामना अब पूरी हो जायगी। तुम मुझे उस कालकेतुका नगर शीघ्र दिखा दो, फिर मेरा पराक्रम देखो। हे वरवर्णिनि! मैं जिस प्रकार उस दुराचारी तथा परस्त्रीका हरण करनेवाले कालकेतुका वध कर सकूँ, तुम वैसा ही उपाय करो; क्योंकि तुम हित-साधन करनेमें पूर्ण सक्षम हो। उस दानवके दुर्गम नगरका मार्ग तुम मुझे आज ही दिखाओ॥ १२—१४½॥

व्यासजी बोले—एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवती प्रसन्न हो गयी और वह लक्ष्मीपुत्र एकवीरसे नगर पहुँचनेका उपाय आदरपूर्वक बताने लगी—हे राजेन्द्र! पहले आप भगवती जगदम्बाके सिद्धिप्रदायक मन्त्रको ग्रहण कीजिये। तत्पश्चात् मैं आपको अनेक राक्षसोंद्वारा रक्षित उस कालकेतुका नगर आज ही दिखाऊँगी। हे महाभाग! एक विशाल सेनासे युक्त होकर आप मेरे साथ वहाँ चलनेके लिये तैयार हो जाइये। वहाँ युद्ध होगा। कालकेतु स्वयं महापराक्रमी है तथा बलवान् राक्षसोंसे युक्त रहता है। अतएव भगवतीका मन्त्र ग्रहण करके ही आप मेरे साथ वहाँ चलिये। मैं उस दुष्टात्माके नगरका मार्ग आपको दिखाऊँगी। अब आप उस पापकर्मपरायण दानवको मारकर मेरी सखीको शीघ्र मुक्त कीजिये॥ १५—१९½॥

श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मन्त्रं जग्राह सत्वरः॥ २०

दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ।
योगेश्वरीमहामन्त्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम्॥ २१

तेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता तथा।
तया सह जगामाशु पुरं तस्य सुदुर्गमम्॥ २२

रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः।
यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः॥ २३

तमायान्तं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः।
क्रोशन्तोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः॥ २४

तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम्।
एकावलीसमीपस्थं कुर्वन्तं विनयान्बहून्॥ २५

दूता ऊचुः

राजन् यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी।
आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता॥ २६

जयन्तो वा महाराज कार्तिकेयोऽथवा नु किम्।
आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल॥ २७

संयत्तो भव राजेन्द्र संग्रामः समुपस्थितः।
देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज वा कमलेक्षणाम्॥ २८

इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः।
सज्जो भव महीपाल दुन्दुभिं घोषयाशु वै॥ २९

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्च्छितः।
राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून्॥ ३०
गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः।

उसका यह वचन सुनकर एकवीरने वहाँपर दैवयोगसे पधारे हुए पुण्यात्मा तथा ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ दत्तात्रेयजीसे त्रिलोकीका तिलक कहे जानेवाले योगेश्वरीके महामन्त्रको उसी क्षण ग्रहण कर लिया॥ २०-२१॥

उस मन्त्रके प्रभावसे एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र गमनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इसके बाद वे यशोवतीके साथ कालकेतुके दुर्गम नगरके लिये शीघ्र प्रस्थित हुए॥ २२॥

वह नगर राक्षसोंद्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, जैसे सर्पोंद्वारा पातालकी निरन्तर सुरक्षा होती रहती है। कालकेतुके ऐसे नगरमें अब यशोवती तथा विशाल सेनाके साथ राजा एकवीर आ गये॥ २३॥

एकवीरको आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे व्यग्र हो गये और चीखते-चिल्लाते हुए बड़ी तेजीसे भागकर उसके पास पहुँचे॥ २४॥

उस समय एकावलीके पास बैठकर अनेकविध विनती कर रहे कालकेतुको अत्यन्त काममोहित समझकर दूत एकाएक उससे कहने लगे॥ २५॥

दूतोंने कहा—हे राजन्! इस कामिनीकी सहचारिणी जो यशोवती नामकी स्त्री है, वह एक राजकुमारके साथ विशाल सेना लेकर आ रही है॥ २६॥

हे महाराज! पता नहीं, वह जयन्त है अथवा कार्तिकेय। बलके अभिमानसे मत्त वह राजकुमार सेनाके साथ चला आ रहा है॥ २७॥

हे राजेन्द्र! अब आप सावधान हो जाइये; क्योंकि युद्धकी स्थिति सामने आ गयी है। अब आप या तो इस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीको मुक्त कर दीजिये॥ २८॥

उसकी सेना यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है। अतएव हे राजन्! अब आप तैयार हो जाइये और रण-दुंदुभी बजानेकी तुरंत आज्ञा दीजिये॥ २९॥

व्यासजी बोले—दूतोंके मुखसे वैसी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। उसने अपने सभी बलवान् तथा शस्त्रधारी राक्षसोंको उत्साहित करते हुए कहा—हे राक्षसो! तुम सब हाथोंमें शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ॥ ३०½॥

तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः॥ ३१
एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम्।
कोऽयमायाति तन्वङ्गि पिता ते वापरः पुमान्॥ ३२
त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि।
पिता ते यदि सम्प्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः॥ ३३
ज्ञात्वा ते पितरं सम्यक् संग्रामं न करोम्यहम्।
आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः॥ ३४
करोमि तस्य चातिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा।
अन्यश्चेद्यदि सम्प्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः॥ ३५
आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना।
तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मन्दधीः॥ ३६
अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम्।

एकावल्युवाच

न जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः॥ ३७
न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बन्धने।
नायं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः॥ ३८
किमर्थमिह चायाति नाहं वेद विनिश्चयम्।

दैत्य उवाच

एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती॥ ३९
समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा।
क्व गता सा सखी कान्ते विदग्धा कार्यनिश्चये॥ ४०
नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत्।

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे दूतास्तत्रान्ये वै समागताः॥ ४१
ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम्।
किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्यमागतम्॥ ४२
निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महतावृतः।
इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः॥ ४३
रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद् बहिः।

उन्हें आज्ञा देकर कालकेतुने अपने निकट बैठी हुई अत्यन्त विवश तथा दुःखित एकावलीसे विनम्रता-पूर्वक पूछा—'हे तन्वंगि! तुम्हें लेनेके लिये सेनासहित यह कौन आ रहा है? ये तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष? हे कृशोदरि! सच-सच बताओ। यदि विरहसे व्यथित होकर तुम्हारे पिता तुम्हें लेनेके लिये आ रहे हों, तो यह जानकर कि ये तुम्हारे पिता हैं, मैं इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा, अपितु उन्हें घर लाकर उनकी पूजा करूँगा तथा बहुमूल्य रत्न, वस्त्र तथा अश्व भेंट करके घरमें आये हुए उनका विधिवत् आतिथ्य करूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति आया होगा तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे मार डालूँगा। निश्चित ही महान् कालने उसे मरनेके लिये यहाँ ला दिया है। अतएव हे विशाल नयनोंवाली! मुझ अपराजेय, कालरूप तथा अपार बलसम्पन्नके विषयमें न जानकर यह कौन मन्दमति चला आ रहा है? यह तुम मुझे बताओ'॥ ३१—३६½॥

एकावली बोली—हे महाभाग! मैं यह नहीं जानती कि इतनी तेजीसे यह कौन आ रहा है? आपके बन्धनमें पड़ी हुई मैं नहीं जानती कि यह कौन है? ये न तो मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही। यह दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष है, यह किसलिये यहाँ आ रहा है, यह भी मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती॥ ३७—३८½॥

दैत्य बोला—ये दूत तो कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवती ही प्रयत्नपूर्वक उस वीरको साथमें लेकर आयी है। हे कान्ते! कार्य सिद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर तुम्हारी वह सखी कहाँ गयी? कोई अन्य मेरा शत्रु भी नहीं है, जो मेरा विरोधी हो॥ ३९-४०½॥

व्यासजी बोले—इसी बीच दूसरे दूत वहाँ आ गये। भयभीत उन दूतोंने महलमें बैठे कालकेतुसे तुरंत कहा—हे महाराज! आप निश्चिन्त क्यों हैं? शत्रुसेना समीप आ पहुँची है। आप एक विशाल सेनाके साथ शीघ्र ही नगरसे बाहर निकलिये। उनकी यह बात सुनकर महान् बलशाली कालकेतु शीघ्र ही रथपर चढ़कर अपने नगरसे बाहर निकल गया॥ ४१—४३½॥

एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान्॥ ४४

आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः।
युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव॥ ४५

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे॥ ४६

गदया ताडयामास दैत्यं सिन्धुसुतासुतः।
स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाचलः॥ ४७

पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः।
यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा॥ ४८

उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम्।
एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः॥ ४९

एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम्।
स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः॥ ५०

दर्शनं काङ्क्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव।
पश्य तं कुटिलापाङ्गि मनोभवसमं नृपम्॥ ५१

कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याग्रे जाह्नवीतटे।
पूर्णानुरागः सञ्जातस्तेनासौ विरहातुरः॥ ५२

वाञ्छति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनन्दनः।
सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे॥ ५३

लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारं प्राप्तया तया।
कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम्॥ ५४

स मां गृह्णाति कामार्त इति चिन्ताकुला सती।
यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ॥ ५५

स्कन्धावारेऽतिमलिना मलिनाम्बरधारिणी।
तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत्॥ ५६
दर्शनं देहि तन्वङ्गि तृषिते नयने मम।

कामिनी एकावलीके विरहसे व्याकुल प्रतापी एकवीर भी घोड़ेपर आरूढ़ होकर अचानक वहींपर आ गया। उन दोनोंका वृत्रासुर तथा इन्द्रकी भाँति युद्ध होने लगा। उस युद्धमें छोड़े गये विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं॥ ४४-४५½ ॥

भीरुजनोंको भयभीत कर देनेवाले उस युद्धमें लक्ष्मीपुत्र एकवीरने दानव कालकेतुपर अपनी गदासे प्रहार किया। गदाप्रहारसे वह कालकेतु वज्रसे आहत पर्वतकी भाँति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब भयभीत होकर अन्य सभी राक्षस भाग गये॥ ४६-४७½ ॥

तत्पश्चात् यशोवतीने विस्मयमें पड़ी एकावलीके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीमें उससे कहा—हे सखि! इधर आओ। कालकेतुके साथ भीषण युद्ध करके धीरतासम्पन्न राजकुमार एकवीरने उस राक्षसको मार गिराया है। इस समय वे राजकुमार एकवीर थक जानेके कारण अपने शिविरमें विद्यमान हैं। तुम्हारे रूप तथा गुणोंके विषयमें सुनकर वे तुम्हारा दर्शन करना चाहते हैं। हे कुटिलापांगि! कामदेवसदृश उन राजकुमारको तुम देखो। मैं उनसे तुम्हारे विषयमें गंगातटपर पहले ही बता चुकी हूँ। इससे तुम्हारे प्रति उनका पूर्ण अनुराग हो जानेके कारण वे विरहातुर राजकुमार अब तुझ सुन्दर रूपवालीका दर्शन करना चाहते हैं॥ ४८—५२½ ॥

यशोवतीकी बात सुनकर उसने वहाँ जानेका मन बना लिया। कुमारी अवस्थामें होनेके कारण वह भयवश लज्जित हो रही थी। [वह सोचने लगी] मैं एक अत्यन्त विवश कुमारी कन्या उनका मुख कैसे देखूँगी? वह साध्वी एकावली इस बातसे चिन्तित हो उठी कि वे कामासक्त राजकुमार मुझे ग्रहण कर लेंगे। तब वह एकावली मलिन वस्त्र धारण करके अत्यन्त उदास होकर पालकीमें बैठकर यशोवतीके साथ उनके शिविरमें पहुँच गयी॥ ५३—५५½ ॥

उस विशाल नयनोंवाली एकावलीको वहाँ आयी हुई देखकर राजकुमारने उससे कहा—हे तन्वंगि! मुझे दर्शन दो। मेरे नेत्र तुम्हारे दर्शनके लिये तृष्णाकुल हैं॥ ५६½ ॥

कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम्॥ ५७

नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती।
राजपुत्र पिताप्यस्यास्त्वामेनां दातुमिच्छति॥ ५८

एषापि त्वद्वशा नूनं भविता सङ्गमस्तव।
कालं प्रतीक्ष्य राजेन्द्र नयैनां पितुरन्तिकम्॥ ५९

स विवाहविधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः।
स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः॥ ६०

समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम्।
राजपुत्रीं तथायातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः॥ ६१

प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः।
बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा॥ ६२

यशोवत्या तु वृत्तान्तः कथितो विस्तरात्पुनः।
एकवीरं मिलित्वासौ गृहमानीय चादरात्॥ ६३

पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम्।
पारिबर्हं ततो दत्त्वा सम्पूज्य विधिवत्तदा॥ ६४

पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम्।
एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः॥ ६५

गृहं प्राप्य बहून्भोगान्बुभुजे प्रियया समम्।
बभूव तस्यां पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल।
तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया॥ ६६

एकवीरको कामातुर तथा एकावलीको लज्जासे युक्त देखकर नीतिका ज्ञान रखनेवाली तथा श्रेष्ठजनोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने उस एकवीरसे कहा—हे राजकुमार! इसके पिता भी इसे आपको ही देना चाहते हैं। यह एकावली भी आपके वशीभूत है; इसलिये इसके साथ आपका मिलन अवश्य होगा, किंतु हे राजेन्द्र! कुछ समय प्रतीक्षा करके पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचा दीजिये। वे विधिपूर्वक विवाह करके इसे आपको निश्चितरूपसे सौंप देंगे॥ ५७—५९½॥

यशोवतीकी बातको उचित मानकर उन दोनों कन्याओं—एकावली तथा यशोवतीको साथमें लेकर सेनासहित वे राजकुमार एकवीर उसके पिताके स्थानपर पहुँचे॥ ६०½॥

राजपुत्रीको आयी हुई सुनकर राजा रैभ्य प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसके सम्मुख शीघ्रतासे पहुँच गये। मलिन वस्त्र धारण की हुई उस पुत्रीको राजाने बहुत दिनोंके बाद देखा, पुनः यशोवतीने रैभ्यको सारा वृत्तान्त विस्तारके साथ बताया। तत्पश्चात् एकवीरसे मिलकर राजा रैभ्य उन्हें आदरपूर्वक घर ले आये। पुनः उन्होंने शुभ दिनमें विधिविधानसे दोनोंका विवाह सम्पन्न कराया। तदुपरान्त राजाने पर्याप्त वैवाहिक उपहार देकर एकवीरको भलीभाँति सम्मानित करके पुत्रीको यशोवतीसहित विदा कर दिया॥ ६१—६४½॥

इस प्रकार विवाह हो जानेपर लक्ष्मीपुत्र एकवीर हर्षित हो गये और घर पहुँचकर अपनी भार्या एकावलीके साथ नानाविध सुखोपभोग करने लगे। यथासमय उस एकावलीसे कृतवीर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हुए। इस प्रकार मैंने आपसे इस हैहयवंशका वर्णन कर दिया॥ ६५-६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे एकवीरैकावल्योर्विवाहवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

~~0~~

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके जन्मकी कथा

राजोवाच

भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम्।
न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम्॥ १

विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम।
हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा॥ २

परं कौतूहलं मेऽत्र यद्विष्णुः कमलापतिः।
देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः॥ ३

सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः।
परतन्त्रः कथं जातः स्वतन्त्रः पुरुषोत्तमः॥ ४

एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तान्तमद्भुतम्॥ ५

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सन्देहस्यास्य निर्णयम्।
यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात्॥ ६

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः॥ ७

स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम्।
वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम्॥ ८

बृहद्रथन्तरादीनां साम्नां भेदाननेकशः।
गायन्गायत्रममृतं सम्प्राप्तोऽथ ममाश्रमम्॥ ९

शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम्।
निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा॥ १०

तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम्।
अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम्॥ ११

राजा बोले—हे भगवन्! आपके मुखारविन्दसे निर्गत इस अमृततुल्य दिव्य कथारसका निरन्तर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ १॥

आपके द्वारा मुझसे यह विचित्र आख्यान विस्तारपूर्वक कहा गया; हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्ति तो अत्यन्त आश्चर्यजनक है॥ २॥

मुझे इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है कि देवाधिदेव जगत्पति लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णु स्वयं जगत्के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहर्ता हैं; उन्हें भी अश्वरूप धारण करना पड़ गया? सर्वथा स्वतन्त्र रहनेवाले वे अच्युत पुरुषोत्तम भगवान् हरि परतन्त्र कैसे हो गये? हे ब्रह्मन्! इस समय मेरे इस सन्देहका निवारण करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं। हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव इस अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कीजिये॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, इस सन्देहका निर्णय पूर्व समयमें मैंने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे जैसा सुना है, वैसा ही आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

नारदजी ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। वे तपस्वी, सर्वज्ञानी, सर्वत्र गमन करनेवाले, शान्त, समस्त लोकोंके प्रिय एवं मनीषी हैं॥ ७॥

एक बार वे मुनिवर नारद स्वर तथा तानसे युक्त अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा सामगानके बृहद्रथन्तर आदि अनेक भेदों और अमृतमय गायत्र-सामका गान करते हुए इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए मेरे आश्रमपर पहुँचे। वह शम्याप्रास महातीर्थ सरस्वतीके पावन तटपर विराजमान है। कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाला वह तीर्थ प्रधान ऋषियोंका निवासस्थान है॥ ८—१०॥

ब्रह्माजीके पुत्र महान् तेजस्वी नारदजीको अपने आश्रममें आया देखकर मैं उठकर खड़ा हो गया और मैंने भलीभाँति उनकी पूजा आदि की॥ ११॥

अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्यासनस्थितस्य च।
उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः॥ १२

दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम्।
तमपृच्छमहं राजन् यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना॥ १३

असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने।
न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्क्वचित्॥ १४

द्वीपे जातो जनन्याहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि।
अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः॥ १५

तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम्।
पुत्रकामेन देवर्षे शङ्करः समुपासितः॥ १६

ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः।
पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः॥ १७

स त्यक्त्वा मां गतः क्वापि रुदन्तं विरहातुरम्।
लोकाल्लोकान्तरं साधो वचनात्तव बोधितः॥ १८

ततोऽहं पुत्रसन्तप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम्।
मातरं मनसा कृत्वा सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलम्॥ १९

पुत्रस्नेहादतितरां कृशाङ्गः शोकसंयुतः।
जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियन्त्रितः॥ २०

ततो राज्ञा वृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम्।
स्थितोऽत्रैवाश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे॥ २१

शन्तनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता।
पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता॥ २२

अर्घ्य तथा पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक पूजन करके आदरपूर्वक आसनपर विराजमान उन अमित तेजस्वी नारदके समीप मैं बैठ गया॥ १२॥

हे राजन्! तत्पश्चात् ज्ञानके पार पहुँचानेमें समर्थ मुनि नारदको मार्गश्रमसे रहित तथा शान्तचित्त देखकर मैंने उनसे वही प्रश्न पूछा था, जो आपने इस समय मुझसे पूछा है॥ १३॥

[मैंने उनसे पूछा—] हे मुने! इस सारहीन जगत्‌में प्राणियोंको क्या सुख प्राप्त होता है? विचार करनेपर मुझे तो कभी भी, कहीं भी तथा कुछ भी सुख नहीं दिखायी देता है॥ १४॥

मुझे ही देखिये, एक द्वीपमें जन्म लेते ही मेरी माताने मेरा त्याग कर दिया। तभीसे आश्रयहीन रहता हुआ मैं वनमें अपने कर्मके अनुसार बढ़ने लगा॥ १५॥

हे देवर्षे! तत्पश्चात् मैंने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे एक पर्वतपर बहुत वर्षोंतक शंकरजीकी उपासना करते हुए कठोर तपस्या की॥ १६॥

तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हुए। मैंने उन्हें आरम्भसे लेकर सम्यक् प्रकारसे वेदोंका सारभूत तत्त्व पढ़ा दिया॥ १७॥

हे साधो! आपके वचनोंसे ज्ञान प्राप्त करके मेरा वह पुत्र मुझ विरहातुरको रोता हुआ छोड़कर लोकलोकान्तरमें कहीं चला गया?॥ १८॥

तब पुत्रविरहसे सन्तप्त मैं महापर्वत सुमेरुको छोड़कर अपनी माताको मनमें याद करते हुए कुरुजांगल प्रदेशमें पहुँचा॥ १९॥

संसार मिथ्या है—ऐसा जानते हुए भी मायापाशमें बँधा हुआ मैं पुत्र-स्नेहके कारण शोकाकुल रहनेसे अत्यन्त दुर्बल शरीरवाला हो गया॥ २०॥

तत्पश्चात् जब मैंने यह जाना कि वासवराजसुता मेरी कल्याणमयी माताका राजा शन्तनुने वरण कर लिया है, तब मैं सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाकर रहने लगा॥ २१॥

इसके बाद महाराज शन्तनुके स्वर्ग प्राप्त कर लेनेपर मेरी माँ विधवा हो गयीं। तब भीष्मने दो पुत्रोंवाली मेरी माताका पालन किया॥ २२॥

चित्राङ्गदः कृतो राजा गङ्गापुत्रेण धीमता।
कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः॥ २३

ततः सत्यवती माता निमग्ना शोकसागरे।
चित्राङ्गदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा॥ २४

सम्प्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम्।
आश्वासिता मयात्यर्थं भीष्मेण च महात्मना॥ २५

विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः।
कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्रीराज्यविमुखेन ह॥ २६

काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन्।
भीष्मेणानीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते॥ २७

सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाहं सुखितोऽभवम्॥ २८

पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम्।
अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताभवत्॥ २९

काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा।
पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ सम्बभूवतुः॥ ३०

ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम्।
पतिना सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने॥ ३१

पुत्रेण सह ते श्वश्रु स्वर्गे गत्वाथ नन्दने।
सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते॥ ३२

निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात्।
स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा॥ ३३

गाङ्गेयेन च मात्रा मे सम्मन्त्र्य च परस्परम्।
कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं संस्मृतोऽहं गजाह्वये॥ ३४

बुद्धिमान् गंगापुत्र भीष्मने चित्रांगदको राजा बनाया। किंतु कुछ ही समयमें कामदेवके सदृश कान्तिमान् मेरे भाई चित्रांगद भी मृत्युको प्राप्त हो गये॥ २३॥

पुत्र चित्रांगदके मर जानेपर मेरी माता सत्यवती अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगीं और नित्य शोकके समुद्रमें निमग्न रहने लगीं॥ २४॥

हे महाभाग! उन पतिव्रताको दुःखित जानकर मैं उनके पास गया। वहाँ मैंने तथा महात्मा भीष्मने उन्हें बहुत सान्त्वना दी॥ २५॥

तब स्त्री तथा राज्यसे विमुख भीष्मने अपने दूसरे भाई पराक्रमी विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २६॥

तत्पश्चात् भीष्मने अपने बलसे राजाओंको जीतकर काशिराजकी दो सुन्दर पुत्रियोंको लाकर माता सत्यवतीको समर्पित कर दिया। पुनः शुभ मुहूर्तमें जब भाई विचित्रवीर्यका विवाह सम्पन्न हो गया तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ॥ २७-२८॥

कुछ ही समयमें मेरे धनुर्धर भाई विचित्रवीर्य भी यक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर युवावस्थामें ही निःसन्तान मर गये, जिससे मेरी माता दुःखित हुईं॥ २९॥

इधर जब काशिराजकी दोनों पुत्रियोंने अपने पतिको मृत देखा तब वे दोनों बहनें पातिव्रत्य धर्मके पालनके लिये तत्पर हुईं॥ ३०॥

वे दारुण दुःखके कारण रोती हुई अपनी साध्वी साससे कहने लगीं—हे श्वश्रु! हम दोनों चिताग्निमें अपने पतिके साथ ही जायँगी। आपके पुत्रके साथ स्वर्गमें जाकर हम दोनों अपने पतिसे युक्त होकर नन्दनवनमें सुखपूर्वक विहार करेंगी॥ ३१-३२॥

तब स्नेहभावका आश्रय लेकर मेरी माताने भीष्मके परामर्शसे उन दोनों वधुओंको महान् चेष्टा करनेसे रोक दिया॥ ३३॥

विचित्रवीर्यकी सभी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके गंगातनय भीष्म तथा मेरी माताने आपसमें मन्त्रणा करके मुझे हस्तिनापुर आनेके लिये मेरा स्मरण किया॥ ३४॥

स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम्।
तरसैवागतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम्॥ ३५

प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृताञ्जलिः।
तामब्रवं सुतप्ताङ्गीं पुत्रशोकेन कर्शिताम्॥ ३६

मातस्त्वया किमाहूतो मनसाहं तपस्विनि।
आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम्॥ ३७

त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः परः।
आगतश्चिन्तितश्चात्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम्॥ ३८

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने।
तदा सा मामुवाचेदं पश्यन्ती भीष्ममन्तिके॥ ३९

पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा।
तेनाहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह॥ ४०

तस्मात्त्वमद्य मेधाविन् मयाहूतः समाधिना।
गाङ्गेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये॥ ४१

कुलं स्थापय नष्टं त्वं शन्तनोर्नामकारणात्।
रक्ष मां दुःखतः कृष्ण वंशच्छेदोद्भवाद् द्रुतम्॥ ४२

काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः।
साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते॥ ४३

ताभ्यां सङ्गम्य मेधाविन् पुत्रोत्पादनकं कुरु।
रक्षस्व भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित्॥ ४४

व्यास उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिन्तातुरो ह्यहम्।
लज्जयाकुलचित्तस्तामब्रवं विनयानतः॥ ४५

इस प्रकार माताके स्मरण करते ही उनके मनोगत भावको जानकर शीघ्र ही मैं हस्तिनापुरमें आ गया। सिर झुकाकर माताको प्रणाम करके मैं हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ा हो गया और पुत्रशोकके कारण अत्यन्त दुर्बल तथा तप्त अंगोंवाली उन मातासे मैंने कहा—॥ ३५—३६॥

हे माता! आपने अपने मनमें स्मरण करके यहाँ मुझे किसलिये बुलाया है? हे तपस्विनि! बड़े-से-बड़े कार्यके लिये मुझे आदेश दीजिये; मैं आपका दास हूँ, मैं क्या करूँ?॥ ३७॥

हे माता! मेरा परम तीर्थ तथा महान् परम देव आप ही हैं। आपके स्मरण करते ही मैं यहाँ उपस्थित हो गया हूँ। अब आप अपना प्रिय कार्य बताइये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर जब मैं माताके आगे खड़ा हो गया तब पास ही बैठे हुए भीष्मको देखती हुई वे मुझसे यह कहने लगीं॥ ३९॥

हे पुत्र! राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अतएव वंशके नष्ट होनेके भयसे मैं दुःखी हूँ॥ ४०॥

हे प्रतिभाशाली पराशरनन्दन! इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मैंने भीष्मके परामर्शसे समाधिद्वारा तुम्हें यहाँ बुलाया है॥ ४१॥

इस नष्ट होते हुए वंशको तुम स्थापित करो, जिससे महाराज शन्तनुका नाम बना रहे। हे द्वैपायन कृष्ण! वंशच्छेदजन्य दुःखसे मेरी शीघ्र रक्षा करो॥ ४२॥

तुम्हारे सदाचारी लघुभ्राता विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दो भार्याएँ हैं, जो काशिराजकी पुत्रियाँ हैं॥ ४३॥

हे मेधाविन्! उन दोनोंके साथ संसर्ग करके तुम पुत्र उत्पन्न करो, भरतवंशकी रक्षा करो; इसमें कोई दोष नहीं है॥ ४४॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] माताका यह वचन सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लज्जासे व्याकुल मनवाला होकर मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा—हे माता!

मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम्।
ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात्॥ ४६

तथा यवीयसो भ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता।
व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम्॥ ४७

अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम्।
न तरन्ति हि संसारात्पितरः पापकारिणः॥ ४८

लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः।
स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम्॥ ४९

पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमन्तिके।
पुत्रशोकातितप्ता या वंशरक्षणकाम्यया॥ ५०

पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक।
गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः॥ ५१

कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः।
वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद॥ ५२

पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम्।
विशेषेण तु सन्तप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत॥ ५३

इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः।
मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये॥ ५४

द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयानघ।
मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम्॥ ५५

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा।
निःशङ्कोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिञ्जुगुप्सिते॥ ५६

अम्बिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि।
मयि विमनसायां तु तापसे कुत्सिते भृशम्॥ ५७

शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसङ्गे प्रथमे तदा।
अन्धस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते॥ ५८

परनारीसंगम महान् पापकर्म है। धर्ममार्गका सम्यक् ज्ञान रखते हुए भी मैं आसक्तिपूर्वक ऐसा कर्म कैसे कर सकता हूँ? और फिर छोटे भाईकी पत्नी कन्याके समान कही गयी है। ऐसी स्थितिमें सभी वेदोंका अध्ययन करके भी मैं ऐसा व्यभिचार कैसे करूँ? अन्यायसे कुलकी रक्षा कदापि नहीं करनी चाहिये; क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसार-सागरसे कभी नहीं पार हो सकते। जो समग्र पुराणोंका प्रवर्तक तथा लोगोंको उपदेश करनेवाला हो, वह जान-बूझकर ऐसा अद्भुत तथा निन्दनीय कार्य कैसे कर सकता है?॥ ४५—४९॥

तत्पश्चात् वंश-रक्षाकी कामनासे युक्त मेरी माता, जो पुत्रशोकसे अत्यधिक सन्तप्त थीं, विलाप करती हुई समीपमें आकर मुझसे पुनः कहने लगीं—॥ ५०॥

हे पराशरनन्दन! हे पुत्र! मेरे कहनेपर ऐसा करनेसे तुम दोषभागी नहीं होओगे। शिष्टजनोंका आचार ही प्रमाण है—ऐसा मानकर मनुष्योंको गुरुजनोंके दोषपूर्ण वचनोंको भी उचित समझकर बिना कुछ सोच-विचार किये कर डालना चाहिये। हे पुत्र! मेरी बात मान लो! हे मानद! इससे तुम्हें दोष नहीं लगेगा। हे सुत! पुत्र उत्पन्न करके अत्यधिक सन्तप्त तथा शोकसागरमें निमग्न अपनी माताको सुखी करो॥ ५१—५३॥

माताकी यह बात सुनकर सूक्ष्मधर्मके निर्णयमें विशेष ज्ञान रखनेवाले गंगातनय भीष्मने मुझसे कहा—हे कृष्ण-द्वैपायन! तुम्हें इस विषयमें विचार नहीं करना चाहिये। हे पुण्यात्मन्! माताका वचन मानकर तुम सुखपूर्वक विहार करो॥ ५४-५५॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] भीष्मका यह वचन सुनकर तथा माताकी प्रार्थनापर मैं निःशंक भावसे उस निन्द्य कर्ममें प्रवृत्त हो गया॥ ५६॥

रात्रिमें मैं प्रसन्नतापूर्वक ऋतुमती अम्बिकाके साथ प्रवृत्त हुआ, किंतु मुझ कुरूप तपस्वीके प्रति उसके अनुरागहीन होनेके कारण मैंने उस सुश्रोणीको शाप दे दिया कि प्रथम संसर्गके समय ही तुमने अपनी दोनों आँखें बन्द कर ली थीं, अतः तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा॥ ५७-५८॥

द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः।
भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे॥ ५९

मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह।
विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि॥ ६०

तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने।
कथं पुत्र त्वया शप्ता पुत्रस्तेऽन्धो भविष्यति॥ ६१

हे मुनिवर! दूसरे दिन माताने एकान्तमें मुझसे फिर पूछा—हे पुत्र! क्या काशिराजकी पुत्री अम्बिकाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा? तब लज्जाके कारण मुख नीचे किये हुए मैंने मातासे कहा—हे माता! मेरे शापके प्रभावसे नेत्रहीन पुत्र उत्पन्न होगा॥ ५९-६०॥

हे मुने! इसपर माताने कठोर वाणीमें मेरी भर्त्सना की—'हे पुत्र! तुमने शाप क्यों दिया कि तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा'॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे अम्बिकायां नियोगात्पुत्रोत्पादनाय गर्भधारणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

~~~

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पाण्डु और विदुरके जन्मकी कथा, पाण्डवोंका जन्म, पाण्डुकी मृत्यु, द्रौपदीस्वयंवर, राजसूययज्ञ, कपटद्यूत तथा वनवास और व्यासजीके मोहका वर्णन

व्यास उवाच

वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम्।
दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा॥ १

अम्बालिका वधूर्धन्या काशिराजसुता सुत।
भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता॥ २

सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपयौवनशालिनी।
तस्यां जनय सङ्गं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसम्मतम्॥ ३

नान्धो राजाधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम्।
उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद॥ ४

इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये।
यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने॥ ५

एकान्ते शयनागारे प्राप्ता सा मम सन्निधौ।
लज्जमाना सुकेशान्ता स्वश्वश्रूवचनात्तदा॥ ६

दृष्ट्वा मां जटिलं दान्तं तापसं रसवर्जितम्।
सा स्वेदवदना जाता पाण्डुरा विमना भृशम्॥ ७

व्यासजी बोले—मेरी वह बात सुनकर वासवराजकुमारी सत्यवती चकित हो गयीं और पुत्रके लिये अत्यन्त व्यग्र होकर मुझसे कहने लगीं—हे पुत्र! काशिराजकी श्रेष्ठ पुत्री वधू अम्बालिका विचित्रवीर्यकी भार्या है, जो विधवा तथा पतिशोकसे सन्तप्त है। वह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और रूप तथा यौवनसे युक्त है। तुम उसके साथ संसर्ग करके प्रिय पुत्र उत्पन्न करो॥ १—३॥

नेत्रहीनको राजा बननेका अधिकार नहीं हो सकता। इसलिये हे मानद! मेरी बात मानकर तुम उस राजपुत्रीसे एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करो॥ ४॥

हे मुने! तब मैं माताजीके ऐसा कहनेपर वहीं हस्तिनापुरमें ठहर गया और जब सुन्दर केशपाशवाली काशिराजकी पुत्री अम्बालिका ऋतुमती हुई तो अपनी सासके कहनेपर वह एकान्त शयनकक्षमें लज्जित होती मेरे पास आयी॥ ५-६॥

वहाँ मुझ जटाधारी, इन्द्रियनिग्रही तथा शृङ्गाररससे अनभिज्ञ तपस्वीको देखकर उसके मुखपर पसीना आ गया, शरीर पीला पड़ गया और उसका मन बहुत खिन्न हो गया॥ ७॥
~~~

कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि सङ्गताम्।
वेपमानां स्थितां पार्श्वे ह्यब्रवं तामहं रुषा॥ ८

दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पाण्डुवर्णा समावृता।
अतस्ते तनयः पाण्डुर्भविष्यति सुमध्यमे॥ ९

इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितोऽम्बालिकया युतः।
भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम्॥ १०

ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावन्धपाण्डुरौ।
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च प्रथितौ सम्बभूवतुः॥ ११

माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ।
ततः संवत्सरस्यान्ते मामाहूय तदाब्रवीत्॥ १२

द्वैपायन सुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ।
अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम्॥ १३

तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा।
अम्बिकां प्रार्थयामास सुतार्थे काल आगते॥ १४

पुत्रि व्यासं समालिङ्ग्य पुत्रमुत्पादयाद्भुतम्।
कुरुवंशस्य कर्तारं राज्ययोग्यं वरानने॥ १५

वधूर्लज्जान्विता किञ्चिन्नोवाच वचनं तदा।
गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि॥ १६

दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता।
प्रेषिताम्बिकया त्वत्र विचित्राभरणाम्बरा॥ १७

चन्दनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता।
आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी॥ १८

पर्यङ्के मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता।
प्रसन्नोऽहं तदा तस्या विलासेनाभवं मुने॥ १९

तत्पश्चात् रात्रिमें सम्पर्कके लिये आयी हुई उस सुन्दरीको अपने पासमें बैठी देखकर मैं कुपित हो गया और रोषपूर्वक बोला—सुमध्यमे! मुझे देखकर यदि तुम अभिमानसे पीली पड़ गयी हो तो तुम्हारा पुत्र भी पीतवर्णका होगा॥ ८-९॥

ऐसा कहकर मैं उस अम्बालिकाके साथ रातभर वहीं रहा और फिर मातासे आज्ञा लेकर अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गया॥ १०॥

तदनन्तर समय आनेपर उन दोनोंने अन्धे तथा पाण्डुवर्णके दो पुत्र उत्पन्न किये। वे दोनों धृतराष्ट्र तथा पाण्डु नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ११॥

उन दोनों राजकुमारोंको इस प्रकारका देखकर मेरी माता खिन्नमनस्क हो गयीं। तत्पश्चात् एक वर्षके अनन्तर मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—हे द्वैपायन! इस प्रकारके दोनों पुत्र राज्य करनेके योग्य नहीं हैं, अतएव तुम एक अन्य मनोहर पुत्र उत्पन्न करो, जो मुझे अत्यन्त प्रिय हो॥ १२-१३॥

'वैसा ही होगा'—मेरे इस प्रकार कहनेपर माता अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। इसके बाद ऋतुकाल आनेपर माताने पुत्रहेतु अम्बिकासे प्रार्थना की—हे पुत्रि! हे सुमुखि! व्यासके साथ समागम करके तुम कुरुवंश चलानेवाला तथा राज्य करनेयोग्य एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न करो॥ १४-१५॥

उस समय लज्जासे युक्त वधू अम्बिकाने कुछ भी नहीं कहा और मैं माताकी वह बात मानकर रातमें शयनागारमें चला गया॥ १६॥

तत्पश्चात् अम्बिकाने विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दासीको सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र पहनाकर मेरे पास भेज दिया॥ १७॥

शरीरपर चन्दन लगाये, फूलकी मालाओंसे विभूषित तथा सुन्दर केशोंवाली वह सुन्दरी हंसकी भाँति मन्द-मन्द चलती हुई बड़े हाव-भावसे मेरे पास आयी॥ १८॥

मुझे पलंगपर बैठाकर वह भी प्रेमपूर्वक मेरे पास बैठ गयी। हे मुने! उसके इस प्रेमपूर्ण हाव-भावसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ १९॥

रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मया भृशम्।
वरो दत्तः पुनस्तस्यै प्रसन्नेन तु नारद॥ २०

सुभगे भविता पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः।
सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः॥ २१

स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाभवन्।
माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम॥ २२

विस्मृतः शुकसम्बन्धी विरहः शोककारणम्।
दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं बलिनो वीर्यसम्मतान्॥ २३

माया बलवती ब्रह्मन् दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः।
अरूपा च निरालम्बा ज्ञानिनामपि मोहिनी॥ २४

मातरि स्नेहसम्बद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम्।
न मे चित्तं वने शान्तिमगान्मुनिवरोत्तम॥ २५

दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे।
पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः॥ २६

कदाचिच्चिन्तयन् ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै।
केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे॥ २७

व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल।
माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे॥ २८

जानन्मोहान्धकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने।
इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः॥ २९

राज्यं प्राप ततः पाण्डुर्बलवान्भीष्मसम्मतः।
तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात्॥ ३०

हे नारद! रात्रिमें मैंने उसके साथ प्रेमपूर्वक विहार किया और पुनः प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया—हे सुभगे! तुम्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, रूपवान्, सभी धर्मोंका ज्ञाता, सत्यवादी तथा शान्त स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होगा॥ २०-२१॥

समय आनेपर उसे विदुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मुझसे तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे साधो! परक्षेत्रमें मेरेद्वारा उत्पन्न किये गये इन पुत्रोंके प्रति मेरी ममता बढ़ने लगी॥ २२॥

उन तीनों पुत्रोंको अत्यन्त बलवान् तथा वीर्यवान् देखकर मैं अपने शोकके एकमात्र कारण शुकसम्बन्धी वियोगको भूल गया॥ २३॥

हे ब्रह्मन्! माया बलवती होती है, आत्मज्ञानसे रहित पुरुषोंके लिये यह अत्यन्त दुस्त्यज है। रूपहीन तथा आलम्बरहित यह माया ज्ञानियोंको भी मोहित कर देती है॥ २४॥

हे मुनिवर! मातामें तथा उन पुत्रोंमें स्नेहासक्तिसे आबद्ध मेरे मनको वनमें भी शान्ति नहीं मिल पाती थी॥ २५॥

मेरा मन दोलायमान हो गया। वह कभी हस्तिनापुरमें रहता था तो कभी सरस्वतीनदीके तटपर चला आता था; इस प्रकार मेरा मन किसी जगह स्थिर नहीं रहता था॥ २६॥

कभी-कभी मनमें ज्ञानका उदय हो जानेपर मैं सोचने लगता था कि ये पुत्र कौन हैं, यह मोह कैसा? मेरे मर जानेपर ये मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकेंगे॥ २७॥

दुराचारसे उत्पन्न ये पुत्र मुझे कौन-सा सुख देंगे। माया बड़ी प्रबल होती है; यह मनमें मोह पैदा कर देती है॥ २८॥

हे मुने! कभी-कभी शान्तचित्त होकर एकान्तमें मैं यह सन्ताप करने लगता था कि मैं जान-बूझकर इस मोहरूपी अन्धकूपमें व्यर्थ ही गिर गया हूँ॥ २९॥

भीष्मकी सम्मतिसे जब बलवान् पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ, उस समय मेरा मन इस बातसे बहुत प्रसन्न हुआ कि मेरा पुत्र राजसिंहासनपर बैठा है॥ ३०॥

कुन्ती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः।
शूरसेनसुता कुन्ती मद्रराजसुतापरा॥ ३१

स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः।
पाण्डुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः॥ ३२

तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम्।
गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः॥ ३३

तमाश्वास्य वने पाण्डुं पुनः प्राप्तो गजाह्वये।
धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे॥ ३४

क्षेत्रजान्पञ्चपुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे।
धर्मतो वायुतः शक्रादश्विभ्यां पञ्च पाण्डवान्॥ ३५

युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि।
कुन्तीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः॥ ३६

नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ।
कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिङ्ग्य महीपतिः॥ ३७

मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे।
माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह॥ ३८

स्थिता पुत्रयुता कुन्ती ज्वलिते जातवेदसि।
मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा॥ ३९

दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये।
समर्पिताथ भीष्माय विदुराय महात्मने॥ ४०

श्रुत्वाहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः।
भीष्मेण पालिताः पुत्राः पाण्डोरिति विचिन्त्य ते॥ ४१

विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता।
दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः॥ ४२

एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम्।
द्रोणाचार्यस्तु सम्प्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः॥ ४३
अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः।

तत्पश्चात् सुन्दर रूपवाली कुन्ती तथा माद्री उनकी दो भार्याएँ हुईं। उनमें कुन्ती महाराज शूरसेनकी पुत्री थी तथा दूसरी रानी माद्री मद्रदेशके राजाकी कन्या थी॥ ३१॥

ब्राह्मणसे शाप प्राप्त करके राजा पाण्डु अत्यन्त दुःखित हुए और वे राज्यका परित्याग करके अपनी दोनों रानियोंके साथ वन चले गये॥ ३२॥

अपने पुत्रको वनमें स्थित सुनकर मुझे महान् शोक हुआ। मैं वहाँ पहुँच गया, जहाँ वे अपनी दोनों पत्नियोंके साथ रह रहे थे॥ ३३॥

वनमें उन पाण्डुको सान्त्वना देकर मैं पुनः हस्तिनापुर आ गया और वहाँ धृतराष्ट्रके साथ बातचीत करके सरस्वतीनदीके तटपर पुनः चला गया॥ ३४॥

वनमें अपने आश्रममें उन्होंने धर्म, वायु, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमारोंसे पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको पाँच पाण्डवोंके रूपमें उत्पन्न कराया। धर्म, वायु तथा इन्द्रसे उत्पन्न हुए युधिष्ठिर, भीमसेन तथा अर्जुन—ये कुन्तीपुत्र कहे गये हैं। इसी तरह नकुल तथा सहदेव—ये दोनों माद्रीके पुत्र हुए॥ ३५–३६½॥

एक दिन महाराज पाण्डु एकान्तमें माद्रीका आलिंगन करके पूर्वशापके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये। तत्पश्चात् मुनियोंने उनका दाह-संस्कार किया और माद्री सती होकर पतिके साथ प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयी और पुत्रोंसे युक्त कुन्ती वहीं स्थित रह गयी। तत्पश्चात् मुनिलोग पतिविहीन उस दुःखित शूरसेन-पुत्री कुन्तीको उसके पुत्रोंसहित हस्तिनापुर ले आये और उसे भीष्म तथा महात्मा विदुरको सौंप दिया। यह सुनकर मैं उन पाण्डुपुत्रोंके कारण सुख-दुःखसे पीड़ित हो गया। पाण्डुके ये पुत्र हैं—ऐसा सोचकर भीष्म, मतिमान् विदुर तथा धृतराष्ट्र प्रेमपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे॥ ३७—४१½॥

धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि जो क्रूर हृदयवाले पुत्र थे, वे एक समूह बनाकर उनका घोर विरोध करने लगे। तत्पश्चात् द्रोणाचार्य वहाँ आये और भीष्मने उनका सम्मान किया। उन्होंने पुत्रोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेके लिये उन्हें उसी पुरमें रख लिया॥ ४२–४३½॥

कर्णः कुन्त्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा॥ ४४

सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह।
दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतमस्तथा॥ ४५

परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु।
धृतराष्ट्रस्तु सञ्चिन्त्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च॥ ४६

निवासं कल्पयामास पाण्डवानां महात्मनाम्।
विरोधशमनायैव नगरे वारणावते॥ ४७

दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै।
कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरोचनम्॥ ४८

श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पाण्डवान्पृथया युतान्।
पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहं व्यसनार्णवे॥ ४९

शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम्।
दृष्टा मयैकचक्रायां पाण्डवा दुःखकर्शिताः॥ ५०

ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च।
प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं प्रति॥ ५१

ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः।
मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा॥ ५२

कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम्।
चक्रुर्विवाहं मानिन्या पञ्चैव मातृवाक्यतः॥ ५३

दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा।
ततो नागाह्वये प्राप्ताः पाञ्चालीसहिता मुने॥ ५४

निवासं खाण्डवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम्।
पाण्डवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै॥ ५५

तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना।
राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाहं मुदितोऽभवम्॥ ५६

कुन्तीने उत्पन्न होते ही जब बालक कर्णका परित्याग कर दिया तब अधिरथ नामक सूतने नदीमें बहते हुए उस कर्णको पाया और उसका पालन-पोषण किया। सर्वश्रेष्ठ वीर होनेके कारण कर्ण दुर्योधनका प्रिय हो गया। बादमें भीम तथा दुर्योधन आदिमें परस्पर विरोध भाव उत्पन्न हो गया॥ ४४-४५½ ॥

तब धृतराष्ट्रने अपने पुत्रों तथा उन पाण्डवोंके परस्पर संकटका विचार करके तथा उनके विरोध-भावको समाप्त करनेके उद्देश्यसे वारणावत नगरमें महात्मा पाण्डवोंको बसानेका निश्चय किया॥ ४६-४७ ॥

द्रोहके कारण दुर्योधनने अपने मित्र पुरोचनको वहाँ भेजकर दिव्य लाक्षागृहका निर्माण करा दिया॥ ४८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीसहित उन पाण्डवोंके उस लाक्षागृहमें दग्ध हो जानेका समाचार सुनकर उनके प्रति पौत्र-भाव होनेके कारण मैं दुःखके सागरमें डूब गया और उस निर्जन वनमें उन्हें दिन-रात खोजता हुआ अति शोकसन्तप्त रहता था। तभी मैंने दुःखके कारण अत्यन्त दुर्बल उन पाण्डवोंको एकचक्रा नगरीमें देखा। उन पाण्डवोंको देखकर मेरे मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई और मैंने उन्हें तुरंत महाराज द्रुपदके नगरमें भेज दिया॥ ४९—५१ ॥

कृश शरीरवाले वे दुःखित पाण्डव मृगचर्म पहनकर ब्राह्मणका वेश धारण करके वहाँ गये और द्रुपदकी स्वयंवर-सभामें जा पहुँचे। वहाँपर अर्जुन अपने पराक्रमका प्रदर्शन करके द्रुपद-पुत्री द्रौपदीको जीतकर ले आये। पुनः माता कुन्तीके आदेशसे पाँचों भाइयोंने मानिनी द्रौपदीके साथ विवाह किया॥ ५२-५३ ॥

उनका विवाह देखकर मैं परम प्रसन्न हुआ। हे मुने! तत्पश्चात् वे सभी द्रौपदीसहित हस्तिनापुर चले आये॥ ५४॥

धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंके रहनेके लिये खाण्डवप्रस्थ देनेका निश्चय किया। हे द्विजश्रेष्ठ नारद! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अग्निदेवको सन्तुष्ट किया। पाण्डवोंने जब राजसूय यज्ञ किया तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ॥ ५५-५६ ॥

दृष्ट्वाथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम्।
दुर्योधनोऽतिसन्तप्तो दुरोदरमथाकरोत्॥ ५७

दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः।
हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता॥ ५८

वने द्वादश वर्षाणि पाण्डवास्ते विवासिताः।
पाञ्चालीसहितास्तेन दुःखं मे जनितं भृशम्॥ ५९

एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम्।
निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन् धर्मं सनातनम्॥ ६०

कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः।
येन मे हृदयं मोहाद् भ्रमतीति दिवानिशम्॥ ६१

किं करोमि क्व गच्छामि सन्तोषो नाधिगच्छति।
दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरं भवेत्॥ ६२

सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ सन्देहं मे निवर्तय।
तथा कुरु यथाहं स्यां सुखितो विगतज्वरः॥ ६३

उन पाण्डवोंका वैभव तथा मय दानवद्वारा निर्मित की गयी सभाको देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखित हुआ और उसने द्यूतक्रीडाकी योजना बनायी। शकुनि कपटपूर्ण द्यूतमें अति निपुण था तथा धर्मराज युधिष्ठिर पासेके खेलसे अनभिज्ञ थे। अतएव दुर्योधनने [द्यूतक्रीडाके माध्यमसे] पाण्डवोंका सम्पूर्ण राज्य तथा धन छीन लिया तथा द्रौपदीको भी अपमानित किया। दुर्योधनने द्रौपदीसहित पाँचों पाण्डवोंको बारह वर्षकी अवधितक वनमें निवास करनेके लिये निर्वासित कर दिया; इससे मुझे बहुत दुःख हुआ॥ ५७—५९॥

हे नारद! इस प्रकार सनातन धर्मको जानते हुए भी मैं सुख तथा दुःखसे पूर्ण इस संसारमें भ्रमसे ही बन्धनमें पड़ा हूँ। मैं कौन हूँ, ये किसके पुत्र हैं, यह किसकी माता है और सुख क्या है? जिससे मेरा मन मोहित होकर दिन-रात इन्हींमें भ्रमण करता रहता है॥ ६०-६१॥

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? किसी प्रकारसे भी मुझे सन्तोष नहीं मिलता। दोलायमान मेरा चंचल मन स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव मेरे सन्देहका निवारण कीजिये। आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं सन्तापरहित होकर सुखी हो जाऊँ॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
व्यासस्वकीयमोहवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

~~o~~

अथ षड्विंशोऽध्यायः

देवर्षि नारद और पर्वतमुनिका एक-दूसरेको शाप देना, राजकुमारी दमयन्तीका नारदसे विवाह करनेका निश्चय

व्यास उवाच

इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित्।
मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छन्तं मोहकारणम्॥ १

नारद उवाच

पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चयम्।
संसारेऽस्मिन् विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब परमार्थवेत्ता नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मोहका कारण पूछनेवाले मुझसे मुसकराकर कहने लगे॥ १॥

नारदजी बोले—हे पुराणवेत्ता व्यासजी! आप क्या पूछ रहे हैं? यह पूर्णरूपसे निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे परे हो ही नहीं सकता॥ २॥

ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा।
मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमन्ति भववर्त्मनि॥ ३

ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रान्तोऽहं सर्वलोकवत्।
शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम्॥ ४

दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम्।
स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत॥ ५

एकदा पर्वतश्चाहं देवलोकान्महीतलम्।
प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं खण्डमुत्तमम्॥ ६

भ्रमन्तौ सहितावुर्व्यां पश्यन्तौ तीर्थमण्डलम्।
पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान्॥ ७

शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम्।
चलितौ समयं चेमं सम्मन्त्र्य निश्चयेन वै॥ ८

चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते।
शुभा वाप्यशुभा वापि न गोप्तव्या कदाचन॥ ९

भोजनेच्छा धनेच्छापि रतीच्छा वा भवेदपि।
यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम्॥ १०

इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ।
एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया॥ ११

एवं भ्रमन्तौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्ते समुपागते।
सञ्जयस्य पुरं रम्यं सम्प्राप्तौ नृपतेः पुनः॥ १२

तेन सम्पूजितौ भक्त्या राज्ञा सम्मानितौ भृशम्।
स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः॥ १३

वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा।
तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः॥ १४

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनक तथा कपिल—ये सभी मायाके वशवर्ती होकर संसार-मार्गमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३॥

लोग मुझे ज्ञानी समझते हैं, किंतु मैं भी एक बार सभी लोगोंकी भाँति भ्रमित हो गया था। मैं अपना पूर्व वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४॥

हे व्यासजी! स्त्री-प्राप्तिके लिये अपने द्वारा स्वयं उत्पन्न किये गये मोहके कारण मुझे पूर्वकालमें महान् कष्टका अनुभव करना पड़ा था॥ ५॥

एक बार मैं तथा पर्वतमुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके लिये देवलोकसे पृथ्वीलोकपर आये थे॥ ६॥

विभिन्न तीर्थों, पवित्र स्थानों तथा मुनियोंके पावन आश्रमोंको देखते हुए हम दोनों साथ-साथ पृथ्वीतलपर विचरण करने लगे॥ ७॥

देवलोकसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने आपसमें निश्चयपूर्वक सोच-विचारकर यह प्रतिज्ञा की थी कि जिसके मनमें जैसा भी पवित्र अथवा अपवित्र भाव उत्पन्न होगा, वह उसे कभी गोपनीय नहीं रखेगा॥ ८-९॥

भोजनकी इच्छा, धनकी इच्छा अथवा काम-विषयक इच्छा—इनमेंसे जिस तरहकी भी इच्छा जिसके मनमें होगी, एक-दूसरेको बता दी जानी चाहिये॥ १०॥

ऐसी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गलोकसे पृथ्वीतलपर आये और एकचित्त होकर मुनिरूपमें इच्छापूर्वक विचरण करने लगे॥ ११॥

इस प्रकार इस लोकमें विचरण करते हुए हम दोनों ग्रीष्म ऋतुके समाप्त हो जानेपर राजा संजयके सुरम्य नगरमें पहुँचे॥ १२॥

राजा संजयने हम दोनोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की तथा अत्यधिक सम्मान दिया। महान् आत्मावाले उन्हीं संजयके भवनमें रहकर हम दोनों अपना चातुर्मास्य व्यतीत करने लगे॥ १३॥

वर्षाकालके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टकारक होते हैं, अतएव विज्ञजनोंको उस अवधिमें एक ही स्थानपर रहना चाहिये—ऐसा सिद्धान्त है॥ १४॥

अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद् द्विजः।
वर्षाकाले न गन्तव्यं प्रवासे सुखमिच्छता॥ १५

इति सञ्चिन्त्य मनसा सञ्जयस्य गृहे तदा।
संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना॥ १६

दमयन्तीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः।
आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम्॥ १७

विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्री कृतोद्यमा।
सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि॥ १८

स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम्।
मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा॥ १९

मनोऽभिलषितान्कामानुभयोरपि कन्यका।
व्यजनासनशय्यादीन्वाञ्छितानप्यकल्पयत् ॥ २०

एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल।
वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ॥ २१

अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम्।
गायत्रं साम सुस्वादमगां कर्णरसायनम्॥ २२

राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम्।
बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा॥ २३

दिने दिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः।
ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम्॥ २४

मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित्।
अकरोदन्तरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता॥ २५

द्विजको चाहिये कि वह आठ महीनेतक अपने कार्यवश देशान्तरमें प्रवास करे, किंतु सुख चाहनेवाले पुरुषको वर्षाकालमें प्रवासके लिये नहीं जाना चाहिये॥ १५॥

ऐसा सोचकर हम दोनों राजा संजयके भवनमें ठहर गये और उन महात्मा नरेशने हमलोगोंका सम्मानपूर्वक आतिथ्य किया॥ १६॥

उन राजा संजयकी परम सुन्दरी तथा मनोहर दाँतोंवाली दमयन्ती नामसे विख्यात एक कन्या थी; उन्होंने उसे हमलोगोंकी सेवाके लिये आदेश दे दिया॥ १७॥

विवेकका ज्ञान रखनेवाली तथा उद्यमी स्वभाववाली वह विशालनयना राजकुमारी सभी समय हम दोनोंकी सेवा करती रहती थी॥ १८॥

वह हमारे स्नानके लिये जल, पर्याप्त मधुर भोजन, मुख-शुद्धिके लिये सुगन्धित गन्ध-द्रव्य तथा और भी जो हमारा अभीष्ट रहता, उसे समयसे हमलोगोंको दिया करती थी॥ १९॥

वह कन्या हम दोनोंकी मनोभिलषित वस्तुएँ उपस्थित किया करती थी। वह व्यजन (पंखा), आसन तथा शय्या आदि मनोवांछित सामग्रियोंको उपलब्ध कराती रहती थी॥ २०॥

इस प्रकार उसके द्वारा सेवित होते हुए हम दोनों राजा संजयके भवनमें रहने लगे। वेदाध्ययनके स्वभाववाले हम दोनों मुनि सदा वेदव्रतमें संलग्न रहते थे॥ २१॥

मैं हाथमें वीणा धारणकर उत्तम स्वरकी साधना करके कानोंके लिये रसायनस्वरूप अत्यन्त मधुर गायत्र-सामका गान करता रहता था॥ २२॥

मनोहर सामगान सुनकर वह विदुषी राजकुमारी मेरे प्रति अनुरागयुक्त तथा प्रीतिमय हो गयी॥ २३॥

मेरे प्रति उस राजकुमारीका अनुराग दिनोदिन बढ़ता ही चला गया और मुझमें प्रेम-भाव रखनेवाली उस कन्याके प्रति मेरा भी मन अत्यन्त आसक्त हो उठा॥ २४॥

मुझपर विशेष अनुराग रखनेवाली वह राजकुमारी मेरे तथा उस पर्वतमुनिके लिये किये जानेवाले भोजनादिके प्रबन्धमें तथा सेवाकार्यमें कुछ भेदभाव करने लगी॥ २५॥

स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम्।
दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत्॥ २६

शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत्।
प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम्॥ २७

विलोकयति मां प्रेम्णा सुन्दरी न च पर्वतम्।
ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम्॥ २८

मनसा चिन्तयामास किमेतदिति विस्मितः।
पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा॥ २९

राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम्।
ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समन्ततः॥ ३०

न तथा मयि भेदोऽत्र सन्देहं जनयत्यसौ।
मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथा सञ्जयात्मजा॥ ३१

तवापि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम्।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम्॥ ३२

सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने।
स्वर्गतः समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना॥ ३३

नारद उवाच

पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा।
तदाहं ह्रीसमाक्रान्तः सञ्जातश्चाब्रुवं पुनः॥ ३४

पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता।
ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः॥ ३५

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः।
मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः॥ ३६

प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः।
भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रधुक्॥ ३७

इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना।
सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा॥ ३८

स्नानके लिये मुझे उष्ण जल तथा पर्वतमुनिके लिये शीतल जल और इसी प्रकार मेरे लिये दही तथा पर्वतमुनिके लिये मट्ठेकी व्यवस्था करती थी॥ २६॥

वह मेरे लिये अत्यन्त प्रेमपूर्वक जैसा धवल आस्तरण (बिछौना) बिछाती थी, वैसा पर्वतके लिये नहीं॥ २७॥

वह सुन्दरी मुझे अत्यन्त प्रेमपूर्ण भावसे देखती थी, किंतु पर्वतमुनिको नहीं। तब मुनि पर्वत उस प्रकारका प्रेम-भेद देखकर मन-ही-मन विस्मित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है? एकान्तमें उन्होंने मुझसे पूछा—हे नारद! मुझे भलीभाँति बताइये, यह राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न होकर आपसे अत्यधिक प्रेम करती है और स्नेहयुक्त होकर आपको नानाविध भोज्य-पदार्थ देती है, किंतु वैसा मेरे साथ नहीं करती है; यह भेद-भाव मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा संजयकी पुत्री आपको निश्चय ही पति बनाना चाहती है॥ २८—३१॥

आपकी चेष्टाओंसे आपका भी वैसा ही भाव मुझे परिलक्षित हो रहा है; क्योंकि नेत्र तथा मुखके विकारोंसे प्रेमके कारणका पता चल जाता है॥ ३२॥

हे मुने! सच-सच कहिये। मिथ्या वचन मत बोलिये। स्वर्गसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे इस समय याद कीजिये॥ ३३॥

नारदजी बोले—जब पर्वतमुनिने हठपूर्वक इसका कारण मुझसे पूछा तब मैं अत्यन्त लज्जित हो गया और पुनः बोला—हे पर्वत! विशाल नयनोंवाली यह राजकुमारी मुझे पति बनानेके लिये उद्यत है और उसके प्रति मेरे भी मनमें विशेष अनुराग भाव उत्पन्न हो गया है॥ ३४-३५॥

मेरा यह सत्य वचन सुनकर पर्वतमुनि कुपित हो उठे और उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हें बार-बार धिक्कार है; क्योंकि प्रतिज्ञा करके पहले तुमने मुझे धोखा दिया है, अतएव हे मित्रद्रोही! मेरे शापसे तुम अभी बन्दरके मुखवाले हो जाओ'॥ ३६-३७॥

उस कुपित महात्मा पर्वतके ऐसा शाप देते ही मैं तत्काल भयंकर बन्दरकी मुखाकृतिवाला हो गया॥ ३८॥

मयापि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते।
सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल॥ ३९

स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत।
तस्मात्तवापि मन्दात्मन् मृत्युलोके स्थितिः किल॥ ४०

पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम्।
अहं वानरवक्त्रस्तु सञ्जातस्तत्क्षणादपि॥ ४१

दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा।
विमनातीव सञ्जाता वीणाश्रवणलालसा॥ ४२

व्यास उवाच

ततः किमभवद् ब्रह्मन् कथं शापान्निवर्तितः।
मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि॥ ४३

पर्वतः क्व गतो भूयः सङ्गमो युवयोरभूत्।
कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ह॥ ४४

नारद उवाच

किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत्।
दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते॥ ४५

पुनः सेवापरात्यर्थं राजपुत्री ममाभवत्।
गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि॥ ४६

अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः।
विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिन्तयन्॥ ४७

सञ्जयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किञ्चित्प्रकटयौवनाम्।
विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा॥ ४८

विवाहकालः सम्प्राप्तः सुताया मम साम्प्रतम्।
योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसम्मतम्॥ ४९
रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसम्भवम्।

तब मैंने भी अपने उस भगिनीपुत्र (भांजे) पर्वतको क्षमा नहीं किया। मैंने भी क्रोध करके उसे शाप दे दिया कि तुम भी अबसे स्वर्गके अधिकारी नहीं रहोगे॥ ३९॥

हे मन्दात्मन् पर्वत! क्योंकि मेरे छोटे-से अपराधके लिये तुमने मुझे ऐसा शाप दिया है, अतएव तुम्हारा भी अब मृत्युलोकमें निवास होगा॥ ४०॥

इसके बाद पर्वतमुनि अत्यन्त उदास मनसे उस नगरसे निकल पड़े और मैं भी उसी समयसे बन्दरके मुखवाला हो गया॥ ४१॥

वीणा सुननेकी उत्कट अभिलाषा रखनेवाली वह परम विलक्षण राजकुमारी मुझे भयंकर बन्दरके रूपमें देखकर अत्यन्त उदास मनवाली हो गयी॥ ४२॥

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् क्या हुआ, आपको शापसे छुटकारा कैसे मिला तथा आप पुनः मानवकी मुखाकृतिवाले किस प्रकार हुए? ये सभी बातें भलीभाँति बताइये॥ ४३॥

पर्वतमुनि कहाँ चले गये? आप दोनोंका पुनर्मिलन कब, कहाँ और कैसे हुआ? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! क्या कहूँ? मायाकी गति बड़ी विचित्र होती है। पर्वतमुनिके कुपित होकर चले जानेके पश्चात् मैं अत्यन्त दुःखित हो गया॥ ४५॥

पर्वतमुनिके चले जानेपर मैं उसी भवनमें ठहरा रहा और वह राजकुमारी मेरी सेवामें पुनः तत्पर हो गयी॥ ४६॥

वानरके समान मुख हो जानेके कारण मैं दुःखी तथा उदास रहने लगा। अब मेरा क्या होगा? ऐसा सोच-सोचकर मैं विशेष चिन्तासे व्याकुल हो गया था॥ ४७॥

अपनी पुत्री राजकुमारी दमयन्तीको कुछ-कुछ प्रकट यौवनवाली देखकर उसके विवाहके सम्बन्धमें राजा संजयने मन्त्रीसे पूछा—अब मेरी पुत्रीका विवाह-योग्य समय हो गया है। अतएव योग्य वरके रूपमें कोई ऐसा राजकुमार आप मुझे बतलाइये, जो रूप-उदारता-गुण आदिसे सम्पन्न,

विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल साम्प्रतम्॥ ५०

प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः।
वर्तन्ते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विताः॥ ५१

यस्मिन् रुचिस्ते राजेन्द्र तमाहूय नृपात्मजम्।
देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम्॥ ५२

नारद उवाच

पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयन्ती तदा नृपम्।
धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहः स्थितम्॥ ५३

धात्र्युवाच

दमयन्ती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत्।
पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम्॥ ५४

मया वृतोऽथ मेधावी नारदो महतीयुतः।
नादमोहितया कामं नान्यः कोऽपि प्रियो मम॥ ५५

कुरु मे वाञ्छितं तात विवाहं मुनिना सह।
नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना॥ ५६

मग्नाहं नादसिन्धौ वै नक्रहीने रसात्मके।
अक्षारे सुखसम्पूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते॥ ५७

पराक्रमी, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा सभीके लिये श्रेष्ठ हो। उसके साथ मैं अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह अभी कर दूँगा॥ ४८—५०॥

इसपर प्रधान सचिवने कहा—हे राजन्! आपकी कन्याके अनुरूप बहुतसे योग्य तथा सर्वगुणसम्पन्न राजकुमार इस पृथ्वीपर विद्यमान हैं॥ ५१॥

हे राजेन्द्र! जिसमें आपकी रुचि हो, उस राजपुत्रको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और धनसहित अपनी कन्या उसे प्रदान कर दीजिये॥ ५२॥

नारदजी बोले—बातचीतमें परम कुशल दमयन्तीने पिताका अभिप्राय समझकर अपनी धायके मुखसे एकान्तमें स्थित राजासे कहलाया॥ ५३॥

धात्रीने कहा—हे महाराज! आपकी पुत्री दमयन्तीने मुझसे ऐसा कहा है—हे धात्रेयि! तुम मेरे वचनसे मेरे पिताजीसे यह सुखकर बात कह दो—नादसे मोहित मैं महती वीणा धारण करनेवाले प्रतिभासम्पन्न नारदका वरण कर चुकी हूँ; अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है॥ ५४-५५॥

हे तात! आप मेरी इच्छाके अनुरूप मुनिके साथ मेरा विवाह कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मैं नारदको छोड़कर किसी दूसरेको अपना पति नहीं बनाऊँगी॥ ५६॥

अब मैं घड़ियाल तथा भयंकर मत्स्य आदि जन्तुओंसे शून्य, खारेपनसे रहित, सुखसे परिपूर्ण एवं रसमय नादसिन्धुमें निमग्न हो गयी हूँ॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
दमयन्तीविवाहप्रस्ताववर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

वानरमुख नारदसे दमयन्तीका विवाह, नारद तथा पर्वतका परस्पर शापमोचन

नारद उवाच

तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः।
भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम्॥ १

राजोवाच

यदुक्तं वचनं कान्ते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम्।
वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक्॥ २
किमिदं चिन्तितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम्।
कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा॥ ३

नारदजी बोले—धात्रीके मुखसे अपनी कन्याका वह वचन सुनकर राजा संजय पास ही बैठी सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी भार्या कैकेयीसे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे प्रिये! धात्रीने जो बात कही है, वह तो तुमने सुन ही ली। बन्दरके समान मुखवाले नारदमुनिका उसने वरण कर लिया है॥ २॥

पुत्रीने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कार्य सोच लिया। इस वानरमुख मुनिको मैं अपनी कन्या कैसे दे दूँ?॥ ३॥

क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयन्ती ममात्मजा।
विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन॥ ४

तामेकान्ते सुकेशान्ते निवारय हठात्सुताम्।
युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया॥ ५

इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत्।
क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः॥ ६

कथं मोहमवाप्तासि भिक्षुके चतुरा पुनः।
लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम्॥ ७

वार्ता वानरवक्त्रेण कथं युक्ता तवानघे।
का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते॥ ८

वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा हठम्।
पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः॥ ९

लग्नां बुबूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम्।
दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति॥ १०

दासेरकाय ताम्बूलीदलानि कोमलानि कः।
ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले॥ ११

वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः।
विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति॥ १२

कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः।
आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्त्वयामुना॥ १३

नारद उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा।
मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया॥ १४

किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम्।
किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च॥ १५

कहाँ भिक्षाटन करनेवाला यह कुरूप भिक्षुक और कहाँ मेरी पुत्री दमयन्ती! ऐसा विपरीत सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये॥ ४॥

हे सुन्दर केशोंवाली! तुम मुनिपर आसक्त अपनी उस भोली पुत्रीको एकान्तमें शास्त्रों तथा वृद्ध पुरुषोंके मर्यादित वचन बतलाकर युक्तिपूर्वक इस हठसे मुक्त करो॥ ५॥

पतिकी बात सुनकर माताने उस कन्यासे कहा—कहाँ तुम्हारा ऐसा रूप और कहाँ वह धनहीन वानरमुख मुनि!॥ ६॥

तुम लताके समान कोमल देहवाली हो और यह मुनि भस्म लगानेके कारण कठोर देहवाला है; तुम बुद्धिमान् होकर भी उस भिक्षुकपर मोहित क्यों हो गयी हो?॥ ७॥

हे अनघे! वानरके समान मुखवाले इस मुनिके साथ तुम्हारा वार्तालाप कैसे उचित होगा? हे पवित्र मुसकानवाली! इस निन्दित पुरुषपर तुम्हारी कौन-सी प्रीति हो सकेगी?॥ ८॥

तुम्हारा वर तो कोई राजकुमार होना चाहिये, तुम व्यर्थ हठ मत करो। धात्रीके मुखसे ऐसी बात सुनकर तुम्हारे पिताजीको बहुत दुःख हुआ है॥ ९॥

बबूलके वृक्षसे लिपटी हुई कोमल मालती लताको देखकर किस बुद्धिमान् व्यक्तिका मन दुःखित नहीं होगा? इस पृथ्वीतलपर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो खानेके लिये ऊँटको कोमल पानके पत्ते देगा?॥ १०-११॥

विवाह होते समय नारदके पास बैठकर तुम्हें उसका हाथ पकड़े हुए देखकर किसका हृदय नहीं जल उठेगा?॥ १२॥

इस कुत्सित मुखवालेके साथ बात करनेमें कोई रुचि भी तो नहीं उत्पन्न होगी; फिर इसके साथ तुम मृत्युपर्यन्त अपना समय कैसे व्यतीत करोगी?॥ १३॥

नारदजी बोले—माताकी यह बात सुनकर मेरे प्रति दृढ़ निश्चयवाली उस कोमलांगी दमयन्तीने अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक अपनी मातासे कहा—रसमार्गसे अनभिज्ञ तथा कलाज्ञानसे रहित मूर्ख राजकुमारके सुन्दर मुख, रूप, धन तथा राज्यसे मेरा क्या प्रयोजन?॥ १४-१५॥

हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः।
मातः प्राणान्प्रयच्छन्ति धिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि॥ १६

नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम्।
तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल॥ १७

मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे।
रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा॥ १८

धिङ्मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्वसमन्विते।
गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी॥ १९

स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्च्छनाज्ञानभेदभाक्।
दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै॥ २०

यथा नयति कैलासं गङ्गा चैव सरस्वती।
तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः। २१

स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन्।
सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि॥ २२

मूर्च्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः।
स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि॥ २३

वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम्।
अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान्॥ २४

बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः।
जायते किन्तु ते वृद्धा न जानन्ति धिगस्तु तान्॥ २५

पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान् बहून।
द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः॥ २६

तस्मादसौ मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात्।
पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः॥ २७

हे माता! वनमें रहनेवाली वे हरिणियाँ धन्य हैं जो नादसे मोहित होकर अपने प्राण भी दे देती हैं, किंतु इस भूलोकमें रहनेवाले उन मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है, जो मधुर स्वरसे प्रेम नहीं करते हैं!॥ १६॥

हे माता! नारदजी जिस सप्तस्वरमयी विद्याको जानते हैं, उसे भगवान् शंकरको छोड़कर तीसरा अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है॥ १७॥

मूर्खके साथ रहना प्रतिक्षण मृत्युके समान होता है। अतएव सुन्दर रूपसे सम्पन्न तथा सम्पत्तिशाली होते हुए भी गुणरहित पुरुषको सर्वदाके लिये त्याग देना चाहिये। व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मित्रताको धिक्कार है; वचनोंसे सुख प्रदान करनेवाली गुणवान् भिक्षुककी मित्रता श्रेष्ठ है। स्वरका ज्ञाता, ग्रामोंकी पूरी जानकारी रखनेवाला, मूर्च्छनाके भेदोंको सम्यक् प्रकारसे समझनेवाला तथा आठों रसोंको जाननेवाला दुर्बल पुरुष भी इस संसारमें दुर्लभ है। जिस प्रकार गंगा तथा सरस्वती नदियाँ कैलास ले जाती हैं, उसी प्रकार स्वरज्ञानमें अत्यन्त प्रवीण पुरुष शिवलोक पहुँचा देता है। जो व्यक्ति स्वरके प्रमाणको जानता है, वह मनुष्य होता हुआ भी देवता है, किंतु जो स्वरोंके सप्तभेदका ज्ञान नहीं रखता, वह पशुके समान होता है, चाहे इन्द्र ही क्यों न हो। मूर्च्छना तथा तानमार्गको सुनकर जो आह्लादित नहीं होता, उसे साक्षात् पशु समझना चाहिये, बल्कि [स्वरप्रेमी] हरिणोंको पशु नहीं समझना चाहिये॥ १८—२३॥

विषधर सर्प श्रेष्ठ है; क्योंकि वह कान न होनेपर भी मनोहर नाद सुनकर प्रफुल्लित हो जाता है, किंतु उन मनुष्योंको धिक्कार है, जो कर्णयुक्त रहनेपर भी नाद सुनकर आनन्दित नहीं होते॥ २४॥

मधुर स्वरसे गाये गये गीतको सुनकर बालक भी प्रसन्नचित्त हो जाता है, किंतु जो वृद्ध गानके रहस्यको नहीं जानते, उन्हें धिक्कार है॥ २५॥

क्या मेरे पिताजी नारदके बहुतसे गुणोंको नहीं जानते? तीनों लोकोंमें उनके समान साम-गान करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अतः नारदसे प्रेम हो जानेके कारण मैंने पहलेसे ही इनका वरण कर लिया है। गुणोंके निधान ये नारद शापवश बादमें वानरके समान मुखवाले हो गये॥ २६-२७॥

किन्नरा न प्रियाः कस्य भवन्ति तुरगाननाः।
गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह॥ २८

पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः।
तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा॥ २९

नारद उवाच

इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत्।
आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुनौ॥ ३०

विवाहं कुरु राजेन्द्र दमयन्त्याः शुभे दिने।
मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसानया॥ ३१

नारद उवाच

इति सञ्चोदितो राज्ञ्या सञ्जयः पृथिवीपतिः।
चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः॥ ३२

एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परन्तप।
स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम्॥ ३३

यदागच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ।
अभवं दुःखसन्तप्तस्तदाहं वानराननः॥ ३४

दमयन्ती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनाम्बुजा।
शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन॥ ३५

एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः।
कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः॥ ३६

मयातिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि।
आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत्॥ ३७

कृतदारं वानरास्यं दीनं चिन्तातुरं भृशम्।
दयावान्मामुवाचेदं पर्वतो मातुलं कृशम्॥ ३८

मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम।
निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय॥ ३९

अश्वके समान मुखवाले किन्नर गानविद्यासे सम्पन्न होनेके कारण किसको प्रिय नहीं होते, किसीके सुन्दर मुखसे क्या प्रयोजन?॥ २८॥

हे माता! आप मेरे पिताजीसे कह दें कि मैं मुनिश्रेष्ठ नारदका वरण कर चुकी हूँ; अतएव हठ छोड़कर आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे उन्हीं नारदको सौंप दें॥ २९॥

नारदजी बोले—पुत्रीकी बात सुनकर तथा नारद-मुनिमें उसका अनुराग जानकर परम सुन्दरी रानीने राजासे कहा—हे राजेन्द्र! अब आप किसी शुभ दिनमें नारद-मुनिके साथ दमयन्तीका विवाह कर दीजिये; क्योंकि वह मन-ही-मन उन्हीं सर्वज्ञ मुनिका वरण कर चुकी है॥ ३०-३१॥

नारदजी बोले—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरित करनेपर राजा संजयने विधि-विधानसे समस्त वैवाहिक क्रिया सम्पन्न की॥ ३२॥

हे परन्तप! इस तरह विवाह हो जानेके पश्चात् वानरके समान मुखवाला मैं अत्यन्त दुःखी मनसे वहीं रहने लगा॥ ३३॥

जब राजकुमारी दमयन्ती सेवाके लिये मेरे पास आती थी तब वानरसदृश मुखवाला मैं दुःखसे पीड़ित हो उठता था॥ ३४॥

किंतु खिले हुए कमलके समान मुखवाली दमयन्ती मुझे देखकर मेरी वानर मुखाकृतिके लिये कभी भी शोक नहीं करती थी॥ ३५॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए पर्वतमुनि मुझसे मिलनेके लिये अकस्मात् मेरे पास आये॥ ३६॥

मैंने प्रेमपूर्वक उनका पर्याप्त सम्मान किया तथा विधिवत् पूजा की। दिव्य आसनपर विराजमान मुनि पर्वत मुझे देखकर अत्यन्त दुःखित हो उठे॥ ३७॥

वानरमुख होनेके कारण विवाह करके अत्यन्त दयनीय, दुर्बल तथा चिन्तायुक्त दशाको प्राप्त मुझ अपने मामासे पर्वतमुनिने यह वचन कहा॥ ३८॥

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था, किंतु मैं आज उस शापका निवारण करता हूँ, सुनो॥ ३९॥

भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद।
दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाधुना॥ ४०

नारद उवाच

मयापि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वास्य भाषितम्।
अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात्॥ ४१

भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि।
शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना॥ ४२

नारद उवाच

जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः।
राजपुत्री तु सन्तुष्टा मातरं प्राह सत्वरम्॥ ४३

मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः।
वचनात्पर्वतस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत्॥ ४४

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्तु राजनि।
ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र सञ्जयः प्रीतिमांस्तदा॥ ४५

धनं समर्पितं राज्ञा सन्तुष्टेन तदा महत्।
मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना॥ ४६

एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम्।
मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया॥ ४७

संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते।
तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति॥ ४८

कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा।
अहङ्कारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः॥ ४९

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल।
कारणं प्राणिनां देहसम्भवे सर्वथा मुने॥ ५०

कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह।
गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं गमितः क्षणात्॥ ५१

राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः।
पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह॥ ५२

हे नारद! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे सुन्दर मुखवाले हो जाओ; क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरे मनमें करुणाभाव उत्पन्न हो गया है॥ ४०॥

नारदजी बोले—उनकी बात सुनकर मैंने भी अपने मनको विनययुक्त करके उसी क्षण [अपने द्वारा उन्हें प्रदत्त] शापका मार्जन कर दिया। [मैंने कहा—] हे भागिनेय पर्वत! मैं तुम्हें मुक्त कर दे रहा हूँ। अब देवलोकमें तुम्हारा भी गमन हो; यह मैंने शापका विमोचन कर दिया॥ ४१-४२॥

नारदजी बोले—पर्वतमुनिके वचनानुसार उनके देखते-देखते मैं सुन्दर मुखवाला हो गया। इससे राजकुमारी बहुत प्रसन्न हो गयी और शीघ्र ही मातासे बोली—हे माता! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता नारद अब सुन्दर मुखवाले हो गये हैं। मुनि पर्वतके वचनसे अब वे शापसे मुक्त हो चुके हैं॥ ४३-४४॥

दमयन्तीकी बात सुनकर रानीने उसे राजासे कहा। तब प्रीतियुक्त होकर राजा संजय मुनिको देखनेके लिये वहाँ गये॥ ४५॥

तब सन्तुष्ट हुए महात्मा राजाने मुझे तथा भागिनेय पर्वतको बहुत सारा धन एवं उपहार-सामग्री प्रदान की॥ ४६॥

जैसा मैंने मायाके बलकी महिमाका अनुभव किया है और जो पुरातन वृत्तान्त है, वह सब मैंने आपको बता दिया॥ ४७॥

हे महाभाग! मायाके गुणोंसे विरचित इस मिथ्या जगत्‌में कोई भी जीव न सुखी रहा है, न सुखी है और न तो सुखी रहेगा॥ ४८॥

काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, ममता, अहंकार और मद—इन महाशक्तिशाली विषयोंको कौन जीत सका है?॥ ४९॥

हे मुने! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही प्राणियोंकी देहोत्पत्तिमें सर्वथा कारण होते हैं॥ ५०॥

हे व्यासजी! किसी समय भगवान् विष्णुके साथ वनमें जाता हुआ मैं परस्पर हास-परिहासमें सहसा स्त्रीभावको प्राप्त हो गया॥ ५१॥

मायाके प्रभावसे विमोहित होकर मैं राजाकी पत्नी बन गया और उस राजाके भवनमें रहकर मैंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये॥ ५२॥

व्यास उवाच

संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल।
कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम्॥ ५३

कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः।
कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा॥ ५४

एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम्।
मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्॥ ५५

न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम्।
सर्वग्रन्थार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम्॥ ५६

व्यासजी बोले—हे साधो! हे मुने! आपकी बात सुनकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है कि आप महान् ज्ञानी होते हुए भी नारी-रूपमें कैसे परिणत हो गये? आप पुनः पुरुष किस प्रकार हुए? यह सब पूर्णरूपसे बताइये। आपने पुत्र कैसे उत्पन्न किये तथा किस राजाके घरमें आप भलीभाँति रहे?॥ ५३-५४॥

आप उन महामायाके अत्यन्त अद्भुत चरित्रका वर्णन कीजिये, जिन्होंने स्थावर-जंगमात्मक समग्र जगत्को विमोहित कर रखा है॥ ५५॥

सभी ग्रन्थोंके अर्थतत्त्वोंसे युक्त तथा समस्त संशयोंका नाश करनेवाले आपके कथामृतका श्रवण करता हुआ मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदस्य मायादमयन्त्या सह विवाहवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

~~○~~

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका नारदजीसे मायाकी अजेयताका वर्णन करना, मुनि नारदको मायावश स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा राजा तालध्वजका उनसे प्रणय-निवेदन करना

नारद उवाच

निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम्।
मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः॥ १

मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमजया दुर्विभाव्यया॥ २

कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे।
गतोऽहं दर्शनाकाङ्क्षी हरेरद्भुतकर्मणः॥ ३

वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम्।
गायत्रं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम्॥ ४

दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः॥ ५

पीताम्बरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः।
लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः॥ ६

नारदजी बोले—हे मुनिवर! अब आप मेरे द्वारा कही जा रही सत्कथाका श्रवण कीजिये। श्रेष्ठ योगवेत्ता मुनियोंके लिये भी मायाका बल अत्यन्त दुर्ज्ञेय है॥ १॥

उस अजेय तथा दुश्चिन्त्य मायाने ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जगत्को मोहित कर रखा है॥ २॥

किसी समय मैं स्वर तथा तानसे विभूषित महती वीणा बजाता हुआ एवं सप्त स्वरोंसे युक्त गायत्र-सामका गान करता हुआ अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी अभिलाषासे सत्यलोकसे मनोहर श्वेतद्वीपमें गया था॥ ३-४॥

वहाँ मैंने देवाधिदेव विष्णुभगवान्‌को देखा। वे हाथमें चक्र तथा गदा धारण किये हुए थे, उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि शोभायमान हो रही थी, वे मेघ-सदृश श्याम वर्णवाले थे, उनकी चार भुजाएँ थीं। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे, मुकुट तथा बाजूबन्दसे सुशोभित थे तथा वे विलासमयी लक्ष्मीके साथ प्रमुदित होकर क्रीडा कर रहे थे॥ ५-६॥

वीक्ष्य मां कमला देवी गतान्तर्धानमन्तिकात्।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वभूषणभूषिता॥ ७

नारीणां प्रवरा कान्ता रूपयौवनगर्विता।
सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा॥ ८

अन्तर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिन्धुजां व्यञ्जनान्विताम्।
मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः॥ ९

भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन्।
कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छन्तमन्तिकात्॥ १०

नाहं विटो न वा धूर्तः तापसोऽहं जगद्गुरो।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन॥ ११

नारद उवाच

निशम्य वचनं किञ्चिद् गर्वयुक्तं जनार्दनः।
उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम्॥ १२

विष्णुरुवाच

नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन।
पतिं विनान्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित्॥ १३

माया सुदुर्जया विद्वन् योगिभिर्जितमारुतैः।
सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्च जितेन्द्रियैः॥ १४

देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना।
जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन॥ १५

नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम्।
मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये॥ १६

देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा।
बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम्॥ १७

त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत्।
वेदविद्योगविद्वापि सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः॥ १८

सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त आभूषणोंसे अलंकृत, कान्तियुक्त, अपने रूप-यौवनपर गर्व करनेवाली, नारियोंमें सर्वश्रेष्ठ, भगवान् विष्णुको अतिप्रिय तथा स्वर्णके समान आभावाली भगवती लक्ष्मी मुझे देखकर उनके पाससे अन्तःपुरमें चली गयीं॥ ७-८॥

व्यंजित अंगोंवाली लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगन्नाथ विष्णुसे पूछा—हे भगवन्! हे देवाधिदेव! हे पद्मनाभ! हे असुरविनाशन! मुझे आते हुए देखकर माता लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों चली गयीं? हे जगद्गुरो! मैं न तो कोई नीच हूँ और न धूर्त! हे जनार्दन! मैं इन्द्रियों, क्रोध तथा मायाको जीत लेनेवाला एक तपस्वी हूँ॥ ९—११॥

नारदजी बोले—मेरा कुछ-कुछ अभिमानपूर्ण वचन सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराकर वीणाके समान मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे॥ १२॥

भगवान् विष्णु बोले—हे नारद! ऐसी नीति है कि पतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुषके सांनिध्यमें स्त्रीको कभी नहीं रहना चाहिये॥ १३॥

हे विद्वन्! वायु (श्वास)-को जीत लेनेवाले योगियों, सांख्यशास्त्रके ज्ञाताओं, निराहार रहनेवाले तपस्वियों तथा जितेन्द्रिय पुरुषों एवं देवताओंके लिये भी माया अत्यन्त दुर्जय है। हे मुनिवर! अभी आपने जो कहा है कि 'मैंने मायापर विजय प्राप्त कर ली है' तो हे गीतज्ञ! आपको ऐसा कभी नहीं बोलना चाहिये॥ १४-१५॥

जब मैं, शिव, ब्रह्मा तथा सनक आदि मुनि भी उस अजन्मा मायापर विजय नहीं प्राप्त कर सके तब आप तथा अन्य कौन हैं, जो उसे जीतनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ १६॥

देवता, मानव तथा पशु-पक्षी अथवा जो कोई शरीर धारण करनेवाला प्राणी हो, वह उस अजन्मा मायाको कैसे जीत सकता है?॥ १७॥

वेदका ज्ञाता, योगी, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सत्त्व-रज-तमसे युक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें कैसे समर्थ हो सकता है?॥ १८॥

कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत्।
तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः॥ १९

कालः करोति धर्मज्ञं कदाचिद्विकलं पुनः।
स्वभावात्कर्मतो वापि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम्॥ २०

नारद उवाच

इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः।
तमब्रवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम्॥ २१

रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः।
कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे॥ २२

द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर।
ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते॥ २३

विष्णुरुवाच

त्रिगुणा साखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसम्मता।
अजेयानेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत्॥ २४

दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु।
गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र साम्प्रतम्॥ २५

दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः।
दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं विषादे मा मनः कृथाः॥ २६

इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम्।
स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागाद्धरिसन्निधौ॥ २७

आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः।
समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः॥ २८

चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान्।
प्रेरितो यत्र कृष्णेन गन्तुकामेन काननम्॥ २९

काल भी उसी मायाका ही रूप है। वह रूपहीन होते हुए भी स्वरूप धारण कर लेता है। विद्वान्, मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीका कोई भी व्यक्ति हो, वह उसके वशमें रहता है॥ १९॥

कभी-कभी काल धर्मज्ञ पुरुषको भी उद्विग्न कर देता है। स्वभाव अथवा कर्मसे उस कालकी चेष्टा नहीं जानी जा सकती॥ २०॥

नारदजी बोले—ऐसा कहकर विष्णुके चुप हो जानेपर मेरा मन सन्देहसे भर गया और मैंने उन जगन्नाथ सनातन वासुदेवसे पूछा—हे रमाकान्त! आप मुझे यह बतायें कि उस मायाका रूप क्या है, उसकी आकृति कैसी है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है तथा उसका आधार क्या है? हे महीधर! मैं उस मायाको देखना चाहता हूँ, अतः मुझे उसका शीघ्र दर्शन कराइये। हे लक्ष्मीकान्त! मैं उसके विषयमें सम्यक् जानना चाहता हूँ; मुझपर कृपा कीजिये॥ २१—२३॥

भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया, अनेकरूपा तथा सम्पूर्ण संसारको अपनेमें व्याप्त करके स्थित है॥ २४॥

हे नारद! यदि तुम्हारे मनमें उस मायाको देखनेकी इच्छा है तो मेरे साथ अभी गरुडपर आरूढ़ हो जाओ; हम दोनों अन्य लोकमें इसी समय चलते हैं॥ २५॥

हे ब्रह्मपुत्र! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिये अजेय मायाका दर्शन कराऊँगा, किंतु उसे देखकर तुम अपने मनको विषादग्रस्त मत होने देना॥ २६॥

मुझसे ऐसा कहकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने विनतापुत्र गरुडका स्मरण किया। स्मरण करते ही गरुड भगवान् विष्णुके समक्ष उपस्थित हो गये॥ २७॥

गरुडको आया हुआ देखकर भगवान् विष्णु मुझे अत्यन्त आदरपूर्वक पीछे बैठाकर प्रस्थान करनेके लिये उसपर आरूढ़ हो गये॥ २८॥

जिस वन-प्रदेशमें भगवान् विष्णु जाना चाहते थे, वहाँके लिये प्रेरित किये गये वायुसदृश वेगवान् विनतापुत्र गरुडने वैकुण्ठसे प्रस्थान किया॥ २९॥

महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा।
पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान्॥ ३०

मुनीनामाश्रमान् रम्यान् वापीश्च सुमनोहराः।
पल्वलानि विशालानि ह्रदान् पङ्कजभूषितान्॥ ३१

मृगाणां च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च।
गतावावां कान्यकुब्जसमीपं गरुडासनौ॥ ३२

तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पङ्कजमण्डितम्।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्॥ ३३

नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पङ्कजैरुपरञ्जितम्।
शुचि मिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम्॥ ३४

मामाह भगवान् वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम्।
स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः॥ ३५

श्रीभगवानुवाच

पश्य नारद गम्भीरं सरः सारसनादितम्।
सर्वत्र पङ्कजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम्॥ ३६

अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम्।
इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत्॥ ३७

विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम्।
स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः॥ ३८

विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे।
मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले॥ ३९

पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने।
साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च॥ ४०

सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः।
इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम्॥ ४१

स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः।
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम्॥ ४२
कृत्वाचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले।

गरुडपर आसीन हम दोनों बहुत-से विशाल वनों, दिव्य सरोवरों, नदियों, ग्राम-नगरों, पर्वतके आस-पासकी बस्तियों, गायोंके गोष्ठों, मुनियोंके मनोहर आश्रमों, सुन्दर बावलियों, छोटे-बड़े तालाबों, कमलोंसे सुशोभित विस्तृत तथा गहरे ह्रदों एवं मृगों तथा वराहोंके बहुतसे समूहोंको देखते हुए कान्यकुब्जनगरके पास पहुँच गये॥ ३०—३२॥

वहाँ कमलोंसे मण्डित, हंस तथा सारसोंसे युक्त, चक्रवाकोंसे सुशोभित, अनेक वर्णोंवाले खिले हुए कमलोंसे शोभायमान, झुण्ड-के-झुण्ड भौरोंकी ध्वनिसे गुंजित एवं पवित्र तथा मधुर जलवाला एक दिव्य तथा रमणीय सरोवर दिखायी पड़ा॥ ३३-३४॥

क्षीरसागरके मधुर दुग्धकी समानता करनेवाले विशिष्ट जलसे युक्त उस परम अद्भुत सरोवरको देखकर भगवान् विष्णु मुझसे कहने लगे॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! सर्वत्र कमलोंसे आच्छादित, स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा सारसकी ध्वनिसे निनादित हो रहे इस अगाध सरोवरको देखो॥ ३६॥

इसीमें स्नान करके हमलोग श्रेष्ठ नगर कान्यकुब्जमें चलेंगे—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु मुझे शीघ्र ही गरुडसे उतारकर आगे ले गये॥ ३७॥

उन्होंने हँसते हुए मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ी और बार-बार उस सरोवरकी प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले गये॥ ३८॥

वृक्षोंकी घनी छायावाले मनोहर तटभागपर कुछ समय विश्राम करनेके बाद भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे मुने! आप इस स्वच्छ जलमें पहले स्नान कर लें, तत्पश्चात् मैं इस परम पवित्र सरोवरमें स्नान करूँगा। इस सरोवरका जल साधुजनोंके चित्तकी भाँति निर्मल तथा कमलोंके परागसे विशेषरूपसे सुगन्धित है॥ ३९-४०$\frac{१}{२}$॥

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर मैंने स्नान करनेका मन बना लिया और अपनी वीणा तथा मृगचर्म वहीं रखकर मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया॥ ४१$\frac{१}{२}$॥

हाथ-पैर धोकर और शिखा बाँधकर मैंने हाथमें कुश ले लिया। पुनः पवित्र जलसे आचमन करके मैं उस जलमें स्नान करने लगा। जब मैं उस मनोहर

यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः॥ ४३

विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम्।
हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम्॥ ४४

आरुह्य गरुडं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात्।
ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः॥ ४५

तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः।
विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः॥ ४६

सम्प्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः।
अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम्॥ ४७

किमेतदिति मनसाकरवं विस्मयं मुहुः।
एवं चिन्तयमानस्य नारीरूपधरस्य मे॥ ४८

सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः।
गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः॥ ४९

युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः।
वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम्॥ ५०

राकाचन्द्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः।
पप्रच्छ कासि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा॥ ५१

मानुषस्य च वा कान्ते गन्धर्वस्योरगस्य च।
एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता॥ ५२

विवाहिताथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने।
किं पश्यसि सुकेशान्ते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे॥ ५३

चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि।
भुङ्क्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि।
वाञ्छितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम्॥ ५४

जलमें स्नान कर रहा था, उसी समय भगवान्‌के देखते-देखते मैं अपना पुरुषरूप छोड़कर एक सुन्दर नारीके रूपमें परिणत हो गया॥ ४२-४३½॥

उसी क्षण मेरी वीणा तथा पवित्र मृगचर्म लेकर भगवान् विष्णु गरुडपर आरूढ़ होकर शीघ्र ही अपने धाम चले गये। इधर मैं सुन्दर भूषणोंसे भूषित होकर स्त्रीके रूपमें हो गया॥ ४४-४५॥

उसी समयसे मेरे मनमें पूर्वदेहकी विस्मृति हो गयी। मैं भगवान् विष्णु तथा अपनी महती वीणाको भी भूल गया॥ ४६॥

मोहिनीरूप प्राप्त करके मैं सरोवरसे बाहर निकला और स्वच्छ जलवाले तथा कमलोंसे परिपूर्ण उस सरोवरको देखने लगा॥ ४७॥

मैं मनमें बार-बार विस्मय कर रहा था कि 'यह क्या है!' नारीरूपको प्राप्त मैं ऐसा सोच ही रहा था कि मुझे तालध्वज नामक राजा अचानक दिखायी पड़े। हाथीके समूहोंसे घिरे हुए वे रथपर बैठे हुए थे। युवावस्थावाले तथा आभूषणोंसे सुशोभित राजा तालध्वज शरीर धारण किये साक्षात् कामदेवके समान प्रतीत हो रहे थे॥ ४८-४९½॥

पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा दिव्य आभूषणोंसे मण्डित मुझ रमणीको देखकर राजाको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुझसे पूछा—हे कल्याणि! तुम कौन हो? हे कान्ते! तुम किस देवता, मनुष्य, गन्धर्व अथवा नागकी पुत्री हो? रूप तथा यौवनसे सम्पन्न युवती होते हुए भी तुम यहाँ अकेली क्यों हो?॥ ५०—५२॥

हे सुनयने! तुम सच-सच बताओ कि तुम विवाहिता हो अथवा कुमारी! हे सुकेशान्ते! हे सुमध्यमे! तुम इस सरोवरमें क्या देख रही हो?॥ ५३॥

हे पिकभाषिणि! मन्मथमोहिनि! तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करो। हे मरालाक्षि! हे कृशोदरि! मुझ उत्तम राजाको अपना पति बनाकर मेरे साथ तुम निःसन्देह मनोवांछित सुखोंका उपभोग करो॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
नारदेन स्वस्त्रीत्वप्राप्तिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

~~0~~

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

राजा तालध्वजसे स्त्रीरूपधारी नारदजीका विवाह, अनेक पुत्र-पौत्रोंकी उत्पत्ति और युद्धमें उन सबकी मृत्यु, नारदजीका शोक और भगवान् विष्णुकी कृपासे पुनः स्वरूपबोध

नारद उवाच

इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च।
विमृश्य मनसात्यर्थं तमुवाच विशांपते॥ १

राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम्।
पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे॥ २

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत्।
निराधारास्मि राजेन्द्र चिन्तयामि चिकीर्षितम्॥ ३

दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम।
धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु॥ ४

तवाधीनास्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः।
न पिता न च माता च न स्थानं न च बान्धवाः॥ ५

इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः।
मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह॥ ६

नरयानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम्।
आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयाम्बरवेष्टितम्॥ ७

मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम्।
चतुरस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम्॥ ८

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः।
आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम्॥ ९

आरूढाऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया।
मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः॥ १०

विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने।
उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः॥ ११

तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम॥ १२

नारदजी बोले—हे विशाम्पते! राजा तालध्वजके यह पूछनेपर मैंने अपने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार करके उनसे कहा—हे राजन्! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ, मेरे माता-पिता कौन हैं और मुझे इस सरोवरपर कौन लाया है॥ १-२॥

अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरा कल्याण कैसे हो सकेगा, मैं आश्रयहीन हूँ। हे राजेन्द्र! यही बात सोचती रहती हूँ॥ ३॥

हे राजन्! दैव ही सर्वोपरि है; इसमें मेरा पौरुष व्यर्थ ही है। हे भूपाल! आप धर्मज्ञ हैं; आप जैसा चाहते हों, वैसा करें॥ ४॥

हे राजन्! मैं आपके अधीन हूँ; क्योंकि मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे न पिता हैं, न माता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न तो मेरा कोई स्थान ही है॥ ५॥

मेरे ऐसा कहनेपर वे राजा तालध्वज कामासक्त हो उठे और मुझ विशाल नयनोंवालीकी ओर दृष्टि डालकर उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा—॥ ६॥

तुमलोग इस सुन्दर स्त्रीके आरोहणके लिये रेशमी वस्त्रसे आवेष्टित एक मनोहर पालकी ले आओ, जिसे ढोनेवाले चार पुरुष हों, उसमें कोमल आस्तरण बिछा हो तथा वह मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित हो, वह सोनेकी बनी हुई हो, चौकोर हो तथा पर्याप्त विशाल हो॥ ७-८॥

राजाकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने मेरे लिये वस्त्रसे ढकी हुई दिव्य पालकी लाकर उपस्थित कर दी॥ ९॥

उन राजा तालध्वजका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे मैं उस पालकीपर आरूढ़ हो गया। मुझे अपने भवन ले जाकर राजा तालध्वज अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

किसी शुभ लग्न तथा उत्तम दिनमें राजाने वैवाहिक विधि-विधानसे अग्निके साक्ष्यमें मेरे साथ विवाह कर लिया॥ ११॥

उस समय मैं उनके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो गया। उन्होंने वहाँ मेरा नाम सौभाग्यसुन्दरी—ऐसा रख दिया॥ १२॥

रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः।
नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा॥ १३

राजकार्याणि सन्त्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम्।
नासौ विवेद गच्छन्तं कालं कामकलारतः॥ १४

उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च।
हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च॥ १५

वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे।
विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह॥ १६

व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशीकृता।
स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च॥ १७

ममैवायं पतिर्योषाहं पत्नीषु प्रिया सती।
पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम॥ १८

इति चिन्तयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम्।
क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी॥ १९

विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानं च शाश्वतम्।
धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता॥ २०

एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु।
गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने॥ २१

जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा।
कारयामास विधिवद् गर्भसंस्कारकर्म च॥ २२

अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः।
नाब्रवं लज्जमानाहं नृपं प्रीतमना भृशम्॥ २३

सम्पूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम।
शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते॥ २४

बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्ममहोत्सवः।
राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः॥ २५

कामशास्त्रानुकूल अनेक प्रकारके भोग-विलासोंके द्वारा मेरे साथ रमण करते हुए राजाको आनन्द मिलता था॥ १३॥

राज्यके कार्योंको छोड़कर वे दिन-रात मेरे साथ क्रीडारत रहते थे। कामकलामें आसक्त उन राजाको समय बीतनेका भी बोध नहीं रहता था॥ १४॥

मनोहर उद्यानों, बावलियों, सुन्दर महलों, अट्टालिकाओं, श्रेष्ठ पर्वतों, उत्तम जलाशयों तथा रमणीक काननमें विहार करते हुए मधुपानसे उन्मत्त वे राजा समस्त कार्य छोड़कर मेरे अधीन हो गये॥ १५-१६॥

हे व्यासजी! उनमें मेरी भी पूर्ण आसक्ति हो गयी और मैं क्रीडारसके वशीभूत हो गया। मुझे अपने पूर्व पुरुष-शरीर तथा मुनि-जन्मका भी स्मरण नहीं रहा॥ १७॥

ये ही मेरे पति हैं तथा इनकी अनेक पत्नियोंमें मैं ही इनकी प्रिय पतिव्रता भार्या हूँ, सम्पूर्ण विलासोंको जाननेवाली मैं इनकी पटरानी हूँ; इस प्रकार मेरा जीवन सफल है—ऐसा सोचती हुई मैं दिन-रात उन्हींके प्रेममें आबद्ध रहती थी तथा उनके साथ क्रीडारत रहती थी। इस तरह उनके सुखके लोभमें मैं सदा उन्हींके अधीन हो गयी। मेरा ब्रह्मविज्ञान, सनातन ब्रह्मज्ञान तथा धर्मशास्त्रका रहस्य पूर्णरूपसे विस्मृत हो गया और मैं उन्हींमें आसक्त-मन होकर रहने लगी॥ १८—२०॥

हे मुने! इस प्रकार कामक्रीडामें आसक्त मेरे वहाँ विहार करते हुए बारह वर्ष एक क्षणकी भाँति व्यतीत हो गये॥ २१॥

मेरे गर्भवती होनेपर राजाको परम प्रसन्नता हुई। राजाने विधिपूर्वक गर्भसम्बन्धी संस्कारकर्म सम्पन्न कराया॥ २२॥

गर्भके समय मेरी मनोवांछित वस्तुओंके विषयमें राजा मुझे प्रसन्न करते हुए बार-बार पूछा करते थे। तब अत्यन्त प्रसन्नचित्त मैं लज्जाके कारण कुछ भी नहीं कह पाती थी॥ २३॥

दस माह पूर्ण होनेपर ग्रह, नक्षत्र, लग्न तथा तारा-बलयुक्त शुभ दिनमें मुझे एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २४॥

राजाके भवनमें पुत्र-जन्मका उत्सव मनाया गया। पुत्र-जन्मसे राजा परम प्रसन्न हो गये॥ २५॥

सूतकान्ते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह।
अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परन्तप॥ २६

ततो वर्षद्वयान्ते वै पुनर्गर्भो मया धृतः।
द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः॥ २७

सुधन्वेति सुतस्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा।
वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम्॥ २८

एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसम्मताः।
मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने॥ २९

पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः स्वरूपिणः।
गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं सम्पन्नं सुखसाधनम्॥ ३०

तेषां दारक्रियाः काले कृता राज्ञा यथोचिताः।
स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत्॥ ३१

ततः पौत्रादिसम्भूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः।
आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम्॥ ३२

कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम्।
पुत्रेषु रोगजनितं देहसन्तापकारकम्॥ ३३

परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः।
पुत्राणां वा वधूनां च तेन सन्तापसम्भवः॥ ३४

सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम्।
सङ्कल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम॥ ३५

विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम्।
योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा॥ ३६

अहङ्कारस्तु सञ्जातो भृशं मोहविवर्धकः।
एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः सुकुलसम्भवाः॥ ३७

जननाशौच समाप्त होनेपर पुत्रका दर्शन करके राजाको असीम प्रसन्नता हुई। हे परन्तप! अब मैं राजा तालध्वजकी अत्यन्त प्रिय भार्या हो गयी॥ २६॥

दो वर्षके अनन्तर मैंने पुनः गर्भ धारण किया। [यथासमय] सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २७॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंका आदेश पाकर राजाने इस पुत्रका नाम 'सुधन्वा' तथा बड़े पुत्रका नाम 'वीरवर्मा' रखा॥ २८॥

इस प्रकार मैंने राजाके मनोनुकूल बारह पुत्र उत्पन्न किये। मैं मोहके वशीभूत होकर उनके लालन-पालनमें प्रेमपूर्वक लगा रहा॥ २९॥

इसके बाद समय-समयपर मेरे परम रूपवान् आठ पुत्र और उत्पन्न हुए। इससे सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा पूर्ण हो गया॥ ३०॥

राजाने समयानुसार उचित रूपसे उनका विवाह कर दिया। इस प्रकार वधुओं तथा पुत्रोंसे युक्त मेरा परिवार बहुत बड़ा हो गया॥ ३१॥

फिर मेरे पौत्र उत्पन्न हुए, जो खेलकूदमें मग्न रहते थे तथा अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे मेरे मोहको बढ़ाते रहते थे। कभी सुख-समृद्धि मेरे सामने आती थी और कभी पुत्रोंके रोगग्रस्त होनेके कारण चित्तको अशान्त कर देनेवाला महान् दुःख भोगना पड़ता था॥ ३२-३३॥

कभी-कभी पुत्रों अथवा वधुओंमें परस्पर अत्यन्त भीषण विरोध हो जाता था, उससे मुझे सन्ताप होने लगता था॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! संकल्पसे उत्पन्न इस सुख-दुःखात्मक, तुच्छ, भयानक तथा मिथ्या व्यवहारवाले मोहमें मैं निमग्न रहता था॥ ३५॥

मेरा पूर्वकालिक विज्ञान विस्मृत हो गया तथा शास्त्र-ज्ञान भी समाप्त हो गया। स्त्रीभावमें होकर मैं घरके कार्योंमें ही सदा व्यस्त रहता था॥ ३६॥

मेरे ये पुत्र महान् पराक्रमी हैं तथा मेरी ये बहुएँ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हैं—ऐसा सोचकर मेरे मनमें अति मोह बढ़ानेवाला अहंकार उत्पन्न हो जाया करता था॥ ३७॥

एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडन्ति मम वेश्मसु।
धन्याहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम्॥ ३८

नारदोऽहं भगवता वञ्चितो मायया किल।
न कदाचिन्मयाप्येवं चिन्तितं मनसा किल॥ ३९

राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता।
धन्याहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम्॥ ४०

अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान्।
अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद॥ ४१

कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम्।
आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिन्तयत्॥ ४२

वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च।
मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा॥ ४३

संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः।
हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः॥ ४४

राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः।
श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे॥ ४५

स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः।
क्रन्दमाना ह्यहं तत्र गता समरमण्डले॥ ४६

दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता।
विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे॥ ४७

हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हतास्मि दुरात्मना।
दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारेणातिपापिना॥ ४८

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान्मधुसूदनः।
कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद् वृद्धः परमशोभनः॥ ४९

सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः।
मामुवाचातिदीनां स क्रन्दमानां रणाजिरे॥ ५०

मेरे ये बालक पूर्ण तत्पर होकर घरमें खेल रहे हैं। अहो, इस संसारमें सभी नारियोंमें मैं अवश्य ही धन्य हूँ॥ ३८॥

'मैं नारद हूँ तथा भगवान्‌ने अपनी मायाके प्रभावसे मुझे वंचित कर रखा है'—ऐसा मैं अपने मनमें कभी सोच भी नहीं पाता था॥ ३९॥

हे व्यासजी! इस प्रकार मायासे मोहित हुआ मैं केवल यही सोचा करता था कि मैं उत्तम आचरणवाली एक पतिव्रता राजमहिषी हूँ, मेरे बहुतसे पुत्र हैं तथा इस संसारमें मैं बड़ी धन्य हूँ॥ ४०॥

हे मानद! इसके बाद दूर देशमें रहनेवाले किसी महान् राजाने मेरे पतिके साथ शत्रुता ठान ली। वह हाथियों तथा रथोंसे अपनी सेना सुसज्जित करके कान्यकुब्जनगरमें आ गया और युद्धके विषयमें सोचने लगा॥ ४१-४२॥

उस राजाने अपनी सेनाके साथ मेरा नगर घेर लिया; तब मेरे पुत्र तथा पौत्र भी नगरसे बाहर निकल पड़े॥ ४३॥

मेरे उन पुत्र-पौत्रोंने उस राजाके साथ भयंकर युद्ध किया। कालयोगसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके द्वारा मार डाले गये॥ ४४॥

तत्पश्चात् राजा तालध्वज हताश होकर युद्धस्थलसे अपने घर आ गये। मैंने सुना कि मेरे सभी पुत्र उस अत्यन्त भीषण संग्राममें मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ४५॥

मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंका संहार करके वह राजा सेनासहित चला गया। इसके बाद मैं विलाप करता हुआ युद्ध-भूमिमें जा पहुँचा॥ ४६॥

हे आयुष्मन्! वहाँ अपने पुत्रों तथा पौत्रोंको भूमिपर गिरा हुआ देखकर मैं दुःखसे अत्यन्त पीडित होकर शोक-सागरमें डूब गया तथा इस प्रकार विलाप करने लगा—हाय, मेरे पुत्र इस समय कहाँ चले गये? हाय, मुझे तो इस दुष्टात्मा, अति बलवान्, महापापी तथा दुर्लंघ्य दैवने मार डाला॥ ४७-४८॥

इसी बीच एक परम सुन्दर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके मधुसूदन भगवान् विष्णु वहाँ पहुँच गये॥ ४९॥

हे वेदज्ञ! सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित वे मेरे पास आये और युद्धभूमिमें अति विलाप करती हुई मुझ अबलासे बोले॥ ५०॥

ब्राह्मण उवाच

किं विषीदसि तन्वङ्गि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः।
मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके॥ ५१

का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिन्तयात्मगतिं पराम्।
उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने॥ ५२

स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि।
परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै॥ ५३

कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित्।
मृतानां किल बन्धूनां धर्मशास्त्रविनिर्णयः॥ ५४

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता।
उत्थिताहं नृपेणाथ युक्ता बन्धुभिरावृता॥ ५५

अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः।
चलिताहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम्॥ ५६

हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः।
नीत्वाह भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः॥ ५७

स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने गजगामिनि।
त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम्॥ ५८

कोटिशस्ते मृताः पुत्रा जन्मजन्मसमुद्भवाः।
पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा॥ ५९

केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे।
वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह॥ ६०

नारद उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके।
प्रविष्टा स्नातुकामाहं प्रेरिता तत्र विष्णुना॥ ६१

मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि।
हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान्॥ ६२

उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः।
प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम॥ ६३

ब्राह्मण बोले—हे तन्वङ्गि! हे पिकालापे! तुम क्यों विषाद कर रही हो? पति-पुत्रादिसे सम्पन्न गृहस्थीमें मोहके कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। तुम कौन हो, ये किसके पुत्र हैं तथा ये कौन हैं? तुम परम आत्मगतिपर विचार करो। हे सुलोचने! अब उठो और विलाप करना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ॥ ५१-५२॥

हे कामिनि! मर्यादाके रक्षणार्थ अब अपने परलोक गये हुए पुत्रोंके निमित्त स्नान तथा तिलदान करो। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बन्धुओंके निमित्त तीर्थमें ही स्नान करना चाहिये; घरमें कभी नहीं॥ ५३-५४॥

नारदजी बोले—उस वृद्ध ब्राह्मणने इस प्रकार कहकर मुझे समझाया। तत्पश्चात् मैं उठा और बन्धु-बान्धवों तथा राजाको साथ लेकर द्विजरूपधारी भगवान् विष्णुको आगे करके तत्काल परम पवित्र तीर्थके लिये चल पड़ा॥ ५५-५६॥

ब्राह्मणरूपधारी जनार्दन जगन्नाथ श्रीहरि भगवान् विष्णु मेरे ऊपर कृपा करके पुंतीर्थ सरोवरपर मुझको ले जाकर बोले—हे गजगामिनि! इस पवित्र सरोवरमें स्नान करो और निरर्थक शोकका परित्याग करो। अब पुत्रोंकी [तिलांजलि आदि] क्रियाका समय उपस्थित है॥ ५७-५८॥

जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भाई तथा बहन हुए तथा वे मृत्युको भी प्राप्त हो गये। उनमेंसे तुम किस-किसका दुःख मनाओगी? यह तो मनमें उत्पन्न भ्रममात्र है, जो शरीरधारियोंको व्यर्थ ही स्वप्नके समान होकर भी दुःख पहुँचाता रहता है॥ ५९-६०॥

नारदजी बोले—उनका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुकी प्रेरणाके अनुसार स्नान करनेकी इच्छासे मैं उस पुरुषसंज्ञक तीर्थ (सरोवर)-में प्रविष्ट हुआ॥ ६१॥

उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मैं तत्क्षण पुरुषरूपमें हो गया तथा भगवान् विष्णु अपने हाथमें मेरी वीणा लिये हुए अपने स्वाभाविक स्वरूपमें सरोवरके तटपर विराजमान थे॥ ६२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! स्नान करनेके पश्चात् मुझे तटपर कमललोचन भगवान्का दर्शन प्राप्त हुआ; तब मेरे चित्तमें सभी बातोंका स्मरण हो गया॥ ६३॥

सञ्चिन्तितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः।
हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः॥ ६४

मैं सोचने लगा कि मैं नारद हूँ और भगवान् विष्णुके साथ यहाँ आया था; मायासे विमोहित होनेके कारण मैं स्त्रीभावको प्राप्त हो गया॥ ६४॥

इति चिन्तापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः।
मामाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः॥ ६५

जब मैं इस तरहकी बातें सोच रहा था, उसी समय भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! यहाँ आओ, वहाँ जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो?॥ ६५॥

विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम्।
पुनः पुरुषभावश्च सम्पन्नः केन हेतुना॥ ६६

अपने अत्यन्त दारुण स्त्रीभावका स्मरण करके तथा किस कारणसे मैं पुनः पुरुषभावको प्राप्त हुआ—यह सोचकर मैं आश्चर्यचकित हो गया॥ ६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदस्य पुनः स्वरूपप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

राजा तालध्वजका विलाप और ब्राह्मणवेशधारी भगवान् विष्णुके प्रबोधनसे उन्हें वैराग्य होना, भगवान् विष्णुका नारदसे मायाके प्रभावका वर्णन करना

नारद उवाच

मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः।
क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः॥ १

नारदजी बोले—मुझ विप्ररूप नारदको देखकर वे राजा तालध्वज इस आश्चर्यमें पड़ गये कि मेरी वह पत्नी कहाँ चली गयी और ये मुनिश्रेष्ठ कहाँसे आ गये?॥ १॥

विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः।
क्व गता मां परित्यज्य विलपन्तं वियोगिनम्॥ २

राजा तालध्वज बार-बार यह कहकर विलाप करने लगे—'हा प्रिये! मुझ वियोगीको विलाप करता हुआ छोड़कर तुम कहाँ चली गयी?'॥ २॥

विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम्।
राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते॥ ३

हे विपुलश्रोणि! हे कमलसदृश नेत्रवाली! हे पवित्र मुसकानवाली! तुम्हारे विना मेरा जीवन, घर तथा राज्य—ये सभी व्यर्थ हैं। अब मैं क्या करूँ?॥ ३॥

न प्राणा मे बहिर्यान्ति विरहेण तवाधुना।
गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात्॥ ४

तुम्हारे वियोगमें इस समय मेरे प्राण भी नहीं निकल रहे हैं। तुम्हारे विना प्राण धारण करनेसे प्रेम-धर्म भी सर्वथा विनष्ट हो गया॥ ४॥

विलपामि विशालाक्षि देहि प्रत्युत्तरं प्रियम्।
क्व गता सा मयि प्रीतिर्याभूत्प्रथमसङ्गमे॥ ५

हे विशाल नयनोंवाली! मैं विलाप कर रहा हूँ; तुम मुझे प्रिय उत्तर प्रदान करो। प्रथम-मिलनमें मेरे प्रति जो प्रीति थी, वह कहाँ चली गयी?॥ ५॥

निमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः।
गृहीता वरुणेनाशु मम दौर्भाग्ययोगतः॥ ६

हे सुभ्रु! क्या तुम जलमें डूब गयी? अथवा मछली या कछुए तुम्हें खा गये? या फिर मेरे दुर्भाग्यवश वरुणने तुम्हें शीघ्र ही अपने अधिकारमें कर लिया?॥ ६॥

धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वं पुत्रैः समागता।
अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि॥ ७

हे सर्वांगसुन्दरि! हे अमृतभाषिणि! तुम धन्य हो, जो अपने पुत्रोंके साथ चली गयी; उन पुत्रोंके प्रति तुम्हारा वास्तविक प्रेम था॥ ७॥

न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता।
विलपन्तं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यन्त्रिता॥ ८

उभयं मे गतं कान्ते पुत्रास्त्वं प्राणवल्लभा।
तथापि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये॥ ९

किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले।
रामाविरहजं दुःखं जानाति रघुनन्दनः॥ १०

विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतं भुवि।
दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः॥ ११

उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल।
यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह॥ १२

एवं विलपमानं तं राजानं भगवान्हरिः।
निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः॥ १३

श्रीभगवानुवाच

किं विषीदसि राजेन्द्र क्व गता ते प्रियाङ्गना।
न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः॥ १४

का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगः कीदृशस्तव।
प्रवाहरूपे संसारे नृणां नौतरतामिव॥ १५

गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम्।
संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम्॥ १६

अनया सह ते राजन् संयोगस्त्विह संवृतः।
भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा॥ १७

न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे।
काकतालीप्रसङ्गेन यद्भूतं तत्तथा गतम्॥ १८

यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है जो कि दीन-दशाको प्राप्त मुझ पतिको इस प्रकार विलाप करता हुआ छोड़कर पुत्र-स्नेहरूपी पाशमें बँधी हुई तुम स्वर्ग चली गयी॥ ८॥

हे कान्ते! हे प्रिये! मेरे पुत्र तथा प्राणप्रिय तुम—ये दोनों ही चले गये फिर भी मुझ अत्यन्त दुःखितका मरण नहीं हो रहा है॥ ९॥

मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस समय पृथ्वीपर राम भी नहीं हैं; क्योंकि पत्नीवियोगजन्य दुःखको एकमात्र वे रघुनन्दन राम ही जानते हैं॥ १०॥

इस जगत्में निष्ठुर ब्रह्माने यह बहुत विपरीत कार्य किया है, जो कि वे समान चित्तवाले पति-पत्नीका मरण भिन्न-भिन्न समयोंमें किया करते हैं॥ ११॥

मुनियोंने नारियोंका अवश्य ही बड़ा उपकार कर दिया है, जो उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें पतिके साथ पत्नीके भी जल जाने (सती होने)-का उल्लेख किया है॥ १२॥

इस प्रकार विलाप कर रहे उन तालध्वजको भगवान् विष्णुने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचनोंसे सान्त्वना दी॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे राजेन्द्र! क्यों रो रहे हो? तुम्हारी प्रिय भार्या कहाँ चली गयी? क्या तुमने कभी शास्त्रश्रवण नहीं किया है अथवा विद्वज्जनोंकी संगति नहीं की है?। वह तुम्हारी कौन थी? तुम कौन हो? कैसा संयोग तथा कैसा वियोग? प्रवहमान इस संसारसागरमें मनुष्योंका सम्बन्ध नौकापर चढ़े हुए मनुष्योंकी भाँति है। हे नृपश्रेष्ठ! अब तुम घर जाओ। तुम्हारे व्यर्थ रोनेसे क्या लाभ? मनुष्योंका संयोग तथा वियोग सदा दैवके अधीन रहता है। हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस कृशोदरी सुन्दर स्त्रीके साथ जो भोग करना था, उसे आपने कर लिया। अब इसके साथ आपके संयोगका समय समाप्त हो चुका है। एक सरोवरपर इसके साथ आपका संयोग हुआ था; उस समय इसके माता-पिता आपको दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काकतालीय न्यायके अनुसार जैसे आया था, वैसे ही चला गया॥ १४—१८॥

मा शोकं कुरु राजेन्द्र कालो हि दुरतिक्रमः।
कालयोगं समासाद्य भुङ्क्ष्व भोगान् गृहे यथा॥ १९

यथागता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी।
यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो॥ २०

रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी।
वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना॥ २१

भोगः कालवशादेति तथैव प्रतियाति च।
नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि॥ २२

नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः।
घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः॥ २३

मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम्।
अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय साम्प्रतम्॥ २४

दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभङ्गुरः।
तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम्॥ २५

जिह्वोपस्थरसो राजन् पशुयोनिषु वर्तते।
ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु॥ २६

तस्माद् गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम्।
मायेयं भगवत्यास्तु यया सम्मोहितं जगत्॥ २७

नारद उवाच

इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम्।
कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमन्दिरम्॥ २८

दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम्।
वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च॥ २९

गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवन्तमधोक्षजम्।
तमब्रवं जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः॥ ३०

अतः हे राजेन्द्र! शोक मत कीजिये। कालका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अपने घर जाकर समयानुसार प्राप्त भोगोंका उपभोग कीजिये। वह सुन्दरी जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गयी। आप जैसे पहले थे, अब वैसे ही हो गये। हे राजन्! अब आप घर जाइये और अपना कार्य कीजिये॥ १९-२०॥

आपके इस तरह रोनेसे वह स्त्री अब लौट तो आयेगी नहीं। आप व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। हे पृथ्वीपते! अब आप योगयुक्त बनिये॥ २१॥

समयानुसार जिस प्रकार भोग आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतएव इस सारहीन भवमार्गके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये॥ २२॥

न तो अकेले सुखका संयोग होता है और न तो दुःखका; घटीयन्त्रकी भाँति सुख तथा दुःखका भ्रमण होता रहता है॥ २३॥

हे राजन्! अब आप मनको स्थिर करके सुखपूर्वक राज्य कीजिये अथवा अपने उत्तराधिकारीको राज्य सौंपकर वनमें निवास कीजिये॥ २४॥

क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला यह मानवशरीर प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये॥ २५॥

हे राजन्! जिह्वा तथा जननेन्द्रियका आस्वाद तो पशुयोनियोंमें भी सुलभ होता है, किंतु ज्ञान केवल मानव-योनिमें ही सुलभ है, अन्य क्षुद्र योनियोंमें नहीं॥ २६॥

अतएव आप पत्नीवियोगसे उत्पन्न शोकका परित्याग करके घर चले जाइये। यह सब उन्हीं भगवतीकी माया है, जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है॥ २७॥

नारदजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वज उन लक्ष्मीपतिको प्रणाम करके भलीभाँति स्नान-विधि सम्पन्न करके अपने घर चले गये। अद्भुत वैराग्यको प्राप्त करके उन राजाने अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वनके लिये प्रस्थान किया और उन्होंने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया॥ २८-२९॥

राजा तालध्वजके चले जानेपर मुझको देखकर बार-बार हँस रहे उन जगत्पति भगवान् विष्णुसे मैंने कहा॥ ३०॥

वञ्चितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत्।
स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया॥ ३१

ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे।
विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरे॥ ३२

योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो।
पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठं पुलोमी वासवं यथा॥ ३३

मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः।
लिङ्गं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरे॥ ३४

विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो।
कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत्॥ ३५

नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः।
सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम्॥ ३६

मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम्।
जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा॥ ३७

विष्णुरुवाच

पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते।
देहेषु सर्वजन्तूनां दशाभेदा ह्यनेकशः॥ ३८

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा।
तथा देहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः॥ ३९

सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि।
पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञातमशेषतः॥ ४०

निद्रया चाल्यते चित्तं भवन्ति स्वप्नसम्भवाः।
नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः॥ ४१

गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने।
किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः॥ ४२

हे देव! आपने मुझे भ्रमित कर दिया था; अब मायाकी महान् शक्तिको मैंने जान लिया। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मैंने जो भी कार्य किया था, वह सब मैं अब याद कर रहा हूँ॥ ३१॥

हे देवाधिदेव! हे हरे! आप मुझे यह बताइये कि जब मैं सरोवरमें प्रविष्ट हुआ तब स्नान करते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी थी?॥ ३२॥

हे जगद्गुरो! स्त्रीशरीर पानेके पश्चात् उन उत्तम नरेश तालध्वजको पतिरूपमें प्राप्त करके मैं उसी प्रकार मोहित हो गया था, जैसे इन्द्रको पाकर शची॥ ३३॥

हे देवेश! मेरा मन वही था, चित्त वही था, वही प्राचीन देह था तथा वही लिंगरूप लक्षण भी था; तब हे हरे! मेरी स्मृतिका नाश कैसे हो गया?॥ ३४॥

हे प्रभो! उस समय अपने ज्ञानके नष्ट हो जानेके विषयमें मुझे अब महान् आश्चर्य हो रहा है। हे रमाकान्त! इसका वास्तविक कारण बताइये॥ ३५॥

स्त्रीशरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोगोंका आनन्द लिया, नित्य मद्य-पान किया तथा निषिद्ध भोजन किया। उस समय मैं स्पष्टरूपसे यह नहीं जान सका कि मैं नारद हूँ। इस समय मैं जिस प्रकार जान रहा हूँ, वैसा उस समय मैं नहीं जानता था॥ ३६-३७॥

विष्णु बोले—हे महामते नारद! देखो, यह सब खेल महामायाजनित है। उसीके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी अवस्थाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जैसे शरीरधारियोंमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय—ये अवस्थाएँ होती हैं, उसी प्रकार दूसरे शरीरकी प्राप्ति भी होती है; इसमें सन्देह कैसा?। सोया हुआ प्राणी न जानता है, न सुनता है और न तो बोलता ही है, किंतु जाग जानेपर वही अपने सम्पूर्ण ज्ञात विषयोंको फिरसे जान लेता है। निद्रासे चित्त विचलित हो जाता है और स्वप्नसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके मनोभाव तथा मनोभेद उपस्थित होते रहते हैं। उस अवस्थामें प्राणी सोचता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है, किंतु मैं भागनेमें समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ? मेरे लिये कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं शीघ्र भाग चलूँ॥ ३८—४२॥

मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम्।
संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सह मन्यते॥ ४३

प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने दृष्टं सुखासुखम्।
स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि॥ ४४

स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः।
तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल॥ ४५

नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम्।
गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः॥ ४६

कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानतो मन्दधीः पुनः।
मायागुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह॥ ४७

गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
विना गुणैर्न संसारो वर्तते किञ्चिदप्यदः॥ ४८

अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः।
न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः॥ ४९

तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः।
तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल॥ ५०

शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः।
गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः॥ ५१

तस्मान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर।
मायाविनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे॥ ५२

दृष्टा माया त्वयाद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः।
किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम्॥ ५३

कभी-कभी प्राणी स्वप्नमें अपने मृत पितामहको घरपर आया हुआ देखता है। वह समझता है कि मैं उनके साथ मिल रहा हूँ, बात कर रहा हूँ, भोजन कर रहा हूँ। जागनेपर वह समझ जाता है कि सुख-दुःख-सम्बन्धी ये बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन बातोंको याद करके वह लोगोंको विस्तारपूर्वक उनके बारेमें बताता भी है। जिस प्रकार कोई भी प्राणी स्वप्नमें यह नहीं जान पाता कि यह निश्चय ही भ्रम है, उसी प्रकार मायाका ऐश्वर्य जान पाना अत्यन्त कठिन है। हे नारद! मायाके गुणोंकी अगम्य सीमाको न तो मैं जानता हूँ और न तो शिव तथा न ब्रह्मा ही जानते हैं तो फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य उसे पूर्णतः जाननेमें समर्थ हो सकता है? इस जगत्का कोई भी प्राणी मायाके गुणोंको नहीं जान सका है॥ ४३—४७॥

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके संयोगसे विरचित है। इन गुणोंके बिना यह संसार क्षणभर भी स्थित नहीं रह सकता। मैं सत्त्वगुणप्रधान हूँ; रजोगुण और तमोगुण मुझमें गौणरूपमें विद्यमान हैं। तीनों गुणोंसे रहित होनेपर मैं अखिल भुवनका नियन्ता कभी नहीं हो सकता। उसी प्रकार आपके पिता ब्रह्मा रजोगुणप्रधान कहे जाते हैं। वे सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे भी युक्त हैं; इन दोनों गुणोंसे रहित नहीं हैं। उसी प्रकार भगवान् शंकर भी तमोगुणप्रधान हैं तथा सत्त्वगुण और रजोगुण उनमें गौणरूपसे विद्यमान हैं। मैंने ऐसे किसी प्राणीके विषयमें नहीं सुना है, जो इन तीनों गुणोंसे रहित हो॥ ४८—५१॥

अतएव हे मुनीश्वर! मायाके द्वारा विरचित, सारहीन, सीमारहित तथा परम दुर्घट इस संसारमें प्राणीको मोह नहीं करना चाहिये। आपने अभी-अभी मायाका प्रभाव देखा है; आपने अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग किया। तब हे महाभाग! आप उस महामायाके अद्भुत चरित्रके विषयमें मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
मायाप्राबल्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

~~0~~

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना

व्यास उवाच

निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम्।
माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम्॥ १

मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः।
श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम्॥ २

ब्रूहि नारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा।
क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः॥ ३

नारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे।
आरुह्य गरुडं गन्तुं वैकुण्ठे च मनो दधे॥ ४

मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं गच्छ नारद।
एहि वा मम लोकं त्वं यथारुचि तथा कुरु॥ ५

ब्रह्मलोकं गतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम्।
भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद् गरुडासनः॥ ६

वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम्।
ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने॥ ७

चिन्तयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम्।
गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः॥ ८

तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिन्तातुरं तु माम्।

ब्रह्मोवाच

क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिन्तातुरः सुत॥ ९

स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम।
केनापि वञ्चितोऽसि त्वं दृष्टं वा किञ्चिदद्भुतम्॥ १०

विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत।

नारद उवाच

इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च॥ ११

तमब्रवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम्।
वञ्चितोऽहं पितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १२

व्यासजी बोले—हे महाराज! मैंने नारदजीसे योगमायाके पवित्र अक्षरोंवाले जिस माहात्म्यको सुना है, उसे कहता हूँ; आप सुनें॥ १॥

महर्षि नारदकी नारी-देहसे सम्बन्धित कथा सुनकर मैंने उन सर्वज्ञशिरोमणि मुनिसे पुनः पूछा—हे नारदजी! अब आप यह बताइये कि इसके बाद भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा और आपके साथ वे जगत्पति लक्ष्मीकान्त कहाँ गये?॥ २-३॥

नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरके तटपर मुझसे इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुने गरुडपर आरूढ़ होकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेका विचार किया॥ ४॥

तदनन्तर रमापति विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! अब आप जहाँ जाना चाहें, जायँ। अथवा मेरे लोक चलिये। जैसी आपकी रुचि हो वैसा कीजिये॥ ५॥

इसके बाद मैं मधुसूदन श्रीविष्णुसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। गरुडासीन होकर वे देवेश भगवान् विष्णु भी मुझे आदेश देकर उसी क्षण बड़े आनन्दसे शीघ्र ही वैकुण्ठ चले गये॥ ६½॥

तत्पश्चात् श्रीविष्णुके चले जानेपर समस्त परम अद्भुत सुखों तथा दुःखोंके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर जा पहुँचा। हे मुने! वहाँ पहुँचकर पिताजीको प्रणाम करके ज्यों ही मैं उनके सामने खड़ा हुआ, तभी उन्होंने मुझे चिन्तासे व्यग्र देखकर पूछा॥ ७-८½॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! आप कहाँ गये थे? हे सुत! आप क्यों इतने घबराये हुए हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आपका चित्त इस समय स्वस्थ नहीं दिखायी पड़ रहा है। क्या किसीने आपको धोखेमें डाल दिया है अथवा आपने कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? हे पुत्र! आज मैं आपको उदास तथा विवेकसे कुण्ठित क्यों देख रहा हूँ?॥ ९-१०½॥

नारदजी बोले—पिता ब्रह्माजीके ऐसा पूछनेपर मैंने आसनपर बैठकर मायाके प्रभावसे उत्पन्न अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहा—हे पिताजी! महान् शक्तिशाली विष्णुने मुझे ठग लिया था। बहुत वर्षोंतक

स्त्रीभावं गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि।
अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम्॥ १३

प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च।
पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान्॥ १४

किमेतत्कारणं ब्रह्मन् यन्मोहमगमं तदा।
विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः॥ १५

एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम्।
ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम्॥ १६

अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम्।
कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे॥ १७

नारद उवाच

विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम्।
मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत॥ १८

ब्रह्मोवाच

दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः।
तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः॥ १९

नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम्।
विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शम्भुरुमापतिः॥ २०

दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता॥ २१

शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले।
न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः॥ २२

नारद उवाच

पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः।
आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च॥ २३

तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम्।
कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन् कुरु सत्तम॥ २४

मैं स्त्रीशरीर धारण किये रहा और मैंने पुत्रशोकजनित भीषण दुःखका अनुभव किया॥ ११—१३॥

तत्पश्चात् उन्होंने ही अपने अमृतमय मधुर वचनसे मुझे समझाया और पुनः सरोवरमें स्नान करके मैं पुरुषरूप नारद हो गया॥ १४॥

हे ब्रह्मन्! उस समय मुझे जो मोह हो गया था, उसका क्या कारण है? उस समय मेरा पूर्वज्ञान विस्मृत हो गया था और मैं शीघ्र ही उन [राजा तालध्वज]-में पूर्णरूपसे अनुरक्त हो गया। हे ब्रह्मन्! मैं मायाके इस बलको दुर्लंघ्य, ज्ञानकी हानि करनेवाला तथा मोहकी विस्तृत जड़ मानता हूँ॥ १६॥

मैंने सम्पूर्ण शुभ तथा अशुभ परिस्थितियोंका अनुभव किया तथा सम्यक् प्रकारसे उनके विषयमें जाना। हे तात! आपने उस मायाको कैसे जीता है? वह उपाय मुझे भी बताइये॥ १७॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिता ब्रह्माजीसे मेरे इस प्रकार बतानेपर वे मुसकराकर मुझसे प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—सभी देवता, मुनि, महात्मा, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायुसेवन करनेवाले योगियोंके लिये भी यह माया कठिनतासे जीती जानेवाली है॥ १९॥

उस महाशक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। उसी प्रकार विष्णु तथा उमापति शंकर भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं॥ २०॥

सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली वह महामाया सभीके लिये दुर्ज्ञेय है। काल, कर्म तथा स्वभाव आदि निमित्त कारणोंसे वह सदा समन्वित है॥ २१॥

हे मेधाविन्! अपरिमित बलसे सम्पन्न इस मायाके विषयमें आप शोक न करें। इसके विषयमें किसी प्रकारका विस्मय नहीं करना चाहिये। हमलोग भी मायासे विमोहित हैं॥ २२॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिताजीके ऐसा कहनेपर मेरा विस्मय दूर हो गया। इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंका दर्शन करता हुआ मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ॥ २३॥

अतएव हे श्रेष्ठ व्यासजी! कौरवोंके नाशसे उत्पन्न मोहका परित्याग करके आप भी इस स्थानपर सुखपूर्वक रहते हुए समय व्यतीत कीजिये॥ २४॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम्॥ २५

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा नारदो राजन् गतो मां प्रतिबोध्य च।
अहं तच्चिन्तयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा॥ २६

स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे।
कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मया॥ २७

पुराणमुत्तमं भूप सर्वसंशयनाशनम्।
नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम्॥ २८

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम।
यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पाञ्चालीं दारवीं करे॥ २९

कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम्।
तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३०

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम्।
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम्॥ ३१

गुणास्तु कारणं राजन् सर्वेषां सर्वथा त्रयः।
कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः॥ ३२

भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः।
शान्तो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु विविधा यतः॥ ३३

तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत्।
न भवत्येव संसारे रहितस्तन्तुभिः पटः॥ ३४

तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः।
देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप॥ ३५

गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः॥ ३६

कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथाप्रीतियुताः पुनः।
तथा विषादयुक्तास्ते भवन्ति गुणयोगतः॥ ३७

किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा मनमें निश्चय करके आनन्दपूर्वक विचरण कीजिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर मुझे समझानेके पश्चात् नारदजी वहाँसे चले गये। मुनि नारदने मुझसे जो वाक्य कहा था उसपर विचार करता हुआ मैं उस श्रेष्ठ सारस्वतकल्पमें सरस्वतीके तटपर ठहर गया। हे राजन्! समय व्यतीत करनेके उद्देश्यसे वहींपर मैंने सम्पूर्ण सन्देहोंको दूर करनेवाले, नानाविध आख्यानोंसे युक्त, वैदिक प्रमाणोंसे ओतप्रोत तथा पुराणोंमें उत्तम इस श्रीमद्देवीभागवतकी रचना की थी॥ २६—२८॥

हे राजेन्द्र! इसमें किसी तरहका संशय नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला अपने हाथमें काठकी पुतली लेकर उसे अपने अधीन करके अपने इच्छानुसार नचाता है, उसी प्रकार यह माया चराचर जगत्‌को नचाती रहती है॥ २९-३०॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, मानव तथा दानव हैं; वे सभी मन तथा चित्तका अनुसरण करते हैं॥ ३१॥

हे राजन्! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही सभी कार्योंके सर्वथा कारण होते हैं। यह निश्चित है कि कोई भी कार्य किसी-न-किसी कारणसे अवश्य सम्बद्ध रहता है॥ ३२॥

मायासे उत्पन्न हुए ये तीनों गुण भिन्न-भिन्न स्वभाववाले होते हैं; क्योंकि ये तीनों गुण (क्रमशः) शान्त, घोर तथा मूढ-भेदानुसार तीन प्रकारके होते हैं॥ ३३॥

इन तीनों गुणोंसे सदा युक्त रहनेवाला प्राणी इन गुणोंसे विहीन कैसे रह सकता है? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन वस्त्रकी सत्ता नहीं हो सकती, उसी प्रकार तीनों गुणोंसे रहित प्राणीकी सत्ता नहीं हो सकती, यह पूर्णरूपेण निश्चित है। हे नरेश! जिस प्रकार मिट्टीके बिना घटका होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार देवता, मानव अथवा पशु-पक्षी भी गुणोंके बिना नहीं रह सकते। यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों भी इन गुणोंके आश्रित रहते हैं। गुणोंका संयोग होनेसे ही वे कभी प्रसन्न रहते हैं, कभी अप्रसन्न रहते हैं तथा कभी विषादग्रस्त हो जाते हैं॥ ३४—३७॥

ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शान्तः समाधिमान्।
प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥ ३८

पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः।
तदा भवेद् घोररूपः सर्वत्राप्रीतिसंयुतः ॥ ३९

यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः।
तदा विषादसम्पन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥ ४०

माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः सर्वथा भवेत्।
यदा शान्तः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानसमन्वितः ॥ ४१

स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत्।
घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥ ४२

रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छान्तिमान्भवेत्।
रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३

तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत्।
एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ४४

सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि।
मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगे युगे ॥ ४५

अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम।
मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६

तस्माद् राजन्न कर्तव्यः सन्देहोऽत्र कदाचन।
देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥ ४७

सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽपि सर्वदा।
तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥ ४८

ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम्।
मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ ४९

ध्यायेत्तथाराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि।
तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥ ५०

जब ब्रह्मा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तब वे शान्त, समाधिस्थ, ज्ञानसम्पन्न तथा सभी प्राणियोंके प्रति प्रेमसे युक्त हो जाते हैं। वे ही जब सत्त्वगुणसे विहीन होकर रजोगुणकी अधिकतासे युक्त होते हैं, तब उनका रूप भयावह हो जाता है और वे सबके प्रति अप्रीतिकी भावनासे युक्त हो जाते हैं। वे ही ब्रह्मा जब तमोगुणकी अधिकतासे आविष्ट हो जाते हैं, तब वे विषादग्रस्त तथा मूढ़ हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ ३८—४० ॥

सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहनेवाले विष्णु इसी गुणके कारण शान्त, प्रीतिमान् तथा ज्ञानसम्पन्न रहते हैं। वे ही रमापति विष्णु रजोगुणकी अधिकताके कारण अप्रीतिसे युक्त हो जाते हैं और तमोगुणके अधीन होकर सभी प्राणियोंके लिये घोररूप हो जाते हैं ॥ ४१-४२ ॥

इसी प्रकार रुद्र भी सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर प्रेम तथा शान्तिसे समन्वित रहते हैं, किंतु रजोगुणसे आविष्ट होनेपर वे भी भयानक तथा प्रेमविहीन हो जाते हैं। इसी तरह तमोगुणसे आविष्ट होनेपर वे रुद्र मूढ तथा विषादग्रस्त हो जाते हैं ॥ ४३½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! यदि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तथा युग-युगमें जो सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी चौदहों मनु कहे गये हैं—वे भी गुणोंके अधीन रहते हैं, तब इस संसारमें अन्य लोगोंकी कौन-सी बात? देवता, दानव तथा मानवसमेत यह सम्पूर्ण जगत् मायाका वशवर्ती है ॥ ४४—४६ ॥

अतएव हे राजन्! इस विषयमें कदापि सन्देह नहीं करना चाहिये। प्राणी मायाके अधीन है और वह उसीके वशवर्ती होकर चेष्टा करता है ॥ ४७ ॥

वह माया भी सदा संविद्रूप परमतत्त्वमें स्थित रहती है। वह उसीके अधीन रहती हुई उसीसे प्रेरित होकर जीवोंमें सदा मोहका संचार करती है ॥ ४८ ॥

अतः विशिष्टमायास्वरूपा, प्रज्ञामयी, परमेश्वरी, मायाकी अधिष्ठात्री, सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान, पूजन, वन्दन तथा जप करना चाहिये। उससे वे भगवती प्राणीपर दया करके उसे मुक्त कर देती हैं और अपनी अनुभूति कराकर अपनी

स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः।
भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका॥ ५१

भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी।
तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा॥ ५२

मायया किं भवेत्तत्र सदसद्भूतया नृप।
तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतान्तरम्॥ ५३

समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत्॥ ५४

किन्तु भानुप्रभाचन्द्रविद्युद्वह्निप्रभादयः।
तस्मान्मायेश्वरीमम्बां स्वप्रकाशां तु संविदम्॥ ५५

आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये।
इति सम्यङ्मयाख्यातं वृत्रासुरवधादिकम्॥ ५६

यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।
पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत॥ ५७

यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तरेणोपपादितः।
एतद्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित्॥ ५८

देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च।
शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च॥ ५९

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं
निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या
स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥ ६०

मायाको हर लेती हैं। समस्त भुवन मायारूप है तथा वे ईश्वरी उसकी नायिका हैं। इसीलिये त्रैलोक्यसुन्दरी भगवतीको 'भुवनेशी' कहा गया है। हे पृथ्वीपते! यदि उन भगवतीके रूपमें चित्त सदा आसक्त हो जाय तो सत्-असत्स्वरूपा माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अतः हे राजन्! सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती परमेश्वरीको छोड़कर अन्य कोई भी देवता उस मायाको दूर करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४९—५३½॥

एक अन्धकार किसी दूसरे अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; किंतु सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् तथा अग्नि आदिकी प्रभा उस अन्धकारको मिटा देती है। अतएव मायाके गुणोंसे निवृत्ति प्राप्त करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक स्वयंप्रकाशित तथा ज्ञानस्वरूपिणी भगवती मायेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये॥ ५४-५५½॥

हे राजेन्द्र! वृत्रासुर-वध आदिकी कथाके विषयमें आपने जो पूछा था, उसका वर्णन मैंने भलीभाँति कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५६½॥

हे सुव्रत! श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूर्वार्ध मैंने आपसे कहा, जिसमें देवीकी महिमाका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस किसीको नहीं सुना देना चाहिये। भक्त, शान्त, देवीकी भक्तिमें लीन, ज्येष्ठ पुत्र तथा गुरुभक्तिसे युक्त शिष्यके समक्ष ही इसका वर्णन करना चाहिये॥ ५७—५९॥

इस संसारमें जो मनुष्य सम्पूर्ण कथाओंके सार-स्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विशेष श्रद्धाके साथ भक्तिपूर्वक पाठ करता है तथा इसका श्रवण करता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो जाता है॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
भगवतीमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

* * *

॥ षष्ठः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण पूर्वार्ध सम्पूर्णम्॥

* * *

વૈશાખ ૮૮,

શતકે : ૧૩

ચૈતન્યતા - 103

ત્રિઅગ્નિક - 107

યથા ભૌમ - 108 ૦૦૬૫૯

દેવદાનવયુદ્ધ - તારામવલવય - 126

મેઘસ્થાન પર્જૂન - 128

દુરન્તાનિ - 141

~~ચક્ર~~ ત્રુટ્ટ → આતિવ 179

દાસ્યા કામકલાવિદા 202

લગ્નં · શર્ત - 191-193

રૂપ ચિતિ - બદલા - 230 - 232

વિપણાવહૈ - શર્ત લગાના - 235 -

લનામાં - 238

કીર્તિરત્નાવલિ 262, અનાવિલત્વ - 263

૮૪ - ચતુરશીતિ લક્ષા - 278

160
20000000
32

18099

147 – સવિધિ: – N. Land. ચોટીલી
148 દેવી

266
270 પરોડીસરમા: N. Land "

274 N Land

286 – સર્વ આમતા: N. Land

313 – વસ્તૂન
316 – સામન્તાં
317 – સ્ત્રીઓમાં સતી હોળા – દુતવેદે

334 – સ્વયંવર

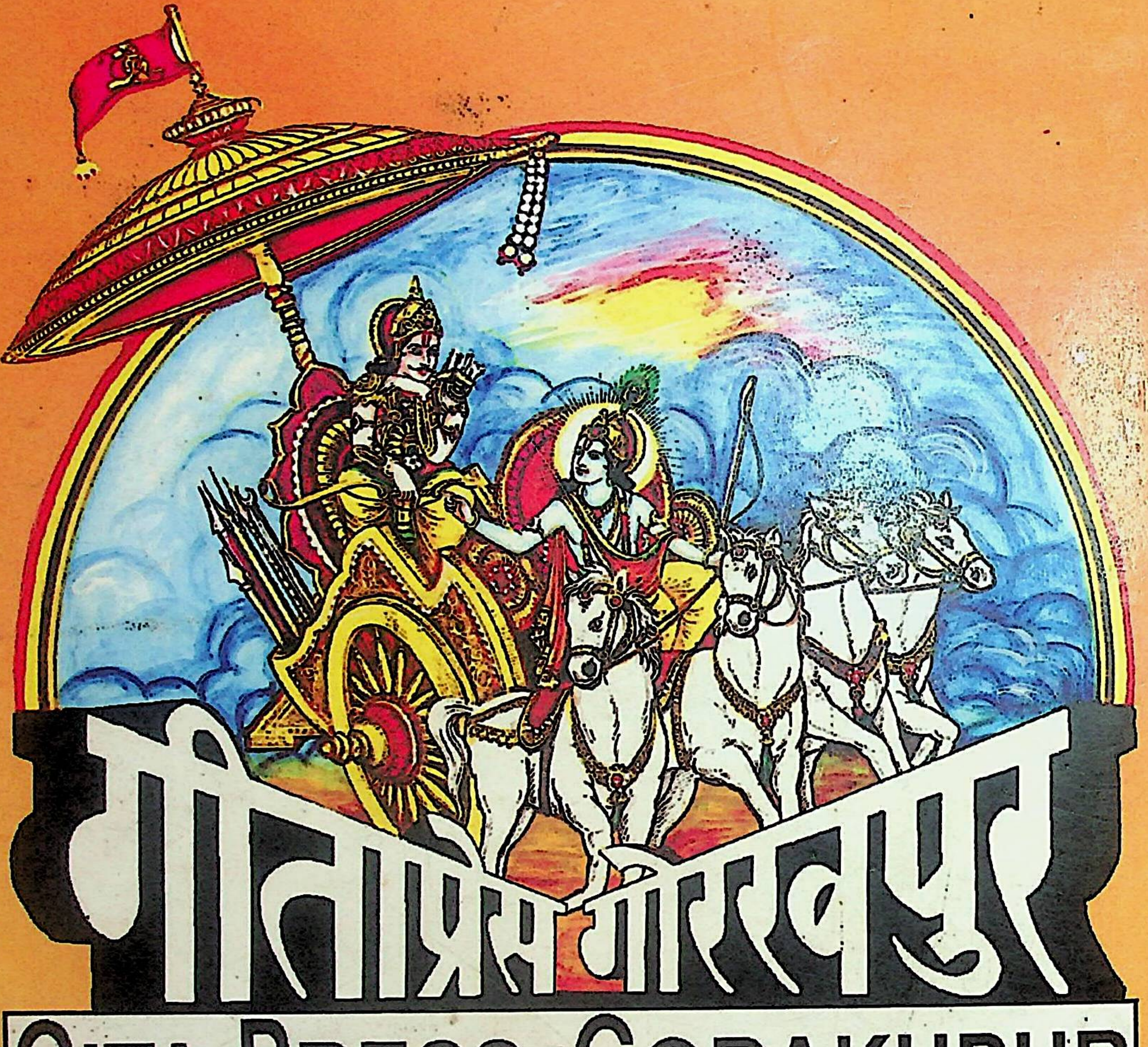
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, फैक्स : २३३६९९७

GPPN 1897